UGC Care Listed

त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका

ISSN-2321-1504 Nagfani
RNI No. UTTHIN/2010/34408

वर्ष-12, अंक-42, जुलाई - सितम्बर 2022



आज़ादी का
अमृत महोत्सव

नागफनी

मूल्य
₹ 150/-

अस्मिता, चेतना और स्वाभिमान जगाने वाला साहित्य

आगामी अंक की सूचना

अक्टूबर से दिसंबर 2022 के लिए 30 सितम्बर तक ही लेख स्वीकार किये जायेंगे। 30 सितम्बर के बाद मेल पर प्राप्त शोधालेखों पर आगामी अंक में प्रकाशित करने पर विचार किया जाएगा। व्यक्तिगत पंचवार्षिक सदस्यता लेने पर पांच साल तक पत्रिका मिलेगी। शोधालेख प्रकाशन की स्वीकृति/अस्वीकृति का जो भी निर्णय होगा वह आपको मेल/मोबाईल पर सूचित किया जाएगा।

"नागफनी" अस्मिता, चेतना, और स्वाभिमान जगाने वाली त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका है। इस पत्रिका को यूजीसी केयर लिस्ट मे शामिल किया गया है। पत्रिका का ISSN&2321&1504 nagfani और RNI No-UTTHIN/2010/34408 नम्बर है। साथ ही यह Peer Reviewed Referred journal है। आलेख –nagfani81@gmail-com पर भेजने का कष्ट करें। व्यक्तिगत पंचवार्षिक सदस्यता लेने पर पांच साल तक पत्रिका मिलेगी।

आलेख भेजने संबंधी निर्देश–

- शोधालेख यूनिकोड kokila फॉन्ट 14 साइज में तथा एरियल युनिकोड में टाइप करके word और PDF दोनों में भेजना है।
- कलर पासपोर्ट फोटो।
- मौलिकता और प्लेगरिज्म संबंधी प्रमाण–पत्र।
- अन्य किसी टाइप फॉन्ट को स्वीकृत नहीं किया जाएगा।
- आलेख मेल पर भेजने के बाद आलेख स्वीकृति/अस्वीकृति की सूचना मेल पर ही दी जाएगी ।

धन्यवाद!

नागफनी

A Peer Reviewed Refrred Journal
(अस्मिता चेतना और स्वाभिमान जगाने वाला साहित्य)
UGC Care Listed त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका
ISSN-2321-1504NagfaniRNI No.UTTHIN/2010/34408

संपादक
सपना सोनकर

सह संपादक
रूपनारायण सोनकर

Co Editor(English)
Prof.Rajesh karankal
Dr.Santosh Kumar Sonkar

कार्यकारी संपादक
डॉ.एन.पी.प्रजापति
प्रोफेसर बलिराम धापसे

वर्ष-12 अंक 42,जुलाई -सितंबर 2022

सलाहकार मण्डल (Peer Review Comittee)

प्रोफेसर विष्णु सरवदे, हैदराबाद (तेलंगाना)
प्रोफेसर आर. जयचंद्रन तिरुअनंतपुरम (केरल)
प्रोफेसर दिनेश कुशवाह,रीवा (मध्य प्रदेश)
डॉ.एन. एस. परमार, बड़ौदा (गुजरात)
प्रो. दिलीप कुमार मेहरा, बी.बी.नगर (गुजरात)
डॉ.उमाकांत हजारिका, शिवसागर(असम)
डॉ. आर. कनागसेल्वम, इरोड (तमिलनाडु)
प्रोफेसर संजय एल. मादार,धारवाड़ (कर्नाटक)
प्रोफेसर गोबिन्द बुरसे, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
डॉ.दादा साहेब सालुनके, महाराष्ट्र (औरंगाबाद)
प्रोफेसर अलका गड़करी, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
डॉ. साहिरा बानो बी. बोरगल, हैदराबाद (तेलंगाना)
डॉ. बलविंदर कौर, हैदराबाद (तेलंगाना)
प्रोफेसर मोहनलाल 'आर्य' मुरादाबाद (उत्तर प्रदेश)

प्रकाशन/मुद्रण

प्रकाशक रूपनारायण सोनकर की अनुमति से डॉ.एन.पी.प्रजापति एवं प्रोफेसर बलिराम धापसे द्वारा नमन प्रकाशन–423/Aअंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली 11002 में प्रकाशन एवं मुद्रण कार्य।

मुख पृष्ठ– उत्कर्ष प्रजापति, सिंगरौली - मध्यप्रदेश

संपादकीय/व्यवस्थापकीय कार्यालय

दून व्यू कॉटेज स्प्रिंग रोड, मंसूरी -248179, उत्तराखण्ड, दूरभाष : 0135-6457809 मो.0941077718

शाखा कार्यालय

पी.डब्ल्यू. डी. आर. -62 ए ब्लॉक कॉलोनी बैढ़न, जिला-सिंगरौली म. प्र. पिन-486886 मो. 09752998467
सहयोग राशि -150/-रुपये, वार्षिक सदस्यता शुल्क (संस्था के लिए)-1500/-रुपये, पंच वार्षिक सदस्यता शुल्क (व्यक्ति के लिए)-3000/-रुपये, पंच वार्षिक संस्था और पुस्तकालयों के लिए –3500/-रुपये, विदेशों में$50 आजीवन व्यक्ति-6000/-रुपये,संस्था-10,000/-रुपये।

सदस्यता शुल्क एवं सहयोग राशि-इंडिया पोस्ट पेमेंट बैंक–A/C –8367100138282 IFSC Code-IPOS0000001 Branch-sidhi, NIRPAT PRASAD PRAJAPATI

नोट:-पत्रिका की किसी भी सामग्री का उपयोग करने से पहले संपादक की अनुमति आवश्यक है। संपादक-संचालक पूर्णतया अवैतनिक एवं अध्यवसायी हैं।**'नागफनी'**में प्रकाशित शोध-पत्र एवं लेख, लेखकों के विचार उनके स्वयं के हैं। जिनमेंसंपादक की सहमति अनिवार्य नहीं हैं।**'नागफनी'** से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल देहरादून न्यायालय के अधीन होंगे। अंक में प्रकाशित सामग्री के पुनर्प्रकाशन के लिए लिखित अनुमति अनिवार्य है। सारे भुगतान मनीऑर्डर, बैंक/चेक/बैंक ट्रांसफर/ई-पेमेंट आदि से किए जा सकते हैं। देहरादून से बाहर के चेक में बैंक कमीशन 50/-अतिरिक्त जोड़ें दें।

लेख भेजने के लिए –Mail-ID- nagfani81@gamil.com
पत्रिका के बारे मे विस्तार से जानने के लिए देखें Website:–http:naagfani.com

नागफनी

वर्ष-12 अंक42,जुलाई -सितंबर 2022

अनुक्रम — पृष्ठ क्रमांक

संपादकीय 05

पाठकों की प्रतिक्रिया 06

साहित्यिक विमर्श

1. जिंदगी 50-50 उपन्यास की 'हर्षिता' का जीवन-संघर्ष-डॉ. पी. सरस्वती 7-8
2. प्रयोगधर्मी उपन्यासकार-अज्ञेय-डॉ.मुरलीधर अच्युतराव लहाडे 9-10
3. भोजपुरी फिल्म और प्रयुक्त हिन्दी लोकगीत का स्वरूप एवं सम्भावनाएँ -डॉ.शिवम् चतुर्वेदी 10-12
4. भारतीय नवजागरण और आधुनिक हिन्दी साहित्य: भारतेंदु एवं प्रसाद की नाट्य रचनाओं के संदर्भ में- डॉ.बालेन्द्र सिंह यादव 13-15
5. राही मासूम रजा के उपन्यासों में अभिव्यक्त गंगा जमुनी संस्कृति-डॉ.गणेश एम. 16
6. हिंदी कन्नेड़ और कन्नड़ -हिंदी अनुवाद: परंपरा और पद्रेय-डॉ.साहिराबानू बी.बोरगल 17-18
7. मंगलेश डबराल की कविताओं में सामाजिक यथार्थ-डॉ.सुनील एम. पाटिल 18-19
8. महादेवी वर्मा के साहित्य में नारी सशक्तिकरण की पहल-डॉ.राजन तनवर 20
9. डिजिटल मीडिया में हिन्दी की वर्तमान स्थिति-डॉ.विनय कुमार चौधरी 21-22
10. नागार्जुन के उपन्यासों में नारी विमर्श-वीणा शर्मा/डॉ.शिवम् चतुर्वेदी 23-25
11. सुरजीत पातर की कविताओं में बदलते नैतिक मूल्य एवं सत्ता पर व्यंग्य-डॉ.सुरजीत सिंह वरवाल 25-27
12. पुणतांबेकर का व्यंग्य : व्यापक तथ्यों की सूक्ष्म अभिव्यक्तियाँ-डॉ.मीना सुतवणी 27-29
13. 'फैंटेसी' के शिल्पकार-कवि गजानन माधव मुक्तिबोध-डॉ.एन.पी.प्रजापति 29-31
14. 'तहबील' की कहानियों में सामाजिक जीवन मूल्य-डॉ.आर्या वी. एस. 31-32
15. स्वातंत्र्योत्तर व्यंग्य निबंध साहित्य:राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में -डॉ.सचिन कदम/ गणेश गभाले 33-34
16. शोध-प्रकार और समीक्षा-डॉ.समय लाल प्रजापति 34-35
17. वृद्धावस्था की त्रासदी और 'नट सम्राट'-प्रो.संजय एल.मादार 35-36
18. 'पंचलाइट':एक पुनर्पाठ-डॉ.निम्मी ए.ए. 37-38
19. आदिकाल में नाथ सम्प्रदाय:महत्व एवं योगदान-रीना रानी 39
20. कल्चर-वल्चर उपन्यास: साहित्य, राजनीति एवं व्यवसाय की यथार्थ परिकल्पना-रेणु देवी 40-41
21. हिन्दी की कहानियों में चित्रित प्रव्रजन की समस्या-डॉ.मनिका शइकीया 42-43
22. मानवीय मूल्यों के सृजनहार: प्रेमचंद-चेतन चंद जोशी 43-45
23. 'कोसला':कथ्य और शिल्प के नए प्रयोग-डॉ.सुषमा कुमारी 46-48
24. साहित्य:एक सामाजिक उत्पादन-डॉ.सरिता सिन्हा 48-49
25. समकालीन मलयालम कविता-अश्वती.एस 50-51
26. धार्मिक उन्माद का चित्रण: त्रिशूल-किरन मिश्रा 52-53
27. अज्ञेय जी के कहानियों में अभिव्यक्त मानवीय संवेदना-प्रार्थना गोगोई 54-55
28. 'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास में अन्तिम जन का प्रतिरोध- शिवम कुमार 56-57
29. गुरू जम्भवाणी में निहित चेतना-किरण मयी 58-60
30. हिन्दी साहित्य में वृद्ध विमर्श-जितेन्द्र कुमार 60-62
31. आधुनिक हिन्दी काव्य और उसका विकास-अनिल कुमार मेरावी 62-63
32. माधव कौशिक की गजलों में काव्य भाषा-हरी राम 64-65
33. तेलुगू भाषा आविर्भाव,विकास और संस्कृति-डॉ.आर.एन.शीला 65-97
34. अभिमन्यु अनत कृत 'अपना मन उपवन' उपन्यास में पर्यावरणीय विमर्श-जयन्ती/डॉ.रामरति 68-69
35. भगवानदास मोरवाल के कथा साहित्य में मानवाधिकार -अजय जी कम्मत 69-71
36. 'शिक्षा शेरनी का दूध है' इस संकल्पना को दर्शाता'छप्पर'उपन्यास-सिलपाका वेंकटाद्री 72-73

स्त्री विमर्श

1. असम में नारी शिक्षा:एक अवलोकन-प्रशांत लस्कर 74-45
2. दलित महिला सशक्तिकरण:एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण-रीता भारती/डॉ.कमलेश कुमार सिंह 76-78
3. हिन्दी साहित्य में पारिस्थितिक नारीवाद-अन्वेषा कबिरत्ना 78-79
4. भगवानदास मोरवाल के उपन्यासों में स्त्री-संसार-सुबाष 80-81
5. स्त्री शिक्षा-सुमलक अपुम/डॉ.शिवम चतुर्वेदी 81-82
6. समकालीन हिंदी कहानी में स्त्री दृष्टि- रेखा शर्मा/डॉ.रजिया बेगम 83-84

दलित विमर्श

1. दलित आलोचना के प्रमुख मुद्दे:एक संक्षिप्त विश्लेषण- डॉ.जयसिंह मीणा 85-86
2. मोहनदास नैमिशराय की कहानियों में दलित संघर्ष('हमारा जवाब' कहानी संग्रह के विशेष सन्दर्भ में)-शिल्पा दत्त 87-88
3. हिंदी साहित्य में दलित चेतना-वैशाली काशिनाथ गायकवाड 89-90
4. दलित शब्द का अर्थ, परिभाषा एवं अवधारणाएं-भूप सिंह/डॉ.जोगीराम 90-91
6. जातिवादी राजनीति का पोल खोलता प्रेमकुमार 'मणि' का उपन्यास 'ढलान'-डॉ.जे.आत्माराम 92-94

7. राजेन्द्र यादव, 'हंस' और दलित वैचारिकी-डॉ.मृत्युंजय सिंह 95-96
8. "मेरा समाज" कहानी में अभिव्यक्त दलित स्त्री का जीवन यथार्थ-डॉ.ए.एस. सुमेष/कार्तिका टी. वी. 97-98
9. दलित चेतना का प्रतीक नाटक : 'कोर्टमार्शल'-डॉ. प्रमोद गोकुळ पाटील 98-99

आदिवासी विमर्श

1. आदिवासी साहित्य:मानव-सभ्यता के स्वाभाविक विकास का दस्तावेज-प्रदीप कुमार ठाकुर 100-102
2. भगवान गव्हाडे की कविता में आदिवासी जीवन -डॉ. वासंती. जे. 103-104
3. आदिवासी लोक नायक बिरसा मुंडा,-रुद्र चरण माझी 105-106
4. आदिवासी महिला रचनाकरों के लेखन में जल,जंगल,जमीन का संघर्ष-ज्ञानती 107-109
5. समकालीन हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी स्त्री: एक अवलोकन -दिम्पी दत्त 109-111
6. आदिवासी स्त्री जीवन संघर्ष को व्यक्त करता, तुम्बम रीबा जोमो 'लिली' का उपन्यास "उस रात की सुबह "- निम्मी सलोमी किन्डो 112-114
7. आदिवासियों की प्रकृति पूजा का पर्यावरण संरक्षण में योगदान-हिमांशु प्रभाकर 115-116

किन्नर विमर्श

1. सामाजिक प्रतिष्ठा मे बेचैन थर्ड जेंडर-डॉ.अरविंद अंबादास घोडके 117-118
2. भारत में किन्नरों का ऐतिहासिक उल्लेख तथा वर्तमान में प्राप्त अधिकार-मो.जहाँगीर 118-120
3. 'यमदीप' में किन्नर जीवन की व्यथा-डॉ. निशा मुरलीधरन 120-121

कविता

1. डॉ वंदना मिश्रा की तीन कविताएँ 121-122

कहानी

1. दीपा जी की चार लघु कहानियाँ 123

विविध विमर्श

1.सम्राट अशोक के कल्याणकारी बौद्ध धम्म का स्वरूप-डॉ.सुरजीत कुमार सिंह 124-125
2.सरदार पटेल के चिंतन एवं व्यवहार में गांधीवादी नीतियों के प्रभाव का विवेचनात्मक अध्ययन-डॉ.राजेश कुमार शर्मा 126-128
3.दक्षिण भारतीय भाषाएँ और अनुवाद- तमिल भाषा के विशेष संदर्भ में—डॉ.शशि प्रभा जैन 129-130
4.राष्ट्रीय राजधानी परिक्षेत्र के गाजियाबाद एवं नोयडा उपक्षेत्रों में प्राथमिक शिक्षा के परिमाणात्मक प्रसार का विश्लेषणात्मक अध्ययन -अजय कुमार/प्रो.महेन्द्र प्रसाद पाण्डेय 130-132
1.माध्यमिक विद्यालयों में हिन्दी शिक्षण : एक अध्ययन एनईपी 2020 के संदर्भ में-डॉ.उमा सैनी 133-134
2.इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक का हिंदी सिनेमा : एक अध्ययन-डॉ. सुनील दशरथ चव्हाण 134-135
3. हिंदी भाषा का महत्व- शालिनी सी. 136-138
4.विद्यालयों में शिक्षकों के दृष्टिकोण और अनुभूति पर परिवर्तनकारी नेतृत्व का प्रभाव: एक साहित्य समीक्षा-दीपक 138-140
5.सांस्कृतिक समायोजन एवं सोशल मीडिया की भूमिका–डॉ.दुर्गेश कुमार श्रीवास्तव 141-142
6.'हिंद-प्रशांत क्षेत्र में भारत-चीन सामुद्रिक प्रतिद्वंदिता'-राजीव रौशनकुमार 143-144
7.नशा और समाज में जागरुकता का अभाव-डॉ. रेशमा अंसारी 145-146
8.आधुनिक युग में मीडिया का बदलता स्वरूप- वर्तमान समय की मांग-डॉ. राहुल कुशवाहा 146-148
9.पूर्वी राजस्थान के नाथ संत श्री दुर्बलनाथ का चिन्तन-डॉ. शीतल प्रसाद महेन्द्रा 148-150
10.गुरु नानक वाणी का वैश्विक वितान-डॉ. अनीश कुमार 151-152
11.जनसंख्या वृद्धि : संसाधन या बोझ-अमित कुमार सिंह 153-154
12.भारतीय राष्ट्र दर्शन : पंडित दीनदयाल उपाध्याय के संदर्भ में-गुंजेश गौतम 155-157
13.गांधी दर्शन में सामाजिक न्याय -राजकिशोर 157-159
14.आधुनिक युग में मानव का बदलता स्वरूप-ज्योति शर्मा 159-160
15.प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षण संस्थाओं के विद्यार्थियों का पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान तथा उसके प्रभाव के ज्ञान का अध्ययन-परिना बंसल/डॉ. मोहन लाल 'आर्य' 161-163
1.नागरिक पत्रकारिता: एक अध्ययन-पुलकित शर्माडॉ राजेश कुमार शुक्ला 164-165
2.मानवाधिकारों की क्रियान्विति में सतत विकास लक्ष्यों का महत्व एक विश्लेषणात्मक अध्ययन-पुष्पेन्द्र सिंह 166-167

English Discourse

1.Poisnous Roots is a Mile Stone For Struggle of Dalits-Part-1and Part-2-Sunil Kumar 168-171
2.Role of Silk Industry of Assam in Employment Generation-Dr. Basanta Mangal Dutta 171-174
3.Metamorphosis in Margaret Atwood's Surfacing-Preeti 174-176
4.A Comparative Study: Portrayal of Women in Valluvan's 'Not Desiring Another's Wife' and Sivakami's The Grip of change.-Dr. S.Manikandan 177-178
5. An Analytical study of Principal's Academic Role and his Professional Development -Dr.Mohan Lal 'Arya' 179-181
6. Reinterpretation of Nature-Man-Spirit Complex with Special Reference to the Murma Parha Jatra-Nisha Kumari /Dr.Seema Mamta Minz 182-184
7. Gender, Choice of Stream and Social Interaction in Higher Education-Brajesh Kumar/Manoj Singh Yadav/ Taruna 185-187
8. The Influence of The Gothic in The Resoution of Charlotte Bront's Jane Eyre -Rimzim Saikia 188-189
9. Issues and Challenges of Higher Education in Indian Perspective-Dr. Rajkumari Gola 190-191

10. Decentralization: A Tool of People's Participation-Diwakar Kumar Jha 192-195
11.Identity Crisis: Constructing New Definitions of Existence and Identity in the Plays of Mahesh Dattani-Alimpa Bhuyan/Anup Kumar Dey 196-199
12.Turmoil of Transgender People:A Critical Study of A Revathi's The Truth About Me -Parul Priya 199-201
13.Study on Feminism in Indian Short Stories- Sudipta Pandey/ Dr Pratima 202-204
14. A voice for Reconstruct Dalit Consciousness in Vijay Tendulkar's Kanyadaan- Laxmi Prasad Anuragi/prof. Sajnoy Saksena 205-208
15.Gender Inequality in Ngugi waThiongo's Devil on the Cross-A. Syed Rehanas /Dr. P. Mythily 209-210
16.Search for Individuality in the Novel of Arun Joshi: The Strange Case of Billy Biswas-K.Suresh/ Dr.Ruby 210-212
17.Gender Bigotry in Mahesh Dattani's 'Tara'-R. Mythili/Dr. V. Suganthi 212-214
18..Ownership of Land in Ancient Assam As Reflected in Epigraphic Sources -Aoyana Buragohain 215-216
19.Multiculturalism in Khushwant Singh's Historical Novels: Insights about poor suffered minorities in Mano Majra village of unpartitioned India-P.Kavitha/Dr. B. Visalakshi 217-219
20.Tagore's Views on Indian Nationalism as a Derivative Discourse-Projnya Paromita Kaushik 219-220
21.A Study on Buyer Behaviour of on Demand Online Food Ordering and Delivery Service at Hyderabad-Archana Kumari /Dr. Selvam 221-224
22.An Overview on the Characterizations and Feminism in Sudha Murthy's Gently Falls the Bakula-K S Punithaasree/Dr. G. Keerthi 224-226
23.Managing and Developing Human Resources in Higher Education-Ranjini Catharin Kavitha.A./Dr. Savithri 226-228
24.Mysticism in K.V.Raghupathi's The Images of a Growing Dying City-Mr.S. Selvakumar/Dr.S. Kumaran 229-230
25.Impersonal Socio-Political Power and Structure in Nayantara Sahgal's This Time of Morning-P.Senthilkumar/Dr.R.Padmavathi 231-233
26.Enhancing Speaking Skills in English Classroom-S. Subha/Dr S Diravidamani 233-235
27.Sociological Aspects in Amitav Ghosh's Sea of Poppies-Ms.T.Thenmozhi/Dr.T.S.Geetha 226-237
28.Factors influencing The Consumer Behavior While Using Mobile Apps-Vignesh.P./Dr.T.Sarathy 238-241
29.Chemmeen: The Illustration of Haziness in Human Life through Film Adaptation and Translation- T.P.Remadevi 242-243
30.Revealing Human through Political Theory in Amitav Ghosh's The Calcutta Chromosome-K.Divya 243-245
31.National Education Policy 2020 In India: A Inclusive Policy Of Higher Education -Subal Tandi 245-248
32.Mirroring The View of Christianity Treasure in The Select African Poems-KEERTHANA K 248-250
33.Chakra Puja:A Folk Fesitval of Kumhar (Prajapati)Community in Jharkhand-Amit Kumar/Rabindranath Sarma 251-253
34.Right To Education Act 2009 In India: A Sociological Analysis-Govind Kumar Rohit/Dr. Rabindranath Sarma 254-256
35.Understanding Female Uprising through Myths and Struggle: A Study of Arthur Miller's Play, The Crucible and the Hindi Movie, Bulbul Written and Directed by Anvita Dutt-Porismita Devi/Dristi Dhekial Phukan 257-258
36.Identity Crisis of Dalits Through The Autobiography 'Joothan'-S. Neeraj Sivan/Dr. Shiban Chakraverty Aich 259-261
37.East West Confrontation in Bharati Mukhrjee Desirable Daughters -Mathavi/Dr. M. Muruganantham 261-262
38.Teacher Effectiveness in Relation to their Emotional Intelligence and Job-Satisfaction -Mohan Lal 'Arya' Megha Khanna 263-265
39.Revisiting Colonial Adventurism in the Unmapped Assam Frontier Hills and Beyond-Siddhartha Pait 266-269
40.Understanding Occupational stress amid software employees in Bangalore: An Insight-Ramakrishnan.V/Dr. K. ARUL 270-272
41.The Uighurs and China: Resentment and Response-Dr. Karne Sudarshan Kumar 273-275
42. The Suggestive Power of Images in Phoolan Devi's I Phoolan Devi: The Autobiography of the Bandit Queen-Chitra Devi C S, 276-277
43. A Study on Consumer's Behavior Towards Organic Food Products in Salem District- K.Prabha/Dr.T.A.Tamilselvi 278-281
44.Correlates of Socioeconomic Status and Anthropometric Measurements along with Dietary Status of College Going Girls in Lucknow-Sachdeva Swati/ Singh Trupti 281-284
45.Repressed them to 'silence'; they revolted back in the same language: A reading of women characters in Ra-myabhumi and The Cosmopolitans-Ghanashyam Nath-Rimi Rekha Phukon 285-286
46.Ethnic origin and Religious beliefs of the Mising community of Assam in historical context-Supriya Dutta- Biraj Jyoti Kalita 287-288
47.Present position of Sports in India-Manjunath Devanal 289-290
48.Unifying the Periphery: A Transnational Feminist Study of Selected Fictional Works of the Northeast-Jayini Bhaumik/Dr. Archana Kumari 291-292
49.Observing Bhartṛhari and Wittgenstein on the ground of Language- Smt. Jayeeta Roy 293-295
50. The Indian Constitution: A Beacon of Democratic Governance and Egalitarian Values-Dr. Mamta Rani 296-301
51.The Missing Muslim Sleuth: An Analysis of Contemporary Mysteries-Abdulatheef Kampuravan 302-305
52 Agricultural Insurance and Farmer's Well-being in West Bengal-Anil Kumar Biswas, Dhiman Chakraborty 306-311
53. Navigating Learning Disabilities in Higher Education: Challenges and Strategic Solutions for College Students-Biju N.C. 312-316
54.Representing the Subaltern: A Study of Mahasweta Devi's "Hunt"-Dr. Mukhtar Ahmad Dar 317-319
55.A Study of Amrita-Minx Relationship in Shobha De's Strange Obsession-Dr. Kusum Kanger 320-323
56.The Emergence of the New Woman in Anuradha Roy's All the Lives we Never Lived-Dr. Kusumita Mukherjee Debnath 324-327
57.Cultural Dissonance and Gendered Alienation: Gauri's Dual Worlds in Jhumpa Lahiri's The Lowland--Suruchi Sharma 328-331
58. Transgender's Struggle in Mahesh Dattani's Seven Steps Around the Fire-Dr. Rupkatha Ghosh,Gaytri devi 332-333
59.Siddhartha as a Symbol of Syncretic Spirituality: A Study on Herman Hess's Literary Approach-Kavitharam T.R. 334-336
60.Fairy Tale Retellings: A Re-representation of Sleeping Beauty as Maleficent-Nada Rajan 337-339
61.Recollecting the Nation's Trauma with Retrospective Eye: Politics of Memory in Select Poems of Seamus Heaney-Sandeep. T. G 340-342

62.A New Platform for Marketing: Digital Marketing Overview and Present Landscape-Subhrosil Dey,Prof. Arup Kumar Baksi 343-347
63. Silences to Voices: A Study of Kamala Das's Confessional Poetry-Dr. Jupitara Boro 348-351
64. Collective Trauma and the Displacement of Identity in Siddhartha Gigoo's The Lion of Kashmir: A Kai Erikson Perspective - Archana 352-355
65. The Stereotypical Portrayal of Gender in Fairy Tales "Cinderella" and "Snow White"-Mukesh Kumar,Riddhima Yadav 356-360
66. Voice of the Gendered Subaltern as represented in Jeelani Bano's *Aiwan-e-Ghazal*-A H Parvin, Dr. T. Naresh Naidu 361-365
67. Dharma As A Guiding Principle Of Socio Institutions In Ancient India--Dr. Shruti Rai 366-369
68. Interstate Analysis of Productive Performance in India's Dairy Manufacturing Sector Using Stochastic Frontier Models-Sonali Chadha, Sunil Jaiswal 370-377
69. Feminism in India and western Feminism: A Comparative Study-Dr. Shehjad Sidiquii 378-380
70. Theatre of Synthesis: Exploring the Possibilities for Creating A Third Theatre in India-Parthsarathi Sahu, Shaleen Kumar Singh 381-387

अन्य

1. थेरी गाथाओं में स्त्री और पुरुष के आध्यात्मिक अनुभवों का तुलनात्मक अध्ययन-डॉ सीमा गौतम, डॉ दीपक सिंह 388-390
2. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानियों में आँचलिक जीवन की समस्याओं का परिदृश्य--विष्णु 391-394
3 थेरवाद बौद्ध धर्म: एक अनुशीलन-वैभव कुमार तिवारी 395-398
4. भारतीय राजनीति का अंतर्विरोध और 'महाभोज-डॉ. अभिषेक कुमार पटेल 399-406
5. वैदिक चिंतन परंपरा में संपोषी विकास की अवधारणा--शुभम केशरी 407-410
6.वेदों में पर्यावरण विज्ञान-हंसराज, डॉ. देवेन्द्र नाथ ओझा 411-413
7.भारत में लेखनकलाः एक ऐतिहासिक विश्लेषण-डॉ. कामाख्या नारायण तिवारी 414-415
8.सामाजिक समस्याओं के संदर्भ में 'संजीव' का उपन्यास ''मुझे पहचानो''--शशि कुमारी 416-417
9. 'शत्रुघ्न कुमार के कविताओं में बहुजन चेतना'-प्रकाश 418-420
10. गीतांजलि श्री कृत उपन्यास 'रेत समाधि' का अनुशीलन-गुरुशरन कुमार 421-425
11. The Fluid Self: Diasporic Consciousness and Identity Reconfiguration in Bharati Mukherjee's Jasmine-Anil Sehrawat 426-430
12. 'कब्र का मुनाफ़ा' कहानी में बाज़ारवादी संवेदनहीनता एवं नैतिक पतन-नवी हसन 431-434
13.चित्रा मुद्गल के उपन्यास में ''किन्नर विमर्श''-नाला सोपारा पो0 बॉक्स नं0 203 के विशेष संदर्भ में-केवलानन्द 435-438
14.व्यक्तित्व विकास और सोशल मीडिया : उच्चतर माध्यमिक छात्रों के सन्दर्भ में-डॉ. कमरुद्दीन,कल्पना वर्मा 439-447
15.Environment in Kannada Sahitya with special reference to Vachana Literature-Shri Bhaskar R. Patgar 448-450
16.विनोबा भावे का शैक्षिक दर्शन: नई तालीम की अवधारणा और समकालीन प्रासंगिकता-डॉ. सानिया गुप्ता, डॉ सोनिया कौशिक 451-456
17.रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय से सम्बन्धित महाविद्यालयों के स्नातक स्तर पर विद्यार्थियों के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन-मनीषा, डॉ.हरिओम चौहान 457-460
18. प्राचीन भारतीय शास्त्रों में विमान विज्ञान–**डॉ. एम. किषन,, डॉ.उमाशंकर** 461-463
19.भारतीय वास्तुशास्त्र एवं वर्तमान नागरिक जीवन-**सौरभ,डॉ. उमाशंकर** 464-466

संपादकीय .....एक विदेशी कवि की कविता है-

" Remember the day
When you were born
All were laughing
When you were crying
Lead a such life
when you die
Others should weep while
you were laughing"
उन दिनों की याद करो
जब तुम पैदा हुए थे
सभी हंस रहें थे
केवल तुम रो रहे थे
ऐसी जिंदगी व्यतीत करो
जब तुम मारो
सभी रोएं केवल तुम हंसो

इस कविता में एक जीवन दर्शन है जो सभी को प्रेरणा देता है। यदि आप देश के लिए,समाज के लिए,मजबूर असहाय जनता के लिए कुछ अच्छे कार्य करते है तब आप मानवता की बहुत बड़ी उम्मीद होते हैं। क्षेत्र कोई भी हो,चाहे वह सामाजिक, राजनीतिक,आर्थिक,साहित्य,कला,मनोरंजन ,रक्षा या शिक्षा का क्षेत्र हो। आदमी को सदैव रचनात्मक कार्यों में लगा रहना चाहिए।

समाज व देश तभी उन्नति कर सकता है जब देश में शांति,प्यार ,मोहब्बत,भाईचारा हो। यदि किसी भी देश की शांति व्यवस्था,आपसी सौहार्द समाप्त हो जाता है तब वह देश गर्त में चला जाता है । उस देश का आर्थिक ढांचा चौपट हो जाता है। रोजगार समाप्त हो जाता है। इसकी जड़ में धार्मिक उन्माद,धार्मिक अंध विश्वास और अंध धर्म होता है। तब जनता बगावत कर देती है। लाखों परेशान लोग शासक के घर को घेर कर उसमे आग लगा देते हैं या उसको तहस नहस कर देते हैं, जैसा की श्रीलंका में घटित हो रहा है। जन सैलाब के सामने सेना हथियार डाल देती है। विश्व के समस्त प्रजातांत्रिक देशों को सावधान हो जाना चाहिए। किसी भी विचारधारा के तहत देश के शासक को कार्य नहीं करना चाहिए।

यदि कोई देश अपनी आंतरिक समस्याओं को सुलझाने में जूझता रहा तब वह देश की सीमाओं की रक्षा करने में असफल साबित हो सकता है। तब देश की अखंडता खतरे में पड़ सकती है। पूरा संसार आज विश्व युद्ध के मुहाने पर खड़ा है। आण्विक और जैविक हथियारों से रूस और यूक्रेन के मध्य युद्ध लड़ा जा रहा है जो बहुत ही डरावना है।युद्ध में लगभग पूरा यूक्रेन नष्ट हो चुका है। एक तरफ रूस है और दूसरी तरफ यूक्रेन के साथ पूरे नाटो के देश हैं जो रूस के सैन्य शक्ति के सामने लाचार साबित हो रहे हैं। यूक्रेन पहले USSR का भाग था। अमेरिका द्वारा यूक्रेन को नाटो का सदस्य बनना इसके बाद अपनी फौज वहां रखना जिसके कारण रूस का अस्तित्व समाप्त हो सकता है। अपने देश के अस्तित्व की रक्षा के लिए युद्ध लड़ना अनिवार्य लगता है। लेकिन युद्ध विनासकारी होते हैं। देश की जनता मारी जाती है। शांति के साथ सभी समस्याओं का निदान होना चाइए । संसार के सभी मुल्क अपने अपने आण्विक और जैविक हथियार तुरंत नष्ट करें तभी विश्व में शांति रह सकती है।

ऐसे समय में विश्व के सभी देश अपना अपना रक्षा बजट ज्यादा से ज्यादा बढ़ा रहे है वही भारत अपना रक्षा बजट कम कर रहा है जो चिंता का विषय है। भारत को भी चाहिए की वह अपना रक्षा बजट ज्यादा से ज्यादा बढ़ाए। अग्निपथ योजना देश हित में है या नही ,इसका संकेत युवाओं द्वारा किए जा रहे प्रदर्शनों से साबित हो गया है। डॉक्टर अंबेडकर द्वारा लिखित संविधान को पार्लियामेंट के सामने जलाया जाता है लेकिन इन समाज तोड़नेवाली ताकतों के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीभोती है।देश में प्राइवेटाइजेशन की वजह से सारी की सारी सरकारी नौकरियां गायब हो रही हैं । कई करोड़ युवा बेरोजगार हो गए हैं। रिजर्वेशन धीरे धीरे समाप्त हो रहा है जो दलितों,पिछड़ों, और गरीब सवर्णों के लिए उनकी रोटी रोजी छीनने जैसा है। यदि सरकार को प्राइवेटाइजेशन ही करना है तब वहां पर रिजर्वेशन सरकारी नौकरियों की तरह ही लागू होना चाहिए। युवा ड्रग्स के शिकार होते जा रहे है ,इस पर कड़े कानून बनना चाहिए।विदेशी ताकतें हमारे युवाओं को ड्रग्स का आदी बना कर उनको कमजोर करना चाहते हैं। ताकि ये लोग सेना में न जा सकें। और हमारा सैन्य बल कमजोर हो जाए।

आगे.....I

- रूप नारायण सोनकर

पाठकों की प्रतिक्रिया

01.नागफनी का अप्रैल-जून 2022 का 41वाँ अंक इतनी जल्दी प्राप्त कर मन हर्षित हो उठा | यह अंक अपनी विविधताओं में सराहनीय है | विमर्शों से संबंधित विभिन्न स्तम्भ पर लिखे गए लेख देश के प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों के विद्वानों द्वारा भेजे गए हैं | सभी रचनाएं एक से बढ़कर एक हैं , ज्ञानवर्धक हैं | आपका संपादकीय पृष्ठ जानकारी से भरपूर है , आपने संविधान की बात की कि भारतीय संविधान समता , स्वतंत्रता , बंधुत्व और न्याय की बात करता है | जी, हाँ संविधान की प्रस्तावना में कहा भी गया है कि संविधान का लक्ष्य सामाजिक न्याय पर आधारित समतामूलक समाज की रचना करना है | सामाजिक न्याय की अवधारणा इस बात की मांग करती है कि समाज के सभी सदस्यों को बिना किसी भेदभाव के प्रगति और विकास के समान अवसर दिए जाएं | इस सुंदर अंक में आपने मेरे शोध -पत्र को स्थान दिया , इसके लिए हृदय से आभारी हूँ | अच्छी अच्छी रचनाएं प्रकाशित करने के लिए नागफनी की पूरी टीम को बधाई | ईश्वर आप सभी को ऊर्जावान बनाए रखे ताकि आप पाठकों में साहित्यिक अभिरूचि जगाते रहें | मेरी शुभकामनाएं है यह पत्रिका अपने अग्रिम समय में और भी विस्तार के साथ साहित्य की ऊचाईयों तक जाए |

-मीना
दिल्ली विश्वविद्यालय

02. आजादी के अमृत महोत्सव को समर्पित अप्रैल से जून 2022 की नागफनी पत्रिका प्राप्त हुई। पत्रिका में विविध विमर्शों पर शोधकर्ताओं ने अपने शोध पत्र प्रस्तुत करके यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि आजादी के पिचहत्तर वर्ष पूरे होने के उपरांत भी भारत देश में अस्तित्व को बचाए रखने के लिए कलम चलाने की आज भी उतनी ही आवश्यकता है जितनी की स्वतंत्रता आंदोलन को गति देने के लिए साहित्यकारों ने कलम के महत्व को तलवार से कम नहीं होने दिया था। सामाजिक भेदभाव एवं जातीय विषमता की पीड़ा को व्यक्त करते दलित विमर्श से ओतप्रोत शोधकर्ताओं के शोध पत्र यह चेताते हैं कि इस देश की बहुत बड़ी जनसंख्या जातीय दंश का शिकार होकर के नित्य प्रति अपना तिरस्कार करवाने के लिए बाध्य है जो कि तरह-तरह के अंधविश्वास एवं आडंबरों से ग्रस्त होकर के अपना कीमती समय एवं धन व्यय करती है। किंतु उनके हाथ में अपमान के सिवा कुछ नहीं आता। स्त्री, ट्रांसजेंडर एवं आदिवासी विमर्शों को समर्पित शोध पत्र इन वर्गों की पीड़ा को पाठकों के समक्ष लाने का प्रयास करते हैं जोकि पर्याप्त नहीं है। इन वर्गों के लिए और काम करने की आवश्यकता है।इस अंक में हिंदी एवं अंग्रेजी भाषा में रचित साहित्य को शोधकर्ताओं ने अपने शोध पत्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया है तथा डॉक्टर एन.पी प्रजापति ने बहुत व्यवस्थित ढंग से संपादन कार्य का निपटान किया है। सभी शोधार्थी मित्रों की शोध धर्मिता की शैली को नम्न एवं संपादक महोदय का निर्धारित समय सीमा में अंक पाठकों तक पहुंचाने के लिए धन्यवाद।

-डॉ राजन तनवर
एसोसिएट प्रोफेसर राजकीय महाविद्यालय अर्की, जिला सोलन, हिमाचल प्रदेश।

03.
Dear Sir
I am immensely pleasure to extent my congratulations to the editor and editorial board members for successfully bring out the scholarly articles through the esteemed journal "Nagfani" UGC Care listed journal (a widely accepted by all universities of India).

The article proceedings smear the victorious accomplishment. Mostly the academicians of various central and state universities, autonomous colleges chosen our Nagfani journal, particularly the M.Phil and P.hD scholars befitted academically by the publication of their scholarly articles. The team of "Nagfani" contributing belong to a society of unswerving social responsibilities and intellectual excellences. I once again congratulate the nagani team for their academic venture.

With Regards
Dr.J. Jayakumar,
Assistant Professor of English,
Government Arts College, Salam.

04.'नागफनी' हिंदी त्रैमासिक पत्रिका भाषा और साहित्य की गतिशीलता को निरंतर बनाए रखते हुए अपने 42वें अंक में प्रवेश कर रही है। विगत 2 वर्षों से इस पत्रिका से जुड़े रहने का अनुभव बेहद खास है। इस पत्रिका के माध्यम से साहित्य के विविध पहलुओं जैसे - प्राचीन, मध्य एवम आधुनिक भावाबोध को समकालीन परिदृश्य में जानने, समझने और पढ़ने का मौका मिला। हिंदी साहित्य से संबंधित कई ऐसी पत्रिकाएं निकल रही हैं जो अलग अलग बिंदुओं को केंद्र में रख कर साहित्यिक गतिविधियों को निरंतरता प्रदान कर रही हैं। नागफनी पत्रिका उन सभी से अलग अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है।यहाँ विविध विषयों, विमर्शों एवं मुद्दों पर आधारित पुराने, नए शोधालेखों को निरंतर प्रकाशित करते हुए प्राध्यापकों एवम शोधार्थियों को भी अपनी सोच एवम सृजनात्मक क्षमता को शब्दांकित करने का बेहतरीन मौका मिलता है। अपनी प्रस्तुति एवम गुणवत्ता की उत्कृष्टता को सतत बनाए रखने वाली यह पत्रिका नागफणी "गागर में सागर" का दर्जा रखती है।

डॉ सरिता सिन्हा
सहायक प्राध्यापिका (हिन्दी)
जे एन एल कॉलेज , खगौल
पटना, बिहार

साहित्यिक विमर्श

'जिंदगी 50-50'उपन्यास की 'हर्षिता' का जीवन-संघर्ष

डॉ. पी. सरस्वती
सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग मद्रास विश्वविद्यालय

प्रस्तावना :

भगवंत अनमोल प्रसिद्ध हिन्दी युवा लेखकों में से एक हैं जिनका जन्म 30 अगस्त 1990 को हुआ थाँ। इन्होंने महाराणा प्रताप इजीनियरिंग कॉलेग से सॉफ्टवेयर इंजीनियर की डिग्री हासिल की। इंजीनियरिंग के साथ-साथ इन्हें लिखने का भी शौक था। भगवंत अनमोल ऐसे चुनिंदा युवा लेखक हैं जिन्हें आलोचकों के साथ-साथ पाठकों का भी प्यार मिला। भगवंत अनमोल हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक के साथ-साथ स्पीच थेरेपिस्ट भी हैं। ये ऐसे विषयों को लिखना पसंद करते हैं जो नया हो और सामाजिक रूप से संवेदनशील हो । इन्होंने अब तक छ: किताबें लिखी हैं। प्रेम कथा एक रिश्ता बेनाम सा, प्रेरक किताब कामयाबी के अनमोल रहस्य, तुम्हें जीतना ही होगा, जिंदगी 50-50, बाली उमर और हाल ही में प्रकाशित साइंस फिक्शन प्रमेय। जिंदगी 50-50 लगातार तीन बार जागरण-नीलसन बेस्ट सेलर रही है और इसे उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा सम्मानित किया गया। भगवंत अनमोल का यह 'जिंदगी 50-50' उपन्यास किन्नरों को आधार बनाकर लिखा गया है। इस उपन्यास का प्रमुख पात्र हर्षा/हर्षिता एक किन्नर है जिसके दर्द को लेखक ने बखूबी बयान किया है। पूरी दुनिया और भरा पूरा परिवार के होते हुए भी किन्नर हर जगह भीखे माँगने और दर-दर की ठोकरें खाने को लाचार और मजबूर हैं। उपन्यास का पात्र हर्षा जिसका कसूर सिर्फ इतना ही है कि उसने एक किन्नर के रूप में जन्म लिया है। किन्नर रूप में जन्म लेना उसके जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप सिद्ध होता है।

बीज शब्द : किन्नर, धार्मिक अनुष्ठान, रूढ़िवादिता, मानवता, मनोदशा, अपमान, कुंठित मानसिकता, अकेलापन, कर्तव्यबोध, दोहरी मानसिकता।

मुख्य भाग:-

उपन्यास का हर्षा जोकि जन्मजात किन्नर है और स्वाभाविक है कि समाज की रूढ़िवादिता और विसंगतियों के चलते उसके पारिवारिक सदस्य उसको स्वीकार करने में हिचकिचायेंगे। किंतु हर्षा के परिवार में केवल पिता ही ऐसे हैं जो उसे संतान का दर्जा देने में स्वयं को अपमानित महसूस करते हैं और इसीलिये वे उसके जन्म के बाद किसी भी धार्मिक अनुष्ठान आदि को करवाना उचित नहीं समझते। जाहिर सी बात है कि जब भी हमारे समाज में बच्चे का जन्म होता है तब माता-पिता उसके जन्म की खुशी में कोई न कोई उत्सव जरूर मनाते हैं। हर्षा के जन्म के उपरांत जब उसकी माँ ने उत्सव मनाने और लोगों को बुलाने की बात हर्षा के पिता से कही तब हर्षा के पिता ने अपनी पत्नी को अपमानित करते हुए कहा कि- "अरे, आज के बाद न्योता का नाम न लियो। तुम किसकी खातिर न्योता देना चाहती हो? जो कुछ सालों बाद हमारी हरजगह पर नाक कटवाएगा, बेइज्जती करवाएगा? हर कोई इसे हिजड़ा-हिजड़ा पुकारेगा और मुझे हिजड़े का बाप।" 1 समाज में फैली रूढ़िवादिता के कारण किन्नर बच्चे को कोई भी अपने घर नहीं रख सकता, यह एक खोखली और गंदी मानसिकता का परिचय है। बात इतनी सी ही नहीं है हद तो तब हो जाती है जब एक पिता ऐसी ही गंदी मानसिकता के चलते उसके प्राण ही लेने पर उतारू हो जाता है क्योंकि उसकी खुद की संतान एक किन्नर है,हिजडा है। वह इस बात को बर्दाश्त नहीं कर पाता। इसका कारण यह है कि किन्नर बच्चे के जन्म होते ही पिता को ऐसा महसूस होने लगता है कि अब समाज में उसकी कोई इज्जत नहीं रह गयी और जो उसका रुतबा था वह इस बच्चे ने खतम कर दिया। हर्षा उपन्यास का प्रमुख पात्र है जोकि एक किन्नर है और किन्नर रूप में जन्म लेना उसके जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप सिद्ध होता है। उसे न केवल समाज से बल्कि अपने ही पिता द्वारा अनेकों यातनाएं मिलती हैं।यहाँ तक कि उसके जन्म के बाद उसके पिता उसे मार डालने का भी प्रयास करते है और एक दिन घर में किसी के न रहने पर हर्षा के पिता उसे चूहा मारने की दवा पिलाने का प्रयास करते हैं । एक किन्नर संतान के पिता होने से हर्षा के पिता की मानवता मानो मर सी जाती है । पिता के द्वारा हर्षा को जहर देने का जिक्र लेखक ने इस प्रकार किया है। -***"बच्चे के मुहँ में गिलास से जहर डालने की कोशिश में उनके हाथ-पैर कांप रहे थे। आंखें खूनी की तरह लाल हो गयी थीं। दिल में सिर्फ और सिर्फ हर्षा की हत्या का ही जुनून, बिल्कुल एक खूनी की तरह। खूनी और व्यक्ति नहीं होता, वह मानसिकता होती है, यह एक ऐसी अवस्था होती है, जहाँ प्रतिशोध की भावना सभी भावनाओं पर हावी हो जाती है। इंसान सही-गलत की पहचान करना भूल जाता है। किसी दूसरे की भावनाओं की फिक्र नहीं रहती। बाबू जी ने पैरिस्थितिवश खुद को वैसा ही बना लिया था और हावभाव यानी मानसिकता भी बिल्कुल एक खूनी की तरह ही हो गयी थी।"*** [2] यह बात तो सभी जानते हैं कि किन्नर सदैव शरीर और मन के विपरीत होते हैं। उनका शरीर तो पुरुषों के जैसा होता है किंतु अंदर आत्मा एक स्त्री की बसती है। उनके अंदर सदैव एक पुरुष को चाहने की ख्वाहिश होती है और इसी वजह से वे बाल्यावस्था से ही लडकियों वाले खेल खेलते हैं, महिलाओं वाले कपड़े पहनते हैं और मौका मिलने पर सजना-संवरना भी हो जाता है। उनकी इस मनोदशा को समझना आसान नहीं होता और इसी वजह से उन्हें दण्ड भी भुगतने पडते हैं। अब जबकि हर्षा भी किन्नर ही था तब ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक हो जाता है कि वह भी उपर्युक्त सभी लक्षणों से परिपूर्ण होता है। एक दिन जब हर्षा के बाबू जी घर पर नहीं थे तब वह अनमोल के कहने पर अपनी माँ के कपड़े भी पहन लेता है और शृंगार भी करता है। पुरुष शरीर में पनपती अपनी स्त्री सुलभ भावनाओं को पूरा कर हर्षा को बहुत खुशी महसूस होती है। किन्तु उसकी यह खुशी ज्यादा देर नहीं टिकती। एक दिन अचानक लड़की के वेश में सजी-संवरी हर्षा को उसके बाबूजी देख जाते है और उसे पीटते हुए कहते हैं–***"तुझे ज्यादा शौक है लौंड़िया बनने का! छोड़ आयेंगें हिजड़ों के पास, तो यहाँ-वहाँ छुछुआत भीख मांगत फिरेगा! हर्षा जोर-जोर से ऐसे चिल्ला रहा था जैसे कोई कुत्ता गाड़ी के नीचे दबने के बाद चिल्लाता है।"*** [3] हर्षा की माँ अपने बेटे के साथ हो रहे अन्याय को देख तिल-तिल आहत होती रहती है लेकिन कुछ नहीं कर पाती। हर्षा जैसे–जैसे बड़ा होता है, समाज में उसका जीना और भी मुश्किल हो जाता है। घर से लेकर बाहर तक उसका मजाक उड़ाया जाता है। कहते हैं विद्यालय या स्कूल विद्या का मंदिर होता है और गुरू को ईश्वर के ओहदे से नवाजा जाता है क्योंकि गुरू ही सत्य और धर्म के मार्ग पर ले जाता है। नीति-अनीति इत्यादि के बारे में भी गुरू से ही जानकारी मिलती है। लेकिन जब गुरू ही समाज के द्वारा बनाये गये रूढिवादी विचारों को धारण कर उन्हीं पद चिन्हों पर चलने लगे तब ऐसी स्थिति में मानव का विकास कैसे संभव इस बात का उल्लेख हर्षा से बनी हर्षिता ने इस प्रकार किया है-**"स्कूल मैं बहुत जल्द जाती हूँ, अगर पहुंचने में बहुत देर हो जाती है तो सारे बच्चे इतने दुष्ट हैं कि मुझे साथ में बैठाते ही नहीं। पता नहीं क्यों? शायद, मैं उनसे अलग हूँ। मुझे तो समझ में नहीं आता कि आखिर मैं उनसे कैसे अलग हूँ। मेरे पास भी दो हाथ हैं, दो पैर हैं। दो आँखें, दो कान और एक मुँह है फिर क्यों? और ये रीतिका मैडम तो बहुत ही बड़ी दुष्ट हैं। जब किसी को डांटना होता हैतो बोलती हैं- अगर किसी ने बदमाशी की तो उसे हर्षा के पास बैठा दूंगी!"** [4] यह बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण हैं कि समाज के सुशिक्षितवर्ग, जिन्हें ऐस प्रकार की बुराइयों आदि से लोगों को अवगत कराते हुए, इस प्रकार के भेद एवं कुंठित विचारों से निजात दिलाने का कार्य करना चाहिए, वे ही अपनी कुंठित मानसिकता से उबर नहीं पाते और शोषकों की पंक्ति में जा खड़े होते हैं। हर्षा अपने प्रति की जानेवाली टीका-टिप्पणी से व्यथित हो सोचता है-**"पता नहीं मेरे अन्दर ऐसे कौन से कांटे लगे हुए हैं, जो लोग अगर मेरे पास में बैठेंगे तो उनको चुभ जायेंगे और उन्हें सजा मिल जायेगी!"** [5] अधूरी देह के साथ जीना आसान नहीं होता। ये किन्नर अधूरी देह के साथ ही तो जीते हैं समाज में कदम-कदम पर इन्हें शोषण

और तिरस्कार का सामना करना पड़ता है। सर्वप्रथम इनका परिवार ही इन्हें इतनी पीड़ा देता है कि बर्दाश्त करना मरने के समान है। इसके उपरांत समाज का हर वो व्यक्ति जो इनके मर्म को नहीं समझता उनसे केवल शोषण की ही आशंका लिये ये जिंदगी के रास्ते परचले जाते हैं बिना किसी शिकायत के। एक दिन अचानक स्कूल से वापस आने में हर्षा को देर हो जाती है और उसे अकेला पाकर एक व्यक्ति उसका बलात्कार कर देता है और उसको धमकी देता है कि अगर उसने इसके बारे में किसी को कुछ भी बताया तो उसके और अमन के बीच का सच वह सभी को बता देगा।-**"अब मेरी आँखों से सिर्फ दर्द के आँसू निकलते रहे और वह हैवान मेरे शरीर से मजे लेता रहा। मैं पेट के बल लेटी रही, मेरा हाथ सीने के नीचे दबा था। और उस पर कंकड़-पत्थर चुभ रहे थे। मैं चीख रही थी, वह इस चीख का आनंद ले रहा था। कुछ देर बाद उसने मुझे झिडक कर फेंक दिया, जैसे कोई संड़ास में इस्तेमाल के बाद टिश्यू पेपर फेंक देता है, कपड़े पहन कर चुपचाप घर चले जाना! और सुन, अगर कौनो से बताया तो तेरी और अमन की कहानी जगजाँहिर कर दूँगा।"** [6]

बिना वजह की मार और शोषण से तो एक दिन जानवर भी अपना खूँटा तोड़कर भाग जाता है। भला इंसान इसे कितना सह सकता है। आखिर किन्नर भी एक इंसान ही तो हैं। किंतु परिवार और समाज के द्वारा दी गयी यातनाओं से निकलकर जब ये अपने समुदाय में सम्मिलित होते हैं तब वहाँ भी इन्हें कई यातनाओं का सामना करना पड़ता है। किन्नर समाज अपने समूह में आये नये किन्नर को ऐसे कार्यों के लिए विवश करते हैं जिनसे अत्यधिक मात्रा में धन की प्राप्ति हो सके जैसे कि देह व्यापर। लेकिन अगर किसी ने ऐसा करने से मना कर दिया तब ऐसी परिस्थिति में उस किन्नर को कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। हर्षिता भी पिता और समाज के शोषण से तंग आकर बंबई आ जाती है| वह नहीं चाहती कि उसके पिता की कोई बदनामी हो और इसीलिए वह बंबई आ जाती है और किन्नर गुरू राधिका से मिलती है| किंतु विडंबनाएं यहाँ भी हर्षिता का पीछा नहीं छोड़तीं। वह जिस किन्नर गुरु राधिका के समुदाय में शामिल होती है, वहां भी बधाई आदि से प्राप्त होने वाली आय के आधार पर उनमे भेद किया जाता है। जो किन्नर जितना अधिक पैसा देता है उसे उतनी ही अधिक सहूलियत दी जाती थी। अपने ही समाज में इस प्रकार का भेद-भाव देख हर्षिता बहुत निराश होती है।चूँकि हर्षिता शहर में नई थी अतः वह राधिका को कम पैसे देती थी जिससे उसे अन्य किन्नरों की तुलना में कम सुविधाएँ मुहैय्या करायी जाती थीं। उसके साथ राधिका का बर्ताव ही बदल जाता है और यहाँ भी हर्षिता को कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। किंतु वह राधिका के इस बर्ताव को इसलिए सहन कर जाती है कि जो कष्ट वह परिवार और समाज से झेल के आयी है उसके सामने यह कुछ भी नहीं।हर्षिता सोचती है कि–**"खाना भी सबसे बाद में दिया जाता| यहाँ तक कि सबके लिए तखत था पर मुझे जमीन पर सोने की जगह दी गई।हर जगह पर मेरी तौहीन होने लगी। लेकिन मैं कहीं इससे भी ज्यादा बुरा देख चुकी थी, इसलिए यह मेरे लिये उतना कष्टदायक नहीं था। मुझे इसी में खुशी मिलने लगी थी। क्या फर्क पड़ता है मैं तखत पर लेटूँ या नीचे? क्या फर्क़ पडता है मुझे एक धंटे बाद खाना मिले या एक घंटा पहले।"** [7]

हालांकि हर्षिता को पिता से केवल नफरत, मार-पीट और अपमान ही मिला है किंतु फिर भी उसे अपने पिता के दर्द से दुखी होकर अपने कर्तव्यबोध का भान होता है। किन्नर होने के बावजूद भी वह पिता के प्रति अपनी जिम्मेदारी निभाना चाहती है। अपना फर्ज अदा कर वह अपना जीवन त्यागने के लिए तैयार होती है और सोचती है इस पूर्ण स्त्री पुरुष समाज के बारे में, उसकी दोहरी मानसिकता के बारे में और उसके रवैये के बारे में जो एक अधूरे व्यक्ति से जीने का हक छीन लेता है।अपने अंतिम क्षणों में वह समाज से कई प्रश्न करती है

–**"किन्नर होना इतना बड़ा अभिशाप क्यों है? बस मेरा अधूरापन ही तो न? कैसे-कैसे पल आये! इस शरीर ने सब भुगता, सब सहा।जिस शरीर का लोग मजाक उड़ाते हैं, उसे ही रात को अपने मन बहलाने का जरिया बना लेते हैं। अच्छा है इन लोगों से दूर अपना एक समुदाय है। मेरे शारीरिक अस्तित्व में दुहरापन है।लेकिन उस तथाकथित समाज कए व्यक्तित्व के दुहरेपन पर मैं थूकती हूँ।"** [8]

निष्कर्ष :

सारे दुखों को सहते हुए हर्षिता ने अपने पिता के प्रति अपना फर्ज पूरा किया किंतु पिता की रौबदार मूंछें और हँसता हुआ चेहरा देख पाती इससे पहले ही वह दुनिया को अलविदा कह चुकी थी। न जाने कितनी ऐसी हर्षिता होंगी हमारे इस सभ्य समाज में जिन्हें हम उनकी जिंदगी से बेदखल कर देते हैं। धकेल देते हैं उन्हें एक ऐसी गुमनामी जिंदगी की ओर जहाँ से वो कभी लौटकर नहीं आ पाते। और इसकी शुरुआत होती है परिवार से। सर्वप्रथम हमें व्यक्तिगत रूप से यह समझना होगा कि किन्नर भी हमारी ही तरह हाड-मांस के व्यक्ति होते हैं जिन्हें हम न तो कचरे में फेंक सकते हैं और न ही लैंगिक भेदभाव कर सकते हैं। हमें अपने विचारों में बदलाव की जरूरत है ताकि हम उन्हें भी एक इंसान की नजर से देख सकें .और उनकी भावनाओं को समझ सकें जिनका हम अपमान करते हैं और खुद को श्रेष्ठ समझते हैं। किंतु हम यह भूल जाते हैं कि हमारी श्रेष्ठता गर्त में समा जाती है जब हम अपने दोहरे व्यक्तित्व को धारण करते हैं।

******

संदर्भ :-

1. भगवंत अनमोल ,जिंदगी 50-50, राजपाल प्रकाशन, पृष्ठ- 53
2. वही, पृ. 41
3. वही, पृ. 79
4. वही, पृ.118
5. वही, पृ.118
6. वही, पृ.159
7. वही, पृ.171
8. वही, पृ. 207

महामना कबीर का धार्मिक समन्वय

साम्प्रदायिकता का अर्थ होता है किसी दूसरे के धर्म को नीचा दिखाकर खुद के धर्म को ऊंचा उठाना। कबीर ने धर्म के नाम पर लड़ने के वालें मुस्लमानों का विरोध किया है।

" सन्तों देखहु जग बैराना।
हिन्दू कहे मोहि राम पियारा, तुरक कहै रहिमाणा ।
आपस में दोऊ लरि- लरि गुए, मरम न काहू जाना।। "

कबीर कहते हैं कि सज्जनों देखो यह संसार पागल हो गया है। हिन्दू राम के भक्त हैं और तुर्क को रहमान प्यारा है। इस बात पर दोनो लड़ लड़ कर मौत के मुंह में जा पहुंचे हैं। परन्तु दोनो में से सच्चाई को कोई नहीं जान पाया कि हम सब एक ही ईश्वर की सन्तान है।

प्रयोगधर्मी उपन्यासकार-अज्ञेय

डॉ. मुरलीधर अच्युतराव लहाडे
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
हिंदी विभाग जनविकास महाविद्यालय
बनसारोला तह. केज जि. बीड महाराष्ट्र

प्रस्तावना- अज्ञेय मूलतः कवि है। फिर भी उन्होने हिन्दी उपन्यास-जगत में मात्र तीन उपन्यास रचकर हीअपना नाम रोशन किया हुआ है। अज्ञेय कविता में ही प्रयोगशील नहीं थे, उपन्यासों में भी थे। उनकी प्रयोगधर्मी प्रवृत्ती सबसे पहले उपन्यास में ही प्रकट हुई। अज्ञेय ने अपनी वैयक्तिक चेतना के अनुकूल फ्रायड के प्रभावों को अधिक ग्रहण किया है।अज्ञेय की वैयक्तिक कला दृष्टि ने अपने आत्मभिव्यक्ति में आत्म-विश्लेषण, तथा आत्म-समीक्षण करते हुए आत्म की उपलब्धि में-शिल्प को भी नव्यता, उन्मुकतता, सुक्ष्मता, स्वच्छता तथा परिसज्जता दी है।अज्ञेय जी ने कुल तीन उपन्यास लिखे है-(1) शेखरः एक जीवनी-भाग 1,2 (2) नदी के द्वीप,(3) अपने-अपने अजनबी

बीज शब्द - अन्ततोगत्वा, परिसज्जता, नव्यता, संकेंद्रण, विच्छिन्न, विभीषिका,

अज्ञेय के 'शेखर : एक जीवनी' के प्रकाशन के साथ ही हिन्दी उपन्यास की दिशा में एक नया मोड़ आया। यह उपन्यास कथ्य, शिल्प और भाषा की दृष्टि से यह परम्परा से हटकर प्रयोग था।आधुनिकता का नया आयाम इसी उपन्यास से शुरु हुआ माना जाता है। इस उपन्यास में ' शेखर ' के माध्यम से एक व्यक्ति की स्वातंत्र खोज की बात अज्ञेय ने की है। इस उपन्यास में एक व्यक्ति के आत्मानुभूत जीवन तथ्यों के अंकन का प्रयास किया गया है। शेखर की कहानी आद्यन्त एक प्रखर व्यक्तित्व के विद्रोह की कहानी है। अज्ञेय ने इस उपन्यास में फायड के मनोविश्लेषणात्मक सिध्दान्तों को काम में लेते हुए बालक शेखर के व्यक्तित्व का निरुपण किया है। अज्ञेय अन्तःकरण की गहराइयों तथा यथार्थ को जीवन के स्तर पर बिना किसी सैध्दान्तिक आधार पर व्यंजित करनेवाले उपन्यासकार है।

शेखर की खोज अन्ततोगत्वा स्वातंत्र की खोज है जिसे एक प्रतिभाशाली एक कान्तिकारी प्राप्त करना चाहता है। अज्ञेय जी ने नायक के चरित्र रचना के लिए काफी श्रम किया है, क्रान्ति को पोषक वातावरण की निर्मिती तथा नये मुल्यों के द्वारा अज्ञेय जी ने शेखर को अपने कल्पना का मानस पुत्र रुप में चित्रित कर डाला। शेखर के चरित्र में सच्ची भावनाओं की साहसपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है तथा इस उपन्यास की यह विशेषता है कि यह एक देशीयता के संकुचित घेरे में न बँध कर एक सर्वदेशीय मापदण्ड बनाती है। सम्पुर्ण उपन्यास में शशी शेखर के सम्बन्धों की ही चर्चा है तथा नैतिक यौनाचार की साहित्यिक चर्चा हुई।

शेखर : एक जीवनी उपन्यास के रचना के सम्बन्ध में उनसे पुछा गया तो उनका उत्तर था ।"शेखर का जो रुप बना उसके लिए कोई नमुना मेरे सामने नहीं था लेकिन वह बोध मुझे था कि मेरे पास कहने को कुछ है, वह कहने की मेरी उत्कृष्ट इच्छा थी वह कहने का जो ढंग सबसे उपयुक्त लगा वही मैंने अपनाया।"1 उपन्यास में शेखर का विद्रोह रोमैंटिक विद्रोह तक ही सीमित नहीं रहता, वह निहलिस्ट विद्रोही बन जाता है। निहलिस्ट विद्रोही का सबसे पैना अस्त्र है नकार - अमोघ नकार। वह नकार से शुरु करके फिर उसी में लौट आता है। इस नकार में ही उसकी पहचान बनती है, यही उसका 'होना' होता है। यही है उसके स्वातन्त्र की खोज और यह खोज है शेखर। शेखर सामाजिक परिस्थितियों के कारण सामाजिक परम्पराओं के प्रति आक्रोश से युक्त होता है तथा अपना आक्रोश व्यक्त करता है। " धिक्कार है समाज की उन न्युनताओं को जो यौवन की शक्ति के खण्डन का अपराध है। समाज के उस मिथ्या को जो जीवित सत्य से हमें भ्रष्ट करता है।"[2] शेखर : एक जीवनी में एक रात में देखे गये विजन को शब्दबध्द करने का प्रयास है, फलस्वरुप परम्परायुक्त काल-कमिकता के स्थान पर इसमें अनुभुति के टुकड़ों को इधर-उधर से उठाया गया है। इसमें कोई संदेह नहीं की चेतना प्रवाह, प्रतीकात्मक और अभिव्यक्ति की सशक्तता के कारण यह रचना अपने-आपमें अप्रतिम है, पर एक तो रोमैंटिक आवेग के कारण, दुसरे अहंभाव के संकेन्द्रण के परिणामस्वरूप इसका विजन रचनात्मक बनने की कोशिश करता है। अज्ञेय का दुसरा प्रयोगवादी उपन्यास 'नदी के द्वीप' है। जो अपनी जादुई शिल्प तथा क्रीडा से युक्त प्रेम दर्शन के कारण एक उत्कृष्ट कृति बन गई है। अज्ञेय जी ने — शेखर : एक जीवनी के शेखर तथा शशी को ही अपने इस उपन्यास में भुवन तथा रेखा के रुप में चित्रित किया है। 'नदी के द्वीप' यह एक चरित्र प्रधान उपन्यास है। इस उपन्यास के माध्यम से अज्ञेय जी यह बताना चाहते की हमें प्राप्त दःख से यह शिक्षा लेनी चाहिए कि हम जैसे दुःख से दुःखी हो चुके है वैसा दुःख दुसरों को न मिलें।

इस उपन्यास में नारी के उस रुप का दर्शन अज्ञेय जी ने कराया है जो परम्परागत लीक से हटकर है तथा दुसरे उपन्यासों से भिन्न है। स्त्री-पुरुष की समानता का जो चित्र इस उपन्यास में दिखाई पड़ता है वह हमें अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। 'नदी के द्वीप' उपन्यास का प्रेम व्यापार प्रेम की सनातनता का निर्वाह नहीं है बल्की यह प्रेम के दुख मुक्त के आदर्श को तो अंगीकार नहीं कर सका लेकिन उससे नीचे की संस्कृति अधिकता जो महानगरों में हो रही है, उसका चित्रण कर सका है। इस उपन्यास की प्रमुख समस्या प्रेम, यौन तृप्ति और विवाह की है। चन्द्रमाधव, उसकी स्त्री व अन्य दो पात्र समान मानसिक स्थितियों के प्रतिनिधी है। इसमें सामाजिक सांस्थिक परिवेश से नितान्त विच्छिन्न कुछ व्यक्तियों के एकान्तिक जीवन की समस्याओं एवं संघर्षों के चित्रण को उभारा गया है। 'नदी के द्वीप' उपन्यास में अज्ञेय की प्रेमदृष्टि की विकृती है। उन्होंने प्यार को लेकर जो जाना, अनुभव किया उसका कलात्मक प्रस्फुटन इस कृति में हुआ है। प्यार की शायद ही कोई ऐसी बात होगी जो वे कहना चाहते है।और इस रचना में न कह सके हों। "यहाँ उनके क्षणवाद, व्यक्ति वैचित्र की पक्षधरता व्यक्तित्व की द्विपीय परिकल्पना, व्यक्ति एवं समाज को लेकर उनका चिन्तन-चक्र इसी धुरी पर घुमता है।"[3]अज्ञेय बताना चाहते है कि प्रेम के मार्ग की बाधा व्यक्ति का अहंकार है, जिसने इसका विलय कर लिया वही जीवन को सार्थक बना सका है। पुरुष की उपेक्षा स्त्री के प्रेम में अहम् के विलय की क्षमता अधिक होती है। उपन्यास से हमें पता चलता है कि मनुष्य का प्रत्येक क्षण द्वीप है विशेष कर व्यक्ति तथा व्यक्ति के सम्पर्क का वह महासागर में एक छोटे द्वीप के रुप में स्थित है।इस उपन्यास में भी 'शेखर' की भाँति सामाजिक मर्यादाओं को तोडा गया है, पर उनके प्रति विद्रोह नहीं किया गया है। जो कुछ हो रहा है, समाज उसमें न तो बाधक ही है और न साहयक ही।एक प्रकार से देखा जाए तो इसमें समाज का स्थान नगण्य है। अज्ञेय जी ने स्वयं 'नदी के द्वीप' उपन्यास को 'व्यक्ति चरित्र उपन्यास' बताया है। वस्तुतः यह शेखर का ही परिशिष्ट है, प्रस्तावित तीसरा भाग है, पर अवश्य ही एक विशिष्ट सन्दर्भ में। शेखर का बहुमुखी जीवन जो प्रारम्भ से एकान्तप्रिय है, 'नदी के द्वीप' में अपेक्षाकृत सीमित हो जाता है। शेखर तथा भुवन के व्यक्तित्व का विस्तार लेखक कथा साहित्य के माध्यम से नहीं कर सका। " मानव व्यक्तित्व मे मूलतः एकाकी तथा प्रतिभा सम्पन्न होते हुए भी उनकी अनिवार्य सामाजिक परिणति की बात अज्ञेय अपनी नवीन कविता में कह सकें।"[4]"अपने-अपने अजनबी' अज्ञेय का तीसरा तथा अन्तिम उपन्यास है। विषय तथा वस्तु दोनों ही दृष्टि से यह उपन्यास मृत्यु से साक्षात्कार का आख्यान है। इसमें अस्तित्ववादी दर्शन का गहन प्रभाव दिखाई देता है। इसमें मृत्यु की विभीषिका से त्रस्त दो नारी पात्रों की मनःस्थितीयों का निरुपण किया गया है। जिस अजनबीपन को अज्ञेय जी इस उपन्यास

में उभारना चाहते थे, वह नहीं उभरा, कोई नयी दृष्टि तथा नये सत्य की स्थापना अज्ञेय नहीं कर पाये है। इनका चिन्तन अर्जित और आरोपित है। इस उपन्यास में जीवन के मुल प्रश्न की व्याख्या के लिये भारतीय तथा पाश्चात्य दोनों ही धारणाओं को आधार बनाया गया है। मृत्यु के बाद जीवन का क्या अर्थ होता है, मृत्यु की सिध्दि क्या है, जीवन के नक्शे में मृत्यु का क्या स्थान है, आदि बातों की व्याख्या की गई है। अज्ञेय के दुसरे उपन्यासों की अपेक्षा आकार की दृष्टि से यह उपन्यास सबसे छोटा है लेकिन महत्व की दृष्टि से अद्वितीय उपन्यास है।"5 इस उपन्यास के माध्यम से अज्ञेय जी ने यह बताने का प्रयत्न किया है की मृत्यु के कारण ही मनुष्य के अपने अजनबी बन जाते है तथा अजनबी अपने, लेकिन उस मृत्यु के साथ और भी कुछ जुडा होता है। इसमें मृत्यु की वास्तविकता नहीं है। इस उपन्यास के माध्यम से अज्ञेय ने नयी रचना पध्दति की सृष्टि की है। इसके पुर्वी तथा पाश्चात्य दोनों की मृत्यु सम्बन्धी धारणाओं का खण्डन मण्डन हुआ है तथा पाश्चात्य दर्शन से पुर्वी दर्शन को श्रेष्ठ बताया गया है मृत्यु के पहले मनुष्य की भयानक मुल प्रवृत्तियों का उद्घाटन करना ही इस उपन्यास का लक्ष्य है।

अज्ञेय जी ने अपने उपन्यासों के अधिकांश पात्रों का चरित्र-चित्रण मनोवैज्ञानिक भूमि पर किया है। उन्होंने 'शेखर : एक जीवनी' उपन्यास के माध्यम से यह ज्ञात कराने का प्रयास किया है कि व्यक्ति में अहं भाव का अहम् स्थान है। अहं का दमन मन में विकृतियों को जागृत करता है। जिससे व्यक्ति कंठाग्रस्त हो जाता है। इसी प्रकार 'नदी के द्वीप' उपन्यास में रेखा और भुवन समाज की परवाह न करके परम्पराओं को बदल कर अपने अनुकूल बनाते है तथा एक क्रान्ति-सी लाना चाहते है। इसी प्रकार अपने-अपने अजनबी के मोके तथा सेल्मा भी कुछ से युक्त दृष्टिगोचर होती है। अज्ञेय जी के उपन्यासों के पात्र बुध्दिजीवी वर्ग के है, इसीलिए उनकी भाषा साहित्यिकता लिए हुए है। प्रसंगानुसार उसमें परिवर्तन भी होता गया है। उनके एक-एक शब्द का चयन कुछ इस प्रकार का है कि यदि वाक्य में से एक भी शब्द इधर से उधर कर दिया जाय तो ऐसा लगने लगता है कि जैसे वाक्य अपंग हो गया है। यही कारण है कि उनकी भाषा में जीवंतता तथा विशिष्टता है। 'शेखर : एक जीवनी' तथा 'नदी के द्वीप' की खडी बोली का रुप ठेठ तथा अभिजात्य के मिश्रण से निर्मित होकर सामने आया है। लेकिन आपने-अपने अजनबी तक आते-आते अज्ञेय जी की भाषा अति सहज एवं निराग्रह हो जाती है इसमें साहित्यिक भाषा की अपेक्षा बोलचाल की भाषा का ही अधिक प्रयोग हुआ है। अज्ञेय जी के अधिकांश पात्र बुध्दिजीवी वर्ग के है। कुछ ही ऐसे पात्र है, जो इस वर्ग में नहीं आते। बुध्दिजीवी वर्ग के पात्र संस्कृतनिष्ठ, हिन्दी के साथ-साथ अरबी-फारसी, बंगला, पंजाबी, तथा अंग्रेजी में बातचीत करते हुए दिखाई देते है। अनपढ अथवा कम पढे-लिखे पात्र टुटी-फुटी हिन्दी में अपने विचारों को अभिव्यत्क कर लेते है। इस प्रकार अज्ञेय जी ने पात्रों के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया है। साथ ही मुहावरों का प्रयोग भी कम अधिक मात्रा में किया हुआ है।

अतः अज्ञेय जी हिन्दी में प्रयोगशील प्रकृति के प्रवर्तक ही नहीं सर्वश्रेष्ठ उन्नायक भी है।उपन्यास के क्षेत्र में उन्होंने क्रान्तिकारी प्रयोग कर हिन्दी उपन्यास साहित्य का वैभव बढाया है।

*****

सन्दर्भ :-

1.आत्मपरख -अज्ञेय -पृ. 142
2. शेखर : एक जीवनी (भाग एक)-अज्ञेय पृ. 43
3. अज्ञेय के उपन्यास में प्रकृति तथा प्रस्तुती-डॉ. केदारनाथ शर्मा, पृ. 84
4. अज्ञेय का कथा साहित्य, ओम प्रभाकर, पृ. 56.
5. अज्ञेय की गद्य शैली, डॉ. सावित्री मिश्रा, पृ. 142
6. उपन्यासकार अज्ञेय - धनविद्या पटेल

भोजपुरी फिल्म और प्रयुक्त हिन्दी लोकगीत का स्वरूप एवं सम्भावनाएँ

डॉ.शिवम् चतुर्वेदी
विभागाध्यक्ष हिन्दी
पत्रकारिता एवं जनसंचार अरुणाचल यूनिवर्सिटी ऑफ़ स्टडीज
नाम्साई ,अरुणाचल प्रदेश

शोध-सार:-

संचार के दृष्टिकोण से फिल्म एक सशक्त माध्यम है.फिल्मों के द्वारा सूचना,शिक्षा,जागरूकता एवं मनोरंजन प्रदान किया जाता है.भारतीय फिल्म उद्योग हिन्दी फिल्म के अलावा भाषाई आधार पर फिल्मों का निर्माण किया जाता है. जिसका उद्देश्य स्थानीय भाषा-भाषिय समाज की रूचि को ध्यान में रखते हुए उनका मनोरंजन एवं जागरूकता करना है. फिल्म और समाज का अटूट सम्बन्ध होता है.जो समाज में घटित होता है, वही फिल्मों में दिखाई जाती है तथा फिल्मों में जो दिखाया जाता है, उसका प्रभाव समाज पर पड़ता है. फिल्मों में सामाजिक,आर्थिक,सांस्कृतिक एवं राजनितिक स्वरूप प्रतिबिम्बित होते है.भारतीय समाज में लोकगीतों का महत्वपूर्ण स्थान होता है. किसी भी देश की संस्कृति को जानना है, तो वहां के लोकसाहित्य का अध्ययन करना चाहिए.लोकगीत लोकसाहित्य का अभिन्न अंग है.मनुष्य के द्वारा सभ्य समाज के निर्माण के उपरान्त ,उसने आपसी सामंजस्य से सांस्कृतिक विकास किया.अपने हृदय की अभिव्यक्ति लोकगीतों के माध्यम से प्रकट करता रहा है.लोकगीत हमारे रिती-रिवाज एवं परम्पराओं के संवाहक के रूप में कार्य करते है.लोकगीत हमारे संस्कृति के परिचायक है.भोजपुरी फिल्मों में लोकगीत प्रभावशाली रूप से प्रयुक्त किये जाते है जो अन्य हिन्दी गीत-संगीत से अपनी एक अलग प्रभाव डालते है तथा कथानक के विस्तार में जीवन्तता लाने का कार्य करते है. फ़िल्में मनोरंजन के साथ-साथ सामिजिक परिवर्तन एवं सोच बदलने का कार्य करती है.फ़िल्में सपना और यथार्थ के बीच समन्वय स्थापित करने की कार्य करती है .

बीज शब्द:-संचार,फिल्म, सूचना,शिक्षा, मनोरंजन, लोकगीत, भोजपुरी,भाषा, संस्कृति ,समाज, संस्कार

मूल आलेख:-फ़िल्में समाज की दर्पण होती है.समाज और फिल्म एक दूसरे के पूरक होती है.समाज में घटित घटनाओं को फिल्मों के माध्यम से दर्शाया जाता है. फिल्म समाज में जागरूकता, मार्गदर्शन एवं शिक्षण के रूप में कार्य करती है.फिल्मों का प्रायः सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रभाव पड़ता है. फ़िल्में जनचेतना प्रसारित करने का सबसे सरल एवं सुगम माध्यम है.यह भारतीय समाज के मन-मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव डालता है.प्राय: फिल्मकारों के द्वारा मनोरंजन के साथ -साथ कई प्रकार की शिक्षाप्रद और सामाजिक बुराईयों के प्रति सन्देश देने वाली फिल्मों का निर्माण किया जाता है.फिल्मों पर व्यावसायिकता का प्रभाव अत्यधिक दिखायी पड़ रहा है, जिसके कारण 'नारी देह' का अंगप्रदर्शन कर धन कमाने के लिए अपराध,हत्या ,बलत्कार, वेश्यावृत्ति आदि विषयों पर आधारित होती जा रही है. लोकगीत जन-जन की भावनाओं की गीत है,जिन्हें एक व्यक्ति नहीं बल्कि सम्पूर्ण लोक समाज अपनाता है.सामान्यत: लोक की अभिव्यक्ति,लोक में प्रचलित,लोक द्वारा सृजित गीतों को लोकगीत कहा जाता है.लोकगीत का रचनाकर अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व को लोक समर्पित कर देता है.रीती एवं शास्त्रीय नियमों की विशेष प्रवाह न करके सामान्य लोक व्यवहार के उपयोग में लाने के लिए मानव अपने हृदय की अन्तरंग अनुभूति को छन्दोबद्ध वाणी के द्वारा अभिव्यक्ति की जाती है| संस्कार, ऋतु, धर्म एवं उत्सव, श्रम परिहरण आदि इसके मूल विषयवस्तु है| हिन्दी लोकगीतों को रसों का भंडार माना जाता है| जिनकी अभिव्यक्ति लोकगीतों में बड़े सुंदर ढंग से की गयी है| सभी रसों एवं भावों से परिपूर्ण इन गीतों को सुनते हुए बड़े कर्ण प्रिय लगते है तथा रस की अविरल धारा का संचार होता रहता है|

हास्य,करुण,शान्त,श्रृंगार,वीर आदि रसों का प्रयोग किया जाता है,जो बड़े हृदय स्पर्शी होते है| भोजपुरी लोकगीत के स्वरूप में सहजता,सरलता,एवं स्वाभाविकता है | लोक में प्रचलित गीत ही लोकगीत है, जो लोक के कंठ से नि:सृत एवं लोक के लिए ही निर्मित होते है| लोकगीतों के प्रचलन की एक परम्परा है,जो अनेक पीढियों तक चलती रहती है | बिना किसी अतिरंजन या अत्युक्ति के भारतीय समाज के सभ्य-असभ्य, शिक्षित-अशिक्षित, संस्कृत एवं यथार्थ स्थिति का हुबहू चित्रण भोजपुरी लोकगीतों में सहज उपलब्ध है | भोजपुरी लोकगीतों का विषयवस्तु काफी विस्तृत है | मानव के जन्म से उसका क्षेत्र आरम्भ होकर मृत्यु पर समाप्त होता है | इसमें लोकजीवन के संस्कारों मात्र की झांकी ही नहीं मिलती बल्की इसमें नारी स्वाभिमान,राष्ट्रीय चेतना, आम जीवन के दृश्य, धार्मिक अनुष्ठान आदि का यथार्थ चित्रण मिलता है |साथ ही साथ सामाजिक सन्देश भी दिखाई पड़ते है | अत: भोजपुरी लोकगीतों ने मानवीय मन की क्रियाकलापों को अपने से सजोया है |लोकसंगीत की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह प्रसंग, वातावरण और परिवेश के अनुसार बदल जाते है | ऋतु सम्बन्धी गीत में विरह का भी गान है | प्रेम का भी वर्णन है | करुणा भी है और उल्लास भी | भाषा एवं बोली के आधार पर भी विविधता पायी जाती है –मगही गीतों में परिवार बोध, मैथिलि गीतों में भक्ति की प्रधानता रही है और भोजपुरी लोकगीतों में रोमांस की | लोकगीतों में बहुआयामी प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है | लोकगीतों में लोकधुनों का प्रयोग किया जा सकता है | जब हरिप्रसाद चौरसिया और शिवकुमार शर्मा ने 'सिलसिला' फिल्म में संगीत दिया तो शिव जी ने पहाड़ी धुनों का खुब प्रयोग किया और तब चौरसिया जी ने यूपी की धुन का प्रयोग "रंग बरसे भीगे चुनरवाली" गीत डाला गया | जगजीत सिंह ने पंजाबी ठप्पे गाये –"कोठे पर आ माहिया" वही धुन अब 'लैम्बर्गिंग' गीत में है |फिल्म निर्माण के प्रारम्भिक दौर में जितनी फ़िल्में बनी, सबमें गीत अधिक होते और दृश्य कम | सुगम संगीत का प्रयोग कम होता था |उस समय या तो हिन्दुस्तानी संगीत था या लोकगीत| जो भी गीत बने उसी आधार पर बनने शुरू हुए| प्रारम्भिक दौर में ही हैदर साहब लाहौर से ढ़ोल लेकर पंजाबी लोकगीत लेकर आये और धीरे-धीरे कई पंजाबी धुनें फिल्मों में आती गयी | परन्तु हिन्दी लोकगीतों की संख्या ज्यादा है | दिलीपकुमार की फिल्मो में –'नैन लड़ जईहै' "उड़े जब-जब जुल्फे तेरी' में पंजाबी धुन है, परन्तु नाच और माहौल यूपी का है |

लोकगीतों का प्रयोग प्राय: क्षेत्र विशेष की संस्कृति को दर्शाने के लिए किया जाता है | कश्मीर होगा तो –'बुमड़ो-बुमड़ो' डाला जायेगा | राजस्थान होगा तो 'झूमर गीत' प्रयुक्त होगा | गुजरात होगा तो डांडिया –'अरे जा रे हट नटखट' भी गुजरती धुन है, जिसमें कुछ पहाड़ी प्रभाव भी है | 'मंथन' फिल्म में राजस्थानी लोकगीत है | प.रविशंकर ने गोदान फिल्म में शास्त्रीय संगीत न थोप कर पिपरा के पतवा सरिस डोले मनवा' गीत दिया.लोकगीत ही उस वातावरण में सही लगते है| पंजाबी लोकगीतों में टप्पे, पभागडा,महिया,छल्ला आदि का प्रयोग किया गया है| छल्ला गीत का फिल्मों में प्रयोग चल रहा है| बंगाली लोकगीत भी फिल्म जगत में काफी प्रसिद्द है| एस.डी.वर्मन को भारतीय धुनें खास पसंद है और उनकी फिल्मों में माझी का दृश्य अवश्य डालते थे | सलील चौधरी ने भी 'गंगा आये कहाँ से' बनाया है | सलील चौधरी ने असम के बिहू को भी "दैया रे दैया रे चढ़ गयो पापी बिछुआ" में ले आये | बाऊल गीत भी आए| बाऊल गीत या देवदास फिल्म की –'आन मिलो,आन मिलो, आन मिलो साँवरे' आन चोला माटी के राम |गीत- 'रमैया वस्ता वैया' भी जयकिशन ने तेलगु मजदूरों से सुना तो शैलेन्द्र को लिखने को कहा| शैलेन्द्र पहाणी धुनों पर गीते थे –'होगा तुमसे प्यारा कौन'| मराठी लावणी भी इसी प्रकार गाई गयी –हाल की "चिकनी चमेली" गीत को देखा जा सकता है | इसी तरह बाजीराव मस्तानी का 'पिंगा'गीत है | या कोंकण का –"मुन्गाडा मुन्गाडा मै गुड़ की डाली"| यहाँ मुन्गाडा का अर्थ बड़ी चीटी जैसे कीड़े से है | बंटी-बबली का 'कजरारे –कजरारे' भी यूपी का किन्नर धुन है | "धम-धम धरम धरैया रे, सबसे बड़े लड़ैया रे" आल्हा गीत है| तेरे प्यार का आसरा चाहता हूँ|विद्यापति गीत का धुन है | मौसम एवं त्योहार के मुताबिक लोकगीतों का फिल्मों में भरपूर प्रयोग किया जाता है | होली और कजरी गीत का प्रयोग देखा जा सकता है | मुशायरा प्रस्तुतिकरण में भी लोकगायकी दिखती है |ठारे रहियो,गीत के लोकगीत के पैमाने पर रखा जा सकता है | 'नजर लागी राजा तोरे बंगले पर'| पान खाय सैया हमार' लोकभाषा की गीत ही है | मोरे सैया जी उतरेगें पार,नदियाँ धीरे बहो, फिल्म में भी है | इस प्रकार फिल्मों में जिवंत प्रस्तुतिकरण करने के लिए लोकगीतों का प्रयोग किया जा रहा है, जो फिल्मों में छौका देने के रूप में कार्य करती रही है | भोजपुरी भाषा में बनने वाली फिल्मों को भोजपुरी सिनेमा के रूप में जाना जाता है | पहली भोजपुरी फिल्म विश्वनाथ शाहाबादी के 'गंगा मैया तोहें पियरी चढ़इबों' था, जो 1963 में रिलीज हुई| 80 के दशक में कई भोजपुरी फिल्म रिलीज हुई ,जिसमें 'बिटिया भईल सयान, चंदवा के ताके चकोर, हमार भौजी, गगा किनारे मोरा गाँव आदि |भोजपुरी हिन्दी की ही एक उपभाषा है| इसलिए सम्पूर्ण हिन्दी भाषी क्षेत्र में भोजपुरी फिल्म प्रसारित होती है | भोजपुरी की शब्दावली हिन्दी भाषा की शब्दावली है | भोजपुरी फिल्मों की भाषा माधुर्यता,वास्तविक जीवनशैली, विषय की स्पष्टता लोगों को आकर्षित करती है | भोजपुरी फिल्मों में भोजपुरी लोकगीतों का प्रभाव दिखाई पड़ता है | संतोषी माँ, छठी माता, विवाह, कन्यादान, आदि ऐसे अन्य भोजपुरी फिल्मों में भोजपुरी लोकगीत प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया जाता है | भोजपुरी फिल्म भाषाई विशेषता के साथ-साथ क्षेत्रीयता एवं वर्ग विशेष की ओर आकर्षित करता है | फिल्मों में प्रयुक्त की गयी लोकगीत काफी माधुर्य एवं कर्णप्रिय है, जो सभी को मन्त्रमुग्ध कर देती है | फ़िल्मी लोकगीतों में जीवन के सम्पूर्ण पहलु दिखाई पड़ते है, जिसमें मानस परम्परा की अनुभूति दिखाई पड़ती है| लोकगीत मानव मन की सहज और सरल अभिव्यक्ति है, और यही सहजता–सरलता आमजन को प्रभावित किये बिना नहीं रहती है| भोजपुरी फ़िल्मी लोकगीतों में लोकजीवन के संस्कारों के साथ-साथ राष्ट्रीय चेतना, नारी स्वाभिमान,आम जनजीवन के दृश्य, धार्मिक अनुष्ठान आदि है |साथ ही साथ सामाजिक सन्देश भी दिखायी देते है |फ़िल्में मानव जगत की अद्भुत उपलब्धि है | फिल्मों का आविष्कार मानव जगत में एक क्रांती है | भोजपुरी फिल्म भी भोजपुरी समाज के विभिन्न पहलुओं का सजीव चित्रांकन है | जिसे देखकर मनुष्यों को सुख –दुःख का अनुभव होता है | भोजपुरी सिनेमा ने खुद को भोजपुरी समाज का दर्पण सिद्ध किया है| इसमें तत्कालीन समाज का स्वरूप दिखाई पड़ता है | संतोषी मैया, छोटकी ठकुराईन, धरती मैया, नदिया के पार आदि जैसे फिल्मों के माध्यम से भोजपुरी फिल्म ने समाज में नवीन चेतना एवं जागृति लाने की कोशिश की है | साथ ही साथ रुढ़िवादी कुरीतियों ,अंधविश्वासों आदि पर तीखा व्यग्यं किया है | फिल्मों के कथानक का सीधा सम्बन्ध मानवीय संवेदनाओं, अनुभूतियों आदि से होता है| अत: यह मानव के मन-मस्तिष्क पर सीधा प्रभाव डालती है | फिल्मों के प्रदर्शित विचारों,भावनाओं को मिलो'| छत्तीसगढ़ का लोकगीत पीपली लाइव फिल्म में है| मनुष्य खुद के साथ जोड़ता है और जीवन में उसका अनुसरण करता है | भोजपुरी फिल्मों का प्रचार-प्रसार क्षेत्र विशेष की जनता की मांग के अनुरूप हुआ |इसके माध्यम से भोजपुरी भाषा को प्रसिद्धि प्राप्त हुई| भोजपुरी फिल्म अपनी विशेष पहचान राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सफल रही है | भोजपुरी फिल्मों का स्त्री-पुरुष,अमिर-गरीब, शिक्षित-अशिक्षित आदि लगभग सभी वर्गों पर इसका प्रभाव पड़ा है तथा सभी के मनोरंजन के स्वरूप में अपनी अलग पहचान बनाई है | भोजपुरी फिल्मों में लोकगीतों का महत्वपूर्ण स्थान है | इनका फिल्मों की सफलता में महत्वपूर्ण योगदान रहा है | लोकगीत आमजन की संस्कृति और सभ्यता को प्रदर्शित करता है | यह मिट्टी से जुड़े लोगों की अन्तरात्मा की आवाज होती है | इन गीतों को लोग सुनकर झूम उठते है | यह जनसाधारण

द्वारा,जनसाधारण की आवाज में ,जनसाधारण के लिए होती है | इसलिए काफी हृदय स्पर्शी होती है | लोगों को भावविभोर एवं आनन्द प्रदान करती है | फ़िल्मी लोकगीत लोगों को शिक्षा भी प्रदान करती है | इसमें समाज,संस्कृति एवं सभ्यता का ज्ञान होता है | लोकजीवन की सरलतम ,नैसर्गिक अनुभूतियों का चित्रण लोकगीत में दिखायी पड़ता है | लोकगीत में लोकमानव की हृदय की आवाज होती है |लोकगीत में जनजीवन की प्रत्तेक अवस्था,प्रत्तेक वर्ग ,प्रत्तेक स्वरूप और प्रवृत्ति दिखायी पड़ती है | शास्त्रीय नियमों एवं रीतियों की विशेष पहचान न करके सामान्य लोक व्यवहार के उपयोग में लाने के लिए मानव अपने आनन्द की तरंग में जो छन्दोबद्ध वाणी सहज अभिव्यक्ति करता है,वही लोकगीत है | भोजपुरी फिल्मों में इनका प्रयोग कथानक को जीवंतता प्रदान करती है साहित्य और समाज एक दूसरे के पूरक है | समाज के बिना साहित्य की कल्पना नहीं की जा सकती,उसी प्रकार साहित्य के बिना समाज भी अधूरा है | साहित्य जिस प्रकार एक सशक्त माध्यम है | साहित्य और फिल्म दोनों कला और मनोरंजन के महत्वपूर्ण माध्यम है | फिल्म हमेशा से ही सामाजिक परिवर्तन एवं सामाजिक समस्याओं को उजागर करता रहा है |शिक्षा का प्रभावशाली माध्यम सिद्ध हुआ है | यह अभिव्यक्ति का सर्वाधिक प्रभावशाली एवं सशक्त माध्यम है | आज मनोरंजन के रूप में किल्में सभी के द्वारा पसंद की जाती है | फिल्म मनोरंजन के साथ-साथ हमारे देश की संस्कृति, सभ्यता और युगीन परिवर्तन को दर्शाता है| फिल्म प्रत्तेक दृष्टिकोण से लोगों को प्रभावित करता है | फिल्म कल्पनाओं एवं मानवीय मूल्यों ,मानवीय भावनाओं एवं मानवीय संवेगों को चित्रित करने का एक सशक्त माध्यम है |फिल्मों में गीतों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है | फ़िल्मी गीतों की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि इनके गीत प्रसंग के अनुरूप और फिल्म की कहानी से जुड़े होते है | फिल्म लोगों तक ज्यादे तेजी से पहुँचती है | इसलिए इन धुनों के साथ जो फ़िल्मी गीतात्मक संवेदना लोगों तक पहुँची,वह अधिक असरदार साबित हुयी |1958 में राजा खोसला निर्देशित फिल्म 'काला पानी' में मजरुह सुल्तानपुरी के द्वारा लिखा गया तथा आशाभोसले की आवाज में एक गाना था –'नजर लागी राजा तोरे बगलें पर' ,'जो मै होती राजा काली बदरिया ,बरस रहती राजा तोरे बगलें पर |' लोक की धुन पर लोकगीतात्मकता को निभाता हुआ गाना है | गैंग ऑफ़ वासेपुर में- 'तार बिजली से पतले हमारे पिया' मुखड़ा पारम्परिक लोकसंगीत का ही है | इसीप्रकार –'भाव कोइला के बिकले हमार पिया "| लोकधुन पर लोकगीत लिखे भी गये और संगीतबद्ध भी है | कजरी, चैता,दादरा आदि फिल्मों में निबाहे जाते है | 1963 में 'विदेसिया' में कजरी प्रयुक्त की गयी है – नींक सैया बीन भवनवा नाहीं लागे सखिया '| 1964 में 'नैहर दुरल जाय' में –ओ रामा रिमझिम बरसेला पनिया' बेहतरीन लोकगीत है| भोजपुरी फिल्म बालीवुड में एक अलग पहचान बना ली है | यह फिल्म हिन्दी भाषा-भाषीयों के साथ-साथ पूरे देश में देखी एवं पसन्द की जाती है | यह मुख्यतः मनोरंजन एवं सामाजिक जागरूकता पर आधारित होती है | इनकी बोली भोजपुरी में ही प्रयुक्त की जाती है | यह मुख्यतः बिहार एवं उत्तर प्रदेश की भाषा बोली पर केन्द्रित होती है| बालीवुड में ऐसी भोजपुरी फिल्म बनाई गयी जो लोगों के द्वारा काफी पसंद किया गया |गंगा मैया तोहे पियरी चढ़इबो' विश्वनाथ शाहाबादी द्वारा 1961 में प्रथम भोजपुरी फिल्म के रूप में प्रदर्शित की गयी थी | आज भोजपुरी फिल्मों के अंतर्गत बहुत सी फिल्म बन रही है |'ससुरा बड़ा पैसा वाला' भोजपुरी फिल्म लोगों के द्वारा सर्वाधिक पसंद की गयी | 'विदेशी' 1963,एस.एन.त्रिपाठी द्वारा निर्देशित और 'गंगा' 1965 कुंदन कुमार द्वारा निर्देशित लाभदायक और लोकप्रिय फ़िल्में बनी | 1980 के दशक में अनेक भोजपुरी फिल्मों का उत्पादन किया गया | 'माँ' 1989 में राजकुमार शर्मा द्वारा निर्देशित 'हमार भौजी' 1983 कल्पतरु द्वारा निर्देशित के रूप में 'नदिया के पार' गोविन्द मनीष द्वारा निर्देशित 1982 में,हिन्दी भोजपुरी ब्लाकबस्टर और सचिन,साधना,सिंह,इंदर-ठाकुर,मिताली,सविता-बजाज,शीला देवी,लीला मिश्रा और सोनी राठौर है| 2001 में रजतजयंती के साथ भोजपुरी फिल्म उद्योग फिर से शुरू हुआ| "पंडित जी बताई न बियाह कब होई" "ससुरा बड़ा पैसा वाला" 2005 में मोहन प्रसाद द्वारा निर्देशित भोजपुरी फिल्म काफी प्रसिद्धि प्राप्त की तथा लोगों के द्वारा पसन्द किया गया | फरवरी 2011 में भोजपुरी सिनेमा के 50 वर्षों के पटना में तीन दिवसीय फिल्म और सांस्कृतिक त्यौहार,"गंगा मैया तोहे पियरी चढ़इबो, पहली भोजपुरी फिल्म की शुरुआत हई | इस फिल्म के गीतों को काफी पसंद किये गये| गाना –"राते दिया बुता के" पवन सिंह की फिल्म 'सत्या का प्रमोशनल सांग है| जिसे पवन सिंह और आम्रपाली दूबे पर फिल्माया गया था| प्रस्तुत फिल्म की गीत भी लोगों के द्वारा काफी पसंद किया गया | पहली भोजपुरी फिल्म 'गंगा मैया तोहे पियरी चढ़इबों '(1961-62) में बनीं | यह पहली सवाक फिल्म 'आलम आरा' (1931) के 31 वर्षों बाद बनी| परन्तु अब भोजपुरी बोली की दस्तक उस वक्त हो चुकी थी | 1932 में बनीं भारत की दूसरी फिल्म 'इंदर सभा' में 72 गाने थे, जिसमें गाने भोजपुरी लोकगीत की शैली में गाये गये थे| गाना था- सुरतिया दिखाय जाओ ओ बाके छैला' तथा "ठाढ़े हूँ तोरे द्वार बुलाले मोरे साजन रे" इंदर सभा सम्पूर्ण रूप से सांगीतिक फिल्म थी | फिल्म की संवाद सभी गीतों के माध्यम से अभिव्यक्त की गयी है | "तार बिजली से पतले हमार पिया" मुखड़ा पारंपरिक लोकसंगीत का ही है| इसी प्रकार भाव कोइला के बिकले हमार पिया"| लोकधुन पर लोकगीत लिखे भी गये और संगीत बद्ध भी है | कजरी ,चैता,दादरा,आदि फिल्मों में निबाहे जाते है| 1963 में 'विदेसिया' की कजरी प्रयुक्त की गयी है – 'निक सैया बिन भवनवा नाहीं लगे सखिया"| 1964 में नैहर छुटल जाय में – ओ रामा रिमझिम बरसला पनिया' बेहतरीन लोकगीत है| इसी तरह मन्ना डे के कंठ से 1964 में "नैहर छुटल जाय" की कजरी "ओ रामा रिमझिम बरसेला पनिया" बेहतरीन लोकगीत है | पहले लोकगीत और लोकधुनों से फ़िल्मी गीत प्रभावित होते थे| फ़िल्मी गीतों का नक़ल कर लोकगीत लिखे जा रहे है | जिसके कारण लोकगीतों की मौलिकता नष्ट हो रही है | फिल्मों में लोकगीतों के प्रयोग के कारण लोकगीतों में व्यापकता आयी है | भोजपुरी फिल्मों में भोजपुरी कलाकारों के अतिरिक्त बालीवुड के प्रमुख अभिनेताओं ने भी काम किया है | जिसमें अमिताभ बच्चन, मिथुन चक्रवर्ती आदि शामिल है | मिथुन चक्रवर्ती की भोले शंकर 2008 में प्रदर्शित हुई थी | यह उस समय की सबसे प्रचलित भोजपुरी फिल्म थी | 2008 में सिद्धार्थ सिन्हा द्वारा 21 मिनट की डिप्लोमा भोजपुरी फिल्म- उडेह बान,(अन्क्रोवेल) को बर्लिन इंटरनेशनल फिल्म फेस्टिवल में विश्व प्रीमियम के लिए चुना गया | बाद में इसे बेस्ट लघु फिक्सन फिल्म के लिए राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार मिला |

******

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची :-

1.कुंदे, पुरूषोत्तम- साहित्य और सिनेमा
2.सिंह ,डॉ.देवेन्द्र नाथ, यादव,डॉ.वीरेन्द्र सिंह ,भारतीय हिन्दी सिनेमा का विकास यात्रा
3.भरद्वाज,डॉ.शैलजा–साहित्य और सिनेमा: बदलते परिदृश्य में सम्भवनायें और चुनौतियाँ
4.दुबे ,विवेक –हिन्दी साहित्य और सिनेमा
5.दास,विनोद,- भारतीय सिनेमा का अन्त:करण
6. परमार ,श्याम (१९५४) भारतीय लोकसाहित्य ,राजकमल प्रकाशन ,नई दिल्ली
7.पाठक,हरे राम (2005) ,भोजपुरी संस्कार गीत ,लोकवार्ता शोध प्रकाशन ,असम
8.उपाध्याय,कृष्णदेव लोकसाहित्य की भूमिका ,साहित्य भवन प्रकाशन ,इलाहबाद
9. सिंह,महेन्द्र (1995) भोजपुरी लोकगीत के संसार, भोजपुरी प्रसाद परिषद ,आरा |
10.भास्कर,भगवान सिंह भोजपुरी के विवाह गीत ,भास्कर साहित्य भारती ,सिवान ,बिहार|
11.ठाकुर,पद्मभूषणसिंहभोजपुरीलोक-संगीत,भारतीयशोधसंस्कृति संस्थान ,दुर्गाकुण्ड ,वाराणसी|
12.उपाध्याय,हरीशबलिया जनपद के भोजपुरी लोकगीत, इंडिया इंटरप्राइज इनकार्पोरेशन ,USA |
13 उपाध्याय,कृष्णदेव लोकसंस्कृति की रुपरेखा ,लोकभारती प्रकाशन ,इलाहाबाद |
14. श्रीवास्तव ,शैलेश भोजपुरी संस्कार गीत और प्रसार माध्यम ,राधाकृष्ण प्रकाशन
15. पियूष,जगदीश (2008) अवधी ग्रंथावली ,खण्ड-1 ,वाणी प्रकाशन नई दिल्ली |

भारतीय नवजागरण और आधुनिक हिन्दी साहित्य: भारतेंदु एवं प्रसाद की नाट्य रचनाओं के संदर्भ में

डॉ. बालेन्द्र सिंह यादव
सहायक आचार्य–हिन्दी
डॉ. अंबेडकर राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
ऊंचाहार–रायबरेली (उ प्र.) मो.9410009838

भारत में नवजागरण की चेतना का विकास-

यूरोप के ज्ञानोदय या प्रबोधन काल (एनलाइटेनमेंट) की शुरुआत एक नयी चेतना के उदय के साथ होता है जिसने सामाजिक–राजनीतिक विषमता का अंत कर भाईचारे के भाव युक्त जनवादी विचारधारा को अपनाया। यह नई चेतना 16वीं शताब्दी में इटली और 18वीं शताब्दी में फ्रांस में अपना विकसित रूप धारण करती है। फ्रांस में इसे 'रिनेसाँ' (पुनर्जागरण) नाम दिया गया। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में यूरोप की भाँति भारत में भी एक नवीन चेतना का जागृत होती है जो देश के सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन को अत्यधिक प्रभावित करती। 1857 की क्रांति के बाद तो भारतीय जनमानस में जागृत स्वातंत्र्य-चेतना ने पूरे भारत का परिवेश ही बदल डाला। अब लोग किसी पाखण्ड को आँख बंद कर मानने की जगह उस पर तर्कपूर्ण विचार करने लगे। लोगों की स्वराज्य प्राप्ति की इच्छा व्यापक रूप धारण कर अनेक जन-आन्दोलनों में तब्दील हो गई। ऐसी इस व्यापक नवीन चेतना को 'नवजागरण' की संज्ञा दी गई। नवजागरण के संबंध में प्रसिद्ध इतिहासकार बिपन चंद्र लिखते हैं कि– "19वीं शताब्दी में ब्रिटिश साम्राज्य के ख़िलाफ़ राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रतिक्रिया हुई। ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार, औपनिवेशिक संस्कृति और ज्ञान-विज्ञान के प्रसार से भारतीयों के लिए यह आवश्यक हो गया कि वे अपना आत्मनिरीक्षण करें। यूँ तो यह चेतना हर समाज और हर स्थान पर अलग-अलग समय पर आयी किन्तु सबको एहसास हो गया कि धार्मिक सांस्कृतिक जीवन में सुधार आवश्यक है।"[1]

हालांकि ऐसी ही चेतना का प्रादुर्भाव पंद्रहवीं शताब्दी में इस्लाम धर्म एवं संस्कृति के भारत में विधिवत आगमन के समय भी हुआ था। उस समय पहले तो भारतीय संस्कृति से उसका टकराव हुआ पर बाद में दोनों के बीच आदान-प्रदान की प्रक्रिया घटित हुई। चूंकि भक्तिकालीन इस चेतना के स्रोत और लक्ष्य दोनों ही लोक में थे शायद इसलिए रामविलास शर्मा इस चेतना को 'लोकजागरण' कहते हैं। उन्नीसवीं सदी का नवजागरण पंद्रहवीं सदी के लोकजागरण का पुनरोत्थान मात्र तो नहीं है, किंतु उसकी चेतना इसमें अंशत: विद्यमान जरूर है। इसलिए नवजागरण पर ठीक ठीक विचार करने के लिए लोकजागरण के बारे में स्पष्ट जानकारी आवश्यक है। 'लोकजागरण' काल के कवियों ने शासन और शासक के बजाय लोकजीवन और परमतत्व में अपनी आस्था प्रकट की। कबीर, जायसी, सूर, तुलसी जैसे भक्त कवियों तथा गुरू नानक, चैतन्य महाप्रभु जैसे भक्ति समाज-सुधारकों के साथ-साथ अक्क महादेवी, अंडाल, लल्लद्य, मीरा और ताज जैसी कवयित्रियाँ भी दिखाई देती हैं। इन सब ने मानवीय शोषण की वाहक– कुरीतियों, पाखण्डों, आडम्बरों पर गहरी चोट की और स्त्रियों पर लगे परम्परा के बन्धनों को तोड़कर सामंती व्यवस्था को चुनौती दी। जिस सामन्ती विचार के विरोध में ये लोकजागरण की चेतना उत्पन्न हुई थी विडंबना है कि धीरे-धीरे उसी सामन्ती विचार ने इसको कमजोर कर दिया जिसके परिणामस्वरूप सामंतवाद की पोषक रीतिकाल का आगमन हुआ।

भारत में उन्नीसवीं शताब्दी के 'नवजागरण' के उदय के वैसे तो अनेक कारण थे परन्तु इसका मूल कारण ब्रिटिश उपनिवेशवाद के फलस्वरूप देश में पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति का प्रचार और प्रसार ही था। ब्रिटिश शासन ने भारत में रेल, तार, डाक का जाल बिछाया तथा फोर्ट विलियम कॉलेज बनवाकर और प्रिंटिंग प्रेस खोलकर अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार-प्रसार की नींव डाली। यह सब कार्य अंग्रेजों ने अपने हित के लिए किया था परन्तु इससे लाभ ग्रहण भारतीयों ने भी अंधविश्वास में फंसी अपनी बुद्धि को आधुनिकता की ओर अग्रसर किया। अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार-प्रसार से शिक्षा, साहित्य, कला और विज्ञान के क्षेत्र में उन्नति का स्रोत खुल गया। जिसके फलस्वरूप भारतीयों में राष्ट्रीयता तथा स्वतन्त्रता की भावना का संचार हुआ। विद्याधर महाजन ने ठीक ही लिखा कि "भारतीय नवजागरण ने सर्वप्रथम बुद्धिजीवियों में जागृति पैदा की, जिसका हमारे साहित्य, शिक्षा और कला पर विशेष प्रभाव पड़ा। फिर इसने एक नैतिक शक्ति बनकर भारतीय समाज और धर्म में सुधार लाने का काम किया। बाद में नवजागरण ने आर्थिक क्षेत्र में आमूल-चूल परिवर्तन करके देश को राजनीतिक स्वतन्त्रता उपलब्ध करायी।"[2] नवजागरण की चेतना का उद्देश्य जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सुधार लाना ही था। इसने भारतीय आत्मा को उसकी गहराई तक पहुँचकर प्रभावित किया। इसके प्रभाव से देश का हर क्षेत्र व समाज प्रभावित रहा किन्तु जिन तीन क्षेत्रों में इसका सबसे अधिक प्रभाव रहा वो बंगाल, महाराष्ट्र और हिन्दी प्रदेश थे। हिन्दी प्रदेश में तो नवजागरण 1857 की क्रांति के बाद राष्ट्रीय रूप धारण कर "भारतीय नवजागरण" बन गया। 'बंगाल' भारतीय नवजागरण का पहला महत्वपूर्ण क्षेत्र था जहाँ उन्नीसवीं सदी और बीसवीं सदी के शुरुआती वर्षों में समाज सुधारकों, साहित्यकारों और कलाकारों ने स्त्री, विवाह, दहेज, जातिप्रथा और धर्म संबंधी स्थापित परम्पराओं को चुनौती दी। सुशोभन सरकार लिखते हैं- "अंग्रेज़ी राज, पूँजीवादी अर्थव्यवस्था और आधुनिक पश्चिमी संस्कृति का सबसे पहला प्रभाव बंगाल पर पड़ा जिससे एक ऐसा नवजागरण हुआ जिसे आमतौर पर बंगाल के रिनेसाँ के नाम से जाना जाता है। इस नवजागरण ने समग्र भारतीय आधुनिकता की निर्मितियों पर अमिट छाप छोड़ी जिससे भारतीय राष्ट्रवाद के शुरुआती रूपों की संरचनाएँ सामने आयीं।"[3]

'महाराष्ट्र' भारतीय नवजागरण का दूसरा महत्वपूर्ण क्षेत्र था जहाँ आत्माराम पाण्डुरंग, ज्योतिबा फुले, महादेव गोविंद रानाडे और अन्य अनेक समाजसेवी 'प्रार्थना समाज' (सन् 1867 ई.) की स्थापना कर सामाजिक आंदोलनों के माध्यम से समाज के पीड़ितों के उद्धार के लिए कार्य कर रहे थे। मराठी नवजागरण दलित चेतना को केंद्र में रखकर विकसित हुआ था। महाराष्ट्र की दलित चेतना का प्रसार दक्षिण भारत तक रहा। केरल के 'नारायण गुरू' तथा तमिलनाडु के 'इरोड वेंकट नायकर रामासामी (पेरियार)' ने दलितों के उद्धार के लिए दलित आंदोलन किया। जहाँ एक ओर नारायण गुरू ने सभी मनुष्यों के लिए एक ही जाति, एक धर्म और एक ही ईश्वर होने की बात की जिससे हर एक आम आदमी अपना जुड़ाव महसूस कर सके तो वहीं दूसरी ओर पेरियार ने जस्टिस पार्टी का गठन कर दलित समाज के विनाश का प्रमुख कारण बनी स्वाभिमानी हिन्दुत्व की सोच का पुरजोर विरोध किया। 'हिन्दी प्रदेशों' को भारतीय नवजागरण का तीसरा महत्वपूर्ण क्षेत्र माना जाता है जहाँ सन् 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के बाद स्वातंत्र्य-चेतना की राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक जागरण की चेतना विकसित हुई। इस विकसित चेतना को हिन्दी नवजागरण की संज्ञा दी गई। हिन्दी क्षेत्र के नवजागरण से पूर्व बंगाल नवजागरण के बंकिमचंद्र आदि लेखकों की दृष्टि प्रायः सोनार बांग्ला से आगे नहीं बढ़ पायी और महाराष्ट्र नव जागरण के प्रसिद्ध गद्यकार चिपलूणकर वर्ण-भेद की खाई पार नहीं कर पाये। किन्तु हिन्दी क्षेत्र का नवजागरण हिन्दी प्रदेश तक सीमित न रहकर क्षेत्रीय सीमाओं को तोड़ते हुए पहली बार 'राष्ट्रीयता' के विस्तृत फलक पर देखा गया जिसके प्रवर्तक भारतेंदु हरिश्चंद्र माने जाते हैं। कहा जा सकता है कि भारतीय नवजागरण की चेतना अपने विकसित रूप में हिन्दी नवजागरण में ही दिखती है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्त भारतीय नवजागरण :-

हिन्दी सहित सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य में नवजागरण की गूँज स्पष्ट सुनाई देती है। साहित्य में लेखन का 'गद्य' रूप जिसे निराला ने जीवन-संग्राम की भाषा का रूप कहा है,

नवजागरण की सबसे मूल्यवान देन है।आधुनिक हिन्दी साहित्य में पद्य के साथ साथ गद्य एवं उनकी विभिन्न विधाओं– निबंध, नाटक, कहानी, उपन्यास, आलोचना आदि– के माध्यम से भारतेन्दु युग में जन्मी नवजागरण की चेतना द्विवेदी युग से गुजरते हुए छायावाद युग में पहुँचकर अपने सबसे प्रभावशाली रूप में द्रष्टव्य है। भारतेंदु हरिश्चंद्र राष्ट्रीय जागरण के एक ऐसे अग्रदूत थे जिनके समय में रीतिकालीन परिपाटी की कविता का अवसान तथा राष्ट्रीय एवं समाज-सुधार की भावना से युक्त साहित्य का उदय होता है। "भारतेंदु ने साहित्यकारों का एक ऐसा मंडल तैयार किया जिनकी रचनाओं के माध्यम से नवयुग की चेतना को अभिव्यक्ति मिली। इस चेतना से पूर्व साहित्य राजदरबारों में ही सिर झुका रहा था किन्तु अब साहित्यकार समाज से जुड़कर समाज में फैले आडम्बर, रूढ़ि, वर्ण-वर्ग भेद, कुरीति, सती प्रथा, बाल-विवाह आदि का विरोध करने लगे। विधवा विवाह का समर्थन और सामंती व्यवस्था, उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद का विरोध प्रखर हुआ।" [4] भारतेंदु ने अपने युवावस्था में ही "लेवी प्राण लेवी" (1870 में) लेख में पहली बार अंग्रेजों के विरूद्ध आवाज उठाई। उनके द्वारा सम्पादित 'कवि वचन सुधा'(1868), 'हरिश्चंद्र मैगजिन'(1873), 'बाला बोधिनी'(1874) आदि पत्रिकाओं में देश की उन्नति और देश के विकास को रोकने वाली कुप्रथाओं की विवेचना की गई है। 'बाला बोधिनी' पत्रिका तो मूल रूप से स्त्रियों के लिए ही निकाली गई थी। दयानंद सरस्वती के आर्य समाज (1875) से प्रेरित भारतेंदु ने वैष्णव भक्ति के लिए "तदीय समाज" की स्थापना की। 1884 में ही उन्होनें देश के विकास के लिए एक महत्वपूर्ण भाषण दिया जो "बलिया व्याख्यान" के नाम से प्रसिद्ध है। वे भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है के संबंध में चिंतित थे। उन्होंने लिखा है – "भाई हिन्दुओं! तुम भी मतमतांतर का आग्रह छोड़ो। आपस में प्रेम बढ़ाओ। इस महामंत्र का जप करो। जो हिन्दुस्तान में रहे, चाहे किसी रंग, किसी जाति का क्यों न हो, वह हिन्दू है। हिन्दू की सहायता करो। बंगाली, मरट्ठा, पंजाबी, मद्रासी, वैदिक, जैन, ब्राह्मण, मुसलमान सब एक का हाथ एक पकड़ो। कारीगरी जिससे तुम्हारे यहाँ बढ़े, तुम्हारा रुपया तुम्हारे ही देश में रहे, वह करो।"[5]भारतेन्दु टकसाली अर्थात गढ़ी हुई भाषा के विरूद्ध थे। वे भाषा के सहज, सरल, प्रवाहमय और विनोदपूर्ण रूप को स्वीकार करते थे। लोकभाषा के समर्थक बनकर वे 'निज भाषा की उन्नति की बात करते थे —

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत ना हिय को सूल॥

एक युवा का ऐसा साहस और जोश देखकर सभी के भीतर देश प्रेम की भावना उमड़ उठी। द्विवेदी युगीन कवियों ने भी अपनी रचनाओं के माध्यम से जनमानस में देशप्रेम व भाईचारे की भावना विकसित करने की कोशिश की।–

जैन, बुद्ध, पारसी, यहुदी, मुस्लिम, सिख, ईसाई।
कोटि कंठ से मिल कर कह दो, हम सब हैं भाई-भाई॥

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपने द्वारा संपादित 'सरस्वती' पत्रिका में देश और देश की भाषा हिन्दी की उन्नति के लिए अद्वितीय योगदान दिया। बालकृष्ण भट्ट ने साहित्य को जनता से जोड़ते हुए कह दिया कि 'साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है'।छायावाद युगीन रचनाकारों की रचनाओं में 'नवजागरण' की चेतना अपने गौरवपूर्ण अतीत और राष्ट्रीयता की भावना के रूप में अभिव्यक्त हुई है। जयशंकर प्रसाद ने पुराने गौरव को सामने रखकर देश को जागने के लिए राष्ट्रीय भावना विकसित करते हुए आजादी की प्रेरणा जन-जन तक पहुँचाते हैं—

हिमाद्री तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती।
स्वयं प्रभा समुज्जवला स्वतंत्रता पुकारती॥

महाकवि निराला ने अपने सुख में जनता का सुख और जनता के दुःख में अपना दुःख समझा। उनकी निम्न काव्य पंक्तियां इस बात को पूर्ण सत्य सिद्ध करती है—

मैने मैं शैली अपनाई, देखा दुःखी निज भाई।
दुःख की छाया पड़ी हृदय में, झट उमड़ वेदना आयी॥

भारतेंदु और प्रसाद के नाटकों में अभिव्यक्त भारतीय नव जागरण:-आधुनिक हिन्दी साहित्य में नाट्य विधा सर्वाधिक प्रिय विधा रही। नाटकों के माध्यम से नव जागरण की चेतना जगाने वाले रचनाकारों में भारतेन्दु हरिश्चंद्र और जयशंकर प्रसाद की भूमिका सराहनीय एवं विचारणीय है। भारतेन्दु ने 'भारत दुर्दशा', 'अंधेरनगरी', 'नीलदेवी' जैसे कई मौलिक नाटकों की रचना के साथ ही अंग्रेजी, संस्कृत और बंगला के नाटकों का हिन्दी अनुवाद भी किया। अपने अनुभवों के आधार पर उन्होंने 'नाटक अथवा दृश्य काव्य' नामक आलोचनात्मक पुस्तक लिखी। इस कृति से नाटक के विषय में उनकी आधुनिक दृष्टि का पता चलता है। डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी ने नाटक-केन्द्रित भारतेन्दु की आलोचना दृष्टि का विश्लेषण करते हुए लिखा है, "भारतेन्दु ने नाटक पर विचार करते समय उसकी प्रकृति, समसामयिक जनरुचि एवं प्राचीन नाट्यशास्त्र की उपयोगिता पर विचार किया है। उन्होंने बदली हुई जनरुचि के अनुसार नाट्यरचना में परिवर्तन करने पर विशेष बल दिया है। भारतेन्दु के नाटक विषयक लेख में आलोचना के गुण मिल जाते हैं। ऐसी दशा में उन्हें आधुनिक हिन्दी साहित्य का प्रथम आलोचक कहना अनुचित न होगा।"[6] भारतेन्दु के समय हिन्दी नाटकों पर बंगला और अंग्रेजी के साथ पारसी शैली के नाटकों का भी प्रभाव पड़ रहा था किन्तु भारतेन्दु को पारसी नाटकों की अभिनय शैली पसंद नहीं थी। उन्होंने पारसी नाटकों की प्रस्तुति और शैली पर व्यंग्य करते हुए लिखा है कि "काशी में पारसी नाटक वालों ने नाचघर में जब शकुन्तला नाटक खेला और उसमें धीरोदात्त नायक दुष्यंत खेमटेवालियों की तरह कमर पर हाथ रखकर मटक-मटक कर नाचने और पतली कमर बल खाय यह गाने लगा तो डाक्टर थिबो, बाबू प्रमदादास मित्र प्रभृति विद्वान यह कहकर उठ आए कि अब देखा नहीं जाता।"[7]

नाट्य रचना के अंतर्गत यथार्थवादी दृष्टिकोण की आवश्यकता को महसूस करते हुए भारतेन्दु लिखते हैं कि–"अब नाटकादि दृश्य काव्य में अस्वाभाविक सामग्री– परिपोषक काव्य, सहृदय सभ्यमंडली को नितान्त अरुचिकर है, इसलिए स्वाभाविक रचना ही इस काल के सभ्यगण की हृदयग्राहिणी है, इससे अब अलौकिक विषय का आश्रय करके नाटकादि दृश्यकाव्य प्रणयन करना उचित नहीं है।" भारतेंदु के नाटक सोद्देश्य लिखे गए हैं। उनकी भाषा आम आदमी की भाषा है। लोकजीवन के प्रचलित शब्द एवं अंग्रेजी, उर्दू, अरबी, फारसी के सहज चलन में आने वाले शब्द तथा लोक मुहावरे उनके नाटकों में प्रयुक्त हुए हैं। जैसे– नांदीपाठ, मंगलाचरण आदि। 'अन्धेर नगरी' में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की नाट्यकला का चरमोत्कर्ष हुआ है। प्रहसन और व्यंग्य-कला का इतना चुटीला और सजीव रूप उनकी सजगता और मानव जीवन में उनकी गहरी पैठ का परिणाम है। जन-प्रचलित एक छोटी सी लोकोक्ति के आधार पर रचित यह छोटा नाटक अपने भीतर समग्र वर्तमान सन्दर्भ छिपाये हुए है। 'भारत दुर्दशा' नामक नाटक में भारतेन्दु अपने देशवासियों को अंग्रेजों की विभाजनकारी नीतियों के प्रति सचेत करते हैं। भारतेन्दु अंग्रेजों के झूठे वादों और झूठे सच से भारतीयों को अवगत कराना चाहते हैं। वे लिखते हैं कि —

भीतर-भीतर सब रस चूसे। हँसी-हँसी के तन-मन-धन लूटे॥
जाहिर बातन में अति तेज। क्यों सखी? साजन नहीं अंग्रेज॥

आधुनिक हिंदी-साहित्य में छायावादी रचनाकार जयशंकर प्रसाद मूर्धन्य कवि होने के साथ साथ एक सफल नाटककार भी हैं। प्रसाद जी ने 'सज्जन', 'कल्याणी परिणय', 'करुणालय', 'प्रायश्चित', 'राज्यश्री', 'विशाख', 'अजातशत्रु', 'जनमेजय का नाग यज्ञ', 'स्कंदगुप्त', 'एक घूँट', 'कामना', 'चन्द्रगुप्त', तथा 'ध्रुवस्वामिनी' जैसे एक दर्जन से अधिक नाटक लिखकर हिंदी नाटक साहित्य को समृद्ध किया। इनके नाटकों में ऐतिहासिक, सांस्कृतिक चेतना, इतिहास और कल्पना का सुंदर सामंजस्य दार्शनिक गंभीरता और साथ ही काव्यात्मक

सरसता, वीरता और साहस व प्रेम का रोमानी संघर्षपूर्ण वातावरण, देशकाल का सजीव चित्रण आदि विशेषतायें दृष्टव्य होती है। मुख्यतः ऐतिहासिक नाटककार के रूप में प्रतिष्ठित प्रसाद ने अपने अधिकांश नाटकों की कथा-वस्तु भारतीय इतिहास के गौरवमय अतीत से ग्रहण किया है। प्रसाद की निम्नांकित पंक्तियां गौरवपूर्ण अतीत की याद दिलाती हैं और वर्तमान में प्रेरणा भी देती हैं —

वही है रक्त, वही है देह, वही साहस, वैसा ही ज्ञान।
वही है शांति, वही है शक्ति, वही हम दिव्य आर्य संतान॥
जियें तो सदा उसी के लिए, यही अभिमान रहे यह हर्ष।
निछावर कर दें हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतवर्ष॥

ऐतिहासिक नाटक लिखने का एक प्रमुख कारण यह था कि वे नाटकों के माध्यम से आज़ादी की लड़ाई लड़ रहे जनमानस को प्रेरित करना चाहते थे। उन्होंने अपने नाटकों में इतिहास और कल्पना का बेजोड़ समन्वय कर इतिहास की प्राचीन घटनाओं के माध्यम से व्यंग्य रूप में वर्तमान की सम्स्याओं का चित्रण और समाधान प्रस्तुत किया। 'चन्द्रगुप्त' और 'स्कंदगुप्त' नामक नाटक में उन्होंने स्वर्णिम अतीत को वर्तमान के लिए प्रेरणाप्रद बताया है —अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़-प्रतिज्ञ सोच लो।

प्रशस्त पुण्य पंथ है, बढ़े चलो, बढ़े चलो॥
असंख्य कीर्ति-रश्मियाँ विकीर्ण दिव्य दाह-सी।
सपूत मातृभूमि के- रुको न शूर साहसी॥
अराति सैन्य सिंधु में, सुवाड़वाग्नि से जलो।
प्रवीर हो जयी बनो - बढ़े चलो, बढ़े चलो॥"

उनके ऐतिहासिक नाटकों का फलक अति विराट है जिनमें राष्ट्रीयता को नाटक का मुख्य तत्व मानते हुए पूरे राष्ट्र की समस्याएं अभिव्यक्त हुई हैं। राष्ट्रीय चेतना मनुष्य के मन का परिष्कार कर उसमें इच्छाशक्ति और संवेदना उत्पन्न करती है। इसलिए वे अपनी संस्कृति के प्रति गौरवबोध और राष्ट्रीय अस्मिता के प्रति राष्ट्रबोध को एक-दूसरे का पूरक मानते हैं। उनके ऐतिहासिक नाटक 'चन्द्रगुप्त' के प्रसिद्ध गीत 'अरुण यह मधुमय देश हमारा, जहां पहुंच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा' में देश के प्रति इसी आत्मभाव को अभिव्यक्ति मिली है। हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने भी उनके नाटकों के बारे में लिखा है कि "उनके ऐतिहासिक नाटक पीछे लौटने की सलाह लेकर नहीं आए, आगे बढ़ने की प्रेरणा लेकर आए थे।"[9]

नाटककार प्रसाद के नाटकों का मूल उद्देश्य सांस्कृतिक चेतना जागृत करना, नारी अस्मिता को स्थापित करना और राष्ट्रीय भावनाओं को जन-जन तक पहुँचाना रहा है। उन्होंने पारंपरिक मान्यताओं से पृथक राष्ट्रवादी सिद्धांतों की व्याख्या की हैं। नाटकों के नारी पात्रों के माध्यम से उन्होंने व्यापक रूप में राष्ट्रीय चेतना का संदेश दिया हैं। उनके सभी प्रमुख नाटकों में नारी के गौरवमय राष्ट्रीय स्वरूप के भव्य दर्शन होते हैं। 'चन्द्रगुप्त' नाटक की 'अलका' वीर क्षत्राणी बनकर अपने स्वतंत्र नारी व्यक्तित्व का परिचय देती हैं। चन्द्रगुप्त और चाणक्य के साथ मिलकर देश की रक्षा के लिये वह नटी का रूप धारण करती है, पर्वतेश्वर के बंदीगृह में चाणक्य से संकेत पाकर वह पर्वतेश्वर की प्रणयिनी बनने की राजनीति खेलती है। वह सिल्यूकस के समक्ष अपने राष्ट्र प्रेम का परिचय देती हुई कहती है कि "मेरा देश है, मेरे पहाड़ हैं, मेरी नदियाँ और जंगल हैं, इस भूमि के एक-एक परमाणु मेरे हैं और मेरे शरीर के एक-एक क्षुद्र अंश उन्हीं परमाणुओं से बने हैं।"[10] 'स्कंदगुप्त' की जयमाला, रामा, देवसेना 'अजातशत्रु' की मल्लिका, 'चन्द्रगुप्त' की मालविका आदि में भी राष्ट्रीयता की भावना नस-नस में व्याप्त हैं। जातीय गौरव, राष्ट्रीय प्रेम और विश्व कल्याण की कामना को स्थापित करने में प्रसाद के नाटकों की नारियाँ उल्लेखनीय हैं। उनके नाटकों में आदर्श और मर्यादा के साथ-साथ देश भक्ति की डोर पकड़कर गतिमान होने वाली मुख्य नारी पात्र ही नहीं गौण नारी पात्र भी आम जनमानस को प्रभावित करने की विशेष क्षमता रखती हैं। डॉ. नगेन्द्र ने ठीक ही कहा कि "प्रसाद के नाटकों में ट्रेजडी की भावना, उनकी सांस्कृतिक पुनरुथान की चेतना, उनके महान कोमल चरित्र, उनके विराट मधुर दृश्य, उनका काव्य स्पर्श हिंदी में तो अद्वितीय है ही, अन्य भाषाओं और नाटकों की तुलना में भी उसकी ज्योति मलिन नहीं पड़ सकती है।"[11] प्रसाद जी की राष्ट्रीयता के सन्दर्भ में बच्चन सिंह जी कहते हैं कि "इनकी राष्ट्रीयता राजाओं और सरदारों तक सीमित नहीं हैं, वह ऐसी राष्ट्रव्यापी चेतना है जो देश के प्रत्येक व्यक्ति को अपने में समाहित कर लेती है। दूसरी, इनकी राष्ट्रीयता में विश्वमैत्री समन्वित है। यही कारण है कि स्थान-स्थान पर मानव मैत्री का उद्घोष हुआ है।"[1]

निष्कर्षतः हिन्दी साहित्य को प्राप्त भारतेंदु एवं प्रसाद की रचनाओं की निम्न विशेषताओं को नवजागरण के संदर्भ में देखा जा सकता है—

(1) भारत के गौरवमय अतीत को साहित्य का विषय बनाकर भारतीय संस्कृति को गौरवान्वित किया गया। जिससे रचनाओं में राष्ट्रप्रेम के भाव की गूँज सुनाई पड़ती है।
(2) मनुष्य की एकता, समानता और भाईचारा स्थापित करने वाली जनवादी विचारधारा का समर्थन मिलता है।
(3) अंधविश्वासों, रूढ़ियों, छुआछूत, अंग्रेजी शासन, पाश्चात्य सभ्यता के अंधानुकरण आदि पर हास्य-व्यंग्य एवं माधुर्य शैली की प्रधानता दिखती है।
(4) श्रृंगारिक भावनाओं की अभिव्यक्ति के साथ प्रकृति के वर्णन/चित्रण द्वारा देश के प्रति लगाव का भाव प्रदर्शित है।
(5) परंपरागत छंदों के साथ-साथ ग्राम्य छंदों-कजरी, ठुमरी, लावनी, कहरवा तथा चैती आदि का प्रयोग कर छंद-विधान में नवीनता लाकर लोक को तवज्जो दी गई है।

******

संदर्भ पुस्तकें:–

1. आधुनिक भारत का इतिहास, विपिन चन्द्र, पृष्ठ– 29
2. वही, पृष्ठ–34
3. 'आलोचना' सहस्राब्दी अंक 2001 (लेख- रामविलास शर्मा और हिंदी जाति)
4. भारतेंदु हरिश्चंद्र और हिंदी नवजागरण की समस्याएँ (1984)– डॉ. रामविलास शर्मा
5. वही, पृष्ठ– 36
6. हिन्दी आलोचना, आचार्य विश्वनाथ त्रिपाठी, पृष्ठ-19
7. 'आलोचना' में प्रकाशित आलोचनात्मक निबंध (हिंदी नवजागरण की समस्याएँ– डॉ. नामवर सिंह)
8. महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, रामविलास शर्मा, पृष्ठ-148
9. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास– आचार्य रामस्वरूप चतुर्वेदी
10. आधुनिक साहित्य: विकास और विमर्श– डॉ. प्रभाकर सिंह
11. हिन्दी साहित्य का इतिहास– डॉ. नगेंद्र
12. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास– डॉ. बच्चन सिंह

राही मासूम रजा के उपन्यासों में अभिव्यक्त गंगा जमुनी संस्कृति

डॉ.गणेश एम.
एशोसिएट प्रोफेसर – हिंदी
Govt. College Chelakkara Thrissur

संस्कृति मानव के उदात्त मूल्यों का समुचय है। यहां गंगा जमुनी संस्कृति से आशय हिंदू और मुस्लिम समुदाय की मिली-जुली संस्कृति से है । ऐसी संस्कृति जिस के निर्माण में हिंदू और मुस्लिम जनता का परस्पर सहयोग हो । हम कह सकते हैं कि अनेक सांप्रदायिक उथल-पुथल के बाद भी राही के उपन्यासों में गंगा जमुनी संस्कृति के अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं ।' आधा गांव ' पर बात करते हुए कमलेश्वर ने एक जगह लिखा है कि - राही की रचना का सौंदर्य उनके विचारों में मौजूद है । यह राही की ऐसी पहचान है, जो बहुत कम लेखकों को नसीब होती है ।" राही मासूम रजा के इस कथन से, जो कि उनके क्लासिक उपन्यास आधा गांव में मौजूद है कि 'जंग के मोर्चे पर जब मौत मेरे सामने होती है तो मुझे अल्लाह याद आता है लेकिन उसके बाद फॉरेन बाद मुझे काबा नहीं,अपना गांव गंगोली याद आता है क्योंकि वह मेरा घर है..... अल्लाह का घर काबा है लेकिन मेरा घर गंगौली है । मैं नहीं समझता कि इससे बड़ी राष्ट्रीय अस्मिता की कोई घोषणा की जा सकती है।"1 राही की यही राष्ट्रीयता ही उनकी गंगा जमुनी संस्कृति का मूल प्राण है ।

राही 'टोपी शुक्ला' नामक उपन्यास में एक जगह लिखते हैं कि "जिस देश के यूनिवर्सिटी में यह सोचा जा रहा हो कि गालिब सुन्नी थे या शिया और रसखान हिंदू थे या मुसलमान,उस देश में पढ़ाने का काम नहीं करूंगा ।"2 राही इन पंक्तियों में ऐसे लोगों को बेनकाब कर रहे हैं, जिन्होंने गंगा जमुनी संस्कृति को क्षति पहुंचाने की कोशिश की है। राही के समस्त उपन्यास ऐसे शक्तियों को लगातार कमजोर करने में लगे हुए हैं जो हिंदू और मुस्लिम को एक नहीं होने देना चाहते हैं। राही ने इसके लिए न कांग्रेस को छोड़ा और न हीं भाजपा को । मौका पड़ने पर उन्होंने मुस्लिम लीग की भी अच्छी खबर ली । महाभारत की पटकथा का लेखन व्यापक रूप से इस बात की पुष्टि करता है कि राही सच्चे धर्मनिरपेक्ष और हिंदू मुस्लिम की साची संस्कृति के प्रबल समर्थक थे । सांप्रदायिक ताकतों का सीधे तौर पर इतना बड़ा विरोधी शायद ही हमारे आधुनिक हिंदी साहित्य में कोई दूसरा हुआ हो । राही गंभीर मन स्थिति में एक जगह लिखते हैं -" लेकिन मैं भी ख्वाब नहीं /ख्वाब तो वह है /जिसको कोई देख रहा है ।/ मैं एक वीर हूं/ एक गीता हूं /एक इंजील हूं /एक कुरवा हूं/ जिसे भला इतनी फुर्सत है,/ मुझे उठा कर जो यह देखें/ मुझ में आखिर क्या लिखा है।/"3 मगर इसी समस्या के बीच अपने उपन्यासों में गंगा जमुनी संस्कृति की जो धारा राही ने बनाई है,वह आज भी गैर सांप्रदायिक लोगों के लिए एक रास्ते का काम कर रही है। राही मासूम रजा का संपूर्ण लेखन और जीवन फिरका परस्ती के खिलाफ अधिक और निर्भीक लड़ाई की अद्भुत मिसाल है। उन्होंने जो कुछ किया और जिया, वह आज मशाल और रोशनी की हैसियत रखता है । उनकी कोशिश थी कि प्रतिबद्ध लेखन की एक-एक पंक्ति से फिरकापरस्ती पर तंज वार किया जाए । बचपन से ही क्रांतिकारी मिजाज के थे । गलत के आगे झुकना फितरत में नहीं था । व्यापक हिंदी समाज राही मासूम रजा की विलक्षण प्रतिभा और अतुलनीय क्षमता से 1966 में वाकिफ हुआ जब उनका उपन्यास 'आधा गांव 'आया । उसके बाद उनका टोपी शुक्ला नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ । इन दोनों उपन्यास पहले पहल फारसी लिपि में लिखे गए थे जिनका बाद में हिंदी लिपयंतरण किया गया । निसंदेह 'आधा गांव' ने राही मासूम रजा को हिंदी गल्प के सबसे समर्थ, सशक्त हस्ताक्षरओं में शुमार करा दिया। नैतिकतावादियों और प्रतिक्रिया वादियो ने उन्हें घेरने की खूब कवायद की,लेकिन रजा ने अपनी कलम और लबों को सांप्रदायिकता, जातिवाद, क्षेत्रवाद और भाषा की संकीर्णता के खिलाफ और ज्यादा पैना करना जारी रखा ।

राही मासूम रजा मानते थे कि "धर्म का राष्ट्रीयता और संस्कृति से कोई विशेष संबंध नहीं है । पाकिस्तान का निर्माण मिथ्या चेतना के आधार पर हुआ है और जिस भवन की बुनियाद टेढ़ी होगी तो बहुत दिन तक नहीं चलेगा ।"

'आधा गांव' को हिंदी के 10 सर्वश्रेष्ठ कालजई उपन्यासों में से एक माना जाता है । राही मासूम रजा से दोस्ती का मतलब हुआ सही अर्थों में भारतीयता से दोस्ती । धर्म,भाषा,लिपि कॉम संस्कृति राष्ट्रीयता देश प्रेम तहसील धारणा उनको राही ने धर्मनिरपेक्ष और समाज को हिंदुस्तानी से बखूबी जोड़ा है । राही 27 साल से लिख रहा था । कहते हैं जिंदगी का खाता देखता हूं,तो पता चलता है कि बिका ज्यादा, खरीदा कम, पाया कुछ नहीं । आत्मा का बजट डिफिसिट पर चल रहा है । विभाजन से आहत रजा साहब हमेशा मिली-जुली संस्कृति के परोपकार रहे हैं । इसी कारण था कि सिर्फ रचना के सर पर ही नहीं बल्कि राजनीतिक सर पर दे दे,सामाजिक समानता के प्रति संघर्षरत रहे । जीवन में संघर्ष को उन्होंने बहुत ही कम उम्र में अनुभव किया था । राही मासूम रजा की पंक्तियां सिर्फ सुकून ही नहीं देती बल्कि आज के हालात पर हमें सोचने समझने के लिए मजबूर भी करती है । आज हम जिस तरह से निरंकुशता की ओर बढ़ रहे हैं वह चिंताजनक तो है ही साथ ही सामाजिक सरोकारों से संबंधित संस्थाओं द्वारा इन समस्याओं की लगातार उपेक्षा हमें उनकी कही बातों की ओर जाने को और अधिक मजबूर करती है । यही कारण है कि रजा साहब की नजरों में हमें आस्था का कर्मकांड नहीं बल्कि एक सांस्कृतिक विरासत का विस्तार देखने को मिलता है। उनके इस विरासत में हिंदू हो या मुसलमान सबके लिए अलगाववादी रुक के ठीक उलट भाईचारे का संदेश होता है । रसा साहब की रचनाओं में भारतीय समाज के प्रति चिंता और दुख की गहरी छाप को देखा जा सकता है । राही मासूम रजा चाहते थे कि पाठक स्वयं उचित और अनुचित का निर्णय करें । उन्होंने तो केवल अपने उपन्यास द्वारा मानव मन की कोमल एवं पवित्र भावनाओं को उजागर करके सत्य एवं सदवृतियों को जागृत करने का प्रयास किया है . राही मासूम रजा एक साहित्यकार थे जिन्होंने कथा साहित्य के क्षेत्र में एक नए क्षितिज की खोज की और हमें एक ऐसे संसार में परिचित कराया जिसे हम गहराई से नहीं जानते थे उनके तेवरों को शब्दों में नहीं डाला जा सकता था ।

******

सदर्भ:-

1.राही और उनका रचना संसार,संपादक प्रोफेसर कुंवर पाल सिंह, पृष्ठ -23-34.
2. टोपी शुक्ला, राही मासूम रजा,पृष्ठ 131.
3. दिल एक सादा कागज, राही मासूम रजा, पृष्ठ -5.

हिंदी कन्नड़ और कन्नड़ -हिंदी अनुवाद: परंपरा और पदेय

डॉ. साहिराबानू बी.बोरगल
उच्च शिक्षा और शोध संस्थान
दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद. मो.7989799300

अनुवाद एक प्रकार की मधुमक्षिका व्रती है। इस वृति के कारण प्राचीन काल से संसार की प्राय: सभी भाषाओं की साहित्य संपदा संदर्भित तथा पोषित होती रही है। जहां कहीं भी एकाधिक का सम्मिलित हुआ है, अनुवादओ द्वारा सुलभ विचारों के परस्पर आदान-प्रदान की प्रक्रिया गतिमान हुई। सांस्कृतिक समन्वय के समन्वय के महत्व कार्य मैं अनुवाद के सदृश्य विद्यमान रहा है।" अनुवाद ने केवल किसी भाषा के सांस्कृतिक संस्कारों से परिचित कराता है, बल्कि वहां हमें दूसरे सिटीजन की अद्भुत मानवीय सच्चाईयों से जुड़ने का राग साक्षात्कार आता है। भारत के संदर्भ में विचार करे तो भाषा की प्रादेशिक सीमा में साहित्य सीमित हो जाने के फल स्वरूप अन्य भाषा भाषा साहित्य पर और उसके रसास्वादन से वंचित रह जाते हैं। ऐसी स्थिति में प्रादेशिक साहित्य को व्यापक साहित्य मंच पर प्रतिष्ठित करने का कार्य अनुवाद द्वारा होते रहे हैं। विभिन्न प्रकार की विविधताओं से युक्त भारत जैसे बहुभाषी देश में एकता को को संवर्धित करने में भी अनुदित साहित्य की भूमिका लक्ष्नीय आ रही है।

कन्नड़ का आधुनिक साहित्य भी अनुवाद का ऋणी है। 18 90 मैं धारवाड़ में' कर्नाटक विद्या वर्धक संघ' नामक संस्था की हां स्थापना हुई। इस संघ द्वारा पहले पहल शेक्सपियर के नाटक, हेनरीटुडे के उपन्यास हरबर्ट के निबंध आदि अंग्रेजी पुस्तकों के कन्नड़ में अनुवाद प्रस्तुत किए गए। इस प्रकार दक्षिण की द्रविड़ परिवार की सभी प्रमुख भाषाओं के आधुनिक साहित्य का प्रवर्तन अनुवाद से ही हुआ। लगभग यही वातावरण आर्य परिवार के भाषाओं की है। हिंदी गद्य साहित्य का प्रवर्तन भी अनुवाद के माध्यम से हुआ। इस संदर्भ में आचार्य रामचंद्र शुक्ला का कथन है ---" भारतेंदु हरिश्चंद्र ने सबसे पहले' विद्या सुंदर' नाटक बांग्ला से हिंदी में अनुवाद करके प्रकाशित किया। "

कन्नड़ साहित्य के उपन्यासकार एस.एल . भैरप्पा के हिंदी में अनूदित उपन्यास साहित्य का विश्लेषण रहा है। कर्नाटक में कन्नड़ साहित्य रचना अनुवाद से ही प्रारंभ हुई है हमारे पुरातन पीढ़ी अनुवाद साहित्य की महत्ता को अच्छी तरह समझ गई थी। आदि कन्नड़ काल के कवि गण और यहां तक व्यास, वाल्मीकि ने भी इधर-उधर का अनुवाद अपनी कृतियों में जोड़कर सृजनशीलता को बढ़ावा दिया। यहां पर कन्नड़ से हिंदी और हिंदी से कन्नड़ अनुदित उपन्यास साहित्य का दिया जा रहा है जो निम्नलिखित है भक्तिकाल के तुलसीदास की रचना' रामचरितमानस' डॉ एम .के. भारती रामनाचार्य, गुरुनाथ जोशी, जी .के . जय शीलराव आदि ने समर्थ रूप में अनुवाद किया है और कबीर वचनावली का कविवर द. र. बेंद्रे से अनुवाद कराया है केंद्र साहित्य अकादमी ने।सुरदास और बिहरीलाल की रचनाओं का भी कन्नड़ में अनुवाद हुआ है। आधुनिक युग में मैथिलीशरण गुप्त के' साकेत' का अनुवाद, जयशंकर प्रसाद के ' काव्य रचना आसू ' का काडबल्यूवी अरे बसनुवाद डॉ सिदिलिंग पत्तनशेट्टी धर्मवीर भारती के अंधा युग कनुप्रिया का सुंदर काव्य अनुवाद हुआ है नाटक साहित्य के अंतर्गत कन्नड़ की श्रेष्ठ नाटकों का, श्रीरंग से गिरीश कर्नाड तक के नाटक कारों का परिचय हिंदी जगत को श्री बी.आर. नारायण के द्वारा हुआ है श्री नारायण ने गिरीश कर्नाड के ' ययाति' और नागमंडल' का श्रीरंग के 'सर्वश्रेष्ठ एकाकीं' अध्याय के तीन रंग नाटक' भारत' रंग भारत' और' अशोक चक्र' का डॉक्टर चंद्रशेखर के क' सिद्धनायक" बलि का बकरा" जंगली घोड़ा' और' महामाया' का गोविंदपुर के' शुद्र तपस्वी" शमशान कुरुक्षेत्र" जलगार' और अंगूली के बदले गर्दन' कहां एच. एसाशिवप्रकाश के ' महा चित्र' का और लंकेश के' संक्रांति' का सफल अनुवाद किया है।हिंदी नाटकओ भी कन्नड़ में डॉ. सिद्धलिंग पट्टनशेट्टी मंचन की दृष्टि से सफल अनुवाद क्या है- जैसे धर्मवीर भारती का 'अंधा युग' और मोहन राकेश के' अपूनरू' (आधे अधूरे) अरे बहेड़ी राजहंस'(लहरों के राजहंस) आशा 2120(आषाढ़ का 1 दिन) शंकर शेष के' कोमल गंधार' कृष्णा मूर्ति में कन्नड़ में अनुवाद किया है। पैसा मिलने सुशील कुमार सिंह के नाटक' सिहासन खाली है' कथा क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है। इस क्षेत्र में कन्नड़ और हिंदी दोनों भाषाओं के पाठकों को प्रभावित किया है. साधारण अनुदित साहित्य के माध्यम से ही दूसरी भाषा क्षेत्र की संस्कृति' रहन-सहन' आचार- विचार से प्रभावित होता है. हमारे देशवासियों के मन में भारतीयता की भावना जगानी में भूमिका है।

कहानियों का अनुवाद कन्नड़ से हिंदी में लगभग 300 से अधिक कहानियों का अनुवाद हो चुका है. उनमें डेढ़ सौ से भी अधिक कहानियों का अनुवाद स्वयं श्री बी .आर. नारायण ही प्रस्तुत किया है। विभिन्न संकलन के अलावा समकालीन भारतीय साहित्य' भाषा' आदि पत्रिकाओं में समय-समय पर छपा है। इस प्रकार कन्नड़ के प्रारंभिक साहित्यकार पंजे मंगेश राव से समकालीन कन्नड़ के दलित कथाकार देवनूर महादेव तक के सभी श्रेष्ठ कहानीकारों की प्रतिनिधि कहानियों का हिंदी पाठकों को परिचय हो गया है।

प्रेमचंद की प्रगतिशीलता से प्रभावित कहानीकारों में निरंजन, चतुरंग और बसवराज कट्टीमनी की कहानियां हिंदी पाठक को को उपलब्ध हुआ। यू आर अनंतमूर्ति, यशवंत चिताल , शांतिनाथ देसाई, पी लंकेश, पूर्णचंद्र तेजस्वी, देव नूर महादेव आदि की प्रतिनिधि कहानियां हिंदी में अनुवादित होकर चर्चित हुई है। लेखिकाओं में ' त्रिवेणी' लोकप्रिय मनोवैज्ञानिक कहानी का है. उनकी कहानियां ' त्रिवेणी सप्तक' शीर्षक प्रो . रामचंद्र स्वामी जी से अनूदित है। वीणा शांतेश्वर. अनुपमा निरंजन.. शांतादेवी कणवी आदि की कहानियों में हिंदी में अनूदित है। हिंदी से भी प्रेमचंद से लेकर कमलेश्वर, हिमांशु जोशी, गंगा प्रसाद विमल की कहानियां पाठकों को उपलब्ध है। प्रेमचंद के' मानसरोवर' संकलन कहानियां मोवुड़ मल्लारी से निर्मल वर्मा के' कौवा और कल्याण काला पानी' , प्रो बालचंद्र जयशेट्टी से तथा निर्मल वर्मा के ही' माया दर्पण' और अन्य कहानियां प्रभा शंकर प्रेमी'से सुदर्शन की कहानियां श्री पंजे मुरारी जी से अनुदित है। उसमें भीष्म साहनी , मोहन राकेश, कमलेश्वर, मृदुला गर्ग ' हिमांशु जोशी आदि की कहानियां है. हिंदी कहानियां कन्नड़ पाठकों को उपलब्ध कराने वाले अनुवादऔ मैं श्रीमती एच एस पार्वती' श्रीनाथ' श्रीमती विजया सुब्बूराज आदि प्रमुख है।

कन्नड़ के श्रेष्ठ उपन्यासों को हिंदी में देने का श्रेय श्री बी. आर. नारायण को जाता है। उन्होंने मारीत वेंकटेश अययंगार के ' चिक्क वीर राजेंद्र , बिदनूर का चन्नाबसनायक' यस. यल. भैरप्पा के' गोधूलि' उपन्यास कन्नड़ में' तब्बलियु नीना दे मग ने' नाम के प्रकाशित है। प्रस्तुत उपन्यास को हिंदी भाषा में गोधूलि नाम से अनुदित किया है अनुवादक बी .आर . नारायण ने किया है इस उपन्यास में कर्नाटक के ग्रामीण आंचल के माध्यम से भैरप्पा ने भारतीय अस्मिता की पहचान को गोधूलि में उभरा है। प्रस्तुत उपन्यास जीवन के प्रति आस्था और मूल्य के संघर्ष का संगीत है।' पर्व' उपन्यास बी .आर. नारायण ने किया है। प्रस्तुत उपन्यास भारतीय 14 भाषाओं में अनूदित हुआ है। ' आधार ' उपन्यास कन्नड़ भाषा में'नेले' नाम से प्रकाशित है । उपन्यास को हिंदी भाषा में' आधार' नाम से अनुदित किया है।' आधार' उपन्यास का विषय वस्तु-- मृत्यु, जीवन, तथा कामवासना रहा है।' आधार' उपन्यास मृत्यु की छोर पर खड़े हो कर अवलोकन करता है। कन्नड़ भाषा के उपन्यासकार एस.एल.भैरप्पा का' निराकरण' उपन्यास प्रकाशित हुआ है। इस का हिंदी भाषा में भी' निराकरण' नाम से ही अनुदित हुआ है। इस उपन्यास का

अनुवादक बी.आर. नारायण ने किया है।' निराकरण' शीर्षक आशय है-' निराकरण' , कभी संग की चाह, और कभी निसंग की चाह' की विवेचना ही' निराकरण' है।' अन्वेषण' उपन्यास कन्नड़ भाषा में मौलिक उपन्यास है इस उपन्यास को हिंदी भाषा में' जिज्ञासा' नाम से भालचंद्र जय शेट्टी ने अनुवाद किया है।' जिज्ञासा' उपन्यास भैरप्पा का अन्य उपन्यासों से एक अलग ही प्रकाश की रचना है।' जिज्ञासा' उपन्यास की विशेषता यह है कि विश्वनाथ की जीवनी से उलझे में पात्रों में स्वयं पाठक भी अपना कोई ध भूमि सा चेहरा पहचानने की चेष्टा अपने आप करने लगता है। विश्वनाथ की जीवनी के बहुमुखी झरोखे से झांकने की उत्कट पाठक में बराबर बनी रहती है। और उसे पहचानने की जिज्ञासा कभी शांत नहीं होती। विश्वनाथ की अस्मिता पाठक के मन पर अपना स्थाई प्रभाव छोड़ जाती है। उपन्यास का क्षेत्र विस्तृत है। कन्नड़ का कौन सा उपन्यास सबसे पहले हिंदी में अनुदित हो गया' हिंदी पाठकों को मिला यह शोध का विषय है. जानकारी के अनुसार श्री कुमटेकर से शिवराम कारणत' माटी की ओर' (बरेली मंडी गेट) पहला प्रयास था। उसके बाद श्री गुरुनाथ जोशी ने शिवराम कारंत के उपन्यास' मृत्यु के बाद'

नाम से अनुवाद किया। हिंदी भाषी सिद्ध गोपाल विद्यालंकार कृष्णराव के' संध्या राग' कित्तूर रानी उपन्यासों का अनुवाद किया गया।' तंतु' कन्नड़ भाषा की इस उपन्यास को उपन्यासकार एस.एल. भैरप्पा ने लिखा है। उक्त उपन्यास को हिंदी भाषा में अनूदित किया है बी .आर. नारायण ने । इस उपन्यास को' कर्नाटक साहित्य अकादमी द्वारा' सर्वश्रेष्ठ र सृजनात्मक रचना' पुरस्कार दिया गया है। प्रस्तुत उपन्यास का विषयवस्तु स्वातंत्र्योत्तर भारत के, हंसकर श्रीमती इंदिरा गांधी के कालावधी के राजनीतिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, संगीत, आदि बुना से उपन्यास है । कन्नड़ साहित्य के विख्यात उपन्यासकार एस .एल. भैरप्पा रचित उपन्यास' सार्थ' है। उपन्यास 13 अध्याय में विभाजित हुआ है। उपन्यास' सार्थ' एक ऐसी रचना है, जिसमें कल्पना, ऐतिहासिकता तथा अनुसंधान दृष्टिगोचर होते हैं ।' सार्थ' का आशय है व्यापारियों का काफिला। आठवीं शताब्दी के वाणिज्य पद्धति, वैदिक, बौद्ध, तथा इस्लाम धर्मों के आंतरिक संघर्ष की कथा इसमें निहित है। नागभट्ट नामक एक वैदिक को अपने राजा द्वारा सार्थ के साथ उच्च अध्ययन के लिए भेजा जाता है। कथा वाचक नाग भट्ट द्वारा वस्तु विकसित होती जाती है। आठवीं शताब्दी में भरतखंड के भूभाग में घटना जो जनजीवन पर प्रभावित करने वाले सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, आध्यात्मिक, नैतिक और वाणिज्य व्यवहार आदि ही इस उपन्यास चर्चा की गई है उपन्यास' मंद्र' कन्नड़ उपन्यास हिंदी भाषा में डॉ प्रधान गुरुदत्त ने किया है इस उपन्यास में हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत की राग - रागिनी ओ के सविस्तार विवेचन तथा गहन अनुभव के संपन्न ऐसी विलक्षण रचना है। शिवराम करंत के' पहाड़ी जीव' और' तन मन' यू आर आनंदमूर्ति के' भव ' कोयेपू के ' पहाड़ी कन्या'(मलेगे हली मधु मगलू), चंद्रशेखर कांबर के' सिंगर बाई और महल' और जी .के .मास्टर शांतिनाथ देसाई के' अपनी-अपनी जमीन'(बीज) पूर्णचंद्र तेजस्वी के' कर्बला' वीरप्पा मोइली के' कोट्ट'और ' तेबरे' के हिंदी अनुवाद प्रस्तुत कर हिंदी जगत को कन्नड़ के श्रेष्ठ उपन्यासों का परिचय कराया है। उपरोक्त उपन्यासों के अनुवाद की लंबी सूची से पता चलता है कि कन्नड़ के उपन्यासकार हिंदी जगत में परिचित हो गए हैं । इनमें कुवेंपू का अनुदित उपन्यास' पहाड़ी कन्या' शिवराम कारंत के ' चोम का ढोल' आंचलिक शैली के उपन्यास है, जिनका अनुवाद कठिन है क्योंकि आंचलिक प्रदेशगत बोली के स्वरूप को हिंदी में लाना कठिन है। अन्य कृतियों के अंतर्गत शिवराम की आत्मकथा' पगले मन के दस चेहरे' बी .आर. नारायण ने और कुवेन्पु के ' मलेनाडु चित्र' श्री शिवमूर्ति ने अनुवाद किया है। इन कन्नड़ से हिंदी में और हिंदी से कन्नड़ मैं अनुवाद के माध्यम से दोनों भाषा और संस्कृति के बीच सेतु का निर्माण हुआ है दोनों साहित्य की विभिन्न विधान तथा समय-समय पर बदलती प्रवृत्तियों की चर्चा संभव हो चुका है । भारतीय साहित्य गीतकी परिकल्पना को मूर्तरूप देने में इन अनुवादों की अहम भूमिका है। इसमें कोई संदेह नहीं की इन अनुवादों के माध्यम से भारतीय भाषाओं और हिंदी के बीच अंत: प्रादेशिक साहित्यगत पारस्परिक बढेगी।

मंगलेश डबराल की कविताओं में सामाजिक यथार्थ

डॉ.सुनील एम. पाटिल
सहयोगी अध्यापक
आर. सी. पटेल कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय
शिरपुर, जिला - धुलियॉ. महाराष्ट्र
मो. नं 9518977538

प्रस्तावना:-

साधारण शब्दों में समाज का अर्थ व्यक्ती के समूह से लिया जाता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, समाज के बिना मनुष्य जी नही सकता । मनुष्य का समाज के साथ अटूट संबंध है, कवि का संबंध भी समाज के साथ अटूट है । कवि समाज में रहकर समाज का मूल्यांकन करता है । कवि का दायित्व है कि उसने समाज को सचेत करना चाहिए।लेखक, रचनाकार, कवि अर्थात् साहित्यकार भी इसी समाज में ही रहते है । उसे अपने लेखन के लिए कच्ची सामग्री अर्थात् विषयवस्तु सामाजिक वातावरण से मिलती है । इसलिए समाज में घटनेवाली हर छोटी सी छोटी और बडी सी बडी घटना लेखक की लेखनी के माध्यम से मुखरीत होती है । समाज की हर परिस्थितियों का उजागर साहित्य में होता है, उसी समाज से जुडे कवि मंगलेश डबराल है ।मंगलेश डबराल उन प्रतिबद्ध कवियों में से एक है । जो अपने समय की नब्ज को पहचानते है, और उसे अपनी कविताओं के माध्यम से व्यक्त करते है । वे समाज की सच्चाइयों, विकृतियों एवं निरंतर होते परिवर्तनों को बडी संवेदनशीलता से भोगे है, और खुलकर प्रतिक्रिया प्रकट करते है । उनकी कविताएँ समाज के यथार्थ से हमारा सामना करातीहै।

बीज/विषय-वस्तु

मंगलेश डबराल की काव्य यात्रा विशेष रुप में सामाजिक यथार्थता से ही आरंभ होती है । कोई भी साहित्यकार की साहित्य सामाजिक यथार्थ से अप्रभावित नही रह सकता । भ्रष्टाचार, बेकारी एवं संप्रदायिकता आदि का चित्रण आज की कविता में खूब देखने को मिलता है । समकालीन हिंदी कवियों ने ग्राम्य जीवन के यथार्थ चित्रण के साथ ही साथ नागरीक जीवन के विभिन्न अंगों, रुपों, विद्रुपताओं और विसंगतियों का भी विस्तृत अभिव्यक्ती दी है । शोषित वर्ग के बाद समाज के सबसे बडा वर्ग मध्यवर्ग है । यह मध्यवर्ग वर्तमान पूंजीवादी समाज व्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग है । जो शोषकों और शोषितों के बीच त्रिशंकु की तरह स्थित है, यह यथार्थ चित्रण मंगलेश डबराल की कविताओं में देख सकते है । मंगलेश डबराल की कविता में साधारण जनता का दुःख, दर्द, बैचैनी, पूंजीवादी विसंगतियों, निम्न तथा मध्यवर्गिय जीवन की तमाम सच्चाइयॉ आदि उन्होंने उन विसंगतियों पर घातक प्रहार तथा समाज सुधार का सार्थक प्रयास किया है । मंगलेश डबराल समाज का अत्याचार, अन्याय, कुंढा, शोषण, हिंसात्मक कृत्य, बाजारवाद आदि का चित्रण समाज के सामने रखते है । आज का समाज काफी बदल चुका है । पूरी दुनिया में बाजारवाद हावी है । जहाँ मनुष्य का ना सम्मान है, न उसके रिश्तों का आदि इन सभी बातों पर खेद करते हुए कवि इन परिस्थितियों पर नितांत चिंतन-मंथन करते हुए समस्या का समाधान ढूंढने का प्रयास और साथ ही समाज को सचेत करने का प्रयत्न भी करते है।

मुख्य-अंश:-

मंगलेश डबराल समकालीन कवियों में एक बहुचर्चित नाम है। मंगलेश डबराल की काव्ययात्रा प्रमुख रुप से सामाजिक विसंगतियों से आरंभ होकर जनता की बैचेनी, दुःख, दर्द, पूंजीवादी विसंगतियॉ एवं मध्यवर्गीय जीवन की तमाम सच्चाईयों से होती है। मंगलेश डबराल की कविताओं का यथार्थता एक मुख्य पहलू है । पहाड से भिन्न परिवेश, जिन में शहर, महानगर और जीवन के विभिन्न पक्षो का समावेश है। उनकी कविताओं का महत्वपूर्ण संसार है । संवेदना और दृष्टी दोनों को विस्तार दिया है।मंगलेश डबराल की कविता में सामाजिक यथार्थ का जीवंत अभिव्यक्ती हुई है। " सफेद दिवार " कविता का एक उदाहरण उल्लेखनीय है।" शहर की सबसे लंबी सबसे सफेद दिवार, रवाली है, इस वक्त इस पर लिखा जा सकता है । कोई कविता, कल सुबह के लिए कोई संदेश इस पर दर्ज किया जा सकता है, अभी लढाई का ऐलान"। पहाड से उतरो यह कवि अपनी कविताओं के

माध्यम से मानवता की आखिरी सीढी चढना चाहता है l उनकी रचनाओं में आया पहाड अलग-अलग है l उनके लिए पहाड का मतलब प्रकृति है, वहाँ का जन-जीवन नही l जन-जीवन अगर आया है भी तो अहा! ग्राम्य जीवन के रुप में ऐसी रुमानियत के मारे अन्य रचनाकार भी हुए, जिन्होंने पहाड की खूबसूरती को हीदेखा,गरिबी, भूखमरी, बेरोजगारी,जीविकाओं का अभाव, विस्थापन, शोषण आदि पाबंदी के रुप में पहाड के जीवन से जो जिसके हुए है, वह उनकी निगाहों से ओझल रहा l पहाड़ के इस कुरूप चहेरों को सामने लाने का काम मंगलेश डबराल ने किया l पहाड में बेपनाह सौन्दर्य है, लेकिन सिर्फ उस सौन्दर्य की बात करना अधूरे पहाड को समझना है l अपने पहले के रचनाकारों से मंगलेश डबराल इस अर्थ में आल्हाद हो जाते है कि उन्होंने पहाड को आधा-अधूरा नही, पुरा उभारा है, पहाड का वह स्वरूप उनकी कविता में यूं दर्ज हुआ है -

" पहाड पर चढते हुए, तुम्हारी सांस फूल जाती है
आवाज भर्राने लगती है
तुम्हारा कद भी घिसने लगता है
पहाड़ तब भी है जब तुम नही हो l" [2]

मंगलेश डबराल मानवीय संवेदनाओं के शक्तिशाली कवि है l वे सही और सार्थक पहचान के साथ युग परिवेश और आदमी को कविता का विषय बनते है। कृत्रिम यथार्थ के बजाय सामाजिक यथार्थ और राजनीतिक व्यवस्था की सही स्थिति को अपनी रचनाओं का बनाते है। इनकी रचनाधार्मिता बहुआयामी है। वह मानवीय संवेदनाओं को व्यापक धरातल पर आत्मसात किये हुए मंगलेश डबराल की दृष्टी में जीवन के प्रति गहरी आस्था है। जीवन को संपूर्ण गहराई के साथ अपनाते है l आदमी के भीतरी-बाहरी निराशा,, समझोता और संघर्ष के बावजूद जो इच्छाएँ सपनों और उम्मीदों से भरा जीवन जो जीवन के प्रति गहरी आस्था उत्पन्न करते है ।उसके बारे में वे कहते है कि --"बाहर एक बांसुरी सुनाई देती है, एक और बासुंरी है जो तुम्हारे भीतर बजती है, और सुनाई नही देती[3] पहाडों पर भूख और महामारी साथ मनुष्यता को नष्ट करने के लिए आती है।" मुक्ती "कविता में मंगलेश डबराल पहाडी संस्कृति के शोषण का एक और ही स्वरूप दिखाते है, जिसमें सीधा-साधा इन्सान तबाह हो जाता है-

" पीठों पर घाव और कँधों पर हाथियार लिए हुए
लोगों की आहटें और नजदीक हो गई
उनके कांपते सर और सूराखदार सीने
धीरे-धीरे अपने पैतृक विलाप से बाहर आ रहे है
उनकी धमनियों में गुंजती भूख,
खोजती है अपना गुस्सा और अपना प्रेम,
उनके रोओं में उडती है बारूद" [4]

मंगलेश डबराल की दृष्टी में जीवन के प्रति गहरी आस्था है l जीवन को संपूर्ण गहराई के साथ अपनाते है l इसलिए उनके पहले काव्य संग्रह " पहाड पर लालटेन " से लेकर " लेखक की रोटी " तक में जीवन का विस्तार मिलता है l आदमी के भीतरी-बाहरी निराशा समझोता और संघर्ष के बावजूद जो इच्छाएँ, सपनों और उम्मीदों से भर जीवन जो जीवन के प्रति गहरी आस्था उत्पन्न करते है। प्रौद्योगिकी के निरंतर विकास ने मनुष्य के विश्लेषण की शक्ती को नष्ट कर दिया है l अमेरिका प्रवास में मंगलेशजी यह महसूस करते है कि वहाँ पर हिंसा और आतंक का माहोल है l सांप्रदायिकता भी पनप रही है।" कागज की कविता" में मंगलेश इसे महसूस करते है, लेकिन निराशा के साथ क्योंकि उनके पास कोई सुझाव नही है l वे लिखते है कि-

"अब हम लगभग नि:शब्द है
हम नही जानते कि क्या करें
हमारे पास कोई रास्ता नही बचा
कागजों को फाडते रहने के सिवा।" [5]

मंगलेश डबराल ने अपने कविता संग्रह " हम जो देखते है " में भूमंडलीकरण एवं सर्व ग्रासी उपभोक्तावादी कि चपेट में फँसे मानवी-जीवन की त्रासदी को उजागर करते हुए मानवीयता के स्पर्श को बचाये रखने पर जोर दिया है l वे कहते है कि -

" मै चाहता हूँ कि स्पर्श बचा रहे
वह नही जो कँधे छीलता हुआ आततायी की तरह गुजरता है
बल्की वह जो एक अनजनी यात्रा के बाद
धरती के किसी छोर पर पहुंचने जैसा होता है l" [6]

मंगलेश डबराल की कविताओं में निम्न मध्यवर्गीय का चित्रण भी किया है l उन्होंने पहाडी प्रदेश के समाज को अपनी कविताओं का केंद्र बनाया है l यह पहाडी प्रदेश मंगलेश की रोम-रोम में बसा हुआ है l वहाँ के जीवन से इनका जीवन तो कष्ट से भरा है l और वे जिंदगी भर सिर्फ परिश्रम करते है l कवि यह कहते है कि शक्ति के बल पर इन्सान कुछ भी कर सकता है l उसका उद्देश्य एक मात्र वह है सफलता l इस सफलता के लिए वह शक्ति सहारा लेता है l वे कहते है कि ---"सीढियॉ चढते है उपर से नीचे देखते है ।जहॉ लोग एक दूसरे को धक्का देते बढ रहे है l " [7]अज्ञेय जी की प्रसिद्ध पंक्तियॉ है कि -- " दु:ख सब को मांजता है। " मंगलेश डबराल की कविताओं के लिए यह पंक्तीयॉ सटीक बैठती है l मंगलेश में करुणा, दु:ख, दर्द एवं अवसाद का बडा जोर है l वह अवसाद आदमी को अकेला कर देता है l जो बुरी तरह टूट गया है, थक गया है l एक अकेली लडाई में कुछ भी न बदलने के कारण निराशा और अवसाद में डूबे हुए आदमी को अपनी कविताओं में बताते हुए मंगलेश ने किसी का सहारा नही लिया l " थकान " कविता इस दृष्टी से महत्वपूर्ण है l

" रात सब नि:शब्द हमारी छाती पर झुकी होती है / काले रंग की थकान बिस्तर पर चढती है / मांस पेशियों के मोड लांघती है l " [8]

मंगलेश डबराल की कविताओं में संबांधों की दुनिया का मानवीय चेहरा उपस्थित है l जहॉ तमाम अनुभवों के साथ बुढे पिता है, उदास माँ है, संघर्ष में साथ देनेवाली पत्नी भी है, स्कूल जाते बच्चे भी है और इन आत्मीय लोगों के बीच हत्यारे भी है l मंगलेश की कविता मानवीय पहलू से जुडे है l आगे बढकर कवि कहते है कि पिता जब थक जाते है तो उन्हें बेटे के सहारे की आवश्यकता महसूस होने लगती है l अपने से दूर चले गये बेटे के लौटने की प्रतीक्षा उन्हें अपने अंतिम दिनों में होती है।

" अंधेरे में पिता मांगते है थोडी-सी उम्मीद / परदेश गये बेटे के लौटने की l " [9]

कवि मंगलेश डबराल जीवन में आनेवाले पहल जैसी समस्याओं को हल करने की कोशिश अपनी कविता में करते है l तमाम उदासियों और असफलताओं के बावजूद भी कवि घर का रास्ता नही भूलना चाहता l आदमी की उदासी घर की चाह और संघर्ष की थकान मूलत: जिंदगी के ही हिस्से,है।

निष्कर्ष:- :-

हम यह कह सकते है कि सामाजिक प्रक्रिया की चपेट में आकर कुचल दिए गए लोगों को सम्मान और गौरव का एहसास कराने वाली इन कविताओं में मंगलेश डबराल का सर्वाधिक सार्थक कवि कर्म प्रकट हुआ है। जमीन से जुडे हुए कवि, गांव की समाज की और देश रोजमरा की समस्याओं से भली-भांती परिचित है l मंगलेश की कविता यथार्थ है, मौलिक है, सहज है और जन जीवन से जुडी हुई है l

****

संदर्भ : --

1.सफेद दिवार - मंगलेश डबराल - राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली - पृ. सं 53
2.पहाड पर लालटेन -मंगलेश डबराल - राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली - पृ. सं 42
3.घर का रास्ता - मंगलेश डबराल - राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली - पृ. सं 75
4.पहाड पर लालटेन - " मुक्ती " - मंगलेश डबराल - राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली - पृ. सं 7
5.पहाड पर लालटेन - " अकेला " - मंगलेश डबराल - राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली - पृ. सं 33
6.घर का रास्ता आदमी मंगलेश डबराल राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली - पृ. सं 37
7.घर का रास्ता - मंगलेश डबराल - राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली - पृ. सं 61
8.पहाड पर लालटेन - मंगलेश डबराल -राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली - पृ. सं 35
9. हम जो देखते - " पिता की तस्वीर " - मंगलेश डबराल - राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली - पृ. सं 65

महादेवी वर्मा के साहित्य में नारी सशक्तिकरण की पहल

डॉ.राजन तनवर
एशोसिएट प्रोफेसर
गांव घाट कुम्हाला, डाकघर शारड़ाघाट, वाया कुनिहार जिला -सोलन (हिमाचल प्रदेश)
पिन कोड 173207 मो.94189 78689

महादेवी वर्मा को समस्त संसार की नारियों की पीड़ा अपनी पीड़ा लगती है । वह नारियों पर हुए अत्याचार ,उनके साथ हो रहे दुर्व्यवहार, पारिवारिक जीवन में घटित घटनाओं से द्रवित हो उठती हैं। अपने साहित्य में वह नारी को सशक्त करने, उसे पुरुष के समकक्ष खड़ा करने के लिए प्रयासरत रहती हैं। वह कभी सार्वभौमिक बहन बन जाती है और कभी सार्वभौमिक मां। सभी नारियों का दुख उन्हें अपना सा प्रतीत होता है।

महादेवी वर्मा नारियों को उनके अधिकार दिलवाने की पक्षधर रही हैं। वह नारियों को सामाजिक एवं आर्थिक अधिकार दिलवाना चाहती हैं। अपने लेखन के माध्यम से उन्होंने जीवन पर्यंत ऐसे प्रयास किये हैं। उन्होंने तत्कालीन समय में नारियों को शिक्षित बनाकर परिवार, समाज एवं राष्ट्र के लिए बेहतर करने का आह्वान किया था जिससे नारियों को "जीने की कला" आ जाए तथा वह पुरुष समाज द्वारा किए गए शोषण से बच सकें।उनकी सृजनात्मकता के परिणाम आज सामने हैं - "सामूहिक तथा व्यक्तिगत विकास के लिए कुछ सिद्धांतों का ज्ञान जितना आवश्यक है, उतना ही या उससे भी कुछ अधिक आवश्यक उन सिद्धांतों का उचित अवसर पर उपयुक्त प्रयोग भी समझा जाना चाहिए। यदि हम ऐसे सिद्धांतों का भार जन्म - भर ढोते रहें जिनका उपयुक्त प्रयोग हमें ज्ञात न हो, तो हमारी दशा उस पशु से भी भिन्न न होगी जिसको बिना जाने ही शास्त्र और धर्म ग्रंथों का भार वहन करना पड़ता हो। इस प्रकार यदि हम बिना सिद्धांत समझे उनका अनुपयुक्त प्रयोग करते रहें तो हमारी क्रिया बिना समझे मंत्र पाठी शुक की वाणी के समान निरर्थक हो उठेगी।"[1]

महादेवी वर्मा कहती हैं कि स्त्री को दैवीय अलंकरणों से अलंकृत करके सशक्त नहीं बनाया जा सकता उसकी सशक्तता के लिए उसे पूर्ण अधिकार देने की आवश्यकता है। पुरुष अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए नारी का उपयोग एक वस्तु की तरह करता आया है । अतिथि को देवता समझकर भोजन और मदिरा की तरह रात को कुंवारी कन्या को सौंपा जाता था। इन सबके पीछे पुरुष की कामुक भावना विद्यमान थी। पुरुष समाज ने स्त्री के मन में यह भावना कूट-कूट कर भरी थी कि वह केवल मात्र शरीर है शरीर के अतिरिक्त उसकी कोई पहचान नहीं है।युगों- युगों से उसे शब्द जालों में ही उलझाकर रखा गया है यही उसका दुर्भाग्य है - " वही वृक्ष पृथ्वी तल पर बिना अवलंबन के अकेला खड़ा रहकर झंजा के प्रहारों को मलय समीर के झोंकों के समान सहकर भी हरा-भरा, फूल-फल से युक्त रह सकेगा, जिसकी मूल- स्थित शक्तियां विकसित और सबल हैं और उसी की मूल- स्थिति दृढ़ रह सकती है जो धरातल से बाहर स्वच्छंद वातावरण में सांस लेता है जब बहिर्मुखी शक्तियां भी अंतर्मुखी हो जाती हैं तब बाह्य सक्रियता नष्ट हुए बिना नहीं रहतीं। आज चाहे हमारी आध्यात्मिकता भीतर ही भीतर पताल तक फैल गई हो , परंतु जीवन का व्यवहारिक रूप विकृत-सा होता जा रहा है। जीवन का चिन्ह केवल काल्पनिक स्वर्ग में विचरण नहीं है, किंतु संसार के कंटकाकीर्ण पथ को प्रशस्त बनाना भी है । जब तक बाह्य तथा आंतरिक विकास सापेक्ष नहीं बनते, हम जीना नहीं जान सकते ।"[2] भारतीय संस्कृति में नारी को दान की ही वस्तु माना गया जिस तरह से गौऊ दान का महत्व है उसी तरह से कन्यादान का भी प्रचलन रहा है । क्या सृष्टि को गति देने वाली केवल मात्र दान के लिए ही बनी है उसकी कोई अपनी इच्छा अनिच्छा नहीं है ? स्त्री की सामाजिक स्थिति अर्थ पर निर्भर है। पुरुष ने अहंवश अर्थ की शक्ति पर अधिपत्य जताते हुए उसे पराब्लबी बना दिया। पुरुष की सहायता के बिना वह एक कदम भी नहीं चल सकती। समाज की नींव को खोखला बनाने के लिए यह विषम अर्थ विभाजन सर्वाधिक जिम्मेदार है । शताब्दियों तक अर्थ विषमता का संत्रास झेलने वाली नारी इस कुचक्र से बाहर निकलना चाहती है। वह जान चुकी है कि संघर्ष की लड़ाई आर्थिक रूप से सशक्त हुए बिना नहीं लड़ी जा सकती। महादेवी समाज में आर्थिक विषमता के इस घिनौने षड्यंत्र का पर्दाफाश करना अपना दायित्व समझती है-"समाज यदि स्वेच्छा से उसके अर्थ संबंधी वैषम्य की ओर ध्यान न दें, उसमें परिवर्तन या संशोधन की आवश्यकता न समझें तो स्त्री का विद्रोह दिशाहीन आंधी जैसा वेग पकड़ता जाएगा और तब एक निरंतर ध्वंस के अतिरिक्त समाज उसे कुछ और न पा सकेगा ऐसी स्थिति में स्त्री के लिए सुखकर है अपने समाज के लिए सृजनात्मक.....।"[3]

महादेवी वर्मा सदैव नारी के अधिकारों के प्रति सजग रही हैं और अपने साहित्य में नारी की आवाज व उसके अधिकारों को निर्भय होकर के प्रमुखता से उजागर करने का प्रयास किया है महादेवी वर्मा का कहना है कि "हमें न किसी पर जय चाहिए और न किसी से पराजय, न किसी पर प्रभुता चाहिए न किसी का प्रभुत्व केवल अपना वह स्थान वे स्वत्व चाहिए जिनका पुरुषों के निकट कोई उपयोग नहीं है, परंतु जिनके बिना हम समाज का उपयोगी अंग नहीं बन सकेंगी। हमारी जागृत और साधन संपन्न बहनें इस दिशा में विशेष महत्वपूर्ण कार्य कर सकेंगी इसमें संदेह नहीं।

महादेवी वर्मा स्त्रियों को आर्थिक रूप से संपन्न बनाना चाहती है उनका मानना है कि यदि स्त्रियां आर्थिक रूप से संपन्न होगी तो समाज में उनका रुतबा एवं सम्मान बढ़ेगा । 'स्त्री के अर्थ स्वातंत्र्य का प्रश्न' नामक निबंध में महादेवी वर्मा ने स्त्री की आर्थिक स्वतंत्रता को प्रमुखता से उजागर किया है । उनका कहना है कि "आधुनिक परिस्थितियों में स्त्री की जीवनधारा ने जिस दिशा को अपना लक्ष्य बनाया है उसमें पूर्ण आर्थिक स्वतंत्रता सबसे गहरे रंगों में चित्रित है। स्त्री ने इतने युगों के के अनुभवों से जान लिया है कि उसे सामाजिक प्रामाणिक प्राणी बने रहने के लिए दान की ही आवश्यकता नहीं है, अदान की भी है इसके बिना उसका जीवन, जीवन नहीं कहा जा सकता। वह तो आत्म-निवेदित वीतराग तपस्विनी ही नहीं अनुरागमयी पत्नी और त्यागमयी माता के रूप में मानवी भी है और रहेगी। ऐसी स्थिति में उसे वे सभी सुविधाएं वे सभी मधुर - कटु भावनाएं चाहिए जो जीवन को पूर्णता प्रदान कर सकती हैं।"[5]महादेवी वर्मा ने माना है कि आर्थिक स्वतंत्रता के बिना नारी सशक्त नहीं हो सकती। अपनी वर्तमान स्थिति के विरुद्ध जब वह स्वयं विद्रोही तेवर के साथ खड़ी नहीं होती तब तक उसका उद्धार संभव नहीं है। स्त्रियों की मुक्ति और विकास के लिए महादेवी वर्मा ने जिस साहस और दृढ़ता से आवाज उठाई है और जिस प्रकार सामाजिक रूढ़ियों की निंदा की है । उससे उन्हें महिला मुक्तिवादी कहा जा सकता है।

****

सन्दर्भ:-

1. रचना पुंज - संपादक कुमार कृष्ण, पृष्ठ 100-101
2. वही - पृष्ठ 106-107
3. युद्ध और नारी- महादेवी वर्मा, पृष्ठ 35
4. श्रृंखला की कड़ियां - महादेवी वर्मा , पृष्ठ 112
5. वही , पृष्ठ 125

डिजिटल मीडिया में 'हिन्दी' की वर्तमान स्थिति

डॉ. विनय कुमार चौधरी
यशवंतराव चव्हाण महाविद्यालय, तुळजापुर
मो.09423342418

मीडिया संचार का साधन हैं। इंटरनेट संचार का एक इलेक्ट्रॉनिक माध्यम है। दुनिया भर के उपयोगकर्ताओं द्वारा इंटरनेट का उपयोग डेस्कटॉप कंप्यूटर, मोबाइल फोन, लैपटॉप आदि द्वारा किया जाता है। "मशीन में मीडिया पठनीय औपचारिक जो संचार, सूचना, मनोरंजन और प्रचार आदि के उद्देश्य से बनाया गया है, जिसे डिजिटल इलेक्ट्रॉनिक्स उपकरणों द्वारा मानव पठनीय प्रारूप में परिवर्तित किया गया है। उसे डिजिटल मीडिया के रूप में जाना जाता है। 1 डिजिटल मीडिया जिसे आम भाषा में सोशल मीडिया या वेब मीडिया भी कहा जाता है | इसके माध्यम से वैश्विक फलक पर हिंदी के प्रचार- प्रसार हो, रेडियो पर हिंदी कार्यक्रमों के प्रसारणहो या फिर इंटरनेट के माध्यम से हिंदी सीखना, या हिंदी फिल्मों का प्रसार हो या फिर विदेशी फिल्मों का हिन्दी में डब करके रिलीज करना हो । इन सभी पहलुओं को हम डिजिटल मीडिया के माध्यम से समझने का प्रयास करेंगे।विकिपीडिया (अंग्रेजी) पर दी गई जानकारी के अनुसार, सामान्यतः वह सामग्री है जो इंटरनेट केमाध्यम से जब चाहो तब उपलब्ध हो जाती है, जिस तक किसी भी डिजिटल उपकरण के माध्यम से पहुंचा जा सकता है। इसके आम उदाहरणों में ऑनलाइन समाचार पत्र, ब्लॉग, वीडियो गेम, कंप्यूटर मल्टीमीडिया, और सोशल मीडिया जैसी वेब साइट्स शामिल हैं। यह एक खास विशेषता संवाद है। यह संपर्कोंऔर वार्तालाप के माध्यम से सामग्री प्रसारित करता है । यह विश्वभर के लोगों को विभिन्न विषयों पर विचारों को साझा करने, उन पर टिपण्णी करने और चर्चा करने में सक्षम बनता है। यह कहा जा सकता है कि, यह संवादात्मक डिजिटल मीडिया है। जिसे इंटरनेट का प्रयोग करते हुए कंप्यूटर और मोबाइल जैसे डिजिटल उपकरणों के माध्यम से प्रयोग में लायाहै।

मनुष्य और भाषा:-

करीब 2000 वर्ष पहले महान यूनानी दार्शनिक अरस्तु ने कहा था- "मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है।" मनुष्य अकेले अपना जीवनयापन नहीं कर सकता इसलिए उसे एक समाज की आवश्यकता होती है, जिसके माध्यम से वह अपनी तमाम आवश्यकताओं की संतुष्टि कर पाता है। उसे अपनी आवश्यकताओं को बताने के लिए स्वयं को अभिव्यक्त करना पड़ता है। प्रारंभ में मनुष्य स्वयं को हाव-भाव से व्यक्त करता रहा फिर धीरे-धीरे उसने पत्तों एवं चट्टानों पर आकृतियाँ बनाना शुरू किया। धीरे धीरे हजारों वर्षों की सतत् प्रक्रिया से विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न काल-खण्डों में भाषाओं की उत्पत्ति हुई जो कि मनुष्य की अभिव्यक्ति का माध्यम बनीं ।जर्मनी के दार्शनिक अर्नेस्ट कैशिरर-"यह आत्म-अभिव्यक्ति की लालसाही आदमी के लिए भाषा की खोज का स्वरूप धारण कर गई ।"[2]हिन्दी और मुद्रण: मुद्रण मशीन आ जाने से भाषाओं का व्यवहार विस्तृत रूप से होने लगा। 30 मई 1826 को देश का पहला हिन्दी समाचार पत्र (साप्ता.) पंडित जुगल किशोर शुक्ला ने कोलकाता में शुरूकिया। इसके साथ ही हिंदी भाषा के विस्तार ने गति पकड़नीशुरू की। आज हिन्दी में छपने वाले पत्र-पत्रिकाओं की संख्या हजारों में और उनके पाठक करोड़ों में हैं। बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में रेडिओ और उत्तरार्द्ध में टीवी प्रसारण की शुरुवात होने से हिन्दी सहित अन्य भारतीय भाषाओं के व्यवहार और विस्तार को बढ़ावा मिला। बीसवीं सदी के आखिरी दशक में इंटरनेट ने देश में प्रवेश किया और बीसवीं सदी के आखिरी वर्षों में हिन्दी ने इंटरनेट की दुनिया में प्रवेश किया और इसके साथ शुरू हुआ हिंदी भूमण्डलीकरण | इंटरनेट पर हिंदी भाषा के प्रयोग से विश्व भर में हिंदी की पहुँच क्षण भर मेंहोने लगी। देश के किसी भी कोने से ब्लॉग, फेसबुक या व्हाट्सऐप पर हिंदी में लिखी- बोली गई बात पल भर में विश्वव्यापी हो जाती है। विश्व के किसी भी कोने से उस बात तक इंटरनेट के माध्यम से पहुंचा जा सकता है। इस माध्यम से हर जगह पहुँचकर इसके माध्यम से सूचनाओं का आदान- प्रदान किया जा सकता है, जरूरत है तो बस केवल इंटरनेट युक्त एक उपकरण की। फिर चाहे वो कंप्यूटर हो या लैपटॉप, इंटरनेट सुविधा वाला मोबाईल. हो या फिर टेबलेट ।

हिन्दी की वर्तमान स्थिति :-

एक समय था ,जब कहा जाता था कि ब्रिटिश साम्राज्य में कभी सूर्यास्त नहीं होता और अब ऐसा समय आ गया है कि जब हम गर्व से कह सकते हैं कि हिंदी का सूर्य कभी अस्त नहीं होता है। हिंदी ने अपनी उपयोगिता और स्वतः स्फूर्त ऊर्जा से वह स्थान प्राप्त किया है। जिसे करने के लिए ब्रिटिश साम्राज्य नेताकद क्रूरता,हिंसा, दमन आदि का प्रयोग किया गया।

विश्व की भाषाएँ और हिन्दी :-

विश्व में करीब ६,००० भाषाएँ है। बहुत सी ऐसी भाषाएँ भी हैं जिन्हें बोलने वालों की संख्या बहुत कम है। वहीं कुछ भाषाएँ ऐसी भी हैं जो विश्व के कई देशों में बोली और सीखी जाती हैं। "विश्व की दस सबसे प्रभावशाली भाषाओं में से हिंदी एक है। अमेरिका के चिकित्सकों के बीच अंग्रेजी और स्पेनिश के बाद तीसरी सबसे लोकप्रिय भाषा हिंदी है। "3

विश्व में भारतीय लोग और हिन्दी :-विश्व के १५० से अधिक देशों में भारतीय मूल के लोग निवास करते हैं। इन विभिन्न भाषा- भाषी प्रवासी भारतीयों में से अधिकांश आपस में संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी का प्रयोग करते हैं। इतना ही नहीं, इनमें से बहुत से ऐसे लोग हैं जो हिंदी में साहित्यिक- सांस्कृतिक गतिविधियों का आयोजन करते हैं या ऐसी गतिविधियों में शामिल होते हैं।

विश्व में हिन्दी लेखन- पठन :-

हिन्दी साहित्य विश्व के सौ से अधिक देशों में लिखा-पढ़ा जा रहा हैं। सूचना तकनीक के विकास के कारण एक देश में हो रहे लेखन को विभिन्न देशों में रहने वाले पाठक आसानी से पढ़ पा रहे हैं। हिन्दी का जितना प्रचार-प्रसार पिछले दो दशकों में हुआ है, उतना उससे पहले के कई सौ वर्षों में नहीं हो पाया था। "लेखक को मानव जीवन के भिन्न -भिन्न समाज के रीति-रिवाजों,सभ्यता-संस्कृति, वेशभूषा,बोलचाल की भाषा आदि का जितना अधिक ज्ञान होगा, लेखक उतना ही अपनी रचना में सफल होगा "4

हिन्दी की प्रमुख वेब साइट्स :-अनुभूति, अनुरोध, अभिव्यक्ति, गीत पहल, भारत दर्शन, शब्दांकन, सृजनगाथा, स्वर्गविभा, पूर्वाभास, साहित्यकुंज, समयांतर, हिंदी चेतना, गर्भनाल, हिंदी समय, कविता कोश, गद्य कोश, आदि जैसी सैकड़ों ऐसी वेबसाइट्स हैं जिन पर हिंदी साहित्य विभिन्न विधाओं में प्रचुर मात्रा में लिखा जा रहा है और साथ ही इन वेबसाइट्स पर प्रकाशित साहित्य को विश्व भर में पढ़ा जा रहा हैं।

हिन्दी और बाज़ार :विकसित देशों में भी हिन्दी को लेकर ललक बढ़ रही है। कारण यह है कि किसी भी बहुराष्ट्रीय कम्पनी या देश को अपना उत्पाद बेचने के लिए आम आदमी तक पहुँचना होगा और इसके लिए जनभाषा ही सबसे सशक्त माध्यम है। यही कारक हिंदी के प्रचार-प्रसार में सहायक सिद्ध हो रहा है ।

हिन्दी का अध्ययन अध्यापन:-

विदेशों में 40से अधिकदेशों के 600 से अधिक विश्वविद्यालयों और स्कूलों में हिंदी पढ़ाई जा रही है। भारत से बाहर जिन देशों में हिंदी का बोलने, लिखने-पढ़ने तथा अध्ययन और अध्यापन की दृष्टी से प्रयोग होता है, उन्हें हम

इन वर्गों मे बांट सकते हैं :

1) जहां भारतीय मूल के लोग अधिक संख्या में रहते हैं, जैसे- नेपाल, भूतान, पाकिस्तान, बांग्लादेश, म्यांमार, श्रीलंका और मालदीव आदि।

2) भारतीय संस्कृति से प्रभावित दक्षिण पूर्वीएशियाईदेश जैसे- इंडोनेशिया, मलेशिया, थाईलैंड, चीन,मंगोलिया, कोरिया तथा जापान आदि।

3) जहां हिन्दी को विश्व की आधुनिक भाषा केरूप में पढ़ाया जाता है, जैसे अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, कनाडा और यूरोप के देश।

4) अरब और अन्य इस्लामी देश, जैसे- संयुक्त अरब अमीरात (दुबई), अफ़गानिस्तान, कतर, मिस्र, उज़्बेकिस्तान,कज़ाकिस्तान, तुर्केमेनिस्तान आदि ।हाल ही में अनवर अशरफ, संवाददाता, बी.बी.सी हिंदी ने जर्मनी में विस्तृत स्तर पर एक अध्ययन किया। जिसके अनुसार जर्मनी में हिन्दी को बड़े स्तर पर पसंद किया जा रहा है। जर्मनी के लोगों को हिंदी इतनी भा गई है कि वहां की लगभग १४ विश्वविद्यालयों में हिंदी सिखाई जा रही है।दशकों पहले से रूस में हिन्दी फ़िल्में, हिन्दी गाने और हिंदी साहित्य लोकप्रिय रहे हैं। लम्बे समय से भारत में रूस का व रूस में हिंदी साहित्य पढ़ा- लिखा और अनुवाद किया जाता रहा है। रूस में आज भी हिन्दी फिल्मों का जलवा कायम है।

बी.बी.सी. की हिन्दी सेवा :-

समय बदला और अन्य संचार माध्यमों की तरहबी. बी.सी. ने वेबसाइट्स की अहमियत को भी पहचाना और वर्ष२००१में बी.बी.सी. हिन्दी डॉट कॉम की शुरुवात हुई। इसका उद्देश्य भारत और दुनिया भर के हिन्दी भाषी पाठकों तक समाचार और विश्लेषण पहुंचाना था। इस वेबसाइट्स के अन्य इंडेक्स हैं-भारतपाकिस्तान, चीन, खेल, मनोरंजन, विज्ञान, कारोबार, मल्टीमीडिया, ब्लॉग, फोरम, बी.बी. सी. विशेष।

सूचना क्रांति और हिंदी :-

इस युग में विभिन्न भाषा-भाषियों के बीच में अपने तकनीकी उत्पाद, जैसे- मोबाइल, कंप्यूटर आदि बेचने के लिए हिंदी बाज़ार की एक आवश्यकता बन गई है। लगभग सभी बड़ी कंपनियां अपने फोन को अंग्रेजी के साथ हिंदी भाषा में भी उपलब्ध करा रही हैं। "हमारे गांवों में जिस किसी के पास भी मल्टीमीडिया फोन होता है, वो उसे हिंदी में इस्तेमाल करना ज्यादा सरल समझता है।"5

स्मार्टफोन और हिंदी :-

स्मार्टफोन के लिए कई तरह ऐप्लीकेशंस भी विकसित किए गए हैं। इनमें से भले ही अधिकतर अंग्रेजी में हों, लेकिन भारत में लोग अभी भी हिंदी भाषा के ऐप्लीकेशन का प्रयोग करते हैं। फेसबुक और गूगल जैसी बड़ी वेबसाइट्स भी इंडिया और दुनियाभर के यूजर्स को हिंदी में जानकारी उपलब्ध करा रही हैं।

गूगल और हिंदी :-

खबर है कि जल्द ही गूगल ई-मेल जैसी अपनी महत्वपूर्ण सर्विस को पूर्णतया हिंदी में भी उपलब्ध कराने वाली है। उदाहरण के लिए अभी तक आपका ई-मेल पता अंग्रेजी भाषा में होता था, लेकिन कुछ ही दिनों बाद आप अपना ई-मेल आई.डी. हिंदी में भी बना पाएंगे।

हिन्दी और सर्च इंजन:-

आज हिंदी के 15 से भी अधिक सर्च इंजन हैं जो किसी भी वेबसाइट का चंद मिनटों में हिंदी अनुवाद करके पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर देते हैं। याहू, गूगल और फेसबुक भी हिन्दी में उपलब्ध हैं। अब कंप्यूटर से निकल कर हिंदी मोबाइल में न केवल पहुँच चुकी है बल्कि भारी संख्या में लोग इसका उपयोग भी कर रहे हैं। मोबाइल तक हिंदी की पहुँच ने देश में देवनागरी लिपि के समक्ष खड़ी चुनौती को काफी हद तक मिटा दिया है।

हिन्दी और हॉलीवुड:-

यह हिंदी की ताकत, हिंदी का महत्व और हिन्दी की स्वीकृति ही है कि चाहे वो हॉलीवुड फिल्मों के निर्माता हो या फिर दक्षिण भारतीय भाषाई फिल्मों के, सब अपनी फिल्मों को हिन्दी में अवश्य रिलीज करवाना चाहते हैं। हॉलीवुड प्रोडक्शन हाउस 'डिज़नी' ने 'जंगल बुक' को भारत में अमेरिका से एक सप्ताह पहले रिलीज किया। यह पहली बार नहीं हुआ था, इससे पहले भी वार्नर स्टूडियो की 'होब्बिट 3' और'जर्नी 2' भारत में अमेरिका से पहले रिलीज की गई।हिन्दी और विदेशी लेखक :चीन के प्रसिद्ध लेखक अलाई की दो पुस्तकें ' रेड पोप्पिज' और 'होलोमाउंटेन' हिंदी में अनुवाद किया है। इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद भारतीय पत्रकार आनंद स्वरूप वर्मा ने किया है। यह हिंदी के आकर्षण, हिंदी की उपयोगिता और हिंदी के बाजार का ही प्रभाव है कि सैकडों विदेशी लेखकों की रचनाओं का हिंदी अनुवाद निरंतर किया जा रहा है। गद्यकोश ओर्ग (Org) के पृष्ठ विदेशी भाषाओं से अनूदित पर 40 से अधिक लेखकों की रचनाओं के अनुवाद की जानकारी मिलती है। कविता कोश ओर्ग (org) के पृष्ठ'विदेशी भाषाओं से अनूदित' पर साठ से अधिक देशों- इंग्लैंड, अमेरिका, इटली, इराक, नॉर्वे, पुर्तगाल, पेरू, स्पेन, रूस, सिंगापुर, जापान, जर्मनी, स्विट्जरलैंड, आदि जैसे देश शामिल हैं।

कुल मिलाकर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि, हिंदी एक भाषा के रूप में अधिक से अधिक लोगों तक पहुंच रही है, पहुंचाई जा रही है । अपनाई जा रही है, पढ़ी जा रही है, पढ़ाई जा रही है। हिंदी में बड़े स्तर पर देशी- विदेशी फ़िल्में देखी जा रही हैं ,दिखाई जा रही हैं। लोग दैनिक बोलचाल की भाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग कर रहे हैं। हिंदी बढ़ रही थी, बढ़ रही है और बढ़ती ही रहेगी,भले ही उसके स्वरूप में उसके प्रयोक्ताओं, समय और स्थान के साथ कुछ परिवर्तन होते रहें।

****

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. इलेक्ट्रॉनिक्स मीडिया- संजय कुंदन, पृ. सं. १८
2. मीडिया लेखन :डॉ.रमेशचंद्र त्रिपाठी, पृ. सं. १०७
3. मीडिया का यथार्थ- रतनकुमार पाण्डेपृ. सं १५७
4. मीडिया लेखन- डॉ. रमेशचंद्र त्रिपाठी,डॉ. पवन अग्रवालपृ. सं. ५०
5. सूचना क्रांती : आशिष मिश्र, नवभारत टाईम्स, १९९२ जयपूर
6. www.hindisamay.com
7. www. digitalmedia.org
8. www.computerhindinotes.com
9. www.kavitakosh.org
10. www.gadyakosh.org

नागार्जुन के उपन्यासों में नारी विमर्श

डॉ शिवम् चतुर्वेदी
एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभाग अध्यक्ष, हिंदी विभाग
अरुणाचल यूनिवर्सिटी ऑफ़ स्टडीजए नाम्साई
अरुणाचल प्रदेश

वीणा शर्मा
शोधार्थिनी,हिंदी विभाग,
अरुणाचल यूनिवर्सिटी ऑफ़ स्टडीज,नाम्साई
अरुणाचल प्रदेश

किसी भी देश का विकास नारी को स्वतंत्रता दिए बिना नहीं हो सकता है। नागार्जुन नारी स्वतंत्रता के प्रबल हिमायती थे।नागार्जुन ने अपनी कृतियो के माध्यम से यही उद्घोषित किया कि नारी स्वतन्त्रता के बिना देश का विकास संभव नहीं होगा। सामाजिक संरचनाओं में मानवीय सम्बन्धों में मूलतः परिवर्तन और आधुनिकता के परिवेश लिए आंचलिक उपन्यासो ने अपनी छाप छोड़ी और पाठक के दिल को छू लिया। रतिनाथ की चाची नागार्जुन का पहला उपन्यास है । नारियों की स्थिति को यथार्थता के साथ दिखाया गया। नारी के सर्वांगीण विकास के लिए शिक्षा को महत्वपूर्ण स्वीकारा गया है। नागार्जुन का विश्वास था कि यदि नारी शिक्षित नहीं होगी तो उसका सामाजिक, मानसिक, आर्थिक विकास संभव नहीं होगा। शिक्षित नारी ही अपने अधिकारों के प्रति जागरूक रह सकती है। शिक्षा की कमी के कारण उसे अपने अधिकारों का ज्ञान ही नहीं होगा।

विवेच्य समाज में लड़की का विवाह उसके माता-पिता की मर्जी से ही किया जाता था। कभी-कभी वो अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए अपनी बेटियों को बलि का बकरा भी बना देते थे। दहेज रूपी दानव भी बेटियों को निगल रहा था। बमशंकर अपनी पुत्री के लिए लड़का देखते हैं। उन्होंने एक लड़का देखा था जिसका पिता बहुत बड़ा इंजीनियर था। राजधानी में उन लोगों का अपना मकान बन रहा था। परन्तु लड़के के मामा ने कहलवाया ''बीस हजार नकद लगेंगे तभी यह काम होगा।''2 समकालीन समाज में बाल-विवाह भी प्रचलित थे। माता-पिता मानते थे कि उनकी बेटी पर कोई बुरी नजर न डाल दे। बुरी निगाहों से बचाने के लिए छोटी-छोटी कन्याओं का भी विवाह कर देते थे। दिगम्बर की छोटी-सी बहन का भी विवाह तयकर दिया जाता है। वह बाल विवाह का विरोध करते हुए अपनी चाची से कहता है- ''क्या जल्दी पड़ी है अभी चाची। आदमी का बचपना तो बीस का उम्र तक चलता है। चार दिन और खा लेगी,खेल लेगी तब तक अपना कुछ सीख-साख भी लेगी।''[3] बिरजू भी अपनी बहन के बाल विवाह का विरोध करता हुआ कहता है- ''थोड़ी उम्र और अधिक हो जाने से कुछ नही बिगड़ेगा।''[4] लड़की को जल्दी से जल्दी उसकी ससुराल भेज देने की माता-पिता की अभिलाषा से समाज में अनमेल विवाह भी पनपने लगे थे। विवेच्य कथाकृतियों में अनमेल विवाह से उत्पन्न सामाजिक समस्याओं का यथार्थ चित्रण करते हुए समाज को नई दृष्टि प्रदान की गई ताकि नारी के सम्मान की रक्षा हो सके। अपने इस पति को वह पति मानने के लिए कतई तैयार नहीं है। जिन्हें आप लोग चौधरी कहते हैं, उनसे मेरा सम्बन्ध ही क्या है? पति-पत्नी का सम्बन्ध?....नही हरगिज नही ..।''[5] अनमेल विवाह से अच्छा तो वह बेटी को जहर देना समझती है।'' [6] सामाजिक परिवेश में नारी की ऐसी अमानवीय दशा को देख वह भगवान से प्रार्थना करते हुए कहती है- ''लाख दण्ड देना मगर फिर औरत बनाकर इस देश में जन्म न देना।''[7] 'रतिनाथ की चाची' में उमानाथ की बहन सुमित्रा को 45 के एक महामूर्ख के चंगुल में डाल दिया जाता है। भोला पण्डित जैसे दुष्ट प्रवृत्ति वाले लोगों का तो गरीब व अज्ञानी को फंसाने का यह एक पेशा ही हो गया था। 'उग्रतारा' में रचनाकार ने इस समस्या का समाधान करते हुए नारी के जिस रूप को चित्रित किया है वह वंदनीय है। उगनी का सिपाही भभीखन सिंह के साथ विवाह हुआ था। दोनों की उम्र में काफी अंतर था। उगनी इस विवाह को कानूनी तौर पर बलात्कार का हक समझती है।''[8]इस विवाह के बंधन को वह गैर कानूनी करार देते हुए सारे बंधनों को तोड़कर अपने प्रेमी कामेश्वर के साथ भाग जाती है। भागकर दोनों विवाह कर लेते हैं। नई पौध में खोखा पंडित की नातिन बिसेसरी के संग अधेड़ चतुरा चौधरी का विवाह तय होने पर विरोध दिखाते हुए रचनाकार उसका विवाह प्रगतिशील वाचस्पति के संग करवा कर नारी को एक नई राह दिखाते हैं। नारी स्वतंत्रता के पक्षधर नागार्जुन नारी को अपना वर चुनने का अधिकार भी दिलाना चाहते हैं। उनका विश्वास है कि यदि नारी को स्वयं अपने वर को चुनने का अधिकार प्राप्त होगा तो उसे उपरोक्त अमानवीय अवस्थाओं से नहीं गुजरना होगा। ललन जी के माध्यम से रचनाकार अपने इसी विचार को अभिव्यक्ति देते हैं- ''पढ़-लिख के काम करेंगी आप, अपना दूल्हा खोज लेंगी।''[9] नारी को स्वयं वर चुनने का अधिकार दिलाकर ही रचनाकार उसे शोषण के खिलाफ संघर्ष करने की प्रेरणा देना चाहते हैं। विवेच्य कथाकृतियों के नारी पात्र पुरुष वर्ग की दासता व अमानवीय शोषण से मुक्ति पाने के लिए विद्रोही प्रवृत्ति के हो उठते हैं। नारियां सिर झकाकर अन्याय व अत्याचार को सहन न कर उसके खिलाफ संघर्ष का बिगुल बजाती हैं। मधुरी अपने नशाखोर ससुर के शोषण से तंग आ गयी। ससुराल छोड़कर पिता के घर आ जाती हैं। समकालीन समाज में उसका ये कदम परम्परागत विवाह की सामाजिक मान्यताओं के खिलाफ संघर्ष ही है। गाँव में रहकर वह राजनीतिक आंदोलन में भागीदार बनती है। नारी के इस प्रगतिशील रूप को देख मजिस्ट्रेट आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहता है- ''राजनीति ही तो ऐसी चीज थी जिसे गाँवों की हमारी बहु-बेटियों ने अब तक अपने पास फटकने नहीं दिया था।''[10] मजिस्ट्रेट के इस कथन को सुन जोशीली मधुरी जोश भरे अंदाज में जवाब देते हुए कहती है- ''तो इसमें क्या हर्ज है हुजूर। जिंदगी और जहान औरतों के लिए नहीं है क्या?'' [11] इस प्रकार विवेच्य कथाकृतियों में नारी चेतना को सुन्दर ढंग से अभिव्यक्ति देते हुए नारी स्वतन्त्रता पर बल दिया गया है। कामेश्वर अपनी भाभी से कहता है- ''स्त्री पुरुष में समान रूप से समानता पैदा होगी तभी व्याभिचार मिटेगा।'' चंपा भी भुवन को पत्र लिखती है भुवन तुमने ठीक किया इस कुंभीपाक से निकल गयी। मुझे लगता है नई दुनिया के समझदार लोग नर-नारी मिलकर आगे बढ़ते हैं। जहाँ कोई किसी की बेबसी का फायदा नहीं उठाता। कोई किसी को चकमा नहीं देता।''[12]नागार्जुन ने विधवा जीवन की विषमताओं को अभिव्यक्ति देते हुए उन्हें पुनर्विवाह करने की प्रेरणा प्रदान की है। उनका मानना था कि भारतीय समाज में विधवाओं की संस्थाएं जितनी अधिक होगी उतने ही व्याभिचार और भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलता रहेगा।

उगनी के पिता का देहान्त हो गया था। उसकी माँ ने लोकलाज से बचने के लिए छोटी अवस्था में ही उसके हाथ पीले कर देती है। विवाह के कुछ महीनों बाद ही उसके पति का देहान्त हो जाता है। वह अपने नाना के घर रहने लगती है। पड़ोस में ही रह रहे विधुर कामेश्वर के प्रति आकृष्ट होती है। सिपाही भभीखन उससे विवाह कर लेता है। जबरदस्ती गर्भधारण हो जाने पर वह घर से भाग जाती हैं कामेश्वर इस रूप में भी उससे विवाह कर लेता है। उगनी कहती है- उस आदमी का दिल बहुत बड़ा है। पराये गर्भ को ढोने वाली प्रेमिका को बिना किसी हिचक के उसने स्वीकार कर लिया है।

चंपावती विवाह के दो वर्ष बाद विधवा हो जाती है। जीजा द्वारा उसे भ्रष्ट किया जाता है। मैमन सिंह के संग भागकर व सरदारनी बनती है। शर्मा जी से मिल पुरानी दास्तांनदार लोगों के बीच पहुँच गई.....वहाँ के नर-नारी मिलजुल कर आगे बढ़ते है। वह सोचती है- ''जिस समाज में हजारों की तादाद में जवान विधवा रहेगी वहां यही सब तो होगा।''[13] वह अपनी बेटी के संग डटकर खड़ी हो जाती है।

वह संकल्प करती है कि ''मेरे जीते जी गौरी मुसलमान या सिक्ख के घर जाने को मजबूर नहीं की जा सकती है।'' [14] नारी की विवशता का चित्रण करते हुए उसमें जागृति का संचार करना ही विवेच्य रचनाकार का ध्येय है। विधवा गौरी सामाजिक प्रताडनाओं को सहते-सहते कमजोर नही पड़ती। वह जागरूक हो किसान कुटी से जुड़ जाती है। प्रताड़ित गौरी द्वितीय विश्व युद्ध में हिटलर द्वारा रूस पर आक्रमण करने की बात पर कहती है-''मैं पढ़ी लिखी तो नहीं हूँ मगर इतना समझती हूँ कि 25 साल से रूस वालों ने अपने यहाँ जो नया संसार बसाया है। उसके अंदर राक्षसों की बड़ी से बड़ी सेना भी मात खा जाएगी।''[15] गौरी विधवा होते हुए भी चरखा चलाकर स्वावलम्बी जीवन जीती है। विधवा गौरी की कहानी केवल उसकी अपनी नहीं वरन अनगिनत विधवाओं की कारूणिक गाथा है जो आजीवन पीड़ित शोषित जीवन व्यतीत करती है। रचनाकार ने पीड़ित गौरी की माँ के माध्यम से समाज की उन रूढ़ियों का विरोध करते हुए कहती है- ''कोई क्या करलेगा हमारा? बिटिया को मैं प्याज की तरह जमीन के अन्दर दबाकर नहीं रख सकती।''[16] सामाजिक बेड़ियों पर कठोर प्रहार करने वाली गौरी माँ सम्पूर्ण नारी जाति के लिए प्रेरणा स्रोत है। माया विधवा होते हुए भी सामाजिक बेड़ियों पर कठोर प्रहार करने वाली बनी ।गौरी सम्पूर्ण नारी जाति के लिए प्रेरणा स्रोत है। माया विधवा होते हुए भी राजपूत जाति वाले कपिल से प्रेम करती है। समाज के ठेकेदार उनके इस सम्बन्ध की निंदा करते है। माया की माँ भी सामाजिक रूढ़ियों का विरोध करती हैं ''प्राचीन संस्कारों में पली हुई माँ एक ओर थी, दूसरी ओर थी जीवन को सुखमय देखने का लालसा में असवर्ण के साथ पुनर्विवाह का प्रस्ताव कबूल करने वाली माँ....एक ही बुढ़िया के अन्दर दो माता। दोनों में डटकर मुकाबला हुआ और अंत में दूसरी माँ की जीत हुई।''[17]सामाजिक रूढ़िता परम्पराओं का विरोध करती विवेच्यकृतियों की नारियां सभी का आदर्श है। नागार्जुन स्वयं लिखते भी हैं- ''मैं चाहता था कि शीघ्र से शीघ्र इसको कुछ साहसिकता के पाठ पढ़ा दिए जाए। मिथ्या संकोच की कृत्रिम भावना जो औसत हिन्दू परिवारों में घर किए हुए है, इसके विरूद्ध मैं अपराजिता को तैयार करना चाहता हूँ।[18]

नारी जीवन में उसका चरित्र सर्वोपरि होता है। चरित्रहीन नारी को समाज में पतिता कह हेय माना जाता है। नारी का चरित्र उसकी वह धरोहर है जिसके खोने से वह मानो अपना जीवन ही खो बैठती है। इसीलिए नागार्जुन ने नारी को अपने चरित्र की रक्षा करने के लिए जागरूक करने का महान कार्य किया है। 'बलचनमा' में छोटा मालिक रेवती का शील भ्रष्ट करना चाहता है। उसके लिए वह रेवती की पिटाई भी करता है। वह मालिक के अन्याय व अत्याचारों को सहकर भी अपनी बेटी का कौमार्य भंग नहीं होने देती। अपने बेटे बलचनमा से कहती है- ''मरजाना लाख गुना है, मगर इज्जत का सौदा करना अच्छा नहीं।''[19]

शिक्षा के अभाव में ही नारी अपने अधिकारों के प्रति जागरूक नहीं हो पाती है। नारी को शिक्षा से वंचित रखकर ही पुरुषों ने उसे अपने नियन्त्रण में रखने का प्रयास किया है। जिस परिवार में नारी शिक्षाविहीन होती है। वह स्वयं तो अंधकार में घुट-घुट कर जीती ही है। उसका परिवार भी प्रगतिशील नहीं बन पाता है। शिक्षा के अभाव में ही वह पशुवत जीवन जीने को विवश होती है। शिक्षित होकर ही वह अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो सकती है। पुरुष प्रधान समाज में नारी को उसके बराबर शिक्षित होना इसीलिए स्वीकार्य नहीं होता हैं ताकि वो उसका शोषण कर सके।

नागार्जुन का मानना है किसी भी देश के विकास में शिक्षा का विशेष महत्व होता है। जिस देश में स्त्री और पुरुष दोनों ही शिक्षित होंगे वही देश प्रगतिशील बन सकेगा। नारी शिक्षा का भी देश की प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान होता है। बलचनमा इसी को अभिव्यक्ति देते हुए कहता है ''जब लड़कियाँ भी लड़कों की तरह पढ़ी-लिखी होने लगेंगी तभी इस मुल्क का उद्धार होगा।''[20] सुशिक्षित नारी केवल अपने परिवार को ही नहीं बल्कि समाज को भी सही दिशा दिखाने में सक्षम होती है। 'उग्रतारा' में नर्मदेश्वर की भाभी एक शिक्षित नारी है। वह गाँव की बहु-बेटियों की गुरुआइन है। अशिक्षित स्त्रियों मे शिक्षा का प्रचार करने का महत्वपूर्ण कार्य करती है। उगनी जैसी बाल-विधवा के मन में ग्लानि को धो-पोंछकर वही साफ करती है ''वरूण के बेटे' की मधुरी में बाढ के समय सहायता कैम्प में पढ़ी-लिखी लड़कियों के सम्पर्क में आ अपनी समझ को विस्तार देती है। शैक्षणिक चेतना के प्रचार-प्रसार के फलस्वरूप ही नारी अपनी इच्छा से विवाह सम्बन्ध भी बना पाती है। ऐसे प्रेम-विवाह समाज में फैली जातिगत दीवारों के कठोर बंधनों को भी तोड़ फेंकने में समर्थ होते हैं। 'कुभीपाक' की निर्मला मौसी का लड़का परिश्रमी है। वह प्रोफेसर बन जाता है। वो कायस्थ होते हुए भी ब्राह्मण लड़की से विवाह करता है ''ब्राह्मण की लड़की और कायस्थ का लड़का....दोनों में घनिष्ठता.....इलाहाबाद के आर्य समाज में मंदिर शादी''[21] दुखमोचन की माया भी राजपूत युवक से विवाह करती है। 'कुंभीपाक' की चंपा सुमंगल और नेपालियन का विवाह कराती है।इस प्रकार रचनाकार ने अपने नारी पात्रों में अन्तर्जातीय विवाह के प्रति भी जागृति लाने का प्रयास किया है। ऐसे विवाहों में विघ्न बाधाएँ तो आयीं लेकिन नारी पात्र जागरूक होने के कारण निड़रतापूर्वक अपने रिश्तों में कामयाब हो पाते हैं। पति-पत्नी यदि एक ही जाति के हों और शिक्षा के द्वारा ही नारी जीवन अपनी अंधेरी जिंदगी को नवीन प्रभात की ओर ले जाने में सफल हो सका। समकालीन समाज में नारी शिक्षा का महत्व बताते हुए 'पारों' उपन्यास में उपन्यासकार द्वारा ''देश की शिक्षित महिला रत्ना....सरोजिनी नायडू, विजय लक्ष्मी पंडित और कमला चटोपाध्याय के उदाहरण देते हुए''[22] शिक्षित नारी को सम्मान की दृष्टि से स्थापित करने का प्रयास किया है।

समकालीन समाज में धर्म की आड़ मे नारी शोषण की परम्परा थी। धर्म की दुहाई देकर नारी को पुरुष वर्ग अपनी भोग्या बनाने से भी नहीं चूकते थे। सत्यता यही थी कि समाज का शक्तिशाली पुरुष नारी पर धर्म के नाम पर अनेक प्रकार के अनाचार करता था। भगवान की भक्ति को नारी शोषण का हथियार बना लिया जाता था। मठों में अनाचार व अत्याचार का नंगा नाच होता था। 'इमरतिया' में महिमा मंडित बाबा द्वारा जनवर्ग को सम्मोहित कर मठ का संचालन करते हुए दिखाया है। मठाष्ठमी को धार्मिक कर्मों का हवाला देते हुए 'छः माह की अबोध बालिका की बलि दी जाती है।[23] धर्मगुरु अपने धार्मिक लबादे की आड़ में अनैतिकता का खेल बखूबी खेलते हैं। संजीवन आश्रम में स्त्रियों के अनैतिकता के रूप में अभिव्यक्ति करते हुए कुंती कहती है ''क्यों औरतें बिकती हैं, क्यों उनकी बोली लगायी जाती है? उन्हें बाड़े के अंदर कैदकर रखा जाता है। मुझे और तुम्हें किसने बर्बाद किया? बड़े आये बाप और चाचा बनने वाले....। "[24]धार्मिक संस्थाओं के मठाधीशों द्वारा धर्म के नाम पर जो नारी शोषण किया जाता था उसका भी विरोध नारी द्वारा करवाकर कृतिकार ने उनमें नई जागृति लाने का प्रयास किया है। चंपा जो स्वयं आश्रमों और मठों के दलालों की हवस का शिकार होती है। वह चुप नहीं बैठती वरन् रोष प्रकट करते हुए कहती है- ''इस आश्रम शब्द से मैं बहुत घबराती हूँ..... ये आश्रम अनैतिकता के अड्डे हैं.... स्वार्थियों के अखाड़े हैं। अब वक्त आ गया है कि इन आश्रमों की नाक में नकेल डालकर भुवन तुमने अपनी ही नहीं बल्कि सभी औरतों की नाक रख ली है।'' [25]अनाचार व अत्याचार में सहयोग करने वाली थी धार्मिक संस्थाओं व अनैतिक धर्माधिकारियों की हकीकत का चित्रण करते हुए अपने नारी पात्रों को जागृति का संदेश देना ही विवेच्य कृतियों का ध्येय है। समकालीन समाज में नारी का शोषण नारी द्वारा बखूबी किया जाता था। चाहे उसका रूप सौतन, सास, जेठानी, ननद, बहू कोई-सा भी हो। विवेच्य कथा-कृतियों की खूबी यही है कि इनमें नारी के मन में नारी के प्रति प्रेम पल्लवित, पुष्पित करने का सराहनीय दायित्व निभाया गया है। नागार्जुन की भरपूर कोशिश यही थी कि नारी के मन में नारी के प्रति प्रेम व

सम्मान की भावना अंकुरित होनी चाहिए। कृतियों में नारी को ऐसे अवसर प्रदान किए जिनमें वह नारी मन को समझने-परखने की कोशिश कर सके। यही कारण है कि इन कृतियों के नारी पात्र समाज की सड़ी गली परम्पराओं से हटकर नारी मन को नए माहौल में लाते हुए कहती है- ''अब हम छोकरा-छोकरी नहीं रहे, सयाने समझकर माँ बाप और सास-ससुर ने जो जिम्मेदारी तुम्हें सौंपी है उससे जी चुराना कायरता होगी। तुम्हें अपनी घरवाली के प्रति वफादार रहना होगा।.....मैं नहीं चाहती कि एक औरत सिंदूरी मांग पर कालिख पोतती रहूँ''[26] नागार्जुन अपने नारी पात्रों मे आत्मविश्वास की अलख जगाना चाहते थे। समाज में नारी को अपने से आगे बढ़ी बनाकर छोड़ दिया है।.....कालेज से निकलते ही लड़कियां बहू बन जाए और लेटी, बैठी सारा उपन्यास पढ़तीरहे। 'कुंभीपाक' की चंपा इसी कारण नारकीय जीवन जीने को मजबूर थी। अंत में उसने आश्रम के टाइपराइटर पर हिन्दी में टाइप करना सीख लिया। राय साहब के सहयोग से टाइपराइटर खरीद लिया। वैश्या का जीवन जीने को मजबूर रहने वाली वो 'गृहशिल्प कुटीर; नामक दुकान खोलकर अचार, मुरब्बा, पापड़ बड़ियां, रूमाल, मेजपोश, मोजे, स्वेटर आदि बेचकर अपना जीवनयापन करने लगी।''[27] 'रतिनाथ की चाची' की जो गौरी विधवा जीवन व्यतीत कर समाज की प्रताड़नाओं के जहर को पीती थी। ''वह चरखा चलाकर सूत कातती है। अपनी मेहनत की ऊर्जा पर निर्वाह करती है और पुत्र उमानाथ के विवाह में दो सौ रूपये निकालकर खर्च कर देती है।''28 विवेच्य उपन्यासों में नारी को आर्थिक रूप से स्वावलंबी बनाने का प्रयास किया गया है। विवेच्य कथकृतियों के नारी पात्र अपने जीवन में निराश हो जिन्दा लाश बनकर नहीं जीतीं बल्कि नवजीवन के प्रभात की तलाश में आगे बढ़ती हैं। समाज में नारी के ऊपर होने वाले अन्याय व अत्याचारों को चित्रित करते हुए उनसे मुक्ति की राह दिखाने का पुनीत कार्य विवेच्य उपन्यासों में हुआ है।

*****

सन्दर्भ:-

1नागार्जुन, कुभी पाक, पृष्ठ 156
2नागार्जुन, हीरक जयन्ती, पृष्ठ 163
3नागार्जुन, नई पौध, पृष्ठ 156
4नागार्जुन, पारो, पृष्ठ 55
5वही, पृष्ठ 55
6वही, पृष्ठ 58
7नागार्जुन, उग्रतारा, पृष्ठ 42
8नागार्जुन, अभिनन्दन, पृष्ठ 85
9नागार्जुन, वरूण के बेट, पृष्ठ 96
10 वही, पृष्ठ 97
11नागार्जुन, उग्रतार' पृष्ठ 36
12नागार्जुन, कुभी पाक, पृष्ठ 120
13नागार्जुन, उग्रतार' पृष्ठ 103
14नागार्जुन, रतिनाथ की चाची, पृष्ठ 28
15वही, पृष्ठ 78
16 नागार्जुन, रतिनाथ की चाची, पृष्ठ 95
17वही, पृष्ठ 49
18नागार्जुन, उग्रतारा, पृष्ठ 45
19 नागार्जुन, बलचनमा,, पृष्ठ 75
20 नागार्जुन, कुभीपाक, पृष्ठ 60
21नागार्जुन, कुभीपाक,, पृष्ठ 134
22 नागार्जुन, पारो, पृष्ठ 45
23नागार्जुन, इमरतिया, पृष्ठ 62
24नागार्जुन, कुभी पाक, पृष्ठ 120
25नागार्जुन, कुभीपाक, पृष्ठ 120
26नागार्जुन, वरूण के बेटे, पृष्ठ 129
27नागार्जुन, कुभीपाक, पृष्ठ 57
28 नागार्जुन, रतिनाथ की चाची,, पृष्ठ 132

सुरजीत पातर की कविताओं में बदलते नैतिक मूल्य एवं सत्ता पर व्यंग्य

डॉ. सुरजीत सिंह वरवाल
असिस्टेंट प्रोफेसर
युवा कहानीकार एवं अनुवादक
गुरु नानक कॉलेज, बुढलाडा, पंजाब

सारांश:-

साहित्यकार समाज में एक ऐसे कलाकार की भूमिका निभाता है जो समाज की यथास्थितियों को रंग भरते हुए सजीवता से पेश करता है। जिस प्रकार से एक चित्रकार रंगों के द्वारा चित्रांकन में भावभंगिमा भर देता है उसी प्रकार से कवि अपनी अभिव्यक्ति से समाज के यथार्थ को परिलक्षित करता है। मैं समझता हूँ भारतीय कवियों ने इस दृष्टि को केंद्र में रखा है जिसमें सुरजीत पातर विशिष्ट भूमिका रखते हैं।

कुंजीपटल:- समाज, निराशा, नैतिक मूल्य, अज्ञानता, इत्यादि।

सुरजीत पातर आधुनिक समय के प्रमुख कवियों में एक विशेष स्थान प्राप्त कवि है। वह उस युवा पीढ़ी से सम्बंधित है जिन्हे स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् घोर निराशा हाथ लगी। इसीकारण भारतीय जनमानस का जीवन और भी कष्टमय हो गया। विजयी होने के उपरांत भी उन्हें पराजय का मुख देखना पड़ा। भले ही पातर ने अपने काव्य में पृष्ठभूमि पंजाब की ली हो लेकिन उसमें सम्पूर्ण भारत के करुणामयी स्थिति दर्शन होते हैं। समस्त भारत में नैतिक मूल्यों का जो ह्रास हुआ उससे सामाजिक सम्बन्धों की दशा और ज्यादा भयावह बनी। सत्ता ऐसे लुटेरों के हाथ आई जिसके कारणवश स्थितियां और ज्यादा बदत्तर होती चली गयी। इस सत्य को कवि ने अपनी कलम द्वारा व्यंग्यात्मक रूप से प्रस्तुत कर लोगों में नई चेतना का उद्भव किया है। सुरजीत पातर विलक्षण-प्रतिभा सम्पन्न कवि है। उन्होंने आधुनिक युग के अंतर्द्वंदो, छिपे हुए तथ्यों को तार्किक दृष्टि से परीक्षण करते हुए नये रूप में चित्रित किया है। स्वतंत्रता के पश्चात् नैतिक मूल्यों में आ रही गिरावट, आपसी क्रोध, दयाहीनता, बेईमानी और झूठ के बोलबाले से पूर्णता अवगत थे। उन्होंने नकारात्मक विचारों को देश से दूर करने का प्रयास करते हुए उच्च नैतिक मूल्यों को अपनाने पर बल दिया है। पातर सामाजिक मूल्यों में हो रहें संक्रमण से वाकिफ थे। अपनी चिंतन शक्ति से उन्होंने ऐसे दीप जलाने के प्रयास किये जो भविष्य के लिए वरदान और वर्तमान के लिए सकून बन सके; एक जगह वह लिखते हैं:-

"सबर, खिमा ते भलक, हौंसला सच्चाई ते आस,
हरेक दीप मेरे मन बालना शब्दो।"[1]

इन पंक्तियों से तात्पर्य है कि कवि एक आदर्शवादी मार्ग एवं आदर्शवादी सिद्धांतों को अपने मन में पालने के साथ पाठकों के मन में भी इन विचारों को पैदा करना चाहता है। धैर्य, दया, प्रेम, करुणा जीवन में खिमा, एवं दूसरों की भलाई के विचार प्रत्येक मन में उत्पन्न करके सदैव सत्य और उम्मीद के दीपक को मन में बालने हेतु अपने शब्दों से आग्रह करता है।जिस समय पातर ने लिखना प्रारंभ किया उस समय परिस्थितियाँ बहुत ही त्रासदपूर्ण थी। भारत-पाक विभाजन हुआ। जिसका सीधा प्रभाव भारतीय जन-जीवन पर पड़ा। इसके पश्चात् भाषा आधार 'पंजाब-हरियाणा' विभाजन। 1984 ई. में सिक्ख दिल्ली दंगे। इन सब हालातों ने भारत पर कम और पंजाब पर अधिक गहरी छाप छोड़ी है। पंजाब के हालात सदैव से ही सुख रहित बने। बेरोजगारी, कृषि में असफलता, दिन-ब-दिन गिरते स्तर ने पंजाब के जीवन और हालातों को अधिक चुनौतीपूर्ण बना दिया था। राजनेताओं ने अपने स्वार्थपूर्ति हेतु देश के विभाजन को होने दिया। जिसका परिणाम आज दोनों देश भुगत रहे हैं; अपनी पीड़ा का चित्रण कवि निम्न पंक्तियों में करता हुआ कहता है:-

"उदों वारिस शाह नूं वंडिया सी,/हुन शिव कुमार दी वारी।
ओह जख्म पुराने भुल भी गए,/नविया दी जो फेर त्यारी।"[2]

इन लाईनों के माध्यम से कवि ने भारत-पाक विभाजन और उसके

उत्पन्न कुप्रभाव का स्पष्ट वर्णन किया है। उन्हीं परिस्थितियों का फिर से होना अर्थात् फिर से वही विषमतायों का समाज में आने को कवि कटाक्षता से विश्लेषित करता है। अतीत के जख्म, वेदना, हिजर की अभी तक भरपाई नहीं हो पाई और नयें जख्मों, दर्दों का आभास पुनः होता दिखाई दे रहा है। भविष्य में आने वाले दर्द को सजीवता से बताने का प्रयास कवि कर रहा है।मैं समझता हूँ कि पातर ने जिस दर्द की बात की वह आज हमारे सामने केंद्र सरकार द्वारा पारित किये गये (किसान अध्यादेश बिल) तीन बिल के रूप में है जिसकी आज भयंकर आलोचना हो रही हैसुरजीत पातर प्रत्येक धर्म को सम्मान देते हैं। वह किसी धर्म के प्रति कट्टर होते दिखाई नहीं देते हैं। समस्त भारत में धर्म के नाम पर फैले अन्धविश्वास और अज्ञानता का खंडन करते हैं। वे धार्मिक विश्वासों में फैली अनेक बुराईयों पर कटाक्ष करते हैं। जिसका सफल चित्रण उनके काव्य में देखने को मिलता है। इसके लिए वे जगत गुरु जो केवल सिक्खों के न होकर समस्त संसार, जगत के है, श्री गुरु नानक देव जी रचित आरती की तुकों का आधार लेते हैं। जिसमें गुरु नानक देव ने परमात्मा की आराधना के लिए उसकी प्रकृति को ही आरती का थाल बनाकर उसकी पूजा की और दुनियावी कर्म-कांडों का खंडन किया। जिसका उदाहरण निम्न रूप से दृष्टव्य है:-

"असमान जिहदे लई थाल जिहा,/सूरज ते चाँद चिराग धरे।
तारे जिस खातिर मोती सन,/ते पवन चवर दिन रात करे।"[3]

पातर के काव्य में पूर्ण और घोर यथार्थवाद का चित्रण है। देश के हालातों की त्रासद स्थिति के साथ लोगों का खामोश होना और सब जबर-जुल्म चुप-चाप बर्दाश्त करना तथा परिस्थितियों के समक्ष घुटने टेकने पर कवि की कलम कटाक्ष करती नजर आती है। देश के लोगों द्वारा भ्रष्टाचार को सहन करना, कष्टमयी तथ्यों के विरुध आवाज बुलंद करना, मानसिक, शारीरिक वेदना से भरकर भी चुप रहने पर कवि व्यंग्य करता हुआ (उसे आत्मा के सोने का नाम देता है) नजर आता है। जिसका प्रमाण निम्न पंक्तियों में देख सकते है:-"अमन शांति शायद, आत्मा दा सौणा है।

जजबियाँ दा मरना है, आदमी दी था उत्ते,/बुत्ता दा उसरना है,
कोके वाले बूटा दा,/लाशा उत्ते तुरना है, ता जो खडक न होवे।"[4]

पंक्तिभाव यह है कि समाज में अमन और शांति होना अनिवार्य है किन्तु देश में भ्रष्टचार, कुव्यवस्था और सामाजिक आर्थिक-मूल्यों के संक्रमण होने के पश्चात भी शांति होना आत्मा की निद्रा के समान हैं। दूसरे शब्दों में यह जज्बा आत्म-सम्मान की मृत्यु होने के सामान है। आदमी का जीवन घुटन एवं कुंठाग्रस्त होने और उसके बुत्तो को जीवित आदमी कीअपेक्षा में प्राथमिकता मिलना ग्लानि-भरा कार्य है। जो आत्मा का निद्रा में होने को प्रस्तुत करता है। नैतिक मूल्यों के होते संक्रमण का कवि कटाक्ष-रुपी भाषा में प्रदर्शन करता है कि कोके वाले बूटों वाला आदमी लाशों पर बिना आवाज किए चलता है और कोई उसका विरोध नहीं करता। देश की लूट एवं धार्मिक दंगों ने देश को विनाश के रास्ते पर लाकर खड़ा कर दिया है। परिणाम स्वरूप मानव की महत्ता का विघटन तथा पैसों की प्रियता दिन-ब-दिन बढ़ रही है। मानवता का ह्रास तथा निर्जीव वस्तुओं सोना और चांदी का मूल्य बढता जा रहा है। आज लाचार, बेबस, गरीब इंसान की उपेक्षा होने लगी है। कृषको और मजदूरों का खून चूसा जाता है।बड़े घरों में इंसान की अपेक्षा कुत्तों, बिल्लियों को अधिक महत्व दिया जाता है। मनुष्य के प्रति मनुष्य का यह व्यवहार समाज में लाचारी, बेबसी, घुटन, संताप, द्वन्दात्मक स्थिति, मनुष्य की मनुष्य के प्रति हीनता के भाव को पातर की पैनी दृष्टि ने नजदीक से देखा तथा उसका व्यंग्यात्मक रूप से बखूब चित्रण किया:-

"सस्तियाँ ऐथे बहुत जमीरा महिंगियाँ बहुत जमीना
महंगा राणीहार ते सस्ता सधरा भरियां सीना
दिल दा निघ न मंगे कोई सब मंगदे पश्मीना।"[5]

कवि स्पष्ट करता हुआ कहता है कि हमारे समाज की यह कड़वा सच है कि यहाँ पर मनुष्य के आचरण और व्यक्तित्व का कोई मूल्य नहीं है। केवल पैसें, जमीन-जयदाद को ही प्राथमिकता दी जाती है।जमीरों का सस्ता होना और जमीनों का महंगा होना इसी सत्य का प्रमाण है। सोना और चाँदी की अपेक्षा सत्य, विश्वास और सच्चे आचरण की कोई महत्ता नहीं है। भौतिक वस्तुओं के मोहजाल में फँसा संसार इन वस्तुओं के आराम का ही आनंद मानना चाहता है। पातर की सूक्ष्म, पैनी दृष्टि से देश में मची छोटी सी भी हलचल और उसके दुष्परिणाम नहीं छिप पाते। स्वतंत्रता पश्चात् शिक्षा का समान अधिकार सबको मिला। किन्तु पंजाब में शिक्षा का एक अलग अंदाज दिखाई पड़ा। अंग्रेजी सीखने की अंधाधुंध दौड़ ने देशवासियों को उनकी माँ-बोली से भिन्न कर दिया। परिणामस्वरूप पंजाबी के ठेठ शब्दों के स्थान पर अंग्रेजी का प्रयोग इतना बड़ा अंग्रेजी, पंजाबी में घुल मिल गई। पंजाबी भाषा के घुटते दम और उसको विनाश्ता से रोकने के लिए पातर अधिक चिंतक होते हुए सभी पंजाबियों को इससे अवगत कराते तथा भविष्य में सुचेत करते हैं:

"अम्मी ते अब्बा नहीं रहे, बीजी ते पापा वी तुर गए
ददेसा फफेसा ममेसा दी गल ही छड्डो, किन्ने रिश्ते
सिर्फ आंटी ते अंकल ने कर दित्ते हालों बेहाल,/ते कल कह रिहा
सी/पंजाब दे विहड़े विच इक छोटा जिहा बाल
पापा आपने टरी दे सारे लीवज कर रहे ने फाल।"[6]

पातर के काव्य में प्रेम का एक अलग स्वरूप सामने आता है। उन्होंने प्रेम भाव में स्वयं की वफा तथा प्रेमिका को बेवफा के नाम से विभूषित नहीं किया। उनके प्रेम अनुभव में आदर्शवाद चरित्रवान मूल्य नहीं झलकता अपितु वे तो यथार्थ से ओत-प्रोत तथा तर्क की कसौटी पर कसकर प्रस्तुत हुआ है। क्योंकि ग्रामीण जीवन में प्रेम जंजीरों में बंधा पड़ा है। सभ्याचार के खोखले नियम प्रेम को पलीत करते है। पातर की प्रेम भावना में जिस्मानी आनंद के साथ रूहानी तृप्ति को बयाँ करने के साथ-साथ प्रेम के कष्टमय स्वरूप, उसके रास्ते में आने वाली परम्पराएँ, आदर्श, पूर्वजों के उपदेश का व्यंग्यात्मक, उपहासात्मक, कटाक्ष शैली, स्वयं-वेदना में बाखूब वर्णन किया है:-

"मैं तुरदा हा तेरे वेल्ल ता पैरा हेठपवित्र पुस्तकां दे पन्ने ओंदे ने
लौरियाँ ओंदियाँ ने मेरी माँ दियाँ
मेरे पैरां हेठ ओंदी है,
अखबार छपी मेरी तस्वीर।"[7]

पातर की रचनाओं पर फैले नक्सलवाद का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। पंजाब ने प्रारम्भ से वर्तमान तक हिंसा, अराजकता, जबर-जुल्म को देखा और अपने जिस्म पर झेला भी है। प्रस्थितियाँ सदैव कष्टमय,पअसंतोष भरी तथा त्रासद रही है। पातर की सूक्ष्म दृष्टि ने इन विषयों पर गंभीरता पूर्वक अपनी रचनओं के माध्यम से निजात पाने तथा पुनः इस हालात को उभरने से रोकने के लिए हिंसा, अराजकता का त्याग पक्ष प्रस्तुत किया है।आने वाली पीढियों को इस अराजकता, भ्रष्टचार, हिंसा से सुरक्षित करने हेतु वर्तमान चेतना अन्दोलन के लिए प्रेरित करता हुआ कवि गम्भीरता से विचरता है। जिसका यथार्थ वर्णन निम्न पंक्तियों में देख सकते हैं:-

"पर उस लई धरती ते रुमक्दी हवा
वी छड के जाओसाह ले सके उस दी आत्मा आराम नाल
ऐसी फिजा भी छड के जाओ।"[8]

उक्त पंक्तियों में कवि कहता है कि प्रत्येक माता-पिता अपने बच्चों के लिए अच्छे भविष्य की कामना करते हैं। वे उनके लिए सभी सुख-सुविधाएँ प्रदान करना चाहते है। कवि इन पंक्तियों के माध्यम से आने वाली पीढ़ियों के लिए भ्रष्टचार को समाप्त करने की कामना करता है। संसारिक सुख-सुविधाओं के साथ आने वाली पीढ़ियों के लिए शुद्ध वातावरण, शुद्ध वायु एवं शुद्ध प्रकृति को संभाल कर रखना भी अनिवार्य है। लोकतंत्र के लागु होने के पश्चात देश की नाजुक प्रस्थितियाँ उनसे उभरती और असतुंष्ट प्रस्थितियों का कवि की कलम गंभीर चिन्तन करती उनकी प्रत्येक पुस्तक में दिखाई देती है। स्वतंत्रता, स्वतंत्रता दिवस पंजाब के कच्चे जख्मों को प्रत्येक वर्ष उधेड़ता तथा विभाजन के फट को तरोताजा करता है:-

"नवें पंजाब दे शगना भरे,
आसां भरे दिन ते,
मेरे मनहूस मन विच
सोग दी इक लहर चलदी है।"[9]

भारत-पाक विभाजन का सबसे अधिक प्रभाव पंजाब पर पड़ा। पंजाब का दो भागों में बंटना, आबादी का बहुत बड़े स्तर पर तबादला होने से लाखों लोगों के घर उजड़ने के साथ- साथ उस समय के दंगे-फसादों से होने वाली मौतों ने पंजाब के इतिहास को नया मोड़ देने के साथ ही लोगों के जीवन को भी तहस-नहस कर दिया था। वे आधुनिक समय के चिंतक तथा भविष्य के गहरे चेतक अपनी प्रत्येक कविता छोटी या बड़ी में सहज प्रमाणित होते है:-

"मैं जन्म जन्म तो तप रिहा,
अज हो जाना सी शांत पर
हुन अंस बंस दे रूप विच,
मैं जन्म जन्म तक तपांगा।"[10]

आधुनिक कवि यथार्थ को स्वीकार करते हैं। आधुनिक कविता जो साधारण जन के दुःख उनकी बेबसी-लाचारी आदि को प्रकट करने में समर्थ थी। इनका अनुसरण परवर्ती कवियों ने भी किया जो यथार्थवाद को अपनी रचनाओं में समाये हुए थे। यह देश के दलित, नारी, पीड़ितों की व्यथा को प्रकट करने में पूर्ण सक्षम है। आधुनिक कविता ने दलितों और नारी की यथास्थिति के साथ-साथ उस प्रत्येक शोषित वर्ग की आवाज को मंच दिया जो दब चुका था। जो सदियों से उपेक्षित किया गया था। जिनकी भावनाओं, हकों को कुचला जाता रहा। आदर्शवाद के झूठे ढोंग को नाकारा गया और उसके स्थान पर सच्चे यथार्थवाद को अपनाने पर बल दिया गया।

****

संदर्भ ग्रन्थ सुची:-

1.सुरजीत पातर, 'बिरख अर्ज करे', लोकगीत प्रकाशन चंडीगढ़, पृ.सं-99.
2.वही पृ.सं.-89.
3.वही पृ.सं.-89.
4.वही पृ.सं.-75.
5.सुरजीत पातर, 'लफ्जा दी दरगाह', लोकगीत प्रकाशन चंडीगढ़, पृ.सं-85.
6.सुरजीत पातर, 'सुरजमीन', लोकगीत प्रकाशन चंडीगढ़, 2008, पृ.सं.-50.
7.सुरजीत पातर,'हनेरे विच सुलगदी वर्णमाला, लोकगीत प्रकाशन पृ.सं.-74.
8.सुरजीत पातर,'हनेरे विच सुलगदी वर्णमाला, लोकगीत प्रकाशन पृ.सं.-90.
9.सुरजीत पातर, 'बिरख अर्ज करे', लोकगीत प्रकाशन चंडीगढ़ पृ.सं-86.
10.सुरजीत पातर,'हनेरे विच सुलगदी वर्णमाला',लोकगीत प्रकाशन पृ.सं.-124.

पुणतांबेकर का व्यंग्य : व्यापक तथ्यों की सूक्ष्म अभिव्यक्तियाँ

डॉ. मीना सुतवणी
अध्यक्ष हिन्दी विभाग
एस. जी. कला, विज्ञान व जी. पी. वाणिज्य महाविद्यालय,शिवले,
मुरबाड, जि. ठाणे

प्रस्तावना : परसाई स्कूल के व्यंग्यकार शंकर पुणतांबेकर ने अपनी अनोखी शैली से हिन्दी व्यंग्य साहित्य को एक ऊँचाई प्रदान की है। घर से लेकर विश्व-स्तर तक फैली विसंगतियों को पहचान कर उनकी सूक्ष्मता से पड़ताल की है। उनका व्यंग्य केवल आक्रोश मात्र नहीं है। वैचारिकता, गंभीरता, बौद्धिकता उनके व्यंग्य की विशेषताएँ हैं। बीसवीं सदी के अंतिम दशक तथा इक्कीसवीं सदी के प्रारम्भिक दो दशकों की उनकी रचनाएँ विशेष गौर की माँग करती हैं, जिनमें उनका व्यंग्य सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होता गया है। राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित आठ खंडों- 'शतरंग के खिलाड़ी', 'दुर्घटना से दुर्घटना तक', 'मेरी फाँसी', 'गिद्ध मँडरा रहा है !', 'कटआउट', 'तेरहवाँ डिनर', 'जंगल में' और 'पराजय की जुबली' में विभाजित, समान अनुपात में तराशी, विभिन्न शैलियों में रची उनकी एक हजार रचनाएँ हिन्दी व्यंग्य साहित्य की अमूल्य निधि है। प्रत्येक घटना में व्यंग्य की उपस्थिति को दर्ज करने वाला उपन्यास 'जहाँ देवता मरते हैं !', 'तीन व्यंग्य नाटक' और 'व्यंग्य अमर कोश' कथन चातुरी और गहन आशय का परिचय देते हैं। विधा के रूप में व्यंग्य की अकाट्य वकालत करनेवाले पुणतांबेकर के महोदधि रूपी व्यंग्य संसार से कुछ कणों को यहाँ प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास है।

बीज : व्यंग्य की परिभाषा एवं व्यंग्य के तत्त्व- संकेत, लोकतन्त्र है यह !, वासनाकांड, अजन्ता की एक नई गुफा, बिखरे हुए संदर्भ और एक दौर पर रचनाओं का सूक्ष्म भाव, वस्तु, चुस्त भाषा एवं शैली केन्द्रित अनुशीलन। बिंबों की शृंखला के सहारे छोटी रचना में व्यापक और समाज के लिए घातक विसंगतियों को अनावृत्त करने की कला पर विशेष बात, सम्बन्धों की दूरन्वयिता से विचार प्रवर्तन का अवलोकन।

मुख्य विषय :

पुणतांबेकर के अनुसार "व्यंग्य युग की विसंगतियों की वैदग्ध्यपूर्ण तीखी अभिव्यक्ति है। युग की विसंगतियाँ हमारे चारों ओर के यथार्थ जगत से, वैदग्ध्य इन विसंगतियों को वहन करनेवाले शैली-सौष्ठव से तथा तीखापन विसंगति एवं वैदग्ध्य के चेतना पर पड़नेवाले मिले-जुले प्रभाव से संबन्धित है।"[1] स्पष्ट है कि उनकी दृष्टि में विसंगति, विदग्धता और तीखापन व्यंग्य को आकार देनेवाले तत्त्व हैं। विसंगति की यथार्थता के साथ यह देखना जरूरी है कि वह कितनी व्यापक और अनुपेक्षणीय हैं। विदग्धता से तात्पर्य केवल शब्दों की जादूगरी से नहीं तो विसंगति को तीखेपन से प्रस्तुत करने में है। जिसका पूरा ध्यान पुणतांबेकर ने अपने व्यावहारिक पक्ष में रखा है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए उनकी कुछ रचनाओं का अनुशीलन यहाँ प्रस्तुत हैं। **'लोकतन्त्र है यह !'** लोकतन्त्र में आम आदमी की स्थिति को दर्शाता है। किस्सा-गोई शैली में लिखा गया यह व्यंग्य औत्सुक्य को बढ़ाता हुआ शासक की क्रूरता की चरम परिणति को उद्घाटित करता है। राजनीति का यथार्थ है कि राजा (नेता) लोकवस्त्र तो धारण करता है, लोकआत्मा नहीं। 'लोकवस्त्र' और 'लोकआत्मा' लोकतन्त्र पर सटीक भाष्य करने वाले 'की-वर्ड' हैं। ढाई पृष्ठ की यह रचना राजनीति के सम्पूर्ण कुरूप को खोलती है। विरोधी जब राजा के उल्टे-सीधे आदेश पर आवाज उठाते हैं तो दरबारी राजा को समझाते हैं 'मुकुट और राजसी वस्त्र पहनकर राजा उल्टे-सीधे आदेश नहीं दे सकता'। उसे चाहिए कि वह 'लोकवस्त्र' धारण करें। आशय यह है कि राजतन्त्र में राजा जितना निरंकुश नहीं था, उतना लोकतन्त्र में है। यही व्यथा प्रस्तुत व्यंग्य को आकार देती है। यह तन्त्र जन के द्वारा जन के लिए नहीं है, तो धन के द्वारा धन के लिए है। व्यंग्य में राजा, उसका महल, दरबारी तथा महल के बाहर के आउट हाउस में रहने वाले आदमी की कल्पना की गयी है। राजा से नेता के सत्ता और अधिकार पका, महल से विलासिता का, दरबारी से चाटुकारों का बोध होता है।शब्द अपनी सामासिकता में व्यंग्यार्थ को विस्तार देते हैं। आदमी जनता का प्रतिनिधि है। जनता द्वारा चुनी गयी सरकारे कानून बनाने का संवैधानिक अधिकार प्राप्त कर लेती हैं, और नेता जो स्वयं सरकार है, अपने हित में कानून तोड़ता जाता है।

'जन-आंदोलन तहस-नहस किये जाते हैं । कार्य पालिका का दायित्व है- कानून के रूप में जनता की इच्छा का कार्यान्वयन करना' । विडम्बना है कि यहाँ अमल राजा की इच्छा पर होता है, जनता की नहीं । जनता की इच्छा का दखल तो दिखावे भर के लिए होता है । आउट हाउस का आदमी राजा की इच्छाएँ- शासन की सालगिरह पर ऊँची दावत देने की, तिरुपति जाने की, सामान्य बीमारी के इलाज के लिए विदेश जाने की, अपने महल पर सोने के कंगूरे चढ़ने की, कगूरों के खिलाफ आवाज उठाने वाले लोगों पर गोलियाँ दागने की, का विरोध करता है । वह नहीं चाहता कि आम आदमी भूखा मरे और राजा दावत उड़ाए, तिरुपति जाकर राजा पुण्य कमाये और पाप आदमी को भूखा रहकर भुगतना पड़े, राजा जिंदा रहने के लिए विदेश जाए और जनता लाइलाज मरे, बारिश में गरीबों की छतें टपकती रहे और राजा के महल पर सोने के कंगूरे चढ़े, अपने ही भाइयों की हत्या को वह नहीं सह सकता अत: गोलियाँ दागने की इजाजत नहीं देता । पर देश की तिजोरी कितनी ही खाली हो जाए राजा सब-कुछ करके ही रहता है । आदमी की एक नहीं चलती । अंतत: राजा गोलियों से मरे लोगों के परिवार वालों के लिए एक लाख रुपयों की सहायता राशि देने की इजाजत मांगता है, सरकारी तिजोरी का धन बाँट कर अपनी बिगड़ी तस्वीर को सँवारने का यह एक आसान तरीका है । आदमी के विरोध के बावजूद धन बाँटा जाता है । शोकांतिका है कि लोकतन्त्र में जनता जो असली राजा है, आउट हाउस में हैं, लोक-वस्त्र (खादी) धारण कर जन-सेवा का स्वांग भरने वाला नेता महल में आराम फरमा रहा है । उसके गरीब होने से देश की इज्जत जाती रहती है, देश के गरीब होने से नहीं । लोकतन्त्र में नेता को जनता के साथ-साथ जीना और मारना चाहिए, पर ऐसा नहीं हो रहा है, उसके स्वार्थ के सम्मुख विवेक और मानवीयता परास्त है। लेखक उसे जतलाना चाहता है- "वह है तो आप है ।...वह बोता है तब कहीं आप काटते हैं...वह जागता है तब कहीं आप सोते हैं, वह चलता है तब कहीं आप उड़ते हैं ।"[2] नेता की स्वार्थ-पूर्ण गतिविधियों के साथ जनता की बेहाली का दुरान्वयी संदर्भ भी । व्यंग्यकार का आलंबन हमेशा से एक जैसा नहीं रहता। **वासनाकांड** रचना में जहाँ पत्रकारों का चरित्र लेखक के निशाने पर है, वहाँ जन चरित्र भी । जलगांव वासनाकांड को लेकर इन चरित्रों का आचरण तथा इनकी प्रतिक्रियाओं पर प्रस्तुत रचना में तीखी रोशनी डाली गयी है । इस कांड से जुड़े बड़े घरानों के नामों के विषय में अखबारों की चुप्पी विचारणीय तथ्य है । बड़े-बड़े अधिष्ठित और प्रतिष्ठित व्यक्ति सैकड़ों महिलाओं को अपनी हवश का शिकार बनाते हैं और महिलाएँ अपने पर हुए अत्याचार के बारे में खुलकर नहीं बोल पाती, तभी बरसों तक यह कांड चलता रहता है । जो अखबार बड़ी मछलियों के नामों से परहेज करते हैं, वे ही इस कांड से संबन्धित मसालेदार तथ्यों से अपने अखबार को लबालब भर देते हैं, तो विसंगति निर्माण होती है । पीड़ित महिलाओं को न्याय दिलाने का दायित्वबोध न अखबार में है, न जन-सामान्य में । मोर्चे तो निकल रहे हैं, पर सम्मिलितों का वास्ता केवल फोटू तक है । अखबार से छूने भर का वास्ता रखने वाले उसे चाव से पढ़ रहे हैं । हर कोई बहती गंगा में हाथ धो रहा है । निर्भीक कहलाने वाले पत्रकार भी धन, प्रतिष्ठा के पीछे अपने दयित्त्व को भूल बैठे हैं । स्तुति व्यक्ति की कमजोरी है, फिर वह कितना भी निर्लिप्त क्यों न हो । तभी तो अधीशों का भंडाफोड़ करने निकला रचना का निर्भीक नायक वासना कांड पर लिखने के बजाय टीवी सीरियल को लिखने की सोचता है । ऐसे मामलों में समाज और व्यक्ति की दायित्त्व हीनता चिंता का विषय है । लेखकीय अपील है कि पत्रकारों को, बुद्धिजीवियों को स्वार्थ त्याग कर आगे आना होगा । वह कहता है- "बुद्धिजीवी बिक जाता है तभी तो वासनाकांड जैसे कांड खुलकर सामने नहीं आते और बड़ी मछलियाँ छूट जाती हैं ।"[3]बिम्बों की शृंखला व्यंग्य की विशेषता है। कोई मंजा हुआ व्यंग्यकार ही एक छोटी सी रचना में इस कारीगरी को साध सकता है । पुणतांबेकर इसमें सिद्धहस्त हैं। उनकी व्यंग्य रचना **अजन्ता की एक नई गुफा** इसका बेमिसाल उदाहरण है । डेढ़ पृष्ठ की यह चुस्त रचना कितनी ही विसंगतियों को कलात्मकता के साथ प्रस्तुत करती है । प्रारम्भिक दो-तीन छोटे परिच्छेदों में ही लेखक कला, दराजनीति, साहित्य, समाज, धर्म, बेरोजगारी पर भाष्य कर देता है; यथा- "कल के नेहरू और वर्तमान के प्रेमचन्द मेरे लिए तुच्छ हैं । एक को उदय से साथ हाथ जोड़ता हूँ, तो दूसरे को अस्त के बाद याद करता हूँ ।"[4] आशय यह है कि पुराने आदर्शों को राजनीति ने भुला दिया है, जो गांधी, नेहरू, शास्त्री ने स्थापित किये थे । तत्त्वहीन राजनीति, भ्रष्ट राजनेता और स्वार्थ-वश उनके उदय के साथ ही उन्हें प्रणाम करने वाले चाटुकार यहाँ लेखक के निशाने पर हैं । प्रेमचन्द ऐसे साहित्यकारों के प्रतिनिधि के रूप में यहाँ प्रस्तुत हैं, जिन्हें मृत्यु के बाद ही प्रतिष्ठा मिली है । पुरानी गुफाओं की तरह ही कटी लेखक की कल्पना की यह नई गुफा यथार्थ पंथियों की है । यह काम किसी एक का नहीं, समूह का, बल्कि भूख-हड़तालियों का जान पड़ता है । "वरना पहाड़ी पत्थर ऐसे आसानी से कटकर घर बनने देते हैं क्या ?"[5] पत्थर संवेदनहीन नेता और जड़, स्वार्थान्ध व्यवस्था का प्रतीक है । आगे लेखक यह संकेत भी देता है कि बिका हुआ कलाकार जिन्दा आर्ट पैदा नहीं कर सकता । "जिन्दा आर्ट या तो धर्म की आत्मा पैदा करती है या भूख की पीड़ा । धर्म तो आज स्वयं व्यवसाय बन गया है, सो ये चित्र उन आर्टिस्टों ने पैदा किए हों जो बेरोज़गार रहे होंगे, जो अन्याय-अत्याचार के शिकार बने होंगे । किसी ने न कहा हो तो मैं कहता हूँ- हिलानेवाली क्रान्ति और कला का जन्म भूख में से ही होता है ।"[6] स्पष्ट है कि गुफा के चित्र और शिल्प व्यवस्था को धता बतानेवाले हैं, उसकी आलोचना करने वाले हैं । विदग्धता पुणतांबेकर के व्यंग्यों का प्राण है, उनकी इस प्रकार की गहरे आशय वाली चोटें व्यक्ति में हलचल पैदा करती हैं । इसी रचना में आगे लेखक गुफा की मूर्तियों और चित्रों की कल्पना करते हुए कई विसंगतियों को खोलता है । पत्थर से बनी यथार्थ देवता नेता, पूंजीपति, उच्च-वर्ग का प्रतीक है, जिनकी संवेदनाएँ मरी हुई होती हैं । संवेदनहीन व्यक्ति विवेक-अविवेक का विचार नहीं करता, धन कमाने के किसी भी तरीके से उसे परहेज नहीं होता । उसका अष्ट-सिद्धि और नवनिधि प्राप्त करना इसी बात का ध्वनन करता है । चुनाव विजय की शोभा यात्रा का चित्र लेखक आँकता है, जिसमें कौवा चुनाव जीता है । धूर्तता, ढोंग, संवेदनहीनता, मूर्खता आदि की अभिव्यक्ति के लिए यहाँ कौवा, बगुला, गिद्ध, उल्लू इन प्रतीकों का प्रयोग किया गया है । धूर्त, ढोंगी, मोटी खाल वाला, मूर्ख कहने से जो भाव व्यक्त नहीं होता वह कौवा, बगुला, गिद्ध, उल्लू कहने से होता है । ये प्रतीक कहीं ज्यादा मारक हैं । इन्हीं विशेषताओं से युक्त लोग राजनीति में मौजूद हैं । सूअर और सियार अवसरवादी कार्य-कर्ता का प्रतीक हैं । हंस, मोर, कबूतर, कोयल जो नीर-क्षीर विवेक, सौन्दर्य, शांति, कला के प्रतीक हैं, इनसे युक्त चिंतक, विद्वान, बुद्धिजीवी आज उपेक्षित है या बिके हुए । एक चित्र में गधे को स्वर्ण से तोला जा रहा है, अयोग्य, मूर्ख को प्राप्त सम्मान यहाँ चोट का विषय है । गुफा की अष्टधातु- झूठ, बेशर्मी, बेरुखी. लोलुपता, शोषण, धूर्तता, अहन्ता, स्वछंदता से बनी मूर्ति नेता के चरित्र को दर्शाती है । एक चित्र सत्ता द्वारा दुर्बल, हताश के शोषण की परिसीमा को व्यक्त करता है; व्यक्त करता है; यथा- "मंत्री पंचतारा होटल का उदघाटन कर रहा है । उदघाटन के बाद वह चीलों-गिद्धों के साथ बफे में सम्मिलित है । वे लोग प्लेटों में अपनी मर्जी से मुर्गी को, बेरोजगार को, कबाब को औरत को, पुलाव को, चरित्रवान को, बिरयानी को, देशभक्त को ले ले कर खा रहे हैं ।"[7] गधे का दरबार और उसके नौ रत्न नेतृत्व के यथार्थ पर भाष्य करते हैं । हंस का बगुले को अभिनंदन ग्रंथ भेंट देना, गरीब-भक्षित का 'पद्मभूषण' से गौरवान्वित होना, एक देशरत्न का स्विस बैंक में अशर्फ़ियों के थैले जमा करना, चाँदी की ईटों के चबूतरे पर बैठकर डेरीवाले का दूध में पनि मिलाना, भगवान की प्रतिमा में बैठे पुजारी का दक्षिणा पर हाथ मारना, दूल्हे का लकड़ी की डोली की वधू को जलाकर चाँदी की डोली का वरण करना, उल्लू के बच्चे का कैपिटेशन फीस के साथ प्रवेश पाना, इंटरव्यू लेने वाले का उम्मीदवार को जाती की कसौटी पर परखना, राजा के पुष्पक विमान का रक्त के पेट्रोल से आकाश में उड़ाने भरना, डाक्टर का स्टेथस्कोप से मरीज की जेब जाँचना जैसे चित्रों की कल्पना कर पुणतांबेकर बहुआयामी विसंगतियों पर अचूक निशाना साधते हैं ।अपनी सामासिकता में इतने अर्थगर्भित बिम्बों को पुणतांबेकर ही एक साथ उभार सकते हैं, अपने व्यंग्य रूपी नावक के तीरों से ।

बिखरे हुए संदर्भ' पुणतांबेकर की विचारोत्तेजक रचना है। रचना दर्शाती है कि समाज, संस्कृति का बाहयांग टूट-फूट सकता है, पर उसकी आत्मा का क्षरण घातक है । हमारे शिक्षा-दीक्षा, आचार-विचार, धर्म-अर्थ सबकुछ देह केन्द्रित हैं, आत्मा केन्द्रित नहीं इसीलिए समाज और संस्कृति के बिखरे हुए संदर्भों को समेटना दुर्धर कार्य बन गया है । बहुगुणा जैसे सड़ीगली व्यवस्था का अंग बने तथाकथित विद्वान या ऐसी व्यवस्था के निर्माता राजनेता इसे ठीक नहीं कर

'फैंटेसी' के शिल्पकार-कवि गजानन माधव मुक्तिबोध

डॉ.एन.पी. प्रजापति
विभागाध्यक्ष हिंदी
शासकीय अग्रणी स्नातकोत्तर महाविद्यालय बैढन,जिला -सिंगरौली -म.प्र.

सारांश:-सर्वहारा वर्ग के प्रतिनिधि,प्रयोगवादी कवि

गजानन माधव मुक्तिबोध का जन्म तत्कालीन ग्वालियर राज्य श्योपुर जिला मुरैना में 14 नवम्बर 1917 ई को हुआ था। इन्होंने छात्र जीवन से ही लेखन कार्य आरम्भ कर दिया था। 1938 में इन्दौर में अपनी बुआ के यहां रहते हुए उन्होंने शान्ता बाई नामक पड़ोस की एक युवती से प्रेम विवाह किया था. मुक्तिबोध हिन्दी कविता को सर्वथा नवीन दिशा की ओर ले जाने वाले साम्यवादी विचारधारा करके चलने वाले, तेजस्वी विचारक तथा आर्थ चारिकताओं से सदा दूर रहने वाले और अभावों से जूझने वाले प्रयोगवादी कवि । मुक्तिबोध की रचनाओं में काव्य - ग्रंथ 'चांद का मुंह टेढ़ा है' प्रसिद्ध है। इसके अन्य ग्रंथों में एक साहित्यिक की डायरी, कामायनी एक पुनर्विचार नई कविता का आत्मसंघर्ष 'भारत इतिहास और संस्कृति' नामक ग्रंथ प्रमुख है। मुक्तिबोध के समस्य काव्य मूल्यों के मूल में यह अन्तः संघर्ष किसी न किसी रूप से अवस्थित है। यह कभी समाप्त नही होता बल्कि व्यक्तित्व का सामाजिक अन्तर्विरोध तथा विसंगतियों से बराबर संघर्ष जारी रहता है।समाज में सक्षम वर्ग गरीब वर्ग का शोषण हर स्तर पर करता ही है . इसी सन्दर्भ मेंउनकी एक कविता "एक भूतपूर्व विद्रोही का आत्मकथ्य से लिया ग या उदाहरण भी देखें

"खूबसूरत कमरों में कई बार
हमारी आंखों के सामने/हमारे विद्रोह के बावजूद
बलात्कार किये गये/नक्षीदार कक्षों में
दबले-पिघलते हुए एक भाप बन गये।"

भूमिका -

गजानन माधव मुक्तिबोध सच्चे अर्थों में मानवता के कवि हैं उनकी रचनाओं में शोषण -उत्पीडन का चित्रण हमे सर्वत्र मिल जाता है . 'चांद का मुंह टेढ़ा है', 'एक साहित्यिक की डायरी' या 'सतह से उठता आदमी' या 'विपात्र' को कविताओ को जितने बार पढिये परत दर परत कई अर्थों में खुलती हैं.

"ओ मेरे आदर्शवादी मन,
ओ मेरे सिद्धान्तवादी मन,
अब तक क्या किया?
जीवन क्या जिया!!

वर्तमान में भी सिद्धांत की बातें करने वालों की कमी नही है लेकिन जब वास्तविक व्यवहारिक जीवन में देखिये तो कितने हद दर्जे तक ऐसे लोग स्वार्थी होते हैं और साजिस करके गरीबों का शोषण करते हैं

उदरम्भरि बन अनात्म बन गये,
भूतों की शादी में क़नात-से तन गये,
किसी व्यभिचारी के बन गये बिस्तर,
***
मर गया देश, अरे जीवित रह गये तुम!!
लो-हित-पिता को घर से निकाल दिया,
जन-मन-करुणा-सी माँ को हंकाल दिया,
स्वार्थों के टेरियार कुत्तों को पाल लिया,
भावना के कर्तव्य--त्याग दिये,
हृदय के मन्तव्य--मार डाले!
बुद्धि का भाल ही फोड़ दिया, /तर्कों के हाथ उखाड़ दिये,
जम गये, जाम हुए, फँस गये,
अपने ही कीचड़ में धँस गये!!
विवेक बघार डाला स्वार्थों के तेल में
आदर्श खा गये![1]

फैंटेसी का अर्थ और स्वरूप -मुक्तिबोध ने अभिव्यक्ति के लिए फैटेसी के शिल्प को चुना था जिसमें मिथक, प्रतीक, रूपक, उपमा , बिम्ब आदि विभिन्न उपकरण घुल - मिलकर आए । वस्तुतः "फैटेसी" आपके लिए एक नया शब्द है जो हिन्दी का अपना न होकर अंग्रेजी का शब्द है। अतः इसके अर्थ के साथ ही फैटैसी के स्वरूप, उसकी प्रकृति के विषय में मनो विश्लेषणवादी मनोवैज्ञानिकों, क्रिस्टोफर, काडवेल, जैसे समर्थ चिंतकों की मान्यताओं पर भी विचार करना जरूरी है। फैटेसी का मुक्तिबोध सम्मत अर्थ "एक साहित्यकार के स्वप्न के भीतर स्वप्न, विचारधारा के भीतर और एक प्रच्छन्न विचारधारा कथ्य के भीतर एक और कथ्य मस्तिष्क के भीतर एक और मस्तिष्क, कक्ष के भीतर एक और गुप्त कक्ष है। "
मुक्तिबोध ने मानव जीवन की जटिल संवेदनाओं और उसके अन्तर्द्वंद्वों की सर्जनात्मक अभिव्यक्ति के लिए फैटेसियों का कलात्मक उपयोग किया है। 'फैटेसी' में कल्पनाओं और विचारों की परतें एक के बाद एक खुलती जाती है और कवि की मानसिक उर्वरता का सही बोध पाठकों के समक्ष उपस्थित होता है।'फैटेसी' शब्द का निर्माण युनानी शब्द 'फैटेसिया' से हुआ है। जिसका अर्थ है मनुष्य की व ह क्षमता जो संभाव्य संसार की सृजना करती है। मुक्तिबोध के अनु सार -
'फैटेसी मन की निगूढ़ वृतियों का अनुभूत जीवन समस्याओं का इ च्छित विश्वासों और इच्छित जीवन स्थितियों का प्रक्षेप है।

मुक्तिबोध के काव्य में फैटेसी-

मुक्तिबोध की अनेक कविताएं फैटेसीपरक कविताएं हैं यथा - ब्रह्माराक्षस, अंधेरे में, लकड़ी का रावण आदि।

चांद का मुंह टेढा है, में मुक्तिबोध की जो कविताएं संकलित हैं उन में दो कविताएं ब्रहमाराक्षस एवं अंधेरे में अपनी फैटैसी के कारण अधिक चर्चित रही है। यहां इन दोनों कविताओं के मन्तव्य को त था उसकी फैटेसी को व्यक्त किया जा रहा है।

गजानन माधव मुक्तिबोध सर्वहारा वर्ग की पीड़ा को अभिव्यक्ति देने वाले कवि हैं उनकी 17 कविताएं अज्ञेय द्वारा सम्पादित तार-सप्तक में संकलित हैं। इसके अलावा उनका एक अन्य काव्य संग्रह 'चांद का मुंह टेढा है' भी प्रकाशित हुआ जिसमें 28 कविताएं सं कलित हैं। तार सप्तक में संकलित कविताओं में अधिकांश विषय की दृष्टि से प्रगतिवादी, किन्तु शिल्प की दृष्टि से छायावादी है। इन कविताओं में प्रमुख हैं आत्मा के मित्र मेरे, मृत्यु और कवि, हे म हान, और नाश देवता। उनकी प्रगतिवादी दृष्टि परिवेश बोध, सामाजि क चिन्तन और अनुभव वैविध्य पर आधारित दिखाई पड़ती है। उन्हें लगता है कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में इतनी पीड़ा भ री हुई है कि उस पर एक महाकाव्य लिखा जा सकता है।

"मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक पत्थर में चमकता हीरा है।
हर एक छाती में आत्मा अधीरा है।
प्रत्येक सुस्मिता में विमल सदानीरा है
मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक वाणी में महाकाव्य पीड़ा है।

कवि मुक्तिबोध के हृदय में दीन हीन शोषित सर्वहारा के प्रति सच्ची सहानुभूति है वे एक शोष णमुक्त समाज का निर्माण करना चाहते थे वे लिखते हैं -

समस्या एक
मेरे सभ्य नगरों और ग्रामों में
सभी मानव/सुखी, सुन्दर व शोषण मुक्त
कब होंगे?[2]

ब्रह्माराक्षस कविता में फैंटेसी:-

इस कविता में ब्रह्माराक्षस मध्यवर्ग की बौद्धिक चेतना का प्रतीक है। इस चेतना के कारण यह मुक्ति के लिए छटपटाता है। जीवन पर्यन्त जो ज्ञान वह अर्जित करता है उसी से अपनी मुक्ति का पथ खोजता है। पर मुक्ति के इस प्रयास में वह और भी उलझता जा ता है। यहां संकेत यह है कि व्यक्ति प्राप्त ज्ञान को व्यावहारिक न ही बना पाता उसे क्रिया में परिणत नही कर पाता। परिमाणतः भट कता रहता है तथा कुंठा व निराशा का शिकार हो जाता है। यहां कवि यह कहना चाहता है कि संचित अनुभव और ज्ञान तभी सा थर्क होता है जब वह निरंतर विकसित होता रहे और भावी ज्ञान की आधारशिला बने। यदि ऐसा नही होगा तो अतीत का ज्ञानात्म क संवेदन और अनुभव व्यर्थ प्रमाणित हो जाएगा।

मूलबद्ध संस्कारों के कारण विकसित 'पाप छाया' से 'आत्मशुद्धि' के लिए वह निरन्तर बावड़ी में स्नान करता हुआ अपनी देह घि सता रहता है किन्तु उसका मैल कम होने के बजाय बढता ही जाता है।

गहन अनुमानिता/तन की मलिनता
दूर करने के लिए प्रतिफल
पाप छाया दूर करने के लिए दिन रात
स्वच्छ करने/ब्रह्माराक्षस
घिस रहा है देह
हाथ के पंजे बराबर
बाह छाती मुंह छपाछप
खूब करते साफ/फिर भी मैल

बुद्धिजीवी की यही विडम्बना है। वह प्रत्येक विचारक के अंत की मनोनुकूल व्याख्या करता हुआ उसी में उलझा रहता है। उसका अपूर्ण ज्ञान उसे दम्भी बना देता है इसलिए तिरछी पड़ी रवि रश्मि को देखकर उसे लगता है कि सूर्य भी उसे झुककर प्रणाम कर र हा है।

वस्तुतः ब्रह्माराक्षस की ट्रेजिडी आज के बुद्धिजीवी की ट्रेजिडी है। वह ज्ञानोपार्जन करके भी मनोवांछित परिवर्तन नही कर पाता। इस प्रक्रिया में वह जो प्रयत्न करता है वे असफल हो जाते हैं। परिणा मतः वह निराशा और कुण्ठा से भर जाता है। उसकी मूल विड म्बना यह है कि वह **अपनी** उपलब्धतता को क्रिया में नहीं बदल पाता, परिणामत अन्तः बाह्य संघर्ष में जूझता रहता है।

मुक्तिबोध की धारणा थी कि अतीत से पूरी तरह टूटकर कोई भी वर्तमान सार्थक भविष्य का रूप नही ले सकता। इस कविता में वे इसी विचारधारा को प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त करना चाहते हैं। ब्रह्माराक्षस अतीत की बौद्धिक चेतना है जो बावड़ी रूपी वर्तमान समूह मन में रहता है और अपनी आत्मा के अन्वेषण में रत है। मुक्तिबोध अपनी फैंटेसियों में प्रतीकों का माध्यम ग्रहण करते हैं वे सामान्य भाषा में नहीं अपितु प्रतीकों और बिम्बो की भाषा में बोलते हैं।

अंधेरे में, फैंटेसी का प्रयोग :-

मुक्तिबोध की यह लम्बी कविता लगभग 45 पृष्ठों की है और उन के काव्य संकलन चांद का मुंह टेढा है में संकलित है। इस कवि ता का प्रारम्भ भी कवि ने 'फैंटसी के ' वातावरण से किया हैं उदाहरण देखिये- -

वृक्षों के अंधेरे में छिपी हुई किसी एक
तिलस्मी खोह का शिलाद्वार/खुलता है धड़ से
घूमती है लाल-लाल मशाल अजीब-सी
अन्तराल बिवर के तम में/लाल-लाल कुहरा
कुहरे में सामने रक्तालोक स्नात पुरुष एक
रहस्य साक्षात्।

इस कविता में दो रक्तालोक स्नात पुरुष है। इनमें से एक तो अंधेरे कमरों में चक्कर लगा रहा है और दूसरा बाहर तालाब की लहरों में अपना चेहरा देखता हुआ भीतर आने के लिए सांकल बजा रहा है। वस्तुतः ये दोनों रक्तालोक स्नात पुरुष क्रमशः सामाजिकता एवं कविता के प्रतीक है। मुक्तिबोध इन प्रतीकों के माध्यम से यह कहना चाहते हैं कि मनुष्य की पूर्ण सम्भावनाएं तभी प्रकट होगी जब क विता सामाजिकता को ग्रहण कर ले और समाज कविता को अंगी कार कर ले। मुक्तिबोध की कुछ अन्य कविताएं यथा - "दिमागी गुहान्धकार का ओरांग ऊटांग" और "लकड़ी का बना रावण" भी फैंटेसी परक कविताएं है। ओटांग ऊटांग से कवि का अभिप्राय मन की भी तरी परतों में दबे अवचेतन से है यथा -

कोठे के सावले गुहान्धकार में
मजबूत सन्दूक दृढ़ भारी भरकम
और उस सन्दूक के भीतर कोई बन्द है
यक्ष, या कि ओरांग ऊटांग, हाय

"लकड़ी के बने रावण" को डॉ. इन्द्रनाथ मदान ने उस काव्य नाय क का प्रतीक माना है जो अपने परिवेश से कट गया है वह शिख र पर अकेला खड़ा है -

अपने मोह से घिरा हुआ है। इसे यदि माक्र्सवादी दृष्टि से देखें तो यह रावण पूँजीजीवादी वर्ग का प्रतीक है जो बस अब नष्ट होने ही वाला है।

मैं मन्त्र कीलित-सा भूमि में गड़ा-सा
जब खड़ा हूँ/अब गिरा तब गिरा
इसी पल कि उस पल।

निष्कर्ष :

समग्रतः यह कहा जा सकता है कि मुक्तिबोध ने अपनी कविताओं में फैंटेसी का सफल प्रयोग किया है। ये फैंटेसियां उनके अन्तर्द्वंद्वग्र स्त मन से ऊद्भूत है किन्तु इनका भावात्मक उद्देश्य तथा सम्वेदनात्म क दिशा है भले ही फैंटेसी मानसिक प्रक्रिया हो, किन्तु सामाजिक यथार्थ से जुड़कर उसने अपनी उपयोगिता सिद्ध कर दी है। मुक्तिबोध मानवीय विडंबनाओं एवं उन्हें सक्रिय प्रतिरोध में रूपांतरित करने वा ले भयावह यथार्थ के लेखक थे; वे जन विरोधी समाज व्यवस्था से निरंतर संघर्ष करते रे; उनकी कविता के बावजूद वजूद का प्रश्न पी ड़ित मनुष्य के वजूद से जुड़ा हुआ था। दूसरे शब्दो में उनकी का व्य प्रक्रिया जीवन प्रक्रिया से अभिन्न थी। मनुष्य जिस तरह अपनी पहचान खोकर फिर से उसे पाने की निर्णायक लड़ाई लड़ रहा है उ से मुक्तिबोध ने कल्पना के स्तर पर संप्रेष्य बनाया है।

मुक्तिबोध की कविताएं आपको प्रेम करना नहीं सिखाती उनकी कवि ताओं में प्रेमी अपनी प्रेमिका को गुलाब नहीं दिया करता ना ही फू लों से उसकी तुलना करता है मुक्तिबोध सच कहते हैं और सच को स्वीकार करने की सलाह देते हैं। वह अभिव्यक्ति के खतरे उठाने की बात किया करते हैं जैसे -

अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे/उठाने ही होंबगे
तोड़ने होंगी ही मठ और गढ़ सब
पहुंचना होगा दुर्गम पहाड़ों के उस पार

****

संदर्भ:-

1. .https://hindi.newsclick.in/mara-gayaa-daesa-arae-jaivaita-raha-gayae-tauma
2. (हिन्दी साहित्य) एन.एन. ओझा
3. प्रतियोगिता हिन्दी साहित्य - अशोक तिवारी
4. हिन्दी गद्य विवेचना, पृष्ठ संख्या 74, संकलन व संपादन प्रो. जवरीमल्ल पारख
5. प्रयोगवाद व प्रगतिवादी काव्यधारा - अज्ञेय

सकते, क्योंकि अपनी दशा (स्वार्थ) में अटके हुए वे दिशा (सद्मार्ग) का ध्यान नहीं रख सकते और संदर्भ बिखर जाते हैं। ऐसे विद्वान और नेता के लिए ज्ञानेश्वर, देशेश्वर गढ़े हुए शब्दों का प्रयोग विदग्धता का दर्शक हैं। पुणतांबेकर लिखते हैं, "विज्ञान ने हमें दूरबीन तो दी,पर उसपर अधिकार अंधों का है।"[8] व्यंग्योक्ति का आशय है, जिनके पास दृष्टि नहीं ऐसे ही सत्तान्ध राष्ट्र और नेता आज अधीश बने हुए हैं, अत: मूल्यों को संवारना मुश्किल है। प्राचीन वृहद पोथी (हमारी प्राचीन संस्कृति) के पृष्ठों का बिखरना संस्कृति का विकृत होना है। बिखरी हुई संस्कृति-शृंखला को कोई निस्पृह विद्वान ही क्रम से लगा सकता है। विडम्बना कि आचार्य बहुगुणा को इसके योग्य समझकर पोथी के पृष्ठों को क्रम से लगाने का काम उन्हें सौपा जाता है। इस बात से बेखबर बहुगुणा पोथी पुस्तकालय को सौप देते हैं और आश्चर्य कि इस आव्हानात्मक कार्य के लिए गौरवान्वित होते हैं। पोथी प्रशस्ति में कहा जाता है- "संकलित पोथी हमारी संस्कृति शृंखला की एक महत्वपूर्ण कड़ी है, यह कड़ी कुछ तीखे तथ्यों पर प्रकाश डालती है। बताती है कि हम कहीं टूटे हैं, बिखरे हुए हैं और अजीब से जुड़े हुए। हम कहीं कोयल से कौआ जुड़ गए हैं, हरिन से गैंडा, हंस से बगुला, पुरुष से षंड। पोथी पुरानी हो, पर यह वर्तमान युग की तीखी तस्वीर कही जा सकती है।"[9] नपुंसक होते जा रहे समाज का इतना सारगर्भित अंकन अन्यत्र दुर्लभ है। प्रशासनिक भ्रष्टाचार के चरमोत्कर्ष को साकार करने वाली रचना है- 'एक दौरे पर'। तहक़ीक़ात के लिए गाँव में आये हुए अफसर के आक्षेपार्ह आचरण का एक चित्र आँककर लेखक इस वर्ग की बेशर्मी, लाचारी, झठी प्रतिष्ठा का अनावरण करता है। अफसर की वैचारिक नीलामी से उत्पन्न बीभत्स रस पाठक को सराबोर कर देता है। पति के साथ माताजी के दर्शन हेतु दौरे पर आयी अफसरनी का कपड़े-लत्ते, साबुन-मेकअप वाला बैग क्या घर में छुट जाता है मानो उसका व्यक्तित्व ही घर में छूटा हो। जब उसके योग्य साड़ी पूरे गाँव में नहीं मिलती, तो चपरासी चमेली वेश्या के यहाँ से ऊँची साड़ी ले आता है। अफसरनी सज-धजकर गाँव में स्थित माताजी के मंदिर की ओर निकलती है तो उसे बड़ा संतोष होता है कि प्रतिष्ठा तो बच गयी। माताजी के दर्शन कर वह जब लौटती है तो बाहर खड़ी चमेली वेश्या अपना परिचय देते हुए कहती है- "खूब फब रही है यह साड़ी आप पर ! यह मुझे दातादीन ने दी है। और मैं चाहती हूँ, यह साड़ी अब आप ही रख लें। मेरी ओर से नहीं, दातादीन की ओर से भेंट समझकर।"[10] अफसर जिस जंगल तोड़ करने वाले दातादीन की तहक़ीक़ात के लिए गाँव में आया था, बिना कुछ किये ही लौट जाता है। यहीं व्यंग्य का मर्मस्थल है। पुणतांबेकर की हजारों रचनाएँ इसी प्रकार से व्यापक तथ्यों को सूक्ष्मता से अभिव्यक्त करती हैं।

निष्कर्षत: - कहा जा सकता है कि युग की विसंगतियाँ व्यंग्य की कारक है। पुणतांबेकर अपने द्वारा स्थापित व्यंग्य के तत्त्व विसंगति, विदग्धता और तीखापन को व्यवहार में लाकर विचार रस युक्त रचनाएँ पाठक को सौपते हैं। सामासिकता में गहरी चोट के लिए आपका कोई सानी नहीं। व्यंग्य के विभिन्न उपकरणों का प्रयोग तो आप करते ही हैं, पर शब्द-चयन और उनकी संरचना के संबंध में बरती गयी सतर्कता सूक्ष्म भावों, जो शैली की आत्मा हैं, की अभिव्यक्ति में सक्षम होती हैं, परिणामस्वरूप आप अभिधा में भी स्तरीय व्यंग्य को साध लेते हैं।

******

संदर्भ :-

1. कैक्टस के काँटे (दो शब्द), शंकर पुणतांबेकर, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, प्रथम स पृ. i
2. जंगल में (लोकतन्त्र है यह !), शंकर पुणतांबेकर, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 193
3. तेरहवाँ डिनर (वासनाकांड), शंकर पुणतांबेकर, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 206
4. पराजय की जुबली (अजन्ता की एक नई गुफा), शंकर पुणतांबेकर, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पहला संस्करण- 2004, पृ.62

5. वही 6.वही 7.वही, पृ. 63
8. कटआउट (बिखरे हुए संदर्भ), शंकर पुणतांबेकर, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 43
9. वही, पृ. 44
10. मेरी फाँसी (एक दौरे पर) , शंकर पुणतांबेकर, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 176

'तहबील' की कहानियों में सामाजिक जीवन मूल्य

डॉ. आर्या वी. एस

श्रीकला मन्दिरम कोल्लमकावु नेटुमंगाड़
तिरुवनन्तपुरम केरल

केरल में हिन्दी साहित्य का एक विस्तृत इतिहास है। बीसवीं सदी के अंतिम चरण में दक्षिण हिन्दी साहित्य का विकास हुआ। कई महत्व व्यक्तियों, साहित्यकार और दक्षिण हिन्दी प्रचार सभा, केरल हिन्दी प्रचार सभा जैसे संस्थाएँ केरल में हिन्दी भाषा एवं साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। समकालीन समय में भी केरल से अधिक रचनाएं प्रकाशित हो रहा है। केरल में हिन्दी कहानी का आरंभ स्वातंत्योत्तर काल में ही हुआ था। पी.के दिवाकरन पोट्टी, डॉ. एन. चंद्रशेखरन नायर, आनंदशंकर माधवन, डॉ. वी. गोविंद, डॉ. एन. रमन नायर आदि के नाम उल्लेखनीय है। इस गणना में डॉ. की रचनाएं भी रख सकते हैं। डॉ. बाबु. जे केरल विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग के भूतपूर्व अध्यापक एवं विभागाध्यक्ष थे।

डॉ. बाबु.जे का जन्म 1952 नवंबर 15 को केरल के तिरुवनंतपुरम जिले में हुआ। केरल विश्वविद्यालय से एम. ए एवं पीएचडी की उपाधि प्राप्त किया। इसके बाद विभिन्न कॉलेजों में अध्यापन किया। आपने आज भी अपने लेखन कार्य में व्यस्त हैं। कविता, कहानी, आलोचना आदि सभी विधाओं में अपने कलम चलाया है। 'मुक्तधारा', 'पुरस्कृत', 'अभिव्यक्तियाँ', 'उलाहना', 'पासवान', 'अग्निरेखा' आदि आपकी प्रकाशित काव्य संग्रह है। 'आज और कल के बाद, 'तहबील', 'बरसात में आग', 'कसाकसी', 'पट्टी बाँधने को घाब बनाने वाले', 'खून की बरखा' आदि उनकी कहानी संग्रह है। उनका आलोचनात्मक ग्रन्थ 'राजेंद्र यादव के उपन्यासों में सामाजिक चेतना' है। 2008 के राष्ट्रीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 2009 में शिमला के बिपाशा कहानी पुरस्कार, 2009 मेरठ के राष्ट्रीय हिन्दी अकादमी, 2010 में नई दिल्ली केंद्रीय हिन्दी निदेशालय आदि संस्थाओं से सम्मानित है। 'तहबील' कहानी संग्रह अपके रचनाओं में सबसे महत्वपूर्ण है।

सामाजिक चेतना व्यक्तियों के विचारों भावनाओं एवं धारणाओं से बनती है। डॉ. बाबु .जे की कृतियों में सामूहिक मान्यता देख सकते हैं। तहबील की कहानियों में भी यह देखने को मिलते हैं। तहबील कहानी संग्रह में कुल 15 कहानियाँ संकलित है। उनकी ज्यादातर कहानियों में रिश्तों के महत्व लिखा है। संग्रह की प्रथम कहानी 'आज और आज के बाद' है। इसमें पिता – बेटा की संबंध एवं वृद्धाश्रम व्यवस्था का चित्रण किया है। सालों बाद वृध्दाश्रम में अपने पिता को देखने के लिए अमेरिका से बेटा आता है। बहुत साल के पहले माँ की मृत्यु के बाद पापा को अकेले वृद्धाश्रम में छोड़ कर बेटा प्रवास में अपनी अच्छी जिंदगी बनाने के लिए गया है। सालों बाद जब पापा बूढा हो जाता है और कैंसर की दूसरी स्टेज में पहुंच गए है, तो उन्हें अपने बहू और पोती से मिलने की इच्छा प्रकट करती है। बहू इटली का है। बेटा अपनी बेटी को साथ लेकर पापा को देखने के लिए आ गया है। बहु तो अपने काम में व्यस्त थी। इसलिए वह नहीं आ पाई। पिता पोती को देखकर बहुत खुश हो जाता है। छोटी बेटी उस वृद्धाश्रम की पूरी व्यवस्थाएं देखकर कहती है कि "डैडी फैंटास्टिक, रियली फैंटास्टिक, युवर सेलक्शन ईस सूपर। मैं यहाँ की सारी व्यवस्थायें देख रही थी। रियली वंडरफुल। मैं ने अब से ही फैसला कर लिया कि बुढ़ापे में आपको इसी ओल्ड एज होम में रख दूँगी।"[1] इस कहानी में टूटते रिश्तों का चित्रण कहानीकार किया है। आज माता-पिता को देखने के लिए बच्चों के पास समय नहीं है। वह अपने अपने कामों में व्यस्त हैं। इसलिए ज्यादातर बच्चें माता-पिता को वृद्धाश्रम में छोड़ कर चले जाते हैं। 'स्मृति शेष' पति-पत्नी संबंध की चित्रण दिखाने वाले कहानी है। पहले कहानी में रिश्तों का मूल्य को दिखाया है। तो यह कहानी में रिश्तों का महत्व दिखाया है। कैंसर के कारण पीड़ित पत्नी को पति बहुत प्यार करते हैं। नंदिता एक सामाजिक सुधारिका के रूप में जाने-माने हैं। वह समाज में पीड़ित लोगों की सहायता करते हैं। शादी के बाद भी वह अपने काम में मग्न है। पति भी उसकी साथ हैं। अचानक वह कैंसर की शिकार हो जाती है। अंत में मृत्यु का वरण करती है। "घर में बड़ी भीड़ लग गई थी। इस भीड़ में मेरे दोनों बच्चों को बाँहों में भरकर मैं नन्दिता के निकट बैठा रहा। बाहर दाह - संस्कार की तैयारियाँ हो रही थीं। घर के भीतर और बाहर

रोशनी की समृद्धि थी ; मगर मेरे चारों ओर घना अंधकार ही अंधकार था। मेरे पास कई लोग आये , कुछ पूछे - कहे निकल गये। मेरे पास कौन आया ,क्या कहा , कुछ पता नहीं रहता। लेकिन नन्दिता के सिरहाने तेल का जो छोटा - सा दिया जल रहा था उसकी रोशनी में धीमी गर्त से निकलनेवाले कुछ पैर ही मैं देख सकता था।"[2] यह कहानी अत्यधिक मार्मिक है। आज के समय में शादी के संबंध में कई समस्याएँ हो रहे हैं। तलाक की समस्या ज्यादा हो गया है। इसी अवसर पर यह कहानी महत्वपूर्ण है। 'घर बनाने की माया' रिश्तो का महत्व दिखाने वाले अलग कहानी हैं साथ ही साथ आर्थिक समस्यओं का चित्रण भी इसमें देख सकते हैं। अश्वती का अचानक निकल जाने के कारण पति अकेला हो जाता है। 'भूख काहे को?' कहानी में लेखक समाज के बिगड़ते मानव मूल्य दिखाया है। दो शेर अपने भूख मिटाने के लिए शहर के दो तरफ जाते हैं। महीनों बाद दोनों मिलते है। एक तो दुबला पतला, दूसरा तंदुरस्त दिखा रहे हैं। एक शेर को कुछ भी खाने के लिए नहीं मिला। वह जिस शहर में पहुंचा है, वहाँ के लोग उसे भगाता है। दूसरे तो एक सरकार ऑफिस के सीडियों के पीछे छुपा था। वह वहाँ के एक - एक कर्मचारियों को खा कर रहा। एक दिन कर्मचारियों के बदलें फॉरेन गुड्स बेचने वाले व्यापारी को खाया। "सिविल स्टेशन में 'फॉरिन गुड्स' बेचनेवाला एक सज्जन हर महीने की पहली तारीख को नियमित रूप से आया करता है। उस दिन उस आदमी के इन्तजार में सारे ऑफीस बेचैन हो गये। व्यापारी सज्जन का आना कइयों ने देख लिया था। अचानक उसका गुम होना कर्मचारी लोग बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। व्यापारी को आसमान खा गया या धरती निगल गयी , कोई बता नहीं पाता। व्यापारी सज्जन को ढूँढते हुए लोगों ने सिविल स्टेशन के कोने -कोने छान मारा।"[3] व्यापारी के गुम जाना देखकर ऑफिस में हलचल मचा। इतने कर्मचारियों गुम जाने पर वहाँ कोई समस्या नहीं होता है। इससे पता चलता है कि फॉरेन सामान और संस्कृति का यहाँ कितना महत्व है। 'मेरी भव बाधा' कहानी में नारी के प्रति होने वाले अत्याचार को एक अलग तरीके से बताया है। सी.डी पार्लर में पहुंचने वाले औरत को ब्लू फिल्म की सी डी देते हैं। ऐसे करने से स्त्री शरीर का अग्रह प्रकट करता है और वह नारी उसका प्रतिरोध करती है। 'बरसों पहले नहीं' कहानी में राजनीतिक षड्यंत्र का चित्रण किया है। मिनिस्टर के ऊपर होने वाले बलात्कार के मामले पर जाँच करने के लिए नियुक्त उस उच्च अफसर को उसी मिनिस्टर के लोग उन्हें भी बलात्कार के मामले में फँसाने की कोशिश करते हैं। इसके लिए एक छोटी लड़की की इस्तेमाल करता है। लेकिन यह षड्यंत्र जानकर वह उससे बचता है। छोटी बच्ची को भी बचाता है। आज समाज में बलात्कार और सगुण को निर्गुण बनाना आदि सजग बात बन गया है। 'अक्ल पर ताला पड़ता कभी-कभी' इस कहानी में अंधविश्वास का चित्रण किया है। रंजना और उसके पति एक मध्यवर्गीय परिवार का सदस्य है। उसका पति एक सरकारी ऑफिस में क्लॉर्क है। उन्होंने कर्ज लेकर एक घर बनाया है। जब घर में एक साधु महाराज आता है, तब साधु ने घर के निर्माण वास्तु का दोष बताते हैं। "बाबाजी बता रहे थे कि इस घर के निर्माण में असावधानी बरतने के कारण ही कई दोष आ गये हैं। मुख्यतः ड्राइंग रूम उचित स्थान पर नहीं। घर की उत्तर दिशा में बैठकखाना रहने के कारण दाम्पत्य सुख पूरा का पूरा न मिल जाएगा। अगला दोष रहता है शयनकक्ष का। शयनकक्ष उत्तर -पश्चिम में होने पर पति -पत्नी के बीच रोज लड़ाई -झगड़े होते और स्थिति तलाक देने की तक पहुँच जाती। दक्षिण -पूर्व कोण में रसोई रहने से घर के बच्चे रोज किसी न किसी बीमारी के शिकार होकर ही रहते हैं। इसलिए इन तीनों कमरों का स्थान बदलना चाहिए। अन्त में बाबा जी ने यह भी बता दिया। वास्तु -विधियों के अनुसार बनाये गये घर में रहनेवालों की उत्तरोत्तर श्रीवृद्धि हो जाएगी और वे जरूर अमीर भी बन जायेंगे।"[4] रंजना बात अपने पति से कहते हैं। वह एक साधारण सरकारी कर्मचारी है। एक नया घर बनाना उनके लिए साधारण बात नहीं है। फिर भी वह उस घर तोड़कर वास्तु के अनुसार अलग नए घर बनाने के लिए विवश हो जाता है। उन लोग एक ज्योतिषी के पास जाते हैं। उस ज्योतिषी को देखकर रंजना को शक होता है कि इसी ज्योतिषी ने घर में साधु बनकर आया है। लेकिन वह चुप रही। उन लोग घर पहुंचा है। पहुंचने के थोड़ी देर बाद उस साधु महाराज भी आया और होम, पूजा आदि की बात किया है। तब पति को भी यही शक होता है उस साधु पकड़ जाता है। समाज में ऐसे लोग भी है कि साधारण जनता की विश्वास का लाभ उड़ाते हैं। ज़्यादातर स्त्रीयाँ ही इन लोगों की जाल में फँस जाता है। इस संग्रह की सबसे चर्चित कहानी है 'तहबील'। यह सुनामी की कहानी है। इस कहानी में लेखक ने सुनामी की भीषण चित्र को प्रस्तुत किया है। यह कहानी पढ़ते वक्त ऐसा लगता है कि हमारे आंखों के सामने सुनामी हो रहा है। फिलोमिना नामक औरत के माध्यम से सुनामी की भीषण चित्र दिखाया है। वह कहता हे कि "सागर मछुआरों का वरदायी है और वह उनका अहित कर नहीं सकता, सागरतट के निवासियों का सामान्य विश्वास रहता। सागर हम लोगों के लिए माँ सामान है। वह माँ हमेशा अपनी औलादों पर अपार प्यार रखती, मगर बीच-बीच हमारी गलतियों की सज़ा भी देती। अब भी किसी की गलती से माँ क्रुध्द बन गई है।"[2] इससे समझ सकते हैं कि मानव प्रकृति के साथ जो क्रूरता करते हैं, उसी का शिक्षा सुनामी, भूकंप, बावंडर, बाढ़ आदि के रूप में आते हैं। फिलोमिना को उस सुनामी में अपना घर, सारा संपत्ती, बच्चा, सांस, और पति को भी नष्ट हो जाते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि हम जो देते हैं वही लेते हैं।

डॉ.बाबु .जे की कहानियों में समाज के अनेक समस्याओं का चित्रण देख सकते हैं। मानव जीवन की हर पहलुओं को वह अपनी कहानियाँ द्वारा अंकित किया है। समाज की हर विषय सुन्दर एवं सरल रूप में दर्शाया है। उनकी कहानियाँ केवल मनोरजन मात्र नहीं, चिन्तन का प्रेरणा करते है। उनकी भाषा सरल एवं सुंदर है। समाज के साधारण आदमियों उनकी कहानियों की पात्र बन गए हैं। आशा है कि आने वाले समय में ही वह अपने रचनाओं द्वारा दक्षिण हिन्दी साहित्य को विस्तृत बनाएगा।

*****

संदर्भग्रंथ सूची:-

1. तहबील- डॉ. बाबू. जे- पृ.स 13
2. तहबील- डॉ. बाबू. जे- पृ.स 33
3. तहबील- डॉ. बाबू. जे- पृ.सं 47
4. तहबील- डॉ. बाबू. जे- पृ.सं 78
5. तहबील- डॉ. बाबू. जे- पृ.सं 103

मूर्ति पूजा का खंडन

कबीर ने मूर्ति पूजा को खण्डन किया है

"कबीर पाहन पूजे हरि मिलै, तो मैं पूजूं पहार।
घर की चाकी क्यों नाहिं पूजैं पीसि खाय संसार।।"

कबीर कहते हैं कि यदि पत्थर की पूजा करने से भगवान मिलते हैं मैं पहाड़ की पूजा कर लेता। उसकी जगह कोई घ र की चक्की को नहीं पूजता जिसमें अनाज को पीसकर स भी लोग अपना पेट भरते हैं।

स्वातंत्र्योत्तर व्यंग्य निबंध साहित्य : राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में

डॉ. सचिन कदम
हिंदी विभाग, संगमनेर नगरपालिका कला दा.ज. मालपाणी वाणिज्य तथा ब.ना.सारडा विज्ञान महाविदयालय, संगमनेर जि.अहमदनगर 422605 (महाराष्ट्र)

गणेश गभाले
शोधार्थी
हिंदी विभाग सावित्री बाई फुले पुणे विश्वविद्यालय -पुणे.

भूमिका:-

वर्तमान काल में राजनीति जीवन का अंग बन गई है। स्वतंत्रता से लेकर आज तक राजनीतिक क्षेत्र में उथल-पुथल मची हुई है। स्वातंत्र्योत्तर व्यंग्य निबंधकारों ने राजनीतिक क्षेत्र को विभिन्न आयामों से पाठकों के सामने रखा है। व्यंग्यकारों ने राजनीतिक क्षेत्र की ज्वलंत समस्याओं को निबंध साहित्य में प्रस्तुत किया है। नेतागण राजनीति का व्यापार करते हैं, सौदेबाजी करते हैं, रिश्वतखोरी को बढ़ावा देते हैं। ऐसे कुकर्मो से राजनीतिक ढाँचा लुढक जाता है, जिससे भारतवर्ष के विकास में बाधाएँ आती हैं। स्वतंत्रतापूर्व और स्वातंत्र्योत्तर काल की राजनीति कलुषित रही है। राजनीति किसी भी देश-व्यवस्था की रीढ़ होती है। बीसवी सदी के उत्तरार्ध में ज्यादा मात्रा में भारतीय राजनीति में जिस तेजी से गिरावट आई उसे स्वातंत्र्योत्तर व्यंग्यकारों ने सूक्ष्मता से जाँचा-परखा है। स्वाधीन भारत के आम आदमी में टूटते, उभरते सपनों को व्यंग्य निबंधों में उजागर किया है। व्यंग्य निबंधकार राजनीति को ताश का खेल कहते हैं। राजनीतिक परिवेश में नेता ही बड़े ठग होते है। वे ही जनता को मनमाने ढंग से लुटते हैं .जनमानस के मानसपटल पर स्वतंत्रता के साथ-साथ नए सपनों की कुलबुलाहट होने लगी थी। रूढियों और परम्पराओं से ग्रस्त समाज को सवाँरना सबसे बड़ी जिम्मेदारी थी। देश में नीति संपन्नता, दूरदर्शिता तथा आदर्श स्थापन करना जरूरी था। भारतीय जनता की गरीबी से मुक्तता कर सुखी जीवन और प्रगतिशील समाज की स्थापना करना आवश्यक था। वर्गविहीन, शोषणमुक्त समाजवादी समाज की स्थापना करना राजनेताओं के सामने चुनौती थी, किन्तु देश विभाजन से देश की राजनीति ने एक अलग मोड़ ले लिया और भारतीय हिंदु-मुस्लिमों में दंगे-फसाद शुरू हुए। उँच-नीच का भेदभाव बढ़ता गया। देश की आर्थिक उत्थान के लिए जो पंचवार्षिक योजनाएँ लाई गई उसका फायदा नेतागणों ने लिया। परिणाम स्वरूप देश को गरीबी से मुक्ति नही मिल पायी। व्यंग्य निबंधकारों ने राजनीतिक क्षेत्र में फैली सारी समस्याओं कों अपने निबंधों में उजागर कर देश की कलुषित राजनीतिक परिवेश का पर्दाफाश किया है ।राजनीतिक परिवेश के संदर्भ में सुदर्शन मजीठिया जी कहते है - 'राजनीतिक नेताओं ने सारे देश की लुटिया डुबो रखी है। यदि भारत के समस्त नेताओं का एक्सपोर्ट कर दिया जाये तो भारत की समस्त समस्या एक ही दिन और रात में सुलझ जाएगी और भावात्मक एकता का विकास होगा सो अलग।'[1] मजीठिया जी का मानना हैं कि हमेशा से ही राष्ट्र के उत्थान और पतन में राजनेताओं का हाथ होता है। उनका देश के प्रति देखने का नजरिया ही देश का भविष्य तथा समृध्दि तय करता है, लेकिन भारतवर्ष में हमेशा से ही होनहार और विवकेशील नेता की कमी महसूस होती है। राजनेता हमेशा जनता को धोखा देते हुए नजर आते हैं। उन्हें अपने वादों के मोहजाल में फसाते हैं, विवेकी मनुष्य भी उनके वादों को सच मान बैठते हैं। ऐसे नेताओं को उनकी औकात दिखाना जरूरी बन गया है

बीज शब्द: व्यंग्य, राजनीति, नेता, वोट, चुनाव, जनता, समस्या, दबंग।

'एक भारतीय मन्त्री का भौगोलिक वर्णन' निबंध में रोशनलाल जी ने नेताओं की कार्यपध्दति, उनका व्यक्तित्व और उनके कारनामों पर व्यंग्य किया है। मंत्री को चुनाव टिकट मिलने से पहले की परिस्थिति अत्यंत दयनीय होती है। टिकट के लिए भरसक राजनीतिक डाँवपेच खेले जाते हैं। दूसरे दल को प्रताड़ित किया जाता है, उन्हें डरा धमकाकर टिकट हासील किया जाता है। चुनाव के पहले और चुनाव जीत के बाद नेताओं के शारीरिक, मानसिक, आर्थिक सभी स्तरों में बदलाव किस प्रकार से आता है। उदा.द्रष्टव्य है- ''मंत्री होने से पहले इनके पूर्व में सट्टे लगानेवाले, पश्चिम में पनवाड़ी, मुंह के सामने एक लंबी वीरान सड़क एवं पीठ पीछे मुहल्ले के आवारा बालक लगे रहते थे। इन के नीचे उधार की चप्पल तथा चपलों के नीचे नंगी जमीन रहा करती थी।''[2] प्रस्तुत उध्दरण में नेता की चुनाव से पूर्व जो दयनीय दशा, निर्धनता एवं कुकर्म होते हैं, उसको यथार्थ रूप से दर्शाने का प्रयास किया है। जब वे नेता चुनकर आते हैं, सांसद बनते हैं तो उनका पूरा माहौल बदल जाता है। नेता बनने के बाद करप्शन, धोखाधडी, गबन करके अपनी आर्थिक स्थिति को इतना बेहतर बनाते हैं कि देखनेवाले आवक् रह जाते हैं और सोचते हैं, नेता ने ऐसा क्या किया जिससे इतनी तरक्की हुई। धनी बनने के बाद इनके आस-पास खुशामदी और प्रशंसकों की भीड़ लग जाती है। इनके सामने माइक और जन समुद्र लहराता है। तो पीठ-पीछे गुण्डों और पुलिसवाले साथ चलते हैं। इनके नीचे विदेशी काठ से बनी कुर्सी अथवा भारतीय गरीबों के भाग्य की गद्दी बिछी होती है। जिस पर बैठकर नेता बडी शान से अपना रौब झाडता है। भ्रष्टाचार करके नेता अपने-आप राजा-महाराजाओं का ठाठ निर्माण करता है। प्रस्तुत निबंध में गरीबों की योजनाओं पर हाथ साफ कर मौज-मस्ती भरी जिंदगी जीनेवाले भ्रष्ट नेताओं पर लेखक ने व्यंग्य चोट की है।

'भारत का राष्ट्रीय पक्षी' निबंध में संसारचंद्र जी ने मुर्गे के माध्यम से नेता की दबंगगीरी की समस्या को उजागर किया है। नेता अपने पद एवं रूतबे का फायदा उठाकर दबंगगीरी फैलाता है। चूने जाने पर अपने आप दबंग बन जाते हैं। अपना रौब सभा-सोसाईटियों के कार्यक्रमों में दिखाते हैं। उसकी प्रकृति और चरित्र की उसे कोई चिंता नही रहती। सामान्य वोटर भी बार-बार उसे चुनकर देते है। नेता चुनाव के दौराने बड़े-बड़े वादे करते हैं, वोटरों के सामने हाथ जोड़ते हैं, किन्तु चुनते ही दबंगगीरी शुरू करते हैं। नेता जब तक कार्यकर्ता को इजाजत नही देता तब तक उनके सामने कोई नही बोल सकता। मुर्गे के माध्यम से नेता की दबंगगीरी और रौब को दर्शाया है। उदाहरण द्रष्टव्य है-''मुर्गा उचककर नीम के ठूँठ पर जा बैठा और पोटा तानकर उसने एक लंबी बांग दी और साथ ही कौवे की ओर देखा जिसका अभिप्राय था कि सावधान हो जाओ, क्रान्फ्रेन्स की कार्रवाई शुरू हो गई है और कौवे को बोलने की आज्ञा है।''[3] नेता की दबंगगीरी की वास्तव समस्या को उजागर किया है। साथ ही साथ राजनीतिक चुनावी माहौल के दौरान घात-प्रतिघात की राजनीतिक दाँवपेचों को दर्शाया है। तोता और कबुतर का झगड़ा इस ओर संकेत करता है कि चुनावों में किस प्रकार एक दूसरे को निचा दिखाया जाता है। और अपना पगड़ा भारी किया जाता है।आरोप-प्रत्यारोप चुनाव के दौरान की बहुत बड़ी विभीषिका है। वोटरों को गुमराह करने के लिए नेता के व्यक्तित्व को उछाला जाता है। बड़े नेता के इशारे पर खड़े उमीद्वार को चलना अनिवार्य होता है। बुल-बुल तथा तोते पर प्रहार करती हुई कहती है। तोते को सबकुछ सिखाया जाता है। मतलब वो दूसरे के विचारों पर चलता है। उदाहरण द्रष्टव्य है-'' यह तोता हिन्दी रक्षा समिति का भेजा हुआ किराये का टट्टू है। इसे अपनी कोई आवाज नही। ''इसे जो पट्टी पढ़ाई गई है, वही रटी-रटाया पाठ इसने पढ़ सुनाया है। ''[4] कुछ नेता हायकमांड के हाथों की कटपुतली होते है। अतः बड़े नेताओं के इशारों पर नाचने वाले पार्टी नेताओं पर व्यंग्य कसा है और अपने फायदे के लिए चुनाव जीतनेवालों पर व्यंग्य किया है।'सरकार के आकार' निबंध में गोपाल चतुर्वेदी जी ने सरकार के खोखले कामकाज की समस्या को उजागर किया है। जब सरकार चुनकर आती है, तो पहले वे अपने फायदे, विकास के लिए काम करते हैं। बाद में जनता की समस्या को देखते हैं। सरकार काम तो करती है लेकिन उसमें जनसेवा को कही भी स्थान नही होता। जो भी विकास कार्य करते हैं उसमें नेताओं का अपना नीजि स्वार्थ होता है। सरकार अवचेतन बनी हुई रहती है, सजगता उसमें नही होती। वे अलग-अलग दांवपेचों के चश्में पहनकर काम करते हैं। उदाहरण द्रष्टव्य है- ''सरकार हमेशा चश्मा लगाकर काम करती है। लोगों की समस्याओं को अपने चश्मे से देखती है। कभी नियम-कानून उनके समाधान में आड़े आ जाते हैं, तो कभी वित्तीय साधन।''[5]

लेखक का मानना है कि ऐसा कोई भी जनमानस नही जो सरकार के दरबार में जाकर मुस्कुराकर लौट आए। जब मिलन का वक्त होता है, तो सरकार दौरे पर निकल जाती है। जब फोन पर बात होती है, तो नेता बड़े आश्वासन देते हैं। उदाहरण द्रष्टव्य है- ''कलतक आपके मोहले के नल में पानी आ जाएगा। या आपका बढ़ा चढ़ा बिल सही हो जाएगा।''[6] नेता के आश्वासनों का कल कभी भी नहीं आता। इस प्रकार नेता के स्वार्थी, झूठे, दोगले व्यक्तित्व एवं अकमर्ण्यशीलता पर कड़ा प्रहार किया है . 'सियासी विविधता में एकता' निबंध में चतुर्वेदी जी ने राजनीतिक पार्टियों के आपसी मिलीभगत की समस्या को उजागर किया है। भले ही अलग-अलग पार्टियाँ चूनाव के दौरान एक-दूसरे के विरोध में खड़े हो जाए, किन्तु भ्रष्टाचार के लिए सारे एकसाथ मिल जाते हैं। सुधार योजनाओं का पैसा लुटने के लिए हर पार्टी जिम्मेदार होती है। उदाहरण द्रष्टव्य है- ''भारत की सरकार अमीर है, जनता गरीब है। सरकार के पास उड़ाने के लिए इतना है कि खादय गोदामों में रखे सड़ते हैं और आदमी भूखे से मरते हैं। वैसे जानकारों की मान्यता है कि अगर यह सरकारी गेहू और चावल भूखे खाते भी तब भी उनकी मौत निश्चित थी। फर्क इतना है कि तब वह भूख से नही विषाक्त भोजन से मरते।''[7] राजनीतिक फैसले सबको प्रभावित करते है। राजनेताओं के स्वार्थ प्रवृत्ति के कारण आम जनता तो अनाज धन-धान्य नहीं मिलता जिससे लोग भूखे मर रहे हैं। देश के गोदाम हमेशा नेताओं के फायदे के लिये खुलते है। 'चुनाव की चकचक' निबंध में आत्मानंद मिश्र जी ने चुनावी माहौल की समस्याओं को उजागर किया है। राजनीतिक क्षेत्र उथल-पुथल का होता है। स्वार्थ, झूठ, चापलूसी, विद्रोह, दंगे आदि सारे दुर्गुणों का वास राजनीतिक परिक्षेत्र में रहता है। चुनाव घोषित होते ही राजनेता सक्रिय बन अपने आपको सिध्द या पोपुलर करने के लिए सभा, सम्मेलन, भाषणबाजी करते हैं। उदाहरण द्रष्टव्य है-''एक-एक सीट के लिए तीन से तेइस प्रत्याक्षी खड़े हैं। प्रत्येक प्रत्याक्षी एक दिन बारह-प्रन्द्रह भाषण झाड़ता है और यदि क्षेत्र में दस प्रत्याक्षी मान लें तो सवा डेढ़ सौ भाषण प्रतिदिन की रफ्तार है।...विपदवी विघ्नकर्ता भी हुल्लडबाजी, मुक्केबाजी नया तुफाने बदतमीजी में विश्वास रखते है।''[8] चुनाव के दरम्यान नेताओं की अति भाषणबाजी, हुल्लडबाजी, धोकेबाजी, दलबदलु वृत्ति जैसे दुर्गुण और प्रत्याशिओं की ज्यादा संख्या, विरोधी दल की कुप्रवृत्ति जैसी समस्याओं को उजागर किया है।

निष्कर्ष:-

भारतवर्ष जब स्वाधीन हुआ तब से लेकर अब तक राजनीतिक क्षेत्र विसंगतियों से लबालब भरा पड़ा दिखाई देता है। जब से चुनाव लडना आरंभ हो गया है, तब से मानो नेताओं का व्यक्तित्व कलुषित हो रहा है। राजनीतिक दल केवल अपनी पार्टी को मजबूत बनाने लगा है, जिसके कारण आर्थिक क्षेत्रो में बड़ी मात्रा में भ्रष्टाचार हो रहा है। आज के समय में राजनीतिक दांवपेच और हथकण्डों ने सभी मतदाताओं को उलझन में डाल दिया है। परिणामत: उचित पार्टी का चयन न होने से विकास केवल कागज तक सीमित रह गया है। धार्मिक मुद्दो को हथियार बनाकर मतदाताओं का मानो दमन हो रहा है। अत: सच्चे देशभक्त एवं समाज सेवी सांसद चुनकर आने लगेंगे तो निश्चित तौर से भारत की स्थिती अधिक बेहतर बन जायेगी और जनमानस के सपनों का भारत निर्माण हो जायेगा।

****

संदर्भ सूची :-

1. सुदर्शन मजीठिया- मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, ज्ञान भारती प्रकाशन, दिल्ली, पृ.41
2. रोशनलाल सुरीरवाला- एक भारतीय मन्त्री का भौगोलिक वर्णन (पत्नी शरणं गच्छामि),, पृ.183
3. संसारचंद्र- भारत का राष्ट्रीय पक्षी (सोने के दांत), हिंदी साहित्य संसार दिल्ली,पृ.78
4. वही . पृ.78
5. गोपाल चतुर्वेदी- सरकार के आकार (गंगा से गटर तक), ज्ञान गंगा प्रकाशन ,दिल्ली,1997, पृ.103
6. वही . पृ.103
7. गोपाल चतुर्वेदी- सियासी विविधता में एकता (गो. चतुर्वेदीः संकलित व्यंग्य),नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया नई दिल्ली, 2011, पृ.53
8. आत्मानंद मिश्र- चुनाव की चकचक (मुश्किल में पड़ गये), ग्रन्थम रामबाग कानपुर,1973, पृ.66

शोध-प्रकार और समीक्षा

डॉ.समय लाल प्रजापति

सह-प्राध्यापक हिन्दी

शास. ठा. रण.सिंह महाविद्यालय रीवा,मध्यप्रदेश

उद्देश्य की दृष्टि से:-

शोध दो प्रकार के हो सकते है। एक प्रकार वह है जिसका केवल वैज्ञानिक पद्धति से अनुमानित परिकल्पना के आधार पर किसी तथ्य या सिद्धांत का शोध करना है। इसे शुद्ध शोध (Pure Research) कहते है। उदाहरणार्थ आइंस्टाइन के पदार्थ और ऊर्जा को अभिन्न सिद्ध करने के अनुसंधान को हम शुद्ध शोध के अन्तर्गत रख सकते है| दूसरा प्रकार वह है जिसका उद्देश्य शुद्ध शोध के परिणाम को व्यावहारिक या कार्यशील शोध (Practical or Action Research) की संज्ञा दी जाती है। आइंस्टाइन के शुद्ध शोध को आधार बनाकर एटम बम बनाने का जो शोध कार्य किया गया वह व्यावहारिक या कार्यशील शोध के अन्तर्गत आयेगा|

काल की दृष्टि से:-

01. ऐतिहासिक शोध में मानव के विविध दिशाओं जैसे साहित्य, संस्कृति, भाषा, विज्ञान आदि में होने वाले भूतकालिक प्रयत्नों, कार्यों का वैज्ञानिक पद्धति से अन्वेषण होता है, जिससे अतीत को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समझने की सुविधा हो सके।

02. व्याख्यात्मक या वर्णनात्मक शोध में मानव-जीवन की सभी वर्तमान समस्याओं पर, चाहे वे साहित्य, समाज-विज्ञान या शुद्ध विज्ञान से संबंध रखती हो, अनुसंधान किया जाता है| वर्णनात्मक शोध में तथ्यों का संकलन मात्र न होकर उनकी व्याख्या होती है और मूल्यांकन होता है। सामाजिक विज्ञानियों ने इस प्रकार के शोध का निश्चित पारिभाषिक शब्द स्थिर नहीं किया कोई इसे 'वर्णनात्मक शोध' और 'सर्वे शोध' कहते हैं। पहला नामकरण भी बहुत एकार्थक नहीं है। प्रायः सभी प्रकार के शोधों में वर्णन या व्याख्या होती है। सर्वे शोध' विशेष प्रकार की शोध समस्या के हल में कार्यान्वित होता है।

सर्वेक्षण या सर्वे -शोध:-

इसका प्रयोग शिक्षा तथा समाजशास्त्रीय विषयों में होता है। इसमें समाज से संबद्ध तथ्यों का निरीक्षण और संकलन किया जाता है। इसका सामान्य सांख्यिकी से संबंध रहता है। यह निश्चित समस्या का सावधानीपूर्ण विश्लेषण सहित तर्कपूर्ण हल प्रस्तुत करता है इस प्रणाली के अन्तर्गत शैक्षणीय, समाजशास्त्रीय, अर्थशास्त्रीय, भाषा-विज्ञानीय आदि सर्वे कार्य सम्पन्न होता है।

03. प्रयोगात्मक शोध से सावधानीपूर्वक नियंत्रित परिस्थिति में किसी समस्या का क्या परिणाम निकलेगा, यह ज्ञात होता है। यह विज्ञान की प्रयोगशाला की प्राचीन पद्धति है। यह प्रविधि अन्य प्रकार के शोधों से अधिक जटिल है। इसकी उपयोगिता सुव्यवस्थित और नियंत्रित प्रयोगशालाओं में ही साधित हो पाती है। इसे शालीय कक्षाओं में भी किन्ही सीमाओं के अन्तर्गत प्रयुक्त किया जा सकता है। यदि दो स्थितियों प्रत्येक दशा में समान हो और उनमें से एक में एक तत्व को जोड़ दिया जाये पर दूसरे में न जोड़ा जाये तो उस स्थिति से जो अन्तर आयेगा, वह जोड़े हुए तत्व को परिणाम होगा। अथवा दो समान स्थितियों में केवल एक से एक तत्व घटा दिया जाए तो घटाने से जो अन्तर आयेगा वह उस घटाये हुए तत्व का परिणाम होगा।एकल विभेद-नियम' (लॉ आफ सिंगल वेरीएशन) प्रयोगशाला में होने वाले प्रयोगों का प्रायः आधार बनता है। राबर्ट बॉयल ने इसी प्रविधि के आधार पर 'गैसों का नियम' निर्धारित किया | मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला में भी इस नियम के आधार पर प्रयोग किये जाते हैं | वैद्यकीय-शोध (मेडिकल रिसर्च) भी इसी नियम के आधार पर प्रयोग किये जाते है। द्वितीय महायुद्ध के समय वैद्यकीय शोध कमीशन ने कुछ ऐसी औषधियों की परीक्षा करनी चाही जो समुद्र की बीमारी में लाभप्रद हो। छः महीने तक डॉ. डेविड टेलर ने 20 हजार सैनिकों पर दवाइयों का प्रयोग किया। ये सैनिक स्वेच्छ रूप में एक लाख सैनिकों में से चुने गये थे। कई औषधियों का उपयोग किया गया। अन्त में बेलोडीना और बारबिटुरेट से तैयार की गई औषधियां अधिक प्रभावकारी सिद्ध पाई गई | प्रयोग करते समय कुछ सैनिकों को कोई भी औषधि नहीं दी गई और कुछ को दी गई। जिन्हें नहीं दी गई वे बीमार पड़े और जिन्हें दी गई, ये बीमारी से बचे रहे।

यहाँ 'लॉ आफ सिंगल वेरीएशन' (एकल तत्व विभेद -नियम) का आधार लिया गया। शिक्षा में छात्रों की बौद्धिक क्षमता आदि की जाँच के समय भी इसी नियम को आधार बनाया जाता है। इस नियम को जॉन स्टुअर्ट गिल ने प्रतिपादित किया था इस नियम को और स्पष्ट रूप से समझने के लिए एक उदाहरण देखिये। मान लीलिए क -ख -ग व्यक्तियों में एक समूह के भोजन तत्व है | और द –ख-ग व्यक्तियों के दूसरे समूह के भोजन -तत्व है। दोनो समूहों के व्यक्तियों के वजन और स्वास्थ्य में कोई अन्तर नहीं है। डाक्टरी परीक्षा से यह निश्चित हो चुका है | बजन बढ़ाने के लिए हम गाय के दूध तत्व 'द' की क्षमता का प्रयोग करना चाहते हैं। हमने दूसरे समूह के व्यक्तियों को गाय का दूध 'द' तत्व दिया और पहले समूह के व्यक्तियों को उससे वंचित रखा | पन्द्रह दिन के पश्चात हमने डॉक्टरी जाँच में पाया कि प्रथम समूह के व्यक्तियों के वजन में कोई वृद्धि नहीं हुई पर द्वितीय समूह के व्यक्तियों का वजन बढ़ा | हमने दोनों समूह के व्यक्तियों के भोजन में पदार्थों और मिकदारों में कोई अन्तर नहीं होने दिया था। केवल दूसरे समूह के भोज्य पदार्थों में गाय का दूध जोड़ दिया था। अतः सिद्ध हुआ- 'दूध' भारवर्धक तत्व है। दूसरे समूह के भोजन में एक तत्व बढ़ाया गया और पहले समूह के भोजन में एक तत्व की कमी रखी गई। फल अभिवृद्ध तत्व का कारण है। अब यदि दोनो समान स्थितियों के समूहों में प्रत्येक में 'द' तत्व जोड़ दिया जाये तो दोनो समूहों का परिणाम एक होगा जिसे हम 'व' कहेंगे।

क+ख+द=व

क+ख+द=व

अतः 'द' कार्य का परिणाम 'व' हुआ।

यहाँ यह स्मरण रहे कि, यह कारण- कार्य संबंध तभी सिद्ध होगा जब हम परिस्थितियों पर समान रूप से नियंत्रण में रख सके | इस नियम की कठिनाई यहीं है कि परिस्थितियों की समान स्थिति बनाए रखना सहज साध्य नहीं है।

समीक्षा:-

क्या शोध समीक्षा है? क्या समीक्षा शोध नहीं है? दोनो प्रश्नों के उत्तर 'हाँ' और 'नहीं' में दिये जा सकते है। शोध, समीक्षा नहीं है पर उसमें समीक्षा का अंश रहता है। जब तथ्यों का विश्लेषण किया जाता है तब उसका मूल्यांकन भी किया जाता है। इसके विपरीत 'समीक्षा' में शोध का अंश आवश्यक नहीं है| जहाँ शोध में तटस्थता की अनिवार्यता होती है वहाँ समीक्षा में तटस्थता अनिवार्य नहीं होती। समीक्षा में समीक्षक का समीक्ष्य कृति के प्रति तटस्थ भाव धारण करना आवश्यक नहीं है। समीक्षा आत्मपरक अधिक होती है। प्रभाववादी समीक्षा तो स्वयं एक 'साहित्य' का रूप धारण कर लेती है। मार्क्सवादी समीक्षा मे मार्क्स के सिद्धांत कृति के मूल्यांकन की कसौटी बनते है। समीक्षक का 'वाद' प्रायः कृति की समीक्षा का आधार बनता है। आत्मपरकता शुद्ध शोध में प्रायः बाधक बनती है, बनी है।

'शोध' के प्रस्तुतीकरण की प्रविधि विषय के अनुरूप भिन्नता धारण करती है। साहित्य की समीक्षा के प्रस्तुतीकरण में समीक्षक की अपनी रूचि प्रधान होती है, उसका माध्यम गद्य या पद्य बन सकता है। समीक्षा सूत्र का रूप धारण कर सकती है यथा-

1. "सूर सूर तुलसी शशि उड़गन केशवदास"
2. उपमा कालिदासस्य, भारवे अर्थ गौरवम, दंडिनः पद लालित्यम, माधे सन्ति त्रयोगुण:

अथवा दीर्घ भाष्य (व्याख्या) आदि का रूप धारण कर सकती है। शोध पद्य में नहीं, गद्य में ही तर्क पूर्ण विश्लेषाणात्मक निष्कर्ष सहित प्रस्तुत होता है। अतः शोध और समीक्षा के अपने भिन्न-भिन्न क्षेत्र है। निष्कर्ष यह है कि, शोध समीक्षा सहित होता है, परन्तु समीक्षा का शोध सहित होना बिल्कुल आवश्यक नहीं है।

*****

वृद्धावस्था की त्रासदी और 'नटसम्राट'

प्रो. संजय एल.मादार
उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत
हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद 500004
Mo.9945664379.

(मूल मराठी नाटक. 'नटसम्राट' ले.-'कुसुमाग्रज')

एक प्रतिभा संपन्न मानवतावादी लेखक 'कुसुमाग्रज' के नाम से लोकप्रिय साहित्यकार विष्णु वामन शिरवाडकर का मराठी साहित्य को अमूल्य योगदान रहा है । जीवन लहरी **(1933)** से मूक्तायन **(1984)** तक इनकी काव्य यात्रा अत्यधिक भव्य रही और मारवा **(1999)** तक चलती रही । कुल चौदह कविता संकलन के वे दाता रहे हैं । इनके विशाखा **(1942)** इस काव्य संग्रह को आधुनिक मराठी कविता का गहना माना जाता है । तीन उपन्यास, छह कहानी संकलन, पाँच ललित कथा,पाँच बाल साहित्य पर आधारित पुस्तकें छह एकांकी और अठारह नाटकों के निर्माता 'कुसुमाग्रज' का जन्म **27** फ़रवरी **1912** में पुणे महाराष्ट्र में हुआ । जिस तरह इनकी प्रतिभा काव्य के क्षेत्र में रही उसी तरह नाटकों में भी चमकती रहीं । इनके नाटकों में *'नटसम्राट'* अत्यंत प्रसिद्ध नाटक रहा है । इसे सन् **1974** का साहित्य अकादमी पुरस्कार भी प्राप्त हुआ । वे **1964** के गोवा साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष भी रहे चुके है। भारतीय साहित्य के विशिष्ट एवं सक्रिय योगदान के लिए सन् **1987** का साहित्य का सर्वश्रेष्ठ 'ज्ञानपीठ' पुरस्कार से इन्हे सन्मानित किया गया । इनका जन्मदिन मराठी भाषा दिवस के रूप में मनाया जाता है । साथ ही 'स्विज़रलैंड की इंटरनेशनल स्टार रजिस्ट्री' इस संस्था ने इनके जन्म दिन के निमित्त 'कस्टर' के पास वाले 'रो' तारे को 'कुसुमाग्रज' नाम दिया है ।

भारतीय साहित्य विभिन्न प्रादेशिक साहित्य सुमनों से भरा हुआ एक ही उपवन है । जिस प्रकार पुष्पों के पृथक रूप रंग होते हुए भी इनमें एक ही रस का, एक ही सुगंध का अस्तित्व है। उसी प्रकार विभिन्न प्रादेशिक साहित्यों की बाह्य रूप रंगों में विभिन्नता और आंतरिक चेतना की संभावना दिखाई देती है । विश्व के किसी भी कोने में उभरता एकाध विचार की संभावना दिखाई देती है । विश्व के किसी भी कोने में उभरता एकाध विचार या घटना का असर दूसरे ही क्षण सुदूर में बसे आम आदमी पर भी होता हुआ दिखाई देता है ।मराठी साहित्य के आधुनिक काल के नाटककारों में कुसुमाग्रज का नाम आदर के साथ लिया जाता है । चिंतन के क्षेत्र की ऊँचाइयों तक पहूँचती प्रकृति और प्रणय के ऐंद्रिय पक्षों की सूक्ष्म चेतना के धनी कुसुमाग्रज सामाजिक जीवन में अन्याय,असमानता तथा अत्याचार से उपजते द्वंद्व का चित्रण भी करते है। इनका प्रेरणादायक आदर्शवाद जीवन के अंधरकारमय तथा विद्रूप पक्ष की अवहेलना नहीं करता। अतः इनका साहित्य गीतात्मक तथा विचारात्मक दोनों ही है । इसमें असामान्य कल्पना, संस्कृत की महिमा तथा गरीमा विद्यमान है । यह गहनता इनके नाटकों में भी व्याप्त है ।

'नटसम्राट' इस नाटक की रचना अभिनेता अप्पासाहब बेलवलकर (मूल नाम- गणपराव बेलवकर) के जीवन पर आधारित है । अभिनेता अप्पासाहब बेलवरकर को सामाजिक प्रतिष्ठा अवश्य थी । लेकिन कौटुंबिक जीवन में मात्र अपनी वृद्धावस्था में अपने ही बच्चों से हुई अवहेलना, बेटी द्वारा उनके घर में किया हुआ अपमान और इन सबके कारण 'लोग बुरे नहीं होते लेकिन वृद्धावस्था बुरी होती है' यही एक मध्यवर्ती सूत्र नाटककार ने नाटक के आरंभ से लेकर अंत तक स्थापित किया है । यहाँ पर अभिनेता बेलवलकर से भी एक कुटुंब के पिता की वास्तविक शोकांतिका हुई है । अप्पासाहब बेलवलकर मराठी रंगभूमि की विख्यात हस्ती हैं । परंतु रंगभूमि से निवृत होने के बाद खुद के कौटुंबिक जीवन में पिता के नाते अपना महत्व और उम्र का बड़प्पन इन दोनों बातों का तिरस्कार मानभंग अपने ही कोख से जन्मे बच्चों से स्वीकारना पडा। इसलिए बाहरी रंगभूमि का 'नटसम्राट'

कौटुंबिक जीवन के रंगमंच पर पिता की भूमिका में हार चुके है । वह लगभग **40** साल तक रंगभूमि पर 'नटसम्राट' के नाम से जिये और प्रसिद्धि भी पायी, साथ जीवन के सुखी क्षणों की ऊँचाईका अनुभव करते हुए रंगमंच से निवृत्त हुए। लेकिन रंगमंच के बाहर आते ही जीवन के वह सुखी क्षण मिट्टी में मिल गये।

इनका कौटुंबिक पसारा बहुत छोटा है। पत्नी कावेरी, बेटा नंदा, बहु शारदा, बेटी नलू, दामाद सुधाकर और पोती ठमी इतना मात्र है इनका कौटुंबिक भाव विश्व। बेटा और दामाद दोनों बडे कर्तव्यनिष्ठ है । इस बात की खुशी और अभिमान अप्पासाहब को है । कौटुंबिक जीवन की इस सुखद बेला में अब खुशी के चार दिन बिताने की बात सोच ही रहे थे, तब तक जीवन के कौटुंबिक स्तर पर याने खुद बेटे के घर में बहु से अपमानित होने की नौबत आ जाती है। बेटे को पिता के प्रति आदर है, उनके चरणों में श्रद्धा है । लेकिन पत्नी के सामने वह बोल नहीं पाता। यह आज की नई सुशिक्षित विभक्त और अलिप्तवादी कौटुंबिक जीवन की नई विचार धारा और परिस्थिति इस घर में भी निर्माण हो चुकी है । जब घर से बेटी की सत्ता चली गयी तब बेटी के आश्रय में दोनों पति-पत्नी चले जाते है।तब जीवन संघर्ष का एक और रूप बेटी के घर में सामने आता है।

वहाँ का अनुभव भयानक रहा है । क्योंकि पति की तनखाँ चोरी हो गई समझकर पिता की अलमारी और माँ के संदूक की जाँच बेटी नलू करती है । इस असहनीय घटना से माँ मरनांसन्ने स्थिति में पहुँच जाती है । वास्तव में पैसे का बटवा भूलकर अन्यत्र रह गया था। वह बाद में मिल जाता है । यह सच्चाई जब सामने आ जाती है तब अपनी गलती को स्वीकारते हुए बेटी नलू अपने पिता से क्षमा मांगती है । लेकिन माँ-बाप के मन में एक प्रश्न बार-बार घुमता रहा कि अपने माँ-बाप चोर है ? ऐसा बेटी को लगा ही कैसे ? रंगभूमि का यह सम्राट बेटा और बेटी से इस तरह अपमानित होता है । इसलिए नटसम्राट को परिवार के पिता की भूमिका ने हरा दिया है । पत्नी कावेरी के निधन के बाद अंतिम अंक अकेला अप्पासाहब रंगभूमि और बाहरी दुनिया इस बीच की कलात्मक और वास्तविक इन दोनों स्थर पर जीवन का शोध लेने का प्रयास करता है । थियेटर के बाहर सीढ़ियों पर बैठकर बूट पॉलिश करनेवाले युवक (नाम – राजा) इनकी व्यथा समझता है । यह बूट पॉलिश युवक नटसम्राट से प्रेम से रहता है । इतना ही नहीं बल्कि पिता के रूप में उन्हे गोद ही ले लेता है । साथ ही अपने आश्रम में रखने की इच्छा प्रकट करता है । यह सामान्य बालक नटसम्राट बेलवकर जी को जीवन का तत्वज्ञान बताता है । यह भी एक तरफ़ से नटसम्राट की शोकांतिका ही है । नटसम्राट का नाटकों में स्थान और कुटुंब में उनका स्थान इन दोनों को वृद्धावस्था का शाप मिलने से गौणत्व आया है । 'वृद्धावस्था अटल और अपरिहार्य जीवन दशा है।'

वृद्धावस्था मतलब जीवन की शोकांतिका का सामना करने की मन की तैयारी । शारीरिक शोकांतिका तो पहले ही घट चुकी होती है । उसके लिए अलग तैयारी की जरूरी नहीं होती है । कुछ एक अपवादों को छोडकर वृद्धावस्था कभी शाप मुक्त नहीं होती है । अपने बच्चों से वास्तविक जीवन की अपेक्षा पिता के नाते कौटुंबिक स्तर पर जीनेवाले कलाकार को जब दुख देते है तब उनका आत्मसंघर्ष वास्तविक नाटक और वास्तवादी नाटक इस खुद के ही दो अदाकारी से आरंभ होते है । नाटक में वास्तविकता नहीं बल्कि वास्तव का आभास मात्र होता है । वास्तविक जीवन का मुखौटा जब जायेगा तब जीवन की वास्तविक अदाकारी की परीक्षा आरंभ होती है ।

'नटसम्राट' इस नाटक की गहराई में जाकर अध्ययन और अनुसंधान करने लगते है तब मन में सवाल उठता है कि वास्तविक शोकांतिका किसकी है? कलाकार अप्पासाहब बेलवलकर की या वृद्धावस्था प्राप्त पिता बेल वलकर की ? इस प्रश्न का उत्तर यही आता है कि सही मायने में यह शोकांतिका पिता बेलवलकर की है। क्योंकि नाटक में अदाकारी यह एक व्यवसाय है। इस में सफ़ल हो भी गये तो व्यवसाय मुख्य नहीं है। इस में का इंसान मुख्य है। वृद्धावस्था एक अटल अवस्था है। इस अवस्था में उसे चाहिए घर । घर यह सिर्फ़ निवास स्थान नहीं बल्कि आश्रयस्थान भी है । यहाँ पर जिन्हे हम अपना समझते है वह अंत तक साथ निभाते है । यही साथ अप्पासाहब को मिलना चाहिए था । लेकिन उसी से वे वंचित रह गये । पत्नी कावेरी चोरी के आरोप को सहन नहीं कर पाई और यही सदमा आगे उनके निधन का कारण भी बन जाता है । उनका जीवन समाप्त हुआ । पत्नी का वियोग इनके जीवन की शोकांतिका का एक अविभाज्य हिस्सा बन जाता है ।

नटसम्राट में इनके जीवन की एक और त्रासदी सामने आती है कि वृद्धावस्था में पोते के साथ समय बिताना जीवन का एक सुखद क्षण है। लेकिन वह भी अप्पासाहब से छिन चुकी है । सभी तरफ़ से घर में कौटुंबिक स्तर पर अप्पासाहब दुखी, हताश और निराश हो चुके है । मैं लाचार नहीं बनूँगा यही उनकी आरंभ की भाषा थी। लेकिन प्रत्यक्ष में उन्हें घर में शून्य कीमत मिली है । लाचारी से बढ़कर नियतीने इन्हे दी हुई यह कठोर सजा है । और इसका भोग अटल है । अप्पासाहब की पिता के नाते हुई शोकांतिका भयंकर पराभव से हो चुकी है । प्रतिकूल परिस्थिति ने उनका पीछा आखिर तक नहीं छोडा । मनुष्य उम्र से भी बढ़कर प्रतिकूल परिस्थिति से अधिक मजबूर हो जाता है । दूसरे की भूमिका की वास्तविकता समझने से ज्यादा इस जंग में खुद की भूमिका क्या है यह समझना अत्यंत जरूरी है । और अगर यह बात समझ में नहीं आयी तो हिस्से में पराभव ही आयेगा । यही शोकांतिका प्रतिकूल परिस्थिति के कारण अप्पासाहब की हो गयी है ।

नाटक के अंत में नाटककार को संदेश देना होता है । यह बात खुद कलाकार ने खुद अपनी पोती ठमी कों कही है । लेकिन जब पोती अत्याग्रह करती है तत्व खुद ही वे संदेश दे देते है ।

'सूर को साथ दो, दिये को बात (बाती) दो
धूप में बैठे वृद्ध को सिर्फ़ अपना हाथ दों ।

इस संदेश में नाटककार ने नई पीढ़ी से प्रेम पूर्वक सहकार्य की इच्छा व्यक्त की है । मैं अश्रु नहीं बहाऊंगा कहनेवाला नटसम्राट आखिर थक चुका है । जीवन के अंत में जीना या मरना इस विचार में किसके पैरों पर माथा टिकाए ऐसी असहाय अवस्था इनकी हो चुकी है। 'कोई घर देगा या घर' इस बात की ज़ाहिर भीख मांगते हुए मूल वेदना है इनके लिए समाप्त हो चुकी घरौंदे की ।

*****

'पंचलाइट' : एक पुनर्पाठ

डॉ.निम्मी ए.ए.
सहायक आचार्य
परास्नातक हिन्दी विभाग एवं शोध केंद्र
सरकारी कला व विज्ञान महाविद्यालय
कोषिक्कोड, केरल मो .919747864786

शोध सार:
फणीश्वरनाथ रेणु मुकम्मल हिन्दी के विरले कथाकार हैं जिन्होंने ग्रामीण क्षेत्रों में विज्ञान और तकनीक के प्रवेश का चित्र अक्सर अपनी रचनाओं में खींचा है। लिहाज़ा उन्हें केवल आंचलिक कथाकार का जामा पहनाना संगत नहीं है। वाकई वे प्रेमचंद के बतौर तमाम भारतीय समाज की दड़कन को उकेरनेवाले महान कथाकार थे। बहरहाल उन्होंने जातिवाद, भाई-भतीजावाद और भ्रष्टाचार की पनपती हुई बेल की ओर मात्र इशारा नहीं किया था, इसे समूल नष्ट करने की सख़्त ज़रूरत पर भी बल दिया था। 'पंचलाइट' कहानी समाज की जाति व सवर्ण केंद्रित संरचना के अंत:स्वरूप का जीवंत दस्तावेज़ है।

बीज शब्द:
फणीश्वरनाथ रेणु, आंचलिक कथाकार, जाति व सवर्ण केंद्रित संरचना, जातीय सभाचट्टी, पेट्रोमैक्स बालना, जातीय अस्मिता का आलोक, सवर्णवाद अथच ब्राह्मण वाद, पंचायत, पंचलाइट।

शोध विस्तार:

रेणु के पहले कहानी संग्रह का प्रकाशन १९५८ में 'ठुमरी' नाम से हुआ था। इसमें कुल मिलाकर नौ कहानियाँ हैं। क्रमशः 'रसप्रिय', 'तीर्थोदक', 'ठेस', 'नित्य लीला', 'पंचलाइट', 'सिर पंचमी का सगुण', 'तीसरी कसम उर्फ मारे गए गुलफाम', 'लाल पान की बेगम' और 'तीन बिंदिया'। इसकी तमाम कहानियाँ ठुमरी धर्मा ही है। ठुमरी की भूमिका में रेणु लिखते हैं -'इस संग्रह में'ठुमरी' नाम की कोई कहानी नहीं, सभी संयोजित कहानियां ठुमरिधर्मा हैं - अंतर्भाग एक ही है सभी कथाओं का - अंतर्भाग यानी विभिन्न स्वरों में प्रयोग से संपादित कारू-कार्य। एक ही मुहर, विभिन्न परिवेश में'। रेणु की कहानियों की खासियत यह है कि दरअसल वे अपनी कहानियों में 'अपने को' अर्थात 'आदमी' को ढूँढते फिरते है। खुद फणीश्वरनाथ रेणु के ही लफ़्ज़ों में, 'अपनी कहानियों में मैं अपने आप को ही ढूँढता फिरता हूँ अपने को अर्थात आदमी को!' आगे वे कहते है 'मैंने ज़मीन, भूमिहीनों और खेतीहर मज़दूरों की समस्याओं को लेकर बातें की'। रेणु जी के इस आत्म-वक्तव्य से ज़ाहिर है कि जीवन व समाज के प्रति उनका सरोकार प्रेमचंद के बतौर ही है। वाकई इस लिहाज़ से रेणु जी प्रेमचंद के संपूरक कथाकार है। आलोचकों का मानना है कि शायद इसी वजह से ही प्रेमचंद के बाद रेणु को एक बड़ा पाठक वर्ग हासिल हुआ।'पंचलाइट' उनकी बहुचर्चित व सबसे छोटी कहानी है, जो पाठकों के बीच खूब मकबूल हुई थी। हिंदी आलोचना में अक्सर जातिवाद के मुद्दे को किनारा करके वर्ग के सवाल पर टीका - टिपणी मिलती है। मगर रेणु की कमोबेश रचनाएँ उत्तर भारत की खासकर बिहार के जाति केंद्रित गाँव की तमाम परिघटना में अंतर्धारा के रूप में मैजूद रहती है। समाज में जातिवाद की जड़ें हज़ारों वर्षों से गहरी रही है। जातिवाद के दंश ने मानवता को जितना नुक्सान पहुंचाया है उतना शायद ही किसी और ने पहुंचाया होगा। फिलहाल लोग वर्गचेतना पर ही बात ज़्यादातर करते है, मगर सच बात तो यह है कि इस डिजिटल युग में भी लोगों की मानसिकता में कोई बदलाव नहीं आया है। खैर, सुधार तो ज़रूर हो रहे है। कहानी में सवर्ण के वर्चस्ववाद के बरख़िलाफ़ पिछड़ों की जातिवादी सचेतनता व नवजागरण की अनुगूंज मिलती हैं। हालाँकि अम्बेडकरवाद से प्रत्यक्षतः कहानी का कोई तालुकात नहीं है। जगजाहिर है कि पूर्णिया जिले के महतो जाति बिहार में अति पिछडा वर्ग के अंतर्गत आती है। जिनकी समाज में बेहद शोचनीय स्थिति भी है। अधिकांश जगहों में ऐसी ही हालात हैं आज़ादी के कई बरसों बाद भी। जैसे कि कहानी में इसका उल्लेख है – 'गाँव में सब मिलाकर आठ पंचायतें हैं। हरेक जाति की अलग-अलग 'सभाचट्टी' है। यहाँ सभाचट्टी से मतलब जाति केन्द्रित टोलियों में विभक्त समाज से है। 'पंचलाइट' यानी 'पेट्रोमैक्स'! बाज़ार की जगर-मगर कौंध के बीच एलईडी बल्ब के प्रकाश में आँखें खोलनेवाली पीढ़ी को 'पेट्रोमैक्स' शब्द का ठीक-ठीक अर्थ शायद ही पता होगा। यदि कहानीकार के ही अल्फ़ाज़ उधार लूँ, तो 'पंचलाइट' यानी कल कब्जे वाली एक चीज़ जो रोशनी फैलाती है। जैसा कि शीर्षक से ही ज़ाहिर है कि इस कहानी के केंद्र में वही रोशनी और कल कब्जे वाली चीज़ है। ग्रामीण परिवेश की पृष्ठभूमि में लिखी गई अमूक कहानी की शुरुआत एक जातीय सभाचट्टी द्वारा रामनवमी के मेले से सार्वजनिक उपयोग के लिये पेट्रोमैक्स खरीद कर लाने से होता है। यूं तो कहानी में 'पेट्रोमाक्स' का खरीदा जाना एक मामूली घटना है, मगर यह जातीय अस्मिता का प्रतीक है। इसलिए ही जैसे कथावाचक के लफ़्ज़ों में 'पिछले पंद्रह महीने से दंड-जुर्माना के पैसे जमा करके महतो टोली के पांचों ने पेट्रोमाक्स खरीदा है'। उन लोगों ने शिद्दत के साथ पेट्रोमेक्स खरीदा और बाकि पंचायतों की बराबरी करने में सफल हुआ। वाकई पेट्रोमेक्स जैसी रोशनी की चाह उनके चेतनागत बदलाव केलिए द्योतक है।

प्रकाश देनेवाले इस नये उपकरण की आमद पर सभी उत्साहित थे, परंतु तमाम पंचायत में किसी को पंचलाइट जलाना नहीं आता था। हकीकत में यह सिर्फ पंचलाइट के जलने या नहीं जलने का सवाल न होकर पूरी पंचायत की इज्ज़त का सवाल है। सब इसी चिंता में था कि पंचलाइट कौन जलायेगा और कैसे पंचायत की इज्ज़त बचेगी, तभी पता चलता है कि पंचायत का एक युवा गोधन पंचलाइट बेलने या जलाने में माहिर है। मगर गोधन बिरादरी की ही एक लड़की मुनरी से प्रेम मुहब्बत का इज़हार करने की वजह जाति से भ्रष्ट था। हालाँकि जाति और पंचायत की नाक ऊंची बनी रहे इसके लिए गोधन को आग्रहपूर्वक बुलाकर पंचलाइट जलाने को कहा जाता है। कुछेक प्रसंगों के पश्चात गोधन न सिर्फ पंचलाइट बालता है बल्कि बिरादरी में उसकी वापसी भी हो जाती है।दरअसल यह कहानी ज्ञान और सत्ता के गांठजोड़ के वर्चस्व को धराशयी करती दिखाई देती है। कहानी का प्रसंग द्रष्टव्य है, 'मेले से सभी पंच दिन-दहाड़े ही गाँव लौटे; सबसे आगे पंचायत का छड़ीदार पंचलाइट का डिब्बा माथे पर लेकर और उसके पीछे सरदार दीवान और पंच वगैरह। गाँव के बाहर ही ब्राह्मण टोले के फुंटगी झा ने टोक दिया-कितने मेंलालटेन खरीद हुआ महतो?' यह बेशक एक उपहास जनक अहंकारी टिप्पणी है कि पिछड़े गाँव वासी पेट्रोमक्स के बारे में कुछ जानता ही नहीं। जैसा कि उन लोगों की औकात पेट्रोमैक्स की नही, लालटेन तक सीमित है। कथावाचक की प्रतिक्रिया देखिए.... 'देखते नहीं हैं, पंचलैट है! बामन टोली के लोग ऐसे ही ताब करते हैं।अपनेघर की ढिबरी को भी बिजली-बत्ती कहेंगे और दूसरों के 'पंचलैट' को लालटेन!' 'पंचलैट' माने पंचों की लाइट; अपनी बिरादरी की लाइट। ज़ाहिर है अवर्णों की हैसियत को बढ़ावा देने वाला यह बयान सवर्ण वादी परंपरागत रूढिग्रस्त मानसिकता पर कुठाराघात है। यह व्यंग्य अमूमन जातिगत श्रेष्ठता को मिथ या मनगढ़ंत निर्मिति साबित करती हैयह कहानी आज़ादी के तकरीबन एक दशक बाद लिखी गयी थी। शर्मनाक है कि स्वाधीन भारत में फिलहाल भी जातीयता की यह भावना अपने ज़ोरों पर है, जिसे बरसों पहले रेणु ने महसूस । किया। जातिवाद एक ऐसी प्रणाली है, जो प्राचीन काल में अपनी जड़ें पाती हैं। यह वर्षों से अंधाधुंध चली आ रही है और उच्च जातियों के लोगों के हितों को आगे बढ़ा रही है। निम्न जाति के लोगों का शोषण किया जा रहा है और उनकी परेशानियों को सुनने वाला कोई नहीं है।पंचलाइट को जलाने और रख - रखाव के कौशल से तो गाँव वासी अनभिज्ञ थे। चूँकि 'गाँववालों ने आज तक कोई ऐसी चीज़ नहीं खरीदी, जिसमें जलाने-बुझाने का झंझट हो। कहावत है न, भाई रे, गाय लूँ? तो दुहे कौन? लो मजा! अब इस कल-कब्जेवाली चीज़ को कौन बाले?' दरअसल इसी द्वंद्व पर केंद्रित है कहानी। यह बात नहीं कि गाँव-भर में कोई पंचलैट बालनेवाला नहीं। हरेक पंचायत में पंचलैट है, उसके जलानेवाले जानकार हैं। मगर 'सवाल है कि पहली बार नेम-टेम करके, शुभ-लाभ करके, दूसरी पंचायत के आदमी की मदद से पंचलैट जलेगा? इससे तो अच्छा है

पंचलैट पड़ा रहे। जिन्दगी - भर ताना कौन सहे! बात-बात में दूसरे टोले के लोग कूट करेंगे-तुम लोगों का पंचलैट पहली बार दूसरे के हाथ से! न, न! पंचायत की इज़्ज़त का सवाल है। दूसरे टोले के लोगों से मत कहिए!' ऐसा लगता है कि यह कहानी बेशक आज के ज़माने के लिए भी लिखी गई थी। पंचलैट जला पाने में नाकामियाब होने पर 'चारों ओर उदासी छा गई। अँधेरा बढ़ने लगा। किसी ने अपने घर में आज ढिबरी भी नहीं जलाई थी। आज पंचलैट के सामने ढिबरी कौन बालता है!' जब राजपूत टोली के लोगों को यह पता चलता है कि पेट्रोमैक्स जल नहीं रहे है, अलबत्ता वे महतो के उपहास करते है। देखिए 'एक नौजवान ने आकर सूचना दी – 'राजपूत टोली के लोग हँसते-हँसते पागल हो रहे हैं। कहते हैं, कान पकड़कर पंचलैट के सामने पाँच बार उठो-बैठो, तुरन्त जलने लगेगा'। दरअसल रेणु ने उस सामंती दंड – व्यवथा का जिक्र किया है, जोकि राजपूतों की बद्धमूल मानसिकता केलिए जवाबदेह है। शम्भू गुप्त के लफ़्ज़ों में 'ज्ञान के साथ सत्ता के गठजोड़ का मिशेल फूको का सिद्धांत यहां याद किया जा सकता है। हमारे यहाँ का सवर्णवाद अथच ब्राह्मण वाद ज्ञान और सत्ता के वर्चस्ववादी गठजोड का संभवतः दुनिया का सबसे बड़ा उदाहरण होगा लेकिन इस कहानी की यही विशेषता हौ यह है कि यह ज्ञान और सत्ता के इस वर्चस्व को अपनी अंदरूनी क्षमता से तोड़ती है'जब पंचललैट बालने का मसला आता है तो मुनरी ने चालाकी से अपनी सहेली कनेली से कहा कि वह सरदार से बताए कि गोधन जानता है पंचलाइट जलाना। 'लेकिन, गोधन का हुक्का-पानी पंचायत से बंद है। मुनरी की माँ ने पंचायत से फरियाद की थी कि गोधन रोज उसकी बेटी को देखकर सलम-सलम वाला सलीमा का गीत गाता है-हम तुमसे मोहोब्बत करके सलम! पंचों की निगाह पर गोधन बहुत दिन से चढ़ा हुआ था। दूसरे गाँव से आकर बसा है गोधन और अब टोले के पंचों को पान-सुपारी खाने के लिए भी कुछ नहीं दिया। परवाह ही नहीं करता है। बस, पंचों को मौका मिला। दस रुपया जुरमाना! न देने से हुक्का-पानी बन्द। आज तक गोधन पंचायत से बाहर है। उससे कैसे कहा जाए! मुनरी उसका नाम कैसे ले? और उधर जाति का पानी उतर रहा है। हालाँकि सलीमा का गीत गाकर आँख का इशारा मारनेवाले गोधन से गाँव-भर के लोग नाराज़ थे। आखिर में सरदार ने कहा, 'सरदार ने कहा, जाति की बन्दिश क्या, जबकि जाति की इज़्जत ही पानी में बही जा रही है! क्यों जी दीवान?' बहरहाल शहर से पथारी नयी चीज़ 'पंचलाइट' ने जातिगत संकीर्ण मानसिकता को दराशयी कर दिया। 'अन्त में पंचलाइट की रोशनी से सारी टोली जगमगा उठी तो कीर्तनिया लोगों ने एक स्वर में, महावीर स्वामी की जय-ध्वनि के साथ कीर्तन शुरू कर दिया। पंचलैट की रोशनी में सभी के मुस्कुराते हुए चेहरे स्पष्ट हो गए। गोधन ने सबका दिल जीत लिया'। कहानी के आखिर में गोधन द्वारा पेट्रोमैक्स जलाना बौद्ध दर्शन का एक सूत्र वाक्य है की याद दिलाता है। 'अप्प दीपो भव' अर्थात अपना प्रकाश स्वयं बनो। गौतम बुद्ध के कहने का मतलब यह था कि किसी दूसरे से उम्मीद लगाने की बजाये अपना प्रकाश रूपी प्रेरणा खुद बनो। खुद तो प्रकाशित हो ही, लेकिन दूसरों के लिए भी एक प्रकाश स्तंभ की तरह जगमगाते रहो। कहानी में गोधन इसी केलिए दरपेश है। ग्रामीण अंचल के यथार्थवादी चित्र रेणु ने खींचा है। जिस प्रकार हम कहते है कि आवश्यकता अविष्कार की जननी है, अलबत्ता आवश्यकता बड़े-बड़े रुढिगत संस्कार और परंपरा को व्यर्थ साबित कर देती है। चूंकि जाति का इज्ज़त एक अस्मितागत मामला है। यहाँ 'विकास का प्रतीक पंचलाइट कमियों का त्याग करने और नये रास्ते के संधान की पहल है'। सरदार ने गोधन को बहुत प्यार से पास बुलाकर कहा, 'तुमने जाति की इज्ज़त रखी है। तुम्हारा सात खून माफ। खूब गाओ सलीमा का गाना'। समय की ज़रूरत की बदौलत सरदार द्वारा गोधन के हुनर को आदर्श के रूप में स्वीकार करना बेशक विकास का मार्ग प्रशस्त करना ही है।

संक्षेप में, प्रस्तुत कहानी भारतवर्ष के तमाम गाँव के जटिल समाजशास्त्र को निहायत सरल व सहज लहजे में साझा करती है। अतः 'यह कहानी भारत के गाँव समाज में जातिवादी विभाजन को हल्के-फुल्के नाटकीय शिल्प में हमारे सामने रखती है'। पंचललैट के आलोक से गाँव के तमाम पेड़-पौधों के पत्ते-पत्ते पुलकित होने का संकेत सिर्फ 'पंचलाइट' का प्रकाश नहीं है, बल्कि यह उनकी कामयाबी का आलोक है; उनकी जातीय अस्मिता का आलोक है; उनके मान-अभिमान का आलोक है साथ ही विकासवाद का आलोक भी है। बहरहाल 'पंचलाइट' के आलोक में मुहब्बत की, भरोसे की तथा जातीय जीत की रोशनी फैलती है। प्रस्तुत कहानी की कथावस्तु संक्षिप्त, रोचक, सरल, मनोवैज्ञानिक और यथार्थवादी है। जहां तक भाषा का सवाल है, अनामिका जी के शब्दों को उधार लूँ तो 'मलमल के कुर्ते पर छींट लाल लाल', लाजवाब है। बेशक रेणु की कहानी कला अपने आप में अद्वितीय है। बहरहाल उनकी कहानियों को पढ़ते वक्त अमूमन शमशेर की पंक्तियाँ याद आती है:

बात बोलेगी,
हम नहीं।
भेद खोलेगी,
बात ही'।

******

संदर्भ :-

1. ठुमरी, फणीश्वर नाथ रेणु,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, भूमिका
2. वहीं
3. रेणु रचनावली -1, सं : भारत यायावर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995, पृ -193
4. ठुमरी, फणीश्वर नाथ रेणु, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, भूमिका
5. रेणु रचनावली-1, सं : भारत यायावर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995, पृ -193
6. वहीं, पृ – 194
7. वहीं, पृ – 193
8. वहीं, पृ – 195
9. वहीं, पृ – 194
10. वहीं, पृ – 194
11. बनास जन, सं: पल्लव, फणीश्वर नाथ रेणु शताब्दी स्मरण,जनवरी-मार्च 2021,पृ – 228
12. रेणु रचनावली -1, सं : भारत यायावर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995,पृ – 195
13. वहीं, पृ – 195
14. वहीं, पृ – 195
15. संवेद, सं: किशन कालजयी, फणीश्वर नाथ रेणु शताब्दी स्मरण, मार्च 2021, पृ – 339
16. रेणु रचनावली -1, सं : भारत यायावर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995, पृ – 195
17. संवेद, सं: किशन कालजयी, फणीश्वर नाथ रेणु शताब्दी स्मरण, मार्च 2021, पृ – 541
18. बनास जन, सं: पल्लव, फणीश्वर नाथ रेणु शताब्दी स्मरण, जनवरी-मार्च 2021, पृ – 242
19. बात बोलेगी / शमशेर बहादुर सिंह http://kavitakosh.org/kk

आदिकाल में नाथ सम्प्रदाय : महत्व एवं योगदान

रीना रानी
सहायक प्रोफेसर
ओ .डी .एम. कॉलेज, मुकलान, हिसार

सारांश :-नाथों की संख्या नौ मानी गई है। 'शिव ' ही आदिनाथ हैं। नाथ सम्प्रदाय के प्रवर्तक मत्स्येन्द्रनाथ एवं गोरखनाथ माने गये हैं। नाथों का समय 12 वीं से 14 वीं शती तक है तथा हिन्दी संतकाव्य पर इनका पर्याप्त प्रभाव है। डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने गोरखनाथ की रचनाओं का संकलन गोरखबानी नाम से किया है। गोरखनाथ की रचनाओं में गुरू महिमा, इन्द्रिय निग्रह, प्राण साधना, वैराग्य, कुण्डलिनी जागरण एवं शून्य समाधि का वर्णन है। गोरखनाथ ने षट्चक्रों वाला योग मार्ग हिन्दी साहित्य में चलाया।

नाथ सम्प्रदाय का परिचय:-गोरखनाथ ने अपने शिष्यों को नारी से दूर रहने का उपदेश दिया। कबीर साहित्य में उपलब्ध नारी विरोध इसी का परिणाम है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, ''इनकी सबसे बड़ी कमजोरी इनका रूखापन एवं गृहस्थ के प्रति अनादर भाव है।'' गोरखपंथी साहित्य के अनुसार आदिनाथ स्वयं शिव थे। उनके पश्चात् मत्स्येन्द्रनाथ हुए, जिसके आचरण का विरोध उनके शिष्य गोरखनाथ ने किया। राहुल सांकृत्यायन ने गोरखनाथ का समय 845 ई. माना है, नवीन खोजों के अनुसार यह धारणा अधिक प्रबल हुई है कि गोरखनाथ ने ईसा की तेरहवीं सदी के आरम्भ में अपना साहित्य लिखा था।

नाथ सम्प्रदाय के प्रमुख प्रवर्तक:-नाथ साहित्य में बहुत से कवियों ने अपना योगदान दिया। लेकिन डॉ. रामकुमार वर्मा ने जिन नौ नाथों के बारे में लिखा है वह निम्न प्रकार से हैं -आदिनाथ 'शिव', मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ, गहिणीनाथ, चर्पटनाथ, चैरंगीनाथ, ज्वालेन्द्रनाथ, भर्तृहरिनाथ, गोपीचंदनाथ। गोरख सिद्धांत संग्रह में नौ नाथों के नाम इस प्रकार बताए गए हैं -नागार्जुन, जड़भरत, हरिश्चन्द्र, सत्यनाथ, भीमानाथ, गोरखनाथ, चर्पट, जालंधर, मलयार्जुन। उपरोक्त नामों में नागार्जुन, चर्पटनाथ, जालंधर की गणना सिद्धों में भी होती है। इनमें से नागार्जुन एक प्रसिद्ध रसायनज्ञ थे, जिनका समय संवत् 702 माना जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत है कि जालंधर से ही सिद्धों से नाथों की परम्परा अलग हो जाती हैडॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में ''शंकराचार्य के बाद इतना प्रभावशाली और इतना महिमन्वित भारतवर्ष में दूसरा नहीं हुआ। दुनिया के कोने-कोने में उनके अनुयायी आज भी पाये जाते हैं। भक्ति आंदोलन के पूर्व सबसे शक्तिशाली धार्मिक आंदोलन गोरखनाथ का भक्ति मार्ग ही था। गोरखनाथ अपने युग के सबसे बड़े नेता थे। नाथ पंथी जोगी कान की लो में बडे-बडे छेद करके स्फटिक के भारी-भारी कुंडुल पहनते थे, इससे वह कनफटे कहलाते थे।आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने गोरखनाथ जी की 28 पुस्तकों का उल्लेख किया है। मिश्रबन्धुओं ने गोरखनाथ को हिन्दी का प्रथम गद्य-लेखक माना है, जो उचित नहीं ठहरता। गोरखनाथ ने हठयोग का उपदेश दिया था। हठयोगियों के सिद्ध-सिद्धांत-पद्धति ग्रंथ के अनुसार ह का अर्थ है-सूर्य तथा ठ का अर्थ है-चन्द्र। इन दोनों के योग को ही हठ योग कहते हैं। गोरखनाथ ने ही षट्चक्र वाला योगमार्ग हिन्दी साहित्य में चलाया था। इस मार्ग में विश्वास करने वाला हठयोगी साधना द्वारा शरीर और मन को शुद्ध करके शून्य में समाधि लगाता था और वहीं ब्रह्मा का साक्षात्कार करता था। गोरखनाथ ने लिखा है कि धीर है वह, जिसका चित विकार साधन होने पर भी विकृत नहीं होता। नाथ पंथियों का मुख्य सम्प्रदाय गोरखनाथ योगियों का है। नाथ सम्प्रदाय में बहुत से योगी गृहस्थ भी हुए, किन्तु उनकी मर्यादा बुद्धिहीन मानी जाती है। वास्तव में गोरखनाथ सिद्ध-युग और संत-युग की कड़ी के रूप में हैं। उनके ग्रंथों की प्रश्नात्तरी शैली ने आगे के संत कवियों को प्रभावित किया। 'गोरखबानी' में आत्मा, मन, पवन, नाद, बिन्दु, सुरति आदि का विवेचन मिलता है। ''गोरखनाथ के पदों की प्रमाणिकता के बारे में भी संदेह है, किन्तु वे भी कबीर के पदों की भांति प्रचलित हो गये थे। इन पदों में साधना, नैतिकता, गुरू महिमा, मन के संयम, काम-क्रोध या आसक्ति न होना, ब्रह्मचर्य, शारीरिक एवं मानसिक पवित्रता, मांस आदि का परित्याग आदि बातों पर प्रकाश डाला गया है। सिद्धों में तो कुछ वीभत्स और अश्लील परिपाटियां चल पड़ी थी। नाथ पंथियों ने अपने को उनसे अलग रख हठयोग द्वारा ईश्वर प्राप्ति को अपना लक्ष्य बनाया। व्यवहारिक दृष्टि से उनका योगमार्ग पतंजलि के योगसूत्र पर आधारित था। दार्शनिक दृष्टि से उनमें शिव-भक्ति की भावना पाई जाती है। पिण्ड और ब्रह्माण्ड को वे सत्ता मानते हैं। गोरखनाथ जी की कुछ प्रसिद्ध पंक्तियां -

जोई जोई पिण्डे सोई ब्रह्माण्डे/गगन मंडल में ऊँधा कूबा,
वहां अमृत का बासा।/सगुरा होइ सु भरि-भरि पीवै,
निगुरा जाइ पियासा।।/अवध रहिया हाटे वाटे रूप विरष की छाया।
तजिवो काम क्रोध लोभ मोह संसार की माया।।/नौ लख पातरि आगे नाचै,
पीछे सहज अखाड़ा।/ऐसे मन लै जोगी खेलै, तब अंतरि बसै भंडारा।।
अंजन मांहि निरंजन भेट्या, तिल मुख भेट्या तेलं।/मूरति मांहि अमूरति
पर्स्या, भया निरंतरि खेलं।।

इस प्रकार से उनकी रचनाओं में में आदिकाल की वह शक्ति छिपी मिलती है, जिसने भक्तिकाल की कई प्रवृत्तियों को जन्म दिया। डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय लिखते हैं, '' गोरखनाथ ने जिस हठयोग का उपदेश दिया है, उसमें परंपरा के अनुसार प्राणायाम से वायु का निरोध कर कुण्डलिनी को उद्बुद्ध करता है, और षट्चक्रों को भेदता हुआ उसे सहस्त्रार या शून्य में मिलता है। जहां शिव का निवास है, वहीं कैलाश है। इसी प्रकार गोरखनाथ के अनुसार जो व्यक्ति चक्रों, नाड़ियों आदि को नहीं जानता, वह सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता। शक्ति की जब शिव के साथ समरसता होती है, तभी योगियों को कैवल्य पद वाली सहज समाधि प्राप्त होती है, जिससे बढ़कर कोई और आनंद नहीं और यह सब गुरू की कृपा से प्राप्त होता है।''गोरखनाथ की 14 प्रमाणिक रचनाएं मानी गई हैं, जो निम्न प्रकार से हैं-

सबदी, पद, सिष्यादरसन, प्राण संकली, नरवैबोध अभैमात्राजोग, आत्मबोध, पन्द्रह तिथि, सप्तवार महिन्द्र गोरखनाथ बोध, रोमावली, ग्यान तिलक, ज्ञान चैतीसा, पंचमात्रा

गोरखनाथ द्वारा प्रवर्तित ग्रन्थ:-सतनाथ, रामनाथ, धरमनाथ, लक्ष्मनाथ, दरियानाथ, गंगानाथ, बैराग, रावल या नागनाथ, जालंधरिया, आइपंथ, कपिलानी भजनाथ।

नाथ सम्प्रदाय से संबंधित कुछ आलोचकों के विचार:-आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार-''नाथ पंथ या नाथ सम्प्रदाय के सिद्ध-मत, सिद्ध-मार्ग, योग मार्ग, योग सम्प्रदाय, अवधूत-मत, अवधूत सम्प्रदाय इत्यादि नाम भी प्रसिद्ध हैं।''डॉ. नगेन्द्र के अनुसार-''सिद्धों की वाममार्गी भोगप्रधान योगसाधना की प्रतिक्रिया स्वरूप आदिकाल में नाथपंथियों की हठयोग साधना प्रारंभ हुई।'' राहुल सांकृत्यायन-''नाथपंथ सिद्धों की परम्परा का विकसित रूप है।'' डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार-''नाथों का समय 12 वीं सदी से 14 वीं सदी के अंत तक है।''नाथ पंथ की कुछ प्रमुख विशेषताएं थी, जो निम्न प्रकार से हैं-ब्रह्मचर्य का पालन, जात-पात और कर्मकांड का विरोध, नारी भोग का विरोध, शून्य समाधि, नाड़ी साधना, कुंडलिनी, इंगला, पिंगला, षटचक्र आदि की साधना का प्रचार, रहस्यात्मकता, सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग, प्रतीक और रूपक का प्रयोग। नाथों का मानना है कि जो शरीर में है, वही ब्रह्माण्ड में है। नाथों का तंत्र बोध सिद्धों का वीभत्स तंत्र नहीं था। चमत्कार वे भी करते थे, पर उनका चमत्कार योगजन्य था। वे ब्रह्मचर्य और योगसाधना पर अधिक बल देते थे। अतः हम कह सकते हैं कि नाथ सम्प्रदाय का हिन्दी साहित्य में अद्वितीय योगदान रहा और जिसका प्रभाव भक्तिकाल में भी बखूबी देखा जा सकता है।

*****

संदर्भ ग्रंथ:-

1. डॉ. बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ. 55
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 95
3. डॉ. विवेक शंकर, हिन्दी साहित्य, पृ. 94
4. उमेश तिवारी, सूचनापरक हिन्दी साहित्य, पृ. 46
5. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 92
6. डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 1

'कल्चर-वल्चर उपन्यास': साहित्य, राजनीति एवं व्यवसाय की यथार्थ परिकल्पना

रेणु देवी
शोधार्थी
राजकीय स्नात्तकोत्तर महाविद्यालय रानीखेत (अल्मोड़ा)उत्तराखण्ड
मो. 7500194778

आज बाजारवाद का प्रकोप प्रायः सभी क्षेत्र में एक ही जैसा हुआ है, इससे साहित्य जितना प्रभावित है, उतना ही इसका असर सामान्यतः आम-आदमी के जीवन पर भी हुआ है। साहित्य की प्रभुत्व कला और इसमें समाये हुए रंगरोगन की चकाचौंध व्यक्ति को मतवाला बना देती है, जिसके लिए साधारण लोग जो कि जीवन से कुछ पाने के बजाय खोते ही हैं, वह भी इसकी चपेट में आ जाते हैं। इसकी आड़ में राजनीतिक गतिविधियां भी अपना हाथ आजमाने में पीछे नहीं हटती हैं, क्योंकि इसका सम्पूर्ण कारोबार व्यावसायिक स्तर पर आ गया है, अपने कलम एवं उसकी उपयोगिता जब आर्थिक दृष्टिकोण का मार्ग अपनाने लगे वह उसी वक्त व्यवसाय का रूप धारण कर लेती है।हिंदी उपन्यास मूलतः आधुनिक काल की देन है। स्वाधीनतापूर्व काल में देश की राजनीति अंग्रेजों के हाथ में थी। सत्तासीन अंग्रेजों के खिलाफ भले ही भारतीय जनमानस में असंतोष रहा हो लेकिन उसकी आलोचना का अधिकार था नहीं।यदि कोई तिलक जैसा व्यक्ति तत्कालीन शासक की आलोचना अखबार के जरिए करने का प्रयास भी करता तो उसका नतीजा मंडाले जैसे कारागार में बदल जाता। हिंदी के यशपाल, अज्ञेय, शेवड़े जी जैसे अनेक रचनाकारों को आजादी के आंदोलनकाल में क्यों जेल जाना पड़ा था कहना आवश्यक नहीं। डॉ0 रीना प्रताप सिंह का कथन सहमति योग्य है-''स्वाधीनतापूर्वकालीन हिंदी उपन्यासों में सत्ता राजनीति पर लेखन नहीं हुआ ऐसा नहीं। फुटकल, प्रसंगानुरूप लेखन तो अवश्य मिलता है जो पात्रों के जरिए प्रस्तुत हुआ है। लेकिन राजनीति का कड़वा सच, उसका कृष्णधवल रूप और उसकी कठोर आलोचना तो स्वातंत्र्योत्तरकालीन हिंदी उपन्यासों में ही दिखाई देती है।''1ममता कालिया ने अपनी सभी कृतियों में ज्वलन्त अवधारणाओं को लिया है विशेषकर वर्तमान में चल रहे प्रकरण ही उनकी कलम के सरोकार बने है, इसी कारण उनका लेखन समाज में चल रहे दुष्कर कार्यों को बेबाकी से उकेरने में सफलता प्राप्त करता आया है। उनका उपन्यास ''कल्चर-वल्चर'' भी साहित्य, राजनीति एवं व्यवसाय का खुला चिट्ठा खोलता हुआ प्रतीत होता है। आज साहित्य का व्यवसाय भी उन्हीं के हाथों हो रहा है, जिसको इसकी बागडोर थमायी गयी है।

'साहित्य संस्कृति भवन' और उसकी प्रमुख 'सुषमा अग्रवाल, बाबूलाल महेश्वरी, यहां बड़ी-बड़ी हस्तियों का आगमन उनका इस जगह पर अपनी भी चाटुकारिता का प्रदर्शन देखना बहुत ही भाता है। राजा रविवर्मा से लेकर जे. स्वामीनाथन, हुसैन तक का अद्भुत अपूर्व स्थान इस सभाकक्ष को और भी गांभीर्य मुद्रा प्रदान करता है। यहां स्टेनों, विक्रय अधिकारी, और पुस्तकालयाध्यक्ष सभी एक सुनिश्चित गणवेश में ही रहते हैं। प्रांगण के भीतर और बाहर की सुसज्जित वातावरण से सजी-धजी क्यारियों में लगे फूलों का ब्राण्ड भी उसकी शोभा को एक नवीनता देने में कोई परहेज नही करता है। ममता कालिया ने इसको लिखने के पीछे की जो विशेष परिस्थिति को अपनी इसी पुस्तक की भूमिका में दी है , वह उनके विचारों की परिपक्वता को और भी संवेदनायुक्त स्वरूप से परिपूर्ण करते हैं- ''कल्चर वल्चर उपन्यास का विषय पिछले डेढ़-दो दशक से मेरे अंदर फड़फड़ा रहा है। जब भी कोई नई संस्था उठ खड़ी होती और कला, साहित्य, संस्कृति का राग अलापती हुई अपनी पारदर्शिता का दम भरती, मुझे उनका नाट्य दिखाई देने लगता है। कला, व संस्कृति आज सरोकर न रहकर कारोबार बनते जा रहे हैं और इसके प्रबंधक कारोबारी।''[2] वैसे इस बात को भी नकारा नहीं जा सकता कि परंपरावादी और रूढ़िवादी समाज में सुधार, परिवर्तन और जागरूकता मलाने का महत्वपूर्ण कार्य भी साहित्य की विधा करती है वह उपन्यास, कहानी, नाटक, संस्मरण, जीवनी, यात्रा वृत्तांत चाहे कोई भी हो। परिस्थिति और समय के अनुसार साहित्य के विषय भी बदलते रहते हैं। धीरे-धीरे इसमें भी परिवर्तन होने लगा और यह व्यवसाय की ओर अग्रसर हुआ वह अब कला संस्कृति के साथ तड़का भी लगाने का उस्ताद हुआ जिसके सुगंध से दूर-दूर तक के लोगों में कौतूहल का वातावरण स्थापित हो सके। ओज इक्कीसवीं सदी में जो बदलाव कलमकारों की कलमकौशल की प्राथमिकता में देखने को आता है, वह व्यवसायिक मानसिकता के कारण अश्लीलता का भी द्योतक बनता जा रहा है। उद्देश्यपूर्ण रचनाओं को रचने में ममता कालिया की कलम बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका में रही है।उसकी झलक कहानी एवं उपन्यासों दोनों में दिखायी दे जाता है। विशेषकर 'कल्चर वल्चर' उपन्यास में- ''बाबूलाल ने कॉमर्स में सास्टर्स डिग्री पाने के बाद कुछ वर्ष व्यवसाय किया। उन्होंने देखा व्यापार का संजाल पिता और चाचा ने बखूबी संभाल रखा है। उन्होंने सुझाव दिया कि कलकत्ते में फैले हिन्दी समाज की संस्थाओं का विकास करना भी एक जरूरी काम है। 'धन आप कमाओ, यश मुझे कमाने दो, बाबूलाल ने कहा।''[3]सन् 90 के बाद हिंदी साहित्य को लगभग साहित्यिक क्षेत्र के पूरे रूपांतरण का दौर कहा जा सकता है। उदारीकरण, वैश्वीकरण जैसी अवधारणाओं के प्रचलित होने के बाद लोगों के सपने तेजी से बदल रहे थे।

समाज में खुलापन आ रहा था और बंधन तेजी से टूट रहे थे। इसी को ममता कालिया ने व्यक्त किया-''देखा जाए तो कोलकाता महानगर की साहित्यिक, सांस्कृतिक गतिविधियाँ इन तीन केन्द्रों में अवस्थित थीं। शेष प्रयास विश्वविद्यालय और प्रेसिडेंसी कॉलेज द्वारा किए जाते। किन्तु भवन की चिंता का विषय विश्वविद्यालय अथवा प्रेसिडेंसी नहीं था। साहित्य संस्कृति भवन अपने पुरस्कारों को नोबेल पुरस्कार की गरिमा देना चाहता था। इधर अब से भूमण्डलीकरण की चर्चा फैशन में आ गई, भवन के कर्ताधर्ताओं की महत्वाकांक्षएँ वैश्विक होने लगी थीं।''[4]

ममता कालिया के रचनाधर्मी लेखिका ममता कालिया बनाने में सहजात प्रतिभा के साथ-साथ परिवार, परिवेश, परिस्थितियों तथा सस्कारों का अमूल्य योगदान है। और फिर वह उस पीढ़ी की लेखिका है जिनका जन्म तो गुलाम भारत में हुआ किन्तु यौवन की दहलीज तक पहुँचते-पहुँचते अपने आपको आजाद भारत में पाया। अब उन्होंने अपनी कलम से उन परिस्थितियों को उकेरा है, जो आज के साहित्य में गुलामी की तरह बनकर उभर रही हैं।नई पीढ़ी-पुरानी पीढ़ी की पसंद-नापसंद में भी जमीन-आसमान का अंतर आ रहा था, व्यावसायिक औपन्यासिक क्षेत्र का आरंभ तो 1971-1980 का दशक यदि माना जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी, क्योंकि यही वह वर्तमान था उस समय का, कि कामर्शियलाइजेशन, स्टार सिस्टम और नंबर वन स्टेट्स का शिकार भारतीय साहित्य एक राजनीतिक गतिविधि की तरह सामाजिकता को दर्शाते हुए भ्रष्टाचार का केन्द्र हो गया था। व्यावसायिक साहित्य के विषय में 'कल्चर वल्चर' उपन्यास को केन्द्र में रखकर ही इसकी रचना की गई -''निःसंदेह सुषमा अग्रवाल के अंदर व्यवसायी के साथ-साथ कलाकार भी निवास करता था। नीचे की लॉबी में आठ फीट ऊँची वीणामणि सरस्वती की काष्ठ प्रतिमा अप्रतिम रूप से भव्य सौंदर्य से भरपूर थी। बाकी कमाल भवन के समर्पित सेवकों का था जो प्रतिदिन इस प्रतिमा का अंग-प्रत्यंग टचवुड पॉलिश और वैक्सपोल ग्लो से ऐसा चमका देते कि लगता मानो यह प्रतिमा आज ही शोरूम से लाई गई है।''[5]ममता कालिया ने इस उपन्यास में सुषमा अग्रवाल जैसी

योग्य एवं कुशल स्त्री साहित्यिक उपादान में अपनी महती भूमिका का निर्वाह करते हुए उसको व्यावसायिक बनाने में भी उनकी महत्ता थी इसका निर्देशन किया है। नारी की अद्भुत क्षमता का समावेश इस उपन्यास के माध्यम से ममता कालिया ने किया है। सभी प्रकार की व्यवस्थाओं का बेहतरीन मसौदा तैयार कर जमीनी संस्कृति की पर्दादारी के साथ सुषमा जी की कुशलता की तस्वीर इसमें उभरकर आयी है। सारा कार्यभार संभालते हुए भी वह अपनी विशेषतापूर्ण व्यक्तित्व को बचाये रखकर कार्य करती रहीं। इसमें सुपर्णा और उमा जैसी नारियां भी हैं जो सुषमा अग्रवाल तो नहीं पर अपनी नारी गौरव को बचाकर ही काम किया है।सुषमा उपन्यास का प्रमुख नारी पात्र है- ''रात ग्यारह बजे थककर चूर होकर अपने घर पहुंचतीं। अपने दुखते पाँव, गर्म पानी की बेसिन में डाल वे थोड़ी देर आँखें बंद कर बैठी रहतीं। उनके खूबसूरत, खुशमिज़ाज पति उनके पास बैठकर कहते, 'डार्लिंग, सुबह दस से रात दस तक तुम भवन की पूजा में लगी रहती हो, यह इतना विशाल घर, परिवार, तुम्हारी उपेक्षा से ज़ीरो बन गया है। तुम्हारी क्या कभी इच्छा नहीं होती घर बैठकर जीवन जीने की।''6अस्मिता की सजगता की दृष्टि से यह काल नारी की सशक्तिकरण वाली छवि को पूर्णरूप से प्रदर्शित करने में सक्षम हुआ है। जिसको नारी लेखिकाओं की कलम ने स्थापित करने में पूरा सहयोग किया है। नारी अस्तित्व एवं अस्तित्व एवं अस्मिता की सजगता नारी सक्षमी करण का यह दौर रहा है। नारी के सम्बन्ध में सदियों से ही स्थापित जो मान्यताएँ थी वर्जनाएं थी कटघरे थे लक्ष्मण रेखा थी उनमें तीव्र गति से बदलाव आया ।साहित्य संस्कृति भवन के कर्ताधर्ता और सुषमा जी का अंत समय तक साथ देने वाले बाबूलाल की मृत्यु के बाद वह अपनी और संस्था के प्रति थोड़ी चिंतित अवश्य रहीं पर एक राजनीतिक की भांति उनका अत्यंत तीव्र दिमाग और सहजता के साथ कार्यशैली और रूतबे पर ध्यान देना उस वक्त भी नहीं भूलीं, -''सफेद साड़ी -ब्लाऊज, सफेद चप्पल, सफेद पर्स, यहां तक कि घड़ी का पट्टा भी सफेद मोतियों का, धारण किए जब अगली सुबह सुषमा अग्रवाल ने महेश्वरी भवन में प्रवेश किया, बाबूलाल महेश्वरी को पार्थिव देह अपने अंतिम स्नान, प्रसाधन पश्चात् सामने के घास के मैदान में रखी जा चुकी थी। सुषमा ने दिवंगत के चरणों में प्रणाम अर्पित किया, अंतिम दर्शनार्थियों की भीड़ में नवीन मिश्र भी थे, उदास चेहरा लिए, उनके मन से आवाज आयी कि 'आज कोलकाता को भी प्रणाम कर लो।''7आज व्यक्ति नयी परिस्थितियों में स्वयं टूटते हुए अपने परिवेश से जूझ रहा है। व्यक्ति का मन अकुलाहट, कुण्ठा, स्वार्थ, विघटन आदि कि समस्याएं जैसे प्रत्येक परिवार, परिवेश, साहित्य, समाज आदि में पनप रहीं है। हिन्दी कथा साहित्य इस युग का व्यक्ति एवं समाज की नयी परिस्थितियों से टूटता हुआ दिखायी देता है। समयानुसार घर के सभी प्राणियों में स्वार्थपरता की भावना ने मानव के व्यक्तित्व को कमजोर बनाया है। यह उपन्यास सामाजिक विसंगतियों एवम विद्रूपताओं का एक दस्तावेज है , समाज में छोटी-छोटी मछलियों तथा बड़ी मछलियों के बीच हमेशा संघर्ष होता रहा है। छोटी मछलियाँ बड़ी मछलियों से बचने का रास्ता नहीं निकाल पाती हैं। ममता कालिया की दृष्टि में पूंजीपति देश से विदेश तक अराजकता एवं चोरबाजारी के द्वारा अपने व्यापार को बढ़ाने वाले कॉरपोरेट जगत के लोग वे बड़ी मछलियाँ हैं जो छोटे-छोटे कलम के पुजारियों तक को अपने लक्ष्य के लिए साधन के रूप में अपनाते हैं तथा शोषण और दोहन करते हैं। यह उपन्यास कदाचित् शोध से आक्रांत जिसमें शोध से जुड़े इतने मोर्चे खोले गये हैं कि पाठक दिग्भ्रमित हो जाता है। कि जिस कलम ने जीवन की हकीकत को प्रत्येक युग में नया सबेरा दिखाया वर्तमान समय में वही कारोबार बनकर नयी पहल को जन्म दे रहा है। आज की सामाजिक परिस्थिति की इतनी जटिलताएँ हैं कि शोधपरख वैज्ञानिक हैरान हैं। मनुष्य की मनोग्रंथियों और सामाजिक परिस्थितियां समय के साथ मुट्ठियों से फिसल जाती हैं।

निष्कर्ष:-

साहित्यकार इसी समाज का साक्षी है। अतः इन सभी परिस्थिति का सीधा असर उस पर पड़ता है और इसी से वह जो अनुभव करता है उसी को अपनी रचनाओं में वर्णित करता है। साहित्य को व्यवसाय तक लाकर एक नयी जमीन का बाजार तैयार किया जाने की कथा है, ममता कालिया का नवीनतम उपन्यास ''कल्चर-वल्चर'' जिसमें एक ऐसे बाजार का रूप है, जिसमें सब कुछ बेहद संवेदनशील है। लेखिका ने इन्हीं समस्याओं को केन्द्र में रखकर इस उपन्यास की रचना एवं उसको समाज के समक्ष एक यथार्थ दस्तावेज की तरह प्रस्तुत किया है। वास्तव में यह उपन्यास समाज की उस तस्वीर को दिखाता है, जिसका स्वरूप एक ऐसे भयानक धरातल पर है, जो वर्तमान समय की हकीकत है, सुषमा अग्रवाल और बाबूलाल महेश्वरी जैसे पात्र वर्तमान में प्रत्येक साहित्यिक क्षेत्र में मौजूद हैं। जिनकी नज़र में कलम का भी एक व्यवसाय है, शालीनता के साथ-साथ उसकी योजना का भी निर्धारण नियमित होता है। मैंने अपने इस शोधालेख में ममता कालिया के उपन्यास को इसी कारण लिया क्योंकि वह उन मुद्दों को उठाती हैं, जिसको लेकर कलम चलाने में प्रायः सभी को झिझक महसूस होती है। उनका लेखन कल्पना की उड़ान नहीं भरता बल्कि सत्य को उजागर करने में विश्वास रखता है।

******

संदर्भ सूची:-

1. डॉ0 रीना प्रताप सिंह, समकालीन साहित्य संवेदना के स्वर , साहित्य संचच सोनिया बिहार, संस्करण 2021, पृ0 89
2. ममता कालिया, कल्चर वल्चर किताबघर प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण 2020 भूमिका से, पृ0 5.
3. वही, पृ0 8,
4. वही, पृ0 21,
5. वही, पृ0 92,
6. वही, पृ0 24,
7. वही, पृ0 205,

हिन्दी की कहानियों में चित्रित प्रव्रजन की समस्या

डॉ.मनिका शइकीया
सहायक अध्यापिका, हिन्दी विभाग
नगाँव गर्ल्स कॉलेज, असम

प्रस्तावना -

अपना जन्मस्थान त्याग करके किसी विपरीत परिस्थिति में जब कोई व्यक्ति या व्यक्ति समूह अन्य एक सम्पूर्ण अपरिचित वातावरण, अपरिचित समाज में प्रवेश करता है, ऐसी परिस्थिति में उन लोगों की शंकाओं का निरामय करने का प्रयास समय समय पर राजनीतिक, सामाजिक रूप से किया जा रहा है। साहित्य समाज का दर्पण है। समाज में घटित हर छोटी-बड़ी घटनाओं का प्रतिफलन साहित्य में साहित्कार बड़े ही ईमानदारी पूर्वक करते हैं। प्रव्रजन जब हद पार करके लक्ष्यस्थल अंचल की जातीय सत्वा, संस्कृति के साथ-साथ राजनीतिक संकट बनने लगता है, जन वैचित्र्य के लिए भी संकट लाने लगता है, उस समय प्रव्रजन समस्या बन जाता है और तभी प्रव्रजन की समस्या-समाधानार्थ पथ का संधान करना पड़ता है। साहित्यकारों ने भी संवेदनात्मक दृष्टिकोण से प्रव्रजकों की मानसिक अवस्था को झांककर देखने का प्रयास किया है। झम्पा लाहिड़ी का उपन्यास *The Namesake* , असम के प्रसिद्ध औपन्यासिक रीता चौधरी के उपन्यास *'एइ समय सेइ समय'*, *'माकाम'*, उमाकांत शर्मा का उपन्यास *'एजाक मानुह एखन अरण्य '*, बांगला कहानी डांगार दाग, अंगपालि, उद्वास्तु, अमिताभ घोष का उपन्यास *The Hungry Tide*, खालेद हुसैनी का उपन्यास *The Kite Runner*, हिन्दी के यशस्वी साहित्यकार मोहन राकेश, भीष्म साहनी, निर्मल वर्मा, बलवंत सिंह, कृशान चन्दर की रचनाओं में प्रव्रजन से उत्पन्न समस्याओं को उठाकर मानवीय धरातल पर उसे संवेदनात्मक दृष्टि से समझने के प्रयास किये गये हैं।प्रव्रजित व्यक्तियों के जीवन, उनका मनोजगत विश्लेषण करने पर देखा जाता है कि अपने देश की वायु, मिट्टी, पानी, रस से परिपुष्ट होते रहने के बीच में ही अचानक किसी विपर्यय के कारण दूसरे देश के अनजान लोगों के बीच जाकर नया संग्राम आरंभ करने को विवश होते हैं। ऐसी अवस्था में अधिकांश समय ही इन लोगों को संदेह की दृष्टि से ही देखा जाता है। इसके साथ ही इन लोगों को मौलिक अधिकार प्राप्ति के लिए भी संघर्ष करना पड़ता है।

विषय प्रवेश -

अनादि काल से चलती आ रही स्वाभाविक प्रक्रिया प्रव्रजन ही वर्तमान समय में गुरुत्व के साथ अध्ययन का विषय बन गया है । प्रव्रजन अधिकार है या अपराध – इस संदर्भ में The Reluctant Fundamentalist के लेखक महचिन हामिद ने **The Guardian** में लिखा है – "मैं प्रव्रजन को एक मानव अदिकार के रूप में विश्वास करता हूँ मत प्रकाश का अधिकार या जाति, धर्म, लिंग या यौन वैषम्य विरोधी अधिकार की तरह ही यह अधिकार है।" **1**इन्होंने और लिखा है – " हम सबलोग ऐतिहासिक रूप से प्रव्रजनकारी हैं। हमारे पूर्वज अन्य किसी स्थान से प्रव्रजित हुए हैं। अनागत दिनों में जलवायु परिवर्तन, रोग, राष्ट्र की व्यर्थता, युद्ध आदि के कारण लाख-लाख यहाँ तक कि करोड़ों की संख्या में लोग एक देश छोड़कर दूसरे देश में आश्रय लेने को बाध्य होंगे कि पूर्व की सभी परिसंख्या ही म्लान हो जाएंगे ।"[2]प्रसिद्ध साहित्यकार मोहन राकेश कृत बहु-चर्चित नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' में महाकवि कालिदास को उनकी प्रेमिका मल्लिका उज्जयिनी जाने का परामर्श देती है, तब कालिदास ने अपनी आशंका इस प्रकार व्यक्त करते हैं –" यहाँ से जाकर मैं अपनी भूमि से उखड़ जाऊंगा।" [3]फिर कहते हैं - "नयी भूमि सुखा भी तो हो सकता है ।"[4] इस प्रसंग का उत्थापन इसलिए किया गया कि नयी भूमिखंड में प्रव्रजन करनेवालों को किन परिस्थितियों का सामना करना पड़ेगा अथवा उस जगह के पूर्व निवासी उन लोगों को किस रूप में ग्रहण करेंगे, इस विषय में संदेह रहने के बावजूद भी जोखिम उठाकर प्रव्रजन करने को तैयार हो जाते हैं। प्रव्रजन से सम्बन्धित ऐसी कथा, व्यथा को शब्दबद्ध करने का प्रयास हिन्दी के कथाकारों ने समय-समय पर किया है। 'परमात्मा का कुत्ता' कहानी में कहानीकार मोहन राकेश ने भारत-पाकिस्तान विभाजन के समय भारत में आनेवाला एक परिवार की दुख-दुर्दशा का वर्णन किया गया है। कहानी में 'कुत्ता' शब्द प्रतीकात्मक रूप में प्रयोग किया गया है। कुत्ता तभी भौंकता है, जब वह अस्वाभाविक परिस्थिति में पड़ता है। आलोच्य कहानी में भी नायक ने स्वयं को 'परमात्मा का भेजा हुआ कुत्ता' कहता है। एक ओर अपना देश छोड़ने की वेदना और दूसरी ओर विदेश में सरकारी पक्ष द्वारा वंचना का बलि होकर हाहाकार करनेवाले लोगों की व्यथा। कार्यालय में बाबुओं के पीछे घुमते-घुमते यहाँ तक कि वह अपना नाम, परिचय भी खो देता है। कहानी के अंततक अत्यंत जिद्दी नायक को उसका अधिकार मिल ही जाता है। किन्तु समाज के कितने लोग इस प्रकार अपना अधिकार लेने को सक्षम है, यह प्रश्न का विषय है। सम्पूर्ण कहानी में अत्यंत संवेदनशील संवाद है – "एक तुम्हीं नहीं, यहाँ तुम सबके सब कुत्ते हो... तुम सब भी कुत्ते हो, और मैं भी कुत्ता हूँ। फ़र्क सिर्फ इतना है कि तुमलोग सरकार के कुत्ते – हम लोगों की हड्डियाँ चूसते हो और सरकार की तरफ से भौंकते हो। मैं परमात्मा का कुत्ता हूँ। ... तुम पर भौंकना मेरा फर्ज़ है, मेरे मालिक का फरमान है।" [5]

कहानीकार निर्मल वर्मा की 'परिन्दे' कहानी का नायक मुकर्जी एक डाक्टर है। वार्मा में जपानियों द्वारा आक्रमण करते समय वह आकर एक छोटा-सा पहाड़ी शहर में रहने लगता है। हांलाकि जीवन का अधिकांश समय पहाड़ी शहर में व्यतीत करने के बावजूद भी अपी मातृभूमि को भूल नहीं पाता है। ' आधा वार्मिज' इस डाक्टर ने आने की रास्ते में ही पत्नी को खोया। ह्युबर्ट नामक परोसी के सामने अपनी व्यथा को व्यक्त करके जब वह कहता है--"मैं कभी-कभी सोचता हूँ, इंसान जिंदा किसलिए रहता है- क्या उसे कोई और बेहतर काम करने को नहीं मिला? हजारों मील अपने मुल्क से दूर यहाँ मैं पड़ा हूँ – यहाँ कौन मुझे जानता है ... यही शायद मर भी जाऊंगा। ह्युबर्ट, क्या तुमने कभी महसूस किया है कि एक अजनबी की हैसियत से पराया जमीन पर मर जाना काफी खौफनाक बात है ...!" [6]

मुकर्जी, जिसका वार्मिज होने का एक मात्र चिह्न अब उसका पिचका हुआ नाक और चंचल आँखों में ही मात्र शेष है, वह भी मन में एक आशा पाल रखा है – मृत्यु के पूर्व एकबार वार्मा अवश्य जायेगा। वह कहता है -" कुछ भी कह लो, अपने देश का सुख कहीं नहीं मिलता। यहाँ तुम चाहे कितने वर्ष रह लो, अपने को हमेशा अजनबी ही पाओगे।" [7]

रजिया सज्जाद जहीर द्वारा लिखित 'नमक' कहानी की सिख महिला जब पाकिस्तान में रहनेवाले भाइयों से कुछ दिनों के लिए मिलने जानेवाली सफ़िया से लाहौरी नमक मँगवाती है, तब इस छोटी सी कथा हमें बहुत सी बातें सोचने को मजबूर कर देती है। यह कहानी सरहद के दोनों तरफ के विस्थापित लोगों के दिलों को टटोलती एक मार्मिक कहानी है। विभाजन के समय परिस्थितिवश सिख बीबी परिवार सहित भले ही पाकिस्तान छोड़कर भारत आ जाती है, फिर भी वह आज भी लाहौर को ही अपना वतन मानती है। एक जगह पर वह कहानी की नायिका सफिया को कस्टम अधिकारी के द्वारा कहलवाती है - "जामा मस्जिद की सीढ़ियों को मेरा सलाम कहिएगा और उन खातून को यह नमक देते वक्त मेरी तरफ से कहिएगा कि लाहौर अभी तक उनका वतन है और देहली मेरा ,तो बाकी सब रफ्ता-रफ्ता ठीक हो जाएगा।"[8] कितना भी सुरक्षित अथवा मनोनुकूल परिवेश में व्यक्ति क्यों न रहे, प्रव्रजनकारी हमेशा निज मातृभूमि का कोमल स्पर्श, अपनापन भूल नहीं सकता है और पराये देश में हमेशा असुरक्षित अनुभव करता है। मोहन राकेश कृत अन्य एक कहानी 'मलबे का मालिक' में भी कुछ ऐसा ही भावदेखने को मिलता है। भारत-पाकिस्तान विभाजन के समय जो भीषण साम्प्रदायिक संघर्ष हुआ था, उसी समय गनी मियां अमृतसर छोड़कर लाहौर गया हुआ था।

उसका बेटा, बहु अमृतसर में ही रह गया, परोसियों के भरोसे। किन्तु धर्मीय उन्माद से परिचालित लोगों के हाथों उनकी मृत्यु हुई। अपने खून-पसीने से सजाया घर को भी दुष्कृतिकारियों ने जला दी। देश का विभाजन हुआ। धीरे-धीरे दोनों देशों में शांति आयी। आठ वर्ष बाद सीमावर्ती राज्यों में प्रीति बढ़ाने के उद्देश्य से आयोजित हॉकी मैच देखने के बहाने लाहौर से मुसलमानों की एक टोली अमृतसर आती है। दरअसल वे लोग अपने जन्मस्थल की मोह में बंदी होकर ही यहाँ आये हैं । प्रत्येक व्यक्ति घुम-घुमकर तलाश रहा है अपना घर, अपनी मिट्टी – जिसे वे छोड़ गये थे। कहानी का मूल वक्तव्य यही है कि कठिन परिस्थिति में प्रताड़ित होकर किसी को प्रव्रजन करना भी पड़े, अपनी भूमि, अपने लोग सदा ही अपने रहते हैं।

निष्कर्ष :–

प्रव्रजित व्यक्ति दोहरी समस्याओं से घिरते रहते हैं। एक तो वे अपना घर, अपने समाज, इष्ट-कुटुम्ब से दूर रहने का मनोकष्ट से ग्रसित रहते हैं, तो दूसरी ओर परदेश की भूमि में रहेकर हमेशा अनिश्चित भविष्य की चिंता से पीड़ित रहते हैं। प्रव्रजन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि विभिन्न समस्याओं की सृष्टि तो करता है, किन्तु इतना होते हुए भी उन लोगों की मानसिक अवस्था को भी टटोलने का प्रयास अवश्य ही होना चाहिए। उनको मौलिक अधिकारों से कम से कम वंचित न किया जाय, इस पर ध्यान रखना मानवीय दृष्टि से उचित होगा।

******

संदर्भ संकेत :-

1. *The Guardian* , असमीया विकिपीडिया
2.वही
3.आषाढ़ का एक दिन – मोहन राकेश, पृष्ठ 45
4.वही
5.परमात्मा का कुत्ता – मोहन राकेश (हिन्दी समय से साभार)
6. परिन्दे- निर्मल वर्मा (श्रेष्ठ हिन्दी कहानियाँ), पृष्ठ 68
7.वही
8.नमक – रजिया सज्जाद जहीर

सहायक ग्रंथ/पत्रिका:-

1. तिवारी शेखर, बालेन्दु – नागर कथाएँ
2. राकेश मोहन, आषाढ़ का एक दिन
3. वर्मा, निर्मल, श्रेष्ठ हिन्दी कहानियाँ
4. साहित्य प्रभा, सम्पादक – चन्द्र सिंह तोमर
5. हिन्दी समय

मुंशी प्रेमचंद जी के अनमोल विचार

"कुल की प्रतिष्ठा भी विनम्रता और सद्व्यवहार से होती है, हेकड़ी और रुआब दिखाने से नहीं।" ~ मुंशी प्रेमचंद

"चापलूसी का ज़हरीला प्याला आपको तब तक नुकसान नहीं पहुँचा सकता जब तक कि आपके कान उसे अमृत समझ कर पी न जाएँ।" ~ मुंशी प्रेमचंद

"मन एक भीरु शत्रु है जो सदैव पीठ के पीछे से वार करता है।" ~ मुंशी प्रेमचंद

मानवीय मूल्यों के सृजनहार: प्रेमचंद

चेतन चंद्र जोशी

सहायक प्राध्यापक हिंदी, गेस्ट(राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय मुनस्यारी, पिथौरागढ़, उत्तराखंड-262554)

मो.9412092340,9690996935

कथा समा्रट मुंशी प्रेमचंद अपनी साहित्यिक रचनाओं से यथार्थ की धरा में आदर्श के बीज रोपित कर भवष्यि की संभवनाओं को तराशते हैं। यह आदर्शोन्मुख यथार्थवाद उनके संपूर्ण रचनाकर्म का बहीखाता है जिसमें मानवीय मूल्यों का सृजन बड़ी बारीकी के साथ किया गया है। कथा समा्रट की कहानियां समाजिक संवेदनाओं के उस धरातल पर अपनी लीक कायम करती है जहाँ कोई दूसरा रचनाकार शायद ही पहुँच पाये। सामाजिक विसंगतियों के उन बड़ी चट्टानों को प्रेमचंद जिस सहजता के साथ चकनाचूर करते हैं वैसी कला किसी दूसरे कहानीकार में शायद ही देखने को मिले। आदर्श और यथार्थ का यह मिश्रित समन्वय हर वर्ग के पाठकों को लुभाता है। समाज में मौजूद विद्रुपताएं हमारे ही द्वारा जनी गई होती है जो तत्समय हमें दिखाई नहीं देती लेकिन अंततः जब हम उस विद्रुपता का शिकार बनते हैं तब हमें उसके दर्द का अंदाजा होता है। मुंशी प्रेमचंद द्वारा रचित लगभग 300 कहानियों में अधिकाँश कहानियां इन्हीं विद्रुपताओं पर केंद्रित है जो जाने-अनजाने हर किसी से होती हैं या हर कोई उसका शिकार होता है। समाज में मौजूद मान-सम्मान, आदर-अनादर, यश-अपयश सब कुछ धन और स्वार्थ के अधीन हो चुके हैं और यह अधीनता प्रेमचंद की कहानियों में साफ तौर पर झलकती है, जिसे वे अपने सांचे में ढाल समाज के लिए एक नई तालीम पेश करते हैं। प्रेमचंद की कहानियों के बारे में हिंदी के प्रसिद्ध आलोचक रामस्वरुप चतुर्वेदी अपनी चर्चित आलोचनात्म पुस्तक 'हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास' पुस्तक में लिखते हैं- "प्रेमचंद ने घटना, कथानक, चरित्र और संवेदन सभी को केंद्र में रखकर कहानियाँ लिखी हैं। स्पष्ट ही कहानी रचना के ये उत्तरोत्तर सूक्ष्म होते स्तर हैं। 'पंच परमेश्वर' से 'कफन' तक की यात्रा में ये सभी स्तर कभी अलग-अलग और कभी एक दूसरे से लगे-लिपटे मिलेंगे। उनकी 'ईदगाह', 'मंत्र', 'पूस की रात' और कफन जैसी अनेक कहानियाँ हैं जो किसी भी साहित्य के श्रेष्ठतम कहानियों से सहज तुलनीय हैं। मानव चरित्र के ऐसे आत्मीय अंकन विरल हैं जहाँ कि रचना संसार में हर पात्र यह अनुभव करे कि लेखक की सहानुभूति उसी के साथ है, वह चाहे 'मंत्र' का आदर्शप्रिय बूढ़ा भगत हो चाहे 'कफन' के तीखे यथार्थ में सने विदरुप घीसू और माधव हों। कथाकार की इस गहरी सहानुभूति के कारण ही ये चरित्र अपने-अपने संदर्भ में पूरे विश्वसनीय बन जाते हैं और एक गहरे मूल्य-बोध की सृष्टि करते हैं। रचना के इस स्तर पर कला और समाज-चेतना के कृत्रिम विभाजन आप से आप विलीन हो जाते हैं।"

मुंशी प्रेमचंद का कथा-संसार एक ऐसे साहित्य को गढ़ता है जिसकी तस्दीक आधी शताब्दी का समय गुजरने के बावजूद भी अपने आदर्शोन्मुख-यथार्थवाद को पूरी तरह जीवंत किए हुए है। प्रेमचंद का भाषाई शिल्प इतना जीवट है कि सामान्य सी दैनंदिन घटना पर भी वह अपना विशेष प्रभाव अंकित कर जाती हैं। मशहूर समीक्षक गोपाल राय प्रेमचंद के भाषा शिल्प पर अपनी पुस्तक 'हिंदी उपन्यास का इतिहास' में लिखते हैं-

"प्रेमचंद अपने कथासंसार को सजीव बनाने के लिए भाषा का बहुत सावधानी से प्रयोग करते हैं। शिक्षा-दीक्षा, आर्थिक-सामाजिक स्थिति या मनःस्थिति के अनुसार जिस पात्र को जैसी भाषा बोलनी चाहिए उससे वे वैसी ही भाषा का प्रयोग कराते हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि प्रेमचंद के पात्र औसत गा्रमीणों या नगरभाषियों की भाषा बोलते हैं। उपकरणों का सार्थक प्रयोग बिंब निर्माण की क्षमता आदि मिलकर एक अद्भुत प्रभाव पैदा कर देते हैं।" इस प्रकार सामाजिक विषमताओं के हर कोने को प्रेमचंद की भाषा बड़ी बारीकी से उसका आँकलन

करती है। प्रेमचंद का संपूर्ण कथाकर्म परंपरा और नवीनता के द्वय को सजीवता के साथ साहित्य में चित्रित करता है। किसानों, मजदूरों, दलितों, वेश्याओं, दहेज प्रताड़ित स्त्रियों आदि सभी उपेक्षित वर्गों के दीन-हीन लोगों की प्रेमचंद मुखर आवाज़ बनकर सामने आते हैं। फिर सेवासदन में वेश्याओं की अभिव्यक्ति हो या रंगभूमि में
सूरदास जैसे मजलूमों की आवाज़, निर्मला में दहेज प्रताड़ित का स्वर हो या गोदान में कृषक समाज के समस्याओं का संताप; प्रेमचंद अपने हर उपन्यास में इन वेदनाओं के स्वरों को बखूबी उभारते हैं। मशहूर आलोचक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी प्रेमचंद के बारे में लिखते हैं-

"प्रेमचंद का संपूर्ण लेखन एक लेखक के संवेदनशील मन का प्रमाण है, प्रेमचंद में जो मानवीय संवेदना है उसी के कारण वे अपने चरित्रों को इतनी सहानुभूति दे सके हैं और स्थितियों को इतनी मार्मिकता के साथ अंकित कर सके हैं।"निसंदेह प्रेमचंद की कथाकृतियां उस संवेदनशील समाज का निमार्ण करती हैं जहाँ वे इस वेदना का दंश सदियों से भुगत रहे हैं। प्रेमचंद के चारित्रिक पात्र आज भी उस मानवीय संवेदना के शिल्प में नज़र आते हैं जहाँ वे उस परिस्थितियों के दंश को भुगतने को मजबूर हैं। जिस प्रकार उनकी सर्वप्रसिद्ध कहानी 'नमक का दरोगा' में मुंशी वंशीधर अपने नैतिक कर्तव्यों और ईमानदारी से किए गये कार्यों की कीमत चुकाता है ठीक वैसा ही आज के दौर में भी इन सब ईमानों की कीमत चुकानी पड़ती है। लेकिन वहाँ अंततः पंडित आलोपदीन जैसे लोग आकर उसकी ईमानदारी का इनाम उसे देते हैं लेकिन आज के दौर में इनाम की कल्पना करना कुछ वैसा ही है जैसा रसिया-यूक्रेन वॉर में तालिबान का शांति संदेश देना। आज के दौर में नैतिक कर्तव्य केवल किताबों तक ही सीमित हैं, एक-दो अपवादों को छोड़कर आज के दौर में अनैतिक कर्म करना ही नैतिक मूल्यों की पहली निशानी मानी जाती है। प्रेमचंद कथाएं समाज के लिए उस आईने की तरह जिनमें वे अपने किरदार खोज रहे होते हैं। आदर्श और यथार्थ का यह अद्भुत संगम प्रेमचंद के साहित्य में ही सर्वाधिक उर्वर हुआ है। आदर्श और यथार्थ के संतुलित मानकों पर डॉ0 रामविलास शर्मा अपनी आलोचनात्मक पुस्तक 'प्रेमचंद' में लिखते हैं-"एक चिरंतन सत्य में संघर्ष असंभव है; संघर्ष उनमें होता है जो परिवर्तनशील हैं। इसलिए साहित्य का सम्बन्ध उस यथार्थ से है जिसने मनुष्य को मनुष्य से जुदा कर रखा है और जो बदलने वाला है। यह जुदा करने वाली वस्तु आदर्श नहीं है; इसलिए उसे यथार्थ कह सकते हैं। और यहीं से प्रेमचंद में हम इन दोनों का संघर्ष देख सकते हैं।"सामाजिक मूल्यों के संघर्ष में प्रेमचंद का साहित्य एक विशिष्ट स्थान रखता है। वे अपने पात्रों में इन मूल्यों को जबरदस्ती थोपते हुए नहीं दिखते बल्कि वो किस्सागोई इतनी सहज बन पड़ती है कि हम स्वयं उस में अपने समाज और परिस्थितियों की वास्तविकता का आंकलन करने लगते हैं। प्रेमचंद के कृषि जीवन का महाकाव्य कहे जाने वाले उपन्यास 'गोदान' में होरी और उसके बेटे गोबर का संवाद मालिकों के कार्यशैली पर तर्क-वितर्क करते हुए कहते हैं-"यह बात नहीं है बेटा, छोटे-बड़े भगवान के घर से बनकर आते हैं। संपत्ति बड़ी तपस्या से मिलती है। उन्होंने पूर्वजन्म में जैसे कर्म किए हैं, उनका आनंद भोग रहे हैं। हमने कुछ नहीं संचा, तो भोगें क्या?""यह सब मन को समझाने की बातें हैं। भगवान सब को बराबर बनाते हैं। यहाँ जिसके हाथ में लाठी है, वह गरीबों को कुचलकर बड़ा आदमी बन जाता है।""यह तुम्हारा भरम है। मालिक आज भी चार घंटे रोज भगवान का भजन करते हैं।""किसके बल पर यह भजन-भाव और दान-धर्म होता है?""अपने बल पर।""नहीं, किसानों के बल पर और मजदूरों के बल पर। यह पाप का धन पचे कैसे? इसलिए दान-धर्म करना पड़ता है, भगवान का भजन भी इसलिए होता है। भूखे-नंगे रहकर भगवान का भजन करें, तो हम भी देखें। हमें कोई दोनों जून खाने को दे, तो हम आठों पहर भगवान का जाप ही करते रहें। एक दिन खेत में ऊख गोड़ना पड़े तो सारी भक्ति भूल जाए।"मध्यवर्गीय परिवेश के अंतर्गत जनमानस की समस्याओं और विडंबनाओं की प्रकृति को प्रेमचंद जिस सहज भाव से उठाकर साहित्य के धरातल में उकेरते हैं उसे देख यही लगता कि इस वस्तुस्थिति को लेखक ने बहुत करीब से न सिर्फ देखा है बल्कि जिया भी है। और इसी जिजीविषा से प्रेमचंद का कथाकर्म साहित्य-संसार में अपना अद्वितीय स्थान कायम करने में सफल हो पाता है। यह सफलता इस बात का पैमाना नहीं है कि वे कितने लोकप्रिय कथाकार कहे गये अथवा माने गये यह सफलता इस बात का प्रमाण है कि उनका लेखन कर्म अंत तक समाज के हर उस हिस्से में अपनी पकड़ बनाये हुए था जहाँ शिखर पर पहुँचने के बाद व्यक्ति उसे अनुभूत नहीं कर पाता। प्रेमचंद की कहानियाँ मानवीय मूल्यों और दायित्वों तक ही सीमित न ही है वह उस आम जनमानस की भावनाओं का संबल भी है जिसमें व्यक्ति अपनी तार्किकता को किनारे रख उस अनुभूति को महसूस करता है जिसके लिए प्रेमचंद ने उसे गढ़ा है। उदाहरण के लिए अगर 'ईदगाह' कहानी को लिया जाय तो उसमें हामिद जो महज चार या पाँच साल का अबोध बालक है लेकिन जब वह मेले में जाता है जहाँ दुकानों में तरह-तरह के खेल, खिलौने, मिठाईयां, शरबत इत्यादि रखे हुए हैं वहाँ वह तीन पैसों में अपनी हर इच्छा को किसी परिपक्व व्यक्ति की तरह दबाये चलता है। यहाँ तक तब भी ठीक है लेकिन जब वह अंततः एक दुकान से 3 पैसे का चिमटा लेता है और अपने दोस्तों को जिस तार्किकता के साथ चिमटे का महत्व बताता है वह बात 4 से 5 साल के उस अबोध बचपने में संभव नहीं लगती और उसके भी अंत में जब वह चिमटे को रुस्तमे हिंद की संज्ञा देता है तब वह प्रबुद्ध पाठकों की सोच से ऊपर उठ जाता है। लेकिन प्रेमचंद जिस गतिशीलता से उन कहानियों में ऐसी सहानुभूतियां पैदा करते हैं उसमें पाठक वर्ग आँख मूंदकर विश्वास कर लेता है जो वस्तुस्थिति को देखकर सहज भी है। इसी तरह अगर 'कफन' कहानी की आधुनिकता पर गौर करें जिसे उनकी प्रगतिशील कहानियों के तौर पर देखा जाता है तो उसमें प्रथम दृष्टया सत्य और कथ्य के बीच में बड़ा अंतर महसूस होता है। डॉ0 मदान भी इस संदर्भ में लिखते हैं, "कहानी जिस सत्य को उजागर करती है वह जीवन के तथ्य से मेल नहीं खाता।" किंतु दूसरी दृष्टया इसे देखने पर सत्य और कथ्य का भेद पूरी तरह मिट जाता है। कुछ आलुओं का लालच बाप-बेटे की मति पर इस तरह पसरा हुआ है कि प्रसव-पीड़ा से जूझती अपनी पत्नी को देखने के बजाय उसे अपने बाप के द्वारा आलू खा जाने का डर सता रहा है।"घीसू ने कहा- मालूम होता है, बचेगी नहीं। सारा दिन दौड़ते हो गया, जा देख तो आ।माधव चिढ़कर बोला- मरना ही तो है, जल्दी मर क्यां नहीं जाती? देखकर क्या करुं?तू बड़ा बेदर्द है बे! साल-भर जिसके साथ सुख-चैन से रहा, उसी के साथ इतनी बेवफाई! तो,मुझसे उसका तड़पना और हाथ-पाँव पटकना देखा नहीं जाता।" सत्य यह है कि पीड़ा का यह दंश आज का समाज भी भुगत रहा है और कथ्य यह है कि उसे पीड़ा में देख अपने आलु खाने में मगन राजनीतिक सत्ता पक्ष(माधव) और प्रतिपक्ष(घीसू) उसमें केवल संवेदना प्रकट करते हैं उसका समाधान नहीं खोजते। अगर कोई भूले-भटके चला भी जाय तो अंदर यह सवाल उसके बना रहता है कि कहीं उसके हिस्से के आलू(वोट) वह(प्रतिपक्ष) चंपत न कर गया हो। इस तरह अपने अंतिम दिनों में प्रेमचंद का रुझान आधुनिकता बोध कहानियों की ओर खिंचता हुआ दिखता है। किसी के लिए यह कहानियाँ आधुनिकता के दायरे से बाहर हैं तो किसी के लिए अंदर, किसी को कहानी के पात्रों में अतिरंजना नज़र आती है तो किसी को संतुलित अनुकूलता। इस पर राजेंद्र कुमार लिखते हैं- "समकालीन रचना-दृष्टि की प्रेरणाभूमि पर प्रेमचंद का कृति व्यक्तित्व इस बात की भी एक असरदार मिसाल है कि व्यक्तिगत स्तर पर सामाजिक-आर्थिक दर्शन की निरी राजनीतिक प्रतिपत्तियों से एकान्ततया बंधे बिना लेखक अपनी रचना को समाज के लिए कितना उपादेय और विचारोत्तेजक बना सकता है। प्रेमचंद अपनी कथायात्रा में आद्यन्त कहीं भी अपनी दृष्टि को पूर्वाग्रह-ग्रस्त नहीं होने देते हैं। इसलिए उनके अनुभव रचना में समग्रतया विकासमान व्यक्तित्व को अन्वेषित करने के लिए सचेष्ट दिखते हैं। जो लोग विचारधारा अथवा सैद्धांतिकता को लेकर हमेशा एक तरह के शुद्धातावाद के हिमायती रहे हैं उन्हें प्रेमचंद का आदर्शवाद बहुत आश्वस्त नहीं कर सकता है।"इसी में आगे वे डॉ0 भारत भूषण

अग्रवाल के लेख को संदर्भित करते हुए लिखते हैं-"गाँधी-जैसे अनन्य तपस्वी के नेतृत्व में भी देशवासियों के त्याग और उत्सर्ग की विफलता तथा सुदूर देश रूस में जनक्रांति द्वारा सोवियत शासन की स्थापना। इसलिए प्रेमचंद यह पहचानने लग गये थे कि जनजीवन को संवारने के लिए आदर्श का प्रचार यथेष्ट नहीं है बल्कि सामाजिक संबंधों में भी परिवर्तन होना आवश्यक है। 'गोदान' उपन्यास तथा 'पूस की रात' और 'कफन' जैसी अपनी अंतिम रचनाओं में प्रेमचंद की रचना दृष्टि का बदलाव परिवेश की दूसरी पहचान की परिणति है।" अंततः यह बदलाव एक बयार बनकर आने वाली पीढी के रचना-कर्म में भी देखने को मिलता है। लेकिन यह रचना-कर्म आने वाले लेखकों में कुछ ऐसे रच-बस गया कि वह संवेदनाओं और सहानुभूतियों की प्रकृति में प्रगतिशीलता के नये आयाम गढ़ने लगे। इसी अंतिरंजना पर हिंदी के प्रसिद्ध आलोचक नामवर सिंह 'कहानीः नयी कहानी' में इन कथ्यों पर अपनी बात रखते हुए लिखते हैं-"सही अर्थ के लिए किसी घटना का सही वर्णन। अतिरंजित करने का जमाना लद चुका। " इसी को वे उदाहरण के साथ आगे की पंक्तियों में प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं -"विवरण में उसकी गरीबी, मरणासन्न माँ की बिमारी का तार पाकर स्टेशन भागना, प्लेटफार्म पर उसकी जेब कटना, ट्रेन तक पहुँचने से पहले दो से टकराना, चार से गालियाँ खाना, बादल-बिजली, वगैरह-वगैरह। और यह सब सिर्फ इसलिए कि उसकी मुसीबत का पूरा-पूरा भान हो जाय और उस पर दया करने के लिए उपयुक्त- बल्कि प्रभूत आधार पर प्रस्तुत हो जाय!"ऐसा नहीं है कि प्रेमचंद की कहानियों ने केवल संवेदनाओं और सहानुभूतियों से ही अपना काम चलाया हो उनमें मानवीय समस्याओं का अर्थपूर्ण हल भी देखने को मिलता है। अगर मैं बात करूँ उनकी 'नशा' कहानी कि तो संवदेनाओं से इतर सिद्धांतों पर चलने वाली यह एक ऐसी प्रकृतिपरक कहानी है जो स्वभावतः इन्सान की परिस्थितियों पर टिकी रहती है। ईश्वरी जो एक बड़े जमींदार का लड़का था और उसका दोस्त जो एक गरीब क्लर्क का बेटा। जब भी दोनों में अमीरी-गरीबी को लेकर बात होती तो ईश्वरी का दोस्त हमेशा उस पर भारी पड़ता। लेकिन एक रोज जब वह उसे अपने साथ अपने घर ले चलता है और वहाँ उसे कहीं का राजकुमार बताकर अपने समकक्ष स्थापित करता है तब धीरे-धीरे उसके दोस्त के स्वभाव में परिवर्तन दिखने लगता है।"ईश्वरी का घर क्या था, किला था। इमामबाड़े का सा फाटक, द्वार पहरेदार टहलता हुआ, नौकरों का कोई हिसाब नहीं, एक हाथी बँधा हुआ।ईश्वरी ने अपने पिता, चचा, ताऊ आदि सबसे मेरा परिचय कराया और उसी अतिशयोक्ति के साथ। ऐसी हवा बाँधी कि कुछ न पूछिए। नौकर-चाकर ही नहीं, घर के लोग भी मेरा सम्मान करने लगे। देहात के जमींदार, लाखों का मुनाफा, मगर पुलिस कान्सटेबिल को अफसर समझने वाले। कई महाशय तो मुझे हुजूर-हुजूर कहने लगे।"एक रोज यह परिवर्तन इतनी गहरी पैठ कर लेता है कि उसके दोस्त का हाथ अपने ही बिरादरी के गरीब पर उठ जाता है। यह कहानी सहानुभूति बटोरने वाले लेखकों के अनुरूप नहीं कही जा सकती, लेकिन कहानी इतनी प्रकृतिस्थ है कि उसका प्रभाव आज की परिस्थितियों में भी रचा-घुला है। इसीलिए कहानी का शीर्षक 'नशा' इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करता है कि जब तक आप नशे के चंगुल में नहीं है तब तक वह आपके लिए दमघोंटू हवा की तरह है लेकिन जब आप उसमें प्रवेश करते हैं फिर वही नशा आपके लिए प्राणवायु बन जाता है। उनके कथा साहित्य के संदर्भ में डॉ0 रामविलास शर्मा लिखते हैं-"भारतीय कथा साहित्य की जातीय परंपरा से प्रेमचंद की कहानियों का बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। कहानी फुरसत की चीज है, काम-धाम से छुट्टी पाकर सुनने की चीज, और जल्दबाजी से काम बिगड़ जाता है। प्रेमचंद के कहानी कहने में यह फुरसत का भाव मिलता है। वह कहानी सुनाते हैं, अक्सर लच्छेदार जबान में, वाक्यों को स्वाभाविक गति से फैलने की आजादी देकर, अंग्रेजी बाग के माली की तरह उनकी डालियाँ, पत्ते कतरकर नहीं, फूलों और पत्तियों को हवा में बढ़ने और लहराने की आजादी देकर। जिंदगी के अनुभवों पर टीका-टिप्पणी भी साथ चला करती है; व्यंग्य, अनूठी उपमाएँ और हास्य बीच-बीच में पाठक को गुदगुदाते रहते हैं।"प्रेमचंद की यही सबसे बड़ी खूबी है कि वह हर तरह की कथाओं की प्रकृति से वाकिफ हैं। कहाँ कौन सी कहानी को कहना है, कहाँ उसमें संवेदना पैदा करनी है और कहाँ उसे सिर्फ साधारणीकरण देना है; ये प्रेमचंद से बेहतर कोई नहीं कह सकता। डॉ0 रामविलास शर्मा प्रेमचंद के रचनाओं के विषय में पुनः लिखते हैं-"हमारे जीवन का शायद ही कोई पहलू छूटा हो जिसकी गुत्थियों को प्रेमचंद ने सुलझाने की चेष्टा न की हो। हम उनके परिणामों से सहमत न हों, लेकिन नए युक्तिसंगत परिणाम निकालने के लिए यहाँ से अधिक यर्थाथ आधार अभी दूसरी जगह न मिलेंगे!"इसी में वे आगे लिखते हैं"समाज के जिन-जिन अंगों पर प्रेमचंद ने प्रकाश डाला है, उनका अध्ययन करना अपने सारे सामाजिक जीवन का ही अध्ययन करना है। उनकी कृतियों की विवेचना से हम समस्याओं से ही परिचित न होंगे वरन परिणाम खोजने में उनकी अतार्किकता और आदर्शवादी दृष्टिकोण को समझकर आगे के लिए सचेत भी हो सकेंगे। प्रेमचंद ने भारतीय जीवन का जो विश्लेषण किया है, आगे उसी की आलोचना की जायेगी।"यकीनन शायद ही कोई पहलू होगा मानवीय जीवन का जिसे प्रेमचंद ने छोड़ा हो। उनकी कहानियाँ सिर्फ समस्याएं नहीं खोजतीं प्रत्युत वह उन समस्याओं का सार्थकता से सामाधान भी खोजती हैं। उन्हीं कहानियों को पढ़कर हमने मानवीय मूल्यों की असल तालीम हासिल की जिसके बगैर जीवन अधूरा है। उनका रचनाकर्म इन मूल्यों को साहित्य में जिस तरह सींच कर गया है, उसी का परिणाम है कि हमारी साहित्यिक पौंध परिनिष्ठित और परिष्कृत रूप में देश-दुनिया में लहलहा रही है।

******

संदर्भ-ग्रंथ सूची :-

1. हिंदी साहित्य और सवंदेना का विकास, रामस्वरुप चतुर्वेदी, पृ.सं.145-146, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण-2019
2. हिंदी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय, पृ.सं-141-142, राजकमल प्रकाशन, सं-2020
3. प्रेमचंद, एक संघर्षशील लेखक का विश्वसनीय लेखन, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, पृ.सं.67, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली
4. प्रेमचंद, डॉ0 रामविलास शर्मा, पृ.सं.40, राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण-2018
5. गोदान, मुंशी प्रेमचंद, पृ.सं.15-16, मिनाल एजुकेशन बुक्स
6. प्रेमचंद, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, कफनः आधुनिकता बोध की पहली कहानी, प्रकाशन संस्थान, पृ.सं170
7. मुंशी प्रेमचंद, कफन, सारेतः फेमिना
8. प्रेमचंद, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, रचना-दृष्टिः समकालीन प्रेरकता के तत्व, प्रकाशन संस्थान, पृ.सं19
9. वही
10. कहानीः नयी कहानी, नामवर सिंह, पृ.सं.103 लोकभारती प्रकाशन, स. 2019
11. वही
12. मुंशी प्रेमचंद, नशा, सोरतः हिंदी साहित्य मार्गदर्शन
13. प्रेमचंद और उनका युग, डॉ0 रामविलास शर्मा, पृ.सं.136
14. प्रेमचंद, डॉ0 रामविलास शर्मा, पृ.सं.46, राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण-2018
15. वही

'कोसला' : कथ्य और शिल्प के नए प्रयोग

डॉ.सुषमा कुमारी
असिस्टेंट प्रोफेसर,हिंदी विभाग, मिज़ोरम विश्वविद्यालय
आइजोल-796004

प्रस्तावना:-

'कोसला' मराठी उपन्यासों की परम्परा में आरम्भिक नहीं परिपक्व उपन्यासों की श्रेणी में शुमार किया जाता है। यह अपने विशिष्ट कथ्य एवं भाषा-शैली की वजह से बहुत चर्चित रहा है। इससे पहले लिखे गए उपन्यासों में सामाजिक सुधारवाद, रोमैंटिक भावबोध, विरह आदि तत्व ही मुख्य रूप से मिलते हैं। जाहिर है कि ऐसे उपन्यास नीतिपरक और मनोरंजन परक ही अधिक हुआ करते थे, किसी गंभीर दर्शन या चिन्तन की अभिव्यक्ति नहीं। यथार्थवादी उपन्यायों की परम्परा का आरंभ 19वीं शताब्दी के अन्तिम दशकों विशेषकर हरिनारायण आप्टे के उपन्यासों से ही शुरू हो पाती है। लेकिन इन उपन्यासों की सीमा यह है कि इनमें यथार्थ के केवल बाहरी पक्ष पर मिसाल के तौर पर घटनाओं और सामाजिक स्थितियों का ही चित्रण है लेकिन "पात्रों के मन में उभरने वाली उधेड़बुन का जो अन्दाजा पाठक तक कर लेते है उसके प्रति वे उदासीन से रहते हैं।"[1] महत्वपूर्ण बात यह है कि श्री आप्टे के व्यक्ति विषयक उपन्यासों का स्वरुप अलग होते हुए भी उसका ढाँचा और प्रस्तुतीकरण का ढंग वही परम्परागत रूप लिए हुए है।

बीज शब्द: - अंतर्मुखी, यथार्थवाद, आत्माभिव्यक्ति, नायकत्व, व्यक्तिवाद, अस्तित्व और अस्मिता, शिल्प्-प्रविधि।

मूल कथ्य/ उद्देश्य: - स्वतंत्रता के बाद देश विभाजन की त्राषदी के परिणामस्वरूप साम्प्रदायिक दंगों से संबंधित उपन्यास मराठी साहित्य में आये, जैसे- गो. मी दांडेकर का 'बिंदुची कथा' (1947) तथा श्री. ना. पेंडसे का प्रथम महत्वपूर्ण उपन्यास 'एल्गार'। दांडेकर के उपन्यास मराठी के नीतिपरक तथा प्रधान उपन्यासों की परम्परा से सर्वधा भिन्न नजर आते हैं ।स्वतन्त्रता के बाद का मराठी साहित्य अपने यथार्थवादी स्वर तथा कथ्य और शिल्प के नये प्रयोगों की दृष्टि से प्राचीन साहित्य से भिन्न है लेकिन इस भिन्नता को सर्वाधिक मुखर स्वर काफी आगे चलकर भालचन्द्र नेमाड़े के उपन्यास 'कोसला' में मिला । इस उपन्यास ने मराठी साहित्य में अब तक प्रचलित कथ्य और शिल्प, विषय एवं भाषा संबंधी रूढ़ियों को ठुकराते हुए एक बिल्कुल नया प्रयोग किया। आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया उपन्यास एक बीस-पच्चीस वर्षीय युवक की कहानी बयां करता है। नायक को उपन्यास के केन्द्र में रखने के बावजूद असल में लेखक ने उसके चरित्र को निर्मित करने वाली परिस्थितियों की पहचान की है।'कोसला' का नायक पारम्परिक अर्थों में नायक नहीं है, उसके चरित्र में पारम्परिक नायकों जैसा 'महान' कुछ भी नहीं है। वह 'कोसला' का नायक जरूर है, लेकिन जिस दुनिया में वह जी रहा है उसमें उसकी हैसियत उतनी ही है जितनी किसी और पात्र की। वह उतना ही स्वतन्त्र या मजबूर है जितना कि उपन्यास के दूसरे पात्र। लुकाच ने उपन्यास को पूँजीवाद की देन माना था। उनके अनुसार पूँजीवादी व्यवस्था के परिणाम स्वरूप साहित्य में व्यक्तिवाद का जन्म हुआ जिससे व्यक्ति केन्द्रित उपन्यास लिखे जाने लगे। लुकाच के निष्कर्षों से सहमत होना संभव नहीं, क्योंकि जैसा कि हम इस उपन्यास में भी देखते हैं कि यह व्यक्ति को केन्द्र में रखकर लिखा गया उपन्यास भले हो लेकिन व्यक्तिवाद की प्रतिष्ठा करने वाला उपन्यास नहीं है। जिन्हें लुकाच व्यक्तिवादी उपन्यास कहते हैं, उनकी विशेषता यह होती है कि वे नायक को परिस्थितियों का निर्माता के रूप में प्रस्तुत करते हैं। जबकि असल जीवन में कोई व्यक्ति इतना स्वतन्त्र नहीं होता कि स्वयं ही अपने जीवन की परिस्थितियों का निर्माण कर सके। परिस्थितियों के निर्माण में दूसरे भी अहम भूमिका निभाते हैं। 'इस उपन्यास में उपरोक्त सत्य मूर्त रूप में सामने आता है। सांगवीकर न सिर्फ एक सामान्य सा मनुष्य है, न सिर्फ वह परिस्थितियों से बहुत दूर तक निर्देशित होता है बल्कि सच्चाई तो यहाँ तक है कि स्वयं उसका चरित्र परिस्थितियों एवं दूसरे मनुष्यों के प्रति उसकी प्रतिक्रियाओं की उपज है। सिर्फ एक उदाहरण की बात करें तो अपने पिता के प्रति सांगवीकर की चीढ़ उसके चरित्र के निर्माण में अहम भूमिका रखती है। बहरहाल इस प्रसंग में उपन्यास के भूमिकाकार का कहना बिल्कुल सही है कि "उपन्यास का बहुत बड़ा हिस्सा उन प्रतिक्रियाओं में उद्घाटित हुआ है जो नायक और उससे मिलने -जुलने वाले लोगों के बीच अंतर क्रिया आंतरक्रियात्मक स्तर पर विकसित हुई हैं।"[2]व्यक्तिवादी उपन्यास न होने के कारण ही 'कोसला' केवल एक व्यक्ति की कथा मात्र नहीं रह जाता बल्कि एक व्यक्ति की आत्मकथा होते हुए भी वह एक पूरी पीढ़ी की कथा बन जाती है। सांगवीकर आजादी के बाद की पीढ़ी का प्रतिनिधि चरित्र है। महान बनने की आकांक्षा तथा माँ की उम्मीद के बावजूद सांगवीकर के जीवन में ऐसा कोई मोड़ ही नहीं आता जो उसे महान बना दे या सांगवीकर खुद महान बनने का निर्णय ले ले। आज़ादी के बाद की पीढ़ी की इच्छा और उसके यथार्थ के द्वन्द को देखें तो यह कहना बिल्कुल सही है कि ''युवा-पीढ़ी की मानसिकता, उसकी शिक्षा और व्यावहारिक जीवन के बीच की असंगतियां, अनेक स्तरों पर पारिवारिक संघर्ष, छटपटाहट, अस्मिता का संकट, अपनी जड़ों और परम्परा को खोजती हुई युवा पीढ़ी का प्रतिनिधि नायक दरअसल मराठी उपन्यास का पहला अ- नायक है।"[3]

सांगवीकर को अ- नायक कहना ही ठीक है, प्रतिनायक नहीं। प्रतिनायक (एंटी-हीरो) होने के लिए किसी अन्य नायक की उपस्थिति जरुरी है। सांगवीकर अ-नायक इसलिए है कि वह हर दृष्टि से सामान्य है- अपने व्यक्तित्व से अपनी भाषा तक। वह उतना ही विशिष्ट है जितना की दूसरे। पांडूरंग सांगवीकर उपन्यास का केन्द्रीय पात्र (अ-नायक) होते हुए भी 'बुद्धू' है, उसका चरित्र भी बहुत स्थिर नहीं है। जिस हँसमुख, जिन्दादिल और आशावादी सांगवीकर को हम कथा के आरम्भ में देखते हैं कथा के अंत में सांगवीकर वही नहीं रह जाता। नायक का ऐसा व्यक्तित्व मराठी उपन्यासों की परम्परा में पहले मौजूद नहीं था।'कोसला' सांगवीकर की असमाप्त या अधूरी आत्मकथा है। अपने लगभग पच्चीस वर्षों के जीवन की कथा को कहते हुए सांगवीकर ने न केवल युवा-पीढ़ी की मानसिकता का उद्घाटन किया है बल्कि उसे निर्मित करने वाली परिस्थितियों को भी प्रत्यक्ष कर दिया है। पुरानी पीढ़ी की जीवन पद्धति, नई पीढ़ी पर उसकी जकड़न, आधुनिकता के साथ सामंजस्य बिठा सकने की नई पीढ़ी की कशमकश का मार्मिक चित्रण उस उपन्यास को यथार्थवादी बनाते हैं। इसी प्रक्रिया में परिवार, समाज एवं राष्ट्र की तमाम संस्थाओं- सरकार, पुलिस, शिक्षा संस्थान आदि –पर तीखा व्यंग्य भी हुआ है। सांगवीकर के जीवन में उसके पिता की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। उपन्यास के आरंभ में सांगवीकर अपने बाद जिस पहले व्यक्ति का जिक्र करता है, वह उसका पिता ही है। लेकिन पिता की भूमिका उसके जीवन में सकारात्मक की बजाय नकारात्मक है। अपनी पारिवारिक स्थितियों से परेशान पिता की उपेक्षाओं और दमन से त्रस्त सांगवीकर अध्ययन के लिए शहर (पूना) चला जाता है लेकिन वहाँ भी दोस्तों द्वारा ठगे जाने, पिता द्वारा पर्याप्त आर्थिक सहायता के बदले नसीहत देने तथा कॉलेज में अपनी ही अदूरदर्शिता के कारण सांगवीकर निरन्तर निराश और हताश होता चला जाता है। एकाध बार प्रयास करने के बाद अन्ततः सांगवीकर परीक्षा न देने का निर्णय कर लेता है और इस तरह वापस उसी माहौल में पहुँच जाता है। सामाजिक सक्रियता की संभावना के ख़त्म हो जाने और पिता के अत्यधिक नियन्त्रण के चलते सांगवीकर धीरे-धीरे अकेला होता जाता है और अन्त में बाकी दुनिया से खुद को

काटते हुए अंतर्मुखी हो जाता है। अपनी ही दुनिया में अपने आप को बन्द कर लेता है। 'कोसला' मराठी में कोकुन को कहते हैं यानि रेशम के कीड़े द्वारा अपने चारों ओर बुना गया वह रेशमी जाल जिसमें अंततः वह कैद होकर रह जाता है। संरचनात्मक दृष्टि से 'कोसला' अपने पहले की उपन्यास परंपरा से बिल्कुल भिन्न है, इसे सुखान्त या दुखान्त कह पाना समान रूप से मुश्किल है। इस उपन्यास में ऐसी कोई केन्द्रीय घटना नहीं है जिसे ट्रेजडी कहा जा सके। घटनाएँ एक के बाद एक बड़े स्वाभाविक ढंग से घटती चली जाती हैं, लेकिन कहीं भी पाठक अनुमान नहीं लगा सकता कि इन सभी का परिणाम क्या होगा असल में ऐसा कोई परिणाम उपन्यास में है भी नहीं। उसका ऐसा कोई स्थिर अन्त नहीं है जिसके आधार पर पूरे उपन्यास का अर्थ निर्धारित किया जाए और इस अर्थ में यह अंतहीन उपन्यास है।जैसाकि मैंने पहले ही कहा कि इसमें कोई एक ट्रैजिक घटना नहीं है या कि यह दुखान्त उपन्यास नहीं है, यह बात अपनी जगह सही है। लेकिन दुखान्त न होने के बावजूद यह दुखद उपन्यास कहा जा सकता है। कोई एक ट्रैजिक घटना न होने के बावजूद इस पूरे उपन्यास में एक लम्बी उदासी और टीस है। यह उपन्यास एक (पीढ़ी की) जिन्दगी के यूँ ही व्यर्थ चले जाने का दस्तावेज है। असल में जब कोई कहता है कि 'तुमने इतने साल व्यर्थ गंवा दिए' तो उसका अर्थ यह नहीं होता कि साल गंवा दिए, साल तो अपनी जगह बने ही रहते हैं, जिस तरह उन्हें पाया नहीं जा सकता उसी तरह गंवाया भी नहीं जा सकता। दरअसल बीत तो जिन्दगी ही जाती है, जिसे सांगवीकर उपन्यास के अन्त में बड़े ही दार्शनिक अन्दाज में इस तरह कहता है कि "यह कहना कि वर्ष बहुत जाया गये, मिसाल के लिए बिल्कुल गलत है। अर्थात बिल्कुल सही है।"[4]उपन्यास के आरंभ का सक्रिय और जिन्दादिल सांगवीकर 'ऐहिक स्तर पर असफल और समाज से तिरस्कृत' होकर दुनिया और परिस्थितियों में और उलझने की बजाय अपने आपको ही बदल लेने का प्रयास करता है। आलोचक इसे उसका 'कायांतरण' मानते हैं जिसके द्वारा वह अपने चारों ओर बनने वाली परिस्थितियों के खोल से अपने को मुक्त कर लेता है। यह बात बिल्कुल सही है कि सांगवीकर स्वयं को बदलने का निर्णय करता है लेकिन यह बदलाव नकारात्मक दिशा में है। वह किसी भी तरह की स्वतंत्रता और प्रतिरोध के बदले परिस्थितियों के साथ-साथ बहना स्वीकार कर लेता है "तब से मैं माता -पिता से, बस्ती के इज्जतदार लोगों से कहने लगा था कि आप लोग जो-जो कहें सब मुझे स्वीकार है।... जब भी किसी ने जो भी कहा, मैंने कहा जी हाँ। मुझे सब कुछ मंजूर है। मैं अमल करूंगा। ...उन्होंने सवाल पूछ और मैंने भी हाँ ... जी हाँ कहा।"[5] कुछ अर्थों में 'कोसला' हिंदी के प्रसिद्ध उपन्यास 'शेखर: एक जीवनी' से तुलनीय लगता है। व्यक्ति और परिवार तथा समाज के बीच विरोध, छात्र -जीवन की समस्याएं आदि ऐसे पहलू हैं, जिसमें दोनों में समानता दिखती है। व्यक्ति मनोविज्ञान का भी दोनों ही उपन्यासों में प्रयोग किया गया है। 'कोसला' में सांगवीकर जहां एक अति सामान्य पात्र है वहीं शेखर अति विशिष्ट। जहाँ सांगवीकर के लिए विरोध एक मज़बूरी है वहीं शेखर के लिए 'स्वभाव'। हम कर सकते हैं कि अगर 'कोसला' व्यक्ति की सीमाओं का ध्यान रखते हुए व्यक्ति पर केंद्रित उपन्यास है तो वहीं 'शेखर: एक जीवनी' व्यक्तिवादी। शिल्प के स्तर पर भी 'कोसला' 'शेखर: एक जीवनी' से अपना अलगाव रखती है। शेखर: एक जीवनी' भी एक नायक की आत्मकथा है लेकिन 'वह' की शैली में। वहीं दूसरी ओर लेखक शेखर की कथा के साथ तटस्थ नहीं रह पाता, जबकि 'कोसला' में "अनुभवों, संवेदनाओं और उसके लिए प्रयुक्त अभिव्यक्त भाषा के बीच लेखक की कोई दखलंदाजी नहीं है। इसमें लेखकीय हस्तक्षेप बिल्कुल नहीं है।"[6] बहरहाल, 'कोसला' का शिल्प एक अद्भुत ताजगी लिए हुए हैं, भाषा के स्तर पर भी और प्रविधि के स्तर पर भी। 'कोसला' की भाषा पारम्परिक उपन्यासों की निर्जीव और अलंकृत भाषा से एक तरह का विद्रोह है। उसमें न सिर्फ ऐसी भाषा का प्रयोग नहीं हुआ है बल्कि जोग नाम के एक पात्र के बहाने ऐसी भाषा की खिल्ली भी उड़ाई गयी है। 'कोसला' की भाषा आम बोल-चाल की भाषा के काफी निकट है। उसमें 'मिसाल के तौर पर', 'वगैरा', 'भयानक', 'प्रचंड', 'भंकस', 'दलिद्दर', 'बंडल' जैसे शब्दों का प्रयोग तो है ही, दैनिक जीवन में बहुतायत से प्रयुक्त वे गालियाँ भी चली आयी हैं, जिनका उल्लेख यहाँ गैर जरूरी है। लेकिन यह बात ध्यान देने की है कि 'कोसला' की भाषा 'आंचलिक' नहीं है, वह मूलत: शिक्षितों की भाषा है। 'मिसाल के तौर पर' तथा 'वगैरा' ये दो शब्द ऐसे हैं जो 'कोसला' में बहुत बार आए हैं। ऐसा लगता है जैसे कि 'मिसाल के तौर पर' सांगवीकर का तकिया कलाम है, जिसे वह बात-बात में बोला करता है। 'वगैरा' की स्थिति इससे भी जटिल है वह और भी अधिक बार प्रयुक्त हुआ है, कभी कभी तो एक ही वाक्य में दो-दो बार, जैसे- "मैने कनस्तर की इधर वाली बाजू को लकड़ी वैगरा की पटरी वगैरा फँसाकर बिल्कुल बन्द कर दिया।"[7] 'वगैरा' शब्द का इतना अधिक प्रयोग कई बार अरुचिकर लगने लगता है, लेकिन मेरा अनुमान है कि यह हिन्दी अनुवाद की अपनी समस्या है। अगर हम ध्यान दें तो पायेंगे कि 'वगैरा' शब्द का इस्तेमाल संज्ञा और क्रियाओं के तुरन्त बाद किया गया है इसीलिए मुझे लगता है कि जिस तरह हम हिन्दी में सार्थक और निरर्थक शब्दों के युग्म (रोना-धोना, पढाई- वढाई) प्राय: बोलचाल में इस्तेमाल किया करते हैं उसी तरह मराठी के निरर्थक शब्दों के बजाय अनुवादक ने 'वैगरा' का प्रयोग कर दिया होगा। उदहारण के लिए देखें- "मैं उपर वाली मंजिल पर पढ़ाई वैगरा किया करता था।"[8]

प्रस्तुतीकरण के स्तर पर 'कोसला' की प्रविधि अद्भुत है। जहाँ इसी तरह की आत्मकथात्मक प्रस्तुति के लिए 'शेखर: एक जीवनी' के लेखक को एक लम्बी-चौड़ी भूमिका लिखनी पड़ती है, बीच-बीच में हस्तक्षेप करना पड़ता है वहीं 'कोसला' का नायक सीधे पाठकों के सामने आ खड़ा होता है "मैं 'पाण्डुरंग सांगवीकर। मिसाल के तौर पर आज पच्चील साल का हूँ। वास्तव में तुम्हारे लिए इतनी ही जानकारी काफी है।"[9] इस परिचय के बाद वह धीरे-धीरे पाठकों का आत्मीय होता जाता है। कहानी के लिए जरूरी सूचनाएँ दे चुकने के बाद गैर जरूरी वर्णनों से बचने के लिए उपन्यास एक दूसरी युक्ति का सहारा लेता है और बड़े अक्खड़ अन्दाज में सांगवीकर पाठक से कहता है "इससे ज्यादा घर की प्राइवेट बातें हम नहीं बताएँगे क्योंकि बताने वाला तो प्रायः मूर्ख वगैरा होता है। और सुनने वाला मिसाल के तौर पर सदा का लुच्चा होता है। और फिर घर के राज बताकर मैं एक बार धोखा खा चुका हूँ।"[10] और फिर इस तरह सांगवीकर को अपने धोखा देने वाले मित्र एकनाथ की कहानी सुनाने का मौका भी मिल जाता है।इस तरह हम देखते हैं कि 'कोसला' के शिल्प में एक तरह का खुलापन और सहजता है। बातों में से बातें निकलती जाती हैं और कथा आगे बढ़ती जाती है, इन वातों के जरिए ही सांगवीकर अपने जीवन की एक-दो नहीं सैकड़ों छोटी-छोटी घटनायें सुना डालता है। इन छोटी-छोटी घटनाओं में अपने आप में कोई विशिष्टता नहीं है लेकिन सांगवीकर का जीवन इन्हीं छोटी-छोटी घटनाओं से मिलकर बना है। आमतौर पर उपन्यासों में इस तरह की घटनओं से बचा जाता है क्योंकि के पाठक को उबा सकती हैं लेकिन 'कोसला' के शिल्प की जान संभवत: उसके वर्णन की इस आत्मीयता में ही है जिसमें हास्य, व्यंग्य तथा करुणा आपस में मिलकर एक हो गए हैं। कॉलेज पहुंचने पर सांगवीकर का अनुभव देखने योग्य हैं "हमारा कॉलेज जब मैंने देखा तो मेरी पहले ही से दहली हुई से छाती कहने लगी, अपना यहाँ गुजर मुश्किल है। और फिर कई सारे महान राजनीतिज्ञ लोग तथा साहित्यिक आदि इसी कॉलेज के विद्यार्थी रहे हैं। मतलब कुल मिलाकर परम्परा बड़ी उज्ज्वल। इसलिए हमारे लिए भी महान बनने का यहाँ अवसर है।"[11] सबसे मुश्किल होता है अपने विचारों के बारे में पाठकों को बताना, शायद यह सबसे ज्यादा उबा देने वाला वर्णन होता है लेकिन सांगवीकर की शैली देखिए "इम्तिहान के दौरान मेरे मन में क्लास की लड़कियों को लेकर करुणा भरे विचार पैदा हुए। इन साठ-सत्तर लड़कियों का भविष्य क्या होगा ? कोई कहाँ, कोई कहाँ। इनकी शादियां होंगी। इन्हें चित्र-विचित्र पति मिलेंगे। इस समय ये कितनी कोमल

दिखाई दे रही हैं। तब इनको जचगियां होंगी। इन्हें छोटे-छोटे बच्चे पैदा होंगे। हमारे कुछ भी नहीं होगा"।[12]इस तरह पूरी की पूरी कथा एक सघन आत्मीयता और भोलेपन के साथ पाठक के सामने घटती चली जाती है। सांगवीकर का आंतरिक और बाह्य दोनों ही पाठकों के सामने खुला हुआ रहता है। यूँ तो पूरी कथा 'फ्लैश बैक' में चलती है लेकिन पाठक को कहीं अहसास भी नहीं हो पाता कि वह पुरानी घट चुकी घटनाओं को सुन रहा है। चूँकि सांगवीकर आरम्भ से लेकर अन्त तक पाठक के साथ रहता है इसलिए कथा में एक निरन्तरता बनी रहती है और पाठक को यह आभास भी नहीं हो पाता कि सांगवीकर के आस पास की दुनिया कितनी तेजी से बदल रही है। कथा में सांगवीकर तथा उसके परिवार के कुछ- एक सदस्यों को छोड़कर कोई पात्र ऐसा नहीं है जो आरम्भ से लेकर अंत तक मौजूद हो। पूरे उपन्यास में पच्चासों पात्र हैं जो कथा के विकास के साथ-साथ अचानक बड़े सहज भाव से प्रकट हो जाते हैं और फिर अपनी भूमिका निभा कर लुप्त भी हो जाते हैं। कुछ पात्र तो ऐसे हैं जिनकी सृष्टि उपन्यास के अंतिम भाग में हुई है, ऐसे पात्रों में बाबा बंनास, बाबा झालानाथ के साथ- साथ जगन बाबा जैसे पात्र भी हैं जिनका जिक्र केवल दो पृष्ठों (285-86) पर हुआ है लेकिन ऐसे जैसे कि वे कथा में आरम्भ से मौजूद रहे हों। इन दो पृष्ठों में ही जगन बाबा सांगवीकर को अपने हिस्से का ज्ञान देकर गायब हो जाते हैं।

निष्कर्ष :-

संक्षेप में कहें तो बीस-पच्चीस वर्ष का सांगवीकर, जिन्दगी की कठिनाइयों से जूझता, नये नये अनुभवों को प्राप्त करता और अपनी पहचान की तलाश में लगा सांगवीकर हममें से कोई भी हो सकता है, बल्कि और ठीक-ठीक कहें तो वह 'सौ में से निन्यानवें' के भीतर मौजूद है। वह हमारा इतना परिचित है कि उसका कुछ भी अजीब नहीं लगता न तो व्यक्तित्व न ही कृतित्व और न ही उसकी भाषा। दरअसल इस उपन्यास और उसके नायक सांगवीकर में कुछ भी विशिष्ट नहीं है लेकिन चूँकि 'कोसला' के पहले के उपन्यासों की परम्परा विशिष्टता पर ही आधारित थी इसीलिए 'कोसला' की यह 'सामान्यता' उसे विशिष्टों में भी विशिष्ट बना देती है और इसीलिए मराठी उपन्यास की परम्परा में 'कोसला' मील का पत्थर है।

******

सन्दर्भ: -

1. उपन्यास- वि. काशीनाथ राजवाड़े, आलोचना, जनवरी- मार्च 88, पृ.26
2. कोसला- भालचंद्र नेमाड़े, नेशनल बुक ट्रस्ट, हिन्दी अनुवाद, 1993, भूमिका, पृ.12
3. कोसला- भालचंद्र नेमाड़े, नेशनल बुक ट्रस्ट, हिन्दी अनुवाद, 1993, पिछला फ्लैप
4. कोसला- भालचंद्र नेमाड़े, नेशनल बुक ट्रस्ट, हिन्दी अनुवाद, 1993, पृ. 298
5. कोसला- भालचंद्र नेमाड़े, नेशनल बुक ट्रस्ट, हिन्दी अनुवाद, 1993, पृ. 297
6. मराठी साहित्य : परिदृश्य –चंद्रकांत बांदीवडेकर, वाणी प्रकाशन-1997, पृ.366
7. कोसला- भालचंद्र नेमाड़े, नेशनल बुक ट्रस्ट, हिन्दी अनुवाद, 1993, पृ.-13
8. कोसला- भालचंद्र नेमाड़े, नेशनल बुक ट्रस्ट, हिन्दी अनुवाद, 1993, पृ.-12
9. कोसला- भालचंद्र नेमाड़े, नेशनल बुक ट्रस्ट, हिन्दी अनुवाद, 1993, पृ.-1
10. कोसला- भालचंद्र नेमाड़े, नेशनल बुक ट्रस्ट, हिन्दी अनुवाद, 1993, पृ.4
11. कोसला- भालचंद्र नेमाड़े, नेशनल बुक ट्रस्ट, हिन्दी अनुवाद, 1993, पृ.19
12. कोसला- भालचंद्र नेमाड़े, नेशनल बुक ट्रस्ट, हिन्दी अनुवाद, 1993, पृ.39

साहित्य : एक सामाजिक उत्पादन

डॉ. सरिता सिन्हा

असिस्टेंट प्रोफेसर(हिंदी)
जगत नारायण लाल कॉलेज, खगौल
(पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय) ,पटना

साहित्य एक सामाजिक उत्पादन है क्योंकि यह अपने अंदर समाज की वस्तुस्थिति, यथार्थ और अपने से जुड़े व्यक्ति तथा वस्तु की झलकियां या यूं कहें की झांकियाँ प्रस्तुत करता है। यह बात अपने आप ही स्पष्ट हो जाती है जब हम साहित्य की परिभाषा को (जो शुरू से ही आलोचकों द्वारा दी जाती रही है) अपने ध्यान में लाते हैं। उन्नीसवीं सदी में समाजशास्त्रीय चिंतन साहित्य से समाज को दो स्तरों पर जोड़ता था – (i) एक शक्ति के रूप में समाज को साहित्य की उत्पत्ति मानते हुए उसके स्वरूप को निर्धारित करने में और (ii)साहित्य को समाज के दर्पण के रूप में। महावीर प्रसाद द्विवेदी के युग में साहित्य की दर्पणवादी दृष्टिकोण का बहुत प्रचलन था। उस युग के लेखकों ने बार-बार साहित्य को समाज का दर्पण कहा। साहित्य को समाज का दर्पण मानने वाला यह दृष्टिकोण रचनाकार की चेतना की क्रियाशीलता की उपेक्षा करता हैं । लेखक अपनी रचना में समाज को सिर्फ प्रतिबंबित ही नहीं करता बल्कि अपनी रचना में वह समाज को नए सिरे से रचता भी है। इस प्रक्रिया में उसकी कल्पनाएं और आकांक्षाएँ भी व्यक्त होती है। इसके साथ-साथ यह भी मानना होगा कि समाज उस साहित्य या रचना की अंतर्वस्तु में ही नहीं होता, उसके रूप और शिल्प में भी होता है। **"दर्पणवादी दृष्टिकोण में न तो शिल्प की विशेषताओं का विवेचन होता है और न ही विशेषताओं में अभिव्यक्त समाज की खोज होती है"**[1]इस मान्यता से हम इंकार नहीं कर सकते कि रचना के बेहतर समझदारी के लिए उसके सामाजिक संदर्भ की जानकारी जरूरी है। अधिकांश साहित्यिक समाजशास्त्री यह मानते हैं कि किसी रचना की अंतर्वस्तु में ही समाज नहीं होता बल्कि समाज तो रचना के हर स्तर में अर्थात भाषा, संरचना, शिल्प आदि में भी अभिव्यक्त होता है। जरूरत है रचना की उन विशेषताओं को पहचानने की जो उसकी संपूर्णता में समाज की खोज में मदद करे । इसके लिए बेन्थम ने 'अर्थ के मर्म' तथा गोल्डमैन ने 'विश्वदृष्टि' के विश्लेषण पर बल दिया। अडोर्नो के अनुसार 'अंतर्वस्तु के सत्य' का बोध आवश्यक है तो रेमंड विलियम्स के अनुसार 'अनुभूति की संरचनाओं' की पहचान। प्रो. मैनेजर पांडेय के अनुसार मार्क्सवादी साहित्य को सामाजिक चेतना का विशिष्ट रूप मानने वाले व्यक्ति विचारधारा के रूप में उसका (साहित्य का) विश्लेषण करते हुए साहित्य में समाज की खोज करते है।

आज के साहित्य शास्त्री रचना की अस्मिता को स्वीकार करते हुए समाज से उसके संबंध का विश्लेषण करते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जब यह कहते हैं कि 'प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चित्तवृत्ति का ही संचित प्रतिबिंब होता है' , तो उनका अर्थ भी यही है कि साहित्य और समाज एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। रचनाकार अपनी रचना में जनता की चित्तवृत्ति को स्थान देता है। सवाल यह कि क्या वह सामाजिक उपज नहीं है ? रचनाकार अपनी निर्जीव वैयक्तिक एवं सांस्कृतिक संवेदनाओं और अनुभूतियों को ही अपनी रचनाओं में व्यक्त करने हेतु प्रयासरत नहीं होता , बल्कि वह समाज के सन्दर्भ में निजी अनुभूति को अथवा अनुभूत सामाजिक यथार्थ को अपनी साहित्यिक कृति में प्रतिबिंबित करके उसकी पुनः सृष्टि में सक्रिय होता है। प्रेमचंद ने गोदान में जिस समाज को अभिव्यक्ति दी है , वह उनकी अनुभूति से अलग नहीं लगता। अपनी वैयक्तिक अनुभूति को समस्त किसान वर्ग (समाज) की अनुभूति में ढालकर उन्होंने एक नए समाज की सृष्टि की है। इसमें अगर समाज का दःखद यथार्थ है तो यथार्थ को परखने के बाद उसी के गर्भ में उन समस्याओं का निजात भी है। यही तो सृष्टि है जो रचनाकार की रचना में सक्रिय होता है। विश्वम्भर दयाल गुप्त के अनुसार साहित्य सर्जन स्वयं में एक सामाजिक प्रक्रिया है। अपनी प्रसिद्ध

पुस्तक 'उपन्यास का समाजशास्त्र ' में उन्होंने यह बताया है कि लेखक सर्जनात्मक साहित्य के माध्यम से समाज को जानने का प्रयास करता है। वह साहित्य के समाजशास्त्र और विशेष रूप से उपन्यास के समाजशास्त्र के स्वरूप को निर्धारित करने में प्रवृत्त होता है। विश्वम्भर दयाल गुप्त का यह कहना क्या इस बात की ओर संकेत नहीं करता है कि साहित्य अपने आप में एक सामाजिक उत्पादन है ?वह जिस समाज से उत्पन्न होता है, जिस समाज को अपने शब्दों द्वारा प्रतिबिंबित करता है- वह रचनाकार का यथार्थ ,उसका अनुभव होता है। **डॉ नगेंद्र के अनुसार "आत्मानुभूति ही वह मूल तत्व है जिसके कारण कोई व्यक्ति साहित्यकार और उसकी कृति साहित्य बन पाती है। "** (2)यह अनुभव साहित्यकार या रचनाकार कहां से ग्रहण करता है ? जाहिर है उसी समाज से , जिसमें वह रह रहा है। लेकिन साहित्य सिर्फ उस रचनाकार के कोरे अनुभव का ही प्रतिबिंब नहीं है बल्कि उसमें रचनाकार की कल्पना भी शामिल होती है जो उस समाज से (जिसमें रचनाकार जी रहा है)हटकर नए समाज का सृजन करती है ,उसे एक नया रूप देती है। कल्पना पूर्व अनुभूतियों की पुनर्योजना से अपूर्व की अनुभूति उत्पन्न करना साहित्यकार का एक सशक्त पक्ष है। **" कल्पना के अनेक अर्थों में एक अर्थ 'रूप देना ' भी होता है। कल्पना ही साहित्य को रूपायित करती है"**(3) जिस व्यक्ति में समाजशास्त्रीय कल्पना है, उसके मस्तिष्क में यह प्रश्न स्वाभाविक है कि समाज का स्वरूप कैसा हो? समकालीन समाज मानव इतिहास में कहां खड़ा होता है ? समाज में किस प्रकार के स्त्री- पुरुष रहते हैं ? रचनाकार या साहित्यकार इन प्रश्नों को रचना से ओझल नहीं कर सकता। वह इन प्रश्नों से टकराता हुआ अपनी रचना को अर्थ और स्वरूप प्रदान करता है। प्रेमचंद की रचनाओं में गांव उपेक्षित नहीं होता, चाहे वह शहरी कथा ही क्यों ना हो। ऐसा क्यों है? इसलिए कि उनकी विचारधारा अपने समाज को नजरअंदाज नहीं कर पाती। उनकी रचनाओं में जितनी बारीकियां (गांव और किसान जीवन के चित्रण में) है , वैसी कहीं और शायद ही देखने को मिले। लेखक जब भी समाज की बात करता है, तो वह सामाजिक समस्याओं को अपना प्रमुख मुद्दा बनाता है। प्रेमचंद ने गोदान के होरी द्वारा संपूर्ण समाज की किसान जीवन की व्यथा-गाथा कही है। इतना ही नहीं उस किसान की समस्या के द्वारा संपूर्ण समाज की समस्या का उद्घाटन किया है। समाज में किसान की स्थिति क्या है, नारी की स्थिति क्या है, अभिजात वर्गों या पूंजीपति वर्गो की समस्या क्या है, आदि-आदि। इन्हीं समस्याओं के उद्घाटन में लेखक या साहित्यकार की आकांक्षा और सामाजिक समस्याओं का समाधान भी छुपा होता है। साहित्य की परिभाषा के आधार पर भी उसे एक सामाजिक उत्पादन कहने से नहीं नकार सकते। भारतेंदुयुगीन लेखक बालकृष्ण भट्ट ने साहित्य की आधुनिक परिभाषा देते हुए कहा कि "साहित्य जनसमूह के चित्र का चित्रपट है।" गार्सा द तासी के इतिहास में कहा गया है कि "इस वक्त हिंदी की बोली कुछ बढ़ गई है जो अलग-अलग समाज में बोली जाती है। आलोचना भी साहित्य का एक अंग ही है, क्योंकि वह किसी साहित्य में व्यक्त स्वीकारात्मक-नकारात्मक पहलू को उजागर करता है। आलोचक भी साहित्यकार (किसी विशेष टेक्स्ट के रचनाकार)की ही तरह उस रचनाकार के समाज, अपने समाज (जिसमें वह जी रहा है) तथा उस रचना में व्यक्त समाज को, उसमें छुपी समस्या को, उसके यथार्थ को, सामाजिक परंपरा को, इतिहास को, संस्कृति को ढूंढ कर बाहर निकालता है। यह सभी बिंदु हमारे समाज का ही एक हिस्सा है। पी. सी. जोशी के अनुसार 'आलोचना का गहरा संबंध समाज के विकास के प्रक्रिया से है।' भारतेंदुयुगीन साहित्य पहली बार अपनी रचना द्वारा व्यक्ति, समय और राष्ट्र की समस्या को लेकर सामने आया। भारतेंदु के नाटक, उनका यात्रा वृतांत इस बात का प्रमाण है। इसके बाद भी द्विवेदी युगीन साहित्य का पदार्पण हुआ। द्विवेदी जी के चिंतन के केंद्र में भाषा थी। भाषा के द्वारा ही रचना या साहित्यकार अपने समाज को उस रचना में ढाल पाने में सक्षम होता है। अतः भाषा ऐसी होनी चाहिए जो सभी लोगों की समझ में आ सके। जाहिर है उनकी चिंता भी एक सामाजिक चिंता ही थी जो उनकी रचनाओं में ढली। द्विवेदी जी ने कवि के कुछ कर्तव्य बताएँ और उसी के अनुसार साहित्य के स्वरूप को भी बताने की कोशिश की। उन्होंने कहा कि -

(i) कविता में साधारण लोगों की अवस्था, विचार एवं मनोविकारों का वर्णन होता है।

(ii) उसमें व्यक्ति के (रचनाकार के भी) धीरज, साहस, प्रेम, और दया का समावेश होता है (यानी गुणों का समावेश)।

(iii) भाषा सहज और स्वाभाविक हो, उसमें कल्पना की अतिशयता न हो और न ही गंभीर अलंकरण हो

इसी बीच प्रेमचंद भी अपनी रचनाओं के साथ आते हैं। उनकी कहानी –' दो बैलों की कथा' में किसान जीवन है तो 'बेटों वाली विधवा' में एक पारिवारिक स्थिति के चित्र द्वारा सामाजिक स्थिति का जिक्र । 'कफन' कहानी के द्वारा शोषित प्रताड़ित मनुष्य की चिंतनशक्ति किस प्रकार क्षीण हो जाती है,वह किस प्रकार मनुष्य से जानवर बन जाता है- उसका चित्रण किया है। प्रेमचंद ने साहित्य को समाज का दर्पण नहीं वरन दीपक कहा। दीपक की ही तरह साहित्य समाज का मार्गदर्शन करती है। वह समाज को एक नई दिशा प्रदान करती है। इस प्रकार इतिहास, उपन्यास, कहानी, कविता, नाटक, यात्रा वृतांत, निबंध आदि किसी भी क्षेत्र में हमारा समाज या मनुष्य उपेक्षित नहीं है। यदि कोई राष्ट्रीय साहित्य लिखा जाता है तो वहाँ भी समाज और मनुष्य को अभिव्यक्ति मिलती है क्योंकि मनुष्य से समाज और समाज से ही राष्ट्र को अभिव्यक्ति मिलती है। मजदूर आंदोलन अगर किसी साहित्य में जोर-शोर से उभर कर आता है और राष्ट्रव्यापी आंदोलन बन जाता है तो वहाँ भी हमारे समाज की उपेक्षा नहीं होती क्योंकि मजदूर भी समाज का एक अंग होता है। रचनाकार उस मजदूर की समस्या को नजरअंदाज नहीं कर सकता क्योंकि उसी समस्या ने आंदोलन को जन्म दिया और इसी आंदोलन के तहत उनकी समस्या का समाधान भी है। आज जितनी भी कहानियां, उपन्यास या साहित्य रचे जा रहे हैं, उसमें मनाव एवं समाज के अंतर्द्वंद्व और उनकी विडम्बनाएँ खुलकर सामने आती है। महिला लेखन के आगे बढ़ने का क्या कारण है - सामाजिक स्वीकृति, एक स्वतंत्रता की मांग जो पहले के साहित्य में नहीं मिलती थी। दलित लेखक ,आदिवासी लेखक आदि भी इससे अप्रभावित नहीं।

अंत में यही कहा जा सकता है कि प्रत्येक समाज-शास्त्री साहित्य को एक सामाजिक तथ्य मानते हैं। यह सामाजिक तथ्यता रचना, रचनाकार और पाठक से तय होती है। प्रतयेक साहित्य की एक सामाजिक भूमिका होती है। साहित्य एक सामाजिक कर्म है। अगर वह कर्म है , तो उसका कोई न कोई कारण, कर्ता और कर्म होगा। क्या है यह? हम देखते हैं कि इसका कारण समाज है , कर्ता लेखक है और कर्म पाठक है। अतः **'सोशल प्रोडक्शन ऑफ़ आर्ट'** में **जैने उल्फ द्वारा कही गयी बात-"साहित्य एक समाजिक उत्पादन है"** मेरे ख्याल से बिलकुल ठीक हैं और तब, दूसरे स्तर पर उत्पादक होंगे लेखक या रचनाकार। तीसरे स्तर पर कृति, चौथे स्तर पर वितरण -(प्रकाशन से पुस्तकालय तक) और अंत में पाठक समुदाय।

******

सन्दर्भ सूची:-

(1) मैनेजर पांडेय - साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, प्रकाशन वर्ष: 1989, पृष्ठ संख्या -14
(2) डॉ. नगेंद्र - विचार और विवेचन, प्रकाशन वर्ष: 1944, पृष्ठ संख्या - 5
(3) डॉ. बच्चन सिंह - आधुनिक हिंदी आलोचना के बीज शब्द , प्रकाशन वर्ष: 1994

समकालीन मलयालम कविता

अश्वती. एस
शोध छात्रा
हिन्दी विभाग,केरल विश्वविद्यालय
कार्यवट्टम कैंपस तिरुवनंतपुरम

आज की कविता को याने कि समकालीन कविता को सूचित करने के लिए सबसे योग्य शब्द 'उत्तर आधुनिक कविता (post modernist poetry) है| आधुनिकता के बाद की कविता को उत्तराधुनिक कविता याने समकालीन कविता मानने में कोई असंगति तो नहीं रहेगी। "1960 से लेकर लगभग दो दशाब्दियों तक बनी रही काव्यधारा, आधुनिकता के बाद की काव्यधारा के अर्थ में उत्तराधुनिक काव्यधारा को मानना चाहिए।"[1] [के सी. नारायणन, इन्नत्ते मलयालम कविता , पोतुवायतुम पोतवल्लात्तुम", पृ.49 मलयालम के वरिष्ठ कवि अय्यप्प पणिक्कर ने अपनी पुस्तक अय्यप्पपणिक्कडे लेखनंगल अय्यप्प पणिक्कर के लेख में कहा है कोई माने या न माने मलयालम में उत्तराधुनिक साहित्य का आविभाव हो चुका है।"अय्यप्प पणिक्कर, अय्यप्पपणिक्कडे लेखनंगल, पृ.155)। 1979 में ही उन्होंने इस शब्द का प्रयोग किया था।

मलयालम आधुनिक कविता के तीन पड़ाव हैं। 1965 में श्री विष्णुनारायण नंपूतिरी द्वारा संपादित एवं प्रकाशित पुस्तक' पुतुमुद्रकल' नए निशाने)197 , 2 में कवि सच्चिदानंदन द्वारा संपादित' हरिश्री', 1984 में आट्टूर रविवर्मा द्वारा संपादित कलिकाल कविता (कलियुग कविता)| इन तीन संकलनों से यह विदित हो जाता है कि 1960 में आधुनिकता की काव्यधारा का पल्लवन , सत्रह में वामपंथी विचारधारा के हिंसात्मक स्वभाव को स्वीकारते हुए लिखी गयी विद्रोही काव्यधारा की चरम स्थिति, अस्सी के समय में इस हिंसात्मक वृत्ति से विराम लेकर एक नए काव्यबोध से ओतप्रोत काव्यधाराएँ दिखाई देती हैं।' इसी को हम उत्तराधुनिक याने समकालीन काव्यधारा मानते हैं।' इस परिवर्तित एवं परिवर्द्धित काव्य संवेदना को प्रमाणित करनेवाले काव्य संकलन हैं1999 में प्रकाशित आट्टूर रविवर्मा का काव्य संकलन' पुतुमोषिवषि नई संवेदना नए रास्ते सन् 2000 में प्रकाशित के एम. वेणुगोपाल का कविता संकलन' युव कविता कूट्टम युव कविताओं का संगम) 2012 में प्रकाशित राजेश की पुस्तक 'पुतुकालम : पुतुकविता नया समय : नव कविता) ये मलयालम काव्य जगत में उभरी नई संवेदनाओं तथा सूक्ष्म से सूक्ष्मतर परिवर्तनों को रेखांकित करने वाले हैं। उत्तराधुनिक काव्यचर्चा के संदर्भ में आधुनिकता की चर्चा अनिवार्य बनती है। मलयालम में आधुनिकता की शुरुआत 1660 से है। याने स्वाधीनता प्राप्ति के बाद के माहौल से उभरी कविता है आधुनिकता की कविता और संपूर्ण आधनिकता का साहित्य भी। एक देश की राजनैतिक , आर्थिक ,सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ पूरे देश के साहित्यिक , सामाजिक सांस्कृतिक दृष्टियों को निर्धारित करनेवाली होती है ,भाषा भेदों के बावजूद। स्वतंत्रता परवर्ती भारत की अनिश्चितता ने जन मानस में जिस बेचैनी, निरशा एवं मोहभंग को जनम दिया था उसका दस्तावेज़ है मलयालम साहित्य की आधुनिकता। भाषा एवं संस्कृतिपरक भिन्नता के बावजूद देश के यथार्थ से उत्पन्न होनेवाली भावधारा लगभग एक जैसी होती है। यही सचमुच विभिन्नता की एकता है। यह भी नहीं भारतीय मन के समान चिंतन की ओर इशारा करनेवाली घटनाएँ भी हैं। मलयालम की आधुनिकता कविता के क्षेत्र में माधवन अय्यप्पत्त् से शुरू होती है। उन्होंने अपने काव्य संकलन' जीवचरित्रकुरिप्पुकल' जीवन चरित्र के नुस्के) के माध्यम से एक नई काव्य संवेदना का परिचय दिया। यह काव्य संवेदना दरअसल आधुनिकता याने कि आधुनिक भावबोध की थी । आधुनिक समाज की यांत्रिक सभ्यता , नगरजीवन की ऊब ,दिशाहीनता , अकेलापन ,अजनबीपन ,कुंठा ,संत्रास आदि से संपन्न नए भावबोध की कविता है आधुनिकता की कविता। पाश्चात्य आधुनिकता के केंद्र में सक्रिय टी एस इलियट की कविता बंजर भूमि (waste land) की मानसिकता का प्रभाव उस समय के बहुत सारे मलयालम साहित्यकारों पर पड़ा था। यह साहित्य नितांत वैयक्तिक अनुभूतियों एवं प्रतिक्रियाओं का साहित्य रहा है। कविता भी इससे भिन्न नहीं थी। उस समय की कविता ने अन्य साहित्यिक विधाओं के समान अपने समय के सामाजिक ,राजनीतिक ,आर्थिक तथा सांस्कृतिक यथार्थों के साथ सार्थक संवाद करते हुए इतिहास, पुराण ,परंपरा तथा सांस्कृतिक रुढियों के सामने प्रश्न चिह्न लगाया और अपना विद्रोह जाहिर किया था। यह सचमूच आधुनिक मनुष्य की सहज प्रतिक्रिया थी ,बौद्धिक सजगता का सहज परिणाम भी था।माधवन अय्यप्पत्त की कविताओं में जिस असंतृप्त आधुनिक मनुक्य की व्यथा -कथा चित्रित हुई थी वे सब सचमुच उस समय के आधुनिक मनुष्य के जीवन्त यथार्थ ही थे। सामाजिक असंगतियों के खिलाफ कवि परोक्ष व्यंग्य के माध्यम से अपनी प्रतिक्रिया जाहिर करता है। इसके लिए पणिक्कर' मठयन्' शब्द से (मूर्ख) सम्बोधन करते हुए सामाजिक यथार्थ का व्यंग्यत्मक संप्रेषण करना मात्र नहीं पाठकों को जाग्रत भी करने का कार्य करते हैं। चौंकाने वाले शब्द प्रयोगों से पाठकों को सजग करना तथा उनके मन में बेचैनी जागने का कार्य भी आधुनिकता का प्रमुख कार्य रहा है। पणिक्कर की कविता' कुरक्षेत्र' (1961) इस प्रकार के प्रयोगों से समृद्ध है। जो कछ वर्तमान है उन सबके प्रति विद्रोह एवं घृणा, मनुष्य को बचाने योग्य कोई दर्शन नहीं है ऐसा विश्वास ,मृत्यु बोध आदि ने मिलकर पणिक्कर की कविता के भावलोक को रूपायित किया है। यह बिल्कुल नूतन भावबोध है जिसमें आधुनिक मनुष्य की विहवलताएँ अनुगुंजित है। कुरुक्षेत्र ,मृत्युपूजा ' जैसे काव्य संकलन की कविताएँ इसके लिए पर्याप्त प्रमाण है। "हिंदी के समान मलयालम की समकालीन कविता भी आधुनिकता की विवृत्ति याने एकस्टेनशन है। केंद्रीयता नहीं विविधता याने कि बहुलता है। मतलब आधुनिकता तक जितने काव्यांदोलन मलयालम में हुए हैं वे सब विचारधारा केंद्रित थे। (एम.एस.पॉल, कवितयुडे चरित्रपाठंगल 'पृ.स. (258. किसी एक विचारधारा की प्रमुखता बनी रही थी। अन्य विचारधाराएँ गौण रूप में वर्तमान रहीं। इसलिए प्रत्येक समय की कविता मात्र कविता ही नहींपूरा साहित्य उस विचारधारा के नाम से जाना जाता था। लेकिन1970 के अंतिम चरण से शुरू होकर अस्सी के समय इधर-उधर अलग-अलग काव्यसंवेदनों के संवाहक के रूप में प्रत्यक्ष होकर फिर नब्बे के दशक में एक बिल्कुल नई काव्यधारा के रूप में उभरी कविता है मलयालम की समकालीन कविता याने उत्तराधुनिक कविता। डॉ. मिनी आलीसा , समकालिक मलयालम कविता,'पृ 49 अय्यप्प पणिक्कर ने इस नई काव्यधारा को' आधुनिकोत्तरम' त्तराधुनिक शब्द का पहले पहल प्रयोग किया था।

इसने नायकत्व सम्बन्धी केंद्रीकृत संकल्पनाओं को तहस नहस कर डाला। परिणामतः स्त्री विमर्श ,दलित विमर्श ,आदिवासी विमर्श , पारिस्थितिक विमर्श, वृद्ध विमर्श ,ट्रान्सजेण्डर विमर्श) क्वीर विमर्श) आदि का आविभाव हुआ जो सचमुच स्वत्व विमर्श है। इसके साथ नवयुग के नवऔपनिवेशिक शक्तियों के मानवविरोधी वृत्तियों को पहचानने और उसके खिलाफ विद्रोह जाहिर करने की प्रवृत्ति भी रचनाकारों में आ गयी। इसलिए अल्प संख्यकों की आत्मपहचान और प्रांतीय अस्मिता की स्वीकृति आदि भी समकालीन कविता की विविधता को उदघोषित करने लगीं। इसलिए समकालीन कविता अनुभवों के नए-नए इलाकों से संचार करके अपने वैविध्य को प्रमाणित करने लगी। और एक महत्वपूर्ण कारण वामपंथी अतितीव्र क्रांतिकारिता की पराजय है। नक्सलबाड़ी राजनीति की पराजय से नई राजनीति के पथ खुल गए। वहाँ से दबाए गए वर्गों का उभर आना शुरू हुआ। अस्सी के बाद भारत की विदेश नीति भी बदल गयी। गुट निरपेक्ष विदेश नीति को समाप्त करके विकसित राष्ट्रों की नीति को अपनाने और लागू करने लगा भारत। वहीं से नवउपनिवेश के दूसरे दौर की शुरुआत हुई जो काफी खतरनाक निकली। उसने अपनी शक्ति के तहत भारत की सभी प्राकृतिक संपत्तियों पर कब्जा कर लिया। इसकी पहली झलक पारिस्थितिकी में है-1979 में सैलण्डवाली आंदोलन शुरू हुआ| नवऔपनिवेशिक शक्तियों के वश में पडकर बडे-बडे बाँध बनाने की योजनाएं बनाई गयी। वन संपत्तियों का बड़ी तादाद में शोषण होने लगा, मिट्टी पत्थर , पहाड ,पेड, कोयला आदि के उत्खनन बड़े पैमाने पर होने लगे। बुद्धिजीवियों ने पहचान लिया कि यह मानवराशी के लिए विपत्तिदायक है। इसे रोकना चाहिए। वहीं से परिस्थितिकी याने पारिस्थितिक विमर्श की शुरुआत हुई। वहीं से विभिन्न प्रकार के आदोलन भी शुरू हुए। पारिस्थितिक विमर्श, दलित विमर्श ,स्त्री विमर्श ,नवऔपनिवेशिक विमर्श ,वृद्धविमर्श ,आदिवासी विमर्श जैसे स्वत्व विमर्श इसका परिणाम है।

अपने व्यक्तित्व को (अस्मिता) ,भाषा ,संस्कार ,खान-पन, वेश-भूषा आदि से रूपायित होनेवाले विशिष्ट व्यक्तित्व याने कि स्वत्व को बनाए रखने , सुरक्षित रखने और संस्थापित रखने के नितांत संग्राम का नाम है स्तत्व विमर्श।

स्त्री विर्मश:-

"नब्बे के बाद की मलयालम कविता के क्षेत्र के सशक्त सान्निध्य स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श एवं पारिस्थितिक विमर्श थे।" (के सी. नारायणन, इन्नत्ते मलयालम कविता पोतुवायतुम पोतुवल्लात्तुम ,' पृ.52 । ये प्रवृत्तियाँ मलयालम ही नहीं लगभग सभी भारतीय भाषा साहित्य में दिखाई देती हैं। मलयालम कविता में ये बिलकुल नूतन प्रवृत्तियाँ युवापीढ़ी के कवियों में काफी सशक्त ढंग से अभिव्यक्त हुई है। एम. बी. मनोज, एम.आर.रेणु कुमार, गीता हिरण्यन, वी. एम. गिरिजा , विजयलक्ष्मी ,ललिता लेनिन, सावित्री राजीवन , अनिता तंपी, म्यूस मेरी जाहिरातंगल ,पी. रामन ,के.ए. जयशीलन कल्पट्ट नारायणन जैसे बहुत सारे कवियों एवं कवयित्रियों ने समकालीन जीवन यथार्थ की विविधता को नए नए ढंग से अभिव्यक्त करने का कार्य किया है। इन की कविताएं परंपरा से भिन्न है। उसमें कोई बोझ नहीं याने कि परंपरा की बोझ, संस्कार की बोझ आदि से मुक्त होकर सर्वसाधारण की भाषा में सर्वसाधारण की समस्याओं को प्रस्तुत करने की शैली उन्होंने अपनाई है। ये अपने समय के साथ हैं। पर प्रचालित प्रवृत्तियों एवं रूढ़ियों से मुक्त होकर अनछुए एवं अनदेखे पहलुओं को कविता का विषय बनाया है। ये सचमुच अपनी अभिव्यक्ति के तहत जनसाधारण में नई संवेदना एवं नई जागृति पैदा करने का प्रयत्न करते रहे हैं। इस अर्थ में इनकी कविताएँ उत्तराधुनिक हैं याने कि समकालीन हैं।सशक्तीकृत स्त्री एक भूमण्डलीकृत समाज का मिथक है। पुरुष वर्चस्ववादी समाज में वर्तमान अधिकार व्यवस्था के तहत किए जानेवाले सारे स्त्री संग्राम पराजित हो जाएंगे ।) षीना दिवाकरन : पेण कवितयुड़े वर्तमानम पृ. 289। क्योंकि स्त्री के पास कोई अधिकार नहीं इसलिए सभी विद्रोह आखिरकार पुरुषाधिपत्य की प्रशासनिक व्यवस्था से टक्कराकर बिखर जाते हैं। इसलिए स्त्री को वैधिक अधिकार की अनिवार्यता है। स्त्री का अपना स्वत्व है जैसे पुरुष का ,उसको बनाए रखने और स्थापित करने के संघर्ष का नाम है स्त्री विमर्श याने कि स्त्री स्वत्व संघर्ष। अपने ऊपर किए जानेवाले शेषणों ,अन्यायों ,अत्याचारों के बहुआयामी सन्दर्भों से अवगत एवं आहत स्त्री अपने स्वत्व एवं स्वातंत्र्य के लिए लडती है । यह लड़ाई किसी के ऊपर जीत हासिल करने केलिए या किसी को पराजित करने केलिए नहीं बल्कि अपने स्वत्व के लिए है। उसको बनाए रखने केलिए है। म्यूस मेरी की कविता वेल्लरि मुरिक्कुम्पोल खीरा काटते समय में स्त्री शोषण के खिलाफ का विद्रोह दर्ज है। अनिता तंपी अपनी कविता करयुन्नवल'रोनेवाली) में स्त्री के सामाजिक यथार्थ को दर्शाया है। श्रीदेवी एस. कर्ता की सारी साड़ी) शीर्षक कविता दैनिक जीवन की ऊब और यांत्रिकता को सूचित करती है। घरेलू कार्यों में व्यस्त रहती स्त्री का अन्तर्मन शून्य हो जाता है। वह सब कुछ भूल जाती है ,अपने बारे में ,आस पडोस के बारे में ,देश- राष्ट्र के बारे में।वह धोयी गयी साडी के समान फिर से पहनने केलिए तैयार हो जाती है। अनिता तम्पी 'मुट्टमडिक्कुंपोल' (झाड़ू लगाते समय) कविता में कहती है कि वह आँगन को तथा द्वार को और उसके आस - पड़ोस को साफ कर रही है। जितनी गंदगी पुरुष ने बनाकर रखी है उन सब को साफ करना स्त्री का काम हो । युग युगों से दोहराने वाली इस वृत्ति के नीचे मर मिटनेवाली स्त्री वर्ग और उनकी निरर्थक ज़िदगी की ओर कवयित्रि का तीव्र आक्रोश है। गोपिका 'शीर्षक कविता में आशालता अनेक पुरुषों द्वारा बलात्कार की गई लड़की की हालात की ओर इशारा करती है। इस प्रकार ,सुजा फेबिना रषीद, इन्दु लेखा ,अनिता तंपी ,जाहिरा तंगल ,विजिला जैसी कवयित्रियों ने समकालीन संदर्भ की स्त्री के विभिन्न जीवन यथार्थों को प्रस्तुत करके स्त्री स्वत्व की अनिवार्यता और उस के लिए किए जानेवाले संघर्षो पर प्रकाश डाला है|

पारिस्थितिक विमर्श:-

सजगता समकालीन मलयालम कविता की प्रमुख प्रवृति है। मलयालम में इसको' हरित दर्शनम् 'कहते हैं। प्रकृति की पहचान और उसको संभलने की अनिवार्यता की समझ पारिस्थितिकी है। स्वच्छ एवं स्वस्थ परिस्थिति में ही स्वस्थ जीवन संभव है। मनुष्य और प्रकृति भिन्न नहीं अभिन्न हैं। एक दूसरे का पूरक है। जिस समाज का परिवेश मलिन है उस समाज का मनुष्य भी मलिन रहेगा याने कि रोगग्रस्त । इसलिए मनुष्य के जीवन को स्वस्थ एवं सुरक्षित बनाने के लिए प्रकृति और उसके प्रत्येक जीवजन्तुओं को भी सुरक्षित एवं संभलके रखना अनिवार्य है। प्रकृति जड चेतनमय है। उन दोनों के सामंजस्य के बिना यह जगत स्थित रहेगा नहीं। प्राकृतिक विनाशों का प्रमुख कारण मनुष्य का प्रकृति से अलग होना और उसका अनुचित शोषण करना है। मलयालम के प्रसिद्ध आलोचक डॉ. सी.आर प्रसाद अपने लेख' हरित दर्शनम् उत्तराधुनिक मलयालम कविता में' कहते हैं कि शहरीकरण भूमण्डलीकरण और बाजारीकरण ने मिलकर जो वातावरण सृजित कर रखा है उसे लेकर मलयाली खुशी मना रहे हैं। वे प्रत्येक अवसर को मना रहे हैं। इस प्रकार मनाते समय वे खुद भूल जाते हैं कि उनके अमूल्य बहुत कुछ नष्ट हो चुके हैं। वे अपने भूतकाल को तथा आकांक्षा भरे भविष्य को नष्ट कर रहे हैं। (स डॉ. एल थामस कुट्टी: कवितयुडे चरित्र पाठंगल : पृ 51)

दलित विमर्श:-

मलयालम साहित्य में दलित साहित्य की शुरुआत उतरआधुनिक समय की है। आधुनिकता के समय में कडम्मनिट्टा, चुल्लिक्काड के.जी.एस , सच्चिदानंदन जैसे कवियों ने समाज के निम्न स्तर के लोगों की आवाजों को कविता में बुलन्द करने का कार्य किया था। दलित साहित्य का आरंभ उपन्यास, कहानियों में हुआ। कविता हमेशा उच्चवर्ग की संवेदनाओं से संपन्न रही थी। लेकिन पूर्वाधुनिकता के समय में वैलोप्पिल्ली ,इडशेरी जैसे कवियों ने हाशिएकृत वर्ग की आवाज को कविता में बुलंद करने का कार्य शुरू किया था । यही कार्य आधुनिकता के समय और उत्तराधुनिकता के संदर्भ में सच्चिदानंदन ,कडम्मनिट्ट, चुल्लिक्काड आदि करते रहे। उत्तराधुनिक संदर्भ में यह एक विमर्श बन गया और उसको के.के.एस.दास (करुमाडि नृत्तम) ,राघवन अत्तोली (वाल्मीकपर्वम) ,वी.के.नारायणन (एकलव्यन) जैसी युवा पीढ़ी के कवियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से दलित अस्मिता तथा उनके जीवन संबंधी संपूर्ण विषय को चित्रित करके इसको दलित विमर्श का रूप प्रदान किया। समकालीन मलयालम कविता बहुआयामी है। अनेक कवियों, कवयित्रियों एवं आलोचकों ने मिलकर समकालीन मलयालम कविता को समृद्ध बनाया है। इस संदर्भ में आधुनिकता के समय से सक्रिय बल्कि समकालीन संदर्भ में और अधिक सक्रिय और प्रासंगिक कुछ कवियों का विशेष उल्लेख अनिवार्य है वे हैं सच्चिदानंदन , के.जी शंकरपिल्लै, बालचंद्रन चल्लिक्काडु आदि। गोया कि समकालीन मलयालम कविता बदलते समय की धड़कनों को अपने अंत: स्थल में समाहित करके वर्तमान के प्रति अपनी सहमति - असहमति जाहिर करते हुए आगे बढ़ रही है ,इसकी कोई इति असंभव है। क्यों कि काव्य का या साहित्य का धर्म है प्रतिरोध, इसके बिना साहित्य या कला का कोई अस्तित्व नहीं रहेगा।

******

धार्मिक उन्माद का चित्रण: 'त्रिशूल'

किरन मिश्रा
शोधार्थी
हिन्दी तथा आधुनिक भाषा विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

शोध सारांश:-

समाज के सतत् विकास की प्रक्रिया में जो कुछ भी आकस्मिक घटित होता है, सदैव ही आरोही क्रम में उच्चता या निम्नता की स्थिति उत्पन्न करता है। या तो यह विकास को गति प्रदान करता है या अवरोध उत्पन्न करता है। इन्हीं अपरिहार्य घटना विशेष की संवेदनात्मक भावाबोध कराने में साहित्य महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कथा साहित्य में प्रबल भावनाओं को शब्दबद्ध करके उनकी सुस्पष्ट व्याख्या करने की असीम क्षमता है। मनुष्य की संवेदनाओं को रूप देने का एक आधार है कथा साहित्य। प्रेमचंद जी ने कहा है- ''साहित्य जीवन की आलोचना है''। त्रिशूल उपन्याय 'हंस' पत्रिका के अगस्त व सितम्बर 1993 के अंकों में प्रकाशित हुआ था। पुस्तक के रूप में यह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली द्वारा 1995 ई0 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में समकालीन समाज की ज्वलंत घटना 'बाबरी मस्जिद कांड' को लेकर उसके इर्द-गिर्द होने वाले त्वरित प्रभाव और उसकी प्रतिक्रिया को समग्रता और संश्लिष्टता से प्रस्तुत किया गया है। 'त्रिशूल' सामाजिक विद्रूपता, हिंसा, आतंकवाद, धार्मिक द्वंद्व के केन्द्रीय प्रभावों को प्रस्तुत करता है। जातिवाद की जड़ें समाज में गहरे तक पैठ बनाकर समाज को खोखला कर रही हैं। इस जातिवाद और धार्मिक-मतभेद को लेकर राजनीतिज्ञ गंदी राजनीति का स्वाँग रचाकर मानवता को शर्मसार करते रहते हैं। 'त्रिशूल' उपन्यास इन्हीं राजनीतिज्ञों का कच्चा-चिट्ठा खोलता है।

बीज शब्द- धर्म, जाति, दंगे, साम्प्रदायिकता, मानवता।

आमुख- भारत में धर्म और जाति की लड़ाई का उदय वास्तव में ब्रिटिश शासन काल में हुआ। उन्होंने ही 'बाँटों और राज करो' की राजनीति के नाम पर भारतीय समाज को हमेशा के लिए जहरीला बना दिया। यह रूप आज इतना विषाक्त हो गया है कि यह समाज में अन्दर ही अन्दर सड़ान्ध उत्पन्न कर रहा है। 'त्रिशूल' उपन्यास में लेखक एक प्रत्यक्षदर्शी के रूप में है। वह देख रहा है, अनुभव कर रहा है कि समाज का प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को उच्चतम स्थान पर पहुँचाने और स्वयं की राजनीतिकरण के लिए अपने धर्म का सौदा करता है और धर्म की सीढ़ी के माध्यम से समाज में ही उच्च स्थान को प्राप्त करना चाहता है। 'त्रिशूल' समाज में व्याप्त जातिवादी और धार्मिक भेद, कुरूपता का नग्न चित्रण प्रस्तुत करता उपन्यास है। इस उपन्यास का प्रमुख पात्र 'महमूद' है, जो धर्म से मुस्लिम है और एक हिन्दू के घर में नौकरी करता है।

लेखक का चित्रात्मक वर्णन सारे दृश्य का आँखों से ही गुजरता हुआ प्रतीत होता है। ''कहाँ से शुरू करूँ महमूद की कहानी? वहाँ से जब पुलिस उसे घर से घसीटकर ले जा रही थी या जब चौराहे पर पर लाठियों से पीट रही थे और मोहल्ले का कोई आदमी उसे बचाने के लिए आगे नहीं आया। या जब इसी चौराहे पर वे लोग उसकी छाती पर त्रिशूल अड़ाकर मजबूर कर रहे थे, ''बोल साले, जय सिरी राम''...।''1उपन्यास का यह प्रथम पृष्ठ का पहला अंश है। प्रारंभ में ही दृष्टिगत है कि धर्म के नाम पर होने वाली अन्धभक्ति कितनी मार्मिक है और उसका यह रूप कितना घृणित और कलुष है। उपन्यास का केन्द्रीय विषय है कि मानव की कोई जाति नहीं, धर्म नहीं, उसकी एक ही जाति है, उसका एक ही धर्म ''मानवता''।महमूद पाल साहब के घर में काम करता है किन्तु वह पूरे मुहल्ले के लिए ''चेलवा'' है और सिर्फ मनुष्यता का धर्म निभाता है। मुहल्ले के हर व्यक्ति के लिए एक सामूहिक सेवक है। शास्त्री जी जैसे घृणित मानसिकता के व्यक्ति के लिए भी वह प्रत्येक दृष्टिकोण से उनकी सेवा में तत्पर है। मिसराइन का काम भी कर आता है। लाल साहब को भी स्कूटर से घर ले आता है। अपने धर्म में गहरी आस्था रखना ''सांप्रदायिकता'' नहीं है। धर्म में आस्था की आज़ादी मौलिक अधिकार है। सांप्रदायिकता का अर्थ है धर्म के नाम पर लोगों की भावना को भड़काना और राष्ट्रीयता की बजाए धार्मिक उन्माद फैलाना।

उपन्यास का एक मुख्य विषय सांप्रदायिकता भी है। उसका सटीक उदाहरण है शास्त्री जी 1 शास्त्री जी पाल साहब से प्रश्न करते हैं। ''एक बात पूछना चाहता हूँ जानना आवश्यक है आप आस्तिक हैं या नास्तिक?''[2] इस प्रश्न का यथेष्ट उत्तर देते हैं पाल साहब तथा घोर धार्मिकता और अंधविश्वास की पट्टी हटाते हुए कहते हैं कि ''मेरी कल्पना का ईश्वर केवल हिंदुओं का ईश्वर नहीं है। वह सभी धर्मावलम्बियों का है। विभिन्न धर्मों के उद्भव से पूर्व था। और इनके न रहने पर भी रहेगा। विभिन्न धार्मिक ब्रांड के ईश्वर स्वयंभू नहीं। उन्हें हमने अपनी जरूरत अपने स्वार्थ के अनुसार गढ़ा है।''3 इसी प्रकार शास्त्री जी की आँखों को खोलते हुए आगे भी पाल साहब कहते हैं-''अन्य धर्मों ने ईश्वर की कल्पना अपने समाज को नियंत्रित करने, उसकी बेहतरी के लिए की जबकि हमने इसका उपयोग किया अपने ही भाइयों का शोषण करने और हराम की कमाई खाने के लिए। यही नहीं हमने अपने भगवान तक को नहीं बख्शा। उन्हें कोर्ट कचहरी तक घसीटा है''।[4] इस उपन्यास में लेखक ने अपना दृष्टिकोण सर्वत्र और सुस्पष्ट ढंग से व्याख्यायित किया है। लेखक ने धार्मिकता और जातिवादिता का घिनौना रूप तह-दर-तह खोल कर रख दिया है। ''राम जन्मभूमि-बाबरी मस्जिद'' विवाद में दोनों फरीकों के भगवान इसी तरह दोनों फरीकों के शोषण की मोहरे बने हुए हैं। जाति और धर्म का ऐसा आडंबर व्याप्त है कि जब तक महमूद की जाति और धर्म किसी को नहीं पता वो सब का प्रिय है ''बहुत गुनी बहुत प्रेमी लड़का है यह तो जब से यहाँ आया है मुझे बबूल की काँटों से मुक्ति मिल गई हैं कहाँ पाये यह रतन। फिर गेट पर पहुँच कर मुड़ते हैं ''अरे चेलवा अपने जैसा एक लड़का मेरे लिए भी ला न खोजकर''। ''लाऊँगा गुरूजी''। कौन जाति है रे तू''? मनई। वह हँसकर कहता है और जूठे कप लेकर अंदर चला जाता हैं।''[6] कितना सार्थक शब्द है मनई। यह याद दिलाता है कि मनुष्य का मनुष्यता के अतिरिक्त कोई जाति नहीं, कोई धर्म नहीं। यह सामाजिक ढांचे को सुचारु रूप से चलाने के लिए ही उच्चतम कोटि का धर्म है। शिवमूर्ति जी का खुला विद्रोह सर्वत्र व्याप्त है, किन्तु कहीं न कहीं यह एक तरफा विरोध हो जाता है, क्योंकि लेखक ने हिंदू धर्म की आडंबरों और अंधानुकरण को ही प्रस्तुत किया है अन्य धर्मों की परते नहीं खोल पाए हैं। अतिशयोक्ति न होगी यदि यह कहा जाय कि धार्मिक अंधानुकरण समाज के मानवीय गुणों को जड़ से ही खींच ले रहा है। जाति-धर्म का द्वेष प्राणी मात्र के भीतर से, दया प्रेम और संवेदना को निचोड़कर भेदभाव और सांप्रदायिकता का विष भर रहा है, इसी उद्देश्य की गहराई से छानबीन करता है 'त्रिशूल' उपन्यास। समाज के प्रत्येक ज्वलंत और सामयिक मुद्दों पर दृष्टि डालता है यह उपन्यास। उपन्यास का हर चरित्र वर्तमान में व्याप्त विद्रूपों का चित्रण करता है। धर्म के नाम पर लोगों को बाँटने वाले लोग एक धर्म को अनेक जातियों में बांटकर आपस में ही उन्हें लड़ाकर क्षुद्र राजनीति करते हैं। जाति धर्म के नाम पर वोट की राजनीति करने वाले मनुष्य को मनुष्य नहीं रहने दे रहे। हिंदू हो या मुस्लिम सब अपने आप में स्वयं से निम्न जाति को खोज ही लेते हैं। यहाँ जातिगत, धर्मगत शोषण है जो गंदी राजनीति को प्रबल और घिनौना बनाता है। जाति और धर्म का गंदला रूप उपन्यास में सर्वत्र व्याप्त है, वह चाहे मिसराइन हों या शास्त्री जी या मंदिर का पुजारी। शास्त्री जी कहते हैं- ''अरे आप चार पाँच बार मुसलमान-मुसलमान कहे फिर अपना मुँह सूंघे कितना बदबू करने लगता हैं उबकाई आने लगती है।''[7] एक तरफ लेखक की पत्नी सौहार्द्र का उल्लेख करती है और महमूद के रोजे के लिए भोर में उठकर सहरी बनाती हैं। दूसरी ओर मिसराइन महमूद की सच्चाई जानकर कहती हैं - ''स्वभाव से क्या होता है जी? स्वभाव अच्छा है तो चौके में घुस जायेगा? 'मलिच्छ' होकर बरतन-भांडा छुएगा? सब कुछ भरभण्ड करके रख दिया।[8] जाति-धर्म का जहर तब और अधिक वीभत्स हो जाता है और साम्प्रदायिकता का चरमोत्कर्ष यह है कि महमूद की सच्चाई जानने के पश्चात् शास्त्री जी अपने पोते को कहीं छुपा कर उसके

झूठे अपहरण के आरोप में महमूद को जेल भिजवाते हैं। इससे अधिक घिनौना और निम्न स्तर का कार्य क्या होगा कि एक मासूम को निरपराध होने पर भी अत्यंत गंभीर यातना दी जाती हैं। अब तक वह सबका सेवक था किन्तु अचानक से ही वह घर का भेदिया, दुश्मन और एक काफ़िर बन जाता है। उसकी जाति का पता चलते ही पुजारी कहता है कि ''वह पक्का नमाज़ी है। उसकी दोस्ती मुसलमान गुंडों और लफंगों से है। वह उनका भेदिया है। मुहल्ले का भेद देता है।''[9] जाति-धर्म का यह घिनौना रूप नगरीय सामाजिक व्यवस्था में ही गहरे तक जड़ें नहीं जमाया है बल्कि ग्रामीण व्यवस्था में तो इसका अत्यधिक विद्रूप रूप है। अपने कार्यालय के मित्र के गाँव में उपस्थित होकर लेखक ने ग्रामीण समाज में जाति के कारण विषाक्त वातावरण का प्रमुखता से विवरण प्रस्तुत किया है। 'पाले' एक प्रमुख पात्र हैं जिसके माध्यम से जातिगत बँटवारे का सचित्र वर्णन प्रस्तुत किया गया है। पाले घूम-घूम कर ब्राह्मणवाद का विरोध करता है और हिंदू धर्म की एक -एक कमज़ोर नस को उजागर करता है जिसके कारण उसकी हत्या कर दी जाती है। पाले द्वारा धर्म की व्याख्या जो उसे मृत्यु की नज़दीक ले जाती है ''धरम क्या है? हिंदू हैं? मुसलमान है? न..न...न। फिर? हमें बताइए गुरु का धरम क्या है? चेले का धरम क्या है? बाप का धरम क्या है? बेटे का धरम? गृहस्थ का धरम? साधू का धरम... तो धरम माने ड्यूटी। करतब। हमारे धरम में मिलावट हो गई। वह जहरीला हो गया।''[10] सांप्रदायिकता और जातिवाद वर्षों से जनमानस में इतने गहरे तक पैठ चुकी है कि आज चाह कर भी व्यक्ति इनसे मुक्त नहीं हो पा रहा। सोने पे सुहागा राजनीति, जो सदैव ही वोट बैंक बढ़ाने के लिए सामान्य जन की भावनाओं और संवेदनाओं को अपनी कूटनीतिक चालों के माध्यम से ही समाज को जकड़ लेती है और सामान्य जन इनके चंगुल में फँस जाता है और स्वयं को मुक्त नहीं कर पाता जाति-धर्म का आरोपीकरण इतना प्रभावी है कि तिवारी जी के शब्दों में -''कभी कभी कोई बात इतनी छुपाने वाली होती है कि हम अपने मन में उसे सोचने से भी कतराते हैं। उसी तरह की सच्चाई यह भी हैं कि एक सामान्य ब्राह्मण एक नीची जाति को वह भी अपने गाँव में ही प्रणाम करें, यह...यह... अभी तो असंभव है....जैसे ही गाँव छोड़कर शहर जाता हूँ, सारे सोच और कर्म में उदारता आ जाती है। पर वे दक़ियानूसी विचार रास्ते में ही कहीं छिपे बैठे इन्तजार करते रहते हैं। जैसे ही लौटता हूँ फिर कंधे पर सवार हो जाते हैं।''[11] इस उपन्यास में महमूद के बेकसूर होने के बावजूद भी जेल की यातना और पीड़ा सहना मानवता की हत्या है। वहीं पाले की हत्या लोकतंत्र की हत्या है। सामान्य और साधारण को असाधारण और असामान्य होने की सज़ा है। सदियों से चले आते धार्मिक और जातिगत मतभेद का वर्तमान में जो भी वीभत्स रूप है उसका साक्षात्कार कराता है ''त्रिशूल''।उपन्यास की कथावस्तु सामायिक है जो अतीत के पन्नों से होती हुई वर्तमान में शिक्षित और उच्च पदेन व्यक्तियों में भी कहीं न कहीं उन्हें पीछे ले जाती हैं और मानव का मानवीय विकास न होकर चारित्रिक ह्रास हो रहा है। अंत में महमूद का अपने घर वापस जाना और वहाँ से भी बेघर हो जाना मनुष्यता की हत्या है। ''लगता है महमूद के साथ ही हमारी युगों-युगों से संचित सहिष्णुता, उदारता और विश्वबंधुत्व की पूंजी आज इस घर को हमेशा-हमेशा के लिए अलविदा करके जा रही है।''[12]

अंत में महमूद के पिता का घर भी जला दिया जाता है और यह एक सदियों से चली आती हुई हिंदू-मुसलमान की वीभत्स और कारुणिक स्थिति है। जहाँ परिस्थितियों का विपरीत होना स्वाभाविक है और संवेदनशीलता का दुखद अंत। ''तब किसी घर गया होगा महमूद? कही नियति को यही तो मंजूर नहीं कि वह किसी न किसी काला पहाड़ की शागिर्दी करें''?[13] त्रिशूल उपन्यास का प्रत्येक पात्र पाठक के मानस पटल पर अपना चित्र अंकित करने में सक्षम है। यह उपन्यास इतना यथार्थ है कि इसमें चित्रित जाति-धर्म का विद्वेष और उसका लाभ उठाते राजनीतिक व्यक्तियों का मन्तव्य इतना स्पष्ट और साफ दिखायी पड़ता है कि आंखें खुली की खुली रह जाती हैं। समाज में व्याप्त यह ज़हर अभी और कितना अत्याचार करवायेगा इसका कोई ओर-छोर नहीं दिख रहा। शिवमूर्ति ने अत्यंत प्रभावशाली ढंग से इस कथा का विवरण प्रस्तुत किया है, ''त्रिशूल न केवल मंदिर-मंडल की बल्कि आज के समाज में व्याप्त उथल-पुथल और टूटन की कहानी है''। ''त्रिशूल' भारतीय साहित्य और समाज का ऐसा टेक्स्ट है जिसमें वर्ण, जाति, धर्म, संप्रदाय राजनीति, अर्थनीति और संस्कृति की भेद मूलक संरचनाएं आपस में इस तरह गुंथी हुई हैं कि भारतीय लोकतंत्र भी उन्हीं के सहारे ही सरवाइव कर रहा है। 'भेद' को बनाए रखकर लेकिन जब तक भेद रहेगा अन्याय रहेगा।''[14]

निष्कर्ष:-

'त्रिशूल' भारतीय वर्ण व्यवस्था वाले हिंदू समाज की जातिवादिता, धार्मिकता और सामंती मानसिकता को तार-तार कर देता है। 'त्रिशूल' की सफलता और सार्थकता इस बात में भी है कि वह मुस्लिम, दलित, पिछड़ों के माध्यम से ही प्रतिरोध और विद्रोह का परिप्रेक्ष्य निर्मित कर जन-जागरण का सर्जनात्मक कार्य करता है। यह उपन्यास साहित्य एवं समाज का घृणित और बर्बर चित्र उजागर करता है, जिसका रक्षण वर्षों से लोगों के मन में होते -होते आज भयावह हो चुका है, उसी यथार्थ का सचित्र वर्णन है 'त्रिशूल'।

******

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1.त्रिशूल, शिवमूर्ति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली दूसरा संस्करण, 2018 पृष्ठ-5
2.वही, पृष्ठ - 9
3.वही, पृष्ठ - 9
4.वही, पृष्ठ - 10
5.वही, पृष्ठ - 11
6.वही, पृष्ठ - 12
7.वही, पृष्ठ - 32
8.वही, पृष्ठ - 29
9.वही, पृष्ठ - 31
10.वही, पृष्ठ - 52
11.वही, पृष्ठ - 59
12.वही, पृष्ठ - 104
13.वही, पृष्ठ - 104
14.'लमही' - दुर्गा प्रसाद गुप्त, लखनऊ, अक्टूबर-दिसम्बर 2012, पृष्ठ - 224-225

अज्ञेय जी के कहानियों में अभिव्यक्त मानवीय संवेदना

प्रार्थना गोगोई
दरंग महाविद्यालय
तेज़पुर,असम

हिन्दी साहित्य के महज हस्ताक्षर अज्ञेयजी का सम्पूर्ण नाम सचिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन है। प्रयोगवाद के यथार्थ को प्रयोगात्मक रूप में उभारते हुये अज्ञेयजी ने हिन्दी साहित्य में एक नए वाद का उद्घोष किया। यथार्थवाद तथा बौद्धिकता को स्वीकारते हुये उन्होंने अपने रचनाओं में मध्यवर्गीय जीवन की जड़ता ,कुंठा,अनास्था,मानसिक संघर्ष,एकाकीपन के सत्य को चित्रित किया हैं। प्रेमचंद द्वारा तैयार किए गये यथार्थवादी लीक पर चलते हुये उन्होंने हिन्दी साहित्य में वैयक्तिकता,मानव मन की चाह,प्रेम तथा काम वासना का खुलकर चित्रण किया। फ्रायड के सिद्धान्त से प्रभावित वह एक मनोविश्लेषणवादी साहित्यिक हैं । वह एक सुप्रसिद्ध कवि,उपन्यासकार होने के साथ साथ एक अच्छा कहानीकार भी हैं। अज्ञेयजी के उपन्यासों से लेकर कहानी तक मनोविश्लेषणवादी विचारधारा परिस्फुट होते हैं । उनके अन्यतम कृति 'शेखर: एक जीवनी'पूर्णरूपेण मनोवैज्ञानिक उपन्यास है। अतः एक प्रयोगवादी लेखक होने के नाते उन्होंने जिये हुये जीवन के विभिन्न दर्दों को अपने कृतियों में अंकित किया हैं।

आजादी के साथ साथ भारतीय समाज में मध्यवर्ग की उदय होती हैं और उनके साथ ही आधुनिक भारतीय साहित्य में कहानी का जन्म होता हैं। और धीरे धीरे कहानी का विकास होता जाता हैं,भारतेन्दुयुग,द्विवेदीयुग तथा छायावाद से गुजरते हुये कहानी प्रयोगवादी विचारधारा से प्रभावित होने लगती हैं,और जीवन के यथार्थ को कहानियों में व्यक्त किए जाने लगते हैं। अतः कहा जा सकता है कि कहानी के क्षेत्र में अज्ञेयजी का योगदान महत्वपूर्ण रहा हैं,उन्होंने लगभग 70 कहानियाँ लिखे। अज्ञेय जी खुद कहानी के बारे में कहता है कि, "वे कहानियाँ जल्दी पुरानी नहीं होती हैं,या जो पुरानी होकर भी नयी बनी रही हैं या नयी हो गयी हैं,उनमें रचनाकार की दृष्टि सामाजिक यथार्थ की परिधि में बंधी न रहकर मानवीय यथार्थ पर केन्द्रित रही होगी।" उनके द्वारा विभक्त किए गए 'खेपों'के अनुसार प्रथम 'खेप'की कहानियाँ क्रांति-चेतना तथा प्रेम संवेदना से पूर्ण हैं,द्वितीय 'खेप'की कहानियाँ भूमि आंदोलन और जेल-जीवन पर आधारित हैं। अतः उनके कहानियाँ मानवीय यथार्थ के साथ पूरी तरह जुड़ा हुआ हैं। जैसे कि 'रोज़' (ग्रैंगीन),'अलिखित कहानी','अछूते फूल','जिजीविषा'(जीवन शक्ति),'पहाड़ी जीवन','शत्रु','दुख और तितलियाँ'आदि हैं। उनके इन कहानियों में मानवीय संवेदना के अनेक पहलूओं का उद्घाटन तथा चित्रण अति तीव्रता और यथार्थता के साथ हुआ हैं।

अज्ञेय के 'ग्रैंगीन'कहानी चरित्र- प्रधान एक मनोवैज्ञानिक कहानी हैं। बाद में उन्होंने उसका नाम बदलकर 'रोज़'कर दिया। इस कहानी में मध्यवर्गीय मानसिकता के साथ साथ स्त्री जीवन की विवशता,नीरसता,यांत्रिकता,घुटन का यथार्थ चित्रण हैं। मालती नामक स्त्री को केन्द्रित करते हुये लिखी गयी इस कहानी में उनके वैवाहिक जीवन के यांत्रिकता तथा जड़ता को चित्रित किया गया हैं। रोज़ की दिनचर्या से उलझा हुआ उनके जीवन कितनी यंत्रवत है,अपनी बच्चे की गिर जाने पर तथा उनके क्रंदन से भी निरुद्वेग होकर कहनेवाली यह कथन कि यह तो रोज़ की बात आदि से उनके मनुष्य यंत्र में बदल जाने की त्रासदी को व्यक्त करता हैं। उनकी यांत्रिकता इतनी भयावह हो जाती हैं कि जीवन-मरण की घटना भी उन को प्रभावित नहीं करती है। जब मालती के पति महेश्वर ग्रैंगीन के घाव इलाज के हेतु किसी की बाँह,या किसी की टांग काटकर इलाज करने की बात लेखक को कहता है तब वह बिना कुछ सोचे समझे वह कह उठती है कि, " पहले तो काँटे ही नहीं होते होंगे,आज तक सुना नहीं था कि काँटों के चुभने से मर जाते हैं।" महेश्वर की दिनचर्या में भी रोज़ कांटे लगने से ग्रैंगीन बन गए घाव के इलाज करना ही हैं,रोज़ आकर खाना खाके चले जाते हैं,जो उनके जीवन के स्थायी दिनचर्या हैं। जिसके कारण उनके जीवन में भी कोई नयापन नहीं हैं। पति-पत्नी के संबंध में जो लगाव होना चाहिए था उसमें भी कमी है,साथ ही बच्चे के प्रति भी सिर्फ दोनों कर्तव्य का पालन ही करते हैं। अतः इस कहानी के माध्यम से जड़-व्यवस्था के शिकंजे में फंसे मध्यवर्गीय जीवन के त्रासदी का चित्रण मिलते हैं। मालती के जीवन इन घटनाओं के इर्द गिर्द घूमते हैं- पति की प्रतीक्षा,घरेलू कार्य,बच्चे की देख-भाल और समय गिनना। समाज व्यवस्था के कारण मालती के पत्नी,गृहिणी तथा मातृ के रूप में जो ऊब,छटपटाहत है उसका यथार्थ चित्रण हैं। अतः इस कहानी में मानवीय संवेदना का जो विघटन हुआ हैं इसका यथार्थपरक चित्रण मिलता हैं। पति पत्नी के नीरस,निर्जीव संबंध में,मानवीय जो उत्साह है उसमें (अपने पुराने घनिष्ठ मित्र को वर्षों बाद मिलने के बावजूद) जड़ता,अवसादपूर्ण जीवन,संवेदनहीनता के कारण हुई यांत्रिकता का दस्तावेज़ है यह कहानी। तथा आधुनिक जीवन के रोज़ के दिनचर्या के कारण होनेवाले ऊब,घुटन तथा छटपटाहत से मानवीय संवेदना का जो अवखंडन हैं उसका भी सजीव वर्णन हैं।अज्ञेय जी द्वारा लिखे गये अन्य एक महत्वपूर्ण कहानी हैं 'जिजीविषा',जो पहले 'जीवन शक्ति'नाम से प्रकाशित हुये थे। इसमें बातरा नामक एक भिखमंगे संथाल युवती की कहानी हैं। ईसाई धर्म के युवती का नाम पहले तो बीएट्रिस था,जो पहले एक अच्छी जीवन बिताती थी,लेकिन समय के गुजरते माँ-बाप के मृत्यु के बाद मिशन में नौकरी न लगने पर वह एक भिखमंगे जीवन जीने लगी। फिर भी उनमें आत्माभिमान था,अच्छी तरह एक साफ सुथरे इंसान की जीवन बिताना चाहती थी,साथ अपना एक घर बनाने की सपना देखती थी जहाँ बाहर वह फूल लगाएंगे और बच्चे को झुलाएंगे। अतः उसकी मुलाक़ात दामु नामक भिखमंगे से होता हैं और उनके सपनों को तथा जीवन की संचित लालसा को एक आधार मिलता हैं। दामु और बातरा के यह संबंध मानव जीवन के आपसी सह-संबंध को दर्शाता हैं। वह एक दूसरे के सहारा बन जाते हैं। उनके मन में जो प्रेम हैं,जो चाह हैं उसे एक आधार मिलता हैं। इस कहानी के माध्यम से लेखक उपेक्षित वर्ग के दीनता,दयनीय स्थिति का वर्णन नहीं करते बल्कि उनके जो जीवन जीने की चाह हैं,अन्तः मन के जो भावनाएँ हैं उसका एक सार्थक तथा सजीव प्रत्यंकन किया है। लेकिन आस-पास के दकानदार उनलोगों के मज़ाक उड़ाते थे,फब्तियाँ कसने लगे थे। धीरे धीरे दामु और बातरा एक घर बसाने लगता हैं और बातरा की सपना साकार होने लगती हैं। दामु के साहचर्य उनके लिए मादक बनती जाती हैं। लेकिन आस पड़ोस के दुकानदार के उनके टीन से बनाए हुये घर को देखकर उनके प्रति उदारता मीटने लगती हैं क्योंकि ग्राहक के दृष्टि से उनके दुकान छिप गए थे। अतः उनलोगों ने पुलिस के सहायता से दामु के घर को तोड़ दिया। इसके द्वारा समाज के उच्च वर्ग का निम्न वर्ग के लोगों के प्रति जो दुर्व्यवहार है उसका चित्रण है। दामू को उद्देश्य कर दुकानदार कहता है "एहें! बड़ा आया घर में रहनेवाला! और जब यहीं नंगा पड़ा रहता था और कुत्ते बदन चाटते थे तब?"इसके जरिये समाज के उस वर्ग के लोगों के जीवन के करुण स्थिति का चित्रण मिलता हैं। भिखमंगे के प्रति समाज के जो नज़रियाँ हैं उसका एक नग्न चित्रण अज्ञेय जी ने किया हैं। उनके जीवन के स्वप्न को समाज ही तोड़ देते हैं। समाज ही उनके जीवन को कठिन बना देते हैं,उनके प्रति संवेदना की भावना नहीं रखते हैं। और इस कहानी में नैतिकता का जो विघटन हुआ उसका चित्रण हुआ है। दामु बातरा के प्रति संवेदनशील तो हैं मगर समाज के उच्च वर्ग कहलानेवाले,तथा समाज के सभ्यजन ही उनके भावनाओं को समझने के लिए तैयार नहीं हैं और उनलोगों को घर से बेघर कर दिया जाता हैं,लेकिन अपने यायावरी स्वप्न को दामू और बातरा खत्म होने नहीं देते हैं और गिरीश पार्क से जाकर विवेकानंद रोड पर अपना बसेरा बनाने का पुनः कोशिश करता हैं। उनके मन की जो जिजीविषा हैं उसका चित्रण लेखक ने किया है तथा सामाजिक यथार्थ को खुलकर अंकित किया हैं। अतः दामु और बातरा एक दूसरे के लिए साहस,तथा जीवन जीने की साधन बन जाता हैं,आपसी सहयोग को बढ़ावा देता हैं और एक दूसरे के प्रति संवेदनशील हैं,लेकिन शिक्षित वर्ग ही उनके प्रति उदार तथा संवेदनशील नहीं हैं। अतः यह कहानी समाज के उस नग्न यथार्थ को साकार करती हैं साथ ही उपेक्षित वर्ग के जो सपने,लालसा तथा जिजीविषा होती हैं

उसको सजीव रूप में देखने को मिलती हैं। 'अकलंक'अज्ञेयजी के अन्य एक छोटी सी कहानी है जिसका पृष्ठभूमि युद्ध के वातावरण है। ह्वांग-हो नदी के पास टीले की चोटी पर चीनी प्रजातंत्र के दो सेना हैं,पुरुष का नाम है मार्टिन और स्त्री का नाम है क्रिस। वे दोनों आपस में बात करते हुये नजर आते हैं और क्रिस मार्टिन को उद्देश्य कर कहती हैं कि मार्टिन को उनके घर ह्वांग-हो के प्रवाह में बहा देना चाहिए ताकि शत्रु पक्ष के लोग वहाँ आकर रह न सके। लेकिन मार्टिन ऐसा नहीं करना चाहता हैं। वह चाहते थे कि राष्ट्र के किसान उनके घर में आश्रय ले सके क्योंकि मार्टिन के घर में एक गाँव के लोग रह सकते थे और इसी कारण वह किसान के सहायता के लिए वह घर छोड़ जाना चाहते थे,चाहे वह उनका शत्रु ही क्यों न हो। लेकिन उसके इस भाव को क्रिस नहीं समझती हैं और कहती कि, संपत्ति के लिए इतना मोह,जिससे उनको ऐसा प्रतीत होता है कि किसी ने उनको थप्पड़ मार दिया हो। इस कहानी के जरिये अज्ञेय ने इंसानियत को दर्शाया है,मनुष्य मनुष्य के प्रति जो भावना होती हैं उसको एक सैनिक कि मनः स्थिति के माध्यम से दर्शाया है। युद्ध है,शत्रु है,फिर भी उसका हृदय निरीह किसान के लिए रोता है,उनके प्रति अनुकंपित होते है। जो मानवीय संवेदना को अति सावलील तथा सजीव रूप में अभिव्यक्त करता है।

इसके अलावा उनके प्रमुख कहानियों में हैं 'सेव और देव'कहानी जिसमें शिक्षित कहे जानेवाले वर्ग पर तीखा व्यंग हैं। 'मुस्लिम मुस्लिम भाई भाई' कहानी आहत मानवीय संवेदना और मानव मूल्यों पर आधारित सन् 1947 में लिखी गयी हैं। विभाजन के समय दिल्ली से पाकिस्तान जानेवाली एक स्पेशल ट्रेन की कहानी है जिसमें सरकारी मुलाजिमें जाते थे। उसी ट्रेन में ही तीन औरतें जानेवाली थी क्योंकि उनके द्वारा आखरी साधारण ट्रेन छूट गयी थी। अतः वेलोग दिलासा ले रहे थे की मुस्लिम लोग ही होंगे उसमें तो अफसर होने के बावजूद वेलोग साथ में जा सकेंगे। लेकिन इसके ठीक विपरीत एक परिदृश्य देखने को मिलता हैं,मुस्लिम मुस्लिम की भाई चारा तो दूर की बात इंसानियत के नाते भी उनलोगों को वहाँ बेठने नहीं देते हैं। जिसके द्वारा मनुष्य मनुष्य के प्रति उदार भाव की जो कमी है,हैसियत के हिसाब से लोग एक दूसरे के प्रति जो मानवीय संवेदना को ही खो दिये है उसका एक यथोर्थपरक चित्रण इस कहानी में मिलता हैं। अतः उनके अन्य कहानी 'दुख की तितलियाँ'में माँ के मृत्यु और उसके पश्चात जो सामाजिक प्रक्रिया घटते हैं उसके कारण एक पुत्र के मन में जो प्रभाव पड़ता हैं उसका चित्रण है। 'इन्दु की बेटी'एक मध्यवर्गीय परिवार के कहानी हैं इसमें एक पढ़े-लिखे विवाहित पति के मनोदशा का चित्रण हैं जिसका पत्नी पढ़े-लिखे नहीं है,और उनके गँवार होने के कारण रामलाल उनसे खीझते थे,एक दिन उसके पत्नी का उसके कारण ही मृत्यु हो जाती है। वह अपने पत्नी की प्रेम को समझ ही नहीं पाये और पति-पत्नी के बींच जो अनुकंपा, प्रेम भाव होती है उसकी तुलना किसी अन्य चीज़ के साथ तुलना नहीं किया जा सकता हैं,अपनी पत्नी की वह बाह्य रूप-सौन्दर्य को ही ध्यान में रखते हैं जिसके कारण वह पत्नी के प्रेम को समझ नहीं पाये और अंत में अपने आपको दोषी,अपराधी मानकर ज़िंदगी काटते हैं और पागल से हो जाते हैं। इसमें मानवीय प्रेम की,मूल्यों की जो अहमियत है उसको अंकन करने का प्रयत्न अज्ञेयजी ने किया है। अतः अज्ञेयजी ने परंपरा से हटकर एक नया प्रयोग करने का प्रयत्न किया। संघर्षों,घटनाओं को छोड़कर मानव के आंतरिक मनन स्थिति,सूक्ष्म अनुभूतियों,तथा छोटी से छोटी संवेदनाओं को लेकर अपने रचनाएँ किए। प्रतीकात्मकता उनके कथा-शैली का विशेषता है,जिसकी सहायता से कहानी में जिज्ञासा,रोचकता उत्पन्न करता हैं। मैंने प्रयोग किए तो शिल्प के भी किए,भाषा के भी किए,रूपकार के भी किए,वस्तु चयन के भी किए,काल की संरचना को लेकर भी किए,लेकिन शब्द-मात्र की व्यंजकता और सूचकता की एकांत उपेक्षा भी नहीं की।" अतः अज्ञेय की कहानी में समाज के हर वर्ग के प्रति संवेदनशीलता मिलते हैं। सैनिक जीवन से लेकर देशद्रोही,भिखमंगे से लेकर धनी वर्ग,स्त्री हो या पुरुष हर किसी के मानसिक स्थिति की प्रति संवेदनशील रहे हैं और उनके कहानियों में भी यही संवेदनशीलता परिलक्षित होते हैं।वर्तमान समय में कहानी तथा युगीन संदर्भ में अज्ञेय की कहानी की महत्व उल्लेखनीय हैं। आधुनिक जीवन-यापन के भाग दौर में व्यक्ति के जीवन घुटन,नीरसता,जड़ता,एकाकीपन,स्वार्थपरता,मानवीय मूल्यों के विघटन तथा मानवीय संवेदना के अवखंडन से ग्रस्त हैं। जिसका प्रत्यंकन अज्ञेय जी ने अपने कहानी के माध्यम से किया हैं। आज जिस समय समाज अति व्यक्तिवादी हो गए हैं,मानसिक स्थिति उलझा हुआ है,समाज के उपेक्षित वर्ग के प्रति निर्दय तथा कठोर हो गए हैं, उसी समय में अज्ञेय की कहानी की प्रासंगिकता आ जाती हैं,क्योंकि उन्होंने अपने कहानियों में समाज के जिस नग्न यथार्थ का चित्रण किया था वह आज के समाज में भी व्याप्त है। उनके 'ग्रैंगीन'अथवा 'रोज'कहानी में अभिव्यक्त मालती महेश्वर की जो संवेदनहीन संबंध है वह आज के समाज में भी मिलते हैं,उनलोगों के तरह अपना कर्तव्य यंत्रवत पालन करनेवाला व्यक्ति भी आज के समाज में है। अतः मानवीय संवेदना का जो विघटन हुआ है उसको लेखक मनोविश्लेषण से अपना परिचय होने के कारण अधिक सफलतापूर्वक दिखाने में समर्थ हुये हैं। इस प्रकार की स्थितियाँ लोगों के जीवन को नष्ट कर देती हैं और अवसादग्रस्त बना देती हैं। साथ ही विज्ञान और तकनीकी विकास ने लोगों को अधिक आत्म-केन्द्रित बना दिया हैं। अतः ऐसी स्थिति में एक ही उपचार मिलता हैं कि जीवन को नए नए रूप में,नए नए आविष्कार के साथ जीने का प्रयत्न करना चाहिए ताकि मानवीय संवेदना अटूट रहे और जीवन नित-नवीन रूप में उभरकर आए। 'जिजीविषा'कहानी में अभिव्यक्त भिखमंगे की जो चित्रण है वह तो समाज में प्रासंगिक हमेशा से रहा हैं। स्वार्थपरता,शत्रुता की भावना को त्यागकर इंसानियत की बीज बोना वर्तमान समय में समाज तथा व्यवस्था दोनों के लिए उपयोगी हैं। अतः भेद-भाव को बढ़ावा न देकर एक साथ आगे बढ़ने का संदेश मिलता है।

******

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. राय,गोपाल (2014). *हिन्दी कहानी का इतिहास*,राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली.
2. डॉ नगेन्द्र (2015). *हिन्दी साहित्य का इतिहास*,मयूर पैपरबेक्स,नई दिल्ली.
3. राय,गोपाल (2010). *अज्ञेय और उनका कथा साहित्य*,वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली.
4. चतुर्वेदी,रामस्वरुप (2008). *अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या*,वाणी प्रकाशन,
5. नई दिल्ली.
6. ऑनलाइन उपलब्ध सामग्री:(कहानियाँ)
7. ग्रैंगीन, gadyakosh.org
8. अकलंक, gadyakosh.org
9. जिजीविषा, gadyakosh.org
10. सेब और देव gadyakosh.org

'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास में अन्तिम जन का प्रतिरोध

शिवम कुमार
शोधार्थी
हिन्दी विभाग,
सिक्किम विश्वविद्यालय - गंगटोक
मो. – 8005461079

प्रस्तावना – अमरकान्त द्वारा लिखित उपन्यास 'इन्हीं हथियारों से' एक विस्तृत फलक वाला उपन्यास है। इस उपन्यास में बलिया नामक प्रान्त को केन्द्र में रखकर अमरकान्त ने 1942 ई0 के 'भारत छोड़ो आन्दोलन' को चित्रित किया है। उपन्यास में कोई मुख्य पात्र या नायक नहीं है, या यों कहें कि सभी सामान्यजन इस उपन्यास के नायक हैं। वंचित तबके के पात्रों द्वारा स्वाधीनता आन्दोलन के कई अर्थ लगाये जाते थे। दैनिक कामगार, मजदूर, वेश्या, विधवा आदि सभी पात्र जो सामन्ती समाज के अंतिम पायदान पर थे, उनके लिए आजादी से बड़ी उम्मीदें थीं। उपन्यास में गरीब और पिछड़े वर्ग के लोग इस आन्दोलन से समाज में भेद-भाव और गरीबी मिटने की भी उम्मीदें करते हैं। गांधीवाद समाज में इसकी एक उम्मीद तो जगाता ही है, साथ ही तमाम असहाय स्त्रियों को भी स्वाभिमानी और आत्मनिर्भर बनाने की पहल करता है। समाज में बदलाव के इस बयार का भी उपन्यास में स्पष्ट चित्रण है। उपन्यास में स्वाधीनता आन्दोलन के विशद चित्रण के साथ-साथ ग्रामीण अंचलों के सामाजिक समस्याओं को भी उजागर किया गया है।

बीज शब्द - स्वाधीनता आन्दोलन, अंतिम जन, सामन्तवाद, प्रतिरोध, जाति, स्त्री, गांधीवाद।

मूल आलेख-

अमरकान्त द्वारा लिखित उपन्यास 'इन्हीं हथियारों से' में स्वतन्त्रता आन्दोलन को आधार बनाया गया है। उपन्यास के कथ्य का मुख्य केन्द्र बलिया है। इस उपन्यास में गाँधीवादी आन्दोलनों के साथ-साथ सशस्त्र क्रांति का भी जीवन्त उल्लेख मिलता है। निश्चित ही 500 से अधिक पृष्ठों में फैले इस उपन्यास का कथानक अधिक विस्तृत है जिसमें स्वाधीनता आन्दोलन में विभिन्न विचारधाराओं का टकराव, ग्रामीण अंचल में स्वाधीनता की लहर, पुलिसिया दमन, जाति और स्त्री का प्रश्न, अमीर-गरीब का भेद आदि कई विषयों को तत्परता के साथ समाहित किया गया है। उपन्यास में जिस तरह से सामान्यजन को पात्रों के रूप में चित्रित किया गया है वह इसे विशिष्ट बनाता है - 'इन्हीं हथियारों से उपन्यास में सामान्यजन की भूमिका को प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया गया है। लेकिन इस चित्रण में इतिहासकारों की तरह उस जन का उद्धार नहीं बल्कि उसका अपना विमर्श है। इस उपन्यास में यह वर्ग अंध एवं मूक नहीं है, इसकी अपनी कुछ धारणाएँ हैं।'[1]

स्वाधीनता आन्दोलन के समय का भारतीय ग्रामीण समाज किन रुढियों में जकड़ा हुआ था, यह उपन्यास में राष्ट्रवादी चेतना की प्रबल प्रवाह के बावजूद भी स्पष्टतः सामने आ जाता है। स्वाधीनता आन्दोलन के उभारों का प्रभाव भारतीय समाज की कई रूढ़ियों और परम्पराओं पर पड़ा। इस आन्दोलन के नेतृत्त्व का स्वरुप चाहे जैसा हो परन्तु इस आन्दोलन में भाग लेने वाले कुछ समय तक इन भेद-भावों को लगभग भूल गये थे जिसे इस उपन्यास में पात्रों द्वारा समय-समय पर याद दिलाकर प्रतिरोध व्यक्त किया जाता है। अमरकान्त के इस उपन्यास में मोहभंग का भी स्पष्ट प्रभाव है। इस उपन्यास का प्रकाशन 2003 ई0 में हुआ था। जाहिर है की लेखक के पास भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन के मूल्यांकन के लिए पर्याप्त समय था, जिसका उपयोग इन पात्रों द्वारा आजादी के मुद्दे पर उठाये गये प्रश्नों के माध्यम से किया गया है। दरअसल उपन्यास में आजादी के सन्दर्भ में जितने भी प्रश्न स्त्री और पिछड़े वर्ग के पात्रों द्वारा पूछा गया है, वह ऐसे प्रश्न हैं जो आज तक अनुत्तरित रह गये हैं। अमरकान्त इस उपन्यास में स्त्री के पक्ष में विधवा, वेश्या और कामगार औरतों को तथा जाति और वर्ग के मुद्दों पर मजदूरों, गरीबों और नीची जाति के पात्रों को आगे कर इस प्रश्न को उठाते हैं। एक प्रसंग में वेश्या ढेला की माँ श्यामदासी उससे पूछती है, "फिर आजादी मिल गई तो रंडी-बेसवा को क्या मिलेगा? तब तो मर्द और जुल्म करने को आजाद हो जाएँगे।"[2] दरअसल ये सभी पात्र समाज के सबसे निचले स्तरों में शामिल हैं जिनके पास आजादी का अर्थ भी नहीं पहुँच पाया है। इस जन-प्रतिरोध में वे सभी लोग अपनी उत्सुकताओं के साथ कंधे से कन्धा मिलाकर भागीदार बनते हैं। इस वर्ग के लोग जिस उद्देश्य से इस स्वाधीनता संग्राम में भागीदारी की, वह उद्देश्य पूरा हुआ या नहीं, इसका उत्तर भी इस उपन्यास में ही दिया गया है। निम्न वर्ग के पात्रों में अपेक्षाकृत रोष अधिक होता है, वे सभी सामाजिक रुढियों से भी साथ-साथ ही आजादी चाहते हैं। हालाँकि आंदोनलन का सामंतवादी चरित्र उन्हें ऐसा करने से रोकता हैं| गाँधी जी के विचारों से उन वर्गों में आशा की एक किरण फ़ैल जाती है। समाज में अंतिम जन वही होते हैं जिन्हें अपेक्षाकृत उच्च वर्ग द्वारा उनके अधिकारों और जीवन-मूल्यों से वंचित किया जाता है। स्वाधीनता आन्दोलन के समय भारतीय समाज में जातिगत आधार पर भी बहुत भेदभाव था। समाज में स्त्रियों को भी पितृसत्तात्मक व्यवस्था का शिकार होना पड़ता था| इस उपन्यास में भी लगभग दोनों ही तथ्यों का यथार्थ चित्रण किया गया है।

इस उपन्यास में निम्न और निम्नमध्यम वर्ग का चित्रण मिलता है जिससे इन वर्गों की स्त्रियों की सामाजिक स्थितियों के बारे में भी जानकारी प्राप्त होती है। इन वर्गों में छात्र, मजदूर, शिक्षक, व्यापारी सभी की सहभागिता होती है। निम्न वर्ग के सदस्य कैम्युनिस्ट पार्टी की तरफ बरबस आकर्षित होते हैं। उनका विचार भी अपेक्षाकृत उत्तेजक होता है। कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्यों को विश्वास होता है की इस स्थिति में आजादी मिल भी जाती है तो समाज के पिछड़े, मजदूर स्त्रियों आदि की स्थिति में ख़ास बदलाव नहीं होगा। इस प्रसंग में कम्युनिस्ट पार्टी का सदस्य गोपालराम द्वारा पूछा गया प्रश्न अधिक प्रासंगिक है कि 'और अछूतों के लिए आपकी क्या योजना है? इस आजादी से हमें क्या मिलेगा?[3]

इस प्रश्न का उत्तर पुरे उपन्यास में इसलिए कोई नहीं दे पाता क्योंकि इस उपन्यास का लेखक इस उत्तर को प्राप्त करने के बाद ही इस उपन्यास की रचना कर रहा है। सभी राजनैतिक पार्टियों में भी सामंतवादी लोगों का प्रभुत्व देखकर गोपालराम को यह बात समझ आने लगती है कि पार्टी कोई भी हो, पिछड़ों और मजदूरों के प्रति उनका व्यवहार वही रहेगा। उन्हें बस बदलाव का ख्वाब ही दिखाया जा रहा है। उपन्यास के एक प्रसंग में वह कहता है की 'अक्सर शहर के अनेक समाजवादी या कम्युनिस्ट अपने गाँव में जाकर अपने गरीब या अछूत कामरेड के लिए मालिक और बाबू नहीं बन जाते? क्या वे अपने गरीब कामरेड के साथ बैठकर भोजन कर सकते हैं? पूंजीपति और मजदूर का भेद तो अलग किस्म का है, लेकिन सामाजिक और धार्मिक अस्पृश्यता भयंकर, मर्मान्तक है। पूंजीपति और सामन्त के खिलाफ तो किसान-मजदूर एक हो सकते हैं लेकिन अस्पृश्यता के समाज में जनता के बीच एकता कैसे स्थापित की जा सकती है।"[4] अगर गोपालराम के इस प्रश्न को सभी पार्टियों के साथ सन्निहित करके देखें तो यह समस्या उस समय की सबसे बड़ी समस्या बनकर हमारे सामने आती है। गोपालराम की बातें बहुत तीखी होती हैं जिससे सभी पार्टी के लोग उससे किनारा करते हैं। जातिगत मुद्दों पर उपन्यास के मध्यमवर्गीय पात्रों का चरित्र भी हमारे सामने आता है जिसमें छुआछुत से लेकर घरेलू नौकरों और कामगारों के साथ किया गया बुरा सुलूक भी शामिल है। स्वाधीनता आन्दोलन का समय भारतीय समाज के परम्परागत ढांचों के टूटने का भी समय है। इस टूटन से सबसे ज्यादा परेशानी सुविधाभोगी वर्ग को ही होती है जो अपने

पुराने अधिकारों को अटल मानकर उसे पाने का बारम्बार प्रयत्न करता हैं। उपन्यास के एक दृश्य में जब भगजोगनी के परिवार को दामोदर सामाजिक लोक-भय से उपेक्षित छोड़ देता है तब भगजोगनी की सास इस बात को स्वीकार करती है कि, 'अपने आराम अपने स्वास्थ्य के लिए तुम्हारा हाथ उसे थमा दिया। मैं मेहनत से घबरा गई। सभी कुछ बर्बद होने पर भी मुझमें यह घमण्ड तथा कि जब तुम्हारे ससुर के जमाने में घर से बाहर नहीं निकली तो क्या अब घर-घर जाकर मजदूरी करूँ। मेरे लड़के, मेरे बाबु ने भी मुझे कोई काम करने न दिया।'[5] स्पष्तः भगजोगनी की सास जिस सुविधाभोगी और उच्च जाति-वर्ग का नेतृत्त्व कर रही थी, उसके लिए गाँव में बाहर निकलकर अन्य लोगों के घरों में जाकर काम करना एक परम्परागत सामाजिक ढांचे का टूटना ही है जिसकी कसक भगजोगनी के सास के मन में बनी होती है। यही नहीं एक अन्य प्रसंग में भी गोपालराम भगजोगनी के सास को इसी बात के लिए ताने मरता है कि इस आजादी में वे लोग जिस उत्साह से शामिल हुए हैं, उन्हें कुछ हासिल नहीं होने वाला है, अमीर-गरीब का फर्क भी नहीं मिटने वाला है - 'यह सब धोखा है मैया, आजादी मिलेगी तो भी लड्डू-पेड़ा नहीं मिलेगा गरीब को, वही सबकुछ गड़प लेंगे, जो अपने को धनी-मानी मानते हैं।'[6] उपन्यास में प्रतिरोध की एक ऐसी धारा भी है जो संशय में है कि आजादी से उन्हें क्या हासिल होगा| उपन्यास का पात्र गोपालराम इस प्रतिरोधी चेतना का मुख्य स्वर है। उसके अन्दर असंतोष की एक ज्वाला भड़कती रहती है। वह खुद भी कई बार सामाजिक भेदभावों का शिकार होता है। उसकी सामाजिक बगावत की भावनायें परिलक्षित होती हैं- 'ऊँची जातियों के लोगों ने सबकुछ ले लिया है, सबके हक़ हड़प लिए हैं और गरीबों के लिए कुछ भी नहीं छोड़ा है।'[7] गोपालराम समाजवादी पार्टी से भी क्षुब्ध होता है जब वह पाता है की वहाँ भी अधिक संख्या में धनी और संपन्न ऊँची जाति के लोग शामिल हैं जो उससे दुहरा व्यवहार करते हैं। गोपालराम का यह संकट स्वाधीनता आन्दोलन के समय के भारतीय ग्रामीण यथार्थ का संकट है। यह ऊँच-नीच की सामाजिक रूढ़ी उन सभी कांग्रेसी और उच्च राजनीतिक समझ वाले लोगों के यहाँ भी मौजूद था जो बाहर समानता का पाठ पढ़ा अपने घर में निम्न जाति के लोगों के साथ दुर्व्यवहार करते थे। इसका एक उदाहरण नीलेश के घर में भी दीखता है जब वह गोपालराम को अपने यहाँ खाने के लिए बुलाता है और उसके घर के सभी सदस्य उसके खाना खाने के तरीके को देखकर हँसते हैं।[8] नम्रता भी स्वाधीनता आन्दोलन और गांधीवाद से प्रभावित होती है और कई असहाय और निचली जाति के स्त्रियों को चरखा आदि बांटती है। भीमल-बो दाई जब नम्रता की माँ के बुलाने पर उसके घर जाती है और पानी पीने के बरतन को बदलने की बात करती है तब नम्रता की माँ भी उसपर जातिगत टिपण्णी ही करती है- 'उसे इस समय नम्रता पर बड़ा गुस्सा आ रहा था। इसी ने सबको सहकाया है नहीं तो जूठ पर पलनेवाली और अंजुरी से पानी पीने वाली बर्तन के बारे में इस तरह आनी-बानी बोलने की हिम्मत करती? अंधेर मचा रखा है इस छोकरी ने।'[9] 'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास में नारी के सामाजिक स्थितियों का भी भरपूर चित्रण मिलता है जिसमें वेश्या ढोला से लेकर विधवा भगजोगनी तक शामिल है। क्रान्तिकारियों और सुधारवादियों के संपर्क में आकर ढोला भी स्वतन्त्रता आदोलन में भाग लेती है। दयाशंकर किशोरावस्था में देवदास पढ़कर और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता और उत्थान के लिए अपना सबकुछ कुर्बान करने की कसम खाने के बाद ढोला को अपनी क्रान्तिकारी पार्टी का सदस्य बनाने के उद्देश्य से उसके पास जाता है।[10] ढोला इन सबके माध्यम से स्वाधीनता आन्दोलन की ओर आकर्षित होती है। गोवर्धनदास से उसे प्रेम हो जाता है परन्तु एक वेश्या और एक उच्च वर्ग का मिलन संभव नहीं हो पाता जिसके कारण वह गोवर्धनदास से दर चली जाती है। ढोला का संघर्ष उसे स्वाभिमानी बनता है और स्वाधीनता आन्दोलन में भागीदारी से उसके व्यक्तित्त्व में भी परिवर्तन होता है जिससे वह अपने आसपास की महिलाओं को भी स्वाधीनता आन्दोलन से जोड़ती है और। रचनात्मक कार्यक्रम में भी भागीदारी निभाती है। स्पष्तः उसके चरित्र और सामाजिक जीवन का चतुर्मुखी विकास होता है भगजोगनी इन स्त्री पात्रों में सबसे ज्यादा प्रभावशाली है जो विधवा होने और दामोदरदास से धोखा खाने के बाद खुद के पैरों पर खड़ी होती है और आत्मनिर्भर होकर स्वाधीनता संग्राम में भाग लेती है। हलाँकि ऊँची जाति के होने के कारण उसके लिए ये सब आसान नहीं होता है परन्तु वह हार नहीं मानती है। सदाशयव्रत भी भोलाराम को रूपये देकर कनेरी पर अपना जबरदस्ती प्रेम थोपने की कोशिश करता है। नम्रता एक उच्चकुलीन पात्र है जो अपनी आजादी, स्वाभिमान, आदर्श और पारिवारिक एवं सामाजिक परम्पराओं और रुढियों के बीच झूलती रहती है। नीलेश से वह प्रेम करती है परन्तु उपन्यास के अंत में उसे यह कहकर ठुकरा देती है कि 'स्त्री तो धरती के सामान है, हमेशा देने के लिए तैयार है, इसलिए निजी सुख और महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए पुरुष उसपर सम्पूर्ण अधिकार चाहता है। उसे अपना अहंकार प्यारा है इसलिए वह दूसरों का ख्याल नहीं करता।'[11] नारी के स्वतन्त्र अस्तित्त्व को अमरकोन्त कई जगह अपने उपन्यास में जगह देते हैं। उपरोक्त प्रसंग के अलावा जब गोपालराम, भगजोगनी के पास जाता है तब वह भी स्वाभिमान से पूर्ण होती है जो अपने अस्तित्त्व को पहचानती है कि उसे किसी सहारे की जरूरत नहीं। लेकिन इतने बन्धनों और रूढ़ियों के बाद भी स्वाधीनता आन्दोलन में उनकी भागीदारी कम नहीं हुई। अमरकान्त ने अधिकांश स्त्री-पात्रों पर गांधीवाद का स्पष्ट प्रभाव भी लक्षित किया है।

निष्कर्षतः -

उपन्यास में जिस सामाजिक सच्चाईयों से हम रूबरू होते हैं वह मर्मान्तक है। गरीबों और पिछड़ों के इस दोहरे संघर्ष का क्षेत्र विस्तृत है। इस मोड़ पर आकर हम यदि गोपालराम के तर्कों पर दृष्टिपात करें तो इस आजादी का अर्थ समझ में आएगा कि यह आजादी चंद मुट्ठीभर लोगों के लिए ही है, गरीबों और पिछड़ों के लिए कुछ नहीं। भारतीय समाज में इसका स्पष्ट प्रतिबिम्ब भी दिखता है की किस तरह आज भी समाज में अंतिम जन हाशिये पर ही हैं। तमाम विमर्शों के बाद भी स्वाधीनता आन्दोलन के समय वाला सद्भाव और समाज सुधार का जूनून, त्याग, आदर्श लुप्त हो गया। इस उपन्यास के माध्यम से पुरे देश की स्थिति का अनुमान लगा सकते हैं। निश्चित ही गांधीवाद से प्रभावित होकर समाज में बहुत कुछ बदल रहा था परन्तु सामन्ती, उच्चवर्गीय और पितृसत्तात्मक मानसिकता का विघटन पूर्णतः नहीं हो पाया। 'इन्हीं हथियारों से' उपन्यास उन सभी विकृत मानसिकता के खिलाफ एक सशक्त आवाज है जिसमें मुख्य स्वर इस समाज के 'अंतिम जनों' का है।

*****

सन्दर्भ- ग्रन्थ :–

1. सिंह, कुँवर पाल, अजय बिसारिया. (संपा.) (2004) हिन्दी उपन्यास जनवादी परम्परा. दिल्ली: नवचेतन प्रकाशन. पृ.166
2. वही, पृ.166
3. अमरकान्त. (2014) इन्हीं हथियारों से. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ.83
4. वही, पृ.84
5. वही, पृ.299
6. वही, पृ.369
7. वही, पृ.375
8. वही, पृ.86
9. वही, पृ.213
10. वही, पृ.37
11. वही, पृ.534

गुरू जम्भवाणी में निहित चेतना

किरण मयी
शोधार्थी, पी.एच.डी. (हिन्दी विभाग)
दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

सारांश -

मनुष्य को व्यक्तिगत स्वार्थ को त्यागकर समाज के स्वार्थों को मान्यता देनी चाहिए। मनुष्य और प्रकृति के मध्य सह-अस्तित्व की भावना को विकसित करने की आवश्यकता है। हमारी संस्कृति के मूल्यों को महत्व देते हुए कथनी तथा करनी में समता होनी चाहिए। आर्थिक विकास तथा पर्यावरण संरक्षण एक सिक्के के दो पहलू हैं, इन्हें साथ लेकर चलना चाहिए। तभी पर्यावरणीय संकटों से सृष्टि को बचाया जा सकता है। संसार में उपस्थित कोई भी वस्तु चाहे वह निर्जीव हो या सजीव, उसका प्रकृति से अलग अस्तित्व ही नही है। पूरे विश्व का पर्यावरण एक ईकाई के रूप में कार्य करता है। किसी भी देश में अत्यधिक फैलाया गया प्रदूषण, अन्य देशों को भी प्रभावित करता है। यदि समय रहते इस पर्यावरण प्रदूषण या असन्तुलन को नियंत्रित नहीं किया गया तो यह प्राकृतिक संकटों का रूप धारण कर लेता है। आज पूरे विश्व के समक्ष पर्यावरण को संतुलित करना एक प्रमुख चुनौती है। यह चुनौती भी विश्वस्तरीय है तो इसका समाधान भी विश्व स्तर पर होना चाहिए। पर्यावरण के प्रदूषण को नियंत्रित करके तथा अपने सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों की तरफ लौटकर ही इस समस्या का समाधान संभव है।

भूमिका:-

भारत देश ऋषि-मुनियों, योगियों, संतों की जन्मस्थली तथा कर्म भूमि है। यहाँ एक तरफ मर्यादा पुरूषोत्तम राम के आदर्श है तथा दूसरी तरफ श्री कृष्ण द्वारा दिया गया गीता का ज्ञान है, जो भारतवासियों के लिए अमूल्य धरोहर है साथ ही ये मूल्य समाज को मानवता के मार्ग पर ले जाते है। हर काल विशेष में मनुष्य के मार्ग में संकट व परेशानियाँ रही है तथा किसी ना किसी महापुरूष ने अपने मार्गदर्शन में मानव जाति तथा संसार को उन संकटों से बाहर निकलने में सहायता व मार्गदर्शन किया है। इसी कड़ी में मध्यकाल में लगभग पन्द्रहवी सदी के आसपास गुरू जम्भेश्वर जी ने भी अपने ज्ञान द्वारा भटके हुए जनमानस को मार्ग दिखाया। गुरू जाम्भोजी ने पर्यावरण को बहुत अधिक महत्व दिया। उसके साहित्य में पर्यावरण के हर पक्ष पर चर्चा की गई है। मध्यकाल में सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक सभी परिस्थितियाँ गंभीर थी। उस समय के संतों व कवियों ने इन सभी समस्याओं का वर्णन किया तथा ईश्वर भक्ति करने का संदेश दिया। लेकिन गुरू महाराज ने इन सभी पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए पर्यावरण को सर्वोपरि रखा। मध्यकाल में पर्यावरण प्रदूषण लगभग ना के बराबर था लेकिन कुछ मनुष्य क्रियाओं से पर्यावरण सन्तुलन बिगड़ रहा था। उन्होंने उन्हीं बिन्दुओं पर प्रकाश डाला। उनकी पर्यावरण चेतना के कारण ही उन्हें पहले पर्यावरणविद के रूप में जाना जाता है। जिन पर्यावरण समस्याओं का वर्णन गुरू जाम्भोजी ने मध्यकाल में किया, वहीं समस्याएं आज हमें अपने आस-पास दृष्टिगत होती है। उनका समाधान भी उनके उपदेशों और शिक्षाओं में दिखाई देता है।

विषय वस्तु :-गुरू जांभोजी ने पर्यावरण को विस्तृत अर्थों में लिया है। इसमे पर्यावरण चेतना, सामाजिक चेतना, सांस्कृतिक चेतना, धार्मिक चेतना, नैतिक चेतना व प्राकृतिक चेतना दृष्टिगत होती है। उन्होंने समाज के सभी पक्षों को आपस में सह-सम्बन्धित बताया है। एक में परिवर्तन से दूसरा भी प्रभावित होता है। यहाँ हम गुरू जम्भवाणी में निहित चेतना की के हर पक्ष पर विचार करेंगे । गुरू जाम्भोजी की सामाजिक चेतना की प्रासंगिकता आज भी दिखाई देती है। गुरू महाराज का अवतरण ऐसे समय में हुआ था, जब समाज में अनेक विसंगतियां और अराजकता का माहौल था। समाज में भष्ट्राचार, असमानता का व्यवहार तथा अनेक बुराईयाँ व्याप्त थी। उन्होंने अपने उपदेशों में इन सबका विरोध करने के साथ-साथ लोगों को सद्मार्ग पर लाने का प्रयास भी किया। समाज में हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य को भी दूर करने का प्रयास किया। उन्होंने कहा कि सभी समान है, जाति के आधार पेर भेदभाव करना पाप के समान है -

'पीरं पूरूषां जीम मुसल्ला, कर्तब लेक सलामों।
हम दिल लिल्ला तुम दिल लिल्ला, रहम करे रहमाणों।
इतने मिसले चालो मीयां, तो पावो भिस्त इमाणों।'1

यहाँ हिन्दु व मुसलमान दोनों को आपसी भेदभाव छोड़कर कथनी व करनी में एकरूपता लाने का संदेश दिया है। जब सभी सम्प्रदाय के लोगों में आपसी भाईचारा व एकता की भावना होगी तभी समाज विकास कर सकता है तथा समाज का वातावरण स्वस्थ हो सकता है। सामाजिक बुराईयाँ जो समाज को उन्नति से अवनति की ओर ले जाती है, उन्हें भी त्यागने पर बल दिया है। उन्होंने मनुष्य जीवन को सबसे अमूल्य मानते हुए उसे मानवता की भलाई में लगाने का संदेश दिया है।

"कांय रे मुरखा तै जन्म गुमायों, भुंय भारी ले भारू"2

हे मनुष्य। तुमने अपना अमूल्य जीवन व्यर्थ में व्यतीत कर दिया है। इस संसार में रहकर तुमने चोरी, निंदा , झूठ आदि पापों की पोटली बाँधी है। जब तुम इस संसार में आए तो, निष्पाप थे। किन्तु इस संसार में आकर तुमने पापों के बोझ से अपने जीवन को भारी कर लिया। इस प्रकार गुरू जाम्भोजी ने मनुष्य को सदकर्म करने की प्रेरणा दी है।

गुरू जाम्भोजी जात-पात के कट्टर विरोधी रहे है, उन्होंने सभी मनुष्यों में एक जैसी शारीरिक संरचना बताई है तथा कहा है -

"तइसा सांसू तइया मांसू तइया देह दमोई
उतिम मधिम क्यों जांणी जै विवरसि देखो लोई।"3

यहाँ उन्होंने मनुष्य को कर्म के आधार पर सम्मान देने की बात कही है। सभी मनुष्य वही हाड़, माँस से बने है। इसलिए जाति-पाति का भेदभाव कैसा। इस प्रकार गुरू जंभोजी ने सामाजिक पर्यावरण को संतुलित करने का काफी प्रयास किया। हर सामाजिक बुराई पर व्यंग्य करके उसका विरोध किया है। धार्मिक चेतना के अन्तर्गत उन्होंने मूर्तिपूजा, तीर्थाटन, आडम्बर तथा सभी धर्मों के सारहीन कर्मकाण्डों का भी विरोध किया है। धर्म का अर्थ है जो धारण करने योग्य है। लेकिन धर्म अपने मार्ग से भटककर व्यर्थ के पाखण्डों में उलझ गया था, आज भी धर्म की वैसी ही स्थिति है। आज भी धार्मिक पाखण्ड व धर्म के नाम पर लोगों का शोषण होता है। अनेक धार्मिक गुरू जो जनमानस को भ्रमित करते थे और बुराईयों में लिप्त थे, उनकी सच्चाई सामने आ रही है। जिससे वर्तमान में धर्म मात्र एक तरीका दिखाई देता है जनता के शोषण करने का। गुरू जंभेश्वर भगवान मूर्ति पूजा का विरोध करते हुए कहते है -

"धेंवणां धंजै पांहण पूजै, बे फरमांण खुदाई।
गुरू चेलै के पाए लागै, देखो लोको अन्याई।"4

यहाँ गुरू जाम्भोजी मूर्ति पूजा को पाखण्ड बताते हुए पत्थर की मूर्ति से मूर्तिकार को श्रेष्ठ बताते है। इसके अतिरिक्त उन्होंने धार्मिक तीर्थस्थलों की यात्रा भी व्यर्थ बताई है। क्योंकि अड़सठ तीर्थ तो हृदय में ही विद्यमान है।

"अडसठि तीरथ हिरदै भीतर, बाहरि लोकाचारू"5

उन्होंने मध्यकालीन युग की धार्मिक परिस्थितियों के द्वारा बताया की धर्म उस समय केवल ठगने की कला मात्र ही रह गई थी। आज भी उनकी धार्मिक शिक्षाएँ उचित प्रतीत होती है तथा प्रासंगिक है।

"हर पर हरि की आण न मानी, भूला भूल जपी महमाई।
पाहन प्रीत फिटाकर प्राणी, गुरू बिना मुक्त न जाई।"6

यहाँ गुरू महाराज ने धार्मिक बाह्य आडम्बरों की निंदा की है। वर्तमान में भी इन से है -सब में आमजन का समय तथा धन की बर्बादी होती है। उन्होंने गुरू को मुक्ति का मार्ग बताया है अर्थात् गुरू ही हमें सत्य के मार्ग पर अग्रसर करता है। एक अन्य सबद में उन्होंने अंधविश्वास, झूठे

कर्मकाण्ड़ तथा शुभ मुहूर्त आदि के नाम पर पाखण्ड़ का वर्णन किया है

'नित ही अमावस नित संकराति, नित ही नवग्रह वैसे पांति,
नित ही गंग हिलोले जाय, सतगुरू चिन्है सहजै न्हाय।।[7]

इस प्रकार गुरू जाम्भोजी की धार्मिक चेतना वर्तमान में भी उतनी ही प्रासंगिक है, जितनी मध्यकाल में रही है। गुरू जम्भेश्वर की सांस्कृतिक चेतना के अन्तर्गत भारतीय संस्कृति के प्रधान गुण जैसे अंहसा, परोपकार, विश्व बन्धुत्व भावना, आध्यात्मिकता आदि शामिल है। उन्होंने जब भारतीय संस्कृति को विदेशी आक्रान्ताओं की तलवार से धाराशायी होते देखा तो अपनी वाणी व धर्म नियमों द्वारा सांस्कृतिक संरक्षण प्रदान किया। आज भी वैश्वीकरण, बाजारवाद के दौर में भारतीय संस्कृति अपना अस्तित्व खोती जा रही है। समाज पाश्चात्यकरण के पीछे दौड़ रहा है। भारतीय संस्कृति का मूल उद्देश्य जीओ और जीने दो का भाव है। लेकिन आज उन्नति व विकास की दौड़ में यह भाव पीछे छूट गया है। आज गुरू जाम्भोजीवाणी के उपदेश भारतीयों में सांस्कृतिक चेतना को जागृत करते हैं तथा पूर्णतः प्रासंगिक सिद्ध होते है।उनकी सांस्कृतिक चेतना से संबंधित उपदेश निम्न प्रकार

'भाई नांऊ बलद पियारो। ताकै गलै करद क्यूं सारो।
जीवां ऊपर जो करीजै। अंतकाल होयसी भारूं।'[8]

यहाँ उन्होंने जीवों के ऊपर होने वाली हिंसा का विरोध करते हुए कहा है कि भारतीय संस्कृति अंहसा मार्गी है। अतः हमें अपने सांस्कृतिक मूल्यों को नहीं भूलना चाहिए।परोपकार भाव भी भारतीय सांस्कृतिक विशेषता है। निस्वार्थ भाव से किया गया उपकार ही परोपकार की श्रेणी में आता है। गुरू महाराज ने अपनी वाणी में परोपकार का संदेश दिया है। उन्होंने परोपकार की तुलना बादलों से बरसते जल से की है। जिस प्रकार वर्षा के होने पर जल सभी जगह समान रूप से गिरता है, उसी प्रकार परोपकार की भावना होनी चाहिए। भारतीय संस्कृति की एक और विशेषता गुरू की महत्ता है। गुरू को भगवान समान दर्जा दिया गया है। गुरू जी ने कहा है -

'जहाँ गुरू न चिन्हो, पंथ न पायों, तहां गल पड़ी परासु ''[9]

अर्थात् जिस व्यक्ति ने गुरू को नही पहचाना और उनके बताए मार्ग का अनुसरण नहीं किया। वह व्यक्ति निश्चित तौर पर मोह माया रूपी बंधन में फँस जाता है। यह बंधन उसे अंधकार के मार्ग की ओर ले जाता है। इसके अतिरिक्त संतोषी प्रवृत्ति भी सच्चे गुरू की विशेषता है।

'गुरू आप संतोषी अवरां पोखी तँत महारस वाणी।''[10]

गुरू जाम्भोजी ने सच्चे गुरू की पहचान उसकी संतोष की भावना मानी है। वह दूसरों की भलाई व पालन-पोषण के लिए ही कार्य करता है। इसके अतिरिक्त विश्व बन्धुत्व की भावना भी भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता है। मनुष्य मात्र के प्रति आदर व प्रेम, सत्कार की भावना हमारी पहचान रही है। गुरू महाराज की सांस्कृतिक पर्यावरण चेतना में भी 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का भाव रहा है। वर्तमान में भी भाईचारे व विश्व बंधुत्व की भावना कम हो चुकी है। किसी व्यक्ति को अन्य के सुख-दुःख से कोई मतलब नहीं है। उन्होंने स्वयं द्वारा स्थापित बिश्नोई पंथ में सभी धर्मों, वर्णों, जातियों के लोगों को बिना किसी भेदभाव के सम्मिलित किया तथा संसार में भाईचारे की भावना का प्रचार प्रसार किया। गुरू महाराज की सांस्कृतिक चेतना बड़ी प्रबल रही। उन्होंने मध्यकालीन संक्रमण काल में भारतीय संस्कृति की एक पहरेदार की भांति रक्षा की तथा संस्कृति की मूल्यों को सजीव रखा। वर्तमान परिदृश्य में भी सांस्कृतिकता का पतन हो रहा है। ऐसे समय में जांभोजी साहित्य एक नई दिशा देता है। उनकी सांस्कृतिक पर्यावरण चेतना पूर्ण रूप से प्रासंगिक सिद्ध होती है।नैतिक चेतना के अन्तर्गत विचारों मे नैतिकता एवं आध्यात्मिक मूल्यों का विकास सम्मिलित है। उत्तम आचार-विचार एवं व्यवहार की शिक्षा से समाज में समता के मूल्य की स्थापना होती है। नैतिक मूल्य के अन्तर्गत - सत्य, अहिंसा, निंदा न करना, चोरी न करना, झूठ न बोलना, ईमानदारी, समानता का व्यवहार आदि आते है। वर्तमान समय में इन नैतिक मूल्यों का ह्रास हो चुका है। व्यक्ति केवल अपने हित की ही सोचता है, परहित का भाव ही समाज से गायब हो चुका है। आदर्श समाज एवं देश के विकास में जिन मूल्यों की सर्वाधिक आवश्यकता है, वही मनुष्य के जीवन से विलुप्त हो चुके है। नैतिकता के ह्रास से ही लोगों में संवेदनशीलता की कमी होती जा रही है। दूसरों की दुःख तकलीफ से व्यक्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।गुरू जांभोजी ने अपने विचारों तथा सिद्धान्तों के माध्यम से व्यक्ति के जीवन को सार्थक व सफल बनाने का संदेश दिया है। मनुष्य के विचारों में नैतिकता के मूल्यों का विकास करके उनका मानसिक पर्यावरण सुदृढ़ बनाया जा सकता है। उन्होंने अज्ञानता के अंधकार में भटकते हुए मानव को ज्ञान के प्रकाश से रास्ता दिखाया है। उन्होंने रूढ़ियों तथा अंधविश्वासों को त्याग कर मानवीय एवं नैतिक गुणों के विकास पर बल दिया है। आज मनुष्य जीव-जन्तुओं व प्रकृति के प्रति निर्दयी हो गया है, गुरू जांभोजी ने प्रकृति के प्रति उदारता का भाव रखने का संदेश दिया। उन्होंने विचारों की शुद्धि पर बल दिया तथा हवन से वातावरण शुद्धि के साथ-साथ मानसिक निर्मलता एवं पवित्रता पर ध्यान देने की आवश्यकता को महसूस किया तथा नैतिक पर्यावरण संरक्षण का संदेश भी दिया। आज औद्योगीकरण तथा आधुनिक विकास की होड़ में संयुक्त परिवार तथा अपनत्व का भाव कम होता जा रहा है। गुरू जाम्भोजी ने नैतिक मूल्यों के संदेश से परिवार व समाज को आपसी भाईचारा तथा प्रेम के बीज बोए है। उन्होंने परिवारों में आपसी क्लेश, बिखरते-टूटते रिश्ते, द्वेष की समस्याओं का समाधान शील तथा संतोष द्वारा संभव बताया है। गुरू महाराज ने सार्वभौमिक नैतिक मूल्यों के माध्यम से मानवतावादी, स्वच्छता, कर्मशील रहने की बात पर बल दिया है। गुरू जांभोजी ने कहा है -

"जीवत मरो रे जीवत मरो, जिण जीवन की विधि जाणीं।''[11]

यहाँ उन्होंने मनुष्य को जीवन जीने की विधि बताई है। अंहकार को मारकर जीवन जीने में सुख प्राप्त होता है। जीवत मरने से तात्पर्य बुरे विचार एवं भावों को मारने से है। इस प्रकार व्यक्ति सुन्दर जीवन व्यतीत कर सकता है। गुरू जम्भेश्वर जी संतोषी प्रवृत्ति रखकर अभिमान को त्यागने का संदेश देते हुए कहते है -

"सदा संतोषी सँत उपकरणां, म्हे तजिया मान अभिमानूं।"[12]

यदि मनुष्य के भले अर्थात् अच्छे कार्य करता है तो उसके विचार भी अच्छे होते है। बुरे विचार वाला हमेशा बुराईयाँ ही कमाता है।

"भलियाँ होय सो भली बुध आवै, बुरियो बूरी कमाणै''[13]

वर्तमान समय में चारों दिशाओं मंे अंसतोष, निराशा, वैश्विक महामारियाँ तथा हताशा का वातावरण है। गुरू जांभोजी की नैतिक पर्यावरण चेतना एक आशा की किरण की भाँति सबके जीवन में ज्ञान की ज्योति जलाती है। नैतिक मूल्य ही विचारों में पवित्रता तथा जीवन में सकारात्मकता ऊर्जा का संचार करते है। अतः गुरू जाम्भोजी की नैतिक पर्यावरण चेतना वर्तमान परिदृश्य में पूर्णतः प्रासंगिक सिद्ध होती है।आधुनिक समय में पर्यावरण प्रदूषण निरंतर बढ़ता ही जा रहा है। प्राकृतिक संसाधनों जैसे - वन, वन्य संपदा, जंगल, पहाड़

"दिल करदा लिख जावां/मेरा वी इह दिल करदा ऐ,
मैं रूंख दी जूणी आवाँ।/जे तुसी मेरा गीत है सुणना,
मैं रूंखां दे विच गाँवा।/रूंख तां मेरी माँ बरगे नै,/ जिऊँण रूंख दीयां छावाँ''[14]

आज हमें पर्यावरण, प्रकृति को समझने तथा समन्वय स्थापित करके चलने की आवश्यकता है, यही संदेश गुरू जांभोजी ने दिया था। उन्होंने मध्यकाल में ही भविष्य में पर्यावरण से संबंधित समस्याओं को महसूस किया तथा वातावरण को स्वच्छ रखना हर मनुष्य का कर्त्तव्य बताया। वर्तमान में गुरू जाम्भोजी की पर्यावरण चेतना प्रासंगिक है। उनके पर्यावरण को सुरक्षित रखने के नियम को अपनाने से पर्यावरण प्रदूषण को कम किया जा सकता है। यदि प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग उचित तरीके से तथा प्रकृति के सन्तुलन को बिगाड़े बिना किया जाएगा तो पर्यावरण हमेशा मानव जाति के लिए कल्याणकारी ही साबित होगा।

निष्कर्षः-अतः यह कहा जा सकता है कि गुरू जाम्भोजी द्वारा बताई गई बातें इस वैश्विक संकट में मनुष्य को नव ऊर्जा के साथ-साथ नव प्रेरणा भी

देती है। उन्होंने प्रकृति प्रेम, जीवों पर दया तथा सुमार्ग द्वारा कमाया हुआ धन, जिसको उम कार्य तथा दान में लगाना आदि को जीवन का हिस्सा बनाने की प्रेरणा दी है। उन्होंने ''बरजत मारे जीव तहाँ मर जाईए''15 जैसी आंतरिक भावना तथा दूरदर्शिता का संदेश हर मानव को दिया है। उन्होने अपनी वाणी में लिखा है **-"जुग-जुग जीवो प्राणी''**[16]इसका अभिप्राय है कि हमें हर परिस्थिति में जूझकर भी मानव कल्याण के लिए कार्य करना चाहिए। प्रकृति के बिना जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। पर्यावरण चेतना से हम पर्यावरण के हर पहलू पर विचार-विमर्श करते है। गुरू जाम्भोजी ने भी बिश्नोई पंथ की स्थापना करके उसके अनुयायियों को पर्यावरण चेतना व पर्यावरण संरक्षण का कार्य करने का संदेश दिया। आज पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में सवौच्च स्थान बिश्नोई समाज का है। गुरू महाराज ने अपनी दिनचर्या तथा उपदेशों के द्वारा मनुष्य को सांसारिक पदार्थों के अनावश्यक संग्रहण की प्रवृत्ति छोड़ने की शिक्षा दी। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में संपूर्ण जांभोजी वाणी में निहित चेतना प्रासंगिक दिखाई देती है। पर्यावरण प्रदूषण की वर्तमान चुनौतियाँ हमारे सामने विकराल रूप में राक्षस की भाँति मुँह खोले खड़ी है। इनका समाधान जांभाणी दर्शन में निहित पर्यावरणीय चेतना से ही संभव प्रतीत हो रहा है। यदि हम सब मिलकर ईमानदारी से अपने काव्य का निर्वाह करते हैं तो अवश्य पर्यावरण को संरक्षित कर पाएंगे।

****

संदर्भ ग्रंथ सूची

1.श्री कृष्णानन्द आचार्य, जम्भसार, सबद-10, पृ0 40, जाम्भाणी साहित्य अकादमी, जयनारायण व्यास कॉलोनी, बीकानेर (राजस्थान) तेहरवाँ संस्करण, 2019
2.डॉ0 हीरालाल माहेश्वरी, श्री जाम्भोणी और जम्भवाणी मीमांसा, सबद-11, पृ0 548, श्री गुरू जम्भेश्वर साहित्य सभा, श्री बिश्नोई मन्दिर, अबोहर, फिरोजपुर (पंजाब)
3.वही, सबद 39, पृ0 601
4.डॉ0 कृष्णलाल बिश्नोई, गुरू जाम्भोजी का जीवन दर्शन, पृ0 18
5.वही, पृ0 18
6.डॉ0 मनबीर, अमर ज्योति मासिक पत्रिका, जनवरी 2021, पृ0 21
7.वही, पृ0 20
8.श्री कृष्णानन्द आचार्य, जम्भसार, सबद 9, पृ0 38
9.डॉ0 मनबीर, अमर ज्योति मासिक पत्रिका, जनवरी 2021, पृ0 21
10.वही, पृ0 31
11.श्री कृष्णानन्द आचार्य, जम्भसार, सबद 98, पृ0 208
12.वही, सबद 99, पृ0 210
13.वही, सबद 120, पृ0 242
14.डॉ0 मनवीर, अमर ज्योति मासिक पत्रिका, जून 2021, पृ0 12
15.वही, पृ0 19
16.वही, पृ0 19

हिन्दी साहित्य में वृद्ध विमर्श

जितेन्द्र कुमार
(शोधार्थी हिन्दी)
वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर
उ०प्र०,मो.-9452508522

साहित्य समाज का दर्पण है और इस दर्पण के माध्यम से ही हम इसकी विविध रूपों का अवलोकन करते हैं। साहित्य जीवन के उन तमाम पक्षों को अपने अंतस्थल में छिपाया रहता है जिन्हें हम अपने मानवीय जीवन में जीते हैं। इन्ही जीवन के अध्याय के रूप में हम विभिन्न विमर्शों से आवृत्त रहते हैं। आजकल साहित्य में विविध विमर्शों ने अपनी एक विशिष्ट पहचान बना रखी है। इन विमर्शों के अंतर्गत दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, वृद्ध विमर्श, किन्नर विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श, कृषक विमर्श,बाल विमर्श, आदिवासी विमर्श आदि सम्मिलित हैं।

आधुनिक परिवेश में वृद्ध विमर्श एक ऐसी अवधारणा है जो साहित्यकारों को बरबस ही अपनी ओर आकृष्ट कर रही है। इस विमर्श को जानने से पहले हमें 'विमर्श' शब्द को समझना होगा। 'विमर्श' शब्द के अर्थ को बतलाते हुए डॉ० हरदेव बाहरी ने 'हिन्दी पर्याय कोष' में इसके विभिन्न अर्थ बतलाएं हैं,जैसे- तबादला-ए-ख्याल, परामर्श,मशविरा, राय, बात, विचार विनिमय, विचार विमर्श, सोच विचार आदि। इस प्रकार 'विमर्श' शब्द का अर्थ है- 'किसी एक निश्चित फ्रेमवर्क में किसी विषय के बारे में सूचना सोचना।'

अतः वृद्धावस्था की परिस्थितियों एवं घटनाओं से युक्त साहित्य वृद्ध विमर्श साहित्य के अंतर्गत आता है। आधुनिक परिवेश में जहां एकाकी परिवारों में बढ़ोत्तरी हुई है वही वृद्धों के हालातों में दिनोंदिन उपेक्षा ही देखने को मिलती रही है। पहले संयुक्त परिवार हुआ करते थे जिनमें वृद्धों का आदर, सम्मान एवं महत्व था लेकिन आज के औद्योगिकरण युग में संयुक्त परिवारों का विघटन हुआ है और एकाकी परिवारों की बढ़ोतरी हुई है और इसी बढ़ोतरी के साथ हमारे वृद्ध समाज के लोगों को युवा पीढ़ी निरंतर उपेक्षित जीवन जीने के लिए बाध्य कर रही है। लोगों का ध्यान आकृष्ट करने के लिए ही साहित्यकारों ने अपनी कृतियों में ऐसे विमर्शों को प्रमुखता से जगह दी है, जिससे आज की युवा पीढ़ी सबक ले सके और यह समझ सके कि जैसा बर्ताव हम इन वृद्धों के प्रति कर रहे हैं,वैसा ही बर्ताव हमारी संतति भी हमारे प्रति करेगी। वृद्ध विमर्श पर आधारित प्रमुख कृतियां निम्नवत हैं-

'पंच परमेश्वर' (मुंशी प्रेमचंद) कहानी में चित्रित वृद्ध विमर्श

'पंच परमेश्वर' (1916) मुंशी प्रेमचंद की एक प्रसिद्ध कहानी है,जिसमें जुम्मन शेख और अलगू चौधरी नामक दो प्रमुख पात्र हैं। दोनों में प्रगाढ़ मित्रता है। जुम्मन शेख की एक बूढ़ी खाला (मौसी) हैं जिन्हें जुम्मन ने फुसलाकर उनकी सारी जायदाद अपने नाम लिखवा ली। जायदाद की रजिस्ट्री से पूर्व तो खाला का खूब आदर होता है लेकिन रजिस्ट्री होते ही सब कुछ बदल गया। अब खाला को सूखी रोटी और कड़वे बोल ही सुनने को मिलते थे। खाला जुम्मन के बदले व्यवहार से दु:खी रहने लगती हैं और जब जुम्मन का व्यवहार नहीं बदलता है तो लाचार होकर कहती हैं- "बेटा! मुझे हर महीने कुछ रुपए दे दिया कर। मैं अलग खा-पका लूंगी।"(1)

जुम्मन उनको पैसे देने से साफ मना कर देता है और यह मामला गांव की पंचायत में पहुंचता है, जिसका पंच जुम्मन का खास मित्र अलगू चौधरी है लेकिन अब अलगू चौधरी एक सच्चे पंच का दायित्व निभाते हुए फैसला देता है- "खाला को खर्च देने लायक लाभ तो जायदाद से ही हो जाता है। अगर जुम्मन खर्च नहीं देंगे तो दान-पत्र की रजिस्ट्री रद्द कर दी जाएगी।"(2)

अंततः जीत खाला की ही होती है। इस कहानी में लेखक ने भविष्य में ऐसी घटना किसी के साथ ना घटे, इसके प्रति आगामी पीढ़ी को सचेत किया है।

'बूढ़ी काकी' (मुंशी प्रेमचंद) कहानी में चित्रित वृध्द विमर्श-

'बूढ़ी काकी' (1920) मुंशी प्रेमचंद जी की एक प्रसिद्ध कहानी है,जिसमें वृद्ध विमर्श अपने चरमोत्कर्ष पर है। जैसा कि इस कहानी के नाम से ही स्पष्ट है,इस कहानी की प्रमुख केंद्रीय पात्र बूढ़ी काकी हैं जिनके पतिदेव को स्वर्ग सिधारे कालांतर हो चुका था, बेटे तरुण हो होकर चल बसे थे। अब एक भतीजे बुद्धिराम के अलावा उनका कोई और न था। उन्हीं के नाम काकी ने अपनी सारी संपत्ति लिख दी थी। बुद्धिराम ने संपत्ति लिखाते समय खूब लंबे-चौड़े वादे किए किंतु वे सब वादे केवल कुली डिपो के दिखाए हुए सब्जबाग ही थे। पंडित बुद्धिराम के साथ-साथ उनकी पत्नी रूपा भी उनकी अवहेलना किया करती। पंडित बुद्धिराम के बड़े लड़के मुखराम के तिलक के दिन काकी को जोरों की भूख लगी है। क्षुधापूर्ति हेतु वह अपने कमरे में से बार-बार आंगन में आती हैं और प्रत्येक बार बुद्धिराम द्वारा भगा दी जाती हैं। बेचारी भूखी-प्यासी ललचायी मुख से युक्त होकर अपने कमरे में पड़ी हुई हैं। रात के ग्यारह बजे हैं। बुद्धिराम की बेटी लाडली जो काकी की एकमात्र हितैषी है,से काकी का यह मार्मिक कथन देखें- "बेटी! मेरा हाथ पकड़ कर वहां ले चलो, जहां मेहमानों ने बैठकर भोजन किया है।"(3) छोटी लाडली काकी के इस कथन का अभिप्राय ना समझ सकी और काकी लाडली का हाथ पकड़कर वहां जा पहुंची, जहां मेहमानों के जूठे पत्तल पड़े थे। दीन, क्षुधातुर, हतज्ञान बूढ़ी काकी जूठे पत्तलों से पूड़ियों के टुकड़े चुन-चुन कर खाने लगती हैं। इस प्रकार प्रेमचंद ने वृद्धों पर होने वाले अत्याचारों का एक सजीव चित्र खींचा है।

'बेटों वाली विधवा' (मुंशी प्रेमचंद) कहानी में चित्रित वृद्ध विमर्श-

मुंशी प्रेमचंद ने इस कहानी में एक स्त्री फूलमती के पति की मृत्यु के बाद की दयनीय स्थिति का वर्णन किया है। चार-चार पुत्रवधुओं के रहने के बाद भी उसे घर का सारा काम करना पड़ता है। अब मानो वह इन कार्यों को करने की अभ्यस्त हो चुकी है। उसका कथन है- "मैं बीमार न पड़ूँगी। मुझे भगवान ने अमर कर दिया है।"(4)उसके पुत्रों ने षड्यंत्र करके उसके सारे गहने और पैसों को भी हड़प लिया है और अंततः पुत्रों की सेवा में संलग्न रहती हुई नदी से पानी लाते समय गहरे पानी में डूबकर मृत्यु को प्राप्त हो जाती है। इस कहानी के माध्यम से मुंशी प्रेमचंद ने युवा पीढ़ी को उनका कर्तव्य बोध कराया है।

'चीफ की दावत' (भीष्म साहनी) कहानी में चित्रित वृद्ध विमर्श-

भीष्म साहनी के प्रमुख कहानी संग्रह हैं- भाग्य रेखा (1953),पहला पाठ (1957), भटकती राख (1966),पटरियां(1973), वांग्चू (1978), शोभायात्रा (1981), निशाचर (1983), पाली(1989),डायन(1998)। इन संग्रहों में अनेक कहानियां वृद्ध विमर्श का प्रतिनिधित्व करती हैं। इनकी वृद्ध विमर्श पर आधारित कहानियों में यह कहानी वृद्ध विमर्श का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है, जिसमें एक पदलोलुप पुत्र अपने प्रमोशन के लिए अपनी वृद्ध मां को घर में बंद कर देता है ताकि घर में मेहमान बन कर आया हुआ उसका बॉस 'डिस्टर्ब' ना हो और अंत में उसकी मां ही उसके प्रमोशन का कारण बनती है क्योंकि उसकी मां के हाथ की बनी फुलकारी बॉस को काफी पसंद आई थी। तो हमने इस कहानी में देखा कि कैसे एक पुत्र जो अपनी मां को बोझ समझता है और अंत में वही मां उसके सफलता में सहायक सिद्ध होती है। आज की युवा पीढ़ी भी लगभग उसी मनोवृति की होती जा रही है। लेखक ने इस कहानी के माध्यम से वृद्ध समाज का एक सजीव और सटीक चित्र खींचा है।

'यादें' (भीष्म साहनी) कहानी में चित्रित वृद्ध विमर्श-

यह कहानी दो वृद्धाओं लखमी और गोमा की कहानी है। दोनों कई दिनों बाद मिली हैं। ये दोनों अब काफी बूढ़ी हो चली हैं। एक दूसरे से मिलकर वे अपने सुख-दुःख के उन पुराने दिनों को याद करती हैं और एक दूसरे के गले से चिपट पड़ती हैं। दोनों अपने वर्तमान जीवन के बारे में भी बात करती हैं। उनकी बातों से ऐसा लगता है कि मानो अब वे जीवन से उदास हो चली हैं और किसी प्रकार जीवन को बस ढो सी रही हैं। रात में उनका कष्ट और बढ़ जाता है। 'इस संबंध में लखमा का का एक वक्तव्य द्रष्टव्य है- "रात पड़ गई है बच्चा। मैं रात से बहुत डरती हूं। रात बूढ़ों की दुश्मन होती है। मुझे बालकराम सेठी के घर तक छोड़ आ।"(5)

कुछ और साल' (भीष्म साहनी) कहानी में चित्रित वृद्ध विमर्श-

यह कहानी एक अवकाश प्राप्त सुपरिटेंडेंट मधुसूदन के बुढ़ापे की कहानी है। मधुसूदन जी की पत्नी वर्षों पहले मर चुकी हैं। दोनों बेटियों के ब्याह हो चुके हैं। बड़ा बेटा वकील है,इसी शहर में रहता है जो कभी-कभी पत्नी की घुड़कियों के बावजूद बाप से मिलने आ जाता है। मंझला बेटा फौज में है और आजकल नेपाल में है। छोटा बेटा जंगलात के महकमे में में अफसर है और आजकल देहरादून में है। इस कहानी में लेखक ने यह दिखाया है कि नौकरी से सेवानिवृत्त और तीन-तीन पुत्रों का पिता होने के बाद भी एक वृद्ध पिता कैसे घुटन और कुंठा में जीवन गुजारने को मजबूर है।

परिवार में वृद्धों की उपयोगिता के विषय में प्रसिद्ध साहित्यकार सच्चिदानंद सिन्हा जी कहते हैं- "पारंपरिक समाजों में जहां परिवार बड़ा होता है। बच्चों और उनकी माताओं की देखभाल के लिए दादा- दादी, चाचा-चाची, नाना-नानी आदि का एक बड़ा समूह होता है, इसलिए परिवार का बड़ा होना कोई समस्या नहीं पैदा करता।"(6)

'वापसी' (उषा प्रियंवदा) कहानी में चित्रित वृद्ध विमर्श-

यह कहानी गजाधर बाबू नामक एक केंद्रीय पात्र पर आधारित है जो सेवानिवृत्त हो चुके हैं और आगे का जीवन सुखपूर्वक जीना चाहते हैं लेकिन कुछ समय के बाद घर में सभी को उनकी उपस्थिति खटकने लगती है। वे अपने ही घर में पराया सा अनुभव करते हैं और अंतत: फिर से नई नौकरी की तलाश में निकल पड़ते हैं। लेखिका ने केवल एक इसी गजाधर का जीवन चित्र ही नहीं खींचा है अपितु ऐसे कईयों गजाधरों का जीवन वृत्त दिखाने का प्रयास किया है जो हमारे इस समाज में पड़े हुए अपना जीवन घुटन में बिता रहे हैं।

'सुख' (काशीनाथ सिंह) कहानी में चित्रित वृद्ध विमर्श-

काशीनाथ सिंह जी की भाषा के विषय में बच्चन सिंह जी का कथन है- " काशीनाथ सिंह की भाषा ऊपर से सपाट पर भीतर से अर्थवान है। अपने विनोदपूर्ण व्यंग्य के कारण वह कहानी के माहौल को जिंदादिल और संकेतों को धारदार बना देती है। वे कहानी को अस्वीकार की ओर ले जाने की दिशा में प्रयत्नशील हैं।"(7)'सुख' नामक कहानी काशीनाथ सिंह जी की एक प्रसिद्ध कहानी है। इस कहानी का कथानक भी 'वापसी' कहानी से काफी मिलती जुलती है। इस कहानी के प्रमुख पात्र भोला बाबू हैं जो नौकरी से रिटायर हो चुके हैं। सेवानिवृत्त होने के बाद घर में तो कुछ दिन उनका सम्मान होता है लेकिन बाद में घर वालों को वे खटकने लगते हैं। उन्हें अपने परिवार, गांव व बाजार के लोग अपने में ही व्यस्त दिखाई देते हैं। कोई उनकी तरफ ध्यान नहीं देता। उनकी किसी को कोई परवाह नहीं है । अंत में वह निराश होकर कहते हैं- " देखो, कहने को यह बीवी है। यह बेटा है। यह बेटी है । यह मकान है। यह जायदाद है। ये दोस्त हैं। ये नातेदार हैं। लेकिन सच पूछो तो कोई किसी का नहीं।"(8)

इस वक्तव्य के माध्यम से लेखक ने उनकी चिंताओं को माध्यम बनाकर वर्तमान समाज का मानो सजीव चित्र उकेरा है।

'चार दरवेश' (हृदयेश) उपन्यास में चित्रित वृद्ध विमर्श

'चार दरवेश' उपन्यास के लेखक हृदयेश जी हैं। इस उपन्यास में चार वृद्धों की कहानी है जो शाम को एक नियत समयावधि में एक ही स्थान पर मिलते हैं। इसके लिए लेखक ने बहुत ही स्पष्ट शब्दों में लिखा है- "शाम के इस वक्त घर के अंदर बने रहने वाले वृद्ध जो परिवार के लिए बेसफ्र हो चुके होते हैं या जिन्होंने अपने को बेमसफ्र का मान लिया होता है, घर से बाहर निकल पड़ते हैं, अंदर जाग उठी बेचैनी,ऊब, छटपटाहट से थोड़ी राहत पाने के लिए। ठौर-ठिकाना उनका बन चुका होता है। सुविधा, सहूलियत से कहीं अधिक परिस्थितियां, लाचारी, विकल्पहीनता ठौर-ठिकाने को तय करती हैं।"(9) उपरोक्त कृतियों के अलावा आधुनिक हिन्दी साहित्य ऐसी अनेक कृतियों से भरा पड़ा है जिनमें वृद्ध विमर्श के अनेक उदाहरण हैं। जैसे- अपने-अपने अजनबी(अज्ञेय), समय-सरगम(कृष्णा सोबती), दौड़ (ममता कालिया),रेहन पर रग्घू (काशीनाथ सिंह), अंतिम अरण्य(निर्मल वर्मा), रिश्तों की आंच,वसीयत और नियतिचक्र (डॉ० सूरज सिंह नेगी),

जीने की राह (विजयशंकर राही),गिलीगडु(चित्रा मुद्गल),उस चिड़िया का नाम (पंकज बिष्ट) आदि। रिटायर्ड अभिभावक, बुजुर्ग और वृद्ध शिक्षकों को संबोधित करते हुए सुप्रसिद्ध साहित्यकार खलील जिब्रान जी कहते हैं-

तुम उन्हें अपना अनुराग दे सकते हो, विचार नहीं
क्योंकि उनके पास उनके अपने विचार हैं
तुम उनकी काया को आवास दे सकते हो,आत्मा को नहीं
क्योंकि उनकी आत्माएं भविष्य के भवन में वास करती हैं
जहां तुम पहुंच नहीं सकते, स्वप्न में भी नहीं
तुम उनकी तरह होने का प्रयास कर सकते हो
किंतु उनको अपने जैसा बनाने का प्रयत्न मत करना
क्योंकि जीवन पीछे नहीं लौटता
न ही अतीत के साथ ठहरता है।

वृद्धावस्था जीवन का वह पड़ाव है जहां व्यक्ति को आदर, सम्मान, दया एवं प्रेम की आवश्यकता होती है किंतु आधुनिक परिवेश में औद्योगिकरण के बढ़ते प्रभाव के कारण एकाकी परिवारों में वृद्धि हुई है, जिसके कारण समाज के ये मुख्य स्तंभ मानो उखड़ से गए हैं,जो मानवता के लिए खतरा है। जो व्यक्ति अपने पूरे जीवन जिम्मेदारियों का बोझ ढोता हुआ परिवार को उच्च शिखर पर ले जाने को उद्यत रहा वही आज वृद्धावस्था में निम्न स्तर का जीवन जीने को बाध्य है। हमें अपनी सांस्कृतिक विरासत को संभाले रखना होगा क्योंकि-

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम् ॥(10)

-मनुस्मृति 2/121

*****

संदर्भ-ग्रन्थ:-

1. पंच परमेश्वर (मुंशी प्रेमचंद), मानसरोवर भाग-7
2. पंच परमेश्वर (मुंशी प्रेमचंद), मानसरोवर भाग-7
3. बूढ़ी काकी (मुंशी प्रेमचंद), मानसरोवर भाग-8
4. बेटों वाली विधवा (कहानी) मुंशी प्रेमचंद, मानसरोवर भाग-1
5. भीष्म साहनी, प्रतिनिधि कहानियां, राजकमल पेपरबैक्स, 15 वां संस्करण, पृष्ठ-48
6. भूमंडलीकरण की चुनौतियां (सच्चिदानंद सिन्हा), वाणी प्रकाशन नई दिल्ली-2007
7. आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास (बच्चन सिंह) लोकभारती प्रकाशन,संशोधित संस्करण 2007, पृष्ठ-431
8. मेरी प्रिय कहानियां (काशीनाथ सिंह), राजपाल प्रकाशन, पृष्ठ-45
9. चार दरवेश (उपन्यास) हृदयेश, पृष्ठ-7
10. मनुस्मृति : प्रकाश भाषा-टीका-संहिता (2002) श्री गणेश दत्त पाठक,श्री ठाकुर प्रसाद पुस्तक भंडार वाराणसी,पृष्ठ-68

आधुनिक हिन्दी काव्य और उसका विकास

अनिल कुमार मेरावी
शोधार्थी हिन्दी विभाग
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय-रीवा

आधुनिक युग में हिन्दी का अर्थ बहुत विस्तृत हो गया। आजादी के बाद भारतीय समाज और संस्कृति में अमूलचूल परिवर्तन हुआ। इस परिवर्तन का श्रेय आधुनिक युग के जनक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को जाता है। जिन्होंने हिन्दी के लिए काशी नागरी प्रचारणी संस्था की नीव डाली तथा महात्मा गांधी द्वारा अहिन्दी भाषी राज्यों में इसके प्रचार प्रसार के लिए विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन किया गया। आधुनिक काल में हिन्दी इन सारे प्रभावों के फलस्वरूप जनमानस की भाषा बनी ही तथा कवियों ने इसे रचना के मुख्य केन्द्र में भी ला दिया। जहाँ हिन्दी के आधुनिक क्षेत्र में खड़ी हिन्दी को बल मिला वहीं दूसरी तरफ गद्य की रचनाएँ होने लगी। इस प्रकार के परिवर्तन आकस्मिक घटना नहीं थी। यह कालांतर से ही चला आ रहा था। यह कभी कभार आकस्मात् प्रतीत होने वाले युगीन दृष्टि और साहित्यिक बदलाव के परिणाम थे। ऐसी स्थिति में परिस्थितियों के बदलाव के कारण हिन्दी के प्रतिमान भी बदलने लगे। मुक्तिबोध ने इसका मूल्यांकन करते हुए कहा है कि ''कोई भी नया साहित्यिक आंदोलन उन विशेषगत परिस्थितियों में पैदा होता है। जिन्हें हम सामाजिक विकास की महत्वपूर्ण श्रृंखला कहते हैं। उन विशेषगत स्थितियों को हम पूर्व प्रवृत्तियों द्वारा ही समझ सकते हैं। आधुनिक हिन्दी कविता के विकास में दो बातें प्रमुख रूप से दिखाई पड़ती है, प्रथम तो मध्यकालीन जड़ता जो एकदम स्थिर हो चुकी थी, वह ऐतिहासिक प्रक्रिया के कारण पुनः गत्यात्मक हो गई। जहाँ पर मध्यकाल में 'कला और साहित्य' श्रृंगारिक योजनाओं से बंधा था वही आधुनिक हिन्दी कविता में इसके घाट टूट गए। आचार्य शुक्ल का कथन है कि-''विषयों की अनेकरूपता के साथ-साथ उसके विधान का ढंग भी बदल चला प्राचीन धारा में प्रबंध की जो प्रणाली चली थी उससे भिन्न प्रणाली का भी अनुशरण करना पड़ा। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने साहित्य के इतिहास में लिखा है कि ''जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ -साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। हिन्दी का अर्थ भी विभिन्न आंदोलनों के प्रभाव के कारण आधुनिक युग में बदल गया। जहाँ एक तरफ खड़ी बोली में गद्य की रचना होने लगी वहीं दूसरी तरफ भारतेन्दु युग तक अधिकतर कविताए ब्रजभाषा में ही लिखी गई। किन्तु उसकी प्रवृत्ति में परिवर्तन दिखाई देने लगा और धीरे-धीरे भारतेन्दु काल में ही कविता खड़ी बोली का रूप लेने लगी। हिन्दी साहित्य आधुनिक काल में रुसी क्रांति से प्रभावित हुआ और माक्र्सवाद का बीज आधुनिक युग में ही दिखाई देने लगा। भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग के कवियों में धीरे-धीरे चिंतन प्रबुद्ध होता गया। मुक्तिबोध इस संदर्भ में कहते हैं कि कुछ कवियों की कुछ कविताओं को छोड़ इस परिवर्तन का आधार माक्र्सवादी चिंतन न होकर तत्कालीन युग पुरुषों सुधारकों और महात्माओं का सामाजिक आंदोलन था।इस प्रकार से आधुनिक हिन्दी का फलक व्यापक होता गया इस संदर्भ में सन् **1936** में प्रगतिवाद के स्वर स्पष्ट दिखाई देने लगे। जिसका दार्शनिक आधार समाजवाद तथा साम्यवाद था। अर्थात् जो हिन्दी रीतिकाल में घोर श्रृंगारिकता के अर्थ में बध गयी थीं वह आधुनिक युग में साम्यवाद के अर्थ में प्रस्तुत होने लगी जनवरी **1936** में एक जन प्रिय कवि ने यह उद्घोषणा कर दी कि जनजागरण होना चाहिए।आधुनिक हिन्दी कविता के अर्थ में ऐसे बदलाव स्त्री और दलित विमर्श को जन्म देते हैं और आज गद्य और पद्य दोनों सम्पूर्ण मूल्यों में हिन्दी के नवीन अर्थ को उद्घाटित कर रहे हैं। आज तक हिन्दी में जो बदलाव हुआ। विश्वम्भर उपाध्याय का कथन है-''दलित वर्गों के प्रति काव्य में सहानुभूति

प्रारम्भ से ही थी किन्तु स्वानुभूति का आभाव था।'आधुनिक हिन्दी कविता' जीवन की विविध धाराओं से मनुष्य के दुःख-सुख में पहली बार जुड़ी। आधुनिक शब्द में जो दूसरा अर्थ ध्वनित होता है वह लौकिक दृष्टिकोण है। जहाँ मध्यकाल में मनुष्य पारलौकिक दृष्टिकोण से जुड़ा था, वहीं आधुनिक काल आते-आते धर्म, दर्शन, राजनीतिक, साहित्य और अनेक प्रवृत्तियों से जुड़ गया। जहाँ एक तरफ ईसाई मिशनिरियों की स्थापना हुई वहीं दूसरी तरफ आधुनिक युग में पर्यावरण और व्यक्तिगत मनोआकांक्षाओं को प्राथमिकता दी गई। साथ ही साथ आधुनिक युग में जो सुख-सुविधाए अंग्रेजी शिक्षा, डाक की स्थापना, रेल तार का विकास हुआ उससे व्यक्ति की सोच में बदलाव हुआ तथा मनुष्य-मनुष्य के बीच सहानुभूति की भावना पनपी, जिससे नए मूल्यों की काव्यगत प्रतिष्ठा आधुनिक हिन्दी कविता की पृष्ठभूमि में सर्वाधिक पूर्ण सिद्ध हुई।आधुनिक हिन्दी कविता की पृष्ठभूमि को राजनीतिक स्थिति, नया आर्थिक ढाँचा, शिक्षा का नया पश्चिमीकरण यातायात के साधन, धार्मिक और सुधार आंदोलन, पाश्चात्य आधुनिक विमर्श, तथा दरेदा को विखण्डनवाद ने प्रभावित किया। जिससे समाज में वही ज्ञान सार्थक हो पाया। जिसे मनुष्य अपने मष्तिष्क में संचित कर सकता है। आधुनिक कविता की पृष्ठभूमि इन तमाम साधनों से निकलकर आई। कारक प्रभाव के कारण हिन्दी कविता अत्यधिक प्रक्रियावादी प्रवृत्तियों को 'फासिज्य' के विरूद्ध जनता को जाग्रत करने लगी। क्योंकि पूर्वी सामंतों पर जापानी युद्धखोर बम बरसाने लगे ऐसे हालात में आधुनिक हिन्दी कविता के केन्द्र में फासिज्म विरोधी नारा लगाया जाना स्वाभाविक था। आधुनिक हिन्दी कविता की पृष्ठभूमि में इसका भी गहरा प्रभाव पड़ा उसके स्वरूप को सामाजिक यथार्थ के प्रति कवि मानस को सचेत कर रहा था।

इस प्रकार माक्र्सवादी चिंतन आधुनिक हिन्दी कविता की पृष्ठभूमि को प्रभावित किया। समाज में रहकर समाज का चित्रण ही कवि एवं कलाकार करता है। कोई भी कवि जनता से जुड़ा होता है। चाहे जनता ऊँचे उठ रही हो चाहे उसका स्तर नीचे गिर रहा हो। कवि या रचनाकार को चाहिए कि वह जनता की गिरावट का वर्णन कर सके तभी वह बड़ा कवि कहलाएगा। आधुनिक भारत में आधुनिक कविता की पृष्ठभूमि को जनवादी आंदोलन रवीन्द्रनाथ ठाकुर का 'नवमानवतावाद' तथा उनकी कविता एवं काव्य संग्रह 'गीतांजलि' ने बहुत प्रभावित किया। बंगाल में जो नवजागरण चला उसी नवजागरण के केन्द्र में छायावादी कविता थी। आधुनिक हिन्दी कविता में भाषा की ही दृष्टि से बदलाव नहीं हुआ बल्कि शैली की दृष्टि से भी बदलाव हुआ।आधुनिक हिन्दी कविता का विकास भारतेन्दु के जन्म **1850** से ही माना जा सकता है। किन्तु मोटे तौर पर **1857** में हुए प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में आधुनिक हिन्दी के विकास का प्रथम चरण था। आचार्य शुक्ल खुद कहते हैं कि-''भारतेन्दु हरिश्चन्द्र अपने युग के प्रतिनिधि कवि थे। भारतेन्दु ने हिन्दी को नए-नए विषयों की ओर उन्मुख किया।

अतः निष्कर्ष के तौर पर हम कह सकते हैं कि आधुनिक हिन्दी अर्थ की दृष्टि से बहुत समृद्ध हुई जहाँ न्याय के पक्ष और लोकमंगल की भावना हिन्दी के केन्द्र में हो गऐ। वहीं नवजागरण में हिन्दी पत्रकारिता के अर्थ में तथा प्रिंट और मीडिया के व्यापक अर्थ में समाज की चेतना को प्रबुद्ध करती आई है। मानव द्वारा मानव के शोषण से मुक्ति का आह्वन मजदूरों किसानों में सहानुभूति की भावना आधुनिक हिन्दी की बहुत बड़ी देन है। जहाँ पर जनवादी परम्परा के पक्ष में हिन्दी सजग रूप में खड़ी थी वही इसका कथ्य निम्नवर्गीय तपके से भी जुड़ा था। आज आधुनिक हिन्दी जनवादी यथार्थ और जनजीवन के बिम्ब और प्रतीकों को लेकर व्यंग्यात्मक लहजे में खड़ी है। समग्र रूप से देखा जाए तो आधुनिक हिन्दी का अर्थ सम्पूर्ण जनमानस की मानसिक राजनैतिक धार्मिक सांस्कृतिक सामाजिक पहलुओं से फलीभूत होते हुए समाज के प्रति सजग हाशिए पर खड़े व्यक्ति की आवाज बनकर आई है। जिसे समग्र रूप से जनवादी कहा जा सकता है। जहाँ सच का गला घोटा जा रहा है उसी सच के पक्ष में वह रिरियाती हुई सच को बचाती हुई मुहीम के रूप में आधुनिक हिन्दी कविता एक नए अर्थ में फलीभूत हो रही है। यह आधुनिक कविता धूमिलके 'पटकथा' में स्पष्टतः परिलक्षित होती है। धरातल से क्षितिज तक समुद्र से पहाड़ तक आधुनिक हिन्दी जन सामान्य को एक नई अर्थ और दिशा दे रही हैं और समाज में फैली विकृतियों पर प्रहार कर रही है। आधुनिक हिन्दी कविता कृष्ण और गोपियों के प्रेम से शुरू हुई और छल तथा झूठ का प्रचार कर रहे छद्मी लोगों से जन सामान्य को सचेत करती हुई आगे बढ़ रही है। आधुनिक अर्थ में हिन्दी अपने-अपने वर्ग के शोषण की अभिव्यक्ति और जीवन के यथार्थ को केन्द्र में रखती हुई यथार्थवादी स्वरूप की ओर अग्रसर हुई। वहीं शोषण के खिलाफ एक सशक्त रूप में सामने आई। जहाँ दबे कुचले शोषित दलित वर्गों ने हिन्दी भाषा में अपनी आवाज को बुलंद किया वहीं दूसरी तरफ स्त्रीयों ने अपने अधिकारों की मांग अपनी रचनाशीलता से की यह महज संयोग ही नहीं था वह हिन्दी भाषा का ही चमत्कार था।

आचार्य शुक्ल ने प्राचीन और नवीन दो धाराओं की बात की और बहुत कमजोर रहने पर भी नवीन धारा को महत्व दिया ज्ञान के इस परिवर्तन ने विश्व के चित्र को बदल दिया। इसमें भारतीय जनमानस भी अछूता न रह गया जिन कारोबारों में उत्पादन करने के लिए शारीरिक श्रम करने वाले मजदूर थे वहाँ तकनीशियम संलग्न हो गए सस्ते दाम पर बाजार में विदेशी सामान मिलने लगे जिससे रोजगार घट गया यह प्रक्रिया भी नए आधुनिक हिन्दी विकास में सहायक हुई विश्व व्यापार संगठन की गतिविधियों ने यह सिद्ध करना प्रारम्भ कर दिया इसलिए डॉ. नगेन्द्र का कथन-''ज्ञान वास्तविक स्वाभाविक या तटस्त नहीं है अपितु सत्ता संघर्ष की उपज है।

आधुनिक कविता भी मानवीय मूल्यों में बदलाव के साथ अपने ढाचे में बदलाव कर रही थी। प्रगतिशील लेखक का तीसरा अधिवेशन दिल्ली में हुआ जिसमें डॉ अलीम इस बात का जोर दे रहे थे कि परचेव प्रचारात्मक गीत फासिज्म के विरोध में लिखे जाए। चूँकि **22** जून **1941** को फासिज्म शक्तियों ने सोवियत रूस पर हमला कर दिया इससे भी आधुनिक हिन्दी का जन्म हुआ। आधुनिक हिन्दी की पृष्ठभूमि बनाने में कुछ महत्वपूर्ण कारकों का योगदान था जो निम्न है।

निष्कर्षतः-

यह सिद्ध होता है कि हिन्दी कविता का विकास आधुनिकता के अर्थ से लेकर भूखी पीढ़ी के सोपान को पार कर चुका है। यह एक लंबी विकास प्रक्रिया है जिसमें सापेक्ष विशेषताए है। इतना ही नहीं कविता के विकास क्रम की प्रक्रिया में समय के साथ-साथ बदलाव हुआ तथा उसके मायने अलग-अलग होते गए आज की कविता वादों से मुक्त कविता है। जो समाज की स्थितियों को उजागर करती हैं, कवि और कविता समय सापेक्ष होते हैं और सत्य के प्रति खड़े होना और असत्य का मुकाबला करना कवि का परम् उद्देश्य होता है। हिन्दी कविता का विकास शुरू से लेकर आज तक इसी पर आधारित है।

*****

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1- मुक्तिबोध रचनावली भाग-**3** पृष्ठ **318**
2- हिन्दी साहित्य का इतिहास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ **389**
3- हिन्दी साहित्य का इतिहास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ **01**
4- आधुनिक हिन्दी कविता सिद्धांत समीक्षा विश्वम्भर उपाध्याय पृष्ठ **43**
5- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ **403**
6- हिन्दी साहित्य का इतिहास डॉ. नगेन्द्र पृष्ठ **430**

माधव कौशिक की गजलों में काव्य भाषा

हरी राम
शोधार्थी
उच्च शिक्षा और शोध संस्थान
दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, धारवाड़ , कर्नाटक

सारांश - माधव कौशिक जी ने अपने गजल काव्य में इसे बखूबी निभाया है । माधव कौशिक जी की रचनाओं में आम बोलचाल की भाषा ज्यादा देखने को मिलती हैं । लेकिन रचनाकार अपनी रचना में लय, गति, छंद , अलंकार, बिम्ब इत्यादि का अपनी रचना में प्रयोग करके उसमें पाठक को मंत्र मुक्त बना देता है। माधव कौशिक जी के काव्य में साफ-सुथरी भाषा का प्रयोग देखने में मिलता है । शब्दों को वह सीधे तौर पर पाठक के मन में पहुंचाने की भरसक कोशिश करते हैं, जिससे पाठक को इधर उधर भटकना नहीं पड़ता है। काव्य विचारों के द्वारा ही संभव हो सकता है बिना आत्मा के शरीर और बिना शरीर के आत्मा उसी प्रकार की है जिस प्रकार काव्य भाषा के बिना रचित रचना होती है वो रचना नीरस वह उबाऊ पन बन जाती है जिससे पाठक को पढ़ने में किसी प्रकार की आनंद की अनुभूति नहीं होती है। इसी प्रकार काव्य में यथासंभव काव्य भाषा का प्रयोग अत्यंत आवश्यक हो जाता है जिससे पढ़ने वाले को आनंद प्राप्त होता है।

प्रस्तावना- रचनाकार के मन में अनेक प्रकार के भाव उठते हैं उन भावों को रचनाकार अपनी रचना में बहुत प्रयोग करता है। गज़ल अरबी और फारसी की काव्य रचना रही है लेकिन उर्दू के रास्ते से हिंदी गज़लों का सफर तय किया है। गज़लों में सर्वोपरि नामे दुष्यंत कुमार का आता है। दुष्यंत जी ने गजलों को एक नया ही मोड़ दिया है और इस परंपरा को माधव कौशिक जी ने बखूबी निभाने का प्रयास किया है। **ज्ञानप्रकाश विवेक** का कथन है कि- "माधव कौशिक की गजलों में गांव की स्मृतियां हैं महानगरीय, संत्रास, दुख ,हताशा, प्रेम के क्षण, लालसाएं जीवन की बेतरतीठिया, जीवन की जटिलताएं ऊब, संबंधों का विचलन बहुत सारे तत्व है ऐसा प्रतीत होता है जैसे गजलकार जीवन के रेगिस्तान में संवेदना का पानी तलाश कर रहा है"। नाटक, कहानी, उपन्यास और एकांकी ऐसे अनेक काव्य रचना है जिनको पूरा पढ़ने के बाद ही हम उस रचना के बारे में कुछ आत्म ज्ञान की अनुभूति प्राप्त करते हैं लेकिन गजल एक ऐसी रचना है जिससे मात्र पांच या सात लाइनों के अंदर ही समेटा जाता है और उस पांच या सात लाइनों में ही गजल को अपने शब्दों के माध्यम से पाठक के मन में पहुंचाने की कोशिश करते हैं। माधव कौशिक जी की रचनाओं में सीधा संवाद पाठक हो छू लेने वाला मिलता है। पाठक को मंत्र मुक्त व आनंद की अनुभूति के लिए माधव कौशिक जी ने अपनी रचना में सीधा संवाद दिल को छू लेने वाले गहराइयों से विचार करते हुए पाठक के हर जिज्ञासा को शांत करते हुए अपनी लय में आगे बढ़ती हुई काव्य रचना रची जाती है जिससे पाठक का मन पढ़ने में ललायित हमेशा रहता है वैसे तो माधव कौशिक जी ने खंडकाव्य, कहानी, बाल साहित्य ,अनुवाद समीक्षक, गजल आदि अनेक रचनाएं लिखी है। इन सब के बावजूद भी माधव कौशिक जी अपने आप को एक गज़ल कार ही मानते हैं। माधव कौशिक जी के प्रसिद्ध 16 गज़ल संग्रह है

"मैंने साहित्य की लगभग सभी विधाओं तथा कविता के सभी रूपों में स्वयं को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। कविता, गीत ,नवगीत से लेकर खंड काव्य की रचना करने के बावजूद गजल मेरी मनपसंद काव्य विधा है तथा में स्वयं को मूलत: गजल कार ही मानता हूं"

काव्य-भाषा- माधव कौशिक जी ने अपनी गजलों में अलंकार, मुहावरे, बिंब, आम बोल-चाल की भाषा इत्यादि का वर्णन काव्य में मिलता है। **डॉ. रामकुमार** का कथन है- "भारतेंदु और उनके समकालीन कवियों ने हिंदी भाषा को उर्दू छंदों से परिपूर्ण करने के उद्देश्य से गज़ल, रेख़्ता, एवं मुकरियों का प्रयास पूर्वक अपनाया।"

भाषा में विचारों का आदान-प्रदान से मनुष्य की पहचान होती है उसी प्रकार काव्य में भाषा का प्रयोग करने से पाठक के मन में एक जिज्ञासा उत्पन्न होती है और वह उस काव्य को सुनने के लिए या पढ़ने के लिए हमेशा तत्पर रहता है।

अलंकार- साहित्य की दुनिया में अलंकारों का अपना ही अलग महत्व है। जिस साहित्य काव्य में अलंकारों का प्रयोग नहीं है। वह रचना नीरस या बोझिल बन जाती है। साहित्यकार अपनी रचना में जब अलंकारों का प्रयोग करता है तो वह रचना पाठक के मन को के छू लेने वाली स्थिति पैदा कर देती है, जिससे काव्य रचना अपने चरमोत्कर्ष स्थान पर पहुंच जाती है इसलिए माधव कौशिक जी ने अपने काव्य में समय -समय पर अलंकारों का प्रयोग किया है। **डॉ. आशा** - "गुप्ता काव्य के अभ्यन्तर एवं बाह्य पक्ष को जो तत्व वास्तव में रमणीय और चमत्कार प्रदान करता है ,वह है अलंकार।"

अनुप्रास अलंकार- वर्णों की आवर्ती को अनुप्रास अलंकार कहते हैं जहां एक या एक से अधिक वर्णों की क्रम बार-बार आवृति हो वहां पर अनुप्रास अलंकार होता है

दरवाजे, दीवार खिड़कियां किसकी हैं।सन्नाटे के पार सिसकियां किसकी हैं
सही सलामत है बाहर से आईना अंदर से लेकिन टूटा है कुछ ना कुछ।

रूपक अलंकार- जब उपमेय का उपमान में अभेद रूप से आरोप किया जाता है तो वहां रूपक अलंकार होता है।

बिना वजह कस्तूरी मृग से ठोकर खाई दर-दर लोग।

उपमा अलंकार-जहां एक वस्तु की दूसरी वस्तु के साथ गुण, धर्म अथवा शब्द रूप के कारण समानता दिखाई जाती है तो उपमा अलंकार होता है।

जेहन में पसरा हुआ है एक रेगिस्तान सा।
रंगोली सा प्यार सजाकर आंगन में

अतिश्योक्ति अलंकार- जहां किसी वस्तु को अधिक बढ़ा चढ़ाकर वर्णन किया जाता है वहां पर अतिश्योक्ति अलंकार होता है।

तूने पत्थर हवा में क्या फैंका /आईना टूट कर गिरा मुझ में ।
चलते चलते अगर पांव के छाले मोती बन जाए।

मुहावरे- माधव कौशिक जी ने अपनी गजलों को सजीव व पाठक के मन में पहुंचाने के लिए लच्छेदार मुहावरों का सुंदर ढंग से प्रयोग किया है जिसे पाठक को उनकी रचना को पढ़ने में बड़े ही मनमोहक ढंग में आनंद लेता हुआ अपने चरमोत्कर्ष की अनुभूति प्रदान करता है।

अब ये कैसी आफत आयी है घर पर
जैसे ख़ून सवार हो गया है हर सर पर।
शहर तो आज भी लगता है खून का प्यासा

बोलचाल की भाषा- माधव कौशिक जी सीधी बात करते हैं और श्रोताओं को अपनी बात सोचने पर मजबूर कर देते हैं क्योंकि उनकी रचनाओं में इधर उधर की बातें नहीं और ना ही घुमावदार शब्दों का प्रयोग बिल्कुल भी मिलता इसलिए पाठक को सीधी बात या सीधा संवाद उनकी रचनाओं में देखने को मिलता है।

गांव से निकले कि सब फंसकर शहर में रह गए
शहर में आती तो मर कर लौटती
बच गई इंसानियत देहात में।

बिम्ब- एक प्रकार का मन रूपी चित्र है जिससे रचनाकार अपनी बाहरी इंद्रियों के द्वारा उसे अपनी रचना के माध्यम से या फिर शब्दों के माध्यम से कल्पना रूपी से भावों के माध्यम से एक चित्र का रूप देने में कोशिश करता है।

1.

दृश्य बिम्ब-

जहां कवि किसी वस्तु के रूप ,आकार, रंग आदि का वर्णन अपनी मानसिक बुद्धि या विवेक के साथ हमारी आंखों के सामने एक ऐसा बिम्ब प्रस्तुत करता है। जैसे दृश्य अभी हमारे सामने बोल पड़ेंगे या फिर वह हमसे बातें करेंगे।

ऊंचे शीश महल के आगे खड़े खड़े सब सोच रहे हैं।

****

मकानों की कतारों पर कतारें
मगर शहरों में बेघर कम नहीं था।

****

राजनीति बिम्ब-

कुछ नहीं टूटता व्यवस्था का
आदमी ही बिखर के रहता है।

****

सियासत में समझदारी गलत है।

सामाजिक बिम्ब-

बहुत संभल कर रहना होगा मजहब के मंसूबों से।

****

मजहब का खूनी मंजर है इतना भी मालूम नहीं
किसके हाथों में खंजर है इतना भी मालूम नहीं।

व्यंग्य- माधव कौशिक जी अपनी बात को सीधी और स्पष्ट बात करते हैं जब उनको लगता है कि सीधी - सीधी बात से काम नहीं चलता तो वह अपने काव्य में व्यंग्य के माध्यम से भी पाठकों के मन में तीखे व्यंग्य को लुभाने का और मन मस्तिष्क से पाठक को सोचने पर मजबूर कर देता है।

क्यों शोर मचाते हो बेकार में पहले से
जब झूठ ही छपता है अखबार में पहले से।

निष्कर्ष-

माधव कौशिक जी ने अपनी गजलों में अलंकार मुहावरे, बिम्ब, व्यंग्य' बोलचाल की भाषा आदि का बहुत ही मनोरम रूप से वर्णन उनकी रचनाओं में मिलता है । माधव कौशिक जी के काव्य में मानवता के अनेक तत्व मिलते हैं वे मानवता के साथ जुड़कर उनकी हर पहलू को समझाने की कोशिश करते हैं और उनके काव्य रचना में स्पष्ट रूप से देखने को मिल ही जाती है। जिससे पाठक को पढ़ने के बाद एक नया उमंग और अनुभूति की प्राप्ति होती है जिससे पाठक को जमीनी स्तर के हर पहलू को समझने में उनको सहायता मिलती है। मानवता के साथ जमीनी हकीकत से जुड़कर मानव के हर पहलू को सीधा संवाद स्पष्ट रूप से बताने में एक सफल प्रयास करते रहते हैं।

****

संदर्भ-सूची:-

1. माधव कौशिक, नयी उम्मीद की दुनिया, वाणी प्रकाशन, 2019
2. माधव कौशिक, सारे सपने बागी हैं, वाणी प्रकाशन, 2014
3. माधव कौशिक, अंगारों पर नंगे पांव, पेंगुइन बुक्स, 2007
4. डॉ. सुरेंद्र कुमार, माधव कौशिक का रचना संसार, ज्ञानोदय, 2007
5. हरि गंधा, जनवरी-फरवरी 2001,पृ.10
6. ज्ञानप्रकाश विवेक, हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा।
7. डॉ. आशा गुप्ता, खड़ी बोली काव्य में अभिव्यंजना पृ. 93
8. डॉ. रामकुमार सिंह, आधुनिक हिंदी काव्य भाषा पृ. 259

तेलुगू भाषा आविर्भाव ,विकास और संस्कृति

डॉ.आर.एन.शीला
विभागाध्यक्ष -हिंदी
सेंट थॉमस कला और विज्ञान विश्वविद्यालय, कोयनम्बेडू, चेन्नई

प्रस्तावना : मानव का आविर्भाव लगभग बीस लाख वर्षों के पहले हुआ था | पहले पाषाण युग मे मानव जंतुओं से मिलझुल कर मृग के जैसे रहा था ,बाद मे ही परिवर्तित होकर बुद्दिजीवी बनगया | तदुपरंत हजारों वर्षों के बाद ही भाषा का उत्पन्न हुआ |आज दुनिया मे लगभग पाँच हजार से ज्यादा ही भाषाए है| अब जात्याश्रित वर्गीकरण के अनुसार ये सारी भाषाओं को दस भाषा कुटुंब का पुनः निर्माण किया है |इसमे चार प्रमुख कुटुंब भारत देश मे व्यवहारित है |वो है ....

1.इंडो यूरोपियन भाषा कुटुंब
2.सीनोतीबेटन भाषा कुटुंब
3.आस्ट्रिक या मलयों पोलिनशिया भाषा कुटुंब
4.द्रविड़ भाषा कुटुंब

पर्याय शब्द :तेलुगू जाति सूचक पर्याय पदों मे जो मुख्य है "आंध्रम ,तेनुगु, तेलुगू ,आंध्र शब्द जो जाति वाचक शब्द हम ई.स.पू5 व शताब्दी मे ऐतरेय ब्राहमण काल से ही देख सकते है |"1 लेकिन तेनुगु ,तेलुगू शब्दो हम आदि कवि नन्नया काल से ही देख सकते है | व्युत्पत्ति के विषय मे तेनुगु, तेलुगू शब्दों के संभन्धित कई विवाद है | लेकिन आधुनिक भाषा की शास्त्रज्ञ की कथन है की तेनुगु का रूपांतर है तेलुगू |

आंध्र और तेलुगू जाति का विलीन : आंध्र और तेलुगू दोनों एकी कुटुंब है या नहीं ? ये प्रश्न मे अनेक वाद विवाद है | जिन लोगों को भाषा शास्त्र और तर्क शास्त्र का ज्ञान नहीं है उन्होने आदिकाल से ही आंध्र और तेलुगू दोनों एकी जाति कहते है ,लेकिन शास्त्र की दृष्टि से पहले आंध्र और तेलुगू दोनों भिन्न है तदुपरान्त दोनों विलीन होकर एकी कुटुंब बनाया है | ऐतरेय ब्राह्मण के आधार पर आंध्र के वासियो विश्वामित्र का शाप से आरी संघ से बहिष्कृत हो कर नर्मदा नदी प्रांत से लेकर तेलुगू भाषा व्यवहार के प्रांत आया है | ई.स.पूर्व 225 ई से ई.स.युग 225 तक तेलुगू भाषा व्यवहार राज्यों का पालन किया जो राजा है वो ही " आन्ध्रभृत्यु" या शातवाहन का राजाये है |शातवाहनों का पहेला राजधानी प्रस्तुत कृष्ण जिले श्रीकाकुलम बाद मे 'धान्यकटकम' वो ही प्रस्तुत गुंटूर जिले का "अमरावती" है |2

आंध्र के शातवाहनों की भाषा प्रकृतम है | लेकिन कुछ संदर्भो मे हम को मालूम पड़ता है की शातवाहन के बाद इक्ष्वाकुलु , शालंकायानुलु , विष्णुकुंडिनुलु, वैदाबुलु आदि ...राज किया है उन्होने प्राकृत और संस्कृत भाषा उपयोग किया है | लेकिन उन राजाओं ने तेलुगू व्यवहार प्रान्तों मे पालन किया है इसलिए अपनी शासनों मे प्राकृत, संस्कृत से भी तेलुगू भाषा का व्यक्ति का नाम, ग्रामों का नाम भी मिला है |3

तेलुगू जाती का नाम:तेलुगू जाती का आविर्भाव का विवरण हम चार वाक्यों मे कह सकते है |"आंध्र जाती का प्रस्तावन ई.स.पूर्व युग 5 व शताब्दी का ऐतरेय ब्राह्मण मे हुआ था , फिर भी तेनुगु पद से तेलुगू भाषा का प्रस्तावन नन्नया के बारात का रचना काल से ही देख सकते है | इसलिए हम कह सकते है की आंध्र जाती तेलुगू जाती के पहले से ही अति प्राचीन है ,लेकिन ये निर्णय अशश्तीय है " 4

तेलुगू भाषा की दशाएँ : शातवाहन के पूर्व तेलुगू भाषा ई.स.पू.युग 225 के पूर्व ई.स.पू225 से ई.स.युग 575 तक का काल ये संस्कृत प्राकृत शासनों मे मिला है ,ये ही तेलुगू का प्रथम शासन |ई.स. युग 575 से ई.स.युग 1100 ये ही प्राचीना तेलुगू शासन काल " प्राज्नन्नया युग " नाम से प्रसिद्ध है |ई.स.युग 101 से 1600तक का काव्य भाषा परिणाम युग 1 |ई. स.युग 1601 से 1900 तक काव्य भाषा परिणाम युग 2 |ई.स. युग 1901 से अब तक आधुनिक युग |तेलुगू भाषा मूल आधार प्राचीन द्रविड भाषा [प्रोटो द्रविडियन लैड्ग्वेज] ये द्रविड़ भाषा प्रभाव भारतीय संस्कृति मे अति प्राचीना ऋग्वेद मे हम देख सकते हैं |इस प्रभाव का फलस्वरूप संस्कृत मे उसी काल पर लगभग 200 पदों मिलता है | इसके उदाहरण टी.बरो ने व्यक्त किया है |

भाषा शास्त्रज्ञ और चारितरक आधार के द्वारा हम को ये ज्ञात हुआ है की " लगभग दस हजार वर्षों के पहले द्रविडा जाती लोग उत्तर भारत मे आर्यों के साथ सहजीवन किया है और सिंधु नागरिकता का संबन्धित मोहञ्जादारों ,हरप्पा संस्कृति भी द्रविड जाती का है कहकर आधुनिक शास्त्रज्ञ ने निर्णायित किया गया है"[5] .

आधुनिक तेलुगू साहित्य का प्रक्रियाएँ : आधुनिक तेलुगू साहित्य प्रक्रियाओं का मूलतः तीन साहित्यकारों का नाम उल्लेखनीय है. ओ ही कंदुकुरी वीरसलिंगम संघसन्स्करण केलिए ,गिडुगु रममूर्ती भाषा संस्कारण केलिए ,गुराजाड अप्पाराव साहित्य संस्कारण केलिए चरित्र मे अपने स्थान लिया है. 19व शताब्दी के उत्थरार्ध से आधुनिक साहित्य युग का आरंभ हुआ है.साहित्य मे विविध प्रक्रियाएँ संभव होने का कारण दो है ,ओ ही मनसिक प्रवृत्ति ,सांघिका आवश्यकता. लेकिन आधुनिक कल का एक विशेषता है की प्राचीना साहित्य को बचाना. इसलिए प्राचीन और आधुनिक दोनों प्रक्रियाएँ आधीनीक कवियों ने लिया है.

आधुनिक प्रक्रियाएँ: प्राचीना साहित्य मे प्रमुक प्रक्रिया है कविता प्रक्रिया.इस कविता प्रक्रिया के सामने कोई अन्य प्रक्रियाएं स्थिर हो न पाये आधुनिक काल मे इस कविता प्रक्रिया और भी विस्तृत बनगया है आधुनिक काल मे कविता महारानी की स्थान निभाई थी. इस काल मे कविता को दो रूपों मे विभाजित किया गया.एक है वस्तु परक या भावपरक रीतियाँ और रूप परक रीतियाँ .

वस्तु परक रीति : वस्तु को आधार लेकर रचित कविता है. कवि का मानसिक प्रवृत्ति और सांघिक आवश्यकता के आधार पर कवियों ने अपने कविता किया है.आधुनिक काल का कविता आनेक धारणों लिया है.

संघ संस्करण कविताएँ : आधुनिक काल को इस नाम रखने का कारण उस समय का भावाजाल ही प्रधान कारण है.राजाराममोहनराय से प्रभावित होकर कंदुकुरी वीरसलिंगम अपनी साहित्य मे विग्रहारधान ,बाल्यविवाह, आदि अंध विस्वाशों पर रचना किया है इसके बाद गुरजाड़ आपाराव ,भोगराजु नारायणमूर्ति ,जाशुवा ,कटुरी वेंकटेस्वरराव ,टुम्मल शीतारामम्रति आदि रचनाकर इस विधा को लिया है.

भक्ति कवित्व : प्राचीना कल से आई ये कवित्व आधुनिक काल मे भी स्थिर होकर अपनी स्थान को प्रकट किया है. इस काल के भाव कवियों ने अनेकनेक गीतों रचना किया है.करुणश्री, विस्वनाध सत्यनारायण ,रायप्रोल सुब्बाराव, दुव्वुरी रामिरेड्डी आदि प्रमुख है .

देशभक्ति कवित्व :अंग्रेजियों से बचाकर स्वतंत्र पाने केलिए आम जनता को प्रेरित करने केलिए ये कविता जन्म लिया है.ये देश भक्ति कवित आंध्र देश मे दो रूपों मे देख सकते है ,एक तो भारत देश का मुक्ति और दूसरा आंध्र राष्ट्र का मुक्ति को लेकर कविता किया है. गूरजाड़ आप्पाराव प्रेमुख है | संकारंबाड़ि सुंदराचारी का " माँ तेलुगू तलॅलिकी मल्ले पू दंड " बहुत प्रसंसनीय गेय है[6] .रायपरोलु सुब्बाराव , एटकुरी ,तूम्मल, गड़ियाराम वेंकटा शास्त्री आदि प्रमुख है .

भावा कवित्व: आधुनिक काल मे एक प्रमुख रीति ही ये भाव कवित्व ,लगभग 1910 से तीन शताब्दों का काल ये रेती तेलुगू कविता का साहित्य मे अपने स्थान निभाई.वेंकटा पार्वतीश कवि,क्रिष्ण शास्त्री ,किन्नेरशानी गीतों प्रमुख है.

अभ्युदय कविता: 1929से 1935 तक का काल इस जगत मे आर्धिक, सामाजिक, राजकीय परिस्थितियों बहुत संक्षोब मे था ,इसी समय बे रोजगारी, दारिद्या एक ओर था ,इसी समय मे जनित काव्य ही अभ्युदय काव्य | श्रीश्री इस कवियों मे प्रमुख है | श्रीश्री ,शिष्टा ,पट्टाभि नारायनबाबू , मुददु कृष्ण , पुरीपंडा अप्पलस्वामी आदि मुख्य है |

दिगँबरा कवित्व : इस रीति का कल 1965 से 1968 तक का काल है |नग्नमुनी, निखिलेसवार, चेरबंडराजू, महास्वप्न , ज्वालामुखी, भैरवय्या आदि प्रमुख है |

विप्लवा कवित्वम : "1970 मे कुछ कवियों ने विशाखापट्टनम मे विपलवा रचयिता सांघ का आयोजन किया है|" [7] नग्नमुनी, वारवररराव, राचकोंड विस्वनाध शास्त्री कोदवडगंटि कुटुंबराव आदि प्रमुख है |

स्त्री वाद कवित्व :1985 मे अनेक विदेशों मे फेमिनिस्ट उध्यम प्रारम्भ हुआ है| इसी प्रभाव से भारत देश ,आंध्रा मे पढे लिखे स्त्रीयों पर पड़ा | इस समय पर कुछ पत्रिकाएँ स्त्री केलिए लेखन कार्य शुरू किया पत्रिका मे कुछ पन्ने स्त्रीयों केलिए दिया गया है |इसमे स्त्रीयों अपने घर ,दफ्तर ,विध्यालयों और अपने वृत्तियों मे जो अस्मिताएँ हुई ओ विश्लेषण किया |ऐसी स्थिति मे स्त्रीवादियों ने एक कविता संकलन निकाला ओ ही नीलिमेघाल [8]जयप्रभा "वामनुडि मूडो पादम ,यसोधरा वागपेंदके ,इककड़ा कुरिसीना वर्षम एककड़ी मेघानिदी ," विमला "अडवि वुप्पोंगिना रात्रि, " पाटिबंडल रजनी "एर्र जाबिल्ल एरीना "सुबद्र देवी तेगिन प्रेवु " आदि कविता संपुटाएँ बहुत प्रसिद्ध है |रावु पल्ली सुनीता ,घंटशाला निर्मला ,सावत्रि ,ईश्वरी ,कुप्पिली पद्मा आदि रचनाकार प्रशिद्ध है |

दलिता कवित्वम : अनादी निम्न जातियों को इस समाज मे हीना स्थिति हे है |इन जातियोंकों भी मानुषी जैसे ढेखने की भावना से गुराजाड अप्पाराव ,उननवा लक्ष्मीनारायना ,जाशुवा आदि अपने रचनाओं मे विश्लेष किया |

अन्य : ऊपर दिये गए दोरनियाँ के अलावा और भी अनेक दोरणिया भी है | कोई नियमों को पालन न करके अनेक कवियों ने कविता किया है अजंता ,इस्माइल , सी. नारायनरेड्डी , गुन्टूर शेशेंद्र शर्मा ,यारलगाड्ड राघवेन्द्राव आदि प्रमुख है |

रूप दोरणाएँ :पद्य :आधुनिक कविता मे भाव दोरणाएँ के साथ रूप दोरणाएँ भी अनेक आए थे |प्राचीना काल से आए पद्या आधुनिक काल मे भी प्रचुलित है |विस्वनाथ सत्यनारायना इस मे प्रमुख है |गीत – गेय :प्रचीन काल मे कम से और आधुनिक काल मे व्यापक से प्रचुलित पददती है ए गीत का धारणा |गीत और गेय का रचना कारों मे सर्वोत्तम स्थान गुरजाड़ आप्पाराव का है |नीलगिरी गीत ,मुतयाल सरालु ,देशभक्ति, पुरनम्मा आदि प्रमुख रचनाएँ है |वचन कवित्व :पद्या के बाद गेय का स्थान स्थिर होने के समय वचन कविता आया है |इस कविता के पितामह कंदुरती आंजनेयुलु | श्री श्री ,नारायनबाबू ,आरुद्र इस कविता का कवियों है |मिनी कविता – हाइकु :आधुनिक कविता मे मिनी कविता को प्रमुख स्थान है |काव्य और धीर्घ कविताएं पड़ने केलिए पाठकों का समय नही होने के कारण पत्रिकाएँ मे स्थान की कारण हो, या स्थल पुरानों केलिए हो लेकिन मिनी कविता तेलुगू कविता धारणा मे प्रधान स्थान मिला |

नाटक :आधुनिक युग केआर साहित्य प्रक्रिया मे प्रमुक रूप नाटक का है |1860 मे कोराड रामचन्द्र शास्त्री से लिखत "मंजरी मधूकरीयम " तेलुगू का पहला नाटक है .|[9] आंद्र नाटक पितामहा रामकृष्णमाचार्युलु अनेक स्वतंत्र पौराणिक नाटकों लिखा है |नाटिका : नाटक का रीति को आम जनों ने स्वीकार नही किए इस समय ही नाटिका का धारण आया |नाटिका एकाँकी समानार्थक है |मुद्धुकृष्ण अनार्कली प्रमुख है |

नवल : आधुनिक काल मे इस युग का नाम भी हुआ है |इस काल का नवाला युग नाम से प्रचुलित हुआ है |वीरेशलिंगम 1878 मे विवेकवारधिनी मासपटरिकामे "राजशेकर चरित्र " दारावाहिक प्रचुरित किया है |कृष्ण पत्रिका , देशमाता, मनोरमा, आंध्र पत्रिका आदि पत्रिकाएँ नवल धारण का प्रमुख स्थान दिया है |

द्रविड़ भाषाओं का विभाजन :

वैदिक संस्कृति काल के पहले हुई मूल द्रविड़ भाषा मानदलीक रूप धारण लेकर लगभग ई.स. पू 5000 वर्षों के पहले तीन उपशाखाओं विभाजित हुआ है |

उत्तर द्रविड भाषोप कुटुंब
मध्य द्रविड़ भाषोप कुटुंब
दक्षिण द्रविड़ भाषोप कुटुंब

इसके बाद दक्षिण द्रविड़ भाषोप कुटुंब लगभग ई. स. पू 2000 से ई.स .युग 1500 मे दो उपशाखाओं मे विभाजित हुआ है | अब इस कुटुंब मे लगभग 30 भाषाएँ हैं.ये भाषाएँ पाकिस्तान, बेलूचिस्तान से लेकर भारत मे कन्याकुमारी तक फैलाई है.पहला दक्षिणा द्राविड भाषोप कुटुंब मे तमिल, कन्नड, तुलु, कोडुगु, तोद, कोत, इरुलु, एरुकल, आदि है .दूसरा कुटुंब मे तेलुगू, गोंडि, कोंड ,कुई, कुवि, पेंगो, मंड आदि है .

तेलुगू भाषा और अन्य भाषाओं का संपर्क :इस जगत मे कोई भाषा विकसित हुई है तो वो अन्य भाषाओं से संपर्क होने से ही होगा | अंतरजातीय

भाषा स्थान लिया गया अंग्रेजी भी तेलुगू भाषा से लेकर अनेक अन्य भाषओं का प्रभाव लेकर ही सम्पन्न भाषा बन गई |टेंट भाषा सुसंपन्न बनाने केलिए अन्य भाषा की पदों कों अपना कर लिया|साधारणतहा भाषा का प्रयोग "आदान प्रधान ,वैविध्य,भाषाभिवृद्धि विधान, भाषा की व्यवहार और आवस्यकथा ,अन्य भाषा का प्रियत्व ,अन्य संस्कृति का अनुकरण आदि पर आधारभूत है"[10] ए विधा सारी भाषाओं पर वर्तित है |

तेलुगू भाषा की वर्गीकरण :

1.मूल द्रविड़ भाषा से संक्रमित सजातीय पदजाल
2.सजातीय भाषा से संक्रमित सजातीय पदजाल
3.विजातीय भाषा से संक्रमित सजातीय पदजाल
4.विजातीय भाषा से संक्रमित विजातीय पदजाल
5.सजातीय भाषा से संक्रमित विजातीय पदजाल

तेलुगु जाती का संस्कृति और सम्प्रदायों :संस्कृति :"एक जाती को अभिवृद्धि के मार्ग में ले जानेवाली मार्ग को संस्कृति कहते हैं. "The transmission of knowledge, opinions, doctrines, customs, practices etc.. From generation, originally by word of mouth and by example-[11] Websters dictionaryमानव जाती आविर्भाव से लेकर आज तक संस्कृति आती ही हैं. संस्कृति का आचरण ही संप्रदाय कहते हैं. इसलिए ये दोनों पूरक हैं. दोनों का विभाजन नहीं होगा.संस्कृति और सभ्यता दोनों भिन्न हैं. सभ्यता मानव का बाहरी से और संस्कृति आतंरिक जीवन से सम्बंधित हैं संस्कृति और सम्प्रदायों का अध्ययन करना हैं तो पहले एक जाती का जीवन चरित्र अध्ययन करना हैं. एक जाती लोग का समय और ओ कैसे जिया हैं, कौनसी खेल खेला, कौनसी गाना गया, कौनसी चीजें उपयोग किया, उनका आचार व्यवहार इत्यादि अनेकानेक विषयों का आधार पर ही संस्कृति का ग्रहण करना आसान होगा. तेलुगु जाती का एक विशेषज्ञता हैं. संस्कृति बदलते ही रहता हैं. ऐसा ही तेलुगु संस्कृति में भी बदलाव आया हैं. लेकिन ये बदलाव चरित्र में नहीं देख पायेंगे. इसलिए संस्कृति में जों बदलाव आया हैं ओ हम पहचान नही कर पाएँगे. ऐसा ही भिन्न जाती, भिन्न भाषाएँ होने वाली भारत में प्रत्येक संस्कृति को स्तिर रखना मुश्किल हैं फिर भी तेलुगु जाती का संस्कृति अब भी वैभव से ही रहा हैंतेलुगु संस्कृति का सजीव दिखाने वाली विषयों हैं कि अपने कलाए. प्राचीन काल से राजाओं अस्तान उद्योगियों, संस्थानाधीसों, जमींदारों ललितकालाओं को विकसित किया हैं ओ ही तेलुगु संस्कृति का निदर्शन हैं.कुचीपूड़ी नृत्यसम्प्रदायों में, पत्थरो को शिल्प बनाने वाले शिल्पाकारों की नायपुण्य में, सालों गुजरने के बाद भी कोई नारंग बलने वाले चित्रों को खींचने वाले चित्रकारों में, देव देवताओं को भी प्रसन्न बनकर भुवि पर आह्वान करने वाले वग्गेयाकारों के कीर्तनों में, हर रसीकों का मन अहलाद किये कविता संपन्नों में तेलुगु जाती का संस्कृति दिखा कर गर्व से जीते हैं.ऋतुए :पूर्व काल में ही ऋतुओं का अध्ययन क़रके कौनसी कल में कौनसी भूखारें फैलाते हैं और कैसा इससे बचाना हैं ओ भी आमजनों को आसान से सीखने जैसे आचार ,संप्रदायों, पर्वो को निर्धारित किया और सारे लोगों को बचा कर इसके द्वारा आमजनों का आरोग्य परिरक्षण सूत्रों को बताया तेलुगु संस्कृति वर्णनातीत हैं.

प्रकृति :प्रकृति का पुजापाठ करना तेलुगु संस्कृति में एक अंग था. मनुष्य का आधार हैं प्रकृति. इसके अध्ययन, और परिरक्षण केलिए पेड़ों और जंतुजाल को पूजनीय बनाया. बरगद, नीम, तुलसी जैसे वृक्ष में हुए औशादीय गुणों को सीख कर पर्यावरण परिरक्षण करके अपने संतती को शुभकामनायें किये तेलुगु संस्कृति स्लगनीया हैं1. नट्टव मेल संप्रदाय,2. नाटय मेल संप्रदायस्त्रियो का नाटय नट्टव मेलम पुरुषोंका नृत्या नाटकों को नाटय मेलम कहते हैंनट्टव मेल विद्या कों कुछ लोगों ही आराधन किया हैं लेकिन नाटय मेल संप्रदाय कों संघ में रहे गरीब लोगों से लेकर अमीर वर्ग भी अभ्यासन क़रके यक्ष गान, नाटकों, भागवत मेल संप्रदायों प्रदर्शित किया हैं. यक्षगान, नाटक आमजनता का विनोद पूर्वक रहा हैं नावाजनार्दनम, भामाकलॉपम, गोल्लकाळापम आदि भागवत मेल सम्प्रदाय का हैं. इनका एक और नाम ही पारिजातलू 'कुचीपूड़ी भागवत संप्रदाय में पुरुष स्त्री के जैसे अलंकार किया हैं तो नव जानर्थन में स्त्री का पात्र स्त्री ही किया हैं. नावाजानार्थनम पूर्वी गोदावरी का प्रसिद्ध हैं यहाँ नौ जानर्थन मंदिरों हैं. यहाँ जनार्थनम का प्रधर्शन नियम के प्रकार होगा. कुचीपुड़ी भागवत का भामाकलापम नौ रात्रों क्रम से प्रदर्शित होकर दसवीं दिन दशमस्कन्दम प्रदर्शित होगा ऐसा ही नव जानर्थन पारिजातम भी प्रदर्शित हैंकुचीपूड़ी :आंध्र राष्ट्र का प्रसिद्ध नाटय हैं कुचीपूड़ी. ये नाम एक ग्राम का नाम हैं|16शताब्दी में गोलकोंडा का नवाब अबुलहुसेन के आस्थान में एक गंज नाटय किया था और राजा प्रसन्न होकर एक ग्राम को दान दिया हैं ऐसे ही ये नाटय ब्राह्मणों को सिखाया इस समय|इस काल में शुद्ध नाटय को लोगों को सिक्षा देने केलिए एकाग्रत से एक व्यायाम की साधना के जैसे ही अभ्यास किया हैं|

पेरिणी :हजारों वर्षों का चरित्र रहने वाले एक प्रमुख नाटय रीति हैं पेरिणी| ओरुगाल्लू का राजाओं गणपति देव, रुद्रमा देवी, प्रतापरूद्र काल में प्रमुख नाटय हैं पेरिणी| काकतीया राजा शिव भक्त थे| शिव देव नाटय प्रिय होने से उसके सामने तांडव क़रके सैनिकों को प्रेरित करने केलिए उपयोगित हैं|इसके बाद जानपद नाटय भी प्रचूलित हैं|हस्त कला संस्कृति :हस्त कला संस्कृति में आंध्र प्रसिद्ध हैं| प्रकृति, संस्कृति, संप्रदाय, पौराणिक गाधाएँ, चरित्रक विषयों को विवाराणत्मक वर्णन में हस्तकला कारों ने अद्वितीय थे| एक शाड़ी को माचीस में रखने केलिए अंतर्जतीया प्रसिद्ध बन गया हैं|लाख की गुड़िया :विशाखपटनम, पेंदुरती, में लाख के दाँत से गुड़िया बना कर बहुत प्रसिद्ध बनगया हैं|

कटपुतली :पूर्वी गोदावरी, का माधवपटनम, अनंतपुर जिले चाकारपल्ली, निम्मलकुंटा, गुंटूर जिले प्रांतो में कटपुतालियों का तैयारी केलिए प्रसिद्ध हैं| पौराणिक, चारित्रक अंशोको लेकर कटपुतली तैयार करके प्रदर्शन देते हैं रोतों में बिजली का लायट डाल कर पुरे रात ये प्रदर्शन होजाता हैं|निर्मल, कोंडपल्ली गुड़िया :एक तरह की पेड़ से बनाया गुड़िया केलिए अंतर्जातीया प्रमुख विशेषता हैं इस कोंडपल्ली गुड़ियों का|कलंकारी :चित्तूर जिले का श्री कालहस्ती में जुलाहों का एक विधा हैं. कृष्णा जिले का मछलीपटनम इसका प्रसिद्ध हैं|क्रीडा संस्कृति :तेलुगु संस्कृति का एक प्रमुख अंग हैं क्रीडा संस्कृति हैं|गोटी बिल्ला :इस खेल को हम गिल्लू डंडा या गुल्ली डंडा कहते हैं| ग्रामीण प्रांतो के बच्चे ये खेल बहुत आशक्ति से खेलेंगे| ये आज की क्रिकेट के जैसा हैं|2,3 इंच छड़ी का टुकड़ा को लेकर एक और चड़ी से मरेंगे ये चड़ी का टुकड़ा कितनी दूर पर गयी हैं उतनी अंक मिलेगा जब छड़ी का टुकड़ा को किसी ने आसमान से आने के समय किसी ने पकड़ा हैं तो जों मारने वाला खेल से विराम लेना हैं|बच्चालु :ये खेल आज की बिलियर्ड्स, स्नुकर्स, क्यारमस के जैसा हैं

निष्कर्ष: :तेलुगु भाषा का अविर्भाव में कुछ तो कुछ विवाद हैं फिर भी ओ द्रविड़ भाषा का कुटुंब पर ही गिनना उचित हैं. तेलुगु साहित्य में हम देखा हैं तो संघ संस्करण कवियों वीरशलिंगम, मंगापुड़ी वेंकट शर्मा, तुम्मल सीताराममूर्ति, आदि प्रसिद्ध हैं भक्ति कवियों में वेंकटपर्वतीश कवुलु, विस्वाथ सत्यनारायण, कृष्णशास्त्री, दुव्वुरी रामीरेड्डी आदि प्रमुख हैं. देश भक्ति कवियों में गरिमेल्ल सत्यनारायणा, पट्टपर्ती नारायनाचार्यलु, शांकरम्बाड़ी सुंडाराचारी आदि प्रमुख हैं|ऐसे ही स्त्री जानोद्धारण के कवियों में गुरजाड़ अप्पराउ,, अभ्युदय कवियों में श्री श्री आदि प्रमुख हैं|संस्कृति के बारे में आया हैं तो तेलुगु जाती स्त्रीयों का वेश धारण एयर पुरुषों का वस्त्र धारणा विदेशियों का भी मुग्ध करते हैं कहने का कोई अतिशक्ति नहीं हैं|

******

सन्दर्भ ग्रंथ : -

1.तेलुगू भाषा आविर्भाव "आचार्य जी.वि. एस.आर.कृष्णमूर्ति " पृष्टि संख्या 2
2. तेलुगू भाषा आविर्भाव "आचार्य जी.वि. एस.आर.कृष्णमूर्ति " पृष्टि संख्या 2
3. तेलुगू भाषा आविर्भाव "आचार्य जी.वि. एस.आर.कृष्णमूर्ति " पृष्टि संख्या 3
4. तेलुगू भाषा आविर्भाव "आचार्य जी.वि. एस.आर.कृष्णमूर्ति " पृष्टि संख्या 4
5. तेलुगू भाषा आविर्भाव "आचार्य जी.वि. एस.आर.कृष्णमूर्ति " पृष्टि संख्या 5
6. आधुनिक तेलुगू साहित्य प्रक्रियाए , ढोरनियाएँ डा . माड़भूषि समपतकुमार " पृषती संख्या 42
7. आधुनिक तेलुगू साहित्य प्रक्रियाए , ढोरनियाएँ डा .माड़भूषि समपतकुमार " पृषती संख्या 48
8. आधुनिक तेलुगू साहित्य प्रक्रियाए , ढोरनियाएँ " डामाड़भूषि समपतकुमार " पृषती संख्या 48
9. आधुनिक तेलुगू साहित्य प्रक्रियाए , ढोरनियाएँ "डा माड़भूषि समपतकुमार " पृषती संख्या 53
10. तेलुगू भाषा आविर्भाव "आचार्य जी.वि. एस.आर.कृष्णमूर्ति " पृष्टि संख्या9
11. "आचार्य टी.एस.गिरिप्रकाश" का तेलुगू संस्कृति संप्रदयालु पृष्टि संख्या 79

अभिमन्यु अनत कृत 'अपना मन उपवन' उपन्यास में पर्यावरणीय विमर्श

डॉ.रामरति
शोध निर्देशिका प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक (हरियाणा)

जयन्ती
शोधार्थी
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक (हरियाणा)

शोध सार - प्रवासी हिंदी साहित्य में मॉरिशस के प्रेमचंद कहे जाने वाले साहित्यकार अभिमन्यु अनत किसी परिचय के मोहताज नहीं है। उन्होंने अपने उपन्यासों के जरिए गिरमिटिया संघर्ष को नया आयाम प्रदान किया व उनके अधिकार हेतु आवाज उठाई। 'अपना मन उपवन' एक भिन्न विषय पर्यावरणीय समस्या को लेकर लिखा गया महत्त्वपूर्ण उपन्यास है जिसके माध्यम से उन्होंने सभी जीवन मूल्यों को ताक पर रखकर की गई भौतिक उन्नति पर प्रश्नचिह्न लगाया है वहीं प्रकृति की महत्ता को भी प्रतिपादित किया है। भौतिकतावाद व आधुनिकता से प्रेरित मनुष्य उन्नति के शिखर पर पहुँचना चाहता है ऐसे में प्रकृति इसका मूल्य क्यों चुकाए? यही इस उपन्यास का मुख्य कथ्य है। अनत मानव जाति को प्राकृतिक असंतुलन से उत्पन्न विभीषिकाओं के खतरे के प्रति सचेत भी करते हैं ताकि प्रकृति की गोद में पला मनुष्य अपने वास्तविक जीवन मूल्यों को पहचाने और प्रकृति के विनाश का यह चक्र थम जाए। यही लेखक और प्रकृति की एकमात्र पुकार है जिसे अनसुना करने पर मानव जाति अपने विनाश के लिए स्वयं उत्तरदायी होगी।

बीज शब्द -प्रकृति, असंतुलन, मानव-जाति, जैव-विविधता, जीवन, पर्यावरण

हिंदी साहित्य की अविरल अमृतधारा में भारतीय लेखकों के समान प्रवासी लेखकों का भी विशिष्ट योगदान है। परदेश में बसे लेखकों का साहित्य एक ओर देश की माटी की सोंधी खुशबू से सुवासित है वहीं दूसरी ओर उसमें परदेश की संस्कृति व समस्याओं का चित्रण भी मिलता है।विभिन्न देशों में हिंदी भाषा का बीजांकुर करने वाले साहित्यकारों ने अपनी श्रमबूंदों से सींच कर इसे एक विशाल तरु का रूप दिया है जिनमें अंजना संधीर, पुष्पिता अवस्थी, रामदेव धुरंधर, सोमदत्त बखोरी, अर्चना पेन्यूली, सुषम बेदी व अभिमन्यु अनत सरीखे लेखकों का नाम उल्लेखनीय हैअभिमन्यु अनत मॉरिशस व भारत के एक प्रसिद्ध साहित्यकार है जिन्होंने लगभग सभी विधाओं में साहित्य सृजन कर हिंदी भाषा को वैश्विक फलक प्रदान किया है। उन्होंने लगभग 32 उपन्यासों की रचना की जिनका मूलाधार मॉरिशस का भारतवंशी समाज है। वे मूलतः भारतवंशी हैं और इसलिए भारत के हिंदी पाठक उनके साहित्य में घनिष्ठ आत्मीयता का अनुभव करते हैं। इनके उपन्यासों में गिरमिटिया संघर्ष, स्त्री-चेतना, आधुनिक परिवेश में बदलते जीवन मूल्यों के चित्रण के साथ-साथ पर्यावरणीय विमर्श भी देखने को मिलता है।अभिमन्यु अनत द्वारा रचित उपन्यास 'अपना मन उपवन' पर्यावरण प्रदूषण व बिगड़ते पारिस्थितिक संतुलन पर केन्द्रित है। इस उपन्यास के विषय में जर्नादन कालीचरण का मत द्रष्टव्य है, ''अभिमन्यु ने अपने उपन्यासों में प्रकृति को मानव जीवन से तादात्म्य करके ही उसके सौंदर्य की अनुभूति की है। मनुष्य को प्रकृति से संजीवनी शक्ति ग्रहण करना जरूरी है। इससे उसे साहस मिलता है और धीरज के साथ अपना कर्म करते रहने की प्रेरणा मिलती है। लेखक का यही ध्येय है।''[1]

अनत विशिष्ट प्रतिभा के धनी व्यक्तित्व होने के साथ-साथ प्रकृति प्रेमी भी थे। लेखक कमल किशोर गोयनका ने 'अभिमन्यु अनत की साहित्य यात्रा' पुस्तक में इस कथन की पुष्टि की है।[2] अपने इसी प्रकृति प्रेम व चिंतन को उन्होंने 'अपना मन उपवन' उपन्यास में एक सार्थक कथा - विन्यास के माध्यम से प्रस्तुत किया है। धर्मा, रामचरण, प्रियदत्त, विपिन, नमिता, निशा, अरविंद, अखिलेश आदि पात्रों के आपसी संबंधों के साथ-साथ लेखक ने पर्यावरण प्रदूषण को केन्द्र में रखकर प्रकृति और मानव के बदलते संबंधों को उद्घाटित किया है।उपन्यास का मुख्य पात्र रामचरण एक प्रकृति प्रेमी है जो पर्यावरण संरक्षण के साथ-साथ मानवीय मूल्यों का हिमायती है। निम्नवर्गीय समाज के निर्धन और बेबस लोगों की सहायता हेतु प्रतिक्षण तत्पर रामचरण, बालक धर्मा व युवती निशा के माध्यम से प्रकृति के मूल्य को दर्शाता हुआ आगे बढ़ता है। वह धर्मा को कभी पहाड़ पर व कभी अजायबघर ले जाकर पेड़-पौधों व पक्षियों के बारे में जानकारी देता है ताकि उसे मॉरिशस की जैव-विविधता का ज्ञान हो। 'डोडो' पक्षी के विलुप्तप्रायः हो जाने पर धर्मा व रामचरण का आपसी संवाद इसी तथ्य की पुष्टि करता है ''क्या सचमुच यह पक्षी केवल हमारे ही द्वीप में था, और कहीं नहीं? ..... नाना, हमें तो इस बात पर गर्व करना चाहिए कि अपना नामोनिशान मिटाकर भी डोडो ने हमारे देश को विश्व-भर में विख्यात कर दिया।''[3]इस उपन्यास के नायक रामचरण के चरित्र में कहीं-कहीं अनत की छवि दिखलाई देती है जो एक जागरूक प्रकृति-प्रेम होने का परिचय देती है। गाँव में विवाह के अवसर पर पौधे भेंट करना उसकी दूरदर्शी सोच का परिणाम है[4] ताकि लोग पेड़-पौधों के महत्त्व को जाने और पर्यावरण संरक्षण अभियान में अपना योगदान दें। अनत कभी एक चिंतक के रूप में, कभी एक पर्यावरणविद् बनकर तो कभी एक बुजुर्ग के रूप में औपन्यासिक पात्रों को प्राकृतिक संतुलन की अहमियत बताते हैं। गाँव में आम का वृक्ष काटे जाने पर रामचरण का स्वकथन उसके प्रकृति विषयक चिंतन को उजागर करता है, ''अगर भगवान ने पेड़-पौधे, नदी-नाले, पहाड़ और वन-उपवन नहीं दिए होते तो क्या इस वसुंधरा पर मानव का जी पाना संभव होता?''[5] सृष्टि के आरंभ से ही मनुष्य का जीवन प्रकृति के उपयोग व उपभोग पर टिका है। आधुनिकता और मानव-पीपासा के कारण मनुष्य व प्रकृति के संबंधों में असंतुलन बढ़ गया, नितदिन बढ़ती हुई प्राकृतिक आपदाएँ इसी का परिणाम है।

अनत की दूरदृष्टि ने इस खतरे को भांप कर विश्व को सचेत करने का सार्थक प्रयास किया है और इसलिए उन्होंने अपने चिंतन को एक उपन्यास का रूप देकर विश्व के समक्ष प्रस्तुत किया है। उपन्यास में रामचरण की अपने मित्र प्रियदत्त के साथ बातचीत अनत की पर्यावरण विषयक चिंता को जाहिर करती है।''प्रियदत्त – लोगों के बीच फूल-पौधे बांटकर तुम क्या पाते हो? रामचरण–आनंद पाता हूँ। इसके पीछे एक मकसद भी है-लोगों में प्रकृति के प्रति आदर और प्यार पैदा करना ..... हमारे ग्रंथों में धरती की रक्षा की मांग की गई है हमसे! और हम है कि आधुनिकता और प्रगति के नाम पर पर्यावरण को प्रदूषित करते ही चले जा रहे हैं।''[6]वस्तुतः प्राकृतिक असंतुलन के लिए मानवीय गतिविधियाँ ही प्रत्यक्ष व परोक्ष रुप से उत्तरदायी हैंयहाँ बुजुर्ग पात्र रामचरण अनत के प्रतिनिधि के रुप में अपने प्रकृति प्रेम और चिंतन को पाठक वर्ग के समक्ष रखते हैं। स्वयं रामचरण का बगीचा अनत के गृह उद्यान की भाँति विभिन्न प्रकार की पादप प्रजातियों व पेड़ों से सजा हुआ था जिनमें फर्न, इक्जोरा, आर्किड, फीसिया, ड्रासेना आदि पौधों की विभिन्न किस्में मौजूद थीं। वे अपने इस संग्रह में उपस्थित विभिन्न पौधों के नाम, किस्में व विशेषताएँ आँख बंद करके भी बता सकते थे। प्रकृति प्रेम की यह एक अनूठी मिसाल है जिसमें मनुष्य अपना सर्वस्व प्रकृति और उसकी देन के संरक्षण में लुटा देता है। मॉरिशस द्वीप के पहाड़ों पर उगी पेड़-पौधों की दुर्लभ प्रजातियों के संरक्षण हेतु रामचरण उनकी पौध अपने बगीचे में तैयार करता है साथ ही इस जैव-विविधता को दुनिया की नजरों से भी दूर रखता है।

अनाथालयों, विद्यालयों, मंदिरों व अस्पतालों में रामचरण इन पौधों को बाँट देता है ताकि पौधों की खूबसूरती इस द्वीप के प्रत्येक कोने में फैल जाए, साथ ही इस कार्य के पीछे उसका एक उद्देश्य भी है - प्रत्येक प्राणी में प्रकृति के प्रति प्रेम व संवेदना उत्पन्न करना। यदि उसका यह कार्य पूर्ण हो जाए तो पर्यावरण संरक्षण एक मुहिम बन जाएगा जिसमें प्रत्येक मनुष्य की भागीदारी से यह द्वीप फिर से अपनी खोई हुई सुंदरता को प्राप्त कर सकेगा। परन्तु यह कार्य इतना सरल नहीं है। उसके द्वारा दान किए गए पौधे मानव संवेदना की भांति शनैः शनैः सूख जाते हैं। इस संवेदना को पुनः जागृत करना ही अनत के प्रतिनिधि रामचरण के जीवन का एकमात्र उद्देश्य है। वह सोचता है ''अगर लोगों में अपने आँगनों को पेड़-पौधों से सजाने की आदत न बनी तो कल हमारा यह सुंदर द्वीप कंक्रीट और पत्थरों का शहर बनकर रह जाएगा।''[7] रामचरण और प्रियदत्त के बीच बातचीत से रामचरण की पर्यावरण के प्रति

चिंता प्रकट होती है। वस्तुतः प्रकृति संपूर्ण ब्रह्मांड में प्राण तत्वों का संचार करने वाली आद्या शक्ति है। प्राकृतिक क्रियाओं में मनुष्य के बढ़ते हस्तक्षेप ने ही प्राकृतिक असंतुलन को जन्म दिया है फलस्वरूप जंगलों व गाँवों में साधारणतया पाई जाने वाली पेड़-पौधों व जीव-जंतुओं की बहुत सी प्रजातियाँ विलुप्तप्रायः हो गई है।रामचरण इस परिवर्तन के परिणाम को भांपकर ही अपने ढंग से पर्यावरण संरक्षण में संलग्न है। वह मानव-मात्र को प्रकृति अनुरागी व संरक्षक बनाने में अपने जीवन की सफलता मानता है।मॉरिशस की बदलती जीवनशैली और मिट्टी में घुलता जहर वहाँ की जैव -विविधता हेतु एक खतरा है। प्राकृतिक बदलाव के कारण आपदाओं की संख्या में वृद्धि हो गई है वहीं बेमौसम बरसात, ओलावृष्टि, बर्फबारी के रुप में प्रकृति का क्रोध प्रकट होता है जिसके लिए एकमात्र मानव जाति ही उत्तरदायी है। प्रियदत्त कहता है, ''आदमी खुद अपने को दूषित करके समय से पहले धरती पर प्रलय खींच लाने की होड़ ले रहा है।''[8]रामचरण आदमी की असीम इच्छाओं और दुनिया की इस तूफानी रफ्तार से डरता है। मनुष्य व प्रकृति का संबंध सदा सर्वहितकारी हो। अनत मानव को प्रकृति-मित्र के रूप में देखना चाहते हैं, विनाशकारी के रूप में नहीं। इसलिए वे रामचरण को अगुआ बनाकर युवा पीढ़ी को प्रकृति की महत्ता समझाते हैं और इस उपन्यास के माध्यम से सफल भी होते हैं।रामचरण के जरिए अखिलेश, धर्मा व निशा को दिया गया संदेश उपर्युक्त कथन की सार्थकता प्रमाणित करता है। ''प्रकृति झलक-झलस कर और मानवता घायल हो-होकर फिर से जिंदा होती रहती है ..... हमारे बाद तुम लोग शमशान को फिर हरे-भरे खेतों में बदलोगे ..... आदमी की कामयाबी और नाकामयाबी से अधिक विश्वास मुझे आदमी की आदमीयत पर है। इतिहास का यह अलग अध्याय समय नहीं लिखेगा, तुम लोग लिखोगे।''[9]विभिन्न प्रतिकूल परिस्थितियों, प्राकृतिक संकटों के अंधेरे में जब मनुष्य चिंतन करेगा तो इसके कारणों का उन्मूलन कर फिर से प्रकृति माँ की गोद में चैन से सो पाएगा ऐसा अनत का अखंड-विश्वास है जिसे उन्होंने एक कथासूत्र में पिरोकर एक उपन्यास के रूप में प्रस्तुत किया। निश्चित ही उनका यह प्रयास पर्यावरण प्रदूषण व प्राकृतिक असंतुलन की विभीषिका की ओर विश्व का ध्यान केन्द्रित करेगा और प्रकृति के प्रति मानवीय दृष्टिकोण का विकास होगा।

****

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कालीचरण, जर्नादनअभिमन्यु अनत सं० 2001 373 विज्ञान का उपन्यास जगत परिषद् एक समीक्षा
2. गोयेनका, अभिमन्यु अनत की सं० 2019 17 स्वराज कमल किशोर साहित्य यात्रा प्रकाशन
3. अनत, अभिमन्यु अपना मन उपवन सं० 200835 सामयिक प्रकाशन
4. वही 66
5. वही 102
6. वही 140-141
7. वही 140-141
8. वही 185
9. वही 313

भगवानदास मोरवाल के कथा साहित्य में मानवाधिकार

अजय जी कम्मत

7/55, शिव कृपा
प्रभु बैग स्ट्रीट, साउथ चेरलाई पैलेस रोड, मट्टनचेरी,
एर्नाकुलम कोचीन - ६८२००२फ़ोन : 9895819691

मानवाधिकार शब्द मानव + अधिकार दो शब्दों से बने है। अर्थ स्पष्ट है कि मानव को कानून द्वारा जितने अधिकार प्राप्त है उसे मानवाधिकार कहते है। मानव के जन्म सिद्ध अधिकारों को हम उनके जीवन की विभिन्न अवस्थाओं को ध्यान में रखकर देख सकते हैं। मानव के अधिकारों के इस तरह विवेचन करने की ज़रूरत इसलिए महसूस हो रहे हैं कि मानव आज भी अपने अधिकारों से पूर्ण रूप से अवगत नहीं है। जब तक अपने अधिकारों के बारे में वे जानकारी ज्ञात हासिल नहीं करते है तब तक उन्हें यह पता नहीं चलेगा कि उनके साथ अधिकारों का हनन हो रहे हैं या उनकी सुरक्षा हो रही है। इस जानकारी के अभाव से ही वे अपने साथ हो रहे अन्याय को निस्सहाय होकर सहन कर रहे हैं।

मानव के जीवन का अधिकार बहुत कुछ समेटता है। हमारा जीवन पशुजीवन नहीं है। जीवन का अधिकार शरीर और क्षमता के संरक्षण तक ही सीमित नहीं है. हर व्यक्ति को मानव गरिमा के साथ जीने का अधिकार भी शामिल है। जैसे जीने की मूलभूत आवश्यकताएँ -भोजन, वस्त्र और आवास को पर्याप्त सुविधा, पढ़ने-लिखने और विभिन्न रूपों में अपने को अभिव्यक्त करने, मुक्त रूप में आने-जाने और अन्य मनुष्यों से मिलने की सुविधा आदि। संक्षेप में कह सकते हैं कि अधिकार का अर्थ बहुत व्यापक है और इसमें वे सब बातें आ जाती है जिनके कारण जीवन जीने योग्य बनता है।

भगवानदास मोरवाल के कथासाहित्य में स्त्रियों का मानवाधिकार:-

भगवानदास मोरवाल ने अपने उपन्यासों व कहानियों में स्त्रियों को महत्व दिया है। कुछ स्त्री पात्र अपनी स्वतंत्रता व अधिकार का अच्छा ज्ञान रखनेवाली हैं एवं उसका पूर्ण उपयोग करनेवाली है। लेकिन कुछ स्त्रियाँ अपने अधिकार से ज्यादा परंपरा व संस्कृति को ज़्यादा महत्व देने के कारण अधिकारों का ज्ञान नहीं रखता।मोरवालजी ने अपने उपन्यास 'रेत' में कमला सदन में रहनेवाली स्त्रियों को दिखाया है जो अपनी स्वतंत्रता व अधिकारों का सही ढंग से उपयोग करती हैं। यहाँ अपनी संस्कृति व परंपरा को कायम रखकर ही वे अपनी स्वतंत्रता व अधिकार का उपयोग करती है।कमला सदन वालों की दृष्टिकोण में स्त्री-पुरुष के अधिकारों में कोई फर्क नहीं है। उनको मिला अधिकार का पूरा उपयोग करनेवाली कमला सदन वालों की कमला बुआ का कथन है "क्या मिलता है ब्याह करके ज़िन्दगी भर खसम और औलाद के साथ-साथ भाभी बनी सास-ननदों की चाकरी ही तो करनी पड़ती है। मरी, बुआ बनी रहती तो उमर भर मज़े करती"। कमला बुआ शादी करना अधिकारों का हनन करने या अधिकारों पर अंकुश रखने जैसे महसूस करती है।उनके अनुसार शादी तो किसी दूसरे के दिए स्वतंत्रता में जीने वाली एक प्रथा है। वे तो अपना अधिकार पूर्ण रूप से किसी बाधा बिना उपयोग करना चाहती है।बाबल तेरा देस में की शकीला पढी-लिखी व अपने अधिकारों का पूर्ण ज्ञान होने पर भी उसका पूर्ण रूप से उपयोग कर न पाती है। यह शकीला का ही नहीं उस इलाके को ज्यादातर महिलाओं की स्थिति ऐसी ही है। वहाँ जितना अधिकार पुरुषों को मिला है वे अच्छी तरह उसका उपयोग करते हैं, लेकिन स्त्रियों को अपने अधिकारों की सीमा रहता है। उनका विश्वास भी करनेवाले कम ही रहते हैं। इसी को ध्यान में रखते हुए बत्तो कहती है कि "या मरद की जात की तो झूठी भी सच्ची हो जाए है और हम चाहे कलेजा वीर के दिखा देएँ, हमारे ऊपरे कोई अकीन ना करे है। फिर तो याको जब जी करे हो मौका- बेमौका धर-दबोचे हो। ऊ भी कहाँ तलक अपने आप ए बचाती फिरती"। यहाँ बत्तो उस समाज की स्त्री के अधिकारों के नियंत्रण को उजागर करती है। उस समाज में सभी अधिकारों के कदार होने पर भी स्त्री का महत्व कम ही है। जितनी भी पढ़ी-लिखी होने पर भी कभी ऐसा होता है कि अपने अधिकारों के बारे में किसी दूसरे को सुननी पड़ती है। जब मुमताज़ के पति न मरद जानकर हवेली में एक बडी समस्या उठ जाती है। तब इस्लाम धर्म में स्त्री को दिए खुलअ" नामक अधिकार के बारे में शकीला समझाती है कि "आपा कुछ हालात में जिस तरह मर्द को बीवी से तलाक का हक दिया गया है, उसी तरह कुछ हालात में औरत को भी मर्द से 'खुलअ' का हक दवा गदा है"| शकोला ने जैतूनी

से जब यह कहा तब ही उस हवेली वालों को स्त्री को धर्म द्वारा दिया गया इस अधिकार के बारे में जानकारी मिली। मानव को सभी प्रकार के अधिकारों के होने पर भी कुछ जगह एसे भी है जहाँ स्त्रियों को व छोटे बच्चों को अनेक कष्ट सहना पड़ता है। भगवानदास मेरवाल ने अपनी कहानी 'छल' में भागपुर नामक गाँव को स्त्रियों को दुख पूर्ण ज़िंदगी दिखाई है "भागपुर | इस महान देश के उन हज़ारों गाँव कस्बों की तरह यह भी एक ऐसा गाँव हैं जिसकी हथेलियों पर उसकी भाग्य की रेखाएँ तो है, मगर उन्हें पढ़नेवाला कोई नहीं है। आज भी यहाँ को महिलाओं को खुले में शौच जाने के लिए सूयोदय से पूर्व और सूर्यास्त के बाद छानेवाले झुटपुटे का इन्तज़ार करना पड़ता है"। सैकड़ों गाँवों की तरह यहाँ की महिलाओं को भी पीने का स्वच्छ पानी उपलब्ध न होने की वजह से मीलों दूर से पानी ढ़ोकर लाना पड़ता है। पानी पीना, शौच करना, खाना, खाना आदि हर मानव के मूलभूत अधिकार है। यहाँ इन ज़रूरतों की पूर्ती केलिए भी स्त्रियों को समय रखा गया है। असल में पुरुष से ज्यादा स्त्री को शौचालय वगैरह की ज्यादा ज़रूरत है। लेकिन छल कहानी में जो गाँव दिखाया गया है वहाँ पर स्त्रियाँ शौचालय के अभाव के कारण एक ओर लोगों के उठने से पहले शौच करती है नहीं तो संध्या के बाद | मतलब स्पष्ट है कि स्त्री को अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को निभाने की सुविधा तक प्राप्त नहीं है।

भारत में स्त्रियों को अपनी इच्छा के अनुसार सज-धज कर श्रृंगार करने का पूरा अधिकार तो है। नारी अपनी स्वतंत्रता का उपयोग करके व्यक्तित्व को बना सकती है। कुछ जगहों पर यह भी चल रहा है कि नारी को ठीक से सनधज कर चलने का अधिकार से वंचित कर दिया गया है।

भगवानदास मोरवाल की कहानी "लेकिन" में ऐसा देख सकते हैं। कहानी की आयशा को साड़ी पहनने व श्रृंगार करने का अधिकार नहीं दिया है। सज-धज कर चलने की इच्छा से आयशा अपने पति जुम्मे खां से पूछती है कि "आपके यहाँ भी अजीब है.....साडी पहनती है तो हिन्दुआनी, लिपस्टिक लगाती है तो हिन्दुआनी और राख से बर्तन मॉजती है तो बस हिन्दुआनी, यह सब किस हदीस ने कहा है कि हमारी साफ-सफाई और ओढ़ना-पहनना दूसरे मज़हबों से अलग हों"। आयशा एक स्त्री के हकों को माँग करती है। भारतीय नारी ही अच्छी तरह सज-धजकर साड़ी पहनकर निकलती है। लेकिन संस्कृति या धर्म के नाम कह कर पुरुषों द्वारा स्त्री का हक छीने जानेवालों के विरुद्ध आवाज़ उठाती स्त्री का रूप यहाँ दिखाया है।

भगवानदास मोरवाल जी की रचनाओं में मानवाधिकारों के हनन या अभाव का वर्णन करने के साथ-साथ बहुत ही विरलपात्र नवाधिकार का सकारात्मक उपयोग भी करती हुई दिखाई पड़ती है। उनकी एक कहानी निमंत्रण में अपने आप को मिले अधिकार का पूरा उपयोग करनेवाली लड़की निम्मी को दिखाया है जो घर आए मेहमान के साथ नाचती-गाती है साथ ही रात होने के कारण अपने घर में रुकने केलिए मेहमान को मज़बूर करने केलिए माँ से कहती है कि "मामा, इतनी रात हो गई है। सर अब होटल क्या जाएँगे। कुछ ही घंटों की बात है इसलिए इनसे कहिए न कि रात को ये हमारे यहाँ रुक जाएँ"। यहाँ बाहर के एक व्यक्ति को अपने घर में रहने का न्योता नेवाली लड़को को दिखाया है। शहर के लोगों को संस्कृति के साथ शहरी लड़कियाँ अपना अधिकार का उपयोग करने का दृश्य भी दिखाया गया है।

बालकों का अधिकार:-मानवाधिकार का मतलब है मनुष्य को जन्म से प्राप्त अधिकार। अधिकार तो सब मानव को एक जैसा ही मिलना है, लेकिन संविधान ने बच्चों के ऊपर विशेष ध्यान रखकर उनकेलिए विशेष नियम बनाये गए हैं ताकि बच्चे होने के नाते उन्हें अपने हक से कोई वंचित न रखे। समाज पर एक सतही दृष्टि डालने से हमें ऐसे अनेक दृष्टांत मिलेंगे जहाँ पर बच्चों के ऊपर जुल्म हो रहे है। अपने ऊपर होनेवाला जुल्म वे सह भी लेंगे क्योंकि वे अपना हक नहीं जानते। उनके लिए आवाज़ उठानेवाला कोई होना चाहिए। उन्हें भी एक सामाजिक सुरक्षा की ज़रूरत है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बच्चों के अधिकारों की चर्चा आजकल सर्वव्यापी है, मानवाधिकार का प्रश्न अब केवल कुछ ही आधार तक सीमितत नहीं रह गए हैं। बल्कि उनका विस्तार उन आधारों के साथ भी जुड़ गया है जो मानव जीवन की प्रत्येक आयु, वर्ग के साथ जुड़ते हैं। बच्चों के अधिकारों पर हुए संयुक्त राष्ट्र के विभिन्न सम्मेलनों में उनके अधिकारों पर व्यापक चर्चा हुई। इन सम्मेलनों में यह माना गया है कि कोई भी व्यक्ति जो 8 वर्ष की आयु से कम का है, जब तक कि किसी कानून द्वारा ववस्कता की कोई अन्य आयु निर्धारित न को गई हो, बच्चों के अधिकारों की श्रेणी में सम्मिलित किया जाएगा। इसी आयु के लोगों को बच्चों के अधिकार की सुरक्षा भी मिलेगी और उनके आर्थिक शोषण, कार्य का शोषण,घातक हस्तक्षेप तथा उनकी शिक्षा, स्वास्थ्य, शारीरिक आध्यात्मिक, नैतिक तथा सामाजिक सुरक्षा के प्रश्न के निदान भी संभव हो सकेंगे।बच्चों के संदर्भ में इस विषय पर प्रधानता दी जाती है कि उनके काम करने केलिए न्यूनतम आयु क्या स्वीकार किया जाय। वस्तुतः यह मान लिया गया है कि किसी भी अवस्था में 5 वर्ष से नीचे को आयु के बच्चों को किसी भी कार्य केलिए स्वीकार नहीं किया जा सकता। बचपन जीवन की वह अवस्था है, जिसमें बच्चे को काम के लिए प्रतिबद्ध नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि उसे शिक्षा तथा प्रशिक्षण केलिए प्रेरित किया जाना चाहिए। बालश्रम करने की अवस्थाओं तथा काम करने की प्रवृत्ति के कारण बच्चे की सारी संभावनाओं तथा क्षमताओं पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है। ऐसा नहीं है कि बालश्रम को बड़ी आसानी से टाला जा सकता है। लेकिन इसकी समाप्ति तभी संभव है जब राजनीतिक इच्छा प्रबल हो तथा बचपन के प्रति इस प्रकार के व्यवहार को प्रभावित करने की दृढ़ इच्छा हो।

बाल वेश्यावृत्ति:-बाल वेश्यावृत्ति बच्चों की समस्याओं में सबसे गंभीर समस्या है। भारत में वेश्यावृत्ति में लिप्त बच्चों की समस्या अनेक वर्षों से समाज केलिए एक पेचीदा सवाल बन गयाहै। मीडिया में न नाबालिग से ज़बरदस्ती वेश्यावृत्ति कराने, युवा लडकियों की बिक्री, कोठों में, कॉफो हाऊस में वेश्यावृत्ति होने का दिल दहलानेवाली कहानियाँ हर रोज़ देखने को मिलते हैं।बच्चों के अधिकार विषय पर हुए सम्मेलन को भारत सहित 86 देशों ने अपना समर्थन दिया है। इसके अनुसार सरकार ने ऐसी अनेक वादा किया था कि यौन-दुर्व्यवहार और शोषण से बच्चे की रक्षा करेगी तथा उसके शारीरिक और मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य लाभ कार्यों को प्रोत्साहन देगी। और इस दुर्व्यवहार से पीडित बच्चे को फिर से सामाजिक संपूर्णता प्रदान करेगी। इन सब शर्तों के बावजूद बच्चों का अपहरण तथा उन्हें कैद रखकर उनका शारीरिक और यौन-शोषण तथा लड़कियों का बलात्कार भयानक रूप से हो रहा है।भगवानदास मोरवाल ने अपने उपन्यास "रेत" में वेश्याओं की ही चर्चा की हैं। जब एक बच्चे का जन्म होता है तब से उसके अधिकारों को भी शुरुआत होती है। मोरवालजी के रेत उपन्यास में चित्रित कमला सदन को चार-साढे चार वर्ष की छोटी लड़की पिंकी के बारे में कमला बुआ कहती है कि "मैं तो अपनी पिंकी को बैदजी डाक्टर बनाऊँगी"। तब पिंको मना करती है। तो वैद्यजी के पूछने पर पिंको कहती है कि "मैं तो बुआ बनूँगी"। यह सुनकर कमला सदन वाले हँस पड़ते हैं। हमारे समाज में बच्चों को वेश्या बनाने की रीति न होने पर भी घरवाले उस छोटी बच्ची का हक, उसका बचपन उससे छीन रहे हैं। कुछ देर बाद वैद्यजी उससे फिर पूछते हैं कि "पर क्यों बनेगी बुआ 7 उत्तर में छोटी पिंकी कहती है:- "बताऊं, बुआ रोज़ अच्छे-अच्छे कपड़े पहनती है। लेटकर टीवी देखती है और बुआ के पास जो अंकल हैं न हैं' 3 प रच में आते हैं न वो कितना रुपया देकर जाते हैं"। उस चार-साढे चार वर्ष की बच्ची के मन में डॉक्टर या टीचर बनने के बजाय वेश्या बनने की इच्छा भर गई है। क्योंकि घर बैठे-बैठे पैसे कमाते आना वह अपने जन्म से देखती आ रही है। इनसे वह भी अपनी दादियों की जैसे बुआ या वेश्या बनना चाहती है। छोटे बच्चों को अपने माँ-बाप के हाथों वेश्यावृत्ति केलिए मज़बूर करने को स्थिति भारतीय समाज में ही देख सकते हैं।

बाल-विवाह:-जो प्रमुख समस्याएँ बच्चों के अधिकारों को गलत ढंग से प्रभावित कर रही है, उनमें बाल-विवाह प्रमुख है। बाल विवाह प्रतिबंध कानून 1929 में बनाने के बाद भी देश के विभिन्न भागों में बाल-विवाह करा

कुछ जगह ऐसे होते बाल विवाह एक सामाजिक रिवाज़ है जिसे करवाने केलिए माँ-बाप मज़बूर है। समाज के निम्न स्तर के लोगों में इस रिवाज़ का प्रचलन अधिक है। इसके पीछे कई कारण हो सकते हैं। उसमें प्रथम है शिक्षा का अभाव। एक अनपढ़ समाज में ऐसी बुराइयों बहुत जल्दी फैल जाएगी। क्योंकि मां-बाप कभी यह जानते भी न होंगे कि अपने बच्चों के साथ कितना बडा अन्याय हो रहे हैं। मासूम बच्चियों को शादी करवाकर उनके बचपना हम उनसे छीन लेते हैं। किसी कानून बनाकर बालविवाह का रोकथाम संभव नहीं है। उसकेलिए लोगों में जागृती पैदा करना पडेगा। माँ-बाप को इस कुरीति के विरुद्ध खड़ा करना होगा, तभी हमारे बच्चे सुरक्षित रहेंगे। मानवाधिकार आयोग इस समस्या के बारे में सोचते हैं। इस प्रथा को और कानूनी दर्जा दिया गया है और इसे जुर्म माना गया है। भगवानदास मोरवाले ने अपने उपन्यास काला पहाड़ में सलेमी को शादी का विवरण दिया गया है उससे यह पता चलता है कि सलेमी की शादी भी छोटी आयु या बचपन में ही हुई थी। "उस वक्त सलेमी की उम्र ही कितनी थी। ज्यादा- से - ज्यादा दस या ग्यारह साल। उसे बहुत सी बातें और घटनाएँ तो अब याद भी नहीं है और जो याद है वे ऐसे मौकों पर अपने-आप एक दूसरे में गुंथती चली जाती है" |अपने आप नहाना तक न जानने वाले सलेमी की शादी के दिन उसे उसको बडी फूफी ने नहाकर लायी और सलेमी की माँ से कहा कि "भावज, अपणा जाया ए, देखले मैंने कैसों मलूक बणा दियो है गल्लेन मैल उतारो है याका गोडान् सू" । छोटी आयु में सलेमी की शादी करवाकर उसके घरवालों ने उसका बचपन छीन लिया है। घरवालों को तो अपने बेटे की शादी में मिलनेवाली दहेज का ही महत्व रहता है। "जुहु की नमाज़ के बाद महजत में सलेमी के निकाह के समय पूरी बारात जमा हो गई। एक-एक कर सारी रस्में पूरी होने लगीं। बेटी वाले की ओर से दिए गए दहेज की पूरी बारात में चर्चा होती रही। सलेमी केलिए बहुत कुछ दिया बेटी वाले ने। इतना दिया कि भूरे खा की सीना मारे खुशी के चौड़ा होता चला गया। पलंग, पीढी साईकिल, पाँच बर्तन, पाँचों कपड़े और धौण रुपया" । सलेमी को मिला यह रकम तो घरवाले ही खर्च करेंगे। क्योंकि दस-ग्यारह वर्ष का छोटा बच्चा अपने खिलौनों से ज्यादा पैसों से क्या प्यार करेगा। लेकिन घरवालों के कहने पर हठ किए बिना खुशी से वह छोटा बच्चा या बच्ची शादी केलिए तैयार हो गये। मोरवालजी ने "बाबल तेरा देस में" में बचपन में ही शादी करवाई मैना को दिखाया है। मैना तो अपनी शादी के वक्त मना भी न कर सकी ती। इस छोटी लड़की को शादी का मतलब भी मालूम नहीं था। पढ़ने में रुची होने पर भी वह पढ़ नहीं सकी। खेलने का मन करने पर भी अपने आयु की बच्चियों के साथ खेल भी नहीं सकी। बचपन में ही वह घर संभालने लगी। फिर उसकी कठिनाई देखकर जैतूनी से शकोला कहती है कि "यह तो मैं भी कह रही हूँ आप कि बेशक मैना की शादी बचपन में उसकी मरज़ी के खिलाफ कर दी थी, मगर उसे इतनी आसानी से तोड़ा भी तो नहीं जा सकता है"। बचपन में घर संभालने की कठिनाई को देखकर शकीला को गुस्सा आ जाता है। हम वहाँ बाल विवाह के बुरे पहलू देख सकते हैं। यह मैना का ही नहीं बल्कि बालविवाह किए सभी बच्चियों की ज़िदगी ही है।"बाबल तेरा देस में" में मुबारक अली की शादी शगुफ्ता से अच्छा दहेज मिलने केलिए छोटी आयु में करवाई थी। उस छोटी आयु में ही वह माँ बन गई | कुछ साल बाद शगुप्ता को तलाक दिया गया तो हवेली वालों के पैर पड़कर वह छोटी लड़की रोने लगी कि मुमताज़ मेरी नणदी तू काई तरह अपनी इन छोटी-छोटी भतीजीन्ने यलीम होगा सू बचा ले। बूढ़ी माई, तो हे इन दूध पीवता जीवाकन् को वास्तो है? । बाद में जैतूनी से कहती है कि "बूढ़ी माई, या दहली को पानी तो मेरा भाग सू कल ही छिनगो। पतो ना, पिछवा जनम में ऐसा कौन-सा करम करा हा के जाका पल्ला सू बंधी ही वाने ही बीच में छोड़ दी" । "हिम्मत भी तो बची होए बूढ़ी माई। मैं कैसे अपणी माँ सी आँख मिलाऊँगी। मैं तो कहके आई ही आपणई माँ सू के अब के ईद पे पूरा दस दिन रहके जाऊँगी पर मोहे कहा पतो ही मेरी माई के अबे तेरी ई लाडो तेरी दहली पर सदा मदा कू आ पडेगी" । यहाँ शगुप्ता के जीवन से यह पता चलता है कि बाल विवाह द्वारा उसकी जिंदगी छीन गई साथ ही रंगों से भरा बचपन भी। संक्षेप में, शगुप्ता का बचपन एवं जिंदगी का सत्यानाश हुआ। वह अपनी जिंदगी हवेली में ही जीने की इच्छा करती हुई सभी के पैरों पर पड़कर रोती है। यहाँ एक छेटी लड़की के साथ-साथ उसकी छोटी बेटियों के भविष्य का भी सवाल है।

निष्कर्ष:-

हर मानव को जन्म लेते ही कुछ अधिकार प्राप्त होते हैं। मानव किसी भी अवस्था की हो उनको अपने अधिकारों का उपयोग करके जीना है। दूसरे द्वारा इन अधिकारों को छीनना गलत है। मानव को हमेशा अपने अधिकारों को छीनना गलत है। मानव को हमेशा अपने अधिकारों का उपयोग करके जीना चाहिए। लेकिन दौर्भाग्य की बात यह है कि कभी-कभी उनके इन अधिकारों को छीना जा सकता है। कभी कभी परिवार द्वारा है ये भी-कभी समाज द्वारा। इसका कारण यह हो सकता है कि एक ओर मानव उनके अधिकारों के बारे में अनभिज्ञ होंगे तो दूसरी ओर अन्यों भगवानदास मोरवाल के कथा साहित्य में मानवाधिकारों का हनन और उसका उपयोग करते हुए हम देख सकते हैं। उन्होंने अपने साहित्य में बालक, स्त्री, युवक एवं बूढ़े लोगों के मानवाधिकारों पर पाठकों का ध्यान आकर्षित करने का सफल एवं सार्थक प्रयास किया है।

******

सन्दर्भ :-

1. रेत, भगवानदास मोरवाल, पृ.सं -22
2. बाबल तेरा देस में, भगवानदास मोरवाल, पृ.सं -131
3. बाबल तेरा देस में, भगवानदास मोरवाल, पृ.सं -425
4. सीढ़ियां माँ और उसका देवता,भगवानदास मोरवाल, पृ.सं -11
5. अस्सी मॉडल उर्फ़ सूबेदार,भगवानदास मोरवाल, पृ.सं -39
6. निमंत्रण,भगवानदास मोरवाल, पृ.सं -83
7. रेत, भगवानदास मोरवाल, पृ.सं -11
8. रेत, भगवानदास मोरवाल, पृ.सं -12
9. रेत, भगवानदास मोरवाल, पृ.सं -12
10. काला पहाड़,भगवानदास मोरवाल, पृ.सं -103
11. काला पहाड़,भगवानदास मोरवाल, पृ.सं -103
12. बाबल तेरा देस में, भगवानदास मोरवाल, पृ.सं -296
13. बाबल तेरा देस में, भगवानदास मोरवाल, पृ.सं -348
14. बाबल तेरा देस में, भगवानदास मोरवाल, पृ.सं -348
15. बाबल तेरा देस में, भगवानदास मोरवाल, पृ.सं -348

'शिक्षा शेरनी का दूध है' इस संकल्पना को दर्शाता 'छप्पर' उपन्यास

सिलपाका वेंकटाद्री,
शोध छात्र, हिंदी विभाग,
हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद- 500046 मो. : 9133495362

प्रस्तावना : वर्तमान को समझने के लिए अतीत को समझना जरूरी होता है। दलित-विमर्श का भी अपना इतिहास है। यह विमर्श अपने वर्तमान रूप में भले ही उन्नीसवीं शताब्दी के बाद अस्तित्व में आया हो लेकिन उसकी जड़े सुदूर अतीत तक जाती है। प्राचीन संप्रदायों में से एक लोकायत सम्प्रदाय यों चार्वाक मत ने संभवतः सबसे पहले वैदिक व्यवस्था को प्रश्नों के घेरे में लाने का प्रयास किया। यह अलग बात है कि लोकायत संप्रदाय दीर्घकाल तक नहीं चल पाया। उसके बाद दूसरे मतों का उदय हुआ। उन्होंने लोकायत की प्रतिरोध की परंपरा को बनाए रखा। इन मतों में बौद्ध मत सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इसा पूर्व छठी शताब्दी में धर्म, दर्शन और विचार के क्षेत्रों में बहुत हलचलें मची थी। क्योंकि उस वक्त तमाम मतों का उदय हुआ था। जिनमें जैन मत व बौद्ध मत बहुत प्रभावशाली रहे हैं। इसके बाद भक्ति आंदोलन भारत की प्रतिरोध परंपरा का ऐतिहासिक दौर रहा है। भक्ति आंदोलन अपने प्रारंभिक रूप में भक्ति को लेकर नहीं, सामाजिक आलोचना को लेकर चला था। भक्ति आंदोलन के अधिकांश रचनाकार अवर्ण तबकों से आए थे। इनमें कबीर, रैदास, सेन, दादू आदि थे। आज की दलित कविता का पूर्ववर्ती रूप इन कवियों के यहाँ देखा जा सकता है। डॉ. आम्बेडकर तो कबीर की गिनती अपने गुरुओं में करते थे। समकालीन दलित विमर्श में कबीर और रैदास को केंद्रियता मिलने की सबसे बड़ी वजह उनका स्वाभिमानयुक्त व्यक्तित्व है.इस वैचारिक परंपरा को दलित साहित्यकारों ने अपनी प्रेरणा माना है। जिसके आधार पर यह रचनाकार समाज को शिक्षित बनाने के लिए, अज्ञानता की जंजीरों से मुक्त करने के लिए , जाति उन्मूलन के सपनों को साकार करने में ध्यान दे रहे हैं। सिर्फ इतना ही नहीं जाति, धर्म, लिंग, वर्ग आदि वर्चस्व वादी सोच का अंत करने का सपना उनकी रचनाओं में देखने को मिलता है। दलित साहित्य अज्ञानी समाज को ज्ञान की ओर आकर्षित करने का महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है साथ ही सामाजिक आन्दोलनों के माध्यम से समाज में चेतना जागृत करने का कार्य भी कर रहा है ।दलित साहित्य ने शोषण के खिलाफ आवाज उठायी है साथ ही दलित समाज को हिम्मत के साथ लड़ना भी सिखाया है। इस साहित्य के साहित्यिक विधाओं के माध्यम से दलित साहित्यकारों ने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षणिक आदि में समानता की माँग करते हुए जाति-प्रथा, छुआछूत के विरुद्ध रचनाओं का सृजन करने का महत्वपूर्ण कार्य किया है।

बीज शब्द- शिक्षा का महत्व, दलित समाज की स्थिति, जतिभेद, आम्बेडकरवादी दर्शन, दलित समाज की वैचारिकी, वर्चस्ववादी मानसिकता, प्रेरणास्रोत आदि।

मुख्य अंश: दलित उपन्यास जगत में जय प्रकाश कर्दम को भारतीय दलित साहित्य में महत्वपूर्ण एवं एक जिम्मेदार लेखक तथा उपन्यासकार माना जाता है। उतना ही नहीं भारतीय दलित साहित्य के विकास में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। जिसे उनके बहु चर्चित उपन्यास 'छप्पर' को देखा जा सकता है। 1994 में प्रकाशित 'छप्पर' उपन्यास में सुक्का, चन्दन और चन्दन के माता रमिया, हरिया के बेटी कमला तथा ठाकुर हरनाम सिंह की बेटी रजनी आदि पत्रों के द्वारा दलित समाज तथा भारतीय समाज की जाति व्यवस्था को समाप्त कर समाज में समानता स्थापित कर समाज को एक नई दिशा और आत्म-सम्मान के साथ लड़ने की प्रेरणा इन पात्रों के वाणी में हमें सुनने तथा अनुभव करने को मिलती है। 'छप्पर' उपन्यास दलित साहित्य का पहला उपन्यास है इस उपन्यास के संबंध में दलित आलोचकों ने अपनी राय दी है- जिनमें दलित साहित्य के वरिष्ठ साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने छप्पर के संदर्भ में कहा था कि "छप्पर जयप्रकाश कर्दम का सद्य: प्रकाशित उपन्यास है। जिसकी कथा वस्तु दलितों की उस पीढ़ी की संघर्ष गाथा है जिसके लिए शिक्षा संस्थानों के द्वार खुलना एक ऐतिहासिक घटना थी तथा मुक्ति संघर्ष यात्रा का प्रथम पड़ाव भी। जहाँ उन्होंने एक नए, अनछुए परिवेश को देखा, जाना, परखा। जिसके फलस्वरूप उनके भीतर अपना रास्ता चुनने का हौसला और कर्तव्य बोध जागा।" उसी प्रकार माता प्रसाद जी ने तो 'छप्पर' में हम जिस परिवेश से परिचित हुए है उसका संबंध जयप्रकाश कर्दम जी के जीवन का अंश ही नहीं अपितु संपूर्ण दलित समाज के जीवन का अंश होने के संकेत दिए हैं वे लिखते हैं- '"छप्पर' उपन्यास में किसी न किसी रूप में इसके लेखक श्री जय प्रकाश कर्दम के जीवन के बहुत से अंशों की कथा ही निहित नहीं है, वरन चालीस और पचास के दशक में, दलित समाज में पैदा हुए बहुत से सुशिक्षित नवयुवकों की भी यह कथा है, जो भूमिहीन खेतिहर मजदूरों की संतान हैं, जिन्होंने सामंतवाद की फटकार, ब्राह्मणवादी व्यवस्था की दुत्कार और सेठ–साहूकारों की मीठी मार सही है। ऐसे माता-पिता स्वयं जो अनपढ़ है थे, किंतु उन्होंने अपने बच्चों को ईंट के भट्ठों पर मजदूरी कर दूसरों के खेत में अन्न उपजा, टूटे-फूटे कच्चे घरों में रह, फटे पुराने वस्त्र पहन, शहरों में झुग्गी झोंपिडियों में रह, रिक्शा चला, अनेक मुसीबतें उठाकर अपना पेट काटकर भी पढ़ाया। उनमें से बहुत से लोग अध्यापक, अधिकारी, समाज सेवक, साहित्यकार और नेता बने। इन पर डॉक्टर अंबेडकर के 'शिक्षित बनो, संगठित हो, संघर्ष करो' का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा था।" यह कथन दलित समाज में बढ़ती साक्षरता को प्रस्तुत करता है। दलित समाज का बहुत बड़ा तबका शिक्षा के महत्व को समझ रहा है और अपनी संतानों को हर हाल में पढ़ाने का संकल्प ले रहे हैं। उनके इस संकल्प के पीछे मात्र डॉ. आम्बेडकर का जीवन संघर्ष है। क्योंकि डॉ. आम्बेडकर के शिक्षा के शिक्षा के यह सूत्र 'शिक्षित बनो, संगठित हो, संघर्ष करो' हमेशा अस्पृश्य समाज को प्रेरित करते हैं।

छप्पर उपन्यास के सुक्का, चन्दन और साथ ही अनेक स्त्री पात्र अपने आप में क्रांतिकारी हैं और वे सामाजिक चेतना का स्रोत बनकर हमारे सामने आतें हैं। डॉ. आंबेडकर ने अपने भाषण में दलित स्त्रियों के लिए कहा था कि "भगवान की पूजा-अर्चना में जिस तरह औरतें सबसे आगे रहती हैं, उसी तरह बच्चों को शिक्षित करने के लिए भी औरतों को ही आगे आना होगा। औरतें ही अपने बच्चों को सुशिक्षित करने की जिम्मेदारी लें। अज्ञानता की पूजा आज से ख़त्म करो। मेरी बहनों और माताओं, इस सुधार की दिशा में पहला कदम तुम्हारा ही होना चाहिए।" बाबा साहब के इस विचार को प्रत्यक्ष रूप से पालन करते हुए छप्पर उपन्यास की प्रमुख नारी पात्र कमला अपने बेटे खिल्लर को पढ़ाने के लिए कदम उठाती है। वह चाहती है कि उसका बेटा पढ़-लिखकर एक बुद्धिजीवी बनकर, ऊँचे पद पर जाकर वर्चस्व वादी समाज, रूढ़िवाद समाज को ख़त्म करने में कल्याणकारी सामाजिक आंदोलनों में भाग लें और अपनी माँ जैसी औरतों का बलात्कार करने वाले लोगों को दंड दिलाएं। उन्हें न्याय दिलाने के लिए जितनी ताकत चाहिए उतनी ताकत अपनी बेटे को दिलाने के लिए पढ़ाना चाहती है। इतना ही नहीं अज्ञान के खिलाफ भी संघर्ष करने के लिए अपना बेटा खिलाड़ी जिसे वह खिल्लर कहती है उसे चन्दन द्वारा खोले गये स्कूल में दाखिल करने के लिए वहाँ ले जाती हैं। दाखिल करते समय जब चन्दन खिल्लर के पिता का नाम पूछता है लेकिन कमला जवाब ना देकर खिल्लर को लेकर वहाँ से निकल जाती है। चन्दन कमला को ढूँढ़ते हुए उसके घर तक पहुँच जाता है। तभी चंदन को पता चलता है कि कमला एक सामूहिक बलात्कार का शिकार हुई है। कमला अपनी दर्दनाक व्यथा चंदन को सुनाती है।सवर्ण समाज दलितों का सामाजिक, आर्थिक, मानसिक, शारीरिक शोषण के साथ दलित तथा गरीब औरतों का बलात्कार भी

भी लड़ना चाहती है। कई वर्षों से करते आ रहा हैं। कमला भी इस पीड़ा का शिकार बनी हुई है। कमला एक दलित शोषित नारी है, जो बलात्कार के पश्चात किसी भी हालत में अपने बेटे को पढ़ाना चाहती है और उसके लिए खूब मेहनत करने का निर्णय लेती और वह चन्दन से कहती है कि 'अब यही मेरा सहारा है। बड़ा होकर यह मेरे साथ हुए जुल्म और अत्याचार का बदला ले यही मेरी कामना है।' और आगे चल कर कमला भी खुद उस पर हुए अन्याय के लिए लड़ते हुए चन्दन के सामाजिक आंदोलन में भाग लेती है। एक दिन चन्दन जनसभा को संबोधित करके मंच से उतरते समय अचानक किसी समाज विरोधी ने चन्दन को जान से मारने के उद्देश्य से उसके सर पर लाठी से वार करने की कोशिश करता है। चन्दन के सर पर लाठी पड़ते देख कमला ने चीते की तरह एक ही झटके से चन्दन को धक्का देकर हटा देती है तो चन्दन उस हमले से बच जाता है। इस तरह सामाजिक समानता के लिए सक्षम भूमिका निभाते हुए चंदन को बचाने के लिए कमला अपना प्राण त्याग कर देती है। छप्पर उपन्यास में कमला एक त्याग का उदाहरण बन जाती है।

छप्पर उपन्यास में सुक्का, कमला और रमिया अपने बच्चों को पढ़ाने के सन्दर्भ में दोनों की उम्मीद एक जैसी ही लगती है। रमिया चाहती है कि चन्दन खूब पढ़ाई करके 'कलक्टर या दारोगा बन जाए। वह कार में घूमेगा, बंगले में रहेगा, सभी लोग उसका सम्मान करेंगे उसको..।' और इस तरह की बहुत सारी कल्पनाएँ करती हैं और वह चाहती है कि हमारा बेटा हमारे जैसी गुलामी का जीवन न जीए, हमारी तरह मजदूरी, श्रमिक जीवन न जीए, गाँव के खाना पंडित, हरनाम सिंह जैसे रूढ़ि वादियों का शिकार न बने इस तरह सोचते हुए चन्दन को पढ़ाने में सुक्का का साथ देती है।जब डिग्री की पढ़ाई के लिए सुक्का और रमिया बेटा का चंदन दिल्ली जाता है तो यह समाचार समस्त गाँववं में फैल जाता है। गाँव के वर्चस्ववादी ठाकुर, काना पंडित आदि को यह बहुत बड़ा अपराध लगता है और चन्दन को वापस गाँव बुलाने की दबाव सुक्का पर डालते हैं पर यह बात सुक्का को हरगिज पसंद नहीं है। ठाकुर हरनाम सिंह और काना पंडित को यह अपमानजनक लगता है तो वे लोग गाँव में पंचायत बिठाकर यह उसके जीवन पर निर्बंध लगाने पर भी वह अपनी पत्नी रमिया से कहता है कि "मैं मर जाऊँगा, भूखा प्राण तज दूंगा सब कुछ बर्दाश्त करलूँगा मैं, पर चन्दन को इस नरक में नहीं पड़ने दूंगा कभी, जिस नरक में मुझे रहना पड़ा है।" इस छप्पर उपन्यास में हमें स्पष्ट रूप से यह विचार नज़र आता है कि दलित तथा मजदूर समाज अपने बच्चों को पढ़ाने के लिए, उन्हें उच्च शिक्षा दिलाने के लिए उनको इस वर्चस्ववादी समाज से कितना लड़ना पड़ता हैं।

चन्दन हरिया की सहायता से अपनी पढ़ाई को आगे बढ़ाते हुए पी.एच.डी. करने तक पहुंचता है और समाज सुधारक भी बन जाता हैं। शिक्षित बनो, संघर्ष करो.. संगठित रहो बाबा साहब की इन बातों का प्रतीक बनते हुए समाज में समानता लाने की कोशिश करता है तो दूसरी ओर उसकी प्रेरणा से रजनी यानी उसकी बचपन की दोस्त भी चन्दन की तरह मातापुर गाँव में सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक समता, समानता के प्रचार और प्रसार की राह पर चलती है। चन्दन सामाजिक बदलाव के लिए कर रहे इस लड़ाई को कई क्षेत्रों में फैलाता है। उसी प्रयास का एक अनमोल परिणाम है रजनी। रजनी उँच-नीच के अंतर को दूर करना चाहती है। दलित और सवर्णों के बीच निर्मित जाती दीवार को तोड़कर समानता लाना चाहती है। आधुनिक महिलाओं में निहित सामाजिक चेतना को रजनी के माध्यम से हमें देखने को मिलता है। छप्पर उपन्यास में रजनी एक समाज सुधारक तथा एक उदार वादी विचारधारा के रूप में नज़र आती है। रजनी दलितों की शिक्षा और समानता का पक्षधर बन जाती है। संविधान ने जिस तरह हर एक सम्मान के साथ जीने की, पढ़ लिखकर जीवन में आगे बढ़ने की, उन्नति की राह पर चलने की हक़ देती है रजनी उसका समर्थन करती है। वह चाहती है कि ये सब सुविधाएं सभी को मिले और उसके लिए अपने पिताजी ठाकुर हरनाम सिंह से कहती है कि 'संविधान के अनुसार देश के प्रत्येक नागरिक को सम्मान और स्वाभिमान पूर्वक जीवन जीने का हक़ है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी स्वेच्छा नुसार व्यवसाय चुनने और जीवन की दिशा निर्धारित करने की स्वतंत्रता है।' रजनी की इन बातों से हम इस निष्कर्ष तक पहुंच सकते हैं कि वह लोकतांत्रिक समाज की कामना करती है। सब के लिए बराबरी की कल्पना करती है। समाज में फैली वर्चस्व वादी सोच को ख़त्म करके समाज में परिवर्तन लाने का सपना देखती है और उसके लिए खुद अपने पिता ठाकुर हरनाम सिंह का विरोध करती है और इतना ही नहीं समाज सुधारक बन जाती है। मातापुर में सामाजिक, आर्थिक समानता लाने में और सामाजिक परिवर्तन लाने में अहम भूमिका निभाती है।

निष्कर्ष-

अनेक वर्षों के पश्चात भी भारतीय समाज में कुछ ख़ास बदलाव नहीं हुआ हैं। जाति अपना पूर्व निर्धारित रूप बदलकर नए रूप में हमारे समक्ष उपस्थित हैं। आज समकालीन समय में दलित एवं आदिवासी समाज को इस तथाकथित वर्चस्व वादी मानसिकता से ग्रसित लोगों ने मुख्य धारा से अलग-थलग करने की कोशिश की है। आधुनिक युग में दलित एवं आदिवासी समाज के महिलाओं की स्थिति अत्यंत चिंताजनक है। शिक्षा का महत्व दलित एवं आदिवासी समाज में धीरे-धीरे हो रहा है। समकालीन भारतीय समाज में कामकाज के क्षेत्र में, दफ्तर, शिक्षा, अस्पताल और औद्योगिकी आदि क्षेत्रों में हो रहें सामाजिक, आर्थिक तथा शारीरिक शोषण पर ध्यान देने की आवश्यकता है। समकालीन लेखक भी इसके ओर ध्यान देते हुए रचनाओं का सृजन कर रहें हैं। इतना ही नहीं इस तरह की कुरीतियों को रोकने के लिए साहित्य के माध्यम से समाज में चेतना का प्रचार भी किया जा रहा हैं। आज भारतीय समाज में जो भी सकारात्मक बदलाव दिखाई दे रहा है उसका श्रेय शिक्षा को ही जाता है।अन्यथा अस्पृश्य समाज की स्थिति आज भी ठीक वैसे ही होती जैसे पेशवा के शासन में विद्यमान थी। लेकिन इस समाज ने शिक्षा ग्रहण कर अपने अस्तित्व को पहचाना है और इसे पहचानने की शक्ति के पीछे डॉ. आम्बेडकर के महान विचार है। जो दलित समाज को शिक्षा का महत्व बताते हुए न्याय संगत रूप से लड़ने की प्रेरणा देते हैं। आज दलित रचनाकार जो कुछ भी लिख रहे हैं उनके प्रेरणास्रोत डॉ. आम्बेडकर तथा उनके द्वारा दिए गए शिक्षा के मूल मंत्र ही है।

*****

सन्दर्भ ग्रन्थ :-

1. डॉ. जयप्रकाश कर्दम 'छप्पर' -1994, सम्यक प्रकाशन, दिल्ली.
2. विमला थोरात 'दलित साहित्य का स्त्री वाद स्वर' -2008, अनामिका प्रकाशन, दिल्ली.
3. डॉ. सुरेश मारुतिराव मुले, 'हिंदी और मराठी दलित साहित्य का एक तुलनात्मक अध्ययन'-नवभारत प्रकाशन, दिल्ली- 2007
4. डॉ. हरिनारयण ठाकुर 'दलित साहित्य समाजशास्त्र' – 2009, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली.
5. सं.रूपचंद गौतम डॉ. जय प्रकाश कर्दम दलित अभिव्यक्ति संवाद और प्रतिवाद -श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली – 2007

स्त्री विमर्श

असम में नारी शिक्षा : एक अवलोकन

प्रशांत लस्कर
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
कामपुर कॉलेज, असम

प्रस्तावना- सृष्टि की मेरुदण्ड स्वरूपा नारी को विश्व के सभी राष्ट्र के समाज में महत्वपुर्ण स्थान प्राप्त है । हमारी सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक विरासत में नारी–गरिमा के उदाहरण की कमी नहीं है, पर नारी का गरीमामय सामाजिक स्वीकृति के साक्ष्य कम ही परिलक्षित होते हैं। वर्तमान मानव समाज में नारी का एक पृथक अस्तित्व है। प्राचीन भारतीय समाज व्यवस्था के अन्तर्गत स्त्रियों का स्थान अत्यन्त गौरवशाली रहा है। ऋग्वेद में स्त्रियों के गौरव को स्पष्ट रूप में वर्णन किया गया है। वैदिक युग में पुत्र एवं पुत्री के सामाजिक अधिकार में असमानता बहुत कम थी। पुत्र के समान पुत्रियों को भी उपनयन, शिक्षा-दीक्षा एवं यज्ञादि का समान रूप से अधिकार प्राप्त हुआ था। विश्ववारा, अपाला, रोमाशा, लोपामुद्रा, अम्भृणीबाक, काक्षिवति, घोषा, जारिता, श्रद्धा, कामायनी, जुहो, पौलासी आदि के द्वारा वेदमन्त्र रचना करने का उल्लेख ऋग्वेद में पाया जाता है । सामवेद में भी मन्त्रद्रष्टा नारीऋषि नोधा, गोपायना, अकृष्टभाषा, मिकता, निरायवी आदि का नाम उल्लेख है। मंत्रद्रष्टा नारी को ब्रह्मवादिनी कहा जाता था। वैदिक युग में नारी-प्राचार्या के रूप में अपिशाला और औदमेधी का नामोल्लेख है। इसी युग की नारीयों में से गार्गी को उच्च शिक्षिता, विदुषी और यशस्विनी नारी ऋषि मानी जाती थी।

कहा जाता है कि माँ ही पहली गुरु होती है। अगर वही पढ़ी लिखी नहीं होती है तो पुरा परिवार अनपढ़ रह जाता है। विद्वानों को मानना है कि एक लड़का को शिक्षित करना मतलब एक व्यक्ति का शिक्षित होना; पर एक लड़की को शिक्षित करना मतलब एक परिवार , एक समाज का शिक्षित होना। इसीलिए कहा जाता है कि परिकल्पित शिक्षा के द्वारा लोग पशुता से देवतुल्य होता है।नारी जागरण, नारीमुक्ति आन्दोलन, नारीवाद आदि आभिधा मात्र है । वर्ग विभाजित समाज व्यवस्था में 'नारी' को एक साधारण वर्ग में रखना उचित नहीं है । विश्व की पूरी आवादी की आधा आवादी नारी है। फिर भी यह अनस्वीकार्य है कि हमारे समाज व्यवस्था के कारण नारी पुरुषों के द्वारा शोषण, अत्याचार और अवहेलना के पात्र रह गयी है। वास्तव में देखा जाता है नारी का पुरुषों के समान शक्ति-सामर्थ्य, मान-मर्यदा, सक्षमता होती है। जीवन में शिक्षा सबसे महत्वपूर्ण है। अगर औरतों को पढ़ाई का ज्ञान न दिया जाये, तो समाज के कीड़े उनका शोषण करने में पीछे नहीं हटेंगे । जब नारी समाज सुशिक्षा से शिक्षिता होंगी तो समाज में प्रचलित कुप्रथाओं से छुटकारा मिलेगा और देश प्रगति की दिशा की ओर बहेंगे। अगर औरत शिक्षित नहीं होती है, तो वह हमेशा समाज के लोगों की रफतार से अपने जीवन को प्रेरणादायक बनाने में सक्षम नहीं हो सकती।

प्राचीन असम में नारी शिक्षा-

प्राचीन असम में प्रचलित आनुष्ठानिक शिक्षा 'गुरुगृह' या 'टोल' में दिया जाता था। संस्कृत भाषा में परम्परागत शिक्षा जैसे - व्याकरण, कानुन, तर्क , दर्शन, धार्मिक रीति-नीति आदि की शिक्षा प्रमुखत: दी जाती थी। अविभक्त नगाँव जिला का कन्दलि, शिलघाट, कलीयाबोर और मरिगाँव के विभिन्न स्थान ऐसे 'टोल' शिक्षा का केन्द्र रहा, जिसका उल्लेख प्राचीन असम के इतिहासों में है । इस 'टोल' शिक्षा केन्द्र में ब्राह्मण पण्डितों को प्राचार्य के रूप में नियुक्त किया गया था। असम के नववैष्णव धर्म के प्रवर्तक , विभिन्न जन-गोष्ठियों को एक असमीया जाति के सुत्र में बांधनेवाले श्रीमन्त शंकरदेव ने प्राचार्य महेन्द्र कन्दलि के 'टोल' शिक्षा केन्द्र में शिक्षा ग्रहण किया था। उल्लेख्य यह है कि इस 'टोल' में नारी शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी। सिर्फ मर्यदापूर्ण अभिजात परिवार के लड़के को ही शिक्षा दी जाती थी। आहोम राजाओं के शासन काल में मुख्य रूप से ब्राह्मण वर्ग, मर्यादापूर्ण परिवार तथा आहोम शासन के राज-काज से जुड़े लोगों तक शिक्षा व्यवस्था सीमित रही। आहोम शासन काल में नारी शिक्षा कोसों दूर रही। 1500 वीं या 1600 वीं शताब्दी में वैष्णव आन्दोलन के समय में असम की नारियों को 'सत्र' या 'नामघर' आदि धार्मिक अनुष्ठान में आध्यात्मिक शिक्षा ग्रहण करने का अवसर मिला था। अभिजात परिवार की लड़कियों को घरेलू अध्यापकों के द्वारा घर में ही पढ़ाई की व्यवस्था की गयी थी।

प्राक् स्वाधीनता कालीन नारी शिक्षा –

एक अच्छे समाज का निर्माण शिक्षा के द्वारा ही संभव हो सकता है। जिसमें नारी और पुरुष इस परिवर्तन की हिस्सा बनती है।सन् 1836 ई. में अमेरिकान व्याप्टिस मिसनारियों का असम में आगमन हुआ था। मिसनारियों को असम की नारी शिक्षा का पहला पथ-प्रदर्शक माना जाता है। सन् 1838 ई. में मिसेस ब्राउन ने असम की शदिया जिला में दस लड़कियों को लेकर पहला प्राथमिक स्कूल स्थापन किया। सन् 1839 ई. में मिसेस काटार के द्वारा शदिया जिला में लड़कियों के लिए दूसरी स्कूल की नींव रखी गयी। इस तरह सन् 1841 में शिवसागर में , सन् 1850 में सिर्फ तेरह लड़कियों के साथ गुवाहाटी में नारी शिक्षा के लिए स्कूल प्रतिष्ठा करके नारी शिक्षा को एक कदम और आगे बढ़ाया। पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था में लड़कियों को शिक्षा ग्रहण के बजाय घरेलू काम-काज में अधिक ध्यान दिया जाता था। उस समय असम की नारी-शिक्षा पीछे रह जाने के कई कारण है, जैसे- घर के मुखिया माता-पिता की शिक्षा का अभाव, सुरक्षा का अभाव, बाल्य विवाह, दरिद्रता, अलग महिला स्कूल की अभाव, स्त्री अध्यापिकाओं की अभाव आदि। इन समस्याओं को ध्यान में रखते हुए मिसनारियों ने समाज में जागरुकता लाने के लिए कई कदम उठाये थे। 19 वीं शताब्दी में ईष्ट इण्डिया कम्पनी के आगमन से नारी शिक्षा का नवजागरण आरंभ हुआ। ईष्ट इण्डिया कम्पनी के पहला गवर्नर लर्ड उइलियम बेन्टिङ को नारी शिक्षा विकास के लिए राजा राममोहन राय, दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि मुर्धण्य व्यक्तियों ने साथ दिया था।

सन् 1870 ई. में कम्पनी द्वारा असम के चार जिले कामरूप, दरंग, नगाँव, लक्षीमपुर में आठ स्कूल प्रतिष्ठा किये गये। साथ ही साथ मिसनारियों ने भी लड़कियों के लिए शिवसागर, नगाँव, कामरूप और खाचिया जयन्तीया जिला (वर्तमान मेघालय) में अलग से चार स्कूलों की नींव रखी। सरकारी तथ्य के अनुसार 1874-75 में प्राथमिक स्कूलों में 875 लड़कियों की दाखिला हुई। लेकिन यह संख्या धीरे-धीरे बढ़ने लगी। 19वीं शताब्दी में कई असमीया युवक उच्च-शिक्षा के लिए कोलकाता गये थे। उनमें से हलिराम ढेकियालफुकन, यज्ञराम खारघरीयाफुकन, आनन्दराम ढेकीयालफुकन, गुणाभिराम बरुवा आदि प्रमुख हैं। इन महान व्यक्तियों के प्रयास से असम में नारी शिक्षा का विकास तथा प्रसारता में अधिक।

महात्मा गांधी के नेतृत्व में स्वराज आन्दोलन और नारी शिक्षा आन्दोलन का साधारण जनता में सजगता वृद्धि हुई। फलस्वरूप सन् 1933 में असम में प्रथम महिला कॉलेज 'लेडिकीन कॉलेज' शिलांग में प्रतिष्ठा हुई। इसके बाद सन् 1939 में गुवाहाटी में 'हेण्डीक गार्लस' कॉलेज की स्थापना के जरिए असम में नारी उच्च-शिक्षा का सुनहरा दिनों की शुरूआत हुई।

स्वाधीनताकालीन नारी शिक्षा –

अनादि काल से वेद, पुराण, उपनिषद आदि धर्म ग्रन्थों में नारी को देवी तुल्य माना गया है। वर्तमान विश्वायन के समय में किसी भी देश के समाज में महिलाओं की उचित भागीदारी के बिना केवल पुरुष वर्ग के योगदान से विश्व का सर्वांगीन विकास संभव नहीं है। शिक्षा के बिना महिलाओं का विकास अधुरा रह जाता है। स्वतंत्रता के बाद भारत में नारी शिक्षा के प्रति अधिक ध्यान दिया गया है। देश की जनता के बीच नारी–शिक्षा के प्रति जागरूकता वृद्धि के लिए सरकार द्वारा की योजनाएँ बनाई गयी तथा आयोग की स्थापना की गयी है। सन् 1948 ई. में राधाकृष्णन आयोग, 1952-53 में

मुदालियर आयोग, 1964-66 में कोठारी आयोग ने समय समय पर नारी-शिक्षा के विकास के लिए परामर्श दिये। प्राईमरी शिक्षा से लेकर कॉलेज, विश्वविद्यालय में नारी-शिक्षा उपयोगी पाठ्यक्रम तथा आर्थिक सहयोगिता आदि के साथ साथ शिक्षा प्रणाली की गुणवत्ता में सुधार हेतु भारत सरकार को उचित सुझाव प्रदान करते रहे हैं।असम में नारी शिक्षा प्रसार-प्रचार हेतु एक नये जागरण शुरू हुई, जिसके फलस्वरूप हेण्डिक गार्लस कॉलेज, डि.चि.बि गार्लस कॉलेज, नगाँव गार्लस कॉलेज, रवीन्द्र सदन गार्लस कॉलेज जैसी कई महिला कॉलेज असम के विभिन्न जिले में प्रतिष्ठा हुई। वर्तमान असम में प्राईमरी विद्यालय से लेकर विश्वविद्यालय में छात्रों की तुलना में छात्राएँ कम नहीं है। सन् 2013 में जोरहाट जिला में असम महिला विश्वविद्यालय स्थापना के जरिए असम में नारी शिक्षा को दो कदम आगे बढ़ाया गया। वर्तमान सरकार द्वारा नारी शिक्षा को प्रोत्साहित करने हेतु स्कूल, कॉलेज में मुफ्त दाखिला, छात्राओं को स्कुटि, लेपटॉप, किताब खरीदने के लिए पैसा देना आदि कई योजनाएँ शुरू किये गये हैं, जो प्रशंसा के योग्य है।सन् 2011 लोकगणना के अनुसार असम की साक्षरता आँकड़ा 73.18 प्रतिशत, इसके विपरीत भारत में साक्षरता आँकड़ा 74.04 प्रतिशत है।असम की नारी-शिक्षा आँकड़ा 67.27 प्रतिशत के विपरीत भारत में नारी शिक्षा 65 प्रतिशत है। इस प्रकार देखा जाता है कि पूरे देश की नारी-शिक्षा की तुलना में असम की नारी शिक्षा करीब आगे है। वर्तमान नारी शिक्षा केवल कॉलेज में कला, विज्ञान, वाणिज्य आदि में सीमित नहीं रहे। मेडिकल, कारिगरी और सैनिक शिक्षा आदि में भी अपनी काबिलियत दिखाने में सक्षम हुई है।

असम की चाय बागान में नारी-शिक्षा–

चाय उद्योग असम की आर्थिक मेरुदण्ड स्वरूप है। 19 वीं सदी में भारत के विभिन्न प्रान्तों से विभिन्न जाति-जनगोष्ठी के लोगों को असम के चाय बागानों में श्रमिक के रूप में ब्रिटिश साहाब द्वारा लाया गया था। इनमें से अंध-प्रदेश, बिहार, छत्तीसगढ़, उड़िसा, उत्तर-प्रदेश, झारखण्ड आदि राज्य प्रधान है। वे लोग शर्तबंध (Bonded Labour) श्रमिक या गिरमीटिया के रूप में चाय बागानों में काम करते थे। वे लोग दलाल या 'आड़काटीया' की बातों में फँसकर असम आये थे। इन लोगों के लिए शिक्षा की व्यवस्था नहीं की गयी। फलस्वरूप चाय-श्रमिक वर्ग शिक्षा व्यवस्था से कई मिल दूर पीछे रह गये। चाय-जनगोष्ठी के जाने-माने लेखक डिम्बेश्वर ताछा ने अपने 'चाय जन गोष्ठीर समाज-संस्कृति' नामक ग्रंथ में 'असमर चाह जनगोष्ठीर माजत शिक्षा एटि आलोकपात' लेख में इस प्रकार उल्लेख किया है –"शिक्षा के अभाव के कारण इक्कीसवीं शताब्दी में भी चाय-जनगोष्ठी के लोग समाज में घुटने टेक कर जीवन जी रहे हैं और शायद कई युगों तक ऐसे ही घुटने टेक कर जीवन जीते रहेंगे। विभिन्न प्रान्त से आनेवाले इन लोगों को असम में चाह मजदूर,चाह-श्रमिक,चाह बनूवा,आदिवासी,चाह जनगोष्ठी आदि नामों से अभिहित किया जाता है। (चाय = चाह असमीया भाषा में)एक जाति तथा देश की राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक विकास की मूल आधार है शिक्षा। असम की कुल जनसंख्या के 20 प्रतिशत चाय-जनगोष्ठी के लोग हैं। लेकिन कुल जनसंख्या की साक्षरता आंकड़ा 8 प्रतिशत है, इसके विपरीत महिला साक्षरता आंकड़ा 1 प्रतिशत से कम है। (पृ-135) चाय-जनगोष्ठी की महिलाओं में शिक्षा के प्रति आग्रह बहुत कम परिलक्षित होता है। वे लोग पढ़ाई से बागान में मजदूरी से कमाई पर अधिक प्राधान्य देते हैं। एक समीक्षा के अनुसार असम की चाय बागान के प्राथमिक स्कूलों में बच्चों की उपस्थिति बहुत कम है।जिसके फलस्वरूप निरक्षता की आँकड़ा दिनों-दिन बढ़ती जा रही है।

उपसंहार-

देश-दुनिया की आधी आबादी नारी है। राष्ट्र के सम्पूर्ण विकास में आधी आबादी की भागीदारी अनिवार्य हो जाती है। इस दृष्टि से नारी की शिक्षा में भागीदारी देश की प्रगति के लिए महत्वपूर्ण है। वास्तव में देखा जाता है भारत में पुरुषों की तुलना में महिलाओं की साक्षरता प्रतिशत काफी कम है। असम में नारी शिक्षा की आँकड़ा कम होने का एक प्रधान कारण है बहुत कम लड़कियों को स्कूल में दाखिला करवाया जाना और उनमें से भी कई बीच में ही स्कूल छोड़ देती है। विशेष रूप में यह आँकड़ा चाय-बागान में अधिक है। दूसरी समस्या है बालश्रम। असम की चाय-बागानों में बाल-श्रमिक बहुत पाये जाते हैं। बालश्रम जैसी सुलगती समस्या के लिए दरिद्रता को ही मूल कारण माना जा सकता है। माता-पिता अपने बच्चों को मजबूरी से मजदूरी के लिए भेजते हैं। साथ-ही-साथ अशिक्षा भी बालश्रम को बढ़ावा देती है। अशिक्षित माता-पिता शिक्षा का महत्व न समझ पाने के कारण तत्कालीन सामान्य लाभ के लिए बच्चों को काम में लगाकर अंधकार की ओर ढकेल देते हैं। क्षेत्र अध्ययन से स्पष्ट होती है कि निरक्षरता की वजह से माता-पिता या अभिभावक अपने बच्चों को पढ़ाई के लिए प्रेरित न कर पाते हैं या बच्चों के अध्ययन से सम्बन्धित कठिनाइयों को दूर कर पाते हैं। चाय बागान स्थित विद्यालयों में आधार भूत सुविधाओं की कमी, अध्ययन के प्रति बच्चों की अरूची तथा बालिकाओं द्वारा गृहकार्यों में मदद व कम उम्र में शादी जैसे कारण भी उन्हें बीच में ही स्कूल छोड़ने को बाध्य करती है। माता-पिता या अभिभावकों की निरक्षरता, गरीबीपन तथा बालश्रम आदि के दुष्परिणामों को देख कर भी हम अनदेखा करते हैं। दु:ख की बात यह है कि 'चाय श्रमिक कानून' लागू होने के 53 वर्ष बाद आज भी चाय बागान की 55.28 प्रतिशत महिलाएँ आनुष्ठानिक शिक्षा से वंचित रही। घर ही बच्चों का पहला स्कूल और माँ पहली गुरु होती है। इसीलिए पहले चाय बागान की महिलाओं को सुशिक्षित, बनानी है ताकि वे अपने बच्चों को शिक्षा से आलोकित कर सके। असम सरकार ने 2020-21 वृत्तीय वर्ष में प्रत्येक चाय बागान में एक उच्च माध्यमिक विद्यालय प्रतिष्ठा करने के लिए पहल की है। यह अत्यंत सुखद विषय है। क्योंकि इससे पूर्व किसी भी चाय बागान में प्राथमिक के बाद शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा नहीं थी। ऐसी स्थिति में बच्चियाँ तो दूर, लड़कों के लिए भी उच्च शिक्षा एक अलीक कल्पना मात्र थी। इन समस्याओं के समाधान के लिए चाय बागानों के मालिक पक्ष, सरकार, सरकारी या गैरसरकारी अनुष्ठान- प्रतिष्ठान एक साथ कंधा से कंधा मिलाकर प्रयास करें तो वह अधिक कारगर होंगे। देश की सरकार ऐसी कई योजनाएँ लेकर आयी है, जो महिलाओं को शिक्षा का हक दिलाती है। इन योजनाओं में 'बालिका विद्यालय योजना', 'बेटी बचाओं बेटी पढ़ाओं', 'राष्ट्रीय महिला प्रोत्साहन योजना' आदि जो नारी को शिक्षा के लिए प्रोत्साहित करती रही है।

******

संदर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. शिक्षा तत्व अध्ययन- यतीन बरुवा,लयार्छ बुक स्टॉल,पान बाजार गुवाहाटी-चतुर्थ सं.-1996
2. नतुन शिक्षा तत्व- डॉ.मरमी गोस्वामी,अशोक बुक स्टॉल,पान बाजार गुवाहाटी,तृतीय -2014
3. आकाश- सम्पादक- डॉ.मंजु लस्कर, प्रकाशक- असम कॉलेज शिक्षक संस्था ,प्रथम -2012
4. भारतर शिक्षा इतिहासर अध्ययन- यतीन बरुवा, लयार्स बुक स्टॉल, नवम प्रकाशन-2010
5. चाह जनगोष्ठीर समाज-संस्कृति- डिम्बेश्वर ताछा,असम प्रकाशन परिषद, गुवाहाटी-781021 ,पहला प्रकाश-2012
6. प्रज्ञा चन्द्रिका-सं.डॉ.अमिया पाटर, प्रकाशक-असम कॉलेज शिक्षक संस्था-2021
7. भारतीय शिक्षार विकास- डॉ.पारूल दास, शांति प्रकाशन,संशोधित प्रकाशन-2014

दलित महिला सशक्तिकरण: एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

डॉ. कमलेश कुमार सिंह
(असिस्टेंट प्रोफेसर)
समाजशास्त्र विभाग, गया प्रसाद स्मारक राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अम्बारी, आजमगढ़
(उ0 प्र0) मो .918726399777

रीता भारती
शोध -छात्रा
समाजशास्त्र विभाग,पं. दीन दयाल उपाध्याय, राजकीय बालिका महाविद्यालय
सेवापुरी, वाराणसी (उ0 प्र0) मो.9185779483 92

सारांश :- दलित महिलाएं वे जो भारतीय सामाजिक व्यवस्था के अनुरूप सबसे निचले पायदान पर स्थित हैं जिन्हें दोयम दर्जे का स्थान प्राप्त है। जो महिलाओं में भी दलित कहलायीं अर्थात् समाज या वंचित लोगों के समूह का वह भाग जो हजारों वर्षों से वर्ण व्यवस्था की बेड़ियों में जकडा़ हुआ था। दलित सशक्तिकरण मुख्य रूप से उपेक्षित वर्गों को अधिकार व सुविधाएं देकर सामाजिक स्थिति में सुधार लाने तथा उनके विकास और अस्मिता की पहचान की धीमी गति को समाज के अन्य हिस्सों के बराबर करने का नाम है। भारतीय समाज का वह वर्ग जो सदियों से उपेक्षित, प्रताड़ित रहा है, उस वर्ग विशेष को राजनीतिक, आर्थिक भागीदारी प्रदान करते हुए सशक्त बनाया जाय ताकि उन्हें भी समाज के अन्य वर्गों के समकक्ष लाया जा सके। महिला सशक्तिकरण का तात्पर्य ऐसी प्रक्रिया से है जिसमें महिलाओं की अपने आप को संगठित करने की क्षमता बढ़ती एवं सुदृढ़ होती है। महिला सशक्तिकरण के अन्तर्गत विकल्पों के चयन और संसाधनों के नियंत्रण की क्षमता के साथ-साथ परिवार एवं समुदाय के साथ सहभागितापूर्ण संबंधों का लाभ उठाने की क्षमता भी शामिल है। इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए महिला सशक्तिकरण का तात्पर्य यह भी है कि महिलाएं सामाजिक आन्दोलनों में भाग ले सकें और उनका नेतृत्व भी कर सकें एवं अपना लक्ष्य प्राप्त करने के लिए प्रगति के मार्ग में आने वाली अनेक समस्याओं का समाधान भी कर सकें।

मुख्य शब्द:-
दलित महिला, सशक्तिकरण, ग्रामीण विकास, उदारीकरण, निजीकरण, वैश्वीकरण.

उद्देश्य: -दलित महिला सशक्तिकरण में मनरेगा की भूमिका का अध्ययन एवं विश्लेषण करना। किसी भी सभ्य समाज की स्थिति उस समाज में महिलाओं की स्थिति देखकर ज्ञात की जा सकती है, महिलाओं की स्थिति ही वह सपना है जो समाज की स्थिति और दृष्टि को स्पष्ट करता है। महिलाएं ही संतति की परम्परा के निर्वाह में मुख्य भूमिका निभाती रहती हैं। फिर भी प्राचीन समाज से लेकर आज के आधुनिक कहे जाने वाले समाज तक महिलाएं उपेक्षित ही रही हैं। महिलाओं की इस उपेक्षा के पीछे कौन-सी परिस्थितियां उत्तरदायी हैं? ऐसी कौन सी रूढ़ियां, मान्यताएं, आडम्बर और बेड़ियां महिलाओं को जकडे हुए हैं कि वे समाज के दबे-कुचले वर्ग का एक बड़ा भाग बनकर रह गयी हैं? सवाल बहुत हैं और उनके जवाब भी। लेकिन जो बात छूट रही है वह है इन सवालों का समुचित निदान और ऐसी समस्याओं को उपजने देने वाली परिस्थितियों से पूरी तरह निजात पाना।

दलित महिला सशक्तिकरण:-

दलित शब्द से अभिप्राय उस शब्द से है, जो भारत में अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता रहा है। दलित शब्द को वर्ग चेतना की दृष्टि से देखें तो यह शब्द जातियों तक मर्यादित न होकर एक वर्ग का प्रतिनिधि बन जाता है। जिसमें समाज के सभी वंचित लोग इसमें शामिल होते हैं। सामान्यतः दलित वह महिलाएं हैं जो भारतीय सामाजिक व्यवस्था के अनुसार सबसे निचले पायदान पर स्थित हैं जिन्हें दोयम दर्जे का स्थान दिया गया है जो दबाए, सताए, शोषित तथा उत्पीड़ित व्यक्तियों के वर्ग को एवं जिनको महिलाओं में भी दलित माना गया वह दलित महिला कहलायीं। सशक्तिकरण का अंग्रेजी शब्द Empowerment का अर्थ-समर्थ करना, अधिकार देना, शक्ति प्रदान करना है। सामान्यतः सशक्तिकरण अधिकार सम्पन्न, शक्तिशाली तथा समर्थ बनाने की प्रक्रिया है। दलित सशक्तिकरण का सामूहिक अर्थ है-समाज या वंचित लोगों के समूह का वह भाग जो हजारों वर्षों से वर्ण-व्यवस्था की बेड़ियों में जकड़ा हुआ है उसे भारतीय संविधान तथा लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था के तहत समानता, स्वतन्त्रता और बंधुता जैसे नागरिक अधिकार ही नही, अपितु विकास के लिए विशेष अवसर तथा प्रावधान उपलब्ध करवाए गये हैं। महिला सशक्तिकरण से आशय महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक में वृद्धि करना। इसमें विशेषकर सशक्तिकृत महिलाओं द्वारा अपनी क्षमता के दायरे में विश्वास का निर्माण शामिल होता है। महिला सशक्तिकरण निम्नलिखित क्षमताओं को मिलाकर है जैसे-

- महिलाओं द्वारा स्वयं निर्णय लेने की शक्ति होना।
- महिलाओं द्वारा उचित निर्णय लेने के लिए जानकारी एवं संसाधनों की उपलब्धता होना।
- बदलाव लाने की क्षमता पर सकारात्मक विचारों का होना।
- सामूहिक निर्णय के मामलों में अपनी बातों को बलपूर्वक रखने की क्षमता होना।
- विकास की प्रक्रिया में स्वयं की पहल द्वारा बदलावों के लिए भागीदारी होना।

सशक्तिकरण का अर्थ उन क्षमताओं का विकास करना है जिनके द्वारा महिलाएं आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो सके, उसके बुद्धि, विवेक का विकास हो सके ताकि पराश्रित न रहकर वे सही-गलत में विभेद कर सके और जीवन की यात्रा को सुगम बना सके और सदियों के मानसिक उत्पीड़न से इन्हें सही निजात मिल सके। जब भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति आज भी चिन्तनीय है तो ऐसी स्थिति में दलित महिलाओं की क्या स्थिति होती रही होगी और आज भी हो रही है जिसको सदियों से दबाया गया, शोषित किया गया है, इसलिए इस भयावह परिस्थिति को देखते हुए महिला सशक्तिकरण आवश्यक हो जाता है। राजनीति में सरकार में सत्ता के संगठनात्मक ढांचे, नेतृत्व और साझेदारी में ज्यादातर पुरूषों का ही वर्चस्व है। धन और जाति महत्वपूर्ण कारक है जो भारतीय राजनीति में मुख्य भूमिका निभाते हैं। राजनीतिक प्रक्रिया में महिलाओं की भागीदारी उनके उत्पीड़न के खिलाफ संघर्ष के लिए केन्द्रित है। महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक स्थिति सीधे निर्णय लेने में उनकी भागीदारी पर निर्भर करती है। दुर्भाग्य से भारत के सभी राजनीतिक दल महिलाओं की समानता के बारे में बहुत अधिक बात करते हैं, लेकिन दलित महिलाओं की राजनीतिक स्थिति और भागीदारी महत्वहीन है। महिला सशक्तिकरण का सही अर्थ तभी सम्भव हो पायेगा, जब वह सम्मान खोये बिना जिस लक्ष्य को पाना चाहती हैं, उसका प्रयास कर सकती हैं और अपने गंतव्य तक पहुंच सकती हैं।

महिला सशक्तिकरण की पहल 1985 में महिला अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन नैरोबी में की गयी जिसका अभिप्राय महिलाओं को पुरूषों के बराबर सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक क्षेत्रों में निर्णय लेने की स्वायतता है। महिला सशक्तिकरण की राष्ट्रीय नीति का उद्देश्य महिलाओं की प्रगति, विकास एवं आत्म-शक्ति को सुनिश्चित करना है। अधिकतर देश आज महिला-पुरूष समानता और महिला सशक्तिकरण को विकास और साथ ही साथ परिवारों, समुदायों और राष्ट्रों के कल्याण के लिए अनिवार्य मानते हैं। कोई भी राष्ट्र, समाज और परिवार समृद्ध और खुशहाल नही हो सकता, यदि उसकी आबादी का 50 प्रतिशत अर्थात् महिलाएं और लड़कियां सम्मान, आजादी और खुशी से वंचित हैं। महिलाओं के लिए भारत में दुनिया का सबसे प्रतिकूल महिला-पुरूष अनुपात है। समाज की उपेक्षित आॅबादी को आगे बढ़ने के समान व समुचित अवसर प्रदान करने से दलित सशक्तिकरण सम्भव है। संविधान लागू होने के बाद से दलित समुदाय को राजकीय क्षेत्र में अवसर प्राप्त हुए हैं, जिसके कारण इस वर्ग में चेतना, संघर्ष और प्रतिबद्धता पैदा हुई है। यही सशक्तिकरण का आधार है। आधुनिक शिक्षा, आर्थिक विकास, राजनीतिक भागीदारी तथा कल्याणकारी नीतियों ने दलितों में चेतना पैदा की है जिससे वे आज अत्याचार एवं उत्पीड़न प्रक्रियाओं का विरोध करते हैं।

शोषण की परम्परागत पहचान के विरोध में दलितों में राजनीतिक, नागरिक अधिकारों के प्रति उत्साह देखा जा रहा है। शिक्षा के प्रभाव के कारण दलितों में स्वयं निर्णय लेने और नेतृत्व की क्षमता विकसित हुई है। उन्हें ज्ञान हो गया है कि उनके जीवन का लक्ष्य क्या है? और वे किस तरह से सुख और सन्तोष की प्राप्ति कर सकते हैं। आज वे अपने जीवन के प्रति पहले की अपेक्षा अधिक जागरूक हो गये हैं। आज दलित समाज अपनी सक्षमता का परिचय देश के सम्मुख रख रहे हैं। आज इनमें यह निराशाभाव समाप्त हो रहा है कि वे क्या नही कर सकते हैं? इन्होंने देश को अपनी बौद्धिक सक्षमता का परिचय ही नही, अपितु नेतृत्व भी किया है। ज्योतिबा फुले को भारत में महिला शिक्षा का जनक और सावित्रीबाई फुले को भारत की प्रथम महिला शिक्षिका कहा जाता है। इसलिए फुले दम्पति को महिला शिक्षा के लिए कल्याणकारी कार्यों को करना विशेषकर दलित महिलाओं के लिए एक मिसाल था। लेकिन आधी आबादी आसमान में तरक्की की उड़ान भर सके, इसके लिए सामाजिक ताना-बाना को और दुरूस्त करना पड़ेगा।

21वीं सदी में भी महिलाएं पुराने जीवन मूल्यों, नैतिक मानदण्डों और सामाजिक परिधि के घेरे में बंधी हैं। दलित महिलाओं का सशक्तिकरण अर्थात् महिलाओं के लिए स्थिति की समानता प्राप्त करना उन विशिष्ट उद्देश्यों में से एक था जो भारतीय संविधान की राज्य के नीति की प्रस्तावना, मौलिक अधिकारों और निर्देशात्मक सिद्धान्त में निहित है। सामाजिक परिवर्तन एक जटिल प्रक्रिया है जो महिलाओं के विभिन्न वर्गों को समान रूप से प्रभावित नही करती है इसलिए महिलाओं की स्थिति को आसानी से परिभाषित नही किया जा सकता है। भारत जैसे देश में राजनीतिक शक्ति लम्बे समय से कुछ वर्चस्व वाली उच्च जाति के पुरूषों का एकाधिकार रही है, जिसने दलित महिलाओं की स्थिति में बेहतरी के लिए बदलाव से वंचित रखा। यह स्पष्ट रूप से समाज की असमानताओं की स्थिति को दर्शाता है। सत्ता का आनन्द लेने वाली महिला नेताओं ने भी महिलाओं की उपेक्षा की हैं और उनकी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति को सुधारने का प्रयास नही किया है। लेकिन उन्होंने सामाजिक कार्यक्रमों, महिलाओं के कल्याण के लिए कानून बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी होंगी।

महिलाओं के लिए प्रथम चुनौती तो यही है कि बदलते परिवेश में सामाजिक मान्यताओं का सम्मान करते हुए वह समाज के दृष्टिकोण को बदल डाले कि 'महिला ही महिला की सबसे बड़ी शत्रु हैं? महिलाओं की समस्याओं के समाधान हेतु महिलाओं को ही आगे आकर महिलाओं को समझना होगा, यह भी एक चुनौती है पर सबसे बड़ी चुनौती यही है कि महिलाएं अपने अनेक रूपों को (बहन, बेटी, पत्नी) सहज रूप में बनाए रखकर अपनी लड़ाई लड़ सकती हैं या नहीं क्योंकि अति उच्छृखलता, अतिउन्मुकता, अति परकीयकता भारतीय महिलाओं, भारतीय परिवेश और परिवारिकता के विरूद्ध है। यदि महिलाओं को रचनात्मक जीवन जीना है और समाज में अपनी पहचान बनानी है तो उसे पुरूष समाज द्वारा खीची गयी लक्ष्मण रेखा को लांघना ही होगा और समाज में जो भी स्थितियां, चुनौतियां आयेगी उनका डटकर मुकाबला करना होगा। कोई जरूरी नही है कि यह लक्ष्मण रेखा लांघने के बाद उसे सब कुछ मिल जायेगा, जिनसे पाना है या जिनके बीच से होकर गुजरना है वह आज जहां खड़ी हैं कही उससे अधिक भयानक स्थितियां उसके सामने आ सकती है लेकिन इसी के बीच से अपना सफर तय करना और अपनी पहचान बनानी है। महिलाओं की सशक्तिकरण, सामाजिक चेतना एवं जागरूकता उत्पन्न करने के लिए उन्हें आर्थिक रूप से स्वतन्त्र बनाने और उनकी आय बढ़ाने हेतु भारतीय सरकार द्वारा महिलाओं के लिए कई विकास और कल्याणकारी योजनाओं का क्रियान्वयन किया जा रहा है जिनमें से प्रमुख योजनाएं एवं कार्यक्रम इस प्रकार है-सर्वप्रथम ग्रामीण क्षेत्रों में महिला तथा बाल विकास कार्यक्रम (डी. डब्ल्यू. सी. आर. ए.), समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आई. आर. डी. पी.) की एक उपयोजना के रूप में 1 सितम्बर, 1982 में प्रारम्भ किया गया। जननी सुरक्षा योजना 1 अप्रैल 2005, मनरेगा योजना 2 फरवरी 2006, इन्दिरा गांधी मातृत्व सहयोग योजना 2010, सबला योजना 2010, राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन 2011, बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ योजना 22 जनवरी 2015, सुकन्या समृद्धि योजना 22 जनवरी 2015, प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना 1 मई 2016, फ्री सिलाई मशीन योजना 2021, यू0पी0 सरकार (महिला सामथ्र्य योजना) 22 फरवरी 2021. इस कार्यक्रम का उद्देश्य गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहे ग्रामीण परिवारों की महिलाओं के लिए स्वरोजगार के उपयुक्त अवसर प्रदान करना है। शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और अन्य सभी अवसरों में सामाजिक विभेद उनके विवेक और चेतना को पंगु कर देते हैं। ऐसी स्थिति में सशक्तिकरण के सरकारी एवं गैर-सरकारी प्रयासों से औपचारिक शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधायें और रोजगार उपलब्ध करवाना आवश्यक है परन्तु इन अवसरों से लाभ उठाकर भी महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन आए यह आवश्यक नही है, इसलिए महिलाओं के आन्तरिक सोच में परिवर्तन लाने के लिए प्रचार-प्रसार भी आवश्यक है। विश्व बैंक की एक रिपोर्ट 2022-23 के अनुसार यदि महिलाओं को पुरूषों के बराबर रोजगार दिये जाएं तो (जी.डी.पी.) सकल घरेलू उत्पाद विकास दर 9 प्रतिशत से ऊपर रह सकती है।

बहुत से अध्ययन से पता चलता है कि उपेक्षित जातियों में किस तरह अपनी जाति को लेकर एक नई चेतना जाग्रत हो रही है और वे किस तरह देश की प्रजातांत्रिक प्रक्रिया में हिस्सा लेने के लिए आगे आ रही हैं। भेदभाव के खिलाफ और सशक्तिकरण के लिए सरकार की नीति अपनायी गयी है, जैसे विभिन्न क्षेत्रों में भेदभाव के खिलाफ सुधारात्मक उपाय और सुरक्षा उपाय, विशेष रूप से आर्थिक क्षेत्र में विकास और सशक्तिकरण उपाय। सुधारात्मक उपायों में 1955 के अस्पृश्यता विरोधी अधिनियम, 1979 में नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम के रूप में नामित किया गया और अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) 1989 शामिल हैं। इन अधिनियमों के अन्तर्गत, सार्वजनिक स्थानों एवं सामुदायिक जीवन में अस्पृश्यता और भेदभाव की प्रथा को अपराध के रूप में माना जाता है। इस तरह से अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति महिलाओं द्वारा सामना की जाने वाली समस्याओं का विभिन्न सरकारी कार्यक्रमों में विशेष स्थान है। इन महिलाओं को न केवल उच्च-जाति समकक्षों की तरह भेदभाव का सामना करना पड़ता है बल्कि वे इसके साथ ही विशेष रूप से अपनी जाति और जातीय पृष्ठभूमि से सम्बन्धित समस्याओं का सामना करती हैं, जिसमें साक्षरता और शिक्षा का बहुत कम स्तर, श्रम पर निर्भरता, रोजगार और मजदूरी में भेदभाव, अकुशल, कम भुगतान वाले और कभी-कभी खतरनाक हस्तचालित नौकरियों में भारी भीड़, हिंसा व यौन-शोषण तथा देवदासी प्रणाली जैसे धार्मिक और सामाजिक अंधविश्वासों की प्रधानता के कारण होने वाले अत्याचार शामिल हैं। इसलिए आर्थिक सशक्तिकरण, शैक्षिक विकास और लिंग से सम्बन्धित मुद्दों के उद्देश्य से प्रत्येक कार्यक्रम में, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की महिलाओं पर विशेष ध्यान दिया जाता है। उनकी विशिष्ट समस्याओं को दूर करने के लिए कानून लागू किये गये हैं और योजनाएं भी विकसित की गयी हैं। केन्द्र सरकार के कुल धन का लगभग एक-तिहाई आर्थिक सशक्तिकरण के लिए आवंटित किया जाता है, शिक्षा के लिए लगभग आधा तथा शेष एक का पांचवा हिस्सा सामाजिक सेवाओं के लिए आवंटित किया जाता है।

आज वैश्विक स्तर पर महिला अधिकार और महिला सशक्तिकरण की बातें हो रही हैं जिसका उद्देश्य आधी आबादी को समाज की मुख्य-धारा से प्रत्यक्ष रूप से जोड़ना है। भारतीय समाज में शिक्षा व्यवस्था को दुरूस्त करना और महिलाओं को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करना महिला सशक्तिकरण की दिशा में एक अहम और प्रभावशाली कदम हो सकता है चूंकि शिक्षा एक ऐसा उपकरण है जो समाज में विचारों का संचार करती है और सही-गलत में फर्क सिखाती है।

दलित सशक्तिकरण के लिए भारतीय सरकार का परिप्रेक्ष्य:-

दलित सशक्तिकरण के लिए भारतीय सरकार का परिप्रेक्ष्य निम्नलिखित प्रकार है, जैसे-सरकार का दलित सशक्तिकरण अर्थात् दलितों के उत्थान की दिशा में दृष्टिकोण और हस्तक्षेप, मुख्य रूप से दो प्रमुख विचारों पर आधारित हैः अतीत में उपेक्षा के कारण अनुसूचित जातियों को विरासत में मिले अनेक बहिष्कारों पर काबू पाना, और जहां तक सम्भव, उन्हें समाज में दूसरों के साथ बराबरी पर लाना। वर्तमान में बहिष्कार और भेदभाव के खिलाफ संरक्षण के साथ देश की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रक्रियाओं में उनकी

प्रभावी भागीदारी को प्रोत्साहन प्रदान करना। इन लक्ष्यों तक, सरकार के दृष्टिकोण का मतलब द्विस्तरीय रणनीति, जिसमें भेदभाव-विरोधी या सुरक्षा उपायों और विकास तथा सशक्तिकरण के उपायों को अपनाना था।

वास्तविकता तो यह है कि जब तक निर्णय प्रक्रिया में सम्पूर्ण मानव आबादी के इस आधे भाग की आवाज नही सुनी जायेगी, तब तक हमारी संस्थाओं की निष्पक्षता पर प्रश्न चिन्ह लगा रहेगा। विशेषकर दलित महिलाओं के लिए वस्तुतः समाजीकरण की निश्चित प्रकार की प्रक्रिया तथा विविध सामाजिक दबावों के कारण औसत भारतीय दलित महिला इन क्षेत्रों में स्थान प्राप्त करने में स्वयं को अक्षम महसूस करती हैं। महिला सशक्तिकरण हेतु अत्यन्त आवश्यक है कि प्रशासनिक संरचना के प्रत्येक स्तर पर महिलाओं की गुणात्मक व साथ ही संख्यात्मक सहभागिता भी अनिवार्य रूप से हो। आज घूंघट उठने पर बेशर्म, बेअदब जैसे अपमानित शब्दों से दूर महिलाएं समाज में एक स्थान बनाने में कामयाब हुई हैं। हालांकि सदियों से चली आ रही रूढ़ियों और परम्पराओं को टूटने में समय लगता है। ये न आज महिलाओं के प्रति सोच में लोगों का नजरिया भी बदला है। अब जरूरत है कि समाज के लिए आदर्श बन चुकी कुछ महिलाओं को सामान्य जीवन का सामाजिक सच बनाया जाय।

निष्कर्ष:-उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि सशक्तिकरण द्वारा दलित महिलाओं की स्थिति और दृष्टिकोण में परिवर्तन आया है। साथ ही साथ विभिन्न योजनाओं द्वारा दलित महिलाओं में उत्साह, आत्मविश्वास व नेतृत्व की भावना विकसित हुई है। इससे यह सिद्ध हो चुका है कि पुरूषों के साथ-साथ महिलाएं भी एक महत्वपूर्ण स्तम्भ की तरह कार्य करती हैं और वह किसी भी क्षेत्र में पुरूषों से कम नही हैं। अतः अभी भी यानि वर्तमान समय में भी विभिन्न प्रयासों के बावजूद भी दलित महिलाओं की स्थिति पूर्णरूप से सन्तोषजनक नही है, इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि ग्रामीण दलित महिलाओं की कार्य करने की क्षमता को और अधिक सशक्त किया जाए। वर्तमान समय में दलित महिलाओं की प्रस्थिति को सुदृढ़ करने हेतु विभिन्न प्रयास किये जा रहे हैं फिर भी खेद की बात यह है कि आज भी दलित महिलाओं को वह स्थान प्राप्त नही है, जैसा कि होना चाहिए एवं इनकी स्थिति चिन्ताजनक है।

******

संदर्भ-सूची:-

1. कुरूक्षेत्र, मार्च. 2007. महिला सशक्तिकरण. नई दिल्ली: ग्रामीण विकास मंत्रालय.
2. **https://www.uok.ac.in>Sarita.**
3. क्रॉनिकल, सितम्बर. 2010. सामाजिक मुद्दे.
4. शर्मा, प्रो0 यशोधरा. महिला सशक्तिकरण के आयाम. 2018-2020. स्पन्दनः संयुक्तांक.
5. अमर उजाला, 29 मार्च. 2013.
6. **https://www.allstudyjournal.com>**
7. ग्रामीण विकास समीक्षा, महिला सशक्तिकरण. पत्रिका. अंक-57. जनवरी-जून. 2016.ISSN 0972-5881.हैदराबादः राष्ट्रीय ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज संस्थान.
8. योजना, सितम्बर. 2016. नारी सशक्तिकरण.
9. काजल, डॉ. नीतू. 2013. दलित सशक्तिकरण. नई दिल्ली: संजय प्रकाशन.
10. सिद्धार्थ, नन्दकिशोर. 2015. युग प्रवर्तक महिलाएं: महिला सशक्तिकरण का सफल नेतृत्व. नई दिल्ली: सम्यक प्रकाशन.
11. दैनिक जागरण, 05 फरवरी. 2021. पृ-8.
12. बौद्ध, शांतिस्वरूप. 2016. क्रांतिज्योति. सावित्रीबाई फुले की अमर कहानी. नई दिल्ली: सम्यक प्रकाशन.
13. **htttps://gadyakosh.org>** डॉ. तारा. दलित महिला एवं उनका सशक्तिकरण.
14. नारायण, बद्री. 2014. दलित वीरांगनाएं एवं मुक्ति की चाह: उत्तर भारत में दलित संस्कृति, पहचान और राजनीति. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
15. थोरात, सुखदेव/सभरवाल. निधि सदाना. 2019. दलित सशक्तिकरण: सामाजिक और आर्थिक दृष्टिकोण. नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशन्स इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड.
16. कुरूक्षेत्र, मार्च. 2015. महिला सशक्तिकरण. नई दिल्ली: ग्रामीण विकास मंत्रालय.
17. सिंह, जे. पी. 2019. आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन. 21वीं सदी में भारत. नई दिल्ली: PHI Learning Private Limited प्रकाशन.
18. थोरात, सुखदेव. 2017. भारत में दलित: एक समान नियति की तलाश. नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशन्स.
19. परीक्षा मंथन, समसामयिक निबन्ध. 2003-04. इलाहाबाद: मंथन प्रकाशन.

हिन्दी साहित्य में पारिस्थितिक नारीवाद

अन्वेषा कबिरत्ना

शोध छात्रा (पीएच0डी0)

विश्व भारतीय विश्वविद्यालय-बेस्ट बंगाल मो0-9903150239

शोध सार-

भारतीय साहित्य में प्रकृति में स्त्री के सभी रूप देखें गए है धरती और स्त्री की समानता हर क्षेत्र में दिखाई देती है। पारिस्थितिक नारीवाद के अनुसार यह समाज ने स्त्री एवं प्रकृति को हमेशा उपभोग की वस्तु के रूप में देखा जिसके कारण सबसे अधिक शोषण भी इनका ही हुआ। सम्पूर्ण विश्व की रक्षा करने का गुण जिनमें विद्यमान है उन्हीं का शोषण अनादि काल से हो रहा है और स्वयं अपनी और पर्यावरण की रक्षा करने सबसे अधिक दायित्व स्त्री स्त्रियों पर ही है। पारिस्थितिक स्त्रीवाद में स्त्री वर्ग मानवेत्तर समाज के अलावा पर्यावरण के प्रति सहानुभूति प्रकट करती है।

बीज शब्द - इको-फेमिनिज्म, पर्यावरण, शोषण, क्रांति, प्रकृति, नारीवाद।

मूल आलेख

साहित्य समय और समाज के साथ चलते हुए उन्नत भविष्य के सर्जन का दूसरा नाम है, जीवन और जगत की कोई भी समस्या उसकी परिधि से बाहर नहीं है। इसलिए कहा भी गया है कि 'जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि। दरअसल ब्रम्हांड में जो कुछ भी मौजूद है वह सभी साहित्य की संवेदना और चिंता का विषय है। स्त्री और प्रकृति की अनन्यता भारतीय विश्वास में पहले ही जन्म चुकी है। प्रकृति सुंदर है, प्रेरणा है, जन्मदात्री है, समस्या चराचरों की संपोषक है, सदानीरा है, आत्मदान का संदेशवाहक है, क्षमा का पर्याय है, ऐसे कितने विशेषणों से अलंकृत है प्रकृति। स्त्री भी उपर्युक्त सभी विशेषणों की अधिकारिणी है। सम्पूर्ण विश्व के रक्षारूप जिनमें विद्यमान है उन दोनों की स्त्रैणता की सीमातीत शोषण अनादि काल से चलता आ रहा है। इन दोनों के सतर्क पोषण के अभाव में ये दोनों के समुचित पोषण की अनिवार्यता की पहचान सचमुच स्त्री में है तो वहाँ प्रगति, विकास तथा मानवीय दृष्टि में संयम आने में देर नहीं लगेगी। पाश्चात्य परिस्थितिक दर्शन की प्रमुख शाखा के रूप में विकसित पारिस्थितिक स्त्रीवाद इको-फ्रेमिनिज्म यही तो लक्षित कर रहा है। प्रकृति और स्त्री का अनुचित शोषण बड़े पैमान पर हो रहा है, इन दोनों को बचाने का दायित्व स्त्री के ऊपर है।

आधुनिक फेमिनिस्टों में सबसे पहले सीमोद द बुआ में स्त्री और प्रकृति को साथ रखकर प्रस्तुत किया। पुरूषसत्तामक समाज ने स्त्री और प्रकृति की समानता पहचानकार दोनों का वस्तुकरण किया। इसलिए पुरूष ने स्त्री और प्रकृति को अपनी शक्ति के अधीन बनाकर नई संस्कृतियों का निर्माण करना शुरू किया। स्त्री और प्रकृति से भी बढ़कर श्रेष्ठ की सृष्टि करने की व्यग्रता में पुरूष प्रकृति को खोकर औद्योगिक संस्कृति के निर्माण में लग जाता है। सीमोद द बुआ के अनुसार पुरूष द्वारा निर्मित औद्योगिक संस्कृति में आर्थिक पहलू ही नहीं मनोवैज्ञानिक पहलू भी है। विकास की ये चेष्टाएं पुरूष के लिए विस्मृति है, स्त्री और प्रकृति को भूलने और उनसे दूर जाने का मार्ग भी है। शेरी आप्नर नामक अमेरिकी केमिनिस्ट ने 1971 में यह सवाल उठाया कि क्या संस्कृति के लिए प्रकृति के समान है पुरूष के लिए स्त्री? Is Female to Male as Nature is to Culture इसका तात्पर्य यह है कि बुआ के चिंतन एवं शेरी के सवाल में परिस्थितियों स्त्रीवाद नामक दर्शन का बीजरूप विद्यमान है। बीसवीं शताब्दी के सातवें दशक में नारीवादी आंदोलन को नवीन चेतना प्रदान करने हेतु परिस्थितिक स्त्रीवाद अथवा इको-फेमिनिज्म विकसित हुआ। इस संकल्पना की दार्शनिक व्याख्या सबसे पहले फ्रेंच फेमिनिस्ट फ्रांस्वा द यूबोन ने प्रस्तुत की। 1974 में उनके द्वारा फ्रेंच भाषा में रचित 'फेमिनिज्म अथवा मृत्यु', 'इको-फेमिनिज्म का समय' नामक अध्याय में परिस्थितिक स्त्रीवाद का प्रारंभ देख सकते हैं। फ्रांस्वा के अनुसार भूमि के नाश का दायित्व पुरूषों पर है। उनके आक्रमणों से भूमि को मनुष्य की भलाई के लिए बचाए रखने में स्त्री समर्थ है। पांच हजार वर्षों पहले खेती स्त्रियों के नियंत्रण में थी। उसे पुरूष ने अपने अधीन कर लिया। मिट्टी की उत्पादन क्षमता के साथ स्त्री की उर्वरता को भी अपने अधीन कर पुरूष ने अपनी सत्ता को आगे, बढ़ाया।

आज की मुख्य दो समस्याएं हैं-सीमा से बाहर जनसंख्या वृद्धि और प्राकृतिक संसाधनों का नाश यह दोनों पुरूष लिंगाधिपत्य की सृष्टियां हैं।

फ्रांस्वा ने इको-फेमिनिज्म को मानवतावाद के रूप में देखा। इसका लक्ष्य पुरूष के बदले स्त्री को प्रतिष्ठित करना नहीं है। इसका मकसद अधिकार और उसकी संरचना को शिथिल करना है। इसके साथ अमेरिका में 'Institute of Social Ecology' में 'इको-फेमिनिज्म' शब्द का अंग्रेजी में प्रथम बार प्रयोग किया। इस संस्था ने 1976 में इको-फेमिनिज्म का पाठ्यक्रम चलाया।

भारत में प्रकृति को बचाने हेतु स्त्री हमेशा अगुआ रही है। वैष्णवी आंदोलन में पेड़ काटने के बदले में अमृता देवी ने अपना सिर रख दिया था। वैसे ही चिपको आंदोलन में भी गांधी जी के विचारों से प्रेरित उनकी शिष्याएं शुरू में आंदोलन के नेतृत्व में थी। भारत में सबसे ज्यादा सक्रिय इको-फेमिनिज्म की चिंतक एवं कार्यकत्री वंदना शिव है। उन्होंने इको-फेमिनिज्म पर केंद्रित कई किताबें लिखी है। वंदना शिव के अनुसार पितृसत्तात्मक पूँजीवादी विश्वदृष्टि से इस पृथ्वी के सारे जीवों के विमोचन एवं संरक्षण के लिए स्त्रियों को लड़ना चाहिए। तीसरी दुनिया की स्त्रियों पर भूमण्डलीकरण और उपनिवेशवाद का जो दुष्परिणाम पड़ा। उसकी चर्चा उनकी कई किताबों में उन्होंने बहुत ही संजीदगी से की है। पाश्चात्य देशों में प्रचलित आध्यात्मिक इको-फेमिनिज्म से इको-फेमिनिज्म को अलग करके समाजवाद के परिप्रेक्ष्य में देखने कार्य भी उन्होंने किया है।

हिन्दी साहित्य में परिस्थितिक स्त्रीवाद- साहित्य में स्त्री और पृथ्वी की समानता हर कहीं बिखरी पड़ी है। ऋग्वेद में कई विदुषियों का योगदान है जिसमें ब्रह्मवादिनी रोमशा का कथन स्त्री विमर्श का कहलाता है। हिन्दी साहित्य की महत्वपूर्ण रचनाएं जिनमें परिस्थितिक स्त्रीवाद की विशेषताएं विद्यमान है-रामनरेश त्रिपाठी, 'ग्रामगीत', महादेवी वर्मा 'श्रृंखला की कड़िया', 'मेरा परिवार' सुमन राजे की कविताएं, अनामिका की रचनाएं 'अनुष्टुप', 'चिट्ठी लिखती हुई औरत', निर्मला पुतुल की कविता 'अपने घर की तलाश मं, जयशंकर प्रसाद की रचना कामायनी, संजीव का उपन्यास घर, रणेन्द्र का ग्लोबल गांव के देवता, 'गायब होता देश', 'थोड़ा सा स्त्री होना चाहता हूँ' आदि।अमृता प्रीतम की 'विंजर में भी हमें परिस्थितिक स्त्रीवाद के दर्शन होते हैं। इको-फेमिनिज्म का मूल लक्ष्य स्त्री-पुरूष भेद के बिना मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखने, समझने और मानने वालों के एक संसार के सृजन में काम करता है। पिंजर की कथा-नायिका पूरो इस कसौटी पर बिल्कुल खरी उतरती है। वह स्वयं शोषित है परंतु न केवल अपने आप को संभालती है बल्कि अपने जैसे शोषितों का सहारा भी बनती है। वैसे तो इस उपन्यास की कथा-वस्तु भारत-पाक विभाजन की त्रासदी पर आधारित है। किंतु इसके माध्यम से लेखिका ने स्त्रियों पर हुए अत्याचार, अन्याय व शोषण की ही दास्तान कही है।पूरो स्वयं शोषित है किंतु अन्य शोषितों के लिए उसके हृदय में अपार स्नेह है। पूरो के गांव में एक पगली रहती थी। जब स्त्रियों को उस पागल के गर्भवती होने का पता चलता है तो उसकी दशा देखकर अत्यंत दुखी होती है। पुरो की मनः स्थिति का वर्णन लेखिका इस प्रकार करती है, ''जिसके पास न सुंदरता थी, न जवानी थी, ना मांस का एक शरीर, जिसे अपनी सुध न थी, जो केवल हड्डियों का एक जीवित पिंजर ..... चीलों ने उसे भी नोच-नोच कर खा लिया। वह पागल की मृत्यु के बाद उसके बच्चे को अपना दूध पिलाती है, और अपने छोटे-पुत्र के रूप में उसका लालन-पालन करती है। यही तो एक स्त्री की विशेषता है जो सम्पूर्ण दुनिया के जीवों को एक साथ सामरस्य की डोरी में बांधने में समर्थ है। रणेन्द्र जी ने 'ग्लोबल गांव के देवता' उपन्यास में प्रकृति एवं स्त्री शोषण को कुछ इस प्रकार दर्शाया है,''मीलों तक पसरे पहाड़ के ऊपर का यह चौरस इलाका मन को उचाट कर रहा था छिटपुट जंगल बाकी खाली दूर-दूर तक फैले उजाड़-बंजर से खेत। बीच-बीच बांक्साइट की खुली खदानें जहां से बांक्साइट निकले जा चुके थे। मानो धरती मां के चेहरे पर चेचक के बड़े-बड़े धब्बे हो।'' स्त्री शोषण का चित्र इस प्रकार है ''कसाइयों के हाथ में पड़ी गाय-सी ये बेटियां बार-बार पेट गिराने से असमय ही बूढ़ा जाती है। ये नवयुवती-वृद्धाएं दुख विषाद से स्याह चेहरा-देह लिए जहां से गुज़रती हैं, एक उदासी सी छा जाती हैं।'' रणेन्द्र कृत 'गायब होता देश' में प्रमुख पात्र सोमेश्वर मुण्डा तथा स्त्री पात्र सोनमनी दीदी जैसे चरित्रों के संघर्षों के माध्यम से पूरा मुण्डा इतिहास का वर्तमान आवाजाही दर्शाया गया है। केरल की प्रसिद्ध साहित्यकार के, वनजा भी स्त्री और धरती में समानता की बात करती है। दुनिया की प्रकृति पर पितृसत्ता के अधिकार के खिलाफ स्त्री एवं प्रकृतित केंद्रित इको-फेमिनिज्म की भूमिका महत्वपूर्ण होती जा रही है। उनकी तीन किताबो की श्रृंखला-'साहित्य का परिस्थितिक दर्शन','इकोफेमिनिज्म' और हरित भाषा वैज्ञानिक विमर्श में इस विषय पर महत्वपूर्ण काम किया है। महादेवी वर्मा कृत 'मेरा परिवार', जिसमें मानवेत्तर प्रणियों की कथा को आधार बनाया है। मानवेत्तर प्राणियों के साथ करूणा, प्रेम और आत्मीयता से भरी हुई। यह रचना कई बार पाठकों को अचम्भित करता है। इस रचना में महादेवी जी ने जीव जन्तुओं व पशु-पक्षियों के इतने सुंदर पलों को उभारा जिन्होंने वर्मा जी के जीवन में एक गति प्रदान की, उनके जीवन के संगी बने। इसमें मोर, गिलहरी, हिरणी, कुत्ता, घोड़ी आदि जानवरों का उल्लेख है। महादेवी जी को प्रकृति, पशु-पक्षियों में बहुत प्रेम था। महादेवी वर्मा जी की इन्हीं विशेषताओं से प्रभावित होकर इलाचन्द्र जोशी लिखते है-''एक साधारण से लघुप्राणी गिल्लू की उसके मानवेत्तर जीवन के क्षुद्र कोटगत मंच से इस सफाई के साथ मानवीय मंच के व्यापक परिप्रेक्ष में उभारकर उतारा गया है कि सांस को बार-बार रोककर उस नाटक के क्लाइमेक्स की उत्सुकता की पूर्ति के लिए उन्मुख होना पड़ता है। महादेवी वर्मा अपनी आत्मिका में लिखती है कि ''स्मर्शित यात्रा में पशु-पक्षी ही मेरे प्रथम संगी रहे हैं, किंतु इसे दुर्योग्य ही कहा जायेगा कि मनुष्य ने उनसे यह प्राथमिकता अनायास छीन ली।'' महादेवी वर्माजी पारिस्थितिक स्त्री विमर्श का सबसे सशक्त उदाहरण है।

आज सबसे ज्यादा चिंता का विषय पर्यावरण और स्त्री शोषण है इसलिए आज के समय में इसकी प्रासंगिकता और भी अधिक बढ़ जाती है। प्राचीन समय में खेती करने का अधिकार स्त्री वर्ग के पास था परंतु बाद में इस अधिकार का हस्तातरण पुरूषों को कर दिया गया और महिलाओं को परिवार संभालने का काम दे दिया गया। इस पर नारीवादी यह तर्क देते हैं कि पुरूषों को खेती करने का अधिकार देना ही वह समय था जब पर्यावरण का नाश होना शुरू हुआ। फिर चिपको आंदोलनों जैसे उदाहरण भी इस बात का साफ संकेत देते हैं कि महिलाएं हमेशा पर्यावरण के संरक्षण के पक्ष में रही हैं।अंततः हम यह कह सकते हैं कि इको-फेमिनिज्म एक अंतर अनुशासनात्मक आंदोलन है, जो प्रकृति, राजनीति, स्त्री और आध्यात्मिकता के संबंध में नए ढंग से सोचने के लिए प्रेरित करता है। यह सिद्धांत सभी पितृसत्तात्मक व्यवस्थाओं को नकारता है और पुरूष द्वारा स्त्री का जो शोषण हो रहा है। उससे पर्यावरण शोषण को जोड़ता है।

****

संदर्भ :-

1. के0 बनजा: इको-फेमिनिज्म, वाणी प्रकाशन, 2013
2. रमणिका गुप्ता: आदिवासी विकास से विस्थापन, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2008
3. रणेन्द्र: ग्लोबल गांव के देवता, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2010
4. रणेन्द्र: गायब होता देश, पेंगुइन बुक्स इंडिया, 2014 प्रकाशन, 2020
5. विजय मोहन सिंह: बीसवीं शताब्दी का हिन्दी साहित्या, राजकमल प्रकाशन, 2005
6. अनामिका: स्त्री: विमर्श का लोकपक्ष, वाणी प्रकाशन, 2016
7. सुमन राजे: हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास, भारतीय ज्ञानपीठ, 2006
8. रणेन्द्र: थोड़ा सा स्त्री होना चाहता हूँ, शिल्पायन, दिल्ली प्रकाशन, 2010
9. महादेवी वर्मा: मेरा परिवार, लोकभारती प्रकाशन
10. सुजाता: आलोचना का स्त्री पक्ष, राजकमल प्रकाशन, 2021
11. Maria Meis and Vandana Shiva : Ecofeminism, Rawat Publications, 1993
12. Mary Mellor : Feminism and Ecology, New York Univ. Pr., 1998
13. ममता कालिया: महिला लेखन के सौ वर्ष, लोक भारती प्रकाशन

भगवानदास मोरवाल के उपन्यासों में स्त्री- संसार

सुबाष
शोध- छात्र
हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय
हैदराबाद,तेलंगाना -500046 मो.8808447947

किसी भी समाज के विकास का वास्तविक मानदण्ड वहाँ की आर्थिक स्थिति, फैशनपरस्त आधुनिक जीवन तथा राजनैतिक गतिविधियाँ ही नहीं होती हैं अपितु उस समाज की सामाजिक संरचना को भी विकास के केन्द्र में रखा जाता है। हमारा समाज विषमताओं से भरा हुआ है। यहाँ जाति, धर्म, लिंग, सम्प्रदाय, बोली आदि के आधार पर सामाजिक असमानता मौजूद है। ऐसे में सामाजिक समायोजन न हो पाने में कई सामाजिक समस्याओं का जन्म होता है जिससे समाज का अहित होता है और विकास की प्रक्रिया बाधित होती है। यह स्थिति मानवजनित होती है और समाज के लिये घातक होती है।

संसार एक रंगमंच है जहाँ स्त्री और पुरुष दोनों को अभिनय करना पड़ता है। इस अभिनय में किसी एक के प्रभाव की अतिशयता दूसरे को पीछे धकेल देती है। भारतीय समाज प्राचीन काल से पितृसत्तात्मक रहा है। यहाँ स्त्रियों को पुरुषों के बराबर अधिकार नहीं प्राप्त थे, उन्हें परदे में रहना पड़ता था व उन्हें पढ़ने का अधिकार नहीं था। धार्मिक, राजनीतिक एवं आर्थिक सभी कामों का सर्वेसर्वा पुरुष ही होता था। स्त्री को केवल पुरुष के सेवक व संतानोत्पत्ति हेतु सहचरी के रूप में देखा जाता था तथा उनके साथ दोयम दर्जे का व्यवहार किया जाता था। आजादी के बाद भी स्त्रियाँ पूर्णरुपेण आजाद न हो सकी। इस पुरुषवादी मानसिकता की शिकार रही स्त्री का सचित्र वर्णन हम साहित्य की विविध विधाओं में पाते है।

साहित्यकार समाज का पारखी होता है। उसके पास समाज को जानने- समझने की एक स्वस्थ व पैनी दृष्टि होती है। साहित्यकार जिस समाज में रहता है वह उसको देखकर या भोगकर अपनी अनुभूतियों के सहारे उस समाज के यथार्थ को अपनी रचनाओं में स्थान देता है व अपनी रचनाशीलता द्वारा अभिव्यक्ति के इस प्रयोग में जीवन के विविध आयामों को रेखांकित करता है। यह समाज जितना जटिल हैं लेखन- प्रक्रिया कहीं उससे भी अधिक जटिल है, अतः लेखक को यथार्थ के साथ अपनी कल्पनाशक्ति का गठजोड़ करना स्वाभाविक हो जाता है। एक लेखक जो किसी अंचल विशेष से जुड़ा हो उस अंचल की सभ्यता, संस्कृति के बीच पला बढ़ा हो उसकी कल्पना भी हवा-हवाई न होकर सामाजिकता से लैश होकर सोद्देश्य होती है।

उपन्यासकार भगवानदास मोरवाल का संबंध मेवात प्रांत से रहा है। वहाँ की सामाजिक संरचना के विविध पहलुओं को उन्होंने बारीकी से देखा है। एक संवेदनशील उपन्यासकार होने के नाते लेखक जब तक उस समाज की यथास्थिति को अपने 'कृति- कौशल' के माध्यम से इस छोर से उस छोर के लोगों तक या वृहत पाठक समुदाय से रूबरू न करा दे, तब तक उसका मन उद्वेलित रहता है। मोरवाल के उपन्यासों में वर्तमान समाज की अनेकानेक समस्याओं का चित्रण हुआ है। इनके लगभग सभी उपन्यासों में उपेक्षित स्त्री के ज्वलंत मुद्दों को स्थान मिला है। हिंदू – मुस्लिम दोनों ही समुदायों के स्त्रियों के चरित्रांकन के साथ ही साथ दलित व जनजातीय स्त्रियों के दुःख-दर्द का जीवंत दस्तावेज प्रस्तुत हुआ है। स्त्री के दैहिक, आर्थिक व मानसिक आदि शोषण के रूपों का यथार्थ दिखाया गया है। अनमेल विवाह, बाल विवाह, विधवा जीवन, घरेलू हिंसा, यौन शोषण, स्त्री अशिक्षा, वेश्यावृत्ति, तलाक का भय व धर्म के आड़ में स्त्री- शोषण आदि समस्याओं के बीच झूलती स्त्री की मनोदशा की मार्मिक अभिव्यक्ति मोरवाल के उपन्यासों में प्रस्तुत है।

इस शोध आलेख में भगवानदास मोरवाल के चार उपन्यासों को केन्द्र में रखकर स्त्री. जीवन को व उनके पहलुओं को समझने का सार्थक प्रयास किया गया है वे चार उपन्यास 'काला पहाड़' (1999), 'बाबल तेरा देश में' (2004), 'रेत' (2008) तथा 'हलाला' (2015) हैं। 'काला पहाड़' उपन्यास में मेवाती संस्कृति के बीच स्त्री असमानता को दिखाया गया है। गाँव के अशिक्षित वर्ग के मानस में आज भी स्त्रियों को संतानोत्पत्ति के साधन के रूप में देखा जाता है। अनपढ़ स्त्रियों में खुद यह भाव-बोध घर कर गया है। 'काला पहाड़' में सलेमी की बहू तरकीला के गर्भधारण न कर पाने की स्थिति में रोबड़ा की बहू द्वारा यह आरोप लगाया जाता है कि तरकीला में ही कोई कमी है। वह कहती है- "बहाण, बीरबाणी में ऐब के बिना मरद काई हालत में वाका पल्ला ए छोड़ के जाई न सके.....मोहे तो कुछ ऐसे ही लगे है नहीं तो तेरो चालो हुए एक बरस सू जादा होगो है और अभी तेरे पेटे में कुछ दीखे भी ना है।" [1] इस आरोप द्वारा तरकीला को घर व समाज में उपेक्षा की नजर से देखा जाता है। पुरुषवादी मानसिकता के बीच वैधव्य को स्त्रीत्व के दोहरे अभिशाप से कम नहीं कहा जा सकता। 'काला पहाड़' में सुलेमान की मृत्यु के बाद उसकी पत्नी मेमन को दो जून की रोटी के लिये तरसना पड़ता है तथा उसे आश्रय के लिये भटकना पड़ता है। पति सुलेमान की संपत्ति में उसे वैध हक नहीं मिलता है। उस समाज का यह नियम कि "विधवा अपने पति की जायदाद का इस्तेमाल कर सकती है पर बेच नहीं सकती और न ही अपने नाम करा सकती है।"[2] यहाँ मेमन का वैधव्य उसके लिये दुखों का पहाड़ बन गया है। इंसानियत किस कदर मनुष्य के व्यक्तित्व से लुप्त हो गयी है इसका आभास हमें यहाँ मिलता है।

मोरवाल अपने वृहद उपन्यासों में नारी जीवन के अनछुए मनोवैज्ञानिक पक्ष को उजागर करते हैं। उनका 'बाबल तेरा देश में' उपन्यास स्त्री जीवन का आख्यान प्रस्तुत करता है। स्त्री जीवन का ऐसा कैनवास जहाँ वे अपने घर में भी महफूज नहीं है उसके घर परिवार के पुरुष वर्ग उसके अपने न होकर मानो आदमखोर भेड़िए बन गए हैं। इस उपन्यास से अखबारी खबरों की ओर भी इशारा जाता है जिसमें पिता-पुत्री, भाई-बहन, चाचा-भतीजी, मामा-भांजी जैसे रिश्तों को शर्मशार होने की घटना छपी होती है। 'बाबल तेरा देश में' एक समस्या प्रधान उपन्यास है। "लेखक ने बाल विवाह के दुष्परिणामों से लेकर तलाक में अन्तर्निहित अमानवीयता, स्त्रियों के खरीद-फरोख्त के अमानुषिक कारोबार से लेकर लड़कियों को शिक्षा के मौलिक अधिकार से वंचित रखने के दर्प जैसी हठधर्मी पाशविकताओं का जमकर विरोध किया है।"[3]स्त्री का शिक्षित होना हमेशा से ही पुरुषों को अपने अस्तित्व के लिये नागवार लगता है कि कहीं वह स्वावलंबी बनकर, तर्कबुद्धि द्वारा अपने अधिकारों के लिये संघर्ष पर उतारू न हो जाय,अतः पुरुष वर्ग उसे शैक्षिक जगत से कोसों दूर रखने का प्रपंच रचता है। 'बाबल तेरे देश में' की मैना अपनी पढ़ाई पूरी करनी चाहती है परंतु उसके ससुराल वाले जल्द ही उसका गौना लाकर उसकी पढ़ाई बाधित कर उसे अपने नियंत्रण में ले लेते हैं। भगवान दास मोरवाल का उपन्यास 'रेत' इस मामले में एक नई आमद है कि यह उपन्यास स्त्री विमर्श के नये आयामों को समेटे हुआ है। 'रेत' मातृसत्तात्मक व्यवस्था का वह आख्यान है जिसके केन्द्र में स्त्री है और इस केन्द्र की परिधि है शहर से दूर गाजूकी बस्ती का कमला सदन। इसी सदन के इर्द गिर्द कथानक को विस्तार मिला है। इस उपन्यास में एक तरफ रुक्मणी है जो संघर्ष को चुनौती देकर उन स्त्रियों के लिये एक मिशाल बनती है जो पारंपरिक जीवन जीने की आदी हैं। रुक्मणी अपनी क्षमता और राजनीतिक दाँव-पेंच सीखकर चुनाव जीतकर राज्य सरकार में मंत्री बनती है। समाज व वक्त द्वारा प्रताड़ित स्त्रियों के लिये रुक्मणी आशा, प्रेरणा व संदेश है। दूसरी तरफ कमला बुआ हैं जो इस समाज की स्त्री की दुर्दशा से दुखी हैं पर उसे नियति मानकर पूरी दृढ़ता के साथ उसे स्वीकार करती हैं। 'रेत' में स्त्रियों के दो रूपों की विडंबनापूर्ण स्थिति का जिक्र हुआ है। पहले रूप में खेलावडी (वेश्यावृत्ति) या मुक्त यौनकर्मी पेशा वाली कमला बुआ, सुशीला, माया, वंदना, और दूसरे रूप में ब्याहता संतो और अनीता के बीच की टकराहट है। यहां बुआ बनना मतलब अविवाहित रहकर यौनकर्मी बनने का प्रतीक है। समाज में जो स्थिति विवाहिता की है यदि वही मुक्त यौनकर्मी की भी हो तो फिर पारिवारिक दायित्वों में क्यों फँसा जाय, कुछ ऐसे ही विसंगतिपूर्ण सवालों को यह उपन्यास समाज के ठेकेदारों से पूछना चाहता है। उपन्यास 'रेत' में जब पिंकी से पूछा जाता है कि वह बड़ी होकर क्या बनेगी? उस पर पिंकी का जवाब- "मैं तो बुआ बनूँगी।"[6] समाज की ब्याहता स्त्रियों की।

वास्तविकताओं का पर्दाफाश करता है इस पर संतो कहती है "वैदजी बुआ ही ठीक है.....बुआ बनके कम से कम मेरी तरह नरक तो न भोगेगी।"[7] 'रेत' उपन्यास में कंजर समाज की कुप्रथा 'मत्था ढकाई' स्त्रियों के खरीद- फरोख्त का ही दूसरा नाम है, जहाँ स्थियों के देह की बँटाई खेत-खलिहान की तरह की जाती है। यह उपन्यास प्रचलित मान्यताओं व परंपराओं के खिलाफ विद्रोही स्त्रियों के रूप में संतों व रम्भा को प्रस्तुत किया है। भगवानदास मोरवाल का उपन्यास 'हलाला' धर्म के आड़ में मुस्लिम स्त्री के शोषण व नारकीय जीवन की व्यथा- कथा की मार्मिक अभिव्यक्ति है। समाज के विकास की धुरी कितनी भी घूम गयी हो पर गैर मुस्लिम स्त्रियों की तुलना में मुस्लिम स्त्रियों की स्थिति ज्यों की त्यों बनी हुयी है। हलाला का आशय है कि तलाकशुदा स्त्री को अपने पहले शौहर के पास आने के लिये पहले किसी दूसरे मर्द के साथ निकाह कर उसके साथ हमबिस्तर होना पड़ता है, फिर इस मर्द से तलाक या मौत के बाद अपने पहले शौहर को प्राप्त करती है। "दरअसल हलाला धर्म के नाम पर बनाया गया ऐसा कानून है जिसने स्त्री को भोग्या बनाने का काम किया है। सच तो यह है कि हलाला मर्द को तथाकथित सजा देने के नाम पर गढ़ा गया षडयंत्र है जिसका खामियाजा अंततः औरत को ही भुगतना पड़ता है। सजा भी ऐसी जिसे आदिम बर्बरता के अलावा कुछ नहीं कहा जा सकता।"[8] हलाला उपन्यास के केन्द्र में नजराना नामक मुस्लिम स्त्री है जिसे अकारण उसके शौहर नियाज़ द्वारा तलाक देकर उसका दूसरा निकाह डमरू से करा दिया जाता है। स्वभाव से भोला डमरू नजराना के साथ ज्यादती न करके बिना हमबिस्तर हुये तलाक देकर हलाला की प्रक्रिया पूरी करना चाहता है। इसी बीच 'नारि न मोहै नारि कै रुपा' को चरितार्थ करने वाली नजराना की सास अपना निर्णय बदल लेती है और नियाज की शादी कुवारी लड़की से कराना पसंद करती है "अगर मोहे बहू ही लाणी होएगी, तो ऐसी सू बढ़िया है मैं कोई गरीब घर की कुंवारी छोरी कोई लू ना लाऊं ...छोरीन की कमी ना है।"□ तलाक के बाद नजराना अब डमरू के साथ ही रहना पसंद करती है। वह अब पुरुषवादी सत्ता की ज्यादतियों को सहने से इन्कार कर देती है। 'हलाला' उपन्यास में स्त्री पात्र अमाना द्वारा मुस्लिम स्त्री चेतना का प्रखर रूप सामने आता है। पति द्वारा मारे जाने की धमकी के जवाब में अमाना कहती है- "तू अबके हाथ तो लगा के देख...दारी का ए कच्चो न चबा जाऊँ तो।"10 अमाना के रूप में आज की नारी के बदलते स्वरूप को स्पेस दिया गया है जो अपने वजूद और अस्मिता के लिये किसी से भी टक्कर ले सकती है। भगवानदास मोरवाल अपने उपन्यास लेखन के माध्यम से दो अवधारणाओं को तोड़ते हैं जिसमें पहला कि केवल मुस्लिम लेखक ही मुस्लिम परिवेश पर आधारित प्रासंगिक उपन्यास की सर्जना करते हैं और दूसरा कि आजादी के बाद मुसलमान समुदाय पर आधारित उपन्यास नहीं लिखे जा रहे हैं। शोध आलेख में शामिल उपन्यासों के विश्लेषण से लगता है कि संवेदनशील लेखक की संवेदना हाशिए पर खड़ी स्त्री के साथ होती है। मोरवाल के उपन्यासों की स्त्रियां ज्यादातर सहनशील ही हैं, जो कि उस समय और समाज का अपना कटु यथार्थ ही है। उनमें प्रतिरोध का वह स्वर नहीं दिखता जो होना चाहिए। समय और सामाजिक परिदृश्य में परिवर्तन के साथ स्त्रियों में शिक्षा, रोजगार, राजनीति, रुचि-अरुचि, निर्णय की स्वतंत्रता के साथ अपने अस्मिता व अस्तित्व के लिये जो कट्टरपन आज दिखायी देता है वह भगवानदास मोरवाल के उत्तरवर्ती उपन्यासों में देखा जा सकता है।

****

सन्दर्भ-ग्रंथ-

1. भगवानदास मोरवाल, काला पहाड़ पृष्ठ 67
2. लोकेश कुमार गुप्ता (संपादक), लोकमन का सिरजनहार: भगवानदास मोरवाल पृष्ठ 105
3. वही, पृष्ठ 58-59
4. भगवानदास मोरवाल, बाबल तेरा देश में पृष्ठ 292
5. वही, पृष्ठ 227
6. भगवानदास मोरवाल, रेत पृष्ठ 11
7. वही, पृष्ठ 11
8. भगवानदास मोरवाल, हलाला पृष्ठ 188
9. वही, पृष्ठ 134
10. वही, पृष्ठ 85

स्त्री शिक्षा

डॉ.शिवम चतुर्वेदी
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष , हिन्दी विभाग अरुणाचल यूनिवर्सिटी ऑफ स्टाडीज नामसाई, अरुणाचल प्रदेश

सुमलक अपुम
शोधार्थिनी , हिन्दी विभाग
अरुणाचल युनिवर्सिटी ऑफ स्टाडीज
नामसाई
अरुणाचल प्रदेश

सारांश -शिक्षा हर किसी के जीवन का अभिन्न अंग है | बिना शिक्षा की किसी के भी जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती | शिक्षण जीवन के हर पहलू को असर करता है | इस तरह शिक्षण स्त्री पुरुष दोनों का समान हक है | मगर भारत जैसे विकसित देश में स्त्रियों को शिक्षित बनाने के लिए कोई महत्व नहीं दिया गया है | स्त्री शिक्षा स्त्री और शिक्षा को अनिवार्य रूप से जोड़ने वाली अवधारणा है | इसका एक रूप शिक्षा में स्त्रियों को पुरुषों की ही तरह शामिल करने से संबन्धित है | दूसरे रूप में यह स्त्रियों के लिए बनाई गई विशेष शिक्षा पध्दति को संदर्भित करता है | भारत में मध्य और पुनर्जागरण काल के दौरान स्त्रियों को पुरुषों से अलग तरह की शिक्षा देने की धारणा विकसित हुई थी | वर्तमान दौर में यह बात सर्वमान्य है कि स्त्री को भी उतना शिक्षित होना चाहिये जितना कि पुरुष हो | यह सिध्द सत्य है कि यदि माता शिक्षित न होगी तो देश की संतानों का कदापि कल्याण नहीं हो सकता |शिक्षा वयस्क जीवन के प्रति स्त्रियों के विकास के लिए एक आधार के रूप में विशेष रूप से महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है | शिक्षा अन्य अधिकारों को सुरक्षित करने के लिए लड़कियों और महिलाओं को सक्षम करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है | बहुत सी समस्याओं को पुरुषों से नहीं कह सकने के कारण महिलाएँ कठिनाई का सामना करती रहती हैं | अगर महिलाएँ शिक्षित हों तो वे अपने घरों की सभी समस्याओं का समाधान कर सकती हैं | स्त्री शिक्षा राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय विकास में मदद करता है | महिला शिक्षा एक अच्छे समाज के निर्माण में मदद करती है | महिला शिक्षित होंगे तो उनका सारा परिवार प्रकाशमय में जीवन जियेंगे , बच्चों को सही और गलत का रास्ता दिखाने वाला केवल स्त्रियों के हाथ में है इसलिए स्त्री शिक्षित होंगे तो सारा समाज और परिवार मंगलमय होगा | शिक्षित महिला समाज को विकास की ओर ले जाता है वह डूबती नय्या को पार लगा देती है |

रूढ़िवादी सांस्कृतिक दृष्टिकोण के कारण लड़कियों को अक्सर पाठशाला जाने की अनुमति नहीं दी जाती है | इसका एक कारण गरीबी भी देखा जा सकता है क्योंकि घर की आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण भी मा-पिता अपने सभी बच्चों को शिक्षा देने में असमर्थ होते हैं जिसके कारण वे अपने बच्चों को स्कूल नहीं भेज पाते और लड़कियों को भी अपने साथ मजदूरी पर ले जाना पड़ता है | भारत में वैदिक काल से ही स्त्रियों के लिए शिक्षा का व्यापक प्रचार था | मुगल काल में भी अनेक महिला विदुषियों का उल्लेख मिलता है |पुनर्जागरण के दौर में भारत में स्त्री शिक्षा को नए सिरे से महत्व मिलने लगा | ईस्ट इंडिया कंपनी के दौर सन १८५४ में स्त्री शिक्षा को स्वीकार किया गया था | विभिन्न सरकारी और गैर सरकारी प्रयासों के कारण साक्षरता के दर ०.२ % से बदकर ६ % तक पहुँच गया था | कोलकाता विश्वविद्यालय महिलाओं को शिक्षा के लिए स्वीकार करने वाला पहला विश्वविद्यालय था | १९८६ में शिक्षा संबंधी राष्ट्रीय नीति प्रत्येक राज्य को सामाजिक रूपरेखा के साथ शिक्षा का पुनर्गठन करने का निर्णय लिया था | स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात सन १९४७ से लेकर भारत सरकार पाठशाला में अधिक लड़कियों को पढ़ने का मौका देने के लिये अधिक लड़कियों को पाठशाला में दाखिला करने के लिये और उनकी स्कूल में उपस्थिती बढ़ाने की कोशिश में अनेक योजनाएँ बनाए हैं जैसे कि नि:शुल्क पुस्तकें , दोपहर की भोजन आदि | जोन इलियट ने पहला महिला विश्वविद्यालय का नाम बिथुने कॉलेज था |सन १९८६ में राष्ट्रीय शिक्षा नीति को पुनर्गठन देने को सरकार ने

फ़ैसला किया | सरकार ने राज्य कि उन्नति के लिये , लोकतंत्र के लिये और महिलाओं की स्थिति को सुधारने के लिये महिलाओं को शिक्षा देना जरूरी समझा था | भारत की स्वतंत्रता के बाद सन १९४७ में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग को बनाया गया | आयोग ने सिफ़ारिश किया कि महिलाओं कि शिक्षा में गुनवता में सुधार लिया जाए | भारत सरकार ने तुरंत ही महिला साक्षरता के लिये साक्षर भारत मिशन की शुरुआत किया था |इस मिशन में महिलाओं की अशिक्षा की दर को नीचे लाने की कोशिश की गई है | बुनियादी शिक्षा उन्हें अनिवार्य है और अपने स्वयं के जीवन और शरीर पर फैसला करने का अधिकार देने , बुनियादी स्वास्थ्य , पोषण और परिवार नियोजन की समझ के साथ लड़कियों और महिलाओं को शिक्षा प्रदान हो रही है | लड़कियों और महिलाओं की शिक्षा गरीबी पर काबू पाने में एक महत्वपूर्ण कदम है | कुछ परिवारों का काम कर रहे पुरुष दुर्भाग्यपूर्ण दुर्घटनाओं में विकलांग हो जाते हैं | उस स्थिति में , परिवार का पूरा बोझ परिवारों की महिलाओं पर टिका रहता है | महिलाओं की ऐसी जरूरतों को पूरा करने के लिए उन्हें शिक्षित किया जाना चाहिए | वे विभिन्न क्षेत्रों में प्रवेश कर सकती हैं | महिलाएँ शिक्षकों , डॉक्टरों , वकीलों और प्रशासक के रूप में काम कर रही हैं | शिक्षित महिलाएँ अच्छी माँ बन सकती हैं | महिलाओं की शिक्षा से दहेज समस्या , बेरोज़गारी की समस्या , आदि सामाजिक शांति से जुड़े मामलों को आसानी से हल किया जा सकता है |

स्त्री शिक्षा की भूमिका: -संस्कृत में यह उक्ति प्रसिध्द है – ' नास्ति विद्यासमं चक्षुनास्ति मातृ समोगुरु: ' इसका मतलब यह है कि इस दुनिया में विद्या के समान नेत्र नहीं है और माता के समान गुरु नहीं है | ' यह बात पूरी तरह सच है | बालक के विकास पर प्रथम और सबसे अधिक प्रभाव उसकी माता का ही पड़ता है | माता ही अपने बच्चे को पाठ पढ़ाती है | बालक का यह प्रारम्भिक ज्ञान पत्थर पर बनी अमिट लकीर के समान जीवन का स्थायी आधार बन जाता है | लेकिन आज पूरे भारतवर्ष में इतने असामाजिक तत्व उभर आए हैं , जिन्होंने माँ-बहनों का रिश्ता खत्म कर दिया है और जो भोग-विलास की जिंदगी जीना अधिक उपयोगी समझने लगे हैं | यही कारण है कि कस्बों से लेकर शहरों की माँ-बहनें असुरक्षित हैं |असुरक्षा के कारण ही बलात्कार और सामूहिक बलात्कार जैसी अनेक घटनाओं के जाल में फँसकर महिलाओं की शिक्षा , किसी भी पुरुष की शिक्षा से कम महत्वपूर्ण नहीं है | समाज की नई रूपरेखा तैयार करने में महिलाओं की शिक्षा पुरुषों से सौ गुना अधिक उपयोगी है | इसलिए स्त्री शिक्षा के लिए सरकार को प्रयासरत होना चाहिए | तभी अत्याचार जैसी घटनाओं पर काबू पाया जा सकता है | शिक्षा प्राप्त करके आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने का अर्थ यह नहीं है कि नारी शिक्षित होकर पुरुष को अपना प्रतिद्वंद्वी मानते हुए उसके सामने ही मोर्चा लेकर खड़ी हो जाए | बल्कि वह आर्थिक क्षेत्र में भी पुरुष के बराबर समानता का अधिकार प्राप्त करके उसके साथ मैत्रीपूर्ण संबंध के समीकर्ण बनाने में सक्षम बने | जिस प्रकार शरीर को भोजन की आवश्यकता होती है , उसी प्रकार मानसिक विकास के लिए शिक्षा आवश्यक है | अगर नारी ही शिक्षित नहीं होगी तो वह न तो सफल गृहिणी बन सकेगी और न कुशल माता | समाज में बाल-अपराध बढ़ने का कारण बालक का मानसिक रूप से विकसित न होना है | अगर एक माँ ही अशिक्षित होगी तो वह अपने बच्चों का सही मार्गदर्शन करके उनका मानसिक विकास कैसे कर पाएगी और एक स्वस्थ समाज का निर्माण एवं विकास संभव नहीं हो सकेगा | अत: यह कहा जा सकता है कि शिक्षित नारी ही भविष्य में निराशा एवं शोषण के अंधकार से निकलकर परिवार को सही राह दिखा सकती है | इसका एक रूप शिक्षा में स्त्रियों को पुरुषों की ही तरह शामिल करने से संबन्धित है | वर्तमान दौर में यह बात सर्व मान्य है कि स्त्री को भी उतना शिक्षित होना चाहिये जितना कि पुरुष को | यह सिध्द सत्य है कि यदि माता शिक्षित न होगी तो देश की संतानों का कदापि कल्याण नहीं हो सकता |शिक्षा वयस्क जीवन के प्रति स्त्रियों के विकास के लिए आधार के रूप में विशेष रूप से महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है | शिक्षा अन्य अधिकारों को सुरक्षित करने के लिए लड़कियों और महिलाओं को सक्षम करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है |बहुत सी समस्याओं को पुरुषों से नहीं कह सकने के कारण महिलाएँ कठिनाई का सामना करती रहती हैं | अगर महिलाएँ शिक्षित हों तो वे अपने घरों की सभी समस्याओं का समाधान कर सकती हैं | स्त्री शिक्षा राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय विकास में मदद करता है | आर्थिक विकास और एक राष्ट्र के सकल घरेलू उत्पाद की वृध्दि में मदद करता है | महिला शिक्षा एक अच्छे समाज के निर्माण में मदद करती है | महिला शिक्षा पर सरकार को ज़ोर देना चाहिए |

प्राचीन भारत में महिलाओं का स्थान :-प्राचीन भारत में महिलाओं का स्थान समाज में काफी महत्वपूर्ण था | महिलाएँ भी पुरुषों के साथ यज्ञों में भाग लेती थी , युद्धों में जाती थी | धीरे-धीरे महिलाओं का स्थान पुरुषों के बाद निर्धारित किया गया तथा पुरुषों ने महिलाओं के लिए मनमाने नियम बनाये ओर उनको अपना जीवन बिताने के लिए पिता , पति तथा पुत्र का सहारा लेने की प्रेरणा फैल गई | आज से शताब्दियों पूर्व स्त्रियों को अपना पति चुनने की स्वतन्त्रता थी | पिता स्वयंवर सभाओं का आयोजन करते थे , जिसमें लड़की अपनी इच्छा से अपने पति का वर्ण करती थी | इस प्रकार की सुविधाएं इसलिए दी गई थी , कि वे शिक्षित थी और अपना अच्छा तथा बुरा वे सही ढंग से सोचने में सक्षम थी | मुगलों के शासनकाल में शिक्षा , कला , साहित्य तथा अन्य विविध गुणों को प्राप्त करने की परिस्थितियाँ मिट सी गई थी |शिक्षा को लेकर आजकल कई योजनाएँ आई है और नारी को हर क्षेत्र में आगे बढ़ने का मौका दिया जा रहा है | आज के समय में नारी शिक्षित हो वह बहुत ही आवश्यक हो गया है नारी अगर पढ़ी लिखी होगी तो आने वाली पीढ़ी का निर्माण भी पढ़ा लिखा होगा | नारी घर में आर्थिक रूप से भी सहायक कर सकती है | इस देश में महिला सशक्तिकरण को और मजबूत करने की जरूरत है | जब महिलाएं अपने अधिकारों से परिचित होंगी तभी वह सही कदम उठा पाएँगी | कई सामाजिक एवं राजनीतिक संगठन और संस्थानों को स्त्री शिक्षा के महत्त्व के लिए इस समाज को जागरूक करने की आवश्यकता है | स्त्री शिक्षा परिवार में विनम्रता और सहनशीलता प्रदान करती है बल्कि समाज और देश में सामाजिक और आर्थिक मजबूती को सही दिशा देती है | सरकार को महिलाओं के विकास के लिए बेहतर विद्यालय और विश्वविद्यालयों का निर्माण कराना चाहिए ताकि स्त्री शिक्षा को मजबूती मिल सके | परंतु इस आधुनिक युग में स्त्री शिक्षा के महत्त्व को सही दिशा मिली है जिससे वह कई अत्याचारों से छुटकारा पा चुकी हैं | एक स्त्री शिक्षित होती है तो वह अपनी शिक्षा का उपयोग समाज और परिवार के हित के लिए करती है | एक शिक्षित स्त्री के कारण देश की आर्थिक स्थिति और घरेलू उत्पादन में बढ़ोत्तरी होती है | एक शिक्षित नारी घरेलू हिंसा और अन्य अत्याचारों से सक्षमता से निजाद पा सकती है | वर्तमान दौर में स्त्री को भी उतनी शिक्षा प्राप्त होनी चाहिए जीतना पुरुष को शिक्षा प्राप्त है | आज के युग में जागरूक माता-पिता अपने बच्चों को चाहे वह स्त्री या पुरुष हो दोनों को शिक्षा देना अनिवार्य समझते है | जब तक देश की माताएँ शिक्षित नहीं होंगे तब तक देश की संतानों की कदापि कल्याण नहीं हो सकता | शिक्षा नारी जाती को सक्षम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है | शिक्षा स्त्री विकास का साधन है |

उपसंहार: – इसलिए आज के किसी भी प्रगतिशील देश के लिए नारियों का शिक्षित होना आवश्यक है और आज की नारी शिक्षा के पथ पर आगे बढ़ चुकी है | आज का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जहाँ नारी ने अपने कदम न बढ़ाए हो | यही देश का सच्चा विकास और प्रगति कहा जा सकता है | इसीलिए तो कहा जाता है कि **पढ़ेगा भारत , आगे बढ़ेगा भारत .....देश** के हर कोने-कोने में नारी शिक्षा को महत्त्व देंगे तो आने वाला कल सुखमय साबित होगा | गाँव के बुजुर्गों को यह बात बताना होगा कि वह अपने परिवार में बेटियों को शिक्षित कराना है इसके साथ-साथ बेटों को भी शिक्षित कराना हमारा भारतवासियों का योगदान है |

******

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. "संग्रहीत प्रति " २४ अगस्त २०१५ |
2. जे सी अग्रवाल (१ जनवरी २००९) , भारत में नारी शिक्षा , प्रभात प्रकाशन |
3. सुमन कृष्ण कांत (१ सितंबर २००१) , इक्कीसवी सदी की ओर , राजकमल प्रकाशन |
4. डॉ . जे. पी. सिंह , (१ अप्रैल २०१६) , आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन |
5. Female education : A study ऑफ rural इंडिया (२००३) |
6. सीतापुर न्यूज , अमर उजाला '(६-जन-२०१९) महिला शिक्षा के प्रति जागरूक .

समकालीन हिंदी कहानी में स्त्री दृष्टि

डॉ.रजिया बेगम
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,विज्ञान और मानविकी संकाय
एस आर एम आई एस टी कट्टनकुलातुर

रेखा शर्मा
शोध छात्रा
एस आर एम आई एस टी कट्टनकुलातुर

समकालीन होने का अर्थ सिर्फ समय में होने से नहीं है। समकालीन होने का अर्थ है अपने समय में घट रहे या हो रहे तमाम घटनाओं और परिवर्तनों का समय सापेक्ष मूल्यांकन। और इस क्रम में हमें अपने समय में अतीत की उपस्थिति, जो हमारे बीच परंपरागत रूप से चली आती है, के प्रासंगिकता का अवलोकन भी तटस्थ दृष्टिकोण से करने की जरुरत होती है। विशेष कर किसी लेखन या सृजन के संदर्भ में। क्योंकि लेखन या सृजन को नितांत तात्कालिकता में सीमित नहीं किया जा सकता। यह अपने साथ एक पूरे युगबोध को लेकर चलती है। क्योंकि सृजन को जहाँ वर्तमान के वैचारिक और रचनात्मक दबावों को झेलते हुए, उनसे उत्पन्न तनावों और टकराहटों के बीच अपनी सर्जनशीलता द्वारा अपने होने को प्रमाणित करना पड़ता है, वहीं सजग रहते हुए अतीत के स्वस्थ परम्पराओं का विश्लेषण – अन्वेषण करना आवश्यक होता है। समकालीन लेखक की पहचान ही यही होती है कि अपने समय के समस्यायों के प्रति कितना सजग है और अपने समय के सवालो पर किस तरह प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। और उन सवालों के लिए अपने लेखन में जो जगह वह निर्धारित करता है, कहीं न कहीं इन सबसे ही उसकी समकालीनता सुनिश्चित होती है। हिंदी साहित्य में कहानी हिंदी की सबसे नई लेकिन सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है। सम्भवतः यही कारण है कि आज हिंदी में प्रकाशित होने वाली प्रायः सभी पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ छपती रहती हैं। यहां तक कि जो मूलतः कहानी पत्रिकाएं नहीं हैं, उनमें भी पाठकों को आकर्षित करने हेतु एक-दो कहानियाँ अवश्य छापी जा रही हैं। पत्रिकाओं के कहानी केन्द्रित अंक निकले हैं और कहानी केन्द्रित नई पत्रिकाएं भी प्रकाश में आई हैं। किसी एक कहानीकार की रचनाओं पर केन्द्रित कहानी संकलनों के साथ-साथ प्रतिष्ठित कहानीकारों की एक-एक रचना को लेकर कहानी संकलन तैयार किए गए हैं। पिछले कुछ वर्षों में कई पत्रिकाओं के कहानी विशेषांक निकले हैं । कतिपय कहानी केन्द्रित पत्रिकाओं-'हंस', 'पहल', 'कथादशक' और वर्तमान साहित्य में प्रकाशित कहानियों से समकालीन हिंदी कहानी की नब्ज को टटोला जा सकता है। सच तो यह है कि आज कहानी और कहानी-समीक्षा ही हिंदी साहित्य के केन्द्र में है।1हिंदी कहानी में समय-समय पर अनेक आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ है। नई कहानी, समान्तर कहानी, सचेतन कहानी, अकहानी, समकालीन कहानी और आज की कहानी जैसे जुमले पाठकों को सुनाई पड़े और कुछ तथाकथित कहानी विरोधियों ने तो कविता के साथ-साथ कहानी के अन्त की भी घोषणा कर दी, किन्तु उत्साहपूर्वक बात यह है कि उनके द्वारा 'सर्टीफाई' कर देने के बाद भी कहानी अभी जिन्दा है और विकास के नित नए आयाम खोज रही है। यही नहीं अपितु आज हिन्दी कहानी साहित्यिक चर्चा के केन्द्र में आ गई है। समकालीन हिंदी कहानी अपने विषय-वैविध्य के कारण पुरानी कहानी से बहुत आगे बढ़ी हुई है। आज के कहानीकारों ने समाज की स्थिति को देखा-परखा है और उसे अनुभव के धरातल पर यथार्थ रूप में प्रकट किया है। इस स्थिति को चित्रित करने के लिए उसने नए भाव बोध, नई शैली, नया शिल्प, नया कथ्य, तथा नई भाषा को खोजा है। आज की कहानी आर्थिक विषमता, परिवर्तित जीवन मूल्यों, पीढ़ीगत अन्तराल, निराशा एवं संत्रास के साथ-साथ अपरिचय एवं अकेलेपन की छटपटाहट को भी व्यक्त करती है। उसमें महानगरीय जीवन से उत्पन्न तनावों एवं स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों में आए परिवर्तनों और तनावों को भी विषय-वस्तु बनाया गया है। प्रसिद्ध कहानीकार राजेन्द्र यादव की मान्यता है कि ''कहानी अंधेरे की चीख या अकेली कराह नहीं है, अपितु अच्छी कहानी कहानीकार और पाठक के अनुभव की साझेदारी है, सहयोगी यात्रा है। कहानीकार का कोई भी अनुभव ऐसा इकहरा, इकलौता, अलग-थलग या अनोखा नहीं होता जिससे सिर्फ वही गुजरा हो, हाँ अनुभव से अर्थ तक पहुंचने की तड़प या तलाश उसकी अपनी हो सकती है।'' जैनेन्द्र ने कहा है कि ''कहानी तो एक भूख है जो निरन्तर समाधन पाने की कोशिश करती है।''2समकालीन कहानी जहाँ एक ओर राजनीति की इकहरी और यांत्रिक निष्कर्षों वाली सोच से मुक्त हुई है, वहीं वह समाज और राष्ट्र के संदर्भों में अधिक गंभीर और बेबाक सवालों के सामने खड़े होने की कोशिश कर रही है। एक ओर यदि वह स्थितियों की संवेदनशून्यता की गहरी पड़ताल में प्रवृत्त है तो वहीं वह सामंती अंतर्विरोधों से लेकर स्त्री उत्पीड़न और धार्मिक उन्माद की आँधी में साधारण आदमी की नियति को भी परिभाषित करना चाहती है। आज की कहानी की मूल चिन्ता किसी न किसी स्तर पर मनुष्य की मुक्ति से जुड़ी है। इसमें एक ओर जहाँ भारतीय समाज में हाशिए पर जीवन जी रहे लोगों के अभावों और विविध रूपों में उत्पीड़न से मुक्ति शामिल है वहीं पुरुष वर्चस्व वाले समाज में स्त्री की अपनी अस्मिता और मुक्ति का सवाल भी उतना ही महत्वपूर्ण है। मानवीय अस्मिता की इस लड़ाई में लेखक की भूमिका पर टिप्पणी करते हुए संजीव इसे 'ऋणमुक्ति की छटपटाहट' के रूप में व्यक्त करते हैं। उनकी इस रचनात्मक छटपटाहट से ही कला की स्वायत्तता और उपभोक्ता अप-संस्कृति वाले समाज में कला की वास्तविक भूमिका तय होती है। 'आप यहाँ हैं' भले ही उनके एक कहानी-संग्रह का नाम मात्र हो, लेकिन वह इस समाज में आदमी की वास्तविक स्थिति और हैसियत का बखान भी है। अनेक स्तरों पर होने पर स्त्री के शोषण को संजीव पर्याप्त संजीदगी से देखते हैं। उनके यहाँ स्त्री खेत-फैक्ट्री में काम करती है, आदिवासी अंचल में अपने बच्चे को पीठ पर लादकर पंद्रह-बीस किलोमीटर दूर घरेलू नौकरी करती है जहाँ मालिक के बच्चे उसके बच्चे में भूगोल में पढ़े 'कंगारू के बच्चे' जैसा साम्य देखते हैं। वह रखैल भी है और वेश्या भी। 'जसी बहू' की बहू चुनौती की तरह चुभते व्यक्तित्व की युवती है जो गाँव के क्षितिज पर नई भोर की तरह उगती है। लेकिन उसके सारे संघर्ष के बावजूद न तो उसकी यातना का अंत है और न ही विडम्बना का। 'धनुष-टंकार' जन संघर्ष की अवसरवादी परिणति का उदाहरण है। संजीव भी कहीं-कहीं इस भ्रम का शिकार दिखाई देते हैं कि कहानी विचारधारा की स्थानापन्न हो सकती है।3समकालीन कथा-परिदृश्य में महिला कहानीकारों की भूमिका और सक्रियता महत्वपूर्ण है। स्वयं महिला लेखकों द्वारा 'महिला-लेखन' के अंतर्गत उनकी पहचान का विरोध वस्तुतः नारी-मुक्ति आंदोलन का ही एक हिस्सा है, जिसमें यह मानकर चला जाता है कि महिलाओं के लिए अब कोई काम और क्षेत्र वर्जित नहीं है। यह उस संवैधनिक अधिकार का भी अंग है जिसमें किसी प्रकार का भेदभाव किए बिना हर काम के लिए स्त्री और पुरुष के समान समझे जाने की बात कही गई है। 'महिला लेखन' जैसे पद में किसी षड्यंत्र या अवमूल्यन का संदेह गलत है। हिन्दी में नारी-जीवन की संवेदनापूर्ण कहानियाँ लिखने पर भी सुभद्रा कुमारी चौहान और होमवती देवी को कभी महिला-लेखक नहीं कहा गया, और न ही चंद्रकिरण सौनरेक्सा को। उर्दू में तो खैर इस्मत चुगताई अनेक पुरुषों की अपेक्षा कहीं अधिक वैसे लेखने के लिए विख्यात है जैसा महिलाओं द्वारा आमतौर पर नहीं किया जाता। हिंदी में नई कहानी के बाद, कहानियों की एक क्षीण सी ही सही, ऐसी धरा भी प्रवाहित पहुई; बेशक उसकी शुरुआत नई कहानी से ही हुई थी-जिसमें आत्मपरकता बहुत थी। प्रतीक बहुत सांकेतिक भाषा में प्रेम और देह का वैभव उकेरती ये कहानियाँ तब अपनी कथित साहसिकता के लिए ही पहचानी गई थीं। शुरू में वस्तुतः इन्हीं कहानियों के संदर्भ में 'महिला लेखन' जैसे पद का इस्तेमाल किया गया। कविता में वह अकविता का दौर था और आधुनिकता एवं पश्चिम के नारी-मुक्ति आन्दोलन के उत्साहातिरेक में अनेक युवा लेखिकाएँ उस ओर आकृष्ट हुईं लेकिन नई चुनौतियाँ और सामाजिक दबावों के कारण यह स्थिति अधिक समय तक बनी रहने वाली नहीं थी। मृदुला गर्ग, ममता कालिया और मृणाल पांडे ने शुरू की अपनी कहानियों में इस साहसिकता को ही अपनी उपलब्धि माना जिसकी परिणति 'चित्तकोबरा' और 'छुटकारा' की अनेक कहानियों में देखी जा सकती है। मणिका मोहिनी की अधिकांश कहानियाँ आज भी यौन विच्युतियों को ही जीवन का सबसे बड़ा सच मानती दिखाई देती हैं। 'नारी विमर्श' की अभिव्यक्ति का मूल स्वर नारियों की आर्थिक आत्मनिर्भरता एवं नारी- पुरुष की समानता के इर्द-गिर्द घूमता रहा है। आर्थिक स्वावलम्बन के अभाव में नारी अपने ही परिवार में शोषित होती रही है, क्योंकि विरोध करने का न उसमें साहस है और न सम्बल। नारी-पुरुष के लिए समाज ने जो अलग-अलग प्रतिमान निर्धारित कर रखे हैं उनका मुखर विरोध भी कथा साहित्य में हुआ है। मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी कहानी 'बेतबा बहती रही' में लिखा है-''विभिन्न मानसिकता के दुमुंहे समाज में आज की नारी मात्र वस्तु, मात्र सम्पत्ति, विनिमय की चीज है।''4 नारी को मात्र भोग-विलास की वस्तु समझने वाली मानसिकता का विरोध भी मुखर रूप में किया गया है। पुरुष भेड़ियों की तरह घात लगाए इस 'नरमचारे' को उड़ाने के लिए उतावले रहते हैं ऐसी धरणा कथा लेखिका नमिता सिंह की है। 'अपनी सलीबें' नामक कहानी में वे लिखती हैंμ ''यह जिन्दगी तो जैसे अन्धेरे घने जंगल से निकलने वाली पगडण्डी का नाम है। कब किधर से कोई बाघ या भेड़िया हमला कर दे।

किस पेड़ के पीछे से जंगली सूअर दौड़ता हुआ आए और टक्कर मारकर गिरा दे, कुछ पता नहीं।''समाज में बेटे-बेटी में जो फर्क किया जाता है वह भी स्त्री को कचोटता है। रामदरश मिश्र की कहानी 'थकी हुई सुबह' की लक्ष्मी कहती है- ''क्या स्त्रियों को कोई दूसरा ईश्वर पैदा करता है या यहां स्त्री-पुरुष के लिए दो नियम हैं।'' आज की नारियों में आत्माभिमान है, वे अपनी स्थिति को सुधारने के लिए प्राणपण से जुटी हुई है। वह जमाना चला गया जब स्त्रियों को गाय -भैंस की तरह चाहे जिस खूंटे से बांध दो, वह उफ तक न करती थी। अब वह अपने अधिकारों के प्रति सचेत है। चित्रा मुद्गल के उपन्यास 'एक जमीन अपनी' की अंकिता सुधांशु से कहती है- ''औरत बोनसाई का पौध नहीं है, जब जी चाहे उसकी जड़ें काटकर उसे वापस गमलों में रोप लिया। वह बौना बनाए रखने की इस साजिश को अस्वीकार भी कर सकती है।''[5] 21वीं सदी की महिला कहानीकारों में कुछ प्रमुख लेखिकाएं अपने नये भाव-बोधों के कारण काफी चर्चा में रही हैं। शिवानी की लोकप्रियता उनकी कहानी संग्रह 'स्वयंसिद्धा' और 'रति विलाप' के कारण अधिक रही है। इनकी कहानियों में खुदरे यथार्थ से अलग नारी का एक भावनापूर्ण संसार निर्मित हुआ है। नाटकीयता, आंचलिकता और कथा-रस इनकी कहानियों की विशेषताएँ हैं। नारी का आधुनिक भाव-बोध इनकी कहानियों में दिखाई देता है। कृष्णा सोबती अपनी कहानियों में मानवीय मूल्यों के टूटने की चर्चा करती हैं। महिलाओं के प्रति होने वाली कुरीतियों और दुर्व्यवहारों से लेखिका आहत है। परिवेश का यथार्थ और खुली यौन मानसिकता इनकी कहानियों की प्रमुख विशेषताएँ हैं। मन्नू भंडारी ने अपनी कहानियों में संस्कार और आधुनिकता के बीच उलझे हुए नारी मन के द्वंद्व को बड़ी ईमानदारी से चित्रित किया है। मन्नू भंडारी ने अपनी कुछ कहानियों में कुछ मजदूर वर्ग असहाय नारियों की दरिद्रता, संघर्ष और मानसिकता का बड़ा ही मार्मिक चित्रा खींचा है।रानी माँ का चबूतरा' ऐसी ही मार्मिक कहानी है। उषा प्रियंवदा आधुनिक भाव-बोध की कहानियाँ कहती हैं। 'वापसी' कहानी मन को उद्वेलित कर देती है। बिखरते मानवीय मूल्यों से ओत-प्रोत इस कहानी में अस्तित्ववाद और व्यक्तिवाद की झलक है। स्वच्छन्द जीवन जीने की इच्छा रखने वाले युवक-युवतियों पर उपभोक्तावादी संस्कृति का गहरा प्रभाव है।6 ममता कालिया यथार्थधर्मी कहानी लेखिका हैं। नारी उत्पीड़न इनकी कहानियों का मुख्य मुद्दा है। परिवार में पति-पत्नी सम्बन्धों, भाई-बहन के रिश्तों और परिवार में उनकी स्थिति का चित्रण बखूबी किया है।7 मृणाल पांडेय की कहानियों में पहाड़ी जन-जीवन और सांस्कृतिक चेतना विद्यमान है। नारी की परतंत्रता उसकी आर्थिक तंगी, जड़ता, संघर्ष तथा जीवन की विसंगतियों का चित्रण इनकी कहानियों की मुख्य विशेषताएँ हैं।8 मृदुला गर्ग प्रेम और काम-सम्बन्धों का आधुनिक दृष्टि से खुला विश्लेषण करने वाली एक सशक्त कहानीकारी हैं। 'समागम' और 'टुकड़ा टुकड़ा आदमी' आधुनिक जीवन के बदले माहौल में नैतिक मूल्यों के विघटन, प्रेम और विवाह से सम्बद्ध समस्याओं, सेक्स-जीवन की विसंगतियों, बलात्कार का मनोवैज्ञानिक प्रभाव का उदाहरण है।9 'चित्रा मुद्गल की कहानियों में महानगरों में संघर्षरत नारियों और झोंपड़पट्टियों में घिसटते हुए निम्नवर्गीय लोगों की जीवन दशाओं का चित्रण है। 'भूख', 'जगदम्बा बाबू गाँव आ रहे हैं' जैसी कहानियाँ इसके उदाहरण हैं।10 सूर्यबाला युवा मन की निराशा और दिशाहीनता को आज के परिवेश की उपज मानकर उसे एक खास अंदाज में प्रस्तुत करने वाली कहानी लेखिका हैं। लेखिका जीवन की सच्चाई का पूरा-पूरा साक्षात्कार करना चाहती है। इसलिए इनका फलक व्यापक है। किसान, मजदूर, निम्नमध्यवर्गीय परिवार इनकी रचनाओं का केन्द्र बिन्दु है।11इन्दुबाली नारी के स्वतंत्र अस्तित्व का अहसास कराने वाली कहानी लेखिका हैं। 'बिना छत का मकान', 'मैं खरगोश होना चाहती हूँ' जैसे कहानी संग्रह इसके प्रमाण हैं। अस्तित्व की प्रतिष्ठा के मार्ग में आने वाली समस्याओं को यथार्थ के धरातल पर अनेक कोणों से उठाने वाली लेखिका हैं।12 चन्द्रकांता ने विभाजन की पीड़ा और साम्प्रदायिकता को उठाने वाली लेखिका हैं। इसके पफलस्वरूप नारी जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों को अपनी कहानियों में बखूबी उकेरा है। चन्द्रकांता प्रगतिशील चेतना की लेखिका हैं। मनुष्यता विरोधी तत्त्वों, संकीर्ण एवं स्वार्थी मनुष्यों, आतंकवादियों, बलात्कारियों और सामंतवादी पुरुषों का लेखिका ने मुखर विरोध किया है। आर्थिक शोषण और सामाजिक न्याय इनकी कहानियों के मुख्य बिन्दु हैं।13 मैत्रेयी पुष्पा की कहानियों में समकालीन जीवन का यथार्थ और संक्रमणकालीन समाज का अंतर्विरोध व्यापक रूप से चित्रित हुआ है। अदम्य साहस और जिजीविषा से भरी नारी पात्रों के चित्रण में इनका मन खूब रमता है। राजनीतिक विद्रूपताओं और नौकरशाही के भ्रष्टाचार के प्रति लेखिका मुखर हैं।14 गीतांजली श्री ने अपने कहानी-संग्रह 'अनुगूंज' में जीवन को अपने ढंग से जीने वाली नारी पात्रों की वकालत की है। परिस्थितियों को नियति मानकर चुपचाप घिसटते चले जाने को लेखिका ने नारियों के लिए ठीक नहीं माना है। मृत्यु का भय, जीवन की समस्याएँ, मानव और प्रकृति के सम्बन्धों को लेखिका ने खास पैटर्न से देखा है।15 अलका सरावगी ने अपनी कहानियों में आधुनिक जीवन की उन नारियों का चित्रण किया है जो भोग-विलास के समस्त संसाधनों के होने के बावजूद भी शोषण की शिकार हैं। 'दूसरी कहानी' नामक कहानी-संग्रह में कलकत्ता महानगर के ऐसे परिवार को केन्द्र में रखा गया है जहाँ अभिजात्यता भी है और सामंतवादी मूल्य भी।16 नासिरा शर्मा, जया जादवानी, अल्पना मिश्र आदि बहुत सारी लेखिकाओं ने नारी जीवन की उन मनःस्थितियों, दुःख-दर्द को अपनी कहानियों में मुखरता से स्वर दिया है। कहानी के क्षेत्र में इतनी सारी महिला लेखिकाओं की सक्रियता से इतना तो स्पष्ट है कि अब कहानी में महिला चरित्रों, उनकी परिस्थितियों, उनकी समस्याओं, उनके अधिकारों और उनकी स्वतंत्रता और उनकी गरिमा को प्रमुखता प्राप्त होने लगी है। महिला लेखिकाओं की दृष्टि वहाँ तक पहुँच सकी है जहाँ तक पुरुष लेखकों की दृष्टि नहीं जाती थी। और जाती भी थी तो वे विश्वसनीय और प्रामाणिक नहीं लगते थे। यह शुभ संकेत है कि 21वीं सदी की हिंदी कहानियों में नारी जीवन के समग्र चित्र व्यापक रूप से हमारे समक्ष उपस्थित हो रहे हैं और राजनीतिक-प्रशासनिक रूप से, कानूनी और सामाजिक रूप से महिलाओं के जीवन में उत्तरोत्तर सुधार हो रहा है।

******

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1.मधुरेश, हिन्दी कहानी का विकास, सुमित प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 176
2.आजकल, मासिक, अक्टूबर 2020, पृष्ठ 45
3.मधुरेश, हिन्दी कहानी का विकास, सुमित प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 181
4.डॉ. नागेन्द्र, डॉ. हरदयाल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, ओरिएंट ब्लैक स्वान प्रकाशन, पृष्ठ 510
5.डॉ. अशोक तिवारी, प्रतियोगिता साहित्य सीरीज, नेट पेपर-3, पृष्ठ 134
6.वही, पृष्ठ 345
7.डॉ. रामचन्द्र तिवारी, हिन्दी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ 342-344
8.वही, पृष्ठ 345
9.वही, पृष्ठ 345
10.वही, पृष्ठ 345
11.वही, पृष्ठ 346
12.वही, पृष्ठ 346
13.वही, पृष्ठ 347
14.वही, पृष्ठ 347
15.प्रो. हरिमोहन शर्मा, डॉ. विनोद तिवारी, कथालोचना-दृश्य-परिदृश्य, पृष्ठ 65
16. वही, पृष्ठ 70

दलित विमर्श

दलित आलोचना के प्रमुख मुद्दे : एक संक्षिप्त विश्लेषण

डॉ. जयसिंह मीणा
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
लक्ष्मीबाई कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय.

हिन्दी साहित्य में दलित लगभग अनुपस्थित हैं- कर्ता के रूप में भी और विषय के रूप में भी। बीसवी सदी के अंतिम दशकों में जब दलित लेखकों ने साहित्य में बलपूर्वक अपनी स्थिति को रेखांकित करना शुरू किया तो गैर दलित लेखकों का भी ध्यान उधर गया। दलित साहित्य की विशिष्टता को समझकर उसे स्वीकार करने की बजाय गैर दलित आलोचकों ने प्रेमचंद, निराला, अमृत लाल नागर इत्यादि लेखकों के साहित्य को भी दलित साहित्य बताना शुरू किया। दलित आलोचना से जुड़ी अधिकांश बहसें दलित कौन है, दलित साहित्य की अवधारणा, दलित साहित्य कौन लिख सकता है, स्वानुभूति बनाम सहानुभूति इत्यादि इसी पृष्ठभूमि से उपजी बहसें हैं। इन बहसों से दलित आलोचकों ने 'पालिमिक्स' में हिस्सा लेने तथा हावी होने के तरीकों का अभ्यास किया। लेकिन इसका एक बड़ा नुकसान यह हुआ है कि इन 'पालिमिकल' बहसों में टेक की तरह दुहराये गये तर्क दलित आलोचना का स्थाई भाव बन गये। दूसरा नुकसान यह हुआ कि 'पालिमिक्स' दलित आलोचक की शैली बन गयी, बाहरी उत्तेजना के बिना स्वतंत्र शोध और लेखन मुश्किल हो गया। इससे प्राथमिकतायें गड़बड़ा गई हैं, और दलित आलोचना प्रतिक्रिया स्वरुप की जाने वाली टिप्पणियों का भंडार बन कर रह गयी है। यहां तक कि डॉ. धर्मवीर का कबीर पर विराट शोधकार्य भी प्रतिक्रिया स्वरुप ही उपजा है, इसीलिए उसके बाद के खंडों में अनर्गल छींटाकशी ज्यादा है, संवेदनशील तार्किकता कम।

'दलित साहित्य कौन लिख सकता है' यह एक अमूर्त बहस है, इसके मुकाबले गैर दलित लेखकों को लिखकर ही दिखाना चाहिये था कि वे दलितों जैसा लिख सकते हैं या नहीं। बहरहाल, इस सवाल का वास्तविक आशय दलित साहित्य के उभरते हुए बाजार पर एकाधिकार से भी था, इसीलिए इस बहस में कभी यह सवाल नहीं उठाया गया कि दलित साहित्य कौन पढ़ सकता है! यह व्यक्तिगत रूप से कुछ दलित लेखकों के लिए भले ही लाभदायक रहा हो, लेकिन व्यापक स्तर पर इसने नकारात्मक प्रवृत्तियों को जन्म दिया। इससे दलित साहित्य की विशिष्टता के बजाय लेखक की जाति का सवाल केन्द्र में आ गया। अब पुराने लेखकों का दलित विषयक लेखन एक चुनौती लगने लगा, ऐसी स्थिति में 'महान' लेखकों का मूर्तिभंजन होना तो अनिवार्य ही था। हिन्दी साहित्य के ब्राह्मणवादी होने के फतवे भी जारी कर दिये गये। इस आरोप में सच्चाई का अंश तो था लेकिन सरलीकरण ज्यादा था। ऐसे वक्तव्य देते समय यह भी नहीं ध्यान रखा गया कि उसी 'हिन्दी साहित्य' में नाथों, सिद्धों तथा कबीर और अन्य निर्गुण पंथियों का साहित्य भी शामिल है। सूफियों के प्रेमाख्यानों तथा रीतिमुक्त धारा के कवियों की प्रेम कविताओं को किस तर्क से ब्राह्मणवादी कहेंगे? यह तो प्रगतिशीलता की बेहद संकीर्ण धारणा होगी कि जो कुछ दलित साहित्य नहीं है सब प्रतिक्रियावादी- ब्राह्मणवादी है। दुर्भाग्य से अधिंकाश दलित लेखकों के मन में प्रगतिशीलता की धारणा कुछ ऐसी ही है।

दलित आलोचकों ने प्रेमचन्द और अन्य कई गैर दलित रचनाकारों का मूल्यांकन उन्हें 'सवर्ण' या द्विज' मानकर ही किया है और कई बार पूर्वग्रहयुक्त ढंग से उनके साहित्य में ब्राह्मणवाद और जातिवादी संस्कार तलाशने की कोशिशें की हैं। आज प्रेमचंद, नागार्जुन, निराला जैसे साहित्यकारों पर उन्होंने 'दलित विरोधी' का तमगा लगा दिया है। प्रेमचन्द सहित अन्य गैर दलितों पर विचार करते हुए दलित आलोचकों के लेखन में प्रतिशोध की भावना दिखाई देती है। दलित आलोचना की समस्या यह रही कि जिस तरह उसने 'ब्राह्मण' और 'ब्राह्मणवाद' में अंतर नहीं किया है, उसी तरह उसने गैर दलित लेखकों के लेखन को 'सवर्ण साहित्य' मानकर मूल्यांकन किया है। ऐसी पूर्वग्रहयुक्त आलोचना साहित्य के लिये तो घातक है ही, स्वयं दलित आलोचना की विश्वसनीयता के लिये भी घातक है। किसी भी नये साहित्यिक आंदोलन को दो चुनौतियों का सामना करना ही पड़ता है।

दपहला, नये तरह का साहित्य पाठकों-आलोचकों से नये तरह के साहित्यबोध की भी अपेक्षा करता है। पाठकों-आलोचकों के एक विशेष किस्म के साहित्य का अभ्यस्त हो चुकने के कारण नयी साहित्य प्रवृतियों को आरम्भ में विरोध का भी सामना करना पड़ता है। यह छायावाद के साथ भी हुआ, प्रगतिवाद के साथ भी हुआ और नयी कविता के साथ भी यही हुआ। दूसरी चुनौती कलात्मकता और शिल्प की होती है। नयी अभिव्यक्ति नये तरह का शिल्प भी चाहती है। कलात्मकता और शिल्प संबंधी समस्याओं का समाधान अभ्यास से होता है, जिसमें समय लगता है। चूंकि इन सवालों को उठाने वालों में दलित साहित्य के विरोधी परम्परावादी भी शामिल रहे हैं, इसलिए दलित लेखकों-आलोचकों ने कलात्मकता की नयी धारणा तथा शिल्प संबंधी समस्याओं का रचनात्मक समाधान प्रस्तुत करने की बजाय कला और शिल्प की चिंताओं को विलासिता का पर्याय और ब्राह्मणवादी षडयंत्र कहकर खारिज कर दिया। अपने उपर उठने वाले किसी भी सवाल को ब्राह्मणवादियों का षडयंत्र बताकर खारिज कर देना दलित आलोचना का स्वभाव बन चुका है। तर्क या कुतर्क से किसी सवाल को खारिज करना आसान है, लेकिन उसका रचनात्मक उत्तर दे सकना श्रमसाध्य कार्य होता है- हालांकि विकास इसी से होता है। यह समस्या सबसे अधिक साहित्य के इतिहास के प्रसंग में दिखाई देती है, जहां पूरे हिन्दी साहित्य तथा हिन्दी साहित्य के इतिहास को ब्राह्मणवादी बताकर खारिज तो कर दिया गया है लेकिन वैकल्पिक इतिहास लिखने का काम दलित आलोचना के एजेंडे पर दिखाई ही नहीं देता। साहित्यिकता से जुड़े सवालों को गंभीरता से न लेने का दुष्परिणाम यह हुआ है कि कोई वैकल्पिक सैद्धांतिकी निर्मित करने में दलित आलोचना की कोई रुचि नहीं रही है, नतीजतन अभिव्यक्ति के क्षेत्र में दलित साहित्य को कोई सार्थक दिशा दे पाने में वह पूरी तरह असमर्थ रही है।

दलित आलोचना दो और सवालों पर उलझी हुई दिखती है, धर्म के सवाल पर और मार्क्सवाद के साथ संबंध के सवाल पर। डॉ. अम्बेडकर ने बहुत साफ देखा था कि जाति व्यवस्था को हिन्दू धर्मग्रंथों का समर्थन प्राप्त है। हिन्दू रहते हुए जाति से मुक्ति पाना संभव नहीं है। इसीलिए उन्होंने हजारों अनुयायियों के साथ बौद्ध धर्म ग्रहण किया था। डॉ. अम्बेडकर ने बहुत स्पष्ट शब्दों में बौद्ध धर्म को मार्क्सवाद से श्रेष्ठ भी बताया था। लेकिन ये बाते पचास वर्ष से भी अधिक पुरानी है। अब धर्म ग्रंथों का कोई नाम नहीं लेता, फिर भी जातियां बनी हुई हैं, स्वयं बौद्ध धर्म में जाने वाले दलितों का 'नवबौद्ध' नाम से अलग वर्गीकरण तैयार हो गया। धर्म के सवाल पर दलित आलोचकों में तीन वर्ग दिखाई देते हैं। पहला, जो अम्बेडकर द्वारा अपनाये गये मार्ग को आज भी प्रासंगिक मानता है और बुद्ध-अम्बेडकर दर्शन को दलित साहित्य का आधार बताता है। दूसरा, जो अम्बेडकर द्वारा बौद्ध धर्म अपनाने को उसके ऐतिहासिक संदर्भ में तो प्रगतिशील किन्तु आज अप्रासंगिक मानता है और घोषणा करता है कि केवल धर्म न तो दलितों की समस्याओं का स्रोत है और न ही धर्मान्तरण उसका समाधान। तीसरा वर्ग डा. धर्मवीर सरीखे विद्वानों का है जो मानते हैं कि बौद्ध धर्म अपनाकर डा. अम्बेडकर पथभ्रष्ट हो गए थे, दलितों को एक नये धर्म की आवश्यकता है, वही उसकी समस्याओं का समाधान है। मार्क्सवाद को लेकर दलित आलोचना में उलझन की स्थिति है। यह उलझन खुद मार्क्सवाद के भीतर भी मौजूद रही है। मार्क्सवादियों ने अम्बेडकर के आंदोलन को समर्थन तो नहीं ही दिया, उलटे उसका विरोध किया। अम्बेडकर ने भी यथासंभव मार्क्सवाद का विरोध ही किया। अधिकांश दलित आलोचक इस मामले में अम्बेडकर के ही मार्ग का अनुगमन कर रहे हैं, हालांकि अम्बेडकर की तरह मार्क्सवाद को थोड़ा बहुत समझने की भी दिलचस्पी उनके अंदर नहीं है। उदाहरण के लिये, ओमप्रकाश वाल्मीकि 'कब तक इन प्रश्नों से बचेगा मार्क्सवाद' शीर्षक एक लेख में नामवर सिंह और रामविलास शर्मा को मार्क्सवाद का पर्याय बना देते हैं दलित आलोचक मार्क्सवाद को बस 'वर्ग' की

धारणा के पर्याय के रूप में देखते हैं और उसके पूरे आर्थिक-सामाजिक विश्लेषण से आंखे मूंदे हुए हैं। जाहिर है कि यह अज्ञानता-जनित विरोध है। एक तो यह कहना ही अज्ञानता भरा है कि 'वर्ग' यूरोपीय अवधारणा है, इसलिये भारत के संदर्भ में यह अप्रासंगिक है। दूसरे, आप वर्ग की धारणा को अप्रासंगिक कह सकते हैं, लेकिन ये कैसे कह सकते हैं कि आर्थिक विषमता दलितों की समस्या ही नहीं है। अगर सचमुच पूरे दलित समुदाय की समग्र 'मुक्ति' विमर्श के केन्द्र में है तो दासता के केवल सामाजिक पहलू पर जोर देने वालों की समझ या तो एकांगी है अथवा वे सचेत रूप से इस विमर्श को दिग्भ्रमित कर रहे हैं। बहरहाल, छोटा ही सही आलोचकों का एक वर्ग ऐसा भी है, जो भारत में मार्क्सवाद की ऐतिहासिक भूमिका की आलोचना करते हुए भी दलितों के संदर्भ में उसकी प्रासंगिकता को स्वीकार करता है और अम्बेडकरवाद तथा मार्क्सवाद के संश्लेष पर बल देता है।जाति के सवाल पर दलित आलोचकों की वैचारिकी में जहां अंतर्विरोध दिखाई देता है, वहीं स्त्री के सवाल पर अधिकांश दलित आलोचकों का चिंतन पितृसत्तात्मक आग्रहों को पुष्ट करने वाला है। दलित और स्त्री दोनों ही सामाजिक संरचना द्वारा उत्पीड़ित अस्मिताएं हैं, इसलिए दोनों को ही एक-दूसरे का सहयोगाकांक्षी होना चाहिए था, लेकिन वहां इसका अभाव ही प्रकट होता है। दलित विमर्श से इतर दलित स्त्री विमर्श चलाने की जरूरत दलित स्त्रियों को क्यों पड़ी है ? इस मामले में हम देखते हैं कि हिन्दी की दलित आलोचना और नारीवादी आलोचना दोनों ही समस्याग्रस्त हैं। असल में दलित स्त्री के उत्पीड़न की अनदेखी दोनों ही विमर्शों ने की, इससे दलित विमर्श केवल 'पुरुष विमर्श' बन कर रह गया और नारीवाद 'सवर्ण स्त्री विमर्श'। दलित साहित्यकार यह तो बताते हैं कि उन्हें जातिगत शोषण के विभिन्न रूपों का सामना करना पड़ा है, लेकिन दलित स्त्री की बात वहां या तो बिल्कुल नहीं है, या अगर है तो प्रायः उसके विरोध में है। बाद में दलित स्त्री ने एक नया विमर्श चलाकर जो अब तक 'अनकहा' था उसको अभिव्यक्त किया। दलित आलोचकों की नाराजगी इससे और बढ़ गई है। जो उनके द्वारा दिए गए स्त्री विरोधी वक्तव्यों और उन पर लगाए जा रहे व्यक्तिगत आक्षेपों में बिल्कुल साफ दिखाई पड़ती है। इसके पीछे वास्तव में दलित आलोचकों की पुरुषवादी विचारधारा ही है जो किसी भी कीमत पर अपना पुरुष वर्चस्व खोना नहीं चाहती, चाहे खुद दलित स्त्री के विरोध में ही क्यों न खड़ा होना पड़े। दलित और स्त्री उत्पीड़न के लिए जातिवादी व्यवस्था भी एक महत्वपूर्ण कारक रही है, ऐसे में जाति को खत्म करना दोनों अस्मिताओं की मुक्ति के लिये अपरिहार्य कदम है, लेकिन विमर्श के आरंभिक दौर में जहां दलित लेखक जातिव्यवस्था को उत्पीड़न का तंत्र मानकर उसे तोड़ने की दिशा में सही मायने में अम्बेडकरवाद के अनुगामी होने का परिचय दे रहे थे, वहीं वर्तमान में 'जाति बचाओ' का नारा और स्त्री विरोधी वक्तव्य देकर वे अम्बेडकर के विरोध में जाने से भी नहीं झिझक रहे हैं।

आम दलित आज भी व्यापक स्तर अशिक्षा, गरीबी, बेरोजगारी और जातिवाद की समस्या से जूझ रहा है। दलित अगर उत्पीड़ित हैं तो केवल इसलिए नहीं कि उन्हें हेय दृष्टि से देखा जाता है, बल्कि उन्हें हेय दृष्टिसे देखा ही इसलिए जाता है क्योंकि एक समूह के रूप में वे वंचित और परनिर्भर रहे हैं! व्यापक दलित समुदाय के लिए वास्तविक सवाल किसका है - अस्मिता का या अस्तित्व का? दलित उत्पीड़न एक भौतिक यथार्थ है और इसका संबंध जातिवादी चेतना तथा विचारधारा से है। इस विचारधारा की जड़ें भारतीय समाज की सामाजिक-आर्थिक संरचना में है, इसलिए इस उत्पीड़न को केवल बौद्धिक हमलों के जरिए नहीं खत्म किया जा सकता। इस लिहाज से बुनियादी प्रश्न अस्तित्व की भौतिक परिस्थितियों में परिवर्तन का है, न कि केवल अस्मिता का! दलित प्रश्न को केवल अस्मिता का प्रश्न मानकर देखना दलित आलोचना की बहुत बड़ी समस्या है। यह समस्या इसलिये पैदा हो रही है क्योंकि दलित साहित्यकार दलित साहित्य के झंडे के नीचे भले एकजुट दिखाई देते हैं, लेकिन वे सामाजिक परिवर्तन के किसी व्यापक आन्दोलन का हिस्सा नहीं बन सके हैं। अधिक से अधिक वे एक साहित्यिक आन्दोलन का अंग कहे जा सकते हैं। ऐसे में उनके लिये दलित आन्दोलन केवल कागजी लेखन का पर्याय बन गया है। जातिवादी सामाजिक संरचना को अपना प्रतिपक्ष मानने की बजाय उन्होंने हिन्दी के दो चार लेखकों को ही अपना वास्तविक शत्रु मान लिया है। ऐसे में मध्यवर्गीय व्यक्तिवाद अपनी बड़ी भूमिका निभाता है और यह लड़ाई साहित्य की दुनिया में वर्चस्व कायम करने की लड़ाई में बदल जाती है। जाहिर है कि यह लड़ाई छपने और बिकने की पूंजीवादी लड़ाई में बदल जाती है और विवाद पैदा करना सबसे सफल रणनीति बन जाता है। बहरहाल, दलित साहित्य एक अलग धारा के रूप में स्वीकृत हो चुका है, इसलिये पुराने सवाल अप्रासंगिक से नजर आने लगे हैं। दलित साहित्य को स्थापित करने तथा जाति के सवाल को पूरी शिद्दत से उठाकर पूरे हिन्दी समाज का ध्यान उस पर दिलाने का पहले चरण का ऐतिहासिक कार्यभार दलित आलोचना पूरा कर चुकी है। इसके साथ ही उसकी समस्याएं और अंतर्विरोध भी बहुत साफ तौर पर दिखाई देने लगे हैं। इन समस्याओं से मुक्ति के साथ-साथ हिन्दी के दलित साहित्य को देश के दूसरे क्षेत्र में चल रहे दलित आन्दोलनों तथा अन्य मुक्तिकामी संघर्षों से जोड़ना खुद दलित आलोचना के विकास के लिये अपरिहार्य शर्त बन गई है - अन्यथा वह उसी बंद दायरे में चक्कर काटती रहेगी। आशाप्रद बात यह है कि कुछ एक गंभीर आलोचक पूरी निष्ठा के साथ इस कार्य में लगे हुए हैं। दलित स्त्री विमर्श का उभार भी दलित आलोचना में कुछ सकारात्मक प्रवृत्तियां पैदा करेगा, ऐसी उम्मीद है। कुल मिलाकर दलित आलोचना के लिये यह बेहद चुनौती भरा समय है। अगर हिन्दी की दलित आलोचना एक बेहतर समाज तथा एक बेहतर साहित्य के लिये होने वाले संघर्ष को आगे बढ़ाने का जज्बा दिखाती है, तो भविष्य पर उसकी दावेदारी अभी बची हुई है।

******

संदर्भ ग्रंथ :–

1. दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र – डॉ. ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं.- 2001
2. दलित साहित्य की अवधारणा – कँवल भारती, बोधिसत्व प्रकाशन, रामपुर, उ.प्र. - 2006
3. दलित समाज और संस्कृति – तेजसिंह, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, 2007
4. दलित चिंतन का विकास : अभिशप्त चिंतन से इतिहास चिंतन की ओर - डॉ. धर्मवीर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
5. दलित लेखन के अंतर्विरोध – रामकली सर्राफ (सं.), शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, 2009
6. चिंतन की परंपरा और दलित साहित्य – डॉ. श्योराज सिंह बेचैन/ डॉ. देवेन्द्र चौबे (सं.), नवलेखन प्रकाशन, हजारीबाग, 2000 -01
7. स्त्री के लिए जगहव – राजकिशोर (सं.), वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 1994

मोहनदास नैमिशराय की कहानियों में दलित संघर्ष
('हमारा जवाब' कहानी संग्रह के विशेष सन्दर्भ में)

शिल्पा दत्त
सहायक अध्यापिका(अंशकालीन), हिंदी विभाग
नार्थ लखिमपुर कॉलेज (स्वायत्त शासित)

प्रस्तावना -साहित्य समाज की उपज है| समाज से जुड़ने में ही साहित्य की प्रासंगिकता निहित है| समाज की मानसिकता में परिवर्तन हेतु आवश्यक है कि उसके विचारों में भी परिवर्तन हो और इस कार्य में साहित्य सहायक सिद्ध हो सकता है| किसी भी कहानी की सार्थकता इस बात में निहित है कि वह हमारे जीवन के विविध पहलुओं को छूती है या नहीं और जीवन को बेहतर बनाने में किस हद तक अपनी भूमिका निभाती है| लंबे समय से ही हिंदी साहित्य में दलित जीवन से संबंधित कहानियाँ लिखी जा रही थी परंतु सहानुभूतिपूर्वक| हिंदी कथा साहित्य में दलित चेतना की अभिव्यक्ति के दृष्टिकोण से आठवा दशक महत्वपूर्ण रहा है| इस समय के कहानियों में दलितों के भोगे हुए यथार्थ के साथ चेतना के तेवर भी नजर आये| धीरे धीरे स्वयं दलित लेखक सामने आये और अपनी दास्ताँ खुद लिखने लगे| अपने अस्मिता के प्रति सचेत हुए और एक विमर्श का रूप लेने लगे| ऐसे में मोहनदास नैमिशराय हिंदी साहित्य के एक सशक्त दलित साहित्यकार के रूप में नजर आते हैं| जिन्होंने अपने साहित्य में दलितों की जीवन संघर्ष को दिखाया है| दलितों के साथ हो रहे किसी भी प्रकार की अन्याय, अत्याचार को वह सह नहीं सकते हैं| अत: अपनी कहानी संग्रह 'आवाजे' तथा 'हमारा जवाब' में दलितों की सम्पूर्ण व्यथा-गाथा को खोलकर रख दिया है| लेखक अपनी कहानियो के माध्यम से समाज के लिए सवाल भी खड़ा करता है और उसका उत्तर देने का भी प्रयास करता है| जातिभेद, वर्णभेद, दलित जीवन की संकीर्णता, दलित नारी के साथ हो रहे अन्याय-अत्याचार, छुआछुत, धार्मिक एवं राजनैतिक संकीर्णता इत्यादि अनेक प्रकार की विसंगतियाँ इनकी कलम से बच नहीं पाए| मुख्य रूप से मोहनदास जी ने अपनी कहानियों के द्वारा दलितों के जीवन-इतिहास और उनकी अस्मिता को गति प्रदान किया है| प्रस्तुत आलेख में उनकी कहानी संग्रह 'हमारा जवाब' में निहित दलित संघर्ष पर चर्चा की जाएगी|

अध्ययन की पद्धति -

प्रस्तुत आलेख को सम्पन्न करने के लिए निम्नलिखित पद्धतियों का सहारा लिया गया है-

- विश्लेषणात्मक पद्धति
- आलोचनात्मक पद्धति
- वर्णनात्मक पद्धति

इसके अतिरिक्त इसे सम्पूर्ण करने के लिए आधार ग्रंथो और सहायक ग्रंथो की सहायता ली गयी है|

शोध उद्देश्य :-मोहनदास नैमिशराय ने अपनी कहानियों में किस प्रकार दलित संघर्ष को प्रस्तुत किया है उसे दिखाना|दलितों की सामाजिक स्थिति पर प्रकाश डालना|छुआछुत, अस्पृश्यता, धर्म, निम्न जाति के नाम पर दलितों के ऊपर हो रहे अत्याचार को किस प्रकार लेखक ने अपनी कहानियों में दिखाया है उसे प्रस्तुत करना मेरा उद्देश्य रहेगा|

मूल विषय -मोहनदास नैमिशराय मूलतः एक प्रसिद्ध दलित साहित्यकार है, जिन्होंने अपने साहित्य में दलितों की समस्याओं को दिखाया है| इन्होंने अपनी कहानी संग्रह 'हमारा जवाब' के माध्यम से समाज में दलितों की स्थिति को बड़े ही सजीवता से दिखाया है| समाज में दलितों की अपनी आजादी नहीं होती, उन्हें आजीवन महाजन, जमींदारों के गुलाम बनकर रहना पड़ता हैं| गाव में चमार, डोम जैसे निम्न जाति को समाज में कुत्तों की तरह व्यवहार किया जाता है| निम्न जातियों को समाज में दुकान लगाना तथा अन्य काम करना सवर्ण जातियों की शान के खिलाफ होता था| समाज में दलित पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियों पर भी अत्याचार, शोषण और बलात्कार जैसे अपराध भी किया जाता हैं| दलितों की सामाजिक समस्या को नैमिशराय जी के 'हमारा जवाब' कहानी संग्रह में निम्नलिखित बिन्दुओ में देख सकते है-**अमानवीयता का भयावह चित्रण-** हिंदी दलित साहित्य में मोहनदास नैमिशराय एक ऐसे प्रसिद्ध लेखक है जो अपनी चेतनापरक रचनाओं के लिए सुविख्यात है| मोहनदास नैमिशराय ने समाज में दलितों के ऊपर हो रहे अत्याचार का चित्रण बड़े ही मार्मिक ढंग से किया हैं| इसका उदाहरण हम प्रस्तुत कहानी संग्रह में सं 'मजूरी' कहानी में देख सकते हैं| इस कहानी में सुमति नामक दलित स्त्री पात्र है, जो अपने मालिक से अपने काम के पैसे मांगने जाती है तो मालिक द्वारा अपने पालतू कुत्ते से उसे बुड़ी तरह कटवाता हैं| लेखक लिखते हैं- "महेश अब तक रोमी को इशारा कर चूका था| रोमी ने उसके हाथ को मुंह में ले लिया था| नुकीले दांत गड़ गए थे उसकी कलाई पर| जहाँ खून उभर आया था| रहे-सहे कपड़े भी फट गये थे| कई जगह काटा था रोमी ने उसे| वह चिल्लाती रही थी, पर कोई नहीं आया था उसे कुत्ते से बचाने|"[1] आसपास बैठे लोगों में से किसी ने उसे बचाने की कौशिश नहीं की और वह अंत में तड़प तड़पकर मर जातीहैं|

इससे पता चलता है लोगों की अमानवीयता का| महाजन के घर में काम करनेवाली सुमति तो अपना हक़ का पैसा मांगने आयी थी पर हर बार महाजन उसे भेज देता था| जिस दिन वह ठानकर आयी की चाहे जो हो जाए वो अपना मजूरी लेकर रहेगी उसी दिन उसे मरवा दिया जाता है| देखा जाए तो सुमति जैसी स्त्री आज भी समाज में जिंदा हैं| वर्तमान समाज में आज भी सवर्ण या उच्च वर्ग के लोग मजदूरों से अपना काम तो करवा लेते हैं, लेकिन उनके काम के बदले उनको पैसे नहीं देते और जब अपने हक के लिए आवाज उठाते हैं तो उनको मौत के मुहँ मे धकेल दिया जाता हैं| मरने से पहले वह अपने दस वर्ष के बेटे को समझाते हैं कि " बेटे याद रखना| महेश नाम है उसका| बड़ा होकर अपनी माँ का हिसाब माँगना उससे| एक-एक पाई वसूल करना|"[2] यहाँ लेखक ने अंत में दलितों को अपने स्थिति के प्रति आवाज उठाने की भावना को उजागर किया है|

छुआछूत और जातिवाद का भयावह चित्रण - दलित साहित्य से पहले प्रेमचंद युग में हमें छुआछूत का चित्रण मिलता हैं, लेकिन दलित साहित्य में छुआछूत के चरम स्तर को दिखाया गया हैं| आंबेडकर के अनुसार "छुआछूत गुलामी से भी बदत्तर हैं"[3] मोहनदास नैमिशराय ने अपने कहानियों के माध्यम से ग्रामीण अंचल में जातिवाद और उच्च जाति के सामंती व्यवस्था को दिखाया हैं| गाव के महाजन, जमींदार लोगों द्वारा दलितों की बस्तियों को गाव से बाहर रखा जाता था| उनके लिए कुआँ, शमशान आदि सब कुछ अलग रखा होता था| दलित साहित्यकार शरण कुमार ने लिखा है-"दलित साहित्य का जन्म अस्पृश्यता की कोख से हुआ हैं|"[4] दलित साहित्यकार मोहनदास नैमिशराय जी ने अपनी कहानियों में छुआछूत के घृणित और भयावह रूप को दिखाया हैं| उदाहरण के रूप में हम 'हमारा जवाब' कहानी को ले सकते हैं| कहानी में चित्रित हिम्मत सिंह एक दलित परिवार से था जो अपना घर चलाने के लिए मिठाई बनाकर बेचने जाता हैं, लेकिन सभी लोग उससे घृणा करते थे| सवर्ण लोग तो हिम्मत के खिलाफ दुष्प्रचार फैलाने लगे थे| बार-बार समाजवालों ने उसे मिठाई बेचने के लिए मना भी किया था, लेकिन फिर भी वह मीठाई बेचता था| वह कहता है "मैं इसीलिए मिष्ठान का खोमसा लगाना बंद कर दूँ कि मैं दलित समाज से हूँ| नहीं नहीं यह कार्य मैं पहले की तरह करता रहूँगा| देखते हैं कौन रोकेगा मुझे| अरे वे ऊँची जात के हो गए तो क्या उतने ऊँचे कि आदमी को भूल जाए|"[5] अंत में पूरे समाज के लोग मिलकर उसे मरवा देते हैं, लेकिन वह अपने अंतिम साँस तक लड़ता हैं| उसने जाति भेद की समस्या को खत्म करने का प्रयास भी किया था| जातिवाद की व्यवस्था से समाज में प्रेम और भाईचारे के बदले घृणा का भाव बांटा जा रहा था| 'जगीरा' नामक कहानी में भी छुआछूत का मार्मिक चित्रण किया गया हैं| जगीरा दलित वर्ग का हैं, जो अपनी कड़ी मेहनत से सभासद बना था| उसके द्वारा सभा में एक दिन पानी के घड़े को छु देने पर सभा में

उपस्थित सभी लोग उसके विरोध हो जाते हैं और समाचार पत्रों में उसके खिलाफ दुष्प्रचार फैलाने लगते हैं| इसप्रकार मोहनदास नैमिशराय के दलित साहित्य में छुआछूत का घृणित और भयावह रूप देखने को मिलता हैं|

अंधविश्वास का चित्रण :-

अंधविश्वास आज दुनिया के कोने कोने में फैला हुआ हैं| अंधविश्वास का प्रभाव आमतौर पर ग्रामीण समाज में देखने को मिलता हैं| यह पीढ़ी दर पीढ़ी बढ़ता जा रहा हैं| अंधविश्वास की भावना अधिकतर कमजोर मानसिकता के व्यक्ति में होती है| दलित साहित्यकार नैमिशराय ने अपने साहित्य में भी अंधविश्वास का चित्रण किया हैं|'हमारा जवाब'कहानी संग्रह मे संकलित'कर्ज'नामक कहानी में गाव के अंधविश्वास को दिखाया हैं| इस कहानी में दलित लोग रीति-रिवाज, पूजा-पाठ पर ज्यादा विश्वास करते थे| जिन लोगों को एक वक्त की रोटी मुश्किल से मिलती हो, जिनके बच्चे दवाई के अभाव में मर जाते हैं, वे लोग पूजा–पाठ तथा धार्मिक अनुष्ठान जैसे ढोंग में लिप्त रहते हैं| शोषित समाज के स्त्री–पुरुष, देवी-देवताओं को खुश करने के लिए मेहनत से कमाए हुए पैसे का दुरुपयोग करते करते हैं, भले ही उन्हें इन सब कामों के लिए कर्ज में ही क्यू ना डूबना पड़े| समाज के हर क्षेत्र सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक आदि में भी अंधविश्वास जैसी ढोंग पर विश्वास किया जाता हैं| वर्तमान समय में अंधविश्वास इतना अधिक बढ़ गया है की बच्चे के बीमार होने पर डॉक्टरों के पास जाने के वजाय साधु, जैसे ढोंगों के पास जाया जा रहा हैं| राख और भभूत की चुटकी लगाकर बच्चों के जान के साथ खेला जा रहा हैं| कहने को तो जमाना नया हो गया है, लेकिन आज भी पुरानी मान्यताएं समाज में चल रही हैं|

अपने अस्तित्व की लड़ाई :-मोहनदास जी ने अपने साहित्य द्वारा दलितों में जागरूकता लाने का भी सफल प्रयास किया हैं| 'जगीरा' नामक कहानी में दिखाया गया है कि भूपतसिंह जागीरदार के गाँव का कानून था कि कोई दलित महिला गाँव में बच्चा नहीं दे सकती थी| उन्हें बच्चे को जनने के लिए गाँव से बाहर जाना पड़ता है| लेकिन जगीरा का जन्म इस परंपरा को तोड़ता है| इसलिए उसका नाम 'जगीरा' पड़ता है| दलित वर्ग का जगीर अपने संघर्ष के बल पर चुनाव लड़कर सभासद बनता हैं| कहानी में जगीरा डॉ अंबेडकर के जीवन संघर्ष द्वारा समाज के नवयुवकों में नई चेतना लाने का प्रयास करते हैं| दलितों में परिवर्तन लाने के लिए उसने अपने संघर्ष के बल पर कॉर्पोरेशन ऑफिस में सभासद तो बन जाता हैं, लेकिन एक दिन उसके द्वारा पानी के घड़े छु देने पर सारा समाज उसके विरुद्ध
हो जाता है और तब उसकी अस्मिता चूर-चूर हो जाती है| जगीरा का दोस्त उस बात को भुलाने के लिए उसे शराब पिलाते हैं परंतु उसके पिता उसे संघर्ष करने की प्रेरणा देकर कहता है "उठ जगीरा, शराब के दलदल में मत फँस, संघर्ष कर, अभी तेरा मकसद खत्म नई हुआ है ये तो शुरुआत है|"[7] वह हार नहीं मानता और अपने दलितों के जीवन में सुधार लाने का सफल प्रयास करता रहा| जगीरा जैसे व्यक्ति हमें आज भी समाज में जिंदा और अपने हक के लिए लड़ते दिखाई दे रहे हैं| अंत में कह सकते हैं कि मोहनदास नैमिशराय हिंदी दलित साहित्य के एक सशक्त साहित्यकार है| उन्होंने अपनी कहानियों में दलित जीवन की दःख, पीड़ा, अभाव, समस्याएँ, संघर्ष इत्यादि को वाणी दी है| हिंदी साहित्य में जो वर्ग आजतक उपेक्षित रहा है उनके जीवन संघर्ष को नैमिशराय की कहानियों में देखा जा सकता है| आज दलित वर्ग कठिन संघर्ष करके अपनी शिक्षा भी पूरी कर रहें हैं| राजनीतिक, सामाजिक आदि क्षेत्र में भी दलित वर्ग आगे बढ़ते दिखाई दे रहे हैं| दलितों के प्रति समाज में जो दृष्टिकोण चल रहा था, उसमें काफी सुधार भी आया हैं|

****

संदर्भ सूची :-

1. नैमिशराय, मोहनदास, हमारा जवाब, श्री नटराज प्रकाशन, पृष्ठ - 143.
2. वही, पृष्ठ संख्या- 143.
3. https://m.dailyhunt.in>india>hindi
4. https://egyankosh.ac.in>
5. नैमिशराय, मोहनदास, हमारा जवाब, श्री नटराज प्रकाशन, पृष्ठ -51.
6. वही, पृष्ठ संख्या- 15.
7. वही, पृष्ठ संख्या- 39.

कबीर के काव्य लोक मंगल

कबीर समाज में सुधार लाने के लिए लोकमंगल की कामना करते हैं।

कबीरा खड़ा बाजार में, मांगे सब की खैर।
ना काहू सों दोस्ती, न काहू सौ बैर।।"

कबीर लोकमंगल की कामना करते हुए कहते हैं कि इस संसार में आकर कबीर अपने जीवन में बस यही चाहते हैं कि भला हो संसार में यदि किसी से दोस्ती नही तो दुश्मनी भी न हो। कबीर मनुष्यो को एक ही शक्ति से उत्पन्न हुआ मानते हैं। उन्हों ने मनुष्य को संकीर्ण विचारधारा को त्यागकर उच्च तथा आदर्श जीवन जीने का उपदेश दिया है। उनके दोहे आज के समय में भी उतनी ही सार्थकता दिखाते हैं जितने कबीर के समय में थे।

*****

कबीर के काव्य में प्रेम तत्व

कबीरदास ने सामाजिक बुराईयों को दूर करने के लिए प्रेम की प्रधानता पर जोर दिया है।

"पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ पण्डित भया न कोय ।
ढ़ाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पण्डित होय।"

कबीर कहते हैं कि बड़ी बड़ी किताबें पढ़ने से कोई विद्वान नहीं बनता। कितने ही लोग हैं जो किताबें पढ़ पढ़ कर संसार से मृत्यु के मुहं तक चले गए। कबीर कहते हैं कि यदि कोई प्यार के ढ़ाई अक्षर ही अच्छी तरह से पढ़ ले तो वही सच्चा ज्ञानी होगा।

****

हिंदी साहित्य में दलित चेतना

वैशाली काशी नाथ गायकवाड
सहायक प्राध्यापिका
अरुणाचल यूनिवर्सिटी ऑफ़ स्टडीज मो.9029920423

सारांश :-
भारत में प्राचीन काल से ही दलित वर्ग के लोगों का सवर्णों द्वारा शोषण होते आ रहा हैं | दलित का अर्थ है जिसका दलन, दमन और शोषण हुआ ऐसा वर्ग समाज में ब्राह्मणों द्वारा बनाई गई जाति व्यवस्था में शुद्र वर्ग के लोगों को सबसे निचला स्थान दिया गया हैं | शुद्रों को ही दलित, हरिजन और अस्पृश्य समझा जाता हैं | इन लोगों को समाज में हमेशा से अशुभ माना गया हैं | उनकी छाया भी अगर सवर्णों पर पड़ जाती है तो वे अपने आप को शुध्द करने के लिए पूजा-पाठ करते थे | उन्होंने दलितों को उन सभी अधिकारों से वंचित रखा जो हर व्यक्ति का मौलिक अधिकार होता हैं | शिक्षा प्राप्त करना, धार्मिक क्रियाएँ करना, मंदिरों में प्रवेश करना, नदी या कुएँ का पानी पीना, अपनी ईच्छा के अनुसार व्यवसाय या काम करना आदि सभी कार्य दलितों के लिए निषेध थीं | ऐसी परिस्थिति में दलितों के हित के लिए और उन्हें भी समाज में अन्य व्यक्तियों की तरह सम्मान और समान अधिकार मिले इस उद्देश्य से डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर, महात्मा ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले इन महान व्यक्तियों ने अथांग परिश्रम किए | इन सब में डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर जी का महत्वपूर्ण योगदान रहा है | उन्हीं के कारण आज समाज में दलित वर्ग सही अर्थ में स्वतंत्र हुआ है | बाबासाहेब आंबेडकर जी ने अपना पूरा जीवन दलितों के उध्दार के लिए और उनके कल्याण के लिए बीता दिया है | भारतीय समाज की वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था और हिंदू धर्म व्यवस्था की कुरूतियों के विरुध्द संघर्ष करते हुए उन्होंने अस्पृश्यों को उनका अधिकार प्राप्त करवाया | साथ ही सामाजिक, आर्थिक और राजनितिक अधिकारों की पैरवी की | डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर स्वयं दलित परिवार से थे | उन्हें भी जातीय वर्ण व्यवस्था का सामना करना पड़ा था | अपने जीवन में उन्होंने भी वही यातना सही थी जो एक दलित वर्ग का व्यक्ति सहता था | वे समाज में परिवर्तन चाहते थे | देश में समानता, बंधुता लाना चाहते थे | इसीलिए उन्होंने दलितों के अंदर जनजागृति की चेतना को जगाया | दलित चेतना से अस्पृश्यों में स्वाभिमान की भावना जागृत करके उन्हें शिक्षा के लिए प्रवृत्त किया | दलितों के बीच हो रही जागरूकता को ही दलित चेतना कहा जाता है | दलित चेतना की परिभाषा लिखते हुए ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते है की,"दलित की व्यथा, दुःख, पीड़ा, शोषण का विवरण देना या बखान करना ही दलित चेतना नहीं है, या दलित पीड़ा का भावुक और अश्रु-विगलित वर्णन, जो मौलिक चेतना से विहीन हो, चेतना का सीधा संबंध दृष्टि से होता है जो दलितों की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक भूमिका की छवि के तिलस्म को तोड़ती है | वह है दलित चेतना | दलित मतलब मानवीय अधिकारों से वंचित, सामाजिक तौर पर जिसे नकारा गया हो | उसकी चेतना यानी दलित चेतना |"१ बाबासाहेब का मानना था की ब्राह्मणवाद, हिंदू धर्म की व्यवस्था के कारण ही अस्पृश्यों को उनका अधिकार प्राप्त नहीं हो रहा है | इसीलिए वे उसके कट्टर विरोधी थे | आज उनके कारण ही दलित व्यक्ति शिक्षित है, स्वतंत्र है, वह हर एक क्षेत्र में कार्य करते हुए प्रगति कर रहा है और अपने कार्य से समाज में अपना दर्जा भी बढ़ा रहा है | इसका पूरा श्रेय बाबासाहेब जी को ही जाता है |

मूलशब्द:-समाज, दलित, शोषण, अन्याय, चेतना, जागरूकता, परिवर्तन, अधिकार, दर्जा, सम्मान

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी पुस्तक 'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र' में लिखा है कि, "दलितों की संस्कृति में गुण-दोष हो सकते हैं लेकिन इतना तो निश्चित है, कल का दलित और आज का दलित भिन्न है | यही अंतर सांस्कृतिक निष्ठा का निर्माण कर रहा है | देवी-देवताओं में श्रध्दाभाव, मंदिर, ईश्वर, पुनर्जन्म, मनुष्य और मनुष्य के बीच घृणा भाव उत्पन्न करनेवाले धर्मशास्त्र, ग्रंथ, महाकाव्य, नर्क-स्वर्ग, मनुष्य को गुलाम बनानेवाले प्रपंच, कर्मकांड को नकारते हुए आज का दलित अपनी अलग पहचान और संस्कृति निर्मित कर रहा है | आत्मविश्लेषण, अस्मिता की तलाश, जीवन मूल्यों की खोज, मानवीय सरोकारों की पड़ताल, आदि दलित संस्कृति के मूल आधार हैं | इन सवालों से ही दलित चेतना का उद्गम है और डॉक्टर आंबेडकर के जीवन-दर्शन, सामाजिक-संघर्ष से उर्जा पाकर साहित्यिक अभिव्यक्ति में परिवर्तित हुआ है |"[२]

पहले दलित अन्याय, अत्याचारों को सहता था | वह अपने अधिकारों से अनजान था | अपने हक के लिए आवाज उठाना, समाज में अपनी स्थिति सुधारना आदि परिस्थियों को बदलने में अक्षम था | परंतु डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर के कारण दलितों के जीवन को नई दिशा मिल गई | जयन्त परमार कहते हैं कि अम्बेडकर-दर्शन ने दलित कवियों के मन में आत्मसम्मान जागृत किया है; उसके फलस्वरूप जीवनानुभव को देखने और पहचानने की उनकी भूमिका विद्रोह तथा नकार से भर उठी | उसका आवेग किसी तूफान की तरह है | उसका सौंदर्य और उसका सामर्थ्य उसकी वेदना में है | दलित कविता का कथ्य पूर्ण तथा अनोखा है, उसमें किसी और कवि के संस्कारों की या अनुकरण की न तो कोई आवश्यकता है, न कोई गुंजाइश |" ३ बाबासाहेब आंबेडकर जी ने दलितों के हक के लिए ही कार्य नहीं किया बल्कि स्त्रियों को भी समाज में पुरुषों के समान हक प्राप्त कर दिया है | बाबासाहेब के विचारों ने दलित साहित्यकारों को भी दलितों के संघर्षपूर्ण जनजीवन पर लिखने के लिए प्रेरित किया है | हिंदी साहित्य में दलित साहित्य ने अपनी अलग जगह बना ली है | उपन्यास, कहानी, कविता आदि विधाओं में दलित विमर्श, दलित चेतना दिखाई देती हैं | | 'धरती धन न अपना' उपन्यास में जगदीशचंद्र माथुर जी ने अछूत चमारों की दयनीय स्थिति को दर्शाया है | उपन्यास में नायक काली उर्फ़ कालीदास चमार जाति का है | वह बचपन में गाँव से भागकर शहर में चला गया था | अब वह बड़ा हो गया है और अपने गाँव घोड़ेवाहा में वापस आया है | शहर से उसने कुछ पैसे भी कमाकर लाए है | घोडेवाहा में चौधरी हरनामसिंह गावं के चमारों पर अन्याय करता रहता है | और चमारों को 'कुत्ते की औलाद' कहते हुए संबोधित करता रहता है | नंद सिंह कहता है, " गाँव में चमार होना तो सबसे बड़ा पाप है | घोर लांछन है | दो कौड़ी का मालिक काश्तकार अपने चमार को छटी का दूध पिला देता है |.....मुझे 'चमार' शब्द से ही नफरत है | मुझे कोई भी चमार कहे तो गुस्सा आ जाता है |"४ नंद की तरह काली को भी इस बात से गुस्सा आता है | काली शहर में रहकर आया है | उसके अंदर अन्याय का विरोध करने की शक्ति है | जब चौधरी हरनामसिंह बिना किसी कारण के चमारों को मारपीट करता है तो काली इसका विरोध करना चाहता है | गाँव में चमारों के मकान, उनकी गरीबी, और दयनीय स्थिति देखते हुए वह दुखी भी हो रहा है |वह जिस बस्ती में रहता है उस बस्ती में सभी चमारों के मकान मिटटी के है | चौधरियों के मकान देखकर काली भी पक्का मकान बनाना चाहता है | वह चमारों में पहला पक्का मकान बना रहा है | पक्का मकान बनाकर वो एक प्रकार से चौधरीयों को सूचित करवाना चाहता है की अन्य चमारों की तरह वह अन्याय नहीं सहेगा |"तुम मकान की बात कर रहे थे.वाह-वाह बड़ा नेक ख्याल है .तेरे सदके चमादडी में भी एक मकान पक्का हो जाएगा | तेरी इज्जत बढ़ेगी | चार गाँव में नाम हो जायेगा कि घोडेवाहा की चमादडी में भी एक पक्का मकान बन गया है |"५ काली अपने हक और अधिकारों के प्रति जागरूक है और वह उसके लिए आवाज उठाने में भी सक्षम है |'शिक्षा का परचम' कविता में रजनी तिलक शिक्षा का महत्व को बताते हुए अस्पृश्यों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया है | किसी भी व्यक्ति का विकास शिक्षा से ही होता है | वह शिक्षा से ही अपना दर्जा बड़ा सकता है | अपने जीवन के अंधकारों को मिटा सकता है | उसी महत्व को समझते हुए दलित शिक्षित हो रहा है |

"पढ़ कानून/मिटा तिमिर, लगा हलकार |
पढ़ समाजशास्त्र, बन सावित्री/फहरा शिक्षा का परचम"[६]

'शूद्रो के जो हाथ' कविता में नवेंदु महर्षि कहते है की दलित व्यक्ति कमजोर नहीं है अगर वो चाहे तो कुछ भी कर सकता है | जो व्यक्ति ऐसे काम करें जहाँ बल का शक्ति का प्रयोग किया जाता हो | वे शोषणकारियों को भी दंडित कर सकता है | अपने जुल्म के विरुध्द खड़ा हो सकता है | आज दलित किसी भी प्रकार का शोषण को सहने वाला नहीं है बल्कि उसके खिलाफ आवाज उठाने वाला है | अपने हक के लिए लढने वाला है |

"जो हाथ खदान से कोयला खीचंते हैं/क्या वे दमनकर्ता के हलक से जीभ/नहीं खींच सकते/दलितों के हाथ में/शक्ति होती है मगर वे किसी को/पीड़ा पहुँचाना नहीं चाहते/लेकिन खुद पर होते / जुल्म के खिलाफ तो/उठ ही सकते हैं |"[७]

'सिलिया' कहानी में सुशीला टाकभौरे ने सिलिया के माध्यम से स्वाभिमान और आत्मसम्मान की भावनाओं को प्रस्तुत किया हैं | मालती सिलिया की बुआ की बेटी है | जब वह किसी और के कुएँ से पानी पीती है तो उसकी माँ उसे बहुत मारती है | उस समय सिलिया यही सोचती है की समाज में उनके साथ ऐसा क्यों हो रहा है | जब समाचार पत्र में विज्ञापन आता है की कोई उच्च वर्णीय व्यक्ति किसी अस्पृश्य लड़की से विवाह करना चाहता है तो सिलिया के घर के आसपास के सभी लोग सिलिया के माँ को सिलिया का विवाह करने की सलाह देते है | हम उनके भरोसे क्यों रहे | पढ़ाई करूंगी, पढ़ती रहूँगी, शिक्षा के साथ अपने व्यक्तित्व को भी बड़ा बनाऊंगी | उन सभी परम्पराओं के कारणों का पता लगाऊंगी, जिन्होंने उन्हें अछूत बना दिया है | विद्या, बुध्दि और विवेक से अपने आपको ऊँचा सिध्द करके रहूँगी | किसी के सामने झुकूँगी नहीं | न ही अपमान सहूँगी |"[७] सिलिया और उसकी माँ में आत्मसम्मान और स्वाभिमान की भावना दिखाई देती है | वे किसी के सामने झुकने वाले नहीं है | "शादी तो एकन-एक-दिन करना ही है बेटी, मगर इसके पहले तू खूब पढ़ाई कर ले, इतनी बड़ी बन जा कि बड़ी जात के कहलाने वालों को अपने घर नौकर रख लेना |"[८] बाबासाहेब आंबेडकर जी ने समाज में परिवर्तन कर दिया है | उनकी दलित चेतना से आज समाज में ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है जहाँ दलित व्यक्ति कार्यरत नहीं है | वह उच्च शिक्षा लेते हुए सभी कार्यों में निपुण हो रहा है और समाज, देश में अपने अधिकारों के साथ सम्मानपूरक जीवन ग्यापन कर रहा हैं |

****

संदर्भ सूची

वाल्मीकि ओमप्रकाश, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, पृ.क्र.२९

1. वही, वही, पृ.क्र.३२
2. वही, वही, पृ.क्र.३१
3. माथुर जगदीशचंद्र, धरती धन न अपना, पृ.क्र.१९०
4. वही, वही, पृ.क्र.३८
5. तिलक रजनी, दलित निर्वाचित कविताएँ, पृ.क्र.१४६
6. महर्षि नवेंदु, दलित निर्वाचित कविताएँ, पृ.क्र.१६१
7. टाकभौरे सुशीला, दलित कहानी संचयन, रमणिका गुप्ता, पृ.क्र.६५
8. वही, वही, पृ.क्र.६५

दलित शब्द का अर्थ, परिभाषा एवं अवधारणाएं

डॉ जोगीराम
सह-प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
एन.आई.आई.एल.एम. विश्वविद्यालय,
कैथल (हरियाणा)

भूप सिंह
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
एन.आई.आई.एल.एम. विश्वविद्यालय,
कैथल (हरियाणा)

हमारे देश में दलित शब्द का प्रयोग उन्नीसवीं शताब्दी से शुरू हुआ। हमारे हिन्दू समाज में दलित शब्द का प्रयोग परम्परागत रूप से शूद्र माने जाने वाले लोगों के लिए किया गया है। दलित उन्हें कहा जाता है। जिन्हें सदियों से सताया गया है और जो निम्न या निचले स्तर पर है। हमारा हिन्दू समाज वर्ण व्यवस्था पर आधारित था, जिसमें चार वर्ण थे। जो इन वर्णो में सबसे नीचे के स्तर पर विद्यमान था। वह शूद्र वर्ण था। किन्तु इस शूद्र वर्ण में जो निम्न स्तर पर था उसे दलित कहा गया है। दलित वह है जिसका दलन, शोषण एवं तिरस्कार किया गया। उन्हें अस्पृश्य माना जाता था। सवर्णों द्वारा दलितों पर अत्याचार किया जाता और उन्हें अछूत मानकर उनको मन्दिर जैसे- धार्मिक स्थलों पर जाने से रोका जाता था। दलित लोग मन्दिरों में प्रवेश नहीं कर सकते थे और न ही वे कोई भी धार्मिक ग्रन्थ पढकर उसका उच्चारण कर सकते थे। यदि कोई भी दलित ऐसा करता तो उसे कठिन से कठिन दण्ड दिया जाता।

दलितों का समाज में सभी प्रकार से शोषण किया जाता रहा है, चाहे वह धार्मिक, आर्थिक, समाजिक व राजनीतिक हो। समाज में सवर्णो को सभी अधिकार प्राप्त नहीं था। दलितों को शिक्षा से वंचित रखा जाता था जिससे कि सवर्ण लोग दलितों को गुलाम बनाकर उनका शोषण कर सके। शिक्षा ही ऐसा माध्यम है जो व्यक्ति को उनके ऊपर होने वाले अत्याचारों एवं शोषण के प्रति सजग बनाती है। क्योंकि शिक्षित व्यक्ति ही अत्याचारों व शोषण के विरूद्ध विद्रोह करता है। दलित शब्द के भीतर छिपा गूढ़ अर्थ जिस भाव की व्याख्या करता है, वह उन लोगों की पहचान है जो सदियां से दबे, कुचले, प्रताड़ित, उपेक्षित लोग है, दलितों का निरन्तर शोषण होता रहा है। दलित सम्बन्धी धारणा समय-समय पर विकासशील रही है। प्राचीन काल में दलितों के लिए शूद्र, अतिशूद्र, चाण्डाल, अस्पृश्य शब्दों का प्रयोग किया गया है। ये सभी शब्द एक-दूसरे के समानार्थी शब्द है। सवर्णो के लिए दलितों का स्पर्श भी अपवित्र माना जाता है।आधुनिक युग में दलित वर्ग के अन्तर्गत केवल अस्पृश्य वर्ग ही नहीं अपितु सामाजिक रूप से अविकसित, पीडित, शोषित व निम्न जातियों के लोग सम्मालित होते हैं। जिन पर हजारो वर्षो से अन्याय व अत्याचार होता हुआ आया है, ऐसे अस्पृश्यों को ही दलित कहा जाता है। दलितों के आर्थिक स्तर को अपेक्षाकृत सामाजिक आधार से कम महत्व दिया गया है। कोई भी व्यक्ति अमीर-गरीब तो हो सकता है, किन्तु वह दलित नहीं हो सकता। दलित वर्ग में वे जातियां आती है, जिन्हें परस्पर अस्पृश्य समझा गया है। दलित वर्ग में तुच्छ, विरस्कृत, गतजन्म का पापी और इहलोकी, दुःखी, दरिद्र, अपमानित, जिसका कोई इतिहास ही नहीं, जिसके पुरखों को मन्दिर अथवा धार्मिक गन्थो में पूजनीयता नहीं मिली आदि को रखा जाता है।"भारत की परम्परागत वर्ण व्यवस्था के कारण लम्बे समय से दलित असम्मान का पात्र बना रहा है, चाहे कितना भी वह सर्वगुण सम्पन्न क्यों न हो, कार्य कुशल हो। अपनी मेहनत से ऊँचे पद पर क्यों न हो, किसी भी चुनौती का सामना करने के समय जाति सदैव दलितों को परस्पर बाँटने और कमजोर करने का एक शक्तिशाली हथियार बनती हैं। दलितों की जागृति सवर्णो के भयंकर शोषण का ही परिणाम है। शोषण शोषण ही है चाहे वह मानसिक या शारीरिक, आर्थिक या सामाजिक, धार्मिक या राजनैतिक हो। प्राचीनकाल में सामाजिक जीवन से बहिष्कृत, निर्दलित जो लोग थे, वे शुद्र, अतिशुद्र ही थे, और उनको जीवन में ऊपर उठने का मौका नहीं दिया गया।शूद्र भी दो प्रकार थे, एक निर्वासित और दूसरा अनिर्वासित। दलित शब्द एक ऐसे तिरस्कृत जीवन का बोध कराता है, जो कि हमारे समाज का एक बडा अंश है, जो सदियों से तिरस्कृत जीवन जीता हुआ चला आ रहा है और आज भी उसी जीवन को जी रहा है। शब्द 'दलित' करूणा या दया का व्यंजक नहीं है, बल्कि बेवजह दमन और अपमान का शिकार होने के स्वभाविक रोष को व्यक्त करता है।"1दलितों को पशुओं से भी बदतर माना जाता है। पशुओं को छुने से कोई पाप नहीं किन्तु किसी भी दलित को छुना पाप माना जाता है। भगवान का भय दिखाकर दलितों को यथास्थित बने रहने पर विवश किया गया।

जिससे कि दलित सवर्णो की सेवा को ही अपना धर्म स्वीकार करते रहे। दलित के घर पैदा होने वाला बालक अस्पृश्य ही माना जाता है। फिर चाहे वह कितना भी विद्वान ज्ञानी, गुणों से युक्त सदाचारी हो, दलित दलित ही है। उसे समाज मे उसकी कार्यक्षमता विद्वता या गुणों के आधार पर स्थान प्राप्त नहीं है। उसे जाति के आधार पर ही समाज में स्थान दिया है। किन्तु एक सवर्ण कितना भी नीच कार्य करे उसे समाज में सबसे ऊपर स्थान पर रखा जाता है। हमारा समाज जाति में सबसे ऊपर स्थान पर रखा जाता है। हमारा समाज जाति पर आधारित है, जिसमें जाति के आधार पर छुआछूत एवं अस्पृश्यता फैली हुई है। दलितों का जीवन संघर्ष एवं विद्रोह का जीवन है। जिसे वह पूरा जीवन जीता है।

दलित शब्द का अर्थ:-दलित शब्द का अर्थ है, जिसका दलन, शोषण और उत्पीड़न किया गया हो। ''दलित शब्द के लिए शूद्र, अतिशूद्र, चंडाल, अंत्यज, अस्पृश्य आदि शब्दों का प्रयोग प्राचीन काल से ही होता आ रहा है। ये सभी शब्द दलित शब्द के पयार्य है।''[2] दलित एक ऐसा शब्द है जो परम्परागत रूप से सबसे नीचे के स्तर या अछूत और अस्पृश्य माने जाने वाले लोगों द्वारा अपने सम्बोधित करने के लिए प्रयोग किया गया शब्द है। यह दलित शब्द विद्रोह और बदलाव का प्रतीक है। ''हिन्दी तथा मराठी शब्दकोषों 'दलित' शब्द का अर्थ 'विनिष्ट किया हुआ' दिया गया है। दलित शब्द के लिए अस्पृंश्य, अवर्ण, पंचम, अंत्यज, हरिजन, बहिस्कृत इत्यादि शब्दों का प्रयोग भी किया गया है। किन्तु दलित शब्द का अर्थ होता है। कुचला हुआ, पिछडा हुआ।''[3]''दलित शब्द का अर्थ जाति-बोधक नहीं, बल्कि समूह की अभिव्यंजना देता है। सामान्य अर्थो में देखा जाए तो दलित वह है जो भारतीय समाज व्यवस्था में अस्पृश्य माना गया, दुर्गम पहाडियों जंगलों में जीवन-यापन करने को बाहय जनजातियों, बेगार करते, कम मूल्य पर श्रम करते श्रमिक, जरायम पेशा कही जाने वाली जातियां, बन्धुआ मजदूर, वर्ण व्यवस्था का अन्त्यज, जिसका आर्थिक, शैक्षाणिक, सामाजिक राजनीतिक, धार्मिक शोषण हुआ है, जो जन्मना अछूत है - वही दलित की परिधि में आता है।''[4] दलित शब्द एक तिरस्कृत जीवन का बोध कराता है। दलित वर्ग मानवीय समाज मे पिछडा हुआ वर्ग है।

दलित शब्द से अभिप्राय:

दलित शब्द से अभिप्रायः एक ऐसे वर्ग से है जिसमें किसी समूह या जाति विशेष के व्यक्ति जिसकी धन, सम्पत्ति, माल अधिकार और श्रम का हरण किसी अन्य सत्ता सम्पन्न जाति या व्यक्ति द्वारा किया गया है। दलित वर्ग में वे जातियां आती है। जिन्हे सदियों से सताया गया है। दलित वर्ग में वे जातियां आती है। जिन्हे सदियों से सताया गया है और जो निम्न स्तर पर है ''दलित शब्द की व्याख्या आज भी सापेक्ष बनाने की कोशिश जारी है, जबकि दलित वे है, जो अपने सम्मान के लिए विद्रोह में संघर्षरत है और संघर्ष करते हैं लोकतान्त्रिक समानता के मूल्य को यथार्थतः समाज में प्रस्थापित करने की कोशिश में लगे है।''[5] दलित समाज हजारों वर्षा से अपनी सांस्कृतिक अभिव्यक्ति से वंचित रहा। हमारे भारतीय समाज में आधारित जाति-व्यवस्था के अन्तर्गत दलितों को सवर्णो की अपेक्षा सभी सुविधाओं से वंचित रखा और सवर्णो को सभी सुविधाओं का लाभ प्राप्त होता रहा। इस प्रकार दलित और भी पद-दलित होता चला गया।''दलित शब्द से अनेक प्रकार का बोध होता है जैसे दुःख बोध, अपमान बोध, दैन्य-दासत्व बोध, जाति-वर्ग बोध और क्रान्ति बोध है।''[6] दलित शब्द अपमान के प्रति रोष अथवा प्रतिक्रान्ति का वाचक है। दलित निम्न जातियों के उपेक्षित लोग है जिन्हे अभी तक भी समाज में सम्मान नही मिल पाया है। वास्तव में दलित शब्द की व्याख्या आज भी सापेक्ष बनाने का प्रयास किया जा रहा है। दलित वे है जिन्होने अपने सम्मान के लिए विद्रोह और संघर्ष किया।

दलित शब्द का संकुचित अर्थ:- ''धार्मिक ग्रन्थों में बहिष्कृत, प्रताड़ित शूद्र जाति और सामाजिक व्यवस्था में शोषित, उत्पीडित, दलित वर्ग को केन्द्र में रखकर विश्लेषित है, जिसके अन्तर्गत चतुर्थ-वर्ण (शुद्र) मे आने वाली जातियो को आधार बनाया जाता है। इस प्रकार इस संकुचित अर्थ का सम्बन्ध सीधे-सीधे वर्तमान दलित विमर्श से जुड़ जाता है।''[7] अस्पृश्य, हरिजन, आदिवासी ही दलित है, जिन्हे युगों से उच्च वर्गो ने अपने पैरो तले कुचले है। उनका स्पर्श भी निषेध माना है। प्राचीन काल मे शुद्रों एवं अस्पृश्यों के लिए ही दलित शब्द का प्रयोग किया जाता था। ''वर्तमान समय में दलित शब्द का विशेष अर्थ है। 'दलित' वह व्यक्ति है जो सकुंचित सामाजिक स्थिति का अनुभव करता है। वर्ण व्यवस्था तथा जाति व्यवस्था में दलित का प्रादुर्भाव वैदिक युग में हुआ। उत्तर वैदिक काल आते-आते वर्ण व्यवस्था ने जटिल रूप धारण कर लिया''[8]दलित का सामान्य अर्थ- दबाया गया, कुचला गया, दला या पिसा गया आदि से लिया जाता है। दलित लोगों को सवर्ण लोगों ने अनेक प्रकार से लिया उत्पीडित किया और उनकी दशा जीव-जन्तु से भी बदतर बना दी। दलित शब्द एक ओ दलित जातियों के समुदाय की वेदना, पीड़ा और छटपटाहट को अभिव्यक्त करता है वही दूसरी ओर विद्रोह और मुक्ति के लिए आशाओं और आकांक्षाओं को अभिव्यक्ति करता है।

दलित शब्द का व्यापक अर्थ:-

वर्तमान समय में दलित शब्द का अर्थ शूद्र या अस्पृश्य तक सीमित न रहकर व्यापक हो गया है। व्यापक अर्थ में जिन्हें दलित माना जाता है उनकी कोई जाति विशेष नहीं है। दलित वह है जिसका सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक दृष्टि से शोषण होता है, जो स्वतन्त्रता, समता और प्रगति से अपरिचित रहकर हमेशा दास बना रहता है। जिसके जीवन में ज्ञान के प्रकाश के अभाव में अज्ञान रूपी अंधेरा सदा रहता है। इस प्रकार के व्यक्ति को दलित कह सकते है। फिर चाहे वह किसी भी जाति या वर्ण का हो। दलित शब्द के व्यापक रूप में जाति, व्यवसाय, धर्म, रंगभेद और वर्गभेद को महत्व न देकर मनुष्य के लाचारी दुरावस्था और उसके शोषण को महत्व दिया। जाता है। दलित शब्द उन सभी व्यक्तिं के लिए प्रयोग किया जाता है, जिन्हे किसी न किसी रूप मे दबाया या सताया गया हो। इसके साथ ही उच्च व समृद्र समाज के पैरों के नीचे कुचला हुआ, आर्थिक रूप से शोषित तथा निम्न वर्ग की भाँति दयनीय एवं कष्टमय जीवन बिताने वाला प्रत्येक दलित की परिधि में आता है। चाहे वह किसी भी जाति, धर्म एवं लिगं का हो।

दलित शब्द की परिभाषा:-दलित शब्द को अनेक विद्वानों ने अपने-अपने विचारों एवं अपनी विद्वता से परिभाषित किया है। विभिन्न विद्वानों ने दलित शब्द की व्यापकता को स्वीकार करते हुए विभिन्न परिभाषाओं से परिभाषित किया है। जो इस प्रकार है -

1.डा0 रामचन्द्र शर्मा के अनुसार - ''दलित शब्द मसला हुआ, मर्दित, दबाया, रौंदा या कुचला हुआ, विनिष्ट किया गया हैं।''[9]

२.श्री केशव मेश्राम का मानना है कि ''हजारों वर्ष जिन लोगों पर अत्याचार हुआ, ऐसे अछूतों को दलित कहना चाहिए।''[10]

3.श्री राजकिशोर के अनुसार - ''दलित शब्द एक वर्गीय शब्द ठहरता है। भारत एक गरीब देश है। यहाँ की आधी आबादी आर्थिक दृष्टि से दलित है, लेकिन जिन्हें दलित कहा जाता है, उनका दंश कुछ और ही है। दलित शब्द उन जातियों के अर्थ में कम होता जा रहा है जिन्हें पहले 'अछूत' या 'हरिजन' कहा जाता था। इनके लिए कानूनी शब्द अनुसूचित जाति है।''[11]4.ओमप्रकाश बाल्मीकि के शब्दों में, ''दलित मतलब मानवीय अधिकारो से वंचित, सामाजिक तौर पर जिसे नकारा गया हो।''[12]

5.डॉ0 कन्हाडे के अनुसार, ''आर्थिक या समाजिक दोनों दृष्टियों से मिलकर एक सर्व समावेशक दलित वर्ग मान लिया जा सकता है। उसमें कर्मचारी, खेती पर खपने वाले मजदूर, जीवन यापन के लिए कष्ट उठाने वाले तथा अस्पृश्य ही आयेंगे। शोषित ही दलित है।''[13]

चाण्डाल, अवर्ण व पंचम वर्ण नाम से जाने जाते थे। दलितों की उपेक्षा की जाती थी। दलितों को अस्पृश्य (अछूत) माना जाता था। अस्पृश्य शब्द का अर्थ होता है स्पर्श करने के लिए अपात्र होने के कारण प्रस्तुत शब्द घृणास्पद है। दलितों पर आज भी उसी तरह अत्याचार हो रहे है जिस तरह प्राचीन समय में होते थे। दलितों को समाज में हीन दृष्टियों से देखा जाता है। दलितों की बस्तियां सवर्णो से दूर होती है। दलितों पर दिन प्रतिदिन अत्याचार होते रहते है। ''हिन्दू धर्म ने सवर्णे जातियों को जन्मसिद्व यथेच्छ अधिकार दे दिये हैं लेकिन दलित जाति-जनजातियों को मनुष्यता तक से वंचित रखा है। यह व्यवस्था मनुद्रोही और समाज-विघातक है।''14दलितों पर सत्ता, धन और रूढि के आधार पर शोषण, उस पर अन्याय, अत्याचार, घृणास्पद आदिव्यवहार किया जाता है। वर्तमान समय में गरीब व्यक्ति और गरीब होता जा रहा है। किन्तु दलितो की स्थिति भयावह रूप धारण करती जा रह है।

दलितों में वे लोग है, जो सबसे अधिक गरीब, बेरोजगार, साधनहीन व भूमिहीन है और अर्थिक रूप् से समाज में पिछड़े हुए है। देश की अधिकांश जनसंख्या निर्बल एवं दलित है। अतः देश में दलित वर्ग का जीवन कष्टमय एवं दुष्कर है। यही दलित का अर्थ एवं परिभाषा है।

******

सन्दर्भसूची-

1. डॉ0 राम भरोसे, दलित-विमर्श तथा प्रेमचन्द साहित्य, अनीता पब्लिशिंग हाउस, लोनी-गाजियाबाद, प्रथम संस्करणः 2014, पृ0 सं0 19
2. डॉ0 दिलीप मेहरा, हिन्दी कथा साहित्य में दलित चेतना, पृ0सं0- 18
3. डॉ0 दिलीप मेहरा, हिन्दी कथा साहित्य में दलित विमर्श, क्लासिक्ल पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण - 2011, पृ0 सं0- 53
4. ओम प्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य: अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण- 2013, पृ0 सं0 - 67
5. डॉ0 राम भरोसे, दलित-विमर्श तथा प्रेमचन्द साहित्य, अनीता पब्लिशिंग हाउस, लोनी - गाजियाबाद, प्रथम संस्करण: 2014, पृ0 सं0- 25
6. सक्षान्त मास्के, परम्परागत वर्ण-व्यवस्था और दलित साहित्य वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण- 2009 पृ0 सं0- 16
7. डॉ0 राम भरोसे, दलित- विमर्श तथा प्रेमचन्द साहित्य, अनीता पब्लिशिंग-हाउस, लोनी - गाजियाबाद, प्रथम संस्करणः 2014, पृ0 सं0- 21
8. डॉ0 दिलीप मेहरा, हिन्दी कथा-साहित्य में दलित विर्श, क्लासिकल, पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2011, प्ृ0-सं0- 259
9. डॉ0 रामचन्द्र वर्मा, संक्षिप्त शब्द-सागर, पृ0 सं0- 468
10. डॉ0 रजतरानी मीनू, 'नवे दशक की हिन्दी दलित कविता में उद्धृत' पृ0 सं0- 3
11. ओम प्रकाश वाल्मीकि, दलित-चेतना और समकालीन हिन्दी उपन्यास में उद्धृत, डॉ0 मुन्ना तिवारी, पृ04
12. डॉ0 बलवन्त साधु जाधव, प्रेमचन्द के साहित्य में दलित चेतना, पृ0 सं0- 17
13. डॉ0 शरण कुमार लिंबाले, दलित साहित्यः वेदना और विद्रोह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 सं0- 21
14. डॉ0 रजतरानी मीनू, 'नवे दशक की हिन्दी दलित कविता में उद्धृत' पृ0 सं0 12

जातिवादी राजनीति का पोल खोलता प्रेमकुमार 'मणि' का उपन्यास 'ढलान'

डॉ. जे. आत्माराम

सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग

हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद मो. 9440947501

जाति-व्यवस्था भारतीय सामाज की वह कड़वी सच्चाई है जिसने लगभग साढ़े तीन हजार वर्षों से भारत के पिछड़े एवं शोषित समाज के विकास को जकड़े रखा है। यह व्यवस्था इतनी जटिल एवं उलझी हुई है कि एक जाति की कई उप-जातियाँ और उन उप-जातियों के कई भिन्न-भिन्न वर्ग होते हैं। यदि सभी उप-जातियों को गणना में न भी लिया जाए तो भी वर्तमान भारत में लगभग छह हजार सात सौत से अधिक जातियाँ हैं और इन सब में ऊँच-नीच व राग-द्वेष का भाव है। "जाति-व्यवस्था से सम्बन्धित एक सामाजिक समस्या जातिवाद की है जो एक अर्थ में विभिन्न जातियों के बीच पायी जानेवाली खाई को और भी चौड़ा करती है तथा एक-दूसरे के प्रति घृणा, द्वेष या प्रतिस्पर्द्धा आदि के रूप में अभिव्यक्त होती है।"[1]

स्वतन्त्र-भारत में कोई ऊँच-नीच या बड़े-छोटे का भाव न हो इसलिए भारतीय संविधान में लोकतान्त्रिक शासन-पद्धति को अपनाया गया। लोकतन्त्र न केवल समानता के भाव को प्रसारित करता है बल्कि यह आपसी भिन्नताओं के बावजूद एक-दूसरे का सम्मान करना भी सिखाता है। इस संदर्भ में मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं "लोकतन्त्र केवल एक राजनीतिक व्यवस्था और शासन-पद्धति ही नहीं है, वह एक ऐसी मानसिकता भी है जो सहिष्णुता की संस्कृति, दूसरों का सम्मान, दूसरों के अन्तरों का स्वीकार, विचारों की अनेकता का आदर, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और संवाद की तत्परता विकसित करती है।"[2] कायदे से देखा जाए तो, जहाँ लोकतन्त्र होता है वहाँ समाज में ऊँच-नीच को बढ़ावा देने वाला जातिवाद नहीं होना चाहिए। किन्तु यह विडंबना ही कहा जा सकता है कि भारत में लोकतंत्र भी है और जातिवाद भी। जातिवाद को समाप्त करने के बजाय राजनीतिक दल अपने-अपने राजनीति -स्वार्थ के लिए इसे बनाए रखने में ही अपना लाभ देखते हैं। "जातिवाद और लोकतन्त्र दोनों एक-दूसरे के विरोधी हैं। अनेक पेशेवर नेता राजनीतिक क्षेत्र में जातिवाद से लाभ उठाते हैं और चुनाव के समय जाति के नाम पर वोट माँगते हैं और सफल भी होते हैं। इससे प्रायः ऐसे व्यक्ति चुन लिए जाते हैं जो अपनी ही जाति के हितों के सम्मुख समाज के सामान्य हितों की बलि दे देते हैं। समानता का नारा लगता है, पर व्यावहारिक रूप में जातिवाद का ही डंका बजता रहता है।"[3]

लोकतन्त्र का एक ही प्रमुख लक्ष्य है 'समानता'। यह समानता केवल राजनीतिक घोषणाओं से नहीं आ सकती। इसके लिए सामाजिक स्तर पर भी प्रयास होने चाहिए । इसीलिए कहा जाता है कि भारत को राजनीतिक स्वतन्त्रता तो सन् 1947 में ही मिल गई पर सामाजिक और आर्थिक स्वतन्त्रता के अभाव में यह स्वतन्त्रता अधूरी है । डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने तो एक कदम आगे बढ़कर सामाजिक स्वतन्त्रता को राजनीतिक स्वतन्त्रता से भी ज्यादा जरूरी बताते हुए कहा था कि सौकडों वर्षों से चले आ रहे जातिवाद से मुक्ति पाए बिना सामाजिक स्वतन्त्रता सम्भव नहीं है, क्योंकि लोकतन्त्र में जिस समानता की बात की जाती है, उसकी राह में सबसे बड़ी बाधा जाति की ही होती है। जातिवाद के कुप्रभाव से आज समाज का कोई भी क्षेत्र अछूता नहीं है। गाँव-कस्बे से लेकर नगर-महानगर तक और धर्म-क्षेत्र से लेकर राजनीति-क्षेत्र तक हर जगह पहले जाति देखी जाती है। राजनीति में तो जातिवाद का विस्तार दिन-ब-दिन बढ़ता ही जा रहा है। अनियंत्रित रूप से जातिवाद का बढ़ना राष्ट्रीय -एकता के लिए घातक हो सकता है। क्योंकि जब समाज में जातिवाद के कारण तनाव या संघर्ष का माहौल रहेगा तो वहाँ संकुचित, सामुदायिक भावना ही पनपेगी, राष्ट्रीय-विकास के लिए आवश्यक सामूहिक-एकता की भावना का विकास करना कठिन हो जाएगा। अप्रिय, किंतु यह सत्य है कि आज़ादी के बाद भारत में जातिवादी राजनीति समाज के राजीनित के हर स्तर तेज़ी से बढ़ रही है।एम.एन. श्रीनिवास, डी.आर.गाडगिल तथा हैरिसन जैसे समाजशास्त्रियों ने भी जातिवाद को भारतीय लोकतन्त्र के लिए सबसे बड़ा खतरा माना है । हैरिसन ने जातियों को समाज में आर्थिक एवं राजनीतिक प्रतिद्वन्द्विता एवं

प्रेविद्वेश को बढ़ावा देने वाला कारक माना है, तो डी.आर गाडगिल कहते हैं कि जाति-व्यवस्था से देश के एकीकरण के मार्ग में बाधक उपत्पन्न होती है। वहीं, एम.एन. श्रीनिवास का विचार है कि जातियों के प्रभावशीलता के कारण भारतीय लोकतन्त्र और लोकतान्त्रिक संस्थाएँ अपने मूल कार्य से भटक रही हैं। प्रेमचंद ने कहा था कि 'साहित्य राजनीति के आगे चलने वाली मशाल है।' उन्होंने अपने उपन्यासों 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि' और 'सेवासदन' आदि में तत्कालीन राजनीतिक घटनाओं की झलक भी प्रस्तुत की है। लेकिन प्रेमचंद के बाद बहुत कम ऐसे उपन्यास मिलते हैं जहाँ देश के राजनीतिक चरित्र का विश्लेषण गहराई के साथ किया गया हो। स्वतन्त्रता के बाद से वर्तमान समय तक देश की राजनीति में जितना उथल-पुथल हुआ है और जितनी बड़ी संख्या में विविध विषयों के उपन्यास लिखे गए हैं, उन्हें देख कर लगता है कि हिंदी में राजनीतिक उपन्यासों का सही प्रतिनिधित्व नहीं हो पाया है। समकालीन दौर में, यद्यपि सामाजिक मुद्दों को केन्द्र में रख कर कई उपन्यास लिखे जा रहे हैं जिनमें अस्मितावादी, आधुनिकतावादी, आँचलिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि अनेक विषय शामिल हैं लेकिन जातिवादी-राजनीति पर अधिक नहीं लिखा गया है। और जिन थोड़े-बहुत उपन्यासों में राजनीति की विसंगतियों का उद्घाटन मिलता है, उनमें उल्लेखनीय हैं-- (1) 'राग दरबारी' (श्रीलाल शुक्ल,1968), (2) 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' (भगवतीचरण वर्मा, 1970) (3) 'तमस' (भीष्म साहनी,1973), (4) 'महाभोज' (मन्नू भंडारी, 1982), (5) 'यह पथ बन्धु था' (नरेश मेहता,1992), (6) 'काली आँधी' (कमलेश्वर, 2003), (7) 'अनित्य' (मृदुला गर्ग, 2012)।

इस संदर्भ में राष्ट्रकवि 'दिनकर' की वह बात याद आती है जब एक समारोह में पधारते हुए तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के कदम सीढ़ियों पर लड़खड़ाने लग रहे थे तो उन्हें सहारा देते हुए 'दिनकर' ने कहा था कि 'जब राजनीति लड़खड़ाती है तब साहित्य ही सहारा देता है।'

उपन्यास को आधुनिक महाकाव्य कहा जाता है। उपन्यास के महाकाव्यत्त्व की चर्चा करते हुए 'दूसरी परम्परा का शुक्लपक्ष' नामक पुस्तक में कहा गया है कि "महाकाव्य कहने से जो औदात्य सामने आता है उसे अतिक्रमित करते ऐसे उपन्यास लिखे गए जिनमें जातिवादी राजनीति को विषय बनाया गया है, जैसे प्रेमकुमार मणि का उपन्यास 'ढलान'। इसमें जो कुछ है उसे औदात्य की अवधारणा के सहारे नहीं समझा जा सकता है, बल्कि सतह पर तैरते जातिवादी सूत्रों के करीब जाने की जरूरत होगी।"[4]

'ढलान' की प्रमुख विशेषता इसका कथानक है, जो छह दशक पुराना होते हुए भी ऐसा लगता है कि यह आज के समाज की खता कह रहा है। क्योंकि विगत छह दशकों में विभिन्न विचारधाराओं वाली राजनीतिक पार्टियाँ सत्ता में आईं और चली गईं, पर देश की जातिवादी राजनीति का स्वरूप नहीं बदला। जो नेता यह घोषित करते हैं कि जाति के मुद्दे पर उनके मन में किसी भी प्रकार के राग-द्वेष या ऊँच-नीच का भाव नहीं है, वे भी प्रायः जात-पात की राजनीति ही करते हैं, जिसका चित्रण 'ढलान' उपन्यास में भी मिलता है, जिसमें कांग्रेस पार्टी के प्रदेश-अध्यक्ष सुमन जी से कहते हैं "काँग्रेस के पास पिछड़ी जाति के नेताओं का टोटा है। जो है भी सो गिज-गिजे लुर-लच्छन के लोग हैं। नेताजी से पता हुआ है तुम इसी वर्ग से आते हो। मैं तो इस जाति-पाति में विश्वास नहीं करता और तुम्हारे बारे में भी यही जानता हूँ कि इन चीज़ो से तुम ऊपर हो। लेकिन हमारे ही रास्ते तो दुनिया नहीं चल रही है न। यहाँ अब जाति पहले देखी जाने लगी है। जब देखी जाने लगी है तब काँग्रेस को भी इस स्तर पर सोचना और काम करना होगा।"(ढलान, पृ.सं.64)'ढलान' की कथा बिहार के दो गाँवों से जुड़ी हुई है, जिसमें एक पटना से दस कोस दक्षिण सोन नहर की गोद में बसा रानाबिगहा है और दूसरा उसीके दक्षिण छोर पर स्थित पुरन्दरपुर है। इन दोनों गाँवों के मध्य अक्सर तनाव की स्थिति रहती थी। रानाबिगहा पिछड़ी जाति के लोगों का गाँव है तो पुरन्दरपुर भूमिहारों का। पुरन्दरपुर के सामन्तों के वर्चस्व को समझने के लिए इतना ही कहना पर्याप्त है कि लगभग सवाचार सौ घरोंवाला पुरन्दरपुर में यद्यपि भूमिहार सामन्तों के कुल पैंतीस घर ही हैं, फिर भी फपh यह गाँव भूमिहारों की बस्ती के रूप में ही जाना जाता है क्योंकि गाँव की अस्सी प्रतिशत ज़मीन इन्हीं के पास होती है। इसीलिए वहाँ उन्हीं का दबदबा और जोर चलता है। दूसरी ओर रानाबिगहा है, इस गाँव का परिचय देते हुए लेखक ने एक वाक्य में गाँव की पीढ़ा व्यक्त की है- 'ऊपर से काव्यमय, शान्त और सुन्दर दिखने वाला गाँव भीतर से इतना दुःखभरा है कोई कल्पना नहीं कर सकता है" ('ढलान', पृ.सं.32) उपन्यास और लोकतन्त्र' नामक पुस्तक में मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं- "भारतीय गाँव जाति-व्यवस्था के गढ़ हैं। गाँव की जिन्दगी की कथा लिखने वाला कोई भी उपन्यासकार जाति की उपेक्षा करके उसे जिन्दगी की जटिल समग्रता का आख्यान निर्मित नहीं कर सकता।"[5] वैसे, उपन्यासकार प्रेमकुमार 'मणि' ने 'ढलान' में बिहार के दो छोटे गाँवों की कथा कही हैं, पर उन दो गावों की कहानी के सहारे उन्होंने पूरे भारत की जाति-व्यवस्था को प्रकाश डाला है। स्वार्थ राजनेताओं के साथ छाया की तरह जुड़ा रहता है। राजनेता प्रायः बिना स्वार्थ के लोक सेवा कभी भी नहीं करते। बड़े-से-बड़ा राजनेता भी समय आने पर स्वार्थ या राजनीतिक-लाभ के लिए अक्सर अपने आदर्शों एवं सिद्धांतों को तिलांजलि दे देता हैं। जातिवादी राजनीति के वे लोग भी शिकार हो जाते हैं, जो प्रायः इसके कुप्रभाव से अच्छी तरह परिचित होते हैं और अक्सर उसके विरोध में संघर्ष करते समाज में नज़र आते हैं। पर वे भी एक दिन स्वार्थ के आगे झुक जाते हैं। इसीलिए उपन्यासकार कहते हैं "जो लोग न्याय और सत्य के लिए लड़े। उसमें संकीर्णता नहीं होनी चाहिए। यदि संकीर्णता आएगी, तब स्वार्थ भी आएगा और स्वार्थ के आते ही सत्यानाश होगा।" (ढलान, पृ.सं.155) दो खंडों में विभाजित इस उपन्यास की पूरी कथा गाँव के चुनावी राजनीति के इर्द-गिर्द ही घूमती है। पहले भाग में विधानसभा के चुनाव की कथा कही गई है तो दूसरे खंड में सरपंच के चुनाव में एक दलित के जीतने की कथा। किंतु इन दो प्रमुख कथाओं के होते हुए भी जो बात उपन्यास में सबसे अधिक आकर्षित करती है, वह है उपन्यास में अंतर्निहित व्यंग्य की पैनी धार। इस उपन्यास में अनेक स्थलों पर राजनीतिक पार्टियों की अवसरवादिता पर करारा व्यंग्य किया गया है। फिर वह बात काँग्रेस पार्टी की हो या कम्यूनिस्टों की। उदाहरण के लिए उपन्यास के एक प्रमुख पात्र मण्डन मिस्त्री काँग्रेस के बदले हुए राजनीतिक चरित्र का परिचय देते हुए कहते हैं "रामचंद्र जब जंगल गए थे तब भरत ने उनकी खड़ाऊँ लेकर अपने सिंहासन पर रख दी थी, जनता को भरमाने के लिए कि रामजी का राज चल रहा है। गाँधी जी के न रहने पर नेहरू जी ने उनकी टोपी अपने सिर पर रख ली है और हम है कि उसी टोपी में गाँधी जी को देख कर मगन हैं। इस टोपी के नीचे क्या है, यह भी तो देखना है।"(ढलान, पृ.सं.181)कम्यूनिस्ट पार्टी प्रायः सर्वहारा वर्ग के हितों की रक्षा के लिए खडी होने वाली पार्टी मानी जाती है, पर ऐसी पार्टी के नेता भी जब अवसरवादिता के शिखार हो जाते हैं तो उन पर कटाक्ष करते हुए उपन्यास में एक संवाद आता है– "अरे यार, चुनाव को लेकर मजाक मत उड़ाओ। यदि राजनीति में हो तो चुनाव से दूर नहीं रह सकते। रहने का काओ अर्थ नहीं है। कम्युनिस्ट भी तेलंगाना-मेलंगाना करके अब इस चुनाव पर ही आए हैं।"(ढलान, पृ.सं.106) जाति भारत में आज़ादी के पहले भी राजनीति का मुद्दा रही है और आजादी के बाद भी। आजादी के बाद दलित एवं पिछड़ी जाति के नेताओं ने अपने अलग रानीतिक दल बना कर जन-समर्थन जुटा रहे थे। पर अब तो देश स्वतन्त्र है, यह भाव मिट जाना चाहिए था। पर ऐसा नहीं हुआ, बल्कि जात-पात की भावना और अधिक फैल रही है। जिसके आधार पर मुट्ठीभर सामन्ती लोग राज कर रहे हैं। इसीलिए मण्डन मिस्त्री जैसे स्वतंत्रता सेनानी आक्रोश व्यक्त करते हैं कि– "हम लोगों के इसलिए स्वराज की लड़ाई नहीं लड़ी थी कि ऊँची जाति के मुट्ठीभर लोगों का राज हो जाए" (ढलान, पृ.सं.114) सामन्तवाद और वर्णव्यवस्था दोनों ही लोकतन्त्र के लिए घातक होते हैं। सामन्तवाद अपने स्वार्थ के लिए हमेशा वर्ण-व्यवस्था को पोषित करता रहता है, और उसमें भी वह उन्हीं लोगों का पक्ष लेता है जो जाति से उच्च तथा आर्थिक दृष्टि से संवृद्ध हो। इस उपन्यास में बताया गया है वर्ण-व्यवस्था की दृष्टि से यद्यपि ब्राह्मणों को समाज में ऊँचा स्थान दिया जाता है परयह तब ही संभव है जब उस ब्राह्मण के पास पूंजी भी अधिक हो। ऐसे धनवान ब्राह्मणों को ही गाँव के सामन्तों एवं भूमिहारों द्वारा उचित सम्मान मिलता है, निर्धन ब्राह्मणों को नहीं। गरीब ब्राह्मण सामन्तों द्वारा समुचित सम्मान न मिलने पर वे दुःखी होकर कहते हैं "मैं क्या नहीं जानता हूँ कि ये भूमिहार लोग हम ब्राह्मणों को भी खाट पर क्यों नहीं बैठने देते। गरीबी के कारण ही तो। उनकी तरह हम ब्रह्मणों के पास भी जमींदारियाँ होती तब तो ये हमारा पैर न पूजते।" (ढलान, पृ.सं.126) स्पष्ट है कि सामन्त एवं जमींदार उन्हीं लोगों को सम्मान देते हैं जो जाति में उच्च हो ही साथ ही धनवान भी हो।

गरीब या निम्न जाति के लोगों से सम्बन्ध रखने वाले ब्राह्मणों को वे सम्मान का पात्र नहीं मानते थे। इस प्रकार जातिवादी व्यवस्था अनेक स्तरों पर कार्य करती है। एक ही वर्ण के भीतर वर्ग एवं क्षेत्र के अनुसार ऊँच-नीच का भाव होता है। तभी तो सोमनाथ लिखता है "दरअसल, वर्णवादी सामाजिक व्यवस्था अत्यंत ही जटिल है और यह कई स्तरों पर काम करती है। चक्कर-दर-चक्कर है। एक वर्ण-व्यवस्था तो पूरे समाज से स्तर पर है, फिर हर जाति की अपनी आंतरिक वर्ण-व्यवस्था है। कायस्तों के आंतरिक वर्ण-व्यवस्था में श्रीवास्तव ब्रह्मण हैं और कर्ण शूद्र। क्षेत्र के हिसाब से भी अंतर आता था। शहर के श्रीवास्तव हैं, तब ऊपर हैं, गाँव के श्रीवास्तव हैं तब नीचे। फिर आपका शहर या गाँव राजधानी से जितना नजदीक है, आप उतने बड़े हैं, जितना दूर हैं उतने निकृष्ट।" ढलान, पृ.सं.205) प्राय: यह माना जाता है कि शहरों की अपेक्षा गाँव-कस्बों में जात-पात का भाव अधिक होता है। यह भी आम धारणा है कि गाँव के लोग अधिक संकीर्ण स्वभाव के होते हैं, जाति व धर्म के प्रति कट्टर स्वभाव रखते हैं। पर इस उपन्यास के माध्यम से प्रेमकुमार 'मणि' यह बताने का प्रयास किया गया है कि जात-पात एवं धर्म की भावना तो ग्रामीण क्षेत्रों से अधिक शहरों में, वह भी कथाकथित पढ़े-लिखे एवं पंडित लोगों में अधिक नज़र आती है। तभी तो मिस्त्री जी के माध्यम से वे कहते हैं कि "देश की विशाल जनता अनपढ़ भले ही हो, मूर्ख नहीं है। मूर्ख तो हैं पोथी पढ़े हुए पंड़ित। यही पढ़े-लिखे लोग, ज्यादा जातिवादी, ज्यादा संकीर्ण, ज्यादा मजहबी हैं। यही लोग दंगा-फसाद कराते हैं। गलत नहीं कहते हैं वे कि अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी और बरानस हिंदू यूनिवर्सिटी न बने होते तब देश का बँटवारा नहीं होता।"(ढलान, पृ.सं.110) यह सच है कि जात-पात का भाव गाँवों में तो है ही, पर नगर भी इससे मुक्त नहीं हैं कैंपस का चप्पा-चप्पा जात-पात से जकड़ा है। मुझे बहुत घुटन महसूस होती है।"(ढलान, पृ.सं.206) विश्वविद्यालयों का परिसर और हॉस्टल भी पूरी तरह से जातिवाद से ग्रस्त है। वहाँ के लोगों का ध्यान छात्रों के मेधा पर कम उनकी जाति पहले जाता है। जब सोमनाथ हॉस्टल में शामिल होता है तो हॉस्टल में व्याप्त जात-पात के भेद-भाव को देख कर परेशान हो जाता है। इस उपन्यास में स्वतन्त्रता के तुरंत बाद के समय की सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थियों को बया किया गया है। लोकतन्त्र में सभी वयस्कों को वोट देना का अधिकार होता है फिर चाहे वह व्यक्ति साक्षर हो या निरक्षर, बुद्धिमान हो या वज्र मूर्ख। लोकतन्त्र में हर एक व्यक्ति का एक वोट होता है। जो कि एक दृष्टि से अच्छी बात है, पर इसकी सीमा की ओर संकेत करते हुए उपन्यासकार व्यंग्य करते हैं कि "यह कैसा इन्साफ है कि पढ़े-लिखे आदमी और वज्र मूर्ख को एक वोट के बराबर अधिकार हो। तब फिर आदमी इतने कष्ट सह कर विद्यार्जन क्यों करें। गलत नहीं कहते लोग कि प्रजातन्त्र मूर्खों का शासन है। अब तो होशियारी इसी में है कि मूर्खों के शासन को स्वीकार कर उसकी खूबियों-खामियों से जुड़ा जाय।"(ढलान, पृ.सं. 177)निश्चित ही, जातिवादी राजनीति एक बड़ी समस्या है, पर लेखक अश्वस्थ हैं कि बावजूद इसके भारत का लोकतन्त्र मजबूत हो रहा है और मजबूत लोकतन्त्र के द्वारा ही जातिवादी राजनीति का समाधान हो सकता है। "आज इस अशांति में भी मैं एक भविष्य देख रहा हूँ। भारत का भविष्य उज्ज्वल है। लोकतंत्र का भविष्य उज्ज्वल है। इसलिए उज्ज्वल है कि सब कुछ आराम से, शांतिपूर्वक हल नहीं हो जा रहा है। एक कुहराम खड़ा हो गया है। अब गरीब और उपेक्षित लोग अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो गए हैं। वे लड़ रहे हैं। ठीक है कि वे हार भी रहे हैं, लेकिन महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वे लड़ने लगे हैं। मुझे तो नहीं लगता, वे हार जाएँगे लेकिन यदि हार भी जाएँगे, तो क्या, इसमें कुछ खास नहीं रखा है। एक लड़ाई तो उन्होंने जीत ही ली है। उन्होंने अपनी-अपनी एकता का इजहार तो किया है।" (ढलान, पृ.सं. 155) वर्ष 2019 में, बी.बी.सी. हिंदी पर प्रकाशित 'चुनाव के मिथक' शीर्षक अपने लेख में प्रमुख राजनीतिक विश्लेषक योगेंद्र यादव ने जो लिखा है उससे यही प्रतीत होता है कि राजनीति में जातिगत प्रतिनिधित्व से भारतीय लोकतन्त्र मजबूत हो रहा है। योगेंद्र यादव लिखते हैं "यह सच है कि वोट पर जाति का असर पड़ता है, आप मतदाता हो या उम्मीदवार, मतदान पर आपके समुदाय का असर पड़ता है। .... दरअसल, पिछले पचास साल में उम्मीदवार की जाति देखने का प्रचलन घटा है. उम्मीदवार के बजाय पार्टियों की जाति चरित्र देखने का चलन बढ़ा है।" प्रेमकुमार 'मणि' कृत 'ढलान' उपन्यास का मुख्य विषय वैसे तो जातिवादी राजनीति ही है, पर इसके साथ ही इसमें राजनीतक संगठनों की प्रतिबद्धता, गाँधी जी की पंचायतीराज व्यवस्था, सामन्तवादी-सोच, वर्ण-व्यवस्था, भूदान-आंदोलन के कार्यकर्ताओं का दिखावा, किसान-आंदोलन की कमजोर पक्ष और स्त्री-विमर्श पर भी चर्चा मिलती है।ढलान' के उपन्यास के अतिरिक्त, अब तक प्रेमकुमार 'मणि' के दो कहानी संग्रह (गुलदस्ता, उपसंहार) कुछ निबंध संग्रह प्रकाशित हुए हैं। इसके अतिरिक्त, प्रमोद रंजन द्वारा संपादित पुस्तक 'महिषासुर : एक जननायक' में उनके तीन विचारोत्तेजक लेख संग्रहीत हैं जिनके शीर्षक हैं 'किसकी पूजा कर रहे हैं बहुजन?', 'हत्याओं का जश्न क्यों ?', 'दशहरे के त्योहार पर'। स्वल्प अवधि के लिए सक्रिय राजनीति से जुड़े रहे प्रेमकुमार 'मणि' के अब तक के लेखन-कर्म को देखने यह बात स्पष्ट होती है कि उनकी रचनात्मक-प्रतिबद्धता शोषण, उत्पीड़न एवं भेद -भाव मुक्त समाज के निर्माण के प्रति समर्पित है जिसमें 'ढलान' उपन्यास का विशिष्ट महत्त्व है जो जातिवाद मुक्त राजनीतिक एवं लोकतांत्रिक मूल्यों को स्थापना बल प्रदान करता है।

******

संदर्भ:

(1) आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन : 21वीं सदी में भारत, पृ.174
(2) उपन्यास और लोकतन्त्र, मैनेजर पाण्डेय, पृ.27
(3) आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन : 21वीं सदी में भारत, पृ.177
(4) दूसरी परम्परा का शुक्लपक्ष, सं.कमलेश वर्मा तथा सुचिता वर्मा, पृ.89
(5) उपन्यास और लोकतन्त्र, मैनेजर पाण्डेय, पृ.31

राजेन्द्र यादव, 'हंस' और दलित वैचारिकी

डॉ.मृत्युंजय सिंह
Assistant Professor
Post Graduate & Research Institute
Dakshin Bharat Hindi Prachar Sabha
T. Nagar, Chennai 60001

सारांश :-
सामान्य लोगों के भीतर छिपे लेखक को पहचानने और उसे प्रोत्साहित करने की राजेन्द्र यादव में अद्भुत क्षमता थी। स्त्री विमर्श और दलित विमर्श को उन्होंने तब दिशा दी, जब हिंदी साहित्य पितृसत्तात्मक और जड़ता का शिकार था। राजेन्द्र यादव इस जड़ता को तोड़ते हुए साहित्य के अंतःकरण का विस्तार किए। हाशिए का समाज उनकी चिंता के केन्द्र में हमेशा रहा है। उन्होंने दलित अधिकार को सैद्धांतिक विमर्श का विषय बनाने का बड़ा ही महत्वपूर्ण कार्य 'हंस' के माध्यम से किया है। सच तो यह है कि राजेन्द्र यादव और उनका 'हंस' नहीं होता तो नारी, दलित, पिछड़ों, अल्पसंख्यकों पर होने वाले विमर्शों का पता नहीं मंच भी मिलता या नहीं और मिलता भी तो पता नहीं वे कौन सी शक्ल अख्तियार करते।

बीज शब्द : दलित, अस्मितावाद, ब्राह्मणी संस्कृति, प्रगतिशील, संघर्ष

कोई भी पत्रिका अपने समय के आंदोलनों, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों से निरपेक्ष नहीं रह सकती और जब साहित्यिक पत्रिका हो तब तो यह नियम और भी गंभीरता से लागू होता है। राजेंद्र यादव के नेतृत्व में 'हंस' ने सदैव समसामयिक विषयों को विमर्श का मुद्दा बनाया। प्रेमचंद के जन्मदिन 31 जुलाई 1986 से इस पत्रिका ने राजेंद्र यादव के सम्पादन में जब दुबारा दस्तक दी तो उसने बहुत ही कम समय में अपना विशिष्ट पाठक वर्ग बना लिया। एक साहित्यिक पत्रिका की खूबी पाठक की बौद्धिक क्षुधा को शांत करना भर नहीं है, बल्कि उसे नयी परिस्थितियों और चुनौतियों को समझने तथा उसका समाधान खोजते रहने की समझ देना भी है। 'हंस' ने यहीं किया, इसलिए वह समाज में बड़े बौद्धिक आयोजनों की गवाह और उत्प्रेरक बन सकी। राजेंद्र यादव इस बात को अच्छी तरह से समझ रहे थे कि वैकल्पिक राजनीति को मुख्यधारा की राजनीति बनाने के लिए जमीनी तैयारी की जरूरत है, और यह कार्य स्त्री, दलित और अल्पसंख्यक सहित अन्य वंचित समूहों के प्रबोधीकरण तथा उनके आत्मविश्वास को लौटाने के साथ ही संभव था। दरअसल सांस्कृतिक पूर्वाग्रह प्रायः इतने जटिल होते हैं कि एक बार उनके चंगुल में फंस जाने के बाद व्यक्ति की हालत अनुसरणकर्ता जैसी हो जाती है। इसके विपरीत अभिजात संस्कृति का समस्त तामझाम सत्ता से अनुकूलन पर टिका होता है वहां शिखर पर बने रहने हेतु आवश्यक समझौता की अंदरूनी छूट होती है। ग्राम्शी ने समानता और स्वतंत्रता हेतु अभिजन वर्गों के सांस्कृतिक वर्चस्व से मुक्ति को जरूरी माना है। इसके लिए उसने अभिजन संस्कृति के समानांतर जनसंस्कृति के उभार पर जोर दिया है। उसके अनुसार दास इसलिए दास होता है क्योंकि उसकी संस्कृति उसको दास होना सिखाती है। अंबेडकर का कहना था कि गुलाम को उसकी गुलामी का एहसास करा दो, वह क्रांति कर देगा। राजनीतिक चेतना सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना की अनुगामी है। इसलिए अंबेडकर और ग्राम्शी दोनों, सामाजिक-सांस्कृतिक मुक्ति को राजनीतिक स्वतंत्रता जितनी ही महत्वपूर्ण मानते थे। हंस द्वारा उठाए गए प्रमुख प्रमुख मुद्दों में स्त्री, दलित, अल्पसंख्यक आदि प्रमुख थे। राजेंद्र यादव और 'हंस' के सरोकारों को केवल दलित या स्त्री विमर्श तक ही सीमित कर देना कदापि उचित नहीं है। 'हंस' की प्रतिबद्धता पूरे जनसमाज के प्रति थी। हंस ने जिस तरह धर्म के आडंबर पर चोट की, उतनी मुखरता से शायद ही किसी और पत्रिका ने आवाज उठाई हो। राजेंद्र यादव को कहानीकार आजादी के बाद केयुवामन के सपनों और समाज के कड़वी हकीकतों ने बनाया था, किन्तु उनके संपादक को गढ़ने में प्रेमचंद के अलावा जयप्रकाश नारायण के के संघर्ष तथा उनके 'सम्पूर्ण क्रांति' आंदोलन का भी योगदान था। राजेंद्र यादव राजनेता नहीं थे। उन्हें हम लेखक-विचारक कह सकते हैं, किंतु उनका पहला प्यार रचनात्मक साहित्य से था। प्रेमचंद ने लिखा था- 'साहित्य राजनीति के आगे चलने वाली मशाल है' यही सूत्र राजेंद्र यादव का मार्गदर्शक, पथप्रदर्शक सिद्ध हुआ। राजेन्द्र यादव ने हाशिए पर रहने वालों के दुखों और बाधाओं को साहित्य में स्थान देकर उनकी सुध और खोजखबर ली, वह चाहे स्त्री की आजादी का मसला हो चाहे दलितों के उपेक्षित जीवन का। राजेन्द्र यादव ने साहित्य में पहली बार उन दलितों-वंचितों को अपनी पत्रिका 'हंस' में सबसे महत्वपूर्ण स्पेस दिया जिनकी रचनाओं को लोग डस्टबीन में फेंक देते थे। उन्होंने दलित अधिकार को सैद्धांतिक विमर्श का विषय बनाने का बड़ा ही महत्वपूर्ण कार्य 'हंस' के माध्यम से किया है।

राजेन्द्र यादव यह मानते रहे हैं कि आज भी हम जिसे साहित्य कहते हैं उसकी सारी सैद्धांतिकी व्यक्ति केन्द्रित है। वस्तुतः मध्यवर्ग की सारी चिंताएं प्रतिरक्षात्मक या व्यक्तिकेन्द्रित यथास्थिति को लेकर है। राजेन्द्र यादव के अनुसार "हिंदी में अस्मितावाद की पहली पहचान शैलेश मटियानी और रेणु में दिखाई देती है- जहां पूरा एक अंचल अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक और पारिस्थितिक प्रामाणिकताओं में जागता है - अंचल का व्यक्तित्व लगभग नायक की तरह जीवंत है। हर व्यक्ति अपने परिवेश की ऊपज है मगर व्यक्तिवादी अपने स्वतंत्र चुनाव के नाम पर इन परिवेशगत प्रभावों को अस्वीकार करता है, ऊधर परिवेश की कैमेस्ट्री अंचल और व्यक्ति की अस्मिता बनाती है। क्षेत्रीय, जातीय और धार्मिक अस्मिताओं का उभार लोकतंत्र की अनिवार्य परिणति है। यह एक वर्ग द्वारा सत्ता-साधनों को हथिया लिए जाने के विरूद्ध जन-संघर्षों का सिलसिला है। इन्हीं के बीच से उभरती है- स्त्री, दलित और अल्पसंख्यकों की अपनी अस्मिताएँ।''

अगर साहित्य को समझना है तो उन शक्तियों को समझना होगा जो हाशियाकृत हैं जिनकी तरफ ध्यान नहीं दिया गया। जिन्हें महान साहित्यिक रचनाओं में अनदेखा कर दिया गया जैसे दलित का सवाल। ये वे लोग हैं जिन्हें साहित्य में प्रवेश की अनुमति नहीं रही। लिखने-पढ़ने की तो बात ही नहीं है, वे पात्रों की तरह भी नहीं आए अगर आए तो विलेन या असुरों-राक्षसों के रूप में या बहुत ही उपेक्षित किस्म के प्राणियों की तरह आए। लेकिन अब समय बदल गया है। दलित अपनी आत्मकथाएं लिख रहे हैं, अपनी कहानियां लिख रहे हैं, अपने उपन्यास लिख रहे हैं। राजेन्द्र यादव का विचार है कि 'इन दलित आत्मकथाओं और कहानियों में फूहड़पन हो सकता है, भाषा इनकी बहुत अनगढ़ है, इसके बावजूद यह लगता है कि शक्ति और ऊर्जा यहां है। वे लड़ रहे हैं। इनका इतिहास अब शुरू हुआ है।'' कह सकते हैं कि दलित साहित्य में संघर्ष है, यातना है, एक सपना है और इसलिए भविष्य यही दिखाई देता है। क्योंकि राजेन्द्र यादव के अनुसार "आत्मा को आनंदित करने वाली रचनाएँ अब व्यक्तिगत या सामाजिक नॉस्टेल्जिया जगाने से आगे नहीं जाती-वे मूलतः स्मृतिजीवी और अतीतमुखी है। संघर्ष-मूलक रचनाएँ किसी भावी सपने से प्रेरित होती है।'' दलित आत्मकथाओं को राजेन्द्र यादव एक संघर्षमूलक दस्तान मानते हैं क्योंकि ये कथाएं स्मृतिजीवी और अतीतमुखी नहीं है। इसलिए उनका विचार है कि "ओमप्रकाश बाल्मीकि की 'जूठन' का गांव हमें न वैसा आनंद दे पाता है, न रस। वह शास्त्रीय शब्दावली में 'जुगुप्सा' जगाता है। मगर एक हमें कलात्मक निष्क्रिय संतोष देता है तो दूसरा सामाजिक बेचैनी.....'आस्वाद' की यह दूरी व्यक्तिगत ग्रहणशीलता का सवाल उतना नहीं है जितना पचास वर्ष के दो युगों की दूरी है।''अपनी यातनाओं और संघर्षों को यथासंभव खुलकर कहती ये आत्मकथाएँ, सवर्ण समाज पर आरोपों के श्वेत-पत्र लगती हैं। इस साहित्य की मूलभूत प्रतिज्ञा, सत्य, शिव, सुंदर को ध्वस्त करती है। इनको लेकर साहित्य जगत में अनेक हलचल हुए, अनेक आक्षेप लगाए गए। और यह कहा गया कि सौन्दर्यबोध और सुरूचि के साथ इनका कोई तालमेल नहीं है। राजेन्द्र यादव इनके पीछे कुरूप और कुरूचिपूर्ण को न देख पाने की जुगुप्सा मानते हैं। वे लिखते हैं, ''हमारा बद्धमूल विश्वास है कि साहित्य,

मध्यवर्गीय समाज की वह निजी और पवित्र दुनिया है जहाँ लोग सिर्फ 'व्यक्तित्व' के लिए लड़ते हैं। 'अस्तित्व' और अस्मिता को लेकर जूझने वालों की यहां कोई जगह नहीं है। 'साहित्य मुक्त करता है' कहते हुए हमारी चेतना में सिर्फ अपनी सीमाओं और संस्कारों से मुक्ति है- मानवता के एक बड़े भाग की मुक्ति नहीं है। साहित्य सब कहीं एक है, वह हमें देशकाल से उपर उठाता है, वहां भौगोलिक और सामाजिक विभाजन करना गलत है, वह सभी को वाणी देता है और सबका हित करता है....कहते हुए भी हम जानते हैं कि समाज के एक वर्ग के लिए ही यह सत्य है, बहुलांश को न इसमें वाणी दी गई है, न उनका हित है।'' राजेन्द्र यादव अकसर साहित्य के लिए एक पद का प्रयोग करते हैं- 'यातना, संघर्ष और स्वप्न'। अर्थात दलितों के साहित्य में अपने अतीत की यातना थी, वर्तमान के संघर्ष थे और भविष्य के स्वप्न थे लेकिन राजेन्द्र यादव ने यह भी माना है कि यह सब अनुभव के स्तर पर था, अनुभव ठंडा होकर या तटस्थ होकर विचार के स्तर पर नहीं पहुँचा था। इसके साथ एक और बात कि शुरू में जो राजनीति में बदलाव हो रहे थे, उसके कारण साहित्य में उन दबे हुए अनुभवों को एक खुली जगह मिल रही थी। अतः राजेन्द्र यादव दलित साहित्य को मुख्य रूप से राजनीतिक उभार के रूप में देखते हैं। उनका मानना है, "दलित साहित्य मराठी से आया, इस बात को हमे स्वीकार करना चाहिए। मराठी में फुले से लेकर अंबेडकर होते हुए आज तक जो लिखा गया है वह मुख्य रूप से सामाजिक आंदोलनों से संबंधित रहा। बाद में उससे राजनीति के लोग निकले। हमारे यहां दलित साहित्य या दलित उभार मुख्य रूप से राजनीतिक है। राजनीतिक है और सत्ता की हिस्सेदारी से जुड़ा हुआ है। सत्ता के साथ उसका मुख्य रूप से उभार हुआ है। इस विश्वास और आश्वासन पर कि हमारे पास सत्ता होगी तो हम सब कुछ बदल देंगे जो कि एक मिथ है, गलतफहमी है। ऐसा हो नहीं सकता कि सत्ता आए तो सब कुछ बदल जाएगा। जो भी सत्ता में आया, उसने कुछ नहीं किया न पिछड़ों ने न दलितों ने। उन्होंने ज्यों का त्यों सत्ता को स्वीकार कर लिया। अपना निजी भविष्य देखने लगे। राजनीति से प्रेरित होकर दलित साहित्य आया, इसलिए मुख्य रूप से दलित साहित्य सत्ता-प्राप्ति का साहित्य है, अधिकार प्राप्ति का साहित्य है।''

दलित विमर्श में जो बहसे हुई हैं, उनमें धर्म के ऊपर भी काफी चर्चा हुई है। खास तौर पर बाबा साहब अंबेडकर द्वारा बौद्ध धर्म स्वीकार करने को लेकर। बाबा साहब ने जब धर्म परिवर्तन किया था तो कहा जाता है कि उनके साथ करीब एक लाख लोगों ने बौद्ध धर्म को अपनाया था। पर सवाल यह है कि क्या धर्म परिवर्तित कर लेने से सामाजिक बदलाव या कोई गुणात्मक परिवर्तन दलित में आ गया। इस संदर्भ में राजेन्द्र यादव के शब्द है – "बौद्ध आज भी हैं दलितों में, पर दुर्भाग्य से उनमें वो सारे कर्मकाण्ड हैं जो ब्राह्मणी संस्कृति में होते हैं। ज्यादातर बौद्धों में अभी भी हिंदू देवी-देवताओं, प्रथाओं से लगाव बना हुआ है। इसलिए खाली धर्म परिवर्तन करके बौद्ध हो जाने से उनमें कोई गुणात्मक परिवर्तन आया हो ऐसा मुझे नहीं लगता है।'' राजेन्द्र यादव यह मानते है कि वैचारिकता के लिए दलितों के पास ज्योतिबा फुले, अंबेडकर,पेरियार और इयोत्तिदास है, और यह भी कि उन्होंने अपने समाज और वर्ग के धार्मिक और सामाजिक शोषण की ।बात निश्चय ही बेहद तर्कपूर्ण और गहरे विश्लेषण के साथ सामने रखी है और सवर्णो द्वारा भौतिक, शारीरिक और राजनीतिक अत्याचारों को समझा यह होते हुए भी इस संदर्भ में राजेन्द्र यादव का विचार है कि "मगर उनकी चिंता दलितों को राजनीतिक अस्मिता और अधिकार दिलाने की ज्यादा है। वे सिर्फ अपनी मुक्ति का दर्शन देते हैं। स्थाई मुक्ति कभी भी अकेले नहीं मिलती चाहे दलित हो या स्त्री। उन्हें अपनी मुक्ति के अभियान को अपनी तरह दूसरे मुक्ति आंदोलन के साथ जोड़कर एक जुट होने की जरूरत है - तभी स्थायी और समग्र सामाजिक मुक्ति संभव हो सकेगी।'' राजेन्द्र यादव दलित आन्दोलन को वामपंथ से जोड़कर देखते हैं और चाहते हैं कि 'वामपंथी बुद्धिजीवीयों को विचार करना चाहिए कि हम दलित संगठनों से कैसे जुड़े'। श्योराजसिंह बेचैन का विचार है कि राजेन्द्र यादव "दलित के पास मार्क्स का सर्वहारा ढूंढते हुए आए थे। उन्होंने पंडितों को पीछे छोड़ा था, पर जब उन्हें शूद्र, ग्वाला कहकर वर्णभेद का बोध कराया गया तो उन्हें अंदाजा होने लगा कि अछूत और बहिष्कृतों की स्थिति क्या होगी ?'' राजेन्द्र जी को जातिवाद और मनुवाद से शत्रुता की हद तक चीढ़ थी। यह पूर्वाग्रही पक्षपाती शक्तियां जब उनके या किसी के कृतित्व को यह कहकर कमतर करने की कोशिश करती कि यादव या पिछड़ी जाति का होने के बावजूद उन्होंने यह उपलब्धि अर्जित की तो वे आहत हो उठते थे। 'हंस' के माध्यम से वे हर उस पूर्वाग्रह और कट्टरता को धो देना चाहते थे जो मनुष्य को मनुष्यता से दूर ले जाती है।'' सच तो यह है कि राजेन्द्र यादव और उनका 'हंस' नहीं होता तो नारी, दलित, पिछड़ों, अल्पसंख्यकों पर होने वाले विमर्शों का पता नहीं मंच भी मिलता या नहीं। और मिलता भी तो पता नहीं वे कौन सी शक्ल अख्तियार करते।

राजेन्द्र यादव का इस बात पर जोर रहा है कि दलितो के पास एक लंबा विचार-दर्शन है। उनके अनुसार "यह सच है कि दलितों के पास वर्ण-श्रेष्ठता को चुनौती देने वाले विचारकों, चिंतकों और रचनाकारों की लंबी कतार है - सिद्धों, भक्तों और संतों का हर भाषा में अपार साहित्य भरा पड़ा है - बौद्ध दर्शन तो है ही, अन्य पदार्थवादी दर्शन भी वेदांती सनातनियों को हर स्तर पर शास्त्रार्थ के लिए ललकारते रहे हैं।'' वर्तमान में देखा जाय तो इधर समाशास्त्रियों, इतिहासकारों और अन्य बुद्धिजीवियों ने मराठी, अंग्रेजी और हिंदी में दलित-विमर्श को जो आक्रामकता दी है उसने मध्यवर्गीय केन्द्रित सारे कुलीन साहित्य के अस्तित्व को ही संकट में डाल दिया है। अब वे लोग एकजुट होकर दलितों को यह बताने में लगे हैं कि दलित-साहित्य या सोच वास्तव में क्या है। क्योंकि दलितों के पास न विश्लेषण का शास्त्र है, न पद्धति, न गंभीर विवेचन की भाषा न कला और सौन्दर्य की बारीक पकड़। कहने का तात्पर्य यहाँ यही है कि अस्तित्वगत संकट को अमूर्त बहसों में उलझा देने की रणनीति सत्ता हमेशा इस्तेमाल करती रही है। इस संदर्भ में राजेन्द्र यादव का तल्ख विचार है कि "दलितों के संदर्भ में गंभीर बहसों के लिए आमंत्रण रियायती स्वीकृति की एक सम्मानजनक मुद्रा है। मैं नहीं कहता कि हमें इन बहसों से बचने या डरने की जरूरत है, क्योंकि यह हमें उनके मोर्चे पर उनसे दो-दो हाथ करने का अवसर देती है। मगर सावधानी यह बरतनी है कि उनके पास इन बहसों के नतीजे पहले से तय है-वे दलितों का एजेण्डा ही तय नहीं करेंगे, खेल के नियम भी अपने ही बनाएंगें।'' सामान्य लोगों के भीतर छिपे लेखक को पहचानने और उसे प्रोत्साहित करने की राजेन्द्र यादव में अद्भुत क्षमता थी। स्त्री विमर्श और दलित विमर्श को उन्होंने तब दिशा दी, जब हिंदी साहित्य पितृसत्तात्मक और जड़ता का शिकार था। राजेन्द्र यादव इस जड़ता को तोड़ते हुए साहित्य के अंतःकरण का विस्तार किए। हाशिए का समाज उनकी चिंता के केन्द्र में हमेशा रहा है। राजेन्द्र यादव अपने सामाजिक सरोकारों और लेखन में ही नहीं बल्कि अपने व्यक्तित्व में भी पूरी तरह जनतांत्रिक थे। सही अर्थो में वे एक ऐसा 'पब्लिक इंटलेक्चुवल' थे, जो राजनीति संस्कृति और समाज के हर पहलू पर प्रगतिशील दृष्टिकोण रखते थे। कहा जा सकता है कि राजेन्द्र यादव साहित्य-जगत में दीपस्तंभ की भाँति रहेंगे, उनके संपादकीय अपने युग की आवाज की तरह पढ़े जाएँगे।

******

सन्दर्भ :-

1. हंस, दिसंबर 2006, राजेन्द्र यादव संपादकीय पृ. 7
2. काश, मैं राष्ट्रद्रोही होता, राजेन्द्र यादव पृ. 109
3. वही, पृ. 237
4. वही, पृ. 237
5. उपन्यास: स्वरूप और संवेदना - राजेन्द्र यादव, पृ. 29
6. यातना, संघर्ष...स्वप्न - संपा. अजय नावरिया, पृ. 54
7. वही, पृ. 56
8. काश, मैं राष्ट्रद्रोही होता, राजेन्द्र यादव, पृ. 106
9. हंस (दिसंबर 2013), श्योराज सिंह बेचैन, पृ. 82
10. वही, संजीव का लेख, पृ. 38
11. काश, मैं राष्ट्रद्रोही होता, राजेन्द्र यादव, पृ. 70
12. वही, पृ. 71

"मेरा समाज" कहानी में अभिव्यक्त दलित स्त्री का जीवन यथार्थ

डॉ. ए. एस. सुमेष
सह आचार्य व अध्यक्ष हिंदी विभाग
एम.इ एस. महा विद्यालय, जिला इडुक्कि, केरल,

कार्तिका टी. वी.
शोध छात्रा
एम.इ एस. महा विद्यालय, जिला इडुक्कि, केरल, मो.9744168522

शोध सार

"स्त्री की सबसे बड़ी त्रासदी यही है कि उसकी भूमिका हमेशा ही अपनी ज़रूरतों को ध्यान में रखकर घर में पुरुष या समाज में व्यवस्था तय करती है।" (मणिमाला , इक्कीसवीं सदी की ओर , संपा. सुमन कृष्णकांत पृ ६३) हमारे समाज में आर्थिक राजनीतिक सांस्कृतिक आदि स्तर पर पुरुषों की अपेक्षा स्त्री को दोयम दर्जा प्रदान करने वाली एक सामाजिक व्यवस्था सदियों से कायम रहती है। यह आज की बात नहीं है शताब्दियों पहले जब समाज की स्थापना हुई तब से यह बात जारी रहती है। पुरुषवर्चस्ववादी सामाज ने स्त्री को बचपन से ही बौद्धिक एवं शारीरिक दोनों रूपों में कमज़ोर कहकर उसे एक प्रकार की कोमलता प्रदान किया है। यह कोमलता की भावना ने स्त्री को 'हम कमज़ोर है' जैसी एक भावना को लेकर जीने केलिए मजबूर किया। स्त्री अपने अधिकारों को जानते हुए भी इसके लिए आवाज़ नहीं उठाई स्त्री अपने ऊपर हो रहे शोषण को अपनी नियति समझकर सहती रही। शिक्षा ने स्त्री के सोच-विचार को थोडा बहुत बदल दिया ज़रूर है । लेकिन दलित स्त्री आज भी सामाजिक शोषण का शिकार है। सुशीला टाकभौरे की कहानियां इस दिशा में महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत करने वाली है।

बीज शब्द :- दलित स्त्री, रीति रिवाज, परंपरागत रूढ़िवादिता, पुरुष वर्चस्ववाद

मूल आलेख :-सुशीला टाकभौरे हिंदी साहित्य जगत की मशहूर लेखिका है। उन्होंने अपनी रचनाओं के जरिए समाज में व्याप्त सभी कुरीतियों के खिलाफ आवाज उठाई है। समाज द्वारा उपेक्षित दलित की समस्याओं और उनकी शोषणकारी तत्वों को उन्होंने अपनी रचनाओं के ज़रिए मुख्यधारा में खड़ा कर दिया । दलित साहित्य की विकास यात्रा में उनकी रचनाओं का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है।

'मेरा समाज' आत्मकथानक शैली में लिखी गयी उनकी अत्यंत महत्वपूर्ण कहानी है। इसमें उन्होंने दलित जीवन से जुड़ी अनेक समस्याओं को दर्शाया है। इस कहानी में लेखिका दलित स्त्री के प्रति खुद दलित समाज के दृष्टिकोण को दिखाया गया है। दलित समाज में व्याप्त पुरुषवर्चस्व को भी लेखिका इस कहानी के द्वारा प्रस्तुत करती है। दलितों को अपना जीवन जानवरों से भी गया- गुजरा बिताना पड़ता है। पूरे भारतवर्ष में सदियों से हम यह स्थिति देख रहे हैं। लेकिन दलित स्त्री का जीवन उससे भी दयनीय और बदत्तर है । दलित स्त्री तो वर्ग,वर्ण के साथ साथ लिंग के आधार पर भी शोषित है। सभी प्रकार का शोषण सहना इनकी नियति बन चुकी है। दलित स्त्री हमेशा सवर्णों की हवस का शिकार बनती है। जिस को छूना धर्म के द्वारा अशुद्धि मानता है, लेकिन इसका इज्जत लूटना, बलात्कार करना अशुद्धि नहीं मानता था। यह एक प्रकार के सवर्णों के खोखलापन को दिखाती है। यह सवर्ण की झूठी मान्यताओं का समर्थन है। इन सभी सामाजिक कुरीतियों का चित्रण मेरा समाज कहानी में सुशीला जी ने किया है । दलित स्त्री एक ओर समाज की यानी बाहरी दुनिया का शोषण सहती है, दूसरी ओर वह अपने घर के अंदर के पुरुषों का शोषण भी सहने केलिए मजबूर रहती है। इस प्रकार दलित स्त्री सभी प्रकार के मानवाधिकारों से वंचित रहती है।दलित समाज में भी दलित स्त्री के प्रति उपेक्षा का भाव है। उसे केवल उपभोग वस्तु के समान देखता है। समाज ने स्त्री के जीवन का परम लक्ष्य शादी करके घर बसाना तय किया है। कहानी का एक सन्दर्भ देखिए, जब लेखिका बी ए में पढ़ रही थी उनके सगे संबंधी रिश्तेदार उनके माता-पिता से कहते हैं **"कब तक लड़की को पढ़ाते रहेंगे? कब तक उसे बैठाकर रखोगे? ऐसे तो लड़की बूढ़ी हो जाएगी। उसके साथ की लड़कियों की शादी हो गई और वे एक-एक दो-दो बच्चों की माँ भी बन गई है। तुम लोग लड़की की तरफ से आंखें बंद करके बैठ गए हो।"**[1]

इस प्रकार समाज स्त्री को शिक्षा प्राप्त करके आगे बढ़ने नहीं देती। स्त्री के हर कदम पर समाज द्वारा पाबंदी लगाया जाता है। समाज स्त्री को हमेशा आदर्श गृहणी बनाना चाहता है, जो अपने ऊपर हो रहे अन्याय एवं अत्याचार को चुपचाप सहकर परिवार संभाले और बच्चों का पालन-पोषण करे। **"मैं समझने लगी थी लोग इससे आगे सोच ही नहीं सकते हैं। बेटी का जन्म होते ही उसकी पढ़ाई कि नहीं, शादी की चिंता की जाती है। शादी और बच्चे जैसे जीवन का लक्ष्य केवल यही था।"**[2]

समाज में स्त्री जीवन का एकमात्र लक्ष्य शादी करना और घर बसाना है यही भावना पाल रखा है, सदियों से यही हो रही है। खुद अनपढ स्त्री भी अपने लिए इसके आगे नहीं सोच सकती थी। समाज स्त्री को कभी उसे कोमल कहकर आदर्श देवी के पद पर बिठाकर उसकी शोषण करती है तो कभी अपने अधिकार की घमंड दिखा कर शोषण करती है। **"यही हाल लड़कियों का होता था। ससुराल जाने के बाद खुद के परिवार का खर्च उठाने के लिए वे भी इस नौकरी से लगा दी जाती थी। बेटा भले ही नौकरी न करता हो बहू को नौकरी से लगा दिया जाता। बहू नौकरी भी करती थी, घर का पूरा काम- खाना पकाना, खिलाना, माँजना, धोना सब करके अपने बाल बच्चों को संभाल ने की जिम्मेदारी भी निभाती थी। इतना सब करके भी अधिकांश बहुओं को पति की मार, सास की गालियां और ननदों के ताने ही मिलते रहते थे।"**[3]पुरुष चाहे घर की देखभाल न करे, समाज पुरुष के पक्ष में रहेगें। लेकिन नारी को घर चलाने की ज़िम्मेदारी से कोई छूट नहीं है । उन्हें घर संभालने केलिए नौकरी भी करना पड़ेगी। दलित समाज भी यह केवल स्त्री की जिम्मेदारी समझती है किसी भी हालत में घर संभालना। चाहे पति उसके साथ अमानवीय व्यवहार करे, ससुराल वाले उसका शोषण करें फिर भी स्त्री को हमेशा आदर्श नारी बनकर पूरे परिवार को संभालना है।**"यह एक परंपरा थी अपनी जवानी से बुढ़ापे तक सास पीटती रहती, यही बात आने वाली बहू के साथ होती। पति दश्मन जैसा मारता, पत्नी रोती रहती, फिर भी घर का पूरा काम करती, खाना बनाकर सबको खिलाती, कभी थोड़ा स्वयं भी खा लेती नहीं तो भूखी ही रह जाती। वह अपने अच्छे दिनों की प्रतीक्षा इस तरह करती थी कि - एक दो साल में शायद उसकी स्थिति बदले या एक दो बच्चे हो जाने पर उसे न्याय मिलेगा या बच्चे बड़े होने पर उसके दिन फिरेंगे या फिर बहुएं आने के बाद स्थिति बदल जाएगी - इसी प्रतीक्षा में पूरा जीवन निकल जाता था।"**[4]शादी के बाद ससुराल में भी स्त्री शोषण का शिकार बनती है। वहाँ भी स्त्री सुरक्षित नहीं है। कभी कभार स्त्री भी स्त्री के दश्मन बन जाती है। स्त्री के द्वारा स्त्री शोषित रहती है। कभी सास,ननद घर की बहू के साथ अमानवीय व्यवहार करती है। शिक्षा का अभाव, समाज की रीति रिवाज एवं परंपरागत रूढ़िवादिता के कारण स्त्री अपने ऊपर हो रहे शोषण को अपनी नियति समझकर उसे झेलते हैं। उसमें प्रतिरोध नहीं होती। **"सब मुझे बहुत गलत लगता था। मैं उन्हें समझाती थी। रिश्तेदारों के घर में कभी भाई-भाई का झगड़ा, कभी सास बहू का झगड़ा तो कभी इन ननद भौजाई जी का झगड़ा होता घर के पुरुष अपना गुस्सा पत्नी पर ही निकालते। बेचारी पत्नी पिटती रहती। उसके रोने चिल्लाने पर भी कोई उसकी मदद नहीं करता। क्योंकि यह पति-पत्नी का आपसी मामला समझा जाता।"**[5]पुरुष वर्चस्ववादी समाज इसी आदर्श को बढ़ावा देता है कि पति अपनी पत्नी के साथ कोई भी अमानवीय व्यवहार कर सकता है इसके खिलाफ कोई भी आवाज नहीं उठा सकता है। आज भी समाज का यही सोच है कि पत्नी का उत्पीड़न करना पति का अधिकार है । राजेन्द्र यादव जी ने ठीक ही लिखा है :- "स्त्री स्वतंत्र होकर सामजिक, राजनैतिक या अन्य क्षेत्रों में अपने आपको स्थापित भी करे, लेकिन नैतिकता के क्षेत्र में हजारों साल पहले के महलों और पर्दों में कैद रहने

वाली सामंती चरित्र और शील की मूर्ति भी बनी रहे।" (राजेन्द्र यादव , हंस, मेरी तेरी उसकी बात , सितम्बर १९९५)

निष्कर्ष :-

'मेरा समाज' कहानी के जरिए सुशीला टाकभौरे जी ने दलित समाज के दलित स्त्री के प्रति केवल सहानुभूति व्यक्त करना नहीं बल्कि सह स्थिति के अनुभव को शब्दों द्वारा व्यक्त करना चाहती है । पुरुष समाज के संकुचित मनोभाव, सत्तापरक अहं बोध आदि के द्वारा वर्तमान समाज की वस्तुस्थिति का यथार्थपरक चित्रण लेखिका ने किया है। इस कहानी दलित स्त्री जीवन के यथार्थ चित्र को हमारे समुख रखती है। इस कहानी में लेखिका दलित स्त्री की संघर्षमय और अमानवीय जीवन अनुभवों को अभिव्यक्त करते हुए समाज को यह बताने की चेष्टा करती है कि हर समाज में नारी की स्थिति दयनीय है।

******

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. सुशीला टाक भोर-टूटता वहम-पृ सं-33
2. सुशीला टाक भोरे -टूटता वहम -पृ सं-33
3. सुशीला टाक भोरे -टूटता वहम -पृ सं-31
4. सुशीला टाक भोरे -टूटता वहम -पृ सं-31
5. सुशीला टाक भोरे -टूटता वहम -पृ सं-31

सहायक ग्रंथ सूची:-

1. टूटता वहम - डॉ. सुशीला टाकभौरे - अनिरुद्ध बुक्स,दिल्ली
2. हिंदी महिला कलाकारों के साहित्य में दलित विमर्श- डॉ. संगीता चौहान-माया प्रकाशन
3. सुशीला टाकभौरे के गद्य साहित्य में दलित जीवन-डॉ.केसाईलता-विकासप्रकाशन, कानपुर
4. दलित चेतना की कहानियाँ बदलती परिभाषाएँ- राजमणि शर्मा-वाणी प्रकाशन
5. दलित साहित्य के बढ़ते कदम-माता प्रसाद-अमन प्रकाशन
6. इक्कीसवीं सदी की ओर , संपा. सुमन कृष्णकांत, राजकमल प्रकाशन

डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर के अनमोल विचार

पानी की बूंद जब सागर में मिलती है तो अपनी पहचान खो देती है। इसके विपरीत व्यक्ति समाज में रहता है पर अपनी पहचान नहीं खोता। इंसान का जीवन स्वतंत्र है। वो सिर्फ समाज के विकास के लिए पैदा नहीं हुआ बल्कि स्वयं के विकास के लिए भी पैदा हुआ है।

••• राजनीतिक अत्याचार, सामाजिक अत्याचार की तुलना में कुछ भी नहीं है। समाज को बदनाम करने वाले सुधारक सरकार को नकारने वाले राजनेता की तुलना में अधिक अच्छे व्यक्ति हैं।

••• मैं समझता हूं कि कोई संविधान चाहे जितना अच्छा हो, वह बुरा साबित हो सकता है, यदि उसका अनुसरण करने वाले लोग बुरे हों। एक संविधान चाहे जितना बुरा हो, वह अच्छा साबित हो सकता है, यदि उसका पालन करने वाले लोग अच्छे हों।

••• राष्ट्रवाद तभी औचित्य ग्रहण कर सकता है, जब लोगों के बीच जाति, नस्ल या रंग का अन्तर भुलाकर उनमें सामाजिक भ्रातृत्व को सर्वोच्च स्थान दिया जाये।

******

दलित चेतना का प्रतीक नाटक : 'कोर्टमार्शल'

प्रमोद गोकुळ पाटील

हिन्दी विभाग

श्री. शिवाजी विद्या प्रसारक संस्था का

भाऊसाहब ना. स. पाटील कला एवं

मु. फि. मु. अ. वाणिज्य महाविद्यालय, धुले (महाराष्ट्र

भूमिका :

जातिगत व्यवस्था का प्रतिक नाटक : 'कोर्टमार्शल' में समकालीन व्यवस्था एवं वर्ण-जाति व्यवस्था का गिनौना चेहरा दिखाया गया है। सामंती व्यवस्था और निम्नवर्ग शोषण के दबे दबाय जा रहे है समाज एवं मानवी यथार्थ का परिपाक ही 'रामचन्दर' का किया अपराध है। कहें तो रामचन्दर के सीने में लगी धधकती आग, शोले, भड़ककर कैप्टन कपूर की गंभीर हालात और कैप्टन मोहन वर्मा की मौत का मूल कारण दिखाई देती है। स्वदेश दीपक द्वारा लिखित 'कोर्ट मार्शल' नाटक हमारी समकालीन व्यवस्था पर हर अंगनिवेश का पर्दाफाश करता है। कानुन, नियम, अनुशासन और व्यवस्था इनको दिखाकर निम्न वर्ग का किस प्रकार से शोषण किया जा रहा है, यह नाटक में रामचन्दर के माध्यम से दिखाया गया है। एक निम्नवर्ग का जवान रामचन्दर का 'कोर्टमार्शल' किया जा रहा है। उसने अपराध किया है, एक जगन्य अपराध। दस जून की रात को रामचन्दर ड्यूटी पर था। कैप्टन मोहन वर्मा और कैप्टन कपूर दोनों रात को रामचन्दर ड्यूटी पर था। कैप्टन मोहन वर्मा और कैप्टन कपूर दोनों रात के नौ बजे गार्ड चौकी के नजदिक से गुजर रहे थे कि जवान रामचन्दर ने सरकारी राइफल से दोनों पर गोली चला दी। जिसमें कैप्टन मोहन वर्मा की उसी जगह मृत्यु हो गई। कैप्टन कपूर को मिलेट्री हास्पिटल पहुचाया गया और तत्काल ऑपरेशन किया गया जिससे वह जीवित रहे। जवान रामचन्दर इन दोनों अफसरों का कत्ल करने का पक्का इरादा कर चुका था। इंडियन आर्मी एक्ट 69 और इंडियन पीनल कोड की दफा 302 के तहत जवान रामचन्दर का जनरल कोर्ट मार्शल किया जा रहा है। जान-बूझकर, होशो-हवास में मर्डर करने, कत्ल करने पर कोर्टमार्शल।

कर्नल सूरत सिंह कोर्ट मार्शल के प्रीजाइडिंग ऑफिसर थे। उन्होंने कहीं बार मौत से सामना किया है, बहुत लोगों की जान ली है, मौत के घाट उतारा है। जिसमें कोर्टमार्शल का कमरा हो या जंग का मैदान। कर्नल सूरत सिंह ने 10 'कोर्ट मार्शल' कर चुके है। उनके हाथों से कोई मुजरिम बच न सका है। उनके साथ मेजर अजय पुरी सरकारी वकील है और कैप्टन बिकाश राय बचाव पक्ष के वकील है। चश्मदीद गवाह थे सुभेदार बलवान सिंह साथ ही हमले में बच निकले कैप्टन बी. डी. कपूर। अन्य गवाह के रूप में डॉ. कैप्टन गुप्ता, लैफ्टीनेंट कर्नल ब्रेजेन्द्र रावत आदि लोग है। इन सब की गवाही तथा जवान रामचन्दर के अपराध की स्वीकृती से स्पष्ट हुआ हैं कि, हत्या उसने ही की है। बच निकलने का एक रास्ता था, जवान अपनी ड्युटी पर हो और रात के समय उसकी चौकी के पास से गुजरे लोग उस दिन का निर्धारित पासवर्ड उसे पूछा जाए। जवान के चॅलेंज करने पर अफसर या कोई भी हो अगर वह न रुके और न पासवर्ड बताये तो आर्मी लॉ के मुताबिक उसे गोली मारने का हक बनता है। बचाव पक्ष के वकील कॅ. बिकाश राय ने लगभग यह साबित कर दिया था कि, चश्मदीद गवाह सुबेदार बलवान सिंह वारदात के समय इतनी दूरी पर खड़े थे कि जवान रामचन्दर द्वारा किया गया चॅलेंज पूछा गया। पासवर्ड वह सून नहीं सके। अत: रामचन्दर यदि कहे तो उसने उन दो अफसरों को चॅलेंज किया लेकिन वे रूके नहीं, इसलिए उसने गोली चला दी तो वह निर्दोश साबित होता।

बीज शब्द :कोर्टमार्शल, अंगनिवेश, पर्दाफाश, अनुशासन, शोषण, निम्नवर्ग, जगन्य, गोली, मृत्यु, मिलेट्री, ऑपरेशन, इंडियन आर्मी, एक्ट, पीनल कोड, दफा, प्रीजाइडिंग, चश्मदीद, पासवर्ड, वारदात, चैलेंज, निर्दोश आदि**उद्देश्य :** कोर्टमार्शल नाटक का रामचन्दर होनहार, अनुशासन प्रिय, अपनी ड्युटी का पक्का, इमानदार होते हुए भी इस प्रकार का संगिन अपराध करने की विविशता क्यों ? रामचन्दर ने अपने होशो-हवास में जान-बूझकर कत्ल, मर्डर करने की ऐसी कौन सी स्थिति पैदा हुई है, जिसके पता होने के बावजूद खुद का कोर्टमार्शल होकर मृत्यु दंड की सजा सुनाई जायेगी। बिकाश राय कथन सही

लगता है कि, "जीवन और मृत्यु के निर्णय तकनीकी आधार पर नहीं, जो सच है, उस पर होते हैं। और सच। सच तो हमेशा अपने आप बोलता है। झठ की घुमावदार गालियों में कभी भी रास्ता नहीं भटकता। बिल्कुल नहीं भटकेता।"[1] झठ कितना खोखला है, फरेब है, सत्य की शक्ति के सामने वह ठीक नहीं पाता। सत्य की बूनियाद इतनी ताकतवर होती है कि, झूठ का कोई झोंका आये और वह अपने साथ सच की बूनियाद को उखाडकर ले जाये। रामचन्दर अपनी ड्यूटी मुस्तौदी से करता है। अपने अफसर ने दी ड्यूटी में कभी ना आनाकानी, लापरवाही की, कभी ना रामचन्दर के विरोध में किसी अफसर ने शिकायत की। समय और सत्य जिस प्रकार विपरीत दिशाओं में चलते है, ठीक वैसे ही रामचन्दर के जीवन की दास्ता है। बिकाश राय ने ठीक ही कहाँ कि "सच केवल उतना ही नहीं होता जितना दिखाई दे। सच का केवल एक हिस्सा हम अपनी आँखों से देखते हैं और पूरा का पूरा सच मानने की गलती कर बैठते है। और फिर यह कहाँ जरूरी है कि जो कुछ आप हम देखें, वह सच ही हो।"[2]

उच्च वर्णियों द्वारा शोषित, प्रताड़ित वर्ग का शोषण :-कोर्टमार्शल नाटक में स्वदेश दीपक ने प्रजातांत्रिक व्यवस्था में स्वतंत्रता, समता और न्याय की नींव पर खड़ी हमारे संविधान ने दिए अधिकार उच्च वर्णियों ने अपने प्रलोभन के खातिर छीन लिए। सभी जन्मसिध्द अधिकार छीन लिए और अपनी कामना को पूरा करने हेतू-सामंती वर्ग ने निम्न वर्ग को गुलाम बनाकर शोषण करते है। आज निम्न वर्ग को जो सम्मानित जीवन पाने का अधिकार है। व्यवस्था के हर ऊँचे औदे पर अधिकतर तथाकथित ऊँचे लोग ही बैठे है। प्रजातंत्र को मात्र मुखवटों के रूप में उन्होंने अपनाया है। आई. सी. एस., आई. एफ. एस., आर्मी, नेवी, एयरकोर्स सब जगह अफसर हैं हमारे खानदान के लोग। वी विलांग टु रूलिंग क्लास।"[3] सामंती परिवारवाले हिन्दी भाषी परिवार में पैदा हुए पढ़ाई भी हिन्दी भाषा में ही की है। हिन्दी में बोलना नहीं चाहते, क्योंकि ऑफिसर हमेशा अंग्रेजी भाषा में ही बात करते है। यह अंग्रेजी सभ्यता की देन है। उच्चवर्णियों की धारणा है कि योग्यता, सभ्यता, ज्ञान सब उनके जैसे अफसरों के पास ही होती है। इसलिए कपूर कहते, "अब खानदानी लोभ फौज में भरती नहीं होते। नीची जाति के लोगों को भरती किया जाएगा तो यही होगा। खाते-पीते घरों के लोग। भूखे-नंगों को जब फौज में भरती किया जाए, भर-पेट रोटी मिलने लगे ते उनका दिमाग फिरेगा कि नहीं।"[4] उच्च वर्णियों द्वारा निम्न वर्ग के प्रति असल में यह आम दृष्टिकोन सत्ता और एकाधिकार व्यवस्था के टूट जाने की प्रक्रिया है। नाटक का प्रमुख पात्र रामचन्दर एका आदर्श जवान, एका अच्छा खिलाडी, रेजिमेंट के पाँच हजार मीटर की दौड़ में प्रथम क्रमांक प्राप्त। उत्तरी कमान की खेल प्रतियोगिता की तैयारी हेतू कमांडिंग ऑफिसर कर्नल रावत ने रामचन्दर को कमान दध और बादाम की अतिरिक्त खूराक लगाना। कैप्टन वर्मा रामचन्दर को चूहड़ा भंगी तथा उसका रंग देखकर चिट्टा चूहड़ा पुकारते थे। रामचन्दर छोटी जाति का है। कैप्टन कपूर रामचन्दर को 'आये हरिजन' कहकर पुकारते। प्रामाणिक, लायक फौजी को निजी नौकर की तरह अपमानित करते रहे। "बाजार से सामान लाओ, बच्चों को स्कूल छोड़ने जाओ, खाना बनाओ, खाना लगाओ, मेमसाहब के कपडे प्रेस करो और साहब को हमेशा खुश रखो।"[5] इतना कुछ करने के बाद भी एक दिन तो रामचन्दर की योग्यता और आत्मसम्मान पर कैप्टन कपूर ने करारा आघात किया। रामचन्दर को नीचा दिखाने की सारी हदे पार कर दी कॅप्टन कपूर ने। "एक दिन कैप्टन साहब के घर कुछ मेहमान आए हुए थे। ड्राइंगरुम में ही एक छोटी बच्ची ने पॉटी कर दी। कैप्टन साहब ने रामचन्दर को पॉटी साफ करने के लिए कहा। रामचन्दर ने साहब की बच्ची की टट्टी उठाने से इनकार कर दिया। कैप्टन कपूर ने सब मेहबानों के सामने उसे कहाँ- जात का चूहडा और टट्टी उठाने में शर्म आती है। तुम्हारे पुरखे पुश्तों से हम लोगों की टट्टी की टोकरी सिर पर उठा रहे है।"[6]रामचन्दर कठोर परिश्रम है। रामचन्दर ने कठिन परिश्रम कर कैप्टन कपूर को दौड़ प्रतियोगिता में पराजित कर देता है। साथ ही एशियाई प्रतियोगिता के लिए सेना के प्रतिनिधी के रूप में रामचन्दर चुना गया है। उसे गाली देते थे। हत्या के रात भी वे मोटर सायकल पर आये थे और उसकी आत्मा पर चोट करके उन्होंने यह कहा था, "चिट्टे चूहडे! ह राम की सट्ट! तेरी माँ जरूर किसी कपूर या वर्मा के साथ सोई होगी।"[7]

अफसरी सभ्यता : नई शोषण मूलक उच्चवर्णीय सभ्यता : 'कोर्टमार्शल' नाटक में स्वदेश दीपक ने अफसरी सभ्यता के साथ-साथ नई शोषण मूलक उच्चवर्णीय सभ्यता का चित्रण किया है। उच्चवर्णिय व्यवस्था का नया रूप हमारी समकालीन अफसरी सभ्यता में देखा जा सकता है। उच्चवर्णिय वर्ग अपने से नीचे वाले वर्ग का अपना गुलाम समझता है और उसे गुलाम बनाए रखने के लिए अपने वर्गीय भाईयों से षड्यंत्र में योगदान देकर भाईचारा निभाता दिखाई देता है। प्रस्तूत नाटक में जवान रामचन्दर और मिसेज कपूर का शोषण मात्र कैप्टन कपूर ने ही नहीं किया। उसमें सुबेदार बलवान सिंह, डॉ. गुप्ता, सी. ओ. कर्नल रावत आदि का किसी न किसी रूप में योगदान रहा है। अगर कैप्टन कपूर ने देखा कि रामचन्दर ने ठीक से उसे सैल्यूट नहीं किया तो बिल्कुल ठीक देखा होगा। अफसर को पनिशमेंट देने का हक है।"[8] कैप्टन कपूर का मेस के शराब के बील का ज्यादा आना। कैप्टन कपूर का मिसेज कपूर को इस कदर पीटा की उसका सर फट जाता है लेकिन रिपोर्ट तैयार की जाती है, उसका पैर फिसल जाने की। सीओ साहब ने भी इस बात को सत्य मान लिया ज्योकि गलत है। कैप्टन बिकाशराय का मत यह है कि, "पैर पत्नी का फिसलता है हमेशा, पति का कभी नहीं। घर की आग भी बड़ी सयानी होती है। हमेशा बहू को लगती है। बेटी को कभी भी नहीं।"[9] मिसेज कपूर ने पति कैप्टन कपूर के विरोध में सिविल पुलिस को केस देना चाहती है पर रेजिमेंट में एक भाईचारा निभाया जाता है। मिसेस कपूर को अपने माता-पिता के घर जाना, आश्रय लेना, फौजी को अपने घर का नौकर बनाना, कहे तो अफसरी सभ्यता का कानूनी अधिकार है।

कानून और व्यवस्थागत अन्याय:-कोर्टमार्शल' नाटक कानून व्यवस्था और सामाजिक व्यवस्था का ढाँचा तथा समाज को मिलनेवाले न्याय की चर्चा के साथ चलता है। 'लोकतंत्र' हमारे देश की बूनियाद है। इसलिए सबको जीने के और न्यायिक दृष्टि से अगर शोषण हो रहा हो तो संविधान के मार्ग से इस पूरी व्यवस्था से विरोध करने के तरीके बताए है। सरकारी वकील मेजर पूरी यह कहते है कि, "रामचन्दर के साथ जुलम हुआ। अगर हुआ भी है तो ऐसे समाज में, जो कानून और नियमों पर टिका हो, विरोध करने के कई और तरीके हैं, बहुत से रास्ते है। समाज में निजी गुस्से और प्रतिकार के लिए कभी कोई जगह नहीं होती। रामचन्दर अपने कमांडिंग अफसर से शिकायत कर सकता था। आर्मी चीफ से शिकयत कर सकता था।"[10] विरोध या शिकायत के रास्ते है पर उन रास्तों से चलते न्याय मिल सकता है। अधिकारों का हनन करे यह ठीक नहीं है। विरोध की बात तो ठीक है पर सोचने के स्थर, उनको अपनी शक्ति, टेलेंट दिखाने का तक मौका नहीं मिले इसकी तक भरसक कोशिश रामचन्दर के प्रति निर्माण करते है, ऊँची अफसर व्यवस्था। 'कोर्टमार्शल' नाटक में रामचन्दर निम्नवर्ग का शोषित वर्ग का प्रतिनिधी है। बचाव पक्ष का वकील कैप्टन बिकाशराय समकालीन व्यवस्था से झुजती हुई सत्याग्रही चेतना का के प्रतिक है।

निष्कर्ष :कोर्टमार्शल में सामंती प्रवृत्ति द्वारा शोषित वर्ग का होने वाला शोषण और समकालीन स्थिति पर प्रहार किया है।नारी भले ही सामंती परिवार की हो पर सामन्ती परम्परा की विचारधारा के इस प्रवाह में अपमानित, पीड़ित, प्रताड़ित एवं अत्याचारित होती दिखाई देती है।कानुन और व्यवस्था तथा न्याय एक अंतहीन रास्ते पर निरर्थक यात्रा, उसी प्रकार गवाह और सबूतों के बीच अर्धसत्य पर खड़ी है।हमारी न्याय व्यवस्थाएँ, अन्तरात्मा का विवेकशील न्याय जो एक सत्य कोर्टमार्शल में है।रामचन्दर पर हो रहे कोर्टमार्शल की एक-एक कड़ी, पूरी घटना एवं मानवीय स्वभाव से जुड़ी सारी भावभावनाएँ मौजूदा सामाजिक ढाँचे को खड़ा कर, हो रहे अन्याय और पूरी व्यवस्था ही सबके सामने खड़ी

*****

सन्दर्भ :-

1. स्वदेश दीपक, कोर्टमार्शल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला सं. पृ. 27
2. वही, पृ. 33
3. वही, पृ. 82
4. वही, पृ. 82
5. वही, पृ. 76
6. वही, पृ. 78
7. वही, पृ. 89
8. वही, पृ. 59
9. वही, पृ. 65
10. वही, पृ. 90

आदिवासी विमर्श

आदिवासी साहित्य:मानव-सभ्यता के स्वाभाविक विकास का दस्तावेज

प्रदीप कुमार ठाकुर
मूल्यांकक,केंद्रीय हिंदी निदेशालय
नई दिल्ली-110066 मो.9330561518

विमर्श मूलतः उत्तर आधुनिकतावादी प्रत्यय है जिसका मतलब है जीवंत बहस या चिंतन। इन विमर्शों का जन्म उन आंदोलनों की कोख से हुआ जो मूल रूप से अस्मिता पर आधारित थे और जिनका लक्ष्य पीड़ित,शोषित,घृणित,उपेक्षित तथा सर्वहारा वर्ग के लिए संघर्ष करना था। इन विमर्शों ने वर्चस्ववादी शक्तियों की सत्ता और उनके द्वारा बनाए गए प्रतिमानों को नकार दिया तथा अपनी अनुभूति-आधारित लेखन का नया ढांचा खड़ा किया।इसी की तरफ इशारा करते हुए सत्यप्रकाश सिंह अपने लेख 'अस्मिता-विमर्श के बीच वर्गीय नजरिए की प्रासंगिकता' नामक लेख में कहते हैं कि- ''उत्तर-आधुनिक अस्मिता विमर्शों ने कुछ ऐसे 'नजरियों' और 'दृष्टियों' को सामने रखा है जिनसे अपने समय और समाज को और भी ज्यादा लोकतांत्रिक तरीके से देखने की वैचारिक तमीज आज पैदा हुई है।राजनीतिक तौर पर एक लोकतांत्रिक देश में रहने का मतलब यह कतई नहीं कि सामाजिक-पारिवारिक जीवन में भी लोकतांत्रिकता को हासिल किया जा चुका हो।स्त्री,दलित,आदिवासी,मुस्लिम आदि नजरियों ने हमारे सामाजिक-आर्थिक जीवन और राष्ट्रीय-वैचारिक जीवन में समायी हुई अलोकतांत्रिकताओं और प्रभुत्ववादी प्रवृत्तियों को सामने ला खड़ा किया है।''1उपरोक्त उदाहरण में जिस वैचारिक तमीज की चर्चा की गई है ,वह असल में अपने समय और समाज को अलग दृष्टिकोण से देखने की एक नई चेतना है। इसी चेतना शक्ति के फलस्वरूप अस्मितामूलक विमर्शों का प्रस्फुटन हुआ।वर्तमान दौर विमर्शों का है। आज साहित्य की तमाम विधाओं के जरिए उन अस्मिताओं को व्यापक जनस्वीकृति मिल रही है जो वर्चस्ववादी शक्तियों के तले दुबकी हुई सिसक रही थी और अपनी अभिव्यक्ति के लिए संघर्षरत थी।स्वतंत्रतापूर्व तथा स्वातंत्रोयत्तर भारत में ऐसे कई आंदोलन उभरे जिन्होंने अस्मितामूलक विमर्शों को नई गति दी जिससे विमर्शवादी मुद्दों को ठोस जमीन मिली। फलस्वरूप हिंदी भाषा एवं साहित्य के क्षितिज का विस्तार हुआ और नए संदर्भों ,विषयों तथा नई संकल्पनाओं ने आकार ग्रहण किया।

हाशिए के इन विमर्शों का अपना एक स्पष्ट मत है कि अब तक जो लिखा गया है उनमें उनकी उपस्थिति नाममात्र की है और कहीं -कहीं तो उनका इतिहास एक सिरे से गायब है।राजेंद्र यादव जी का भी यही मानना है ('दलित साहित्य बौद्धिक विमर्श के केंद्र में है' लेख) इसलिए वे कहते हैं, ''मैं बार-बार लिख चुका हूँ कि हमारा अब तक का साहित्य केवल एक खास वर्ग का लिखा और एक खास वर्ग को संबोधित साहित्य है। साहित्य का मतलब यदि सहित है तो उसको समाहित करना चाहिए''2। सचमुच अगर साहित्य में समूचे समाज की ध्वनियों,संवेगों तथा लेखन को अंगीकार करने की उदारता नहीं है तो वह साहित्य के असली मानदंडों पर खरा नहीं उतर सकता। ऐसा वर्षों से होता रहा है किंतु विमर्शवादी लेखन ने इसे चुनौती दी तथा इस परिपाटी को प्रश्नों को कटघरे में खड़ा किया है। समकालीन लेखन में आज उन दबी-कुचली आवाजों की भी प्रतिध्वनि सुनाई दे रही है,जिन्हें साहित्य की तथाकथित मुख्यधारा में अब तक सम्मानजनक जगह नहीं मिल सकी थी।अपने लेख 'उत्तरशती के विमर्श का आख्यान' में चंद्रभान सिंह यादव इसी परंपरा की तरफ इशारा करते हुए रेखांकित करते हैं कि, ''आजादी के सत्तर वर्ष बाद भी देश का बड़ा समुदाय हाशिए पर पड़ा है। जिनमें दलित,आदिवासी,स्त्री,अल्पसंख्यक मुख्य हैं।समाज वैज्ञानिक-साहित्यकार इन पर गंभीरता से चिंतन,लेखन कर रहे हैं।स्त्री,दलित,आदिवासी विमर्श साहित्यिक प्रवृत्ति मात्र नहीं है अपितु सदियों से हाशिए पर डाले गए समाज की आवाज है। यह श्रमशील समाज न सिर्फ सुविधाहीन अपितु आदिकाल से अपने अधिकारों से वंचित रहा है।''3 आज यह श्रमशील समाज और उसका साहित्य चढ़ाव पर है,जिसे कतई नजरंदाज नहीं किया जा सकता।हिंदी भाषा और साहित्य में उनकी सशक्त उपस्थिति लगातार दर्ज हो रही है। हिंदी की तमाम पत्र-पत्रिकाएं तथा पुस्तकें इन विमर्शों को यथोचित स्थान दे रहीं हैं जिससे एक सामासिक और बहुलतावादी लेखन संस्कृति का निर्माण हो रहा है। हिंदी भाषा और साहित्य में भी अस्मिता आधारित लेखन को पर्याप्त तरजीह दी जा रही है। इससे न केवल पुरानी साहित्यिक मान्यताएं और परंपराएं टूट रहीं हैं बल्कि इससे साहित्य में नए विषयों,संदर्भों तथा लेखन की नई दिशाएं मिल रही हैं। आदिवासी साहित्य एक ऐसा ही अनछुआ कोना है जिसपर इधर लोगों का थोड़ा बहुत ध्यान गया है।'आदिवासी' शब्द का शाब्दिक अर्थ है –'आदिम युग में रहने वाली जातियाँ',आदिम जातियाँ अथार्त मूल निवासी,जीवन के मौलिक स्वरूप की संरक्षक जातियाँ,प्रकृति की आराधकामूलतः यह वे जातियाँ हैं जो लगभग 5000 वर्ष पुरानी भारतीय सभ्यता को संजोये हुए हैं।पिछली दो सदियां आदिवासी विद्रोहों की गवाह रही हैं।इस विद्रोहों से रचनात्मक ऊर्जा भी निकली,लेकिन वह मौखिक ही अधिक रही। भद्र समाज के उदासीन रवैये और संचार माध्यमों के अभाव के कारण उनकी अनुगूँज हमें सुनाई नहीं पड़ी। साहित्य में आदिवासी जीवन की प्रस्तुति की इस पूरी परंपरा को हम समकालीन आदिवासी साहित्य की पृष्ठभूमि के तौर पर देख सकते हैं।आदिवासी लोक में साहित्य सहित विविध कला -माध्यमों का विकास तथाकथित मुख्यधारा से पहले हो चुका था,वहाँ साहित्य सृजन की परंपरा मूलतः मौखिक रही। जंगलों में खदेड़ दिए जाने की बाद भी आदिवासी समाज ने इस परंपरा को अनवरत जारी रखा। ठेठ जनभाषा में होने और सत्ता प्रतिष्ठानों से दूरी की वजह से यह साहित्य उपेक्षित ही रहा।आदिवासी मामलों के जानकार हरिराम मीणा इस संदर्भ में लिखते हुए अपने लेख 'आदिवासी साहित्य के सवाल' नामक लेख में कहते हैं कि, ''मुख्यधारा के हिंदी साहित्य में अगर आदिवासी विषयवस्तु की तलाश किया जाए तो वह बहुत काम मिलेगी और असल रूप में तो नहीं। जब लोक को ही पहली बार कथा साहित्य में मुंशी प्रेमचंद के यहाँ स्थान मिल और कविता में निराला और उसके तुरंत बाद नागार्जुन-त्रिलोचन -केदार बाबू की त्रयी में,तो आदिवासियों की सुध लेने वाला कहाँ मिलेगा?''4 समकालीन आदिवासी लेखन और विमर्श की शुरुआत 1991 के बाद से मानी जा सकती है। नई आर्थिक नीतियों ने आदिवासी शोषण-उत्पीड़न की प्रक्रिया तेज की ,इसलिए उसका प्रतिरोध भी मुख्य हुआ। प्रतिरोध का स्वर राष्ट्रीय था,इसलिए प्रतिरोध से निकली रचनात्मक ऊर्जा देशभर में फूटी।इसके फलस्वरूप आदिवासी साहित्य लेखन आरंभ हो गया। स्त्री और दलित विमर्श के बाद रचनाकारों और आलोचकों ने अपना रुख आदिवासी साहित्य की तरफ केंद्रित किया।हालांकि इस विषय पर प्रमुखता से जो लिखा गया उस लेखन में उन्हीं लेखकों की प्रमुखता थी जो या तो नौकरी अथवा स्थानांतरण के कारण किसी आदिवासी बहुल क्षेत्र में रहे थे।उस लेखन में भी कहीं-कहीं उन्हें बहुजन के नाम पर दलित समाज का हिस्सा बताकर उनकी असल समस्याओं को 'रीड्युस' किया गया।आदिवासी साहित्य के व्यापक सरोकारों को विशेष महत्त्व नहीं मिला। इस संबंध में वीर भारत तलवार लिखते हैं,''आदिवासी साहित्य का मतलब अगर यह है कि आदिवासियों के सवालों को उठाया जाए और उनके हाल के लिए विचार-विमर्श किया जाए तो यह विमर्श शुरू हो चुका है।हालांकि वह दलित और स्त्री-विमर्श की तरह व्यापक रूप नहीं ले सका है।लेकिन असली सवाल तो यही है कि यह आदिवासी विमर्श कहाँ और किनके बीच चल रहा है?वास्तव में यह विमर्श आदिवासियों से सहानुभूति रखने वाले उनके हमदर्द बुद्धिजीवियों,मानवाधिकार कार्यकर्ताओं आदि गैर आदिवासियों के बीच चल रहा है न कि खुद आदिवासियों के अंदर।''[5] शुरू में आदिवासी समाज के बीच से अपने 'स्वयं' के बारे में लिखने वालों की तादाद बहुत कम थी। अब स्थितियाँ बदलीं हैं।अब चेतना संपन्न एक ऐसी पीढ़ी सक्रिय है जो अपने समाज की वास्तविकताओं से परिचित है तथा खुलकर अपने 'मन की बात' निर्भीकतापूर्वक सबके सामने रख रही हैं।इससे एक नई इबारत गढ़ी जा रही है। भारत में मान्यताप्राप्त जनजातीय समुदायों की

संख्या 600 से भी अधिक है। इस जनजातीय समूहों की जीवन-प्रणाली,उनके आचार-विचार ,संस्कृति,परंपराएं एवं धार्मिक मान्यताएं अलग-अलग हैं । परंतु इतनी भिन्नताओं के बावजूद भी उनके जीवन क्रम ,रहन-सहन एवं सांस्कृतिक विकास में कुछ समानताएं हैं और इन समानताओं के आधार पर ही इन समुदायों को सम्मिलित रूप से आदिवासी कहा जाता है । इनकी सामुदायिक जीवन पद्धति,भोजन और अन्य जरूरतों के लिए वन,भूमि और जल -स्रोतों पर निर्भरता,जाति प्रथा का अभाव आदि ऐसी प्रवृत्तियाँ है जो इन्हें एक सूत्र से जोड़ती हैं। आज पूरे देश के आदिवासी बहुल इलाकों जैसे मध्यप्रदेश, उत्तराखंड,छत्तीसगढ़,झारखंड और पूर्वोत्तर भारत के राज्यों में आदिवासी साहित्य लिखा जा रहा है जो न केवल हिंदी साहित्य को समृद्ध कर रहा है बल्कि विविध भारत के विविध रंगों की छटा भी बिखेर रहा है।आदिवासी साहित्य मूलतः आदिवासी दर्शन पर आधारित साहित्यिक आंदोलन है जिसका मुख्य स्रोत आदिवासी परंपरा और संस्कृति है।इसकी मूल प्रवृत्ति है- प्रकृति के साथ अटूट संबंध और गीत-संगीत में रचा बसा जीवन । इस साहित्य पर चर्चा करते हुए गंगासहाय मीणा कहते हैं कि, ''आदिवासी भाषाओं में रचित साहित्य और मौखिक परंपरा आदिवासी साहित्य का मूल स्रोत है। सिर्फ हिंदी में लिखित-मुद्रित आदिवासी संबंधी लेखन को आदिवासी साहित्य कहना उचित नहीं है।मौखिक साहित्य इसका मूलाधार है।आदिवासी साहित्य की परंपरा को तीन भागों में बांटकर समझा जा सकता है-1. पुरखा साहित्य 2.आदिवासी भाषाओं में लिखित साहित्य की परंपरा 3.समकालीन आदिवासी लेखन।''6असल में आदिवासी साहित्य का लोकवृत्त बहुत विस्तृत है जिसकी निर्मिती प्रकृति के बीच हुई है ।प्रकृति आदिवासी जीवन और संस्कृति का मूलाधार है। यही कारण है कि एक बहुत बड़ा हिस्सा मौखिक परंपरा के रूप में उनके यहाँ यहाँ सुरक्षित है।इसके उद्घाटन से ही आदिवासी संस्कृति को उसकी समग्रता में समझा जा सकता है ।आज आदिवासी लेखक - लेखिकाओं की पीढ़ी इस कार्य में संलग्न है जिसके फलस्वरूप इस साहित्य का निरंतर विस्तार हो रहा है।इस क्रम में निर्मला पुतुल,सरिता बड़ाइक,वंदना टेटे,ग्रेस कुजूर,महादेव टोप्पो,अनुज एकलव्य,जसिंता केरकेट्टा,बलदेव मुंडा,हरिराम मीणा,रोज केरकेट्टा,एलिस एक्का,वाल्टर भेंगरा,पीटर पौल एक्का ,मंगल साइ मुंडा अनुज लुगुन, वासवी किड़ो वासवी,सुनील मिंज,अल्मा ग्रेस बारला,ममंग दई,जोराम नाबाम यालम, दयामनी बारला,मोरजुम लोयी,जमुना बिनी आदि उल्लेखनीय नाम हैं।कविता,कहानी,नाटक,उपन्यास और आलोचना में प्रमुखता से लेखन हो रहा है।आदिवासी लेखिका और 'अखड़ा' पत्रिका की संपादक वंदना टेटे के इस कथन से इस साहित्य के बढ़ते प्रभाव को समझा जा सकता है।वह कहती हैं- ''आदिवासी साहित्य अब मुख्यधारा के विमर्श में है ।आजादी के लगभग सात दशक बाद वह भारतीय समाज,जो शक्ति संरचना में शीर्ष पर है, ने आखिरकार एक लंबे संघर्ष के बाद आदिवासी साहित्य को भी साहित्य मानने के लिए खुद को तैयार करना शुरू कर दिया है।तैयार इसलिए क्योंकि अभी उसने पूरी तरह से आदिवासी साहित्य को स्वीकार नहीं किया है।पर इसकी शुरूआत हो गई है और इस शुरुआत के साथ ही हमारी चुनौतियाँ पहले से ज्यादा बढ़ गई हैं।''7इसमें कोई संदेह नहीं कि अब स्वयं आदिवासियों द्वारा अपने समय,समाज और हालात को अपनी भाषा और अपनी नजर से व्यक्त किया जा रहा है।इसलिए अब इसका अध्ययन एक प्रमुख विषय के रूप में भी किया जा रहा है।इस साहित्य के प्रचार-प्रसार में बहुत सारी पत्र-पत्रिकाएं भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं।वंदना टेटे द्वारा संपादित 'झारखंडी भाषा साहित्य संस्कृति 'अखड़ा', जनक सिंह मीणा द्वारा संपादित 'अरावली उद्घोष' गंगा सहाय मीणा द्वारा संपादित 'आदिवासी साहित्य',तथा के आर शाह द्वारा संपादित 'आदिवासी सत्ता' तथा मध्य प्रदेश की आदिवासी लोक परिषद की पत्रिका 'चौमासा' इस दिशा में विशेष सक्रिय हैं। 'युद्धरत आम आदमी' ने भी इसमें बहुमूल्य योगदान दिया है।इसके अलावा पुष्पा टेटे 'तरंग भारती', सुनील मिंज 'देशज स्वर' तथा शिशिर टुडु 'झारखंड न्यूज' के माध्यम से आदिवासी विमर्श को बढ़ाने में लगे हैं।'कथाक्रम','समकालीन जनमत' आदि पत्रिकाएं भी अब आदिवासी साहित्य को प्रमुखता से प्रकाशित कर रही हैं।इससे आदिवासी साहित्य का दायरा लगातार बढ़ रहा है।आदिवासी साहित्य की बहुत सी विशेषताएं उसे बाकी साहित्य लेखन से अलग करती हैं।स्त्री और दलित साहित्य में जहाँ 'आत्म' पर जोर है वहीं आदिवासी साहित्य सामूहिकता पर बल देता है।यहाँ परंपरा,संस्कृति,इतिहास,कला से लेकर विद्रोह तक सब कुछ सामूहिक है।इसीलिए यहाँ आत्मकथात्मक लेखन की अपेक्षा समूह आधारित कृतियों की प्रधानता है। दलित गांव के बाहर प्रस्थापित और बहिष्कृत थे किंतु आदिवासियों के पास जंगल और जमीन दोनों थे। एक तरह से उन्हें सांस्कृतिक और सामाजिक स्वायत्तता प्राप्त थी।दोनों की समस्याएं और दोनों की आवश्यकताएं भी अलग थी। आज भी दोनों की समाज संरचना में मूलभूत अंतर विद्यमान है।उनकी लड़ाई जल,जंगल जमीन की लड़ाई है। उनका अपना एक स्वतंत्र अस्तित्व विद्यमान है जिसके लिए वे संघर्षरत हैं।इसी तरह की धारणाओं का खंडन करती हुई वंदना टेटे अपनी पुस्तक 'आदिवासी साहित्य:परंपरा और प्रयोजन' में आदिवासी साहित्य को लोक साहित्य कहने, उसके शिल्प को अनगढ़ कहने और उसको प्रतिरोध का साहित्य मानने का खंडन करती हैं। गंगासहाय मीणा के शब्दों में कहे तो,''आदिवासीदर्शनसहअस्तित्व,संत,सामूहिकता,सहजीवता,सहभागिता और सामंजस्य को अपना आधार मानते हुए रचाव और बचाव में यकीन करता है। इसीलिए इसमें स्वानुभूति और सहानुभूति के स्थान पर सामूहिक अनुभूति का प्रबल स्वर-संगीत सुना जा सकता है।''8 आदिवासी साहित्य और संस्कृति स्वयं में विशिष्ट है।यह अपने शोषण के विभिन्न रूपों के उद्घाटन और अपनी अस्मिता और अस्तित्व के संकट के खिलाफ उठ खड़े होने वाले प्रतिरोध का साहित्य है।इसके सवाल और इसकी चिंताएं अलग हैं।इसका मानना है कि प्रकृति में जो है,जैसा है:सुंदर है। उसमें बिना किसी बदलाव के भी जिंदा रहा जा सकता है।यही कारण है कि उनके पर्व,त्योहार प्रकृति से प्रभावित रहे हैं और उस संसार में सबके लिए बराबर की जगह है।इसी के प्रभाव स्वरूप उनके चरित्र में भी एक तरह की स्वाभाविकता,सरलता और निश्छलता नजर आती है।असल में आदिवासी समाज का पूरा जीवन ही एक संगीत है जिसकी लय ताल और धुन पर वे एकाग्रचित्त होकर नाचते-थिरकते हैं।उनकी जीवन-शैली में किसी तरह का बनावटीपन नहीं होता।अपनी 'सामान्य' जीवन शैली की विशिष्टता लिए उनका सारा जीवन इस दुनिया को संजने-संवारने और उसे बाहरी ताकतों से बचाने के लिए प्रयासरत रहता है।उनके समूचे जीवन का रस उनकी संस्कृति में निहित है जिससे अलगाकर उन्हें देखा नहीं जा सकता। कला,गीत-संगीत उनके इस सजीव जीवन का अभिन्न हिस्सा है। किंतु आज उसे केवल प्रदर्शन और मनोरंजन की दृष्टि से देखा जा रहा है।इस बारे में बताते हुए वंदना टेटे कहती हैं,''आदिवासी कला परंपराओं में लेखक-गीतकार,संगीतकार,नर्तक और गायक अलग-अलग स्वतंत्र इकाइयां न पहले थी, न आज हैं।मुख्यतः आदिवासी कला परंपरा विविध कला रूपों का एक समुच्चय है,जिसमें सभी कला-विधाओं के साथ-साथ प्रकृति की भी एक प्रमुख और सुनिश्चित भूमिका होती है।''[9] कहना न होगा कि आदिवासी साहित्य अपने परिवेश से अभिन्न रूप से जुड़ा है।अपनी परिवेशगत विशेषता लिए हुए उसने अपना एक विशिष्ट स्थान बनाया है।इसका यही चरित्र उसे बाकी साहित्य से उसे अलग करता है।प्रायः आदिवासी नाचते-गाते हुए समारोहों में दिखते हैं। किंतु उनका यह नाचना-गाना उनके लिए प्रदर्शन का हिस्सा नहीं होता।उसमें उनकी जिजीविषा होती है,उनका संवेग घुला मिला होता है और उनका 'स्व' विद्यमान होता है।इसलिए रुमानीभाव से इसकी व्याख्या करना उचित नहीं होगा। आदवासियों की कला और संस्कृति के संदर्भ में यही बात अनुज लुगुन अपनी पुस्तक 'आदिवासी अस्मिता प्रभुत्व और प्रतिरोध' की भूमिका में कहते हैं।वे कहते हैं,''आदिवासी समाज को देखने का अब तक का आम नजरिया रोमानियत भर रहा है। आदिवासी समाज की अलग सांस्कृतिक विशिष्टता की बात करते हुए बाहरी समाज उस पर रीझ तो जाता है लेकिन वही समाज जब अपनी उसी विशिष्टता की साथ जीने के लिए अपने हक की मांग करता है तो उसे असामाजिक और अतार्किक माना जाता है।''[10] असल मुद्दा यही है जिसे अनुज लुगुन ने उठाया है। आदिवासी अपनी सांस्कृतिक विशिष्टताओं के साथ रहने चाहते हैं किंतु व्यवस्था को यह मंजूर नहीं।अपनी तमाम खूबियों और अनूठेपन के बावजूद आदिवासी समाज में भी कुछ न्यूनताएं मौजूद हैं जिसका रेखांकन जरूरी है और जिसे आदिवासी रचनाकारों ने अपने साहित्य में उठाया भी है।वह समस्या है पितृप्रधान समाज में पुरुषसत्ता का वर्चस्व। हालांकि आदिवासी समाज मातृप्रधान है जिसमें श्रम के आधार पर स्त्री को यथोचित सम्मान मिला हुआ है। बावजूद इसके कई परिवारों में पुरुष का हुकूम ही चलता है। वह स्त्री को मारता

पीटता है उसपर नशे की हालत में जुल्म करता है और स्त्री सब कुछ सहते हुए भी चुप रह जाती है। मोरजुम लोयी का उपन्यास 'मिनाम' एक ऐसी ही रचना है जो स्वयं लेखिका के जीवन पर आधारित है।इस उपन्यास में वे एक जगह कहती हैं, "यामी रोटी-बिलखती रही पर उसकी सुननेवाला कोई नहीं था। यामी के हाथ-पैर बांधकर एक अंधेरे बंद कमरे में बंद रखा गया। तातुम बाहर जाता, नशे में आकर यामी पर लात-घूसों से वार करता और गालियां देकर चला जाता है।यामी हाथ जोड़कर रहम की भीख माँगती रही,पर तातुम पर कुछ असर नहीं हुआ।"11 देखा जा सकता है कि आज भी आदिवासी समाज में औरतों की स्थिति में मूलभूत बदलाव नहीं आया है।यामी नामक पात्र के रूप में स्वयं लेखिका ने अपना दुख इस उपन्यास में व्यक्त किया है।किंतु प्रायः माना जाता है कि आदिवासी समाज मातृप्रधान समाज है जहाँ स्त्रियों को विशेष रुतबा प्राप्त है।परंतु हकीकत इससे इतर है।अपने लेख 'आदिवासी साहित्य की परंपरा' में डॉ इसपाक अली इसी तरफ इशारा करते हुए कहते हैं कि "इसका अर्थ यह नहीं कि आदिवासी स्त्री को कोई दुःख ही नहीं है या कि आदिवासी स्त्री पूरी तरह स्वतंत्र हैं।ऐसा भी नहीं है। स्त्रियों के मामले में सभी समाज पिछड़े हैं। हिंदू-मुस्लिम धर्म तो इस बाबत बहुत ही अलग हैं। दरअसल प्रश्न पुरुष प्रधान संबंध का है। आदिवासी समाज भी अधिकतर सभी मायने में पुरुष प्रधान ही है।"12असलियत यही है कि कमोबेश हर समाज में पुरुष वर्चस्व का बोलबाला है। यह अलग बात है अभी भी आदिवासी समाज में स्त्री की उतनी दुर्दशा नहीं है जितनी तथाकथित 'सभ्य' समाज में है। उदारीकरण और भूमंडलीकरण के बाद आदिवासी समाज बहुत तेजी से बदल रहा है। यह बदलाव भीतर और बाहर दोनों स्तरों पर हो रहा है। विकास की नई व्याख्या में उन्हें असभ्य बताकर एक 'नए भारत' के मिजाज से ढ़ालने की कोशिशें जारी हैं।इसके फलस्वरूप उनपर दोहरी मार पड़ रही है।एक तरफ तो उन्हें विकास की कीमत पर विस्थापित होकर अपनी जड़ों से कटना पड़ना पड़ रहा है दूसरी तरफ भाषा,संस्कृति,रहन-सहन के स्तर पर भी एक अलग परिवेश में समायोजित होने के लिए उन्हें भारी कीमत चुकानी पड़ रही है।इस संदर्भ में आदिवासी लेखक महादेव टोप्पो का यह कहना वाजिब है जहाँ वे अपने लेख 'तथाकथित सभ्य समाज अपना दृष्टिकोण आदिवासियों पर न थोपे' में कहते हैं कि,"उपनिवेशवादियों और पूंजीवादियों को आदिवासियों की एकजुटता और सामूहिकता के बने रहने से डर लगता है।इस कारण उन्होंने बहुत ही सुनियोजित ढंग से आधुनिकता की नाम पर विकास,शिक्षा,स्वास्थ्य के नाम पर उनकी समृद्ध परंपरा और विरासत का नाश कर दिया।दुःख है कि आज भी ऐसा कर रहे हैं। इस तरह लोकगीत,लोककथा बचाने की जो सशक्त परंपरा समाज में थी,वह कड़ी टूट गई।"13 महादेव जी ने सत्ता की सही नब्ज पकड़ी है। असल में सत्ता की लालची निगाहें उनके आशियाने को संसाधन के नजरिए से देख रहीं हैं जिसके कारण उनपर विकास का बुलडोजर चलाया जा रहा है।जल,जंगल और जमीन के उनके अधिकारों को हड़प कर उन्हें अपनी ही जमीन से बेदखल किया जा रहा है।इसी व्यथा से उपजी टीस का वर्णन आदिवासी साहित्य में मिलता है।लोक साहित्य को अपने में समेटे हुए इस साहित्य में एक साथ रहने वाले समुदायों के सामूहिक जीवन के विविध अनुभव गुंफित हैं जिन्हें अलगाया जाना संभव नहीं है।आदिवासियों के लिए काम करने वाली रमणिका गुप्ता कहती हैं कि "आदिवासी साहित्य मुद्दों पर आधारित प्रकृति, स्त्री और दूसरे कमजोर लोगों के अधिकारों की आवाज उठाने वाला प्रतिबद्ध,परिवर्तनकामी तथा संकल्पबद्ध साहित्य है।"14आज आदिवासी साहित्य प्रचुरता से लिखा जा रहा है।आदिवासी परिवेश में जन्मीं नई पौध लगातार अपने लेखन से साहित्य को नई-नए अनुभवों से समृद्ध कर रही है।प्रायः हर शिक्षण-संस्थान के पाठ्यक्रम में आदिवासी साहित्य को तरजीह मिल रही है।इससे न केवल उनके बारे में शेष समाज को जानकारी मिल रही है बल्कि इसके समानांतर उनके कष्टों और संघर्षों से जुड़कर प्रतिरोध की एक नई संगठित चेतना का प्रचार-प्रसार भी हो रहा है। डॉ इसपाक अली आदिवासी साहित्य के मर्म को पहचानते हुए अपने लेख 'आदिवासी साहित्य की परंपरा' में ठीक ही कहते हैं कि "आदिवासी साहित्य आत्म-सम्मान का संघर्ष मात्र नही है,इसमें विकास,विस्थापन,कहीं पर पिछड़ जाने या हार जाने के बावजूद धूल झाड़कर उठ लेने के बाद पुनः संघर्ष करने की आकांक्षा भी है। जीवन को हर तरीके से बेहतर बनाने की जबरजस्त ललक है। जंगल,पहाड़ की हरियाली,खेत-खलिहान के अन्न बचाने,नई परिस्थितियों में खुद को खोजने एवं पारिभाषित करने की आकांक्षा इसमें समाहित है।"15 यही कारण है कि आदिवासी साहित्य का दायरा लगातार बढ़ता जा रहा है।इसके विभिन्न पहलुओं पर लगातार शोध चल रहा है।इसकी परंपरा से जुड़ें मौखिक तथा लुप्तप्रायः साहित्य को खोजने,पहचानने और सहेजने की कोशिशें की जा रही हैं। अभी इस दिशा में और भी प्रयास किए जाने की जरूरत है। इसकी संभावनाओं पर चर्चा करते हुए अपने लेख 'आदिवासी साहित्य की उपस्थिति' में नवल शुक्ल ठीक ही कहते हैं कि "आदिवासी चेतना रागात्मकता,प्रकृति,पर्यावरण,पारंपरिक और स्थानीय ज्ञान तथा अभिव्यक्ति की सहजता जब लेखन के माध्यम से आयेगी तो जाहिर है साहित्य का जीवद्रव्य सघन होगा और जिजीविषा से भरापूरा भी।साहित्य में अभिव्यक्ति और कहन के नये आयाम आयेंगे। साहित्य की सृजनात्मकता में जो एकरूपता,जड़ता हो सकती है,वह ढीली होगी। कथ्य,कहन और भंगिमा से सृजनात्मक भूमि और क्षितिज का विस्तार होगा। अनजाने मिथ,कथानक, विभ्रम और यथार्थ से हिंदी साहित्य समृद्ध होगा।"16 कहना न होगा कि आदिवासी साहित्य भविष्य का साहित्य है।इस साहित्य में संवेदनशील समाज के लिए बहुत कुछ है जिसे ग्रहण किया जा सकता है। इस साहित्य के बहुत से अनछुए पक्षों का अध्ययन और उसमें गंभीरतापूर्वक शोध किया जाना अपेक्षित है।

साहित्य का एक बड़ा काम अपने जीव-जगत का प्रतिबिंबन तो है ही साथ ही साथ उसके ऊपर एक गुरुतर दायित्व भी है कि वह उन आवाजों को भी प्रमुखता से उठाए जो सभ्यता के विकासक्रम में दबा दी गई थीं।आदिवासी साहित्य एक ऐसा ही कोना है जिसने न केवल अपनी लेखनी से दबे-कुचले,अनजान और सभ्यता के बोझ तले कराहते जनसमुदाय की आवाज़ को प्रमुखता से रेखांकित किया है बल्कि साहित्य में अपने नए अनुभव जोड़कर उसे सजीवता और जीवंतत भी प्रदान की है।अतएव एक सम्यक लोकतांत्रिक समाज को स्थापना की दिशा में आदिवासी साहित्य के योगदान का रेखांकन महत्त्वपूर्ण ही नहीं आवश्यक भी है।

******

संदर्भ-ग्रंथ:–

1. नया पथ- सं-मुरली मनोहर प्रसाद सिंह,जुलाई 2016-मार्च 2017(संयुक्तांक),वर्ष-31,पृष्ठ-259
2. भारतीय दलित साहित्य परिप्रेक्ष्य-सं- पुन्नी सिंह,कमला प्रसाद,राजेन्द्र शर्मा,वाणी प्रकाशन,2017, पृष्ठ-280
3. अपेक्षा -सं-तेज सिंह ,जुलाई-सितंबर 2008,वर्ष-7,पृष्ठ-32
4. 'सभी सत्ताधारी आदिवासियों के आदिवासीपन से डरते हैं'-वीर भारत तलवार,केदार प्रसाद मीणा से बातचीत, कथाक्रम(विशेषांक:आदिवासी समाज और साहित्य),अंक-50,अक्तूबर-दिसंबर-2011,पृष्ठ-14
5. आदिवासी चिंतन की भूमिका-गंगासहाय मीणा,अनन्य प्रकाशन,पृष्ठ-46
6. 'मुख्यधारा के मुहावरे और आदिवासी विमर्श' संपादकीय से,झारखंडी भाषा साहित्य,संस्कृति अखड़ा,त्रैमासिक,मार्च-मई 2013,अंक-1,पृष्ठ-1
7. आदिवासी चिंतन की भूमिका-गंगासहाय मीणा,अनन्य प्रकाशन,पृष्ठ-91
8. आदिवासी साहित्य:परंपरा और प्रयोजन-वंदना टेटे,प्यारा केरकट्टा फाउंडेशन,पृष्ठ-9
9. आदिवासी अस्मिता:प्रभुत्व और प्रतिरोध(समय से संवाद-6)-सं-अनुज लुगुन,शृंखला सं-किशन कालजयी अनन्य प्रकाशन,2018, पृष्ठ-xi
10. मिनाम-मोरजुम लोयी,बोधि प्रकाशन,2020,पृष्ठ-42
11. हिंदी में आदिवासी साहित्य-डॉ इसपाक अली,साहित्य संस्थान,2020,प्रथम संस्करण,पृष्ठ-64
12. वागर्थ-सं-शंभुनाथ,अप्रैल 2022,अंक-28, पृष्ठ-
13. युद्धरत आम आदमी-सं-रमणिका गुप्ता,दिसंबर 2005,पृष्ठ-12
14. हिंदी में आदिवासी साहित्य-डॉ इसपाक अली,साहित्य संस्थान,2020,प्रथम संस्करण,पृष्ठ-70
15. तद्भव(दलित वैचारिकी की दिशाएं)-सं-अखिलेश,अतिथि सं-बद्री नारायण पृष्ठ-126.

भगवान गव्हाडे की कविता में आदिवासी जीवन

डॉ. वासंती. जे
सह आचार्य, हिंदी विभाग
सरकारी ब्रन्नन कॉलेज धर्मडम,तलश्शेरी

समकालीन साहित्य में कई प्रकार के नये विमर्श हमारे सामने दिखाई देते है। हम जानते है कि दलित स्त्री जैसे कई अपरिष्कृत वर्ग हैं जिनको अपने अधिकारों के लिए निरंतर संघर्ष करना पड़ रहा है। जब दलितों ने अपनी आवश्यकताओं की मांग की तब दलित विमर्श उभर आया। सिर्फ दलित और स्त्री ही नही ऐसी कई लघु संस्कृतियों भी हैं जिन्होने अपनी अस्मिता की तलाश के लिए निरंतर संघर्ष किया है। वैश्वीकरण और औपनिवेशिक दौर ये दोनों ऐसी मूलभूत चीपेटे जिनके परिदृश्य में स्त्री, दलित, आदिवासी किसान और स्थानीय जातीय समुदाय खास तौर पर मुखर हैं। वैश्वीकरण के इस चुनौतीपूर्ण समय में हमारे लिए यह आवश्यक सिद्ध हो जाता है कि भारत के विभिन्न समाज समुदाय और संस्कृतियाँ एक दूसरे को समझने का प्रयत्न करें। हर सोच और संस्कृति में अस्मिता का पुनर्निर्माण करने का स्पेस होना चाहिए। कोई भी आन्दोलन चाहे वह दलित हो या स्त्री या आदिवासी सबमें एक विज़न होता है। उसमें कोई ऐसी बात नही होती जिसे असंगत माना जाए। हर एक विमर्श तभी सार्थक बनता है जब उसका सामुदायिक प्रतिनिधित्व सुनिश्चित होता है।

आदिवासी का शाब्दिक अर्थ है – आदम युग में रहने वाली जातियाँ। ये मूलत: वे जातियाँ है जो लगभग 5000 वर्ष पहले भारत में रहते ये उन्हें भारत के मूलनिवासी कह सकते हैं। पाँच हज़ार वर्ष पूर्व के भारतीय सभ्यता को संभाले हुए है ये लोग। कहा जाता है कि औपनिवेशिक युग के पर्व आदिवासियों की अपनी अलग सत्ता थी। जल, जंगल, ज़मीन और अन्य प्राकृतिक संसाधनों पर उनका पूरा हक था। परन्तु जैसे जैसे सामन्तवादी ताकतें बढ़ती गयी औपनिवेशिक सत्ताएँ भी बढ़ती गयी। उनके अत्याचार भी बढ़ते गए। वैश्वीकरण ने सामन्तवादी संस्कृति को कभी मिटाया नही बल्कि बढ़ाया है। इसी कारण औपनिवेशिक दौर ने भारत के आदिवासियों की जीवनशैली संस्कृति परंपरा आदि को बुरी तरह से प्रभावित किया। औपनिवेशिक दौरी साम्राज्यवादी ताकतों ने आदिवासियों के हाथ से उनके संसाधनों को हडप लिया। उनकी ज़मीन उनके हाथ से छीन ली। इसी कारण अपनी अस्मिता को बरकरार रखने के लिए आदिवासियों को बहुत बड़ा संघर्ष करना पड़ा।

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में आदिवासियों का योगदान नामक लेख में डॉ. जनक सिंह मीना और डॉ. कुलदीप सिंह मीना ने भारतीय इतिहास के संदर्भ में आदिवासियों के योगदान को परखने की कोशिश की है। वे इस लेख में यहीं साबित करते है कि भारत के मूलनिवासी आदिवासी समुदाय शोषण की ब्रिटीश सत्ता को स्वीकार नही किया। भारत का आदिवासी ब्रिटीश सत्ता तथा उसके द्वारा संरक्षित ज़मीदारों, साहुकारों के विरुद्ध 1781 से ही अनवरत संघर्ष करता रहा है। उनका यह संघर्ष अभी भी इतिहास के पन्नों में विद्रोह के रूप में दर्ज है।

सन् 1781 में तिलका मांझी ने अंग्रेज़ों के विरुद्ध विद्रोह की शुरुआत की। अंग्रेज़ी हुकुमत के पहले भारत में पहाड़ियों आदिवासी जनजातियों का शासन चलता था। तिलका मांझी के नेतृत्व में किए गए विद्रोह में आदिवासियों के पास केवल परंपरागत धनुष बाण थे। इसी आन्दोलन में अंग्रेज़ सेना नायक क्वीबलेंड को मार गिराया था। सन् 1781 में तिनका मांझी ने अंग्रेज़ी हुकुमत को अस्वीकार कर आन्दोलन किया। बाद में आदिवासियों का विद्रोह 1798 में तमाड़ विद्रोह के रूप में निकला। सन् 1800 में तमाड में ही दुखन मांझी तथा सन् 1819 में रुदन कोंता मुंडा के नेतृत्व में आन्दोलन हुए। सन् 1831 में सिंह भूमि ने बिन्दराई सिंगराई मानकी के नेतृत्व में कोल विद्रोह और सन् 1855 में सिद्धों कान्द चांद और भैरव मुर्मु चार सन्याल भाइयों के नेतृत्व में संन्याल क्रांति फलगुलन सन् 1828 से 1832 तक बुधु भगत द्वारा चलाया गया। लरका आन्दोलन, मानगढ़ आन्दोलन, पत्तिचितोरिया विद्रोह, भला विलोरिया विद्रोह, खासी विद्रोही ककव और बरुआ का विद्रोह , नया संग्राम भुंटिया लोचा विद्रोह आदि ऐसे आदिवासियों द्वारा किए जानेवाले आन्दोलन है जिन्हें भारतीय इतिहासकारों ने इतिहास में जगह नहीं दी है। वास्तव में आदिवासी लेखन की शुरुआत गैर आदिवासी लेखकों के द्वारा हुई थी। इस लेखन से आदिवासी लोगों में चेतना जाग्रत हुई । और कुछ रचनाकारों ने आदिवासी जीवन की समस्याओं को लेकर लिखना शुरु किया। आदिवासी चिन्तक महादेव टोप्पो के अनुसार - "आदिवासी रचनाकार सबसे पहले इतिहास में आदिवासी की भूमिका तलाशें , विस्थापन की समस्या से जूझे एवं वर्णभेद की समस्याओं से लें , जमीन माफियाओं से अपनी जमीन बचाए तथा सामन्ती सवर्णवादी , साम्राज्यवादी, पूँजिवादी , सामाजिक ढांचे में अपने असतित्व की रक्षा के लिए संघर्ष करें"[1] भागवान गव्हाडे आदिवासी कवि हैं जिन्होने अपनी कविताओं के माध्यम से इन समस्याओं को सही रूप से चितित किया है। आदिवासी समाज के विद्रोह की झलक भगवान गव्हाडे की कविताओं में मिलती है। 'उलगुलान ' नामक कविता में वे कहते है –

"लडे थे कोई क्रान्तिपूर्ण बिरसा मुंडा
जल ज़मीन और जंगल की खातिर
थी लड़ाई अंग्रेज़ी के खिलाफ
उत्तगुलान या उनका नारा और संखनाद
हिल गयी थी साम्राज्य की दीवारें
बोया था अग्निबीज अपनी आहुती देकर
अग्निगर्भ रूपी व्यवस्था को तहस नहस करने
तीर कमान और भालों के सिवा क्या था
उनके पास हथियार/उलगुलान अभी खत्म नहीं हुआ
लड़ना होगा हमे भी।/दलित, आदिवासी बहुजन और शोषितों की
मुक्ति के लिए।"[2]

भूमण्डलीकरण और वैश्वीकरण की अवधारणा में सबसे ज्यादा पिसनेवाला वर्ग -है आदिवासी। आंकड़ों के अनुसार भारत की अर्थव्यवस्था का लगभग आधा हिस्सा का अधिकार के भू क्षेत्र से प्रभावित होता है । फिर भी 84 प्रतिशत आदिवासी भूखा होता है । रोटी कपडा और मकान मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताएं होती हैं आदिवासी लोग अपने जंगल में चैन से रहते थे। उनके पास जीने के लिए अपने प्राकृतिक संसाधन थे। लेकिन आधुनिक विकास के मॉडेल्स ने उसके अधिकार क्षेत्र पर कब्जा कर लिया। जंगल जमीन से उसे वंचित किया है । वैश्वीकरण और साम्राज्यवादी शक्तियों ने मिलकर उससे अपना सबकुछ छीन लिया है। टेकनॉलजी और विकास के नाम पर उन्हें अपनी भूमि से निरंतर विस्थापित किया जा रहा है। विस्थापन की यह त्रासदी मनुष्य को उसके जड़ों से अलग करती है। विस्थापित होने को दर्द को कवि यों दर्शाते हैं।

"फल की प्राप्ति बिना संसार की खुशी के लिए
जो कर देता है सबकुछ न्योच्छकर अपनी
धरती माँ का यह लाडला/हो गया जडों से आज विस्थापित
कर दिया है उसे बेदखल/अपनी धरती से अपने जंगल से
अपने जल और अपने जीवन से।"[3]

आधुनिक कही जानेवाली आदिवासी समुदायों। आदिवासी को अपने जंगल और अपनी भूमि से खदेडकर उसे अलग बेगारों, बेरोज़कारों, भिखमांगों की कतार में खड़ा कर दिया जाता है। उन्हीं से बढ़ती है मेहतरों और जुडा कखेट चुन्नेवालों की संख्या। उन पर ज़बरदस्ती व्यंग्य करके वास्तव में कवि कहते हैं –

"कबकी मुंद ली है/उसने अपनी आँखें
मौन हो गयी उसकी वाणी/खत्म हो गयी बोली आज
छीन ली गयी है उसकी संस्कृति/बंन्द कर दिया गया है उसका संगीत
मिटा दी गयी उसकी नस्ल/यही तो है वैश्वीकरण की असली शक्ल।"[4]

हाल ही में जारी संयुक्त राष्ट्र संघ की दि स्टेट ऑफ द वलर्डस इंडीजीनस पीपुल्स नामक रिपोर्ट में कहा गया और मूलवंशी और आदिम जनजातियाँ पूरे विश्व में अपनी सम्पदा संसाधन और ज़मीन से वंचित व विस्थापित होकर [illegible]

अशिक्षा के कारण अपनी संस्कृति से दूर होता जा रहा है। साथ ही वे कई तरह की बीमारियों से भी लड रहे है। कवि कहते है-

"अपनी झोपड़ी के आगन में/चारपाई पर लेटे हुए
ताकते हुए आकाश/निहारते हुए टूटते तारों की
आतिशबाज़ी देखते देखते/खो जाता था
स्वप्न की नगरी में/फल फूल कन्द मूल खाकर
भूखे पेट की आशा को/भूलकर पकाता यों
खयाली पुलाव।"[5]

आदिवासी पुरानी भारतीय सभ्यता को संजोए हुए है। अपनी अस्मिता और स्वत्यत्ता के लिए आदिवासियों ने बहुत ज़्यादा प्रयत्न किया है। उनका विद्रोह व्यापक पैमाने पर था। वे यहाँ के मूल निवासी होने के कारण पहाडों, पेड़ों की पूजा करते थे। उनकी अपनी जातीय संस्कृति थी। उनकी अपनी कलाएं थी। 'पहाड़' नामक कविता में कवि कहते है -

"रो रहा है पहाड आज आंसू भी सूख रहे हैं।
अपने तन बदन को निर्वस्त्र होते देख रहा है।"[6]

बड़े बड़े पर्वत, वृक्षों, लताओं, झाड़ियों से भरे रहते है उन सबको मिटाया जा रहा है। आधुनिक समाज में पर्यावरण का प्रदूषण जो हो रहा है उसे भी कवि यहाँ इस प्रकार व्यक्त करते हैं -

"झरने नदियों से दिया मानव को जिसने नवजीवन
कूढे कचरे गंदे मैले से प्रदूषित होते देख रहा है।"[7]

अच्छी फसल के लिए पैदावार के लिए एण्डोसल्फान जैसी रासायनिक वस्तुओं का इस्तेमाल करने पर वास्तव में वहां का आदिवासी ही सबसे ज़्यादा आहत होता है। कवि कहते है -

"रासायनिक ज़हर से मरते अपनी संतान /देख रहा है।"[8]

हम देखते हैं कि जंगल में ही सोना बॉक्साईट आदि की खदान होती है। आदिवासियों को वहाँ से हटाकर ही इन खदानों को ढूँढ लिया जाता है। बडे बडे गड्ढे खोद दिए जाते हैं। उनमें से अमूल्य चीजें निकाली जाती है। इसलिए कवि कहते हैं -

"सोने, चाँदी, कोयले, हीरे के अंधे लालसाओं ने
धनसंपत्ति के दरिन्द्रों को सीने में वार करते देख रहा है।"[9]

सामाज्रयवादी शक्तियाँ जंगल की ओर जाने लगे। विकास के नाम पर पूरे जंगल को मिटाया जाता है। पृथ्वी के सतह पर औसतन तापमान बढ जाता है जिसे हम ग्लोबल वार्मिंग कहते हैं। यह धरती के साथ साथ मनुष्य के लिए भी अत्यंत हानिकारक है। यहाँ पर मानव निर्मित कारणों से पृथ्वी की स्थिति इतनी दयनीय बनती जा रही है।

"सिमेट के जंगल से बनते ग्लोबल वार्मिंग को देख रहा है।
धरती माँ के विनाश से भगवान को भी रोते देख रहा है।
भगवान को भी निस्सहाय घोषित कर देता है कवि।"[10]

वे आदिम काल से लेकर विस्थापन की त्रासदी को भुगत रहे हैं। जब आर्य अनार्य संघर्ष हुआ तब वे मैदानरूपी ज़मीन पर रह रहे थे। उन्हें वहाँ छोड़कर जंगल जाना पड़ा। आर्य अफगानिस्तान से भारत की तरफ आए थे। भारत में आज़ादी के बाद भी इस समाज का एक बडा वर्ग अपने विरुद्ध होने वाली हिंसा और अत्याचार से पीड़ित है। ये अनुसूचित जनजाति वे लोग ही है। भारत में इन जनजातियों को समाज के हाशिए पर रखा जाने का इतिहास बहुत पुराना है। सदियों से पद दलित अनुसूचित जाति एवं जनजाति के ये स्वदेशी लोग अपने दैनिक जीवन में न केवल गहन आर्थिक, राजनीतिक व शैक्षिक समस्याओं से पूरे ग्रस्तित हैं वरन् सामाजिक क्षेत्र में विकट परिस्थितियों को पर्याप्त संरक्षण से संबंधित विविध प्रावधान किए हुए हैं। लेकिन उन्हें उसका पूरा फायदा नही मिलता। कवि कहते हैं –

"आभासी विकास का पश्चम लहराकर
हो गए नेता कर्तबगार/गरीब भारत को हाशिए पर रख
कर रहे हो शाइनिंग इंडिया का स्वप्न साकार।"[11]

ग्रामीण जनता के प्रति संवेदना और सहानुभूति दिखाना भी मार्केटिंग का एक नया तरीका है। कवि व्यंग्य करते हुए कहते हैं-

"मार्केट का ज़माना है मर्ज/मार्केटिंग तो करनी ही होगी
ग्रामीण संवेदना और सहानुभूति ही दिला सकती है
इज्ज़त शोहरत पुरस्कार और मेडल।"[12]

संवेदना भी बिकाऊ बन गयी है। कवि इसके प्रति हमारा ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं। हमेशा इन लोगों को पाबंदियों में रहना पड़ा है – लक्ष्मण रेखा नामक कविता में कवि कहते हैं-

"कहा गया है हमें/पैर उतने ही पसारे
जितना तुम्हारा बिछौना/सिकुडकर पैरों के साथ
सिंकुड लिया है अपनी/सोच का दायरा
दायरे और कठघरे की /ज़िन्दगी में सीख लिया है जीना
गुज़र बसर करना/अपनी औकात जानकर
नहीं की पार कभी हमने कभी लक्ष्मणरेखा।"[13]

महानगर के जीवन में देखते है दिन ब दिन जीना बदत्तर होता जा रहा है। यहाँ पर सामंतवादियों को भेडिये नाम से पुकारते है कवि। वे कहते है महानगर में ऐसी क्रूर मानसिकतावाले लोग रहते हैं जो गली गली नुक्कड नुक्कड चौराई चौराई राह डगर महामार्ग सड़क पर दाँत किटकिटाते लार टपकते करते हैं आँखों से वार से शिकार बलात्कार। वे ऐसे लोग हैं जो पशुत्व और पाशविकता जैसे शब्दों को भी लज्जित कर देते हैं। वे जानवर से भी गये बीते वासना और हवंस के शिकारी। वे कितना भी अमानवीय बनने के लिए तैयार होते हैं। इसलिए कवि कहते हैं-

"जंगल का जीना भी होता है बेहतर/जो हैरान को भी इन्सानियत सिखाता है
पावज चरित्रर।"[14]

इतना सब होते हुए भी कवि आशावादी दृष्टिकोण अपनाते हैं। 'भारतवासी' नामक कविता में कवि पुरखों की संपदा झरने सौते माटी पानी पोखर तालाब मुक्त हवा खुला आकाश मिट्टी का सौंधापन पर्वत टीले की ऊँचाई सागर की गहराई सबकुछ लौटा देने की मांग करते हुए मनुष्य होने की पहचान देने की भी माँग करते हैं –

"हमे लौटा दो हमारे मनुष्य/होने की पहचान
न हम गिरिजन न ही हरिजन/न ही वनवासी न हम जंगली
ना असग्थ ना ही नररक्षक/हम है आदिवासी धरती माँ के रक्षक
नही हम हिन्दु नही हम मुस्लिम/नही रसाई ना ही आतंकी
न माओवादी, नाँ ही नक्सलवादी /हम हैं संवौधानिक – कानूनन
भारतवासी।"[15]

वे भी स्वानुभूति की भट्टी में तपकर आदिवासी अपनी त्रासदपूर्ण जीवन के आक्रोश को व्यापक जन आन्दोलन का रूप प्रदान करता है और सामाजिक समस्याओं पर सीधा प्रहार करती है।

*****

संदर्भ ग्रंथसूची:-

1. आदिवासी साहित्य दशा दीशा और चुनौतियां - महेन्द्रेक टोप्पो . अरावली उद्घोष अंक 75 मार्च 2007 पृ. 5 2
2. आदिवासी मोर्चा भगवान गव्हाडे- पृ.7
3. आदिवासी मोर्चा - भगवान गव्हाडे - पृ.10
4. वही पृ. 10
5. वही पृ. 74
6. वही पृ.11
7. वही पृ.11
8. पहाड, पृ.11
9. वही पृ.11
10. वही पृ. 11
11. वहीं पृ.37
12. वहीं पृ.29
13. वही पृ.31
14. वहीं पृ.83
15. वहीं पृ. 88

आदिवासी लोक नायक 'बिरसा मुंडा'

रुद्र चरण माझी
शोधार्थी ,हिन्दी विभाग
दक्षिण बिहार केन्द्रीय विश्वविद्यालय गया, बिहार
मो.9937218920,7008237031

प्रस्तावना -

भारत वर्ष के प्रथम स्वाधीनता संग्राम 1857 ई. को तो सभी लोग जानते हैं परन्तु उस से पहले भी बहुत सारे आन्दोलन ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध हुआ था जो इतिहास में कहीं नजर नहीं आता। ये तत्कालीन इतिहासकारों के चाटुकारिता है की इतिहास के पन्ने में इन शूर-वीरों के नामों-निशान तक नहीं है। अंग्रेज जब भारत में आए तो उनके सामने आदिवासी समूह की एक ऐसी गोष्ठी थी जो किसी के अधीन रहने के लिए साफ- साफ मना कर दिये और जो इनके अधीन रहने के लिए राजी हो गए उन्हें शूद्र कहा गया। सबसे पहले अंग्रेज जब भारत आए तो बहुत प्रकार के कानून बना कर आदिवासियों को जंगल से खदेड़ना शुरु किया ।आदिवासी प्रकृति के सच्चे साथी थे। प्रकृति उनके लिये सब कुछ था। उनको जंगल से बेदखल करना उन्हें पसंद नहीं आया तो उन्हें विकास के नाम से जल, जंगल, जमीन से विस्थापित करना शुरु कर दिये ।अंग्रेज सरकार के खिलाफ 1800 ई. से आदिवासियों ने अंग्रेज़ सरकार के खिलाफ विरोध करना शुरु कर दिये ।1800 ई. में "हुल क्रांति" या कोल /संताल विद्रोह इसका सबसे बड़ा उदाहरण था। 1855 ई. में सिद्धों-कानू दो भाइयों के द्वारा "हल-क्रांति" की आह्वान कर अंग्रेज सरकार खिलाफ विरोध किया गया। यह विद्रोह विदेशी अंग्रेज सरकार के खिलाफ इतनी तीव्र और सशक्त था की अंग्रेज सरकार की शासन व्यवस्था को हिलाकर रख दिया। इस विद्रोह में 20000 आदिवासी शहीद हुए। उस समय तांत्या मामा,बिरसा मुंडा, तिलका मांझी, जात्राविर ताना भगत ऐसे बहुत सारे आदिवासी नेता उभर कर आए जो अंग्रेजों के रातों की नींद हराम कर रख दिये।

बीज शब्द :-मुंडा हुल क्रांति, आदिवासियत, प्रकृति, आन्दोलोन, मिशनरी। बिरसा मुंडा झारखण्ड के रांची जिले के उलिहातू गांव में 15 नवम्बर 1875 ई. को एक मुंडा परिवार में जन्म लिये थे। सुगना मुंडा उनकी पिता और करमी उनकी माताजी थे । रांची की उलिहातू वह भूमि है जिसमें ऐसे महान सपूत जन्में जो अपनी माँ समान मातृभूमि की रक्षा करने हेतु खुद को बलिदान कर गये। तत्कालीन समय में बिरसा मुंडा एक ऐसे ज्वलंत प्रकाश शील उगता सूरज था जिसके भय से अंग्रेज टिक न सके और बिरसा मुंडा को हराने के लिए अपने कारिंदों,जमींदारों के माध्यम से अनेक प्रकार के चाल चलना चाहा परन्तु हर बार उन्हें हार का सामना करना पड़ा। बिरसा के अनुयायिओं को अपने तरफ करना चाहा और हज़ारों रुपये इनाम भी रखे। पर अंग्रेज इसमें सफल नहीं हो सके। बिरसा आदिवासी जनजाति के लिए एक महान नायक थे। उन्हें सभी भगवान की तरह पुजते थे। डॉ वासुदेव अपने पुस्तक " इस जंगल के लोग" में बिरसा मुंडा के बारे में लिखते हैं "1886-87 ई. के समय छोटा नागपुर में काफी उथल-पुथल का वर्ष था। किसान त्रस्त थे, जनता परेशान। रांची, तमाड़, खूटी, बन्द गांव और आस-पास के सरदारों पर जमींदारों का अत्याचार चरम सीमा पर पहुंचा हुआ था। लगान का बोझ बढ़ता जा रहा था। लगान न देने के कारण कृषकों की फसलें लूटी जा रही थीं, जमीनें हड़पी जा रही थीं। यहां तक कि जंगल के निवासी भी जंगल से दूर रहने के लिए मजबूर थे। पूरे इलाके में अकाल था, महामारी थी। चारों तरफ भुखमरी थी। खाने के लोले पड़े हुए थे फिर भी अंग्रेज अपने लगान वसूली में लगे थे उन्होंने लगान वसूली को अपना मौलिक कर्तव्य समझा सरदारों(सरदार उन्हें बोला जाता था जो आदिवासियों और जमींदारों के बीच मध्यस्थता के रूप में काम करते थे) फिर भी जमींदारों के जुल्म बढ़ते जा रहे थे। सरकार भी जमींदारों के ही साथ दे रहे थे। मजबूरन वे लोग बगावत पर आमादा थे। धीरे-धीरे उनका आक्रोश आन्दोलन का रुप ग्रहण करते जा रहा था। हुआ भी यही। सरदारों ने जमींदारों तथा सरकार के विरोध में आन्दोलन शुरु कर दिया। बिरसा मुंडा पर उन आन्दोलनों का काफी प्रभाव पड़ा।

सरकार के कठोर व्यवहार को उसने करीब से देखा था। उसे भी मिशनरी से चिढ़ होने लगी। बिरसा और उनकी साथी गांव - गांव जाकर लोगों की सेवा करते थे। दावा, पोथी करते थे, साफ सुथरा रहने का उपदेश देते रहे।तभी एक दिन, एक सभा में एक पादरी डॉ. नाट्रोन ने आदिवासियों को सम्बोधित करते हुए स्पष्ट शब्दों में कहा, **"ईसाई बने रहने तथा उनके निर्देशों का पालन करने पर उनकी जमीन वापस दे दी जाएगी।"**यह सुनकर पहली बार बिरसा मुंडा को फिरंगियों और ईसाई लोगों के प्रति मोह-भंग हुआ था, पहली बार बिरसा मुंडा को लगा की ईसाई लोग अपने धर्म के आधार पर में निरीह आदिवासी लोगों को ठग रहें हैं ।पहले बार बिरसा मुंडा को उनके रीति-नीति से घृणा हुई थी तथा उनके प्रति उसके अन्दर आक्रोश उभरा था। उसने डॉ. नाट्रोन का विरोध किया, मिशनरियों की आलोचना की , यहां तक कि उसने स्कूल छोड़ देने की घोषणा कर दी। गोरे लोग, ब्रिटिश मिशनरियों तथा पादरियों के प्रति उसकी धारणा बदल गई। उनके समझ में यह आ गया कि ईसाई लोग भी अंग्रेज लोगों के साथ मिलकर आदिवासियों के जमीन को हड़प रहे हैं। बिरसा स्पष्ट शब्दों में कहा, ...साहब-साहब एक टोपी है...। इस तरह बिरसा मुंडा ने पहली बार लोगों का ध्यान अपनी ओर खींचा। सरदारों ने भी बिरसा मुंडा की प्रतिरोध देख कर उसकी तारीफ की। सुगना मुण्डा ईसाई धर्म का परित्याग कर सनातन हिन्दू धर्म में लौट आया। बिरसा ने भी चाईबासा जर्मन मिशनरी से अपना नाम कटा लिया था। पढ़ाई छोड़ कर गांव वापस आ गया। फिर तो खुलकर फिरंगियों और जमींदारों के विरुद्ध आवाज उठाने लगा।1872 ई. पहले बार ब्रिटिश सरकार ने "फारेस्ट प्रोटेक्शन एक्ट लागू कर" आदिवासीयों को विस्थापन की समस्या से उलझ कर रखा है ।उन्हें अपने जल, जंगल, जमीन से खदेड़ा जा रहा है। बिरसा के "उलगुलान" से सहानुभूति रखने वाले विदेशी साम्राज्यवादी सरकार के शोषण के विरुद्ध और साम्राज्यवाद और सामन्तवाद **दीशुम आबूआ** द्वारा जंगल की मिल्कियत के छीन लिए गए परम्परागत आदिवासी अधिकारों की वापसी को लेकर 'जंगल के दावेदार' में अमूल्य बाबू अपने-आप से सवाल करता है-"मुंडा लोग क्या जंगल पर अधिकार पा सकेंगे? आदिम गाँव में उनके पैदा होने का अधिकार क्या कभी माना जायेगा। उनके जीवन से महाजन, बनिए, जोतदार, जमींदार, हाकिम, अमले-थाना, बगारी के पत्थरों का-सा भार कभी उतर जायेगा?" 1800 ई. के गुलाम भारत में उठाया गया यह सवाल 21वीं सदी के नवउदारवादी "आजाद इंडिया" में भी अपने जवाब की प्रतीक्षा में मुंह खोले खड़ा है। संथाल, हो, मुंडा और उरांव आदि आदिवासी अपनी मेहनत से खून पसीना इकट्ठा कर पथरीला, बंजर जमीन को खेती लायक तो बनाते है परन्तु उसमें उनकी हक़ नहीं रहता। उनके खेती के ऊपर दिकुओं ने कभी हक जमाने दिया नहीं। संभ्रांत वर्ग उनको हमेशा शोषण करना चाहा ।फणीश्वर नाथ रेणु अपने उपन्यास "मेला आंचल " में लिखते हैं "आज जमीन के मालिकों ने, जमीन के व्यवस्थापकों ने और धरती के न्याय ने धरती पर इनका किसी किस्म का हक जमने नहीं दिया है। जिस जमीन पर उनके झोपड़े हैं, वह भी उनकी नहीं। हल में जुता हुआ बैल दिन - भर खेत चास करता है,इसलिए बैलों को भी धरती का हकदार कबूल किया जाए? यह कैसा बात है "। बिरसा मुंडा ने कहा कि हम गरीब जरूर हैं,पर गरीबी के कारण अपना स्वाभिमान त्याग दें यह बिल्कुल गवारा नहीं और यही वजह है कि बिरसा मुंडा अंग्रेजों के आगे कभी झुके नहीं अपने पारम्परिक रीति रिवाजों,जल,जंगल ,जमीन के लिए अंतिम सांस तक लडते रहे और लोगों को जबरन ईसाई बनाने और युवतियों को दलालों द्वारा उठवा ले जाने वाले अंग्रेजों के प्रति बिरसा के मन में क्रोध की ज्वाला भड़क रही थी। यह तमाम कारण ऐसे थे जो बिरसा मुंडा को अंग्रेजों के खिलाफ आंदोलन करने पर मजबूर कर दिया बिरसा मुंडा एक दिलेर इंसान थे ,मिशनरी स्कूल में उसके एक दोस्त था अमूल्य जो गैर आदिवासी लड़का था। उसके साथ अच्छे दोस्ती देख बिरसा के आदिवासी दोस्त उन्होंने कहने लोगे "आप उन्हें क्यों मिलते हो,व दिकु का लड़का है। तो बिरसा उन्हें समझाते हुए बोले "पढ़ना सीखो ,लिखना सीखे मंडा, मंडा ही रह जाता है।

अमूल्य मेरा दोस्त है। में उसे नहीं छोड़ूँगा। उसके लिये अगर तुम मुझे छोड़ना है तो छोड़ दो।" बिरसा के यही गुण उनको एक सफल नेतृत्व प्रदान करने वाला लोक प्रतिनिधि के रूप में तैयार करता है।उस समय अंग्रेज सरकार ने जमींदारों के माध्यम से किसानों का शोषण करते थे। बिरसा मुंडा का बस एक ही नारा था "अंग्रेजी शासन खत्म करो और हमारा साम्राज्य स्थापित करो,यह मातृभूमि हमारी है और हम इसके अनुयायी हैं"। **"आबूआ राजा"** (अपने देश में हम राजा हैं) बिरसा मुंडा का ये कथन हमेशा अपने साथ रहा। सदा अपने जनजातियों के हक के लिए लडते रहे पर उन्हीं में से कुछ लोगों ने मिल कर अंग्रेजों का साथ दिया सिर्फ इसलिए की उन्हें कुछ पैसे मिल जाये। पैसे के लालच में आकर बिरसा को गिरफ्तार करवाया। बिरसा मुंडा की मृत्यु आज भी एक रहस्य बन कर रह गई। डॉ . बन्नाराम मीणा "आदिवासीनामा" में लिखते हैं उपनिवेश काल में आदिवासी समाज भी चाहता था की अंग्रेज सरकार देश छोड़ कर जाये और आदिवासियों को अपने तरीके से जीने दे। बिरसा मुंडा के आंदोलन के अन्य प्रमुख कारण में से एक कारण था खुंट-कुट्टी व्यवस्था की समाप्ति। अंग्रेज़ शासन आने के बाद सामूहिक भू-स्वामित्व वाले व्यवस्था को खत्म करके व्यक्तिगत भू- स्वामित्व वाली भूमि व्यवस्था की प्रणयन किये । इस से पहले आदिवासी समुदाय जंगल को साफ कर , उसे जलाकर खेती उपयोगी जमीन बनाते थे और उस जमीन में हक सभी का था किसी एक का वह जमीन नहीं था परन्तु अंग्रेज जब से भारत आने के बाद भूमि स्वामित्व व्यवस्था शुरु कर दिये।इसके साथ - साथ उन्होंने बैठी, बगारी व्यवस्था भी जबरन लागू किए।जिसमें आदिवासियों से काम तो लिया जाता था परन्तु उनको उसकी मजदूरी या पैसे नहीं दी जाती थी।इस प्रकार की शोषण बिरसा मुंडा की "उलगुलान" आंदोलन को हर जगह पर पहुंचाने के लिए मदद किया और धीरे- धीरे ये आंदोलन हर गांव में फ़ैल गयी।बिरसा मुंडा की "उलगुलान" आंदोलन का दूसरा कारण यह है कि 1894 ई. में "वन सुरक्षा कानून " इस कानून के तहत आदिवासियों को जंगल में जाने के लिए मना कर दिया गया। उनको हर अधिकार से वंचित किया गया।आदिवासी समुदाय जंगल के ऊपर पूर्ण रूप से निर्भर रहते हैं इस कानून के वजह से उनकी भूख से मरने जैसे हालात हो गई और बिरसा मुंडा उनका उद्धार करने वाले एक नेता के रूप में सामने आए और तमाम आदिवासियों के भगवान बन गये । बिरसा मुंडा लोगों को उपदेश देकर बोलते हैं मानव जीवन मात्र खाने और सुख भोगने के लिए नहीं है।अपितु जीवन का वास्तविक उद्देश्य यह है कि ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिए जिससे पवित्र विचार जन्म लेंगे। मनुष्य को भूत, प्रेत, अंधविश्वास, आदि में नहीं पड़ना चाहिए।झूठ नहीं बोलना चाहिए। जीव हत्या नहीं करनी चाहिए। बहू-बोंगा की पूजा नहीं करनी चाहिए। बीमारी होने से जादू टोना नहीं करना चाहिए। मिशनरी लोग हमारे शत्रु हैं हमारा धर्म परिवर्तन कर हमें अपने मातृभूमि तथा अपने बंधु-बांधव से दूर करते हैं। हमें आपस में प्रेम करना सीखना चाहिए जो हमारा शोषण करता है उसके विरुद्ध में एकजुट होकर आवाज उठानी चाहिए। यह जंगल हमारा है और इस पर हम जंगल वासियों का ही अधिकार है। आदिवासियों का ही अधिकार है। बिरसा मुंडा की इस तेजस्वी भाषण से चारों और " बिरसा मुंडा जिंदा वाद,सिंग बोंगा जिंदा वाद,धरती आबा जिंदा बाद के नारे से चारों ओर प्रकंपित होने लगा। सिंग बोंगा जिन्दा बाद के नारों से सम्पूर्ण वन-प्रान्त गूंज उठा। अस्त्र-शस्त्रों की तैयारी तो बिरसा मुण्डा के जेल जाने से पूर्व ही चल रही थी। फिरंगियों के विरूद्ध विद्रोह अब शुरू हो गए। सम्पूर्ण छोटानागपुर में विद्रोह की आग भड़क उठी। कई व्यक्तियों को चर्च जाते तीर लगे, मिशनरियों पर आक्रमण हुए, कई जगह उन्हें तोड़ दिया गया, उलीहातु के चर्च में तीरों की वर्षा हुई, रांची तथा सिंह-भूमि में भी कई गिरिजा-घरों में आग लगा दी गई तथा कई पादरी तीर से मारे गये, कोण्डा गोतु में जर्मन मिशन चर्च को जला दिया गया, पुलिस को मारा-पीटा गया, पुलिस स्टेशनों में आग लगा दी गई। जो मुंडा ईसाई हो गए थे, उन लोगों ने भी विद्रोहियों का साथ देना शुरू कर दिया। ब्रिटिश हुकूमत की गद्दी डोल उठी। धीरे-धीरे लड़ाई का केन्द्र खूंटी थाना हो गया जहां हजारों मुंडा अस्त्र-शस्त्रों के साथ इकट्ठा हुए। बिरसा के साथ मिलकर उन लोगों ने थाने को जला दिया, दरोगा को तीर मारे,कई सिपाहियों को मौत के घाट उतार दिये। यह बात रांची तक जा पहुँची। रांची से सेना गई। हजारों की संख्या में विद्रोही मुण्डा बिरसा मुण्डा के नेतृत्व में खूंटी से भाग कर फिर से डुम्बारी में सेल "रकाब" की पहाड़ी पर जा डटे। किन्तु सेना वहाँ भी जा पहुँची और चारों तरफ से पहाड़ी को घेर लिया। किन्तु स्वतंत्रता के भूखे रण-बाकुरें विद्रोही देशवासी भला कब डरने वाले थे। सेना पर पत्थर बरसे, तीर चले, भाले गिरे, आग की चिनगारियां लपकीं। सेना ने भी गोलियां चलाई। सैकड़ों वीर खेत आए, हजारों घायल हुए, किन्तु बिरसा मुंडा पकड़ में नहीं आया।इसके बाद फिरंगी सरकार ने बिरसा मुंडा के खिलाफ राजद्रोह का आरोप लगा कर जायदाद जब्त कर लिए।

उसकी गिरफ्तारी के लिए 500 रुपया का इनाम रखा गया। और सरकारी आदेश भी दिया गया बिरसा को कोई पनाह ना दे इसके लिये एलान किया गया और इसके बाद फिरंगियों ने एक चाल और चली।बिरसा मुंडा के ही अनुयायियों में से कुछ लोगों को पैसों का लालच दे कर बिरसा को गिरफ्तार करवाना चाहा और उसमें कायम भी हो गए, और 9 जुलाई 1900 ई. में उनकी मृत्यु हो गयी। कहा जाता है कि उनको विष पिला कर मारा गया। परन्तु बिरसा मुंडा की मृत्यु आज भी रहस्य बन के रह गई।इसीलिए तो प्रसिद्ध दिवंगत लेखिका महाश्वेता देवी 'जंगल के दावेदार' उपन्यास के उपसंहार में लिखा है "हम जिस तरह चिरकाल से हैं, संग्राम-बिरसा का संघर्ष भी वैसा है। धरती पर कुछ समाप्त नहीं होता मुण्डारी देश, धरती, पत्थर, पहाड़, वन, नया ऋतु के बाद ऋतु – का आगमन - संदर्भ भी समाप्त नहीं होता, इसका अंत हो ही नहीं सकता। पराजय से संघर्ष का अंत नहीं होता। वह बना रह जता है, क्योंकि मानुस रह जता है, हम रह जाते है।" बिरसा मुंडा के बाद उसका तमाम साथियों को भी एक के बाद एक फांसी पर चढ़ाया दिया जाता है परन्तु उनके अनुयायियों में कभी निराश दिखाई नहीं दिया।बिरसा के एक साथी डोंका को फांसी हो जाने के बाद जब अमूल्य बाबू यह दुखद खबर उसकी पत्नी साली को खबर देती है और कहता है "डोंका अभी नहीं रहा ,अब तुम्हारे कैसे चलेगी ? तो साली मुसकुराकर बोली "क्यों ? तकलीफ होगी । भगवन शिखा गए हैं की "उलगुलान" का कभी अंत नहीं होती। भगवन का मरण नहीं हुआ। मुंडा के जीवन में कष्ट का अंत होना ही तो भगवन का मरण है। "उलगुलान" का अंत मानना होगा ? बताओ ?" बिरसा मुंडा भले ही आज हमारे बीच नहीं रहे पर लोग आज भी उनकी वीरता की गाथा करते नहीं थकते । "ऐसा वीर सपूत जिसने झुकना कभी ना सीखा ,कांप उठते थे फिरंगी उनके तेज से,जाते- जाते वे स्वाभिमान की गाँथा कहते गए।आज भी विभिन्न प्रकार के आदिवासी गीत में बिरसा मुंडा का आह्वान किया जाता है।

"आरे बिरसा आ
पूरब से आ तू,पश्चिम से आ
उत्तर से आ तू, दक्षिण से आ
घनघोर घटाओ को चीर ,तीर की तरह आ
आसमान में बिजली बनकर आ
पथरीली धरती को चीर तीर की तरह आ
आ रे बिरसा आ।"

निष्कर्ष : -

इस प्रकार बिरसा मुंडा आदिवासी समुदाय में एक अलग एक स्वतंत्र सेनानी रूप में उसके साथ - साथ एक लोक नायक के रूप में उभर कर आए लोगों के बिच आदिवासियत, आदिवासी धर्म की एक अलग पहचान दिलाये । समग्र आदिवासी समाज को सामाजिक , राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक रुप से ऊँचे स्तर तक पहुंचाए।सिर्फ 25 वर्ष के उम्र में उतना कुछ कर गए जिसके बदौलत आज प्रत्येक आदिवासियों के घर – घर में बिरसा मुंडा को भगवन की तरह पूजा किया जाता है। बिरसा मुंडा अपने सीमित जीवन काल में सिर्फ आदिवासियों के लिये नहीं देश को अंग्रेजों के शासन से मुक्त करने हेतु जितना भी कार्य किये वह स्वर्ण अक्षर में लिखा जायेगा।

*****

सन्दर्भ ग्रंथ :-

1. सिंह,राकेश कुमार ,हूल पहाड़िया ,सामयिक बुक्स ,नई दिल्ली ,प्रथम संस्करण ,पृष्ठ-48
2. डॉ.वासुदेव,इस जंगल के लोग,विकल्प प्रकाशन ,नई दिल्ली ,प्रथम संस्करण , पृष्ठ-21
3. देवी,महाश्वेता,जंगल के दावेदार ,रधाकृष्ण पेपर बैक,नई दिल्ली ,दूसरी संस्करण ,पृष्ठ-36
4. देवी,महाश्वेता,जंगल के दावेदार ,रधाकृष्ण पेपर बैक,नई दिल्ली ,दूसरी संस्करण ,पृष्ठ-74।
5. कालजयी किशन ,आदिवासी अस्मिता प्रभुत्व और प्रतिरोध ,अनन्य प्रकाशन,नई दिल्ली , प्रथम संस्करण ,2015 ,पृष्ठ-48
6. रेणु,फनीश्वर नाथ ,मैला आँचल ,राजकमल प्रकाशन ,नई दिल्ली ,दूसरी संस्करण ,पृष्ठ -125
7. देवी,महाश्वेता,जंगल के दावेदार ,राधाकृष्ण पेपर बैक,नई दिल्ली ,दूसरी संस्करण ,,पृष्ठ-72
8. डॉ.मीणा,बन्नाराम,आदिवासीनामा साहित्य संचय ,नई दिल्ली ,प्रथम संस्करण , ,पृष्ठ-55
9. देवी, महाश्वेता,जंगल के दावेदार ,राधाकृष्ण पेपर बैक,नई दिल्ली ,दूसरी संस्करण ,पृष्ठ-84
10. देवी,महाश्वेता,जंगल के दावेदार ,राधाकृष्ण पेपर बैक,नई दिल्ली ,दूसरी संस्करण ,पृष्ठ-100
11. देवी,महाश्वेता,जंगल के दावेदार ,राधाकृष्ण पेपर बैक,नई दिल्ली ,दूसरी संस्करण ,,पृष्ठ-280
12. देवी,महाश्वेता,जंगल के दावेदार ,राधाकृष्ण पेपर बैक,नई दिल्ली ,दूसरी संस्करण पृष्ठ-279

आदिवासी महिला रचनाकरों के लेखन में जल,जंगल,जमीन का संघर्ष

- ज्ञान्ति
हिन्दी विभाग
दक्षिण बिहार केन्द्रीय विश्व विद्यालय-गया

आदिवासी समुदाय हमारे देश के सर्व पुरातन समुदाय में से एक है। आदिवासी आदिम काल से ही जल,जंगल,जमीन से जुड़े हुए हैं। हिंदी साहित्य में अदिवासियों के ऊपर बहुत ज्यादा लेखन कार्य तो नहीं हुआ परंतु कुछ प्रमुख गैर अदिवासी साहित्यकार जैसे- रणेंद्र, महास्वेता देवी ,रमणिका गुप्ता आदि साहित्यकारों ने सही मायने में आदिवासियत को पहचाना और आदिवासीयों के ऊपर उनकि दर्शन,समाज,भाषा,जीवन शैली के ऊपर लिखे हैं। आदिवासी समाज वर्तमान के समय के साथ-साथ अपने लेखनी को भी आगे बढ़ाया और वर्तमान के समय में आदिवासी लेखक तथा लेखिकाओं जैसे - हरिराम मीणा, गंगा सहाय मीणा, केदरनाथ मीणा, बन्ना राम मीणा, अनुज लुगुन,महादेब टोप्पो, ग्रेस कुजुर, वाहरु सोनवणे,रामदयाल मुंडा, चानू शर्मिला,वंदना टेटे, निर्मला पुतुल,कविता बड़ाईक,रोज केरकेट्टा, जैसे प्रमुख साहित्यकारों ने मुखर रूप से अदिवासियत के ऊपर बहुत सारी लेखन कार्य किये। वर्तमान समय में आदिवासीयों के ऊपर हो रहे अकथ अत्याचार को अपने कविता,कथा साहित्य ,उपन्यास के माध्यम से समाज के समाने लाये। आदिवासियों के जल,जमीन,जंगल के ऊपर हो रहे अत्याचार, विस्थापन को अपने साहित्य में जगह दीये।आदिवासी साहित्यकारों में महिला साहित्यकार, कवि, आलोचोकों ने मूल रूप से भूमि समस्या तथा जल,जमीन, जंगल के ऊपर अपने लेखनी के माध्यम से समाज को सही दिशा देने के लिए कार्य कर रहें हैं। आदिवासी महिला रचनाकारों में निर्मला पुतुल की कविता प्रमुख स्थान रखती है।उनकी कविता में आदिवासियत की स्वर सुनाई देती है। यद्यपि निर्मला पुतुल की कविता में नारी मुक्ति की स्वर और अभिव्यक्ति प्रखर रूप से देखने को मिलता है परन्तु जल जमीन, जंगल की अधिकार को भी अपने लेखनी में समाज को एक नई राह दिखाने में प्रयास करते हैं।निर्मला पुतुल की कविता में समाज के प्रत्येक वर्ग के लोगों को आह्वान करती है।उनकी कविता संग्रह "नगड़े के तरह बजते शब्द" में "बिटिया मुर्मू के लिए" कविता में लिखती है-

"उठो कि अपने अँधेरे के ख़िलाफ़ उठो
उठो अपने पीछे चल रही साज़िश के ख़िलाफ़
उठो, कि तुम जहाँ हो वहाँ से उठो
जैसे तूफ़ान से बवण्डर उठता है/उठती है जैसी राख में दबी चिनगारी
देखो ! अपनी बस्ती के सीमान्त पर/जहाँ धराशाई हो रहे हैं पेड़
कुल्हाड़ियों के सामने असहाय
रोज़ नंगी होती बस्तियाँ/एक रोज़ माँगेगी तुमसे
तुम्हारी ख़ामोशी का जवाब/सोचो-
तुम्हारे पसीने से पुष्ट हुए दाने एक दिन लौटते हैं
तुम्हारा मुँह चिढ़ाते तुम्हारी ही बस्ती की दुकानों पर
कैसा लगता है तुम्हें जब
तुम्हारी ही चीजें तुम्हारे पहुंच से दूर होते दिखती है"। (1)

निर्मला पुतुल की इस कविता में वर्तमान समय में आदिवासियों की त्रासदी दिखाया है। विस्थापन को दर्शाया है। जंगल काट कर उन्हें विस्थापित कर उनके वन उपज वस्तु से दूर कर वही समान विश्व बजारीकरण के तहत हमारे समान ही हमे बेचा जा रहा है और हम चुपचाप उसे खरीद रहे हैं। उदहारण के तौर पर "गेहूं" एक ऐसे फसल है यह लग-भग भारत वर्ष में सभी जगह खेती किया जाता है और हमसे 20 रुपए किलो खरीद कर उसी से मेगी बनाकर 400 रुपया किलो से बिक्री होती है। निर्मला पुतुल की ये कविता वर्तमान की प्रासंगिकता को दर्शाता है। डॉ बन्ना राम मीना अपने "आदिवासीनामा" पुस्तक में लिखते हैं "भारत के विकास के नाम पर आदिवासियों को अपनी भूमि और जंगल से ही बेदखल नहीं किया अपितु नैतिक मानदंडों को ताक पर रखकर उन्हें उनसे बेदखल कर दिया गया। देश में आदिवासियों की मुख्य समस्या विस्थापन की रही है। माफियाओं की कुल्हाड़ी से जंगल ही नहीं करते बल्कि उन जंगल के माध्यम से जीवन यापन करने वाले आदिवासी जनता का गला भी कटता है। जल, जंगल और जमीन की लड़ाई के पीछे विकास की राजनीति है उस पर निर्मला पुतुल तीखी वार करती है। आदिवासी समाज पर आधुनिक विकास के पढ़ रहे प्रभाव के चिंता ही निर्मला पुतुल के यहां नहीं बल्कि ऐसे विकास के खिलाफ असहमति भरा स्वर भी है। निर्मला पुतुल की एक कविता है "तुम्हारी एहसान लेने से पहले सोचना पड़ेगा हमें" निर्मला पुतुल इस कविता के विकास के आधुनिक पैरामीटर को नकारती हुई कहती हैं

" अगर हमारे विकास का मतलब
हमारी बस्तियों को उजड़ कर कारखाने बनाना है तालाबों को भरकर राजमार्ग
जंगलों का सफाया कर ऑफिसर्स कॉलोनी बनानी है और पुनर्वास के नाम पर हमें
हमारे शहर के सीमा से बाहर हाशिए पर धकेलना है
तो तुम्हारी तथाकथित विकास की मुख्यधारा में
शामिल होने के लिए/सौ बार सोचना पड़ेगा हमें।"(2)

निर्मला पुतुल लगातार स्त्री को बंधनों से आजाद करने के जिद् करती है। जिस प्रकार रघुवीर सहाय स्त्री शोषणा और दासता के संदर्भ में मिथक, पुराण, और परंपरा को अस्वीकार करते हैं ठीक उसी तरह से स्त्री को धार्मिक सामाजिक बंधनों की कैद से बाहर निकलने के बात निर्मला जी बराबर करती है। वह स्त्री को खुले आसमान में सांस लेने के लिए वकालत करती है। निर्मला पुतुल की कविताएं सवाल पूछती है और प्रश्न उपस्थित कराते हुए आगे बढ़ती है। निर्मला पुतुल की कविताएं को झारखंड के इतिहास और उसके जन - जीवन से अलग करके नहीं समझ सकते। क्योंकि उनके कविताओं में उसका इतिहास नगाड़े की चोट पर बोलता है। निर्मला पुतुल की कविताओं की जमीन स्वानुभूति कि उनकी अपनी जमीन है ।आदिवासियों की हक की जमीन है। पुतुल की लड़ाई तथाकथित सभ्य समाज के विरुद्ध ही नहीं बल्कि अपने समुदाय में पनप रहे महा ढोंगियों के विरुद्ध भी है। उनकी कविता में आदिवासियों पर हो रहे शोषण और अत्याचार के खिलाफ तीखा प्रतिरोध का स्वर सुनाई पड़ता है निर्मला पुतुल की कविता "अपने घर के तलाश में" कविता संकलन में"तुम कहां हो माया" शीर्षक में लिखते हैं-

"दिल्ली के किस कोने में हो तुम?
मयूर विहार,/पंजाबी बाग या शाहदरा में?
कनॉट प्लेस की किसी दुकान में सेल्स गर्ल हो या किसी
हर्बल कंपनी में पैंकर?/कहां हो तुम माया?
कहां हो?।"(3)

निर्मला पुतुल आदिवासी स्त्री को आगाह करते हुए लिखती है -

"वह दबे पांव आते हैं तुम्हारी संस्कृति में
वह तुम्हारे नृत्य की बडाई करते हैं
वह तुम्हारी आंखों की प्रशंसा में कसीदे पढ़ते हैं
वे कौन है ?/सौदागर हैं वे ..... समझो !
पहचानों उन्हें बेटिया मुर्मू.....पहचानों !
पहाड़ों पर आग वही लगाते हैं
उन्हीं की दुकान पर तुम्हारे बच्चे का
बचपन चित्तकौरता है/उन्हीं के गाड़ियों पर
तुम्हारी लड़कियां सब्जबाग देखने
कोलकाता और नेपाल के बाजारों में उतरती है"(4)

इस प्रकार निर्मला पुतुल की कविता में सामाजिकता ,सहजता दिखता है। आदिवासी समाज को सही मार्ग दिखाने के लिये उनकी लेखनी सर्वदा तत्पर रहा। आदिवासी साहित्यकारों में वंदना टेटे का नाम महत्वपूर्ण हैं। वंदना टेटे वर्तमान के आदिवासी समाज के लिए युगांतरकारी रचनाकार हैं जिनके रचना में आदिवासी समाज की पीड़ा ,दर्द उनके ऊपर हो रहे अत्याचार को मार्मिक वर्णन अपने साहित्य के माध्यम से किए हैं। उनकी साहित्यिक कार्य के लिए उन्हें शैलप्रिया स्मृति सम्मान, झारखंड सरकार राज्य सम्मान 2012,भारत सरकार द्वारा 2013 में फेलोशिप आदि महत्वपूर्ण और प्रतिष्ठित सम्मान से सम्मानित किया गया है। समाज में हो रहे विकास और आधुनिकीकरण को संदेह के दृष्टि से देखते हैं। उन्होंने निर्मला पुतुल द्वारा रचित कविता "तुम्हारे एहसान लेने से पहले सोचना पड़ेगा हमे" को भी समर्थन करते हुए वंदना टेटे लिखते हैं :-

"तुम्हारे विकास का गणित/मेरे समझ में नहीं आता
मेरी आंखें वर्तमान के अंधेरे/में कुछ ढूंढती रह जाती हैं
और मेरे पांव टिकने की जगह ढूंढते हैं"।(5)

उनके नजर से आदिवासियों को विस्थापित करके बिकास नहीं किया जा सकता।आधुनिकीकरण से हो रहे बदलाव जैसे - पेड़ो को काट कर रास्ता तैयार करना, कल-कारखानों से निर्गत , दूषित पानी नदी में मिलने से स्वच्छ पानी भी प्रदूषित हो जाती है जो आदिवासियों के जीवन को बहुत ज्यादा प्रभावित करता है। इसपर वन्दना टेटे अपने पुस्तक " कोन जोगा" में ' हम भी जा रहे हैं ' कविता में लिखती हैं कि -

"जैसे सुख गई दामोदर सुवर्णरेखा
जैसे आसमान में मिल गई सुगंधित हवाएं
जैसे चूर-चूर हो गए मजबूत पहाड़
जैसे छटते-कटते चले गए जंगल/हम भी जा रहे/हम जा रहे हैं
जैसे चले गए भालू, हाथी और बाघ
जैसे चली गई घरों में फुदकती गौरैया/जैसे गायब हो गए मेढक
जैसे खो गई सब की सब तितलियां।"(6)

आदिवासी समाज चींटी से लेकर हाथी तक, मनुष्य, पेड़ - पौधा पहाड़, जानवर सबको एक समान देखते है । प्रकृति को अपने पुरखा मानते है । आदिवसी समाज के लिए वन, पहाड़, जंगल आदि हजारो वर्षो से आश्रयस्थल रहे हैं। वन्दना टेटे दुखी होकर कहती है कि पेड़, पहाड़, जंगल, खत्म होने लगे हैं, नदियां भी सुख गई तो हमलोग यहाँ रह कर क्या करेंगे। इतना ही नही आगे "कोन जोगा" पुस्तक में लिखती हैं कि

"पुरखा कथाओं में दर्ज/कोनजोगा टूट रहा है
पुरखा कथाओं में दर्ज/जतरा के ढोल की आवाज
दफन हो रही है।/छेनी और हथौड़ी की आवाज में
पाना, मारतुल और घन/ठोक रहे हैं
सीने पर कोनजोगा के/सरकारी नुमाइंदे
ठेकेदार और मुंसी।/हम चुप है/हम नही लड़ रहे
अपने लिए।/हम क्यो चुप है?
हम क्यो नही लड़ रहे? "।(7)

आदिवासी समाज अपने ऊपर हो रहे अत्याचार के प्रति विरोध इसलिए नही करता कि वे शान्ति चाहते हैं। वे मालिक होने की दावा कभी नही करता। सरकार तथा पूजीपतियों ने गिद्ध की तरह नजर गड़ाये हैं कि प्रकृति संसाधनों का फटाफट और अन्धाधुंन दोहन कर लिया जाय। आदिवासी लेखको के साथ महिलाएं भी अपनी लेखनी के माध्यम से शांति बनाये हुए अपने ऊपर हो रहे अत्याचार को रचनाओं में पिरो कर आवाज उठा रहीं हैंवंदना टेटे की एक ऑर कविता "पहाड़ की ज़िंदगी " में विस्थापन की समस्या को देखा जा सकता है |सर्पीले सड़कें यहां/खींच लाई है तुम्हें
तुम क्या/तुम्हारे देवों को भी
घर हमारा अच्छा लगा तभी तो
किसी बहुरुपीये की तरह
रिफ्यूजी की तरह/घुसपैठियों की तरह
घुसे चले आए तुम/कभी शांति की खोज में
तो कभी पनाह मांगते, डराते
और कभी प्रेम के चलावे से
घुस आए तुम/हमारी पहाड़ों में
घरों में और डाल लिया डेरा- घेरा
कर दिया हमें ही बेदखल"|(8)

अदिवासोयों की जल,जंगल,जमीन से विस्थापन केवल कविता में ही नहीं वंदना टेटे द्वारा संपादित पत्रिका "अखड़ा" में भी देखने को मिलती है। 'सलामी इक्का' लिखते हैं "झारखंड आंदोलन कर बुइधगर अगुआ, इतिहासकार और साहितकार डॉ. वीपी केशरी अंगरेजी राज से लेइ के आजाद भारत तक स्थिति पर बेस लिख है - 'बिहार के राजस्व का 75 प्रतिशत छोटानागपुर (झारखंड) देता है, जबकि यहाँ के विकास के लिए 18 प्रतिशत का दिखावा नियोजन मिलता है योजनाओं में। नौकरी, व्यवसाय, प्रशासन, नेतृत्व सभी क्षेत्रों में आदिवासी और सदान एक जैसे निर्वासित हैं।बाहर वालों का बोलबाला है। यहाँ के लोग इस उपनिवेशवादी शोषण को समझने लगे हैं और एकजुट होकर इसका प्रतिवाद करने लगे हैं। आत्मसाक्षात्कार की यह अनुभूति नागपुरी काव्य में-

"आब नागपुर चुप नइ रहीं, आब नागपुर बोली,
ढेइर दिन सुतल रहे, आब तो नजइर खोली।"(9)

आदिवासियों की समस्या का प्रतिरोध की स्वर इस पत्रिका के माध्यम से सुन ने को मिलता है। युवा रचनाकर 'जसिंता केरकेट्टा' आदिवासी कविता के क्षेत्र में इन दिनों काफी सक्रिय हैं। ये स्त्री-पुरूष सम्बंध और बाहरी समाज के आदिवासी के रिश्तों पर खुल कर बात करतीं हैं। ये नई पीढ़ी की रचनाकार हैं, लेकिन जंगल-पहाड़ से लेकर आदिवासीयत तक की कथानक उनके लेखन में देखने को मिलता हैं। अपनी कविता शीर्षक "अंगारे " में पहाड़ में बसे लोगों की प्रतिरोध का प्रतीक बनते हुए लिखती हैं-

"पीढ़ियों का भविष्य/पहाड़ो की तलहटी में
बेच रहा था बॉस।/तब छूटते ही मशीन के पंजो से
मैने उठा लिया बॉस।/इस बार ये बॉस बाजार नही जाएंगे
जंगलों के अंदर वे/बनेंगे हर हाथ का तीर धनुष।"(10)

जसिंता केरकेट्टा महान कवीयत्री हैं । सुस्पष्ट दृष्टि संपन्न कवि हैं । आदिवासी समाज और उनके दःख दर्द की व्यापक समझ और चेतना के परस्पर ही वे राष्ट्रीय सामाजिक , आर्थिक , वैश्विक चेतना से भी लैस हैं । समकालीन कवियों की जमात में उनकी उपस्थिति इन अर्थों में ध्यान आकृष्ट कराता है कि वे सतत राजनीति के छद्म चरित्र को अधिक से अधिक केन्द्रीय बनाए हुए हैं। साथी पेशे से पत्रकार हैं। आदिवासी इलाकों में संघर्षरत लोगों के साथ निरंतर उनकी आवाज बने हुए हैं। अतः उनकी कविताओं में उनके बुनियादी सवाल व संवेदना के समानांतर उनका दर्द भी अधिलिखित रुप में उपस्थित है:-

गाँव में वो दिन था, एतवार।/मैं नन्ही पीढ़ी का हाथ थाम
निकल गई बाज़ार।/सूखे दरख़्तों के बीच देख
एक पतली पगडंडी/मैंने नन्ही पीढ़ी से कहा,
देखो, यही थी कभी गाँव की नदी।/आगे देख ज़मीन पर बड़ी-सी दरार
मैंने कहा, इसी में समा गए सारे पहाड़।/
अचानक वह सहम के लिपट गई मुझसे
सामने दूर तक फैला था भयावह क़ब्रिस्तान।
मैंने कहा, देख रही हो इसे?
यहीं थे कभी तुम्हारे पूर्वजों के खलिहान।
नन्ही पीढ़ी दौड़ी : हम आ गए बाज़ार!
क्या-क्या लेना है? पूछने लगा दुकानदार।
भैया! थोड़ी बारिश, थोड़ी गीली मिट्टी,
एक बोतल नदी, वो डिब्बाबंद पहाड़
उधर दीवार पर टँगी एक प्रकृति भी दे दो,
और ये बारिश इतनी महँगी क्यों?(11)

प्रकृति और आदिवासी के बीच जन्म –जन्मांतर से गहरा और आत्मीय सम्बन्ध हैं। प्रकृति आदिवासियों की सहचरी रही हैं । प्रकृति को वे पुरखा मानते हैं, प्रकृति उनके सुख-दुख का साथी रही है । आज उसी जल, जंगल, जमीन से उन्हें बेदखल किया जा है, जबरन छीनी जा रही है । इस पर 'ग्रेस कुजुर' कहती है कि-

"इसलिए फिर कहती हूँ न छोड़ा प्रकृति को
अन्यथा यही प्रकृति एक दिन मांगेगी
हमसे तुमसे अपनी तरुणाई का
एक-एक क्षण और करेगी भयंकर बगावत
ओर तब न तुम होंगे न हम होंगे।" (12)

प्रकृति का विनाश कर के हम विकास की कल्पना नही कर सकते हैं लेकिन आज के समय मे एक भ्रामक धारणा बनी हुई है कि किसी न किसी को तो वलिदान देना ही होगा। नदियां सूखती जा रहीं है, पेड़-पौधे काट कर बड़ी- बड़ी इमारतें बन रहीं हैं, पहाड़ो को तोड़ कर समतल बनाया जा रहा है और उपजाऊ भूमि बंजर बनती जा रही है। प्रकृति के जो सौंदर्य और मनोरम दृश्य वे खत्म होते जा रहे हैं। ग्रेस कुजुर ने "हे समय के पहरेदारो" शीर्षक कविता में बढ़ते दोहन को देख कर चिन्ता व्यक्त कर रही है तथा सजग भी कर रहीं हैं-

"आज तुम, अपने स्वार्थ के लिए
पर्वतों के पत्थर, तोड़ रहे हो
बारूदी गन्ध से, जीवन को मरोड़ रहे हो।
क्या कभी नदियां, लौटकर पूछेंगी
अपने खण्डहर होते, पर्वतों से की
कहाँ गया उनका उद्गमन?/कहाँ गया उनका वैभव?
तब पर्वत रोयेगा, सुख जाएगी उनकी धाराएं।"(13)

ग्रेस कुजूर की कविता सिर्फ वर्तमान की स्थिति को ही बयान नहीं करती उनकी कविता में आदिवासी समाज के लिये एक आह्वान भी है। प्रतीक्षा कविता में उनकी हुंकार साफ देखाई दे रहा है -

"थर्मल पावर के दुधिया प्रकाश
और/जादूगोड़ा के जादुई चिराग तले

करंज तेल की ढिबरी लिए/मन के किस अंधेरे में
भटक रहे हो संगी?/जल, जंगल, जमीन के बिना
साल-वन के जीवन का व्याकरण
किन पंडितों के हाथों/तुमने गिरवी रखी है संगी?
कोटरों से निकल अपने/साल वन के सुग्गे भी
पूछ रहे हैं/अपने होने का पता/तुम्हारे उत्तर की प्रतीक्षा में।
संगी/अब भी खड़ी हूं मैं
चट्टान में खड़े,/इकलौते साल-वृक्ष की तरह
जो चुपचाप सींच लेता है/अपने हिस्से का पानी"](14)

आदिवासी लेखक कलम के माध्यम से अपने समाज मेंचेतना लेन के लिए दृढ़ प्रतिबद्ध है। इस कविता में आदिवासियों की संस्कृति, जीवन, समस्या, जिजीविषा, शोषण और व्यवहार की सटीक अभिव्यक्ति हुई हैं-

"वे लुटने-लुटाने आ गए, हम गए परदेश
धरती उजड़ी जंगल उजड़े, रह गयां क्या शेष?झाड़ियां हो गई कमान सब बिरवे वीर
देखना बाकी है कलम को तीर होने दो
कोयले की घुम में सोए है पाव, कंधो पर अपने ही?
ढोये हैं गाँव, देह हो गई कमान सब आहै तीर
देखना बाकी है कलम को तीर होने दो।"(15)

इस प्रकार हम देखते हैं आदिवासी महिला रचनाकारों ने अपने महत्वपूर्ण लेखनी के माध्यम से आदिवासियों के मूल समस्या जो जल,जंगल,जमीन से जुड़ा हुआ है उस समस्या को उजागर कियााउन महान साहित्यकारों में रोज केरकेटा,वंदना टेटे,निर्मला पुतुल , सावित्री बड़ाइक, स्नेहलता नेगी, जसिंता केरकेट्टा,ग्रेस कुजूर और भी बहुत सारे साहित्यकार हैं जिन्होंने आदिवासीयत को आधुनिक समाज में उपस्थापित किया और अपने लेखनी के बलबूते आदिवासी समाज को एक नई पहचान दिलाई।

****

संदर्भ सूची:-

1. पुतुल ,निर्मला ,नगाड़े के तरह बजते शब्द ,भारतीय ज्ञानपीठ ,प्रथम संस्करण ,2005,पृष्ठ 14
2. मीना, डॉ बन्ना राम , आदिवासीनामा,साहित्य संचय,नई दिल्ली,प्रथम संस्करण,2018, पृष्ठ 97
3. शर्मा, डॉ सुरेन्द्र ,हिन्दी साहित्य में विबिध विमर्श,मनीष पब्लिकैशन ,नई दिल्ली,प्रथम संस्करण ,2021,पृष्ठ -249
4. मीणा,गंगा सहाय, आदिवासी चिंतन की भूमिका ,अनन्य प्रकाशन, नई दिल्ली,प्रथम संस्करण 2017, पृष्ठ,54
5. मीणा,गंगा सहाय, आदिवासी चिंतन की भूमिका ,अनन्य प्रकाशन, नई दिल्ली,प्रथम संस्करण 2017, पृष्ठ,61
6. टेटे ,वंदना ,कोन जोगा ,प्यारा केरकेटा फाउंडेशन ,रांची , प्रथम संस्करण 2015 , पृष्ठ,95
7. टेटे ,वंदना ,कोन जोगा ,प्यारा केरकेटा फाउंडेशन ,रांची , प्रथम संस्करण 2015 , पृष्ठ,93
8. टेटे ,वंदना ,कोन जोगा ,प्यारा केरकेटा फाउंडेशन ,रांची , प्रथम संस्करण 2015 , पृष्ठ,77
9. टेटे ,वंदना ,अखड़ा ,प्यारा केरकेटा फाउंडेशन ,रांची ,वर्ष -7 2013 , पृष्ठ,40
10. मीणा,गंगा सहाय, आदिवासी चिंतन की भूमिका ,अनन्य प्रकाशन, नई दिल्ली,प्रथम संस्करण 2017, पृष्ठ,64
11. केरकेटा ,जसिन्टा ,नदी ,पहाड़ ,ऑर बाजार ,हिंदवी ,पृष्ठ 04
12. मीना, डॉ बन्ना राम , आदिवासीनामा,साहित्य संचय,नई दिल्ली,प्रथम संस्करण,2018, पृष्ठ 99
13. मीणा ,हरिराम ,आदिवासी समकालीन कविता ,अलख प्रकाशन ,जयपुर ,प्रथम संस्करण ,2013,पृष्ठ -46
14. टेटे ,वंदना ,काविमन जनी मन ,राधाकृष्ण प्रकाशन ,नई दिल्ली , प्रथम संस्करण 2019 , पृष्ठ,177
15. गुप्ता ,रामणिका ,आदिवासी स्वर और नई सताब्दी ,कल्याणी शिक्षा परिषद ,नई दिल्ली,प्रथम संस्करण 2017 ,पृष्ठ -67

समकालीन हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी स्त्री: एक अवलोकन

दिम्पी दत्त
शोधार्थी
हिंदी विभाग, तेजपुर विश्वविद्यालय-असम

आदिवासी समाज अपनी स्व-अस्मिता व अनोखी जीवन शैली के लिए मशहूर हैं। आदिवासी सभ्यता को इतिहास के अनेक कालखंड पर विभिन्न शोषणेकारी शक्तियों ने आहत किए। प्राचीन काल में भारतीय आर्यों सभ्यता ने आदिवासियों का शोषण किया तो वर्तमान की सापेक्षिकता में पूंजीपति तथा प्रशासनिक और राजनीतिक वर्ग के ठेकेदारों ने आदिवासी अस्मिता को निरंतर आघात किए ।आदिवासी समाज पहले तो गैर आदिवासियों से दूर दुर्गम जंगल-पहाड़ आदि में रहते थे, परंतु अब धीरे-धीरे आदिवासी लोग गैर – आदिवासियों के संपर्क में आने लगे हैं। आदिवासी समाज अब गैर-आदिवासियों से अछूता नहीं रहा। इसी कारण आदिवासी जीवन के हर पहलुओं पर गैर-आदिवासियों का प्रभाव कमोवेश रूप में दिखाई देते है। मूलतः आदिवासी समाज की सामाजिक संरचना सहज, सरल एवं नैसर्गिक हैं।

आदिवासी लोगों के जीवन जिजीविषा के विविध पक्षों को आदिवासी साहित्य अपनी सृजनात्मकता में द्योतित करती हैं।आदिवासी समाज और मुख्यधारा के अंतःसंबंधों को भी आदिवासी साहित्य में दर्शाया गया हैं। आदिवासी साहित्य में केवल आदिवासियों के जीवन शैली को ही मुखर नहीं किया गया हैं, इसमें आदिवासी जीवन पर गैर आदिवासियों के धार्मिक,सामाजिक, राजनीतिक प्रभावों को भी बखूबी चित्रण किया गया हैं।

पितृसत्तात्मक गैर आदिवासी समाज में स्त्रियाँ जैसे शोषण का शिकार होती है, वैसे ही आदिवासी समाज भी उससे अछूता नहीं है। इस संदर्भ में रमणिका गुप्ता लिखती हैं कि - "औरत चाहे किसी भी वर्ग की हो, वर्ण की हो, कैसी भी धार्मिक, सामाजिक स्थिति की हो उसे अपना फैसला करने का हक देना समाज अपनी तौहीन मानता है। वह उसका पीछा करता है, उसे झुकने पर मजबूर करता है। मध्य वर्ग की औरतों में यह सामाजिक सुरक्षा के नाम पर होता है। बड़े वर्ग में अहम, आन-बान, वंश, संस्कार और प्रतिष्ठा भी पाते है सुरक्षा के साथ। निम्न वर्ग में आर्थिक मजबूरी बन जाती है।"1(रमणिका गुप्ता, मौसी, पृ-35) इस तरह स्पष्ट होते हैं कि समाज के विभिन्न समुदायों में स्त्रियों के प्रति दोहरे मानदंडों की निर्मिति की गई हैं, जो स्त्रियों के व्यक्तिगत और सामाजिक सत्ता को आघात करती हैं। समय बदलने के साथ स्त्रियों की समस्याएँ, उनकी स्वरूप और जीवन शैली में बदलाव आए है। स्त्री जीवन के उन तमाम पहलुओं को समकालीन साहित्यकार अपनी लेखनी द्वारा उजागर करने में प्रयासरत हैं, जो नारी अस्मिता के प्रश्न से जुड़े हुए हैं। आदिवासी जीवन केंद्रित उपन्यासों में आदिवासी जीवन-संस्कृति के विविध पक्षों के अलावा आदिवासी स्त्रियों के जीवन शैली और उनके संघर्ष को विशेष महत्व दिया गया है। आदिवासी स्त्रियों की जीवन-शैली सामान्य स्त्री विमर्श के मानदंडों पर खड़े नहीं उतरते। सामाजिक संरचना अलग होने के तहत दोनों समाज के स्त्रियों की जीवन मूल्यों में भिन्नताएं देखने को मिलती हैं। सामाजिक असमानता एवं पितृसत्तात्मक सोच के कारण दोनों ही समाज की स्त्रियों को सामाजिक दंश झेलना पड़ता है। इसी संदर्भ में वंदना टेटे लिखती हैं- "विस्थापन,पलायन और औद्योगीकरण की सबसे ज्यादा मार आदिवासी महिलाओं को ही भोगनी पड़ी है। इन जगहों पर चाहे वह आदिवासी समाज के महिला हो या गैर आदिवासी समाज की, दिहाड़ी मजदूर 'रेजा' हो या फिर किसी सरकारी अथवा गैर-सरकारी विभाग में कार्यरत मेध्यवर्गीय महिला, दोनों ही समान रूप से उत्पीड़ित हैं।"2(वंदना टेटे,आदिवासी साहित्य परंपरा और प्रयोजन, पृ-49)।उत्तर आधुनिक काल में 'भूमंडलीकरण' नाम से एक नये मॉडल लोगों के समक्ष आएं, जिसने समाज में व्याप्त तमाम मानदंडों को चुनौती देकर धीरे-धीरे एक अलग तरह के समाज व्यवस्था के निर्माण की मांग की। भूमंडलीकरण के इस दौर ने स्त्री जीवन के नक्शा ही बदल दिए। अभय कुमार दुबे लिखते हैं-"भूमंडलीकरण ने औरत की देह, उसके श्रम, उसकी छवि, उसके सौन्दर्य और कमनीयता का अतीत के किसी भी काल के मुकाबले सर्वाधिक दोहन किया। भूमंडलीकरण ने पितृसत्ता का कुछ नए रूप

उसने परंपरा और धर्म के अलावा आर्थिक आधुनिकीकरण और वैचारिक आग्रहों को भी नयी पितृसत्ता का जनक बना दिया।"3(अभय कुमार दुबे, भूमंडलीकरण बनाम नारी मुक्ति पितृसत्ता के नये रूप, भारत का भूमंडलीकरण,पृ-220)।पितृसत्तात्मकता ने प्रत्येक वर्ग के स्त्री अस्मिता को सामाजिक और आर्थिक स्तर पर प्रभावित किया है। विशेषकर आदिवासी स्त्रियों को 'सेक्स टॉय' के रूप में देखने वाली मानसिकता को भूमंडलीकरण ने ही बढ़ावा दिया है। आदिवासी महिला के संदर्भ में रमणिका गुप्ता लिखती हैं-"औरते इस समाज में हमेशा ही ज्यादा खटती रही हैं। अब थोक माल में उन्हें सस्ते मजदूर के रूप में सप्लाई करना या व्यक्तियों के हाथ में बेचना या अन्य गलत पेशों में लगना भी शुरू हो गया है और बाहरी दलालों की तरह इन्हीं के समाज में पनप गया है एक दलाल जमात। यह दलाल जमात बाहर के शहरों सपने समाज को दिखाकर पुराने मूल्यों को नष्ट कर रही है।"4(रमणिका गुप्ता, मौसी, पृ-35)आदिवासी जीवन पर केंद्रित हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी महिला समाज के हर क्षेत्र में पुरुष की बराबरी करती हुई नजर आती हैं। घर के अंदर से लेकर बाहर खेतों या फिर शिकार तक आदिवासी स्त्रियाँ पुरुषों का साथ देती हैं। चोरी से लेकर शिकार तक आदिवासी स्त्रियाँ माहिर हैं। केवल यहीं नहीं, आदिवासी स्त्रियाँ औपनिवेश काल में अंग्रेजों के खिलाफ किए गए आंदोलनों से लेकर अभी के पूँजीपतियों के खिलाफ लड़े जानेवाले हर चुनौतियों में पुरुषों का साथ निभाती हैं। अंग्रेजों के खिलाफ सिद -कानू या बिरसा मुंडा का जो आंदोलन चला था, उसमें उनके बहन, पत्नी आदि ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। अन्य आदिवासी स्त्रियाँ भी उनके साथ मरते दम तक खड़े रहें। आदिवासी जीवन पर केंद्रित हिंदी उपन्यासों में हर काम में आदिवासी स्त्रियों का बराबर भागीदारी नजर आती है।साहित्य में आदिवासी स्त्रियों को स्वतंत्र एवं स्वच्छंद रूप में दर्शाया किया गया हैं। इसी संदर्भ में डॉ. रोज केरकेटटा कहती हैं-"महिलाओं से संबंधित आदिवासी साहित्य में जिस महिला का चित्रण किया जाता है, वह या तो बहुत गरीब होती है या बहुत रोमांटिक युवती, जिसके साथ प्रेम किया जाता है, जो गाना गाती है, पहाड़ों में कूदती-फांदती है और नाचती है लेकिन उनकी असलियत नहीं दिखाई जाती। बहुत- सी आदिवासी माहिलाएं किसी के घर में दाई का काम करती हैं। वे ईमानदारी और सेवा भाव से मालिक को खुश भी रखती हैं, जिससे उनकी अपनी पहचान नष्ट हो जाती है। इस यथार्थ की तरफ किसी का ध्यान नहीं जाता है।"5(रोज केरकेटटा, आदिवासी महिलाओं का शोषण रोकना होगा, सं- रमणिका गुप्ता,आदिवासी समाज और साहित्य, पृ-88)। इस बिन्दु पर आदिवासी स्त्री और सामान्य स्त्री में फर्क नजर आता हैं। आदिवासी स्त्रियों में प्रेम करने की स्वतंत्रता है, साथ ही वह अपनी मर्जी से पुरुषों के साथ यौन संबंध भी स्थापित कर सकती है। यहाँ तक कि आदिवासी स्त्रियों को विवाह से पूर्व संतान जन्म देने की भी पूर्ण स्वतंत्रता हैं। जो बात सामान्य स्त्रियों के लिए कल्पनातीत है, वो आदिवासी स्त्रियों के लिए सामान्य सी बात हैं। ज्यादातर आदिवासी समाज में इसको सामान्य घटना की तरह ही अपनाया जाता है। उदाहरणस्वरूप हम संजीव के 'धार' उपन्यास के पात्र 'मैना' को देख सकते हैं। 'मैना' जब जेल में रहती है, तब उसके साथ बलात्कार होता है। जिसके बाद 'मैना' गर्भवती होती है और बच्चा जन्म देती है और वह बच्चे को उस जेलर को सौपती हैं, जिसने उसके साथ बलात्कार किया था। उसके बाद वह जब घर आती है, तब गाँव वाले उसको अपनाते हैं। ऐसी घटना हमें तथाकथित सभ्य समाज में दिखाई नहीं देते। भगवान दास मोरवाल के उपन्यास 'रेत' में भी हमें गैर आदिवासी समाज से भिन्न परिस्थिति देखने को मिलता हैं। वेश्यावृत्ति जो समाज के लिए अभिशाप माना जाता हैं, उसको 'रेत' में लेखक अलग ही ढंग से प्रस्तुत किया हैं। 'रेत' में वर्णित 'कंजर' समुदाय की औरतें सामूहिक रूप से वेश्यावृति को अपनाते हैं। इसमें भी औरत पूर्ण रूप से स्वतंत्र है। वह स्वयं फैसला करती है कि उसको भाभी बनना है या बुआ (वेश्यावृति अपनानेवाले औरतों को 'कंजर' समुदाय में बुआ कहा जाता है और जो शादी करते है , उन्हें भाभी कहा जाता है, भाभियों के लिए देह व्यापार माना है)। उनके ऊपर कोई सामाजिक दबाव नहीं रहता। उपन्यास के पात्र 'संतों' एवं 'पिंकी' के द्वारा दिखाया गया हैं कि कंजर समुदाय की औरतें वेश्यावृत्ति छोड़ के शादी करके संसार बसाने से ज्यादा बुआ बनके वेश्यावृत्ति को अपनाना ज्यादा सही मानते हैं। इसीलिए पिंकी की माँ संतों अपनी बेटी की बुआ बनने के फैसले पर खुश हो जाती है और वैद्य जी से कहती है-'वैद्य जी बुआ ही ठीक है.... बुआ बन के कम से कम मेरी तरह नरक तो न भोगेगी।"6 (भगवानदास मोरवाल, रेत,पृ-74)। संतों के जरिए उपन्यासकार कंजर समाज और वेश्यावृत्ति की एक अलग ही छवि प्रस्तुत करता है। संतों खुद फैसला की थी कि वह भाभी बनेगी पर बाद में वह अपनी ज़िंदगी से परेशान होकर कहती है- "क्या मिलता ब्याह करके ज़िंदगी भर खसम और औलाद के साथ-साथ भाभी बनी सास-ननदों की चाकरी ही तो करनी पड़ती है। बड़ी बुआ बनी रहती तो उमर भर मजे करती।"7(भगवानदास मोरवाल, रेत,पृ-22)। इस उपन्यास में दर्शाया गया हैं कि किस तरह वेश्यावृत्ति के जरिए पिंकी की बुआ 'रुक्मिणी' खुद को राजनीतिक क्षेत्र में स्थापित करती है। दरअसल इन उपन्यासों में आदिवासी समाज के भिन्न नैतिक मानदंडों को दर्शाया है। परंतु ध्यान देने योग्य बात यह है कि 'रेत' में जिस तरह वेश्यावृत्ति को 'ग्लोरीफाई' किया गया है, उसके विपरीत स्थिति अन्य उपन्यासों में दिखाई देता है। उदहरणस्वरूप शरद सिंह का उपन्यास 'पिछले पन्ने की औरतें' घुमक्कर आदिवासी समुदाय 'बेड़नियाँ' के औरतों पर आधारित है। इस उपन्यास में वेश्या जीवन से जुड़ी तमाम संघर्षों को दिखाया गया है। 'पिछले पन्ने की औरतें' में आदिवासी स्त्रियाँ घर चलाने के लिए मजबूर है। इसीलिए बेबस उसे वेश्यावृत्ति को अपनाना पड़ता है।अपने मर्द को झूठी केस से बचाने के लिए हो या फिर आर्थिक संकट के कारण मजबूरन देह की सौदा आदिवासी स्त्रियों को करना पड़ता हैं । लेकिन अपनी अस्मिता व स्वाभिमान के ख़ातिर उन्हें भी ये कतई पसंद नहीं होता।

आदिवासी स्त्रियों में साहस एवं आत्मसम्मान की भावना भरपूर मात्रा में दिखाई देती हैं। मैत्रेयी पुष्पा की उपन्यास 'अल्मा कबूतरी' में 'भूरी','कदमबाई', 'अल्मा' अपने हक एवं बेहतर ज़िंदगी के लिए कज्ज के साथ-साथ अपने समाज से भी लड़ती हैं। लेकिन ये लोग कभी अपने आत्मसम्मान के समझोता नहीं करते। कज्ज 'मांसाराम' धोखे से कदमबाई के साथ शारीरिक संबंध बनाता है। जिसके नतीजे में 'राणा' का जन्म होता है। कदमबाई को सबकुछ पता होने के बावजूद वह राणा को जन्म देती है और स्वयं ही पालन-पोषण करती है। कदमबाई की आत्मसम्मान की भावना उपन्यास में इस प्रकार झलकता है-"कहाँ हैं मंसाराम? मरते दम तक यही सकून रहेगा कि उसने उनसे कोई मदद नहीं ली। उनके बच्चे की माँ बनी थी, भिखारिन नैन हुई कि पालन-पोषण का मुआवजा माँगती और माँ के हक को छोटा करती। बच्चे को दूध को पिला सकती थी, रोटी नहीं दे पाई! न सही..."8(मैत्रेयी पुष्पा, अल्मा कबूतरी, पृ-44)ज्यादातर आदिवासी समाज मातृसत्तात्मक हुआ करते थे। अब इसमें परिवर्तन नजर आते हैं। 'हो' आदि ऐसे आदिवासी समुदाय है, जो धीरे-धीरे पितृसत्तात्मक समाज में तब्दील हो चुकी हैं। आदिवासी समाज में न्याय व्यवस्था बहुत ही महत्वपूर्ण हैं।आदिवासियों के लिए पुलिस-कचहरी से गाँव पंचायत ज्यादा एहमियत रखता हैं। किसी भी समस्या को आपस में सुलझाने में आदिवासी समाज विश्वास रखते हैं। इस बिन्दु पर हम इस बात को नजरदाज नहीं कर सकते हैं कि मातृसत्तात्मक आदिवासी समुदायों में भी न्याय व्यवस्था हमेशा पुरुष तांत्रिक ही रहा हैं। अर्थात आदिवासी समाज में भी शासन का डोर पुरुष के हाथ में ही है। उदाहरणस्वरूप 'रेत' में वर्णित 'कंजर' समुदाय मातृसत्तात्मक है। परंतु जब न्याय व्यवस्था की बात आती है, तब देखा जाता हैं कि न्याय व्यवस्था पुरुष ही चला रहा हैं। इसी प्रकार मातृसत्तात्मकता होते हुए भी कहीं न कहीं आदिवासी समुदाय पुरुष द्वारा ही परिचालित है। आदिवासी समाज में लड़की वालों को दहेज नहीं देना पड़ता, बल्कि लड़के वालों को वधुमूल्य देना पड़ता है। इसी प्रथा के कारण कभी-कभी लड़की की शादी का उम्र ढल जाता है। लड़की का पिता अधिक 'गोनोग'(वधुमूल्य) के लालच में अपनी बेटी का विवाह नहीं कराते। महुआ माजी का उपन्यास 'मरंग गोडा नीलकंठ हुआ' में इसी बात का जिक्र मिलता है। ऐसी स्थिति में लड़की को भागकर शादी करना पड़ता हैं। इसमें लड़की का पिता पुरुष सत्तात्मकता का प्रतीक हैं। इस उपन्यास में यह भी देखा जाता हैं कि उपन्यास का नायक 'सगेन' की ताई को डायन समझ के अपने ही समाज के लोग अत्याचार करते हैं। 'अल्मा कबूतरी' में भी 'भूरी' जब अपने बेटे को पढ़ाने के लिए सबकुछ करने को तैयार होती है और दूसरी शादी से माना करती है, तब अपने समाज के लोग ही उसके ऊपर शारीरिके एवं मानसिक दबाव डालते हैं। ऐसे ही कदमबाई का बेटा जब चोरी करने में असमर्थ होता है और समाज के

नियमों का उलंघन करता है , तब कदमबाई से दारू बेचने का हक छीन लिया जाता है। इसी प्रकार आदिवासी स्त्रियाँ समय-समय पर अपने ही समाज के पुरुषों द्वारा शोषित होती हैं। आदिवासी समुदाय हर तरफ से गैर आदिवासियों द्वारा पीड़ित है। जिसका बखूबी चित्रण आदिवासी केंद्रित हिन्दी उपन्यासों में दिखाई देता है। परंतु इस मामले में आदिवासी पुरुष की स्थिति आदिवासी स्त्रियों से बेहतर हैं। इसका एकमात्र कारण है आदिवासी स्त्रियों की शरीर। दरअसल सदियों से ही पुरुषसत्तात्मक समाज स्त्री को केवल भोग्य वस्तु के नज़रों से देखा है। साहित्यकार भी नारी सौन्दर्य का मानदंड तैयार करके इसी मानसिकता को बढ़ावा दिया है। इसी कारण समाज की हर वर्ग की स्त्रियाँ समय-समय पर शारीरिक शोषण का शिकार बन के आए हैं। पर इस बात को भी हम नकार नहीं सकते कि साहित्य ने स्त्री स्वर को मुखरित भी किया है और अपने अधिकार के लिए लड़ने को प्रेरित भी। साहित्य ही एक जरिया है, जो स्त्री समाज को अभिव्यक्ति के लिए एक मंच दिया है। साहित्यिक मंच के जरिए ही आज मुख्यधारा के स्त्रियों के साथ-साथ आदिवासी स्त्रियाँ भी इसका सदुपयोग करके अपनी लेखनी द्वारा अपने समाज को जागरूक कर रहें हैं। महुआ माजी, रोज केरेकट्टरा, निर्मला पुतुल आदि ऐसी आदिवासी लेखिकाएं हैं, जो अपनी लेखनी द्वारा आदिवासी स्त्री आंदोलन का मोर्चा संभाली है। समाज में हमेशा नारी को दोयम दर्जा प्राप्त होती हैं। एक तरफ पुरुष का समकक्ष या उससे भी ऊपर 'देवी' मानकर पूजा की जाती है , तो दूसरी तरफ उसी नारी का शोषण भी इसी समाज में होती है। आर्थिक एवं सामाजिक रूप से कमजोर होने के कारण आदिवासी स्त्रियों का स्थिति सामान्य स्त्रियों से अधिक दर्दनाक है। आदिवासी साहित्य में इसका मार्मिक चित्रण हुई है। इसी संदर्भ में निर्मला पुतुल जी लिखती हैं- "आदिवासी औरत को पुरुष हमेशा वासना की नजर से देखता है। आदिवासी स्त्री इस बात को अच्छी तरह से महसूस कर सकती है। यहाँ के इतिहासकारों तथा सभ्य समाज के बौद्धिक कहे जानेवाले लेखकों ने उन्हें गलत ढंग से चित्रित किया है तथा उन्हें ऐसा ही जाना व समझ गया है। आदिवासियों का शोषण आजादी से पहले गोरी चमड़ी के लोगों ने किया, अब काली चमड़ी के लोग कर रहे है।"9(शबनम तबबसुम,आदिवासी नारी की संघर्ष-गाथा:अल्मा कबूतरी,सं-मनीष कुमार गुप्ता, आदिवासी समाज और हिन्दी उपन्यास, पृ-132)। केवल जीने के लिए ही आदिवासी स्त्रियों को न चाहते हुए भी शरीर का सौदा करनी पड़ती हैं। ऐसा प्रतीत होता हैं कि जैसे आदिवासी स्त्रियों को अपने शरीर पर कोई अधिकार ही नहीं है। जब जिसका मन करें वो उनके शरीर या मन के साथ खिलवाड़ कर सकते हैं। संजीव का उपन्यास 'जंगल जहाँ शुरू होता है' में थारू आदिवासी समुदाय की स्त्रियों का यौन शोषण एक तरफ से डाकू करते है और दूसरी तरफ पुलिस और प्रशासन वाले। झूठी केस में फँसाकर आदिवासी पुरुष को जेल के अंदर डालना और उसको जेल से छुड़ाने के बदले स्त्रियों के साथ जबरदस्ती करना पुलिसवालों के लिए बहुत ही साधारण बात हैं। एक जैसी ही स्थिति हमें मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'अल्मा कबूतरी' में भी दिखाई देती हैं। इस उपन्यास में भी 'कबूतरा' स्त्री एक तरफ से पुलिसवाले और दूसरी तरफ से 'कज्ज' (गैर आदिवासी) लोगों से शारीरिक रूप से पीड़ित है। विडम्बना तो यह है कि वे लोग चाहकर भी इसका विरोध नहीं कर सकते। होली के अवसर पर होनेवाले हादसे द्वारा मैत्रेयी पुष्पा स्त्रियों के ऊपर होनेवाले अमानवीय अत्याचारों को बहुत ही मार्मिक रूप से व्यक्त किया है। जिसमें पुलिस रक्षक नहीं भक्षक के रूप में दिखाई देती है। आदिवासी स्त्रियों के साथ पुलिसवालों का अमानवीय व्यवहार इस प्रकार वर्णन किया गया है - "अरहर की पत्तियां हरी से लाल हो गई। सरमन की औरत रो भी न सकी। डंडेवाला पीछे था, जाँघों में डंडा घुसाने लगा।"10(अल्मा कबूतरी, मैत्रेयी पुष्पा, पृ-44)। कबूतरी स्त्रियों की ज़िंदगी पशु से भी बदतर है। मैत्रेयी पुष्पा 'जमुना'/'जमुनी' के दर्दनाक मृत्यु द्वारा इस बात को बड़े ही मार्मिक ढंग से अंकित किया है। जमुनी को होली के अवसर पर होने वाले हादसे के दौरान कीचड़ में ही बच्चा जन्म देना पड़ता है और परिस्थिति भी ऐसी हो जाती है कि उसी समय उसकी मौत भी हो जाती है। रणेन्द्र का उपन्यास 'ग्लोबल गाँव का देवता' में भी गैर आदिवासियों द्वारा आदिवासी स्त्रियों पर करने वाले यौन शोषण को दिखाया गया है। जहाँ स्कूल में ही इनका शारीरिक शोषण होता हैं।

मैत्रेयी पुष्पा 'अल्मा कबूतरी' में आदिवासी स्त्री जीवन के अन्य पहलुओं के साथ कदमबाई के जरिए स्त्री मन की मानसिक द्वन्द्व को भी उकेरा है। कदमबाई अक्सर मानसिक द्वन्द्व के शिकार बनती है। अपने मृत पति जंगलिया और पति की हत्याकारी मंसाराम के बीच वह फंस जाती है। कभी वह अपने पति के हत्याकारी मंसाराम से नफरत करती है तो कभी अपने बेटे के पिता होने के नाते उसके प्रति कोमल भावना भी रखती है। अपने बेटे राणा को वह कभी अन्य कबूतरा की तरह चोरी-डकैती में पारंगत भी कराना चाहती है तो कभी कज्ज लोगों के तरह पढ़ाना चाहती है।

आदिवासी जीवन पर केंद्रित हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी स्त्रियों का शोषण या फिर उनकी मजबूरी का तो वर्णन मिलता है परंतु उस परिस्थिति में उनके मन:स्थितियों के गहराई तक जाकर उसे समझने की कोशिश बिरले लेखकों में ही मिलती है।इस संदर्भ में वंदना टेटे लिखती है- "भारतीय साहित्य में आदिवासी महिलाएं परदेशी के प्रेम में देह सौंपती। दाई, आया, सेविका आदि के रूप में मार खाती, बलात्कार भोगती हुई ही दिखाई देती हैं। अस्मिता, स्वशासन और आत्मनिर्णय के अधिकार के लिए संघर्ष करती हुई आदिवासी स्त्रियाँ साहित्य और फिल्मों में एकसिरे से गायब है।"11 आदिवासी स्त्रियों की स्थितियाँ पारंपरिक स्त्रियों से बहुत हद तक अलग है। वर्ग-वर्ण एवं परिस्थितियों ने आदिवासी स्त्रियों को समाज के अन्य वर्ग के स्त्रियों से भिन्न कर दिया हैं। ऊपरी निगाहों से देखने से आदिवासी स्त्री स्वतंत्र एवं स्वच्छंद दिखाई देती है। लेकिन गहराइयों से देखा जाए तो उनकी स्वतंत्रता और स्वच्छंदता में अस्पष्टता और दोहरापन नज़र आते हैं। बहरहाल, यह ज्ञातव्य कि आदिवासी साहित्य में खास करके उपन्यासों ने आदिवासी स्त्री जीवन को एक विस्तृत पृष्टभूमि प्रदान किया है। बड़े कलेवर होने के नाते उपन्यास आदिवासी जीवन के विभिन्न पहलुओं के साथ-साथ आदिवासी स्त्रियों के जीवन जिजीविषा के लग-भग प्रत्येक पहलुओं को विस्तृत रूप से पाठकों के सामने प्रस्तुत करने में समर्थ हुई है। आदिवासी केंद्रित हिन्दी उपन्यासों में अवला शोषित नारियों से लेकर साहसी एवं सतत संघर्षशील स्त्रियों का चित्रण मिलता है। आदिवासी स्त्रियों को संघर्ष एवं कष्ट मंजूर है पर हारना मंजूर नहीं है। सबकुछ कुर्बान करके भी अपने लक्ष तक पहुंचना, अपने हक के लिए लड़ना, अपनी स्थिति को सुधारने की जज्बा आदिवासी स्त्रियों में दिखाई देती हैं। अपनी ज़िंदगी में सर्वस्व खोकर भी अपनी अगली पीढ़ी को एक बेहतर ज़िंदगी देने के लिए आदिवासी स्त्रियाँ हमेशा संघर्षरत रहती हैं। मैत्रेयी पुष्पा इसीलिए लिखती है-"भूरी समझ रही थी – बेटे का उजाले-भरा रास्ता माँ की देह से गुजर रहा है।"12(मैत्रेयी पुष्पा, अल्मा कबूतरी, पृ-75) साथ ही पुष्पा जी यह भी लिखती है-"माते, पुजारी, सिपाही, मास्टरों के जरिए रामसिंह के लिए इज्जत खरीदनेवाली माँ बेहिचक बेइज्जत होती रही।"13(मैत्रेयी पुष्पा, अल्मा कबूतरी, पृ-77) इस प्रकार स्पष्ट होता हैं कि आदिवासी स्त्रियों में कोमलता के साथ-साथ परिस्थितियों से जूझने की ताकत एवं प्रबलता हैं।

******

सहायक ग्रन्थ सूची:-

1. स. डॉ. गुप्ता, मनीष कुमार(2017). आदिवासी समाज और हिंदी उपन्यास(प्रथम संस्करण).कानपुर: अनुसंधान पब्लिशर्स एन्ड डिस्ट्रिब्यटर्स
2. स. डॉ. वर्मा,गीता, एवं गोंड़, रवि कुमार(2012).वर्तमान समय में आदिवासी समाज (प्रथम संस्करण).अलीगढ़: वाङ्मय बुक्स
3. स. हमीमा, ओ.पी.(2019). समकालीन साहित्य:आदिवासी विमर्श(प्रथम संस्करण). कानपुर:अमन प्रकाशन
4. स.डॉ. चौधुरी, सविता(2017).हिंदी साहित्य में आदिवासी एवं स्त्री विमर्श(प्रथम संस्करण). कानपुर:रोली प्रकाशन
5. स. गुप्ता,रमणिका(2015).आदिवासी समाज और साहित्य(प्रथम संस्करण).नई दिल्ली:कल्याणी शिक्षा परिषद
6. डॉ. चौधुरी, सविता(2015).स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों में आदिवासी चेतना.कानपुर: अतुल प्रकाशन
7. डॉ. चन्देल,उपेन्द्र सिंह एवं डॉ. मेहरा,दिलीप(2017).आदिवासी संवेदना और हिंदी उपन्यास(प्रथम संस्करण).कानपुर:उत्कर्ष पब्लिशर्स एन्ड डिस्ट्रिब्यटर्स

आदिवासी स्त्री जीवन संघर्ष को व्यक्त करता, तुम्बम रीबा जोमो 'लिली' के उपन्यास "उस रात की सुबह "

प्रो. विष्णु सरवदे
शोध निर्देशक- हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय

निम्मी सलोमी किन्डो
शोधार्थी
हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय
मो.7320049860

"तुम देवों ने वैदिक कर्महीन किया नारी को
धर्मशात्रों की व्यवस्थाएं बदली/स्व अनुरूप
स्त्रिया 'इन्द्रिय शून्य' हुई घोर 'असंयमशीला'
'शास्त्रज्ञान से रहित' 'असत्य की मूर्ति 'निपट
दिए पुरुषो ने/आकाश ने भोगा एकछत्र अखंड राज्य
किन्तु धरती को/बांटा खंड - खंड में "1

स्त्री, पुरुष वर्चस्व के कारण सदियों से उत्पीड़न सहती और उत्पीड़ित होती आ रही हैं। अपने पक्ष की लड़ाई भी वह स्वयं लड़ती आ रही है। उदाहरण स्वरूप - सतयुग मे इंद्रलोक की अप्सराएं, शकुंतला,गार्गी वा माधवी जैसे पात्रों को भी पुरुष वर्चस्व के कारण उत्पीड़न सहना पड़ा था। त्रेता युग मे सीता और द्वापर युग में द्रोपदी जैसे चरित्र भी अपने पक्ष की लड़ाई स्वयं लड़ते हुए समस्त स्त्रियों को प्रतिरोध करने के लिए प्रेरित करती हैंनारी को दलित -गुलाम बनाने का इतिहास इस देश में बहुत पुराना है । स्त्री युग -युग से पराधीन है, उपेक्षित है प्रताड़ित है । भारतीय राष्ट्र के सन्दर्भ में हाशिये के समाज में निःसंदेह आधी मानवता के रूप में महिलाएं हैं। स्त्री इस देश का पाँचवा वर्ण है। इससे इतर स्त्री, पुरुष को साथ -साथ लेते हुए दलित, आदिवासी वा अति पिछड़े अन्य वर्ग और अल्पसंख्यक शामिल माने जाते हैं। स्त्री की दशा इतिहास में पुरुष की तुलना में कुल मिलाकर दोयम दर्जे की रहती आई है चाहे समाज में मातृ सत्तात्मक, परिवार की वास्तविकता रही हो या भारतीय शास्त्रों में 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते ' का कथन रहा हो। पुराणेतिहास में विदुषी गार्गी की विद्वता का प्रमाण मिलता है। उसने याज्ञवळक्या को चुनौती दी और बदले में उसे क्या मिला? ब्रह्मसत्ता और चिंतन तक पुरुषों ने अपने लिए सुरक्षित रख लिया और नारी तथा शूद्र को एक कोटि में लाकर ज्ञान - क्षेत्र से बाहर कर दिया। उनके नाम सिर्फ और सिर्फ गुलामी का पट्टा लिख दिया। यह दशा कालांतर में विकसित पुरुष वर्चस्व के विकसित होते जाने के साथ पैदा हुई। कात्यायनी अपने व्यंग्य से कुछ इस प्रकार इस पुरुष प्रधान समाज के वर्चस्व की भर्त्सना करती नज़र आती हैं -

"मत जाओ गार्गी प्रश्नों की सीमा से आगे
तुम्हारा सर काटकर लुढ़केगा ज़मीन पर
मत करो याज्ञवल्क्यों की अवमानना
मत उठाओ प्रश्न ब्रह्मसत्ता पर/वह पुरुष हैमत तोड़ो इन नियमों को।"[2]

हमारे भारतीय समाज में स्त्रियों के अस्तित्व का सवाल अंतरविरोधी विषय है। अगर हम परम्परागत मान्यताओं को देखे तो स्त्री को जहाँ शक्ति के रूप में माना गया है वहीं सामाजिक तौर पर, आम भाषा में उनको अबला कहकर सम्बोधित किया जाता है। ये सभी धारणाएं संस्कृति, मान्यताएं, इतिहास आदि पुरुषो के ही द्वारा रचे गए हैं। पितृसत्तात्मक समाज में पुरुषो के के अहम् ने स्त्री के छवि को इन्हीं दोयम दर्जे पर भ्रमित कर रखे हुए हैं। कभी उन्हें सर्वोत्तम मानकर देवी कहते हुए पूज्य बताते हैं तो फिर कहीं व्यवहार जगत में उसे कामवासना का साधन मानते हुए त्याज्य, भोग्य, माया यहाँ तक कि मुक्ति मार्ग में बाधक भी मानते हैंसदियों से समाज में लोगों ने नारी को कमतर वर्ग में आँका है। नारी के जिम्मे तमाम कर्तव्यों कि बात आती है पर जब उनके अधिकारों कि बात आती है तो लोगों में चुप्पी छा जाती है. पर इससे क्या? नारी ने तो बस देना ही सीखा है, कभी अपने लिए लेना नहीं। "नारी सशक्तिकरण का अर्थ यह नहीं कि नारी को शारीरिक तौर पर ही सशक्त बनना है बल्कि उसका एक तरीका यह भी है कि नारी के प्रति लोगों के दृष्टिकोण में एक सकारात्मक और खूबसूरत बदलाव लाना।"[3]तुम्बम रीबा जोमो 'लिली ' के उपन्यास 'उस रात की सुबह ' में अरुणाचल प्रदेश की शोषित, पीड़ित, संघर्षशील आदिवासी स्त्रियों का वर्णन किया गया है। भारत के पूर्वोत्तर में बसा राज्य अरुणाचल प्रदेश जहाँ पर सूर्य सर्वप्रथम अपनी स्वर्णिम रोशनी की छटा बिखराती है यहीं पर प्राकृतिक सौंदर्य से भरपूर घाटी पश्चिम सियांग जिले के बसार के पागी ग्राम में जन्मी तुम्बम रीबा जोमो 'लिली 'समाज में एक सकारात्मक बदलाव की आकांक्षी और पेशे से शिक्षिका है, अपने फ़ौज से सेवा -निवृत पिता को अपनी प्रेरणा मानती हैं और उन्हीं के नक़्शे कदम पर समाज सेवा में अपना योगदान देने में विश्वास रखती हैं। हिंदी भाषा और लेखन कार्य में इनकी काफ़ी रूचि है, हिंदी में ही राज्य की राजधानी ईटानगर शहर के देरा नातुंग शासकीय महाविद्यालय में बतौर सहायक प्राध्यापिका के रूप में अपनी सेवा देती आई राकेश कुमार सिंह ने अपने उपन्यास 'जो इतिहास में नहीं ' में कामी पुरुषो की वासना की शिकार होती नारियों के शोषण की दयनीय स्थिति का चित्रण कुछ इस प्रकार किया है - "ईस्ट इंडिया रेलवे की इस बड़ी परियोजना में लाखों वनवासी श्रमिक कार्यरत थे. पुरुष, स्त्रियां, किशोर तथा अधेड़ आदिवासियों के बड़े -बड़े दल स्थानीय ठेकेदारों के लिए दिन -रात काम करते थे रेल विभाग में ठेका चलाने वाले ठेकेदार आदिवासी किशोरियों - युवतियों को प्रायः अपने तम्बू में खींच ले जाते थे. कभी अकेली, कभी दसियों आदिवासिने मद्यप ठेकेदारों और वर्षों से स्त्री -सुख को तरसते रेल अधिकारियों की वासना पूर्ति हेतु उठा ली जाती थी।"5सदियों से जनजातीय स्त्री अपने ही समाज मे उपेक्षा की शिकार होती आयी हैं। पुरुषों के पास दो-तीन या कई-कई बीवियाँ हो तो समाज में उनका रुतबा और ऊँचा हो जाता था, गांव भर में उनकी मर्दानगी और रईसपन के सभी लोग गुणगान गाने लगते थे। 'उस रात की सुबह' द्वारा लेखिका ने समाज मे व्याप्त सामाजिक रीति-रिवाजों और नियमों का हवाला देते हुए स्त्रियों पर हो रहे अत्याचार का वर्णन किया हैयह उपन्यास नारी की विवशता और उसका फायदा उठाते लोगों को बयां करती है। यह कहानी है एक ऐसी नवयुवती यापी की जिसकी शादी बचपन में ही एक अधेड़ उम्र के व्यक्ति से तय कर दी जाती है जो रिश्ते में नवयुवती यापी के फूफा लगते हैं। विवाह के एक वर्ष के भीतर ही बुआ याका की असमय मृत्यु से उसे दिए गए पुरखों की पारंपरिक संपतियां उसके ससुराल में ही रह गई, बुआ को विवाह में वर पक्ष की ओर से दस सबअ अर्थात मिथुन कन्या-मूल्य के तौर पर भेंट किया गया था, साथ ही कई टोकरियाँ मांस और मछलियों के साथ में बेहतरीन मरुआ के आपोंग/ मदिरा और वर पक्ष ने विवाह में अत्यधिक खर्च किया था। बुआ के असामयिक मृत्यु से उसके ससुराल वाले यानि कि तातो(फूफा) और उसके खानदान वाले इस रिश्ते को कायम रखना चाहते हैं। अतः परिवार में से किसी को दुग्ने(बुआ) की जगह लेनी है इसलिए सबने मिलकर खानदान की भलाई के लिए कुछ वर्षों पहले बचपन में ही यापी का बेमेल विवाह तातो से तय कर दिया जाता है। पिता को अपनी बेटी से ज्यादा अपनी मान मर्यादा और संपति ही प्यारा है या यों कहें एक पुरुष का स्वार्थ एवं अहंकार ही उसे अपनों की तकलीफ देखने नहीं दे रही थी। पिता चाहता तो पंचायत द्वारा थोपे गये बेमेल विवाह को अस्वीकार कर अपनी बेटी यापी को बचा सकते थे। यापी का पिता ताकार भी तो इसी पुरुष प्रधान समाज का ही अंग है। उसकी सोच थी कि एकलौता बेटा काफी नहीं है वंश चलाने के लिए दो - चार बेटे और पैदा करना चाहिए अतः पत्नी के होते हुए भी एक नई पत्नी ब्याह कर लाते हैं। बेटे से वंश चलने- चलाने का तो एक बहाना मात्र है। मर्द बस अपनी हवस की पूर्ति के लिये ही बहुपत्नी प्रथा को बढ़ावा देते हैं और कुछ नहीं।आप सब जानते हो कि राजो की शादी बचपन में जिस लड़के के साथ हुई थी वह कुछ दिनों बाद लंबी बीमारी के कारण चल बसा था और तभी से यह रिश्ता टूट गया था। जब राजो की नौकरी लग गई तो ससुराल वाले उस पर अधिकार जताने आ गए। उन्होंने यह तर्क दिया कि मरने वाला लड़का राजो का देवर था। पति तो जीवित है। अचम्भे की बात तो यह रही कि वीरीसिंह पहलवान खुद उनसे मिल गया। उस षडयंत्र में शामिल होने के बदले उसने श्यामपुरा वालों से पचास हजार रुपए नकद लिए। राजो का पीछा किया था ससुराल वालों ने किशनगढ़ तक जहाँ वह लड़की पुलिस की ट्रेनिंग ले रही थी। तुम्हें तो अब क्या याद होगा। यहां तक धमकी दी गई थी उस बच्ची को कि अगर राज़ी से नहीं मानी तो जबरन उठाकर ले जायेंगे।श्यामपुरा वालों को यह तक होश नहीं था कि अब राजो राजस्थान की पुलिस में कांस्टेबल के पद पर है।"[6]उपन्यास के

माध्यम से लेखिका कामी पुरुषो की भोग लिप्सा को पारंपरिक रीति रिवाज के नाम पर बढ़ावा देते समाज का चित्रण करती हैं, जिसमें स्त्रियों की मर्ज़ी की कोई जरूरत ही नहीं समझी जाती। पुरूष का वर्चस्व समाज में हर ओर देखने को मिलता है। 17 वर्षीय यापी के बारे में किसी ने एक पल के लिए भी यह नहीं सोचा कि उसकी इच्छा क्या है, बस उस पर रीति-रिवाज़ो का हवाला देते हुए एक अधेड़ उम्र के तातो से विवाह करने का तुगलकी फरमान सुना डाला गया और उसपर भी उसे अपनी ज़िंदगी से जुड़ी , फैसले लेने का अधिकार नहीं, अधिकार तो चलो दूर की बात है उसकी मर्ज़ी जानने की कोशिश भी नहीं कि जाती।वाह रे पुरूष प्रधान समाज? पंचायत द्वारा सुनाये गए फैसले से यापी का मन कर रहा था कि जोर जोर से चीखें चिल्लाए और समाज के उन ठेकेदारों से पूछे कि उसका क्या क़सूर है जो इस तरह से तमाम रिवाज़ो और पारंपरिक नियम नीतियों का हवाला देकर उसे अन्याय भरा फ़ैसला सुना रहे हैं।

"यह कैसा न्याय है? इतनी बड़ी सज़ा क्यों?
क्या कुसूर है मेरा ? ऐसा कौन सा जघन्य अपराध कर दिया है मैंने ?
आप लोगों ने कभी मेरी रज़ा जानने की कोशिश की?
मुझसे कभी किसी ने पूछा कि मैं क्या चाहती हूं?
फैसला सुनाने से पहले एक बार भी मुझसे पूछ लिया होता?

पर उसकी आवाज उसके हलक में ही घुटकर रह गया, क्योंकि इस तरह कबा देर/सभा मे औरतों का इस तरह बोलना एकदम वर्जित और घोर अपराध माना जाता है।"[7]कितना दर्द है कितनी विवशता है एक स्त्री के सामने कि वह खुलकर न रो सकती है ना प्रश्न कर सकती है बस अपनी विवशता पर घुटकर ही रह सकती है। यहाँ स्त्री होना एक अपराधी की तरह प्रतीत होता है जो अपनी सफाई में कुछ कह नही सकती बस अपने स्त्री होने का अपराध बोध मानते हुए , न चाहते हुए भी समाज के तथाकथित सभ्य कहे जाने वाले पुरुषों की अन्याय पूर्ण तुगलकी फरमान मानने को बाध्य है। एक पत्नी एक माँ की बेबसी और विवशता भी उपन्यास के माध्यम से परिलक्षित होती है। एक पत्नी विवश है अपने पति की आज्ञा मानने के लिए ,पति की आज्ञा का पालन न किये जाने पर पति द्वारा त्याग दिए जाने का भय, अपने बच्चों से दूर कर दिए जाने का डर। एक माँ की बेबसी यह है कि अपनी बेटी पर अन्याय होते हुए भी उसका विरोध न कर पाने की बेबसी, बेटी के अंधकारमय भविष्य को देखकर भी कुछ न कर पाने का दुख, दुनिया से बगावत न कर पाने की हिम्मत इन सब बातों से दुखित एक स्त्री का दर्द, घुटन क्या होता है यहाँ देखा जा सकता है। यापी की माँ बेटी पर हो रहे अन्याय के खिलाफ बगावत करना चाहती है लेकिन वो मज़बूर है चाह कर भी ऐसा नहीं कर पाती। बेटी कोई निरीह गाय नही होती जिसे कभी भी, कहीं भी किसी भी खूँटी से उसे बांध दोमगर उसकी आवाज़ उसके हलक मे ही घुटकर रह गई। मन ही मन वह रोने लगी और कहने लगी, ' कितनी बेबस हूँ मैं, मेरी बेटी पर इतना बड़ा अन्याय भरा फैसला होने पर भी मैं कुछ नहीं कर पा रही हूँक्या इसी दिन के लिए मैंने दर्दनाक प्रसव पीड़ा सहकर अपनी बेटी को जन्म दिया था कि एक दिन ये सब समाज के ठेकेदार मिलकर उसकी जिंदगी का फैसला इस तरह से अन्यायपूर्वक करे, जैसे कि वह कोई अपराधिनी हो?"[8]उषा भसीन अपनी 'आग' शीर्षक कविता में नारी के त्रासद अनुभवों को कुछ इस प्रकार व्यक्त करती हैं-

गर्म राख के आगोश में/चिनगारी रातभर/सुबकती है"[9]

अपनी बेबसी और लाचारी पर एक स्त्री जो एक माँ भी है सिवाय रोने और अपनी किस्मत को कोसने के कुछ भी नहीं कर पाती। अपनी बेटी को न्याय दिलाने के लिए पति से बगावत करना तो दर वह उसके सामने अपना मुँह तक नहीं खोल पाती। इससे समाज में और परिवार में एक पुरूष का वर्चस्व किस कदर हावी है इस बात का अंदाजा लगाया जा सकता है। नारी जीवन का घोरतम त्रासदी यह है कि वह स्वयं ही जलती हुई अपनी चिता के किनारे बैठ अपने जीवन-मरण- दहन का साक्षी बने।

"एक बार/हाँ, और अभी एक बार/होना है मुझे धुँआ/और शायद वहीं होगा अंतिम विश्राम"[10]

एक स्त्री प्रसव पीड़ा सह कर बच्चों को जन्म देती है और उसे अपने बच्चों की जिंदगी से जुड़े फैसले लेने का भी अधिकार नहीं और न ही उनसे सलाह तक ली जाती है ,बस उनपर अपनी मनमानी या फैसला थोप दिया जाता है। इस बेदर्द जमाने ने वैसे भी इस पुरूष प्रधान समाज में अबलाओं की सुनता ही कौन है?"जनजातीय समाज में अक्सर यही होता आया है कि परिवार की किसी बहन या बेटी की विवाह के बाद अगर असमय मौत हो जाती है तो उसकी जगह ,उनकी आपसी सहमति से उसी कन्या के परिवार से ही किसी और कन्या को दूल्हे वाले ब्याह लेते हैं। आपसी सहमति हो तो ठीक है वरना कई बार जबरन ब्याह दी जाती है।जैसे औरत न हो कोई गुलाम हो । कई बार तो उसे लप्पा यानि कि बेड़ियों में जकड़कर जबरन भूखी प्यासी राकी जाती है जब तक कि वह हार कर अपना हथियार न डाल दे और उस रिश्ते को मानने को तैयार न हो जाए। कई बार तो तथाकथित पति उसे उसी हालत में बलात्कार करके गर्भवती बना देते थे ताकि उस पर अपनी पूरी मल्कियत जता सके। और एक बार जब लड़की माँ बन जाती है तो उसे अपने लिए न सही अपने बच्चे के लिए हालातों से समझौता करके बैठ जाना पड़ जाता है।"1स्त्रियों पर अत्याचार, बलात्कार, अपमान आदि से संबंधित घटनाएं समाज में नई नहीं है बहुत पहले से ही नारियों पर जुर्म एवं अत्याचार की घटनाएं होती आ रही है। हरिराम मीणा की कलम से - "दल्ली के भीतर घुसते ही सूबेदार हिंसक जानवर की तरह शिकार पर हमला करने के लिए तैयार बैठा था। दल्ली को देखते ही उसने दरवाजा बंद कर दिया। दल्ली चीखी- चिल्लाई, प्रतिरोध भी डटकर किया था। इस जरख से मुझे ब ssssचाssss लो s ?...दल्ली का बाप पांच्या रात भर ढूंढता रहा अपनी प्यारी बेटी को। नाहर मगर के नीचे बहने वाले नाले कीचड़ में दल्ली की लाश मिली थी अगली सुबह।"[12]उपर्युक्त प्रसंग द्वारा इस बात की पुष्टि होती है कि पुरूष की मानसिकता कितनी कुत्सित है जिसे अपने स्वार्थ के आगे कुछ भी दिखाई नहीं देता, एक कामांध पुरूष कैसे किसी अबला और बेबस की हत्या करने से भी नहीं घबराता । समाज में कुछ पुरूष भी होते हैं जिनके जीवन का कोई मूल्य नहीं होता। वे न केवल आदिवासी स्त्री वरन अन्य समाज की स्त्री के प्रति भी मात्र भोगवादी दृष्टिकोण रखते हैंसमाज में कोई भी पारंपरिक नियम कानून बनाने के पीछे कोई सकारात्मक कारण और मंशा होती है, पर वह गलत तब कहलाती है जब लोग उसका गलत फ़ायदा उठाने लग जाते हैं। समाज में हर तबके में बेटा- बेटी में भेदभाव देखने को मिलता है। बेमेल विवाह स्त्रियों के साथ पुरुषों के लिए भी अभिशाप तुल्य है, पर पुरुषों के पास विकल्प होता है जबकि स्त्रियों के पास कोई विकल्प नहीं। स्त्रियां आजीवन अभिशाप तुल्य बेमेल विवाह का बोझ ढोती हुई जीवन गुजार देती हैं।"यह कौन सी आज की बात है ? हमारे जमाने में तो इस तरह की जबर्दस्ती वाली नियदा में न सिर्फ स्त्रियों को कष्ट भोगतेदेखा है बल्कि कई बार मर्दों को भी इस तरह के बेमेल विवाह का अंजाम भोगते देखा है। हाँ! यह बात अलग है कि मर्दों के पास इस समस्या का हल होता हैवे खुद ही अपनी समस्या का समाधान निकाल लेते हैं। वे आगे चलकर अपनी पसंद की लड़की से दूसरी शादी रचा ही लेते हैं। पहली वाली बीवी के घर पर रहने के बावजूद भी वे ऐसा करते हैं। उन्हें कोई नहीं रोक सकता।"[13]सामाजिक रीति रिवाजों और नियमों का हवाला देकर किसी भी प्रथा का विवाह त्रासदीपूर्ण ही होता आया है चरणसिंह पथिक की कहानी 'बक्खड़' एक बेहतरीन कहानी है जिसमें राजस्थान के करौली सवाईमाधोपुर व भरतपुर जिलों के अंचल में नाता प्रथा के द्वारा स्त्री की, अप्रत्यक्ष रूप से खरीद फ़रोख़्त के माध्यम से पैदा होने वाली नारी त्रासदी का मार्मिक चित्रण किया गया है। नाता प्रथा में किन्हीं कारणों से पति -पत्नी के पृथक होने के बाद परित्यक्ता अन्य पुरूष को दे दी जाती है। इसके बदले में पूर्व पति के परिवार द्वारा नए पति- पुरूष के परिवार से सहमति के आधार पर धन वसूल किया जाता है। इस वसूली के दौरान कई प्रकार के झगड़े -फसाद भी होते रहे हैंगाँव बनाम गाँव तथा गौत्र बनाम गौत्र के मध्य विवाद की स्थिति पैदा हो जाती है। इस सारे झंझट में त्रासदी भुगतनी पड़ती है स्त्री को जिसे एक वस्तु के रूप में समाज देखता है और यह वही समाज है , जो पुरुष वर्चस्व से बंधा हुआ है।अपराधिता' खण्डकाव्य में अम्बा का दुख, हरण से उत्पन्न क्लेश, शाल्व और भीष्म के द्वारा उसे न अपनाया जाना अम्बा की प्रतिहिंसा का कारण बनता है। नारी की विवशता का चित्रण अम्बा के रूप में इस प्रकार हुआ है -

" कभी व्यक्ता,कभी भोग्या कभी वैधव्यहत होकर
पुरुष की कामना पर ही रहे मातृत्व-हित निर्भर
नहीं है मूल्य उसकी मुग्ध कोमल भावना का कुछ
पुरुष पशु या उसे उपहार में दे दे जिसे चाहे।"[14]

इस पुरुष प्रधान समाज मे सारे नियम - कानून पुरुषों द्वारा ही बनाये हुए हैं और फिर उन नियमों का पालन करे स्त्रियाँ ही। सब कुछ अपने ही पक्ष में कर ली इन

मर्दों ने और अन्याय सहे स्त्रियाँ। सहती भी रहे और उन अन्यायों के खिलाफ आवाज भी न उठाए। पुरुष प्रधान समाज पर कटाक्ष करती हुई लेखिका लिखती है- "वाह रे ! पुरुष प्रधान समाज! जुल्म तो ऐसे कर रहे हो स्त्रियों पर जैसे स्त्रियों के कोख से पैदा न होकर कहीं आसमान से टपके हो जैसे।"[15]

स्त्रियों के भीतर ही भीतर टूटने का मंद स्वर सविता बनर्जी की कविता की इस पंक्ति में देखा जा सकता है-

"बुझ रहा है कुछ/अंदर ही अंदर जलने के /क्रम में।"[16]

'नयावर्ष' शीर्षक कविता की निम्नलिखित पंक्तियों में कवयित्री ने महीनों के फंदो के प्रतीक रूप से दम घुटने और यातना का जीवन जीने का चित्र प्रस्तुत किया है-

"फिर आ गया वह सीखने /डालकर बारह फंदे/सलाई पर /फंदे घटाना।।"[17]

आदिवासी स्त्रियों का संसार बहुत विस्तृत है। आदिवासी स्त्रियाँ समाज के बीच रहकर व हाशिए का जीवन जीने को विवश होती हैं। रीति रिवाजों एवं परंपराओं के नाम पर आजीवन धार्मिक एवं सामाजिक कुरीतियों का निर्वहन करती है। न चाहते हुए भी आने वाली पीढ़ी को भी जन्म दर जन्म इन कुरीतियों को मानने के लिए बाध्य होना पड़ता है।

"मेरी माँ के चूल्हे में /आग /
बुझती नहीं/दबा दी जाती है.....
मेरी माँ ने /मुझे/उसी चूल्हे पर
रोटी सेंक कर खिलाई है
जिसमें आग कभी नहीं बुझती।"[18]

यानी गर्म राख के आगोश में सांस लेती सुबकती चिंगारी की परम्परा माँ ने आगे थमा दी, रोटी के साथ, अर्थात माँ ने चिनगारी और रोटी के साथ - साथ त्रासद अनुभवों की परंपरा भी बेटी को सौंप दी , जिसे वह अपनी बेटी को थमायेगी। इस प्रकार पीढ़ी दर पीढ़ी नारी इन त्रासदियों को भोग रही है।'उस रात की सुबह' उपन्यास की लेखिका स्त्री के अस्तित्व के खतरे में होने के लिए स्वयं स्त्री को ही जिम्मेदार मानती है। यदि समाज मे सभी स्त्रियाँ एकजुट होकर एक दूसरे की मदद करे, स्त्री जाति की सुरक्षा और अपने अस्तित्व की लड़ाई वह स्वियं लड़े, यदि स्त्रियाँ खुद सक्षम होकर एकजुट हो जायेंगी तो आधी दुनिया खुद ही मजबूत हो जायेगी। स्त्रियों में यदि आपस मे बहनापा अर्थात बहनों के जैसे संबंध हो जैसे पुरुषों में आपसी भाईचारा तो स्वतः ही नारी सशक्तिकरण सही मायने में होगी। आज स्त्रियों का अस्तित्व और उसकी ज़िन्दगी से जुड़ी सुरक्षा का सवाल ही एक बड़ा प्रश्नचिह्न है। समाज को पतन की राह से बचाने के लिए और एक बेहतर समाज के निर्माण के लिए स्त्री अस्तित्व का होना बेहद जरूरी है।" ऐसे समाज में तो सभी स्त्रियों को एकजुट होकर एक दूसरे की मदद करनी चाहिए न कि एक-दूसरे को उजाड़ते फिरना है। आखिर हम स्त्रियाँ दुनिया की आधी आबादी जो कहलाती हैं।अगर स्त्रियों में आपस में बहनापा हो जैसे मर्दों में आपसी भाईचारा होता है तो स्वतः ही नारी सशक्तिकरण सही मायने में होगी। लेकिन अक्सर ऐसा होता नहीं है बल्कि अगर मैं कहूँ की स्त्रियों में आपसी बहनापा बिल्कुल न ही देखने को मिलती है, तो भी शायद गलत न कहूँ।"[19]लेखिका उपन्यास के माध्यम से समाज से सवाल करती नजर आती है कि अर्थ और स्त्री में अर्थ का प्रभाव ज्यादा क्यूँ है? स्त्री का अस्तित्व अर्थ के सामने कुछ भी नहीं है ? जिसे इस प्रसंग में देखा जा सकता है -उफ्फ ! दस सबअ/मिथुन क्या स्त्री का मूल्य सिर्फ दस मिथुन ही होता है ? क्या स्त्री का अपना कोई अस्तित्व नहीं होता ? क्या स्त्री और मिथुन में कोई अंतर नहीं होता ?"[20]बेटे-बेटियों में भेदभाव के लिए धिक्कारती हुई कहती हैं-"धिक्कार है ! ऐसे सामाजिक और पारंपरिक नियम और नीतियों पर जो अपने ही बेटे -बेटियों में इतना भेदभाव करना सिखाते हैं।"[21]

नारी शोषण भारतीय समाज मे परम्परा के नाम से लगा एक रोग है, जो आधुनिक काल में भी सामाजिक स्वास्थ्य को जर्जर बना रहा है। आज़ादी मिलने के कई सालों बाद भी आदिवासी स्त्री पढ़-लिख नहीं पायी है। शहर से दूर गांव में रहने के कारण आदिवासी नारियों के जीवन में किसी प्रकार का बदलाव नहीं दिखायी देता है। आज भी समाज के तथाकथित उच्चवर्गीय लोग आदिवासी नारियों का चारों ओर से शारीरिक एवं मानसिक शोषण करते हैं। उनके खिलाफ आवाज़ उठाने की हिम्मत आज भी आदिवासी नारी में दिखाई नहीं देती। वह सब कुछ चुपचाप सहती है यह आज का यथार्थ है।

"क्या वह विद्रोह नहीं कर सकती/उस पूरी व्यवस्था के खिलाफ
जिससे उसका जीना/एक यन्त्रणा से अधिक/और कुछ नहीं है...."[22]

******

संदर्भ :-

1.आत्मदान, बलदेव वंशी, पृष्ठ संख्या- 21-22
2.भारतीय साहित्येतिहास में महिला रचनाकारों का योगदान, डॉ. सरोजनी पाण्डेय, पृष्ठ स- 154
3.उस रात की सुबह, भूमिका से , तुम्बम रीब जोमो 'लिली'
4.आदिवासी साहित्य विमर्श, लेखिका - वंदना टेटे, संपादक- गंगा सहाय मीणा, पृष्ठ संख्या-197
5.जो इतिहास में नहीं, राकेश कुमार सिंह, पृष्ठ संख्या- 51-52
6.डांग, हरिराम मीणा, पृष्ठ संख्या-78
7. उस रात की सुबह, तुम्बम रीबा जोमो'लिली', पृष्ठ संख्या-19
8.वही, पृष्ठ संख्या-23
9.'आग' कविता, उषा भसीन, पृष्ठ संख्या-154
10. भारतीय साहित्येतिहास में महिला रचनाकारों का योगदान, डॉ. सरोजनी पाण्डेय, पृष्ठ सं-154
11. उस रात की सुबह, तुम्बम रीबा जोमो'लिली', पृष्ठ संख्या-49
12.धुणी तपे तीर, हरिराम मीना, पृष्ठ संख्या- 345
13.उस रात की सुबह, तुम्बम रीबा जोमो'लिली', पृष्ठ संख्या-68
14. अपराधिता, रामेश्वर शुक्ल अंचल, पृष्ठ संख्या-34
15.उस रात की सुबह, तुम्बम रीबा जोमो'लिली',पृष्ठ संख्या-24
16. भारतीय साहित्येतिहास में महिला रचनाकारों का योगदान, डॉ. सरोजनी पांडेय, पृष्ठ सं-213
17. वही, पृष्ठ संख्या-213
18. वैचारिकी संकलन: मई 1996, डॉ.बलदेव वंशी का लेख 'आधी दुनिया का जलता संविधान', समकालीन कविता: कवयित्रियों का अवदान, पृष्ठ संख्या- 75
19. उस रात की सुबह, तुम्बम रीब जोमो'लिली', पृष्ठ संख्या- 82
20. वही, पृष्ठ संख्या- 63
21.वही, पृष्ठ संख्या - 54
22. अग्निलोक, भरत भूषण अग्रवाल, पृष्ठ संख्या- 55

आदिवासियों की प्रकृति पूजा का पर्यावरण संरक्षण में योगदान

हिमांशु प्रभाकर
शोधार्थी
समाजशास्त्र
एम.बी.पी.जी.महाविद्यालय, हलद्वानी
(कुमाऊँ विश्वविद्यालय,नैनीताल)

सारांश - आदिवासी समाज वह समाज है जो जंगलों अथवा प्राकृतिक स्थानों में निवास करता है।यह समुदाय प्रारम्भ से ही इस क्षेत्र में रहता रहा है इसलिए इन्हें देशज या मूलवासी भी कहा जाता है।जंगली क्षेत्रों में रहने के कारण कुछ लोग इन्हें पिछड़ा कहते हैं लेकिन ये स्वयं वनों के बीच रहकर बहुत संतुष्ट पाते हैं।आज का जो तथाकथित विकसित समाज है उसमें सबसे बड़ी समस्या वातावरण के क्षरण की है।इस समस्या पर चर्चा हर कोई करता है लेकिन इसके निदान के बारे में कोई पहल नहीं करता है।इसकी मुख्य वजह है विकास की अंधी दौड़ में लोगों के भागमभाग की स्थिति।लेकिन आज भी पर्यावरण के संबंध में कोई सोचता है या उसके विनाश को रोकने की पहल करता है तो वह है आदिवासी समुदाय।आज विश्व के किसी भी क्षेत्र में सघन वन दिखाई पड़ते हैं इसकी मुख्य वज़ह वहाँ आदिवासियों का संकेन्द्रण है।आदिवासी जिस भी इलाके में निवास करते हैं उस क्षेत्र में वन और वन्यजीव स्वयं को सुरक्षित महसूस करते हैं।आदिवासियों का जल,जंगल और ज़मीन के प्रति इस कदर आसक्ति है कि वे इसे अपने आराध्य के रूप में पूजते हैं।

शब्द कुंजी - आदिवासी,प्रकृति पूजा,पर्यावरण संरक्षण,वन संरक्षण

प्रस्तावना - किसी भी समाज में कई प्रकार के लोग रहते हैं। जिनकी अपनी जीवन शैली होती है।कुछ लोग आधुनिकता और समृद्धि के बीच सामंजस्य बैठाकर समाज की मुख्यधारा में बने रहते हैं तो कुछ लोग विकास की दौड़ में पिछड़ जाते हैं।समाज में ऐसे कई समुदाय हैं जो ख़ूब विकसित हैं तो कई अविकसित।इनके पिछड़ेपन के लिए एकमात्र कारण संसाधन की विपन्नता न होकर अन्य कारण भी हैं।विकास की उपर्युक्त अवधरणा आदिवासी समुदाय के परिप्रेक्ष्य में बिल्कुल सही नहीं है क्यों वह स्वयं तथाकथित विकसित समाज से दूर प्रकृति के बीच रहकर ही संतुष्ट रहते हैं।

भारत के विभिन्न हिस्सों में आदिवासी समुदाय निवास करते हैं।इस समुदाय के लोगों में कई तरह की समानताओं के बावजूद भी इनकी अपनी व्यक्तिगत पहचान होती है।इस समुदाय को अन्य विभिन्न नामों जैसे- आदिम,जंगली, बर्बर, वनवासी, गिरिजन इत्यादि से संबोधित किया जाता है। लेकिन जब इनके अस्तित्व और स्वेच्छा की बात करें तो ये स्वयं को देशज या आदिवासी कहलाना ही पसंद करते हैं और गौरवान्वित महसूस करते हैं।

1943 में प्रकाशित अपनी पुस्तक'ऐब-ओरिजिनल' में वेरियर एल्विन ने लिखा है कि "आदिवासी भारत वर्ष की वास्तविक स्वदेशी उपज है,जिनकी उपस्थिति में प्रत्येक व्यक्ति विदेशी है।ये प्राचीन लोग जिनके नैतिक अधिकार और दावे हजारों वर्ष पुराने हैं।वे सबसे पहले यहाँ आये।"[1]यह परिभाषा बहुत हद तक संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 1972 में घोषित की गई 'देशज' लोगों की उस अवधारणा को बल देती है जिसमें कहा गया है कि "एक देश की वर्तमान सीमाओं में पूरी तरह या आंशिक रूप से इस समय रहने वाले लोगों के वंशजों से लोग बने हैं जब दूसरी संस्कृति या जातीय मूल के लोग दुनियाँ के दूसरे भागों से वहाँ आये,उन्हें जीतकर या किसी दूसरे तरीके से उनपर हावी हो गए, उन्हें गैर-प्रभावी या उपनिवेशी स्थिति तक सीमित कर दिया।जो आज अपनी विशेष सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक परंपराओं एवं मान्यताओं से एकरूपता बनाकर जीवन चला रहे हैं। बजाय उस देश की संस्थाओं के, जिसके वे राज्य संरचना के तहत एक हिस्सा हैं।" भारत में जिन समुदाय को आदिवासी या जनजाति कहा जाता है, भारतीय संविधान में उन्हें 'अनुसूचित जनजाति' कह कर संबोधित किया गया है, किन्तु कहीं भी इस शब्द को परिभाषित नहीं किया गया है।संविधान के अनुच्छेद 366(25) के अनुसार अनुसूचित जनजातियों से तात्पर्य वैसे जनजातीय समुदाय से है जिन्हें संविधान के अनुच्छेद 342 के तहत केन्द्र सरकार की सिफारिश के आधार पर महामहिम राष्ट्रपति के द्वारा अनुसूचित जनजाति के रूप में अधिसूचित किया गया है। भारतीय संविधान के आधार पर पहली बार सन 1950 में अनुसूचित जनजातियों को सूचीबद्ध किया गया है।

इस सन्दर्भ में प्रो.वीर भारत तलवार कहते हैं कि "मैं कहना चाहूँगा कि बाहर के लोग अपना भ्रम छोड़ दें कि आदिवासी समाज बहुत पिछड़ा हुआ है।वे आर्थिक रूप से पिछड़े हो सकते हैं, लेकिन उन्हें सांस्कृतिक रूप से पिछड़ा कहना विकास की हमारी ख़ास अवधारणा की देन है। यहाँ सरलता को और स्वाभाविकता को पिछड़ा हुआ समझा जाता है और जटिलता तथा सभ्यता के आवरणों को विकसित होने का लक्षण समझा जाता है।आदिवासियों की संस्कृति को पिछड़ा समझना बिल्कुल वैसा ही जैसा गोरी चमड़ी वालों का काले लोगों को असभ्य समझना।"[3]

उद्देश्य–प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य आदिवासियों द्वारा की जाने वाली प्रकृति पूजा का परोक्ष रूप से पर्यावरण संरक्षण में दिये जाने वाले योगदान को जानना है।

प्रकृति पूजा - जैसे समाज के अन्य लोग पर्व-त्योहार मनाते हैं, ठीक उसी तरह आदिवासी भी त्योहार मनाते हैं।झारखण्ड में आदिवासियों का एक महत्वपूर्ण पर्व सरहुल है।इस त्योहार में प्रकृति अर्थात सखुआ के वृक्ष की पूजा कर नव वर्ष का आगाज़ होता है।हिन्दी के चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की द्वितीया को सरहुल की पूजा होती है।पूजा के एक दिन पहले पाहन राजा और पइनभोरा व्रत रखकर पंजरी मिट्टी पूजा के लिए लाते हैं।पइन भोरा गांव के नदी या तालाब से नए घड़े में पानी भरकर गांव के सरना स्थल में रखता है।दूसरे दिन पाहन राजा, पइन भोरा और गांव के लोग उपवास कर अपने-अपने घर में पूजा करके सरना स्थल की ओर लोटे में पानी लेकर पूजा करने जाते हैं। सरहुल, साल के फूल के माध्यम से सारी प्रकृति के नवरूप का स्वागत करता है।इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आदिवासी लोगों के जीवन- शैली, रहन-सहन, रीति-रिवाज़, सांस्कृतिक मूल्य-मानदण्ड, सभी में किसी-न-किसी रूप में प्रकृति को समावेशित किये रहता है। जैसे भारत देश के आदिवासी प्रकृति को अपने अनुष्ठानों में प्रमुखता से रखते हैं, वैसे ही अन्य देशों जैसे-पेरू देश के क्वेकचुआ आदिवासी का एंडीन अनुष्ठान भी इस मूल विश्वास पर आधारित है कि समस्त सांसारिक वस्तुएँ या आध्यात्मिक जीवन शक्ति में ऊर्जा मौजूद है।इस ऊर्जा को संतुलित अवस्था में बनाये रखने की जरूरत है। यह ऊर्जा पेंड़-पौधे, नदी, पहाड़, झील, झरने, चट्टानें सहित अन्य सभी प्राकृतिक रूप में मौजूद हैं। विश्व के समस्त आदिवासी समुदाय में जो एकरूपता देखने को मिलती है वह यह है कि वे विषम परिस्थितियों में रहकर भी प्रकृति के हर शय के साथ साक्षात्कार करना चाहता है। यह समुदाय पर्यावरण के प्रबंधन और संरक्षण में अपनी महती भूमिका निभाता है।यह समुदाय भली-भांति यह जानता है कि उसे प्रकृति के सद्भावपूर्ण तरीके से कैसे जीना है।"[4]

सरना धर्म - सरना धर्म झारखण्ड के आदिवासियों का आदि धर्म है, परंतु अन्य राज्यों में इसे अन्य नामों से जाना जाता है। इस धर्म का तात्पर्य यह है कि जब आदिवासी समुदाय आदिकाल में जंगलों में निवास करता था तब उस वक़्त वह प्रकृति के नियमों को समझता था और उन्हीं नियमों का अनुसरण कर आगे बढ़ता था। प्राचीन काल जो आदिवासी समाज में जो पूजा-पद्धति व परम्परा विकसित हुई वह आज भी विद्यमान है।चूंकि आदिवासी समुदाय प्रकृति पूजक है, अतः सरना धर्म के पूजा स्थल पर कोई मन्दिर या चबूतरा नहीं बना होता बल्कि कई पेड़ों के बीच ही उपासना स्थान बना दिया जाता है जहाँ लोग सामूहिक रूप से पूजा करते हैं। सरना धर्म को मानने वाले लोग पेंड-पौधे,जंगल, पहाड़ इत्यादि प्राकृतिक सम्पदा की ही पूजा करते हैं।प्रकृति पूजक होने के नाते आदिवासी समुदाय अपने सभी पर्व-त्योहारों में, जैसे-सरहुल में साल अथवा सखुआ के पेंड के फूल, कर्मा उत्सव में कर्म की डाली, कदलेटा में भेलवा का तथा हरियाली में सभी अनाज की पूजा की जाती है।इससे इस बात की प्रतीति होती है कि सरना धर्म आदिवासियों के अस्तित्व का रक्षक ,आध्यात्मिक जीवन दर्शन और सामाजिक परम्पराओं का प्रतीक है।

प्रकृति आदिवासियों के जीवनशैली में इस कदर रचा-बसा है कि इसे इनके जीवन के पहलू से किसी भी रुप में अलग नहीं किया जा सकता है। आदिवासियों की अर्थव्यवस्था भी प्रकृति पर ही निर्भर रहती है। इसलिए आदिवासी प्राकृतिक संसाधनों का दोहन न कर अपने जरूरत के हिसाब से इसका उपयोग करते हैं। यदि किसी व्यक्ति को जलावन या किसी अन्य आवश्यकता हेतू लकड़ी की जरूरत पड़ती है तो वह सर्वप्रथम पेड़ के समक्ष हाथ जोड़कर खड़े होकर प्रणाम करता है। तत्पश्चात अनुमति लेकर अपनी आवश्यकता के हिसाब से लकड़ी काटता है।उसके द्वारा ऐसा किया जाना प्रकृति के प्रति समर्पण और सम्मान का भाव प्रकट करता है।"[5]विश्व संसाधन संस्थान के एक प्रतिवेदन के अनुसार, दुनिया भर में जंगल वहीं बचे हैं जहाँ आदिवासी का संकेन्द्रण है। यह समुदाय आज भी ख़ुद को जल,जंगल और ज़मीन से स्वयं को जोड़कर रखा है। पर्यावरण संरक्षण में जितना समर्पण इस समुदाय का रहता है, शायद ही किसी अन्य समुदाय में देखा जाता है। आदिवासी समुदाय के लोगों का कहना है कि जहाँ एक ओर दुनियाँ में पर्यावरण को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए अपना सबकुछ न्योछावर करते हैं तो अब हमें ही जंगल से बाहर किया जा रहा है। वर्षों से रह रहे अपने ही घर में रहने के लिए और अपने अधिकारों को लेकर लड़ाई लड़नी पड़ रही है।

वर्तमान समाज में आदिवासी समुदाय जंगलों के उजड़ने से अपने अस्तित्व के संकट से गुजर रहा है,निःसहाय महसूस कर रहा है। "सरकार और ठेकेदारों के युगलबंदी से जंगल नष्ट किये जाने के कारण वनों के आश्रय में रहने वाले इस समुदाय का जीवन विश्रृंखलित हो चुका है। प्राकृतिक संसाधनों पर जीवन आधारित होने के कारण फल-फूल, कंद-मूल, वनौषधि इत्यादि नष्ट हो जाने से इनके जीवन का मूलाधार ही नष्ट हो चुका है। इन्हें अपना जीवन और अस्तित्व को बचाये रखने के लिए अपने प्राकृतिक आवास को छोड़कर शहरों की ओर रुख़ करना पड़ रहा है। जंगल छूट जाने के कारण आदिवासियों को जीवन के मानवीय मूल्यों की संस्कृति को छोड़कर मात्र जिन्दा रहने के लिए जातीय ऊँच-नीच और शोषण वाली संस्कृति में प्रवेश कर जीवन-निर्वाह करना पड़ रहा है।"[6]

आज़ादी के बाद भारत की हजारों परियोजनाओं के कारण 106 करोड़ आबादी विस्थापित हुई जिसमें 40 प्रतिशत आबादी आदिवासियों की थी। केवल बाँध परियोजना की वजह से भारत की करीब 50 से 70 लाख आदिवासी जनसंख्या का विस्थापन हुआ"। आदिवासियों के रिहायशी क्षेत्रों में आज़ादी प्राप्ति के दो सौ वर्ष पहले जितनी पर्यावरण की क्षति हुई थी,उससे कहीं अधिक पर्यावरण आज़ादी के बाद 50 वर्षों में हुई। प्रकृति पर नियंत्रण तथा प्रकृति का निर्ममतापूर्वक दोहन करने वाली आबादी का प्रवेश जनजातीय क्षेत्रों में हो चुका है। आज आदिवासी समाज को ही जंगल विनाश के लिए जिम्मेदार ठहराया जा रहा है। इसके फलस्वरूप सरकार राष्ट्रीय उद्यान, अभ्यारण्य, सैंक्चुअरी, टाइगर रिजर्व आदि विभिन्न नामों से वनों को आरक्षित कर रही है तथा आदिवासी समुदाय को जंगलों से खदेड़ा जा रहा है। जहाँ आदिवासी हैं, वहीं वन शेष हैं।

तीव्र गति से आगे बढ़ाई जा रही भीमकाय जलविद्युत परियोजनायें, खदान व औद्योगिक इकाइयों, अनियोजित वनरोपण, नकदी फसल, कृषि उद्योग, पुनर्स्थापन योजनायें, शरणार्थी, शहरीकरण, राष्ट्रीय राजमार्ग परियोजना, पुनर्नवीनीकरण कार्यक्रम, जैविक सुरक्षा क्षेत्र, बाज़ारू अर्थव्यवस्था का फैलाव, सरकारी विकास परियोजनायें, बाँध परियोजनायें आदि ने एक तरफ़ आदिवासी समाज का विस्थापन अनिवार्य बना दिया है।

1990 के दशक की नई आर्थिक नीति, अर्थात वैश्वीकरण,उदारीकरण और निजीकरण ने न केवल आदिवासी समाज की संस्कृति, बल्कि समस्त भारत की संस्कृति के समक्ष चुनौती पेश कर दी है। भूमंडलीकरण ने विस्थापन के स्वरूप को विकृत और वीभत्स बना दिया है। आदिवासियों के जीवन के उत्थान के नाम पर विकास परियोजनाओं की झड़ी लग गई है। आज यह समुदाय 'विकास' शब्द का नाम सुनकर सिहर जाता है। जैसे ही उनके कानों तक विकास योजना से संबंधित शब्द पहुँचते हैं तो वह असहज हो जाता है और उसके दिमाग़ में यह बात कौंधने लगती है कि अब संभवतः कोई नई समस्या खड़ी होने वाली है।दिन-प्रतिदिन आदिवासी समाज अपना मौलिक स्वरूप खोता जा रहा है। विकास के बदले विस्थापन,सरकारी विकास परियोजनाओं में दूरदर्शिता का अभाव,आदिवासी समाज की जीवनशैली को सही रूप में नहीं समझ पाना आदि ऐसे कई महत्वपूर्ण कारक हैं जो आदिवासी समाज की पहचान के लिए संकट बने हुए हैं।

आदिवासी समुदाय,प्रकृति और मनुष्य के आपसी संतुलन पर आधारित अर्थव्यवस्था को ही स्वीकार करते हैं न कि विकास की एकतरफा अवधारणा को।ऐसा इसलिए क्योंकि वे प्रकृति का संतुलन बिगड़ने नहीं देना चाहते।अतः आज के पूँजीवाद और उपभोक्तावाद के दौर में आदिवासी समुदाय की आर्थिक स्थिति दयनीय हो गई। इनकी स्थिति में सुधार के लिए पहले इनके अर्थतंत्र तथा उसकी अवधारणा को समझना होगा, अन्यथा निश्चय ही आनेवाले समय में आदिवासी समाज और उसकी सामूहिकता मिथक बन कर रह जायेगी।

निष्कर्ष -

उपर्युक्त विश्लेषण और विद्वतजनों के दिए गए विचार के उपरांत कहा जा सकता है कि आदिवासी और पर्यावरण के बीच अन्योन्याश्रय संबंध है।किसी एक के बिना दूसरे का वज़ूद ख़तरे में है क्योंकि आदिवासी वहीं रहते हैं जहाँ वन हो और वन वहीं पाये जाते हैं जहाँ आदिवासियों का संकेन्द्रण होता है। अतः पर्यावरण को सुरक्षित और स्वच्छ रखना है तो प्रकृति को बचाना होगा और प्रकृति को बचाना है तो आदिवासियों के अस्तित्व को बचाये रखने होगा क्योंकि प्रकृति के असली संरक्षक वही हैं।

******

सन्दर्भ सूची -

1. एस. एल.दोषी, समकालीन मानवशास्त्र, रावत प्रकाशन, जयपुर, 2009
2. वीर भारत तलवार,झारखंड के आदिवासियों के बीच,भारतीय ज्ञानपीठ,नई दिल्ली 2008
3. www.gaonconnection.com
4. www.prabhatkhabar.com, 4 nov. 2020
5. http:countrystudies.us/india/57.htm
6. रमणिका गुप्ता (सम्पादक), आदिवासी कौन ? राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016

किन्नर विमर्श

सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए बेचैन 'थर्ड जेंडर'

डॉ.अरविंद अंबादास घोडके
यशवंतराव चव्हाण महाविद्यालय, अंबाजोगाई
सहाय्यक प्राध्यापक हिंदी विभाग
मो.8208918100

भूमिका:-"सबसे बड़ा रोग क्या कहेंगे लोग" दिशा पिंकी शेख यह वाक्य भारतीय सामाजिक व्यवस्था और भारतीय मनुष्य का यथार्थ बोध करता है। मनुष्य समाज में रहता है, समाज मनुष्य से बनता है।प्राचीन काल से समाज सामाजिक स्थैर्य बनाये रखने के लिए के लिए सामाजिक मान्यताओं का निर्माण करता है। तथा मनुष्य सामाजिक मान्यताओं को अपनाकर अपने आप को समाज का हिस्सा बना लेता है। आहार, निद्रा और मैथुन को सामाजिक मान्यताओं में बांधकर इन जरूरतों का सामाजिक नियमन किया जाता है। किंतु भारतीय समाज सामाजिक नियमन एकांगी और पुरुष वर्चस्ववादी दिखाई देता है। सदीयो से लेकर आज तक भारतीय समाजव्यवस्था पर पुरुष प्रधान मानसिकता का प्रभाव अधिक दिखाई देता है। पुरुष प्रधान सामाजिक व्यवस्था में पुरुष हित के अनुरूप सामाजिक मान्यताओं का निर्माण कर प्रतिष्ठा, नैतिकता जैसे बंधन में बांधकर स्त्री को बांधकर भारतीय नारी का सदियों से शोषण करता आया है। परंपरा, प्रतिष्ठा, नैतिकता आदि के बहाने सदियों से पुरुष मानसिकता भारतीय समाज व्यवस्था में अलग अलग तरीके से शोषण करती हुई दिखाई देता है। अपने कलेजे के तुकडे को सामाजिक प्रतिष्ठा के डर से मा - बाप भी उसे अपने से दूर करने के लिए मजबूर दिखाई देते है। इस शोध आलेख में समाज के मुख्यधारा से दूर हास्य पर रहने वाले किन्नर, थर्ड जेंडर की सामाजिक प्रतिष्ठा में बेचैन जनजीवन का चित्रण साहित्य के माध्यम से किया जाएगा।

शब्द:... तृतीय पंथी, खोजा, किन्नर, नपुंसक, थर्ड जेंडर ,कोजा, मादा , बाईक्या, गे, ट्रांसजेंडर , हिजड़ा, सामाजिक परंपरा, प्रतिष्ठा, नैतिकता , पुरुष वर्चस्ववादी, सामाजिक मान्यता, परंपरा, प्रतिष्ठा, नैतिकता,आत्मभान, शोषित, वंचित , अपमानित, आत्मसम्मान, दृष्टिकोन, चक्रव्यूह आदि।

उद्देश: आधुनिक भारतीय समाज मे आज भी तृतीयपंथी की क्या दिशा और दशा है ? इसका यथार्थ चित्रण करना इस शोध आलेख का उद्देश है। भारतीय समाज मे हशीए पर रहने वाले तृतीयपंथी लोगों का जीवन समाज के सामने रख कर उनके प्रति समाज का सकारात्मक दृष्टिकोन निर्माण करना मुख्य उद्देश है। सामाजिक व्यवस्था का शिकार बननेवाले तृतीयपंथी लोगों के प्रति सरकार और समाज जे आत्मभान निर्मान करना।

सदियों से लेकर आज तक मनुष्य और समाज एक दूसरे के लिए बने हुए हैं। समाज के अभाव में मनुष्य और मनुष्य के अभाव में समाज की कल्पना भी नहीं हो सकती। किंतु भारतीय सामाजिक व्यवस्था में मनुष्य के लिए समाज है ? या समाज के लिए मनुष्य है? यह बड़ा विवाद का विषय है।क्योंकि मनुष्य के लिए बने हुए समाज में मनुष्य सामाजिक नियमों में ही जीवन जीने के लिए मजबूर दिखाई देता है। समाज और लोग क्या कहेंगे इस डर से मनुष्य अपने अपेक्षाओं का गला बार-बार घोटता हुआ दिखाई देता है। समाज से बहिष्कृत किसी जाने - अन जाने मनुष्य को अपनी मदद की अपेक्षा हो तो भी हम मानवता की दृष्टि से उसकी मदद करना चाहते हैं, हमारी मदद उस मनुष्य के लिए सही और जरूरी है किंतु समाज की दृष्टि से वह गलत है तो हम उसकी मदद करने से दूर भागने लगते हैं। 'मैं हिजड़ा मैं लक्ष्मी' में अनुवादक लिखती है कि, "एक बार भरी दोपहरी में मैं कहीं जा रही थी। अभी घर के नीचे ही थी कि सामने से पंजाबी ड्रेस पहने एक हिजड़ा आते हुए दिखाई दिया। रास्ते से वह और मैं क्रॉस हो ही रही थी कि उसने कहा, दीदी, जरा ही चैन लगाओगी... प्लीज!" उसकी कुर्ते की पीछे की चैन नीचे आ गई थी। मैंने वह लगा दी। उसने मुस्कुराते हुए कहा, 'थैंक यू दीदी' और चला गया.... मैं मुडने ही वाली थी कि तभी मुझे एहसास हुआ कि आसपास के सारे दुकानदार मेरी तरफ देख रहे थे...कैसी है यह औरत... एक हिजड़े की ड्रेस की चैन लगाती है!"[1] उपर्युक्त कथन व्यक्ति के मन में चलने वाले सामाजिक और व्यक्तिगत संघर्ष का सजीव चित्रण है। हमारे समाज में परिवार अपने बच्चों को अपने परिवार से अधिक समाज क्या कहेगा इस बात के डर से अनेक बंधनों में जीने के लिए मजबूर कर देते है।

सामान्य तौर पर देखा जाए तो पुरुष व स्त्री के लिए भी समाज सामाजिक व्यवस्था में जीने के लिए मजबूर कर देता है। किंतु जो न स्त्री है और ना ही वह पुरुष है ऐसे व्यक्ति का जीवन भारतीय समाज में कितना भयानक होगा। परिवार में हिजड़े का जन्म होना सामाजिक व्यवस्था के लिए अप्रतिष्ठित और गलत समझा जाता है। इसलिए समाज के डर से किन्नर को अथवा थर्ड जेंडर को परिवार से दूर सामजिक प्रतिष्ठा की मजबूरी में परिवार वालों को करना पड़ता है। समाज तृतीय पंथी हिजड़ों को खोजा, किन्नर, नपुंसक, थर्ड जेंडर,कोजा,मादा , बाईक्या, गे, ट्रांसजेंडर आदि नामों से पहचानता है और उनका उपहास करता है। सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए व्यक्ति अपने कलेजे के टुकड़े को अपने से दूर करने के लिए मजबूर होता है। इसी सामाजिक प्रतिष्ठा और नैतिकता में सैदियों से तृतीयपंथी जीव का जीवन बेचैन और पीड़ित रहा है। 'यमदीप' उपन्यास में नंदरानी के जन्म पर पिता मेजर समाज के डर से बड़ा दुखी हो जाता है जब उसे पता लगता है कि नंदरानी तृतीय लिंगी है तब वह उदास और दुखी होते हैं। "उसके जन्म पर मेजर साहब फूट-फूटकर रो पड़ते हैं। मेजर साहब!फौज के एक उच्च अधिकारी! देश को दुश्मन से बचाने वाले वीर-जांबाज! एक मेजर के साहस और शौर्य पर तो संदेह हो ही नहीं सकता। बहादुर फौजी! .... और फूट-फूट कर रो रहे हैं वे!!क्यों भला? दुखी है वह अपने दुर्भाग्य पर। जानते हैं इस संतान के कारण उन्हें कदम-कदम पर समाज के सामने लज्जित होना पड़ेगा।"[2] नंदरानी के हिजड़ा रूप के कारण मेजर साहब की समाज में प्रतिष्ठा कम हो जाएगी। लोग उन्हें पग-पग पर लज्जित करेंगे यही सोचकर मेजर साहब दुखी होते हैं। और नंदरानी को नाजबीवी बनने के लिए मजबूर कर देते हैं। भारतीय समाज व्यवस्था में सामाजिक डर के कारण ही अनेक थर्ड जेंडर के नसीब में समस्या का रूप उग्र से अति उग्र रूप दिखाई देता है। मां के गर्भ से जन्म लेने वाला यह जीव आम बच्चों की तरह ही होता है, किंतु उसकी शारीरिक कमियों के कारण उसकी सामाजिक, मानसिक, आर्थिक, शारीरिक अवहेलना की जाती है। उसे मनुष्य के रूप में देखा भी नहीं जाता, ना उसका सही ढंग से पालन पोषण किया जाता है। और ना ही उसे समाज में मान सम्मान दिया जाता है। "मानवाधिकार ! 'तीसरे लिंग' की सबसे बड़ी विडंबना की यह है कि बृहतर समाज उसे मानव ही नहीं समझता, सो उसके कैसे मानवाधिकार ! कदम-कदम पर यह समाज उसके अस्तित्व को रौंदता है, घायल करता है। नाजबीवी और उसके साथियों के साथ समाज के सभी वर्गों का व्यवहार लगभग एक-सा है। उपहास के पात्र है वे। जरा-सा किसी से कुछ कह दें वे तो हिंसक व्यवहार किया जाता है उनके साथ ।" [3] बेजुबान गूंगे प्राणियों पर मानव अधिकार की बड़ी-बड़ी बातें करने वाला यही भारतीय समाज तृतीयपंथी मनुष्य के बारे में उदासीन दिखाई देता है। हिजड़ा अथवा किन्नर भी एक मनुष्य है। उसका भी अपना आत्मसम्मान होगा। उसके भी जीवन जीने के तौर तरीके अपनी आदतें होंगी। संविधान के अनुरूप उसे भी स्वतंत्रता के साथ जीवन जीने का अधिकार प्राप्त होता है। यह बातें इस समाज व्यवस्था के ध्यान में ही नहीं है। तिरस्कार और भय के साथ जीवन जीने वाला किन्नरों जीव सामाजिक प्रतिष्ठा के चक्रव्यूह में फसा हुआ दिखाई देता है।

परंपरा से पुरुष वर्चस्व के लिये पुरुषप्रधान मानसिकता अन्यायी भारतीय समाज व्यवस्था बनाए रखने की कोशिश सदीयो से करती आयी है और इसमें वो सफल भी हुए है। दोगली जीवनी जीने वाले पुरुष व्यवस्था को जीवित रखने वाले लोगों की मात्रा भारतीय समाज में अधिक दिखाई देती है। तृतीयपंथी, बायक्या, छक्का, थर्ड जेंडर, गे आदि नामों से परिचित थर्ड जेंडर सामान्य सामाजिक व्यवस्था में तिरस्कृत दिखाई देता है। किंतु इसी थर्ड जेंडर का उपयोग अपने स्वार्थ के लिए यही समाज जगह जगह पर करता हुआ दिखाई देता है। शुभ कार्य में इनके द्वारा मिला हुआ आशीर्वाद लाभदाई होता है इसलिए उन्हें यही समाज बच्चे के जन्म के अवसर पर हो अथवा शादी

समारोह में निमंत्रित भी करता है। दिन के उजालों में किन्नर समाज से भागता हुआ यही मनुष्य रात के समय में अपने शरीर की भूख को मिटाने के लिए इसी किन्नर का सहारा लेता हुआ भी दिखाई देता है। "गुपचुप तरीके से इनके साथ यौन- संबंध तो यह समाज बना सकता है मगर खुले में हर कोई इनकी छाया से बचना भी चाहता है। इनसे बात करना तो दूर, इनके पास खड़ा होना भी अपमानित होना समझता है।बस में सफर कर रही नाजबीबी के साथ वाली सीट पर कोई बैठना नहीं चाहता। खड़ी हुई सवारियों में से एक पुरुष सवारी को वह बैठने के लिए कहती है तो शेष सभी सवारियां उस पुरुष को उपहास भरी नजरों से देखती है। वह पुरुष भी नाजबीबी के इस प्रस्ताव पर अचकचा जाता है।"[4] समाज की सामाजिक व्यवस्था बलवान लोगों के अनुरूप बदल दी जाती है। प्रतिष्ठित, धनवान लोगों के लिए यही सामाजिक व्यवस्था लचीली होती है किंतु अप्रतिष्ठित और निर्धन लोगों के लिए यही सामाजिक व्यवस्था का कठोर, ताठर रूप धारण करती है। सबसे अधिक मात्रा में इसी समाजव्यवस्था का शिकार होने वाला निर्धन और मध्यम वर्गीय समाज अन्यायी समाजव्यवस्था को बनाए रखने के लिए सबसे अधिक मात्रा में कार्य करने में अग्रसर दिखाई देता है। किन्नर समाज में भी सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए किन्नर समुदाय के अपने नियम बनाए हुए दिखाई देते हैं। उन नियमों का पालन न करने वाला व्यक्ति किन्नर समुदाय से बाहर कर दिया जाता है। किन्नर समुदाय की बात न सुनने वाला किन्नर अप्रतिष्ठित समझा जाता है। अथवा उसे आर्थिक और शारीरिक दृष्टि से दंड भी किया जाता है। 'मैं हिजड़ा मैं लक्ष्मी' आत्मकथन में लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी जी अपने परिवार के मन में सामाजिक डर कैसा घर कर बैठा हुआ था यह बंताने की कोशिश करती है। जब पहली बार हिजड़ा बनकर अपने घर में आती है तब उसे देखकर घरवालों के मन में जो डर दिखाई देता है उस बारे में बारे में वह कहती है कि "घर में घुसते ही मां ने चिल्लाना शुरू किया। पापा भी गुस्सा थे। वह स्वाभाविक ही था। उनकी पहली प्रतिक्रिया थी, अपनी चौदह पीढ़ीयों में ऐसा किसी ने नहीं किया होगा। हमारा खानदान ब्राह्मण का है... उसके मान-सम्मान के बारे में तो कम से कम सोचना चाहिए था। तुम्हारी बहन की शादी हो गई है। उसके घर वाले क्या कहेंगे?"[5]लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी जी का परिवार सुशिक्षित और हिजड़े के रूप में लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी को अपनाने के लिए तैयार था किंतु उनके मन में समाज का बड़ा डर था। समाज क्या कहेगा? समाज में हमारी प्रतिष्ठा कम हो जाएगी। इस बात से लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी जी के पिता और माता दोनों चिंतित दिखाई देते हैं दोनों लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी से कहते हैं "क्यों ऐसा बर्ताव करते हो तुम? तुम्हें क्या प्रॉब्लम है? सब अच्छा तो चल रहा है? पढ़ाई की है, अपने पसंदीदा क्षेत्र में, डांस में कैरियर बना रहे हो। डांस की तरफ ध्यान दो अपनी खुद की जिंदगी के तरफ ध्यान दो,अपनी खुद की जिंदगी की तरफ ध्यान दो। चाहिए तो पैसे ले लो और नया बिजनेस शुरू करो। तुमने जो कुछ किया है, इस वजह से हम तो किसी को मुंह दिखाने के लायक नहीं रहे। पर अपने बारे में सोचो, सामाजिक तौर पर भी यह अच्छा नहीं। इससे बाहर निकलो।" [6] अपने कलेजे के टुकड़े को उसमें कमियां होने के बावजूद भी अपने से दूर करना कोई भी मां-बाप नही चाहते किंतु सामाजिक प्रतिष्ठा में बाप को अपने इन तृतीयपंथी बच्चों को अपने से दूर करने के लिए मजबूर करती हुई दिखाई देती है।

निष्कर्ष :-सामाजिक प्रतिष्ठा के कारण सदीयो से तृतीयपंथी शोषित, वंचित और अपमानित जीवन जीने के लिए मजबूर है। भारतीय समाज व्यवस्था में स्त्री जन्म के प्रति उदासीन भारतीय समाज में थर्ड जेंडर की अवस्था शोचनीय दिखाई देती है। अच्छे खासे परिवार मे जन्म लेने वाला तृतीय लिंगी बच्चा सामाजिक प्रतिष्ठा का शिकार बनता हुआ दिखाई देता है।

******

सदर्भ :-

1. मैं हिजडा मैं लक्ष्मी - लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी-अनुवादक-डॉ. शशिकला राय पृष्ठ - 8
2. अतीत और वर्तमान- तिसरी लिंग की संघर्षगाथा- यमदीप -संपादक डॉ. एम फिरोज खान पृष्ठ -12
3. अतीत और वर्तमान- तिसरी लिंग की संघर्षगाथा- यमदीप -संपादक डॉ. एम फिरोज खान पृष्ठ - 16
4 अतीत और वर्तमान- तिसरी लिंग की संघर्षगाथा- यमदीप -संपादक डॉ. एम फिरोज खान पृष्ठ .17
5. मैं हिजडा मैं लक्ष्मी - लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी-अनुवादक-डॉ. शशिकला राय पृष्ठ - 54.
6. मैं हिजडा मैं लक्ष्मी - लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी-अनुवादक-डॉ. शशिकला राय पृष्ठ 54

भारत में किन्नरों का ऐतिहासिक उल्लेख तथा वर्तमान में प्राप्त अधिकार

मो.जहाँगीर
शोधार्थी, हिंदी-विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय
अलीगढ़ (उ० प्र०) – 202002

शोध-सार- : भारत विविधताओं वाला देश है। जहाँ विभिन्न धर्म, सम्प्रदाय, समुदाय, जाति, प्रजाति एवं वर्ग के लोग निवास करते हैं। इस देश में पुरुष और महिला से अलग एक और वर्ग की उपस्थिति मिलती है, जिसे किन्नर कहा जाता है। किन्नर जैविक (Biological) रूप से पुरुष या महिला होते हैं, लेकिन मानसिक (Psychological) रूप से विपरीत लैंगिक भाव की अनुभूति करते हैं। किन्नरों के ऐतिहासिक प्रमाण सहस्रों वर्ष पूर्व से भारत के प्राचीन साहित्य एवं धर्म शास्त्रों में विद्यमान हैं। प्राचीन पौराणिक साहित्य एवं धार्मिक ग्रंथों जैसे - रामायण, महाभारत, वेद, पुराण, मध्यकालीन साहित्य आदि में किन्नरों की गौरवशाली गाथाओं एवं पदवी प्राप्ति के प्रमाण मिलते हैं, परंतु अँग्रेज़ी शासनकाल में शनैः शनैः किन्नरों की स्थिति दयनीय होती गयी। उन्हें मुख्य धारा के समाज से विस्थापित एवं बहिष्कृत कर हाशिये पर धकेल दिया गया। परिणामस्वरूप इनका विकास अवरुद्ध हो गया। सन् 2014 में किन्नरों के अधिकारों को ध्यान में रखते हुए माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने किन्नरों को अन्य (Other) के स्तंभ से निकाल थर्ड जेंडर (Third Gender) के रूप में मान्यता दी ताकि उन्हें भी मुख्य धारा के समाज के समान सभी अधिकार एवं सुविधाएँ दी जा सकें।

बीज-शब्द (Keywords) : किन्नर, तृतीय लिंगी, हिजड़ा, समाज, धार्मिक ग्रंथ, साहित्य, अधिकार, कानून, सुविधाएं।

प्रस्तावना : किन्नर या हिजड़ा नाम सुनते ही माथे पर बड़ी सी बिंदी, होंठों पे लाली, कानों में झमके या बाली, बदन पर स्त्री परिधान धारण किए हुए, हंसी-ठिठोली कर बधाई लेती या भीख मांगती हुई एक छवि मस्तिष्क के पटल पर उभरती है। यह छवि न तो पूर्णतः नर की होती है और न ही पूर्णतः मादा की, बल्कि महिला के भेष में एक तृतीय लिंगी की छवि होती है। तृतीय लिंगी या तृतीय पंथी वह है, जो अपने लिंग के विपरीत लैंगिक भाव की अनुभूति करता है। यह जन्मजात होते हैं। जैसे-जैसे आयु में वृद्धि होती जाती है वैसे-वैसे यह मानसिक द्वंद्व में उलझते जाते हैं। लैंगिक भाव में आ रहें परिवर्तन को समझ नहीं पाते और अपनी अस्मिता की खोज में उलझे रहते हैं। जन्म के समय जो लैंगिक पहचान मिलती है, उसमें उम्र बढ़ने के साथ आमूल-चूल परिवर्तन होता है और मस्तिष्क विपरीत लिंग की ओर इंगित करता है। ऐसी अवस्था में वह कौन है, स्वयं, यह जानने के लिए छटपटाता है। वह उस रहन-सहन, एवं परिवेश से छुटकारा पाना चाहता है क्योंकि वास्तव में वह पुरुष या महिला की काया में क्रमशः विपरीत लैंगिक भाव लिए हुए महिला या पुरुष या दोनों से भिन्न होता है, जिसे किन्नर या हिजड़ा कहा जाता है। भाषा और स्थानीय बोलियों के अनुसार किन्नरों के अधोलिखित नाम व्यवहृत किए गए हैं।

अन्य नाम : हिजड़ा, ट्रांसजेंडर, थर्ड-जेंडर, तृतीय लिंगी, तृतीय प्रकृति, यूनक, जोगप्पा, अरावनी, शिव-शक्ति, बृहनल्ला, थिरूनंगई, नपुंसकुडु, कोज्जा या मादा, पवैय्या, मंगलमुखी, ख्वाजा सरा, खुसरा, जनखा, नपुंसक, आदि; कुछ अन्य नाम जो अशिष्ट रूप में लिए जाते हैं जैसे - मऊगा, मीठा, मीठा-चावल, खोजा, बायक्या, छक्का, लौंडा आदि।

ऐतिहासिक उल्लेख एवं पृष्ठभूमि : भारत में किन्नरों का इतिहास कोई नया नहीं है, अपितु वृहद प्राचीन और समृद्ध माना जाता है। भारतीय साहित्य में लगभग 10000 वर्ष पूर्व से इनके अस्तित्व का उल्लेख मिलता है। प्राचीन साहित्य एवं धार्मिक शास्त्रों जैसे - रामायण, महाभारत, वेद, अष्टाध्यायी, पुराण, कामसूत्र, मध्यकालीन तथा साहित्य आदि में किन्नरों की गौरवशाली गाथायें कही जाती हैं। तत्कालीन समाज में इनका बहुत आदर-सत्कार था। ऐतिहासिक रूप से हिजड़ों की दीर्घ परंपरा रही और हिजड़ा समाज अपनी संस्कृति से काफी समृद्ध था। प्रसंगों के आधार पर भारत में किन्नरों का उल्लेख –महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित, हिन्दू धर्म के प्रसिद्ध एवं पवित्र ग्रंथ, रामायण (7323 ई० पू०) का काल आज से लगभग 9000 वर्ष प्राचीन माना जाता है। जिसमें किन्नरों के होने का प्रमाण मिलता है। रामचंद्र जी अयोध्या से वन-गमन के लिए प्रस्थान करते हैं। मार्ग में महर्षि भरद्वाज के आश्रम में रात्रि विश्राम करते हैं। प्रातः उठकर महर्षि से अपने वनवास के दौरान रहने हेतु उपयुक्त स्थान का पता पूछते हैं। रामायण के अयोध्याकांड के 54 वें सर्ग में महर्षि भरद्वाज उत्तर देते हुए कहते हैं

-वासमौषमिकं मन्ये तब राम महाबल।
नानानगगणोषेत: किन्नरोरगसेवित: ॥ 39अयोध्याकांड (54 वां सर्ग)

अर्थात् हे महाबली राम ! मेरी समझ में चित्रकूट ही आप के रहने योग्य ठीक स्थान है क्योंकि वहां अनेक प्रकार के वृक्ष हैं, वहां किन्नर और नाग बसते हैं।

महर्षि वाल्मीकि किन्नरों का उल्लेख रामायण के उत्तरकांड में भी करते हैं। वही प्रसंग हिन्दी साहित्य के महाकवि तुलसीदास द्वारा रचित महाकाव्य, रामचरित मानस, में भी मिलता है। प्रसंग है : जब रामचंद्र जी वनवास के लिए प्रस्थान कर जाते हैं। उनका अनुनय विनय कर वापस लाने के लिए भरत और शत्रुघ्न के साथ अयोध्या वासी एवं भक्त-गण चित्रकूट जाते हैं। रामचंद्र जी उन सभी के स्नेह और प्यार को सहर्ष स्वीकार, वापस जाने को कहते हैं। आदेश का पालन कर सभी लोग वापस अयोध्या लौट आते हैं, किंतु किन्नर समुदाय के लोग वापस न लौटकर वहीं सरयू नदी के किनारे छोटी-छोटी कुटियाँ बनाकर रहने लगते हैं। वनवास अवधि पूर्ण कर जब रामचंद्र जी अयोध्या लौटते हैं, तो कुटिया बनाकर रह रहे उस समुदाय के लोगों से संवाद कर वहां ठहरने का कारण पूछते हैं। किन्नर लोग रामचंद्र जी के उक्त कथन को दोहराते हैं कि प्रभु आपने नर और नारी को वापस जाने की अनुमति दी थी, किंतु 'बीच' के लोगों को कोई आदेश नहीं था। महाकाव्य रामचरित मानस में गोस्वामी तुलसीदास जी इस घटना का उल्लेख इस प्रकार करते हैं -

जथा जोग करि विनय प्रनामा, बिदा किए सब सानुज रामा।
नारि पुरूष लघु मध्य बड़ेरे, सब सनमानि कृपा निधि फेरे ॥अयोध्याकांड 318/4

महेन्द्र भीष्म ने भी 'किन्नर कथा' नामक उपन्यास में इसी प्रसंग का उल्लेख किया है। रामचन्द्र जी ने हिजड़ों की इस निस्वार्थ भक्ति से प्रसन्न होकर उन्हें वरदान दिया कि कलयुग में तुम राज करोगे और तुम लोग जिसे भी आशीर्वाद दोगे उसका अनिष्ट नहीं होगा। इसलिए किन्नर 'मंगलमुखी' कहलाते हैं। तुलसीदास जी लिखते हैं -

पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ।
सर्ब भाव भंज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ ॥ उत्तरकांड 87

महाभारत की रचना का काल लगभग 5000 वर्ष प्राचीन है। किन्नरों के अनेक प्रसंग इस काल में भी देखने को मिलते हैं। महाभारत में शिखंडी का उल्लेख मिलता है। शिखंडी को 'अंबा' के नाम से भी जाना जाता है। शिखंडी का जन्म कन्या के रूप में हुआ था, लेकिन लालन – पालन उसका एक पुत्र के रूप में हुआ। इसलिए उसे नपुंसक कहा गया। भीष्म पितामह का वध करने के लिए अर्जुन ने उसी शिखंडी का सहारा लिया था। महारथी भीष्म द्वारा तिरस्कृत राजकुमारी 'अंबा' अपने अपमान का प्रतिकार लेने के लिए कुरुक्षेत्र के महासंग्राम में भीष्म के सम्मुख शिखंडी के रूप में प्रकट हुई। भीष्म ने उसे देखकर कहा कि मैं एक नपुंसक से युद्ध नहीं लड़ सकता और अपने शस्त्र नीचे डाल दिए। अर्जुन ने इस प्रकार शिखंडी को ढाल बनाकर भीष्म पितामह का वध किया और पांडवों की जीत सुनिश्चित कर धर्म की रक्षा की। एक प्रसंग यह है कि अर्जुन और नाग पुत्री उलूपी का एक पुत्र अरावन था। कुरुक्षेत्र में युद्ध के दौरान पांडवों को अपनी विजय सुनिश्चित करने हेतु काली माता के चरणों में नरबलि देनी थी। बलि के लिए अरावन तैयार था, लेकिन उसने एक सुंदर कन्या से विवाह रचाने की शर्त रखी। एक दिन की सुहागिन बनने के लिए कोई भी कन्या तैयार नहीं हुई। अंततः श्री कृष्ण ने मोहिनी का रूप धारण किया और उससे एक दिन के लिए विवाह किया। एक दिन का वैवाहिक जीवन गुजार उसने स्वयं को काली के चरणों में समर्पित कर दिया। श्री कृष्ण ने मोहिनी रूप में ही उसकी मृत्यु का शोक मनाया। इसलिए किन्नर समुदाय के लोग तमिलनाडु के प्रसिद्ध कुवागम मेले में अरावन से एक रात की शादी करते हैं और उसकी मृत्यु का शोक विलाप करते हुए मनाते हैं। किन्नर अरावन को अपना आराध्य देवता मानते हैं। अतएव किन्नरों को कुछ स्थानों पर अरावनी भी कहा जाता है। दूसरे प्रसंग में, अज्ञातवास के दौरान इंद्रलोक की अप्सरा उर्वशी के विवाह के प्रस्ताव को अर्जुन द्वारा अस्वीकार किये जाने पर, उसने अर्जुन को बृहनल्लाह बन जाने का श्राप दे दिया था। इस रूप में ही राजा विराट की पुत्री उत्तरा को अर्जुन ने एक वर्ष तक नृत्य कला की शिक्षा दी। इसलिए किन्नरों को बृहनल्लाह भी कहा जाता है।पुराण साहित्य (600 ई० पू०) में एक उल्लेख आया है कि स्वर्ग अथवा देवलोक में किन्नर एक देवता है, जिसका मुख घोड़े के मुख के समान है। संस्कृत के भाषाविद पाणिनी द्वारा रचित 'अष्टाध्यायी' (700 ई० पू०) में लिंग के तीनों रूप - स्त्री, पुरूष और नपुसंक का भेद स्पष्ट किया गया है। विभिन्न लक्षणों के आधार पर पौराणिक ग्रंथों में किन्नरों के किं पुरूष और किं पुरूषी का भी भेद स्पष्ट किया गया है। कामसूत्र (300 ई० पू०) के रचयिता वात्स्यायन ने किन्नरों को तृतीय प्रकृति कहा है। कामसूत्र के नवम् अध्याय में किंपुरूष और किंपुरूषी का उल्लेख मिलता है और अध्याय पंद्रह किन्नरों पर आधारित है। "द्विविधा तृतीया प्रकृति: स्त्रीरूपिणी पुरूषरूपिणी च।" अर्थात् तृतीय प्रकृति दो प्रकार की होती है- एक स्त्री के रूप में और दूसरी पुरूष के रूप में। पुरुष गुण अधिक रखने वाले किंपुरूष और स्त्री गुण अधिक रखने वाले किंपुरूषी कहलाते हैं।धार्मिक ग्रंथों के अलावा प्राचीन बौद्ध एवं जैन साहित्य में भी किन्नर अथवा नपुंसक का उल्लेख मिलता है। जैन दर्शन में मनुष्य की आत्मा को बंधन में डालने वाली नौ दुष्प्रवृत्तियों को बताया गया है। जिसके उदय होने पर पुरुष में किसी स्त्री के अतिरिक्त बालक अथवा पुरुष के साथ भी संभोग करने की इच्छा उत्पन्न हो जाती है। जैनियों के यहाँ स्त्री वेद, पुरुष वेद, और नपुंसक वेद को तीन लिंगों के रूप में उल्लिखित किया गया है।सिद्ध सिद्धांत पद्धति में स्त्री-पुरुष उत्पत्ति के साथ-साथ तृतीय प्रकृति के मनुष्य की उत्पत्ति के संबंध में विचार किया गया है। जिसमें कहा गया है कि सम्भोग के उपरांत यदि गर्भाशय में वीर्य ज़्यादा सिंचित होगा तो पुरुष की एवं माता का रज अधिक सिंचित होगा तो स्त्री की उत्पत्ति होगी। जब गर्भाशय में माता-पिता के रज एवं वीर्य की मात्रा समान हो तब किन्नर या नपुंसक सन्तान का जन्म होता है। किन्नरों की स्थिति मध्यकाल (6-18 शताब्दी) में भी समृद्ध थी। मध्यकाल में शासकों ने किन्नरों को अपने साम्राज्य की सुरक्षा हेतु उच्च पदों पर मनोनीत कर रखा था। इसका उल्लेख भारतीय मध्यकालीन इतिहास में मिलता है। अलाउद्दीन खिलजी (1296-1316 ई०) का सेनापति, मलिक काफूर, भी एक किन्नर था। सेनापति, कमाण्डर तथा गुप्तचर (जासूसी) का काम विशेष रूप से हिजड़ों को दिया जाता था क्योंकि हिजड़े वफादार माने जाते थे। साथ ही वीर्य वमन से रहित, ताक़तवर एवं बहादुर होते थे। हरम या अंतःपुर की व्यवस्था की देख-रेख हेतु भी किन्नर तैनात किए जाते थे। किंपुरूषों को सुरक्षा की दृष्टि से तथा किंपुरूषियों को हरम में रहने वाली रानियों की सेवा और सहायता हेतु रखा जाता था। इन किन्नरों को खोजा, क्लीव आदि नामों से पुकारा जाता था।

भारतीय किन्नरों को वर्तमान में प्राप्त अधिकार : प्राचीनकाल से किन्नर सुख-समृद्धि से अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे। ये राजा-महाराजाओं के युग में उच्च एवं प्रतिष्ठित पदों पर नियुक्त थे। इन्हें समाज में अत्यधिक मान और प्रतिष्ठा प्राप्त थी, लेकिन जब भारत की सत्ता राजाओं के हाथ से निकलकर अंग्रेजों के हाथ पहुंची तब से इनकी दशा दयनीय होती गयी। अंग्रेजों ने एक कानून निर्मित किया जिसे आपराधिक जनजाति अधिनियम – 1871 के नाम से जाना जाता है। इस कानून में इन्हें अपराधी घोषित कर दिया गया। इस प्रकार यह समाज से विस्थापित होते गए और सभ्य समाज तथा किन्नरों के बीच एक खाई गहराती गयी जो आज तक नहीं पाटी जा सकी है। सन् 2011 ई० में किन्नरों की पहली बार पृथक जनगणना की गई। उसके बाद सन् 2014 ई० में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने National Legal Services Authority VS Union of India & ors (जिसे NALSA Judgement कहा जाता है) का फैसला सुनाया। यह फैसला किन्नरों के लिए मील का पत्थर साबित हुआ क्योंकि किन्नरों को थर्ड जेंडर के रूप में स्वतंत्र पहचान मिली।

NALSA Judgement के द्वारा किन्नरों को प्राप्त अधिकार –इस न्याय से किन्नरों की अस्मिता का प्रश्न हल हुआ उन्हें 'थर्ड जेंडर' के रूप में स्वीकृत किया गया और सभी दस्तावेजों में प्रयुक्त अन्य स्तम्भ के स्थान पर थर्ड जेंडर स्तम्भ को जोड़ने का निर्देश दिया गया।अपने लिंग को स्वेच्छा से महिला, पुरुष या थर्ड जेंडर चुनने का अधिकार दिया गया। शल्य चिकित्सा के द्वारा लिंग का पुनर्निर्धारण के अनुसार महिला या पुरुष चुनने का विकल्प मिला।पुरुष और महिला के समान ही मूलभूत अधिकार दिए जाने की बात कही गयी। धर्म, समुदाय, जाति-प्रजाति, और सामाजिक हैसियत आदि को न देखकर बिना भेदभाव के समान अवसर देने की बात की गयी।स्वास्थ्य, रोजगार, शिक्षा, सामाजिक संबंध, मताधिकार, विवाह एवं स्वयं की जायदाद रखने का अधिकार, पासपोर्ट बनवाने, जन्म प्रमाण-पत्र, राशन कार्ड, ड्राइवर लाइसेंस, प्राप्त करने, शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य एवं बच्चे को गोद लेने तथा वारिस रखने का अधिकार मिला।स्वतंत्रता एवं आत्म-सम्मान से समाज में जीने का अधिकार, निजता एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, हिंसा, भेदभाव तथा शोषण के विरुद्ध अभिव्यक्ति का अधिकार।सामाजिक एवं शैक्षिक रूप से पिछड़ा मानते हुए केंद्र एवं राज्य सरकार द्वारा किन्नरों को आरक्षण दिए जाने का आदेश।किन्नरों के लिए HIV Sero-Survellance केंद्र की स्थापना करने के संबंध में केंद्र एवं राज्य को दिशा निर्देश केंद्र एवं राज्यों को किन्नरों के लिए सार्वजानिक स्थानों पर अलग शौचालय एवं अन्य व्यवस्था किए जाने हेतु निर्देश।उनके भविष्य की बेहतरी के लिए विविध कल्याणकारी योजनाएं क्रियान्वित करने हेतु निर्देश।समाज को जागरूक करने हेतु निर्देश ताकि किन्नर भी स्वयं को समाज का ही हिस्सा अनुभूत करें और उन्हें अछूत न समझा जाये तथा समाज में सम्मान एवं गरिमा के साथ जीवन यापन कर सकें।**The Transgender Persons (Protection Of Rights) Act, 2019 के द्वारा किन्नरों को प्राप्त अधिकार** – माननीय प्रधानमंत्री नरेंद्र

मोदी की अध्यक्षता में सन् 2016 ई० में लोकसभा सदन में एक विधेयक पारित किया गया जो संशोधन उपरांत 2019 ई० में अधिनियम बना । यह अधिनियम Transgender (ट्रांसजेंडर) लोगों के अधिकारों हेतु है । Transgender एक Umbrella term है जिसमें किन्नरों के अलावा लेस्बियन, गे (समलैंगिक लोग), उभयलिंगी तथा विषम लिंगी लोग शामिल हैं । किन्नरों को इस अधिनियम के द्वारा प्राप्त अधिकार – शैक्षिक संस्थान एवं सेवा, रोजगार एवं व्यवसाय, स्वास्थ्य सेवा, सार्वजानिक स्थानों में अनुचित व्यवहार एवं भेदभाव न हो । सभी प्रकार के आनंद, सेवा, सुविधा, लाभ, तीर्थ या अवसर की स्वीकृति हो । रहना, खरीदना, किराये या अन्य सम्पत्ति को अधिकृत करने तथा सार्वजानिक या निजी कार्यालय बनाने का अधिकार ।जिलाधीश के समक्ष आवेदन प्रस्तुत कर अपनी पहचान का दस्तावेज़ पाना । लिंग परिवर्तन के बाद इस दस्तावेज के साथ CMO द्वारा जारी प्रमाण-पत्र को संलग्न कर महिला या पुरुष होने का प्रमाण-पत्र जिलाधीश से ले सकते हैं । अन्य सभी दस्तावेज़ों में भी थर्ड जेंडर के रूप में पहचान दर्ज करा सकते हैं ।सरकार किन्नरों के लिए कल्याणकारी योजनाएं लाए; उनको पूर्ण एवं प्रभावी रूप से समाज में स्थान दिलाने का कदम उठाए; ट्रांस के बचाव, संरक्षण एवं पुनर्वास के लिए कदम उठाए; बिना भेदभाव के रोज़गार की व्यवस्था करे ।हर प्रतिष्ठान इस अधिनियम के उल्लंघन से सम्बन्धित शिकायतों से निपटने के लिए अधिकारी नामित करे ।ट्रांस बच्चे को माता-पिता परिवार से अलग नहीं किया जा सकता । उसे उसी घर में रहने का अधिकार है जहां माता-पिता या पारिवारिक सदस्य हों । बिना भेदभाव के घर की सारी सुविधाएं प्रयोग करने का अधिकार ।प्रत्येक शैक्षिक संस्थान में समावेशी शिक्षा, खेल और मनोरंजन का अधिकार ।व्यवसायिक प्रशिक्षण और स्वरोजगार सहित आजीविका को सुविधाजनक और सहारा देने के लिए कल्याणकारी योजनाएं एवं कार्यक्रम तैयार करना ।राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण संगठन द्वारा जारी दिशा-निर्देश के अनुसार ह्यूमन डिफिसिएंसी वायरस सेरो निगरानी केंद्र की स्थापना करना । सरकार के सार्वजानिक प्रयोजन हेतु अनिवार्य सेवाओं के अतिरिक्त बंधुआ मजदूरी, ट्रांस को सार्वजानिक स्थानों की यात्रा से वंचित, हानि या चोट, शारीरिक शोषण, यौन शोषण, आर्थिक शोषण, मौखिक या भावात्मक शोषण आदि किए जाने पर छह माह से दो वर्ष की सजा या जुर्माना या दोनों का प्रावधान।

निष्कर्ष : भारत में किन्नरों की उपस्थिति अति प्राचीन है । इसके प्रमाण के रूप में उपर्युक्त साक्ष्य प्रस्तुत किए गए । इनमें पाया गया कि भारत में किन्नरों का उल्लेख आज से नहीं अपितु, लगभग दस हजार वर्ष पूर्व से मिलता है । रामायण काल से लेकर मध्यकालीन तक इनकी प्रतिष्ठा एवं गौरव की गाथायें मिलती हैं । यह भी ज्ञात होता है कि इनकी संस्कृति प्राचीन समय से ही बहुत समृद्ध रही है और समाज में इनकी विशेष उपस्थिति रही है । वर्तमान समय में भी इनके उत्थान के लिए माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ऐतिहासिक फैसला दिया है जिससे समाज और किन्नरों के बीच की खाई को भरा जा सकेगा । भारत एवं राज्य की सरकारों ने इनके हितों को ध्यान में रखकर अधिनियम बनाए हैं, जिसमें किन्नरों के विभिन्न अधिकारों का प्रावधान किया गया है।

****

सन्दर्भ सूची :

1. त्रिपाठी, लक्ष्मी नारायण, अनु. डॉ. शशिकला राय एवं सुरेखा बनकर, मैं हिजड़ा... मैं लक्ष्मी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2015, आवृत्ति 2018.
2. भीष्म, महेंद्र, किन्नर कथा, अमन प्रकाशन, कानपुर, चतुर्थ संस्करण 2020.
3. बंद्योपाध्याय, मानोबी, अनु. रचना भोला 'यामिनी', पुरुष तन में फँसा मेरा नारी मन, राजपाल एंड सन्स, प्रथम संस्करण, 2018.
4. तुलसीदास, टीकाकार हनुमान प्रसाद पोद्दार, रामचरित मानस, गीताप्रेस, गोरखपुर.
5. वाल्मीकि, अनु. चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा, रामायण, रामनारायण लाल पब्लिशर और बुक सेलर, इलाहाबाद.
6. Michel, M. (2015), Historical Evolution of Transgender Community in India, Asian Review of Social Science, The Research Publication Vol. 4 Pp. 17-19.
7. Chatterjee, Dr. Subhrajit (2018), Problems Faced By Transgender Community in India : Some Recommendations, International Journal of Creative Research Thoughts Vol. 6 Pp. 665-679.
8. The Transgender Persons (Protection Of Rights) Act, 2019.
9. Sikri, A. (April 15, 2014), National Legal Services Authority VS Union of India & ors on 15 April, 2014 ; retrieved on June 15th, 2022 from https://indiankanoon.org/doc/193543132/

'यमदीप' में किन्नर जीवन की व्यथा

डॉ. निशा मुरलीधरन

असिस्टेन्ट प्रोफेसर,
एस. आर. एम.इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नॉलजी, वड़पलनी , चेन्नई

"उन नारियों से है कहना,
जो करती फ़रियाद नारी जन्म पर,
जो रोती हर पल, अपनी किस्मत पर,
और तरसती रहती, अपनी निस्सहायता पर ;
हमारे जैसे अर्ध नारियों का,
एकमात्र सपना है नारी का रूप मिलना,
सम्पूर्ण नारीत्व का एहसास करना,
और तड़पते रहते उस पुण्य जन्म को पाना |"

ये आशा है किन्नर जाति का, जो जननांग की विकलांगता के कारण समाज में अपमानित और तिरस्कृत होकर जीने की सजा भोग रही है | स्त्री की ज़िंदगी में अगर आँसू की दरिया बहती है तो किन्नर की ज़िंदगी रक्त की दरिया में डूबी हुई है | इस संघर्षपूर्ण ज़िंदगी का वास्तविक वर्णन 'यमदीप' उपन्यास में किया गया है |

"ट्रांसफोबिया" के कारण तीसरे लिंग के लोगों का जीवन नरक तुल्य हो जाता है | "ट्रांसफोबिया" का मतलब है हिजड़ों या किन्नरों के प्रति घृणा या नफरत दिखाना | उनको मुख्यधारा से अलग रखा गया है | किन्नरों की वेश-भूषा और उनका व्यवहार देखकर लोग उनसे डरते हैं और उनको निकृष्ट जीव के जैसे देखते हैं | लेकिन सामाज में जो गलत कार्य मर्द और औरत करते हैं उससे ज़्यादा या उतनी भी गलतियाँ किन्नर नहीं करते हैं |

'यमदीप' शीर्षक ही कुछ अलग है | दीवाली की पूर्वसन्ध्या में एक दीप को यम से संवाद करने के लिए कूड़े-कर्कट के पास अलग से रख देते हैं और फिर उसकी तरफ कोई देखते भी नहीं है | उसी प्रकार, जब घर में कोई किन्नर होता है तो उसे परिवार और समाज से अलग रखा जाता है और फिर उसकी तरफ कोई देखते भी नहीं हैं | वह हमेशा सबसे अलग ही रहती है | इस अवस्था को लेखिका ने बहुत सुंदर रूप से अपनी शीर्षक के द्वारा बताती हैं |

'यमदीप' उपन्यास में 'नंदरानी' से 'हिजड़ा नाज बीबी' का रूपांतरण या परिवर्तन अत्यंत दयनीय और करुणामय रूप से दरसशाया गया है | एक मेजर की संतान के रूप में जन्म लेकर, अपने माता-पिता की लाड़ली पुत्री बनने पर भी उसे अपने परिवार को छोड़कर जाना पड़ता है और सबसे अलग रहना पड़ा | हिजड़ा समुदाय में जाने के बाद नंदरानी नाजबीबी बन जाती है | एक दिन अपनी माँ से वह टेलीफोन में कहती है-**"मम्मी, मैं आप लोगों की बदनामी के कारण अपनी दुनिया में चली आई। हिजड़ों की दुनिया में.. मेरा हाथ पैर अपंग होता, दिमाग खराब होता, तो भी शायद तुम रख सकती थीं लेकिन.."** अपने परिवार वालों की इज्जत का ख्याल रखकर नंदरानी घर छोड़कर नाजबीबी बन गई थी | अपनी माँ की बीमारी और उनकी मृत्यु की खबर भी उसे बहुत देरी से मिलती है और अंतिम बार अपनी माँ को देखने की मौका से भी वह वंचित हो जाती है | क्या हिजड़ों को अपने प्रिय जनों के विरह पर दुख मनाने का अधिकार भी नहीं है ? उनके प्रति दया और सहानुभूति रखनेवाले लोग बहुत कम है | इस उपन्यास में किन्नरों की सामाजिक स्तिथि की ओर हमारा ध्यान केंद्रित करते हुए नीरजा माधव जी ने साथ-साथ समाज में उनके प्रति तिरस्कार की भावना और नफरत की भावना का भी विस्तृत वर्णन किया है | रोजगारी की मामला का भी बखान इस उपन्यास में हुआ है | पैसे कमाने के लिए ज्यादातर किन्नर भीख माँगते हुए दिखते हैं या लैंगिक कामों में जुड़ जाते हैं | किन्नरों के प्रति घृणा होने का मुख्य कारण भी यहीं है | इसमें थोड़ा बदलाव करते हुए इस उपन्यास में किन्नरों का देश-प्रेम और समाज के प्रति उनकी जिम्मेदारी को दर्शाया गया है | जैसे कि इस उपन्यास में नाजबीबी का कहना है – **'अगर सरकार हमें भी हथियार दे । मैं तो लड़ंगी। लड़ते-लड़ते हिन्दुस्तान के पीछे अपनी जान दे दूंगी।'** लेकिन इनको नौकरी दिलवाने के लिए या इनकी उच्च शिक्षा के लिए सरकार की तरफ से कोई आरक्षण या कोई अनुदान

उपलब्ध नहीं है | शारीरिक रूप से सबल हिजड़ों को प्राथमिक रूप से सेना में भर्ती के लिए मौका दिया जा सकता है | लेकिन इसके लिए कार्रवाई लेने के लिए कोई तैयार नहीं है | इतिहास साक्षी है कि किन्नर मनुष्य जाति के उद्भव के समय से ही उपस्थित है | लेकिन आज भी एक संदर्भरहित ज़िंदगी जी रहे है | 'यमदीप' उपन्यास में इसका उल्लेख इस प्रकार से किया गया है –

" न पुरुष, न स्त्री....या फिर शायद पुरुष और स्त्री-दोनों ही | यानी अर्धनारीश्वर.... नहीं.... पूरी देह का विभाजन ऐसा नहीं इनका कि यह संज्ञा दी जा सके |....आत्मा आत्मा होती है, विशुद्ध, अमर....अजर...."

किन्नर समुदाय पर एक आलेख लिखने के लिए मानवी ने महताब गुरु का एक साक्षात्कार लेना चाहती थी | उपन्यास के अंत में मानवी की प्राण-रक्षा हेतु नाज बीबी और छैलू जो प्रयास करते हैं उससे सभी अत्यंत प्रभावित होते हैं और पाठकों का हृदय छू लेते हैं | किन्नर का नाम सुनते ही जो लोग अपने मुख पर अप्रिय भावना दिखाते हैं उनके लिए यह एक संदेश है कि समाज सेवा या कोई अच्छा कार्य करने के लिए, जाति, धर्म या लिंग भी रुकावट नहीं है | अच्छे और बुरे लोग सभी जगह, सभी वर्ग और तीनों लिंग में होते हैं | हिजड़ा का जन्म लेने से कोई बुरा नहीं होता है |

चारित्रिक गुण के लिए सिर्फ औरत या मर्द ही अभिनंदनीय नहिं होते बल्कि हिजड़ों को भी चारित्रिक गुण के लिए अभिनंदनीय माना जाया जा सकता है | इस उपन्यास में मन्ना बाबू और रीता देवी जैसे मर्द और औरत चरित्रहीन दर्शाये गए हैं, और नाजबीबी, छैलू, अकरम, चमेली जैसी हिजड़ों को पवित्र होने का सद्गुणों का भंडार होने का जिक्र किया गया है | मानवी भ्रष्ट राजनीतिज्ञ मन्ना बाबू के विरोध में नाज बीबी को चुनाव में खड़ा करना चाहती है | इसके लिए मानवी डी। एम। आनंद का सहयोग प्राप्त करती है | इसमें तीनों लिंगों का योगदान एक साथ होता है | पुल्लिंग का प्रतिनिधि आनंद है, स्त्रीलिंग का प्रतिनिधि मानवी है और तीसरे लिंग का प्रतिनिधि नाज बीबी है | तीनों लिंगों के सहयोग और भागीदारी से ही समाज को हम उन्नति की ओर लेके जा सकते हैं | इसका सही चित्रीकरण 'यमदीप' उपन्यास में लेखिका नीरजा माधव ने किया है | हिजड़ों के समुदाय को भी समाज की मुख्यधारा से जोड़ने का प्रयास करना चाहिए |वास्तव में एक मनुष्य की पहचान उसके लिंग से नहीं होना चाहिए, बल्कि करुणा, सहृदयता, उदारता आदि से होनी चाहिए |

" मानवता का असली पहचान,
अच्छे कर्मों से है होना |
स्त्री, पुरुष या तीसरा लिंग,
सद्भावना सबमें एक समान,
लिंग-भेद मत दिखाओ,
शरीर के अंगों को मत देखो,
सबकी आत्मा एक होती

****

संदर्भ ग्रंथ :-

1. 'यमदीप' – नीरजा माधव
2. थर्ड जेन्डर : कथा आलोचना – डॉ. एम. फिरोज खान
3. थर्ड जेन्डर : कथा की हकीकत – अकरम हुसैन, मनीष कुमार गुप्ता

कविता

डॉ वंदना मिश्रा की तीन कविताएँ

(1)

सिकुड़ती जा रही है आकाश की परिधि

डराया जाता है लड़कियों को
कभी सच में सतर्क करने के लिए
और कभी यूँ ही डराने के लिए।
जन्म से पहले ही
बड़ी-बड़ी मशीन खोज लेती हैं
उनका लड़की होना।
और खींच लाती हैं उसे
सात तहों के भीतर से
जिससे खत्म हो जाए
उसका भय एक ही
बार में।
और जो बच जाती हैं
मशीन की पकड़ से
वे जीवन भर डराई जाती हैं
चोर,पुलिस,जज,अपराधी
रिश्ते,नाते,प्रेम,घृणा
सबसे।
गरज यह कि
डर बनाया जाता है
उनका स्थाई भाव
पर बड़ी जिद्दी होती हैं
लड़कियाँ
छूट ही जाती हैं
मशीन की पकड़ से भी।
तमाम वर्जनाओं को
धता बताते हुए
वे करती जाती हैं प्रेम
बार-बार धोखा खाने के बाद भी।
यहाँ तक कि धोखा
देने वाला भी
सिर धुनने लगता है
डरती लड़कियाँ धीरे-धीरे
काबिज हो जाती हैं
अंतरिक्ष पर
और सिकुड़ती जा रही है
आकाश की परिधि
विस्तार से लड़की के।

***

(2)

कुछ बेरोजगार लड़के

कुछ बेरोजगार लड़के न हों तो
सूनी रह जाएँ गलियाँ
बिना फुलझड़ियों के रह जाए दीवाली
बिना रंगों के रह जाए होली
बेरौनक रह जाएँ सड़कें
त्यौहारों का पता न चल पाए
बिना इनके हुड़दंग के
मंदिर सूने रह जाएँ
बिना श्रृंगार के
यदि ये चंदा न उगाहें
फूँके ट्रांसफार्मर बहुत दिनों तक नहीं बने
यदि ये नारे न लगाएँ
धरने,प्रदर्शन,तमाशों के लिए हमेशा
हाजिर रहती है इनकी जमात
हम बड़े खुश होते हैं
जब हमारी सुविधाओं के लिए
ये नारे लगाते हैं
या पत्थर फेकते हैं
पर सामने पड़ते ही बिदक
जाता है हमारा अभिजात्य
हम इन्हें मुँह नहीं लगाते
इनकी खिलखिलाहट खिजाती है हमें
हम बन्द कर लेते हैं खिड़कियाँ दरवाजे
इनकी आवाज सुनकर
अजीब तरह से ताली बजाकर
हँसते हैं
नुक्कड़ पर खड़ा देखकर कोसते हैं हम
लफंगा समझते हैं हम उन्हें
और ये हमें
स्वार्थी समझते हैं
सचमुच हम चाहते हैं
ये नजर न आएँ
हमें बिना काम
पर इन्हें कहीं खड़ा रहने की जगह
नहीं दे पा रहे हैं
हम या हमारी सरकार

***

(3)

पिता का हाथ

पिता की मृत्यु हुई
और भाइयों में बँटवारा
वैसे मोहताज नहीं थे भाई बँटवारे के लिए
पिता की मृत्यु के पहले
बँटने लगे थे बर्तन,रसोई,विचार
और परिवार की परिभाषा कटने लगी थी
पिता के रहते रहते
पर ढंग से दीवार उठी उनके बाद ही
इत्मिनान से नापी गई भूमि
और पिता की तरह मौन देखता रहा
बड़ा सा जामुन का पेड़
पूरे एक कमरे की जगह घेरे खड़ा था
जाने कब से
इस तरह से जुड़ा था
कि उस मकान की कल्पना से भी अलग
नहीं हुआ कभी
जैसे घर का मतलब
उस शहर का मतलब
सदैव होता था माँ के लिए।
पिता कभी काटने नहीं देते थे
एक डाल उस पेड़ की
कभी बिकने नहीं देते थे फल उस पेड़ के
भले ही मोहल्ले भर के बच्चों के पत्थर
पड़ने लगें आँगन में
बहुत बड़ी होने पर एक लड़की ने
पहचाना था मुझे
उस जामुन वाले घर में
पूरी गर्मियों की दुपहरी एक अनोखा खेल थी
हम सबके लिए
कट गया वह रसीले फलों वाला पेड़
और नम नहीं हुईं किसी की आँखें
पिता की तरह निरीह लगा था पेड़ उस समय
एक बड़ा सा कमरा बना उसकी जगह
बड़ा ठंडा
उसमें बैठने पर कभी-कभी लगता है
जैसे बैठे हैं हम उसी जामुन के पेड़ के नीचे
जैसे पिता ने रख दिया हो सिर पर
अपना काँपता हाथ।

***

डॉ वंदना मिश्रा
एसोसिएट प्रोफेसर,जीडी बिनानी
पीजी कालेज,मिर्जापुर-231001 मो- 9415876779

कवयित्री परिचय

दो कविता संग्रह और तीन गद्य की पुस्तकें प्रकाशित।विभिन्न पुस्तकों में अध्याय लेखन। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ प्रकाशित। दूरदर्शन एवं आकाशवाणी से कविताएँ प्रसारित।कुछ कविताएँ बांग्ला,मराठी,पंजाबी एवं अँग्रेजी भाषा में अनुदित।साहित्य अकादमी,बीएचयू,दस्तक साहित्य,अनीश एवं आगाज सुखन,कविता के रंग रामदरश मिश्र के संग और 'आवाज' के मंच से काव्य पाठ। प्रकाशित कविता संग्रह- कुछ सुनती ही नहीं लड़की तथा कितना जानती है स्त्री अपने बारे में।

कहानी

दीपा जी की चार लघु कहानियाँ

डॉ. दीपा दत्तात्रय कुचेकर
हिंदी विभाग
सटाणा महाविद्यालय, सटाणा, नाशिक महाराष्ट्र
मो : 9823048692 अनुडाक

1.हसीना

अपना चेहरा छुपाते हुए हसीना उन तंग गलियों से मानों भाग रहीं थी. भागते भागते हसीना थक गयी.एक दीवार का सहारा लेकर खड़ी हो गई.दुपट्टे से पसीना पोछा.दिल की धड़कन रफ़्तार पर थी.इतने में अब्बास उसके सामने आकर खड़ा हो गया.अब्बास ने उसे ढूंड ही लिया. हसीना तुम ... उस बस्ती .... हसीना ने कोई जवाब नहीं दिया और निकल पड़ी.अब्बास उसके सामने खड़ा हुआ.उसकी दोनों बाहों को पकड़कर झंझोटता हुआ बोला - " बतावो हसीना... तुम वहाँ कैसे ? "
हसीना की आँखों से आँसू बह रहे थे. अब्बास... हमारे रिश्ते को नुक्कड़ का सलीम जानता था. उसकी नजर पहले से मुझ पर थी.एक दिन सलीम तुम्हारे शादी की खबर देने घर आया. उसके साथ तुम्हारा भाई था. उस दिन से सलीम हर रोज़ घर आने लगा. उसने अपने प्यार का इजहार किया " हसीना मैं तुम्हें जान से जादा चाहता हूँ. " वह हमारे रिश्ते को जानते हुए भी मुझसे शादी करने को तैयार हुआ. तुमसे बंधी उम्मीद कि डोर तुट चुकी थी, मै और क्या करती ? मैंने उसकी बातो पर यकीन किया और उससे शादी कर ली . हमारी सुहाग रात कोठे पर हुई. मैं न घर कि रहीं न घाट की... .सलीम कोठे पर लडकियाँ पहुचाने का काम करता था.उसने मुझे भी ... .
...और मैं कोठे की हसीनाजान बन गयी .

*****

2. चिट्ठी

आज उसने चुटकी भर सिंदूर की किमत चुकाई थी. अठराह साल का समीर जवानी में कदम रखने से पहले ही ख़त्म हो गया था . बचपन में पिता का साया सर से उठ गया.जवानी में माँ ने उसके अधूरे सपनों की खातिर दूसरी शादी करली .समीर अकेला रह गया . वह इस साल बारहवीं कक्षा में था.गाँव, दोस्त, रिश्तेदार सब जगह माँ के बारे में हो रहीं चर्चा वह सुनता और खामोश हो जाता . उसके कानों में वह आवाज गूंजती... "मैं विधवा के रूप में नहीं जीना चाहती, समीर मैं शादी करना चाहती हूँ, अपना परिवार, खुशियाँ चाहती हूँ . " समीर बेचैन हो जाता. समीर ने अपना फैसला सुनाया "माँ ! तुम जो चाहती हो वह करों, तुम्हारे निर्णय से मैं सहमत नहीं हूँ, तुम मुक्त हो, मेरी चिंता मत करो, मैं पिता का घर, दादा-दादी को छोड़कर कहीं नहीं जाऊंगा, तुम जा सकती हो " माँ ने समीर के फैसले को सुना और अपने फैसले को पूरा किया.शादी को एक माह भी पूरा नहीं हुआ था तो समीर के जाने की खबर मिली साथ में मिली एक चिट्ठी जिस पर लिखा था – " समीर पिता के बगैर जी सकता था मगर माँ के बगैर नहीं " .

*****

3. हकीकत

मातोश्री वृद्धाश्रम को स्थापित हुए आज बारह साल पूर्ण हुए | इस अवसर पर वृद्धाश्रम के संस्थापक ने सभी वृद्धों के मनोरंजन हेतु संगीत रजनी का आयोजन किया था | इस अवसर पर विशेष आमंत्रित थे उद्योगपति विट्ठलराव |आज आश्रम के सभी वृद्ध बड़े खुश हुए| संगीत रजनी में अपने मनचाहे पुराने गीतों की फरमाइश की और उसका आनंद लिया | समारोह के समापन में विट्ठलराव ने अपनी बात रखी | आश्रमों की बढ़ती संख्या पर चिंता व्यक्त की, माता-पिता के प्रति प्रेम-आदर व्यक्त किया | परिवार में उनके महत्व के साथ-साथ, नाती पोती के प्रति उनके प्यार की सराहना की, यह सुनकर सभी वृद्धों का मन भर आया | उस आश्रम में विगत सात साल से रह रहीं निर्मल की आंखों से निरंतर अश्रुधारा बह रहीं थी | उसके पास बैठी शशिकला ने कहा " निर्मला विट्ठलराव के विचारों ने हमें रुला दिया" जवाब में निर्मला ने कुछ न कहा |समारोह खत्म होने के बाद सभी अपने अपने कमरे में चले गए | निर्मला वहीं बैठी रहीं शशिकला ने कहा " क्या बात है निर्मला... तुम बड़ी बेचैन लग रही हो ?" निर्मला ने शशिकला की आखों मे देखकर बहते हुए आसुओं के साथ कहा- " हां... क्यों ना हो... आप के सामने जो बोल रहा था ना... वह कोई और नहीं... मेरा बेटा विट्ठल था |

*****

4. महामारी

आज सारी सब्जी मंडी सुनी थी। चारो और सन्नाटा छाया हुआ था। अचानक जो कुछ था वह नहीं में बदल गया था। आज दस दिन हो गये सब्जी मंडी में एक भी गाड़ी नही आयी थी और ना ही कोई ग्राहक चंदातक पहुंचा था। चंदा के पेट के लिए एक वक्त की रोटी तक नसीब नही हो रही थी। चंदा के गोद में छः महिने की बच्ची निश्चल पड़ी थी। बच्ची ने चंदा की छाती को चूसना भी बंद कर दिया था। चंदा दिन निकते ही रास्ते पर नजरे बिछाए रहती। उसके लिए कहीं से कोई ग्राहक आ जाए मगर ऐसे सन्नाटे में उसके लिए कोई ग्राहक कहां से आता?। निष्प्राण बनी चंदा अकेले ही बडबडा रहीं थी " यह कैसी महामारी है , पहले ही हम समाज के विकृत मानसिक महामारी में फसे अपने जिस्म को बेच कर दो वक्त की रोटी पाते है। नाजायज कहलानेवाले अपने बच्चों को अपना पेट काट-काटकर पालते है। उस में यह महामारी "चंदा बोलते बोलते बेहोश हो गई थी। गोद में की बच्ची गोद मे ही शांत हो गयी।
महामारी के कारण पुलिस की गाड़ियां सारे शहर में चक्कर लगा रहीं थी। नगर निगम के सफाई कर्मचारी अपना काम कर रहे थे। पुरे शहर में सफाई का काम शुरू कर दिया गया था। सब्जी मण्डी के क्षेत्र में जब सफाई हो रहीं थी, पुलिस की गश्त जारी थी। उसी समय सफाई कर्मचारी को एक कोने में कुछ पड़ा हुआ नजर आया। सफाई कर्मचारियों ने करीब जाकर देखा,आवाज लगाई चंदा पेट की अग्नि में समिधा बनी थी। कर्मचारियों की भीड़ देख कर पुलिस वहा पहुंच गई।
चंदा और उसकी बेटी महामारी की शिकार बिना बिमारी के ही हो गई थी।

******

विविध विमर्श

सम्राट अशोक के कल्याणकारी बौद्ध धम्म का स्वरूप

डॉ. सुरजीत कुमार सिंह
पूर्व प्रभारी निदेशक व वरिष्ठ सहायक प्रोफेसर
डॉ. भदंत आनंद कौसल्यायन बौद्ध अध्ययन केंद्र
महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा. महाराष्ट्र-४४२००१ मो. 09326055256

सम्राट अशोक ने कलिंग युद्ध के बाद बौद्ध धम्म को स्वीकार कर लिया था और फिर सम्राट ने बौद्ध धम्म के प्रचार-प्रसार को एक नई गति प्रदान की। इस के अनुसरण में वे बौद्ध धम्म को जनता में लोकप्रिय बनाने के लिए बौद्ध धम्म के सत्य, अहिंसा, दया, करुणा, मैत्री, बंधुत्व और कल्याणकारी स्वरूप को प्रमुखता देते हैं। इसके लिए सम्राट अशोक ने शहाबाजगढ़ी के तेरहवॉ शिलालेख लिखवाया है कि "कलिंग के विजित होने पर देवताओं के प्रिय की रूचि धर्मपालन धर्म-कर्म और धर्मोपदेश में तीव्र हो गई है। कलिंग विजित कर देवताओं के प्रिय को खेद है। क्योंकि यह विजय कोई विजय नहीं है, इसमें वध, मरण और निष्कासन होता है। युद्ध में आघात, वध और प्रियजनों का निष्कासन होता है"। यह सम्राट अशोक की मनोदशा का कारुणिक पीड़ादायक चित्रण है, जिसमें वह पीड़ित प्राणियों की दशा को देखकर आंतरिक तौर पर अशांत हैं। बौद्ध धर्म ही उनको मानसिक शांति और प्राणी कल्याण की भावना से ओतप्रोत जीवन मार्ग दिखाई देता है और वह अपना सम्पूर्ण जीवन प्राणी कल्याण के लिए समर्पित कर देते हैं।

कलिंग युद्ध के मार्मिक दृश्य, सम्राट अशोक को एक क्रूर सम्राट से कल्याणकारी सम्राट के रूप में स्थापित कर देते हैं, जो अपने राज्य की समस्त प्रजा को अपनी संतान की तरह ही मानता है। गिरनार के प्रथम चट्टान शिलालेख में उन्होंने लिखवाया है कि "यह धम्म लिपि देवानंप्रिय प्रियदर्शी राजा द्वारा लिखवाई गयी है, कोई भी जीव बलि के लिए नहीं मारा जाएगा"। गिरनार के ही दूसरे चट्टान शिलालेख में हम देखते हैं कि सम्राट अशोक किस तरह के सामाजिक व कल्याणकारी कार्यों में सलंग्न हैं। इस शिलालेख में उल्लेख है कि "देवाताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने सर्वत्र विजय करके मनुष्य–चिकित्सा तथा पशु-चिकित्सा और वे औषधियॉ जो मनुष्योपयोगी तथा पशुपयोगी हैं, जहॉ-जहॉ नहीं हैं, सर्वत्र लाई गई और लगाई गईं जहॉ-जहॉ मूल तथा फल नहीं हैं, सर्वत्र लाए गए तथा लगाए गए। मार्गों में मनुष्यों तथा पशुओं के लिए कूऍ खुदवाए गए तथा वृक्ष लगवाए गए" हैं। सम्राट अशोक पहले चण्ड अशोक नाम से जाने जाते थे और कहा जाता है कि उन्होंने अपने निन्यानवे भाईयों की हत्याकर राजगद्दी को हाथिया था, लेकिन प्रो. राधाकुमुद मुखर्जी इस घटना को तथ्यात्मक नहीं मानते हैं। वे लिखते हैं कि "दक्षिण की कथाओं का यह कथन की अशोक ने राज्य के लिए अपने 99 भाइयों की हत्या की थी, जिसके लिए उसे चंड अशोक कहा गया है, अतिरंजना है। तिब्बती इतिहासकार लामा तारानाथ के अनुसार उसने अपने सिर्फ 06 भाइयों का वध किया था।" सच तो यह है कि "इन कहानियों में यही दिखलाने का उत्साह है कि बुद्ध की शरण में आने से पूर्व अशोक कितना क्रूर था और उसके बाद उसमें कितना परिवर्तन आ गया।" सम्राट अशोक बौद्ध धर्म के सबसे बड़े राजाश्रयदाता थे। बौद्ध साहित्य के अनुसार अशोक अपनी युवावस्था में क्रोधपूर्ण स्वभाव के कारण चंड अशोक कहलाते थे। जब वह विदिसा के राज्यपाल नियुक्त हुए, तब उन्होंने वहीं के एक धनी व्यापारी की पुत्री कुमारदेवी से विवाह किया। जब उन्हें पता चला कि उनके पिता महाराज बिंदसार मृत्यु-शैया पर हैं, तब वह अपने पिता की राजधानी पाटलिपुत्र पहुंचे और अपने भाई को छोड़ उन्होंने सबका वध किया। चार वर्ष तक जनता अशोक से इस तरह नाराज थी कि सम्राट अशोक का राज्याभिषेक जनता के क्रोध की शांति के बाद ही हो सका। सम्राट अशोक के 13 वें शिलालेख से पता चलता है कि उन्होंने कलिंग पर चढ़ाई की और हजारों लोगों को कलिंग युद्ध में मार दिया। इस घटना का उन्हें बहुत अधिक पश्चाताप हुआ और उन्होंने निश्चय किया कि वे अब कोई सैनिक अभियान नहीं करेंगे। भाब्रू शिलालेख में सात ऐसे अंश मिलते हैं, जो कि पालि साहित्य में भी पाए जाते हैं, सम्राट अशोक चाहते थे कि भगवान बुद्ध के कल्याणकारी उपदेश जनसाधारण तक पहुंचे। अपने राज्यकाल के बीसवें वर्ष वे लुंबिनी वन के उद्यान में पहुंचे, जहां भगवान बुद्ध का जन्म हुआ था। इस स्थान पर उन्होंने एक विशाल प्रस्तर स्तंभ लगवाया जिस पर एक उत्कीर्ण लेख है कि सम्राट अशोक की इस यात्रा के उपलक्ष्य में वहां रहने वाले लोगों को सम्राट कर देने से मुक्त कर दिया है। इसके बाद वह सारनाथ और बोधगया की धार्मिक यात्रा पर भी गए। सम्राट अशोक का सारनाथ में लगवाया हुआ एक खंडित शिलालेख भी मिला है, जिससे जान पड़ता है कि जो व्यक्ति बौद्ध संघ की एकता को तोड़ने का प्रयास करेगा, उसे बौद्ध संघ से बहिष्कृत करने का आदेश सम्राट अशोक ने दिया था। सम्राट अशोक के राज्य अभिषेक की सच्चाई चाहे जो भी हो, लेकिन हम अशोक के शहाबाजगढ़ी के तेरहवॉ शिलालेख में देखते हैं कि सिंहासन पर बैठने के आठ वर्ष बाद अर्थात् सन 262 ईसा पूर्व वह अपने राज्ये का विस्तार करने के लिए कालिंग पर आक्रमण कर देते हैं, जिसमें कई लाख प्राणी मारे जाते हैं, असंख्य अपंग हो जाते हैं और असंख्य को बन्दी बना लिया जाता है। यह युद्ध ही चण्ड अशोक को देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी अशोक में बदल देता है।

शहाबाजगढ़ी के तेरहवॉ शिलालेख में लिखा है कि सम्राट अशोक के "सिंहासन पर बैठने के आठ वर्ष बाद देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा द्वारा कलिंग जीता गया। डेढ़ लाख प्राणी वहाँ से बन्दी बनाकर बाहर भेजे गये, एक लाख वहॉ मारे गये और उसके कई गुना मर गये। तत्पश्चात् अब कलिंग के विजित होने पर देवताओं के प्रिय की रूचि धर्मपालन, धर्मकर्म और धर्मोपदेश में तीव्र हो गई है"। इसके उपरांत उसके लिए बौद्ध धर्म ही मानसिक शांति और प्राणी कल्याण की भावना से ओत-प्रोत दिखाई देता है और वह अपना सम्पूर्ण जीवन समस्त प्राणी कल्याण के लिए समर्पित कर देता है। गिरनार के प्रथम चट्टान शिलालेख में अशोक लिखवाता है कि "यह धम्म लिपि देवानंप्रिय प्रियदर्शी राजा द्वारा लिखवाई गयी है, जिसमें कोई भी जीव बलि के लिए नहीं मारा जाएगा, न कोई समाज द्वारा ही किया जायगा। बहुत-सा दोष समाज में देवनांप्रिय प्रियदर्शी राजा देखता है। फिर भी निश्चित प्रकार के समाज को ही देवानंप्रिय प्रियदर्शी राजा उचित मानता है। पहले भोजनालय में देवानांप्रिय प्रियदर्शी के प्रत्येक दिन सहस्त्रों प्राणी सूप व्यंजन के लिए मारे जाते थे, पर आज से जब यह धर्मलिपि लिखवाई गई तब से तीन ही प्राणी-दो मोर और एक मृग व्यंजन के लिए मारे जाते हैं, इनमें भी मृग का मारना निश्चित नहीं है। बाद में ये भी तीन प्राणी (मृग का अर्थ यहॉ किसी भी चौपाए पशु से लिया जा सकता है। यह बाध्यता नहीं है कि केवल हिरण के लिए इसका प्रयोग किया गया हो। उसी प्रकार मयूर से अभिप्राय पक्षी समुदाय से है, केवल पक्षी विशेष मयूर के लिए ही नहीं है) नहीं मारे जायेंगे"।

गिरनार के दूसरे चट्टान शिलालेख में हम आगे देखते हैं कि सम्राट अशोक अपना राज्य विस्तार करने के बाद किस तरह के सामाजिक व कल्याणकारी कार्यों में सलंग्न हैं "देवाताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने सर्वत्र विजय करके-चोल, पाण्डय, सत्यपुत्र, ताम्रपर्णी, अन्तियोक नामक यवन राजा तथा उस अन्तियोक के निकट जो राजा हैं, सर्वत्र देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने दो चिकित्साओं को स्थापित किया। मनुष्य–चिकित्सा तथा पशु-चिकित्सा और वे औषधियॉ जो मनुष्योपयोगी तथा पशुपयोगी हैं जहॉ-जहॉ नहीं हैं, सर्वत्र लाई गई और लगाई गईं जहॉ-जहॉ मूल तथा फल नहीं हैं, सर्वत्र लाए गए तथा लगाए गए। मार्गों में मनुष्यों तथा पशुओं के लिए कूऍ खुदवाए गए तथा वृक्ष लगवाए गए"।इसी चट्टान लेख में लिखा है कि इससे भी अधिक गंभीर देवनांप्रिय के लिए यह है कि जहॉ ब्रहामण, श्रमण या अन्य सम्प्रदाय या ग्रहस्थ रहते हैं, जिनमें अग्रजों की सेवा, माता पिता की सेवा, गुरू सेवा, मित्र, परिचित, सहायक, ज्ञातिजनों तथा दास-भतकों के प्रति सद्व्यवहार और दढ़ भक्ति पाई जाती है। युद्ध में वहॉ आघात, वध और प्रियजनों का निष्कासन होता है। यही सब मनुष्यों की दशा होती है। फिर भी जो सुव्यवस्थित स्नेह वाले होते हैं, उनके मित्र, परिचित और ज्ञातिजन संकट को प्राप्त होते हैं, उनसे उनको आघात होता है। यही सब मनुष्यों की दशा होती है। यह देवताओं के प्रिय के मत में गंभीर है। ऐसा एक भी देश नहीं है, जिसमें रहने वालों का किसी सम्प्रदाय में विश्वास न हो। सम्राट अशोक कहते हैं कि जितने लोग कलिंग में मारे गये, मरे व बन्दी बनाकर ले जाये गये उनका सौवा या सहस्त्रवां भाग भी आज देवताओं के प्रिय के मत में घृणित है। देवताओं के प्रिय के विचार में यदि कोई अपकार करे तो वह क्षम्य है वहॉ तक क्षमा करना संभव है और जो आटविक प्रदेश देवताओं के प्रिय द्वारा विजित उसके राज्य में हैं उन्हें वह अनुनय द्वारा शांत करता है, परिवर्तित करता है तथा अपनी कृपा के अतिरिक्त उन्हें दण्ड देने की अपनी शाक्ति को बताता है। देवताओं का प्रिय उनसे

कहता है कि वे अपने पूर्व कर्मों के लिए लज्जित हों नहीं तो नष्टकर दिए जाएँगे। देवताओं का प्रिय सभी प्राणियों के अक्षय, संयम, सदाचरण और प्रसन्नता की इच्छा करता है। देवताओं के प्रिय के अनुसार धर्म विजय ही प्रमुख विजय है। यह विजय बार-बार देवताओं के प्रिय द्वारा यहाँ और सभी सीमान्त राज्यों में आठ सौ योजना दूर स्थित अन्तियोक नामक यवन राजा और उस अन्तियोक के अतिरिक्त चार राजा-तुलमय (टालमय) अन्तिकेन (अण्टीगोनस गोनैटस) मक (मेगास थियास) अलिकसुन्दर (इपिरस या कोरिंथ का एलेक्जेण्डर) और दक्षिण में चोल, पाण्डय, ताम्रपर्णी तक की गई है। इसी प्रकार राज्य, प्रदेशों, कम्बोजों, नाभपंक्यिों, भोजों, पिटैनिकों आंध्रों तथा पुलिंदों सर्वत्र देवताओं के प्रिय के धर्मानुशासन का पालन होता है। जिन स्थानों में देवताओं के दूत नहीं पहूँचते, वहाँ भी लोग देवताओं के प्रिय के धर्म का व्यवहार विधान और धर्मानुशासन सुनकर धर्म का आचरण करते हैं और करते रहेंगे। इससे जो विजय प्राप्त होती है वह सर्वत्र पुन: प्रीति देने वाला होता है। धर्म विजय से प्राप्त प्रीति गाढ़ी होती है पर यह प्राप्ति छोटी है क्योंकि देवताओं का प्रिय परमार्थ को ही महाफल मानता है। इस निमित्त यह धर्मलिपि अंकित कराई गई कि मेरे पुत्र, पौत्र जो इसको सुने वे नया विजय अभियान (राज्य विस्तार हेतु युद्ध) न करें। अगर उन्हें शस्त्र विजय करना ही पड़े तो शान्ति और लघुदण्डता का अनुसरण कर उसमें आनन्द लें। वे धर्म विजय को ही विजय माने, वही इहलौकिक और पारलौकिक सुख का कारण है। उद्यम में ही उन्हें आनन्द हो क्योंकि वह इहलौकिक एवं पारलौकिक जीवन के लिए कल्याणकारी होता है"। इस तरह हम देखते हैं कि सम्राट अशोक कि मानव कल्याणकारी दृष्टि कितनी दूरदर्शी थी, जो आज भी हमको नवीन दिखाई देती है. यह ही नहीं आज भारत की सरकार हो या दुनिया भर के अन्य देशों की सरकारें हों या फिर विश्व वन्य प्राणी संगठन हो जिनकी चिन्ता आज संकटग्रस्त जीवों के प्रति अब जाकर नियमों और कानूनों में बंधकर उनकी सुरक्षा संभव हो पायी है. लेकिन सम्राट अशोक की चिंता इन संकटग्रस्त प्राणियों के प्रति दृष्टि कितनी दूरदर्शी थी, यह हम दिल्ली टोपरा के पाँचवें स्तम्भ लेख में पाते हैं.

जिसमें अशोक लिखवाते हैं कि "देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने ऐसा कहा है कि छब्बीस वर्षों से अभिषिक्त होने पर इन जीवधारियों को मैंने अवध्य घोषित किया है, वे हैं- शुक, सारिका लाल पक्षी, चकवा, हंस, नन्दीमुख (मैना का एक प्रकार), गेलाट, गीदड़, रानी चींटी, कछुई, अस्थिरहित बिना काँटे की मछली, वेद वेयक, गंगा-कुक्कुट, संकुजमत्स्य, कछुआ, साही, नपुंसक शश, वारहसिंगा, सॉड़, गोधा, मग, सफेद कबूतर, ग्राम कपोत और सभी प्रकार के चौपाए जो न उपयोग में आते हैं न खाए जाते हैं। गर्भिणी अथवा दुध पिलाती हुई बकरी, भेडे, शूकरी अवध्य बताई गई है इनके बच्चे भी जो एक महीने के होते थे वे भी। कुक्कुट की बधिया नहीं करनी चाहिए। सजीव भूसी नहीं जलानी चाहिए। व्यर्थ के लिए या हिंसा के लिए जंगल नहीं जलाना चाहिए"। सम्राट अशोक लिखवाते हैं कि "देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने ऐसा कहा है कि जीव से जीव का पोषण नहीं करना चाहिए। तीनों चौसामों में तिष्य पूर्णमासी को तीन दिन-चतुर्दशी, पूर्णिमा और प्रतिपदा, निश्चितरूप से उपवास के दिन मछलियाँ नहीं मारनी चाहिए और न बेचनी चाहिए। इन दिनों नागवनी, मछलियों के तालाब में जो भी दूसरे जीव हों उन्हें नहीं मारना चाहिए। प्रत्येक पक्ष की पंचमी, अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, तिष्य, पुनर्वसु, तीन चातुर्मासों के शुक्ल-पक्ष में गौ को दागना नहीं चाहिए। बकरा, भेड़, सूअर अथवा और जो पशु दागे जाते हैं, उनको भी नहीं दागना चाहिए। तिष्य, पुनर्वसु, प्रत्येक चतुर्मास की पूर्णिमा के दिन और प्रत्येक चतुर्मास के शुक्ल पक्ष में अश्व और गौ को दागना नहीं चाहिए। छब्बीस वर्ष अभिषित होने पर मैंने इस बीच पच्चीस बार बन्धन-मोक्ष (बन्दियों की मुक्ति) किया है"।

इस तरह हम देखते हैं कि सम्राट अशोक जब बौद्ध धर्म अपनाते हैं और वह इस प्रकार की योजनायें और घोषणाएँ करते हैं कि जो हमको आज भी आश्चर्यचकित कर देती हैं कि वह कितना दूरदर्शी सम्राट था। जो चण्ड अशोक से देवानां प्रियदर्शी हो अपना सम्पूर्ण जीवन समस्त प्राणी कल्याण के लिए समर्पित कर देता है. सम्राट अशोक की कल्याणकारी दृष्टि कितनी दूरदर्शी थी, जो आधुनिक समय में भी हमको नवीन दिखाई देती है। दुनिया भर के देशों की सरकारें जिनकी चिन्ता आज संकटग्रस्त जीवों के प्रति है, लेकिन सम्राट अशोक की चिंता इन संकटग्रस्त प्राणियों के प्रति अब से 2300 वर्ष पहले पाते हैं। जीव से जीव का पोषण नहीं करना चाहिए। उनके अभिलेख में हम एक नवीन बात और पाते हैं कि आज सरकारें निसक्त, बीमार और वृद्ध कैदियों को विशेष अवसरों पर क्षमा दान देती हैं, उनको रिहा करती हैं, लेकिन सम्राट अशोक ने कई बार कैदियों को कारावास से मुक्त किया था। इस तरह हम देखते हैं कि सम्राट अशोक के ऊपर यह बौद्ध धम्म की करूणा का ही प्रभाव था जिसमें वह इस प्रकार की योजनायें अमल में लाते हैं जो कि हमको आज भी नूतन दिखाई देती है।

*****

सन्दर्भ :-

1. राधाकुमुद मुखर्जी, *अशोक,* दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, २००४, पृ.४
2. वही, पृ.१०८
3. वही, पृ.५
4. वही, पृ.४
5. वही, पृ.५
6. वही, पृ.१५
7. डॉ. शिवस्वरूप सहाय, *भारतीय पुरालेखों का अध्ययन,* दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, २००८, पृ.१०८
8. वही, पृ.९१
9. वही, पृ.९२
10. वही, पृ.१०८-१०९
11. वही, पृ.१२८
12. वही, पृ.१२८-१२९

गोधरा के दंगों में बौद्ध भिक्षुओं की ऐतिहासिक कुर्बानी

दूसरी घटना बौद्ध भिक्षुओं की कुर्बानी,वहशी दंगाइयों को परास्त करती हैजो दंगे करने के जुनून मे पागल हो गए थे।

15 मुसलमान हाफते हुए तेजी से. दौडते हुए बौद्ध विहार में घुस जाते हैंउनका कटटर. हिन्दू दंगाई पीछा कर रहे हैं,उनके हाथों में त्रिशूल है। मुसलिम भाइयों ने बौद्ध भिक्षुओं से कहा--"हमे बचा लो। ये हिन्दू दंगाई हमें मार डालेंगे।" बौद्ध भिक्षुओं ने मुसलमान भाइयों को समझाते हुए कहा--"घबरोओ नही तुम लोग बुद्ध की शरण मे हो।बुद्ध तुम्हारी रक्षा करेंगे। देखो ! जैसा हम कहे ,आप लोग वैसा ही करो।" मुसलमान भाई डरते हुए एवम भय से कॉपते हुए दुखी आवाज मे बोले--" जैसा आप लोग कहेंगे हम लोग वैसा ही करेंगे।"

बौद्ध भिक्षुओं ने मुसलमानों को गेरूए वस्त्र पहनने कझ देते हुए कहा-हमारे पास केवल 12 लोगों के लिए गेरूए वस्त्र हैंआप लोग तुरन्त पहन लो।हम.अपने भी वस्त्र उतार कर दे रहे हैंहम तीन हैंहम तीनों आप मुसलमान भाईयों के वस्त्र पहन लेगें।आप 15 मुसलमान भाई बौद्ध भिक्षुओं जैसा दिखोगे।।आप लोगों. कै बौद्ध विहार का आदमी समझकर हिन्दू दंगाई आप पर हमला नही करेंगे।जान बच जायेगी।बौद्ध भिक्षु मुसलमान युवाओं की बेडी बडी दाढी कैची से काट देते हैं।

मुसलमान भाई शंका जाहिर करते हुए बोले-

" लेकिन आप लोगों को हमारे कपडे पहने देखकर आप लोगों को हिन्दू दंगाई मार देगें।" बौद्ध भिक्षुओं ने गर्व से कहा--"हम तीन मरकर 15 लोगों की जान बचा लेगे।हमारें लिए यही बुद्ध का आदेश है: हिन्दू दंगाइयों ने तुम लोगों को बौद्ध विहार में घुसते देखा हैतुम सभी बुद्ध की शरण मे हो। हम सभघ बौद्ध भिक्षुओं का एक कर्तव्य यह भी है कि मानवता की रक्षा करें।अगर बौद्ध विहार मे असहाय मानव की बुद्ध रक्षा नही कर पाये तो मानव का बुद्ध से विश्वास हट जायेगा। मानव की बुद्ध पर जो आसथा है,उसको टूटने नही देगे।आजकल मंदिर, मस्जिद, बौद्ध विहार जंग का मैदान हैंहम यह जंग असहाय मानव की रक्षा के लिये लडेंगे।हम इन वहसी दरिन्दों को दिखायेंगे कि लोगो को धर्म के नाम पर मारने मे कोई बहादुरी नही है बल्कि कायरता है।निर्दोष,असहाय,लाचार मानवों को बचाना किसी भी शक्ति की आराधना से बडा होता है।"

हिन्दू दंगाई बौद्ध विहार में घुस आते हैं तथा मुसलमानों को बौद्ध विहार में ढूंढते हैंकेवल तीन मुसलमान दिखाई पडते है जो बुद्ध की मूर्ति के पीछे चिपके खडे थेहिन्दू दंगाई उनको खीचकर मार डालते हैतीनों बौद्ध भिक्षु जो मुसलमानों के वस्त्र और टोपी पहने हैं,कुरबानी देते हैंलेकिन 15 मुसलमानों की जान बचा लेते हैंमरते मरते कहते हैं--

बुद्धम शरणम गच्चछामि

सरदार पटेल के चिंतन एवं व्यवहार में गांधीवादी नीतियों के प्रभाव का विवेचनात्मक अध्ययन

डॉ.राजेश कुमार शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर
निदेशक गांधी अध्ययन केन्द्र
राजस्थान विश्वविद्यालय -जयपुर

प्रस्तुत आलेख में सरदार पटेल के चिंतन में गांधीवादी नीतियों का विवेचनात्मक विवरण करने का प्रयास किया गया है। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में गाँधीजी के अनुयायी और प्रिय शिष्यों में से एक व्यक्ति सरदार पटेल रहे। उन्होंने देश की स्वतंत्रता और पुर्ननिर्माण के लिए अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया। महात्मा गांधी की भूमिका सामाजिक आर्थिकए राजनीतिक सांस्कृतिए शैक्षिण मनोवैज्ञानिके एवं तार्किक प्रयोगों के सन्दर्भ में अपने आप में अद्वितीय रही जिसके कारण भारत को सत्य और अहिंसा के मार्ग पर चलने का अवसर प्राप्त हुआ। गांधीजी के चतुर्दिक व्यक्तित्व ने हमें अनेक अनगनित अनुयायियों में चार ऐसे प्रकाश पुंज दिखाई देते हैं जिन्होंने अपने जीवन द्वारा गांधीजी की मूल प्रवृत्तियों आध्यात्मिकता का डॉ.राजेन्द्र प्रसाद ने उनके आचरण की पवित्रता का जवाहर लाल नेहरू ने उनकी राजनीतिक सूझ.बूझ व दूरदर्शिता का तथा उनके दृढ़ कर्मठ और व्यवहारिक विचारों का सरदार पटेल ने अनुसरण किया।[1] लेकिन समय समाजवाद भारत विभाजनए मुस्लिम लीग से मतभेद कठोर राष्ट्रवाद जैसे राजनीतिक प्रश्नों पर गांधीजी के साथ मतभेद भी बने रहे परन्तु व्यक्तिगत स्तर पर दोनों के पारपरिक सम्बन्धों एवं सैद्धान्तिक निष्ठा में कहीं कोई संघर्ष नहीं था। सरदार पटेल ने जीवनभर गांधीवादी मूल्यों का निर्वहन किया। सत्य अहिंसाए सत्याग्रहए स्वदेशीए बहिष्कारए स्वशिक्षाए स्वावलम्बन आदि ऐसे सिद्धानत जिनका पटेल ने स्वतंत्रता संग्राम में परीक्षण कर प्रमुख गांधीवादी नेता की भूमिका को प्राप्त किया। जीवन के शुरूआत में सरदार गांधीवादी मूल्यों से अधिक प्रभावित नहीं रहे।[2] सन् 1915 में अहमदाबाद के गुजरात क्लब में सरदार पटेल गांधीजी के भाषण की उपेक्षा करते हुए ब्रिज खेलते रहे।[3] परन्तु 2 वर्ष बाद अप्रैल 1917 का चम्पारन का अहिंसक प्रतिरोध एवं सत्याग्रह गांधीवादी नवविधा का देश की राजनीति में एक अनूठा प्रयोग थाए जिसने सरदार को वैचारिक चिन्तन की प्रेरणा दी। धीरे.धीरे गांधीजी के सम्पर्क ने उन्हें झकझोरा और महात्मा गांधी की जादुई छड़ी के घूमते.घूमते वे एक महत्वकांक्षी वकील से समर्पित राष्ट्रवादी नेता बन गये।[4] प्लेग अकाल इंफ्लूएंजा आदि महामारियों के समय राहत कार्यों में जुटे रहे। इसी समय किसानों एवं मजदूरों की समस्याओं के समाधान के लिए गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रमों से जुड़ गये। सन् 1918 के खेड़ा आन्दोलन की सफलता सरदार के गांधीवादी प्रयोग की विजय थी। रौलट एक्ट के समय गांधी द्वारा आरम्भ किये गए सत्याग्रह आन्दोलन के अवसर पर सरदार ने अहमदाबाद में उपवास हड़ताल एवं जुलूस का सफल नेतृत्व किया। नड़ियाद में हुई गुजरात राजनीतिक परिषद की बैठक में 11 जुलाई 1920 को सरदार पटेल के प्रस्ताव पर ही असहयोग आन्दोलन का प्रस्ताव स्वीकार किया गया। अहमदाबाद म्यूनिसिपैलिटी द्वारा असहयोग आन्दोलन सरकारी स्कूलों का बहिष्कार एवं राष्ट्रीय विद्यालय की योजना सरदार के भारी प्रयास एवं कानूनी लड़ाई से सफल हो सकी। असहयोग आन्दोलन तथा रचनात्मक कार्यक्रमों की गांधीजी की योजना में सरदार का यह सफल प्रयोग था। चैरी.चैरा काण्ड के बाद परिवर्तनवादियों एवं अपरिवर्तनवादियों की लड़ाई में सरदार गांधीजी के असहयोगी विचार के समर्थक रहे। नागपुर झण्डा सत्याग्रह एवं बोरसद आन्दोलन में सरकार की विजय सत्य के प्रयोगों की ही विजय थी। अहमदाबाद म्यूनिसिपैलिटी के चेयरमेन के रूप में सफाई नगर.विकास एवं जनहित के कदमों के लिए गांधीजी द्वारा उनकी हृदय से प्रशंसा की।[5] बारडोली सत्याग्रह में नेतृत्व करने के साथ सरदार पूर्णतः गांधीवादी एवं राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त नेता बन गये। कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में इस गांधीवादी सफल प्रयोग के लिए सरदार का अभिनन्दन किया गया एवं महात्मा गांधी ने उन्हें सरदार की उपाधि से विभूषित किया।[6] इसी सन्दर्भ में सरदार पटेल ने स्वयं कहा कि गांधीजी से मिलने से पूर्व मेरी राजनीति के प्रति रूचि थी पर उस समय कोई भी राजनीतिक दल मुझे अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सका हाँ कई आराम की कुर्सी पर राजनीति करने के लिए बने हुए जरूर थे लेकिन तभी गाँधीजी का आमन हुआ उनमें मुझे वह नेता दिखाई दिया जिसका अनुयायी बना जा सकता था।[7] यरवदा जेल में गाँधीजी के साथ सरदार पटेल सोलह माह तक रहे इस दौरान दोनो के पारस्परिक घनिष्ठ एवं स्नेहपूर्ण सम्बन्धों में भारी वृद्धि हुई। सन् 1940 के कांग्रेस के सामने प्रश्न था कि विश्वयुद्ध में मित्रराष्ट्रों की मदद की जाय या नही। कार्य समिति के अधिकांश सदस्यों एवं सरदार का मानना था कि सत्य और अहिंसा की नीति स्वराज्य प्राप्ति के लिए है परन्तु देश पर बाहर से हमला हो तब इस नीति से कांग्रेस बंधी हुई नहीं है। ऐसे अवसर पर कांग्रेस अहिंसा की नीति छोड़ सकती है और उसे छोड़नी भी चाहिए। भारत छोड़ों आन्दोलन से पूर्व गांधीजी सरदार पटेल एवं डॉण् राजेन्द्रप्रसाद से परामर्श करने बम्बई गए अपने सर्वाधिक विश्वस्त साथी अर्थात उन्होंने नेहरूजी या राजाजी से इस सन्दर्भ में विचार विमर्श नहीं किया।[8] इस आन्दोलन को नव दिशा देते हुए गांधीवादी दायरे से कुछ निकलकर परिस्थिति अनुरूप जो कुछ सूझे वैसा करने की प्रेरणा देने हेतु भी सरदार बाध्य हुए। वाइकेंडर ने अपनी जांच रिपोर्ट में हिंसक आन्दोलनात्मक स्वरूप हेतु सरदार को दोषी ठहराया है।[9] परन्तु आरण्सीण् मजूमदार ने सरदार पटेल के भाषणों की महत्वपूर्ण भूमिका मानते हुए कहा कि गांधीजी के सत्याग्रह एवं अहिंसा को इनसे एके नया आयाम प्राप्त हुआ।[10] सरदार एवं गांधी के संबंधों की व्याख्या करते हुए राज गोपालाचारी लिखते हैं कि सरदार गांधीजी के लिए वैसे ही थे जैसे राम के लिए लक्ष्मण।[11] के एमण् मुन्शी के अनुसार गांधीजी के लिए सरदार उसी भांति थे जैसे कृष्ण के लिए अर्जुन।[12] सरदार पटेल महात्मा गांधी के सच्चे अनुयायी बनकर उनके विचारानुरूप कार्यपद्धति को यथावत अपना सके इस कारण अन्य अनुयायियों से कुछ आगे भी निकल सके। गांधीजी के साथियों में नेहरू एवं पटेल के अलावा अन्य अपने आपको उतना अधिक प्रभावी सिद्ध नहीं कर सके।[13] पट्टाभिसीता रमैया ने इसके पीछे अन्य नेताओं की तुलना में उनमें कुछ विशिष्टता को माना है।[14] महात्मा गांधी ने राजनीति के शुद्धीकरण पर बल दिया उनमें मानवतावादी एवं राजनीतिज्ञ का असाधारण सम्मिश्रण था।[15] सरदार भी राजनीति में नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा करना चाहते थे। वे नैतिकता एवं शुचितापूर्ण राजनीति पर बल देते थे। राजनीति में धूर्तता एवं भ्रष्टाचार के स्थान पर गांधीवादी नैतिक निष्ठा पर उन्हें भरोसा था। साधन.साध्य की पवित्रता को स्वीकारते हुए वे मानते थे किर-राजनीति गंदगी से भरी हुई है। उसमें पड़ने पर कीचड़ उड़ता ही है। राजनीति में धोखेबाजी छलप्रपंच और गंदे काम एक सामान्य बात है। परन्तु बापू ने इस सारी गन्दगी को धोकर साफ करके राजनीति में स्वच्छता और धार्मिकता दाखिल की और अपने पीछे चलने वालों को आग्रह पूर्वक इस दिशा में यथा शक्ति प्रयत्न करने की आज्ञा दी। बापू की तपश्चर्या पर अभी तो आशा लगी हुई है।[16] गाँधी जी का पटेल के प्रति अगाध विश्वास था एक बार जब मोरार जी देसाई ने सरदार पटेल के विरूद्ध गांधी उनके नैतिक आदर्शों का पूर्णतः परिपालन न किए जाने की प्रवृत्ति की सामान्य चर्चा की तो गांधीजी ने इस आरोप को गलत बताया एवं इसे सिद्ध करने की चुनौती दी।[17] सरदार पटेल ने गांधीजी के सत्याग्रह की पद्धति का अवलम्बन उनकी भावनानुरूप अहिंसक आन्दोलनों के मार्ग से किया। इस सन्दर्भ में गाडगिल ने माना है कि सन् 1917 से 1947 के तीस सालों में गांधी जी ने जो सोचा सरदार ने उसे पुष्ट किया तथा करके दिखलाया। उनका सत्याग्रह राजनीतिक भारत में बारडोली के किसानों के सन् 1928 के सत्याग्रह के बाद स्वीकृत मान्य एवं प्रभावी हुआ। बारडोली संघर्ष

सत्याग्रह के दर्शन का क्रियात्मक रूप था तथा सरदार का दक्षतापूर्ण एवं प्रभावशाली नेतृत्व ही इसकी सफलता का मुख्य कारण था। हानि उठाकर तथा कष्ट पाकर भी बारडोली के लोग सिद्धान्तों एवं विचारों के प्रति लड़ सके।[18] ये बातें इस दृष्टिकोण को पुष्ट करती हैं कि सरदार पटेल जीवनभर गांधी के अनुयायी रहे। सत्यागृह के सन्दर्भ में बारडोली सत्याग्रह के समय उन्होंने कहारू कि किसी को ऐसी स्थिति में डाल देना सत्याग्रह नहीं बल्कि निर्दयता कही जायेगी। इसलिए घी दूध छाछ और इसी तरह कोई बीमार पड़ जाय तो दवा के बिना जिन्दगी के जरूरतें कोई बन्द न करे।[19]

सरदार पटेल गांधीजी की भांति ही सत्याग्रह को दुर्बलता न मानकर सबल का साधन मानते थे। सत्याग्रहियों को निर्भीकता एवं अन्याय से प्रतिरोध की क्षमता का संदेश देते हुए उन्होंने बारडोली में कहा था - आप डरते- डरते नाजुक बन गए हैं। आपको झगड़ा फसाद करना नहीं आता यह आपका गुण है। मगर इससे अन्याय का विरोध करने का जोश भी हममें न रहे ऐसे नाजुक हमें नहीं हो जाना चाहिए। यह तो डरपोक पन है। इसलिए आंखों में जोश आने दीजिए और न्याय की खातिर और अन्याय के विरुद्ध लड़ना सीखिए।[20] उपरोक्त भावना का प्रतिपादन गांधी अपनी सत्याग्रह की नीति में करते हैं। गांधी जी सत्याग्रही के संबंध आत्मबल की अवधारणा पर बल देते है।

सरदार पटेल के सम्पूर्ण जीवन दर्शन के अध्ययनोपरांत डाण् वी.पी. वर्मा ने उनके कश्मीर एवं हैदराबाद में शक्ति परीक्षण का संकेत करते हुए विचार प्रकट किया है कि यद्यपि वे गांधीवादी थे परन्तु अहिंसा की सम्पूर्ण पवित्रता में विश्वास नहीं रखते थे। बिस्मार्क की भांति वे शक्ति के पुजारी नहीं थे. वरन् विवाद एवं संकट के समय ही सीमित शक्ति के प्रयोग के पक्षपाती थे अतः अहिंसा उनकी नीति थी जीवन-दर्शन नहीं।[21] सरदार का मानवतावादी तथा व्यक्तिगत सौहार्द्र प्रशंसनीय था। वे अपने व्यक्तिगत गुणों के कारण ही विभिन्न व्यक्ति समूहों से जिनमें रियासतों के शासक व्यापारी गण तथा सिविल सेवक भी थे प्रभावशीलता एवं सफलता से पेश आए। विविधतापूर्ण सार्वजनिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अहिंसा का सफल प्रयाग सरदार का भारत की प्रगति में सबसे बड़ा योगदान था। अनुकरण के स्थान पर स्वदेशी शिक्षा के उनके विचार में औपनिवेशिक मुक्ति का संदेश था।[23] प्रभावी हुआ। बारडोली संघर्ष सत्याग्रह के दर्शन का क्रियात्मक रूप था तथा सरदार का दक्षतापूर्ण एवं प्रभावशाली नेतृत्व ही इसकी सफलता का मुख्य कारण था। हानि उठाकर तथा कष्ट पाकर भी बारडोली के लोग सिद्धान्तों एवं विचारों के प्रति लड़ सके।[18] ये बातें इस दृष्टिकोण को पुष्ट करती हैं कि सरदार पटेल जीवनभर गांधी के अनुयायी रहे। सत्यागृह के सन्दर्भ में बारडोली सत्याग्रह के समय उन्होंने कहारू कि किसी को ऐसी स्थिति में डाल देना सत्याग्रह नहीं बल्कि निर्दयता कही जायेगी। इसलि घी दूध- छाछ और इसी तरह कोई बीमार पड़ जाय तो दवा के बिना जिन्दगी के जरूरतें कोई बन्द न करे।[19] सरदार पटेल गांधीजी की भांति ही सत्याग्रह को दुर्बलता न मानकर सबल का साधन मानते थे। सत्याग्रहियों को निर्भीकता एवं अन्याय से प्रतिरोध की क्षमता का संदेश देते हुए उन्होंने बारडोली में कहा था - आप डरते- डरते नाजुक बन गए हैं। आपको झगड़ा फसाद करना नहीं आता यह आपका गुण है। मगर इससे अन्याय का विरोध करने का जोश भी हममें न रहे ऐसे नाजुक हमें नहीं हो जाना चाहिए। यह तो डरपोकपन है। इसलिए आंखों में जोश आने दीजिए और न्याय की खातिर और अन्याय के विरुद्ध लड़ना सीखिए।[20] उपरोक्त भावना का प्रतिपादन गांधी अपनी सत्याग्रह की नीति में करते हैं। गांधीजी सत्याग्रही के संबंध आत्मबल की अवधारणा पर बल देते है।सरदार पटेल के सम्पूर्ण जीवन दर्शन के अध्ययनोपरांत डॉ.वी.पी. वर्मा ने उनके कश्मीर एवं हैदराबाद में शक्ति परीक्षण का संकेत करते हुए विचार प्रकट किया है कि यद्यपि वे गांधीवादी थे परन्तु अहिंसा की सम्पूर्ण पवित्रता में विश्वास नहीं रखते थे। बिस्मार्क की भांति वे शक्ति के पुजारी नहीं थे वरन् विवाद एवं संकट के समय ही सीमित शक्ति के प्रयोग के पक्षपाती थे अतः अहिंसा उनकी नीति थी जीवन -दर्शन नहीं।[21] भारत के एकीकरण तथा प्रशासनिक व्यवस्था के शान्तिपूर्ण एवं सहज रूपान्तर के साफल्य कीए जर्मनी तथा विश्व के अन्य भागों में हुए समरूप प्रयासों एवं प्रक्रिया की तुलना करते समय इस बात की उपेक्षा कर दी जाती है कि अन्यत्र इस तरह के एकीकरण की प्रक्रिया में शक्ति का प्रयोग हुआ। सरदार पटेल ने गांधीवादी सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक विधाओं के अनुरूप अपने चिंतन को विकसीत किया। गांधी के समान पटेल भी नगरीय एवं यांत्रिक सभ्यता को आधुनिक समय में उचित नहीं मानते थे क्योंकि बढ़ती हुई नगरीय सभ्यता सभी के लिए अहितकारी है। सरदार पटेल ग्राम्य जीवन की श्रेष्ठता एवं महत्ता में विश्वास रखते थे। उन्होंने ग्राम्य जीवन की मस्ती समानता एवं गांव में मुक्त-विकास की सम्भावना को स्वीकार करते हुए नगरीय जीवन में इनका अभाव बतलाया। ग्रामीण व्यवस्था के सौम्य वातावरण की असली हिन्दुस्तान की संज्ञा दी।[22] गांव स्वयं स्वावलम्बी बन जाए और रक्षा के लिए भी दूसरे का मुहं न ताकना पड़े इसी का नाम स्वराज्य है। ग्रामीण जीवन की महत्वता के सन्दर्भ में सरदार पटले का मानना था कि आधुनिक भारत के निर्माण में ग्राम स्वराज और स्वावलंबन आवश्यक है।आर्थिक विचारधारा की दृष्टि से सरदार का मार्ग गांधीवादी एवं रचनात्मक कार्यक्रम का था जिसका उद्देश्य स्वराज्य प्राप्ति था। स्वतंत्रता के उपरान्त राज्यों के मुख्यमंत्रियां की एक मीटिंग को संबोधित करते हुए सरदार पटेल ने कहा भारत की मूल अवधारणा कृषि प्रधान देश की है और यदि इसका सच्चे अर्थों में विकास करना है तो गांधीवादी नियोजन की नीति को अनविार्य रूप से अपनाना होगा अर्थात् कृषि के साथ-साथ औद्योगिकरण की अवधारणा को भी विकसीत करना होगा। सामाजिक संरचना में सरदार सामाजिक जागरण एवं साम्प्रदायिक सौहार्द्र के पक्षधर थे। गांधीजी की भाँति उन्होंने जाति पांति का कटु विरोध किया। कौमी भाई चारे पर उनका बल था। महिला उत्थान एवं सामाजिक कुरीतियों को मिटाने पर बल देकर उन्होंने गांधीजी के उपदेशानुसार सामाजिक क्रांति करने का आह्वान किया। उनके सुधारवादी एवं समन्वयवादी दृष्टिकोण में पुनर्जागरणोन्मुख राष्ट्रवाद एवं गांधीवाद का समन्वय था। पाश्चात्य सरदार का मानवतावादी तथा व्यक्तिगत सौहार्द्र प्रशंसनीय था। वे अपने व्यक्तिगत गुणों के कारण ही विभिन्न व्यक्ति समूहों से जिनमें रियासतों के शासक व्यापारीगण तथा सिविल सेवक भी थे प्रभावशीलता एवं सफलता से पेश आए। विविधतापूर्ण सार्वजनिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अहिंसा का सफल प्रयाग सरदार का भारत की प्रगति में सबसे बड़ा योगदान था। भारत के एकीकरण तथा प्रशासनिक व्यवस्था के शान्तिपूर्ण एवं सहज रूपान्तर के साफल्य की जर्मनी तथा विश्व के अन्य भागों में हुए समरूप प्रयासों एवं प्रक्रिया की तुलना करते समय इस बात की उपेक्षा कर दी जाती है कि अन्यत्र इस तरह के एकीकरण की प्रक्रिया में शक्ति का प्रयोग हुआ। सरदार पटेल ने गांधीवादी सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक विधाओं के अनुरूप अपने चिंतन को विकसित किया। गांधी के समान पटेल भी नगरीय एवं यांत्रिक सभ्यता को आधुनिक समय में उचित नहीं मानते थे क्योंकि बढ़ती हुई नगरीय सभ्यता सभी के लिए अहितकारी है। सरदार पटेल ग्राम्य जीवन की श्रेष्ठता एवं महत्ता में विश्वास रखते थे। उन्होंने ग्राम्य जीवन की मस्तीए समानता एवं गांव में मुक्त-विकास की सम्भावना को स्वीकार करते हुए नगरीय जीवन में इनका अभाव बतलाया। ग्रामीण व्यवस्था के सौम्य वातावरण की असली हिन्दुस्तान की संज्ञा दी।[22] गांव स्वयं स्वावलम्बी बन जाए और रक्षा के लिए भी दूसरे का मुहं न ताकना पड़ेए इसी का नाम स्वराज्य है। ग्रामीण जीवन की महत्वता के सन्दर्भ में सरदार पटले का मानना था कि आधुनिक भारत के निर्माण में ग्राम स्वराज और स्वावलंबन आवश्यक है।आर्थिक विचारधारा की दृष्टि से सरदार का मार्ग गांधीवादी एवं रचनात्मक कार्यक्रम का थाए जिसका उद्देश्य स्वराज्य प्राप्ति था। स्वतंत्रता के उपरान्त राज्यों के मुख्यमंत्रियां की एक मीटिंग को संबोधित करते हुए सरदार पटेल ने कहा भारत की मूल अवधारणा कृषि प्रधान देश की है और यदि इसका सच्चे अर्थों में विकास करना है तो गांधीवादी नियोजन की नीति को अनविार्य रूप से अपनाना होगा अर्थात् कृषि के साथ-साथ औद्योगिकरण की अवधारणा को भी विकसीत करना होगा। सामाजिक संरचना में सरदार सामाजिक जागरण एवं साम्प्रदायिक सौहार्द्र के पक्षधर थे। गांधीजी की भाँति उन्होंने जाति पांति का कटु विरोध किया। कौमी भाई चारे पर उनका बल था। महिला उत्थान एवं सामाजिक कुरीतियों को मिटाने पर बल देकर उन्होंने गांधीजी के उपदेशानुसार सामाजिक क्रांति करने का आह्वान किया। उनके सुधारवादी एवं समन्वयवादी दृष्टिकोण में पुनर्जागरणोन्मुख राष्ट्रवाद एवं गांधीवाद का समन्वय था। पाश्चात्य अनुकरण के स्थान पर स्वदेशी शिक्षा के उनके विचार में औपनिवेशिक मुक्ति का संदेश था।[23] राजनीतिक संरचना में सरदार गांधीवादी मूल्यों के व्यावहारिक आचरण पर बल देते थे। स्वराज्य एवं सुराज्य का दर्शन उन्होंने महात्मा गांधी से प्राप्त किया। सुराज्य की अवधारणा में सरदार पटेल शहरी एवं ग्रामीण भारत की सम्पूर्ण उन्नति पर बल देते थे। प्रान्तीयता एवं क्षेत्रीयता के संकुचित दायरों के स्थान पर वे व्यापकता के पक्षधर थे। लोकतंत्र के स्वरूप पर गम्भीर चिन्तन की

अवधारणा के सन्दर्भ में पटेल का चिंतन सदैव प्रभावी रहा वे लोकतंत्र के स्थान पर किसी अन्य शासन के समर्थक नहीं थे परन्तु इसके लिए गांधीवादी नीतियों को अपनाना आवश्यक हैं। गांधीजी के रामराज्य के आदर्श को प्राप्त करना तत्कालीन परिस्थितियों में संभव नही है इसलिए इसके विकल्प एवं उपादर्श से ही अभी काम चलाना होगा जिसमें जनतन्त्रवादीए जनसम्प्रभुता पर आधारित एवं निर्वाचित सुदृढ़सरकार हो जिसके पीछे सशक्त सेना एवं पुलिस हो और अन्ततः जो जन-इच्छा से शासित हो। सरदार पटेल द्वारा विरोध.भावना के स्थान पर कत्तव्यनिष्ठा एवं सहयोग भावना पर बल दिया। वे स्थानीय स्वशासन नागरिकों के अधिकारों की गरिमाएवं न्यायपालिका की स्वतन्त्रता के पक्षधर रहे। राष्ट्रीय हित राष्ट्रीय दृढ़ता एवं शक्तिशालिता को यथार्थवादी तथा शक्ति की राजनीति वाले युग में उन्होंने परमावश्यक माना।[24]सरदार पटेल द्वारा गांधीजी के विचारों एवं रचनात्मक कार्यों को समय-समय पर व्यवहारिक रूप प्रदान किया गया ष्वास्तव में देखा जाए तो महात्मा गांधी सत्याग्रह के सिद्धान्तों के सूत्रों के ग्रन्थकार थे तो सरदार बल्लभभाई पटेल उनके भाष्यकार थे। किन्तु सरदार ने अपना भाष्य अक्षरों में न लिखकर उनको कार्यरूप में परिणित करके संसार के सम्मुख उपस्थित कियाष् श्री बिनोबा भावे के अनुसार वास्तव में गांधीजी जी अहिंसक सेना के वे सबसे बहादुर चालक थे। दिल से वे एक-दूसरे के अति निकट थे। सरदार ही वे व्यक्ति थे जिनसे संसार से विदा लेते समय गांधीजी ने अन्तिम वार्ता की।[25]सरदार पटेल ने गांधीजी के निर्णयों को बिना हिचकिचाहट के स्वीकार किया तथा आवश्यकतानुसार तार्किक रूप से बिना झिझके इन्हें स्वीकार किया। इस सन्दर्भ में एक प्रंसग में उन्होंने कहा कि उन्होंने अपने मस्तिष्क का ताला बन्द कर दिया है तथा चाबी गांधीजी को सौंप दी है। लेकिन जब गांधीजी ने उन्हें साबरमती आश्रम में रहने को आमन्त्रित कियाए उन्होंने स्पष्ट रूप से मना करते हुये बतलाया कि वे ऐसा नहीं कर सकतेए क्योंकि गांधीजी के आश्रम में निर्धारित प्रतिबन्धों के अन्तर्गत वह राष्ट्रसेवा का कार्य उचित रूप से नहीं कर सकते हैं। गांधीवाद का असली रूप क्या हो सरदार इसके सफल भाष्यकार भी थे। श्री वीण् शंकर ने उल्लेख किया है कि गांधीजी की अन्त्येष्टि के उपरान्त श्री देवदास गांधी आदि का मत था कि गांधीजी की भस्मी एवं अस्थियां देश में सर्वत्र नदियों में डालने हेतु बांट दी जायें तथा राजघाट पर स्मारक बने। सरदार ने इसका समर्थन नहीं किया। उनका आधार था कि यह विधि एवं कार्य महात्मागांधी द्वारा प्रकट की गई इच्छाओं तथा उनके दर्शन के प्रतिकूल होगा।[26]गांधीवादी पद्धति एवं उच्चादर्शों हेतु पूर्ण निष्ठा रखते हुये भी सरदार यथार्थ एवं व्यवहार से परे नहीं थे। व्यावहारिक जीवन एवं शासन संचालन में तथा राष्ट्रीय सुरक्षा को ध्यान में रखते हुये पूर्णतया अहिंसावादी नहीं बना जा सकताए सरदार यह स्पष्ट समझते थे। महात्मा गांधी से भी उन्होंने अपना मन्तव्य बतलाया जिसे उन्होंने स्वीकारा।[27] भारत सरकार द्वारा 31 अक्टूबर 2021 को सरदार पटेल के राष्ट्र के प्रति योगदान को याद किया।

निष्कर्ष :-

यद्यपि सरदार पटेल का व्यक्तित्व और कृतित्व एक विशद आकार लिये हुए थाए जिस पर सर्वाधिक प्रभाव महात्मा गांधी के दर्शन एवं चिंतन पर स्पष्टतः देखा जा सकता है। सरदार पटेल वास्तविक अर्थों में आध्यात्मवादी थे लेकिन गांधीवादी दर्शन और कार्य पद्धति में समयानुकूल व्यवहारिक संशोधन पटेल द्वारा किया गया क्योंकि उनका मानना था कि वर्तमान परिस्थितियों में जो अनुकूल हो सके उसे पद्धति और चिंतन में शामिल कर लेना चाहिए। पटेल अनूठे व्यक्तित्व एवं दृढ़ विचारधारा के कारण ही भारतीय एकीकरण के लिए प्रयास किया जा सका। वर्तमान में पटेल के विचारों एवं सिद्धान्तों को अपनाने की महती आवश्यकता है। अविश्वासए घृणा हिंसा आंतकवाद साम्प्रदायिकता की समस्या का समाधान पटेल के चिंतनानुसार किया जा सकता है। पटेल को अहिंसा के संरक्षण ओर आन्दोलन की सफलता का श्रेय देना अतिआवश्यक है। 1931 कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षता के भाषण के शब्दों को 2021 में पुनः पलट कर देखने की आवश्यकता है। कि राष्ट्रवाद का पुनरूत्थान हर परिस्थिति में होना ही चाहिए। राष्ट्र.निर्माण की गतिविधियों को सरदार के व्यावहारिक मार्ग से सफलता मिली। गांधीजी की ब्रिटिश राज्य पर विजय मुख्यतः सरदार की असाधारण संगठन शक्ति तथा उन द्वारा अपने गुरू के आदर्शों की निष्ठापूर्वक क्रियान्विति के कारण हुई। वास्तव में सरदार पटेल गांधीजी के आदर्शों एवं विचारों के राजनीतिक प्रचारक थे। सरदार को गांधीजी का अन्धानुयायी नहीं वरन् अपनी बुद्धिमत्ता एवं चतुराई द्वारा उनके सिद्धांतों को व्यावहारिक बनाने वाला चिन्तक एवं साधक कहा जा सकता है।

*****

संदर्भ:-

1.कुमार रवीन्द्र सरदार वल्लभ भाई पटेल जीवन और कार्य वेदान्त पब्लिकेश्न लखनऊ पृष्ट - 150
2.गुप्त विश्वप्रकाश गुप्त प्रकाश राजेन्द्र एवं गुप्त मोहिनी आधुनकि भारत के शिल्पी राधा पब्लिकेशन नइ दिल्ली पृष्ट -76
3.पारीख नरहरि सरदार वल्लभ भाई पहला भाग नव जीवन अहमदाबाद 1961 पृष्ठ -71
4.मूर्ति आर.के. सरदार पटेल एण्ड हिज कंटेम्पेरीज स्टर्लिग पब्लिशर्स नई दिल्ली पृष्ट -112
5.तोहमणकर डी.बी सरदार पटेल जार्ज एलन एण्ड अनविन लंदन 1970 पृष्ठ -88
6.कृपलानी जे.बी. गांधी.हिज लाईफ एण्ड थाट प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मन्त्रालय नई दिल्ली सितम्बर 1961 पृष्ठ -117
7.पटेल मणिबेन सरदारजी के विशिष्ट और अनोखे पत्र पृष्ठ -20
8.मेहरोत्रा एन.सी. एवं रंजना कपूर सरदार बल्लभ भाई पटेल व्यक्ति एवं विचार आत्माराम एण्ड संस दिल्ली पृष्ठ -206
9.चैपड़ा पी.एन.क्विट इण्डिया मूवमेंट ब्रिटिश सिक्रेट रिपोर्टष् थामसन प्रेस लिण् फरीदाबार 1976 पृण् 15
10.मजूमदार आर.सी. स्ट्रगल फार फ्रीडम भारतीय विद्याभवन बम्बई जुलाई 1969पृष्ट -673.74
11.राजगोपालाचारी सी.द्वारा प्रकथन लाईफ एण्ड वर्क आफ सरदार वल्लभभाई पटेल ओवरसीज पब्लिसिंग हाउस बम्बई पृष्ठ - 208
12.अहलूवालिया वी.के. सरदार पटेल लाईफ सागर पब्लिकेशन्स नई दिल्ली 1974पृष्ठ -33
13.सेठी गोविन्द दास गांधी टुडे विकास पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली 1978 पृष्ठ -2
14चतुर्वेदी मधुकर श्याम प्रमुख भारतीय राजनीतिक विचारक कॉलेज बुक डिपो जयपुर 2006 पृष्ठ -262
15.एडवारडेस माइकेल ग्राजरू दी स्टोरी आफ दी ब्रिटिश इण्डिया पानबुक्स लिमिटेड लंदन 1969 पृष्ठ -332
16.सरदार की सीख नवजीवन अहमदाबाद पृष्ठ -50.51
17.भार्गव जीण् एस.ए.मोरारजी देसाई प्राइम मिनिस्टर आफ इण्डिया इण्डिया बुक कंपनी देहली 1977 पृष्ठ -39.40
18.गाडगिल एनण्वीण् का लेख . आर्किटेक्ट आफ यूनिटी एण्ड कनसोलिडेशनष् दिस वाज सरदार कम्पटेटि वाल्यूमष् प्रथम खण्ड सम्पादक नन्दूरकर पूर्वोक्त पृष्ठ -4.7
19.सरदार पटेल के भाषण सम्पाण् पारीख एवं शाह नवजीवन अहमदाबाद 1950 पृष्ठ -149
20.पूर्वोक्त सरदार पटेल के भाषणष् सम्पादक पारीख एवं शाह पृष्ठ -143
21.वर्मा वी.पी. माडर्न इण्डियन पालिटिक्ल थाट लक्ष्मीनारायण अग्रवाल एजूकेशन पब्लिशर्स आगरा छटा संस्करण 1978- पृष्ठ -363
22वही पृष्ठ -371
23.ताराचंद भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास खण्ड.3 प्रकाशन विभाग सूचना प्रसारण मंत्रालय नई दिल्ली 1983 पृष्ठ -319
25.पूर्वोक्त सेठी गोविन्द दास पृष्ठ -2
26.नागर पुरुषोत्तम आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी जयपुर 2013 पृष्ठ -571
27.अमर उजाला समाचार पत्र नए भारत के निर्माता थे सरदार पटेल 31 अक्टूबर- 2021

दक्षिण भारतीय भाषाएँ और अनुवाद- तमिल भाषा के विशेष संदर्भ में

डॉ.शशि प्रभा जैन
प्रोफसर
अविनाशिलिंगम इनस्टिट्यूट फॉर होम साइंस एण्ड हायर एजुकेशन फॉर विमेन (कोयम्बत्तूर)

सामान्य युग की शुरूआत के बाद से द्रविड़ियन भाषाओं को मुख्य रूप से दक्षिण भारत में पाया गया है। अटकलों के अनुसार द्रविड़ियन भाषाओं का जन्म कुमारी कंदम नामक एक पौराणिक महाद्वीप में हुआ, या अकादमिक क्षेत्र में बड़े पैमाने पर माना जाता है कि इनका जन्म सिन्धु घाटी सभ्यता में हुआ था। इरावाथम महादेवन जिन्हें तमिल और संस्कृत दानों भाषाओं का ज्ञान है,ने कई दशकों तक आईवीसी लिपि पर अध्ययन किया, उन्होंने 1998 में एक साक्षात्कार में कहा कि आइवीसी लिपि का अर्थ अब तक स्पष्ट नहीं हुआ है। माइकल वितज़ल के अनुसार, वेदों के प्रारंभिक स्तरों में भी ज्यादा द्रविड़ियन शब्द नहीं हैं, यहाँ तक कि ऐसा कहा जा सकता है कि द्रविड़ियन का प्रभाव ऋग्वेद के बाद कि अवधि में तेजी से बढ़ा निबंध ''सब्सट्रेट लेंग्वेजेस इन ओल्ड इंडो-आर्यन'' में प्रोफसर वितज़ेल कहते हैं,''क्योंकि हम प्रारम्भिक आरवी पर द्रविड़ियन प्रभाव को नहीं पहचान सकते हैं, इसका अर्थ यह है कि कम से कम पंजाब में पूर्व-ऋग्वेदीय सिन्धु सभ्यता की भाषा ऑस्ट्रो-एशियाटिक प्रकृति की थी।

बीज शब्द: भाषा, अनुवाद, तमील, दक्षिण भारत, द्रविड़, हिन्दी

द्रविड़ परिवार:-तमिल, तेलगू, मलयालम और कन्नड़ इस परिवरा की प्रमुख भाषाएँ हैं। ये भाषाएँ क्रमशः तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, केरल और कर्नाटक राज्यों में बोली जाती हैं। इसके अतिरिक्त कुछ छोटी भाषाएँ भारत के अनेक लोगों में फेली हुई हैं जिनमें तुलु, कोडगू, टोडा, कोठा, मालटो कई और कोलाभी वे अतिरिक्त गोड़ आदिवासियों की गोड़, बिहार, उड़ासा, मध्यप्रदेश के वन प्रदेशों की उरान और सुदूर विलोयिस्तान की ब्राहुई की गणना होती हैतमिल इस परिवार की सबसे महत्वपूर्ण भाषा हैं। इसमें विपुल मात्रा में प्राचीन एंव अर्नायीन साहित्य मिलता हैं जिसमें कम्बन की रामायण विशेष उल्लेखनिय हैं। भारत यूरोपीय परिवार के साथ लम्भे संपर्क के कारण इसमें संस्कृत के शब्द बड़े अनुपात में विद्यमान हैं। अभिजातवर्ग की तमिल 'शेन' और ग्रामीन तमिल 'कोडुन' कहलाती हैं। इसकी बुरगंडी, कैकाडी, कुसुब, केराण आदि कई बोलियाँ हैंतेलगु आन्ध्र प्रदेश की भाषा है। तेलगु में आधुनिक साहित्य विपुल भाषा में लिखा गया है। इस पर संस्कृत का गहरा प्रभाव पड़ा हैं। यह कोमल-मधुर भाषा है। कोमटाउ, गोलरी, कामाठी आदि इसकी प्रमुख बोलियाँ हैंमलयालम केरल प्रदेश की भाषा है। केरल के अतिरिक्त यह लक्ष्द्वीप में भी बोली जाती हैं। मलयालम के दो रूप है एक संस्कृत मलयालम जिसे ब्रह्मण बोलते है और दूसरा मूल मलयालम जिसे मुस्लमान बोलते हैं। यह भाषा पहले तमिल की भाषा की ही उपभाषा थी।कन्नड़ कर्नाटक की भाषा है। प्राचीन साहित्य में व्याकरण आदि शास्त्रीय विषयों के ग्रंथ मिलता है। बड़गा कुस्म्बा आदि इसकी बोलियाँ हैं।

द्रविड परिवार की विशेषताएँ:-द्रविड़ परिवार की भाषाएँ अश्लिष्टिक योगात्मक है। इसमें अर्थतत्व और सबंध तत्व प्रमुख विद्यमान रहते हैं। द्रविड़ भाषाओं में ट वर्गीय ध्विन्यों का बहुमूल्य हैं। भाषा वैज्ञानिकों का अनुमान है कि भारतीय युरोपीय परिवार में ट वर्गीय ध्वनियाँ नहीं थी। इन भाषाओं में तीन लिंग होते हैं। लिंग बदलने के लिए अन्य पुरूष सर्वनाम के रूप जोड़ दिए जाते हैं। संज्ञा के दो भेद होते है-उच्च और निम्न अथवा सज्ञान और अज्ञान। क्रियाओं में कृदन्त रूपों की प्रधनता है। कर्मवाच्य के लिए एक विशिष्ट सहायक क्रिया का प्रयोग किया जाता है, उसके स्वतन्त्र रूप नहीं होते।तमिल में पूछा जाता है-एन्न साप्पिडु-किरीगंल काफीया अल्लदु टीया? हिन्दी में क्या खाएँगे-काफी या चाय? ऐसा अनुवाद करेंगे तो अनुवादक के भाषा की बोधगम्यता की शून्यता का पूरा परिचय मिल जाता हैंहर भाषा-भाषी की संस्कृति की सूचना होते है-उस भाषा में प्रयुक्त होने वाले मुहावरे एवं कहावतें। इनका सटीक पर्याय लक्ष्य भाषा में जानना अनुवादक के लिए अत्यावश्यक है।

तमिल एवं हिन्दी भाषाओं की सरंचना-अन्तर:-भाषा के अंगों में मुख्य स्थान रखता है लिंग। यह अनुवाद को बहुत प्रभावित करता हैं। हिन्दी में दो ही लिंग होते हैं। पुल्लिग एवं स्त्रीलिंग। निर्जीव वस्तुओं के भी लिंग-पुल्लिग या स्त्रीलिंग होते हैं। इसके लिए कई नियम हैं। परन्तु सब नियम सर्वत्र सदालागू नहीं होते। जैसे ईकारान्त सब शब्द स्त्रीलिंग हैं-परन्तु उपवाद स्वरूप कुछ शब्दे हैं-पानी, धी, दही, जी, मोती....कहा जाता है कि अकारान्त शब्द पुल्लिंग वाची शब्द हैं। परन्तु वहाँ भी अपवाद हैं। बात-स्त्रीलिगं है और भात-पुल्लिंग है।'खेल' पुल्लिंग है, 'जमीन' स्त्रीलिंग है। 'ग्रन्थ' पुल्लिंग है,'पुस्तक' स्त्रीलिंग।

तमिल भाषा में तीन लिंग हैं-

आणपाल (पुल्लिंग) पेणपाल (स्त्रीलिंग) नपुसंकलिंग

अप्राणिवाचक एवं क्षुद्रप्राणिवाचक शब्दों को नपुसंक लिंग की कोटि में रखते हैं। इसको पलविनपाल कहते हैंनिर्जीव वस्तुओं के लिए जैसे हिन्दी में पुल्लिंग या स्त्रीलिंग होता है, वैसे तो तमिल में नहीं। जैसे हिन्दी में गाय (स्त्री), बैल (पु.), पेड़, पहाड़, पत्थर (पु.) तमिल में नाडु (स्त्री), कालै(पु.), मरम, मलै, कल्लु(न.लि.) हैं। इसलिए तमिल में अनुवाद करते समय ,हिन्दी में अनुवाद करने की अपेक्षा अधिक कठिनाइयाँ नजर आती हैं। तमिल शब्द के लिए सटीक पर्यायवाची हिन्दी शब्द ढूंढना मात्र काफी नहीं ,परन्तु उसका लिंग भी जाने की कोशिश करना चाहिए। पुस्तकम् या 'नूल' शब्द के लिए हिन्दी में पर्यायवाची शब्द हैं- किताब, ग्रन्थ ,पुस्तक ।तमिल में तो ऐसा नहीं होगा। हिन्दी में संज्ञा अनुसान विशेषण में परिवर्तन होते हैं ,पर तमिल में विशेषण में ऐसा परिवर्तन न होता। उदाहरण के लिए ; राम अच्छा लड़का हैं - राम नल्ल पेयन।

सीता अच्छी लड़की हैं - सीता नल्ल पेण।

वे अच्छे विद्यार्थी हैं - अवर्कल नल्ल माणवर्गल।

यहाँ तमिल में 'नल्ल' जो विशेषण शब्द है-वह हर वाक्य में वैसा ही बना रहता हैं, परन्तु हिन्दी में अच्छा, अच्छी-विशेषण के विभित्र रूप हैं। ये रूप संज्ञा के लिंग के कारण पाए जाते हैं।

शब्द प्रयोग:-

तमिल भाषा के शब्दों के अर्थान्तर, भिन्नार्थ एवं व्यंग्यार्थ होने के कारण हिन्दी में अनुवाद करते समय उन शब्दों के सटीक पर्याय-चयन में त्रुटि का आना सम्भव है, जैसे-

हिन्दी में	तमिल में
अवसर - मौका,जल्दी	अवसरम
धर्म – धर्म, दान	धर्मम
संसार – विश्व, पत्नी	संसारम
पशु – जानवर,गाय	पशु
विचार- चिन्ता	विचार

ये शब्द अनुवादक को भ्रम में डालते हैं। इसलिए तमिल से हिन्दी में या हिन्दी से तमिल में अनुवाद करते समय अनुवाद को दोनों भाषाओं में इन शब्दों के अर्थों की अच्छी जानकारी होनी चाहिए।

हिन्दी की निम्नलिखित ग्रामीण बोलियाँ:-

1 पूर्वीभाग - मैथिली मागची भोजपुरी

2 मध्य भागों में- अवधी छत्तीसगढी ब्रजकलौडी बुन्देली हरियानवी3 पश्चिमी भागों में - जयपुरी हाडौती मेवाती अहीर पाटी मारवाडी मेवाडी मालवी

4 उत्तरी भाग - गढवाली कुमायाँ श्मिला प्रदेश की पहाडी बोलियाँ

अनुवाद वही श्रेष्ठ हो सकता है जो भाव तथा विचार को ज्यों का त्यों का प्रकट करने के अतिरिक्त अपनी भाषा की विशिष्ट प्रकृति का भी घ्यान रख कर किए जाते हैं। मूल भाषा के संदेश के समतुल्य लक्ष्य भाषा के संदेश के समतुल्य होना चाहिए और फिर शैली की दृष्टि से। अनुवाद में आसान भाषा का प्रयोग करना चाहिए। अनुवादक को स्त्रात व लक्ष्य भाषा का पूर्ण ज्ञान व अधिकार होना चाहिए।प्रत्येक भाषा की एक स्वतंत्र प्रकृति होती है और उसमें भाव व्यंजन की कुछ विशिष्ट प्रणालियाँ होती हैंउसकी बहुपक्षीयता का ध्यान रखना चाहिए।दोनों भाषाओं की प्रकृति एवं समाजिक सास्कृतिक पृष्ठभूमि तथा परिवेश का सम्यक ज्ञान होनी चाहिए। हिन्दी में आज नयी प्रवृति देखी जा रही है।

वह खड़ीबोली के प्रति समादर का भाव है। पहले खड़ीबोली एक निश्चित सीमित प्रदेश की भाषा के लिए प्रयोग की जाती थी और अब खडीबोली शिक्षित जन समाज की है चाहे वह किसी भी बोली के प्रदेश वाले क्यों न हो। इस प्रकार भविष्य में कोई आश्चर्य नहीं कि संपूर्ण हिन्दी भाषी प्रदेश की बोली खडीबोली ही हो जाए। निश्चय ही वह दिन बडा स्वर्णिम होगा जब संपूर्ण भारतवर्ष की भाषा खड़ीबोली बन जाएगी और जन - जन में उस का प्रचार होगाामन में आए को अभिव्यक्त करने के लिए मानव और मानव के बीच जिन ध्वनि संकेतों का आदान-प्रदान होता हैं, उसे भाषा कहते हैं। इस प्रकार विचारों के आदान-प्रदान एवं भाव प्रकाशन के ध्वनि संकेतों के माध्यम को भाषा कहते हैं। भाषा समाज सापेक्ष्य होती है वह समाज की वाहिका है भाषा अपने परंपरागत गुण को धारण करती हूऐ आगे बढ़ती रहते हैं। मनुष्य समाज में रहकर भाषा को ग्रहण करता है। सामाजिक, धार्मिक एवं भौतिक परिवर्तनों की जानकारी भाषा से प्राप्त होती हैं। यही कारण है कि विशेष समाज स्थान की भाषा अलग होती हैं। उसका रूप सथान के अनुसार बदलता रहता हैं। ज्ञाना विज्ञान, कला ,दर्शन शास्त्र, साहित्य आदि क्षेत्रों में मानव जो कुछ प्राप्त कर सकता हैं। वह भाषा के द्वारा ही संभव हो सका हैं। सभी विधाएँ और कलाएँ इसी शब्द शक्ति से संबंधित हैं। भाषा मनुष्य के ज्ञान का साधन है। विश्व बन्धुत्व की भावना को पैदा करने तथा संसार को एक सूत्र में गठित करने की शक्ति भाषा में ही हैं। यह मानव के विकास, सम्यता संस्कृति और उसकी समस्त उपलब्धियों का माप दण्ड हैं।

प्रत्येक भाषा की ध्वनियों क्रमबद और व्यवस्थि होती हैं। भाषा का गठन ,रूप रचना वाक्य रचना ,शब्दार्थ आादि सब ध्वनियों की क्रमबद्धता पर रहते हैं। सारांश यह है कि भाषा मानव के मुख से निःसृत, अभिव्यक्ति एवं व्यक्त ध्वनि संकेतों की वह व्यवस्था है जिसके माध्यम से समाज में परस्पर विचारों और भावों का आदान-प्रदान होता है।

*****

संन्दर्भ ग्रन्थः-

1. भाषाविज्ञान और हिन्दी भाषा का स्वरूप -विकास - डॉ देवेन्द्र प्रसाद सिंह - जयभारती प्रकाशन - 267- वीं उट्ठीगंज, मायाप्रेस रोड़ - इलाहाबाद - 211003
2. हिन्दी भाषा की सामाजिक संरचना - भोलानाथ तिवारी, साहित्य सरकार -ई-10/4 कृष्ण नगर-दिल्ली - 110051
3. हिंदी राष्ट्रभाषा प्रचार का इतिहास-अखिल भारतीय हिन्दी संस्था संध 75 jawahar Nehru marg New Delhi.110002
4. नवीन साहित्यिक निपंध–डॉ गोविन्द त्रिभुणायत, कैलारा प्रिंटिगप्रेस आगरा
5. भाषा और भाषा विज्ञान-तेजपाल चैधरी-विकास प्रकाशन-बर्रा कानपुर-208027
6. प्रयोजनमूलक हिन्दी प्रासंगिकता एवं परिदृश्य-डॉ. सु. नागलक्ष्मी, जवाहर पुस्तकालय

राष्ट्रीय राजधानी परिक्षेत्र के गाजियाबाद एवं नोयडा उपक्षेत्रों में प्राथमिक शिक्षा के परिमाणात्मक प्रसार का विश्लेषणात्मक अध्ययन

प्रो.महेन्द्र प्रसाद पाण्डेय
आचार्य एवं कुलपति
आईएफटीएम विश्वविद्यालय, मुरादाबाद (उ.प्र.)

अजय कुमार
शोध-छात्र
शिक्षा विभाग
आईएफटीएम विश्वविद्यालय, मुरादाबाद

सारः-शिक्षा का सम्बन्ध जितना व्यक्ति से है उससे अधिक समाज से है। शिक्षा मनुष्य की आन्तरिक शक्तियों का सर्वांगीण, अर्थात शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का विकास है। मानव जीवन में जो कुछ भी अर्जित है वह शिक्षा का ही परिणाम है। वास्तव में समस्त मानव-जीवन ही शिक्षा है और शिक्षा ही जीवन है। शिक्षा के माध्यम से सहस्रों वर्षों से समाज द्वारा अर्जित अनुभव बालक को हस्तान्तरित कर दिये जाते हैं। शिक्षा के माध्यम से ही वह अपनी राष्ट्रीयता एवं संस्कृति को ग्रहण करता है। शिक्षा के द्वारा ही उसका शारीरिक, मानसिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास होता है। मानव व्यक्तित्व के सन्तुलित एवं सम्पूर्ण विकास को शिक्षा का लक्ष्य माना गया है। इसी लक्ष्य को दृष्टिगत करते हुए प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय राजधानी परिक्षेत्र में प्राथमिक शिक्षा के परिमाणात्मक प्रसार का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना है।

मुख्य शब्दः -परिमाणात्मक, गुणात्मक, प्राथमिक शिक्षा, व्यक्तित्व

प्रस्तावनाः-भारतीय संस्कृति में शिक्षा को पवित्रतम प्रक्रिया माना गया है। गीता में श्रीकृष्ण ने ज्ञान को पवित्रतम घोषित किया है- ''न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमहि विद्यते।'' महाभारत में कहा गया है- ''नास्ति विद्यासमं चक्षुः'' अर्थात विद्या के समान कोई दूसरा नेत्र नहीं होता। भारतीय दर्शन में अज्ञान को अन्धकार और ज्ञान को प्रकाश माना गया है। शिक्षा एक प्रकाश है। अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाना शिक्षा का प्रमुख कार्य है। प्राचीन भारत में ईसा पूर्व 1000 तक शिक्षा के अन्तर्गत बालक बालिकाओं को वेदों का लिखन पढना नही बल्कि उनका उच्चारण सिखाया जाता था। उस समय शिक्षा लिखित न होकर श्रुति पर आधारित थी। वैदिक काल में विद्यार्थियों की जो प्रारम्भिक शिक्षा का स्वरुप कंठस्थ कराये जाने पर ही आधारित था। ईसा पूर्व 1000 में भारत के लोगों को लेखन का ज्ञान हो गया था, इस बात के सुस्पष्ट प्रमाण इतिहास से हमें प्राप्त होते हैं। ऐसा होने के परिणामस्वरुप लेखन और पठन प्रारम्भिक शिक्षा का हिस्सा बन गये, परन्तु फिर भी वैदिक साहित्य व्याकरण और निरुक्त के अध्ययन में अभी भी श्रुति की परम्परा ही प्रचलन में रही।

19वीं शताब्दी के द्वितीय दशक में सर टॉमस मनरो ने प्रत्येक गांव में एक पाठशाला पायी थी। सेन (1933), ''मेरा अनुमान है कि बालकों में से 25 से 33 प्रतिशत शिक्षा पाते थे। तत्कालीन बंगाल के अधिकांश गांवों में प्रारम्भिक शिक्षा के लिए पाठशालायें थीं। किन्तु विभिन्न स्थानों में उनसे लाभ उठाने वाले बालकों की संख्या भिन्न-भिन्न थी। कतिपय जिलों में पढ़ने योग्य बालकां में सौ में से 18 बालक पाठशालाओं में पढ़ते थे अन्य जिलों में यही परिमाण प्रतिशत तीन ही था। 19 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में पाठशाला जाने योग्य प्रतिशत बालकों में 15 पाठशाला जाते थे। यदि इतनी उथल-पुथल की परिस्थितियों में 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में 15 प्रतिशत बालक पाठशालाओं में जाते थे तो हम भली भांति इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि हिन्दू काल के अन्तिम समय में यह संख्या दूनी अवश्य रही होगी क्योंकि मुस्लिम शासन काल में सुदीर्घ काल तक सरकार केवल मुसलमानों के लिए ही शिक्षा की व्यवस्था करती थी। हिन्दुओं को अब शिक्षा के प्रसार में राज्य से वह सहायता नहीं मिल पाती थी जो हिन्दू शासन काल में मिलती थी। जिस काल में सम्पूर्ण आर्यों के लिए उपनयन आवश्यक था उनमें साक्षरों की संख्या प्रतिशत 80 थी।

सन् 1857 में स्वतंत्रता युद्ध के परिणामस्वरुप भारत के शासन

की बागडोर ईस्ट इंडिया कम्पनी के हाथ से निकल कर अंग्रेज नरेशों के हाथ में आ गयी। इस काल में अर्थात सन् 1919 तक भारत सरकार सम्पूर्ण देश की शिक्षा नीति नियंत्रित करती रही। केन्द्रीय सरकार ने तीन महत्वपूर्ण आयोग या कमीशन (हण्टर, 1902 की विश्वविद्यालय समिति तथा सैडलर आयोग) नियुक्त किये। दो शिक्षा नीति 1904 और 1913 घोषित की। यह समय राष्ट्रीय जागृति का काल था इस काल में कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग की स्थापना हुयी और बंग भंग का आन्दोलन खडा हुआ। इस सब घटनाओं आंच शिक्षा पर भी आयी, इसी समय श्री गोपाल कृष्ण गोखले ने प्राथमिक शिक्षा निःशुल्क तथा अनिवार्य करने की चेष्टा की। इस प्रयत्न में यद्यपि वे असफल हुये परन्तु उनकी चेष्टा व्यर्थ नहीं गयी। देश में स्वाधीनता का आन्दोलन बढ़ा और इसी के फलस्वरुप भारत सरकार का सन् 1919 का नियम निकला।6 से 11 आयुवर्ग के केवल 30 फीसदी बच्चों के लिये ही प्राथमिक शिक्षा की सुविधायें थी और इनसे बहुत ही कम प्रतिशत था माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा के लिये। वैज्ञानिक तथा प्राविधिक शिक्षा पिछडी हुयी थी तथा शोध का प्रारम्भ हुआ ही था। इन कमजोरियों को दूर करने के अलावा देश के समक्ष प्रश्न था देश की संस्कृति पुनरुद्धार करना, और पूर्व तथा पश्चिम के पडोसी देशों के साथा भाईचारे का व्यवहार बढाना। इन समस्याओं का सामना करते हुये देश विकास के लिये कटिबद्ध हुआ, विश्वविद्यालय तथा माध्यमिक शिक्षा के लिये दो स्वंतत्र आयोग, राधाकृष्णन तथा मुदालियर आयोग नियुक्त किये गये तथा अन्य सभी महत्वपूर्ण विषयों के लिये समितियां गठित हुयी, इनके प्रस्तावों के अनुरुप बहुत कुछ काम भी हुआ। पंचवर्षीय योजनाओं का कार्यान्वयन स्वाधीन भारत का सर्वाधिक उल्लेखनीय कार्य हुआ।26 जनवरी 1950 को हमारे देश के लागू हुये संविधान में प्राथमिक शिक्षा के संदर्भ में संविधान की 45वीं अनुसूची में स्पष्ट निर्देश दिया गया कि राज्य इस संविधान के लागू होने के समय से 10 वर्ष के अन्दर 14 वर्ष की आयु के बच्चों की अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था करेगा, परन्तु 64 वर्ष के बाद भी हम इस लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाये। यद्यपि 1951 में प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-56) में शिक्षा पर 153 करोड़ व्यय हुये जिनमें से 85 करोड़ रुपये प्राथमिक शिक्षा के विकास एवं उन्नयन पर व्यय किये गये। दसरी पंचवर्षीय योजना (1956-61) में शिक्षा पर 273 करोड़ रुपये व्यय किए गए, जिनमें से 95 करोड़ रुपये प्राथमिक शिक्षा पर व्यय किए गए। इस योजना के तहत सन् 1957 में केन्द्र सरकार ने अखिल भारतीय प्राथमिक शिक्षा परिषद का गठन किया, जिसके फलस्वरुप प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए तथा प्रसार कार्य में तेजी आई। पांचवीं योजना के अंतिम वर्ष 6-14 आयु वर्ग के ऐसे बच्चों के लिए जो किसी कारण औपचारिक शिक्षा का लाभ नहीं उठा पा रहे थे, निरौपचारिक शिक्षा शुरु की गई। छठी पंचवर्षीय योजना में प्राथमिक शिक्षा पर 836 करोड़ रुपये शिक्षा पर व्यय किए गए। इस योजना में निरौपचारिक शिक्षा का विस्तार किया गया। सातवीं पंचवर्षीय योजना में (1985-90) में शिक्षा पर कुल 7633 करोड़ रुपये व्यय किये गये और इनमें से 2849 करोड़ रुपये प्राथमिक शिक्षा पर व्यय किए गए। 1987-88 में 'ब्लैक बोर्ड योजना शुरु की गई। आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-97) में शिक्षा पर कुल व्यय 19600 करोड रुपये व्यय किए गए। सन् 1994 में शैक्षिक दृष्टि से पिछडे जिलों में 'जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्र शुरु किया गया। नवीं पंचवर्षीय योजना (1997-2002) में शिक्षा के लिए 20381.6 करोड़ रुपयों का प्रावधान किया गया था, जिनमें से 1184.4 करोड़ रुपये प्राथमिक शिक्षा के लिए रखे गए, परन्तु व्यय 1636.5 करोड़ किए गए। नवम्बर 2000 में 'सर्वशिक्षा अभियान मंजूर किया गया और जनवरी 2001 में इसे शुरु किया गया। दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002-07) में शिक्षा के लिए 42850 करोड़ रुपयों का प्रावधान किया गया था, जिनमें से 28750 करोड़ रुपये प्राथमिक शिक्षा के प्रसार एवं उन्नयन के लिए रखे गए थे। इस योजना के दौरान दिसम्बर, 2002 में संविधान में 86 वां संशोधन कर धारा 21-ए जोडी गई, जिसके द्वारा 6-14 आयु वर्ग के सभी बच्चों की निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा को उनका मूल अधिकार घोषित किया गया। 11 वीं पंचवर्षीय योजना (2007-12) में इस योजना का मुख्य लक्ष्य प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करना है। प्राथमिक स्कूल उन स्थानों पर खोले जाएंगे जहाँ 1 किमी0 की दूरी पर स्कूल न हों। सभी स्कूलों में नए कमरे, पुस्तकालयों की व्यवस्था की जाएगी। कुछ चुने हुए प्राथमिक स्कूलों में कम्प्यूटर शिक्षा की व्यवस्था की जाएगी।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व:-भारत जैसे वैविध्यतापूर्ण संस्कृति और आवश्यकताओं वाले देश में वैसे भी कोई योजना इस प्रकार नहीं बनायी जा सकती कि उसे एक साथ पूरे देश के सभी क्षेत्रो में लागू किया जा सके। इसीलिये शिक्षा को समवर्ती सूची का विषय बनाया गया है। लेकिन उसके बाबजूद प्रायः क्षेत्रीय आवश्यकताओं और संतुलनों को दृष्टिगत रखे बिना ही शैक्षिक योजनायें बनायी और लागू की जाती रही हैं। स्वतंत्रता के 7वें दशक में यह आवश्यक है कि इस बात का गम्भीर मूल्यांकन किया जाये कि स्वतंत्रता के उपरान्त 6 दशकों से भी अधिक लम्बी शैक्षिक योजनाओं के क्रियान्वयन की

स्थिति अन्तिम छोर तक कैसी है। इसके लिये जिलावार सूक्ष्म अनुसंधानों और सर्वेक्षणों की आवश्यकता है ताकि यह समझा जा सके कि शिक्षा के पोषण के लिये देश और प्रदेश स्तर से भेजा जाने वाला जल हर जड़ तक पहुँचा है कि नहीं। क्योंकि जब तक सरकारी प्राथमिक शिक्षा में परिमाणात्मक प्रसार के असंतुलन और कमियों को जानकर दर नहीं किया जायेगा तब तक सभी क्षेत्रो का समन्वित और संतुलित विकास जो कि शिक्षा पर ही निर्भर है नहीं किया जा सकता। सर्वप्रथम इस दिशा में निश्चित तौर पर प्राथमिक स्तर पर ध्यान देने की आवश्यकता है। इसी दृष्टि को ध्यान में रखते हुये प्रस्तुत अनुसंधान में राष्ट्रीय राजधानी परिक्षेत्र की प्राथमिक शिक्षा के स्वतंत्रता के उपरान्त परिमाणात्मक प्रसार का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। ताकि राष्ट्रीय राजधानी परिक्षेत्र में प्राथमिक शिक्षा के विकास का एक सही परिदृश्य जाना और समझा जा सके। इसके उपरान्त ही हम इसकी कमियों को दर करने के संदर्भ में सुझाव सुझा सकते हैं। प्रस्तुत अनुसंधान इसी दिशा में एक विनम्र प्रयास है।

समस्या कथन: "राष्ट्रीय राजधानी परिक्षेत्र के गाजियाबाद एवं नोयडा क्षेत्रों में प्राथमिक शिक्षा के परिमाणात्मक प्रसार का विश्लेषणात्मक अध्ययन"

प्रमुख शब्दों का परिभाषीकरण: प्रस्तुत समस्या के प्रमुख शब्दों का परिभाषीकरण निम्नवत् किया गया है-

1. परिमाणात्मक प्रसार- किसी भी क्षेत्र में दो प्रकार के विकास होते हैं प्रथम गुणात्मक विकास तथा द्वितीय परिमाणात्मक। परिमाणात्मक विकास की प्रकृति स्थूल होती है जबकि गुणात्मक विकास की प्रकृति मूलतः सूक्ष्म है। परिमाणात्मक प्रसार के अन्तर्गत छात्रों की संख्या में अभिवृद्धि, शिक्षकों की संख्या में वृद्धि, विद्यालयों की संख्या और शिक्षा पर होने वाले व्यय से है। छात्रों के नामांकन शिक्षकां की संख्या, विद्यालयों की संख्या और बजट अनुमानों को राज्य सरकार के द्वारा प्रकाशित दस्तावेजों से लिया गया है।

2. प्राथमिक शिक्षा - प्राथमिक शिक्षा के अन्तर्गत वे सभी संस्थायें सम्मिलित हैं जिन्हें बेसिक शिक्षा परिषद द्वारा मान्यता प्राप्त है तथा जिनमें कक्षा 1 से कक्षा 5 तक तथा मुख्यतः 6-14 वर्ष तक के छात्र-छात्रायें अध्ययनरत हैं।

3. राजधानी परिक्षेत्र- राजधानी परिक्षेत्र से तात्पर्य उस क्षेत्र से जिसके अन्तर्गत भारत की राजधानी दिल्ली एवं उसका परिक्षेत्र लगभग 1484 वर्ग किमी0 है जिसमें उ0प्र0 राज्य के गाजियाबाद, मेरठ, हापुड़, मुजफ्फनगर, गौतम बुद्ध नगर, बुलन्दशहर, बागपत जिलें, हरियाणा राज्य के फरीदाबाद, गुरूग्राम, मेवात, रोहतक, रेवाडी, झज्जर, पलवल, महेन्द्रगढ़, भिवाडी, जिन्द और करनाल जिलें तथा राजस्थान राज्य के

भरतपुर एव अलवर।

शोध अध्ययन के उद्देश्य: प्रस्तुत शोध अध्ययन के उद्देश्य निम्न प्रकार है- गाजियाबाद एवं नोयडा उपक्षेत्रों में बालक और बालिकाओं के नामांकन में होने वाली अभिवृद्धि का पता लगाना।

गाजियाबाद एवं नोयडा उपक्षेत्रों में समयबद्ध रुप से अध्यापकां की संख्या में सन 1947 से 2017 तक होने वाली वृद्धि को ज्ञात करना।राष्ट्रीय राजधानी परिक्षेत्र के गाजियाबाद एवं नोयडा उपक्षेत्रों में प्राथमिक शिक्षा के अन्तर्गत शिक्षक छात्र अनुपात को ज्ञात करना।गाजियाबाद एवं नोयडा उपक्षेत्रों में सन् 1947 से 2017 तक विद्यालयों की संख्या में होने वाली वृद्धि को ज्ञात करना।

शोध अध्ययन का सीमांकन: -

प्रस्तुत शोध अध्ययन निम्नलिखित सीमाओं के अन्तर्गत किया गया है-प्रस्तुत अध्ययन में राष्ट्रीय राजधानी परिक्षेत्र की प्राथमिक शिक्षा के परिमाणात्मक एवं गुणात्मक विकास को अध्ययन का विषय बनाया गया है।स्वतंत्रता के उपरान्त वर्ष 1947 से ही प्राथमिक शिक्षा के परिमाणात्मक एवं गुणात्मक प्रसार को अध्ययन की सीमा माना गया है। कक्षा 1 से 5 तक अर्थात प्राथमिक शिक्षा को ही अध्ययन का विषय बनाया गया है।अध्ययन में विद्यार्थियों के नामांकन, विद्यालयों की संख्या, उनकी भवन स्थिति, शिक्षकों की संख्या, बजट आवंटन की स्थिति आदि तक ही अध्ययन सीमित है।अध्ययन में द्वितीयक स्रोतों से एकत्र आंकडों को ही विश्लेषित किया गया है।अध्ययन में राष्ट्रीय राजधानी परिक्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले विभिन्न उप क्षेत्रों में से केवल गाजियाबाद एवं नोयडा उपक्षेत्रों को चुना गया है।

प्राप्त परिणामों के आधार पर प्राप्त निष्कर्ष :-

गाजियाबाद एवं नोयडा उपक्षेत्रों में प्राथमिक शिक्षा से संदर्भित विविध आयामों के संदर्भ में प्रगति की दीर्घकालीन प्रवृत्ति का आंकलन करने के लिये प्रवृत्ति का परिगणन किया गया है, जिसके आधार पर उस विशेष आयाम में दीर्घकाल में हुयी प्रगति की दिशा और गति का अनुमान लगाया जा सकता है। इस आधार पर प्राप्त निष्कर्ष निम्नवत् हैं- राजधानी परिक्षेत्र के गाजियाबाद एवं नोयडा

उपक्षेत्रों में प्राथमिक विद्यालयों की संख्या में प्रगति की दीर्घकालीन प्रवृत्ति निरन्तर तीव्र वृद्धि की है।गाजियाबाद एवं नोयडा उपक्षेत्रों के शहरी क्षेत्रों में प्राथमिक विद्यालयों की संख्या में वृद्धि की दीर्घकालीन प्रवृत्ति दिखाई दे रही है पर यह ग्रामीण क्षेत्र की तुलना में धीमी है।गाजियाबाद एवं नोयडा उपक्षेत्रों में बालकों की नामांकन संख्या में दीर्घकालीन प्रवृत्ति का रुख तीव्र वृद्धि का रहा है।गाजियाबाद एवं नोयडा उपक्षेत्रों में बालिकाओं की संख्या में नामांकन के प्रवृत्ति सम्बन्धी परिगणित आंकडे स्पष्ट कर रहे हैं कि प्रारम्भ में बालिकाओं के नामांकन की प्रवृत्ति ऋणात्मक थी इसमें तेजी से गिरावट आयी और इसमें तीव्र दीर्घकालीन वृद्धि की प्रवृत्ति रही।गाजियाबाद एवं नोयडा उपक्षेत्रों में बालिकाओं के नामांकन की दीर्घकालीन प्रवृत्ति की वृद्धि में गति बालकों की तुलना में अधिक रही।गाजियाबाद एवं नोयडा उपक्षेत्रों में पुरुष शिक्षकों की संख्या में वृद्धि की दीर्घकालीन प्रवृत्ति में निरन्तर बढोत्तरी पायी गयी।गाजियाबाद एवं नोयडा उपक्षेत्रों में पुरुष शिक्षकों की तुलना में महिला शिक्षकों की संख्या में बहुत अधिक तीव्रता के साथ वृद्धि की दीर्घकालीन प्रवृत्ति दृष्टिगत हुयी।गाजियाबाद एवं नोयडा उपक्षेत्रों में शिक्षकों की समग्र संख्या में भी वृद्धि की दीर्घकालीन पायी गयी।गाजियाबाद एव नोयडा उपक्षेत्रों में प्राथमिक शिक्षा पर राजधानी परिक्षेत्र में व्यय की प्रवृत्ति की गणनायें ऋणात्मक अंक के साथ प्रारम्भ हुयी परन्तु शीघ्रता से बढते हुये इसमें वृद्धि की दीर्घकालीन प्रवृत्ति पायी गयी।

शोध अध्ययन की उपयोगिता:-भारत में शिक्षा व्यवस्था पर विभिन्न कालों और विभिन्न शासन व्यवस्थाओं में सतत् परिवर्तन होता रहता है। देश की आजादी के बाद संविधान की मूल भावना सभी को शिक्षा के समान अवसर प्रदान करने की रही।इसी सन्दर्भ में अनुच्छेद 45 के अन्तर्गत 14 वर्ष के सभी बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का संकल्प प्रदान किया गया। जहां एक ओर सभी विकास खण्डों में शिक्षक विद्यार्थी अनुपात की स्थिति काफी खराब है, वहीं नगरीय क्षेत्र में सरकारी प्राथमिक शिक्षा का बुरा हाल है। एक-एक विद्यालय भवन में तीन-तीन संचालित विद्यालय उनमें भी प्रति विद्यालय 1000 से अधिक नामांकित बच्चे, ऐसे में शिक्षा की दशा और दुर्दशा का सहज अनुमान लगाया जा सकता है। इस पर भी प्रति विद्यालय मात्र एक शिक्षक की उपलब्धता प्राथमिक शिक्षा के भयावह परिदृश्य को और गहरा देती है। प्राथमिक शिक्षा में और सुधार की सम्भावना इससे नहीं बन पाती। अनुसंधान के निष्कर्ष स्थापित करते हैं कि जब तक विद्यालयों में भौतिक और मानवीय संसाधनों की प्रतिपूर्ति सुनिश्चित नहीं होगी तब तक न ही शिक्षा अधिकार अधिनियम के लागू किये जाने का चिर स्वप्न पूर्ण हो सकेगा न ही शिक्षा की गुणवत्ता को प्राप्त किया जा सकेगा। नीति नियन्ताओं को गम्भीरता से इस स्थिति पर विचार करना चाहिये और सरकारी प्राथमिक शिक्षा जिसे साधन विहीन बालकों की शिक्षा कहा जा सकता है, में सुधार के गम्भीर प्रयास करने चाहिये। जिस अनुपात में विद्यार्थियों का नामांकन बढा है उस अनुपात में शैक्षिक संसाधनों में वृद्धि नहीं हो सकी है। इसका दुष्प्रभाव स्पष्ट रुप से शिक्षा की गुणवत्ता पर देखा जा सकता है। कल्पना की जा सकती है कि जब विद्यालयों में शिक्षक ही नहीं होगे तो बच्चो की उपस्थिति और उनकी शैक्षिक उपलब्धि की गुणवत्ता की स्थिति समझी जा सकती है। इस प्रकार अनुसंधान के निष्कर्ष शासकों, प्रशासकों, नियोजकों और नीति नियन्ताओं को स्पष्ट करते हैं कि प्राथमिक शिक्षा के संदर्भ में अध्ययन क्षेत्र में अभी भी परिमाणात्मक सुधार की बहुत आवश्यकता है .

*****

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची: -

1. अल्तेकर, अनन्त सदाशिव (2014), - प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, वाराणसीः अनुराग प्रकाशन, पृ0 6।
2. अग्रवाल, जे0सी0 (2006), भारत में प्राथमिक शिक्षा, नई दिल्लीः विद्या विहार।
3. अनन्तु, जे0 (1978), उच्च शिक्षा में निजी प्रबन्धन का अध्ययन, बम्बईः बम्बई और मराठवाड़ा, पी-एच0 डी0 समाजशास्त्र, दिल्लीः टी0 आई0 एस0 एस0 ।
4. आत्माराम (2001), भारवर्ष में प्राइमरी शिक्षा, जीवन ज्योति प्रकाशन ।
5. अमरनाथ (2006), पंजाब के जालंधर जनपद में सरकारी व निजी प्रबन्धित उच्चतर माध्यमिक स्कूलों के संगठनात्मक परिवेश का तुंलनात्मक अध्ययन, पंजाबः पीएच-डी0, पंजाब विश्वविद्यालय।,
6. नीपा (1979), "ऐ स्टडी आफ एडमिनिस्ट्रेशन आफ ऐलीमेन्ट्री एजूकेशन एन रिलेशन टू यूनिवर्सिलाइजेशन आफ ऐलेमेन्ट्री एजू. इन जम्मू एण्ड कश्मीर" इलाहाबाद।
7. तोमर, लज्जाराम (1991), भारतीय शिक्षा के मूल तत्व, नई दिल्लीः सुरुचि प्रकाशन, पृ0 19।5
8. त्यागी, गुरसरन दास (2014), भारत में शिक्षा का विकास, आगराः अग्रवाल पब्लिकेशन, पृ.0 22।
9. दैरैसामी मालथी (1998), तमिलनाडु में विद्यालय शिक्षा के विकास में निजी क्षेत्र, लैंगिक विभिन्नता और शैक्षिक उपलब्धियों की भूमिका का अध्ययन, इण्डियन एजुकेशनल रिब्यु, जनवरी।
10. उत्तर प्रदेश (2002), सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग लखनऊ।
11. उत्तर प्रदेश (2001), सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग लखनऊ।
12. उनियाल, एम0पी0, एण्ड शाह (2005), "रीजनल डिसपैरिटी इन एजूकेशन विद स्पेशल रिफरेंस टू हिल रीजन आफ वी0पी0 डिपार्टमेन्ट आफ एजूकेशन" नैनीतालः कुमा0 यूनी0।
13. इलवैथ नेशनल सेमिनार ऑन एलिमेंट्री एजुकेशन (1972), रिपोर्ट ऑन प्राइमरी एजूकेशन, नई दिल्लीः एन0सी0ई0आर0टी0।
14. एन0आई0ई0पी0ए0 (1979), आसाम में आरम्भिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण के सम्बन्ध में आरम्भिक शिक्षा का अध्ययन, नई दिल्ली।
15. एन0आई0ई0पी0ए0 (1979), उड़ीसा में कार्यक्रम के सार्वभौमीकरण के सम्बन्ध में बुनियादी शिक्षा के प्रशासन का अध्ययन, नई दिल्ली।
16. एरिया विद स्पेशल रिफरेन्स टू नान अटेन्डेन्स आफ प्युपिल्स लर्निंग अण्डर प्राइमरी एजूकेशन, पी-एच0डी0 शिक्षा, पूना वि0वि0 2003।
17. सेन (1933), मलकम मेमोयर्स ऑफ सेण्ट्रल इण्डिया एण्ड मालवा, आक्सफोर्ड प्रेस लन्दन, पृ0 158।

हिंदी भाषा का महत्व

शालिनी सी.
सहायक प्राध्यापका - हिंदी विभाग
सरकारी महिला महाविद्यालय, तिरुवनन्तपुरम
केरल - पिन : 695014

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहने के कारण वह आपस में विचार -विनिमय करता है। मनुष्य समाज के बिना अपना व्यवहार नहीं कर सकता। इसलिए मनुष्यों को अपनी समस्याओं को पूर्ण करने केलिए समाज में रहना पड़ता है। समाज में अपना विचार एवं विनिमय करने केलिए एक शक्तिशाली माध्यम है भाषा। सबसे पहले भाषा की व्युत्पत्ति नहीं हुई थी तब लोग अपनी भावनायें एवं विचारों को किसी -न -किसी माध्यम के द्वारा व्यक्त करते थे। कभी वह संकेतों , रंगों , या झाड़ियों से ,और कभी अन्य अनेक प्रकार की ध्वनियों की सहायता से अपना विचारों या भावों को व्यक्त करते थे। संकेतों का मतलब है - आँख दबाकर , खाँसकर,या हाथ हिलाकर भावनायें या विचारों को प्रकट करते थे। लेकिन इन सारी संकेतों का प्रयोग अधिक नहीं किया था। इसलिए विचार-विनिमय और भावों की अभिव्यक्ति का समाज में जिस साधन या माध्यम का प्रयोग व्यापक एवं विस्तृत रूप में हो उसे " भाषा " कहते है। इसलिए " भाषा " मनुष्य के विचार -विनिमय और भावों की अभिव्यक्ति का शक्तिशाली माध्यम है। " भाषा शब्द संस्कृत की 'भाष ' धातु से व्युत्पन्न है , जिसका अर्थ है 'व्यक्त करना या बोलना। मनुष्य अपने विचारों को भाषा के द्वारा ही व्यक्त करते है। इस दृष्टि से कहते है कि भाषा विचार - विनिमय का एक सफल माध्यम है। कहते है की भाषा मनुष्य की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि है। मनुष्य केलिए सबसे बड़ी देन है भाषा। भाषा के बिना ,मानव पशु के सामान हो जाते है। कहते है कि भाषा नामक यह ज्योति संसार यानि पूरे विश्व में दीप्त न हो तो ये तीनों भुवन अंधकार से भर जाते हैं।

आज हिंदी शब्द दो अर्थों में व्यवहृत होते हैं। वे इस प्रकार के है - संकुचित अर्थ और व्यापक अर्थ आदि। भाषा वैज्ञानिक इसका संकुचित अर्थ लेते है। उनके अनुसार पश्चिमी ही 'हिंदी' नाम की अधिकारिणी है। शौरसेनी प्राकृतों अपभ्रंशों से विकसित हिंदी है पश्चिमी हिंदी। खड़ीबोली , ब्रजभाषा , कनौजी ,बुंदेली ,बंगारू या हरियाणी आदि हिंदी भाषा के अंतर्गत आते हैं। कुछ लोग 'हिंदी 'शब्द संकुचित अर्थ में लेते है । उनके अनुसार खड़ीबोली मात्र ही हिंदी कहला सकती है। इसके अंतर वे खड़ीबोली के तीन साहित्यिक रूपों को स्थान देते हैं - 'हिंदी , उर्दू और हिंदुस्तानी आदि। आज सभी विश्व विद्यालयों में ' हिंदी ' भाषा को जो पाठ्यक्रम बनते हैं,उनमें हिंदी का बहुत ही व्यापक विस्तृत अर्थ लिया जाता है। कहते है कि शौरसेनी प्राकृत अपभ्रंशों से विकसित पश्चिमी हिंदी के साथ अर्ध-मागधी से विकसित 'कोसली ' भी हिंदी के अंतर्गत आते है। इसलिए ' कोसली ' के अंतर्गत अवधि ,बघेली ,और छत्तीसगढी को ही पूर्वी हिंदी कहा जाता है। क्योंकि हिंदी का साहित्य कबीर , तुलसी , सूर और जायसी को कैसे छोड़ सकते हैं ? ये हिंदी साहित्य के श्रेष्ठ कवि - गण भी है। ये सब अपनी रचनाओं से हिंदी साहित्य जगत को संपन्न बना दिया। बिहार और राजस्थान की अपनी बोलियाँ होने पर भी शिक्षा और शासन केलिए इन प्रदेशों में खड़ीबोली हिंदी ही अपनायी जाती है। यह भी नहीं राजस्थानी की मीरा बाई की कविता मिथिला या बिहार के " मैथिली कोकिल " कविवर विद्यापति की कविता हिंदी साहित्य के अंदर विशिष्ट स्थान पा गयी है। अर्थात हिंदी क्षेत्र का विस्तार एवं विशाल होगया है।

हिंदी के विविध नाम :- कहते है कि हिन्द अथवा हिंदी नाम का सम्बन्ध ईरान से फारस से जोड़ा जाता है। फारसवाले सिंधु नदी के इस पार के प्रदेशों को "हिन्द " कहते थे। संस्कृत का "स " फारसी में "ह " हो जाता था यह तो सत्य ही है। " हिन्द " के रहनेवाले को "हिंदी " कहलाते थे। आगे चलकर 'हिंदी ' भाषा को सूचित करने लगी। साथ -ही निवासियों को भी सूचित करनेवाले शब्द "हिन्दू " ही गया है। 'हिंदी ' शब्द का भाषा के अर्थ में प्रयोग भी सबसे पहले फारसे भाषा में ही हुआ था। इस प्रकार कहते है की छठी शताब्दी ईस्वीं पूर्व के पहले ही ईरान में भारत की भाषाओं को ' ज़बान -ए- हिंदी 'कहा जाता है। संस्कृत के पंचतंत्र और महाभारत के कुछ भागों को 'पहलवी ' भाषा ये तो ईरान की भाषा है। पहलवी भाषा में अनुवाद करते हुए यह संकेत दिया है की या ' ज़बान- ए -हिंदी 'से अनूदित है। इसलिए 'हिंदी 'नाम हिंदी की भाषा संस्कृत भाषा का सूचक है। ऐसा माना जाता है कि हिंदी भाषा केलिए हिंदी शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग अमीर खुसरो ने किया था। लेकिन यह सत्य नहीं , अमीर खुसरो जी ने' भारत के रहनेवाले ' अथवा भारतीय मुसलमान के अर्थ में ही हिंदी शब्द का प्रयोग किया था। खुसरो ने भाषा के अर्थ में ही ' हिन्दई ' अथवा ' हिन्दवी ' शब्द का प्रयोग किया है। उनके अनुसार मध्यदेश की शौरसेनी से सम्बन्ध कोई भी भाषा ही ' हिन्दवी ' है। भारत के मुसलमानों ने इस भाषा को स्वीकार लिया। भाषा के व्याकरणिक रूप को उसी रूप में स्वीकार करके उसमें संस्कृत के तत्सम -तत्भव शब्दों के स्थान पर फारसी और तुर्की शब्द भर लिए है। यह भाषा सबसे पहले ' हिंदी ' नाम से अभिहित किया है। भारत में मुसलमानी शासक के प्रभाव से भारतीयों ने भी इस भाषा को स्वीकार लिया। दक्खिनी मुस्लमान कवियों ने भी 'हिंदी ' नाम को इसी अर्थ में अपना लिये है। मुग़ल शासन काल ,में दिल्ली के निकट शाही फौजियों के पड़ाव था। उसमें रहनेवाले फौजियों ने आसपास रहनेवाले लोगों के बीच विचार-विनिमय केलिए एक भाषा का विकास किया था। जिसे ' उर्दू -ए-मोअल्ला ' कहलाते थे। यहाँ ' उर्दू 'शब्द ही भाषा का अर्थ होता है। इस भाषा में स्वाभाविक रूप से अरबी -फ़ारसी -तुर्की के शब् भरे हुए थे। इसी आधार पर अरबी -फ़ारसी -तुर्की शब्दों से भरी हुयी भाषा को उर्दू कहलाते थे। संस्कृत और देशी शब्दों से भरी हुई भाषा को हिंदी कहलाते है। लेकिन हिंदी और उर्दू का मूल रूप एक ही रहा। अरबी -फ़ारसी -तुर्की शब्दों की अधिकता के कारण उर्दू की संरचना , हिंदी की संरचना से थोड़ी बहुत भिन्न होने लगी। अर्थात उर्दू का व्याकरण हिंदी के व्याकरण थोड़ा भिन्न है। बंगाल के फोर्ट विलियम कॉलेज के हिंदी अध्यापक जॉन गिलक्रिस्ट ने " रूल्स ऑफ़ हिंदी ग्रामर " नामक एक पुस्तक लिखी। लेकिन उस पुस्तक के सारे नियम हिंदी का नहीं बल्कि उर्दू के थे। उनके अनुसार उर्दू, हिंदी , हिंदुस्तानी आदि एक ही भाषा के विविध नाम थे। परन्तु फोर्ट विल्लियम कॉलेज के अन्य अध्यापकों ने इस विचार में सहमत नहीं थे। सन १८१२ में फोर्ट विलियम कॉलेज के वार्षिक विवरण में यह लिखा है कि हिंदी में अरबी-फ़ारसी शब्दों का प्रयोग नहीं होता , और वह भाषा (हिंदी) मुसलमानी आक्रमणों से पूर्व भारतवर्ष के समस्त उत्तर -पश्चिम प्रान्त की भाषा थी। आगे चलकर अंग्रेजी शासको ने हिंदी और उर्दू के बीच स्पष्ट अंतर कर लिया है कि १८६१ में शिक्षा -संयोजकों के सम्मुख यह प्रश्न उपस्थित हुआ। तभी "हिंदी " शब्द को आजकल के अर्थ में विशिष्ट स्थान प्राप्त हुयी। आरम्भ में उर्दू और हिंदुस्तानी में कोई अंतर नहीं माना जाता था। फोर्ट विलियम कॉलेज में तो उर्दू और हिंदुस्तानी एक ही भाषा के दो नाम थे। ब्रिटिश सरकार भी इसमें सहमत रहे। पर गांधीजी ने उर्दू और 'हिंदुस्तानी ' एक नहीं मानता। हिन्दू-मुस्लिम एकता का सन्देश देते हुए उन्होंने भारतवर्ष केलिए हिंदुस्तानी का समर्थन किया। उनके अनुसार हिंदी सस्कृत -निष्ठ होती है और उर्दू अरबी -फ़ारसी मिश्रित भी। संस्कृत और अरबी - फ़ारसी के सरल शब्दों को समान रूप से स्वीकृत करनेवाली एक भाषा ही भारतवर्ष केलिए उपयुक्त था , यही गांधीजी का मत था। हिन्दुओं और मुसलमानों की संस्कृति का समान रूप में प्रतिनिधित्व करनेवली भाषा के रूप में उन्होंने हिन्दुस्तानी को प्रस्तुत किया। जब तक गांधीजी जीवित रहे तब तक हिन्दस्तानी आंदोलन में जीवित रहा। हिंदी भाषा का अन्य नाम है रेख्ता। मुसलमानी दरबारों में शायरी केलिए हिंदी भाषा का विशिष्ट रूप अपनाया था। जिसमें अरबी - फारसी के शब्द कुछ अधिक स्थान पाने लगे। एक तरफ इसे मुसलमानी दरबारों की साहित्यिक भाषा कहते थे। स्त्रियों की काव्य भाषा को रेख्ती कहलाती है।हिंदी भाषा के विकास को तीन कालों में विभाजित किया जा सकता है। वे इस प्रकार के है - आदिकाल , भक्तिकाल और आधुनिक काल आदि।**आदिकाल :** - आदिकालीन हिंदी का स्वरूप अपभ्रंश के बहुत निकट रखा। अपभ्रंश में प्रयुक्त ध्वनियाँ अधिकतर प्रयुक्त होती रही। इस युग के हिंदी

साहित्य की तीन शैलियाँ है - डिंगल शैली, सधुक्कड़ी और खड़ीबोली। दिल्ली या राजस्थान के राजाश्रित कवि और चरण कवि डिंगल शैली में काव्य रचना करते थे। दिल्ली और राजस्थान निकट की साधारण जनों की भाषा को 'डिंगल' कहलती थी। इस शैली का प्रमुख रचना है " पृथ्वीराज रासो "। अन्य अनेक रासो ग्रन्थ भिओ इसी श्रेणी में आती हैं। इन रसोम ग्रंथों में राजस्थानी , व्रज , खड़ीबोली और अपभ्रंश का मिश्रण पाया जाता है। तत्कालीन धार्मिक परिस्थितियों की वजह से सिद्ध -नाथ-पंथी और संत कवियों ने सधुक्कड़ी शैली में मिश्रित भाषा में कवितायेँ रचीं। आदिकाल के अंतिम चरणों में भाषा खड़ीबोली हिंदी के रूप में प्रकट हुयी। अमीर खुसरो की भाषा में इसका नमूना प्राप्त होता है। इसी युग में मैथिलि भाषा में रचना करनेवलए विद्यापति हुए , जिनकी भाषा में हिंदी का काफी पुट मिलता है। इसलिए विद्यापति को हिंदी साहित्य के इतिहास में महत्व का स्थान प्राप्त हुआ है।

भक्तिकाल :- इस युग की शुरुवात में भक्ति धारा अधिक प्रबल रही। कृष्णा भक्ति आंदोलन का मुख्य केंद्र ही व्रज प्रदेश रहा और यहाँ के काव्य भाषा ही व्रज भाषा बन गयी। रहीम , रसखान आदि मुस्लमान कवि भी व्रज भाषा में कविता लिखने लगी। तुलसीदास ने कवितावली , गीतावली, विनय पत्रिका आदि की रचना व्रजभाषा में की थी। आगे चलकर बिहारी जैसे श्रृंगार काल के कवि भी व्रजभाषा में लिखते थे। प्रेमाख्यान कवियों ने दोहा- चौपाई शैली चलायी जो अवधि भाषा में की थी। तुलसीदास जी की प्रसिद्ध रचना रामचरितमानस " तथा जायसी कृत "पद्मावत " इसी शैली में बने थे। बंगाल में व्रजभाषा के प्रभाव के कारण बंगला भाषा में व्रज भाषा का मिश्रण होने लगा। इस बोली को वहाँ 'व्रजबली ' नाम से पुकारा गया। इस व्रजबली में भक्ति साहित्य की प्रचुरता भी मिली । दूसरी और मुग़ल दरबार तथा दक्षिणी मुसलमानी दरबारों में विकृत वासना से प्रेरित होकर राजाओं की तृप्ति केलिए श्रृंगारी कविताओं की रेचन कर रहे थे। इसकेलिए उर्दू की चटपटी और कृत्रिम शैली को प्रचलित कर दिया। फिर उर्दू में उच्च श्रेणी की काव्य शैली की काव्य शैली विकसित हुई (c)

आधुनिक काल :- हिंदी भाषा -भाषी क्षेत्र पर अंग्रेज़ों के शासन की स्थापना से आधुनिक युग का आरम्भ मानता थामुसलमानी शासन की समाप्ति के साथ उर्दू प्रशासन की भाषा नहीं रह गयी। फिर हिन्दू और मुसलमानों की भाषा खड़ीबोली बन गयी। अंग्रेज़ सरकार ने भी अपने कर्मचारियों को व्यावहारिक हिंदुस्तानी की शिक्षा दी। खड़ीबोली में पुस्तकें छपी, गद्य की परंपरा विकसित हुई । धीरे -धीरे खड़ीबोली ने काव्य -भाषा का स्थान भी प्राप्त कर लिया। बीसवीं शदाब्दी के आरम्भ से ही खड़ीबोली में उच्चतर साहित्य रचनायें बनने लगा। समाज के कार्यकलापों के प्रभाव से भाषा संस्कृत शब्दावली की और झुकने लगी। १९०० के उपरांत द्विवेदी युग तथा छायावादी युग के प्रभाव से भाषा में तत्सम शब्दों की संख्या बहुत अधिक बढ़ गयी। प्रसाद , निराला, पंत जी की कवितायेँ भी हिंदी साहित्य जगत को आगे बढ़ाया। प्रगतिवादी आंदोलन के साथ-साथ तत्भव शब्दों ने तत्सम शब्दों का स्थान लेना शुरू किया था। स्वतंत्रता के बाद स्थिति में पुनः परिवर्तन या बदलाव हुआ। आधुनिक काल में भारतीय जन-जीवन पर सामान्य रूप से अंग्रेज़ी रीति- रिवाज़ों का गहरा प्रभाव पड़ा। बहुत सारे अंग्रेजी शब्द हिंदी में अधिक से अधिक रूप में चलने लगे हैं। जैसे - कार ,रेल ,टिकट, चेक , पेन , पेपर आदि। हम संक्षेप में कह सकते हैं कि हिंदी भाषा का अपना महत्व है। साहित्य में बोलचाल की निकट की भाषा का प्रयोग, एक तरह से ज़माने की माँग है। हिंदी की कहानियों, उपन्यासों, नाटकों तथा कविताओं में भी आजकल बोलचाली हिंदी का प्रभाव देखने को मिलता है। आज भी देश -विदेश में हिंदी भाषा का महत्वपूर्ण स्थान है। आज हिंदी राजभाषा , राष्ट्रभाषा , साहित्यिक भाषा , और मानक भाषा के रूप में ही प्रसिद्ध है।

****

सन्दर्भ ग्रन्थ -सूची :-

1. भाषा विज्ञान - डा -श्यामसुन्दर दास
2. भाषा विज्ञान -डा- भोलानाथ तिवारी
3. हिंदी भाषा और लिपि - डा -एच। परमेश्वरन

इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक का हिंदी सिनेमा : एक अध्ययन

डॉ.सुनील दशरथ चव्हाण

सहायक प्राध्यापक

हिंदी विभाग प्रमुख, एस. एन. आर्ट्स, डी. जे. मालपाणी कॉमर्स तथा बी.एन. सारडा साइंस कॉलेज, संगमनेर, जि. अहमदनगर, महाराष्ट्र 422605

MO.- 9881644682

भूमिका –

हिंदी सिनेमा (चलचित्र) का अपना एक इतिहास रहा है। सिनेमा का तंत्र तथा व्यापकता और विस्तृतता का पर्दा बहुत अधिक फैला हुआ हम पाते हैं। वैसे भारतीय सिनेमा की पुष्ट नींव रखनेवाले धुंडीराज गोविंद फालके जी ने राजा हरिश्चंद्र नामक सिनेमा द्वारा मूक चलचित्र द्वारा राजा हरिश्चंद्र की कथा प्रेक्षकों के सामने लाई थी। 3 मई 1913 (20 वी सदी का तीसरा दशक) यह भारतीय सिनेमा के इतिहास में इस दृष्टि से महत्वपूर्ण बन जाता है। एक आदर्श राजा के जीवन पर आधारित इस सिनेमा के उपरांत चलने वाली यह श्रृंखला अनवरत् रूप से आजतक अनेक सुधार, बदलाव के साथ हमारे प्रत्यक्ष प्रस्तुत हो रही है। स्वयं फालके जी ने सिनेमा निर्माण की गतिविधियां जानने और सिनेमा का तंत्र ज्ञान प्राप्त करने के लिए इंग्लैंड जाना उचित समझा था। इंग्लैंड से उन्होंने सिनेमा निर्माण से संबंधित विधिवत ज्ञान प्राप्त किया और सिनेमा निर्माण में सहायक साधन खरीदकर भारत ले आए और यह यात्रा आरंभ हुई। श्याम श्वेत अर्थात ब्लैक एंड व्हाइट और मूक चलचित्र के विषय भी प्रारंभ में पौराणिक और ऐतिहासिक हुआ करते थे। धार्मिकता का प्रभावी उपयोग प्रयोग सिनेमा के केंद्र में था। 'सत्यवान सावित्री', 'लंका दहन' , 'कृष्ण जन्म', 'कालिया मर्दन' , 'भस्मासुर मोहिनी' , 'संत तुकाराम' , ' संत नामदेव, 'संत एकनाथ', 'संत प्रहलाद' जैसे चलचित्र शिक्षकों का मनोरंजन करने में सिद्धहस्त रहे।

विषय वस्तु –

भारत में बोलने अथवा ध्वनि संवादों के साथ प्रस्तुत करने वाले सिनेमा का प्रारंभ 'आलमआरा' से हुआ। सवाक् भारतीय हिंदी सिनेमा वहां से तेजी से बदलते रंग - रूप के साथ आगे बढ़ा। 1931 से आरंभ हुई यह यात्रा आज तक गतिशील रूप में कार्यरत है । अनेक सिनेमा निर्माण की कंपनियां अपना योगदान सिनेमा के लिए देती रही। 'हिंदुस्तान फिल्म कंपनी' , ' कोहिनूर फिल्म कंपनी' , 'कृष्णा फिल्म कंपनी' आदि ने आरंभिक काल में अपना योगदान दिया। बाद में 'प्रभात फिल्म कंपनी', 'सागर फिल्म कंपनी' , 'राजकमल' , 'राजश्री', 'रणजीत मूवीटोन', आदि कंपनियों ने अपना महत्वपूर्ण योगदान सिनेमा निर्माण क्षेत्र के लिए दिया। व्ही. शांताराम, बाबुराव पेंढारकर, महबूब खान, जयंत देसाई, रामचंद्र ठाकुर, गजानन जाहागीरदार, विश्राम बेडेकर आदि निर्देशक और सिनेमाकारों ने सिनेमा के पटल को और भी विस्तारित किया।

बीसवीं सदी के चौथे दशक में 'बॉम्बे टॉकीज', 'प्रभात टॉकीज' की भूमिका महत्वपूर्ण रही। इस कालावधि के सिनेमा के आशय और विषय बदलते हुए हमें दिखाई देते हैं। "उस दौर की कुछ महत्वपूर्ण फिल्मों में तत्कालीन भारतीय समाज में व्याप्त हिंदू - मुस्लिम वैमनस्य, अछूतोद्धार, नारी स्वतंत्रता व शिक्षा बेमेल विवाह, कृषक व मजदूर दुर्दशा व संघर्ष, विधवा विवाह जैसी समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है।"

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी सिनेमा का अपना एक अलग ही स्वरूप अब हमारे सामने आता है। जहां भारत में नए भविष्य को लेकर लोग आशा से भरे थे। वहीं दूसरी ओर सामाजिक वैमनस्य, सांप्रदायिक, कटुता, मतभेद, विभाजन, भ्रष्ट राजनीति का भी विचित्र रूप प्रत्यक्ष था। स्वाभाविक रूप से तत्कालीन सिनेमा में उसका प्रतिबिंब उभरा था। पांचवें दशक के सिनेमा पर अधिकतर राज कपूर के आर. के फिल्म्स. बी.आर. चोपड़ा, महबूब खान, व्ही शांताराम, शक्ति सामत, बिमल रॉय, रमेश सहगल, नासिर हुसैन जैसे सिनेमाकारों का अधिक प्रभाव रहा। 'आवारा', 'बाजी', 'अफसाना', 'बहार', 'दीदार' , 'बैजू बावरा', 'आन' , 'अनारकली' ,' बूट पॉलिश', 'आह' , 'देवदास, 'श्री 420 ' , सी. आई. डी. , 'दो आंखें बारह हाथ', 'प्यासा', 'हावड़ा ब्रिज', 'गूंज उठी शहनाई', 'अनाड़ी', ' मधुमति, धूल का फूल, 'सुजाता', 'कागज के

फूल', ' चौदहवी का चांद', 'जिस देश में गंगा बहती है' जैसी संगीतमयी विविध विषयांगी सिनेमाओं ने भारतीय जनमानस पर जादू कर दिया। प्रेम के निर्मल रूप प्रकृति की सुंदरता और मानव जीवन के स्नेह - संबंधों पर भरपूर प्रकाश इनमें देखने को मिलता है। संगीत और गीतों की दृष्टि से सिनेमा का यह समय बहुत ही सुंदर माना जाता है। छठे दशक की हिंदी सिनेमा की उपलब्धियां अपनी निजी विशेषताएं रखती हैं। निर्देशक असिफ की 'मुगल - ए – आजम' तत्कालीन समय की भव्य फिल्म मानी जाती है। सिनेमा के सेट पोशाक, अभिनय, संवाद लड़ाई के दृश्य प्रकृति परिदृश्य गीतों का चित्रीकरण और गीत - संगीत से बना प्रभावशाली परिदृश्य दर्शकों पर अपनी अमिट छाप छोड़ गया। विषय की दृष्टि से यह सिनेमा एक प्रेम कहानी पर आधारित था किंतु सिनेमा में मुस्लिम सल्तनत के बादशाहों के ठाठ - बांट रिवाजों पर बल दिया गया था। इसी कालावधि में नितिन बोस की 'गंगा जमुना', अमरजीत की 'हम दोनों', नासिर हुसैन की संगीत प्रधान कलाकृति 'जब प्यार किसी से होता है' जैसी फिल्में प्रदर्शित हुई। हिंदी सिनेमा के इतिहास में अपना रौब जमाने वाली 'कश्मीर की कली', ' राजकुमार', 'संगम' , 'दोस्ती', 'हकीकत', 'चित्रलेखा', 'गाइड', 'कोहरा' फिल्मों का निर्माण हुआ। उक्त सिनेमाओं द्वारा प्रेम का आदर्श रूप प्रकट हुआ प्रेम त्रिकोण पर ध्यानाकर्षण किया गया। मित्रता का आदर्श रूप प्रस्तुत किया गया गीत - संगीत के अनुपम मेल से दर्शकों को अधिक प्रभावित किया।

सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों का प्रभाव सिनेमा पर पड़ना स्वाभाविक है। सिनेमा भले ही मनोरंजन का सशक्त माध्यम दर्शकों के लिए होता है किंतु सिनेमा हमें हमारे वास्तविकता यथार्थता का परिचय कराते हुए मार्गदर्शन भी करता है। इसी के परिणाम स्वरूप 70 के दशक में हमें सिनेमा की दो धाराओं का परिचय हुआ। मुख्यतः मनोरंजन या व्यावसायिक सिनेमा तथा कलात्मक या समानातर सिनेमा। इसी दौर में 'आनंद', 'गुड्डी', 'अंदाज', 'दुश्मन',' 'पाकीजा',' सीता और गीता', 'रेश्मा और शेरा', 'बॉबी' , 'जंजीर' जैसे सिनेमाओं ने विविधता के साथ अपना स्वतंत्र अस्तित्व सामने लाया। 'बॉबी' द्वारा प्रेम के पारंपरिक स्वरूप को बदलकर नए रूप का स्वीकार किया गया। सधन निर्धन, जाति-वर्ग प्रथा रहित प्रेम के आदर्श स्वरूप को प्रत्यक्ष कराया गया। 'जंजीर' यह सिनेमा साहस से भरे कर्तव्यनिष्ठ पुलिस की संघर्षमयी मित्रता निभाने वाले व्यक्ति की विशेषताएं समाज के सामने लाती है। यह कालखंड सिनेमा के नए तंत्र के साथ उभरने का कालखंड दिखाई देता है। साहस दृश्यों से युक्त सिनेमा की एक श्रृंखला इस कालावधि की विशेषता है। सन 1975 में निर्देशक रमेश सिप्पी की 'शोले' प्रदर्शित हुई। इस डाकूपट ने इतिहास रच दिया। अमिताभ बच्चन जैसे अभिनेता की सबसे सुंदर और साहसी युवा पात्र साकार करनेवाली कलाकृतियां दर्शकों में समा गयी। 'शोले', 'रोटी कपड़ा और मकान' , ' दीवार' , ' हेरा – फेरी', 'अमर अकबर अंथोनी', 'काला पत्थर', 'मुकद्दर का सिकंदर', 'मि . नटवरलाल' आदि सिनेमा द्वारा अमिताभ और अमिताभ के अभिनय द्वारा ये सिनेमा प्रभाशाली बने।

मुख्य अंश –

नौवें दशक का हिंदी सिनेमा मनोरंजन की दृष्टि से बड़ा ही सफल रहा। 'नसीब', 'सिलसिला', 'क्रांति' , 'सत्ते पे सत्ता', ' कालिया ' जैसे चलचित्र देशप्रेम और प्रेम के गहरे स्वरूप को दर्शाते गए तो 'लव स्टोरी', 'एक दूजे के लिए', 'उमराव जान' आदि द्वारा सामाजिक बंधनों को तोड़कर प्रेम के लिए बलिदान करते युवाओं का चित्रण भी इस काल की फिल्मों में हुआ। ' नमक हलाल' , ' हीरो', 'कुली', ' बेताब', 'अंकुश' , 'राम तेरी गंगा मैली' जैसे सुंदर सिनेमा इस कालखंड में प्रदर्शित हुए । 'राम तेरी गंगा मैली' यह फिल्म बिंबात्मक रूप में हमारे प्रत्यक्ष आती है। इसी दशक में ' मिस्टर इंडिया' , ' कर्मा' , 'तेजाब', 'कयामत से कयामत तक', 'मैंने प्यार किया', 'राम लखन' जैसे संगीत का जादू बिखेरने वाली प्रेम प्रधान फिल्मों का निर्माण हुआ। मात्र मनोरंजन यह उद्देश रखकर इनका निर्माण किया गया हो यह संभव है । आगे 'घायल', 'अग्नीपथ', 'हम' जैसे सिनेमा का जादू सिनेमा के पर्दे पर छाया रहा। हिंदी सिनेमा अपने आशय और विषयों में परिवर्तन लाता रहा है। जनमानस के आकृति- प्रकृति को प्रस्तुत करता रहा है। समाज में जो परिवर्तन होते गए सिनेमा ने उसे अपने में उतारा है। सांप्रदायिक हिंसा, नक्सलवाद, आतंकवाद को भी 'राजा', 'बॉम्बे', 'माचिस', दिल से', 'गदर', 'फिजा', 'मिशन कश्मीर' आदि सिनेमा द्वारा हवा मिली । इक्कीसवीं सदी के हिंदी सिनेमा ने सबका ध्यानाकर्षण किया। सदी के प्रारंभ में कुछ ऐसे सिनेमा प्रदर्शित हुए जिन्होंने उथल-पुथल मचा दी। पुराने प्रेक्षागृह में परिवर्तन के साथ मल्टीप्लेक्स ने आगमन किया। नव विषय और जीवन के लघु अंशु ने सिनेमा का पर्दा छू लिया। आर्थिक उदारता के साथ व्यावसायिकता का स्तर इस कालखंड में उच्चतम होता गया। नए - नए सिनेमा निर्माताओं ने नव निर्देशकों की अलगता पहचानकर निर्माण कार्य आरंभ किया। 'वाटर', 'फायर', 'जिस्म, ' मर्डर' , 'चांदनी बार', 'द ट्रेन' जैसे सिनेमा के माध्यम से ऐसे विषयों को परदे पर रखा गया जो अनपेक्षित थे। बार डांसरों का जीवन, समलैंगिकता, प्रेम का बिभत्स रूप, खुला प्रणय, वेश्यावृत्ति, समाज में दिखाई पड़ने वाले अनैतिक संबंध स्पष्ट रूप में प्रत्यक्ष हुए।

इस प्रथम दशक के सिनेमा ने बहुआयामी परिवेश को अपने आप में संजोया। इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक में देश के नवयुवकों पर हावी बाजारवाद और उपभोक्ता संस्कृति को आधार बनाकर व्यवसायिक रूप में सिनेमा बनाने जैसे होड़ लग गई। सिनेमा का पर्दा विस्तारित हो गया। इस सदी के प्रारंभ में ही (2001) 'गदर एक प्रेम कथा', 'लगान, 'दिल चाहता है', 'लज्जा' , 'चांदनी बार' जैसे सिनेमा द्वारा विभाजन की समस्या, अंग्रेजी शासन काल के भारतीय समाज पर अत्याचार, जीवन जीने के लिए स्त्री का बाजार में देह प्रदर्शनऔर नृत्य कर भरण पोषण आदि विषयों को प्रश्रय मिला । वर्ष 2002 में प्रदर्शित '16 दिसंबर', ' दी लीजेंड ऑफ भगतसिंह' , 'देवदास', 'शक्ति द पावर', 'मित्र- माय फ्रेंड', 'हंगामा', 'हलचल' जैसे सिनेमा द्वारा देशभक्ति की भावना, स्वतंत्रता संग्राम के नायक का महिमा गान, प्रेम में पड़े उन्मत्त नायक का प्रदर्शन तथा आतंकवादियों द्वारा किए गए देश विरोधी गतिविधि का उत्तर देते नायकों की शौर्य गाथा का चित्रण हुआ । इस दशक के सिनेमा की एक विशेषता यह भी रही कि इसमें भव्यता और विराटता का आगमन हुआ। प्रवासी भारतीयों को भी केंद्र में रखकर सुंदर और चमचमाती दुनिया का चित्रण इसमें किया गया । 'कल हो ना हो', 'कभी अलविदा ना कहना' , ' कभी खुशी कभी गम' , 'क्रिश' , 'मैं हूं ना', 'स्वदेश' आदि। इसी दौरान कुछ चलचित्रों का ढंग ही निराला पाया गया। उदा. 'निशब्द' , 'चीनी कम', 'इश्किया' तो 'मकबूल' , 'लक्ष्य', 'दीवार', 'वीर जारा' जैसी 2004 में आई। इन कलाकृतियों ने सौम्यता के साथ सुंदरता को प्रस्तुत किया। 'वास्तव', 'शूल',' वन्स अपॉन अ टाइम इन मुंबई', 'राजनीति' , ' ओमकारा' आदि सिनेमा के विषय मुंबई के माफिया राज, गुंडागिरी, राजनीति का भ्रष्ट रूप तो नौकरी करते व्यक्ति की दमघोंटू अवस्था का चित्रण बड़ी सुदरता के साथ करते है। जो एक सामाजिक वास्तव है। 'युवा', 'ओमकारा', 'रंग दे बसंती' , ' कारपोरेट', 'डोर', 'काबुल एक्सप्रेस', 'पेज थ्री' , 'आरक्षण' , 'गंगाजल' आदि सिनेमा हमारे समाज में व्याप्त बुराइयों की ओर संकेत करते हैं, हमारी व्यवस्था पर प्रश्न चिह्न खड़े करते हैं। 'मातृभूमि -नेशन विदाउट वुमेन' के निर्देशक संतोष झा की यह कलाकृति समाज में प्रत्यक्ष उभर कर आने वाली स्त्री भ्रूण हत्या के कारण उत्पन्न होने वाले संकट को उजागर करती है, उसके परिणामों को दिखाती है। विविध विषयों के साथ इस कालखंड में कुछ हास्य प्रधान और ज्ञानवर्धक सिनेमाओं का भी निर्माण हुआ 'हंगामा', 'भागम भाग', 'हलचल' , 'गोलमाल' , 'ये तेरा घर ये मेरा घर', 'हेरा फेरी', 'धमाल' आदि। 'अपरिचित - द स्ट्रेंजर' जैसा सिनेमा प्रेम कथा के साथ - साथ सामाजिक सुधार की ओर इंगित करता है। हमारी अपनी कर्तव्य भावना के प्रति हमें सजग कराता है। 'इस रात की सुबह नहीं', 'रंग दे बसती', 'थ्री इडियट' जैसे सिनेमा के माध्यम से कॉलेज कैंपस की राजनीति प्रशासन तंत्र का पर्दाफाश होता है।

निष्कर्ष –

निश्चित रूप से इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक का हिंदी सिनेमा विविधता लिए हुए हैं। नवीन तंत्र और साथ प्रस्तुत होता यह सिनेमा कथ्य, शिल्प और अपनी ही तकनीक में बदलाव के साथ आया है। हिंदी सिनेमा का इतिहास जितना समृद्ध रहा है उतना ही उसका भविष्य भी उज्जवल होगा। इसे विश्व भर के दर्शक बहुत पसंद करते आए हैं और करेंगे। समर्थ अभिनय, ध्वनि व्यवस्था, सुंदर रमणीय दृश्यों का फिल्मांकन, सुमधुर गीत - संगीत, कथा - पटकथा और संवाद हिंदी सिनेमा के सामर्थ्य स्थल हैं। निश्चित रूप से हिंदी सिनेमा का पटल विस्तारित है, उसका भविष्य उज्जवल है।

******

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1. हिंदी साहित्य और फिल्मांकन- डॉ. रामदास तोंडे - पृष्ठ 53
2. हिंदी साहित्य और फिल्मांकन- डॉ. रामदास तोंडे - पृष्ठ -58
3. हिंदी सिनेमा एक सफरनामा सी. भास्करराव
4. बॉलीवुड पाठ (विमर्श के संदर्भ) ललित जोशी

माध्यमिक विद्यालयों में हिन्दी शिक्षण : एक अध्ययन एनईपी 2020 के संदर्भ में

डॉ.उमा सैनी
सहायक प्रोफेसर
बुनियादी शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय
आई.ए.एस.ई. (मानित) विश्वविद्यालय
गांधी विद्या मंदिर, सरदारशहर

सारांश:-
इस शोध पत्र में माध्यमिक विद्यालयों में हिन्दी शिक्षण (एनईपी 2020 के सन्दर्भ में) का अध्ययन किया गया है। मातृभाषा ही बालकों के अधिगम का माध्यम बनती है एवं कक्षा कक्ष में विविध विषयों की शिक्षण अधिगम प्रक्रिया इसी के माध्यम से संचालित होती है। शिक्षण कि यदि बात करें तो हिन्दी भाषी शिक्षक को केवल अपने विषय का ही ज्ञान पर्याप्त नही हो, अपितु शिक्षण कला के सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक दोनों पक्षों का मर्मज्ञ होना भी आवश्यक है। अपने विषय से संबंधित शिक्षण सिद्धांतो एवं विधियों के सम्यक् ज्ञान के आधार पर ही वह आपका शिक्षण कार्य सोद्देष्य, सजीव, रूचिकर, सुग्राह्य एवं प्रभावपूर्ण बना सकता है। अतः भाषा शिक्षण के ऐसे शिक्षकों की आवश्यकता सदा बनी रहेगी जो छात्रों का उचित शिक्षण प्रदान करें और शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में केवल सहायक ही न हो वरन् शिक्षक नवीन प्रयोग करते रहें एवं करवाते रहें। प्रस्तुत अध्ययन इसी दिशा में एक प्रयास है।

शब्दावली: माध्यमिक विद्यालय, हिन्दी भाषा, शिक्षण

प्रस्तावना:-

सर्वेशांतु सनामानि कर्माणि च पृथक पृथक।
वेद शब्देभ्यः एवादौ पृथक् संस्थांच निर्मने ।श् -मनुस्मृतिकार

समस्त प्राणि जगत में केवल मनुष्य को ही भाषा का अमुल्य वरदान प्राप्त है। प्रत्येक मनुष्य अपनी बाल्यावस्था में कम से कम एक भाषा (मातृभाषा) तो सीख ही लेता है जिसका वह जीवनभर प्रयोग करता है। मातृभाषा ही बालकों के अधिगम का माध्यम बनती है एवं कक्षा कक्ष में विविध विषयों की शिक्षण अधिगम प्रक्रिया इसी के माध्यम से संचालित होती है। शिक्षण कि यदि बात करें तो हिन्दी भाषी शिक्षक को केवल अपने विषय का ही ज्ञान पर्याप्त नही हो, अपितु शिक्षण कला के सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक दोनों पक्षों का मर्मज्ञ होना भी आवश्यक है। अपने विषय से संबंधित शिक्षण सिद्धांतो एवं विधियों के सम्यक् ज्ञान के आधार पर ही वह आपका शिक्षण कार्य सोद्देश्य, सजीव, रूचिकर, सुग्राह्य एवं प्रभावपूर्ण बना सकता है। अतः भाषा शिक्षण के ऐसे शिक्षकों की आवश्यकता सदा बनी रहेगी जो छात्रों का उचित शिक्षण प्रदान करें और शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में केवल सहायक ही न हो वरन् शिक्षक नवीन प्रयोग करते रहें एवं करवाते रहें। प्रस्तुत अध्ययन इसी दिशा में एक प्रयास है। प्रायः देखा जाता है कि माध्यमिक स्तर पर भाषिक तत्वों के शिक्षण की उपेक्षा इसलिए कर दी जाती है कि हिन्दी तो मातृभाषा है और बालक को इसका यथेष्ट ज्ञान स्वतः ही हो जाता है। अतः शिक्षक भी केवल वैचारिक विषय सामग्री एवं साहित्यिक पक्ष की शिक्षा पर ही बल देते हैं और भाविक तत्वों की उपेक्षा कर देते है। इस उपेक्षा के कारण ही बालकों की भाषा-योग्यता किा स्तर नीचे गिरता जा रहा है। शिक्षकों का ध्यान इस और आकृष्ट करने के लिए ही भाषिक तत्वों के शिक्षण संबंधी प्रकरणों पर अध्ययन किया गया है। हमारे देष में राष्ट्र भाषा की समस्या अभी भी जटिल बनी हुई है और राजनैतिक परिस्थितियां उसे जटिलतर बनाती जा रही है। इस समस्या के प्रति हिन्दी शिक्षकों को विशेष रूप से जागरूक रहते हुए अपने कर्तव्यों का निर्वाह करना है जिससे इसके समाधान में वे अपना योग प्रदान कर सकें। एनईपी 2020 में भी भारतीय भाषाओं पर बल दिया गया है। भाषा निःसंदेह कला एवं संस्कृति से अटूट रूप से जुड़ी हुई है। साहित्य, नाटक, संगीत, फिल्म आदि के रूप में कला की पूरी तरह सराहना करना बिना भाषा के संभव नहीं है। दुर्भाग्य से भारतीय भाषाओं को समुचित ध्यान और देखभाल नहीं मिल पाई जिसके तहत देष ने विगत 50 वर्षों में ही 200 भाषाओं को खो दिया। यूनेस्को ने 197 भारतीय भाषाओं को 'लुप्त प्राय' घोषित किया है। इसके अलावा वे भारतीय भाषाएं भी जो अधिकारिक रूप से लुप्त प्राय की सूची में नहीं है - जैसे आठवीं अनुसूची की 22 भाषाएं वे भी कई प्रकार की कठिनाईयों का सामना कर रही है। भारतीय भाषाओं के शिक्षण एवं अधिगम को स्कूल और उच्चतर शिक्षा के प्रत्येक स्तर के साथ एकीकृत करने की आवष्यकता है। भाषाऐं प्रासांगिक और जीवंत बनी रहे इसके लिए इन भाषाओं में उच्चतर गुणवतापूर्ण अधिगम एवं प्रिन्टसामग्री का सतत प्रवाह बने रहना चाहिए - जिसमें पाठ्य पुस्तकें, अभ्यास पुस्तकें, वीडिओ, नाटक, कविताऐं, उपन्यास, पत्रिकाऐं आदि शामिल है।

अध्ययन का महत्व:- राष्ट्र के पुनर्निर्माण के कार्य में भाषा शिक्षण का विषेष महत्व व भाषा के माध्यम से छात्र ज्ञान-विज्ञान के अनेकानेक विषयों का अध्ययन करता है। प्रस्तुत अध्ययन का महत्व इस ओर भी है कि अन्य किसी भी भाषा को पढ़ाने की तुलना में हिन्दी भाषा का भारत में पढ़ाया जाना अति आवश्यक है। क्योंकि हिन्दी भाषा को भारत में मातृभाषा का दर्जा दिया गया है। यदि इसके सम्बन्ध में छात्र आसीन हो जाते हैं तो निश्चय ही ये मातृभाषा का अपमान करते हैं। अतः हिन्दी का शिक्षण किया जाना भारत में उसी प्रकार महत्वपूर्ण है जिस प्रकार ब्रिटेन में अंग्रेजी भाषा का। भारत के सभी इलाकों में हिन्दी भाषा का प्रयोग किया जा रहा है। अध्ययन का महत्व इस बात को भी बताता है कि हिन्दी शिक्षण में शिक्षण नवाचारों को कैसे अपना रहे हैं तकनीकी का उपयोग किस स्तर तक कर रहे हैं। क्योंकि प्रौद्योगिकी ने सभी स्थानों पर आधिपत्य कर लिया है। चाहे वह घर का कोई कक्ष हो या विद्यालय का कोई भी विषय, सभी में प्रौद्योगिकी के बिना कार्य सम्पन्न नहीं हो पाता। इसलिए हिन्दी शिक्षण में गुणवतापूर्ण अध्यापन हेतु इन नवाचारों, नवीन शिक्षण विधियों, नवीन उपकरणों को अपनाया जाना है ताकि छात्र अपनी मातृभाषा में रूचि ले और ज्यादा से ज्यादा इसका प्रचार प्रसार करें।अध्ययन का औचित्य:- किसी भी जनतक की सफलता उनके नागरिकों के चिन्तन पर निर्भर करती है। भाषा ही हमारे चिन्तन का आधार है। वर्तमान में हिन्दी शिक्षण बहुत प्रचलित हो गया है। अतः प्रायः सभी छोटी-बड़ी परीक्षाओं के अन्तर्गत हिन्दी परीक्षा भी ली जाती है । अध्ययन इसलिए औचित्यपूर्ण है कि हिन्दी शिक्षण के द्वारा व्यक्ति में नैतिकता, सामाजिकता एवं बन्धुता की भावना का विकास होता है। हिन्दी शिक्षण व्यक्तियों की परस्पर एक दूसरे के पास लाने में सक्षमता प्रदान करता है। अन्य किसी भी विषय का उनके व्यक्तित्व के विकास से इतना अधिक सम्बन्ध नहीं होता, जितना की हिन्दी शिक्षण को। वर्तमान में यह देखा जा रहा है कि हिन्दी शिक्षण का प्रभाव पहले की अपेक्षा और अधिक हो गया है। शिक्षा सम्बन्धी समस्त क्रियाकलापों की सम्पन्नता और विफलता शिक्षक पर निर्भर है। ब्रिटिशकालीन भारत में भारतीय भाषाओं के शिक्षकों को उचित सम्मान नहीं प्राप्त था। किन्तु अब स्थिति बदल गई है। स्वाधीनता के बाद सभी विषयों के शिक्षक समान सम्मान के अधिकारी हैं बल्कि कुछ विषेष स्थितियों के कारण भाषा के शिक्षक का स्थान महत्वपूर्ण हो जाता है।क्यों कि विद्यालय के अनेक साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षिक आयोजनों का उत्तरदायित्व भी उसी पर रहता है। अध्यन का औचित्य इस बात को भी दर्शाता है कि हिन्दी भाषी शिक्षण हेतु शिक्षक में कुछ आवष्यक गुणों का होना अनिवार्य है। जैसे हिन्दी भाषा का ज्ञान हिन्दी साहित्य का ज्ञान साहित्यिक अभिरूचि, हिन्दी के प्रति गौरव एवं अपने दायित्व की भावना, भाषा-शिक्षण विधियों का ज्ञान आदि। हिन्दी षिक्षक का कर्त्तव्य है कि कक्षा शिक्षण की पूर्व तैयारी अच्छी प्रकार से करे, उत्साह, लग्न और रूचि से पढ़ाऐं और बालकों में हिन्दी के प्रति रूचि और अनुराग उत्पन्न करें। समस्या कथन:- माध्यमिक विद्यालयों में हिन्दी शिक्षण: एक अध्ययन एनईपी 2020 के विषेष सन्दर्भ में) **अध्ययन के उद्देश्य:-** माध्यमिक विद्यालयों में हिन्दी शिक्षण। अध्ययन का परिसीमन:- हिन्दी शिक्षण हेतु अध्ययन में माध्यमिक विद्यालयों में हिन्दी शिक्षण से संबंधित साहित्य, विविध तत्वों, विषयों आदि तक सीमित रखा गया है। **माध्यमिक विद्यालयों में हिन्दी शिक्षण:-** हिन्दी भाषा शिक्षण का परिचय:- हिन्दी भाषा एक सरल और सुबोध भाषा है। इस भाषा को भारत की राष्ट्रीय

भाषा के नाम से जाना जाता है। इस भाषा का उद्भव संस्कृत भाषा से माना जाता है। हिन्दी भाषा का प्रयोग करना कठिन कार्य नहीं है। अतः सभी वर्ग के लोगों के द्वारा इस भाषा का प्रयोग किया जाना स्वाभाविक सी बात है।भाषा शिक्षण का राष्ट्र निर्माण में बहुत प्रभावकारी कार्य माना जाता है। आज सभी विद्यालयों में हिन्दी भाषा को अनिवार्य भाषा के रूप में घोषित कर दिया गया है। यदि छात्र हिन्दी भाषा की ओर ध्यान नहीं देता है तो निश्चय ही वह किसी अन्य विषय में भी प्रगति नहीं कर सकता है। इसलिए अन्य विषयों पर विजय प्राप्त करने के लिए भी हिन्दी भाषा का अध्ययन किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। शिक्षण एक गत्यात्मक एवं विकासशील प्रक्रिया है। ज्ञान का सागर अथाह है और ज्ञान विकीर्ण करने की कला अतिसूक्ष्म एवं जटिल है। अतः शिक्षक को अनवरत अध्येता ही नहीं, वरन् शोधकर्त्ता, अन्वेषणकर्त्ता एवं प्रयोक्ता बने रहना है। इस दृष्टि से 'आधुनिक शिक्षण प्रणालियों एवं भाषा शिक्षण, भाषाशिक्षण एवं शैक्षणिक उपकरण, हिन्दी पाठ्यचर्या एवं आलोचना, मातृभाषा की पाठ्य पुस्तक, परीक्षा, क्रियात्मक शोध एवं हिन्दी शिक्षण, शैक्षणिक निदान एवं उपचारी शिक्षण, इकाई योजना आदि भाषा शिक्षण के उत्प्रेरक एवं उपादेय है। अध्ययन में भाषा शिक्षण सम्बन्धी सभी पहलुओं एवं दृष्टियों से उपयोगी को शामिल किया गया है। इसमें माध्यमिक विद्यालयों के भाषा शिक्षकों, प्रशिक्षण महाविद्यालयों के प्रशिक्षकों एवं प्रशिक्षणार्थियों तथा अन्य सभी भाषा-शिक्षा-अनुरागियों केवल सैद्धान्तिक ज्ञान वर्धन ही नहीं करें, अपितु वास्तविक एवं व्यावहारिक शिक्षण की समझ भी विकसित करें। भाषा शिक्षण में दो पक्ष स्पष्टतः सामने आते हैं - भाषा की शिक्षा एवं साहित्य की शिक्षा। माध्यमिक स्तर पर साहित्यिक पाठ ही भाषिक तत्वों के शिक्षण के भी माध्यम होते हैं। भाषा शिक्षण में माध्यमिक स्तर के प्रारम्भ से ही भाषा का साहित्यिक रूप उभरने लगता है और उत्तरोतर उसमें सूक्ष्मता, चित्रोपमता एवं सांकेतिकता बढ़ती जाती है। हिन्दी भाषा शिक्षण में भाषा की परिभाषा, प्रवृति, भाषा सीखाने की प्रक्रिया, भाषा केविविध पक्ष, भाषा अध्ययन सम्बन्धी दृष्टिकोण, मातृभाषा का महत्व, मातृभाषा शिक्षण के उद्देष्य, भाषा शिक्षण के सिद्धान्त आदि प्रकरणों से सम्बन्धित जानकारी दी जाती है। शिक्षा में विविध भाषाओं का स्थान एवं महत्व शिक्षा में विविध भाषाओं का स्थान एवं महत्व:- ''इदमन्धतमः कृत्स्नं जायेत भ्वनत्रयम्। यदि शब्दात्द्वयं ज्योतिरा संसारं न दीप्यते।'' -दण्डी-काव्यादर्ष -''यदि सृष्टि में शब्द की ज्योति प्रदीप्त न होती तो यह त्रिभुवन घोर अन्धकार में निमग्न हो जाता।'' उपर्युक्त कथन से ही भाषा अथवा भाषाओं का महत्व स्पष्ट है। आज के वैज्ञानिक एवंऔद्योगिक युग में मनुष्य के लिए केवल अपने भाषा-भाषियों के बीच रहकर जीवन व्यतीत करना असम्भव-सा है। उसे अनेक अन्य भाषा-भाषियों के बीच रहना ही पड़ता है और उनके सम्पर्क-स्थापन के लिए उन भाषाओं को सीखना पड़ता है। भारत जैसे बहुभाषी देश में अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त अन्य भाषाएँ सीखना और भी आवष्यक है। यही नहीं, अपितु, आज के अन्तर्राष्ट्रीय युग में विश्व के अन्य राष्ट्रों से सम्पर्क-स्थापन के लिए विदेशी भाषओं का अध्ययन भी आवश्यक है। इस कारण हमारी शिक्षा की एक बड़ी समस्या यह है कि किस स्तर पर किन-किन भाषाओं की शिक्षा प्रदान की जाए। व्यक्ति के जीवन में चार भाषओं के अध्ययन का विशेष महत्त्व है- प्राचीन-भाषा अथवा संस्कृत भाषा, मातृभाषा, राष्ट्रभाषा अथवा राज्य भाषा, विदेषी भाषा अथवा अन्तर्राष्ट्रीय भाषा। इसके अध्ययन के बिना प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति, धर्म, दर्शन, नीति, ज्ञान और विज्ञान का वास्तविक परिचय दुर्लभ है, अतः इसकी शिक्षा का हमारे पाठ्यक्रम में समावेष आवश्यक है। विद्यालयी शिक्षा में उपर्युक्त भाषाओं का स्थान निर्धारित है- मातृभाषा, राष्ट्रभाषा और वैकल्पक रूप में विदेशी भाषा। संस्कृत भाषा को हम मातृभाषा या राष्ट्रभाषा के साथ संलग्न कर सकते है। इस सम्बन्ध में अनेक आयोगों एवं समितियों के सुझाव प्राप्त करने के बाद केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार मण्डल में त्रिभाषी सूत्र का प्रतिपादन किया है- अर्थात् माध्यमिक स्तर पर प्रत्येक बालक को निम्नांकित तीन भाषाओं का अध्ययन अनिवार्य रूप से करना होगा –(1) मातृभाषा या क्षेत्री भाषा (2) अंग्रेजी (3) हिन्दी (अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के लिए) अथवा एक आधुनिक भारतीय भाषा (हिन्दी भाषी क्षेत्रों के लिए)। हिन्दी भाषा शिक्षण के उद्देष्य:- भाषिक तत्वों का ज्ञान प्राप्त करना। विविध साहित्यिक विधाओं का ज्ञान प्राप्त करना। विषय-वस्तु का ज्ञान प्राप्त करना। रचना कार्य के विभिन्न रूपों का ज्ञान प्राप्त करना। हिन्दी साहित्य के इतिहास की रूपरेखा का ज्ञान प्राप्त करना। दूसरों द्वारा वर्णित या पठित सामग्री सुनकर अर्थ ग्रहण करने की योग्यता प्राप्त करना। शुद्ध वाचन करने की योग्यता प्राप्त करना पठन सामग्री: स्पष्टीकरण। गद्य या पद्य पढ़कर (मौन पठन द्वारा) अर्थ ग्रहण करने की योग्यता प्राप्त करना। शुद्ध बोलकर एवं लिखकर अपने भावों एवं विचारों को व्यक्त करने की योग्यता प्राप्त करना। साहित्य का रसास्वदन करना। साहित्य की सामान्य समालोचना करने की योग्यता प्राप्त करना। रचना कार्य में मौलिकता लाने की योग्यता प्राप्त करना। भाषा और साहित्य में रूचि लेना। सदप्रवृत्तियों का विकास करना। पाठ्यक्रम में मातृभाषा का स्थान:-माध्यम की दृष्टि से मातृभाषा का महत्त्व: सभी शिक्षा विशेषज्ञों एवं विचारकों ने स्वीकार किया है। उसके द्वारा बालक शीघ्रता और सरलता से नया ज्ञान प्राप्त कर लेता है और सीखने की क्रिया सरल और स्वाभाविक लगती है। वह स्वतन्त्र रूप से चिार कर सकता है, विवेचन, विश्लेषण और संश्लेषण की दृष्टि से मातृभाषा ही उपयुक्त भाषा होती है। उत्तर भारत में मातृभाषा हिन्दी है। उसे उच्च-स्तरीय शिक्षा का भी माध्यम होना चाहिए। बालक के सर्वांगीण विकास की दृष्टि से, शिक्षा के माध्यम की दृष्टि से और विघटनकारी प्रवृत्तियों को दूर कर भाषायी एकता स्थापन की दृष्टि से मातृभाषा का पाठ्यक्रम में अनिवार्य एवं सर्वोपरि स्थान है। हिन्दी भाषा का शिक्षक:- भाषा-शिक्षण को अधिक से अधिक प्रभावपूर्ण बनाने की दृष्टि से हिन्दी-शिक्षकों में निम्न गुण होने चाहिए - प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व मानसिक योग्यता नैतिक बल शैक्षिक योग्यता एवं उपाधियाँ प्रशिक्षण, हिन्दी भाषा एवं साहित्य का ज्ञान ,साहित्यिक अभिरूचि , हिन्दी के प्रति गौरव ,भाषा-शिक्षण विधियों का ज्ञान ,विविध भाषायी कौशल:- माध्यमिक कक्षाओ माध्यमिक कक्षाओं में उच्चारण शिक्षण के अवसर - माध्यमिक कक्षाओं में उच्चारण शिक्षण के अवसर - में उच्चारण शिक्षण के अवसर - सस्वर वाचन, मौखिक रचना-शिक्षण ,माध्यमिक कक्षाओं में वर्तनी शिक्षण के अवसर - माध्यमिक कक्षाओं में वर्तनी शिक्षण के अवसर - ,भाषा सम्बन्धि पाठ में, अतरिक्त शिक्षण, में सत्रारंभ में एक या दो सप्ताह वर्तनी-शिक्षण का आयोजन। माध्यमिक कक्षाओं में वाक्य रचना शिक्षण के अवसर - माध्यमिक कक्षाओं में वाक्य रचना शिक्षण के अवसर - गद्य शिक्षण, मौखिक एवं लिखित रचना शिक्षण, व्याकरण शिक्षण एवं विविध साहित्यिक कार्यक्रम। माध्यमिक कक्षाओं में लिखित रचना शिक्षण के अवसर - माध्यमिक कक्षाओं में लिखित रचना शिक्षण के अवसर - पत्र एवं प्रपत्र, वर्णन, संवाद, जीवनी तथा आत्मकथा, व्याख्या, सार लेखन, पुस्तक समीक्षा, सृजनात्मक अभिव्यक्ति सम्बन्धी रचनायें- निबन्ध, कहानी, एकांकी, गद्यगीत, सरल कविता।

गद्य की विधाओं का शिक्षण:-

यात्रावृत्तांत, रिपोर्ताज, जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण और रेखाचित्र विधाओं की शिक्षण-विधि बहुत कुछ निबंध शिक्षण विधि से मिलती-जुलती है, क्योंकि इन विधाओं में भी गद्यात्मक वर्णन- शैली का ही प्रयोग होता है। अतः इनके शिक्षण में भी निबंध शिक्षण में प्रयुक्त सोपानों का ही अनुसरण करना पड़ता है।

कविता शिक्षण के अन्तर्गत- कविता कंठस्थ करना, कविता सुपाठ, अंताक्षरी, समस्या पूर्ती, कविता लिखने का अभ्यास, कवि सम्मेलन, कवि दरबार, कवि जयन्ती आदि आयोजन करवाये जाये।

भाषा शिक्षण एवं शैक्षणिक उपकरण:-

शिक्षण क्रिया को सरल, सजीव, सुग्राह्य एवं प्रभावपूर्ण बनाने के लिए यह आवश्यक है कि नवीन ज्ञान, भाव एवं विचार इस प्रकार प्रस्तुत किए जायें कि उनका स्परूप प्रत्यक्ष, स्पष्ट एवं मूर्त्त हो उठे। इस कारण शैक्षणिक उपकरणों की आवश्यकता पड़ती है। शैक्षणिक उपकरणों के अनेक रूप हो सकते है। दृष्य उदाहरण - वास्तविक पदार्थ, नमूने, सैण्ड टेबुल, मदृष्य उदाहरण - बाडल, चित्र, रेखाचित्र, डायग्राम, ग्लोब, पोस्टर, चार्ट, टाइम लाईन, मैजिक लैण्टर्स, चित्र विस्तारक यंत्र श्रव्य उदाहरण - रेडियो, ग्रामोफोन, टेपरेकार्डर श्रव्य उदाहरण - दृष्य-श्रव्य उदाहरण - चलचित्र, टेलीविजन, कम्प्यूटर, स्मार्टब दृष्य-श्रव्य उदाहरण - बोर्ड **आधुनिक शिक्षण विधियाँ आधुनिक शिक्षण विधियाँ:-**

- किंडर गार्टन प्रणाली डाल्टन योजना
- निर्दिष्ट कार्य विधि
- निरीक्षित स्वाध्याय विधि

- खेल प्रणाली
- माण्टेसरी प्रणाली
- प्रोजेक्ट प्रणाली

निष्कर्ष :- इस प्रकार प्रस्तुत अध्ययन से स्पष्ट होता है कि भाषा शिक्षण का राष्ट्र निर्माण में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। इसी के आधार पर सम्पूर्ण शिक्षा जगत को एक नवीन रूप प्रदान किया जा सकता है। 'माध्यमिक विद्यालयों में हिन्दी शिक्षण अध्ययन के द्वारा छात्रों में नैतिकता, सामाजिकता, बन्धुता आदि की भावना उत्पन्न होती है। आज सभी विद्यालयों में हिन्दी शिक्षण की प्राथमिकता प्रदान की जा रही है ताकि अधिक से अधिक छात्रों को भाषा का अधिगम कराया जा सके और उनके सभी प्रकार के नैतिक व्यवहारों के प्रति सजगवान किया जा सके। भाषा शिक्षण के माध्यम से राष्ट्रोन्नति में सहायता प्राप्त होगी। भारत का सम्पूर्ण साहित्य हिन्दी भाषा में प्राप्त हो जाता है। अतः हिन्दी शिक्षण का भारतीय संस्कृति से लोगो को परिचित कराने में विशेष भूमिका है। भावी शोधार्थी के लिए सुझाव:- हिन्दी भाषा शिक्षण आवष्यकता एंव महत्व: एक अध्ययन शिक्षण कला का विष्लेषणात्मक अध्ययन उच्च कक्षाओं में हिन्दी भाषा शिक्षण: एक अध्ययन प्रशिक्षणार्थियों का विकास एवं शिक्षण: एक अध्ययन

****

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. भटनागर, प्रो.सुरेश (2009) ''भारत में शिक्षा का विकास''
2. अग्रवाल पब्लिकेषन। सिंह, निरंजन कुमार (2008) ''माध्यमिक विद्यालयों में हिन्दी
3. शिक्षण'' राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर। पृष्ठ सं. 326
4. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020), मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार।
5. सांखला, डॉ. अर्जुन सिंह ''हिन्दी भाषा शिक्षण एवं प्रवीणता''अरिहंत शिक्षा प्रकाशन, जयपुर
6. पाल, आर.एस. गौड़, राधेश्याम शर्मा, ''हिन्दी शिक्षण'' उच्च माध्यमिक शिक्षा प्रकाशन, जयपुर।

विद्यालयों में शिक्षकों के दृष्टिकोण और अनुभूति पर परिवर्तनकारी नेतृत्व का प्रभाव: एक साहित्य समीक्षा

दीपक

सहायक प्रोफेसर
स्वामी श्रद्धानन्द महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

परिचय-विद्यालय शिक्षा स्थिति, शिक्षकों का दृष्टिकोण, व्यवहार,नौकरी के प्रति संतुष्टि, इसके साथ साथ छात्र प्रदर्शन और प्रगति पर अनुसंधान सकारात्मक प्रभाव डालता है, इसीलिए परिवर्तनकारी नेतृत्व सफलतापूर्वक शैक्षिक संगठनों पर लागू किया जाता है।(लेथेवुड ईटीएएल., 2012;लेथेवुडेंटल .,2000; मेंगेटल., 2007)

परिवर्तनकारी नेतृत्व (लीडरशिप)-परिवर्तनकारी नेतृत्व शब्द का अविष्कार सन् 1976 में ब्रोंज ने किया था।उन्होंने परिवर्तनकारी नेतृत्व को एक ऐसी तकनीक के रूप में वर्णित किया है जिसके द्वारा नेता अपने अनुसरणकर्ताओं को प्रेरणा और व्यवहार के उच्च स्तर को प्राप्त करने में सहायता करता है।इस अवधारणा को सन् 1985 में बस द्वारा संशोधित किया गया था (बांस, 1985:25)।बांस के अनुसार, परिवर्तनकारी नेतृत्व, एक व्यवस्थित प्रभावशाली प्रक्रिया है जो संपूर्ण संगठन की वर्तमान स्थिति और कार्यों में सकारात्मक परिवर्तन और प्रगतिशील बनाती है।

परिवर्तनकारी नेतृत्व के आयाम-इस सिद्धांत के अनुसार परिवर्तनकारी नेतृत्व, के प्रमुख चार घटक है: आदर्श प्रभाव,प्रोत्साहनकारीप्रेरणा, बौद्धिक उत्तेजना, और व्यक्तिगत विचार (बास,1990)।

आदर्श प्रभाव:- आदर्श प्रभावआयाम के अंतर्गत प्रत्येक मनुष्य को प्रेरणादायक मूल्य प्रदान किया जाता हैं।परिवर्तनकारी नेता अपने अनुसरणकर्ताओं कोसम्मान, उत्साह और ईमानदारी के प्रति विश्वसनीयप्रबलता के माध्यम सेप्रेरित करते हैं। (गुमूस्लोगल औरएल्लिस्,2008: पृ. 8)

प्रोत्साहनकारीप्रेरणा : बास(1997) के अनुसार, प्रेरणादायक नेता एक वांछनीय भविष्य की कल्पना करते हैं वह आत्मविश्वास से बोलते हैं और अपने अनुसरण कर्ताओं को लक्ष्यों को पूरा करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं (पृ. 52) वे प्रोत्साहनकारी प्रेरणा के आधार पर अपने कर्मचारियों के लिए भविष्य के प्रेरक दृष्टिकोण को दर्शाते हैं, और इस बात का प्रदर्शन करते हैं कि वह अपने लक्ष्य तक कैसे पहुंच सकते हैं। (बास, 1990)।

बौद्धिक उत्तेजना :- प्रस्तुत आयाम में ऐसे कार्य शामिल हैं जो अनुसरणकर्ताओं को नए तरीकों से पुराने मुद्दों के प्रति सोचने के लिए अपने कौशल और प्रतिभा को बढ़ाने और बेहतर बनाने में सहायता मिलती है। वास्तव में, नेता अपने नेतृत्व का उपयोग करके अनुसरण कर्ताओं की अवधारणा, समझनेकीक्षमता,प्रतिनिधित्व करने और नए एवं बेहतर समाधानओं का उत्पादन करने की क्षमता को मजबूत करना विशिष्ट उद्देश्य होता है। (बांस औरस्टेडलमीयर,1999)।

व्यक्तिगत विचार:बोहंके (2003) केअनुसार, इस आयाम के अंतर्गत, नेता अनुसरणकर्ताओं को स्वीकारते हैं, उन्हें रचनात्मक आलोचनाओं से अवगत करते हैं, उन्हें सीखने के लिए प्रेरित करते हैं (पृ. 15), औरउन्हें अपनी आंतरिक शक्ति को पहचानने और विकसित करने में प्रोत्साहित करने की कोशिश करते हैं (बासऔरएवोलियो, 2000: 104)।

शिक्षा में परिवर्तनकारी नेतृत्व -(लेथवोडेटल.,2012; लेथवोडेटल.,2000; में मेंगेटल., 2007) ने परिवर्तनकारी विद्यालयों के नेताओं (प्रिंसिपल/ प्रबंधक/ विभागों के प्रमुख/ मालिक)के नियमों और व्यवहारों को ज्ञात किया गया, परिवर्तनकारी नेतृत्व के सैद्धांतिक मॉडल के लिए विद्यालय प्रबंधन को अपनाया गया जो गैर विद्यालय व्यवस्था में स्थापित और लागू किए गए थे। (गैजेसल,स्लिगर्स,लेथेवुड एवंजेंतज़ी, 2002;जेंतज़ीएवंलेथेवुड , 1995; लेथेवुडईटीएएल., 1999; थ्योफिलीडीज़, 2012).प्रासंगिक शोध से परिवर्तनकारी नेतृत्व की तीन मुख्य श्रेणियां उभर कर सामने आती है।(क) दिशा-अभिविन्यासस्थापना,(ख) मानव संसाधन विकास, और(ग) संगठनात्मक (गैजेसलईटी एएल., 2002; जेंतज़ीएवंलेथेवुड, 1996;

लेथेवुडएवं बैट्टी, 2008; लेथेवुडईटीएएल., 1999).**दिशा-अभिविन्यास स्थापना**निर्धारित करना विद्यालय के मूल्यों की एक साझा दृष्टि विकसित करना, शिक्षकों और नेता/ प्रधानाचार्य द्वारा निर्धारित सामान्य लक्षण को अपनाने से संबंधित है।

मानव संसाधन विकास विद्यालयों के नेता को संदर्भित करता है जो शिक्षकों को व्यक्तिगत समर्थन प्रदान करता है, साथ ही साथ बौद्धिक उत्तेजना भी प्रदान करता है, ताकि वह कुछ नया सीखने और शिक्षण तरीकों को प्रतिबिंबित करने और बेहतर करने की कोशिश के लिए नेता रोल मॉडल रूप में सेवा प्रदान करता है जिससेसमाज में वह उचित मूल्य प्रदान करता है।

संगठनात्मक पुनर्गठन से तात्पर्य सीमान्य मानकों,मान्यताओं, विश्वासों और मूल्यों को स्थापित करते हुए संस्कृति को बढ़ावा देना है ताकि संचालक छात्रों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने और विद्यालय के सामान्य लक्ष्यों को प्राप्त करने और सहयोग को बढ़ावा देने पर केंद्रित हो,साथ ही साथ शिक्षकों या उनके समूह द्वारा स्वायत्त निर्णय लेने की सुविधा प्रदान करने हेतु शिक्षण से संबंधित समस्याओं का समाधान प्रदान किया जा सके।

शिक्षक के दृष्टिकोण पर परिवर्तनशीलता का प्रभाव-शोध ने परिवर्तनकारी नेतृत्व और शिक्षक के दृष्टिकोण (प्रेरणा, संतुष्टि, नागरिकता व्यवहार) और शिक्षक अनुभूति (पीईऔरन्यायकी धारणा)के बीच एक महत्वपूर्ण संबंध की ओर इंगित किया है।इस दृष्टिकोण से तात्पर्य है 'वैयक्तिकवस्तु'जो हमेशा दिशात्मकता को दर्शाता है ।यहां वस्तु एक व्यक्ति या एक जगह हो सकती है, जैसे कि किसी का घर और परिवार के सदस्य,स्कूल, शिक्षणपेशा, और इसी तरह कुछ भी।न्यूकॉम्ब ईटीएएल. (1969) नेव्याख्या कीहै कि "दृष्टिकोण दिशा, एक वस्तु की ओर महसूस की जाने वाली अवशिष्ट प्रभाव है, जो सकारात्मक या नकारात्मक दोनों हो सकते हैं।"सकारात्मक दृष्टिकोण मनुष्य को वस्तु से संपर्क के लिए प्रोत्साहित करते हैं जबकि नकारात्मक दृष्टिकोण उन्हें इससे बचने के लिए प्रोत्साहित करते हैं।

एस.साबु (2005) शिक्षक दृष्टिकोण पर अपने अध्ययन में शिक्षकों के दृष्टिकोण से संबंधित आयामों या वस्तुओं के बारे में जांच की है: 1. शिक्षण पेशा, 2. कक्षा शिक्षण, 3. बाल-केंटर्ड प्रथाएं, 4. शैक्षिक प्रक्रिया, 5. विद्यार्थी, और 6. शिक्षक। शिक्षण के संबंध में शिक्षक के दृष्टिकोण में विभिन्न कारकों को शामिल किया गया है जैसे कि पेशे के लिए सम्मान, काम को पसंद करना, कैरियरचुनना, और इसी तरह अन्य। कक्षा शिक्षण के आयाम में कक्षा अनुशासन, कक्षा माहौल, सामाजिक वातावरण, और इसी की तरह जैसे पहलू शामिल है। बाल केंद्रित दृष्टिकोण के प्रति शिक्षक का दृष्टिकोण छात्र स्वतंत्रता, व्यवहार, स्वास्थ्य और संसाधन उपलब्धता आदि के संदर्भ में देखा जा सकता है।शिक्षक दृष्टिकोण एक वस्तु के रूप में, शैक्षिक प्रक्रिया के आयाम में पुरस्कार और दंड प्रणाली, शिक्षण विधियां, स्कूल के वातावरण, छात्र-शिक्षक संबंध, और इसी तरह की कई विशेषताएं शामिल हो सकती है। विद्यार्थियों के प्रति शिक्षक के दृष्टिकोण को अन्य विशेषताओं के बीच छात्र इमानदारी, छात्र गतिविधियां, और छात्र-शिक्षक संबंध के संदर्भ में भी वर्णित किया जा सकता है ।अंत में, शिक्षकों के संदर्भ में शिक्षक के दृष्टिकोण में विभिन्न प्रकार के कारक सम्मिलित हैं जैसे कि शिक्षण विशेषताएं, शिक्षक नेतृत्व आदि।

मनोवैज्ञानिक सशक्तिकरण-परिवर्तनकारी नेतृत्व के संबंध में शिक्षक अनुभूतियों का भी अध्ययन किया गया है।परिवर्तनकारी नेतृत्व के साथ मनोवैज्ञानिक सशक्तिकरण और न्याय की धारणा जैसी अनुभूतियों का महत्वपूर्ण संबंध माना जाता है।मनोवैज्ञानिक सशक्तिकरण को आंतरिक कार्य प्रेरणा के रूप में परिभाषित किया गया है जो 4 अनुभूतियों के संग्रह में प्रदर्शित होता है जो व्यक्ति अपने कार्य की भूमिका के लिए अभिविन्यास को इंगित करता है : "अर्थ, क्षमता, आत्मा निर्धारण, और प्रभाव" (स्प्रिट्जर. 1995, पृ. 1443)। जब किसी व्यक्ति को यह ज्ञात होता है कि उसका कार्य मूल्यवान है और उसे अधिक जिम्मेदार ई दी जाती है, तब वह अर्थ का अनुभव करता ह। आत्म-प्रभावकारिता या व्यक्तिगत प्रभुत्व मनुष्य की भावनाएं जो किसी कार्य को प्रभावी ढंग से पूर्ण कर सकते हैं, उन्हें क्षमता के रूप में संदर्भित किया जाता है।आत्म-निर्धारण किसी भी व्यक्ति के अपने चयन के तरीके से गतिविधियों को करने की क्षमता को संदर्भित करता है (फुलफोर्डऔरएन्ज़, 1995) ।आत्म-निर्णय कार्य विधियों, समय, गति और प्रयास के संदर्भ में निर्णय लेने में) स्वतंत्रता की भावना को संदर्भित करता है (स्प्रिट्जर, 1995) ।अंत में, प्रभाव व्यक्ति के विश्वास को संदर्भित करता है उसके व्यवसाय के लक्ष्य को प्राप्त करने में कितना कारगर है, साथ ही साथ यह भी देखता है कि संगठनात्मक परिणामों को प्रभावित किस प्रकार कर सकता है।(स्प्रिट्जर, 1995 **शिक्षक प्रेरणा-** नौकरी की संतुष्टि,पुत्र ईटीएएल. (2001); प्रदित्य,आर.ए. (2020), के अनुसार जब कर्मचारी पारिश्रमिक मूल्य और फर्म या संगठन के बीच कोई मतभेद नहीं होता है, पारिश्रमिक मूल्यप्राप्तकरने के साथ-साथ कर्मचारी की इच्छा और अपेक्षा के अनुसार पारिश्रमिकहो तब वहकर्मचारी भावनात्मक स्थिति मेंहोताहै।पुत्रईटीएएल. (2021); प्रदित्य,आर.ए. (2020) के अनुसार नौकरी की संतुष्टि अनिवार्य रूप से व्यक्तिगत होती है,व्यक्तिगत रूप से यह संतुष्टि मूल्य प्रणाली के आधार पर अलग-अलग स्तर पर हो सकती है।नौकरी की संतुष्टि एक भावनात्मक स्थिति है जिसमें व्यक्ति अपने कार्य को सुखद या अप्रिम रूप से देखता है। नेतृत्व को नेता के व्यवहार के अवतार के रूप में परिभाषित किया गया है जो नेतृत्व करने की क्षमता से संबंधित है।प्रभावी नेतृत्व, अधीनस्थों और सदस्यों के बीच संगठनात्मक प्रेरणा, उत्पादकता, ईमानदारी और संतुष्टि को बढ़ावा देने में पूर्ण सक्षम होता है।कोटामेनाईटीएएल, (2020); नोवितासारी ईटीएएल. (2021)के अनुसार मनुष्य मौलिक रूप से नेता है और प्रत्येक व्यक्ति अपने भविष्य के नेतृत्व के लिए स्वयं जिम्मेदार ठहराया जाएगा।मानव नेता कम से कम खुद का नेतृत्व करने में सक्षम है। प्रत्येक संगठन को एक ऐसे नेता की आवश्यकता होती है जो उसके कर्मचारियों द्वारा उसकेकथ्य का पालन और सम्मान दोनों कर सकेहै।

साहित्य समीक्षा

ज़ोहरी एवं अट्टीहा (2021) ने अपने अध्ययन में गैर व्यवसायिक शैक्षिक संस्थानों की अव्यवस्थित टीम पर नेताओं का करिश्माई प्रभाव देखा है। उनके अध्ययन के माध्यम करिश्माई लीडरशिप और संकट में नेतृत्व करने की क्षमता के बीच में सकारात्मक संबंध का पता चलता है, जिसका अर्थ है कि करिश्माई नेता तनावपूर्ण स्थिति में भी उभर कर सामने आते हैं। **टसांग ईटीएएल. (2022)** ने अपनी शोध में चीनी प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों के बीच शिक्षक बर्नआउट,परिवर्तनकारी नेतृत्व और मनोवैज्ञानिक सशक्तिकरण के बीच संबंध देखे गए हैं। उनके अध्ययन से ज्ञात होता है कि परिवर्तनकारी नेतृत्व और मनोवैज्ञानिक सशक्तिकरण दोनों ने शिक्षक बर्नआउट की भविष्यवाणी की थी, जिसका अर्थ, आत्म निर्णय और मनोवैज्ञानिक सशक्तिकरण के क्षमता तत्वों ने परिवर्तनकारी नेतृत्व-शिक्षक बर्नआउट लिंक की कुछ हद तक मध्यस्थता की थी।परिणामस्वरूप,परिवर्तनकारी नेतृत्व ने शिक्षकों की नौकरी के अर्थ, स्वायत्तता और क्षमता की भावना को बढ़ाकर शिक्षक बर्नआउट को कम कर दिया है। **बालाजी और कृष्णन (2014)** इन्होंने अपने अध्ययन में परिवर्तनकारी नेतृत्व, आत्म-अवधारणा और सशक्तिकरण पर साहित्य की समीक्षा करने का प्रयास किया है। उनकी शोध के निष्कर्ष दर्शाते हैं कि परिवर्तनकारी नेतृत्व का अनुसरणकर्ताओं की व्यक्तिगत और सामाजिक पहचान पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। परिवर्तनकारी नेतृत्व और अनुसरणकर्ताओं की व्यक्तिगत और सामाजिक पहचान मनोवैज्ञानिक सशक्तिकरण के सभी चार घटकों से अनुकूल रूप से जुड़ी हुई है।

मोहसिन अल्लाहमे ईटी एएल. (2012) इन्होंने अपने अन्वेषण में पाया कि महत्व और योग्यता आयामों में, प्रोत्साहन प्रेरणा में, स्वतंत्र आयामों में, और व्यक्तिगत चिंतन में, प्रभावशाली आयामों में आदर्श प्रभाव शिक्षकों के मनोवैज्ञानिक सशक्तिकरण के लिए सबसे सटीक अनुमान लगाने वाला घटक है। **बी. अवेय ईटीएएल. (2007),** शोधकर्ताओं ने अभिधारण करने का प्रयास किया है और वैचारिक मॉडल का प्रशिक्षण कर नेतृत्व और अच्छे संगठनों के आचरण को जोड़ा गया जिससे सशक्तिकरण मुख्य घटक के रूप में संबंधित कर कर्मचारियों की नकारात्मकता में कमी लाई जा सके। उन्होंने अपनी शोध में पाया है कि संगठन के बीच स्वतंत्र चर और कुछ इरादों को छोड़कर सशक्तिकरण पूर्ण रूप से मध्यस्थता दर्शाती है। **सयामसुद्दीन (2016)** इन्होंने अपनी शोध में पाया है कि परिवर्तनकारी नेतृत्व और संगठनात्मक प्रतिबद्धता का एक संयोजन संगठन नागरिकता व्यवहार (OCB) को प्रभावित कर सकता है। **तंज़ुंगा ईटी एएल. (2020)** इन्होंने अपने अध्ययन में पाया है कि परिवर्तनकारी नेतृत्व

का शिक्षक के प्रदर्शन पर, नौकरी की संतुष्टि पर और संगठनात्मक नागरिकता व्यवहार (OCB) का सकारात्मक और महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है ।शिक्षक प्रदर्शन (OCB) को बढ़ाने के लिए नेतृत्व, संतुष्टि, और संगठनात्मक नागरिकता व्यवहार सभी को एक साथ कार्य करना चाहिए। **शोफियुद्दीन ईटी एएल (2021),** शोधकर्ताओं ने अपने अध्ययन में पाया है कि परिवर्तनकारी नेतृत्व, नौकरी की संतुष्टि और संगठनात्मक प्रतिबद्धता सभी बैंटेन प्रांत के हाई स्कूलों में संगठनात्मक नागरिकता के व्यवहार को प्रभावित करते हैं। **एंड्रियानी, केसुमावती, और क्रिस्टयावना (2018)** इन्होंने यह जाँचने के लिए शोध कार्य किया कि परिवर्तनकारी नेतृत्व और नौकरी की प्रेरणा शिक्षक के प्रदर्शन को किस प्रकार प्रभावित करता है। अंत में, उनके अध्ययन के निष्कर्षों से पता चलता है कि (1) एस.एम.के.नगेरी,पालेम्बंग में शिक्षकों के प्रदर्शन पर सकारात्मक और महत्वपूर्ण प्रभाव दृष्टव्यहै; (2) एस.एम.के. नगेरी, पालेम्बंग में कार्य की प्रेरणा शिक्षकों के प्रदर्शन पर सकारात्मक और महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं; और (3)एस.एम.के. नगेरी, पालेम्बंग मेंपरिवर्तनकारी नेतृत्व और कार्य प्रेरणा से शिक्षकों के प्रदर्शन पर सकारात्मक और महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है।**मोन एवं ये (2021)** शोधकर्ताओं के अध्ययन का उद्देश्य थाईलैंड के रत्चाबुरी प्रांत में दारुनारत्चाबुरी विकास सुरक्षा मैं शिक्षकों के दृष्टिकोण के आधार पर इस अध्ययन का लक्ष्य परिवर्तनकारी नेतृत्व और शिक्षक सशक्तिकरण के बीच संबंधों का मूल्यांकन करना था। अपने अध्ययन में शोधकर्ताओं ने पाया कि परिवर्तनकारी स्कूल नेतृत्व और शिक्षक सशक्तिकरण का एक सकारात्मक और महत्वपूर्ण संबंध था, जिसमें दोनों चर एक ही दिशा में अग्रसर हो रहे थे। **प्रसेटियो, मेलफायेटी, और डेवि (2020)** इनके अध्ययन से पता चलता है कि: (1) एस.एम.पी. नगेरी मैदान में परिवर्तनकारी नेतृत्व और शैक्षणिक आशावादीता संस्कृति शिक्षकों के सशक्तिकरण पर सकारात्मक और महत्वपूर्ण डालता है; (2) एस.एम.पी. नगेरी मैदान में परिवर्तनकारी नेतृत्व और शैक्षणिक आशावादीता संस्कृति और सशक्तिकरण शिक्षकों की कार्य प्रेरणा पर सकारात्मक और महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं। **कौनी, कौत्सुकोस और पटना (2018)** शोधकर्ताओं के अध्ययन का लक्ष्य यह ज्ञात करना है कि शिक्षक परिवर्तनकारी नेतृत्व के प्रति कैसा महसूस करते हैं और यह नौकरी में खुशियों को कितना जोड़ पाता है। अंत में, उनके सर्वेक्षण के परिणामों से ज्ञात होता है कि जब स्कूल के प्रिंसिपल एक परिवर्तनकारी नेता के रूप में व्यवहार करते हैं, तो शिक्षक बेहद संतुष्ट होते हैं। शिक्षकों केडेमोग्राफिक चरदृष्टिकोण जैसे स्कूल के प्रकार और नौकरी के अनुभव दृष्टिकोण से अप्रभावित होते हैं। **महेश्वरी (2021)** इनके अध्ययन का उद्देश्य यह देखना था कि कैसे परिवर्तनकारी और क्रॉस लेवल नेतृत्व शैलियों ने हो ची मिन्ह सिटी, वियतनाम में सार्वजनिक हाई स्कूलों में शिक्षक की संतुष्टि और प्रदर्शन को प्रभावित किया है। अंत में, शोधकर्ता के अध्ययन के निष्कर्षों से ज्ञात होता है कि परिवर्तनकारी नेतृत्व का शिक्षक नौकरी की संतुष्टि और प्रदर्शन के साथ सकारात्मक संबंध है, जबकि क्रॉस लेवल नेतृत्व का शिक्षक नौकरी की संतुष्टि और प्रदर्शन के साथ नकारात्मक संबंध है, इस तथ्य के बावजूद कि वियतनाम में परिवर्तनकारी नेतृत्व का उपयोग नहीं किया जाता है। **तालिब,रामली,हुसैन, जमालुद्दीन, औरसंपूत्र (2019)** शोधकर्ताओं ने अपने अध्ययन में मलेशिया में परिवर्तनकारी नेतृत्व और माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों के प्रदर्शन की जांच मनोवैज्ञानिक तंत्र (प्रेरणा और प्रतिबद्धता) को आधार बनाकर करते हैं।अंततः शोधकर्ताओं ने पाया कि परिवर्तनकारी नेतृत्व प्रोत्साहन, प्रतिबद्धता और प्रदर्शन पर क्रॉस -लेवल प्रभाव डालता है । तथा उनके निष्कर्ष यह भी दर्शाते हैं कि परिवर्तनकारी नेतृत्व एक महत्वपूर्ण संगठनात्मक नेतृत्व शैली का निर्माण है जो शिक्षकों को मनोवैज्ञानिक. **(2020)** अपने अध्ययन में "योग्यता और प्रोत्साहन पर परिवर्तनकारी नेतृत्व और शिक्षक प्रदर्शन के परिणामों पर पड़ने वाले प्रभाव की जांच की है।"अंत में, शोधकर्ताओं ने पाया कि क्षमता, परिवर्तनकारी नेतृत्व शैली और प्रेरणा सभी का शिक्षक के प्रदर्शन पर अनुकूल प्रभाव पड़ा है। **अब्दुलराब, जुमला, अलवाहीब, अलमामेरी, और ताहिरा (2021)** शोधकर्ताओं ने अपने अध्ययन में परिवर्तनकारी नेतृत्व, मनोवैज्ञानिक सशक्तिकरण और संगठनात्मक नागरिकता व्यवहार के बीच संबंधों की जॉच करते हैं। उन्होंने अपनी शोध में पाया कि चर के सैद्धांतिक और व्यावहारिक निहितार्थ की जांच करके और परिवर्तनकारी नेतृत्व संगठनात्मक नागरिकता व्यवहार और मनोवैज्ञानिक सशक्तिकरण को सकारात्मक रूप से प्रभावित करता है। **अल्ज़ोरेकी,रहमान, मुतालिब (2018)** शोधकर्ताओं ने अपने अध्ययन में यमनी पब्लिक स्कूल के शिक्षक प्रदर्शन पर परिवर्तनकारी नेतृत्व पहलुओं के प्रभावों की जांच गयी है। अध्ययन के निष्कर्ष के अनुसार, परिवर्तनकारी नेतृत्व की विशेषताओं का शिक्षक के प्रदर्शन पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

निष्कर्ष :-

इस शोध का निष्कर्ष यह है कि 'परिवर्तनकारी नेतृत्व', शिक्षक संतुष्टि, शिक्षक प्रेरणा, शिक्षकों का मनोवैज्ञानिक सशक्तिकरण और शिक्षक दृष्टिकोण को सकारात्मक और महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करता है। आज के परिदृश्य में परिवर्तनकारी नेतृत्व शिक्षकों के लिए अति आवश्यक है और भारतीय व्यवस्था (सेटअप) में हमें पूरी कोशिश करनी चाहिए की हम प्रबंधक, प्राचार्य, नेता (लीडर) को परिवर्तनकारी नेतृत्व' के लिए तैयार (ट्रेनिंग) करें ताकि शिक्षक अपना सर्वश्रेष्ठ कार्य उत्पादन (आउटपुट) प्राप्त कर सकें .

संदर्भ : -

1. **S. SABU (2005),** INFLUENCE OF BEHAVIOURAL PROBLEMS, ATTITUDE, STRESS AND ADJUSTMENT OF SECONDARY SCHOOL TEACHERS ON THEIR TEACHING COMPETENCE, PP-130-132. https://shodhganga.inflibnet.ac.in/bitstream/10603/45091/5/chapter%201.pdf
2. **Newcomb, T.M. et al. (1969).** Social psychology: A study of human interaction, Halt, Rinehart and Winston, Inc.
3. **Bass, B. M, (1985),** "Leadership: good, better, best", *Organizational Dynamics*,Vol. 13 No. 3, pp. 25 – 40.
4. **Bass, B. M, (1990),** "From transactional to transformational leadership: learning to share the vision", *Organizational Dynamics*, Vol. 18 No. 3, pp. 19 –31.
5. **Gumuslugle ,J. and sey, A.(2008) "**Transformational leadership, creativity, and organizational innovation" , Journal of business reaserch,pp-1-13
6. **Bass B.M.(1997) "** Does the transactional-transformational leadership paradigm transcend organizational & national boundaries?" , American Psychologist,Pp-52.
7. **Bass, B. M, (1990),** "From transactional to transformational leadership: learning to share the vision", *Organizational Dynamics*, Vol. 18 No. 3, pp. 19 –31.

सांस्कृतिक समायोजन एवं सोशल मीडिया की भूमिका

डॉ.दुर्गेश कुमार श्रीवास्तव
असिस्टेंट प्रोफ़ेसर समाजशास्त्र
पं० दीन दयाल उपाध्याय राजकीय महाविध्यालय
सैदपुर, ग़ाज़ीपुर मो.9918894190

शोध सार - भारत के रीति-रिवाज, भाषाएँ, प्रथाएँ और परंपराएँ एवं इसके एक-दूसरे से परस्पर सम्बद्ध महान विविधताओं का एक अद्वितीय उदाहरण देती हैं। भारत कई धार्मिक प्रणालियों जैसे कि हिन्दू धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म, सिख धर्म और मुस्लिम धर्म जैसे धर्मों का जनक है। इस मिश्रण से भारत में उत्पन्न हुए विभिन्न धर्म और परम्पराओं ने विश्व के अलग-अलग हिस्सों को भी बहुत प्रभावित किया है। भारतीय संस्कृति एक विशिष्ट संस्कृति है। सदियों तक यह अक्षुण्ण बनी रही है। परंतु वैश्वीकरण के दौर में संस्कृति को बचाए रखना चुनौतीपूर्ण कार्य है। विश्वव्यापी करण के कारण सांस्कृतिक प्रसार एवं पर-संस्कृतिकरण एवं आमेलन की प्रक्रिया गतिमान है। संस्कृति वह है जिसमें हम जीते हैं। यह जीवन जीने की एक शैली है। सोशल मीडिया एक बेहतरीन प्लेटफॉर्म है, जहां व्यक्ति स्वयं को अथवा अपने किसी उत्पाद को ज्यादा लोकप्रिय बना सकता है। यह शोध पत्र इस प्रश्न का विश्लेषण करता है की वर्तमान संदर्भों में किस प्रकार सोशल मीडिया अपने विभिन्न आयामों में भारतीय समाज एवं संस्कृति को प्रभावित करता है एवं आम जनमानस में इसके बारे में क्या नजरिया है। यह शोध पत्र द्वितीयक स्रोतों की मदद से लिखा गया है। इसमें पत्र - पत्रिकाएं, महत्वपूर्ण पुस्तकें, समाचार पत्र एवं विभिन्न वेबसाइट का उपयोग किया गया है।

बीज शब्द – मीडिया, संस्कृति, सामाजिक परिवर्तन, सम्प्रेषण , सोशल मीडिया, सांस्कृतिक समायोजन।

मूल आलेख – हर्सकोविट्स मानते हैं कि संस्कृति पर्यावरण का मानव निर्मित भाग है। यह एक सीखा हुआ व्यवहार है। संस्कृति वह श्रेष्ठतम धरोहर है जिसकी सहायता से मानव पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ता है। संस्कृति शब्द संस्कृत भाषा से लिया गया है। संस्कृत और संस्कृति दोनों ही शब्द "संस्कार" शब्द से बने हैं। संस्कार का अर्थ है "कुछ कृत्यों या अनुष्ठानों को सम्पन्न करना"। एक व्यक्ति जन्म से ही अनेक प्रकार के संस्कार करता है जिसमे उसे विभिन्न प्रकार की भूमिकाएं निभानी पड़ती हैं। इस प्रकार संस्कृति का अर्थ होता है विभिन्न संस्कारों क द्वारा सामूहिक जीवन क उद्देश्यों की प्राप्ति। यह परिमार्जन की प्रक्रिया है। संस्कारों को सम्पन्न करके ही व्यक्ति सामाजिक प्राणी बनाता है।

डॉ. राधाकृष्णन संस्कृति संबंधी अपनी धारणा इन शब्दों में व्यक्त करते हैं - '' *संस्कृति वह वस्तु है जो स्वभाव, माधुर्य मानसिक निरोगता एवं आत्मिक शक्ति को जन्म देती है* ''[1]। डॉ. श्यामा चरण दबे ने भी संस्कृति संबंधी विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं-''*संस्कृति व्यक्ति को विशेष ढांचे में ढालती है, सामूहिक प्रयत्नों के द्वारा व्यक्ति अपनी बुद्धि आविष्कार शक्ति, अभिरुचि एवं अनुभव का उपयोग कर संस्कृति में बदलने का प्रयास करता है। संस्कृतिकरण की यह प्रक्रिया प्रत्यक्ष भी होती है और अप्रत्यक्ष भी।*''[2] सामान्य रूप से, "मीडिया" संचार के विभिन्न साधनों को संदर्भित करता है। उदाहरण के लिए, टेलीविजन, रेडियो और समाचार पत्र मीडिया के विभिन्न प्रकार हैं। इस शब्द को प्रेस या समाचार रिपोर्टिंग एजेंसियों के लिए सामूहिक संज्ञा के रूप में भी इस्तेमाल किया जा सकता है। कंप्यूटर दुनिया में, "मीडिया" को सामूहिक संज्ञा के रूप में भी प्रयोग किया जाता हैं, जो कि विभिन्न प्रकार के डेटा स्टोरेज विकल्पों को संदर्भित करता है।विधानपालिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका के साथ 'मीडिया' को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ माना जाता है। भारतीय लोकतंत्र में 'मीडिया' लोकतंत्र प्रहरियों में मुख्य है। इसकी स्वतंत्रता संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) से सुनिश्चित होती है। विभिन्न सूचनाओं एवं जानकारी से यह न केवल जनमानस को जागरूक करता है अपितु आलोचना के माध्यम से सरकार पर भी अंकुश लगाता है। विभिन्न सामाजिक-राजनीतिक मुद्दों पर जनमानस की राय को सरकार तक पहुँचाने तथा सरकार के फैसलों को विश्लेषित कर जनता तक पहुँचाने का कार्य मीडिया बखूबी से करता है।स्पष्ट है की मीडिया का सामाजिक दायित्व बहुत अधिक है। मीडिया लोगों के मन की आवाज को उठाती है। इसकी पहुँच सामान्य लोगों तक होती है। समाज के प्रति मीडिया की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। मीडिया समाज को दिशा देता है। यदि वह अपनी दिशा को गलत रूप दे दे तो भारी अनर्थ हो सकता है। मीडिया समाज को शिक्षित करता है तथा उसका मनोरंजन भी करता है। मीडिया ने लोगों को अधिकारों के प्रति सचेष्ट किया है। हम सब यह महसूस करते ही हैं कि लोकतंत्र की सफलता में मीडिया की भूमिका बहुत अधिक है। अखबार भी जनमत का निर्माण करते हैं। हमें दोनों माध्यमों का ध्यान रखना होगा। वर्तमान में भारत सामंती अर्थव्यवस्था से आधुनिक औद्योगिक अर्थव्यवस्था की ओर बढ़ रहा है। विकास के इस पथ पर लोकतंत्र के चारों स्तंभों का मज़बूती एवं निष्पक्षता से खड़े रहना तथा सामाजिक एवं सामरिक चुनौतियों से मिलकर सामना करना अपेक्षित है।[3]मीडिया के साथ सोशल मीडिया की भी चर्चा की जाती है। वास्तव में सोशल मीडिया एक धुंधला सा शब्द है जिसका उपयोग विभिन्न तकनीकों को संदर्भित करने के लिए किया जाता है। एक आदर्श के रूप में हम किसी भी ऐसे आनलाइन प्लेटफॉर्म को सोशल मीडिया के रूप में देखते हैं जो सहयोगी सामग्री के विकास एवं साझा करने का विकल्प प्रदान करता है। सोशल मीडिया में वेब-आधारित और मोबाइल तकनीक शामिल हैं जो संचार को इंटैरैक्टिव वार्तालाप में बदलने के लिए उपयोग की जाती हैं। एंड्रियास कपलन और माइकल हैनलेन ने सोशल मीडिया को "*इंटरनेट आधारित अनुप्रयोगों का एक समूह*" के रूप में परिभाषित किया है जो वेब 2.0 की वैचारिक और तकनीकी नींव पर आधारित है, और यह उपयोगकर्ता द्वारा उत्पन्न सामग्री के निर्माण और विनिमय की अनुमति देता हैपिछली पाँच सहस्राब्दियों से अधिक समय से भारत के रीति-रिवाज, भाषाएँ, प्रथाएँ और परंपराएँ इसके एक-दूसरे से परस्पर संबंधों में महान विविधताओं का एक अद्वितीय उदाहरण देती हैं। भारत कई धार्मिक प्रणालियों, जैसे कि हिन्दू धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म और सिख धर्म, मुस्लिम धर्म जैसे धर्मों का जनक हैं। इस मिश्रण से भारत में उत्पन्न हुए विभिन्न धर्म और परम्पराओं ने विश्व के अलग-अलग हिस्सों को भी बहुत प्रभावित किया है। वैश्वीकरण के दौर में संस्कृति को बचाए रखना चुनौतीपूर्ण कार्य है। संस्कृति वह है जिसमें हम जीते हैं। यह जीवन जीने की एक शैली है। [4]। एडवर्ड टायलर के शब्दों में –"*संस्कृति एक ऐसा जटिल समग्र है जिसमे ज्ञान, विश्वास, कला , नैतिकता ,कानून, प्रथा तथा समाज के सदस्य के रूप में मनुष्य द्वारा अर्जित अन्य दूसरी समर्थताएं सम्मिलित हैं।*" टॉयलर कि परिभाषा वैज्ञानिक होने क साथ साथ संस्कृति के सभी निर्मायक अंगों को भी इंगित करती है।[5] थिओडॉर एडोरनो सांस्कृतिक उद्योग कि बात भी करते हैं जो लोकप्रिय संस्कृति यानी पापुलर कल्चर को आगे बढ़त है। इसको आम जनता की संस्कृति या जन संस्कृति भी कहा जाता है। इसके अंतर्गत टीवी , फिल्म ,संगीत , नृत्य , साहित्य, फैशन , कला इत्यादि के वे सारे तत्व हैं , जिनका उपयोग अभिजन समूहों के अतिरिक्त समाज के माध्यम वर्गीय और निम्न वर्गीय लोगों के द्वारा किया जाता है। सामान्यतः इसे उच्च संस्कृति के विपरीत मन जाता है, जो मुट्ठी भर लोगों या अभिजात्य लोगों की एक विशेष पसंद को संदर्भित करता है। परंतु पापुलर संस्कृति का क्षेत्र व्यापक होता है और यह सभी को आसानी से उपलब्ध भी हो जाता है। यह उच्च संस्कृति के वर्चस्व और उच्च कला की बौद्धिक प्रवृत्तियों के दिखावे को खारिज करता है। यह बहुत कारणों से लोगों को अपील करता है। यह कुलीन वर्ग की विशिष्ट रुचि के विपरीत आम लोगों को संस्कृति के बड़े पैमाने पर उपभोग की गारंटी देती है। इस प्रकार से यह जनवादी, लोकप्रिय , और सार्वजनिक माध्यम अपने लाभ के लिए पापुलर संस्कृति को अधिक प्रचारित करता है।देखा जाए तो सोशल मीडिया का उपयोग अपने आप में एक लोकप्रिय संस्कृति का रूप ले रहा है जैसे- फेसबुकिंग करना , ट्वीट करना, शेयरिंग करना। सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन दोनों एक दूसरे को अंतर्भूत कर लेते हैं।

संस्कृति कोई स्थिर वस्तु नहीं है। यह सदैव परिवर्तन की अवस्था में रहती है, इसलिए नहीं कि सभ्यता बदलती रहती है , अपितु क्योंकि परिवर्तनशीलता इसमें निहित है। संस्कृति न केवल हमारे सामाजिक संबंधों को प्रभावित करती है, बल्कि यह प्रौद्योगिकीय परिवर्तन की दशा एवं इसके स्वरूप को भी निर्धारित करती है।सोशल मीडिया प्रायः सकारात्मक भूमिका अदा करता है जिससे किसी भी व्यक्ति, संस्था, समूह और देश आदि को आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक रूप से समृद्ध बनाया जा सकता है। सोशल मीडिया के जरिए ऐसे कई विकासात्मक कार्य हुए हैं जिनसे कि लोकतंत्र को समृद्ध बनाने का काम हुआ है जिससे किसी भी देश की एकता, अखंडता, पंथनिरपेक्षता , समाजवादी गुणों में अभिवृद्धि हुई है। हम ऐसे कई उदाहरण देखते हैं, जो कि उपरोक्त बातों को पुष्ट करते हैं जिनमें ***'India Against Corruption***' को देख सकते हैं, जो कि भ्रष्टाचार के खिलाफ महा अभियान था जिसे सड़कों के साथ-साथ सोशल मीडिया पर भी लड़ा गया जिसके कारण विशाल जनसमूह अन्ना हजारे के आंदोलन से जुड़ा और उसे प्रभावशाली बनाया। 2014 के आम चुनाव के दौरान राजनीतिक पार्टियों ने जमकर सोशल मीडिया का उपयोग कर आमजन को चुनाव के जागरूक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। इस आम चुनाव में सोशल मीडिया के उपयोग से वोटिंग प्रति शत बढ़ा, साथ ही साथ युवाओं में चुनाव के प्रति जागरूकता बढ़ी। सोशल मीडिया के माध्यम से ही 'निर्भया' को न्याय दिलाने के लिए विशाल संख्या में युवा सड़कों पर आ गए जिससे सरकार दबाव में आकर एक नया एवं ज्यादा प्रभावशाली कानून बनाने पर मजबूर हो गई। कई बार देखा गया है की सोशल मीडिया के उपयोग से कई लोगों को आर्थिक लाभ के साथ साथ नई पहचान और लोकप्रियता भी मिली है। रानु मोन्डल के गीतों, कच्चा बादाम के गायक सहित दिल्ली का बाबा का ढाबा को पहचान मिलते देखना सुखद अनुभूति कराता है। लोकप्रियता के प्रसार में सोशल मीडिया एक बेहतरीन प्लेटफॉर्म है, जहां व्यक्ति स्वयं को अथवा अपने किसी उत्पाद को ज्यादा लोकप्रिय बना सकता है। आज फिल्मों के ट्रेलर, टीवी प्रोग्राम का प्रसारण भी सोशल मीडिया के माध्यम से किया जा रहा है। हाल के दिनों में ओटीटी पर प्रसारित कई वेब सीरीज मनोरंजन के क्षेत्र में नई संभावनाओं के द्वार खोलती है। इसे बड़े परदे के सितारों को भी अपनी ओर आकर्षित किया है तो थिएटर के कलाकारों को भी जीवनदान दिया है। फिल्में समाज का दर्पण होती हैं। सोशल मीडिया क माध्यम से फिल्में अब अधिक यथार्थ वादी हो चली हैं। वीडियो तथा ऑडियो चैट भी सोशल मीडिया के माध्यम से सुगम हो पाई है जिनमें फेसबुक, व्हॉट्सऐप, इंस्टाग्राम कुछ प्रमुख प्लेटफॉर्म हैं।सोशल मीडिया जहां सकारात्मक भूमिका अदा करता है वहीं कुछ लोग इसका गलत उपयोग भी करते हैं। सोशल मीडिया का गलत तरीके से उपयोग कर ऐसे लोग दुर्भावनाएं फैलाकर लोगों को बांटने की कोशिश करते हैं। सोशल मीडिया के माध्यम से भ्रामक और नकारात्मक जानकारी साझा की जाती है जिससे कि जनमानस पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। कई बार तो बात इतनी बढ़ जाती है कि सरकार सोशल मीडिया के गलत इस्तेमाल करने पर सख्त हो जाती है और हमने देखा है कि सरकार को जम्मू-कश्मीर जैसे राज्य में सोशल मीडिया पर प्रतिबंध तक लगाना पड़ता है। मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र में हुए किसान आंदोलन में भी सोशल मीडिया पर प्रतिबंध लगा दिया गया ताकि असामाजिक तत्व किसान आंदोलन की आड़ में पकिसी बड़ी घटना को अंजाम न दे पाएं।भारत में सोशल मीडिया के प्रति बढ़ता क्रेज अब पारंपरिक सामाजिक और पारिवारिक रिश्तों को बदल रहा है। फेसबुक, व्हॉट्सऐप, ट्विटर और इंस्टाग्राम समेत ऐसी साइटों का इस्तेमाल करने वाले लोगों की तादाद लगातार बढ़ रही है। सोशल मीडिया का इस्तेमाल करने वालों में किशोरों से बुजुर्गों तक हर उम्र के लोग शामिल हैं। वर्तमान समय में तकनीक ने समाज में एक साथ अनेक क्षेत्रों में परिवर्तन लाया है। तकनीक का उपयोग और उसपर निर्भरता निरंतर बढ़ती जा रही है और यह इतनी तीव्र गति से हो रहा है कि जब तक हम एक तकनीक को समझते हैं तब तक दूसरी तकनीक का आगमन हो जाता है। एलविन टॉफलर ने इसी स्थिति को "*फ्यूचर शॉक*" कहा है, जहां बहुत कम समय में ही अत्यधिक परिवर्तन हो रहा है। वास्तव में सोशल मीडिया ने यह दिखाया है कि तकनीक अब केवल सुविधा एवं संपन्नता का परिचायक नहीं बल्कि यह अपने अधिकारों को हासिल करने का हथियार भी बन सकता है। यह लोगों को परिवर्तन के लिए इलेक्ट्रॉनिक स्क्रीन से लेकर सड़कों तक लाने लगा है। [लेकिन फिलहाल शहरों और गांवों के बीच बंटे परिवार (यानी जो रोजगार के सिलसिले में शहर में हो, लेकिन उसके संयुक्त परिवार के लोग गांव में रहते हों) इस मामले में संक्रमण काल से गुजर रहे हैं।[8]

मैंक्डोनल्ड संस्कृति के माध्यम से जॉर्ज रिटजर भी यही बात कहना चाहते हैं। वास्तव में मैंक्डोनल्ड अपने साथ सिर्फ एक रेस्तरां की शृंखला ही नही ले आया बल्कि ये अमेरिकी संस्कृति को भी भारत ले आया है। पहली बार इन स्थानों पर पारदर्शी रसोईघर में अपना आर्डर तैयार होते एवं महिला वेटर को काम करते देखना दिलचस्प एवं लोगों के कौतूहल का विषय था परंतु धीरे धीरे लोगों ने इसे स्वीकार कर लिया। इसमें कहीं न कहीं मीडिया की भी अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका रही। इसने इस संस्कृति को लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है

निष्कर्ष - मीडिया जनमानस की राय को बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सोशल मीडिया का उपयोग कई तरह से हुआ है । आम जनता ने इसे अपने अधिकारों को प्राप्त करने का हथियार बनाया । सरकार ने पारदर्शिता के लिए इसका इस्तेमाल किया । बाजार ने इसके जरिए कुछ नए ग्राहक तलाश कर लिए। हाल के दिनों में *मॉब लिंचिंग* की घटनाएं चिंतित करने वाली हैं जहां भीड़ ने कानून खुद हाथ में ले लिया। वही कोरोना काल में आने व्यक्तियों द्वारा आक्सिजन, रक्त/प्लाज्मा एवं हस्पतालों में बेड की उपलब्धता इत्यादि को लेकर परस्पर सहायता का प्रयास करने में सोशल मीडिया ने बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आज वैश्विक परिदृश्य में सोशल मीडिया का उपयोग समाज को एक नया आकार दे रहा है। हमारी संस्कृति को भी यह गंभीर रूप से प्रभावित कर रहा है। आवश्यकता है इसे सतर्क रूप से आगे बढ़ाने कि ताकि समाज कि आवश्यकता कि पूर्ति तो होती ही रहे, कोई इससे अनिच्छित एवं दबाव स्वरूप स्वीकार करने को विवश नहीं हो। सोशल मीडिया के दुरुपयोग का मुद्दा अब गंभीर हो गया है जिसकी अनदेखी नहीं की जा सकती हैं। गलत विचारों को साझा करने से देश की आंतरिक सुरक्षा खतरे में पड़ जाती है। ऐसे में इसके खिलाफ भारत में कड़े कानून की जरूरत है।

संदर्भ –

1. एस०राधाकृष्णण, स्वतंत्रता और संस्कृति, अपर इंडिया पब्लिशिंग हाउस 1955, पृ० 706.
2. श्याम चरण दूबे, मानव और संस्कृति, राज कमल प्रकाशन ,2016, पृ . 206
3. एन्ड्रियस कपलान , माइकल हेनलिन , "यूजर्स ऑफ दि वर्ल्ड , यूनाइट ! द चलेंजेस एण्ड
4. ओपोरचयूनिटीस ऑफ सोशल मीडिया", बिजनेस होराइज़न, 53 , नंबर 1 (2010),61
5. जॉर्ज रिटजर , सोसीयोलॉजिकल थ्योरी , सेज पब्लिशिंग हाउस , 2018 पृ0 566।
6. विद्याभूषण एवं सचदेव , समाजशास्त्र के सिद्धांत, किताब महल, 2013, पृ . 731
7. जॉर्ज रिटजर, द मैकडॉनलडाईजेशन ऑफ सोसाइटी ,सेज पब्लिशिंग हाउस, पृ० 122
8. स्वर्ण सुमन, सोशल मीडिया : संपर्क क्रांति का कल, आज और कल , हार्पर कॉलिन्स
9. मरसेल दानेसी , डिक्सनरी ऑफ मीडिया एण्ड कम्यूनिकेशन ,2009, पृ० 235.
10. https://hindi.webdunia.com/
11. https://www.bhaskar.com/
12. https://www.indiaculture.nic.in/hi संस्कृति मंत्रालय भारत सरकार
13. ई-पीजी पाठशाला , पेपर 01 , माड्यूल 14।

'हिंद-प्रशांत क्षेत्र में भारत-चीन सामुद्रिक प्रतिद्वंदिता'

राजीव रौशन कुमार
शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग,
काशी हिंदू विश्वविद्यालय,वाराणसी, यूपी, 221005
Mob 9532654605

हाल के वर्षों में हिंद-प्रशांत क्षेत्र रणनीतिक और कूटनीतिक रूप से क्षेत्रीय और वैश्विक महा शक्तियों के मध्य प्रतिस्पर्द्धा और प्रतिद्वन्दिता का एक मंच बन चुका है जिसका प्रमुख कारण हिंद-प्रशांत रीजन की महत्वपूर्ण अवस्थिति होना है।समकालीन समय में सम्पूर्ण विश्व व्यापार का लगभग 75 प्रतिशत वस्तुओं व सेवाओं का आयात व निर्यात इसी क्षेत्र से होता है, जो पूरे विश्वके जीडीपी का लगभग 60% है।इंडो-पैसिफिक रीजन ऊर्जा और व्यापार -वाणिज्य को लेकर उपभोक्ता तथा उत्पादक दोनों देशों के लिए बहुत ही संवेदनशील है।चीनी सरकार इस रीजन में अपनी महत्पूर्ण नीतियों को क्षेत्रीय और वैश्विक आयाम प्रदान करने का भरपूर प्रयास कर रही । मैरिटाइम सिल्क रुट,स्ट्रिंग ऑफ पर्ल, बेल्ट रोड इनीशिएटिव आदि नीतियां चीन की इसी व्यापक रणनीति और कूटनीति का भाग है। वहीं अमेरिका भी इस रीजन में अपनी प्रभाव बनाए रखना चाहता है ताकि चीन के इसक्षेत्र में बढ़ती हुई प्रभाव को कम किया जा सके इसके लिए भारत,जापान,अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया ने संयुक्त रूप से अनौपचारिक रणनीतिक वार्ता के रूप में "क्वाड" का निर्माण किया है! वर्तमान समय में विश्व के अधिकांश देशों ने अपने-अपने सहूलियत के अनुसार हिंद- प्रशांत क्षेत्र की व्याख्या करताहै। हिंद प्रशांत क्षेत्र के महत्व को रेखांकित करते हुए भारत के विदेश मंत्री श्री एस. जयशंकर का कहना है कि हिंद और प्रशांत महासागर को पृथक- पृथक इकाई के रूप में संभव नहीं है,इंडो - पैसिफिक की अवधारणा में समूचे हिंद महासागरीय क्षेत्र और पश्चिमी प्रशांत महासागरीय क्षेत्र को मिलाया जाता है। वहीं अमेरिका इंडो-पेसिफिक क्षेत्र को भारत के पश्चिमी तट तक ही विस्तृत मानता है, लेकिन भौगोलिक रुपसे हिन्द महासागर और प्रशांत महासागर के कुछ भागों को जोड़कर जो समुंद्रीय हिस्सा बनता है इंडो-पैसिफिक क्षेत्र कहलाता है और इस समुद्री क्षेत्र में पड़ने वाले देशों को हिन्द- प्रशान्त महासागर का देश कहते हैं!सन2018 में 'शांग्रीला संवाद' के दौरान प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी ने इंडो-पैसीफिक क्षेत्र की अवधारणा को स्पष्ट किया और उन्होंने भारत के इंडो-पैसीफिक क्षेत्र के विचार में पूर्वी अफ्रीका से अमेरिका तक के रीजन को शामिल किया था,जो हिंद तथा प्रशांत महासागर को अपनी परिधि में शामिल करते हैं। भारत का कहना है कि "हिंद- प्रशांत की अवधारणा एक खुला, स्वतंत्र और मुक्त और सामावेशिता तथा आसियान देशों के केन्द्र पर आधारित है, जो सम्पूर्ण विश्व के किसी भी देश के खिलाफ नहीं है। भारत इंडो-पैसिफिक रीजन को एक संकुचित सदस्यों के प्रमुख क्लब के रूप में नहीं देखना चाहता है और ना ही ऐसे गुट के तौर पर जो वर्चस्व चाहता है,भारतीय प्रधानमंत्री मोदी ने यह स्पष्ट कहा था कि "भारत की हिंद- प्रशांत क्षेत्र में अपनी नीति, चीन को प्रतिसंतुलित करने के लिए नहीं है,बल्कि इस रीजन के लिए भारत हमेशा सकारात्मक सोच रखता है जिसमें आसियान को केंद्र में रखते हुए दक्षिण - पूर्व एशियाई देशों को अहम माना गया है, लेकिन इस रीजन को लेकर भारत के विदेश नीति समुद्री क्षेत्रों से संचालित हो रही है और'सागर पहल'(SAAGAR PROGECT) द्वारा इस क्षेत्र में स्थिरता तथा सुरक्षा मुख्यरुप से जोर दिया जा रहा है और हिंद-प्रशांत क्षेत्र में भारत 'सागरमाला परियोजना',' मौसम परियोजना', हिंद महासागर तक पहुंच के नीति के साथ बिमस्टेक देशों के मध्य संबंधों पर मुख्य रूप से जोर दे रहा है। जिसके तहत भारत अपने समुद्री तटीय आधारभूत संरचना को सुदृढ़ करने के साथ-साथ ब्लू इकोनॉमी के मुख्य लक्ष्य को प्राप्त करना चाहता है और भारत, चीन को इस रीजन में प्रति संतुलित करने के लिए क्वाड जैसे अनौपचारिक संगठन का सहारा ले रहाहै।हिंद - प्रशांत देशों के लिए चीन हमेशा से एक बड़ा खतरा रहा है,वह इंडो - पैसिफिक क्षेत्र में भारत के प्रमुख हितों के लिए भी खतरा उत्पन्न कर रहा है, चीन विश्व के समुद्रिक व्यापारिक मार्गों पर 'मैरिटाइम सिल्क रूट' के द्वारा समुद्री मार्गों पर का निर्माण करता जा रहा , जो एशिया और अफ्रीका के बंदरगाहों को जोड़ता है। दूसरी ओर 'बेल्ट रोड इनीशिएटिव' के द्वारा से एशिया-अफ्रीका तथा यूरोपीय देशों तक अपनी पहुंच बना रहा है। भारत के लिए यह चिंताकि यह विषयहै कि चीन इस मार्ग का प्रयोग भारत के सामरिकऔर आर्थिक सुरक्षा हितों के विरोध कर सकता है, उदाहरण स्वरूप इस रोड का एक प्रमुख परियोजना 'चीन-पाकिस्तान आर्थिक गलियारा'(सीपैक) भारत की संप्रभुता तथा अखंडता के लिए एक चुनौतियाँ है। भारत को सामरिक और आर्थिक रुप से हिंद-प्रशांत रीजन में अपनीपहुंच के लिए स्ट्रिंग ऑफ पर्ल के नीति अपना रहा है जिसमें म्यांमार के सातवें, बांग्लादेश मेंचटगांव, श्रीलंका में हंबनटोटा,मालदीव में मराओ तथा पाकिस्तान में ग्वादर बंदरगाह को भी शामिल किया गया है।जिस पर चीन ने सामरिक और रणनीतिक रूप से अपनी प्रभाव मजबूत किया है, चीन- भारत के पड़ोसी देशों में पकिस्तान,श्रीलंका और बांग्लादेश को सैन्य सामग्री और युद्धपोत आदि की पूर्ति करता रहता है, जो 'सैन्य उपनिवेशवाद' का ही रूप है। इस तरह चीन दक्षिण- चीन सागरीयक्षेत्र में कई छोटे-बड़े कृत्रिम दीपों का निर्माण कर क्षेत्रीय एवम् वैश्विक चुनौतियां को उत्पन्न किया है जो हिन्द-प्रशान्त क्षेत्र में सामुंद्रिक प्रतिद्वंदिता को बढ़ावा दे रही है देता है इसमें कोई दो राय नहीं है कि चीन ने कुछ वर्षों के दौरान हिन्द- प्रशांत रीजन के देशों के साथ अपने आर्थिक और व्यापारिक संबंध काफी मजबूत कर लिए हैं चूंकि चीन अन्य देशों के साथ 'प्रत्यक्ष विदेशी ' के मामले में दुनिया में सबसे आगे हैं इसलिए इसका प्रभाव हिंद- प्रशांत क्षेत्र पर भी दिखाई देता है। चीन एवम् दक्षिण- पूर्वी एशियाई देशों के मध्य 'प्रत्यक्ष विदेशी निवेश' का आदान-प्रदान भारत द्वारा इस क्षेत्र में किए जाने वाले 'प्रत्यक्ष विदेशी निवेश' की तुलना में कहीं अधिक है। पिछले कई वर्षों के दौरान चीन ने अपनी महत्वकांक्षी परियोजना बेल्ट रोड (बीआरआई) इनीशिएटिव के विस्तार के जरिए इस रीजन में अपने आर्थिक एवम् राजनीतिक नेटवर्क को काफी बढ़ा दिया है, जबकि बी आर आई के बारे में अक्सर यही कहा जाता है कि इसके तहत मदद पाने वाले ज्यादातर देश लंबे समय के लिए कर्ज के जाल में फंस जाते हैं, यह बात दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों और अफ्रीका के कई देशों के लिए बड़ा मामला रहा है, और भारत का समुद्री दृष्टि से सबसे नजदीकी पड़ोसी श्रीलंका भी इस कर्ज कूटनीति के जाल में उलझ चुका है। समुद्रिक प्रतिस्पर्धा और प्रतिद्वंद्विता के प्रारंभ होने से भारत के समक्ष आतंकवाद, समुद्री संचरण मार्गो की सुरक्षा, समुद्री तटों की सुरक्षा प्रमुख समस्या के रूप में है। वैश्विक एवम्क्षेत्रीय परिदृश्य में एक- दूसरे से आगे निकलने की होड़ ने विश्व युद्ध की ओर अग्रसर किया है, समय रहते यदि चीन के महत्वाकांक्षा पर नियंत्रण नहीं पाया गया तो वैश्विक जंग का मार्ग प्रशस्त करेगा ।भारतीय पूर्व प्रधानमंत्री नरसिंह राव के समय 1991 में "लुक ईस्ट नीति" को भारत की विदेश नीति का प्रमुख आधार बनाया, तभी से भारत दक्षिण पूर्व-एशिया रीजन के देशों के मध्य आर्थिक एवं सैन्य संबंध लगातार बढ़ा रहा है। भारत ने इस क्षेत्र के अन्य देशों के साथ पहल कर मेंकांग गंगा को-ऑपरेटिव फोरम बनाया है इसके अंतर्गत इस क्षेत्र के देशों के मध्य राजमार्ग द्वारा जोड़ा गया है।भारतीय पूर्व विदेश मंत्री जसवंत सिंह ने आसियान वार्षिक सम्मेलन में कहा था कि रण नीतिक तथा सुरक्षा संबंधी मामलों पर इसरीजन में भारत का महत्व बढ़ रहा है तथा क्षेत्रीय शांति एवम् स्थिरता के प्रति प्रतिबद्धता को समझा जा रहा है। वर्ष 2002 में थाईलैंड में एशियाईदेशों के 17 विदेशी मंत्रियों ने एक नया पूर्व एशिया कॉर्पोरेशन डायलॉग गठित किया जिसमेंभारतीयपूर्व विदेश मंत्री जसवंत सिंह शामिल हुए थे इन्होंने चार क्षेत्रों में और अधिक आपसी सहयोग बढ़ाने पर जोर दिया थाये क्षेत्र हैं, यातायात और संचार, विज्ञान एवम्तकनीकी,मानव संसाधन, ऊर्जा क्षेत्र को आगे बढ़ाया जा सके। चीन द्वारा दक्षिण एशियाई मार्गो की राजनीतिक एवम् कूटनीतिक में प्रमुख भूमिका अदा करने के कारण यह रीजन में सामरिक आर्थिक विकास,सैन्य क्षेत्र का निर्माण, राजनीतिक पहुंच तथा सांस्कृतिक विकास को बढ़ावा दिया है। चीन अपने गैस व तेलों की

आपूर्ति को सुरक्षित करने के लिए पाकिस्तान,म्यांमार व थाईलैंड के भू-स्थल मार्गो से पाइप लाइनों के निर्माण में बहुत सक्रिय है, इसलिए बीजिंग तेल के विशाल भंडार का निर्माण करने के लिए दोसामरिक गलियारों की योजना पर काम कर रहा हैयेगलियारा भारत के दोनों ओर से गुजरते हैं। जिसमें एक गलियारा बंगाल की खाड़ी से लगभग 800 किमी. की दूरी तयकरम्यांमार के पास से होता हुआ दक्षिणचीन तक पहुंचता है, इस गलियारे के निर्माण होने से चीन की पहुंच भारत के दक्षिण- पश्चिम समुद्र तट तक हो जाएगी। वही दूसरा गलियारा पाकिस्तान में चाइनाद्वारा निर्माणाधीन ग्वादर बंदरगाह से काराकोरम पर्वत श्रृंखला से होते हुए चाइना के शिनजियांग प्रांत तक पहुंचता है,इसके माध्यम से वह फारस की खाड़ी और अफ्रीका से आने वाले गैस व तेल की आपूर्ति सुचारू रखना चाहता है और भारत के पड़ोस के देशों में चाइना पांव पसार कर भारत पर चौतरफा दबाव बनाना चाहता है। चीन के ब्लू घेरा के केंद्र में उर्जा निर्भरता और व्यापार-वाणिज्यके प्रमुख स्रोतों की सुरक्षा हेतु इंडो-पेसिफिक में समुद्री संचरण रेखाओं का प्रगति व सुरक्षा महत्वपूर्ण है। जिसका मुख्य लक्ष्य संसाधनों के परिवहन पर खर्च होने वाले भाड़े को कम करना और अमेरिकी दबाव वाले समुद्री मार्गो से अपने को बचाना है। इडो - पैसेफिक महासागरीय रीजन में भारत के सामरिक तथा आर्थिक गतिविधियां जिन्होंने बिजींग के साथ संघर्ष को गति दिया है। यद्यपि भारत के लिए दक्षिण- चीन सागर क्षेत्र कईमायनों से महत्वपूर्ण है, भारत के कुल व्यापार-वाणिज्य का लगभग 55 प्रतिशत दक्षिण पूर्व- एशिया से होता है, दक्षिण-चीन सागर क्षेत्र सम्पूर्ण एशिया का सबसे विवादित क्षेत्र है और भारत इस क्षेत्र में वियतनाम से समझौता कर तेल व खनन खोज का कार्य कर रहा है जिसके वजह से चीन ने इस रीजन में अपनी प्रभुसत्ता के बात करते हुए भारत को इस रीजन से हटने के बात कही हैं।चीन-पाकिस्तान आर्थिक गलियारा भारत व पाकिस्तान के मध्य है, जिसमें चीन के हस्तक्षेपके प्रति भारत ने भी अपने अपत्ति समय-समय पर दर्ज की है,यह क्षेत्र भारत का है, जिसे पाकिस्तान ने अवैध रूप से अपने कब्जे में रखा है जिसे पाक अधिकृत कश्मीर कहा जाता है। चीन को इस रीजन में गलियारा निर्माण करने के पूर्व भारत से सहमति लेनी चाहिए था। इंडो- पेसिफिक क्षेत्र में चीन-भारत समुद्री प्रतिद्वंदिता को सुरक्षा दुविधा के यथार्थवादी सैद्धांतिक आयाम से देखने का प्रयास करता है, जिसमें भारत-चीन किसी के माध्यम सेअपनी हितों को सुरक्षित करने का प्रयास दूसरे के द्वारा अपनी असुरक्षा के रूप में देखते है। यह शक्ति प्रतिस्पर्धा तथा संघर्ष का कारण हो सकता है, इसके अतिरिक्त भारत चीन आर्थिक विस्तार और गतिविधियां को भी परीक्षण किया जाए तो जहां भारत स्वतंत्र, मुक्त खुले और समावेशी हिंद प्रशांत क्षेत्र में बढ़ावा देते हुए उदारवाद की नीति का प्रवर्तक दिखाई पड़ता है वहीं चीन कहीं अधिक संरक्षणवादी नजर आता है।यदि हम इंडो - पेसिफिक क्षेत्र में सुरक्षा व्यवस्था और शांति की खोज में भारत - चीन की भूमिका का गहन विश्लेषण करें तो यहां भारत अपने साझा विश्वासों और पहचान में चीन के आक्रमकता के विपरीत और आसियान देशों के अधिक नजदीक दिखाई पड़ता है,जिन्हें सामाजिक संरचनावाद के सैद्धांतिक आयाम से देखा जा सकता है। इसी आधार पर इंडो-पेसिफिक में रूल आधारित व्यवस्था की स्थापना में क्षेत्रीय शक्तियों के नेतृत्वकर्ता शक्ति के रूप में भारत की रोल का गहन विश्लेषण किया जा सकता हैं। वैश्विक प्रतिस्पर्धा में चीन अपनी तुलना भारत के साथ करना नहीं पसंद करता है तो वही भारत भी अपनी तुलना पाकिस्तान के साथ करना नहीं पसंद करता जबकि अमेरिकी अपनी तुलना चीन के साथ करने को नजर अंदाज करता है और अमेरिकी प्रथम की बात करता है। जिसका मुख्य कारण अमेरिका अपनी प्रख्यात वैश्विक स्थिति को बनाए रखना चाहता है। इस प्रकार कोई भी देश अपनी सर्वोच्च ता के साथ समझौता नहीं करना चाहता है। समकालीन समय में भारतीय विदेश नीति वैश्विक समुदाय के साथ सार्थक संबंध को आगे बढ़ाते हुए उसे मजबूती प्रदान करना चाहती है औरसंप्रभुता, राष्ट्रीय सुरक्षा एवम् आर्थिक बदलाव और भौगोलिक एकता सहित अपने लक्ष्यों को सुनिश्चित करने के साथ ही अपने मुख्यवैश्विक एवम्क्षेत्रीय चिंताओं का निदान कर सके। भारत ने अपने सभी पड़ोसी और बिमस्टेक देशों के मध्य संपर्क को जोड़ने करने का प्रयास किया है।

******

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. C.Raja Mohan, Samundar manthan:Sino-india Rivalry in the Indo Pacific,New Delhi. Oxford University Press (2013)
2. Gurpreet S. Khurana& Antara Ghosal Singh, Indian and China: Constructing A Peaceful Order In Indo-pacific, National Maritime Foundation,New Delhi (2016)
3. Malik Mohan, China and India: Great Power Rivals,First Forum Press,USA (2011)
4. Pushpita Das Coastal Security: The Indian Experience,IDSA,New Delhi, Monograph series No22(2013)
5. Pradeep Kaushiva&Abhijeet Singh, Geopolitics Of The Indo-Pacific, Knowledge World Publisher, New Delhi (2014)
6. डॉ. आर एस पांडे, चीन की समुद्रिक महत्वकांक्षाएं एवं भारतीय सुरक्षा : एक मूल्यांकन, प्रतियोगिता दर्पण जून 2013
7. हरि शरण वहर्ष कुमार सिन्हा, हिंद महासागर :चुनौतियां एवं विकल्प,प्रत्युष पब्लिकेशन, नई दिल्ली 2012
8. बी.पी.दत्त, बदलती दुनिया में भारत की विदेश , हिंदी कार्यान्वयन निदेशालय,दिल्ली।
9. तारा देवी , हिंद महासागर एवं सलंग्न राष्ट्र : एक भू- आर्थिक एवं –भू - सामरिक अध्ययन, उत्तर प्रदेश, हिंदी संस्थान, लखनऊ

Godaan Vs Suardaan. Sapna Editor,Naagfani

Intellect and tallent can never be suppressed.It reflects its wisdom and knowledge automatically. When Gavaskar scored more than ten thousands runs in his name .The first time it became World records.The people were in gossip that no other Gavaskar Can be born. Sachin Tendulkar had broken this myth. In the literary field the people have made cocept that no other Premchand can take birth.After writing Suardaan and stories like Kafan,Sadgati and Doodh Ka Daam , Roopnarain has changed these thinking amongst the Literary World. Godaan written by Munshi Premchand talks about the pitable and worst condition of the peasants. But this novel does not put any concreate way to rid of these sorrowful condition of the farmers. Heera the hero of the novel struggles for bread and butter throughout his life. At last he performs donation of a cow so he could cross the terrible sea of troubles.It reflects the blind faith. Roopnarain Sonkar has broken this myth throuh Suardaan. He claims that after death of a man he becomes soil then soil doesn't hold the tail of a cow . How he could cross the sea of trubles. There is a no concept of heaven and hell.These are the imaginary things. Sonkar has denied the existence of heaven and hell. The great author like Munshi Premchand has never broken the casteism.He had started the system of having kept. The kepts were not given any right of wives.They were only the instruments of recreations and fulgilling their sexual needs.Credit goes to Munshi Premchand that he had given the signal to the people for living relationship with ladies. In this modern age the ladies who are living in relationship are getting the full rights of the wives. The great writer Munshi Premchand didn't try to abolish the casteism. He has described in Godaan that some people of Chamar by caste put the bone of an animal into the mouth of a Brahmin.The Brahmin had made a kept to a lady Chamar by caste.The Brahmin lost his piousness.But after performing the religious rituals he turned again from Chamar to Brahmins. The great author has introduced the importance of blind faith of blind religion. It is not scientific.The author Roopnarain Sonkar has tried to abolish casteism from the society and created a new society wich is casteless.The four partners of the Piggery Farm Ramchandra Trivedy,Sajjan Khatik,Ghasitey Chamar and Salwant Yadav drink alcohol with a single glass.All partners eat the pork and declared it the most richest disc of the World. The novel of Sonkar is a science fiction. They perform scientific inventions in the labotary of Piggery Farm with the help of American Scientists..They producd hybrid with the help of the semens of men and animal.That Hybrid is called MAANWAR. The The Maanwar will do the creative works which a common unable to perform it.It was the thinking of author behind Maanwar. The author wants to save his pious motherland from terrible riots which often occur in India between Hindus and Muslims.He has created SUGAAY after making a cross with Suar and Cow. Amongst some rigid Hindus, they don't like to eat flesh of a cow.They consider it against their religion.The same way the Muslims denied to eat pork because they consider it against their religion. The author has given a right solution to eat the flesh of SUGAAY by both communities.

नशा और समाज में जागरुकता का अभाव

डॉ. रेशमा अंसारी
प्राध्यापक एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग, मैट्स यूनिवर्सिटी, रायपुर, छत्तीसगढ़
mo-9926348979

सारांश-हम सभी जानते हैं कि नशा समाज की सबसे बड़ी बुराई है और इसके दुष्परिणाम ही सामने आते हैं बावजूद इसके इस सामाजिक बुराई पर पूरी तरह अंकुश लगाने में कभी समर्थ नहीं हो सके हैं। हालांकि मादक पदार्थों के खिलाफ वैश्विक कार्रवाई को मज़बूत करने और मादक पदार्थों के दुरूपयोग से मुक्त अंतर्राष्ट्रीय समाज की लक्ष्य प्राप्ति में सहयोग करने के लिए प्रतिवर्ष 26 जून को अंतर्राष्ट्रीय मादक पदार्थ सेवन और तस्करी निरोध दिवस मनाया जाता है। लेकिन फिर भी मादक पदार्थों के दुरुपयोग और अवैध व्यापार के खिलाफ़ लड़ाई के लिए जागरूकता का अभाव अभी भी है। आवश्यकता निरंतर लोगों को जागरुक करने की है।

मूल शब्द: नशा, जागरुकता, मादक पदार्थ, समाज

नशा एक ऐसा तत्व है जो व्यक्ति एवं समाज की दशा एवं दिशा दोनों ही बदल देता है। नशा दो तरह का होता है, एक अच्छा और दूसरा बुरा। हर आदमी में अपने काम और अपने लक्ष्य के प्रति नशा होना चाहिए, अगर इसे साहित्य के दृष्टिकोण से देखे तो यह आदर्श हुआ परंतु हम देखते हैं कि हम केवल आदर्श पर ही बात करते हैं, यथार्थ क्या है इस पर हमें गहन चिंतन मनन करने की आवश्यकता है। प्राचीन काल से लेकर अब तक नशा विभिन्न सामाजिक समस्याओं में से एक प्रमुख समस्या रही है। विभिन्न सामाजिक समस्याओं से आज हमारा परिवार और समाज जूझ रहा है उसमें एक ज्वलंत समस्या है नशाखोरी। हम देख रहे हैं कि नशे की लत निम्न तबके से लेकर उच्च वर्ग तक के लोगों में दिखाई देती है। इसमें हर उम्र के लोग देखे जा सकते हैं। अब अगर हम सोचें कि नशे में बढ़ोतरी के कारण क्या हैं तो इनमें प्रमुख कारण हैं जागरूकता का अभाव, संगति का प्रभाव, नशे के पदार्थ का आम जन तक सहज पहुंच, विकास के साधनों की कमी, बड़ों के व्यवहार में लापरवाही, सिनेमा का प्रभाव , वैश्वीकरण, सरकार द्वारा कर के रूप में कमाई, एकल परिवार में बढ़ोतरी आदि जिससे नशा करने वालों की तादाद बढ़ती जा रही है। सबसे ज्यादा प्रभावित वर्ग युवा वर्ग और किशोर बच्चे हैं। इसके कारणों पर अगर हम दृष्टिपात करते हैं तो देखते हैं कि युवा वर्ग अपना एक रोल मॉडल रखता है। किसी युवा का रोल मॉडल सलमान खान है तो किसी का शाहरुख खान, किसी का अजय देवगन है तो किसी का अक्षय कुमार और यही अगर विज्ञापन करते दिख जाए ''बोलो जुबा केसरी'', एक एक विज्ञापन से लाखों-करोड़ों युवा गुटके को अपना शौक बना लेते हैं। ''जिंदगी में थोड़ा रिफ्रेशमेंट चाहिए'', ''मुंह में रजनीगंधा कदमों में दुनिया'' या ''कमला पसंद'' आदि बड़े-बड़े अभिनेताओं के माध्यम से पान मसालों के विज्ञापन व्यावसायिक लाभ के उद्देश्य से करवाए जाते हैं। आज अगर इस तरह के विज्ञापनों में ऐसी चीजें खुलेआम राष्ट्रीय मंच पर बेची जा रहा है जिसमें सुपारी, तंबाकू या अन्य कैंसर के कारण बनाने वाले पदार्थों का इस्तेमाल किया जा रहा है तो स्वाभाविक रूप से हम नशे और बीमारी ओर युवाओं को प्रोत्साहित कर रहे हैं। आज गानों में, फिल्मों में, नाटकों में, एल्बम में, नशे के सेवन को दिखाया जाता है जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव युवा और किशोरों में देखा जा सकता है। युवा अपने रोल मॉडल की तरह ही व्यवहार करते हैं। अभिनेता और अभिनेत्री फिल्म और विज्ञापन में अपनी भूमिका निभा कर पैसे लेकर निकल जाते हैं। डायरेक्टर, प्रोड्यूसर अपने लक्ष्य प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं, नशीले पदार्थ विक्रेता बड़े रूप में लाखों खर्चा करके अपना प्रचार प्रसार करते हैं, करोड़ों कमाते हैं, सरकार कर लेकर अपना कोटा भर लेती है और बुद्धिजीवी वर्ग सेमिनार और वेबीनार के माध्यम से इन विषयों पर आयोजन करवाकर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इस तरह की संमाजिक समस्याओं का समाधान ढूंढने का प्रयास करते हैं। जो व्यक्ति इनसे प्रभावित होते है उन्हें यह पता नहीं होता कि इन चीजों का सेवन करके किस गर्त में जा रहे हैं और उनके रोल मॉडल और फिल्मों के असलियत से वे कोसों दूर रहते हैं। मेरे कहने का मतलब यह है कि समाज को नशा मुक्त करना है तो हम सबको मिलकर पूरी सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन लाना होगा। आज हम वैश्वीकरण के युग में इतना विकास कर चुके हैं कि पूरा विश्व हमें गांव लगने लगा है। वैश्वीकरण से वस्तुओं का आदान-प्रदान और सुलभ हो गया हैं। पश्चिमी संस्कृति को अपनाना तो हम बहुत पहले ही प्रारंभ कर चुके हैं। हमारी भारतीय संस्कृति त्याग, संयम, सादा जीवन-उच्च विचार को प्रसारित करती है, वहीं पश्चिमी संस्कृति उपभोक्तावाद, मौज-मस्ती आदि मूल्यों को बढ़ावा देती हैं। आज अधिकतर भारतीय युवाओं के दिमाग में यह है कि आधुनिकीकरण का सीधा संबंध पश्चिमी विचारों को ग्रहण करना है जिससे उनकी संकुचित सोच भी उन्हें नशे की ओर आकर्षित करती है। अंग्रेजी और हिंदी भाषा को लेकर ही हम विचारों में कितना उतार-चढ़ाव देखते हैं इस तरह हम देखते हैं कि नशे से परिवार में विघटन हो रहा है घरेलू हिंसा में वृद्धि हुई है, स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है, प्रतिभा का ह्रास हो रहा है। हम विश्वविद्यालय में लगभग 4 से 5 साल तक विद्यार्थी के रूप में युवाओं को लगातार देखते हैं। मुझे बहुत दुख होता है इतने प्रतिभाशाली युवक व युवतियाँ नशे के प्रभाव में आकर अपनी प्रतिभा का फायदा नहीं उठा पाते हैं, फिर बेरोजगार होकर घूमते हैं। उनके माता-पिता अपने सहारे के रूप में देख रहे भविष्य पर रोते हैं। मजदूर वर्ग अपनी कमाई का एक बड़ा हिस्सा नशे में लगाते हैं जिससे गरीबी बढ़ रही है। नशे के प्रभाव से व्यक्ति की सोचने-समझने की क्षमता खत्म हो जाती है जिससे वे असामाजिक कार्य कर रहे हैं। अन्य अपराधिक मामले बढ रहें हैं। नशे से देश की सुरक्षा को भी खतरा है। भारत में सीमा पर भी नशे का कारोबार धड़ल्ले से हो रहा है। पैसे की लालच में अनेक लोग इसमें लिप्त हैं गैर कानूनी काम आसानी से हमारे देश की जड़ों को कमजोर करने का काम कर रही है, इसके नुकसान व्यक्तिगत तो होते ही हैं साथ ही यह पूरे समाज पूरे देश के लिए अत्यंत चिंतनीय है। अब सवाल पैदा होता है कि नशे से कैसे बचा. और बचाया जाए। तब कुछ तथ्य सामने आते हैं। परिवार वालों को अपने बच्चों की संगति और उनकी दिनचर्या पर ध्यान देना आवश्यक है । उनका शेड्यूल ऐसा बनाएं कि उनकी समझ आते तक वह शेड्यूल के हिसाब से काम करें। युवाओं को रोल मॉडल तथा मनोरंजन के साधनों पर सोच विचार करना होगा। खेलकूद में भागीदारी पर जोर देना होगा। परिवार के बड़े कम से कम बच्चों के सामने नशा ना करें। टीवी, रेडियो, संचार के माध्यमों पर लगातार जागरूकता कार्यक्रम का आयोजन किया जाना चाहिए। नशा मुक्ति केंद्रों की स्थापना की जानी चाहिए। नशे से होने वाले दुष्परिणाम संबंधी फिल्म बनानी चाहिए। स्कूल में चरित्र निर्माण संबंधी पाठ्यक्रम पढाना चाहिए और उन्हें नशे से होने वाले नुकसान से अवगत कराना चाहिये। देश में तकरीबन डेढ़ करोड़ बच्चे नशे की गिरफ्त में हैं, तीस लाख बच्चे शराब, बीस लाख बच्चे भांग, चालीस लाख बच्चे ओपियोइड्स, बीस लाख बच्चे सीडेटिप्स, तीस लाख बच्चे इन्हेलेंट, दो लाख बच्चे कोकीन, चार लाख बच्चे एटीस, और दो लाख बच्चे हल्लुकिनोजेंस के उपयोगकर्ता पाए गए। यह आंकड़े सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय द्वारा राष्ट्रीय मादक द्रव्य निर्भरता उपचार केंद्र अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान नई दिल्ली के माध्यम से कराए गए राष्ट्रीय सर्वेक्षण पर आधारित है। नशे बच्चों को एक अँधेरी दुनिया में धकेल रहे हैं.। देश में तमाम कायदे, कानून हैं और सरकारें भी नशा मुक्ति अभियान चला रही हैं, लेकिन इतनी बड़ी संख्या में यदि बच्चे नशीले पदार्थों के उपयोगकर्ता के रूप में सामने आ रहे हैं, तो यह स्थिति निश्चित ही चिंताजनक है.। ड्रग वार डिस्टॉर्सन और वर्डामीटर की रिपोर्ट के अनुसार पूरी दुनिया में मादक पदार्थों का अवैध व्यापार सालाना लगभग 30 लाख करोड़ रुपए का है। वहीं नेशनल ड्रग डिपेंडेंट ट्रीटमेंट (एनडीडीटी), एम्स की वर्ष 2019 की रिपोर्ट बताती है कि अकेले भारत में ही लगभग 16 करोड़ लोग शराब का नशा करते हैं। इसमें बड़ी संख्या महिलाओं की भी है। रिपोर्ट के अनुसार लगभग 1.5 करोड़ महिलाएं देश में शराब,अफीम और कैनबिस का सेवन करती हैं। रिपोर्ट के आंकड़े बताते हैं कि देश की लगभग 20 प्रतिशत

आबादी (10-75 वर्ष के बीच की) विभिन्न प्रकार के नशे की चपेट में है। कुछ रिपोर्ट्स बच्चों के भी बड़ी संख्या में नशे की चपेट में आने की जानकारी देती हैं। ग्लोबल बर्डन ऑफ डिजीज स्टडी 2017' के आंकड़ों के अनुसार दुनिया भर में लगभग 7.5 लाख लोगों की मौत अवैध ड्रग्स की वजह से हुई। इनमें से लगभग 22000 मौतें भारत में हुई। गंभीर बात यह है कि देश में पारंपरिक नशे जैसे कि तम्बाकू, शराब, अफीम के अलावा सिंथेटिक ड्रग्स स्मैक, हिरोइन, आइस, कोकीन, मारिजुआना आदि का उपयोग तेजी से बढ़ा है। देश और दुनिया में नशे के उपयोग और उसके गंभीर परिणामों के बारे में बीते अनेक वर्षों से अध्ययन होते रहे हैं और गंभीर परिणामों को व्यक्त करने वाली रिपोर्ट आती रही है। वर्ष 2020 में नशीले पदार्थों के कारोबार से जुड़े अपराधों में 81.6 प्रतिशत अपराधियों को सजा मिली है. वहीं, दुनियाभर में नशे की वजह से तकरीबन दो लाख मौतें हर साल होती हैं और भारत में पिछले तीन सालों में ही ड्रग्स का बाजार 455 फीसदी तक बढ़ गया, जोकि चिंतित करने वाला आंकड़ा है.। निष्कर्षतः नशा समाज के लिए वह जहरीला दानव है जो युवा वर्ग को सबसे ज्यादा निगल रहा है। इसके घातक परिणामों को जानते हुए भी लोग इसकी गिरफ्त में हैं और हमारा समाज पूरी तरह नशामुक्त नहीं हो पाया है।

****

संदर्भ ग्रंथ:-

1. https:@@hindi-news18-com@blogs@rakesh&kumar&malviya@more&than&one&and&half&crore&kids&addicted&to&drugs&in&india&3452493-html
2. https:@@www-bhaskar-com@national@news@drunk&business&worth&30&lakh&crores&in&the&world&20&percent&population&of&the&country&is&under&arrest&127756828-html
3. https:@@www-aajtak-in@india@news@story@drugs&market&increased&by&455&percent&in&three&years&two&lakh&deaths&in&the&world&every&year&ntc&1336675&2021&10&05

आधुनिक युग में मीडिया का बदलता स्वरूप- वर्तमान समय की मांग

डॉ राहुल कुशवाहा

प्रोफेसर एवं समन्वयक - स्कूल ऑफ मीडिया स्टडीज, जयपुर नेशनल यूनिवर्सिटी, जयपुर
मो. 8527432855

प्रस्तावना- समस्त विश्व में आज चारो तरफ मीडिया का वर्चस्व नजर आ रहा है। मीडिया अपने माध्यम से लोगों तक अपनी पहुंच बनाने में कारगर हुआ है। मीडिया का जो रूप हमें पहले दिखाई देता था आज वह एक दम बदल गया है। पहले मीडिया का मतलब सूचना से हुआ करता था। सूचना में अखबार, टी-वी समाचार और रेडियो समाचार का मुख्य माध्यम था। धीरे-धीरे मीडिया का स्वरूप बदलकर मनोरजंन के साथ व्यवसाय जगत में तब्दील हो गया। अब इस व्यवसाय में प्रिंट, इलेक्ट्रानिक और सोशल मीडिया का पदार्पण शुरू हो गया। पूरे विश्व में संचार माध्यमों का जाल इतना फैल गया है कि समाज में सभी काम मीडिया की निगरानी में संभव हो रहा हैयह संजाल समाज के प्रत्येक व्यक्ति को प्रभावित करता है। इस हाइटेक युग में साइबर मीडिया ने इलेक्ट्रानिक जनसंचार माध्यमों से सारा स्वरूप पलट कर रख दिया है। मीडिया समाज में अलग-अलग रूपों में अपनी लोकप्रियता कायम कर रहा है। समाज में हर तबके का व्यक्ति इस अत्याधुनिक उपकरण का आनंद उठा रहा है समाज में इस लोकप्रियता को बनाए रखने के लिए मीडिया को हर रोज नई चुनौतियो से गुजरना पड़ रहा है। नई तकनीक से बने उपकरणों की लोकप्रियता पूरे ब्रह्मांड में फैल गई है। समाज में मीडिया के नए संसाधनो के आगमन से समय एवं धन का तो लाभ हुआ है साथ ही नई पीढ़ी को चुनौतियाँ भी मिली है। इस माध्यम के जरिए कुछ दुष्प्रभाव भी सामने आए है। जहाँ मीडिया का यह स्वरूप समाज को नई पहचान दे रहा है। वहीं मीडिया का गलत इस्तेमाल चाहे वह मीडिया के किसी भी सोपान से जुडा हो। वह समाज के लिए लाभदायक नहीं है।

बीज शब्द: मीडियां, प्रिंट मीडिया, न्यू मीडिया, सोशल मीडिया, संस्कृति, मौलिकता, पेड न्यूज, व्यवसाय, व्यापार जगत, प्रमोशन।

परिचय–भारत को समाज दुनिया के प्राचीन समाज में से एक है। अलग-अलग जाति, प्रजाता एवं संस्कृति से मिलकर भारतीय समाज का निर्माण हुआ है। भारत में अनेक जाति, धर्म समुदाय, के व्यक्ति रहते है। सभी के रहने का ढंग एवं जीवन शैली भिन्न-भिन्न प्रकार की है। चूंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है समाज में बने समुदाय, संगठनों से मिलकर ही समाज बना है। ठीक उसी प्रकार मीडिया का भी वही जुड़ाव समाज से रहा है। संगठन, समाज एवं व्यक्तियों के आपसी तालमेल और रास्ता दिखाने में मीडिया की बहुत बड़ी भूमिका रही है। मीडिया आम जनसमूह एवं पूरे समाज में पकड़ बहुत कम समय में बना लेता है। समाज से जुड़ी छोटी-छोटी एवं बड़ी गतिविधियों को पूरे विश्व के सामने प्रकट करने में बड़ा सहायक है और इन्ही गतिविधियों से समाज में परिवर्तन होता है। इन्हीं परिवर्तन से मीडिया अपने अस्तित्व एवं अर्थ की उपिस्थति दर्ज कराता है। समाज के प्राचीन होने की जानकारी सिन्धु सभ्यता से मानी जाती है। जो कि 500 से 700 हजार वर्ष पूर्व विकसित हुई थी। माना जाता है विश्वभर मे प्राचीन सभ्यताएं नदी घाटियों से चली आ रही है। इन सभी सभ्यताओं और रीति रिवाजों के बीच समाज में संचार का माध्यम का बडा महत्व हो जाता है। परिवर्तन के लिहाज से भी मीडिया बहुत बड़ा माध्यम है। मीडिया आज के समय की माँग में शामिल है। वह चाहे प्रिंट मीडिया हो, इलेक्ट्रानिक मीडिया हो या सोशल मीडिया हो, हर जगह मीडिया ने अपनी उपिस्थति दर्ज कराई है।

विभिन्न प्रकार के मीडिया तंत्र-

मीडिया शब्द एकवचन में समाहित है जबकि मीडिया का अर्थ बहुत आयामों में होता है। मीडिया का संबंध प्रमुख रूप से प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रानिक मीडिया से माना जाता है। जबकि इसका तीसरा रूप बाह्य संचार को भी प्रस्तुत करता है। लोक-माध्यम भी मीडिया का एक सशक्त माध्यम है। मीडिया हमारे समाज, राष्ट्र एवं व्यक्तिगत जीवनधारा को सीधे और अप्रत्यय रूप से प्रभावित करता है। पिछले कुछ सालों में नई-नई तकनीकी के बढ़ते विकास ने सूचना एवं क्रांति को बढ़ाया है जिससे मीडिया के स्वरूप को बहुत सम्भावनाएं मिली है एवं मीडिया ने उसका पूरा रूपांतरण कर दिया है। टी-वी- रेडियो एवं बढ़ते समाचार पत्रों की माँग ने सम्प्रेषण की व्यवस्था के नए रूप को खड़ा किया है। मीडिया के

अर्थ एवं स्वरूप को बदलने में कंप्यूटर, इंटरनेट, फिल्म, लैपटॉप, फेसबुक, ट्वटर, वाट्सएप, ई-मेल, मोबाइल, एम-एम-एस- आदि ने बहुत सहायता की है। इन माध्यमों ने मीडिया को नई स्वतंत्रता एवं ऊर्जा दी है।

प्रिंट-मीडिया- प्रिंट मीडिया को सीधे-सीधे छपा हुआ सूचना का माध्यम भी कह सकते है। यह वह माध्यम है जो छपे हुए शब्दों के माध्यम से पाठक को सूचना प्रदान करता है। प्रिंट मीडिया की तह में जाएं तो पता चलता है कि पौराणिक काल में संचार का सशक्त माध्यम प्रिंट ही था। धीरे-धीरे प्रिंट मीडिया का स्वरूप बदला और प्रिंट छापे वाली प्रणाली में लोगों के सामने आया। कागज के माध्यम से पत्र के रूप में सूचना तत्रं का विकास प्रारंभ हुआ। समाज में खबरों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने का कार्य खत, चिटठी, पत्र, पर्चे न जाने किन-किन नामों से आगे बढा। समय बदला और प्रिंट मीडिया का चलन अखबारों के साथ शुरू हो गया। अखबार, पत्र, पत्रिका का चलन आज भी बदस्तूर जारी है। भारत में लिखित भाषा को ही कोर्ट और सरकारी कामकाज में प्रथम माना जाता है।

इलेक्ट्रानिक मीडिया- मीडिया आज हमारे जीवन का जरूरी हिस्सा है। विश्व में मीडिया का महत्व बहुत अधिक है। मीडिया मुख्य रूप से सामायिक जीवन के प्रति जागरूक है। मीडिया व्यक्ति को व्यक्ति से जोड़ता है। इस आधुनिक युग में नई-नई खोजों के बल पर इलेक्ट्रानिक मीडिया के क्षेत्रों में अनेक नए जनसंचार माध्यम उभरकर सूचना जगत में दस्तक दे रहे है। इनकी अपनी अलग-अलग सत्ता है, प्रत्येक का अलग इतिहास, स्वरूप और महत्व है। भारत का अधिकांश इलाका किसी न किसी मीड़िया से जुड़ा है। सबसे ज्यादा जिस माध्यम की पहुँच है वह है रेड़ियो, उसके बाद टी-वी, फिल्म, अखबार, केबल टी-वी, वीड़ियो पार्लर, टेपरिकॉर्डर, आदि। आरंभ में भारत में रेडियो और टेलीविजन पर केंद्र सरकार का स्वामित्व था। किन्तु बाकी मीडिया आरंभ से ही निजी क्षेत्र में था।

सूचना प्रौद्योगिकी के युग में भारत के चौथे स्तम्भ मुख्यतः इलेक्ट्रानिक मीडिया ने अभूतपूर्व उपलिब्धयाँ हासिल की है। आज इलेक्ट्रानिक मीडिया में मनोरंजन के समय को फिल्मी मनोरंजन से भरा जा रहा है। इलेक्ट्रानिक माध्यमों का असर छपे हुए शब्दों से अधिक गहरा होता है। ये माध्यम व्यक्ति के मनोविज्ञान को बदलने की शक्ति रखते है। आज इलेक्ट्रानिक मीडिया का असर केवल बच्चों, युवक-युवतियों, किशोरों पर ही नहीं बडों पर भी हो रहा है। इलेक्ट्रानिक मीडिया के जरिए भारत में प्रसार का आसान रास्ता मिल गया है। जो कि आसान होकर भी आसान नहीं है।

नुक्कड़ नाटक- घर की चार दीवारों से बाहर निकल कर अलग-अलग समुदायों के व्यक्तियों के साथ मिलकर नुक्कड़ नाटक प्रस्तुत किया जाता है। नुक्कड़ नाटक का मुख्य कार्य लोगों को जागरूक करके सूचना प्रदान करना है। नुक्कड़ नाटक संचार माध्यमों का एक मात्र ऐसा माध्यम है। जो सीधे-सीधे लोगों द्वारा लोगों तक पहुँचाया जाता है। नुक्कड़ नाटक गली मोहल्ले में खेला जाने वाला नाटक होता है। इसमें गली मोहल्ले की परेशानियों, बिमारियों, समाज से जुड़ी समस्याओं एवं गलत नीतियों पर प्रकाश डालने के लिए जोर दिया जाता है।

सोशल मीडिया का विकास- सोशल मीडिया एक ऐसा माध्यम है जिसको कि अपरंपरागत माध्यम कहा जाता है। जो इंटरनेट के माध्यम से एक वर्चुअल वर्ल्ड बनाता है। सोशल मीडिया का इतिहास आपकी और हमारी सोच से बहुत दूर का है। भारतीय समाज में आज सोशल मीडिया अपनी अहम भूमिका निभा रहा है। आज आम जन किसी न किसी माध्यम से सोशल मीडिया का हिस्सा है। पौराणिक युग से ही इसकी शुरुआत मानी जाती है। पौराणिक कथाओं कि बात करें तो माना जाता है कि नारदमुनि सबसे बडी सोशल मीडिया के वाहक रहा है। वहीं से सोशल प्लेटफोर्म की शुरुआत मानी जाती है। उस वक्त पेड की पत्ती एवं छाल से सूचना को आगे बढाने का कार्य किया जाता था। पशु पक्षी भी उस समय सूचना तंत्र में अहम भूमिका निभाते थे। पेड, पौधों से कागज की शुरुआत हुई और लेखन कार्य ने मुद्रण रूप ले लिया। एक स्थान से दूसरे स्थान पर सूचना पहुंचाने को कार्य कागज एवं मुद्रण प्रणाली से आगे बढने लगा। आधुनिक-समय की बात करे तो 30 जून को सोशल मीडिया दिवस मनाया जाता है। वह चाहे फेसबुक, ट्विटर, यूट्यूब, व्हाट्सएप, इंस्टाग्राम हो। मीडिया के ये नए सोपान जो विश्वभर में आज अपनी अलग पहचान बना चुके है। इस विषय पर देवेन्द्र इस्सर कहते हैं कि ''यह युग मीडिया का युग है। यह कहना अतिश्योक्ति नही होगा कि हम मीडिया संचालित समाज में जी रहे हैं। समस्त संसार में सम्प्रेषण तथा संचार माध्यमों के कारण विस्मयकारी परिवर्तन आ रहे हैं। परंपरागत माध्यमों मे नई प्रोद्यौगिकी विकास के कारण अद्भुत तब्दीलियाँ आ रही है। डिजिटल टैक्नोलॉजी ने पहले ही मीडिया का स्वरूप बदल दिया है। परिणाम स्वरूप वतर्मान समय में मीडिया वस्तुओं, व्यक्तियों तथा विचारों को तीव्र गति से व्यापक तौर पर प्रभावित कर रहा है।

समाज पर इन मीडिया माध्यमों का सीधा-सीधा असर पड़ता है। आज के युवाओं पर सोशल मीडिया का बहुत गहरा प्रभाव पडता है। लोगों का यहां तक मानना है कि अगर आप सोशल मीडिया पर उपिस्थत नहीं है तो आपका अस्तित्व खतरे में है। आप अत्याधुनिकता के दौर में अनेकों सूचनाओं और जानकरी से वंचित है। समाज में अपनी उपिस्थति बनाए रखने के लिए जरूरी है कि आप अपने आप को समय और समाज के अनुसार अपडेट रखें। सोशल मीडिया कि श्क्त का अंदाजा यहां से भी लगाया जा सकता है कि भारत में कोर्ट के फैसलों में भी सोशल मीडिया की उपिस्थति दर्ज होने लगी है। आज कोई भी महत्वपूर्ण सूचना या समाचार बडी तेजी से सोशल मीडिया पर शेयर की जाती है। इंटरनेट एवे मोबाइल के माध्यम से सोशल मीडिया अब संचार का सबसे बडा माध्यम बन गया है।

सोशल मीडिया का युवाओं पर सकारात्मक प्रभाव- आप कम से कम समय में सर्वाधिक दर्शकों तक पहुंचते हैं।आपका अपने दर्शकों से सीधा संबंध स्थापित करने में सुलभ है।आप शैक्षणिक पाठ्य सामग्री आसानी से बना सकते हैं।आपके पास सशुल्क विज्ञापन सेवाओं तक पहुंच है।आप अपना खुद के ब्रांड का प्रचार व प्रसार अत्यन्त ही कम खर्चे में बना सकते हैं।आप अपनी वेबसाइट पर ट्रैफिक लाते हैं।आप अपने प्रदर्शन का मूल्यांकन कर सकते हैं।

सोशल मीडिया का युवाओं पर नकारात्मक प्रभाव- लोगों में भावनात्मक जुड़ाव का अभाव हो रहा है।लोगों को आहत करने का लाइसेंस देता है।व्यक्तियों में आमने-सामने होने वाले संचार कौशल को कम करता है।भावनाओं की अप्रमाणिक अभिव्यक्ति को व्यक्त करता है।हमारी अपनी समझ और विचारशीलता को कम करता है।लोगों काम सामाजिकता से दूर ले जाता है।

मीडिया और पेड न्यूज- पेड न्यूज शब्द अपने आप में ही एक भद्दा शब्द है। सीधे तौर पर बात करें तो पेड न्यूज वह है जो धन देकर प्रकाशित या प्रसारित की जाती हो। यह वह खबर होती है जिसको चलवाने या छपवाने के लिए किसी ने पैसा दिया हो। पत्रकारिता की सारी नियमावली आज पेड न्यूज के हाथों कि कठपुतली बन गई है। पैसा और पावर का नशा आज मीडिया में पेड न्यूज के माध्यम से साफ नजर आने लगा है। राजनैतिक पर्टियां और कॉरपोरेट हाउस नगद या गिफट के माध्यम से खबरों को अपने मुताबिक बनवा लेते है। पहले न्यूज को 'प्वाइंट ऑफ व्यू' माना जाता था जो कि मुद्दों पर बात करता था। प्वाइंट टू प्वांइट बातों से खबरों की तह तक जाकर सार्थकता मजबूत करता था। लेकिन वैश्वीकरण के इस दौर में आज मीडिया प्रोडक्ट बन गया है। भारत जैसे विशाल देश में मीडिया की संकल्पना समाज को देखकर की गई थी। कुछ लोग पेड न्यूज को फेक न्यूज भी बोलते है। शायद उनका तात्पर्य बिकी हुई खबर का अस्तित्व न रहने से है। माना जाता है कि जो खबर पैसो के माध्यम से दिखाइ या छपवाई जा रही है उसमें लाज्मी है कि सत्यता का अभाव होगा ही।

व्यवसायिकता की ओर मीडिया कम बढते कदम- एक समय था जब पत्रकारिता को संविधान का चौथा खम्बा कहा जाता था। इसलिए मीड्या की समाज के प्रति और देश के प्रति बहुत बडी जिम्मेदारी थी है। इस बात को भी कोई झुटला नही सकता कि मीडिया का सोपान चाहे इलेक्ट्रानिक हो या प्रिंट दोनों को ही अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विज्ञापनों पर निर्भर रहना पडता है। एक-एक अखबार और पत्रिका के कवर पेज लाखों करोड़ों की शर्त पर छापे जाते है। सभी पत्रिका और न्यूज चैनल अपने हिसाब से मोल-भाव करता है। मीडिया का लक्ष्य देश सेवा से देश मेवा तक कब आ जाता है किसी को पता भी नही चलता। खबरों को तोड़-मरोड कर पेश करना और बिना खबर के पुख्ता किए खबरों को समाज सामने ले आना यह प्रतीक है कि मीडिया आज अपने लक्ष्य से भटक गया है। एक समय था जब लोग मीडिया की बातों को सत्य मानकर अपने जीवन के प्रमख फैसले ले लिया करते थे, लेकिन आज

मीडिया गलत खबर छापकर या चलाकर माफी मांग लेता है। किसी ने सच ही कहा है कि चाकू खरबूजे पर गिरे या खरबूजा चाकू पर बात तो एक ही है यह हाल मीडिया जगत का है। समय के साथ मीडिया अपनी जिम्मेदारी से इस प्रकार पल्ला झाडता नजर आएगा यह किसी ने सोचा तक नही था। इस विषय पर कुछ लोगों के यह भी तर्क है कि मीडिया को अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए जो दिखता है वो बिकता है कि शैली पर चलना आवश्यक है। क्योंकि मीडिया को पैसा केवल विज्ञापनों से ही प्राप्त होता है। मीडिया समाज में होने वाली गतिविधियॉ और घटनाओं को लेकर अपनी भूमिका दर्ज कराना प्रथम कार्य मानता था। लेकिन आज समय के साथ वह भूमिका बदल गई है। आज हम स्वयं यह देख सकते है कि मीडिया वहीं अपनी रूचि ज्यादा दिखाता है जहां कार्पोरेट जगत या फिल्मी हस्तियों की आवाजाही ज्यादा है। मीडिया इस प्रक्रिया के माध्यम से कॉरपोरेट जगत से जुड़ता है। हमारे समाज में दिन-प्रतिदिन होने वाले परिवर्तन को देखकर मीडिया में भी बदलाव आ रहा है। ऐसा प्रतीत होता है मानो जिस विकास के उद्देश्यो को लेकर मीडिया शुरू हुआ था वह कहां पीछे रह गया है। मीडिया अपने विकास के लिए खबरों को तोड़-मरोड़ के प्रस्तुत करने में भी गुरेज नहीं कर रहा है। मीडिया की गतिविधियाँ या कहीं कारनामें ऐसे हो गये है कि मानो किसी सस्ती साबुन या क्रीम का प्रचार ही उसकी लोकप्रियता का एक मात्र साधन बचा रह गया है। थोड़े-थोड़े विज्ञापन, कार्यक्रम, प्रचार, आदि के माध्यम से अपने विकास की स्याही संजो रहा है। आज वैश्वीकरण के दौर में मीडिया पहले से ज्यादा विकसित हुआ है। आज देश विदेश के समाचार चैनलों में एक होड़ सी लगी है। सब अलग तरह के समाचार एवं उसके प्रसारण की दौड़ में बिजी है। इस प्रकार ये चैनल प्रमुख खबर की मौलिकता भी गवां देते है।

निष्कर्ष-समाज में मीडिया की अहम भूमिका है, मीडिया को इसलिए समाज का दर्पण कहा जाता है कि जो भी समाज में घटता है उन सब तथ्यों और घटनाओं को मीडिया अपने माध्यम से सबके सामने प्रस्तुत करता है। मीडिया को किसी का गुलाम नही होना चाहिए लेकिन पिछले कुछ वर्षा से जिस प्रकार मीडिया पर आरोप लगाए जा रहा है कि मीडिया पैसे लेकर खबर छापता है, जिसको पेड न्यूज कहते है। इस बात की चर्चा पिछले कई वर्षो से हो रहा है, और इसी मीडिया में व्यवसाय का आगमन होने से मीडिया के स्वरूप में अनेकों बदलाव हुए है। आज मीडिया जगत एक इंडस्ट्री में तब्दील हो गया है। मीडिया की पहचान प्रिंट, इलेक्ट्रानिक मीडिया से सोशल मीडया में मिलकर एक बडे व्यवसाय की दुनिया में पहुंच गई है। सोशल मीडिया जैसा कि नाम से ही जाहिर होता है कि समाज से जुडा है। ठीक उसी प्रकार इस मीडिया की कार्यशैली भी अलग है। आज मोबाइल, टी-वी, फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम से कहीं आगे लघु फिल्म एवं क्लीपिंग हो गई है। छोटी-छोटी रील के बनाने से समाज में हर दिन कोई न कोई मैसेज या सूचना आदान प्रदान हो रहा है। जोकि समाज पर सीधे असर करती है। समाज में मीडिया का यह स्वरूप आज एक अलग पहचान बना चुका है। लेकिन यह व्यवसायिक रूप समाज के लिए बहुत हद तक घातक है। इसमें मीडिया को यह ज्ञात होना चाहिए कि समाज में आज भी न्यूज सच्चाई को तवज्जो देती है। मीडिया को अपना लक्ष्य हमेशा याद रहना चाहिए क्योंकि मीडिया को समाज का दर्पण और चौथा स्तम्भ माना गया है। इसलिए कहा जाता है कि सामाजक कडियों से छेडछाड किसी भी देश की मीडिया और सामाज के लिए हितकारी नही है।

******

सन्दर्भ सूची-

1. http://smallbiztrends.com/2013/05/the-complete-history-of-social-media-infographic.html
2. http://www.business2community.com/social-media/impact-social-media-truly-society-0974685
3. http://smallbiztrends.com/2013/05/the-complete-history-of-social-media-infographic.html
4. मीडिया लेखन, डॉ- गंगा सहाय प्रेमी, हरीश, विश्वविद्यालय प्रकाशन, नवीन संस्करण, प्र-सं--28
5. मीडिया सिंद्धातकार-3, वैकिल्पक मीडिया लोकतंत्र और नॉम चोम्स्की, जगदीश्वर चतुर्वेदी सुधा सिंह, प्रथम संस्करण-2008, पृ-सं--115
6. मीडियाः मैथ्स और मूल्य, देवेन्द्र इस्सर, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2006, पृ-सं--15 मीडिया विमशर्, डॉ- राम लखन मीणा, कल्पना प्रकाशन, दिल्ली

पूर्वी राजस्थान के नाथ संत श्री दुर्बलनाथ का चिन्तन

डॉ. शीतल प्रसाद महेन्द्रा
सह आचार्य
राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय,
बांदरसिन्दरी (अजमेर)

राजस्थान के दौसा जिले के उपखंड बांदीकुई में समाधिस्थ सन्त श्री दुर्बलनाथ का जन्म भाद्रपद सुदी (शुक्ल पक्ष) एकादशी विक्रम सम्वत् 1918 तदर्थ सन् 1861 में बिचगांव तहसील लक्ष्मणगढ़ जिला अलवर में हुआ था । यह हरियाणा, राजस्थान व उत्तर प्रदेश की सीमाओं में विस्तृत क्षेत्र है, जिसने मुगल साम्राज्य के संस्थापक बाबर से टक्कर ली थी और जिसने भारत की मिली-जुली तहजीब को आज तक सुरक्षित रखा है । आपके पिता का नाम **श्री फतुराम मल्होत्रा** एवं माताश्री का नाम **श्रीमती रूपा देवी** था। बचपन में आपका नाम **कल्याण** रखा गया। बचपन से ही सन्त श्री दुर्बलनाथ ऊँच-नीच से जकड़े समाज में उच्च वर्ग के शोषण का शिकार हुये। निम्न जाति खटीक में शिक्षा का प्रसार नगण्य था। शुद्र समझे जाने के कारण बालक **कल्याण** को भी शिक्षा का अवसर नहीं मिला फलत: वे निरक्षर रहे।

अपने माता-पिता की इच्छा का सम्मान करते हुए एवं अपने मातृ-पितृ ऋणों से उऋण होने के लिए 18 वर्ष की अवस्था में अलवर की एक पन्द्रह वर्षीय सजातीय, सुयोग्य एवं सुशील कन्या 'मानावती' से विवाह कर लिया। यहाँ यह दृष्टव्य है कि इनका बाल विवाह नहीं हुआ । आपने पूर्ण मनोयोग से गृहस्थ धर्म का पालन किया और 'मानावती' जी को तीन पुत्र एवं तीन पुत्रियों की माता होने का सौभाग्य प्रदान किया। आप गृहस्थ धर्म का पालन करते हुये भी भगवद भक्ति की ओर से विमुख नहीं हुये वरन् अपने आपको मोह के मकडज़ाल में उलझाने के बजाय उससे निर्लिप्त रखने का प्रयास करते रहे।

'श्यामदा' गद्दी पर विराजित गुरु गरीब नाथ जी से आपने दीक्षा ली इसके उपरांत नाथ सम्प्रदाय परम्परा अनुसार आपका नाम **'दुर्बलनाथ'** रख दिया गया । अलवर जिले में अवस्थित श्यामदा (सामदा) गद्दी गुरु गरीब नाथ जी की तपोस्थली रही है। यह अलवर-बहरोड राजमार्ग पर स्थित है। यह गद्दी भरथरी बैराग (भर्तृहरि वैराग्य) की गद्दी मानी जाती है। सम्भवत: मत्स्य प्रदेश (अलवर) में अधिकतर गद्दियाँ इसी सम्प्रदाय की हैं, क्योंकि भरथरी नाथ का प्रवास इस क्षेत्र में बहुत अधिक हुआ है, जिसका अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि अलवर के 'तिजारा' में भरथरी की गुफा बनी हुई है, माना जाता है कि जहाँ कभी भरथरी नाथ जी ने तपस्या की थी। इस गुफा का उल्लेख उज्जैन स्थित एक शिलालेख पर भी किया हुआ है। इनके अलावा अलवर जिले के सरिस्का क्षेत्र में कई स्थान ऐसे हैं, जिनका सम्बन्ध विभिन्न अनुश्रुतियों के द्वारा भरथरी से स्थापित होता है।

अपने यौगिक जीवन में आपने लगभग 1396 सबदों व वाणियों की रचना की जो कि विभिन्न स्थानों पर सम्पूर्ण उत्तर भारत में उपलब्ध हुई हैं। इनका संकलन कर सर्वप्रथम इन्हें **'अनुभव आतम प्रकाश'** नाम से प्रकाशित कराने का श्रमसाध्य कार्य पीर श्री शंकरनाथ जी ने 1963 ई. में किया। अपने अन्तिम समय में आपने बाँदीकुई (दौसा) राजस्थान में अपना आश्रम बनाया। यहीं आश्रम पर भजन करते हुये 6 माह पूर्व ही सभी सत्संग प्रेमी भक्तों के समक्ष 6 माह पश्चात् की पूर्णिमा को देह त्याग करने की घोषणा कर दी और ठीक 6 माह पश्चात् चैत्र सुदी पूर्णिमा वि.सं. 1986 (सन् 1929) को प्राणायाम के अभ्यास से समाधिस्थ होते हुए ब्रह्मलीन हो गये। आप इस संसार में 68 वर्ष रहे जिसमें 39 वर्ष के वैराग्य जीवन में अतुलित चमत्कारिक कार्य करते हुए मानव मात्र को मोक्ष का मार्ग दर्शाते हुए उपदेश देते रहे।

नाथ चिन्तन/दर्शन:-

भारतीय दर्शन का जीवन से निकटतम जुड़ाव है। भारतीय दर्शन **'सर्वे भवंतु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामया:'** की विचारधारा पर आधारित है। यह परमार्थ पर आधारित एवं आन्तरिक अनुभूतियों से आबद्ध दर्शन है। मानव जीवन को सुव्यवस्थित बनाना तथा जीवन की समस्याओं, दु:खों का निराकरण करना भारतीय दर्शन का पावन लक्ष्य रहा है। भारतीय दर्शन में धर्म एवं नैतिकता को सर्वाधिक प्रश्रय मिला है। इस दर्शन का व्यापक प्रभाव नाथों के चिन्तन पर भी परिलक्षित हुआ है।

नाथों में ब्रह्म का स्वरूप -बौद्ध विचारधारा से प्रभावित सिद्ध-साधकों के ब्रह्म विषयक दृष्टिकोण को महायान, मंत्रयान, वज्रयान, सहजयान सभी ने प्रभावित किया। सिद्धों का ब्रह्म शून्य स्वरूप है जो परम विशुद्ध, परम महासत्य, परम विज्ञान, परमोत्कर्ष, आदि-अनादि, मध्य-अमध्य, अन्त-अनन्त, अस्ति-नास्ति, पाप-पुण्य, भव-निर्वाण, जरा-मरण से परे है। नाथ परमपद स्वरूप ब्रह्म को शून्य निरंजन मानते हैं। इसी ब्रह्म को एक स्थान पर अक्षर-वर्ण विवर्जित कहा गया है। नाथ साधकों ने **नाथ निरंजन आरती गाँऊ** द्वारा ब्रह्म को निरंजन कहा है। यह निरंजन न सूक्ष्म है न स्थूल, न इसके डाल है न मूल यह तो सर्व व्यापक है। संत श्री दुर्बलनाथ के अनुसार-

तिजी आरती निरंजन दासा,देखा निरंजन खेल तमाशा॥

नाथों ने ब्रह्म के लिए 'सहज-शून्य' शब्दों को भी अपनाया है -

दविध्यामेटि सहेज में रहे ऐसा विचार मछिन्द्र कहै।
सँहज सुनि मन तन थिर रहे ऐसा विचार मछिन्द्र कहै।

सहज सुभाइ मिले अविनास कहकर वे ब्रह्म को सहज स्वरूप सिद्ध करते है। नाथ परमपद हेतु 'सबद' का प्रयोग भी करते है। यथा -

सबदहिं ताला सबदहि कूंची सबदेहि सबद जगाया।
सबदहि सबद सूं परचा हूआ सबदहि सबद समाया॥

इसी प्रकार संत दुर्बलनाथ कहते हैं-

करो शब्द की चीन, शब्द है आरम्भ पारा।
शब्द खण्ड ब्रह्मांड, शब्द ही राचन हारा॥
शब्द अखण्डी पुरुष है, नहीं रग नहीं रूप।
तन से न्यारा देख ले, नहीं छाया नहीं धूप॥

नाथ ब्रह्म की अनिर्वचनीयता की ओर संकेत कर संत दुर्बलनाथ कहते हैं-

धरन गगन से दूर है, नहीं वहाँ पवन और नीरा।
चन्द नहीं सूरज नहीं, नहीं वहाँ नौलख तारा॥
रहणी करणी वहाँ है नहीं, नहीं वहाँ नेम न क्रिया।
वेद किताब की गम नहीं, नहीं वहाँ काजी ब्रह्मा॥

सब देवां सिरि उदबुदि सूरति कहकर ब्रह्म को सब देवो से श्रेष्ठ तथा प्रज्ञा-प्रतिमा की संज्ञा प्रदान की है। ब्रह्म को तत्व रूप में निज तत्व कहा है। नाथ ब्रह्म को अद्वैत मानते है। **'गगनिसिषर महि सबद प्रकास्या, तहं बूझै अलघ बिनांणी'** द्वारा नाथ कहते हैं कि यह शब्द रूपी ब्रह्म अनहदनाद स्वरूप अभ्यान्तर में सुना जा सकता है तथा ब्रह्मवेत्ता ही इसे जान सकते है। यद्यपि संत दुर्बलनाथ का ब्रह्म परंपरागत ही है।

निर्गुण स्वरूप - नाथों ने निर्गुणोपासना को अपनाया। कबीर ने ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है कि निर्गुण ब्रह्म अलख निरंजन है, जिसे कोई देख नहीं सकता। वह न शून्य है न अशून्य उसकी कोई रूप-रेखा भी नहीं। संत दुर्बलनाथ निर्गुण स्वरूप का वर्णन करते हुए कहते हैं-

सत मानो सन्तों, बहुर न आना होय नै जाना॥
निराकार सू हम चल आया, यहाँ आकर आकार बनाया।
सूर दरियाव निरंजन करता, रचना राच रचाया॥

अनिर्वचनीय स्वरूप - संतों ने 'अजर अमर कथै सब कोई अलख न कथणां जाई' द्वारा ब्रह्म की अनिर्वचनीयता को प्रकट किया है। बिन देही के पुरुष की और इशारा करते हुए संत दुर्बल नाथ कहते हैं-

लखे कोई संत सुजान हो, बिन देही एक पुरुष है॥
रैन दिवस वहाँ है नहीं, नहीं वहाँ मांढ मंढाना हो।
नहीं रचना नहीं राच है, नहीं वहाँ राचन वारा हो॥
पानी से उपजे नहीं, नहीं वह पवन समाना हो।
धरन गगन से दूर है, ऐसा पुरुष हमारा हो॥

परम तत्व अपने जैसा आप ही है। उसका वर्णन करना असम्भव है यह कहकर संत दुर्बलनाथ ने ब्रह्म को अनिर्वचनीय कहा है।

अद्वैत ब्रह्म - संत जन **'अरे भाई दोइ कहां सो मोहि बतावौ'** कहकर अद्वैत ब्रह्म का निरूपण कर द्वैत को कोरा भ्रम सिद्ध करते हैं। संत दुर्बलनाथ जल और नूर के माध्यम समझाते हैं-

जल बीच नूर नूर बीच जल, जल में पुरुष अपारा।
पल में रचना रच गई सारी, साँची सूरत समारा॥

निर्गुण - सगुणातीत ब्रह्म - नाथों ने ब्रह्म को निर्गुण-सगुण द्वंद्वों से परे माना है। संत दुर्बलनाथ निर्गुण में सगुण समाहित मानते हुए कहते है-

निराकार सू हम चल आया, यहाँ आकर आकार बनाया।
ब्रह्मा बन कर वेद चलाया, चारों जुग ठहराया॥
निराकार सू हम चल आया, यहाँ आकर आकार बनाया।
शिवजी बन कर जोग पसारा, सन्यासी का भेष बनाया॥

और कहते हैं-

माया जाल में फंस रहे, करे निरगुण का ज्ञानातेगा साधू ले गया, तो रहा हाथ में म्यान॥

संत दुर्बलनाथ पर ब्रज का प्रभाव बहुत है इसीलिए भगवानों का नाम भजनो में प्रयोग करना, गजानन्द की स्तुति, सत्संग में भगवान कृष्ण के दर्शन करवाना आदि उन्हे सगुण के अधिक करीब लाती है-

साधौ भाई गणपति देव मनाया।
गणपति देव सेवा थारी करता नित उठ ध्यान लगाया॥
शिवजी का नन्द कन्द सारा भरया सारा दुख नसाया।
लोंग सुपारी भेंट चढ़ाऊँ, पार्वती का जाया॥

शब्द, शून्य, निरंजन स्वरूप - नाथों ने ब्रह्म को शब्द, शून्य, सहज, निरंजन स्वरूप में निरूपित किया है।

रंग ना रूप वरण नहीं रेखा, ना कोई देह आकारा रे।
कहन-सुनन, लिखन नहीं भाषण, ना कोई लेख लिखारा रे॥
आवे न जावे, मरे नहीं जनमें, है निर्भय निराधारा रे।
अवगत अचल अखण्ड अविनाशी, रहे परा से पारा रे॥
निरालम्भ निर्भय निरधारा, अखय पीव हमारा रे।
'दुर्बलनाथ' वो अखय पुरुष है, अखय का काम अपारा रे॥

शब्द ऐसा ध्यान धरौ नर नहीं सबद अनाहद च्यंतनकरी। में ब्रह्म को शब्द रूप कहा है। संत दुर्बलनाथ के अनुसार-

सब को नाम, नाम सब मांही, नाम ही है अन नाम।
सब ही उपजे सब ही बिनसे, अमर नाम सत नाम॥

सम्यक् विवेचन से स्पष्ट होता है कि नाथों ने ब्रह्म दर्शन को अपने युग परिवेश के अनुरूप ढालते हुए उसे अपनी मौलिक प्रतिभा के रंग से और अधिक चटक बना दिया।

जीव/आत्मा का स्वरूप -नाथ-साधक शरीर में परम सत्य की व्याप्ति के सिद्धांत के पोषक थे। अत: वे जीव/आत्मा का परम सत्ता से अभेद मानते हैं। इनकी साधना में चित्त की प्रधानता स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। गोरखनाथ ने संसार की सापेक्षता में चित्त (आत्मा/जीव) को दो रूपों में निरूपित किया है - **बद्ध-चित्त एवं मुक्तचित्त।** दर्शन में आत्मा को चरम सत्य माना गया है। वस्तुत: जीव एवं आत्मा एक तत्व है, किन्तु इन्द्रियों के वशीभूत हो आत्मा स्वयं को भुला देती है, तब वह जीव कहलाती है।

हेरत हेरत जग फिरे, घर में हेरन कोय।
जो देखे घर आपनो, दुर्बल घर को होय॥

नाथों ने ब्रह्म (राजाराम) को आत्मा स्वरूप में मान करके उसका निवास सभी जीवों के सभी अंगों में बताया है। संत दुर्बलनाथ के अनुसार भ्रम के कारण ही द्वैत का भान होता है-

जब लग पर्दा भरम का, सायब जाने दूर।
पर्दा हट गया भरम का, आप में आप हजूर॥

जबकि आत्मा परमात्मा एक ही है-

जल बीच नूर नूर बीच जल, जल में पुरुष अपार।
पल में रचना रच गयी सारी, साँची सूरत समार॥

और कहते हैं-

दूध, फाट, घी, कहाँ समाया, कांसी फूट अवाज हो।
भंड़ा फूट जीव कहाँ समाया, या कि करो तलास हो॥
घृत दूध में मिल गया, कांसी माय आवाज हो।
जीव समाया शून्य में, नहीं आवे नहीं जाय हो॥

जगत् का स्वरूप -नाथ जगत् को शिव स्वरूप मानते हैं। अत: यहाँ जड-चेतन सभी ब्रह्ममय है, किन्तु माया के कारण व्यक्ति जड़ जगत को वास्तविक सत्य मान इसी के वश में रहता है। विवेक-सिंधु में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड सर्वेश्वर का स्थूल शरीर तथा सृष्टि रचना को उसी जागृतावस्था बताया है। जालन्धर नाथ ने सकल जगत् को कुबक का खेत कहा है। जहाँ जैसी करनी वैसी भरनी का सिद्धांत लागू होगा। नाथ मानते है कि जगत् ब्रह्म का स्वरूप है, किन्तु ये जगत् के क्षणभंगुर मिथ्या स्वरूप से सावधान रहने का आह्वान करते है। संत दुर्बलनाथ जगत् को सपना बताते हैं-

भूल भूलैया देखा भाई संतों, सपना की सी बात हो॥
जगत सराय मेटो भाई संतों, बीच हमारा वास हो।
उतरे मुसाफिर गिनती ना ही, किस विध उतरे पार हो॥

और कहते हैं- सत बिन कैसे तिरोगे सन्तो, सत बिन जत मत नांय॥
यह संसार ओस का मोती, पवन चले झड़ जाय।
यह संसार पतंग का रंग, धूप लगे उड़ जाय।
यह संसार भीत बालू की, बूँद पड़े गल जाय।
'दुर्बलनाथ' शरण सतगुरु की, सत में सत समाय॥

नाथों ने जगत को ब्रह्म से अभिन्न माना इसी की पुष्टि करते हुए कबीर ने पानी एवं बर्फ के रूपक के माध्यम से जगत को ब्रह्म से उत्पन्न हो उसी में लीन होने की बात की है यथा -

पाणी ही ते हिम भया, हिम ह्व गया बिलाइ।
जो कुछ था सोई भया, अब कुछ कहा न जाइ॥

संत दुर्बलनाथ ने स्पष्ट कर दिया है कि यह जगत ब्रह्म की कृति है, किन्तु अज्ञान वश मनुष्य इसके मिथ्या स्वरूप को सत्य मान बैठता है। अत: संत सामान्य जन को सावचेत करते है-

सागर जल में, जल में सागर, जल सागर सम पाणी।
पाणी लहर, लहर में पाणी उलटी आप समाणी॥
उलटा आप, आप में उलटा, उलट पुलट सुलटाणी।
बाणी आप, आप में बाणी, नहीं बाणी नहीं खाणी॥

माया-चिन्तन -शंकराचार्य के अनुसार सम्पूर्ण वेदान्त एक वाक्य में कहा जा सकता है-'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापर:।' (ब्रह्म सत्य और जगत मिथ्या है, जीव भी ब्रह्म भी ब्रह्म ही है, अन्य नहीं।) इस प्रकार केवल एक तत्व ब्रह्म ही जगत् में प्रतिभासित है। अपनी ही जिस शक्ति से ब्रह्म संसार में प्रतिभासित होता है वह माया है। माया शुद्ध भ्रम अथवा ज्ञान का अभाव नहीं है, यह भावरूपा है। इसको न सत्य कह सकते हैं और न असत्य यह दोनों का युग्म है। यह सत्य इसलिए नहीं है क्योंकि ब्रह्म ही एक मात्र सत्य है, इसको असत्य भी नहीं कह सकते, क्योंकि इसी के द्वारा ब्रह्म जगत् में प्रतिभासित होता है। वास्तव में यह दोनों से विलक्षण है (सदासद्-विलक्षण)। यह शक्तिरूपा है, इसे अध्यास (आरोप) भी कहते हैं। जिस प्रकार भ्रेम के द्वारा शुक्ति (सीप) में रजत (चाँदी) का आरोप हो जाता है उसी प्रकार माया के कारण ब्रह्म में जगत् का आरोप हो जाता है। जब वास्तविक ज्ञान (प्रमा) उत्पन्न होता है तो भ्रांति दूर हो जाती है। रामानुजाचार्य ने शंकर के इस मायावाद का घोर खण्डन किया है। वे माया को ईश्वर की वास्तविक शक्ति मानते हैं जिसके द्वारा वह जगत् की सृष्टि करता है। वे सृष्टि को मिथ्या न मानकर वास्तविक और ईश्वर की लीला भूमि मानते हैं। माया के दो व्यापार है - यथार्थ सत्ता को छिपाना तथा मिथ्या का विक्षेप करना। विविधता रूप जगत यथार्थ सत्ता तथा हमारे मध्य पर्दे का कार्य करना। संत दुर्बलनाथ बताते हैं कि भ्रम के मिटने से ही आवागमन मिट सकता है-

वार पार की कल्पना, वार पार नहीं सार।
वार पार जब ही मिटे, होय भ्रम का नाश॥
जब लग मन के भ्रम है, लगी भ्रम के ताप।
आप समाया आप में, मिटी भ्रम की ताप॥

नाथों ने नारी को माया का स्वरूप मानते हुए उसके परित्याग की बात कही है। माया के लिए स्त्री का प्रतीक रूप में प्रयोग इस की पुष्टि करता है। वे माया को सर्पणी के समान त्रिभुवन को डसने वाली निरन्तर फैलने वाली बेल , बिना दाँत के ही संसार को खाने वाली भग-राकसि तथा बाघिनी आदि रूपकों द्वारा अभिव्यक्त करते हैं और उस पर नियंत्रण बनाये रखने की शिक्षा देते है।

त्रिया से संगम करे, और त्रिया मे रहे आस।
किरोड़ जन्म छुटे नहीं, नर्क कुण्ड को बास॥

'काया में माया बसै रे ज्यों चकमक में आग' का आह्वान करते हुए नाथ काया में माया का निवास सिद्ध करके 'अभिअंतरि की त्यागै माया' द्वारा माया के परित्याग का संदेश प्रेषित करते है। संत दुर्बलनाथ कहते हैं-

काया माया रूप का, लगा हुआ एक ठाम।
'दुर्बलनाथ' आधीन है, नहीं नाम नहीं गाम॥

और मोह, ममता आदि माया के लक्षण बताते हुए कहते हैं-

माया मन से ना तजी, धरा संत का रूप।
मोह ममता में फँस रहे, पड़े नर्क के कूप॥

माया का सर्वव्यापी-मिथ्या स्वरूप - निर्गुण संतों ने माया के सर्वव्यापी स्वरूप की खुल कर चर्चा की है। संत दुर्बलनाथ के अनुसार-

जती सती और सूरमा, मायाधारी जाना माया का घाटा नहीं, जिनके द्रव्य निधान॥

सभी को अपने में आबद्ध करने वाली माया के सर्वव्यापी स्वरूप को उजागर करते हुए कबीर ने कहा है कि यह माया चाहने पर भी छोड़ी नहीं जाती भला कैसे छूटे ? यह तो जल, थल, आकाश, आदर, मान-सम्मान, जप-तप, माता-पिता, स्त्री-पुरूष, पुत्र-पुत्री आदि सब में व्याप्त है। यथा -

माया तजूं तजी नही जाइ।/फिर फिर माया मोहि लपटाइ।
माया आदर माया मानं, माया नहीं तहां ब्रह्म गियान।
माया रस माया कर जान, माया कारनि तजै पराण।
माया जग तप माया जोग, माया बाँधे सबही लोग।
माया जल थलि माया आकाश, माया व्यापि रही चहुँ पास।
माया माता माया पिता, अति माया अस्तरी सुता।

माया मारि करै व्यवहार कहै कबीर मेरे राम अधार।निर्गुण संतों ने माया को संकेतों, प्रतीकों तथा रूपकों द्वारा भी अपने काव्य में निरूपित किया है। संत कबीर माया को ऐसी विचित्र बेल की उपमा देते हुए कहते है कि जो सत्, रज, तम गुणों से युक्त है। यदि इसे काटा जाए तो यह फैलती है और सींचा जाएं तो कुम्हलाती है। संतों ने माया का विविध स्वरूपों में निरूपण करने के साथ ही इससे मुक्ति का मार्ग भी सुझाया है। 'हरि हृदय एक ग्यान उपाय, ताथै छूटिगई सबमाया' कहकर के माया निवारण का एक उपाय ब्रह्म ज्ञान को बताते है। संत दुर्बलनाथ कहते हैं-

मनोकामना, माया भारी, जामे डूबी सब संसारी।
इनका बचना दुर्लभ है, सो बचे सो हर का होय।
भव सागर पीछा दिया, करो नाम परतीत।/'दुर्बलनाथ' सत में कहे, रहो नाम लो लीन॥

माया विषयक सम्यक् निरूपण के उपरांत स्पष्ट होता है कि संत दुर्बलनाथ ने नाथों के माया संबंधी विचारों को आत्मसात किया, किन्तु मौलिकता के प्रति सचेत रहते हुए, उन्होंने इसमें नवीन तथ्यों को समाहित कर माया विषयक चिंतन को नूतन आयाम भी प्रदान किये हैं।

*****

सन्दर्भ :-

1. अनुभव आतम प्रकाश, संत श्री दुर्बल नाथ (1986) पृ. 4
2. अनुभव आतम प्रकाश, संत श्री दुर्बल नाथ (1986) पृ. 24
3. 'सूण णिरंजण परमपउ' - दोहा कोश, राहुल सांकृत्यायन दोहा संख्या 138, पृ. 36
4. वही दोहा संख्या 141, पृ. 36
5. गोरखबाणी, पीताम्बर दत्त बड़थवाल, पृ. 157
6. गोरखबाणी, पीताम्बर दत्त बड़थवाल, पृ. 39
7. अनुभव आतम प्रकाश, संत श्री दुर्बल नाथ (1986) पृ. 1
8. हिन्दी काव्य धारा, राहुल सांकृत्यायन, पृ. 169
9. गोरखबाणी, पीताम्बर दत्त बड़थवाल, पृ. 116
10. गोरखबाणी, पीताम्बर दत्त बड़थवाल, पृ. 8
11. अनुभव आतम प्रकाश, संत श्री दुर्बल नाथ (1986) पृ. 218
12. अनुभव आतम प्रकाश, संत श्री दुर्बल नाथ (1986) पृ. 36
13. गोरखबाणी, पीताम्बर दत्त बड़थवाल, पृ. 158
14. गोरखबाणी, पीताम्बर दत्त बड़थवाल, पृ. 2
15. अनुभव आतम प्रकाश, संत श्री दुर्बल नाथ (1986) पृ. 43
16. अनुभव आतम प्रकाश, संत श्री दुर्बल नाथ (1986) पृ. 52
17. वही, पृ. 79
18. अनुभव आतम प्रकाश, संत श्री दुर्बल नाथ (1986) पृ. 43
19. अनुभव आतम प्रकाश, संत श्री दुर्बल नाथ (1986) पृ. 230
20. अनुभव आतम प्रकाश, संत श्री दुर्बल नाथ (1986) पृ. 3
21. अनुभव आतम प्रकाश, संत श्री दुर्बल नाथ (1986) पृ. 82
22. कबीर ग्रन्थावली, श्यामसुन्दरदास, पृ. 198
23. अनुभव आतम प्रकाश, संत श्री दुर्बल नाथ (1986) पृ. 39
24. सिद्ध साहित्य, धर्मवीर भारती, पृ. 135
25. अनुभव आतम प्रकाश, संत श्री दुर्बल नाथ (1986) पृ. 214
26. अनुभव आतम प्रकाश, संत श्री दुर्बल नाथ (1986) पृ. 222
27. अनुभव आतम प्रकाश, संत श्री दुर्बल नाथ (1986) पृ. 79
28. अनुभव आतम प्रकाश, संत श्री दुर्बल नाथ (1986) पृ. 78
29. अनुभव आतम प्रकाश, संत श्री दुर्बल नाथ (1986) पृ. 54
30. अनुभव आतम प्रकाश, संत श्री दुर्बल नाथ (1986) पृ. 43
31. कबीर ग्रन्थावली, श्यामसुन्दरदास, पृ. 48
32. अनुभव आतम प्रकाश, संत श्री दुर्बल नाथ (1986) पृ. 89
33. भारतीय दर्शन शब्दकोश, डॉ. एन. एस. महला, पृ. 205
34. भारतीय दर्शन-2, डॉ. राधाकृष्णन, पृ. 498
35. अनुभव आतम प्रकाश, संत श्री दुर्बल नाथ (1986) पृ. 223
36. अनुभव आतम प्रकाश, संत श्री दुर्बल नाथ (1986) पृ. 222
37. अनुभव आतम प्रकाश, संत श्री दुर्बल नाथ (1986) पृ. 215
38. अनुभव आतम प्रकाश, संत श्री दुर्बल नाथ (1986) पृ. 186
39. अनुभव आतम प्रकाश, संत श्री दुर्बल नाथ (1986) पृ. 189
40. अनुभव आतम प्रकाश, संत श्री दुर्बल नाथ (1986) पृ. 312
41. कबीर ग्रन्थावली, श्यामसुन्दरदास, पृ. 114
42. अनुभव आतम प्रकाश, संत श्री दुर्बल नाथ (1986) पृ. 221

गुरु नानक वाणी का वैश्विक वितान

डॉ. अनीश कुमार
सहायक प्रवक्ता हिंदी विभाग
जी. एम. एन. कॉलेज, अंबाला छावनी

इक ओंकार की ध्वनि से समस्त वाङ्मय, भूमंडल, अखिल ब्रह्माण्ड क्षिति, सम्पूर्ण दिशाओं को धन्य करने वाले परम विवेकी, अत्याधिक सौम्य संत गुरु नानक देव जी ने अपनी दिव्य एवं पीयूष वर्षी वाणी के द्वारा मनुष्य के मनुष्यत्व, उसके अंतःकरण के बुद्धत्व को जागृत करने का प्रयास किया। गुरु नानक वाणी के एक - एक शब्द अपने अर्थ में समस्त चेतना को समाहित किए हुए है। युगों-युगों से गुरु वाणी शुष्क एवं क्लांत चित्त को रस-विभोर एवं आह्लादित करती आ रही है। गुरु नानक जी ने केवल उपदेशों के दस्तावेज हम मरणधर्माप्राणियों को नहीं दिए ,प्रत्युत अपने व्यवहार द्वारा कर्म द्वारा करनी के द्वारा उसे प्रमाणित भी किया। गुरु वाणी एक ऐसा प्रकाश पुंज है, जिसके अध्ययन मात्र से जीव इस जागतिक प्रपंचों से परिचित होता है,सचेत होता है, सजग होता है, जिस प्रकार क्लांत एवं विश्रांत पथिक तरुओं की छाया के नीचे शांति पाता है, सुख का अनुभव करता है, उसी प्रकार गुरु वाणी से इस जगत के त्रय-ताप से उद्वेलित व्यक्ति मन परम आनंद एवं सुख का अनुभव करता है। मन परचढ़ा ईर्ष्या, असूया, अमर्ष जैसे भयावह ज्वर तिरोहित होने लगता है, पार्थिव विवक्षाओं एवं ऐषणाओं का दोहन होनेलगता है, व्यक्ति अपने स्वरूप में विराजता है, समता के उद्घोषक, परदुःखकातरता के गायकप्रेम के पोषक धर्म के मर्मज्ञ, विश्वबंधुत्व के संवाहक, सार्थक यायावर, सौहार्द के उन्नायक,मिथ्याडम्बरों के भंजक, युग पुरुष युग - नियंता, युग प्रवत्तक गुरु नानक बीजों के बीजत्व में, कण-कण के कणत्व में, जड़ संगम पदार्था में, समस्त दृश्यमान जगत् में एक चिन्मय सत्ता,एक जोत, एक तत्त्व, एक बिंदु का दर्शन करने वाले गुरुनानक देव जी की वाणी आत्मनिरीक्षण, आत्म शोधन, आत्म मंथन करने की सार्थक औषधि है। जापक जब गुरु मंत्रों को शुद्ध एवं केन्द्रित एवं अक्षत मन से उच्चरित करने बैठते हैं, तो एक अलौकिक एवं अनिर्वचनीय अनहद नाद, एक अनुपम गूंज एक अद्वितीय संसार, उस के भीतर घटित होता है। वह राग एवं विराग की रेखाओं को तोड़ता हुआ अनुराग की अवस्था पर स्वयं को पहुंचा हुआ पाता है, गुरुनानक देव का आविर्भाव निश्चित रूप से इस त्रस्त वसुंधरा, दमित लोगों के लिए मंगलकारी था। लोक चेतना से अनुप्राणित इनका साहित्य मात्र उत्तर भारत में ही नहीं, अपितु विदेशों में भी अपनी छटा प्रकीर्ण कर रहा है। गुरु नानक नेअपनी वाणी में सामाजिक विचारों एवं जनमानसकी आवाज को निर्भीक किन्तु विनम्र भाव सेमुखरित किया। मूर्धन्य साधक महान् दार्शनिक,समाज सुधारक, विचारक एवं चिंतक गुरुनानक देव जी जीव को अपनी ओजस्वी एवं तेजस्वीवाणी के द्वारा निर्दवन्द्व, निर्बोझ, निर्विकार,निर्भार एवं निर्मल कर दिया। आज यद्यपि व्यक्तिमानसिक कष्ट भोग रहा है, जिन दुर्बलताओं के समाधान में असमर्थ है, उसका कारण एक ही हैकि व्यक्ति गुरमुखी होने की अपेक्षा अंतर्मुखी हो गया। तुलसीदास ने भी मानस में बालकांड में सर्वप्रथम गुरु का वंदन किया,यह प्रमाणित सत्य है कि बिना गुरु के व्यक्ति, बिना मार्गदर्शनके व्यक्ति जर्जर पत्ते के समान दिग्भ्रमित हो, यहाँ-वहाँ भटकता है। गुरु पथ भी देते हैं, दृष्टि भी और प्रकाश भी।गुरु नानक देव जी ने भी अपनी वाणी में गुरु को सभी शक्तियों, सभी पदार्थों,सभी ऐश्वर्यों से उच्च बताया। गुरु के सान्निध्य बिना गुरु प्रदत्त सिद्धांतों पर चले बिना उस तत्त्व के दर्शन नहीं हो सकते, गुरु व्यक्ति के चित्त में विवेक जागृत करते हैं, उस ज्ञात सत्ता के प्रति प्यास पैदा करते हैं, गुरु जगत् की मृगमरीचिका से जीव को अवगत कराते हैं, वह अपने शिष्य को यथार्थ का दर्शन करवा माया के विभिन्न रूपों, माया की विकरालता,माया का प्रभाव,माया का परिणाम आदि दुष्प्रवृत्तियों से परिचित करवा साधक को उस दिव्यसत्ता के साथजोड़ते हैं। अपने महनीय ग्रन्थ 'आसा की वार में गुरु नानक गुरु महिमा का प्रस्तुतीकरण करते हैं कि गुरु के नैकट्य बिना जीव शून्य है, उसका वजूद नगण्य हैं, उसकी अस्मिता निरर्थक है-

"बिनु सतीगुरु किनै न पाइओ बिनु सतिगुरु किनै न पाइआ।
सतिगुरु विचु आपु रखिओनु करि परगटु आखि सुणाइआ।।
सतिगुरु मिलिऐ सदा मुकतु है जिनि विचहु मोह चूकाइया।
उत्तम एहू बीचारू है जिनी सचे सिउ चितु लाइया।/जगजीवनु दाता पाइया"1

आज स्वार्थों के लिए, अपने हितों को साधने के लिए प्रकृति का दोहन हो रहा है। बड़ी-बड़ी अट्टाकालियों, भवनों, स्मारकों, महामहालयों सदनों का निर्माण त्वरित गति से हो रहा है ।नदियों, जलाशयों, पोखरों को दूषित कर दुस्साध्य रोगों का बीजारोपण किया जा रहा है। स्वयं को साधन सम्पन्न बनाने के लिए, मनुष्य ने प्रकृति की उपादेयता को पायदान पर मान प्रकृति की सौम्यता को गिद्ध हाथों से नोचा। आज पूरा विश्व प्रकृति की प्रतिकूलता से त्रस्त है, इसका कारण हम स्वयं हैं। इस संकट का आह्वान स्वयं हमने किया प्रकृति के नैसर्गिक रूप को छेड़ कर हमने विकराल बाढ़ों, भयावह अतिवृष्टि, अनावृष्टि, सूखा, शुष्कता,भू-प्रकम्पन को निमंत्रण दिया। गुरुनानक वाणी में यह सत्य उद्घाटित किया गया है किप्रकृति के साथ मानवीय संबंधों को स्थापित किया जाना चाहिए। जैसे एक परिवार के सदस्य आपस में स्वार्थ के धरातल पर नहीं प्रेम के धरातल पर सम्बंधित होते हैं वैसे ही प्रकृति के साथ व्यक्तिको संबंधों को निर्मित करउसके प्रति कृतज्ञ होना चाहिए। 'जपुजी' साहिब में गुरुनानक देव जीने इन उदात्त संबंधों की परिकल्पना की है। वायु को गुरु, पानी को पिता एवं धरा को माँ की संज्ञा दी ताकि हम प्रकृतिके प्रत्येक घटक के प्रति आदरणीय भाव रखें,उसकी रक्षा हेतु आबद्ध हों, प्रकृति की शाश्वता को बनाये रखने के लिए प्रतिबद्ध हो, प्रकृति के सौष्ठव एवं चारूत्व को बचाए रखने के लिए सम्बद्ध हो जाए। गुरु नानक देव जीकी वाणी इस तथ्य की पुष्टि करती है-

"पवणु गुरु पाणी पिता माता धरति महतु।/दिवसु राति दुइ दाई दाइआ खेलै
सगल जगतु।/चंगिआईआ बुरिआईआ वाचौ धरमु हदूरि
करमी आपो आपणी के नेड़े के दूरि।"2

गुरु नानक वाणी में हउमै(अहंकार) पर विस्तृत चर्चा है। गुरु वाणी साधक को सहजता के मार्गकी ओर प्रवृत करती है। आज अहंकारों के पोषण के लिए कर्मकांड, दान, यज्ञ,बड़ी-बड़ी कथाओं का आयोजन किया जा रहा है। मेरे ऐश्वर्य, मेरे वैभव, सम्पन्नता, मेरे भवनों से जगत परिचित हो इस कुटिल भावना से बड़े-बड़े धार्मिक समारोहों का आयोजन किया जारहा है। मैं समाज में प्रतिष्ठित हो जाऊं, मेरी संपत्ति के चर्चे हर व्यक्ति के मुख पर हो, आजव्यक्ति इसी ग्रंथि से पीड़ितहै। गुरु नानक वाणी हमें इस घृणित वृत्ति से ऊपर उठाती है।गुरु नानक देव जी ने उदबाहु घोषकिया है कि यदि हमारा कोई भी संकल्प, कर्म, समर्पण,अहंकार से प्रेरित है तो उन संकल्पों गरिमा शून्य है। व्यक्ति को सहज हो, निर्व्याज रूप से,निस्वार्थ रूप से कर्म की साधना में रत होना चाहिए। गुरु नानक देव जी ने इस जगत को स्वाभाविक एवं विवेकी होने की दृष्टि प्रदान की-

"लख नेकीआ चंगिआईआ लख पुंना परवाणु
लखतब उपरि तीरथा सहज जोग बेबाण।।
लख सूरतण सगराम रण महि छुटहि पराण
लख सूरती, लख गिआन विआन पड़ीअहि पाठ पुराण।
नानक मति मिथिआ करमु सचा नीसाणु"3

अपरिमित सम्पत्ति, वैभव, साधनों, ज्ञान के स्वामी होने पर भी व्यक्ति को अपनी स्वाभाविकतानहीं छोड़नी चाहिए। भले ही आप कितने भी सुन्दर हो, भले ही समाज, जाति अथवा देश मेंआपका कितना भी सम्मान हो, कितने भी आप लोकप्रियता के शिखरों पर हों। किन्तु आपसहज बने रहें, गुरु वाणी इस शुद्ध बुद्ध भाव का समर्थन एवं वकालत करती है। गुरु नानकदेवजी ने उन तमाम अंधविश्वासों एवं मिथ्याडम्बरों की आलोचना की, जो व्यक्ति को गुमराह करतेहैं। समाज में प्रचलित सारहीन एवं जर्जर प्रथाओं को अपनी वाणी के द्वारा निरस्तकिया।गुरु जी ने समाज में प्रचलित 'सूतक' आदि परम्परा की नयी एवं सार्थक व्याख्या प्रस्तुत की।गुरुवाणी धार्मिक प्रक्रियाओं के द्वंद्वों में जकड़े फंसे जीव को सहजता की ओरप्रवृत करती है।गुरु नानक देव जी कहते हैं कि सूतक केवल भ्रम है, व्यक्ति केवल भयभीत होकर इन कर्मकांडों का अनुसरण करता है। अपनी वाणी में गुरु जी ने इन तथ्यों का समर्थनकिया कि व्यक्ति की अपरामेय ऐषणाएँ उसके मन का सूतक है। मिथ्या भाषण जिह्वा का सूतक है।

परधन एवं परस्त्रीको पाने की ललक नेत्रों का सूतक है। दूसरे लोगों की निंदाकरना या सुनना कानों का सूतक है।यानी गुरु वाणी प्रचलित पारंपरिक सूतक को शून्य मान्यआंतरिक दुर्गुणों रुपी सूतक कोभर्त्सना करती है-

"जेकरि सुतकु मनीऐ सम से सूतकु होइ ।/गोहे अते लकड़ी अंदरि कीड़ा होइ। मन का सूतकु लोभु है जिह्वा सूतकु कूड़ा।/अखी सूतकु देखणा परतृअ परधन रूप ।।/कनी सूतकु कनि पै लाइत बारी आहि।

सभी सूतक भरमु है दूजे लगे जाइ।।/जमण मरणा हुक्म है भागे आये जाई ।"4

इस प्रकार गुरु जी ने साधना के बाह्य पक्षों को गौण मान आंतरिक शुचिता का समर्थन किया।गुरु नानक वाणी में स्त्री के सभी रूपों का वंदन मिलता है। तद-युगीन समाज में प्रचलित सम्प्रदाय स्त्री को योग साधना में बाधक मानते थे, उसे त्याज्य मान उसके प्रति अस्पृश्य भावरखते थे। स्त्री के औदात्य रूप को उपेक्षित कर उसे मात्र घृणित वस्तु माना गया। लेकिन

"मंदि जमिओ भैंदि निमीजै मंदि मंगणु पिआह
भंडडु होवै दोस्ती भंडहु चलै राह मदु मुआ मंदु मालीऔ मँदि हो वे धा
सो कि मंदा आखीजै जितु जमहिं राजानु।।"5

गुरु जी की वाणी वैश्विक बंधुत्व की संवाहक है। नानक वाणी में जातिविहीन, वर्ग-भेद हीनसमाज की प्रकल्पना प्रस्तुत हुई है। जातिगत वैषम्य ने सारे विश्व को संकीर्ण दायरे में सीमित किया। प्रत्येक जीव में उस परम सत्ता के दर्शन करने वाले हम मनुष्यों ने जाति के भेद को स्वीकारा। अपनी जाति को श्रेष्ठ एवं दूसरे की जाति को हीन समझ हमने शोषण के नएढंगों को ईजाद किया। जाति का दंभ भरने वाले लोगों ने एक देश की सुदृढ़ संकल्पना को छिन्न–भिन्नकिया। नानक कहते हैं- व्यक्ति को पुरुषार्थी होना चाहिए। कर्मठता उसका अलौकिक आभूषण होना चाहिए। जातिगत वैमनस्य की इस अनौचित्य में न पड़ व्यक्ति को सहज हो मानव मात्र के प्रकर्ष के लिए तत्पर रहना चाहिए। गुरु जी लिखते हैं-

"जाति जनमु मह पूछी।/सच घर लेहु बताइ।।/सा जाति सा पति है।/जेहे करम कमाई।।"6

गुरु नानक देव जी ने अपनी वाणी में स्पष्ट किया है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने द्वारा कियेगएकर्म का प्रतिफल अवश्य भोगना पड़ता है। उसके द्वारा किया गया अन्याय, अपराध, कुकृत्यउसके समक्ष अवश्य आता है। आप किसी भी गौत्र के हों, आपके चेहरे पर चाहे कितनी भी आभाहो, आप भले ही दसों दिशाओं के स्वामी हों किन्तु आपके द्वारा की गई क्रिया की प्रतिक्रिया अवश्य हो, इसलिए गुरु नानक वाणी में व्यक्ति को निकृष्ट कर्मों से सावधान रहनेकी भी चुनौतीदी गई है ताकि व्यक्ति को दुर्गुणों, दुर्बलताओं के कारण बाद में पछताना नपड़े। गुरु जी कहते हैं-

"कपड़ु, रूपु सुहावणा छड़ि दुनिआ अदरि जावणा।।/मंदा चंगा आपणा आपे हि कीता पावणा।।/हुकमु कीए मनि भायदे राहि भीडै अगे जावणा।।
नंगा दोजकि चालिआ ता दिसै खरा ठरावणा।।
करि अउगुण पछोतावणा।।"7

नानक देव जी की दिव्य एवं भव्य वाणी जन मानस के अंतःकरण के कालुष्य का परिक्षालन कर उसे देवत्व भाव के साथ संश्लिष्ट करती है, समानता, विनम्रता परदुःखकातरता, सहजता, करुणा,मानवीय संवेदनाएं नानक साहित्य का प्रबल औदात्य है। चित्त में उठने वाले आवेग और आवेशों को नियंत्रण करने का प्रभावी लेप है नानक साहित्य नानक साहित्य कीशरण एवं आश्रयव्यक्तिको ऐसी अवस्था तक पहुँचाता है जहाँ सभी भेद- विभेद के तल सेऊपर उठ मनुष्यत्व को प्राप्त होता है।

*****

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

1. प्रो. वोहरा, आशानन्द, आसा दी वार (एक सांस्कृतिक अध्ययन), जैन बुक डिपो रोहतक, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 20
2. डॉ. अग्रवाल, चमनलाल, नानक वाणी का भाषायी तथा दार्शनिक निरूपण अग्रवाल प्रकाशन नयी दिल्ली प्रथम संस्करण, पृष्ठ 92
3. डॉ. मिश्र, जयराम, श्री गुरु ग्रन्थ-दर्शन, साहित्य भवन इलाहबाद, प्रथम संस्करण ,पृष्ट -128
4. सिद्धान्तालंकार, नारायणदत्त, गुरु नानक जीवन और दर्शन, नवभारती सहकार प्रकाशन : दिल्ली संस्करण 1970, पृष्ठ 153
5. डॉ. वधान, अमरसिंह, प्रकाश पुंज गुरु नानक देव, अभिषेक प्रकाशन दिल्ली, संस्करण पृष्ठ 97
6. पूर्ववत् पृष्ठ 142
7. प्रो. वोहरा, आशानन्द, आसा दी वार (एक सांस्कृतिक अध्ययन), जैन बुक डिपो रोहतक, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 37

चार आर्य सत्य क्या है?

भगवान बुद्ध द्वारा उद्घाटित 'सत्य' को 'आर्य सत्य' के नाम से जाना जाता है। यहाँ आर्य का अर्थ 'श्रेष्ठ' है। अर्थात् बुद्ध के चार सिद्धांत जीवन के 'श्रेष्ठ सत्य' हैं। इसका यह अर्थ भी माना जाता है कि ये 'सत्य' आर्य(श्रेष्ठ) पुरुष द्वारा उपदिष्ट हैं। बौद्ध-काल में 'आर्य' शब्द किसी जाति का सम्बोधन नहीं करते हुए शालीनता और सभ्यता के प्रतीक धे और इसीलिए भगवान बुद्ध के प्रमुख सूत्रों को 'चार आर्य सत्य' के नाम से प्रसिद्धि मिली।

प्रथम आर्य सत्य : दुःख है

भगवान बुद्ध ने अपने जीवन के प्रत्यक्ष बहाव और निज-अनुभव के आधार पर प्रथम आर्य सत्य की उद्घोषणा यह की कि यदि हम जीवन के बाह्य स्वरूप में उलझे हुए हैं तो वहाँ मात्र दुःख ही है। जन्म, ज़रा, मृत्यु, चिंता, संताप, व्यग्रता, कष्ट, प्रिय का वियोग और अप्रिय का संयोग — ये सभी दुःख के प्रकार हैं। चाहे ढाई हज़ार वर्ष पहले का समय हो या अभी, परंतु इन सभी मन:स्थितियों से मनुष्य तब भी जूझ रहा था और आज भी इनसे दूर रहने की हर नाकाम कोशिश कर रहा है। भगवान बुद्ध के बताए मार्ग पर चलने के लिए प्रथम निर्णय अनिवार्य है कि जीवन में दुःख है और हमारी सभी कोशिशें वर्तमान और भविष्य में दुःख से दूर रहने की ही हैं।

दूसरा आर्य सत्य : दुःख का कारण है

यहीं से भगवान बुद्ध के विज्ञान पूर्ण बोध का आरम्भ होता है। यदि जीवन में दुःख का प्रत्यक्ष अनुभव है तो अवश्य ही इस दुःख का कोई कारण भी होना चाहिए। और यहीं से भगवान बुद्ध के दूसरे आर्य सत्य को मानने वाले लोगों का दो प्रमुख बहदों में विभाजन हो जाता है। जो मनुष्य दुःख का कारण स्वयं के बाहर मानते हैं यानि वस्तु, व्यक्ति, स्थिति, कर्म आदि को दुःख का कारण मानते हैं वे सभी मनुष्य अभी संसारी ही हैं परंतु जो इस दुःख का कारण स्वयं के भीतर मानते हैं जैसे कि स्वयं की मान्यता, स्वरूप का अज्ञान, अविद्या आदि — तो वे सभी मनुष्य 'साधक' हैं। मनुष्य को वर्षों के सत्संग और सगुरु के बोध के पश्चात् यह निश्चय हो पाता है कि दुःख का कारण बाहर नहीं, स्वयं के भीतर है। जब तक मनुष्य को यह निश्चय नहीं होता तब तक दुःख-निवृत्ति के सभी प्रयास निष्फल ही रहते हैं।

तीसरा आर्य सत्य : दुःख के कारण का निवारण है

दुःख के कारण का यथार्थ निर्णय हो जाने के पश्चात् अब साधक आगे की यात्रा में प्रवेश करता है जहाँ किसी सद्गुरू से मिलने पर उसे दृढ़ निर्णय होता है कि दुःख के आंतरिक कारणों का निवारण किया जा सकता है। यदि यह विश्वास ही न हो तो साधक द्वारा की हुई सभी साधना व्यर्थ है। इसलिए भगवान बुद्ध ने तीसरे आर्य सत्य में 'श्रद्धा' को प्रधान स्थान दिया। साधक में जब तक मार्गदर्शक और मार्ग के प्रति सम्पूर्ण निष्ठा नहीं आती तब तक दुःख से निवृत्ति संभाव नहीं है।

चौथा आर्य सत्य : दुःख निवारण का मार्ग है

किसी भी क्षेत्र और काल में जब सम्यक् संबुद्ध चेतना पर श्रद्धा की दृढ़ भूमिका बनती है तो वहीं से मार्ग का शुभारम्भ होता है। भगवान बुद्ध के समय में इसे 'अष्टांग मार्ग'(Eight Fold Path) के नाम से जाना गया। वैसे इस मार्ग को बुद्ध के 'त्रिरत्न' के नाम से भी पहचाना जाता है परंतु प्रज्ञा, शील और ध्यान के इन्हीं त्रिरत्न का विस्तार है अष्टांग मार्ग। यह अष्टांग मार्ग मनुष्य को दोनों प्रकार की अति में नहीं जाने के लिए सावधान करता है इसलिए इसे 'मध्यम-मार्ग' भी कहा जाता है। सामान्यतः मनुष्य या तो अति-भोग में प्रवृत्त रहता है या फिर अति-त्याग में उलझ जाता है। भगवान बुद्ध ने कहा कि मार्ग दोनों ही अतियों में नहीं है परंतु 'मध्य' में है। इस 'मध्य' का निर्णय साधक ठीक से ले सके उसके लिए बुद्ध ने 'अष्टांग मार्ग' का उपदेश दिया। ये अष्टांग मार्ग इस चित्र में आलेखित है -

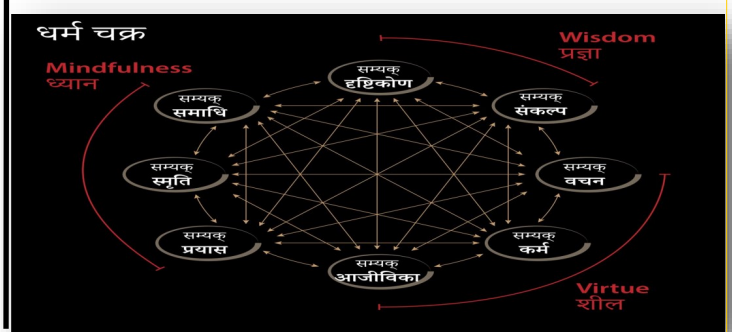

जनसंख्या वृद्धि : संसाधन या बोझ

अमित कुमार सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर - समाजशास्त्र
गोस्वामी तुलसीदास राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
कर्वी , चित्रकूट

सारांश – वर्तमान में मानव पृथ्वी तल पर अपूर्व वेग से परिवर्तन करने वाला एक महत्वपूर्ण और शक्तिशाली भौगोलिक कारक है। मानव इतिहास के प्रारंभिक चरण और प्रागैतिहासिक काल में मानव जनसंख्या की वृद्धि धीमी गति से हुई। कृषि क्रांति और औद्योगिक क्रांति दो ऐसे अवसर रहे जब जनसंख्या में तीव्रता से वृद्धि हुई। वर्तमान विश्व की समस्या यह है कि कितनी जनसंख्या को जनाधिक्य कहा जाए इसकी व्याख्या कठिन है। जनसंख्या वृद्धि की दर को भारत में 1952 से लागू परिवार नियोजन कार्यक्रम भी नियंत्रित करने असफल सिद्ध हुआ है जो वर्तमान में अबाध गति से जारी है। जनसंख्या वृद्धि से होने वाली समस्याओं में प्रमुख रूप से बेरोजगारी, गरीबी, स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं ,अशिक्षा, नैतिक मूल्यों का पतन, अपराध में वृद्धि ,प्राकृतिक संसाधनों का अतिशय दोहन ,बढ़ता पर्यावरण प्रदूषण ,ओजोन परत का क्षरण, भूमंडलीय तापन का बढ़ना इत्यादि हैं। बेहतर शिक्षा, स्वास्थ्य व रोजगार के अवसर मानव को एक संसाधन बनाते हैं। मानव ने ही प्राकृतिक साधनों को संसाधन में बदलने का कार्य किया है। किसी भी अर्थव्यवस्था में वहां की आबादी का बड़ा योगदान रहता है, युवा कार्यबल है जिसके दम पर आर्थिक गतिविधियां आगे बढ़ती है। भारत की आबादी भी यहां की ताकत है अर्थव्यवस्था में जनसंख्या की भूमिका की चर्चा होती है तो एक शब्द सामने आता है,"जनसांख्यिकी लाभांश"। जो की अर्थव्यवस्था में मानव संसाधन की सकारात्मक और सतत विकास को दर्शाता है।

मुख्य शब्द - जनसंख्या वृद्धि, प्राकृतिक संसाधन, औद्योगिक क्रांति, अर्थव्यवस्था, असमान वितरण ,कार्यशील जनसंख्या, जनसांख्यिकी लाभांश, कौशल विकास।

मुख्य अंश - जनसंख्या संबंधी सूचनाएं प्राचीन काल से ही एकत्र की जाती रही हैं किंतु उनका सांख्यिकीय विश्लेषण बीसवीं सदी की देन है । प्रारंभ में जनसंख्या संबंधी अध्ययन केवल जनगणना तक ही सीमित थे ।किंतु वर्तमान समय में जनसंख्या का तथ्यसिद्ध, सांख्यिकी एवं गणितीय विश्लेषण किया जाने लगा है । जनसंख्या की समस्या ने प्राचीन काल से ही सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतकों का ध्यान आकर्षित किया और उन्होंने इसके संबंध में अपने –अपने मत भी व्यक्त किए ।किन्तु देश, काल और परिस्थिति के अनुसार कोई सार्वभौमिक समाधान प्रस्तुत करने में असफल रहे । वर्तमान में मानव पृथ्वी तल पर अपूर्व वेग से परिवर्तन करने वाला एक महत्वपूर्ण और शक्तिशाली भौगोलिक कारक है । मानव की वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक उपलब्धियां भौचक्का कर देने वाली हैं, अब कुछ भी उसकी पहुंच से बाहर नहीं है। मानव इतिहास के प्रारंभिक चरण और प्रागैतिहासिक काल में मानव जनसंख्या की वृद्धि धीमी गति से हुई। कृषि क्रांति और औद्योगिक क्रांति दो ऐसे अवसर रहे जब जनसंख्या में तीव्रता से वृद्धि हुई। प्रारंभ में निश्चित ही जनसंख्या सीमित थी तथा उपयुक्त पर्यावरणीय क्षेत्रों में निवास करती थी। पर जनसंख्या की क्रमिक वृद्धि आज ऐसे बिंदु पर पहुंच गई है कि भारत समेत कई राष्ट्रों की चिंता का कारण बन गई है। जहां अनुकूल पर्यावरण होता है वही जनसंख्या का केंद्रीकरण होने लगता है ।कई बार सामान्य प्रकार के पर्यावरण में असमान जनसंख्या का दबाव देखा गया है। वर्तमान विश्व की समस्या यह है कि कितनी जनसंख्या को जनाधिक्य कहा जाए इसकी व्याख्या कठिन है। लेकिन इसका सही मूल्यांकन पर्यावरण की उच्च क्षमता से ही लगाया जा सकता है । अधिक जनसंख्या पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है । भारत एक विशाल जनसंख्या वाला राष्ट्र है। जनसंख्या वृद्धि की दर को भारत में 1952 से लागू परिवार नियोजन कार्यक्रम भी नियंत्रित करने असफल सिद्ध हुआ है जो वर्तमान में अबाध गति से जारी है । जनसंख्या की निरंतर वृद्धि के कारण शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास एवं रोजगार जैसी सुविधाओं में निरंतर कमी आती जा रही है । जहां एक ओर जनसंख्या बढ़ने से श्रम शक्ति में वृद्धि होती है, वहीं दूसरी ओर रोजगार के अवसर उस अनुपात में न बढ़ पाने से बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न होती है। रजनसंख्या वृद्धि से होने वाली समस्याएं विश्व में अन्य देशों की अपेक्षा भारत में अधिक हैं। क्योंकि भारत में जनसंख्या वृद्धि दर की गति अन्य देशों की तुलना में तीव्र है। भारत की जनसंख्या जितनी तीव्र गति से बढ़ रही है ,व्यक्तियों का जीवन स्तर एवं रोजगार के अवसर उतनी ही तेजी से क्षरण की ओर है । भारत जैसे विकासशील राष्ट्र के लिए यह संभव ही नहीं है कि वह इतनी तीव्र गति से बढ़ती हुई सम्पूर्ण जनसंख्या को रोजगार के समुचित अवसर मुहैया करा सके। संसाधनों पर बढ़ता दबाव तथा अवसरों की घटती संख्या बेरोजगारी, बेकारी और निर्धनता को जन्म दे रही है। जनसंख्या वृद्धि से होने वाली समस्याओं में प्रमुख रूप से बेरोजगारी, गरीबी, स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं ,अशिक्षा, नैतिक मूल्यों का पतन, अपराध में वृद्धि ,प्राकृतिक संसाधनों का अतिशय दोहन , बढ़ता पर्यावरण प्रदूषण ,ओजोन परत का क्षरण, भूमंडलीय तापन का बढ़ना इत्यादि समस्याएं पर्यावरण को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करने के साथ मानव के सामाजिक - आर्थिक विकास को भी उस अनुपात तक अवरुद्ध कर रही हैं।

Sr. No.	Year	Total Population(in cr)	Decadal Difference	Decadal Growth Rate (%)
1.	1901	23.83	----	-----
2.	1911	25.20	1.36	+5.75
3.	1921	25.13	0.07	-0.31
4.	1931	27.89	2.76	+11.60
5.	1941	31.86	3.96	+14.22
6.	1951	36.10	4.24	+13.31
7.	1961	43.92	7.76	+21.51
8.	1971	54.81	10.89	+24.80
9.	1981	68.33	13.51	+24.66
10.	1991	84.63	16.30	+23.85
11.	2001	102.86	18.23	+21.54
12.	2011	121.08	18.18	+17.7

Source: Census of India 2011

भारत की जनसंख्या 1901 में 23.8 करोड़ थी जो 1951 में 36.10 करोड़ हो गई। इस प्रकार आजादी के पूर्व तक भारत की जनसंख्या 50 वर्षों में 12.3 करोड़ ही बढ़ी थी, जबकि अगले 50 वर्षों में (1951 से 2001 के मध्य) भारत की जनसंख्या में 66.7 करोड़ की वृद्धि हुई। 2001 में भारत की जनसंख्या 102.87 करोड़ थी, जो 2011 में बढ़कर 121.08 करोड़ हो गई। वर्तमान में भारत की जनसंख्या की दशकीय वृद्धि दर 17.7 फ़ीसदी है। बढ़ती जनसंख्या के सापेक्ष संसाधनो के दोहन पर अतिशय दबाव से मानवीय विकास प्रतिकूल रूप से प्रभावित होता है। संसाधनों के असमान क्षेत्रीय वितरण के साथ-साथ विकास के केंद्रीकरण की समस्या के कारण भी भारत के सभी प्रांतों एवं सभी क्षेत्रों में रोजगार के समान अवसर उपलब्ध नहीं होते हैं। है जिसकी वजह से जनसंख्या का एक बड़ा भाग रोजगार की तलाश में बड़े नगरों की ओर प्रवसित होता जो नगरों में जनाधिक्य को बढ़ाकर जीवन जीने की मूलभूत सुविधाओं से वंचित रहता है। वहीं दूसरी ओर शिक्षा, स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं तथा अपराधों में वृद्धि जैसी नवीन समस्याएं नगरों में जन्म लेती हैं। मनुष्य अपनी सभ्यता के आरंभ से ही प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करता रहा है उस समय जनसंख्या के कम होने तथा मनुष्य की आवश्यकताएं सीमित होने व प्रौद्योगिकी का स्तर प्रारंभिक अवस्था में होने के

कारण संसाधनों के संरक्षण की समस्या नहीं थी ।किंतु कालांतर में मनुष्य ने संसाधनों के दोहन के लिए प्रौद्योगिकी का विकास किया । प्रौद्योगिकी आविष्कार के कारण मनुष्य जीविकोपार्जन के अतिरिक्त उत्पादन के लिए बड़े पैमाने पर संसाधनों का दोहन करने लगा साथ ही जनसंख्या की निरंतर वृद्धि तथा उससे उत्पन्न मांग ने संसाधनों के दोहन की होड़ लगा दी। इस होड़ ने यह आशंका उत्पन्न कर दी है कि नवीकरणीय संसाधन एक न एक दिन समाप्त हो जाएंगे। हमारे संसाधन वर्तमान जनसंख्या के उपभोग के लिए ही नहीं है, वरन इस में आने वाली पीढ़ी का हिस्सा भी है। इसलिए जनसंख्या वृद्धि से उत्पन्न मांग एवं संसाधनों के बीच संतुलन आवश्यक है। यही संतुलन मानव जाति की निरंतरता को बनाए रखने में सफल होगा। संतुलन की यह धारणा संसाधन संरक्षण से ही संभव है संसाधनों का सतर्कता पूर्वक उपयोग करना उन्हें नवीकरण के लिए समय देना संसाधन संरक्षण है। बेहतर शिक्षा, स्वास्थ्य व रोजगार के अवसर मानव को एक संसाधन बनाते हैं ।मानव ने ही प्राकृतिक साधनों को संसाधन में बदलने का कार्य किया है। भारत जैसे विकासशील देश में अधिकतर जनसंख्या कृषि पर निर्भर है, जहां कृषि प्राय परंपरागत ढंग से कृषि के पुराने यंत्र से की जाती है। भंडारण और वित्तीय सुविधाओं के अभाव में कृषक संरचनात्मक और संस्थागत निवेश आवश्यक मात्रा में नहीं कर पाते, परिणाम स्वरूप उत्पादन कम रहता है। द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्र का विकास बढ़ती जनसंख्या के अनुपात में अपेक्षाकृत कम हुआ है। यहां अर्ध- कुशल, अकुशल और उच्च शिक्षित व्यक्तियों के लिए रोजगार के सीमित अवसर उपलब्ध हैं। परिणाम स्वरूप शिक्षित और अशिक्षित कुशल और अकुशल व्यक्ति नौकरी की खोज में दूसरे देशों को प्रवास कर जाते हैं। जो लोग प्रवास नहीं कर पाते वे नगरों में चले जाते हैं वहां भी रोजगार प्राप्त करना अत्यधिक कठिन होता है । इसके कारण नगर अधिक जनसंख्या के केंद्र बन जाते हैं , इससे वहां जीवन निर्वाह की दशाएं निम्न स्तर की पाई जाती हैं बढ़ती जनसंख्या का सबसे गंभीर प्रभाव यह है कि पृथ्वी की उत्पादन की एक सीमा है यदि संसाधनों का सजगता से प्रयोग न किया जाए और जनसंख्या का दबाव बढ़ता रहे तो अंततः संसाधनों की कमी का सामना करना पड़ता है जैसे-जैसे जनसंख्या का आकार बढ़ता है अधिक खाद्य उत्पादों की आवश्यकता होती है अधिक खाद उत्पादन के लिए अधिक अनाज और नई कृषि तकनीकों के साथ अधिक किसानों की आवश्यकता भी होती है इसलिए इस दिशा में सतत प्रयास आवश्यक है जैसे-जैसे बढ़ती जनसंख्या के कारण भूमि की मांग बढ़ती है यह बनो जैसे प्राकृतिक संसाधनों का विनाश करती है आर्थिक विकास निवेश पर निर्भर करता है बढ़ती जनसंख्या की सामाजिक चुनौतियों के लिए भी खर्च की आवश्यकता होती है ऐसे में निवेश और खर्च के बीच चुनाव मुश्किल होता है तेजी से बढ़ती जनसंख्या के कारण अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी का संकट बढ़ता है कामकाजी जनसंख्या बढ़ जाती है लेकिन उनके लिए उचित रोजगार की व्यवस्था नहीं हो पाती।

Sr. No	Year	Age Groups			Total
		0-14 Years	15-59 Years	60+ Years	
1.	1961	41	53	6	100
2.	1971	42	53	5	100
3.	1981	40	54	6	100
4.	1991	38	56	7	100
5.	2001	34	59	7	100
6.	2011	29	63	8	100
7.	2026	23	64	12	100

Source: Based on data from the Technical Group on Population Projections (1996 and 2006) of the National Commission on Population.

वर्तमान परिदृश्य में भारतीय अर्थव्यवस्था तेजी से उभरती हुई अर्थव्यवस्था के रूप में दिख रही है तथा संपूर्ण विश्व यहां संभावनाएं तलाश रहा है। परंतु भारत एक स्थाई विकास दर हासिल कर सके इसके लिए आवश्यक है कि हम अपने सभी संसाधनों का अनुकूलतम एवं सर्वश्रेष्ठ प्रयोग करें

किसी भी राष्ट्र व अर्थव्यवस्था के लिए उसके मानव संसाधन ही अत्यंत महत्वपूर्ण होते हैं हम विश्व के सबसे युवा देशों में एक हैं हमारे जनसंख्या घटक को देखा जाए तो लगभग 63 फ़ीसदी आबादी 15 से 59 वर्ष के आयु वर्ग की है ।इसके लिए हमें अपनी अकुशल और अप्रशिक्षित जनसंख्या को कुशल, प्रशिक्षित एवं दक्ष मानव संसाधन के रूप में बदलना होगा अन्यथा यह अवसर चुनौती के रूप में परिवर्तित होकर दुरूह स्थिति भी उत्पन्न कर सकता है।

किसी भी अर्थव्यवस्था में वहां की आबादी का बड़ा योगदान रहता है, युवा कार्यबल है जिसके दम पर आर्थिक गतिविधियां आगे बढ़ती है। भारत की आबादी भी यहां की ताकत है अर्थव्यवस्था में जनसंख्या की भूमिका की चर्चा होती है तो एक शब्द सामने आता है, "जनसांख्यिकी लाभांश" । जो की अर्थव्यवस्था में मानव संसाधन की सकारात्मक और सतत विकास को दर्शाता है इससे पता चलता है कि युवा और कार्यशील जनसंख्या 15 से 59 वर्ष की तुलना में आश्रित वर्ग 14 से कम और 60 से अधिक उम्र के लोग कम है। यह सत्य की जनसंख्या में युवाओं का बड़ा प्रतिशत हमारे लिए किसी वरदान से कम नहीं है ,लेकिन हमें नहीं भूलना चाहिए कि अति सर्वत्र वर्जयते । जनसंख्या का बढ़ना भी इस मामले में अपवाद नहीं है युवा हमारी अर्थव्यवस्था को आगे बढ़ाने में सहायक हो सकते हैं लेकिन सबके लिए रोजगार की व्यवस्था हो। संसाधन सीमित हैं उन पर दबाव अधिक न पड़े।

निष्कर्ष – आयु के अनुसार 21वीं शताब्दी भारत की होगी क्योंकि उसके पास सशक्त लोकतंत्र और जनसांख्यिकी लाभ जैसी 3 संपत्तियां हैं जो विश्व की किसी देश के पास नहीं है ।जनसंख्या में कामकाजी वर्ग की हिस्सेदारी ज्यादा होने से अर्थव्यवस्था में बचत और निवेश अधिक होता है। हालांकि आबादी के लाभ गिनाते समय हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि कामकाजी आबादी अपने आप फायदा नहीं पहुंचा सकती है। इसके लिए श्रम बाजार का विश्लेषण और नीतियों पर ध्यान देने की जरूरत है । इस आबादी का लाभ लेने के लिए सरकार को शिक्षा एवं स्वास्थ्य के क्षेत्र में खर्च बढ़ना होगा, यह भी जरूरी है कि देश में रोजगार कर रहे या रोजगार की तलाश कर रहे लोगों की संख्या ज्यादा बनी रहे। महामारी के दौरान बहुत से लोगों की नौकरी छूटी। इनमें से बहुत से लोगों ने निराश होकर नौकरी तलाश करना भी छोड़ दिया, यह अच्छी स्थिति नहीं है । हाल ही में आई विश्वव्यापी कोविड-19 महामारी के दौरान असंगठित क्षेत्र में काम कर रही देश की बड़ी आबादी को संगठित करने की दिशा में कुछ कदम उठाए गए। ऐसी पहल को बढ़ावा देने की जरूरत है कौशल विकास और इंफ्रास्ट्रक्चर में निवेश से देश की बड़ी आबादी का पूरा लाभ लेने में मदद मिलेगी।

******

संदर्भ सूची :-

1.दुबे श्यामाचरण- भारतीय समाज 2003, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया नई दिल्ली।
2.दोषी एस0एल0 एवं जैन पी0सी0- भारतीय समाज संरचना एवं परिवर्तन 2005, नेशनल पब्लिशिंग हाउस जयपुर।
3.श्रीनिवास एम0एन0- आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, 2005, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
4 एनसीईआरटी
5 दैनिक जागरण, दैनिक समाचार पत्र

भारतीय राष्ट्र दर्शन : पंडित दीनदयाल उपाध्याय के संदर्भ में

गुंजेश गौतम
शोध छात्र,
राजनीति विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005
Mo.09026028080

पंडित दीनदयाल उपाध्याय राष्ट्र को राजनीतिक नहीं वरन् सांस्कृतिक इकाई मानते हैं, लेकिन राजनीतिक रूप से राष्ट्रीय अखंडता के वे समर्थक हैं। उन्होंने भारतीय राष्ट्र चिंतन का कोई नया सिद्धांत नहीं दिया, अपितु उन्होंने इस देश के एक सनातन सत्य को नए युग में, नई शैली में व्यक्त भर किया था। भारतीय चिंतन में राष्ट्र की संकल्पना अति प्राचीन है। वैदिक साहित्य में राष्ट्र शब्द अपने पूर्ण विकसित अर्थ में उपलब्ध होता है। सभ्यताओं के उषा काल में, जब आज के तथाकथित विकसित राष्ट्रों में सभ्यता की किरणें भी प्रस्फुटित नहीं हुई थी, तब भारत में वैदिक ऋषियों ने राष्ट्रभाव का दर्शन किया था। यजुर्वेद कहता है- **'वयं राष्ट्रे जागृयाम।'** -(यजुर्वेद- 9/23), हमें राष्ट्र के प्रति जागरूक होना चाहिए। पुरुषसुक्त के स्वस्ति वचन में कहा गया है- **'पृथिव्यै समुद्रपर्यंताया एक राट्।'** अर्थात पृथ्वी से समुद्र तक एक ही राष्ट्र है। **'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।'** -(अथर्ववेद- 12/1/12), यह भूमि मेरी माता है और हम इस धरा के पुत्र हैं।अथर्ववेद के 'पृथ्वी सूक्त' जिसमें पृथ्वी को माता कहा गया है और इस प्रकार राष्ट्र को मां की तरह पूजनीया मानते हुए उनके साथ अपना नाता पुत्र का रखा गया। ऋषियों द्वारा इन वेद मंत्रों में धरती के एक विशेष भूखंड को, जिसे हम राष्ट्र नाम से पुकारते हैं, उस राष्ट्र के साथ नागरिकों का पुत्रवत् संबंध बताकर यह संपुष्ट किया गया है कि संसार में इससे महत्वपूर्ण और पवित्र कोई दूसरा संबंध नहीं हो सकता। जैसे माता और पुत्र का संबंध अटूट और निर्मल होता है, उसी प्रकार किसी भी राष्ट्र के साथ उसके नागरिकों का अटूट रिश्ता होता है।

भारत के लिए राष्ट्र मानव निर्मित नहीं, अपितु सहज रूप से विकसित एक शाश्वत भाव है। भारत की पराधीनता के कालखंड में अंग्रेजों द्वारा राष्ट्र के वास्तविक भाव को न समझने की क्षमता या राजनीतिक चालाकियों के कारण **'राष्ट्र'** के समानार्थी अंग्रेजी शब्द **'नेशन'** का प्रयोग किया जाने लगा तथा यह कहा जाने लगा कि भारत में पहले से कोई राष्ट्र का स्वरूप नहीं है, भारत राष्ट्र बनने की ओर बढ़ रहा है। यहीं से भारतीय बौद्धिक वर्ग में राष्ट्र और नेशन को लेकर एक भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो गई।

उन्नसवीं शताब्दी का यूरोपीय चिंतन-एक दृष्टि है, जो उन्नीसवीं शताब्दी के यूरोपीय चिंतन का अनुसरण कर मानती है कि 'राष्ट्र', 'राष्ट्रीयता', 'राष्ट्रवाद' आदि अवधारणाओं का जन्म ही कुछ शताब्दियों पूर्व विशेषकर फ्रेंच क्रांति के पश्चात् पश्चिम में हुआ है। 'राष्ट्र' एक राजनीतिक संकल्पना है। 'राज्य' ही राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया का मुख्य वाहक होता है, राजनीतिक एकता उसके अस्तित्व की पहली आवश्यकता है। इसके साथ ही भूमि, भाषा, मजहब एवं नस्ल की एकता का होना भी 'राष्ट्र' कहलाने के लिए आवश्यक है। भारत के पास सुव्याख्यायित भूमि के अतिरिक्त इनमें से किसी भी तत्त्व की एकता नहीं रही है। भारत अलग-अलग भाषाओं, उपासना-पंथों एवं नस्लों के असंबद्ध जनसमूहों का जमावड़ा मात्र रहा है। अंग्रेजी शासन ने पहली बार उसे राजनीतिक एकता प्रदान की और अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष में से ही भारत के राष्ट्र बनने की प्रक्रिया प्रारंभ हुई है। भारत पहले से बना-बनाया राष्ट्र नहीं है, वह 'राष्ट्र' बनने की ओर बढ़ रहा है। राष्ट्र के संदर्भ में भारत में कहीं कोई भ्रम हमारे पूर्वजों के सम्मुख नहीं था। भारत एक 'राष्ट्र' की हमारी सनातन अवधारणा पक्की थी। 'राष्ट्र' के संदर्भ में सारा का सारा भ्रम यहाँ ब्रिटिश शासकों ने तथा स्वतंत्रता के बाद मार्क्सवादी इतिहासकारों ने पैदा किया। **मैक्समूलर** नामक विद्वान लिखता है कि "भारत एक दार्शनिकों का देश है और भारतीय मनीषियों में राजनीतिक एवं भौतिक चिन्तन का अभाव है तथा भारतीयों में कभी भी **'नेशनैलिटी'** की भावना नहीं रही।"सुप्रसिद्ध आंग्ल भारतीय लेखक **जॉन स्ट्रैशी** के अनुसार, **"भारत के बारे में सर्वप्रथम और सबसे पहले यह समझना है कि भारत न तो एक है, और न ही कभी एक था। भारत नामक कोई देश भी नहीं था, जिसके पास, यूरोपीय दृष्टिकोण से, किसी प्रकार की भौगोलिक, राजनीतिक एकता थी।**

"हालाँकि अंग्रेजों द्वारा फैलाए गए इस भ्रम का अनेक भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने खंडन किया। प्रथम विश्व युद्ध ने यूरोपीय विद्वानों को भी राष्ट्रवाद संबंधी उन्नीसवीं शताब्दी की अवधारणाओं के बारे में पुनर्चिंतन के लिए बाध्य कर दिया। उन्हीं दिनों दक्षिण अफ्रीका में बैठे **गाँधीजी** ने सन् 1909 ई0 में प्रकाशित अपनी 'हिन्द स्वराज' नामक पुस्तक में स्पष्ट लिखा-**"अंग्रेजों ने हमें सिखाया कि हम पहले कभी एक राष्ट्र नहीं थे और हमें एक राष्ट्र बनने में सैंकड़ों बरस लगेंगे। यह बात बिलकुल बेबुनियाद है। जब अंग्रेज हिन्दुस्तान में नहीं थे, तब भी हम एक राष्ट्र थे, हमारे विचार एक थे, हमारा रहन-सहन एक था। तभी तो अंग्रेजों ने यहाँ एक राज्य कायम किया। भेद तो बाद में उन्होंने (अंग्रेजों ने) ही पैदा किए।"**

आगे गाँधीजी कहते हैं- "मैं जो बात कहता हूँ, वह बिना सोचे समझे नहीं कहता। एक राष्ट्र का यह अर्थ नहीं कि हमारे बीच अंतर नहीं था, लेकिन हमारे मुख्य लोग पैदल या बैलगाड़ी में हिन्दुस्तान का सफर करते थे, वे एक दूसरे की भाषा सीखते थे और उनके बीच कोई अंतर नहीं था। जिन दूरदर्शी पुरूषों ने सेतुबंध रामेश्वर, जगन्नाथपुरी और हरिद्वार की यात्रा निश्चित की उनका आपकी राय में क्या ख्याल होगा? वे मूर्ख नहीं थे, यह तो आप कबूल करेंगे। वे जानते थे कि ईश्वर-भजन घर बैठे भी होता है। उन्हीं ने हमें सिखाया है कि मन चंगा तो कठौती में गंगा। लेकिन उन्होंने सोचा कि कुदरत ने हिन्दुस्तान को एक देश बनाया है, इसलिए वह एक राष्ट्र होना चाहिए। इसलिए उन्होंने अलग-अलग तीर्थस्थान तय करके लोगों को एकता का सबक इस तरह दिया, जैसा दुनिया में और कहीं नहीं दिया गया है।"

भारतीय इतिहास के आरंभिक और ख्यातिनाम विद्वान **विंसेंट ए. स्मिथ** का दृष्टिकोण है- "समुद्रों एवं पहाड़ों से घिरा भारत निर्विवाद एक भौगोलिक इकाई है और इसे सही ही एक नाम दिया गया है।" भूगोल के सुप्रसिद्ध विद्वान **चिशलॉम** के शब्द भी इसी प्रकार सशक्त और सकारात्मक है - "वर्मा को छोड़कर दुनिया का कोई भाग नहीं जो भारत से बेहतर अपने ही प्राकृतिक क्षेत्र से सीमांकित हो। यह क्षेत्र वस्तुतः भौगोलिक आकृतियों एवं मौसम के मामलों में विविधतापूर्ण है, लेकिन जो भौगोलिक आकृतियाँ इसे आसपास के क्षेत्रों से पृथक् एक संपूर्णता प्रदान करती हैं, उन्हें नजरअंदाज करना कठिन है।"

राष्ट्र की परिभाषा एवं राष्ट्र निर्माण के तत्त्व-अंग्रेजों द्वारा फैलाए गए भ्रम एवं भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों द्वारा उसके खंडन के पश्चात यह प्रश्न उठता है कि आखिर राष्ट्र की परिभाषा क्या है? राष्ट्र निर्माण के लिए आवश्यक तत्त्व क्या है? पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने राष्ट्र की बहुत ही सुंदर एवं सटीक परिभाषा दी है। जहाँ तक राष्ट्र के अर्थ का प्रश्न है, **पंडित दीनदयाल उपाध्याय** राष्ट्र को एक आध्यात्मिक तत्व मानते थे। राष्ट्र को परिभाषित करते हुए उन्होंने लिखा है- "भूमि, जन और संस्कृति के संघात से राष्ट्र का निर्माण होता है। राष्ट्र एक जीवमान इकाई है। वर्षों-शताब्दियों लम्बे कालखण्ड में इसका विकास होता है। किसी निश्चित भू-भाग में निवास करने वाला मानव समुदाय जब उस भूमि के साथ तादात्म्य का अनुभव करने लगता है, जीवन के विशिष्ट गुणों को आचरित करता हुआ समान परम्परा और महत्त्वाकांक्षाओं से युक्त होता है, सुख-दुःख की समान स्मृतियाँ और शत्रु-मित्र की समान अनुभूतियाँ प्राप्त कर परस्पर हित सम्बन्धों में ग्रथित होता है, संगठित होकर अपने श्रेष्ठ जीवन-मूल्यों की स्थापना के लिए सचेष्ट होता है और इस परम्परा का निर्वाह करने वाले तथा उसे अधिकाधिक तेजस्वी बनाने के लिए महान् तप, त्याग, परिश्रम करने वाले महापुरूषों की श्रृंखला निर्माण होती है, तब पृथ्वी के अन्य मानव समुदायों से भिन्न एक सांस्कृतिक जीवन प्रकट होता है। इस भावात्मक स्वरूप को ही राष्ट्र कहा जाता है। जब तक यह राष्ट्रीयता अस्मिता बनी रहती है, राष्ट्र जीवित रहता है। इसके क्षीण होने से राष्ट्र क्षीण होता है और नष्ट हो जाता है। इस प्रकार राष्ट्र एक स्थायी सत्य है।"

प्रख्यात भारतीय इतिहासकार **'श्री वासुदेवशरण अग्रवाल'** राष्ट्र के निर्माण के तत्त्वों को व्याख्यायित करते हुए कहते हैं कि- ''भूमि राष्ट्र का शरीर है, जन उसका प्राण है और जन की संस्कृति राष्ट्र का मन है। भूमि, जन और संस्कृति तीनों के सुंदर सम्मिलन और उन्नति से ही राष्ट्र का निर्माण होता है। भूमि और जन के अभ्युदय का अन्तिम लक्ष्य उत्तम संस्कृति ही है।''

पौराणिक साहित्य में राष्ट्रीयता के तत्त्व-

यदि हम पाश्चात्य विद्वानों तथा भारतीय मनीषियों द्वारा 'राष्ट्र और राष्ट्रीयता के नवीन व्याख्याओं के आलोक में अपने प्राचीन इतिहास का अध्ययन करें तो हम पाते हैं कि संपूर्ण पौराणिक साहित्य राष्ट्रीयता के तीनों मूलभूत तत्त्व भूमि, जन की एकता तथा देशभक्ति एवं ऐतिहासिक सांस्कृतिक गौरव भाव से ओतप्रोत है। भारत की भौगोलिक एकता की व्याख्या करते हुए 'विष्णु पुराण' कहता है -

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्ष तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्तति।। (विष्णु पुराण- 2/3/1)

अर्थात समुद्र के उत्तर में और हिमालय के दक्षिण में जो भू-खण्ड है, उसका नाम भारत है और उसकी संतान को भारतीय कहते हैं।

भारत की सांस्कृतिक एकता का ही दूसरा नाम उसकी मौलिक एकता है। यह सांस्कृतिक एकता जिस भू-प्रदेश में व्याप्त हुई उसका भौगोलिक नाम भारतवर्ष है। भारत का समस्त भू-खण्ड चाहे एक राजनैतिक चक्र अथवा शासन के अधीन न भी रहा हो तो भी यहाँ की कोटि-कोटि जनता के मन में भारत की मौलिक एकता का गहरा संस्कार था। राष्ट्र की अनेक संस्थाओं के रूप में यह सत्य प्रमाणित हुआ। भारत के सांस्कृतिक गौरव के इसी भाव तथा एकता की ओर लक्ष्य करते हुए विष्णु पुराण के लेखक कहते हैं -

गायन्ति देवाः किल गीतकानि, धन्यास्तु ते भारत भूमिभागेः।
स्वर्गापवर्गास्पद हेतुभूते, भवन्ति भूयः पुरूषाः सुरत्वात्।।
(विष्णु पुराण- 2/3/24)

अर्थात् देवता भी स्वर्ग में गीत गाते हैं कि धन्य हैं वे जिनका जन्म भारत भूमि पर हुआ है। यह भूमि तो स्वर्ग से भी बढ़कर है, क्योंकि वहाँ जन्म लेते ही मोक्ष का रास्ता मिल जाता है, लेकिन स्वर्ग में रहनेवाले हम देवताओं को पुण्य क्षीण होने पर फिर से पृथ्वी पर वापस आना पड़ेगा।उपर्युक्त श्लोकों में कहीं भी पृथक् -पृथक् खण्ड की कल्पना नहीं है। उत्तर-प्रदेश, गुजरात, बिहार, उड़ीसा, तमिलनाडु, बंगाल, कश्मीर या केरल की इन श्लोकों में चर्चा नहीं, बल्कि चर्चा है तो सिर्फ और सिर्फ अखण्ड भारत की। इन श्लोकों में उन्हें धन्य माना गया है जो भारत भूमि पर जन्म लेते हैं। कवि की दृष्टि में समस्त भारत भूमि ही धन्य है। राष्ट्रीयता के तीनों तत्व भूमि, जन और संस्कृति की स्पष्ट व्याख्या हमें इन श्लोकों में देखने को मिलती है। भूमि अर्थात हिमालय से लेकर समुद्र पर्यन्त फैले अखण्ड भारत की भूमि, जन अर्थात् भारतीय प्रजा तथा संस्कृति से आशय भूमि और जन को एकसूत्रता में बाँधने वाला एकात्म भाव, भारत भूमि के प्रति मातृभाव। इसी भाव को **वासुदेवशरण अग्रवाल** इस रूप में व्यक्त करते हैं- ''सब भौतिक सुख और समृद्धि से संयुक्त राष्ट्र की उपलब्धि स्वर्ग है, और उन सुखों का त्याग मोक्ष है। जो संस्कृति इस मार्ग को सिखाती है वही भारत की संस्कृति है। देश के सभी भाग उसके अंतर्गत हैं। इसलिये कहा गया **'धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे।'** अर्थात् भारत के किसी भी भाग में मनुष्य जन्म ले स्वर्ग और अपवर्ग वाली संस्कृति से उसका जन्मसिद्ध नाता जुड़ जाता है। यहाँ यह नहीं कहा गया है कि देश का एक प्रदेश या एक प्रान्त या एक नगर मोक्ष-प्रधान संस्कृति का अधिकारी है, बल्कि देश का प्रत्येक भाग मातृभूमि के सत्यात्मक हृदय के साथ मिला हुआ है। सभी को संस्कृति की वेगवती धाराएँ प्राप्त हुई हैं। सुदूर मलैबार के शंकराचार्य, तमिल के कम्बन, महाराष्ट्र के ज्ञानेश्वर, असम के शंकरदेव, आन्ध्र के पोतनामात्य, बंगाल के चैतन्य, उत्तरापथ के वाल्मीकि और तुलसीदास, बिहार के बुद्ध और महावीर, राजस्थान की मीराबाई, कश्मीर की लल्लेश्वरी, गुजरात के नरसी मेहता, पंजाब के गुरूनानक, इन सबकी सांस्कृतिक भाषा एक है। यद्यपि उनका जन्म भारतभूमि के भिन्न-भिन्न भागों में हुआ, पर जीवन का तप और त्याग प्रधान मार्ग उन सब का एक है।''आधुनिक विद्वानों ने विष्णु-पुराण का रचनाकाल पाँचवी शती ईसवी माना है। इसका अर्थ हुआ कि आज से कम से कम 1,500 वर्ष पहले राष्ट्रीयता की आधार भूमि भारत में पूरी तरह तैयार हो चुकी थी। भारत के वर्तमान स्वरूप के निर्माण काल को भी पाँचवी शताब्दी से नीचे लाने का साहस कोई भी आधुनिक विद्वान अब तक नहीं कर पाया है।

राष्ट्र की आत्मा 'चिति' तथा राष्ट्र की धारणा शक्ति 'विराट्'-

पंडित दीनदयाल उपाध्याय भारतीय परंपरा के अनुसार राष्ट्र को एक स्वयंभू, सावयव और जीवमान सत्ता मानते हैं। वे कहते थे- ''समाज केवल व्यक्तियों का समूह अथवा समुच्चय नहीं, अपितु एक जीवमान सावयव सत्ता है। भूमि विशेष के प्रति मातृ-भाव रखकर चलने वाले समाज से राष्ट्र बनता है। प्रत्येक राष्ट्र की अपनी एक विशेष प्रकृति होती है, जो ऐतिहासिक अथवा भौगोलिक कारणों का परिणाम नहीं अपितु जन्मजात है। इसी जातिगत वैशिष्ट्य भावना को **'चिति'** कहते हैं।'' यही राष्ट्र का केंद्र बिंदु है। 'चिति' ही राष्ट्रत्व का द्योतक है। वे आगे कहते हैं- ''चिति के आविर्भाव से राष्ट्र का उदय होता है, चिति के कारण राष्ट्र की धारणा होती है और चिति के क्षीण पड़ने से राष्ट्र विनाश की ओर अग्रसर हो जाता है। चिति वह मानदंड है, जिससे हर वस्तु को मान्य अथवा अमान्य किया जाता है।''

पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने **'चिति'** की तरह ही **'विराट्'** की अवधारणा को भी हमारे सम्मुख रखा है। उन्होंने कहा है कि 'विराट्' का जागरण करें। विराट् राष्ट्र की धारणा शक्ति है। उसको जागृत किए बिना हमारे मन की जो कुछ कल्पना है, उसका क्रियान्वयन नहीं हो सकता। समाज की संगठित शक्ति का नाम ही 'विराट्' है। वे कहते हैं- ''जैसे राष्ट्र का आधार चिति होती है, वैसे ही जिस शक्ति से राष्ट्र की धारणा होती है, उसे 'विराट्' कहते हैं। 'विराट्' राष्ट्र की वह कर्मशक्ति है, जो चिति से जाग्रत् एवं संगठित होती है। विराट् के आधार पर ही प्रजातंत्र सफल होता है और राज्य बलशाली बनता है।

राष्ट्र और राज्य एक नहीं-आज पश्चिम के राजनीति-प्रधान चिंतन के परिणामस्वरूप, सामान्यतः 'राज्य' और 'राष्ट्र' पर्यायवाची शब्द माने जाने लगे हैं। वास्तव में ये दोनों मूल में अलग-अलग संकल्पनाएँ हैं। राज्य, समाज की तात्कालिक भौतिक व्यवस्था है और राष्ट्र, समाज का स्थायी, नैतिक, भावनात्मक तथा जीवित शिल्प। राज्य का आधार राजनीति है और राष्ट्र का प्राण संस्कृति है। राज्य, राष्ट्र का एक अंग मात्र है। राज्य अस्थायी और परिवर्तनशील हो सकता है, राष्ट्र स्थायी और निरंतर होता है। राष्ट्र का अस्तित्व बहुमत और अल्पमत पर आधारित नहीं रहता। राष्ट्र की एक स्वयंभू सत्ता है। वह स्वयं प्रकट होती है और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक सभी में विभिन्न इकाइयों की स्थापना करती है। वह विभिन्न इकाइयों जिनमें 'राज्य' भी एक है। जिसे हम प्रजातंत्र कहते हैं, वह भी राज्य को उपयोगी बनाए रखने की आवश्यकता पड़ने पर उसे बदल डालने की प्रक्रिया का ही नाम है। राज्य बदला जा सकता है, किंतु कोई भी प्रजातंत्र 'राष्ट्र' को नहीं बदल सकता। राष्ट्र का अस्तित्व बहुमत और अल्पमत पर आधारित नहीं रहता। दीनदयाल उपाध्याय कहते हैं- 'राज्य की आवश्यकता दो स्थितियों में होती है : पहली आवश्यकता तब होती है, जब 'राष्ट्र' के लोगों में कोई विकृति आ जाए। उसके कारण उत्पन्न समस्याओं का नियमन करने के लिए 'राज्य' उपस्थित किया जाता है। उदाहरण के लिए, किसी मोहल्ले में यदि कोई झगड़ा ना हो और ना ही ऐसी कोई संभावना हो तो पुलिस कहीं दिखाई नहीं पड़ती। किंतु यदि झगड़ा हो जाए तो झट पुलिस को बुलाया जाता है। दूसरी आवश्यकता तब पड़ती है जब समाज में कोई जटिलता उपस्थित हुई हो। सार्वजनिक जीवन में व्यवस्था निर्माण करना जरूरी हो। निर्बलता, असहायता और दरिद्रता का लाभ शक्तिशाली संपन्न और साधन युक्त वर्ग ना उठा सके, सब न्याय की सीमाओं में बंध कर चल सकें, इसके लिए राज्य का निर्माण किया जाता है। वास्तव में इन दो कारणों से ही राज्य उत्पन्न होता है। समाज में आई हुई विकृति का नियमन करने के लिए विकृत व्यक्तियों को दंडित करना, यानी शांति स्थापित करना और समाज में आई हुई जटिलता को सुलझा कर प्रत्येक व्यक्ति के लिए न्यायपूर्ण सम्मानित जीवन सुलभ बना देना, यानी सुव्यवस्था करना ही राज्य के कार्य माने जाते हैं। तीसरा एक कार्य जो इन्हीं दोनों कार्यों

की पूर्ति का महत्वपूर्ण अंग है, वह विश्व के अन्य राज्यों के साथ संबंध स्थापित करना है। यानी बाह्य आक्रमण से रक्षा करने का कार्य ही राज्य करता है। इसके लिए राज्य, राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है।"

निष्कर्ष:-

भारतीय चिंतन में राष्ट्र की संकल्पना अति प्राचीन है। वैदिक साहित्य में राष्ट्र शब्द अपने पूर्ण विकसित अर्थ में उपलब्ध होता है। आज पश्चिम के राजनीति-प्रधान चिंतन के परिणामस्वरूप, सामान्यतः 'राज्य' और 'राष्ट्र' पर्यायवाची शब्द माने जाने लगे हैं। वास्तव में ये दोनों मूल में अलग-अलग संकल्पनाएँ हैं। आज यह आवश्यक है कि समाज को राष्ट्र की भारतीय अवधारणा का स्पष्ट बोध हो, जिससे राष्ट्र के सभी घटक पूर्ण व्यवस्थित रूप से परस्पर पूरकता के साथ राष्ट्र के विकास में सहभागी हो सकें।

******

सन्दर्भ ग्रंथ-सूची:-

1.कृष्ण गोपाल (2015), *'हिन्दुत्व-हिन्द राष्ट्र, विकास पथ'*, सुरूचि प्रकाशन, नई-दिल्ली, पृष्ठ. 26-27
2.मुखर्जी, राधाकुमुद (2009), *'भारत की मूलभूत एकता'*, सस्ता साहित्य मण्डल, नई-दिल्ली, पृष्ठ. 32
3.गाँधी, मोहनदास करमचंद (2013), *'हिन्द स्वराज'*, सर्व सेवा संघ-प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ. 48
4.गाँधी, मोहनदास करमचंद (2013), *'हिन्द स्वराज'*, सर्व सेवा संघ-प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ. 49
5.मुखर्जी, राधाकुमुद (2009), *'भारत की मूलभूत एकता'*, सस्ता साहित्य मण्डल, नई-दिल्ली, पृष्ठ. 32
6.मुखर्जी, राधाकुमुद (2009), *'भारत की मूलभूत एकता'*, सस्ता साहित्य मण्डल, नई-दिल्ली, पृष्ठ. 32
7.उपाध्याय, दीनदयाल (2014), *'राष्ट्र चिन्तन'*, लोकहित प्रकाशन, लखनऊ, पृष्ठ. 130
8.उपाध्याय, दीनदयाल (2010), *'राष्ट्र जीवन की दिशा'*, लोकहित प्रकाशन, लखनऊ, पृष्ठ. 37, 38
9.अग्रवाल, वासुदेवशरण (1954), *'भारत की मौलिक एकता'*, भारती-भंडार, इलाहाबाद, पृष्ठ 76
10.अग्रवाल, वासुदेवशरण (1954), *'भारत की मौलिक एकता'*, भारती-भंडार, इलाहाबाद, पृष्ठ. 18, 19
11.देवधर, विश्वनाथ नारायण (2014), *'पंडित दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन, खण्ड-7 व्यक्ति दर्शन'*, सुरूचि प्रकाशन, नई-दिल्ली, पृष्ठ. 76
12.उपाध्याय, दीनदयाल (2010), *'राष्ट्र जीवन की दिशा'*, लोकहित प्रकाशन, लखनऊ, पृष्ठ. 43
13.सिंह, अमरजीत (2015), *'मैं दीनदयाल उपाध्याय बोल रहा हूं'*, प्रभात प्रकाशन, नई-दिल्ली, पृष्ठ. 35
14.उपाध्याय, दीनदयाल (2010), *'राष्ट्र जीवन की दिशा'*, लोकहित प्रकाशन, लखनऊ, पृष्ठ. 3

गांधी दर्शन में सामाजिक न्याय

राजकिशोर
असिस्टेंट प्रोफेसर
इतिहास विभाग
जे. एस. हिन्दू पी. जी. कॉलेज, अमरोहा

भारतीय समाज लोकमंगलकारी, मनवातावादी, समतावादी जैसे उदार भावनाओं व विचारों से ओतप्रोत है। एक तरफ जहां यह समाज धर्म, प्रथा–परंपराओं, रीति–रिवाजों आदि को प्राथमिकता देता है, वहीं दूसरी तरफ यहाँ आधुनिकता, औद्योगीकरण, नगरीकरण जैसे विकसित व परिवर्तनशील संदर्भ भी परिलक्षित होते हैं। यह देश विविधताओं का देश कहा जाता है, जहां अनेक जातियाँ, वर्ग, धर्म, संस्कृति, सभ्यता, भाषा विद्यमान है। वहीं समकालीन संदर्भ में इन विविधताओं में और अधिक तत्व सम्मिलित हो गए हैं। आज यहाँ परंपरा व आधुनिकता का द्वंद्व दिखाई देता है, संस्कृति के भौतिक व अभौतिक पक्षों में विवाद दृष्टिगोचर होता है, तकनीक–प्रौद्योगिकी में विरोधाभास परिलक्षित होता है। इतनी विविधताओं के कारण मानव स्वभाव, विचार–व्यवहार व समता संबंधी संदर्शों का प्रभावित होना स्वाभाविक है। ऐसे में सामाजिक न्याय का मसला जीवित रख पाना दुष्कर व नितांत आवश्यक होता है। वर्तमान दौर उदारीकरण, निजीकरण व बाजारीकरण का है, जहां पूंजीवाद व आभासी दुनिया की सूचनाओं का बोलबाला है। इस दुनिया में एक तरफ निर्धनता, बेरोजगारी, भुखमरी, धोखेबाज़ी, शोषण है, जबकि दूसरी तरफ चकाचौंध व भोग–विलास की उपभोक्तावादी संस्कृति है। परिणामस्वरूप समाज में हिंसा, तनाव, अशांति का वातावरण परिलक्षित होता है। भारत में एक महान विद्वान, क्रांतिकारी विचारक व समाज सुधारक का जन्म हुआ मोहनदास करमचंद गांधी। उनके असाधारण कार्यों व अहिंसावादी विचारों ने समूचे विश्व की सोच ही परिवर्तित कर दिया। महात्मा गांधी ने अपने सत्याग्रह के माध्यम से ब्रिटिश शासन को खत्म करने और गरीबों का जीवन सुधारने के लिए सतत परिश्रम किया। गांधी जी ने अपने अहिंसा के सिद्धांत को सत्याग्रह के रूप में पहचान दिलायी। गांधी जी के सत्याग्रह ने अनेक हस्तियों को प्रभावित किया। स्वतंत्रता, समानता और सामाजिक न्याय अपने संघर्ष में नेल्सन मंडेल व मार्टिन लूथर किंग गांधी जी से प्रभावित थे। सत्याग्रह सच्चे सिद्धांतों व अहिंसा पर आधारित है।

गांधी जी ने सामाजिक न्याय के एक व्यवहारिक स्वरूप के तौर पर सर्वोदय का विचार प्रतिपादित किया। यह विचार दुनिया को शांति, सहअस्तित्व तथा इंसानियत के संदेश के दर्शन के रूप में परिलक्षित होता है। सर्वोदय के मूल आधार के रूप में प्रेम–स्नेह व पारस्परिकता, सहयोग व सद्भावना विद्यमान हैं। यदि हम इसकी शब्दशः व्याख्या करें, तो यह 'सबकी भलाई, समृद्धि व कल्याण' की भावना को इंगित करता है। व्यवहारिक तौर पर सर्वोदय का आशय समाज के प्रत्येक सदस्य की बुनियादी आवश्यकताओं की परिपूर्णता से है अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति को रोटी, कपड़ा एवं मकान सहज सुलभ हो। यहाँ ध्यान आकृष्ट करने वाली बात यह है कि अनैतिक तथा अवैध रूप से अर्जित की हुआ धन–संपत्ति मानव को पशुता की तरफ अग्रेषित करती है। सर्वोदय मानव को एक ऐसे रास्ते पर ले जाना चाहता है, जो उसे वास्तविक सामाजिक सुख तक पहुंचा सके, न कि किसी बनावटी भौतिक भोग–विलासिता के सुख तक। जब तक दुनिया में निर्धनता, भुखमरी, शोषण, हिंसा, दमन जैसे असमताकारी व विघटनकारी तत्व विद्यमान रहेंगे, तब तक सर्वोदय जैसा लोक–कल्याणकारी व मानवतावादी विचार अस्तित्वमान रहेगा। गांधी जी सर्वोदय के माध्यम से हृदय परिवर्तन के जरिये सामाजिक–आर्थिक असमानता व अन्याय को दूर करना चाहते हैं। वस्तुतः सामाजिक न्याय एक ऐसा पद है जो भेदभावहीन, समतामूलक, समरस तथा सर्वसमावेशी समाज की निर्मिति की कवायद करता है। एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था जिसमें बिना किसी भेदभाव के प्रत्येक व्यक्ति के लिए समान अवसर व सुख–सुविधाओं का प्रावधान हो। जाति, धर्म, लिंग, वर्ग, रंग, स्थान, वंश आदि के आधार पर किसी भी व्यक्ति, समाज अथवा समूह को अपमानित न होना पड़े तथा न ही इनके आधार पर व्यक्तित्व के विकास के मार्ग में बाधा आए। सामाजिक न्याय का मसला सामाजिक समानता, मानवीय मूल्यों, आदर्शों, अधिकारों, गरिमा तथा औचित्य से जुड़ा होता है। इसका तर्क यह है कि संगठित सामाजिक जीवन में हमें जो भी लाभ प्राप्त होते हैं, वे लाभ कुछ अल्पसंख्यक लोगों तक ही सीमित न रह जाएँ, अपितु समाज के प्रत्येक व्यक्ति,

गविशेष रूप से निर्बल व निर्धन को प्राप्त हो सके, ताकि वे स्वतंत्र, खुशहाल, सम्मानित व चिंतारहित जीवन जी सके। वस्तुतः सामाजिक न्याय एक प्रकार का सामाजिक–राजनीतिक आंदोलन है, जो समाज के हाशियेकृत, वंचित, शोषित, पीड़ित, उपेक्षित लोगों को समाज व विकास की मुख्यधारा में लाने से संबंधित है। गांधी जी जब सर्वोदय की बात करते हैं, तब वे मानवतावादी गुणों की चर्चा करते हैं। वे समस्त मानवता के कल्याण में विश्वास रखते थे। भगवद्गीता के वास्तविक अर्थों में गांधी जी एक निष्काम योगी थे, यही कारण है कि रवीन्द्रनाथ टैगोर उन्हें महात्मा कहकर संबोधित करते थे। GANDHI जी सत्य व अहिंसा पर आधारित एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था को निर्मित करना चाहते थे, जो संघर्ष के स्थान पर सहयोग, तथा विषमता के स्थान पर समता को महत्व देता है अर्थात् वे किसी भी स्थिति में मानव द्वारा मानव के हिंसा, दमन व शोषण का विरोध करते थे। वे ऐसी स्वस्थ्य सामाजिक व्यवस्था को सर्वोदय की संज्ञा प्रदान करते हैं।

गांधी जी सभी के उत्थान व कल्याण को महत्व देते थे, वह चाहे मजदूर हो, किसान हो अथवा पूंजीपति। उनका तर्क स्पष्ट था कि संपूर्ण समाज के विकास से ही राष्ट्र का सम्यक विकास संभव है। वैज्ञानिक समाजवाद के प्रणेता कहे जाने वाले प्रसिद्ध विद्वान कार्ल मार्क्स ने साम्यवाद की संकल्पना प्रस्तुत की, जो सर्वहारा वर्ग के विकास की बात करता है तथा पूंजीपति वर्ग के विनाश को विश्लेषित करता है। इससे बिल्कुल पृथक विचारधारा के रूप में गांधी जी का सर्वोदय सभी के विकास को तवज्जो देता है, सबके हित की बात करता है। इस विचारधारा का तर्क है कि जहां एक तरफ निर्धन व्यक्ति आर्थिक रूप से दरिद्र है, वहीं दूसरी तरफ धनी व्यक्ति नैतिक रूप से दरिद्र होता है। यहाँ गांधी जी न्यासिता (ट्रस्टीशिप) की बात करते हैं, जिसमें वे धनी व्यक्तियों द्वारा हृदय परिवर्तन के सहारे निर्धन व्यक्तियों की सहायता को महत्व देते हैं।

सर्वोदय की मान्यता है कि मानव की आत्मा स्वभाव से पवित्र होती है। इस विचारधारा में स्वतंत्रता, समानता, विश्वबंधुत्व तथा न्याय को अधिक महत्व दिया जाता है। गांधी जी राज्य की व्याख्या मानवीय गुणों का विनाश करने वाले रूप में करते थे, वे राज्य के स्थान पर स्वराज्य को महत्व देते थे। स्वराज्य का शासन जनता के नैतिक संप्रभुता पर आधारित होगा। गांधी जी ने दलित, शोषित, वंचित व अल्पसंख्यकों के उत्थान हेतु सामान्य कल्याण तथा सामंजस्य पर अधिक बल दिया। समाज में व्याप्त विषमता व असमानता को दूर करने के लिए वे ट्रस्टीशिप का विचार प्रतिपादित करते हैं। गांधी जी का विचार है कि समस्त प्राकृतिक संपदा ईश्वर द्वारा प्रदीप्त है, अतः समूचे संसाधनों पर प्रत्येक व्यक्ति का बराबर का अधिकार होना चाहिए। इस प्रकार के सर्वोदयी प्रयत्न से एक सामंजस्यपूर्ण पारस्परिक सहयोग वाला समाज निर्मित होगा तथा समाज में व्याप्त शोषण, दमन व संघर्ष का अंत होगा।

सर्वोदय तथा सामाजिक न्याय मौलिक रूप से समान संकल्पनाएँ हैं तथा इन दोनों का उद्देश्य समाज के शोषित, दलित, पीड़ित, पिछड़े, हाशियेकृत तथा कमजोर वर्ग का उत्थान करना है। सामाजिक न्याय का विचार स्वयं में एक क्रांतिकारी विचार है, जो समाज में एक ऐसी व्यवस्था की स्थापना के मानदंड को प्रस्तुत करता है, जहां समाज का प्रत्येक सदस्य, दैनंदिन जीवन के प्रत्येक क्षेत्रों में समान रूप से अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर सके तथा आर्थिक विकास के लाभों में समान रूप से हिस्सेदारी प्राप्त कर सके। सामाजिक न्याय कानून को सामाजिक परिवर्तन के वाहक के तौर पर प्रयोग किए जाने की मांग करता है। सामाजिक न्याय का आशय समाज के उस बड़े भाग के लिए न्याय मुहैया कराना है, जो साधनहीन, सुविधाहीन तथा विशेषाधिकार रहित है। यह न्याय न केवल रंग, लिंग, वर्ग, शक्ति, धन आदि की असमानता को दूर करने की वकालत करता है, अपितु समाज के हाशियेकृत वर्ग का पक्षपोषण भी करता है। सरल शब्दों में, सामाजिक न्याय समस्त भेदभावों व असमानताओं का अंत कर नागरिकों को सामाजिक–आर्थिक क्रियाओं में समान अवसर प्रदान करने के उद्देश्य को फलीभूत करता है। सामाजिक न्याय का संबंध मात्र सामाजिक सुरक्षा से ही नहीं है, अपितु यह वंचित, दलित, शोषित व कमजोर वर्ग पर विशेष ध्यान आकृष्ट करने की आवश्यकता पर बल देता है। समाज का प्रत्येक व्यक्ति समाज में एक समान मूल्यों का संपादन नहीं करता।

अतः व्यक्तियों द्वारा समाज में किए जा रहे कार्यों के मूल्य के अनुपात में ही वितरण सुनिश्चित किया जाना चाहिए, ताकि सामाजिक न्याय के समतापूर्ण विचारों को जीवित रखा जा सके। समकालीन संदर्भ में गांधी जी के सर्वोदयी विचारों को व्यवहारिक रूप से प्रयुक्त कर सामाजिक न्याय को स्थापित किया जा सकता है। गांधी जी की सर्वोच्च प्राथमिकता पिछड़े, कमजोर, दलितों व हाशियेकृत वर्गों का उत्थान था। उनका सर्वोदयी समाज का विचार सामाजिक न्याय के आदर्शों पर ही आधारित था। इस समाज में कोई व्यक्ति न तो पहला होगा तथा न ही आखिरी। दूसरे शब्दों में, इस समाज का आखिरी व्यक्ति पहले व्यक्ति के बराबर होगा अर्थात् समाज में प्रत्येक व्यक्ति का बराबर का स्थान होगा।

गांधी जी का मत था कि समाज में अछूत की समस्या गैर–बराबरी तथा वैमनस्यता को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। सामाजिक न्याय तथा राष्ट्रीय एकता के मार्ग में छुआछूत एक दुसाध्य अवरोध है। गांधी जी हिंदू समाज के अभिन्न अंग के रूप में अछूतों की बात की है, उनको समाज में निम्नतम स्थान देना, निकृष्टतम कार्य हेतु बाध्य करना, मंदिरों में प्रवेश की मनाही, धर्मग्रंथों के अध्ययन पर रोक आदि अमानवीय व्यवहार हैं तथा यह उन हाशियेकृत लोगों को अकारण मानवाधिकारों से वंचित करना है। अछूतों के प्रति गांधी जी के मन में अगाध प्रेम व सम्मान था, यही कारण है कि वे उन्हें 'हरिजन' शब्द से संबोधित करते हैं। सर्वोदय के सहारे सामाजिक न्याय को स्थापित करने हेतु गांधी जी सत्याग्रह की तकनीक को अपनाने की कवायद करते हैं। गांधी जी का तर्क स्पष्ट था कि यदि प्रेम, सद्भाव, संरक्षण व हृदय परिवर्तन के उपरांत भी सामाजिक न्याय का लक्ष्य प्राप्त नहीं होता, तब ऐसी स्थिति में हमें सत्याग्रह के मार्ग को चुनना चाहिए। सत्याग्रह की तकनीक की सहायता से अस्पृश्यता जैसी अनेक सामाजिक बुराइयों तथा सामाजिक संघर्ष को दूर किया जा सकता है तथा सामाजिक न्याय की स्थापना की जा सकती है।

आज का समाज उपभोक्तावादी संस्कृति द्वारा संचालित है, जो वैश्वीकरण, उदारीकरण व निजीकरण द्वारा उपजी है। इस संस्कृति में मानव की पहचान तथा उसकी अस्मिता पर गहरा संकट छाया हुआ है। सर्वोदय की विचारधारा के सहारे इस पहचान को निर्मित व जीवित रखा जा सकता है। आज जहां समूची दुनिया आपस में जुड़ी हुई है तथा सभी आत्मीयता, मानवाधिकार व मानवतावाद को तवज्जो देते हैं। इसके बावजूद दलित अपने उत्थान के लिए तरस रहे हैं, वे आज भी शोषण व अत्याचार के शिकार हैं। हम ऐसे समाज की संकल्पना रखते हैं, जहां समानता हो, गरिमापूर्ण जीवन हो, सम्मान हो, संवेदनशीलता हो। एक ऐसा समाज जो हिंसा व संघर्ष से रहित हो। ऐसे समाज की अभिव्यक्ति गांधी जी द्वारा बताए गए सर्वोदय के विचार से ही संभव है।

******

संदर्भ ग्रंथ सूची: -

1. गावा, ओ. पी. (2009). *राजनीति सिद्धांत की रूपरेखा.* नोएडा: मयूर पेपर बैक्स.
2. गांगुली, बी. एन. (2006). *गांधीज़ सोशल फिलोसोफी: पर्सपेक्टिव एंड रेलिवेंस.* दिल्ली: राधा पब्लिकेशन्स.
3. जैन, एम. पी. (1988). *राजनीति के सिद्धांत.* दिल्ली: ओथर्स गिल्ड पब्लिकेशन.
4. झा, ए. (2020). *गांधी मैदान.* नोएडा: हिंदी युग्म.
5. राजमनी, एम. बी. (1997). *गांधीयन सोशल थाट.* मैसूर: यूनिवर्सिटी ऑफ मैसूर.
6. सिंह, बी. (2014). *गांधी का साहित्य और भाषा चिंतन.* वाराणसी: सर्व सेवा संघ प्रकाशन.
7. सिंह, एस. डी. (2008). *महात्मा गांधी- प्रथम दर्शन: प्रथम अनुभूति.* नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन.

आधुनिक युग में मानव का बदलता स्वरूप

ज्योति शर्मा
सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
ईथेंस महाविद्यालय, हैदराबाद, भारत
मो.91 8919411072

सारांश-परिवर्तन सृष्टि का नियम है। हमें समय के साथ ही चलना चाहिए। लेकिन इस प्रकृति के पीछे मानव का संपूर्ण स्वार्थ छुपा हुआ है। हम इस शोध में यही जानने की कोशिश करेंगे कि मनुष्य प्रगति और तकनीकी में इतना गुम होता जा रहा है कि जिससे संपूर्ण मानव जाति व प्रकृति संकट के घेरे में आती हुई नजर आ रही है। आधुनिकता के नाम पर मनुष्य अपनी प्राचीन सभ्यता को ताक पर रखता हुआ जरा भी नहीं कतरा रहा है। जो कि मानव जीवन में अनागत भविष्य के लिए अत्यधिक हानिप्रद हो सकती है। मनुष्य अपने लाभ के लिए प्रकृति के अमूल्य खजाने को नजरअंदाज करके उस पर प्रहार करने में जरा भी नहीं हिचकिचता। जिसके परिणाम स्वरुप वह खुद की ही आने वाली पीढ़ी के लिए खतरा बनता जा रहा है। विज्ञान ने जीवन को बहुत आसान बना दिया है लेकिन इस ओर किसी का भी ध्यान नहीं जा रहा कि इस तकनीकी और विज्ञान ने मनुष्य जीवन को बहुत प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया है। चाहे वह शारीरिक स्वास्थ्य हो या मानसिक शांति। मानव आर्थिक सुविधाओं के लिए अपने शारीरिक और मानसिक शांति से खिलवाड़ कर रहा है। इस अबोध मनुष्य को यह समझना होगा कि सबसे बड़ा सुख आर्थिक सुविधा न होकर मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य है। यह बुद्धिहीन मनुष्य क्षणिक सुविधाओं और वैज्ञानिक चमक-धमक में काबू होता जा रहा है। जो उसके भविष्य के लिए अवांछनीय परिणाम की आकांक्षा है। इसके लिए आधुनिकता के साथ मानव को अपने प्राचीन सभ्यता का साथ भी नहीं छोड़ना चाहिए।

बीज शब्द: अर्वाचीन युग, उपभोक्तावादी सभ्यता, आत्मीय संबंध, भौतिक तत्व, अग्रशील दृष्टिकोण, भ्रमित, नैतिक मानदंड, उद्भव, समतामूलक, अवध्वंस.

शोध प्रविधि -प्रस्तुत शोध की प्रविधि व्यवहारिक जीवन पर आधारित है। जिसमें विश्लेषणात्मक विधि का प्रयोग किया गया है। शोध पत्र में सत्यापन व विश्लेषण करने के लिए अनेक पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं तथा विभिन्न वेबसाइटो को सहायक के रूप में प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत शोध में तथ्यों के संकलन हेतु प्राथमिक एवं द्वितीय स्त्रोतों का प्रयोग किया गया है।

शोध के उद्देश -शोध कुछ उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किया जाता है और उन उद्देश्यों की पूर्ति करने का प्रयास शोधार्थी अपने शोध में करता है। प्रस्तुत शोध के भी अपने कुछ उद्देश्य हैं। जो निम्न प्रकार से हैं।

- आधुनिकता और प्राचीन सभ्यता के बीच के अंतर को समझना।
- मानव परिवर्तन किस दिशा में होना चाहिए उसे निश्चित कर अग्रसर होना।
- प्राचीन सभ्यता और प्रकृति के अमूल्य उपहारों का महत्व समझाना।
- युवा पीढ़ी को भारतीय सभ्यता से अवगत कराना और इसका महत्व समझाना।
- आधुनिकता की आड़ में बढ़ रहे अत्याचार और भ्रष्टाचार से मानव जाति को अवगत कराना।
- वैज्ञानिक तकनीकों के महत्व के साथ-साथ मनुष्य को उसकी हानियों से भी परिचित कराना।
- मनुष्यता व मानवता का सही रूप से क्या कर्तव्य है। यह समझाने की कोशिश करना।
- मानव जाति को नैतिक मूल्यों व आत्मीय संबंधों से अवगत करवाना।
- मनुष्य को समझाने की कोशिश करना कि है आर्थिक सुविधाओं के साथ-साथ उसे मानसिक शांति का भी महत्व समझना चाहिए।
- अनभिज्ञ मनुष्य जाति को समझाने की कोशिश करना कि वह अंत: चेतना को परिष्कृत करें और मानवता को जीवित रखे।

प्रस्तावना-हम एक ऐसे युग में जी रहे हैं जिसका नाम आधुनिक युग दिया गया है। इस अर्वाचीन युग में मानव ने न सिर्फ अपने मस्तिष्क को परिवर्तित किया है बल्कि साथ ही उसने एक उपभोक्तावादी संस्कृति को भी जन्म दिया है। इस उपभोक्तावादी संस्कृति के चलते हैं मानवीय संबंधों की अहमियत लुप्त होती जा रही है। अपनी लालसा को प्राप्त करने के लिए मानव निसंकोच भाव से नैतिकता को ताक पर रखता नजर आ रहा है। वह आत्मीय संबंधों को अवध्वंस कर भौतिक तत्व मे संदर्भित होता जा रहा है।विश्व के सभी जीवों में मानव रचना शीर्ष पर है। क्योंकि मानव ही ऐसा जीव है, जो अपने विवेक, बुद्धि से संपन्न है और सब से गहन चिंतन कर सकता है। लेकिन मानव ने अपनी बुद्धि और चिंतन का उपयोग केवल अपने स्वार्थ के लिए प्रयोग किया है। मानवीय क्रियाकलापों में नैतिक मानदंड शून्य होता जा रहा है। असीम आनंद की तीव्र इच्छा से ग्रस्त मानव अपने स्वार्थ के चक्रव्यूह में सीमित और संकीर्ण हो गया है।मानव एक सर्वश्रेष्ठ प्राणी है जो अपने मननशील, विचारशील और अग्रशील दृष्टिकोण से पूरे विश्व में भ्रातृत्व की भावना का उद्भव कर सकता है और संपूर्ण विश्व को एक बंधुत्व के सूत्र में बांध सकता है। जिसकी संतुष्टी और आनंद अवर्णनीय है। एक मानव ही मानव के प्रति समतामूलक और समानता के भाव से एक श्रेष्ठ मानसिकता का विकास कर सकता है। लेकिन इस प्रक्रिया में सहयोगात्मक दृष्टिकोण से ही पदार्पण करना संभव है।मानव जाति अदम्य शक्ति का स्त्रोत है जिसमें आंतरिक शक्तियां कूट-कूट कर भरी हुई है और जो संकल्प शक्ति के सहारे एकाग्र चित्त होकर जीवन पर्यंत एक विशिष्ट और कर्मठ व्यक्ति बन सकता है तथा मानवता का व्यापक अर्थ इस सृष्टि को दिखा सकता है।

मानव की सबसे बड़ी शक्ति उसकी इच्छा शक्ति है। वह स्वेच्छा के बल पर ही अपने मन और मस्तिष्क पर नियंत्रण कर सकता है तथा आवश्यकता के अनुरूप स्वयं को बदलकर निरंतर गतिशील रह सकता है। लेकिन परिवर्तन के भी अपने कुछ सिद्धांत होते हैं। अनुशासन बंधित, व्यक्तिगत व सामाजिक हित के दायरे में हुआ बदलाव ही नैतिक परिवर्तन कहलाता है।अनुशासन के अभाव में आजकल की संवेदनशील पीढ़ी को असफलताओं का सामना करना पड़ता है जिससे वह अधिक विद्रोही प्रवृत्ति के हो जाते हैं।इस आधुनिक युग के यांत्रिक मानव को समझना होगा कि प्रत्येक क्षण मूल्यवान है इसीलिए उसे अनुशासन की निर्मल व पावन अग्नि में जलकर, सच्चाई के तप रूपी मार्ग पर चल कर ही मानसिक विकृतियों को स्थिर और संयमित करना होगा। आजकल की युवा पीढ़ी को समझना होगा कि चरित्र ही सबसे बड़ा बल है, जो जीवन की टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियों में भी मर्यादापूर्वक जीने के लिए साहस व शक्ति प्रदान करता है और हमारे आत्मसंस्कार को पुनः जागृत कर आदर्श और यथार्थ को समन्वित करता है जिससे हम नूतन युग में अग्रसर होते हुए भी मनुष्यता का परित्याग ना करें।

पूर्व शोध अध्ययन-ब्रजेश सिंह, वर्षा रानी एवं संतोष कुमार सिंह (2016) में अपने शोध भारतीय संस्कृति का बदलता स्वरूप और पर्यावरण प्रदूषण, में पाया कि बदलते वैज्ञानिक युग में धीरे-धीरे हमारी संस्कृति का स्वरूप भी बदल रहा है। और साथ ही साथ मानव जीवन भी प्रभावित होता जा रहा है। वैज्ञानिक तकनीकी से बेमौसम कृत्रिम फसलें फल आदि उगाने लगे हैं। मनुष्य इस वैज्ञानिक युग के चलते प्रकृति को भूलता जा रहा है। प्रकृति ने हमें जाने कितनी अमूल्य बेटे उपहार में दी हैं। लेकिन वैज्ञानिक तकनीकी में अंधाधुंध मानव सब कुछ बोलता जा रहा है। मनुष्य की इस प्रकृति से जुड़ी सभी भावनाएं निरस्त होती जा रही हैं। भारत में हमारी संस्कृति ऐसे है जैसे शरीर में आत्मा हो प्रकृति में बसी लोक संस्कृति धीरे-धीरे विलुप्त होती जा रही है। आधुनिकता वादी युग में औद्योगिक कारखाने निकले जिससे प्रकृति के सभी अंग प्रभावित होते हैं लेकिन इस वार्थी इंसान को अपने अलावा कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा है।डॉ ललिता (2018) में अपने शोध भारतीय संस्कृति पर पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव, में पाया कि आधुनिकता और प्राचीन सभ्यता में किस प्रकार बदलाव आया है। हमारे भारतीय सभ्यता पर पाश्चात्य संस्कृति का अत्यधिक प्रभाव देखने को मिलता है। जीवन का हर क्षेत्र पाश्चात्य संस्कृति से ग्रस्त हैं चाहे वह हमारी भाषा क्षेत्र हो चाहे भारतीय पहनावा या फिर खाद्य आहार हर जगह हमें

पाश्चात्य संस्कृति की झलक देखने को मिलती है। आज भारतीय समाज अपनी ही सभ्यता का उपहास करते हुए पाश्चात्य सभ्यता को अपना में अपनाने में खुद को गौरवान्वित महसूस करता है। पाश्चात्य सभ्यता की चकाचौंध ने आधुनिक युग की युवा पीढ़ी को भ्रमित कर दिया है। और जिसके कारण आधुनिक युग के बढ़ते अत्याचार भ्रष्टाचार और व्यभिचार भारतीय संस्कृति पर गहरा प्रहार करते नजर आ रहे हैं। युवा पीढ़ी अनुचित सभ्यता का अनुकरण करने में लगी है जो कि बहुत ही चिंतनीय विषय बन गया है।सुरजीत सिंह बरवाल (2017) ने अपने शोध आधुनिकता अवधारणा स्वरूप तथा प्रक्रिया, में पाया कि आधुनिकता का संबंध व्यक्ति के रहन-सहन पहनावे से नहीं बल्कि उसकी मानसिकता पर निर्भर करता है। मनुष्य को चाहिए कि वह उसे आत्मसात करें। आधुनिकता का अर्थ नए आयामों को अपनाना है ना की किसी गलत दिशा में अग्रसर होना है सही मायने में आधुनिकता पुराने अंधविश्वासों वह रूडी वादियों को छोड़कर एक समृद्ध सोच से आगे बढ़ना है। यह प्रक्रिया अपनी सभ्यता को छोड़ने से नहीं बल्कि अपनी सभ्यता को ठीक से समझ कर उसे विकसित करना ही सही मायने में आधुनिकता है अर्थात यह मानव के जीवन को सभी क्षेत्रों मनोवैज्ञानिक सामाजिक राजनीतिक धार्मिक बौद्धिक सबको प्रभावित करता है लेकिन इसे नकारात्मक आचरण छोड़कर सकारात्मक आचरण से अपनाना चाहिए।

डॉ.दिवाकर गरबा (2013) ने अपने शोध भारतीय साहित्य में सांस्कृतिक समन्वय, में पाया कि हमारे जीवन का मूल आधार हमारे नैतिक मूल्य हैं जो हमारी संस्कृति में ही निहित है हमारी संस्कृति और साहित्य के मूल्यों की रक्षा अनेक रचनाकारों द्वारा की गई है उनकी रचनाओं ने नैतिक मूल्यों पर बड़े-बड़े आगाज किए हैं जिससे हमारी संस्कृति व सभ्यता का विनाश होने से बच सके।प्रदीप कुमार (2022) ने अपने शोध प्रोफेसर योगेंद्र सिंह के विशेष संदर्भ में सामाजिक परिवर्तन तथा समाज और परंपराओं में आधुनिकरण में पाया कि स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय सभ्यता और संस्कृति में तीव्र गति से परिवर्तन हुए हैं। इस शोध के अनुसार आधुनिकरण में शिक्षा के क्षेत्र में काफी हद तक विकास हुआ है। गांव में नगर दोनों ही विकसित हुए हैं लेकिन परिवर्तन की हर घड़ी को आधुनिकता का नाम देना उचित नहीं है। विकास की दिशा में अग्रसर होना ही सही रूप से आधुनिक परिवर्तन है लेकिन इसी के साथ अगर मानव अपनी नैतिकता को ताक पर रखकर अपने स्वार्थ के लिए उपभोक्तावादी दृष्टिकोण से अग्रसर होता है तो वह आधुनिकरण के नाम पर सिर्फ स्वार्थी मानव प्रवृत्ति है जो भावे भविष्य के लिए हानिप्रद हो सकती है। डॉक्टर प्रवेश कुमार पांडेय (2014) में अपने शोध शोध श्री के भारत की राजनीति में नेतृत्व नैतिकता एवं भ्रष्टाचार- एक विश्लेषण, में पाया कि पिछले कुछ दशकों से राजनीतिक दलों में आगे बढ़ने की होड़ लगी हुई है यह राजनीतिक दल निजी स्वार्थ के लिए ही सोचता है ना कि देश की उन्नति के लिए। जिसके परिणाम स्वरूप समाज में भ्रष्टाचार का बोलबाला बढ़ता जा रहा अनेक राज्यों में भ्रष्टाचार एवं भाई भतीजावाद को रोकने के लिए अनेक प्रयास में अधिनियम लागू किए गए। लेकिन इन सब का देश पर इतना अधिक प्रभाव देखने को नहीं मिलता और जो लोग सत्ता में है वह अपने प्रलोभन के लिए अनेक अनेक अनैतिक कार्यों में विलीन होते दिख जाते हैं। आज के दौर में राजनीति बस एक जीविका के साधन के रूप में देखी जाती है ना कि देश के विकास व उत्तरदायित्व के लिए। राजनीतिक सत्ता में एक राष्ट्रवादी नागरिक को अपने हित के बारे में सोच कर राष्ट्र के प्रति निष्ठावान होना चाहिए। अतः नैतिक मूल्यों को गिराने से ही भ्रष्टाचार का उद्भव हुआ है। आज के मानव को जीवन के नैतिक मूल्यों को समझना ही होगा तभी हम उन्नति के शीर्ष पर पहुंच सकते हैं।

निष्कर्ष:-

इन सभी कथनों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि आधुनिकता का संबंध एक सकारात्मक परिवर्तन से है ना स्वार्थी में उपभोक्तावादी मानव प्रकृति से। विडंबना यह है कि आधुनिकता का अर्थ यहां सिर्फ पाश्चात्य संस्कृति को अपनाने से है। अपराधिक मनोवृति आधुनिकता के नाम पर अनआधुनिकता, तानाशाह, नौकरशाह आदि प्रवृत्ति को अपना रहे हैं, जो कि मानव जीवन के लिए बहुत ही घातक सिद्ध होता जा रहा है।यह एक बहुत ही अफसोसजनक तथ्य है कि मानव जाति आधुनिकता के नाम पर अश्लीलता का चित्रण, यंत्रणाप्रियता, भ्रष्टाचार आदि बुरी नीतियां समाज में फैला रही हैं। आधुनिकता का सही अर्थ समझाने के लिए अनेक प्रयास किए जा सकते हैं जो निम्न प्रकार से हैं-

- मानव जाति समझना चाहिए कि वह तकनीकी का आवश्यकता अनुसार ही प्रयोग करें ना कि अपनी इच्छा अनुसार।
- मानव को समझना होगा कि आधुनिकता के लिवास में वह गुमराह होता जा रहा है। उसे स्वार्थी स्वभाव से अधिक मानसिक शांति को महत्व देना चाहिए।
- मनुष्य को प्रकृति के द्वारा दिए गए उपहार को अपनी आत्मा से सम्मान देना चाहिए और उसे एक अमूल्य धरोहर समझ कर उसका ख्याल रखना चाहिए। न कि अपने स्वार्थ में अंधा होकर प्राकृतिक खजाने को नष्ट करना चाहिए।
- आज की युवा पीढ़ी को सही मार्गदर्शन की आवश्यकता है जिससे वह हमारी प्राचीन सभ्यता को भी एक अमूल्य धरोहर समझकर उसको अपने में समाए रखें।
- हमें चाहिए कि हम तकनीकी विज्ञान के लाभ के साथ-साथ हानियों से भी अवगत हो जाएं। तभी हम वैज्ञानिक वस्तुओं का सही रूप से इस्तेमाल कर सकेंगे।

*****

संदर्भ सूची:-

1. डॉ दिवाकर गरवा (जून 2013) भारतीय साहित्य में सांस्कृतिक समन्वय, एसोसिएट फैकेल्टी, हिंदी विभाग, गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय, शब्द ब्रह्मा ,भारतीय भाषाओं की अंतरराष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका, ग्रेटर नोएडा ,गौतम बुध नगर , आईएसएसएन 2320 - 0871
2. डॉक्टर प्रवेश कुमार पांडेय (2014) भारत की राजनीति में नेतृत्व, नैतिकता एवं भ्रष्टाचार- एक विश्लेषण, जबलपुर, मध्य प्रदेश, शोध श्री, इंटरनेशनल रेफर जनरल ऑफ मल्टीडिसीप्लिनरी रिसर्च, वॉल्यूम 4 पेज नंबर 1-6
3. तस्सेम गुजराल (2014) शताब्दी स्मरण, लुप्त होती मानवता की तलाश, 23-26 पुस्तक वार्ता, अंक 50-51 जनवरी से अप्रैल
4. सुरजीत सिंह बरवाल (2017) आधुनिकता अवधारणा स्वरूप तथा प्रक्रिया, डॉ हरिसिंह गौर केंद्रीय विश्वविद्यालय, सागर मध्य प्रदेश, शरद ई पत्रिका आईएसएसएन 2455- 6440
5. डॉ ललिता (2018) भारतीय संस्कृति पर पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव, सहायक प्राध्यापक, राजनीतिक विज्ञान विभाग, राजकीय महाविद्यालय बीबी बुलंदशहर, शोध मंथन ,पेज 78-83
6. जय राम बेरवा (नवंबर 2018) आधुनिकरण एवं विकास का सामाजिक सांस्कृतिक व्यवस्था पर प्रभाव, समाजशास्त्र विभाग, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर, श्रृंखला एक शोधपरक वैचारिक पत्रिका, वॉल्यूम 6 आईएसएसएन 2321 290X
7. डॉ अर्चना त्रिपाठी (जुलाई 2021) साहित्य समाज एवं संस्कृति का अंत: संबंध, असिस्टेंट प्रोफेसर, जीसस एंड मैरी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, अपनी माटी , पृष्ट -35-36
8. प्रदीप कुमार (जनवरी 2022) प्रोफेसर योगेंद्र सिंह के विशेष संदर्भ में सामाजिक परिवर्तन तथा समाज और परंपराओं में आधुनिकरण, असिस्टेंट प्रोफेसर, नॉर्थ इंडिया कॉलेज हायर एजुकेशन नजीबाबाद
9. अनिल कुमार पांडेय डॉ श्रीकांत सिंह अप्रैल से (जून 2013, अक्टूबर से दिसंबर 2015) आधुनिक सिनेमा का युवा वर्ग पर प्रभाव, मीडिया मीमांसा
10. डॉ काजल वाजपेयी (2011) भारतीय और पाश्चात्य संस्कृति, आलेख, संगणकीय भाषावैज्ञानिक सी डेक,पुणे ,साहित्य शिल्पी

प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षण संस्थाओं के विद्यार्थियों का पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान तथा उसके प्रभाव के ज्ञान का अध्ययन

डॉ.मोहन लाल 'आर्य'
आचार्य
शिक्षा विभाग
आईएफटीएम विश्वविद्यालय, मुरादाबाद

परिना बंसल
सहायक प्राध्यापिका
शिक्षा विभाग
आईएफटीएम विश्वविद्यालय, मुरादाबाद

सार:-यह समस्त सृष्टि पचं महाभूतों (तत्वो) से बनी है यही पाँच तत्व सृष्टि को आवृत्त भी किये हुए हैं। इन्हें ही अंग्रेजी में फाइव एलीमेण्ट्स कहते हैं। तत्वों के भाँति-भाँति के गुणात्मक मिलन से मूर्त रुपों का निर्माण होता है और आकाश, पृथ्वी तथा भूगर्भ में जीवन पनपने लगता है। इन्ही तत्वों के लगभग अमूर्त रुप का आवरण हमें घेरे हुए है जिसे पर्यावरण कहते है। इसी पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान तथा उसके प्रभाव के ज्ञान का अध्ययन करना प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य है। जिसे जॉच ने के लिए प्रयोगात्मक अनुसंधान विधि का प्रयोग किया गया है। जनसंख्या के रूप् में मुरादाबाद जनपद के प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षण संस्थाओं में अध्ययनरत् विद्यार्थियों को सम्मिलित किया गया है।

मुख्य शब्द ; पर्यावरण, ज्ञान, प्राकृतिक तत्व।

प्रस्तावना:-पर्यावरण का भाव अधिक व्यापक है। आवरण एवं जलवायु का सम्बन्ध पृथ्वी के चराचर से है, किन्तु पर्यावरण शब्द में ब्रह्माण्ड के उन नक्षत्रो, ग्रहो, उपग्रहो, एवं अन्तरिक्ष आदि के वह रुप भी सन्निहित हैं, जो पृथ्वी के चराचर को किसी भी रुप में प्रभावित करते हैं। आजकल तो पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति आरै सूर्य की तीक्ष्ण किरणों से पृथ्वी की रक्षा करने वाली ओजोन परत भी पर्यावरण की परिधि में ले आई जा रही है। जिस प्रकार दार्शनिकों ने जीव, जगत और ब्रह्म के पारस्परिक सम्बन्ध एवं आदान-प्रदान की अभिव्यक्ति की है, उसी प्रकार तत्ववेत्ताओं ने जीव, जगत और ब्रह्माण्ड के परस्पर सम्बन्धो, आदान-प्रदानों और क्रियाओ- प्रतिक्रियाओं पर अपनी गवेषणायें प्रस्तुत की हैं। अन्योन्याश्रित सम्बन्ध के कारण कभी पर्यावरण विशेष प्रकार के वायुमण्डल से आवृत्त रहता है तो कभी वह वायुमण्डल को अधिक प्रभावित करता है। पेड़-पौधों वायु, पानी, ग्रहो, उपग्रहो, व अन्तरिक्ष का प्रभाव अनवरत पर्यावरण पर पड़ता रहता है। सच पूछा जाये तो मनुष्य ने प्रकृति के स्रोतों का उपयोग जब तक अपनी प्राकृतिक सुख-सुविधाओं के लिए केवल कम से कम जरुरतों में किया तब तक निश्चिन्त रुप से सुखी रहा, किन्तु जैसे-जैसे वह कृत्रिम सुख साधनों को बढ़ानें में होड़ करके प्राकृतिक संसाधनों का बिना रोक टोक के निर्दयता पूर्वक असीमित दोहन करने लगा, वैसे-वैसे प्रकृति के संतुलन को बिगाड़ता और अपने तथा अन्य प्राणियों के लिए आपत्तियों का सृजन करता गया एवं आज भी करता जा रहा है। वनों को अधिक काट कर उसने अपने लिए मिलने वाली दिव्य एवं पुष्ट प्राणवायु का अधिक क्षय तो किया ही, पशु-पक्षियों का जीवन भी दूभर कर दिया। कितने ही मनोहारी सुन्दर पशु-पक्षियों की तो जातियाँ-प्रजातियाँ ही नष्ट हो गई। मिल कारखानों से दूषित गर्म वायु, धुआ, राख, कृत्रिम गैसो, विषैली क्लोरोफ्लोरो कार्बन आदि के अधिक उत्पन्न होने, नदियों-जलाशयों आदि में अत्यधिक गन्दगी प्रवाहित होने, हमारे सुरक्षा कवच-ओजोन परत के पतली होने, अणु शक्तियों के प्रयोग आदि से धरती की छाती दहलने लगी है। ओजोन परत को चीर कर अब अन्तरिक्ष यान ब्रह्माण्ड में जाने लगे हैं। वहाँ उनके बिगड़ जाने टूट-फूट होने, निष्क्रिय एवं नष्ट होने से जो भारी-भारी अपरिमित कचरा, सुरक्षा कवच के ऊपर एकत्रित होता जा रहा है, जब वह अत्यधिक हो जाने पर आकाश से धरती पर बरसना प्रारम्भ करेगा तब हमारे जीवन की क्या दशा होगी, सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। आज के युग में जहाँ एक ओर मानव चाँद पर पहुँच चुका है वहीं दूसरी ओर उसे अपने चारो ओर के प्राकृतिक स्रोत समाप्त होते नजर आ रहे हैं। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि इन सबका कारण मानव ने स्वंय अपने विनाश को समझना शुरु कर दिया है और शायद अब, अनुभव कर लिया है या यह कह सकते हैं कि उसे आभास हो गया है कि उसके द्वारा बनाए गए यंत्र, संयत्र, परमाणु बम तथा अन्य आधुनिक उपकरण उसे अपने ही अस्तित्व को मिटाने की ओर ले जा रहे हैं। अगर इसी प्रकार जनसंख्या बढ़ती गई, शहरीकरण, आधुनीकीकरण और प्राकृतिक स्रोतों का विनाश होता रहा, तो हमारा और हमारी आने वाली पीढ़ियों का भविष्य क्या होगा, यही सोचकर भय-सा लगता है। जिस समाज के पास भोग की जितनी अधिक वस्तुएं होंगी, वह उतना ही अधिक विकसित माना जाएगा। किन्तु ये भोग की वस्तुएं आखिर आएंगी कहां से? इन सबका भण्डार तो पृथ्वी ही है, चाहे ये अनाधिकृत साधन धातु, खनिज तेल हों, और चाहे चारागाह, वन, कृषि भूमि व समुद्र जैसे नवीकृत होने वाले साधन हों। विपुलता वाले विकास के लिए मनुष्य ने तकनीकी की मदद से प्रकृति के भण्डारों का असीमित दोहन किया है। आज जो वैभव दिखाई देता है, वह स्वाभाविक नहीं है। यह तो अलीबाबा की तरह मनुष्य के हाथ में तकनीकी की चाबी लग गई है और प्रगति की जो सदियों की जमा पूंजी थी, उस चाबी से एकाएक हम समृद्ध हो गए, सम्पन्न हो गए। यह सम्पन्नता स्वाभाविक नहीं है।

शोध अध्ययन की आवश्यकता:-

पर्यावरण शिक्षा वह है जो पर्यावरण के माध्यम से पर्यावरण विषय में तथा पर्यावरण के लिए होती है। पर्यावरण शिक्षा शिक्षार्थी को उसके वातावरण के अनुकूल बनाने का प्रयास करती है। पर्यावरण शिक्षा व्यक्ति को पर्यावरण से अनुकूलन करना ही नहीं सिखाती अपितु उसको अपने अनुकूल उचित रीति से परिवर्तित करने के लिए प्रशिक्षित भी करती है। यह व्यक्ति को पर्यावरण पर नियंत्रण तथा पर्यावरण की सुरक्षा के लिए स्वंय पर नियंत्रण रखने की क्षमता प्रदान करती है। स्पष्ट है कि पर्यावरण की सुरक्षा तब ही संभव है जब एक ओर तो व्यक्ति स्वयं को पर्यावरण के अनुकूल परिवर्तित करना सीख ले और दूसरी ओर पर्यावरण को अपने अनुकूल इस प्रकार परिवर्तित करना सीख ले कि इस परिवर्तन से पर्यावरण को कोई अप्राकृतिक क्षति न हो। मनुष्य में इन दोनों गुणों का विकास पर्यावरण शिक्षा ही करती है। अतः पर्यावरण संरक्षण पर्यावरण शिक्षा की व्यावहारिक तथा अनुकूल प्रभावशीलता पर निर्भर करती है। आज सारी पर्यावरण समस्याओं का समाधान अकेले न तो कोई सरकार कर सकती है तथा न कोई गैर-सरकारी स्वंयसेवी संस्था अथवा संगठन। इस समस्या के समाधान के लिए प्रत्येक नागरिक, को आगे आना होगा। प्रत्येक नागरिक की इस दिशा में भागीदारी आवश्यक तथा अनिवार्य है। यह तभी सम्भव है जब प्रत्येक नागरिक पर्यावरण से सम्बन्धित इन समस्याओ, पर्यावरण के महत्व, प्रदूषण से होने वाली हानियाँ तथा पर्यावरण की सुरक्षा, संरक्षण और सुरक्षा के उपायों तथा विधियों से परिचित हो। उनके प्रति सजग हो तथा कार्य तथा व्यवहार इस दिशा में सम्पन्न करे।

पर्यावरण शिक्षा के द्वारा मनुष्यों को प्रशिक्षित किया जाना चाहिए कि वे प्राकृतिक संतुलन बनाये रखने का प्रयास करें। छात्रों को प्रत्येक स्तर पर पर्यावरण के स्रोतों के संरक्षण के लिए और उनमें यह आदत डालने के लिए कि वे स्वंय पर्यावरण को न दूषित करें, प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। उनको इस बात की शिक्षा दी जानी चाहिए कि पर्यावरण संकट के क्या कारण हैं और उसके क्या दुष्परिणाम हो सकते हैं। यदि मानव को यह शिक्षा दी जा सकी तो पर्यावरण संकट दूर करने में सहायता मिलेगी। इसी तथ्य को दृष्टिगत रखकर शोधार्थिनी ने शिक्षा के स्तरों (प्राथमिक एवं माध्यमिक) तथा इन स्तरां पर शिक्षा की प्रक्रिया का संचालित एवं गतिशीलता प्रदान करने वाले शिक्षकों के पर्यावरणीय ज्ञान और प्रदत्त ज्ञान के प्रभाव का अध्ययन प्रस्तुत शोध में करने का विनम्र प्रयास किया है।

शोध अध्ययन का महत्व:-"स्टाकहोम सम्मेलन में यह घोषणा की गई कि वर्तमान और भावी समस्याओं के लिए पर्यावरण की रक्षा एवं सुधार मानवता का अनिवार्य लक्ष्य हो गया है। इसलिए पर्यावरण शिक्षा जवान और बूढ़े, धनी और निर्धन, साक्षर और निरक्षर, ग्रामीणो, किसानो, औद्योगिक, श्रमिकों नगरीय सभ्रान्तो, अधिकारियो उद्योगपतियों, व्यापारियो, इंजिनियरो, प्रबन्धकों और प्रशासकों राजनीतिज्ञों एवं विकास नियोजकों सभी को दी जानी चाहिए। स्कूलों और विश्वविद्यालयों में इसे अनिवार्य शिक्षा के रुप में दिया जाना चाहिए"। आज यह आवश्यक हो गया है पर्यावरण की जन

चेतना के साथ-साथ इसके प्रारम्भिक पाठ्यक्रम से लेकर उच्च शिक्षा तक अनिवार्य पाठ्यक्रम घोषित किया जाये। ताकि भावी पीढ़ी को पर्यावरण के प्रति सचेतक के रुप में स्थापित किया जा सके। इसके लिये सभी शैक्षिक स्तरों पर विद्यार्थियो एवं शिक्षकों को पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान से लैस करना पड़ेगा। परन्तु इससे पूर्व पर्यावरण शिक्षा से सम्बन्धित अध्ययन सामग्री के स्थान पर व्यवहारात्मक निर्माण, उसके विद्यार्थियों के समक्ष सम्यक् प्रस्तुतीकरण एवं उनकी प्रभाविकता का आकलन आवश्यक बन जाता है। इसी तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियां के पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान के पूर्व स्तर को जाना तत्पश्चात स्तरों के लिय पृथक-पृथक संरचित पर्यावरण सम्बन्धी अध्ययन सामग्री और उसके अनुरुप अनुदेशन प्रदान कर प्रदत्त ज्ञान के प्रभाव को पूर्व ज्ञान से मापने का विनम्र प्रयास किया जायेगा। जिससे यह तथ्य पता लग सके कि पर्यावरणीय ज्ञान सम्बन्धी सम्प्रति स्तर क्या है और इसे प्रभावी संरचित प्रयासों से सुधारा जा सकता है।

शोध समस्या कथन:-

"प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षण संस्थाओं के विद्यार्थियों का पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान तथा उसके प्रभाव के ज्ञान का अध्ययन"

शोध अध्ययन में प्रयुक्त शब्दों का परिभाषीकरण:-

प्राथमिक विद्यालय: - शोध अध्ययन में प्राथमिक विद्यालयों से तात्पर्य नगर क्षेत्र में संचालित परिषदीय प्राथमिक विद्यालयों से है जिनमें कक्षा 1 से 8 तक शिक्षा प्रदान की जाती है। प्रस्तुत शोध अध्ययन में उच्च प्राथमिक स्तर के कक्षा 6 व 7 के विद्यार्थियों को सम्मिलित किया जायेगा।

माध्यमिक विद्यालय: - ऐसे विद्यालय जिनमें कक्षाऐं 9 से 12 संचालित होती हैं माध्यमिक विद्यालयों के अन्तर्गत आते हैं। प्रस्तुत शोध में माध्यमिक शिक्षा परिषद उ0प्र0 इलाहाबाद द्वारा मान्यता प्राप्त ऐसे विद्यालयों को माध्यमिक विद्यालय माना गया है जिनमें कला, विज्ञान व वाणिज्य विषय वर्ग की कक्षा 11 व 12 की कक्षायें संचालित हैं।

विद्यार्थी: -शिक्षा के किसी भी व्यवस्थित रुप से अध्ययन करने के लिये नामांकित व्यक्ति को विद्यार्थी कहा जाता है। प्रस्तुत अध्ययन में प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालयों में नामांकित छात्र तथा छात्राओं को विद्यार्थी वर्ग के अन्तर्गत सम्मिलित किया गया है।

पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान:-पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान के अन्तर्गत प्रकृति संतुलन की स्थापना करने तथा प्रदूषण के नियमों से सम्बन्धी विषय वस्तु का ज्ञान कराये जाने की संकल्पना निहित है। जनसंख्या वृद्धि, औद्योगिकीकरण के फलस्वरुप होने वाले विभिन्न प्रदूषणों आरै समस्याओं तथा मानव जीवन पर इनके प्रभाव तथा समस्याओं के निराकरण के उपयोग से सम्बन्धित ज्ञान ही पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान है।

पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान का प्रभाव: - पर्यावरण सम्बन्धी प्रदान किये गये ज्ञान से प्रदत्त सूचनायें, समझदारी, कौशल और मनोवृत्ति पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान का प्रभाव होती हैं। प्रस्तुत शोध अध्ययन में विविध शैक्षणिक स्तरों पर विद्यार्थियां और अध्यापकों के लिये निर्मित पर्यावरण ज्ञान सम्बन्धी संरचित सामग्री के अध्यापन के परिणामस्वरुप सम्बन्धित समूह वर्ग की पर्यावरण सम्बन्धी सूचना, समझदारी, कौशल और मनोवृत्ति में आया अन्तर ही पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान का प्रभाव माना गया है।

शोध अध्ययन के उद्देश्य:- प्रस्तुत शोध अध्ययन के उद्देश्य निम्नानुसार निर्धारित किये गये है -प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के पर्यावरण सम्बन्धी पूर्व ज्ञान तथा उपचार के बाद पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान के प्रभाव का अध्ययन करना।माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के पर्यावरण सम्बन्धी पूर्व ज्ञान तथा उपचार के बाद पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान के प्रभाव का अध्ययन करना।

शोध अध्ययन की परिकल्पनायें: - प्रस्तुत शोध अध्ययन में समस्या के समाधान हेतु निम्नलिखित परिकल्पनाआं का निर्धारण किया जायेगा - प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियां के पर्यावरण सम्बन्धी पूर्व ज्ञान तथा उपचार के बाद पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान के बीच कोई सार्थक अन्तर नहीं है। माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के पर्यावरण सम्बन्धी पूर्व ज्ञान तथा उपचार के बाद पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान के बीच कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध अध्ययन की विधि: - शोध अध्ययन में प्रयोगात्मक अनुसंधान विधि का प्रयोग किया गया है। मुरादाबाद जनपद के प्राथमिक एवां माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के पर्यावरणीय ज्ञान का परीक्षण करने के उपरान्त उन्हें पर्यावरण सम्बन्धी अध्ययन सामग्री उनके स्तरानुरूप उपलब्ध कराई जायेगी। जिसके अध्ययन के उपरान्त ज्ञान के प्रभाव का विश्लेषण करने के लिए पुनः परीक्षण किया जायेगा। इस प्रकार पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान के पूर्व तथा पश्चात परीक्षण के आधार पर इन शैक्षणिक स्तर के विद्यार्थियां के पर्यावरणीय ज्ञान के प्रभाव का अध्ययन कर निष्कर्ष स्थापित किये गये है।

शोध अध्ययन की जनसंख्या:-प्रस्तुत शोध अध्ययन में जनसंख्या से अभिप्राय मुरादाबाद जनपद के समस्त सरकारी प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालयो में अध्ययनरत् विद्यार्थियों से है। जनसंख्या में प्राथमिक विद्यालयों, में अध्ययनरत् 6 से 14 वर्ष (कक्षा 1 से 8 तक) के बच्चों के बीच से कक्षा 5 व 6 के विद्यार्थियो, माध्यमिक विद्यालयों में से कक्षा 10 व 11 में अध्ययनरत् विद्यार्थियों को शामिल किया गया है।

शोध अध्ययन के उपकरण:- प्रस्तुत शोध अध्ययन के लिए, उपयुक्त परीक्षण की उपलब्धता, आकलन की तकनीकी, अध्ययन के उद्देश्यों के आधार पर परीक्षणों का चयन निर्भर करता है। इन सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए शोधकर्ता द्वारा निम्न मापनियाँ निर्मित एवं मानकीकृत कर शोध अध्ययन हेतु पर्यावरण ज्ञान परीक्षण (प्राथमिक, माध्यमिक एवं महाविद्यालयों के विद्यार्थियों एवं शिक्षकों हेतु) प्रयुक्त की जायेगीं।

शोध अध्ययन हेतु प्रयुक्त सांख्यिकी विधि:-प्रस्तुत शोध अध्ययन के निष्कर्षो की सम्पुष्टि एवं सामान्यीकरण हेतु माध्य, प्रतिशत, प्रमाणिक विचलन, क्रान्तिक अनुपात, टी-परीक्षण आदि सांख्यिकीय तकनीकों का प्रयोग किया जायेगा।

शोध अध्ययन की परिसीमायें:- केवल मुरादाबाद जनपद के प्राथमिक एवं माध्यमिक के विद्यार्थियों तक सीमित रखा गया है।प्राथमिक विद्यालयों में केवल सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के कक्षा 5 व 6 में अध्ययनरत् विद्यार्थियों को चुना गया है।शोध अध्ययन में माध्यमिक शिक्षा परिषद उ0प्र0 द्वारा मान्यता प्राप्त सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों तथा शिक्षकों के बीच कक्षा 10 व 11 में अध्ययनरत् विद्यार्थी तथा शिक्षण कार्य करने वाले शिक्षकों को ही सम्मिलित किया गया है।

आंकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या:- प्रस्तुत शोध अध्ययन की निम्नलिखित सीमायें निर्धारित की है -

परिकल्पना परीक्षण – 1 "प्राथमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के पर्यावरण सम्बन्धी पूर्व ज्ञान तथा उपचार के बाद पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान के बीच कोई सार्थक अन्तर नहीं है" इस सम्बन्ध में परिगणित मूल्यों को तालिका संख्या 1 में प्रस्तुत किया गया है-

तालिका संख्या-1

प्राथमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के पर्यावरण सम्बन्धी पूर्व ज्ञान तथा उपचार के बाद पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान

परिगणित मूल्य	पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान का प्रभाव	
	पूर्व ज्ञान	उपचार उपरान्त ज्ञान
माध्य	20.36	24.63
प्रमाप विचलन	7.30	6.99
विद्यार्थियों की संख्या	297	297
माध्य अन्तर	4.27	
प्रमाप विभ्रम	0.59	
क्रान्तिक अनुपात	7.27	
स्वतन्त्रयांश	593	
सारणीय मूल्य 0.5 स्तर पर	1.96	
सार्थकता	7.27 >1.96 (सार्थक)	
परिकल्पना	अस्वीकृत	

तालिका संख्या 1 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों के पर्यावरण सम्बन्धी पूर्व ज्ञान तथा उपचार के बाद के ज्ञान में सार्थक

अन्तर है क्योंकि सन्दर्भित समूह के विद्यार्थियों के पर्यावरण सम्बन्धी पूर्व ज्ञान और उपचार के उपरान्त पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान के प्राप्तांकों का औसत मान क्रमशः 20.36 तथा 24.63 है। इन दोनों समूहों के माध्य प्राप्तांकों के अन्तर की सार्थकता जांच टी-परीक्षण के आधार पर की गयी है। इसके लिए दोनों माध्यों के अन्तर 4.27 में परिगणित प्रमाप विभ्रम 0.59 से भाग देकर क्रान्तिक अनुपात मूल्य प्राप्त किया है जो कि 7.27 प्राप्त हुआ है। यह परिगणित मूल्य 593 स्वतन्त्रयांश पर 5 प्रतिशत सार्थकता स्तर के लिए निर्धारित टी के सारणी मान 1.96 से अधिक है अतः माध्यों के बीच अन्तर सार्थक है और इस सन्दर्भ में हमारी परिकल्पना 'प्राथमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के पर्यावरण सम्बन्धी पूर्व ज्ञान तथा उपचार के बाद पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान के बीच कोई सार्थक अन्तर नहीं है' अस्वीकृत होती है। यदि प्राथमिक विद्यार्थियों के दोनों बार के प्राप्ताकों के औसत पर दृष्टिपात किया जाये तो स्पष्ट होता है कि उपचार के उपरान्त उनके प्राप्त प्राप्तांकों का औसत अधिक है। इस प्रकार इस आधार पर निष्कर्ष रुप में कहा जा सकता है कि प्राथमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों को प्रदान किये गये पर्यावरण सम्बन्धी उपचारात्मक ज्ञान का सकारात्मक प्रभाव इस समूह के विद्यार्थियों के पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान पर पड़ा है।

परिकल्पना परीक्षण – 2 "माध्यमिक विद्यालयों में विद्यार्थियों के पर्यावरण सम्बन्धी पूर्व ज्ञान तथा उपचार के बाद पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान के बीच कोई सार्थक अन्तर नहीं है" इस सम्बन्ध में परिगणित मूल्यो को तालिका संख्या 2 में प्रस्तुत किया गया है-

तालिका संख्या-2

माध्यमिक विद्यालयों कें विद्यार्थियों के पर्यावरण सम्बन्धी पूर्व ज्ञान तथा उपचार के बाद पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान

परिगणित मूल्य	पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान का प्रभाव	
	पूर्व ज्ञान	उपचार उपरान्त ज्ञान
माध्य	18.56	26.52
प्रमाप विचलन	6.44	6.44
विद्यार्थियों की संख्या	1279	1279
माध्य अन्तर	7.96	
प्रमाप विभ्रम	0.25	
क्रान्तिक अनुपात	31.28	
स्वतन्त्रयांश	2557	
सारणीय मूल्य 0.5 स्तर पर	1.96	
सार्थकता	31.28 >1.96 (सार्थक)	
परिकल्पना	अस्वीकृत	

तालिका संख्या 2 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के पर्यावरण सम्बन्धी पूर्व ज्ञान तथा उपचार के बाद के ज्ञान में सार्थक अन्तर है क्योंकि सन्दर्भित समूह के विद्यार्थियों के पर्यावरण सम्बन्धी पूर्व ज्ञान और उपचार के उपरान्त पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान के प्राप्तांकों का औसत मान क्रमशः 18.56 तथा 26.52 है। इन दोनों समूहों के माध्य प्राप्तांकों के अन्तर की सार्थकता जांच टी-परीक्षण के आधार पर की गयी है। इसके लिए दोनों माध्यों के अन्तर 7.96 में परिगणित प्रमाप विभ्रम 0.25 से भाग देकर क्रान्तिक अनुपात मूल्य प्राप्त किया है जो कि 31.28 प्राप्त हुआ है। यह परिगणित मूल्य 2557 स्वतन्त्रयांश पर 5 प्रतिशत सार्थकता स्तर के लिए निर्धारित टी के सारणी मान 1.96 से अधिक है अतः माध्यों के बीच अन्तर सार्थक है और इस सन्दर्भ में हमारी परिकल्पना 'माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों के पर्यावरण सम्बन्धी पूर्व ज्ञान तथा उपचार के बाद पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान के बीच कोई सार्थक अन्तर नहीं है' अस्वीकृत होती है। यदि माध्यमिक विद्यार्थियों के दोनों बार के प्राप्ताकों के औसत पर दृष्टिपात किया जाये तो स्पष्ट होता है कि उपचार के उपरान्त उनके प्राप्त प्राप्तांकों का औसत अधिक है। इस प्रकार इस आधार पर निष्कर्ष रुप में कहा जा सकता है कि माध्यमिक विद्यालयो के विद्यार्थियो को प्रदान किये गये पर्यावरण सम्बन्धी उपचारात्मक ज्ञान का सकारात्मक प्रभाव इस समूह के विद्यार्थियो के पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान पर पड़ा है।

निष्कर्ष:-प्राथमिक विद्यालयों के विद्यार्थियां को प्रदान किये गये पर्यावरण सम्बन्धी उपचारात्मक ज्ञान का सकारात्मक प्रभाव इस समूह के विद्यार्थियों के पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान पर पड़ा है।

माध्यमिक विद्यार्थियों के पर्यावरण सम्बन्धी पूर्व ज्ञान और उपचार के उपरान्त पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान के प्राप्तांको का औसत क्रमशः 18.56 तथा 26.52 है। क्रान्तिक अनुपात के आधार पर यह अन्तर सार्थक पाया गया है और निष्कर्ष रुप में यह कहा जा सकता है कि माध्यमिक विद्यार्थियों के समूह को प्रदान किये गये पर्यावरणीय ज्ञान के प्रभाव के परिणामस्वरुप उनके पर्यावरणीय ज्ञान में सार्थक सकारात्मक अन्तर आया है।

*****

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची: -

1. गर्ग, राजीव (1989); पर्यावरण और हम, दिल्ली: राजपाल एण्ड सन्ज कश्मीरी गेट, पृ0 14।
2. अग्रवाल, अनिल (1997); एडिशन इन टाइम्स आफ इण्डिया, नई दिल्ली: ट्यूसडे, अगस्त 19, डायरेक्टर आफ सेन्टर साइन्स एण्ड एनवायरनमेन्ट।
3. अरोड़ा, सावित्रि (2000); पर्यावरण की समस्याऐ, कानपुर: साहित्य निकेतन, पृ0 14-15।
4. नवभारत टाइम्स (1994); हिन्दी दैनिक जून 7।
5. सक्सेना, उदयवीर (1990); 'शिक्षाशास्त्र', आगरा: रंजना प्रकाशन मंदिर, प्रथम संस्करण, पृ0 56।
6. सक्सेना, ए0बी0 (2003); एनवायरनमेन्ट एजूकेशन, आगरा: नेशनल साइकॉलोजी कॉरपोरेशन।
7. रवीन्द्र (2002); रचना साहित्य अकादमी, नई दिल्ली: प्रथम संस्करण पृ0 86।
8. रस्तोगी, उर्मिला (2000); वेद तथा पर्यावरण, दिल्ली: जे0पी0 पब्लिर्षिंग हाऊस, पृ0-1
9. सिंह, बैजनाथ (1995); पर्यावरण रक्षा, नई दिल्ली: एस0 चन्द्र एण्ड कम्पनी लिर्मिटेड, पृ0 6।
10. बहुगुणा, सुन्दरलाल (1989):, सभ्यता का संकट और संस्कृति का संदेश, पर्यावरण के संदर्भ में, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृ0 5।
11. शर्मा, वी0एल0 एवं सक्सेना, वी0एम0 (2004); पर्यावरण शिक्षा, मेरठ: जय भारत प्रेस, पृ0 227।
12. शर्मा, पी0डी0 (2005); ईकोलॉजी एण्ड एनवायरनमेन्ट, मेरठ: रस्तोगी पब्लिकेशन।
13. शर्मा, विष्णु दत्त (1991); पर्यावरणीय प्रदूषण,दिल्ली: आर्य प्रकाशन मण्डल, पृ0

नागरिक पत्रकारिता: एक अध्ययन

पुलकित शर्मा
शोध छात्र
पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग
आईएफटीएम विश्वविद्यालय, मुरादाबाद

डॉ राजेश कुमार शुक्ला
सहायक आचार्य एवं विभागाध्यक्ष
पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग
आईएफटीएम विश्वविद्यालय, मुरादाबाद

सारांश :-
आजकल हम एक ऐसी दुनिया में रह रहे हैं जो मीडिया के गठन और प्रवाह में मौलिक रूप से परस्पर, अन्योन्याश्रित और संप्रेषित हो गई है। इसने आम लोगों को 'सूचना' प्रसारित करने की शक्ति दी, जिससे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता होती है, लेकिन इसके परिणामस्वरूप नकली समाचार और सूचना के अन्य दुष्प्रभाव भी होते हैं। बीसवीं शताब्दी के दौरान, श्रव्य-दृश्य संचार ने लेखन को प्रतिस्थापित कर दिया है जो लंबे समय तक सूचना क्षेत्र पर हावी रहा है। वेबसाइटों और सामाजिक नेटवर्क की एक नई पीढ़ी के उद्भव ने इक्कीसवीं सदी के लिए संचार, सूचना और पत्रकारिता के नए क्षेत्रों को खोजने में मदद की है। इसने पत्रकारिता के एक नए चेहरे यानी सिटीजन जर्नलिज्म को नया जीवन दिया। मल्टीमीडिया और नई सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) के कुशल लोकतंत्रीकरण के कारण, प्रत्येक नागरिक कभी-कभी उच्च अतिरिक्त मूल्य पर सूचना का प्रस्ताव देकर "संभावित रूप से एक रिपोर्टर बन सकता है"।

मुख्य शब्द: प्रभाव, नागरिक पत्रकारिता, मल्टीमीडिया, इंटरनेट, सोशल मीडिया, वेबसाइट

परिचय:- समाचार निर्णय, तथ्यों की पुष्टि, पुनरीक्षण स्रोत और एकत्रीकरण गेट कीपिंग के मूल तत्व हैं। अंतर्राष्ट्रीय पत्रकारिता अध्ययन इस बात पर जोर देते हैं कि 'पत्रकार अंतरराष्ट्रीय घटनाओं पर ज्ञान और समझ के लिए "द्वारपाल" हैं और तदनुसार, उन्हें अपने पेशेवर अभ्यास के लिए मानदंडों का एक सेट लागू करना चाहिए। लेकिन सिटीजन जर्नलिज्म के मामले में गेट कीपिंग नदारद है। लेकिन इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि नागरिक पत्रकारिता का प्रभाव जनता विशेषकर युवाओं की मानसिकता पर बहुत गहरा है। आधुनिक मीडिया परिदृश्य में, कुछ पत्रकार अब मूल सामग्री की रिपोर्ट नहीं कर रहे हैं, बल्कि पुन: प्रकाशन के लिए दिन की शीर्ष सुर्खियों को इकट्ठा करने और क्यूरेट करने के लिए बाहरी रिपोर्टों से आकर्षित कर रहे हैं। इस प्रक्रिया को एकत्रीकरण के रूप में जाना जाता है। "जर्नल ऑफ मास मीडिया एथिक्स" में एक अध्ययन में कहा गया है कि एकत्रीकरण में गेट कीपिंग फंक्शन भी शामिल है, क्योंकि कुछ वस्तुओं को शामिल करने के लिए चुना जाता है, जबकि अन्य को बाहर रखा जाता है। हालांकि, स्टुअर्ट एलन और एइनर थोरसन जैसे लोगों का तर्क है कि इस तरह के पदानुक्रमों के 'नागरिक पत्रकारों' के विघटन को पूरी तरह से डिजिटल प्रौद्योगिकियों के उदय के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है, हालांकि ये प्रौद्योगिकियां वास्तव में नागरिक संदेशों के प्रसार को अनुकूलित करती हैं। जब इंटरनेट आया तो नागरिक पत्रकारिता का आविष्कार नहीं हुआ था; हालाँकि, संचार का यह नया तरीका लोकतांत्रिक लगता है और इसे एक मीडिया उपकरण के रूप में देखा जाएगा जो एक सार्वजनिक मुद्दे को उजागर करता है। नागरिक पत्रकारिता की बढ़ती लोकप्रियता के साथ, यह आश्चर्य करना मुश्किल नहीं है कि क्या यह पेशेवर पत्रकारिता की जगह ले सकता है और मीडिया निगमों में एक बड़ा स्थान ले सकता है।

नागरिक पत्रकारिता क्या है?-
स्टुअर्ट एलन और एइनर थोरसन (नागरिक पत्रकारिता: वैश्विक दृष्टिकोण, न्यूयॉर्क: लैंग पब्लिशिंग, 2009) के अनुसार इस प्रकार की पत्रकारिता 'नागरिकता' और 'पत्रकारिता' दोनों की अलग-अलग अवधारणाओं से अनुप्राणित है, और आसपास बहुत अलग राजनीतिक शासन के तहत अभ्यास किया जाता है। दुनिया। सिटीजन जर्नलिज्म आज के मुख्यधारा के मीडिया के बाहर, उसके माध्यम से और उसके भीतर अपनी उपस्थिति दर्ज कराता है।' इस प्रकार, नागरिक पत्रकारिता नागरिक मीडिया का एक पहलू है जिसे इंटरनेट के साथ लाए गए संचार उपकरणों के उपयोग से परिभाषित किया जा सकता है - वेबसाइट, फ़ोरम, हर प्रकार के ब्लॉग जैसे करंट अफेयर्स-आधारित ब्लॉगिंग, साथ ही फोटो और वीडियो साझाकरण, या दुनिया भर में बड़ी संख्या में लोगों द्वारा घटनाओं पर प्रत्यक्षदर्शी कमेंट्री पोस्ट करना। "सार्वजनिक", "सहभागी", "लोकतांत्रिक", "गुरिल्ला" या "सड़क" पत्रकारिता भी कहा जाता है, नागरिक पत्रकारिता पत्रकारिता प्रथाओं में लगे उपयोगकर्ताओं द्वारा सृजन और अभिव्यक्ति के साथ-साथ दस्तावेज़ीकरण और जानकारी की अनुमति देती है।

'नागरिक पत्रकारिता' के संबंध में विभिन्न विद्यालय:-
"राजनेता अब यह नहीं कह सकते थे कि वे निजी में क्या विश्वास करते हैं और सार्वजनिक रूप से अलग हो जाते हैं। एक ब्लॉगर हमेशा सच्चाई का पर्दाफाश करता है।" - टिम लकहर्स्ट, पत्रकारिता के प्रोफेसर, केंटो विश्वविद्यालय जैसा कि पाओला प्राडो अपने लेख में संक्षेप में बताती हैं, 'नागरिक पत्रकारिता' की अवधारणा के संबंध में अलग-अलग स्कूल हैं। एक ओर निप (2006) नागरिक पत्रकारों को 'मूल समाचार सामग्री के निर्माता और प्रकाशक के रूप में परिभाषित करता है, जिन्हें सहायता नहीं मिलती है या पेशेवर पत्रकारों या स्थापित मीडिया आउटलेट्स की भागीदारी की आवश्यकता नहीं होती है'। दूसरी ओर विद्वान ल्यूक गोडे (2009) का मानना है कि नागरिक पत्रकार 'ऐसे व्यक्ति हैं जो मुख्यधारा के मीडिया आउटलेट्स में समाचार सामग्री का योगदान करते हैं और विशेष सामाजिक आंदोलनों के साथ जुड़ सकते हैं'। मार्शल मैक्लुहान, एक मीडिया दिग्गज, जो विश्व मीडिया को नियंत्रित करता है, ने एक नया सिद्धांत प्रस्तावित किया, अर्थात "माध्यम ही संदेश है", जो वर्तमान परिदृश्य और सामग्री में माध्यम के मूल्य पर जोर देता है, फिर भी राजा है।

नागरिक पत्रकारिता बनाम मुख्यधारा की पत्रकारिता:-
मीडिया से विश्वसनीयता की धारणा लोगों को बांट रही है। अमांडा हार्पर ने अपनी रिपोर्ट 'नागरिक पत्रकारिता बनाम पेशेवर पत्रकारिता' में, अपने द्वारा आयोजित एक वीडियो में इकट्ठा किया, इस सवाल पर लोगों की प्रतिक्रिया "क्या नागरिक पत्रकारिता पेशेवर पत्रकारिता की जगह ले सकती है? इसे होना चाहिए? यदि कुछ निश्चित रूप से किसी एक पर भरोसा नहीं करते हैं, तो अन्य समाचार संगठनों के प्रति अविश्वास रखते हैं - जैसा कि उनका मानना है कि मीडिया जो भी जानकारी चाहता है उसका खुलासा कर सकता है - अन्य लोग नागरिक और पेशे पत्रकारिता दोनों पर भरोसा महसूस करेंगे - लेकिन मीडिया से जानकारी को क्रॉस-चेक करेंगे। दूसरों के लिए, राय ब्लॉगर भरोसेमंद होते हैं क्योंकि "कम से कम उनकी राय वास्तविक होती है"। लेकिन एक अच्छी तरह से संसाधन वाली, विश्वसनीय समाचार कंपनी ढूंढना नागरिक ब्लॉग से कहीं बेहतर है। यह अधिक से अधिक संख्या द्वारा व्यक्त किया गया विचार है।

नागरिक पत्रकारिता कैसे काम करती है?-
वास्तव में एक पत्रकार को वस्तुनिष्ठ रहना चाहिए और नैतिकता के नियमों का पालन करना चाहिए। 'नागरिक पत्रकार' इन नियमों पर अच्छे कारणों से ध्यान नहीं देता है कि वह उनके बारे में नहीं जानता है और या सिर्फ चर्चा करने के बारे में सोच रहा है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और अवसर की समानता समाज में सार्वजनिक क्षेत्र के कामकाज के लिए आवश्यक शर्तें हैं। उनके उपयोगकर्ता टिप्पणियां प्रकाशित करने के लिए अक्सर नए संगठनों की वेबसाइटों जैसे द गार्जियन डॉट कॉम या उनके सोशल नेटवर्क खातों - फेसबुक और ट्विटर का उपयोग करते हैं। यदि कुछ लोग इसे किसी भी प्रकार की अपमानजनक टिप्पणी लिखकर पत्रकार के काम की आलोचना करने के तरीके के रूप में देखते हैं, तो अन्य इसे सराहनीय टिप्पणियों को साझा करके, कोई मुद्दा उठाकर या जानकारी का

एक टुकड़ा जोड़कर प्रतिक्रिया करने का अवसर मानते हैं, जिसका पत्रकार ने उल्लेख नहीं किया है, शायद इसलिए कि उसे इसकी जानकारी नहीं थी। नागरिक पत्रकार पत्रकारिता आचार संहिता का उल्लंघन कर सकते हैं। किसी भी आतंकवादी हमले के मामले में; सोशल नेटवर्क पर अक्सर प्रसारित होने वाले वीडियो या फोटो होते हैं। यदि समाचार संगठन इससे लाभान्वित हो सकते हैं, तो यह एक मूलभूत मुद्दा भी उठाता है: व्यक्ति की गोपनीयता का। कुछ को वेब प्लेटफॉर्म से हटाना होगा, क्योंकि इसकी सामग्री चौंकाने वाली हो सकती है और किसी व्यक्ति की गरिमा को प्रभावित कर सकती है। हालाँकि, पत्रकार इस बात से अवगत हैं कि उन्हें क्या प्रकाशित करने की अनुमति है या नहीं। इसका मतलब यह नहीं है कि वे हमेशा उन सिद्धांतों और नैतिकता संहिताओं का सम्मान करते हैं जिनका उन्होंने सम्मान करने के लिए प्रतिबद्ध किया था। बस यह सोचने की जरूरत है कि जनहित में होते हुए भी कितनी दूर जाना संभव है। एक नागरिक की तुलना में पत्रकारों को एक कठिन मुद्दे से निपटने के बारे में अधिक ज्ञान होना चाहिए। 'शिफ्टिंग बाउंड्रीज़: ऑब्जेक्टिविटी, सिटिजन जर्नलिज्म एंड टुमॉर्स जर्नलिस्ट्स' के लेखक बोलेट बागर्ड के अनुसार, 'एक पत्रकार न केवल प्राकृतिक आपदाओं का शिकार होता है, बल्कि कोई ऐसा व्यक्ति होता है जो दहशत और भय से ऊपर उठकर रिपोर्ट करने की उम्मीद कर सकता है। '। समाचार संगठनों को अक्सर योग्य व्यक्तियों के हस्तक्षेप की आवश्यकता होती है - उदाहरण के रूप में मनोविज्ञान पर अपेक्षा - किसी विषय पर लेख या किसी अन्य उत्पादन की गुणवत्ता में सुधार करने के लिए। वास्तव में, इस प्रकार के नागरिक की मदद महत्वपूर्ण है क्योंकि उसे उस विषय पर ज्ञान है जो एक पत्रकार के पास नहीं है।

व्यावसायिक पत्रकारिता के एक उपकरण के रूप में नागरिक पत्रकारिता:

"सहभागी" पत्रकारिता या रिपोर्टिंग कहा जाता है, यह नई पत्रकारिता तब होती है जब पाठक पत्रकार के साथ सहयोग कर रहा होता है। मीडिया अब लोगों से अपनी सामग्री को समृद्ध करने का आह्वान करता है क्योंकि यह विशेष रूप से फ्रांस 24 का मामला है, फ्रांसीसी टेलीविजन जो अंग्रेजी, स्पेनिश, अरबी और फारसी में भी प्रसारित होता है। 2007 में लॉन्च किया गया, द ऑब्जर्वर्स फ्रांस 24 प्लेटफॉर्म है जो लोगों को एक वास्तविक भागीदार बनने का अवसर देता है - पर्यवेक्षक में - समाचार प्रसार में। अगर फ्रांस 24 पहले से ही 35 देशों के 430 पत्रकारों की गिनती करता है, तो द ऑब्जर्वर्स ने कंपनी को बारह वर्षों से थोड़ा अधिक समय में 5000 योगदानकर्ता नेटवर्क बनाने में मदद की। प्रसिद्ध अमेरिकी टेलीविजन चैनल केबल न्यूज नेटवर्क (सीएनएन) भी इस तकनीक पर वापस आ गया है। CNN iReport, 2010 में लॉन्च किया गया चैनल "पूरी तरह से उपयोगकर्ता-जनित साइट है जहाँ सामग्री समुदाय द्वारा निर्धारित की जाती है।" इस कार्रवाई से कंपनी ने नागरिक को सूचना के केंद्र में रखने का फैसला किया है। वह अब दर्शक नहीं बल्कि अभिनेता बन गए हैं। यह स्पष्ट रूप से कंपनी पत्रकारों को एक बयान में घोषित करेगी: "iReport.com पूरी तरह से उपयोगकर्ता-जनित साइट है जहां सामग्री समुदाय द्वारा निर्धारित की जाती है।" iReporters कई शौकिया ब्लॉगर्स के विपरीत, जिनके संदेश कभी-कभी केवल सीमित संख्या में ही लोगों तक पहुँच सकते हैं, अपने संदेशों को मल्टीमीडिया प्लेटफार्मों की एक विस्तृत विविधता में प्रसारित करने के लिए सीएनएन के प्रभाव का उपयोग करते हैं। इस प्रणाली से दोनों लाभ: iReporters अपनी अवैतनिक सामग्री को व्यापक दर्शकों द्वारा देखे जाने के लिए प्राप्त करते हैं, पारंपरिक पत्रकारिता के साथ लंबे समय से जुड़े सामाजिक पदानुक्रमों को उजागर करते हैं।इंटरनेट के निर्माण के साथ ब्लॉग आए। हालांकि, हाल ही में ऐसा लगता है कि वे अधिक जगह लेते हैं और लोगों पर वास्तविक प्रभाव डालते हैं। उनमें से कुछ नागरिक ब्लॉग हाउस का उपयोग "सेवा के रूप में करते हैं जो उस नागरिक के लिए एक प्रस्ताव हो सकता है जो समाचार ब्लॉग का हिस्सा लेना चाहता है" स्टीव आउटिंग्स ने द 11 लेयर्स ऑफ सिटीजन जर्नलिज्म में बताया है। विकी पत्रकारिता सहभागी पत्रकारिता का दूसरा पहलू है जहां पाठक संपादक होते हैं। लोग विकि तकनीक का उपयोग कर रहे हैं - वे सीधे वेबसाइट सॉफ़्टवेयर से सामग्री को संशोधित कर सकते हैं - उपयोगकर्ताओं के बीच सहयोग की सुविधा के लिए। विकिन्यूज़ एक मुक्त सामग्री समाचार स्रोत का सबसे बड़ा उदाहरण है।

क्या नागरिक पत्रकारिता पेशेवर पत्रकारिता के लिए एक वास्तविक खतरा है?टिम लकहर्स्ट के अनुसार, "पेशेवर पत्रकारिता जीवित रहेगी क्योंकि यह आवश्यक है और बाजार इसे आपूर्ति करने का एक तरीका खोज लेगा।" हेनरिक आर्नेब्रिंग ने अपने लेख 'कुछ भी जो आप कर सकते हैं, मैं बेहतर कर सकता हूं? छह देशों में नागरिक पत्रकारिता पर पेशेवर पत्रकार, 6 यूरोपीय देशों: यूके, एस्टोनिया, जर्मनी, इटली, पोलैंड और स्वीडन के पत्रकारों पर हाल ही में किए गए सर्वेक्षण के परिणाम का खुलासा करते हैं। उन्होंने हाल ही में एक सर्वेक्षण का उल्लेख किया, जिसे ओ'सुल्लीवन और हेनोनन ने महसूस किया, जिन्होंने अपने पेशे के भविष्य के बारे में संभावित चिंता के बारे में 11 यूरोपीय देशों के पत्रकारों का साक्षात्कार लिया। इससे पता चलता है कि उनमें से अधिकांश को नागरिक पत्रकारिता और अन्य मीडिया विकल्पों से विशेष रूप से खतरा महसूस नहीं हुआ; वे 51% थे जो सोचते थे कि नागरिक "वास्तविक पत्रकारिता" को गठन नहीं करते हैं।

निष्कर्ष:

इसलिए, नागरिक पत्रकारिता को सार्वजनिक क्षेत्र में पारंपरिक जनसंचार माध्यमों की भूमिका के प्रदर्शन में खामियों की सीधी प्रतिक्रिया के रूप में देखा जा सकता है। दो प्रकार की पत्रकारिता एक सहयोगी संबंध बनाए रखती है। इसके बाद, नागरिक साधारण रिसीवर की भूमिका से ट्रांसमीटर की भूमिका में चला जाता है, जो स्वयं एक मीडिया बन जाता है। और ट्विटर, फेसबुक, यूट्यूब के साथ-साथ ब्लॉग जैसे सामाजिक नेटवर्क के उद्भव के साथ, नागरिक पत्रकारों के पास समाचार बनाने और दर्शकों को आकर्षित करने में मुख्यधारा और कुलीन पत्रकारों की श्रेणी में शामिल होने के नए अवसर हैं। इस प्रकार, वैकल्पिक पत्रकारिता भ्रष्टाचार को उजागर करने, जवाबदेही को प्रोत्साहित करने, शक्ति के दुरुपयोग का दस्तावेजीकरण करने और स्थानीय और अंतर्राष्ट्रीय समसामयिक मामलों पर वैकल्पिक विचार देने की कई भूमिकाएँ निभाती है। हालांकि, यह उजागर करना महत्वपूर्ण है कि पत्रकारिता एक ऐसा पेशा है जिसके लिए विशेष ज्ञान की आवश्यकता होती है, विशेष रूप से नैतिकता और सिद्धांत के संदर्भ में। हम जिस संख्यात्मक क्षेत्र में रह रहे हैं, लोग इसे भूल जाते हैं। और नागरिक पत्रकारिता नए कोणों और स्रोतों, या अपने आप में एक स्रोत खोजने के लिए एक और पत्रकारिता उपकरण है। पेशेवर पत्रकारिता पर इसका महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है; हालाँकि, इसकी सीमाएँ हैं। एक ओर, यह संवेदनावाद की ओर प्रवृत्त हो सकता है और दूसरी ओर वस्तुनिष्ठता के प्रश्न का अक्सर सम्मान नहीं किया जाता है।

*****

सन्दर्भ:-

1. http://edition.cnn.com/specials/opinions/cnnireport
2. Stuart Allan and Einar Thorsen, (Citizen Journalism: Global Perspectives, 2009).
3. Wikipedia
4. Amanda Harper, 'citizen journalism v/s professional journalism',
5. Bolette Baagaard, 'shifting boundaries: Objectivity, citizen journalism and tomorrow's journalists',
6. Steve Outings, the 11 Layers of Citizen Journalism.

मानवाधिकारों की क्रियान्विति में सतत विकास लक्ष्यों का महत्व एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

पुष्पेन्द्र सिंह
डॉक्टरल फैलो
(भारतीय समाज विज्ञान अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली)
राजनीति विज्ञान विभाग राजस्थान विष्वविद्यालय, जयपुर

शोध सारांष - मानवाधिकार एवं सतत विकास की संकल्पना 20वीं सदी की महत्वपूर्ण संकल्पना रहीं हैं। दोनों ही संकल्पना क्रमषः 'मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा' और ब्रंटलैण्ड आयोग' की रिपोर्ट 'हमारा साझा भविष्य' के बाद वर्तमान रूप और ख्याति को प्राप्त हुई है। मेरे द्वारा प्रस्तुत शोध पत्र में मानवाधिकार एवं सतत विकास के मध्य अन्तरसंबंध को समझाने का प्रयास किया गया है। शोधसार के रूप में मानवाधिकार एवं सतत विकास अन्योन्यरित संकल्पना हैं जिन्हें संयुक्त राष्ट्र संघ ने मूर्तरूप देने का प्रयास किया है। सतत विकास मानवाधिकारों का ही कार्यकारी रूप है तो दूसरी ओर सतत विकास को मानवाधिकारों के सिद्धांतो और तंत्रों के माध्यम से ही प्राप्त करने पर बल दिया गया है। साथ ही सतत विकास की अवधारणा में संन्निहित दायित्व भाव को प्रकट कर आगामी पीढ़ी के अधिकार से अबद्ध किया गया है। अर्थात अधिकार और कर्तव्य की अवधारणा के माध्यम से सतत विकास को समझने का प्रयास और मानवाधिकारों के साथ सतत विकास के मजबूत गठजोड़ को समझने का प्रयास किया है। इस शोध सारांष के रूप में कहा जा सकता है कि संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रत्येक प्रयास में मानव कल्याण एवं विष्व शांति निहित है जिसे प्राप्त करने के लिए न्छव् ने समय समय पर विभिन्न प्रयासों से अपनी प्रासंगिकता को विष्व पटल पर दृढ़ करने का प्रयास किया है। उसी प्रयास की कडी के रूप में 21वीं सदी के प्रारम्भिक दषकों में विकसित सतत विकास की संकल्पना विकास के ऐसे आयाम स्थापित कर सकती है जो कि मानव सभ्यता को 'चिरकाल' का वरदान सिद्ध हो।

संकेताक्षर -
मानवाधिकार, सतत विकास, कर्तव्य, समावेषी विकास, संयुक्त राष्ट्र संघ,

प्रस्तावना:-

मनुष्य के साथ अधिकार का संबंध उसके अस्तित्व के साथ जुड़ा हुआ है। मनुष्य का अस्तित्व किसी भी रूप में है उसके अस्तित्व में होने के नाते उसके अधिकार सुनिष्चित हैं। अर्थात अधिकारों की संकल्पना शून्य में नही पनपी अपितु मानव जीवन के आदि और अन्त के मध्य एक महत्वपूर्ण अवधारणा के रूप में विकसित हुई हैं। अधिकार मानव जीवन की वे परिस्थितियां हैं जिनके बिना कोई मानव अपना विकास नहीं कर सकता। अधिकारों की अवधारणा 17वीं 18वीं सदी में ही नहीं विकसित हुई अपितु 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध तक मानव अधिकारों की अवधारणा का तीव्र गति से पुनरूत्थान हुआ तथा 20वी सदी के मध्य में द्वितीय विष्व युद्ध के खण्डरों पर 'मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा' के साथ ही अधिकारों की नागरिक एवं राजनीतिक अवधारणा का सर्वव्यापीकरण हुआ।10 दिसम्बर 1948 को मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा सम्पूर्ण मानव जगत की एक जीवन्त उपलब्धि थी तथा उस भविष्य की आषा और उम्मीद थी। जिसमें मानव अपना विकास समावेषिता के साथ कर सके। और मानव गरिमा को स्थापित किया जा सके। आदि मानव के विकास से आधुनिक सभ्यता के स्थायित्व की यात्रा में मानवाधिकार नाभकीय स्थिति में रहा है और प्राकृतिक अधिकारों के विचार से आधुनिक मानवाधिकार की अवधारणा तक विकसित हुआ है। मानवाधिकारों का विचार क्षेत्र नागरिक अधिकारों की तुलना में अत्यन्त विस्तृत हैं मानव के नैतिक और सामाजिक चेतना जितनी विकसित होती जायेगी मानवाधिकारों का विचार क्षेत्र उतना ही संवर्धित होता जायेगा। किसी भी समाज को नैतिक दृष्टि से उन्नत बनाने के लिए मानवाधिकारों को अधिक से अधिक नागरिक अधिकारों के रूप में स्थापित करना होगा। मानवाधिकार मनुष्य के व्यक्तिगत, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और नैतिक विकास के लिए न केवल मूल आधार है वल्कि सामाजिक उत्थान एवं सामाजिक मूल्यों के सम्वर्धन व संरक्षण हेतु निष्चत शर्त भी हैं। मानवाधिकारों को मूर्त रूप देने के प्रयास की कडी के रूप में अनेक कदम उठाये गये जिनमें प्रमुख रूप से सयुंक्त राष्ट्र संघ द्वारा की गई मानवाधिकारों की घोषणा को प्रवर्तन में लाने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ ने ही 6 दिसम्बर 1966 ई.वी. में दो प्रसंविदाएं अंगीकृत की -

(क) सिविल और राजनैतिक अधिकारों पर प्रसंविदा
(ख) आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर प्रसंविदा

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा अपनाई गई ये प्रसंविदाएं एक दूसरे की पूरक थी एक की अनुपस्थिति में दूसरी की कल्पना बेमानी होगी। सार्वभौम घोषणा केवल आदर्ष कथन के रूप में विष्व पटल पर दृष्टिगोचर होती है। इसे मूर्त रूप देने के लिए किसी भी प्रकार का बाध्यकारी तंत्र तथा संधी प्रवर्तन में नहीं थी।1 इस कमी की प्रतिपूर्ति के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ ने दिसम्बर 1966 में प्रसंविदाओं को अंगीकृत किया तथा दोनो प्रसंविदाएं दिसम्बर 1976 में प्रवृत हुई जब उपेक्षित संख्या में 35 सदस्य राज्यों ने उनका अनुसमर्थन कर दिया।2 संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा स्वीकृत प्रथम प्रसंविदा सिविल एवं राजनैतिक अधिकार प्रसंविदा के अन्तर्गत प्रथम पढ़ी के अधिकारों को सम्मलित किया गया जिनका स्वरूप मूलरूप से नकारात्मक है। जबकि द्वितीय प्रसंविदा आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकार का स्वरूप सकारात्मक अधिकार का है इन अधिकारों को प्राप्त करने के लिए राज्य से सक्रिय भूमिका की अपेक्षा रहती है। इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर अनेक बहुपक्षीय संधियों जिनमें प्रमुख रूप से सर्वाधिक महत्वपूर्ण संधी संयुक्त राष्ट्र चार्टर ही है जो विष्व के सभी राष्ट्रों द्वारा आत्मार्पित किया गया है। संयुक्त राष्ट्र संघ के इस चार्टर के अतिरिक्त न्छव् तथा उसके विभिन्न अभिकरणों द्वारा महत्वपूर्ण बहुपक्षीय मानवाधिकार संधी की गई हैं। जिनका स्वरूप पक्षकारों पर बाध्यकारी हैं। जिनमें प्रमुख रूप से यातना तथा अन्य क्रूरतापूर्ण, अमानवीय या अपमान जनक व्यवहार या दण्ड पर अभिसमय (1984) अन्तर्राष्ट्रीय रंगभेद, अपराध दमन और दण्ड अभिसमय (1973) महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार के भेदभाव की समाप्ति पर अभिसमय (1979)3 आदि वैष्विक प्रयासों के इतर क्षेत्रिय स्तर पर भी अनेक प्रयास किये गये उनमें प्रमुख है-

यूरोपिय अभिसमय:- यूरोपिय परिषद के सदस्यों ने 1950 में इस अभिसमय को अंगीकृत किया तथा 1953 में इसे अधिनियमित किया। मानवाधिकार अमेरिकी अभिसमय, 1969 - लैटिन अमेरिका राज्यों द्वारा 1969 में इस मानवाधिकारवादी अभिसमय को अंगीकृत कर आत्मार्पित किया। मानवाधिकारों पर अफ्रीकी चार्टर - 1981 तथा कामनवेल्थ के अन्तर्गत सिंगापुर घोषणा 1971 तथा लुसाका घोषणा अगस्त, (1979)4 आदि अनेक प्रयास मानवाधिकारों की घोषणा को मूर्त रूप क्रियान्वित करने के लिए वैष्विक, क्षेत्रिय एवं राष्ट्रस्तर पर अपने संविधानों में नागरिक अधिकारों के रूप में परिलक्षित होते है। मानवाधिकार मानव को मानव होने के नाते प्राप्त वे अधिकार है जिन्हें नैसर्गिक कहा जा सकता है मानव अधिकारों की संकल्पना मनुष्य के जन्म से आबद्व है 'मानव अधिकार' पद भले ही द्वितीय विष्व युद्व के छटते बादलों की छाया में अन्तर्राष्ट्रीय चार्टर एवं अभिसमयों से उत्पन्न हुआ है परन्तु इसके विकास की पटकथा मानव विकास की गाथा के साथ पुष्पित एवं पल्लवित हुई है। मानवाधिकार अपने आदिस्वरूप 'प्राकृतिक विधी के सिद्वान्तों की पृष्ठभूमि पर विकास की सतत गति से आबद्व मानव व्यक्तित्व में समाहित आधुनिक राष्ट्रों के संविधानों तथा राष्ट्र की नीतियों में स्वंय को उन्नत कर रहा है। मानव विकास की कडी में मानव के समग्र एवं सतत् विकास के लिए वैष्विक एवं वैयक्तिक स्तर पर राष्ट्रों ने बहुत प्रयास किये जिनका प्रतिफल मानव कल्याण के रूप में हमारे समक्ष प्रकट हुआ है। परन्तु विकास की इस अनवरत धारा में समावेषिता एवं निरंतरता के अभाव के कारण धारा का प्रवाह मंद होकर पंक में परिवर्तित होने लगा है। जिससे मानवविकास के क्रम में भविष्य की नस्लों की असुरक्षा के भाव से वर्तमान पीढ़ी ने स्वयं को सूचित कर विकास की धारा को अविरल एवं अनवरत करने हेतु कटिबद्व किया है और मानवाधिकारों की रक्षार्थ विकास के

विभिन्न स्वरूपों को स्वीकार किया है। यद्यपि विष्व पटल पर मानवाधिकारों को प्राप्त करने हेतु विकास के विभिन्न स्वरूपों के अन्तर्गत उपलब्धियों के विभिन्न स्तरो को प्राप्त किया है लेकिन नवीन चुनौतियॉ वांछित लक्ष्यों के प्राप्ति के मार्ग में अवरोधक के रूप में प्रकट हुई है इन्ही चुनौतियों का सामना करने के लिए संयुक्त राष्ट्र द्वारा नई सहस्त्राब्दि के प्रारम्भ में 'सहस्त्राब्दि विकास लक्ष्यों' जिनमें आठ लक्ष्य निर्धारित किये जिन्हें सन 2000 से 2015 के समयान्तराल में प्राप्त करना था।5 जिनमें से कुछ लक्ष्यों को प्राप्त करने में न्छव् ने पूर्ण नही परन्तु सराहनीय सफलता प्राप्त की कुछ में आंषिक उपलब्धि ही न्छव् के ग्राफ पर दृष्टिगत हुई। विगत दषकों में उत्पन्न अनेक चुनौतिया हमारे समक्ष यथावत एवं जटिल रूप में प्रकट होती रही उन्ही के समाधान हेतु सितम्बर 2015 को विभिन्न भागीदार राष्ट्रों ने न्छव् की महासभा के पटल पर एक महत्वाकाक्षी एजेंण्डा ''ट्रांसफॉर्मिंग अवर वर्ल्ड एजेंण्डा 2030 के अन्तर्गत सतत् विकास के लक्ष्य को स्वीकार किया जिसके अन्तर्गत 17 लक्ष्य और 169 प्रयोजन तय किये गये।[6] सतत् विकास सतत् विकास परार्थ की भावना से ओतप्रोत एक उदार एवं आधुनिक विचार है जिसके अन्तर्गत मानव अपने लाभ से पूर्व आगामी मानव संतति के लाभ को सुनिष्चित करता है। सतत् विकास संकल्पना का विकास:- सतत् विकास का भाव मानव जगत की अनेकों सभ्यताओं एवं संस्कृतियों में परिलक्षित होता है। भारतीय संस्कृति में प्रकृति पूजा व प्रेम सन्तोष ही परम सुख, अपरिग्रह, गांधी जी का ट्रस्टीषिप व ग्राम स्वराज, वसुधैव कुटुम्बकम् साईं इतना दीजिए..साधु न भूखा जाय, आदि अनेक सिद्वान्त संपोषणीय एवं समावेषी विकास के भाव को अपने अन्तर्गत समाहित किये हुए है। विकास की संकलपना अपनी उत्पति से नई नही है बल्कि आधुनिक युग में अपनी महत्वता के कारण और भी प्रासंगिक हो उठी है।

सतत विकास को विष्व पटल पर जीवंत बनाने में सहायक कुछ ऐतिहासिक घटना क्रम -ब्रंटलैण्ड आयोग:- संयुक्त राष्ट्र संघ ने पूर्व नार्वोजियन प्रधानमंत्री ग्रो हर्लेम बंरटलैण्ड की अध्यक्षता में 21 सदस्यीय आयोग 'पर्यावरण एवं विकास पर संयुक्त राष्ट्र विष्व आयोग' 1983 में गठित किया जिसने अपनी रिपोर्ट 'हमारा साझा भविष्य'1987 में प्रस्तुत की'।7 जिसमें सतत् विकास पर विष्व का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। और सतत् विकास शब्दाली चलन में आई। इस आयोग ने विकास के लिए परिवर्तन हेतु वैष्विक प्रारूप का प्रस्ताव पेष किया। ब्रंटलैण्ड रिपोर्ट ने हमारे आचरण एवं शासन में पुनर्विचार करने पर बल दिया। सामान्य मानविकी की आषा एवं आकाक्षाओं को प्राप्त करने के लिए पुरानी समस्याओं पर नये सिरे से आचरण करने पर प्रेरित किया। पृथ्वी शिखर सम्मेलन (1992):- (पर्यावरण और विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन) वर्ष 1992 में ब्राजील की राजधानी रियो. डी जेनेरियो में पृथ्वी सम्मेलन का आयोजन किया गया। आयोजन का मुख्य उददेष्य विकास के साथ-साथ पर्यावरणीय सन्तुलन को स्थापित करने का था। इस सम्मेलन में सतत् विकास से संबंधित कार्य योजना अपनाई गई जिसे एजेण्डा 21 के नाम से जाना जाता है। जिसे मूर्त रूप देने के लिए 'सतत् विकास आयोग' का गठन किया गया। रियो 10 (पृथ्वी सम्मेलन 2002) यह सम्मेलन जोहॉसवर्ग घोषणा के नाम से भी जाना जाता है।, इसे 'सतत् विकास पर विष्व सम्मेलन' भी कहा गया है। इस सम्मेलन में 'एजेंण्डा-21' 'सहस्त्राब्दि विकास लक्ष्य' को क्रियान्वित करने पर बल दिया। रियो 20 (सतत् विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन), 2012 - यह सम्मेलन रियो डी जेनेरियों, ब्राजील में आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में गरीबी उन्मूलन, हरित अर्थव्यवस्था व स्वच्छ ऊर्जा पर ध्यान केन्द्रित किया गया। इस सम्मेलन में प्रकासित रिपोर्ट का प्रकाषन 'द फ्यूचर वी वांट' के नाम से हुआ। रिपोर्ट में संधारणीय विकास लक्ष्यों को विकसित करने पर सहमति बनी। संयुक्त राष्ट्र महासभा का 70 वॉ संयुक्त राष्ट्र षिखर सम्मेलन,-2015 सितम्बर 2015 में न्यूयार्क शहर में आयोजित इस सम्मेलन में 193 सदस्य देषों ने एक महत्वाकांक्षी एजेण्डा अपनी दुनिया में बदलाव सतत् विकास के लिए 2030 का एजेण्डा को अंगीकार किया गया जिसके अन्तर्गत 17 लक्ष्य व 169 उददेष्य सुनिष्चित किये गये।''8 जिन्हे 1 जनवरी 2016 से प्रवर्तित कर 31 दिसम्बर 2030 तक वांछित लक्ष्यों को प्राप्त करना है। 2030 एजेंण्डा, 5;च्द्ध यथा लोग, समृद्वि, शान्ति, सहभागिता, पृथ्वी को केन्द्र में स्थापित कर एक कार्यकारी योजना है।[9]

सतत् विकास एवं मानवाधिकार में गहरा सम्बन्ध है ये एक सिक्के के दो पक्ष हैं। एक की उपस्थिति दूसरे का होना है दूसरे शब्दों में कहे तो सतत् विकास मानवाधिकार का कार्यकारी स्वरूप है जो कि मानवाधिकारों को मानव को प्राप्त होने की गारण्टी चिरकाल तक देता है। जहॉ मानव सदियों तक अनवरत रूप से अपना विकास करता रहेगा वही मानवाधिकार की धारणा भी सुदृढ़ होती रहेगी। मानव विवेक शील प्राणी है तथा सजगता और जागरूकता के साथ रचनात्मकता उसके स्वभाव के मूल में है। जिसके कारण प्रयासों की निरन्तरता की कडी के रूप में संयुक्त राष्ट ने सतत् विकास की धारणा को अत्यधिक महत्व दिया जिससे मानव स्वयं के विकास के स्वार्थ के साथ ही आने वाली पीढियों के विकास के परार्थ से स्वयं को आबद्ध कर सकें। स्तत् विकास और मानवाधिकारों के अन्तर सम्बन्ध को समझने के लिए हमें अधिकार और कर्तव्य को विकास के साथ सम्बद्ध कर के समझना होगा। पर्यावरणविद 'ग्रो हार्लेम बंरट लैंड्' की अध्यक्षता में पर्यावरण एवं विकास पर संयुक्त राष्ट्र विष्व आयोग की रिपोर्ट 'हमारा साझा भविष्य' में सतत् विकास को 'सतत् विकास वह विकास है जो भविष्य की पीढियों की अपनी जरूरतों को पूरा करने की क्षमता से समझौता किए बिना वर्तमान की जरूरतों को पूरा करता है।'[10] सतत् विकास का सम्बन्ध अधिकार और कर्तव्य दोनों से है। मानवाधिकार मनुष्य को जन्म से ही प्राप्त होते है परन्तु कर्तव्य भाव की उपेक्षा के कारण मानव आज तक मानवाधिकारों के सर्वव्यापी सुख से वंचित रहा है। इस बंचना को दूर करने के प्रयास में संयुक्त राष्ट्र संघ ने एजेण्डा 2030 के अन्तर्गत सतत् विकास लक्ष्यों की एक श्रृखला विष्व पटल पर रखी। जो कि मानवाधिकारों का ही कार्यकारी रूप है। इस भाव को स्पष्ट करते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ के वर्तमान में महासचिव एण्टोनियों गुटेरेस ने सभी देषों से सतत् विकास लक्ष्यों हो हासिल करने के प्रयासों में मानवाधिकारों के सिद्वान्तों और तंत्रों को सबसे आगे रखने की पुरजोर अपील की है।[11] इसे और अधिक स्पष्ट करते हुए संयुक्त राष्ट महासचिव गेटेरेस ने कहा कि ''सतत् विकास मानवाधिकारों को प्राप्त करने का सबसे अच्छा खाका है''[12] अर्थात सतत् विकास की सुनिष्चिता मानवधिकारों की गारण्टी है। समावेषी एवं सतत् विकास वर्तमान विष्व का मूल कर्तव्य है। जिसे पूर्ण करते करते मानवाधिकारों को प्राप्त करने के स्वप्न को मूर्तरूप दिया जा सकता है।

निष्कर्ष:- अतः निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि सतत् विकास के अन्तर्गत मानव विकास सषर्त होगा और शर्त स्वरूप पर्यावरणीय तत्वों की सुरक्षा की गारण्टी तथा संसाधनों के वितरण एवं उपयोग में नवीकरणीयता के सिद्वान्त का पालन करना होगा जिससे विकास की धारा को चिरकाल तक अनवरत रूप से प्रवाहित किया जा सके और मानव को मानवाधिकारों के लाभ से परितोषित किया जा सके एवं बदलते परिदृष्य में नये मानवाधिकारों को सतत् विकास की बूदों से पुष्पित और पल्लति किया जा सके। संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा द्वारा एजेण्डा 2030 के अन्तर्गत अपनाये गये सतत् विकास के 17 लक्ष्य एवं 169 उद्देष्य के अन्तर्गत जिन तथ्यों को सम्मिलित किया गया है वे तथ्य मानवाधिकारों के अन्तर्गत निहित प्राण है अतः मानवाधिकारों के अस्तित्व की गारण्टी सतत् विकास के लक्ष्यों की सर्वव्यापी सफलता में निहित है और यह सफलता कार्यक्रम के अनुरूप प्रत्येक राष्ट्र को 2030 के उत्तरार्द्व तक प्राप्त करना अनिवार्य है जिसमें सभी राष्ट्रों की यज्ञाहूति आवष्यक है।

******

सन्दर्भ:-

1. उपाध्याय, डॉ. जय जय राम, ''मानव आधिकार', सेंट्रल लॉ एजेन्सी, इलाहबाद, सं-पृ. 20
2. शर्मा, सुभाष, ''भारत में मानवाधिकार', नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली, सं-पृ. 28
3. मिश्रा, अमरेन्द्र कुमार, ''मानवाधिकार मानवमूल्यों का रक्षक', कुरूक्षेत्र, दि. 2007, पृ. 9
4. शर्मा, डॉ. षिवदत्त ''मानव अधिकार', विधि साहित्य प्रकाषन, नई दिल्ली, सं-पृ. 42
5. https://him.wikipedia.org
6. https://in.one.un.org
7. https://him.wikipedia.org
8. https://www.sdgs.un.org
9. CBCS IGNOU, ''विकास पुनचिंतन,'' गुल्ली बाबा पब्लिषिंग हाउस प्रा.लि., पृ. 37
10. MED-002, IGNOU, 'सतत् विकास मुददे और चुनौतियां', गुल्ली बाबा पब्लिषिंग -पृ. 42
11. https://news.un.org
12. https://www.undp.org.sistainable

EnglishDiscourse

Poisnous Roots is a Mile Stone For Struggle of Dalits

Sunil Kumar
National President
Dalit Sahity Avam Sanskritik Academy Bharat,
Dehradun.Mo.7060389405

PART – 1

The **POISONOUS ROOTS** the collection of english stories written by eminent Dalit Witer Roop Narayan Sonkar is like a breath of fresh air which despite the presence of dust particles gives one a feeling of being alive.Each story'in this collection tells a radical truth and brings forth the ugliness, intolerance and the inequalities of the society.No allegations have been made deliberately; they have automatically entered in the under current.

POISONOUS ROOTS ,a collection of stories,is a live tale of atrocity on rural dalits by the non dalits. The rural dalits who are mostly labourers,too ,bring up their children doing hard labour, live in earthen houses in the village; have no clothes or quilts to cover their bodies. They are employed to clean up the outside of the temples,but are not allowed to take part in the religious ceremonies.

These stories have tremendous magnitism that is why English Professors like Dr.Santosh Kumar Sonkar ,Dr.Rajesh Karankal recommended these stories to be included in the shyllabus of English M.A. in **INDIRA GANDHI NATIONAL TRIBAL UNIVERSITY AMARKANTAK,BOMBAY UNIVERSITY MUMBAI AND DR. BHOMI BHABHA STATE UNIVERSITY MAHARASHTRA MUMBAI.** These stories are being taught in these universities.

This collection was published by Diamond Pocket Books ,New Delhi. The women of Dalit community are being physically harrassed by non dalits. The author is a revolutionary. He tried to remove these cruelies. The author has inhuman society and a sharp pen to shear it.These stories are not depend on any "ism" or philosophy. The author has given a true and vivid description of the tragedies of the perverted order, corrupted system, handicapped democracy and an inhuman society. They do not amaze us. On the contrary they dishearten, disappoint and anger us Through these stories the writer analyses the life of the contemporary society.

The author has broken so called barriers of creativity. He does not use the lingual structure or mosaic language but the crude language of that part of the society which he tries to bring out layer by layer. It is not enough that the author has discarded the traditional expectations and sided with his times, with the dalits, the oppressed, neglected and the frightened society, the common man, in the true sense of the term. These stories speak about the uprising of the frightened society.

The Research Scholars of Various Universities of India have included this Revolutionary book in their Research Works.In this collection of stories there are seven stories, Poisonous Roots, Vile Guile Policy, Social Revel, Hunter's House, Ambedkar Temple, Ranno and Dung Cakes.Poisonous Roots is a first story of this collection. This story attacks over blind religion and blind faith. A teen ager Heera is a hero of this story. He opposed the cruelity of the blind faith and blind religion. He emerged as a heroof Dalits. Mostly in every village of rural India, a religious function is being performed in the campus of the temples. A continuous chanting of the Ramayan (Akhand Path) is done by the Brahmins. Some days back of this religious function, the cleaning and polishing of the whole temple has been done. Rambhajan Awasthi, the serpanch (headman of the village),asked Hiralal to climb up to polish the brass dome. A rope had been tied from the Trishool at the top. Hiralal had done the difficult task of climbing up the rope and polishing the dome. When Hiralal came down safe, his mother embraced him with tears in her eyes.

After the cleaning the continuous chanting of the Ramayan by the students started. Some children called Hiralal too. Half an hour later Ramchandra Awasthi came. When he saw Hiralal reciting from the Ramayana.He flew into a rage. He shouted, "This untouchable does not have any right to recite the couplets from the Ramayana.This unbroken chant will not be consecrated." He abused Hiralal and asked him to get out from there.

Hiralal felt very insulted but there was nothing he could do. He just stood there and stared at Rambhajan Awasthi. He picked up the Ramcharitmanas and threw it at Rambhajan's face and went out from there. Awasthi could never have imagined that a dalit boy could become so angry.(Page 16,17) Dalits need to show such type of revolt when the prestige and honour of them is crushed by non dalits. The second story of this collection is VILE GUILE POLICY. The real and true picture of politics in Rural India have been narrated. There is a story of two Gram Pradhans (Village Heads).One Village Head that is called Satynarayan Tripathi belongs to general caste. Another Village Head is Sankataprasad Khatik belongs to a Dalit Community. Satynarayan Tripathi was ruling over village Vikatpuri for fifteen years continuously. When this village was declared in reserve catogory for dalits. Satynarayan Tripathi opposed it and said how the dalits can rule over us? He protested and sat down on hunger strike with his supporters. Satynarayan Tripathi was terribly enraged to hear this government order. Sankataprasad Khatik had returned to his village Vikatpuri after passing his M.A.in Sociology from the University of Allahabad.At the time of elections the next year, the villagers obviously thought Sankata Prasad to be appropriate candidate and ,therefore, elected him as the Headman. Tripathi put his proxy candidate as Bhagtu pasi. The powerful general caste people if they lost their power. They try to regain power by this mischievous way. Tripathi was too cruel to the villagers. He did much corruption during his tenure as Village Headman. He said " If i can't set this bastard Headman Khatik right, I shall change my name. If this man tries to meddle in any affair of mine,I shall kill him"(page 21) Within a year, Khatik got metalled roads built in the village. He installed hand pumps at various places from where the villagers could get clean drinking water and

even got the whole village electrified. The villagers started getting medicines supplied by the government in the hospital. The school also got a new look with a proper furniture. Obviously, therefore, Khatik became famous (page 21)

I am not talking for all Gram Pradhans but so many are indulged in corruption. They wrongly misuge the government's budget. A true example has been given in this story .How the some Village Headmen function?Sankata Prasad Khatik was getting the well dug deeper. About 51 labourers were working on it. Satynarayan Tripathi was compelling Khatik to put the fictitious names of 21 of his relatives in the list of workers.He said,"Look here, Sankata Prasad ! Every time more than 21 names given by me have been on the list of workers. Why have you deleted their names?"Very humbly Sankata Prasad said,
"They have not worked. So, how will they get paid for their labour. " "Have you ever seen a Brahmin work as a labourer?" Sankata Prasad spoke of rules, regulations and the law .He said," Only he who works has a right to get paid for it." Continuing his emotional up surge, Tripathi said, "What I say is the law" "I shall not be able to do all this, Tripathi Ji"
"Well, then, Be prepared to face the consequences" said Tripathi in a rage. An honest and sincere man is never afraid of the devil. Sankata Prasad Khatik was not perturbed at all and did not feel scared of Tripathi who spread the rumour that Khatik had illicit relations with Sunayana, a dalit girl of the village and that she was expecting his child. It is a very insulting that when a general caste man can't defeat to Scheduled caste man, then he opt the method of his character assacinstion.This is a very important story of this collection. The dalits have proved their ability how the rule of law is being applied for the sake of human beings.
The SOCIAL REVEL is a third story of this collection. When a legendary author and critic Professor Namvarsingh was releasing its hindi version titled Jahrili Jaden SAMAJ DROHI, He commented," A top class Dalit Writer like Roop Narayan Sonkar is present amongst all of you, then why are you searching writers from outside ? Don't behave with Sonkar as Ghar Ka Jogi Joga da Aan Gaanv Ka Siddh.At present era the Social Revel (Samajdhrohi) story is the one of the best story."
The author has described the Hindu Muslim riots which did happen in a big city. The chaos in a very big industrial city was at its peak. Every day,one heard of arson, bombing and murders. Young Hindus and Muslims were mad with rage.There was not a single house nor a family'which has not lost atleast some near and dear one.All one could see was a house burning or someone being killed.The whole city was full of policemen.Niranjanlal Sharma was M.P. from this city.He was associated with a very staunch Hindu organisation ,but had succeeded in maintaining a secular image. During the riots,a man (Neela) was much talked about.This man was a ferocious hooligan,During the riots,24 men and women had taken shelter in his house,which was adjacent to the Muslim locality.He fed them and and even protected them . The Muslims considered him to be their god.When the leaders of the staunch Hindu organisations came to know that this man had given refuge to 24 Muslim men and women in the basement of his house,they attacked his house,but he faced them bravely and said that he had only washed off his sins by saving their lives.When Sharma came to know about this,he went to meet this man in his house.He said,"A large number of Hindu brothers are being killed in these riots.Why ,even those people that you are protecting have killed hundreds of dalits. "Like a clever and sharp leader ,he tried to provoke Neela.
"Am I committing a crime by protecting these helpless Muslims" "That is what you think. The people of those Hindu families who have lost a dear one,are calling you traitor."
" You are a prominent leader.Your business is to protect the Hindus and the Muslims and not to kill them." "I am a Hindu first. I can't see Hindus being killed" "This is the first time I am seeing your hatred towards the minorities"
"....The secret hatred you have for anyone is used at such time only" The Niranjanlal Sharma was teaching Neela the profane guile tricks of politics ..... Further he said," You will be given the party ticket to contest the election for M.L.A.You finish off these 24 minority members."
That night, Niranjanlal Sharma rang up the leader of the staunch Hindu rioters and told him that Neela was out of the house and ordered him to kill the people of the minorities who have taken refuge in his house. When Neela woke up the next morning and came to know what had happened, he held Sharma responsible for it. He said, "I shall tell this to the minority leaders"
" Don't make this mistake.You will never be able to become an M.L.A."
" I don't care. I shall not go to the Vidhan Sabha with blood stained clothes. I shall tell the minorities that the man they consider a Messiah is nothing but a shrewd poltician and muschief monger"
Niranjanlal Sharma spread the rumour that Neela had massacred the innocent people of the minority in his house.This incident really provoked the minorities. They came out on the streets breaking the curfew. Even Neela,along with his wife,a minor son and two minor daughters, was killed.
The chief Minister set up an enquiry Committee headed by a retired High Court Judge to look into the matter. Niranjanlal Sharma was found guilty for provoking riots and massacring the Dalits and minorities. A case of treason was lodged against him and he was sent to jail. The dalits ,the non dalits and the minorities labelled him as a social rebel.

PART - 2

"Things were so bad that Hirwa's relatives also could not sit on the cot in their own houses in front of Brahmins.Even during celebrations and marriage ceremonies,the invitees had to sit on the mat on the floor.Hirwa had recieved education and could not tolerate this .He wanted to break this tradition and could not tolerate this . Author has described the true social happening in Rural India. The Brahmins has much superiority complex.They consider themselves as King. They consider Dalits as very low caste people.They have no rights of equality. At the night Hirwa pulled down the cots before his house .After dinner the guests and his family members sat on cots and started listening the some events narrated by his maternal uncle. He was a story

teller. It was at 9 O clock.A Brahmin that is called Rambhajan Awasthi passed on that way.No body could pay attention towards the Brahmin that he had come near the cots. His father and his uncle saw at a glance that Brahman Awasthi has come to near the cots.Both of them tried to leave the cots but Hirwa forced them not to do so.He became very angry snd abused his father ,uncle, relatives and Hirwa. He cried and thrashed Hirwa.Hirwa protested and said, dont abuse us.Hirwa twisted his arms. After hearing the loud voice of Awasthi,all the Brahmins of the locality started gathering with spear,revolvers and battle arms. All of sudden the father and uncle locked Hirwa in a small earthen room of the house.All the Brahmin started hitting on the door with their wooden sticks and thick iron rods.They were shouting
, "Kill the Hirwa . Come out from the room and say sorry for his misbehaviour and action." Hirwa denied it. He said ," I will give respect to my relatives. I am acquiring the rights through constitution given by Dr.Ambedkar"

The same time a bold man named Shivlal Sachan from Backwards community came there with a battle axe in his hands. many scheduled caste young started gathering there with wooden thick sticks in their hands.

Shivlal Sachan said to Brahmins, "The time has changed, It is better to chang yourselves,otherwise you people will face the consequences. If you thrash Hirwa, we will thrash to all of you.
All the Brahmins left the place. Hirwa,his younger brother jay went to Allahabad to meet his elder brother Rajjanwa who was preparing for PCS.After discussing about the incident which has happened with Hirwa. They decided that we should not loge an FIR against tyrrant Brahmins because if they do so,they will get disturbed.Now our aim is to become an officers. All three brothers involved fully for preparing the competitive Examinations. Rajjanawa and Hirwa became PCS Officers.Younger brother Jai became Income Tax Officers. Whenever three brother go to their village ,All the cruel Brahmins bowed their heads before three brothers.

Ambedkar Temple is a fifth story of this collection.In the real sense it is not a religious temple. There is no statue of Dr. Ambedkar. It is a temple of Dr. Ambedkar's thoughts and philosophy. When Professor Namvarsingh, Sri Rajendra Yadav and Professor Ajay Navaria were releasing its Hindi Version titled " Jahrili Jaden ,that time a hindi dalit writer Ramadika Gupta raised her doubts about the title of this story.Perhaps she had not read this story.Some literary personalities who were witnessed of this function,removed her doughts.This story had finished the blind religious faiths which are prevailing for centuries in the hindu society and damaging a lot of progress to downtrodden people .

Dalit Dhaniram had costructed Ambedkar temple to remove the inequalities and tried to preserve the rights of dalits. Bramhan Dinanath opposed and tried to demolish Ambedkar Temple.Once Dr. Ambedkar got dalit rights after entering into the temple.He was not interested to worship for any dities.He never believed the existence of Ram ,Krishna,Bramh,Vishnu and Mahesh.The same way he got rights to construct the Anbedkar temple."Dung Cakes" is the seventh story of this collection. The author has boldly described the superiority complex of the Brahmins.They considered the dalits bellow the catogary of the animals.They hated dalits.They don't like that young dalits should not get educations in good colleges and universities.They don't wear good dresses before them. This is a story of a post graduate young dalit who had appeared in I.A.S. competitive examinations . Jai has come to his village Naseniyan to meet his parents.The Brahmins of the village cold not tolerate Jai's high standard of living. They started to humiliate him.They felt that the ego of Brahmins have been injured.How a dalit can enter into the village after wearing tie and suit.All the Brahmins of the village started gathering before the house of Jai. This is a true story of author's family. Jai is a younger brother of author. The real dialogues are being quoted between Jai and a cruel Brahmin named Hari Awasthi.

" When did you come from Allahabad ?"

" Only yesterday !"

" Listen ! I am not finding any labourer. The pile of my dung cakes is under the straw outside the village. Carry them from there and store in my verndah.It can rain any movement."

"Hardly a day has passed after I have come home. I am quite tired now...."

" It seems as if you have forgotten the etiquette of this village studying in Allahabad. You don't even touch our feet !"

" No,my dear uncle ! I have not forgotten the etiquette. It is only you who is pressuring me to do the work.And so for as touching of feet is concerned,I touch the feet of my parents only. I also touch the feet of those elders who give me human treatment and the feeling of equality."

" You'll have to touch our feet and do our works also."

" It is your high handedness ! Baba Saheb Ambedkar has given the right to equality to everyone through the Constitution of India. To make anybody work without payment is a legal offence."

Don't tell me about the constitution made by that cobbler. The laws made by me are effective in this village."

" How would you feel if your own son had been there in my place ?"

"You scoundrel ! How dare you compare yourself with my son ?" You mean fellow ! Tell me if you are not going to carry my dung cakes, then I shall drive the ghost out of you that you have brought from the city."".....There he gave Jai a large wooden basket and said ,"It is better for you to carry the dung cakes now."

" It is nothing but hooliganism and atrocity."

"No,you are wrong.It is neither hooliganism nor atrocity.It is our nable behaviour that we are not thrashing you."

Helplessly,Jai was compelled to carry the dung cakes for the whole day. Even his M.A. degree given by the Allahabad University could feel humiliated seeing Jai's such condition, but it also assured him that it was a great power that could change the inhuman and cruel society. After few days of this happening, Hari Awasthi was paralysed .It was winter his wife Mohini had put dung cakes in a hod and burnt them. She put the hod on the verndah to keep it warm and slept in the upper room bolting it from inside.At about mid night the dung cakes stored on verndah

caught fire.The people saw in the morning that Hari Awasthi's body had turned into ashes.A man can tolerate humiliation,but the nature does not. It uproots those devils and their ill deeds when time comes. Through this incidence the nature was giving the message that all humans are equal: Casteism, classification, untouchability, racism and inequality will vanish from this world like Hari Awasthi. The Poisonous Roots can be compared with Malgudy Days written by R.K.Narayanan. The both collections represent the Rural India. Both collections have the short stories. The Malgudy Days doesn't narrates the problems of dalits as Poisonous Roots does.

The sixth story of this collection is titled Ranno.This story describes the pitable conditions of the dalit maid servants who are engaged in the houses of the upper caste people. How they are physically and mentally exploited and toutured.This story describes the behaviours and their attitude of the people of the upper caste community.They used to keep them for the fulfill of their sexual needs.These maid servants are sexually harassed in the houses of upper cate men.

I and Ranno became friends, so I asked Ranno about the scientist's son.Ranno's eyes filled with tears. She said,"He is even worse than his father.He shares my bed every night when his wife goes to her parents' house. I feel I am going to die because when the son goes,the father comes.My body was shaking with anger.I told Ranno to tell me about the priest,the clergy of the church and the Maulvi too with whom she worked without any hesitation. I told Ranno that i was working for the upliftment of the dalits.As such,it was absolutely essential for me to know all this. Ranno told me that he had many luxurious rooms adjacent to the church,in which to live.The living god of the church became the devil himself, at night.To fulfil his sex urge,he used to carry the sleeping Ranno into the church and raped her. I could do nothing but grined my teeth in anger.Ranno told me about the priest too who used to don saffron clothes with "Ram" written on them.He would take something that was kept behind the idols and sprinkle it on my face and I would became unconscious. In the morning,I would find myself wet with sweat my clothes would have blood on them. Hearing this brought tears to my eyes too. I did not have the guts to ask Ranno about the Maulvi.I wiped her tears too. She told me that while reciting the Namaz, the Maulvi seemed like god. He had one more maid servant besides me. He used to compel us to eat the meat after which we used to start feeling sleepy. Then he'd come and lie down between us.The author has brilliantly narrated the events and happenings in religious places. Some religious men kept indulges in such type of disgusting activities and used to defame religious places. Our religious places are sacred and pious.I had already made Ranno file an FIR against Sadanand Kulkarni,Vedanta Kulkarni,the clergy,,the priest and the Maulvi.On investigation,they were all found guilty and were,therefore,sent to prison.Sonkar is such a dalit author who raises the problems of the society, particularly the grievances of the downtrodden people.He also used to present the solutions of those problems. He is a great dalit author.

Role of Silk Industry of Assam in Employment Generation

Dr. Basanta Mangal Dutta
Asstt. Professor
Deptt.of Economics
Machkhowa Degree College

1.1 Introduction-India enjoys a distinct position in the world silk map producing all four varieties of silk viz. *Eri*, *Muga, Tasar and Mulberry.* The country is the second largest producer of silk next to China with 15 per cent shares in the Global silk market. Among the four varieties of silk produced in 1999-2000, mulberry accounted for 91.7 per cent, Eri 6.4 per cent, Tasar 1.4 per cent and Muga 0.5 per cent of the raw silk production (Govt. of India, 2000-2001). In the process, India has developed an international market for silk goods having its own weaves, textures and designs. In 2000-2001, India earned foreign exchange revenue of Rs.1530.02 cores through exports of silk goods (Kumaresan, 2002). *Mulberry silk* is produced extensively in the State of Karnataka, Tamil Nadu, Andhra Pradesh, West Bengal and Jammu & Kashmir. The State of Karnataka alone contributes around 65 per cent of the countries production of *Mulberry silk*. While the tribal people of Madhya Pradesh, Bihar and Orissa rear *Tasar* silkworm traditionally. These three States contribute about 96 per cent of *Tasar* silk production of the country. On the other hand, Eri silk production remains confined mainly in Assam, Manipur and Meghalaya. Importantly, Assam has a global monopoly in the production of Muga silk, which is popularly known as the *golden silk of Assam* (Krishiworld, 2003).

1.2 Statement of the Problem-The characteristic climate, ecological conditions and soil quality have been congenial in Assam for the silkworm food plantation. As a result, sericulture is considered as one of the promising rural industries in Assam because of its unique characteristics of being ecofriendly, labour intensive, having short gestation period, capacity to develop into a family enterprise, limited capital investment and its interlinkages with other enterprises (Tamuli, 1997-98). Sericultural activities are concentrated in the State in 8885 sericulture villages involving 166854 families spread over all twenty-three districts of Assam (Govt. of Assam, 2001). The commercial production of Muga silk is mainly confined to upper Assam while seed cocoon production is generally confined to lower Assam. Almost one third of the silk production of the State is contributed by two districts namely Dhemaji and Lakhimpur. On the other hand, Sualkushi, which is popularly known as the silk town of Assam, has developed into a busy commercial center of weaving of high quality Mulberry and Muga silk e.g. mekhala, riha, chadar having tremendous internal as well as external demand (Saikia et al. 2002). Due to regional concentration of seed production units, rearing and cocoon production units and reeling and weaving units, the middlemen play an important role in linking various sericultural activities in the State (Baishya, 2002).

In spite of having immense potentiality, stagnation in the sericulture industry is a common phenomenon in the State. The production as well as productivity in sericulture remains almost stagnant over the past few decades. Globalisation and the

reduction in tariffs as per the WTO commitments have created new challenges for the silk economy of Assam (Das, 2003).

The study of sericulture is a neglected area of research in Assam. No systematic attempt has yet been made to provide an economic analysis of the sericultural activities in the State. There are only few studies, which throw some lights on the problems and prospects of sericulture in Assam (Chowdhuri, 1982; Dutta, 1998). Whatever studies have been undertaken so far tend to be either too general in their analysis of the situation or they are too narrow in their approach to provide an insight or clue for better understanding of the issues involved in sericultural activities in the State. Under this background, this study attempts to determine the employment generation capacity of sericultural activities of the State. The key research questions in this context are the following:What are the economic prospects of sericulture activities in the state in terms of income propagation and employment generation?

1.3 Objectives of the Study The study primarily aimed at understanding the economic aspects of the sericultural activities at the household level in one of the poorest regions of Assam. The major objectives of the study have been set as follows:To examine the role of sericulture in employment generation.

1.4 Hypotheses

The study intends to analyse the economic prospects of sericultural activities in rural Assam. The specific hypotheses to be tested are:Sericulture activities have more employment generation potentiality than other agricultural activities in the study area.In each stage of silk production its able to generate employment.

1.5 Literature Review:

Sericulture being labour intensive industry has enough potentiality to generate employment opportunity to rural population. Sericulture is an intricate process and is completed in several stages. Each stage is able to generate employment opportunity. In the post globalization scenario due to uneven inflow of fund to the North -Eastern region on the one hand and the limited employment opportunity in the government sector on the other hand, activities like sericulture is drawing attention of the policy maker for employment augmentation. The sub-tropical climate, humid and moist temperature with frequent rainfall in summer, pleasant atmosphere in winter and the soil structure make the region the natural home of the sericigeneous insects and their food plants (Thongavalu, et-al, 1986, 1988). Chowudhuri et-al observed that despite having vast plant growing capacity in all over India successful Muga rearing ends in fiasco in all places rather than N.E. Region (Choudhuri et-al, 2000). Thangavalu observed the large scale existence of rich sericigenous flora and Fauna due to favourable climatic and ecological condition and soil qualities of the N.E. region (Thangavalu, 1986). He also observed that Assam and adjoiningarea had the prerogative in Muga production and pre dominance in Eri production. Therefore, he visualised the region as one of the potential home for all four types of silk viz. mulberry, Muga, Eri and Tassar. He was also of the view that through proper utilisation of natural and manpower resources the region could make tremendous progress in sericulture. These activities would provide greater scope for poverty alleviation by providing employment opportunity. The use of silk is infact, the symbol of culture in Assam. Muga and Eri silk known as Assam Silk is a pride of Assam and is closely related to the culture and civilization of Assamese people (Choudhuri, 1982; Dutta, 1998; Thangavalu, 1988). Muga silk has a unique place in socio-eco cultural life of rural Assam. The word muga in Assamese mean amber or brown colour which refers to the cocoon colour (Thangavalu 2004). Muga, 'the Golden Silk' is indigenous and prerogative of India is being practiced largely in Brahmaputra valley of Assam and contributing in a great way to the unique position of India in world silk map for producing all commercially viable silk worms (Thangavalu, 1988).Available literature support the importance silk activities in employment generation and income augmentation.

1.6 Methodology for the Study of Employment Generation in Silk Industry In order to examine the importance of silk activity of Assam in employment generation following observations were made during the field survey.

(i) Muga activities were completed in traditional way.

(ii) Expecting mating rate of seed cocoon was 45 per cent, this rate was synonymous to expected amount of *kharika* for Muga rearing.

(iii) Each *kharika* bearing 150 eggs

(iv) Effecting Rearing Rate (ERR) of Muga was 33 per cent.

(v) Reeling was done by *Bhawari.*

(vi)Two men could reel 500 cocoons in a day.

(vii)Rearing of 14000 seed cocoon was possible in one hectares host plantation.

(viii) Yarn requirement for one pair of *Mekhela Sadar* was 264 gm.

(ix) 2.44 days were required for weaving one pair of *Mekhela and Sadar*.

(x) Each Eri rearer on an average used 240 Seed cocoon.

(xi) On an average each rearer produced 5.4 kgs raw silk from 240 seeds.

(xii) 50 gms of Eri raw cocoon could be spun in a day by *Takuri.*

(xiii) 750 gms of yarn was required for one *Eri salang.*

Rearing was done through traditional way.Each rearer on an average spent 2 hours per day in Eri rearing.In order to determine employment generation capacity of the industry the following factors are considered-

L_1= Numbers of labour days required for rearing. (Seed gathering + Indoor rearing + Outdoor rearing + Cocoon harvesting).

L_2 = Numbers of labours required for reeling/spinning.

For Muga,

L_2 = (Amount of seed used × mating rate × amount of eggs per kharika × ERR)/500] × Labour requirement for reeling 1kg Muga yarn on *Bhawari)*

= [(14000 × 0.45× 150× 0.33)/500)] ×2.

For Eri,

L_2= Amount of Eri raw silk production × numbers of day required for spinning 1 kg Eri yarn.

= (5.4kg × 20)

L_3 = Numbers of labour required for weaving.

For Muga,

L_3 = (Total yarn production/ Yarn requirement for weaving one pair of m*ekhela sadar*) × Labour requirement for weaving one pair of *mekhela sadar*).

For Eri,

L_3 = (Total yarn produced/yarn requirement for weaving one *Erisalang*) ×Labour requirement for weaving one Eri salang.

Then total employment generation capacity of silk industry is determined in terms of formulae as –

$E = \sum Li$ ----------i = 1, 2, 3.

i =1

E = Total employment generation.

Applying the above methodology and using the field survey data and labour days needed in plough, sworn/ transplantation, harvesting, threshing and husking for producing rice, pulse, oilseed, bamboo, betel nut are taken into consideration for determining their respective employment generation capacity of different crops in surveyed area.

Table: 1.1

Comparative Employment Generation Capacity of Different Crops

(In Labour days)

Sericultural crops			**Agricultural crops**					
Description	Muga*	Eri*$_1$	Description	Rice*	Pulse*	Oil Seed	Bamboo	Betel nut
Rearing (1)	455	18	Plough (1)	88	28	42	10	20
Reeling (2)	1247	108	Showed/ Transplantation (2)	32	10	5	14	20
Weaving, (3)	407	21	Harvesting (3)	24	28	16	20	14
NA	NA		Threshing (4)	14	7	14	NA	NA
NA	NA		Husking/Crashing, (5)	10	1	3	NA	10
E = (1)+ (2)+(3)	2104	147	E = (1)+ (2)+---(5)	172	76	78	44	64
R	134*$_3$.	NA	R*$_2$	1.64*$_3$	3.75*$_3$	3.65*$_3$	6.4*$_3$	5.21*$_3$

Note: (i) * = Croping two time in a year (ii) *$_1$ = Cropping three time in a year $_{(iii)}$ R = Land required for generating one year employment opportunity, Taking 300 days = one year absorption (iv)*$_3$ In hectares.

Source: Field Survey, 2020.

Diagram:1.1, Employment Generation Capacity of Different Activities in the Study area

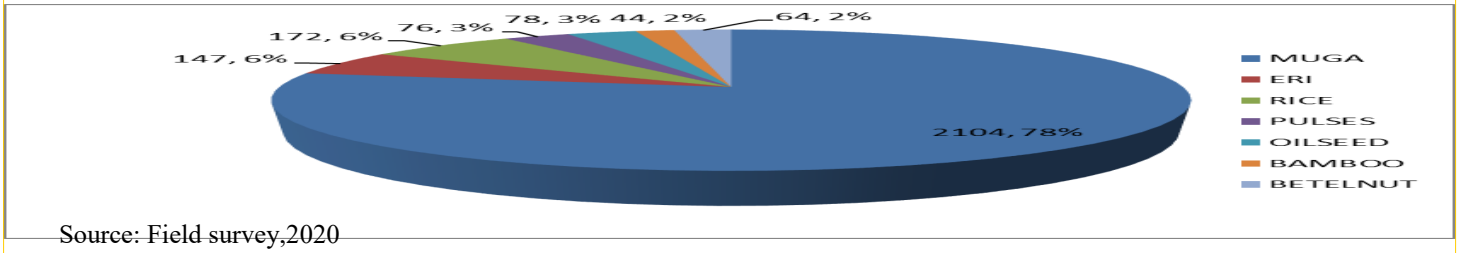

Source: Field survey,2020

1.7 Summary of the Findings on Employment Generation-The comparative analysis on employment generation capacity of different crops in the study area clearly indicated that Muga culture could generate highest number of employment opportunity to the farmer compared to any other corps i.e. 2104 days followed by Rice (172 days), Eri (147 days), Oil seeds (78 days), Pulses (76 days), Betel nut (64 days) and bamboo (44days) in a year (Table: 1.1). The employment generation capacity in the Muga activities was around 12.5 times higher than rice production activities and was 47.8 times higher than bamboo production. It was observed that Muga production in 0.134 hectare (one *bigha*) was able to generate one year employment opportunity to a rearer, provided that the rearer himself performed all Muga production activities. In order to provide one year

employment opportunity to farmer from rice cultivation 1.64 hectare (12.21 *bigha*) land was required. On the other hand Eri could provide employment opportunity to landless rearer as the Eri rearer in the sample area did not plant silk worm host plant. Considering the employment and income generation capacity of Muga and Eri industry it was felt that the development of the industry could go a long way in improving the socio economic condition of rural Assam.Conclusion: It is seen that in all stages of Muga Production i.e. host plantation, rearing, reeling and weaving the sericulture is able to earn income. Muga has highest employment generation potentiality compared to all other major crops in the study area. Being ecofriendly in nature and considering large underutilized labour force in the state these types' activities should encourage to grow. Growing of silk activities will generate more employment opportunity and maintain balance between development and environment.

*****

References:-

1.Baishya, Prabin (2002): 'Prospect of Muga Silk', Indian Silk, July, pp10-14.
2.Chowdhuri S.N (1982): Muga Silk Industry, Director of Sericulture, Govt. of Assam, Guwahati.
3.Chowdhuri S.N. et-al (1998): 'Performance of Muga Silk Worm (Antheraea Assama Ww) on Different Som (Persea Bombycina Kinh Ex Wook (F) kost.) Plant collection from Assam, India', Proceeding of the Third International Conference on Wild Silk Moth, Banglore, India, pp.66-69.
4.
5.Dutta, P.C., (1998): Problems and Prospects of Muga Silk Production, Agro Economic Research Center for North East India, Jorhat, Assam.
6.
7.Government of India, (2001): Economic Survey of India, New Delhi.
8.Government of Assam, (2001, 2002, 2003): Statistical Hand Book of Assam, Directorate of Economics and Statistics, Guwahati.
9.Krishiworld, (2003) <http:// Krishiworld.com> internet material, access on 24th May.
10.Thangavalu, K. (1986): 'Muga Silk Production', Literature on Sericulture, Surmaya Publisher, Banglore, pp.166-174.
11._____(1988): 'Management of Weeds', Hand Book of Muga Culture, CSB, Mysore, pp.37-41.
12._____(1988): 'Golden Muga Silk', Hand Book of Muga Culture, CSB, Mysore, pp.175-177.
13._____(1988): 'Muga Silk Reeling', Hand Book of Muga Cultur, CSB, Mysore, pp.89-94.

Metamorphosis in Margaret Atwood's Surfacing

Preeti
Assistant Professor
Akal University, Talwandi Sabo, Bathinda 151302

Abstract-The process of metamorphosis and the rebirth journey are very popularly used themes in the field of Literature, though their circumstances largely vary in markedly disparate works of distinguished writers. The effects and causes for transformation are diverse and can be portrayed in multitudinous ways. In this paper, I will explore the remarkably dim-continual and an excruciatingly painful quest of true self of the unnamed protagonist in the context of Margaret Atwood's novel *Surfacing*. The paper is a modest attempt to figure out what leads to the metamorphosis of the protagonist and what she undergoes during the process of her transformation throughout her journey of rebirth that ultimately alters her altogether as a person. Most of Margaret Atwood's novels depict women facing external obstacles and internal turmoils in their attempt to attain self-realization as they are inherently divided because of encountering the grim and hard-handed realities of life, (ruled by patriarchal conventions). Atwood's protagonists generally suffer from psychic sunder and are haunted by mental and emotional traumas. As a feminist writer, Atwood's primary concern is to explore women's internal psyche, their conflicts and search for identification.

Keywords: Metamorphosis, Trauma, Psyche, Identity, Patriarchy

Introduction-Margaret Atwood is a prominent Canadian writer whose name has become synonymous with the cultural flowering that took place in Canada during the last few decades of the twentieth century. She works on multihued themes like social myths of femininity, Canadian national identity, representation of women's body in art, women's social and economic exploitation etc. Atwood's emblematic novel *Surfacing*, delves into the process of "becoming" of the self into the wilderness. The insalubrious recesses of the human mind find their parallel equivalents in the contours of the geography of the locale or the very continent itself. The protagonist tries to behold the wild by disencumbering herself of the rattraps of the so-called "civilized" life. The psychological mystery tale presents a dire study of a woman who is searching for herself. Margaret Atwood in her novel *Surfacing* has dexterously brought out the deep inside ado experienced by the unnamed female protagonist due to the various doleful experiences in life.

"Oppression involves a failure of the imagination: the failure to imagine the full humanity of other human beings" -Margaret Atwood

Since, the inception woman has been brutally treated as an "Other". Simon De Beauvoir, in her influential book *The Second Sex* discusses the unfavorable treatment of women throughout the history. She argues that man is considered the default, while woman is considered the "Other". Thus, males are associated with the entire humanity and man defines woman not as someone who has her own individuality but as someone who is in relation with himself. Gayatri Chakraborty Spivak, says that women are the most important "Subaltern group" in the society whose voices are never heard by the hegemonic dominant group (male section of the society). According to Chandra Talpade Mohanty, women are defined as "others" and "peripherals" and this is what makes it possible for the man to represent himself as the "centre". Women today are still expected to have certain monolithic traits which determine their social character. While treating them as the "weaker sex", the male- oriented society

undoubtedly expects them to be soft, domestic, caring, homely, obedient, chaste, and subservient.

This novel is the best possible picture of a woman's struggle to find herself and presents her constant desire to search for her actual identity. The novel was for the first time published in 1972, when women initiated a call for their individual freedom and equal rights. Many other themes like Nature, duality, national identity, family etc. are also dealt with in the novel by Atwood, though her ultimate emphasis remains on the woman's zeal to look for herself amidst the unjust world where men are privileged over women. The novel presents an unnamed woman who feels estranged from the surroundings and the society and makes persistent efforts to find a suitable space for herself. Atwood's major concern is to enter the "wilderness of the self". The novel *Surfacing* revolves around the nameless narrator who tries to comprehend the complexities of human relationships. Attracted by the glitters of city life, she leaves Northern Quebec, an island where her parents lived. The city exposure reveals the evils embedded in the lifestyle of city people and also the fake relationships and artificiality that predominates their life. The protagonist during her journey to her ancestral village to find her missing father along with her three friends David, Joe and Anna, feels disappointed seeing the changed environment. She gains a new identity amidst the beauty of nature. Her concern for nature and freedom enables her to take directions that give a new shape to her life. The narrator needs to go through metamorphosis in order to transform herself from an obscure to a more conscious and valuable self.

Metamorphosis-The novel *Surfacing* revolves around the seemingly unquenchable thirst of an individual for strength and identity and this motive of quest is satisfied through the process of metamorphosis. Metamorphosis in the novel means natural growth that has been encouraged by nature. Carol P. Christ looks into the novel and finds out that it is a remarkable journey of a woman who is on a spiritual quest to find herself. Annis Pratt has analysed the story as a journey which follows the path of transformation and rebirth.

The protagonist's journey of Madness-The protagonist's actual metamorphosis begins when she gets to know of her father's demise and does not return back to the city with Joe, Anna and David and decides to stay back on the island alone. The metamorphosis begins when the protagonist states: "From any rational point of view I am absurd; but there are no longer any rational points of view" (Atwood 1979, 163). The protagonist accuses her parents of their deaths as she believed both of them had a choice to be with her but they chose not to, without giving a thought to the concern that what would happen of her without their support. Now, the times have changed and the protagonist has returned with an intention to search for her forgotten human identity and to look for her parents who are no more a part of this world.

The protagonist trusts that her parents have laid down certain hints of the rules that she has to follow for the rest of her life and she says, "I will have to listen carefully, if I trust them they will tell me what is allowed" (Atwood 1979, 170). She feels enlightened when she acknowledges the importance of the fact that she would only be able to spiritually meet her parents when she transforms herself over a new leaf by being close to nature and less human. She feels entrapped when she looks at herself in the mirror. The protagonist decides to turn the mirror in order to feel more liberated and confident. She also made her mind to break all the human made objects in their house and truly liberate herself by living carefree life, like animals in the open environment. She just has a blanket with her when she comes out of the house, and she says that she requires this blanket "until the fur grows" (Atwood 1979, 171). The next act performed by her is to clean herself completely in the lake. It seems as if this act of washing her body is a symbolic representation of the cleansing of her soul. It is the purification of her internal space and not just an act of washing because after demolishing the artificially constructed things, she feels an absolute desire to purify her soul by washing her body. It is almost equivalent to an act of rebirth for her. She says: "When I am clean I come up out of the lake, leaving my false body floated on the surface." (Atwood 1979, 172) It now seems more apparent that even her mind has started reflecting her advancement towards an animal like transformation. She eats whatever she finds in the open space amongst the wilderness of the island. The protagonist then undergoes an illusory and surreal kind of an experience through which she delves into the realm of nature. She feels disconnected from her own self and feels less human and more oriented to the various forms of nature. Margaret Atwood meticulously explains her transformed self: "I lean against a tree, I am a tree leaning. I am not an animal or a tree, I am the thing in which the trees and animals move and grow, I am a place" (Atwood 1979, 175). She realizes that animals require no language to communicate and they use no verbal expressions so she feels a dire need to disregard the importance of words and language in life, she says, "why talk when you are a word" (Atwood 1979, 175). It is out rightly visible that whatsoever images she visualizes and the senses she feels and experiences are distinctly irrational and delusive.

The protagonist eventually meets the spirit of her mother. She hallucinates seeing her mother, who is feeding many jays and this is exactly how she is remembered every time by the narrator. Later, the spirit of her mother vanishes and the jays fly up. She imagines that her mother has turned into a bird.The very next day she happens to meet the spirit of her father. She sees that her father has changed himself into something else, "the thing you meet when you have stayed here too long alone" (Atwood 179, 180-181); She compares her father to the figure of a wolf but even then she is not scared of him because she realizes the fact that it could not be his father as his father has already gone from the world but he has not completely departed from the world because his conspicuous presence lies here in the natural world where he is an indelible part of the ecology, just like his mother who even now survives in the souls of these jays. The narrator feels that both her parents have left their imprints and presence in the wilderness of nature.

The protagonist ultimately reconciles with the fact that after the death of her parents she is now an independent soul who has no standard set of rules or behaviors that she needs to take

care of. She can lead her life on her own and give any direction to it. She is then suddenly overwhelmed by the thought that she has to remain alive, as she owes it to her late parents and so she ate beans. In the end she finally accepts the fact that her parents were not magicians or so, they were just humans, so it was wrong on her part to look at one side of the coin and expect them to be completely flawless. As her parents they have not left any stone unturned to give their children the best possible life and to keep them secure. She now perceives her mother as a strong woman who adapted to living in scarce conditions after living in the city. She now realizes that her father had actually brought them to this island not to make them feel isolated but in order to protect them, and it had been extensively challenging for him to give them a life which follows a proper order. Furthermore, she even understands the significance of the different drawings made on the theme of war by her brother, "join in the war, or to be destroyed" (Atwood 1979, 183). She now makes an assumption that it is not compulsory that every American is bad and cruel, and every Canadian has to be a noble man. Canadians too can be hard- hearted, they too can have evil intentions. This proves that the way of cogitating of the narrator has greatly metamorphosed. Now life for her is not linear but polygonal. A sudden realization is hit upon her that makes her acquainted with the truth that she would never be able to survive on this island all by herself, because she would fall short of food if not today then tomorrow, so she must return to the city. The protagonist has had many realizations in her journey of quest for her identity. She comes to accept the demise of her parents, she realized the points of views of her parents while they were alive, and above all she realizes that she is merely a human. All these transformations suggest that her act of metamorphosis is complete.

Protagonist after metamorphosis-Having gone through the process of metamorphosis, she immediately states that, "This above all, to refuse to be a victim. Unless I do that I can do nothing" (Atwood 1979, 185). The narrator no more feels that she is a victim of circumstances rather she feels more enlightened and empowered. Her perspectives towards life has taken a significant turn, also she now acknowledges that whatever she does has a vital role to play and leads to various consequences. So, the big lie told by her is an act of sin. Moreover, she now knows that escaping from the reality or running away from the society should never be considered as an option because isolating yourself from the rest of the world would be equal to endless agony and alienation which is nothing less than a slow death. She now performs another act in which she keeps her blanket off her and goes back to normal clothes. This act directs us to an understanding that she has finally accepted the concept of humanity. The close contact and deep affection towards nature has helped the narrator to know the real self. Sherill E. Grace believed that one has to delve deep into nature in order to recover oneself. The protagonist's metamorphosis was a result of profound encounter with nature. In the end she reconciles with the perfections and imperfections of life and is very much ready to relive it, she says, "I re-enter my own time" (Atwood 1979, 185). The protagonist no longer considers herself as a failed mother or a woman rather she very gently comes to terms with her past and becomes optimistic about the future. The feminine side of the narrator is unleashed during this process of transformation.Joe comes to the Island to search for the narrator in the end of the novel. Though the narrator is aware of the fact that she would not be able to survive on this island, yet she is baffled about the idea of accompanying Joe to the city. She has no idea if Joe is the right person for her who can allow her to enjoy her boundless novice freedom. The narrator has drastically changed after going through metamorphosis and her opinions related to life have also changed sharply. She is more connected to her innate self now, she is well aware that if she makes up her mind to go to the city with Joe, her life would be greatly changed. They both would need to have a proper conversation with each other, which was lacking earlier in their relation. The protagonist feels empowered after her transformation and refuses to be a victim. The protagonist seems to believe in Joe and thinks that he is not like other men, he is different, yet she is not sure about her next step and she says, "I tense forward, towards the demands and questions, though my feet do not move yet" (Atwood 1979, 186). The title *Surfacing* hints at the main theme of the novel. She comes up at the end of the novel after having dived into a lake surfacing literally and symbolically. This pattern shows the new birth of the protagonist out of which she emerges as a free woman. She goes in search of her missing father and ends up in a kind of visionary trance like state and communicates with the spirits of nature. She decides to return to the city to face challenges in life. She realizes her identity in rebellion. She develops a productive harmony with the world. Towards the end of the journey in Northern Quebec, she realizes the victimization of women and gets ready to revolt against exploitation and oppression of all beings.

Conclusion-The protagonist's psyche is fragmented as she loses parts of herself through abortion, divorce, and her parents' deaths. However, with the help of nature and her experience, she faces her repressed memories, unresolved grief, and comes to terms with these traumas. By developing the ability to acknowledge and express her sense of loss, she integrates her disintegrated self and thereby reaches completeness. Tracing Atwood's protagonist in *Surfacing* as a traumatized subject gives us an in-depth understanding of her predicament and how she eventually fights and overcomes her situation. The protagonist survives in this patriarchal society without sacrificing her own identity as a woman. She mirrors the torment sensibility of a lady who is not prepared to trade off with the male overwhelmed society. She abhors civilization and resorts to primitive culture which she finds in the heart of nature. The afflicting realities of life turn her into an adventurous woman, who seeks to escape being victimized both politically and sexually. Her quest for wholeness results in the development of her mental state. Hence, the physical and spiritual journey of the protagonist help her in exploring herself.

******

Works Cited:-

1.Atwood, Margaret. *Surfacing*. London: Virago Press, 1979

2.Christ, Carol P. *Diving Deep and Surfacing: Women Writers on Spiritual Quest.* Boston: Beacon Press, 1979

3.Davey, Frank. *Margaret Atwood: A Feminist Poetics*. Vancouver: Talonbooks, 1984

*4.*Pratt, Annis. *Surfacing and the Rebirth Journey.* In Arnold E. Davidson and Cathy N. Davidson (eds). *The Art of Margaret Atwood: Essays in Criticism.* Toronto: House of Anansi Press, 1981

*5.*Grace, Sherrill E. *Articulating the 'Space Between:' Atwood's Untold Stories and Fresh Beginnings.* Vancouver: University of British Columbia Press, 1983

A Comparative Study: Portrayal of Women in Valluvan's 'Not Desiring Another's Wife' and Sivakami's The Grip of change.

Dr. S.MANIKANDAN
Assistant Professor,
PG & Research Department of English,Vivekanandha College of Arts and Sciences for Women (Autonomous), Elayampalayam, Tiruchengode, Namakkal (Dt), Tamil Nadu (State), India-637 205.

Abstract:-

Literature might reach the untraveled places; no community, organization, society or ideology has ever succeeded, or can ever succeed, in establishing a complete moral and ethical ideology. Yet it is a reality that politically or economically dominant communities have found certain ways of imposing ethical or moral ideas to society. This paper is trying to display the literature of the downtrodden and portrays the emancipation of P.Sivakami's women and Valluvan's portrayal of women. The novelist has indicated the inevitability of accepting and welcoming change in the lives of woman and also in their society. The overall picture presented by the novel is that rich or poor, upper caste or lower caste, the seeds of corruption exists at all levels. In addition, it tries to explore the social crisis such as discrimination, sexual harassment and exploitation of women. Comparative study directly deals with various issues and portrayal of women's identity in Valluvan's classical age Sivakami's modern age. But it portrays the weakness and vulnerability of woman of a lower cast in various form of mistreatment.

Key Words: Moral, Ethical, Women, Sex, Code and Culture.

Introduction-

Comparative study clearly explores the portrayal of Sivakami's novel characters Gowri and Thangam, and Valluvan's women characters. Sivakami has been an intellectual senior most administrative officer in the state of Tamilnadu and activist predominantly writing in Tamil language. She has published six unique novels and more than sixty short stories. She has constantly and openly voiced her opinions on contemporary social, political and cultural issues. She is the First Tamil Dalit woman to write a novel *Pazhiyana Kazhidalum* in the year 1989. It created a few beats by taking on patriarchy in the Dalit Movement. The novel *Pazhiyana Kazhidalum* is translated by the author herself and published in English as *The Grip of change* (2006). She has often explores the issues of Dalit and feminist themes throughout her works. The conflicts and struggles are between stubborn women and tyrannical men in the contemporary society. *The Grip of Change* is a process of understanding the dynamics of woman who is inextricably involved in the process.

A Comparative Study-

Sexual violation (desire on next door's wife) against woman has been seen as something natural and spontaneous act in the twenty first century. Woman are not allowed to attend schools after attaining teenage years, and are subjected to sexual assaults by much older husbands, are sexually harassed or raped by Father-in-law or brother-in-law (in the case of Thangam and Kathamuthu) if they are widowed they are subjected to regular beatings by alcoholic husbands and are burdened with heavy labour at home and also in the fields apart from nurturing their numours children and aged. This is a typical trail taken by a few women, which is full of thorns and stones further, unaware of women do not recognizing their importance of woman empowerment, rights, equality and woman education.

Thangam, a widow, she has encounters the problem of sexual explitation from her owner, Paranjothi Udayar. She has often distressed by the character of the upper caste people and as well as her own community too. In her own community, Thangam's brothers-in-law expects her to give body pleasure (sexual pleasure) but she has refused, due to this action she has left without her husband's share of her husband property. A childless widowed woman has encountered various sexual mental tortures by the hands of her brother-in-law, Paranjothi Udayar and Kathamuthu. They are not bother about Thangam's individual freedom but they are all expect only sexual pleasure, they are all supposed to be a guardian but they are all breaks it. Through Thangam's character reader must understand – how a woman faces various physical tortures in the terms of sex. Another distinct character – Gowri – an educated and intellectual woman – she has often stated that her father not a human – because he has cheated even his own community people in the terms of sex, power and money. She has emerges as a free spirit and like a saint, who has challenges her father's power and influence in everything even from the selection of dresses, mode of dressing, way of walking, behaving with others, way of expression, usage of language, profession, education and her stressing pronouncement of staying unmarried.

The primary aim of Thirukkural is to expand the minds of humanity and to create a society based on virtue, moral and social, political consciousness. It is often explores that all persons are born an equal and the unwanted merit and superiority arises out of the differences in their professions and their circumstances. And further it explains that there is no difference between the rich and the poor or from the powerful and the weak when it comes to the application of the tenets of 'Moral'. All are equal before moral, the tenets of 'Moral' is common to all; the rich, the poor, the powerful and the powerless commoner. If we never follow 'Moral' it would create indiscipline and chaos in the society.In the couplet 141,

'The indiscretion of desiring another's wife will not be foundIn those who are enlightened about virtue and possession' or 'Who laws of virtue and possession's rights have known Indulge no foolish love of her by right another's own'-In the human world, one who has learned virtue, moral, property and humanity, he has better known that the immoral is coveting and living with another man's wife it is kind of folly desire.In the couplet 142, of all the men or fools, who walk in the way of sin

and not having virtue, those who has interested and desire on next door wife, who stands like beggar in the doorway. In the couplet 143, they're numbered with the dead; even while the live-how otherwise? With a wife of sure confiding friend who evil things devise; one who enters the house of the one who does not suspect himself and has illicit relation with the wife of the next, is not alive but he is compared to dead man. Couplet 144, 'how great soe'er they be, what gain have they of life, who, not a whit reflecting, seek a neighbour's wife'. A man who has money, power and luxuries life and he has loved and entered the next house without even considering his guilt and mistake, he has not considered as a man because he has an affair with another man's wife. Couplet 145,

'Mere triflel' saying thus, invades the home, so he ensuresA gain of guilt that deathless age endures'.

One who thinks lightly of going into the wife of another acquires guilt that will abide with him imperishably and forever. Or one who thinks that it is easy to achieve and misbehave with next door's wife and he has got lifelong guilt. In the next Couplet, 'who home invades, from him pass nevermore, hatred and sin, fear, foul disgrace; these four'. Meaning, hatred, sin, fear, disgrace, these four will never leave him who goes in to his neighbour's wife". Couplet 148, 'Manly excellence, that looks not on another's wife, is not virtue merely, 'it is full properiety' of life. Meaning, that noble manliness which looks not at the wife of another is the virtue and dignity of the great or only on the virtuous virtue of not counting or thinking the next door's wife in the one's mind; that is called satisfying discipline.Is it asked, "Who are those who shall obtain good in this world, which is surrounded by the terror – producing sea?" Those who never touch the shoulder of next door's wife or belongs to another. It means, though a man perform no virtues dead and vice, it will be well and good if he does not has an affair with another man's wife. Thirukkural is one of the most notable literary and ethical treatises in the Tamil language. It is guiding human should lead a moral, ethical and useful life in the world. "If a man's mind turns to thoughts of abandoning rectitude and taking by illegitimate means what belongs to others, it will automatically lead him from error to error and bring disgrace on him and his family". Thirukkural often shines in a moral philosophy that seems to be the right paradigm for the modern. It is about the moral and ethical regulatory notion of dharma, for a sustainable growth to achieve a balance on Kama and Artha.

Conclusion-Palanimuthu Sivakami has an ultimate aim and passion to remove social irregularities and injustice; and she has made a space for herself and began contributing towards fulfilling her social goals. *The Grip of Change* attracted much larger audience with wider applause. It is try to attempt how the primary characters are overruled and breaks their traditional rules and having passion for relationship with other's wife. Valluvan was a great saint and scholar, who have written on various themes and common universal ideas. He has often stresses moral and ethical values through his couplets. He has advises and satires on man's immoral way. If a man has desires and lust on next door wife. Paranjothi Udayar an upper caste man; Gowri is a childless widow, who has works as a labourer in Paranjothi Udayar's land. 'Bathing in the tub near the well, he enjoyed watching her secretly. The sun had almost set and there was no one else in the field at that time. She was his servant. Besides, Thangam was no princess or minister's daughter. For that matter, she did not even have a husband.'Have you found it?Thangam was startled to find him so close.'Go further.' He drove her to the centre of the field so that no one could see them.Before she could even guess what Udayar was upto, he grabbed her from behind and held her buttocks tight against his thighs, murmuring harshly, 'Don't shout.' Though she had spent her three years of widowhood untouched by a man, she hated succumbing to the loathsome old man's lust. She sobbed with anger sitting in the field. (The Grip of Change, 33)Paranjothi Udayar has molest and violently rapes Thangam in the mid of the sugar cane field. 'Thereafter, he made it a routine to have sex with her and slake his lust whenever possible- in the motor shed or in the fields. She no longer resisted him. There was no choice (34)'.

Valluvan has called this kind of action as an immoral and not ethical. In the case of Santha, who is an upper caste woman and has an affair with her servant. She has not followed her moral and ethical conduct code and further, she is not a good wife to her husband and not a good mother to her children's. Valluvan has criticized a man does not have four good qualities. Kathamuthu leading character in the novel, he has an affair with Thangam. Through these characters, reader could understand that how a few modernist people living with immoral and not having good ethical code. If we want to create a good and moral society, we must follow Valluvan's couplet.

******

References-

1.Sivakami, P. The Grip of Change and Author's Notes. Trans.Sivakami. Orient Black Swan, 2006.

2.Kandaswamy, Meena. "And One Shall Live in Two" Rev. The Grip of Change by Sivakami-Appendix-Two Readings: The Grip of Change and Author's Notes. Trans. Sivakami, 2006.

3.Lakshmi,C.S. "Once Upon A Time There Was A Novel…..," Rev. The Grip of Change by Sivakami-Appendix-Two Readings: The Grip of Change and Author's Notes. Trans.Sivakami, 2006.

4.Rege, Sharmila. "Writing Caste/Writing Gender: Reading of Dalit Women's Testimonios". Zubaan, 2006.

5.Sivakami, P. The Grip of Change and Author's Notes. Trans.Sivakami. Orient Black Swan, 2007.

6.Nair, Pramod. The Politics of Form in Dalit Fiction:Bama's Sangati and Sivakami's The Grip of Change. International Journal of Gender Studies, 2011, E-Print.

7.Barbuddhe, Satish. "Indian Literature in English: Critical Views," Google Books.Web.24 May 2010.

8.Sivakami, P. "The Hindu: The Grip of Change." The Hindu.Web. 14 May 2010. Acharya,P.S. Thirukkural. Narmada Publishing, 2013.

9.Pradeep, Kumar. "The Kural and Ethics". Google Book. Web.02 Jan 2020.

10.Bassnet, Susan and Andre Lefevere. Comparative Literature. A Critical Introduction. Blackwell Publishers, 1993.

An Analytical study of Principal's Academic Role and his Professional Development

Dr. Mohan Lal 'Arya'
Professor
Department of Education
IFTM University, Moradabad, U.P.

Abstract:-
An institution is bound to fail in case it does not have an efficient, resourceful and professionally sound leader. Leadership is a must at each level of hierarchy for effective and purposeful management. As regards principal, he is the leader, the hub of the school / college management well and realize the set goals he, as compared to his subordinates, needs to be essentially better. A lot of power vests in him, and power bring responsibilities. In order to run his institution qualified, well-versed in his subject, better conversant in up-to-date methodology of teaching and better updated on the developments in the field of administration. He should also be proficient in human relationship. For development and successful achievement of these qualities one is required to attend rigorous training sessions. Professional Development enables them on a regular basis to negotiate the emerging issues and deal with the challenges in day to day managerial / leadership activities. The present paper is an attempt towards exploring the academic role of a principal and his professional development for the amelioration of the effectiveness of teachers, as also for institutional effectiveness. A self- developed questionnaire has been used to elicit the well thought responses of the teachers.

Keywords: Principal, Professional development, Leadership, Effective management.

Introduction:

With the advent of 21st century, tremendous changes have been witnessed in Indian Society. Growing field of IT and other Technological revolution have changed the picture of past Indian. India is facing different types of challenge, which are of great significance from the development point of view. In this context, education is the most potent instrument of imparting knowledge to people, providing them a sense of purpose and develops qualities and values in them, which are essential for building a strong, cohesive and enlightened nation. In the history of mankind, education has always been considered a potential means and strong base for the development of human society. Through the development of attitude, values, capabilities, knowledge and kill, education provide strength and vitality to people. It enables them to face the challenges of time resolutely and to contribute to the social development most effectively. In democratic society like Indian, education has to be the main stay of all national endeavors. With the help of a powerful instrument (education), society has to perform many responsibilities concerning with its citizen. For this, society establishes and develops many organizations on course of time to achieve a variety of goals and objective. They serve various social, economic, cultural, political, religious and other purposes. Obviously they differ in their structure, finding, scopes, sizes, control and management and also in efficiency and outcomes. Schools and college are unique institution designed to achieve specific goal for preparing good citizens.

An educational leader, the principal shoulders various responsibilities, takes policy decisions, frame rules and regulations and adopts different means to ensure a healthy and productive environment for teaching-learning activities. He does stick to guidelines for all-embracing development and for the sake of achieving coveted standard and excellence in education he works in a vibrant manner. He pays due attention to the development of his subordinates. The job of a principal is quite demanding and challenging, especially in the context of educational development and institutional effectiveness. Each day affords a rare wealth experience and opportunities for creative thinking and discovering plausible solutions to the problems. It is incumbent on the principal to involve members of the staff and representatives from among the students to seek and suggest solutions to the problems. It will lead to shaping the styles and behavior of the members of the staff and students.

The role of the principal of a school has been identified as a primary factor that contributes to the proper and desired growth and excellence of the school. Research on effective schools consistently underscores vital role of the principal to help the school reach the zenith of performance. Many studies have claimed that good principals are the most important key to school reform. Emphasis has been put on the testing procedures as a means to hold schools responsible and reflect the perspective that effective school leadership, effective teaching and student accelerate the achievement.

Professional Development:

Professional development can be defined as a process of maintaining the existing the level, and broadening of the horizon of knowledge, skills and qualities needed to work as a professional. Professional development can be helpful in: Maintaining and enhancing one's ability and competence in one's career.Staying up to date and equipped in job market, Displaying willingness to develop and bring about changes, Avoiding stagnation, Managing all changes in an institution.Professional development can't be viewed only as a means of further changes. It includes the tasks like training of the self and others, mentoring, attending conferences or undertaking research activities.

Job Description of Principal: There are many dimensions of the job profile of a principal. The following are some of the most crucial ones: -

Principal's roles: - The principal's critical roles can be subdivided into the following: - academic, participative, motivating, leadership, supervisory roles and managerial roles etc. Plans and executes for the bright future of the students,Tries to achieve desirable standards for all students and staff,Supervises effectively the functioning of the school as per the policies, norms and planning,Evaluates lesson plans, observes classes, and encourages the use of a variety of instructional strategies,

Supervises general discipline, attendance and related issues,Displays the highest ethical and professional behavior,Serves as a role model for students and the teaching staff,Encourages all teachers to display high level of professionalism,Assumes responsibility for the health, safety, and welfare of students, employees and visitors.Communicates regularly with parents, seeking their support and advice, so as to create a cooperative relationship with all the sectors,Keeps the staff informed and seeks ideas for the improvement of the school through meetings and interactions etc.,Maintains positive, cooperative and mutually supportive relationships with staff, parents and their wards,Oversees the development of Curriculum Committee and keep the Board apprised.Develops the staff and the institution.

Academic Roles of Principals:

Based on the functions, responsibilities and duties, one can summarise the crucial roles of a principal in the following manner: -

Principal as a Facilities Manager: - A principal like any other administrator is responsible for arranging and utilizing resources of all kinds. The infrastructural aspects of a school need to receive special attention of the leader. Of course, the interest of the leader is based on his vision and future prospects. Human resource, in particular, is the ultimate focus of the organization and the leader.

Principal as a good leader: - Morally as well as professionally, a leader has to keep a track record of good work, attach importance to sincere sense of calling, commitment, dedication and hard work. The leader has to set a trend in order to seek and receive cooperation and participation in the collaborated efforts for the sake of the uplift of the institution.

Principal as a motivator: - Motivation is a vital factor in the amelioration of all kinds of administrative and educational set up. In today's educational scenario, modern and dynamic principals need to be available for the groups of students, teachers and community representatives. The leader/administrator is basically responsible for employing psychological /motivational techniques to become actively involved in the existing system for the betterment of learning-teaching activities.

Principal as a Head Master: - Educationally, the principal is the head of the group by being senior and more experienced, but in modern scenario, the position of the principal is viewed only from the angle of a manager of the school who runs/leads and has nothing to do with the academics. While the fact is that by virtue of his teaching experiences, a principal can afford valuable insight into the teaching-learning setting and provide remedies if there are challenges.

Principal as a Philosopher: - A philosopher is often considered as a creature belonging to some other planet. But the fact is that every educationist is basically a philosopher. If one has no vision /philosophy /thought/ ideology, one can't bring desirable changes in the educational system. In the same way, one can't make any contributions towards the betterment of a society.

Principal as a Professional Developer: - A principal is not only a leader or a manager of the teachers, resources or the institutions but also a trainer of his sub ordinates. He has to share his experiences with his juniors to develop them as well.

Principal as an Academic Leader: - Education research shows that most school variables, considered separately, have at most small effects on learning. The real payoff comes when individual variables combine to reach critical mass. Creating the conditions under which that can occur is the job of the principal. The following crucial roles are usually performed by the principal as an academic leader:Shaping a vision of academic success for all students,Creating an atmosphere conducive the growth of education,Inculcating leadership values among the sub ordinates and juniors,Improving instruction,Managing people, records/data, resources to further the process, minimize thechance of waste and finally realize the goals.There can be a long list of main qualities of a principal. Some are given as under in the present context;

He is highly Knowledgeable and skilled,
Humble, honest and hardworking,- creative and innovative.
He is participative and motivating,
He delegates powers and responsibilities,
He is able and confident,
He is risk taking and task oriented,
He develops effective educational programs,
Participates in instructional activities,
Evaluates teachers and gives professional feedback,
Arranges professional development programs,
Maintains healthy relation with the students,
He is a true professional.

Review of Literature:

Some studies reflecting upon this aspect have been reported in the following paragraphs. **Weber, 1971 and Scheerens and Creemers, 1989** -told that strong leadership embodied in the principal was instrumental in setting the tone of the school. The extent to which the school system is able to accomplish its stated objectives determines its level of effectiveness. Effectiveness in this context transcends beyond students passing an examination. It encompasses students attainment in other factor of learning namely the affective and the psychomotor factor. Other studies reveal how school leaders attempt to implement modified policies for better results while some researchers are related to the principals' behavior from different perspectives. The entire educational system has always been affected by different perspectives or issues pertaining to the organizational behavior. Researches from the last two decades also show a strong link between effective leadership and effective organizations.

Smith, 1983 and Cruz, 1995 -says that in order to build strong teacher commitment towards the realization of school goals, principals must provide strong, directive leadership in setting and developing school goals, creating a unity of purpose, facilitating communication and managing instruction.

Ibukun, 1997- remarked that without leadership, an organization can best be described as a scene of confusion and chaos. According to the author, when leadership in an organization is effective, there is progress, but when the leadership is defective, the organization declines and decays. **Edwards 1998** found the vision of the principal a key factor in implementing change in a high-involvement school.

From relevant data regarding student achievement and the need for improvement, the principal began to develop her own vision about the future of the school, which evolved with the efforts of the school staff. This shared vision led to participatory and shared leadership in the school that was a significant factor in implementing school change.

Hughes 2004 further explains a school's culture. He states "a school's culture is a representation of what its members collectively believe themselves to be: It is their self-concept.

It reflects what they value and what they express to others as being "important around here". Culture is a shared reality constructed over time; cultures may be cohesive or fragmented, strong or weak, and functional or dysfunctional depending on the degree to which the same reality is shared by organizational members. It is clear that schooling has reached a turning point and the need for cultivating creative cultures is at hand.

Babayemi, 2006- the behaviour of administrative has been identified as one of the major factors influencing the productivity of subordinates in any organization in which the school system is not an exemption.

Statement of the Problem:

The problem of this study is "An Analytical study of Principal's Academic Role and his Professional Development". This study concentrates on establishing the Academic role of a Principal and his Professional Development in Moradabad district.

Delimitation of the Study:

This study is delimited to Moradabad district.

This study is delimited to Government and Public schools.

This study is delimited to principals of XI and XII class.

This study is delimited to Rural and Urban Location.

Research Methodology of the Study:

The investigator has used survey method in which an attempt made to academic role of principal and his professional development in Moradabad district. Generally this method is used in those studies in which subjects are sorted on the basis of some naturally occurring characteristics. This method is different from the experimental method in which the independent variable is directly manipulated by the investigator. The survey method is the threefold objective: theoretical, factual and application. The study is of qualitative type based. Given the nature of the problem to be answered on the parts of the questionnaires principal's academic role and professional development, a qualitative method of research was used. Questionnaire included 30 items, divided into three main components. Questionnaire was administered to the external teachers from different schools of different places of Moradabad district. The statement of the problem particularly belonged to the area of academic roles of the principals.

Analysis of the Study: -The data revealed that the teachers perception on the leadership quality was quite positive as most of them agreed. It leads to the interpretation that the existing principal is good enough, and the sub-ordinates respect him for his personal and professional characteristics.The teachers' response on selective item showed that the teachers expected some critical roles in the academic area of the institution. The responses on the items are indicative of the expected academic roles of the principals, and the he performs according to the prescribed and agreed roles.The selective items' responses showed that the leader should also go through developmental activities. Since professional development is a process, even if a principal is well equipped, he should update himself with upcoming changes in the field of education in general and e-learning in particular.The questionnaire was designed for other group of teachers to elicit their perceptions on the academic roles of the principals. The data showed that most of the responses are similar in tendency like the responses on the questionnaire. The respondents were of the opinion that the principal should be highly knowledgeable, skilled and dedicated. He should have vision to lead the employees to realize the goals. It is always desirable that all the principals should perform at their level best to justify their academic roles.

Conclusion: -The main findings of the study are: The principal of the present study possesses good qualities. He is visionary, knowledgeable, skilled and dynamic. He knows how to lead the sub-ordinates and run an institution. He uses all the techniques of leadership and related aspects. He has been perceived by his sub-ordinates as effective in his academic roles; however, the teachers feel that professional development can enhance him further. Other studies can be carried out to study further such as: Comparative study of the roles, effectiveness and training needs of different types of leaders/principals, Perceptions of the young and experienced employees, Factors affecting the academic roles, expected roles and institutional effectiveness, Developmental needs of the principals, Attitude of principals towards the training and development of the teachers.

*****

References: -

1. Carter V. Good (1959) "Dictionary of Education", 2nd ed., New York: McGraw Hill Book Company, 1959
2. Castangno, A. (2008). Improving academic achievement, but at what cost? The demands of diversity and equity at Birch Middle School. Journal of Cases in Educational Leadership, 11(1), 1-9.
3. Chester I. Barnard (1964) "The Function of Executive", Cambridge, Mass, Harward University Press, 1964, P.-60.
4. E.G. Guba and Bidwell (1957) "Administrative Relationships", University of Chicago: Chicago Midwest Administrative Center, 1957.
5. Jacob W. Getzels, James M. Lipham and Ronald F. Campbell, "Educational Administration As a Social Process", New York, Evanston and Landon: Harper and Row Publishers, P. - 128.
6. Jesse B. Sears (1950) "The Nature of the Administrative Process", New York, McGraw Hill, P.-4
7. Paul R. Mort (1964) "Principles of School Administration", New York, McGraw Hill, P.-2.
8. Steppen J. Knezevich (1984) Administration of Public Education, 4th Ed., Harper and Row Publishers, New York, P.- 8.
9. 'आर्य', डॉ0 मोहन लाल, (2014), "शैक्षिक प्रशासन एवं प्रबन्धन", आर0लाल0 बुक डिपों, मेरठ।
10. 'आर्य', डॉ0 मोहन लाल, (2016), "शैक्षिक प्रशासन एवं प्रबन्ध", आर0लाल0 बुक डिपों, मेरठ।

Reinterpretation of Nature-Man-Spirit Complex with Special Reference to the Murma Parha Jatra

Dr. Seema Mamta Minz
Assistant Professor, Dept. of Tribal Studies, Central University of Jharkhand, Brambe, Ranchi (Jharkhand), Mob. No. - 8521082123

Nisha Kumari
Ph.D. Scholar, UGC-NET, Dept. of Tribal Studies, Central University of Jharkhand, Brambe, Ranchi (Jharkhand), Mob. No. - 9693823863

Abstract-The Nature-Man-Spirit complex is a most renowned theory propounded by the eminent professor of Anthropology; Prof. L. P. Vidyarthi. He had thoroughly expounded this theory in relation to Maler tribe in his book, "The Maler: A study in nature man spirit complex of a hill tribe in Bihar" The fundamental dogma of this theory based on the close, interdependent and complementary relationship between the nature, man and spirit. Just after the proclamation of this theory has got huge acceptance in the academic world resulted into, the application of this very theory in the study of various communities. Even after passing many years the relevance of this theory has not faded away, above all with the changing time it can be interpreted meaningfully in different cultural components. Through this paper we would like to study the historical Murma Jatra. The so called Murma Parha (Oraon traditional administrative unit) Jatra (gathering) has tremendously changed and it is likely to be taking the religious practice rather than Parha Jatra. Under this background, the present paper is a noble try to apply the plausible theory of nature-man-spirit complex in the age old Murma Parha Jatra of Oraon community which is held every year.

Keywords: - Nature-Man-Spirit complex, Oraon, Murma Parha Jatra.

Introduction-For understanding the society and culture, many anthropologists propounded various concepts and approaches that ultimately became a methodology for further research. L.P.Vidyarthi is a renowned Indian anthropologist who worked to understand man and their society and culture. Nature- Man-Spirit complex is a major work of Dr L. P. Vidyarthi who studied the Maler tribe of Rajmahal hill and their life style in relation with nature. It is a methodology to understand the tribal ethnographical study that is based on socio-cultural-environmental phenomena. According to this concept, it is explained that, how the ecological component shapes the socio-economic life of Maler tribe who is basically a hill tribe, also known as Malto. The nature man spirit complex is divided into three components i.e. Nature, Man and Spirit that represents the inter-relatedness to each other. It is based on the fact that the Maler tribe meet their need through close interaction and dependence on nature and their belief in the supernatural and the spirit world. This concept also look into the complementary relation between nature, man and spirit. Many other anthropologists such as Julian Steward, R.S. Mann, S. G. Morab, Pradip Singh, R.K Sinha, R. K. Prasad, Das Gupta, restudied the concept of nature man spirit complex among different ecological settings which is similar to L. P. Vidyarthi's work on Maler tribe of Rajmahal hills. Different studies shows the adaptation of the socio-cultural institutions with the local environmental conditions. Das Gupta studied the interaction of Man with Spirit and nature with reference to the Ho tribe. Another anthropologist, R. S. Mann studies on the tribe of Bhil of South Rajasthan which represents the close relationship with the supernatural world and the physical environment. Reciprocity and cooperation is part of economic relations. R. S. Mann also studied this concept on Onge tribe of Little Andaman Island and explained the intimate relationship between ecology, religion, social life and economy of the Onge tribe. Likewise, V. S. Sahay who is also a renowned anthropologist explains the concept on Nicobarese of Nicobar island where focus was given on the horticulture and tried to understand the relation of Nicobarese with the social life that induced their belief on supernatural beings. Likewise, Oraon tribe who are the inhabitant of Chhotanagpur, could validate the concept of Nature- Man- Spirit Complex. In Oraon tribe, the three components are clearly visible that bring better understanding on their social life and their relationship with nature and belief on supernatural beings such as Gods, Goddesses and different spirits. The society of any tribe do have the social institutions like family, kinship, clans, and marriages. Therefore, tribal life rotates within the social structure of these institutions. In tribal life, one more component is deeply rooted in the society that is known by them as Jatra. It is nothing but fair and festivals of modern time that unites the tribal community. The tribal fair is a compulsory part of their life which has religious and cultural significance. Mostly the tribe use to observe different Jatras for example Eind Jatra, Tusu Jatra, Sohrai Jatra etc. Fair is a connecting link to understand the life style of tribes. The tribal fair is different than any other modern fair because it is more than a gathering of people. In case of Oraon, the fair is a place of economic activities. In deeper sense, the fair is a meeting place of their community where the people settle marriage negotiation, assemble of far-relatives, discussion of elders, amusements and cultural activities like dance, song and music. So, a fair plays a role of social gathering that strengthens brotherhood. Taking a look at Murma Jatra shows, all the three components i.e. Man, nature and spirit. These three components are represented in the form of gathering, land of Murma and Jatra Khunt respectively. We also see a clear interrelation with all the three components. Thus the Murma Parha Jatra, can proof to be a suitable device for making deeper analysis in the theory of the nature-man-spirit complex. The paper tries to study the theory of nature-man-spirit with special reference to two days Murma Parha Jatra.

A**im and Objectives-**The major objective of this research paper is to reinterpret the Vidyarthi concept of Nature- Man- Spirit Complex in reference to Murma Parha Jatra which is related to the Oraon tribe of Jharkhand.

Research Methodology-This research paper is based on qualitative research in which the data have been procured through field work. The study did not confined to field work but we have used both primary and secondary sources of data in order to reach at clear understanding of theory of Prof. Vidyarthi. For the primary data collection, we have used interview, observation, FGD, schedules methods. The data collected from heterogeneous age groups for better population simple however, old age, and

intellectuals have given more priority. We have also used both synchronic and diachronic approaches to know the present status as well as changes and historical aspects of the Murma Jatra and its reinterpretation in view of Nature man spirit complex.Secondary sources such as published books, journals, and Research articles have also been taken into account.

Area of study -Jharkhand is the 28th state which was carved out from the southern part of Bihar. Geographically, it comes under Chhotanagpur plateau. It shares borders with West Bengal (in the west), Chhattisgarh (in the east). Bihar and Uttar Pradesh (in the north) and Odisha (in the south). The study area confined to those villages that officially connected with Murma Parha Jatra. Since Murma Parha Jatra is a historical Jatra of 40 villages therefore all the 40 villages are coming under the study area. The 40 villages are part of Parha system and arranged into 3 Parha known as 21 Parha, 12 Parha and 7 Parha villages. Here all the numerical figures stand for village.

Finding and Discussions-As earlier it is explained that, Nature-Man- Spirit complex is a famous concept given by L.P.Vidyarthi on the Maler tribe of Rajmahal Hills. This theory is originally influenced by the concept of Sacred and Profane given by Emile Durkheim and the concept of Cultural ecology advocated by Julian Steward. It has been said that, the interaction between man and nature is a two way process. At this background, L. P. Vidyarthi has seen that the tribal society interacts not only with nature but also with spirituality.

The Nature-In this part, Vidyarthi tries to analyse ecological dependency/ symbiotic relationship of Maler tribe with nature. It is visible that hill and forest are so much important to the Maler tribe. The Malers like any other hunter gatherer tribe use the forest product but their interaction not limited to physical need only. In fact the nature influences the entire life of the Maler. In this part, he divided four cultural types and levels that includes- Hunters and Gatherers, Shifting cultivators, settled agriculturists, simple artisans. The main source of economy for Maler is the forest which provides them food, drink, shelter, medicine, graveyards. All the agricultural activity centred on 'Khallu' which is a Slash and burn (or swidden) cultivation. All the forest produce, they either consume or sell in the market. Forest supplies all the necessary requirements of the Maler like food, house. Since they are so attached with forest, they have the tremendous knowledge of indigenous medicine. Thus, the life of Maler is so much depended on forest that it is not possible to think of a Maler without forest.

The Man-In the man part, he tried to explain about the man to man relation which represented through the social system such as Marriage, Kinship, Role and structure of the traditional Panchayat. He also explains various types of social interactions where a village achieves cohesion through those important social system and institution like marriages between its lineages, through common shrines, ceremonies, festivals, sacrifices, youth dormitories and the daily activities.

The Spirit-In this part, he represents the animistic belief of the Maler tribe. It seems that, different spirits play a major role in deciding the mode of life. The Maler tribe, believe on the supernatural spirit called Gossaiyan. He is the supreme God for him. Their believe system is guided by nature. Their worship and rituals are not complex. For example, for better production in agriculture, they sacrifices pig and fowl to their God. Apart from this, they believe on many other spirits. It is the belief that there is both benevolent and malevolent type of spirit exist. Every religious activity is perform by their priest. All three attributes are interconnected, to each other that fulfils the need of the life of Maler.

Oraon culture and tradition-The basic attributes upon which the life style and culture depends is basically what the nature gives to them and how their belief related to the culture and the tradition. In the case of Oraon community, who are the major tribe of Jharkhand, known as Kurukh by their language. They originally come to Jharkhand from Rohtasgarh via Sirisitanale (a religious centre of Oraon), presently located in Gumla district of Jharkhnad.Oraon believes in the nature worship. The supreme god of Oraon is called Dharmesh which means Sun so they are Sun worshipper. They are traditionally an agriculturist community. God Dharmesh is essentially worshipped in each of their rituals and ceremonies. They follow Sarna religion and their main religious place is called Sarna. Every religious work is performed by Pahan and Baiga.

Ethnic boundaries through Murma Jatra-Murma Jatra (fair) is a unique fair of Oraon tribe which is observed once in a year in the place called Murma in Ranchi district. It is a perfect example of cultural and traditional affair. It is not a normal gathering but has historical and cultural significance of Oraon tribe because in past it was organized to meet 40 Parha villages of Parha system. The Murma is a village and the place where Jatra takes place is also known as Murma. It seems the name of the village derived from the Jatra place. It is a huge ground, extended over about 30 Acres of area, surrounded by villages like in North Bargarhi village in North, Brambe in East, Sursa in South and Murma in west. Murma jatra is celebrated on the first night of Krishna Paksha of Hindi month of Kartik and the second day of Kartik Krishan Paksh. Traditional pattern is followed by the Oraon community. Mainly, this fair is related to the Oraon community only but it influences other people also. Earlier other communities attended the fair as a spectator but slowly their participation expanded into every possible areas. among all the 3 parha because it has the right to change the Jatra Khunta. Then after, all the Parha village can enter in this place. Also before starting the fair, they use to worship god Dharmesh and Sarna Maa so that fair could successfully organize. There is a place where people worship and perform ritual activities. It signifies with the Jatra Khunta or Shakti Khunta. Oraon people believe that Sarna Maa and many other spirits exists in Jatra khunta that plays a significant role to decide the good and bad thing in life , economy, cultivation and even in jatra. It is treated as existing place of their deities and spirits. And we can also say that it creates the ethnic boundaries as this Jatra is purely for the Oraon community.

Reinterpretation of Murma Jatra in view of Nature Man Spirit Complex-With the changes in time, we see the changes in various different aspects of life. In this regard, the tribal life is not exceptional. The traditional life of tribal is mostly affected by this changes. Over a period of time, following factors are responsible for the changes - Changes in means of livelihood - As we know that Oraon community are based on agriculture for their economy means they are agriculturist by occupation but due to education

and modernization, they are more inclined to service sector.Hopeless situation of agriculture in India - Since, we know that now the situation of agriculture is degrading day by day in India due to natural calamities and many other human interference. So, the people are in the pressure to choose some other alternatives.Education and Migration- Due to education, they become capable for jobs and at such situations, they prefer jobs rather than agriculture. And also migration is also responsible for the changing situation. Oraon of Chhotanagpur area are migrated to other places such as West Bengal, Assam for getting better job and sustenance. Due to migration, they also works as seasonal labourers in construction site for earning quick and handsome money. By these changing situation, the way of style to sustain their livelihood is also change, they become mental labourer than physical labourer. And the Nature Man Spirit complex based on the basic components i.e. Nature, Man and Spirit have disturbed due to these factors. Owning to we see new component in these regards.In case of Murma Jatra, market is an emerging component which is growing every year. The market of Murma Parha Jatra got popularity in the rural environment. Since, its actual purpose i.e. the meeting of 40 Parha villages has lost its importance. Therefore, the concept of market steadily engulfing the traditional cultural trait of Murma Jatra. At this background, The Murma jatra can be defined as-



The Nature: reference to Oraon and Murma Jatra

So far, we know that Oraon is an agriculturist community. They still prefer agriculture for their livelihood. In doing so, they adopted scientific and advanced technology. Above all, it has been seen that their belief system is also agriculture based, that time to time reflects in their festivals and ritual. In case of Murma Jatra, the market plays an important role. We see the Oraon tribe also try to make money through maximum use of the market by selling their agriculture products. But by the influence of other communities, they also sell and buy modern things and ultimately their means of livelihood is changing to some extent. Since, Oraon are also known as nature worshipper and they have the sacred belief on various natural leaves and flower like Sal tree and its leaves and flower, Mahua, that they offer to their gods and goddesses. Before the inauguration of Murma Jatra, they pray to god and goddesses for betterment of market, agriculture and fair. For Oraon, tribal market of Jatra place that organizes for only two days works for the economic bases and creates an environment based on ecological settings.

The Man: in context of Oraon and Murma Jatra-For man part, we see that it is recognized by the basic attributes of social structures. We observe that in two day Murma Jatra, it acts as a confluence place of Oraon community. Oraon people who earlier migrated come to this place for worshipping and meeting their family and kin. It is a huge gathering where marriage proposal are also accepted and initialized. Also, Murma Jatra is not an ordinary Jatra, as it is a Parha Jatra that shows the traditional political system and hierarchy of social structure among Oraon community where forty Parha villages participate in this historical Jatra.

The Spirit: Shakti Khunt of Murma Jatra-If we go to the place of Murma Jatra, we easily observe that, there is a Jatra Khunta or Shakti Khunta which is also called a Bhut Khunta. The log of Sal situated in the Murma Jatra field has high place among Oraon because this is what represent as Shakti Khunta. It is a natural piece of Sal tree which was erected by the ancestor of Oraon community. At present the condition of the so called Shakti Khunta is poor that indicates its antiquity. It is the belief of the Oraon that God, Goddesses and many good spirits are exist in the Shakti Khunta or Bhut Khunta, so it is treated as Shakti Pith where god exists. They believe that if the spirits will be angry for their misdeeds and wrong doings or if the spirits are unhappy with the worship, they can able to bring bad fortune for whole community like for some year this place will have less rain for agriculture.

Conclusion- Nature-man-spirit complex is a famous concept put forth by L.P.Vidyarthi in his book "The Maler: A study in nature man spirit complex of a hill tribe in Bihar" which says that all the three components are interdependent and complementary. In the context of Murma Jatra, which is traditionally a Parha gathering of Oraon community invariably comprises all the three components of the Vidyarthi's concept, Nature- man- spirit complex. But over the time, there is a change in one component i.e. nature. However, in this regard, it cannot be completely discarded that nature does not exist because still they have dependency on nature for their livelihood. Their belief is also related to nature and agriculture. Rather than food crops, Oraon are more inclined towards cash crops so that they directly sell it in the market. So, the market component is the other component where in two days it provide helping hand to the Oraon community to earn in addition. Shakti Khunta is symbolic representation of their ancestral homeland. They believe it a holy place and come here for blessings and prosperity. That is why, it is becoming a religious centre for Oraon community. It also connects people by strong social structure and institution. All these three component is changing and taking different forms but they still are complementary to each other, interdependent and interrelated whereas Shakti Khunta or Shakti place plays a vital role to connect those other two components.

******

References-

1. Mishra, S. S. & Ekka, W. (1996). Murma jatra: Ek Parichay. Ranchi, Ashok Prakashan.
2. Husnain, N. (1988). Indian Anthropology. Delhi, Palaka Prakashan (pp.215-218).
3. Mann, R.S. (1981).Nature- Man- Spirit Complex in Tribal India. New Delhi, Concept Publishing Company.
4. Vidyarthi, L.P. ( ). The Maler: A Study in Nature-Man-Spirit Complex of a Hill Tribe in Bihar.
5. Behera, M.C. (1998). Pilgrim Centre Parshuram Kund. New Delhi, Commonwealth publishers.
6. Narayan, B. Chhotanagpur ke Oraon Riti Riwaz. Ranchi, Jharkhand Jharokha.
7. Dehon, P. (1906). The Religion and Customs of the Oraon. Calcutta, Memoirs of the Asiatic Society of Bengal.
8. Durkheim, E. (1915. The Elementary Forms of Religious Life. London, George Allen and Unwin, Ltd.
9. Mitra, A. Fairs and Festivals in West Bengal. West Bengal Government Press.
10. Roy, S. C. (1915). Oraons of Chhotanagpur: Their History, Economic Life and Social Organization. Ranchi, Crown publications
11. Roy, S. C. (1928).Oraon Religion and Customs. Calcutta, Industry press
12. Sharma, S.P. & Gupta, S. (2006). Fairs and Festivals of India. New Delhi, Pustak mahal.
13. Sinha, D. (1967). The Phariya in an Inter-Tribal Market. Economic and Political Weekly, 2(31), 1373-1378.
14. Sinha, D.P. Unity and Extension of a Tribal Village in Chhotanagpur, manuscript.
15. Sinha, D.P. (1968). Culture Change in an Intertribal Market. New Delhi, Asia Publishing House.
16. Tirkey,M.L. (2013). Tribal Origin and Culture. New Delhi, L.Tirkey
17. Tribhuwan, R. D. (2003). Fair and Festivals of Indian Tribes. New Delhi, Discovery Publishing House.
18. Vidyarthy, L.P. (1961). The Sacred Complex in Hindu Gaya. Delhi, Conce

Gender, Choice of Stream and Social Interaction in Higher Education

Brajesh Kumar
Assistant Professor, Department of Sociology
Babasaheb Bhimrao Ambedkar University
Lucknow, Uttar Pradesh
Mo.7518402301

Manoj Singh Yadav
Assistant Professor, Department of History
Kashi Naresh Government P.G College
Gayanpur, Bhadohi, Uttar Pradesh

Taruna
Assistant Professor, Department of Rural Managemnet
Babasaheb Bhimrao Ambedkar University
Lucknow, Uttar Pradesh

Abstract
Women in Delhi are catching up with their male counterparts as far as access to higher education is concerned. It does not specify that gender differences in higher education have wiped out altogether. Several studies have confirmed that women face more difficulties on higher education campuses than men. This study identifies two major problems faced by women in higher education. The first is related to the choice of a stream for higher education, and the second is related to social interaction on higher education campuses. The objective of this study is to test if these two problems vary according to gender. In doing so, five hypotheses have been developed. To test those hypotheses, data have been collected from 282 students from two higher education campuses in Delhi. The study applied Chi-square test to find the relationship between gender and the two problems identified here. The result indicates a significant difference between men and women relating to the choice of stream and social interaction on the campus.

Keywords: Choice of stream, gender, higher education, social interaction

Introduction-Women are considered a disadvantaged section in India. Education is seen as the critical factor in overcoming barriers that women face. Education expands knowledge that can be influential in improving control over the life situation and environment (Khan & Ghadially, 2009). It empowers women and brings them into the mainstream of the development process. Historically excluded from higher education, women have moved from below par to parity with men. During the last three decades, India has experienced impressive growth in women's involvement in higher education. Gender disparity in access to and entry in higher education is not a problem now. The education of women has been a priority in both national and state policies and programs. Several strategies have been taken up to promote girls' education as an essential part of the planned socio-economic development of the country. As a result, the gender difference in educational level has almost disappeared in Delhi. However, women still face many problems in higher education. Young women have to leave their education because of different reasons. Marriage and parents' unwillingness to carry on with higher education are two reasons. The two major problems that characterise gender differences in higher education are the choice of a stream for higher education and social interaction on the campus.

A literature review reveals a short fall of women in the scientific and technical fields (Harding, 1996; Ramirez & Wotipka, 2001; Barone, 2011). The streams of higher education can be divided into two groups: masculine and feminine (Babu et al., 2010). Humanities, social sciences, and education are considered feminine disciplines, while science and technical/ engineering courses are masculine. Even parents prefer their daughters to pursue higher education in one or other of these feminine subjects. They socialise their daughter from that viewpoint.

Further, the low number of women leads to 'heightened visibility' (Kanter, 1977). So women students respond by not having much interaction with anyone on the campus; they have to restrict their space of interaction for etiquette. Several studies also reveal that social interaction on higher education campuses is restricted for women (Etzkowitz et al., 1994, Gupta, 2007; Kanter, 1977).Against this backdrop, the objective of this paper is to test gender differences in the choice of stream and social interaction in higher education. In doing so, five hypotheses were developed.

Hypothesis
This study is an attempt to test the following five null hypotheses:
H1: The choice of a stream does not differ significantly according to gender.
H2: Difficulty in attending class lectures does not vary according to gender.
H3: Difficulty in interaction with teachers does not differ according to gender.
H4: Difficulty in interaction with office staff does not differ according to gender.
H5: Difficulty in interaction with peers does not differ according to gender.

Data and Methodology
In order to test the above five hypotheses, a survey was piloted on a representative sample of students fromtwo selected higher education campuses in Delhi in 2012. A total of 300 respondents were approached for data collection. However, only 282 were successfully administered the interview schedule; the response rate was 94.0 percent. The interview schedule contained a question on various issues like choice of a stream by students, social interaction on the campus, gender, etc. A total of 282 students constitute sample for this paper. Out of these 282 respondents 110 were women and 172 men. The sample was a representative of the two campuses of higher education in Delhi.

Variables-The three crucial variables in this study are gender, choice of steam, and social interaction in higher education. Gender takes two values: women and men. Choice of steams has four options: humanities and social sciences, commerce, science, technical/ professional. Finally, to capture social interaction, students were asked to tell their experience of interaction in four situations that they face on the campus: difficulty in attending class lectures, difficulty in interaction with teachers, difficulty in interaction with office staff, and difficulty in interaction with peers. Respondents were asked to respond to these in 'yes' or 'no'.

Analysis-In this study, gender is an independent variable, and all others are dependent variables. As all the variables, dependent and independent, are categorical hence Chi-square test is used in this study. In doing so, the data is disaggregated according to gender. The significance level for the test is set at 0.05. Clustered bar diagram is also constructed to get a clear picture of gender differences in higher education.

Results and Discussion
Choice of Stream-There is a big difference according to gender if the choice of a stream for higher education is considered. A chi-square test is performed to find an association between gender and choice of a stream

for higher studies. Table 1 gives cross-tabulation of choice of higher education stream according to gender.

A chi-square test of independence point out that there is a significant relationship between gender and choice of subjects for higher education: χ^2 (3, n = 282) = 25.95, p = 0.0001, Cramer's V = 0.303. So, the first hypothesis is rejected, which says that the choice of a stream does not vary significantly with gender. The value of Cramer's V suggests a moderate association between gender and choice of stream of higher education. Compared to earlier generations, more women are also entering into science, technical and professional courses, but this figure is still not ame-

Table 1: Cross-tabulation of Choice of Stream of Higher Education by Gender

	Gender		Total
	Women	Men	
Streams of Higher Education			
Humanities and Social Sciences	51(46.4)	32(18.6)	8 3 (29.4)
Commerce	6(5.4)	17(9.9)	23(8.2)
Science	21(19.1)	59(34.3)	8 0 (28.4)
Technical/ Professional	32(29.1)	64(37.2)	9 6 (34.0)
Total	**110**	**172**	**282**

Note: The figure in parenthesis denotes column percent.

Figure 1: Clustered Bar Diagram Showing Relation between Gen-

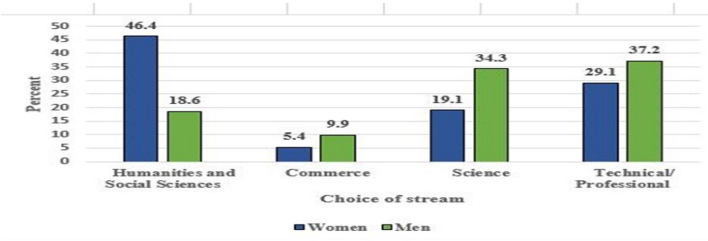

Figure 1 makes the gender differences in choice of stream clearer. The qualitative enquiry also upholds and substantiates this result. Women-have a tendency to opt for definite subjects because of their internalising the values via socialisation. It relates feminine roles to feminine stream of education. Internalisation of sex-role and stereotyping of the womanly role influence women's educational state, segregating women into humanities and social sciences and men into science and technical streams. This study resembles that of other studies that recognise the underrepresentation of women in a scientific and technical field that can be noticedcommonly (Harding, 1996; Ramirez & Wotipka, 2001; Barone, 2011). The sociological explanation of gender segregation in higher education lies in men's and women's natural preference that signifies pervasive acceptance in contemporary societies (Charles & Bradley, 2002).Bunching of women students in specific subjects determine their occupational segregation later in life (Deem, 1978).

Nowadays, women are also gradually entering masculine streams like science, commerce, law, and engineering. General education does not promise good income in the labour market, and it also requires several years of full-time education. When young men and women want to earn, general education is not preferred by them as it is not in demand in the labour market. The expansion of education in the post-liberalised phase is related to market demand. Most of the masculine courses in demand in the labour market are offered by a large number of private institutes. The socialisation of women in Delhi has also undergone some change. The entry of women in masculine streams implies that the role of stereotyping does not necessarily determine the choices of all women students. The parents give the best education to their daughters and expect them to pursue an independent careers. Higher education in these disciplines also helps women in the marriage market by raising their status. However, their numbers in these traditionally masculine disciplines are minimal for generalisation. They have yet to go a long way to attain gender parity in the choice of a stream for higher education.

Social Interaction on the Campus of Higher Education

Although more and more women are entering different education streams, they face many problems in social interaction at an educational institute, which puts them in a disadvantageous position compared to men. To tap the difficulties that young people face at educational institutions, four questions were asked to the respondents. These questions are: Do you face difficulty in attending class lectures? Do you face difficulty in interaction with teachers? Do you face difficulty in interaction with office staff? Do you face difficulty in interaction with peers?

Figure 2 displays the graphical visualization of data. Also, cross-tabulation of the response of all the four questions according to gender is given in Table 2.A Chi-square test is performed for each question to explore if young people's difficulty at educational institutions varies with gender. For the first question chi-square test for independence (with Yates's continuity correction) indicates that there is no significant association between gender and the difficulty that young people face in attending class lectures:χ^2 (1, n=282) = 0.566, p = 0.452, phi = 0.055. Thus, the second hypothesis is not rejected. Men and women are equally comfortable attending class lectures.

Figure 2: Visual Display Showing Gender Differences in Social Interaction in Higher Education

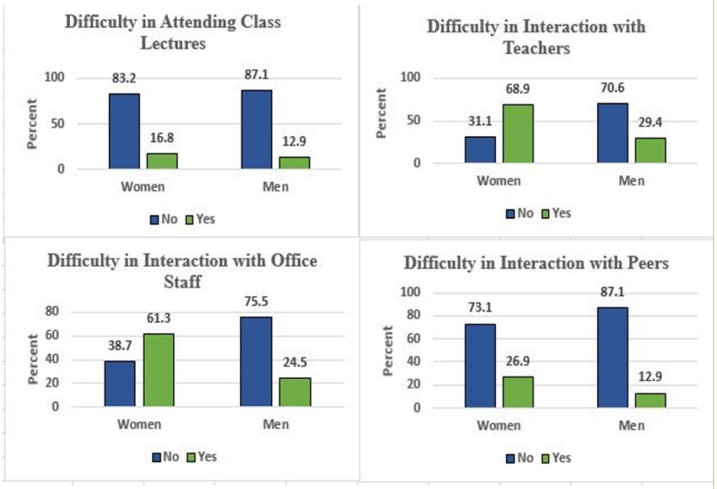

For the second question chi-square test for independence (with Yates's continuity correction) indicates that there is a significant association between gender and the difficulty that young people face in interaction with teachers: χ^2 (1, n = 282) = 41.529, p = 0.000, phi = 0.391. Here, the third hypothesis is rejected. Hence, the difficulty in interacting with teachers varies according to gender. For the third question chi-square test for independence (with Yates's continuity correction) indicates a significant association between gender and the difficulty that young people face in interaction with

office staff: $\chi^2(1, n = 282) = 37.282$, $p = 0.000$, phi = 0.371.Thus, the fourth hypothesis is also rejected, and women face more difficulty interacting with office staff.

For the fourth question also chi-square test for independence (with Yates's continuity correction) indicates that there is significant association between gender and the difficulty that young people face in interaction with peers: $\chi^2(1, n = 282) = 7.949$, $p = 0.005$, phi = 0.177. Again, the fifth hypothesis is rejected, which in turn implies that women face more difficulty interacting with peers on the campus.

	Gender		Total
	Women	Men	
Difficulty in attending class lectures			
No	99(83.2)	142(87.1)	241(85.5)
Yes	20(16.8)	21(12.9)	41(14.5)
Total	**119**	**163**	**282**
Difficulty in interaction with teachers			
No	37(31.1)	115(70.6)	152(53.9)
Yes	82(68.9)	48(29.4)	130(46.1)
Total	**119**	**163**	**282**
Difficulty in interaction with office staff			
No	46(38.7)	123(75.5)	169(59.9)
Yes	73(61.3)	40(24.5)	113(40.1)
Total	**119**	**163**	**282**
Difficulty in interaction with peers			
No	87(73.1)	142(87.1)	229(81.2)
Yes	32(26.9)	21(12.9)	53(18.8)
Total	**119**	**163**	**282**

Table 2: Cross-tabulation of Difficulty that Young People Face at Educational Institute by Gender

Note: The figure in parenthesis denotes column percent for each question.

In comparing the phi value and the significance level for the four questions, it can be said that young men and women are equally comfortable attending classroom lectures. However, when it comes to interaction with teachers and office staff, women face more difficulties than male students. Again, the low phi value indicates that interaction with peers varies according to gender. It means that more and more young women are also having good interactions with peers but not of the kind seen among young men. Thus, this study also confirms the earlier studies by Kanter (1977) and Gupta (2007).The qualitative analysis also supports this result. The informal interaction is problematic for women because of the lack of critical mass in some streams of education (Gupta, 2007). The low number of women leads to 'heightened visibility' (Kanter, 1977). So women students respond by not having much interaction with anyone on the campus; they have to restrict their space of interaction for etiquette. They are watched more cautiously, and their mistakes are always in focus. If they perform poorly, they are easily noticed. The performance of women students is under continuousinspection, and everyone is curious around how they are going to perform. Their absence is noticed even for a day, and they are enquired about that. On the other hand, the presence of critical mass also does not ensure a positive effect on social interaction. The presence of many women may help them form their group for informal discussions, but this does not extend to comfortable interacting with others on the campus of higher education. Gender stereotyping still operates to segregate and restrict social interaction among women students. Etzkowitz et al. (1994) called such contexts as 'paradox of critical mass'. Informal interaction with teachers is considered vital as it affects mentoring. Still, women students only interact formally with teachers for their academic work. Their interaction with office staff and others is also limited. All this put young women in a disadvantageous position at an educational institute. They tolerate the consequences of conserving the decorum and the disadvantage of gender segregation (Gupta, 2007).

Conclusion-

Historically excluded, women in Delhi have reached parity with men in educational attainment. However, this does not indicate that gender differences in education have vanished altogether. There are many aspects of gender inequality in education.Although some women are also entering into science, technical and professional courses yet, this figure is not sufficient to generalise that discipline choice does not vary according to gender. Women students are likely to opt for specific subjects for the reason of their socialisation which describes feminine roles to feminine disciplines in higher education. Generally, women are segregated into humanities and social sciences and men into science and technical streams. Social interaction at an educational institute is vital for academic achievement. However, gender stereotypes restrict the space of social interaction for women. Lack of critical mass makes the informal interaction for women difficult. They are watched more cautiously than men. They have to restrict their interaction space with male students for the sake of etiquette. Compared to women, men can develop more informal relations with teachers and office staff, which gives them more benefits. Women remain in a disadvantageous position. Despite gender parity in access to higher education, some specific problems are unique to women: choice of stream and difficulty in social interaction are two such problems.

*****

References-

1. Babu, K. R., Rohini, R., Drakshavalli, B., & Prameela, K. (2010). How Higher are Women in Higher Education? In A. K. Thakur, & M. Patel (Eds.), *Challenges of Education in 21st Century* (pp. 38-47). New Delhi: Deep & Deep Publications.
2. Barone, C. (2011). Some Things Never Change: Gender Segregation in Higher Education Across Eight Nations and Three Decades. *Sociology of Education, 84* (2), 157-176.
3. Charles, M., & Bradley, C. (2002). Equal but Separate? A Cross-National Study of Sex Segregation in Higher Education. *American Sociological Review, 67*, 573-599.
4. Deem, R. (1978). *Women and Schooling.* London: Routledge and Kegan Paul.
5. Etzkowitz, H., Kemelgor, C., Neuschtz, M., Uzzi, B., & Alonzo, J. (1994). The Paradox of Critical Mass for Women in Science. *Science, 266*, 51-53.
6. Gupta, N. (2007). Indian Women in Doctoral Education in Science and Engineering: A Study of

The Influence of The Gothic in The Resoution of Charlotte Bront's Jane Eyre

Rimzim Saikia
Sibsagar College of Teachers' Education
Mo.7002502301

Abstract: Mostly known as a buildungsroman, *Jane Eyre* by Charlotte Bronte also contain elements of the gothic. As stated by Chris Baldick, "gothic novels are usually stories of terror and suspense set in a gloomy old castle or monastery". They also contain dungeons, hidden rooms, sensational and supernatural occurrences etc. Gothic elements find mention in the instances of anxiety, madness, in the consequences of supressing female sexuality etc. Characters hearing each other's voices despite being away from each other can also be related to gothic. The gothic elements deeply influence the novel and also help in the resolution of the plot of the novel Jane Eyre.

Keywords: Gothic, Macabre, Anxieties, Physiological Impressions, Sexuality, Madness, Physic.

Introduction: This article tries to study the impact of the gothic in the consummation of Charlotte Bronte's *Jane Eyre* (1847). Jane Eyre is the story of the rise of the protagonist from the lower to the higher social order. Although mostly known as a buildungsroman, the novel contains within its pages some gothic elements. This article will try to study the effect of these gothic elements in the resolution of the plot. Gothic novels are usually stories of terror and suspense set in a gloomy old castle or monastery(Baldick 154). Inaugurated by Horace Walpole's T*he Castle of Otranto: A Gothic Story* (1764), the genre uses dungeons, subterranean passages, hidden rooms along with other sensational and supernatural occurrences to build up and convey the story. Written with the aim of evoking chilling terror by exploiting mystery, these novels opened up to fiction the realm of the irrational and the perverse impulses and nightmarish terrors that lie beneath the orderly surface of the civilized mind (Abrams and Harpham 152). Often representing uncanny violence, it also indulges itself with aberrant psychological states. Gothic has been used to describe the macabre and terrifying which certainly have found one of its followers in Charlotte Bronte's *Jane Eyre.*

Analysis: *Jane Eyre* is the story of a young English woman who through her determination and luck was seen conquering her fears and social status. The writer, Charlotte Bronte's life seems to be overshadowing the life of Jane in certain places. Bronte lived a lonely and grief stricken life with a succession of family tragedies where literature became her remedy. Bronte's works portrayed a realistic picture of society along with the elements of passionate and unbalanced romanticism (Long 514). But her works also engulfed the sadness of her past. These experiences can cause psychological anxieties. Just like her creator, Jane also suffers from family tragedies. Gothic in the form of the anxieties faced by Jane as a result of the past experiences deeply influence the plot of the novel. Gothic, in this way makes an appearance in Charlotte Bronte's writing.Gothic plays a major role in the completion of the novel. There are references to actual gothic incidents along with the psychological impressions connected with them. Bronte through the 'red room' starts off with the gothic descriptions. As a room where a death has occurred and is unoccupied by anyone, the red room recognizes both psychological confinement and physical bondage. In Jane's voice-"All looked colder and darker in that visionary hollow than in reality: and the strange little figures there gazing at me, with a white face and arms specking the gloom, and glittering eyes of fear moving where all else was still, had the effect of a real spirit."(Bronte 10)Jane's inner anxieties came out and took the shape of supernatural experiences being locked up in the 'red room'. This room leaves a big influence on her life. Her psychological trauma is very much reflected in the anxiety created by this room.Apart from the 'red room', Thornfield Hall also resembles a gothic atmosphere. A three stories manor house, it is ten minutes away from any human habitation. Jane says, "Thornfield with a seclusion I had not expected to find existent so near the stirring locality of Millcote.'(Bronte 116)' It is secluded and isolated from any human community. This house has close resemblance to the house *Wuthering Heights* described by Emily Bronte in the novel having the same name *Wuthering Heights.* Both are secluded and isolated and hold within themselves so mysterious and dark secrets regarding human sensuality. When revealed, these secrets changed the courses of the novels.Gothic is also used to represent the consequences of suppressing female sexuality. Bertha Mason is the character used by Bronte to realize her goal. Once happily married to Rochester, she now resembles madness and insanity. Gilbert and Guber in their *The Madwoman in the Attic*, Shows the rage the writers felt being dominated by the societal norms. Closely related to Bertha Mason of Jane Eyre, it talks about how the female writers expressed their inner rage with the help of such characters (Gilbert and Guber 34).

The sexual repression, social isolation and emotional trauma that Berta undergoes as a result of the betrayal by Rochester may be held responsible for her madness. Madness and gothic are juxtaposed together. Bertha's madness is made clear with her physical description: "In the deep shade, at the farther end of the room, a figure ran backwards and forwards. What it was, whether beast or human being, one could not, at first sight, tell: it grovelled, seemingly, on all fours; it snatched and growled like some strange wild animal: but it was covered with clothing, and a quantity of dark, grizzled hair, wild as a mane, hid its head and face." (Bronte 352)She is dehumanized by the others especially by the male characters.Gothic often deals with mysterious circumstances that most of the times have natural explanations. The demonic laugh of Bertha, the image of the Gytrash, and Bertha's spine-chilling entrance into Jane's room at the dark of the night create horror in the mind of Jane. But as the story moves forward, rational explanations can be found behind these incidents. They build the foundation for the bigger issues to take place. Jane as a result of her mysterious encounters with the

gothic suffers from psychological anxieties. They mostly function in the form of dreams, nightmares, and psychological encounters in Jane's life. Jane's subconscious mind gets reflected in her dreams. These nightmares are epitome of the psychological anxiety of Jane. They are also used as a trope to foretell the future. The nightmares Jane suffers for seven consecutive nights reveal the near future of her. The dream of a child forebears the end of her relationship with Rochester. Just like her nightmare, Thornfield actually turns into a 'blackened ruin' (Bronte 514). Symbolically the fall of the child from her lap can also be regarded the death of Berta Mason who jumped from the top of Thronfield Hall. Her inner turmoils take real shape in the course of her journey.

The so called 'other' is also termed as gothic. According to Staszak other/otherness, is the concept of treating someone as different from own. Otherness is due less to the difference of the other than the point of view and discourse of the person who perceives the other as such (Staszak 43). In this concept, mostly imposed by the dominant groups, people who they believed to be different from them are termed as the other. By stigmatizing them as others, barbarians, savage or people of color, they try to dominate or exterminate them. Bertha Mason, the gypsy woman and the oriental king is regarded as the other in the novel. Bertha has been described as a creole woman. The rumors that are present regarding her term her as a strange woman believed to be a cast off mistress of Rochester (Bronte 516).

Madness and wildness is connected to her for her physical appearance and skin color. She is termed as something inhuman because she fails to conform to the notions of an ideal Victorian woman. Rochester takes the disguise of a gypsy woman. Gypsy's are often believed to be people of mysterious nature. She makes her entrance in the novel to foretell the future of the single ladies visiting the house of Edward Rochester. Although Rochester pretends to be a gypsy lady Mother Bunches, it was believed that the gypsy people held the power of foretelling the future. Words like sorceress, bedlam, old hag are used to differentiate her (Bronte 229). The disguise of the oriental king symbolically represents the colonial empire. The colonies of the British were of people who were of different origins than the British. The Britishers termed them as savages or barbarians. Apart from that these places were also believed to be filled with the mysterious and the supernatural. The English had a specific physiological construct regarding these people. The representation of the other is portrayed in a manner which is enough to excite fear and anxiety in the readers. Gothic also works in the form of the supernatural. In chapter 34 of Jane Eyre, a sequence of mysterious voices make their appearance. On the verge of accepting the marriage proposal from St. John, Jane felt an inexpressible feeling and heard the lamentation, "Jane! Jane! Jane!" (Bronte 507). According to Jane, "I had head it – where, or whence, forever impossible to know! And it was the voice of a human being – a known, loved, well-remembered voice – that of Edward Fairfax Rochester; and it spoke in pain and woe, wildly, eerily, urgently"(Bronte 507).Not just Jane, as it is latter described in chapter 37, Rochester too heard Jane's reply to his urges. In Rochester's voice:As I exclaimed "Jane! Jane! Jane!" a voice – I cannot tell whence the voice came, but I know whose voice it was – replied, "I am coming: wait for me;" and a moment after, went whispering on the winds the words, "Where are you?" (Bronte 542).Being able to hear each other's voice while being physically absent from each other's company can only be termed as something which is physic and uncanny. There can not be found any rationality behind such an incident.

These lamentations are also very commanding and impactful. "Where there is energy to command well enough, obedience never fails" (Bronte 508). As a reply to this voice Jane goes in search of Rochester leading to the climatic moment of *Jane Eyre*.Conclusion: In this way, the article tries to prove the influence of the gothic in the development and completion of the plot of Jane Eyre. Apart from the mysterious descriptions, gothic is also used as a means of describing the anxiety and fears faced by the novel's characters. They built a path for the story to move forward. Thus, we can say that Charlotte Bronte has used gothic as a plot device to bring a unity in the novel *Jane Eyre*.

******

References:-

1. Abrams, M.H and Geoffrey Galt Harpham. *A Glossary of Literary Terms*. Eleventh edition, Cengage Learnings, 2017.
2. Baldick, Chris. *The Oxford Dictionary of Literary Terms*. Fourth edition, Oxford University Press, 2015.
3. Bronte, Emily. *Wuthering Heights*. UBS Publisher's Pvt. Ltd, 2015.
4. Bronte, Charlotte. *Jane Eyre*. Editer by Currer Bell, Seventeenth edition, Penguin English Library, 2012.
5. Gilbert, M. Sandra and Susan Gubar. T*he Madwoman in the Attic: The Woman Writer and the Nineteenth- Centuary Literary Imagination*. Second edition, Yale University Press New Heaven and London, 2000..
6. Long J. William. *English Literature: Its History and its Significance for the Life of the English Speaking World*. Aitbs Publishers, India, 2013.
7. Staszak, Jean-Francois. "Other/Otherness". *International Encyclopedia of Human Geography*. Edited by Kitchen, Rob and Niger, Thrift, Volume One, Elsevier Publication, 2009.

Issues and Challenges of Higher Education in Indian Perspective

Dr. Rajkumari Gola
Assistant Professor
Department of Education,
IFTM University, Moradabad, U.P., India

ABSTRACT:
"India is a rich country inhabited by the poor people". The simple explanation of the quotation mentioned is that we are very-very rich and prosperous in our resources but unable to harness them in a proper and meaningful way. Literacy rates in our country itself a problem. China got 100% literacy within the three years of their freedom. Comparatively we could not match the figure even after passing more than 6 decades of our freedom. Look on Japan that is so poor in his reservoirs and resources. There is even not available the sufficient land to harvest some useful crop and meaningful crops. Their people may think to make Japan a leading nation on the globe of the word why? They have national feeling, they have courage, they have unlimited source of Education and training and skill development.

Keywords: Life skill, Skill development, Moral Values, Spirituality and harmony.

INTRODUCTION:- "Vasudev Kutuambhkam" remains the theme and skill of living of quality of this country. India has shown the world the path of spirituality and harmony. We are well aware about the famous Nalanda University in the ancient time. We have noble prize winner in our country in the field from medicine to literature, from peace, humanity to science. We have Rani Laxmi bai, Late Smt. Indira Gandhi, Captain Laxmi Sehgal; to nightingale late Smt Sarojini Naidu to Kalpana Chawla beside the above we have the great saint Mahatma Gandhi. Swami Vivekananda and so many other philosophical foundations. With the advent of technology and skill development the essence of the education hampering the life of a common man and in turns hampering the economy of the country in totality. An analytical approach of issues and challenges of higher education in an Indian perspective which not only analyse but also provide some suggestions for fulfilling the need for the vocational and skill development training. Recently during my recent thought and consideration about my country India. I took underlined the challenge that higher education faces worldwide. It must change what it does and how it does it to meet the growing demand. In India, for example, as per estimation has been drafted by the planning commission, Govt of India that 500 million people need training in vocational skills/ skill development of man power and approximately 40 million will need by 2025 and approximately 40 million will need a university education by 2025. The consequences and preparedness for of these kinds of numbers for colleges and universities is available in India or elsewhere. Have we planned any thought for being thought through?

STUDY OF RELATED LITERATURE REVIEW:- Education has been the priorities and symbol of the prosperitiesof any Nation. No Nation can be developed without developing their educational system, skill and vocational development and also employment opportunities, which in turns lead the GDP enhancement of the country. Keeps talking of ambitious growth targets in terms of GDP growth. Almost everyone talks of the same growth as if this is itself will create more jobs for the people. I wonder. It is important for the Govt to talk of employment growth. Even in the developed countries employment generation is a very clear objective because unemployment is a sure recipe for social unrest, crime and strife. Expecting people to turn into successful entrepreneurs is good but it is not a solution for massive unemployment in the economy. The Govt. has to make domestic investments climate for industrial growth and supporting the educational system to make the countrymen more skillful and employable to develop our country self reliance and self dependent. Instead we find our leaders opting for more and more welfare measures. The environment for business growth is discriminatory against newer and innovative products or use of locally developed processes and encourages only crony capitalism, speculative trading and direct import related trading. To empower the business and industry we need value based and skill development oriented education.This encourages the FDI but does not create jobs on a large scale. As far as jobs go the pyramid is Agriculture followed by Industry and followed by services sector in descending job creation capability. The Indian Economy follows a warped structure of Services, Agriculture and Manufacturing. The net effect has been that we import all that we consume except coarse grain. Consider the rampant growth in high profile institutions, the lack of quality manpower is likely to worsen as the army of the unemployed take to education or the sake of a job. The students paying high fees will either migrate or postpone their decision to pursue education. Education being a service cannot substitute as an avenue to create employment. Education has to serve the needs of educated manpower for the other sectors as well. To make the country strong and developed, we need a very strong education system based on values and moralitAll in all, poor investment in the domestic economy, lack of law enforcement, poor infrastructure and poorly implemented legislation complementing the massive hunger of the Govt for funds to pay a huge import bill has led to the unemployment of large number graduates and desperately looking for work. Firstly, do what is required to improve the standards & offer real quality including a sincere project work, good internship, right awarding of marks, no favouritism, etc. Get a small budget approval from the college management. Then, if we talk to a couple of companies & ask them to visit the institutions, talk to the students & do their own selection. Quality has to be assured by the faculty.

STATEMENT OF THE PROBLEM: -

Present paper is the analytical view of the proposed necessary requirement of "one estimate is that 500 million people will need training in vocational skills by 2025 and approximately 40 million will need a

university education by 2025". The analysis of the issues and challenges of higher education reflects the problems and leads to some useful solution of the problem. The consequences of these kinds of numbers for colleges and universities, not only in India but elsewhere, too are still only being thought through.

ANALYSIS OF THE ISSUES AND CHALLENGES OF HIGHER EDUCATION: -The problems and issues of higher education in India is the lack of proper planning and decision by the policy maker. Present paper analyzes the issue and challenges for the sake of development of the Nation. Present paper basically may be analyzed on the below listed points:

Higher education will have to become even more involved in Secondary and education: - Considering the scale of the problem, there is no real alternative. Of course, universities have been doing this for many years, and the tempo has picked up recently in many countries. But the imperative will surely become even more urgent as the process of education becomes broader and takes in the full span of a career. More links with community colleges, new kinds of technical colleges, and other institutional innovations will be just the start. We should be more open to accept and adopt such measures and also Govt. must have a serious thought about the same problems.

We will have to think again about qualifications: - Skill / Vocational development and formal training both are different issues. For example- Our forefathers and Grandmothers threw the light of skill development in the field of Life Skill, livelihood, Family values, Moral values and living with real happiness. They were not having much formal education in schools or other learning institutions of their time. For example, the University of Delhi is now granting a kind of credit to tiffin wallahs—people who carry freshly made food in lunch boxes to office workers—on the basis that their job undoubtedly requires calculating skills. **We will have to work through distance learning: -** Due to recent news concerning legislation in California to link them in with the public education system, is no doubt just the start. But you could argue that at present the massive open online courses are not even very interesting as pedagogical devices, utilizing models of screen transmission that belong to the old television age. But they will no doubt evolve as part of a general tendency toward more encompassing digital experiences that use a range of senses. As experimented by USA we have to adopt the same program for the sake of countrymen and also for Nation. Our more emphasis must be on digital learning due to effective and useful impact on the learner. In India many organizations have developed digital solution of learning. Keeping the pace with time and Technology we should think and adopt the Di- Gi, E-Learning, Smart classes etc.

We will have to do much more interesting things: - The University of Delhi now runs a train around India taking its education offerings on a journey, quite literally. But the electronic frontier is changing, too, especially through the use of mobile phones. In India, for example, apps are being produced by the British Council that can teach skills and English simultaneously. In another venture, Vodafone and Pearson have combined forces to produce a means of enabling group teaching using mobile phones. **We will have to involve our undergraduates much more fully in teaching their counterparts in other parts of the world: -** At the University of Warwick, we have started this process through a philanthropic program called Warwick in Africa. This program is aimed at teaching mathematics to secondary-level children in Africa using the skills and enthusiasm of our mathematics undergraduates: In each class, there will be two or three great mathematicians just waiting for the stimulus and material to allow them to take off. So extraordinarily successful has this been that the program has started to add undergraduates from other universities, like the National University of Singapore. Whatever happens, we all are well aware and have seen industrialization of higher education in many parts of the world. **Need Based Skill Development and Value Education: -** With the advancement of the technology and its applications. We have to revise and have to make the sea changes in our educational pattern and also the curriculum. The most important factor in this consideration is emphasis on the need based skill development and Education, Which not only revamp the educational system but also leads to fetch more and various employment opportunities. This in turn will empower and enrich the countrymen.

RESULTS AND CONCLUSIONS: -From the above analysis and observations it is concluded that Higher education will have to become even more involved in secondary and adult education. We have to focus more and more on adult and open education; furthermore, we will have to think again about qualifications with quality and value based. As American education system does not disseminate the open method of learning to the world around 3 decades of its inception, we have to have the priorities for the MOOC's. Beside we will have to involve our undergraduates much more fully in teaching their counterparts in other part of the world. By that way we will have to do more interesting thing for our country, India and also the other part of the world.Beside the present analysis and work, various other dimensions are kept open for future work. like What a university will be under these new conditions is an open question, but it is one that, contrary to the doomsayers, we can have considerable influence over at this point since so little has been fixed. The door for grey are of the topic has been remains open for future work.

*****

REFERENCES: -

1. **A report on opportunities and challenges of education in India 2020 by Planning Commission, Govt. On India Nov 11, 2010- 2011.**
2. **Carter V. Good (1959) "Dictionary of Education", 2nd ed., New York: McGraw Hill Book Company.**
3. **Castangno, A. (2008). Improving academic achievement, but at what cost? The demands of diversity and equity at Birch Middle School. Journal of Cases in Educational Leadership, 11(1), 1-9.**
4. **Chester I. Barnard (1964) "The Function of Executive", Cambridge, Mass, Harward University Press, P.-60.**
5. **E.G. Guba and Bidwell (1957) "Administrative Relationships", University of Chicago: Chicago Midwest Administrative Center.https://groups.google.com/groups/opt_outIndia 2020, Shri. A. P. J. abdul kalam, Ex president, India 2004.**
6. **Jacob W. Getzels, James M. Lipham and Ronald F. Campbell, "Educational Administration As a Social Process", New York, Evanston and Landon: Harper and Row Publishers, P.- 128.**
7. **Vision 2020-Master Document Planning commission of India, 2010-2011.**

Decentralization: A Tool of People's Participation

Diwakar Kumar Jha
Research Scholar
Department of Political Science, Banaras Hindu University, Varanasi- 221005
Mo. 8960900534

Abstract :-People's participation is the cornerstone of democracy, development and governance. Without people's participation we cannot think of successful democracy and effective development. in order to ensure effective people's participation, we decentralization acts as most suitable tool. It brings nearer to the '*Swaraj'* that Gandhi used to talk. It leads to capacity building and empowerment of the people. Decentralization established mutual relationship between government and citizen; in today's era of globalization it (decentralization) helps to prepare citizen to meet the global challenge by increasing their capability.

Key Words: *Decentralization, People's Participation, Democracy, Governance, Decision-making, Development, Power Balance*

Decentralization:-Decentralization means transfer of power and authority from central government to local or subnational units of the government for the meeting of grass root demands. Decentralization has been accepted as an important tool for people's participation and development. It is considered as people-centered and people-managed development. Different perspective of decentralization comes to a common observation that it empowers people by giving them the opportunity to decide on matters of significance to their lives. It means reversing the concentration of administration at a single centre and conferring power to localgovernment. Decentralization is also viewed as an articulate strategy for governance that seeks to empower citizens by bringing decision-making power closer to people. Decentralization is a strategy of governance to facilitate transfer of power closer to those who are most affected by the exercise Decentralization, brings to the restructuring of authority so that there is a system of co-responsibility between institutions of governance at the central, regional and local levels. Decentralization is expected to contribute to key elements of governance, that includes increasing people's opportunities for participation in social, economic, and political decision-making; contributing in developing people's capacities; and intensifying government accountability, responsiveness and transparency. "Decentralization is the transfer of power and resources from national governments to subnational governments or to the subnational administrative units of national governments. This means that, at its core, decentralization is about power sharing amongst different levels of government. Though it takes many specific forms, decentralization generally disperses power from central governments to subnational governments or units; institutions that are closer to the people served and therefore (theoretically) more attentive to their demands."Decentralization is often regarded as a top-down process driven by a unitary or federal state in which the central government grants functions, authorities, and resources to subnational levels. Impulses for decentralization can also originate from these lower levels, though it will only happen if the national level agrees to decentralize. Decentralization encompasses a wide range of different political and economic systems, whose properties vary widely.Based on such principle, functions (or tasks) are transferred to the lowest institutional or social level that is capable (or potentially capable) of completing them. Decentralization relates to the role of, and the relationship between central and sub-national institutions, whether they are public, private or civic.Decentralization helps to create transparent political institutions, encourage citizen support for government, and improve democratic participation. By allowing for greater citizen involvement in subnational and local government, decentralization offers citizens a greater stake in democracy's success. Citizens who value their participation in subnational government are less likely to support non-democratic regime changes at the national level because authoritarian governments typically deny subnational governments significant independence.Decentralization is a complex phenomenon that involves several geographic entities, societal actors and social sectors. The geographic entities include the international, national, sub- national, and local. The societal actors include government, the private sector and civil society. Social sectors include development themes: - political, social, cultural and environmental. In designing decentralization policies and programmes, it is essential to use a systems-approach encompassing these overlapping social sectors and the different requirements which each makes. Decentralization is a mixture of administrative, fiscal and political functions and relationships. While designing the framework of decentralization systems all three must be taken into consideration.

Decentralization: A Balancing wheel between Central and Local Force-In every society, country and in every form of government we found dominant forces at both central and local level. Former promotes centralization of power whereas the latter promotes creation of power centre at the local level. Decentralization in this process acts as a balancing wheel of power centre by providing structural arrangement, so that both forces can interact and maintain a win-win situation. In public administration and governance decentralization is generally regarded as a process through which funds, functions, responsibilities and resources are transferred to the local government from the central governments. Decentralization as a process maintains balance between the claims of the local level and the demands of the centre. Decentralization provides arrangement through which critical issues (such as those of national unity and indivisibility, how to safeguard national interests etc.) and the needs of local units

can be bifurcated. Then it became easier for the concerned government to impart their part of work. Decentralization provides a platform through which central governments, state governments, local governments, civil society, and local elite engage themselves in inter-group negotiations. It helps to maintain balance in the socio economic-political sphere. A meaningful and well-planned decentralization must not be seen in terms of conflict among central, provincial and local government; decentralization is a framework for public administration and state craft that aimed at empowering local governments and communities, and reduce the burden of central government so that central government can take care of the higher missions of the State.

Decentralization Goal—Decentralization is a multi-dimensional phenomenon, it serves several interests and goals; major among them are democracy, development, stability, and sustainability. By reducing conflict between different sections of society decentralization helps to improve stability. It reduces conflict by giving equal opportunity to different sections of society, especially the deprived one. By expanding its dimension and periphery, government through decentralization reaches to the ground level and ensures people's participation in governance. It makes the government accountable, responsive and enhances democratic culture and value. Decentralization improves quality and speed of service delivery it also leads to better utilization of available resources and promotes development of citizens welfare and sustainability.In many cases central authorities decide to decentralize when it is in their perceived interests to do so. In some cases, the government is pushed to act by a major political or economic crisis. In other cases, it is forced to respond to the demands of activist subnational governments or an increasingly aware and vocal public, which may in part result from activities undertaken by NGOs or international actors to promote the empowerment of civil society.Domestic power struggles can also be an important motivation to pursue decentralization. For example, decentralization may represent an opportunity for a ruling party to consolidate power or for an opposition party to unseat incumbents by appealing to popular support for decentralized rule. In many cases, decentralization came about as a way to give more power to restive areas seeking autonomy.

People's Participation-People's participation (popular participation) has become a central theme of development and governance discourse nowadays. People's participation makes democratic process efficient, effective and competent enough to meet the demands of citizens and goals of the government; democratic process is empty and meaningless without people's participation. The inherent strength of democracy lies in the popular participation.Along with national and sub-national governments several global agencies like IMF, World Bank, ADB, UN and Civil Society actors like NGO, Voluntary Organizations comes to a common understanding that a long term, efficient, effective and sustainable development is not possible unless people's participation brings into the central periphery of development process.Citizens are the cornerstone in all forms of modern government around whom entire administrative and political activities revolve. Directly or indirectly every policy made by the governments influenced citizens life, but in conventional methods of decision making, policy formulation and policy implementation remained confined at governments end only; citizens are only beneficiaries; and have almost no say in policy formulation and implementation. Many times, it has been found that different governments schemes and programmes failed to cater the needs and desires of the citizens. Despite heavy investment governments left far behind in their goals, therefore it was realized to involve people in the process of decision making. People's participation in decision making became an essential part of government activities in the last few decades; earlier people's opinions in the development process were not taken into consideration seriously. Until the end of 1960s and 1970s decision making process was essentially capital centred, bureaucratically controlled and dominated by top-down approach.But today things have been changed to an extent; both the legislators and executives have realized the importance of people's participation in decision making. In this context we find Abraham Lincoln's quote most relevant which asserts 'democracy is government of the people, by the people and for the people.' 'Putting people first' or 'putting the last first' is a major concern which asserts people as an actor and not as a subject. The main objective of it is to project people as an equal stakeholder in the process of development and not just as a beneficiary.The quest for decentralization that started during the mid-1970s leads to the people's participation; by this time governments find several ways to involve people in the process of governance. The deepening of democratic process in several Latin American and African and Asian countries; growing demand for human rights in many parts of the world; call for improved service delivery in developing countries (especially in Asia and African continent) and a move from state-controlled economy to open economy leads to people's participation. Donor agencies gave special emphasis on people's participation; therefore, it became obligatory for several countries to involve people in decision making. The need for sustainable development also forced policy makers to ensure popular participation in governance. The need to reorient democratic system, so as to ensure good governance and to create better socio-economic life for people accelerated the need of people's participation.The dimension of participation is very wide; participation means different things to different people. The difference in perception about participation is because of different socio, economic and political backgrounds. One of the objectives of participation that lies in a democratic political structure is concentration of power. As Lord Acton asserts; *Power corrupts and absolute power corrupts absolutely*'. Therefore, it becomes imperative to devolve power concentration. As a result of it, people's participation and decentralization received accelerating force. The increase in the democratic culture and value leads to an increase in people's participation. The quest for good governance that considers accountability,

transparency, rule of law, openness in the functioning of government leads to popular participation.From a wider perspective people's participation means 'involvement of people in decision making, in the implementation of programmes, sharing of benefits of development programmes and involvement in evaluation of such programmes. People's Participation ensures optimum utilization of resources that leads to sustainable development. In this respect we find that decentralization acts as a tool to ensure peoples participation in governance and development. For example; in India only around 30 lakh representatives get elected at local level every five years, out of whom 10 lakhs are women and more than six-and-a-half lakh are dalits. It is just an example which shows how decentralization has increased people's participation. Besides elected representatives there are several ways by which decentralization increases people's participation.

Who need to participate?-Decentralization is a multi-dimensional approach that needs inclusive and affirmative efforts from all the stakeholders to ensure citizen centricity in development and governance. planning, implementation and monitoring.Deprived and the vulnerable section of society, the claim-holders, especially women, and the legitimate groups representing them (women's groups, trade unions, and NGOs) who should be given voices in governance and development processes at the local and national levels and make them true partners, not just target beneficiaries.Traditional authorities, especially of indigenous and tribal peoples.Private businesses especially those that operate at the local level and could be tapped for partnership agreements with local bodies in community projects such as those dealing with environmental issues (water supply, waste management, etc.), income generation, etc.Authorities, bodies, elected officials at local and other sub-national levels.Government agencies operating at the national and sub-national levels, e.g., central and decentralised offices of ministries of local governments.

Participation: An Element of Empowerment-Participation and empowerment go together; any democratic government cannot attain its objective unless it makes its citizens empowered and capable enough to be the active stakeholder of the development process. In order to ensure people's participation, it becomes important to bring government institutions closer to the people and infuse trust in them that they are both service provider and service user. This process leads to the establishment of channels of communication between government and citizens that follow both top-down and bottom-up approaches. People's participation empowers poor and marginalized sections of society to acknowledge themselves as an active stakeholder in the process of decision making. It also strengthens the autonomy and Self-governing capabilities of people."A comprehensive concept of empowerment means that people are in position to exercise their own free will. It implies a political democracy in which people can influence decisions about their lives. It requires economic liberalism so that people are free from excessive economic controls and regulations. It means decentralization of power so that real governance is brought to the doorstep of every person. It means that all members of civil society, particularly non-governmental organization, participate fully in making and implementing decisions."The Stockholm Conference (1972) and the Earth Summit (Rio 1992) gave the issue of sustainable development a global character and called for a radical change in priorities, objectives and policy-prescriptions in development model hitherto followed and recommended its replacement by sustainable development based on the application of local resources, local knowledge and citizen's creative participation. The gradual recognition of the role of local people in protection of ecological balance and environment gave legitimacy to the diverse grassroots people's movements which in turn brought about radical change in the concept of management of common resources. The trend was invariably towards greater participation of the people through devolution of decision-making structure.

Steps to engage Stakeholders-Following steps to ensure successful engagement of stakeholders: There should be a strong political will and dedication among stakeholders. The leadership and proactive role of a single individual or a group is also crucial. Notational and sub-national political leadership must show their willingness for decentralization of power.The stakeholders should be given freedom to decide the priorities for consultations and collaboration based on a common understanding of, and respect for, mandates, roles, and contributions.should be given proper formal and informal training to manage conflict.Stakeholders should be assigned responsibilities and provide mechanisms for carrying out their responsibilities.Demonstrate initial results of the process to reinforce commitment and sustained interest of stakeholders. There should be a proper mechanism for institutionalization of units of decentralization so that proper planning, resource management and service delivery can be ensured and stakeholders can contribute with efficiency and effectiveness.

Observation-Decentralization in itself, is not a goal of development, but a means to improve efficiency of government and of people so that they can take active participation in the process of development and ensure better governance. Another objective behind it is to ameliorate people's plight; especially of deprived sections. Democratic value lies in the core of decentralization. Decentralization brings government at the door of citizens and citizens at the door of government. Decentralization and people's participation reduces the rigidness of bureaucratic culture. Decentralization by people's participation gives due consideration towards different social problems, and contributes towards nation building. In a globalized and global era of today decentralization helps to improve people's capabilities so that they contribute to the changing demands and needs of the both, the government and of the market. However, it must be taken into consideration that decentralization is not something that can be remedy to all the problems of development and people's plight. It is an ongoing process that must be carried -out with change in time and requirements of the citizen and government, so that its efficiency can be maintained.

Decentralization has its own limitation; it is not applicable in all circumstances equally, but in no-way we can deny its role in people's empowerment, development and in deepening of democracy. Both citizens and governments need to take responsibilities and accountability of their part for successful democracy, decentralization, development and governance.

****

REFERENCES: -

1.Janan, A. K. (2005). People's Participation, Empowerment and Decentralization Prespective and Issues. In S. Sau, *Decentralisation, Planning And Participatory Development* (p. 45). Kolkata: Firma KLM Private Limited.2.Kessy, A. (2013). Decentralization and Citizens' Participation: Some Theoretical and Conceptual Perspectives. *The African Review: A Journal of African Politics, Development and International Affairs, Vol. 40, No. 2*, p.216. https://www.jstor.org/stable/45341662 Reterived on 29 May 2022

2.UNDP, Decentralized Governance Programme: Strengthening Capacity for People -Centered Development,

3.Management Development and Governance Division, Bureau for Development Policy, September 1997, p. 4

4.USAID. (October 2021). DEMOCRATIC DECENTRALIZATION PROGRAMMING HANDBOOK 0ctober 2021 P.7

5.UNDP/MDGD. Decentralised Governance Programme: Strengthening Capacity for People-CentredDevelopment, September 1997, p.4 5.UNDP. Factors to Consider in Designing Decentralized Governance Policies and Programmes to Achieve Sustainable People -Centered Development, Management Development and Governance Division, February 1998, p.1

6.Department of Economic and Social Affairs United Nations, New York. *Decentralized Governance for Democracy, Peace, Development and Effective Service Delivery. pdf,* p. 9-10 **https://digitallibrary.un.org/record/744614/files/2005_Decentralized_Governance_for_Democracy%2C_Peace%2C_Development_and_Effective_Service_Delivery.pdf** Retrieved on 23 May 2022

7.Department of Economic and Social Affairs United Nations, New York. *Decentralized Governance for Democracy, Peace, Development and Effective Service Delivery. pdf,* p.9-10 **https://digitallibrary.un.org/record/744614/files/2005_Decentralized_Governance_for_Democracy%2C_Peace%2C_Development_and_Effective_Service_Delivery.pdf** Retrieved on 23 May 2022

8.USAID. (October 2021). DEMOCRATIC DECENTRALIZATION PROGRAMMING HANDBOOK October 2021 p.10-11

9.Janan, A. K. (2005). People's Participation, Empowerment and Decentralization Prespective and Issues. In S. Sau, *Decentralisation, Planning And Participatory Development* (p. 45). Kolkata: Firma KLM Private Limited.

10.Michael Cemea, (ed.) (1985). Putting People First: Sociological Variables in Rural Development Projects, OUP, New York.

11.Dhal, S. (2016). People's Participation in Governance. In S. Singh, *Governance: Issue and Challenges* (pp. 141-144). New Delhi: Sage.

12.Mathur, K. (2017). *Panchayati Raj.* New Delhi: Oxford University Press. P.37.

13.Janan, A. K. (2005). People's Participation, Empowerment and Decentralization Prespective and Issues. In S. Sau, *Decentralisation, Planning And Participatory Development* (p. 50). Kolkata: Firma KLM Private Limited.

14.(October 2021). DEMOCRATIC DECENTRALIZATION PROGRAMMING HANDBOOK October 2021UNDP Evaluation Office. *Essentials (Partnership for Local Governance),* No. 7, August 2002. p. 7

भगवान बुद्ध का अष्टांगिक मार्ग

भगवान बुद्ध ने अष्टांगिक मार्ग का उपदेश दिया था। बौद्ध धर्म अनुयायी इन्हीं मार्गों पर चलकर मोक्ष प्राप्त करते हैं। बुद्ध द्वारा बताए गए इन 8 मार्गों का अपना अलग मतलब है। आइए जानते हैं।

1. सम्यक दृष्टि :
चार आर्य सत्यों को मानना, जीव हिंसा नहीं करना, चोरी नहीं करना, व्यभिचार(पर-स्त्रीगमन) नहीं करना, ये शारीरिक सदाचरण हैं। इसके अलावा बुद्ध ने वाणी के सदाचरण का पाठ भी पढ़ाया। जिसमें मनुष्यों को झूठ न बोलना, चुगली नहीं करना, कठोर वचन नहीं बोलने की शिक्षा दी गई। लालच नहीं करना, द्वेष नहीं करना, सम्यक दृष्टि रखना ये मन के सदाचरण है।

2. सम्यक संकल्प :
चित्त से राग-द्वेष नहीं करना, ये जानना की राग-द्वेष रहित मन ही एकाग्र हो सकता है, करुणा, मैत्री, मुदिता, समता रखना, दुराचरण (सदाचरण के विपरीत कार्य) ना करने का संकल्प लेना, सदाचरण करने का संकल्प लेना, धम्म पर चलने का संकल्प लेना।

3. सम्यक वाणी :
सम्यक वाणी में आता है, सत्य बोलने का अभ्यास करना, मधुर बोलने का अभ्यास करना, धम्म चर्चा करने का अभ्यास करना। बौद्ध धर्म इंसान को मुधर वाणी सिखाता है।

4. सम्यक कर्मांत :
सम्यक कर्मांत में आता है, प्राणियों के जीवन की रक्षा का अभ्यास करना, चोरी ना करना, पर-स्त्रीगमन नहीं करना। बुद्ध ने सत्य और न्याय के लिए हिंसा को, यदि आवश्यक हो तो जायज ठहराया।

5. सम्यक आजीविका :
मेहनत से आजीविका अर्जन करना, पाँच प्रकार के व्यापार नहीं करना, जिनमे आते हैं, शस्त्रों का व्यापार, जानवरों का व्यापार, मांस का व्यापार, मद्य का व्यापार, विष का व्यापार, इनके व्यापार से आप दूसरों की हानि का कारण बनते हो।

6. सम्यक व्यायाम :
आष्टांगिक मार्ग का पालन करने का अभ्यास करना, शुभ विचार पैदा करने वाली चीजों/बातों को मन मे रखना, पापमय विचारों के दुष्परिणाम को सोचना, उन वितर्कों को मन मे जगह ना देना, उन वितर्कों को संस्कार स्वरूप मानना, गलत वितर्क मन मे आए तो निग्रह करना, दबाना, संताप करना।

7. सम्यक स्मृति :
कायानुपस्सना, वेदनानुपस्सना, चित्तानुपस्सना, धम्मानुपस्सना, ये सब मिलकर विपस्सना साधना कहलाता है, जिसका अर्थ है, स्वयं को ठीक प्रकार से देखना। ये जानना की राग-द्वेष रहित मन ही एकाग्र हो सकता है। किसी भी मनुष्य को, जिसे स्वयं को जानने की इच्छा हो, को विपस्सना जरूर करनी चाहिए, इसी से दुख-निवारण के पथ की शुरुआत होगी।

8. सम्यक समाधि :
अनुत्पन्न पाप धर्मो को ना उत्पन्न होने देना, उत्पन्न पाप धर्मो के विनाश मे रुचि लेना, अनुत्पन्न कुशल धर्मो के उत्पत्ति मे रुचि, उत्पन्न कुशल धर्मो के वृद्धि मे रुचि। इन सबको शब्दशः पालन करने से जीवन सुखमय होगा, निर्वाण (सास्वत खुशी, परमानंद एवं विश्राम की स्थिति) की प्राप्ति होगी।

******

Identity Crisis: Constructing New Definitions of Existence and Identity in the Plays of Mahesh Dattani

Anup Kumar Dey
Professor Head
Department of English, Assam University,
Diphu Campus

Alimpa Bhuyan
Assistant Professor
Department of English, J.N College, Boko, Kamrup,
Assam PhD Research Scholar, Department of English Assam University, Diphu Campus

Abstract
The word identity is a complex construct which explains the dual aspects and manifestations of a person or group of people at personal and the social level. There are numerous incisive comments on identity though the summative elucidation is credited to Erik Erikson (1902-1994) who had coined the term "Identity Crisis". Over the years, many writers in different genres have dealt in this issue and Indian writing in English is no exception to this. The body of Indian Drama in English, although in its nascent stage, has a rich body of work indeed. Notwithstanding the limitations of English as a foreign language, its viability has gradually risen to an extent where it has now built repute with the contribution of few dramatists writing purely in English and some with works of translations in English too. Amongst those writing in English, Mahesh Dattani is one such dramatist who has been conspicuously writing to understand human psyche, life and its approaches of Indian masses with of course an irrefutable context of some distinctive global vehement debates compelling the readers to cogitate upon some sensitive issues reflecting on the crisis of identity. In the representations of Indian life, its culture and contexts, the seeping influence of globalisation and western ideals which has impacted upon the Indian subcontinent is taken up by him. Therefore Dattani is one such dramatist who has eloquently made palpable some throbbing issues of the contemporary times thereby throwing light on the age old Indian cultures, customs and rituals undergoing significant changes in approaches and understandings of identity. This research paper attempts to objectively focus on how Dattani has squarely made his readers face such issues which are usually brushed under the carpet. He acts like a fervid crusader to expand the periphery of identity to dissolve the repugnance and contempt for certain groups of people who are dispossessed of social status and identity. For the present paper, the plays namely *On a Muggy Night in Mumbai* (1998) and *Do the Needful* (1997) by Mahesh Dattani are selected for detail analysis in the aforesaid context.

Key Words: Indian Drama, globalisation, identity, psychoanalysis, existence.

Introduction: -The concept of Identity has been often discussed to be accrued as a subject of prominence in academic as well as the practical domain. It is an historical and modern phenomenon too. Human world cannot forego the function of identification. Off course identity does not only pertain to human sphere. It encompasses inanimate objects and concepts too. The concept of Identity deliberates similarities or differences in relation to the animate and inanimate objects. And identity is confirmed after affirmation, negotiation, and discussion. Identity also demands classification of things and persons and the establishment of conformity or refusal to certain things or ideas. However identity is too often described by the inherent differences that make identification of a human or thing understandable. The banality of reaffirmation of identity on differences is so often practised that the criteria of similarities to understand identity is overlooked. Simmel therefore opines that:

The practical significance of men for another...is determined by both similarities and differences among them. Similarity as fact or tendency is no less important than difference. In the most varied forms, both are the great principles of all internal and external development. In fact the cultural history of mankind can be conceived as the history of the struggles and conciliatory attempts between the two. (Jenkins 30)

The debate on identity in modern times has become self-reflexive. Privacy of a person has been accorded much importance in present times. Anthony Giddens here needs acknowledgement as we discuss on 'Reflexive Self Identity'. Giddens speaks as such:...self identity is a distinctively modern project within which individuals can reflexively construct a personal narrative for themselves which allows them to understand themselves as in control of their lives and futures. (Jenkins12)

Identity and 'mindscapes' (Zerubavel) is an irrefutable association. The encounters with people, things open up a process of understanding through a succession of processes like assertion, negotiation, simulation, negation etc. All this is done by the mind; hence mindscape is an important territory in the revelation of the identity and the self. Upon tracing the roots of the concept of self, the thought forwarded by Buddhism or by St. Augustine fervidly proposes the 'reformation of selfhood' (Jenkins 13). One's identity is specific to the moment definitely. Nonetheless to construct identity as period specific is significantly incorrect. The concerns with identity cut across time and theories. Therefore Jenkins expresses-What we need instead is a generic framework for understanding how identification works that will accommodate its roots in human nature as well as its construction and contingency, allowing us to get on with the sociological business of approaching all human experience on its own terms in order better to understand it. (14) The discussion on identity also needs speculation from Bauman's work where he ascribed identity as limited to a time frame and which undergoes changes and apparently is fluid in nature. Therefore Bauman in his *Freedom* says-..One needs it to be oneself; yet being oneself solely on the strength of one's free choice means a life full of doubts of fears and error...Self-construction of the self is, so to speak a necessity. Self confirmation of the self is impossibility. (62) An individual or an entity is identified by a set of traits which determines her/his being or existence as separated from others which defines him as unique. Yet one is compelled to conform to societal norms to experience continuity of being as social animal. And affiliation completes
a being's sense of involvement or the feeling of existence within a social group.Even though there are various theories on identity, for the present study Erik Erikson's theory of Psychosocial Development is core to the discussion of this research paper.

Erik Smith Erikson, the German-American psychoanalyst is more popularly acclaimed as the founder of the theory on psychological development and identity crisis. Erikson, the neo-Freudian had an unconventional approach to the study of psychoanalysis. Yet he departed from Freud by concentrating around the psychosocial development of a person through one's life span. Erikson bases his

theory of development on the Epigenetic principle which describes the predetermined development of human personality in eight stages of psychosocial development. Identity Crisis or the failure to achieve ego identity during adolescence (Wikipedia) occurs in the Fifth Stage of Identity Cohesion vs. Role Confusion. Therefore this stage forwards a debate with potentials to peel off certain confusions revolving around the murky waters of being and existence. Over the years, many writers in different genres have dealt in this issue and Indian writing in English is no exception to this. The body of Indian Drama in English, although in its nascent stage, has a rich body of work indeed. Notwithstanding the limitations of English as a foreign language, its viability has gradually risen to an extent where it has now built repute with the contribution of few dramatists writing purely in English and some with works of translations in English too. Amongst those writing in English, Mahesh Dattani is one such dramatist who has been conspicuously writing to understand human psyche, life and its approaches of Indian masses with of course an irrefutable context of some distinctive global vehement debates compelling the readers to cogitate upon some sensitive issues reflecting on the crisis of identity.For the present paper, the plays namely *On a Muggy Night in Mumbai* (1998) and *Do the Needful* (1997) by Mahesh Dattani are selected for detail analysis in the aforesaid context.

Objectives:

Under the light of the above discussion, the objectives of this research paper are forwarded as mentioned hereunder:To understand identity crisis in the journey of actualization of the characters involved.To ascertain how identity defines one's existence through application of psychoanalytical framework.To explore how Dattani has squarely made his readers face such issues which are usually brushed under the carpet.

Methodology:

The study taken up would be conducted applying the analytical method. For this, help would be taken with the readings of primary and secondary sources. Further research journals and online sources would also be added to the resource.

Indian English Drama: Mahesh Dattani's role:-

The history of Anglophone Indian drama holds a position which justifiably writes a lineage of colonial and postcolonial detailing of its evolution through a not so easy journey. Dyaneswar Nandkarni urged for the butchering of Indo-Anglian playwrights, as well castrate them and force them to write in their native Hindu or Urdu whatever languages their fathers or mothers spoke. (*Butcher the Anglo-Indians*) A deeper look into this statement deconstructs the lurking problem existing between the Anglophone dramatist and the audiences. There is also a continuum of thought that such dramatists are adhering to the language of the colonizer and also attempts to recast their form. To this M.K Naik says, "Most Indian verse drama in English is a vast whispering gallery of Shakespearean echoes." (Naik, *of Indian English Literature* 159)Not only Shakespeare but *Dimensions* there is the influence of Ibsen and Shaw's realism as well. The Anglophone drama is alleged to suffer from the limitation of its unworthiness for stage production. To understand this allegation one is reminded of K.R Srinivasa Iyengar's opinion which states that –...the natural medium of conversation with us –excepting with the super-sophisticated who live in the cities and the larger towns, in the universities or in certain Government offices or business houses- is the mother tongue rather than English. (Iyengar, *Drama in Modern India and the writer's Responsibility in a Rapidly Changing World* 35)However one cannot even refute G.P Deshpande's critical comment that there exists no regional theatre in India as all existing Indian theatres in different Indian languages are valid and hence legitimate.Whatever the debate sums up to, the present paper is premeditated upon the thematic concerns and not on the chosen language of Dattani for his dramatic expression. This is so as Dattani candidly confesses his easiness and fluency with English language. He befittingly shies away from Standard English. His characters display the Indian phraseology with characteristic influence of one's mother tongue. Therefore in this regard the contribution of Mahesh Dattani is so overwhelming that amongst the small body of recognised and acclaimed dramatists writing in English he can be called the watershed. Dattani calls himself a 'serious' writer (*Brief Candle* 4) who wishes that theatre and drama should continue its age old duty of giving vent to our feelings, worries, troubles by purging our emotions and thereby not continue with the facade of a rational existence. **Identity vis-a-vis Existence:** The philosophy of existentialism seeks answer in 'human fr dom' (Warnock 1). In order to examine the context of freedom, existentialism investigates into the pestering issues of human predicament expressed through anxiety, fear of death, sense of alienation, weakening foundation of religious belief and the sense of rootlessness etc. This probe into one's existence and one's existential stance itself offers life a possibility of survival in the otherwise meaningless existence of human life. The insistence to affirm one's identity in society and the contradiction arising out of the denial to one's identity creates a dystopic world vision. The denial of one's identity raises questions on one's existence leading to the denigration into being a non-entity. Therefore existentialism offers insightful understanding of life through the study of mankind by concentrating on an essential preoccupation i.e. identity and the crisis arising out of the confusion.

Role Confusion: In light of the above discussion the proposed analysis of deciphering identity crisis as an umbrella term is being considered to cogitate upon issues like existence in Mahesh Dattani's plays namely *On a Muggy Night in Mumbai*, a tragicomedy and *Do the Needful*, a romantic comedy (commissioned as his first radio play) are taken up. *On a Muggy Night in Mumbai* (1998) is pinned around the lives of eight characters. These characters harp on the common theme of reality and representation which is determined by their identity. None of the characters are formidably bold to confront reality. Hypocrisy is superimposed in their lives. Their lives are fraught with the incipient duality performed by them. This in turn makes all of them experience a vaguer life- hence adopt an insincere attitude towards life. Such an entangled life results in anxieties, crisis in life; the identity crisis they suffer from eventually erodes them from within. Consequently the human values are questioned back. Those intrigued beings raise queries on the aspect of their freedom-whether to be honest with themselves, their identity. This existential angst captivates one with the aspect of crisis of the individual. Here one can resort to Erik Erikson's psychoanalytic theory of psychosocial development (1959) can illuminate the matter. Erikson's psychoanalysis based on Ego identity studied the role of society and culture as determinant factors in the conflicts of the ego. The ego develops in a predetermined manner, hence based on the epigenetic principle. Erikson's fifth stage of psychosocial theory captioned as Identity vs. Role Confusion could deliver the key to all the underlying problems with one's identity. In this stage a child acquires the knowledge of role/s one would don in adult life. The child wants to fit in some roles to enable oneself to be accepted by the society.

When the child romanticises few roles, she/he learns to examine his position, one's body and the adaptation to the changes taking place on the body whether desirable or not. Therefore this period may be termed as an explorative period which constructs one's identity. Erikson conceptualises that a success in this stage of identity formation would help one develop virtues of fidelity and help the self commit to others in society though there may exist diverse ideological belief and practices. However those who fail to form an identity to share a sense of identity with society undergo role confusion or identity crisis- the indefinite nature of their identity and their incongruity in society. Erikson's concept of identity is not only confined to the childhood period. It is organic and the growth takes place across a lifespan. Erikson further explains that the identity crisis impacts upon the individual with negativity leading to questioning of existence and one's place in society.

Encountering the needful in the existence of a Muggy Night:

The play *On a Muggy Night in Mumbai* discusses identity crisis in all its nuances. Dattani engages the characters of the play to portray the vivid image of India cutting across class and gender. Dattani is prominently seen to be occupied with symbols. In this play the muggy night as well as the defunct air conditioner performs as the core symbol. The discomfort arising out of the mugginess of the night and the defunct air conditioner mocks at the limitations of a being's existence. The A.C simply hangs as a facade to push one to the oblivion of a comfortable existence. Similarly the cosmopolitan city Mumbai too weaves threads of illusion of freedom around itself. But with distaste Dattani shakes the readers and the audience out of its complacent belief of everything being normal. Therefore he echoes out the issue of identity and the unconscious attempt of homosexuals abandoning their true identities to merge with the mainstream society incidentally comprising of the straight population! Throughout he lashes on the society's tendency of showing reproach and disavowal towards homosexuality. Such attitudes perhaps produce nothing but a dystopic vision in society. The mugginess spoken of is palpable sufficiently in the lives of Kamlesh, Edwin Prakash Matthew or Ed, Sharad, Ranjit or Bunn presenting the dystopic vision and clamouring for their existence. Taboos, social limitations, emotional vacuum had gripped them largely. Their constricted existence was a result of loss of authority and freedom to act out their true identities. Therefore hypocrisy and sham cocooned them to another being in the public domain. This falsity and double lives that they practised created such a rage and furore in their existence that pushed them to nothing but self loathing and pity. The play *In a Muggy Night in Mumbai* opens up in a small flat in the uptown area of Marine drive - symbolising the cosmopolitan life in Mumbai. The flat is fashioned to the taste of Kamlesh with a likenessto his individuality defining his identity-a closeted one which is hidden from the chaos of public domain by the elevated and shielding windows overlooking the 'Queen's Necklace' (Dattani, *Collected Plays* 49). The entire flat is too perfect to be real. Yet it speaks a lot of its occupant, Kamlesh, his attempt at creating a world where he can belong. (Dattani, *Collected Plays* 49) Dattani creates a 'non-realistic' 'shoonya' (Dattani, *Collected Plays* 49). This space symbolises the nothingness, a state of being nothing (Wikipedia). Amidst this nothingness, the annihilated identities resurface and the characters connect with their being defined by their true identity. Amidst this 'shoonya' Kamlesh, Ed, Sharad, and the rest release their restrained existence. Dattani further plays with various sounds to juxtapose identities and the role confusion giving rise to identity crisis.

Kamlesh plays a Wagnerian or 'showy' (Dattani, *Collected Plays* 49) western classical against the hullaballoo of the Kapoor's marriage wedding band, traditional wedding songs. He demands for Chopin too. He appears globalised, offers British traditional party food -pineapple and cheese as appetiser and schnapps. He lived in with Sharad for a year, prior to which was amorously attached to Ed. The flat, 'den' (Dattani, *Collected Plays* 99) is an apparent symbol of safety and integration with their true identities. To this image, Dattani juxtaposes the outside world, customs and rituals through the ongoing marriage. The identity crisis of the characters becomes palpable when each of them either subtly or with undesigning honesty expressed the fear, disgust with vehemence for being misfits in the institutionalized belief systems. However one cannot deny that they had evolved and been casted in the mould or roles assigned and assimilated in the society right from their childhood. The tension in accepting and asserting one's identity arose as they failed to share their sense of identity with the society or fit into typical, accepted roles. This might have been as a result of conflicting ideologies and belief system. Kamlesh, Ed, Sharad or Deepali accepted to each other their sexual orientation. However Bunny Singh, Ranjit or the Guard were completely closet personalities. They preferred negation, deceit and infidelity as Indian society tries to act blind towards sensitive acknowledgement of homosexual relations. Identity crisis suffered by them pushed them towards a false assumption that that they were not real man and woman. As if reality and heterosexuality were anagrams. To support this argument Sharad's expression can be looked at, "...You see, being a heterosexual man-a real man, as Ed put it-I get everything. I get to be accepted-accepted by whom?-well, that marriage lot down there for instance." (Dattani, *Collected Plays* 101) Sharad desires to be a real man- a hetero to assimilate with the accepted paradigms of the society so as to be shifted to the mainstream symbolised by the heterosexual population. Being a homosexual, Bunny Singh suffers from a sense of identity crisis. The change in his expected role of being the 'Real middle-class Indian man' creates the identity crisis (Dattani, *Collected Plays* 103). Ranjit too suffers likewise in India. He escapes to England in allegiance to his identity of a homosexual. They understand that identity crisis is menacingly imminent on being homosexual in India. However Dattani does not only blame the straight population for the oppression of the homosexuals. A lot is also spoken against the homosexuals too. In a number of instances in the play, Dattani posits himself as the empathetic writer understanding the injustice and hypocrisy of society towards the homosexuals. However he never shied away from critically examining the lives of these characters in concern. It is Dattani's uncomplaining position that enables him to forward some incisive comments on the homosexuals who are also equally to be blamed for placid acceptance and zero resistance towards society in relegating them to non-entities with no space for them in the society. They reel in self-loathing and sarcasm. More than the society abhorring them they impose upon themselves with self hatred for their incapability to fit in the shoes of the real man. This creates identity crisis as the ego identity fails to fit into the desired role and instead so tries assimilation to fulfil the socially prescribed roles. Erikson speaks lucidly in this respect in his theory on identity crisis. Dattani's tirelessly continues his crusade to expand the periphery of ego identity amongst us irrespective of one's sexual orientation to grow forbearance towards the core tenets of humanity-tolerance and humane consideration. These tents are clearly reflected in his other play, *Do the Needful* where Dattani once again postulates identity crisis and the emerging problems of one's existence. The play revolves around the theme of arranged marriage (of convenience) and the clash of ideals

somewhere with the underlying tone of homosexuality. Dattani makes a witting comment on the irony of the seemingly placid Indian existence trying to act blind to concerns outside the purview of socially sanctioned and well defined roles of gender, sexuality and identity. Therefore Alpesh Patel, once divorced is yet again yielding to the insistence of his parents for second marriage. However the characters in this play are all offenders in the court of up righteous Indian society. Neither Alpesh nor Lata wants any negotiation at the beginning of the play.

Conclusion:- In the present research paper, a study on identity crisis may be called myopic if the crisis is limitedly analysed around the homosexuals or other characters encountering injustice and partial treatment due to any position taken up by them in fulfilment of their identity. The study would be total when new identities are admitted in. To be precise, the new identities evolve out of the negotiation between the real identity and the crisis of identity suffered. This negotiation reached is a parley achieved between two groups of sexuality or to be politically acceptable between those at the centre and the oppressed group. While commenting on the constructed identities to bring about a solution to identity crisis, one needs to perceive that social roles and the identity practised to fulfil the social design is itself blighted. This can be justified with respect to the fact that identity cannot be conceived complete and absolute. Hence Identity needs to broaden its premises to accommodate growth and annihilate identity crisis. Nevertheless this position fails to attain reality as the suffering due to homosexuality or due to any nonconformity like contesting gender roles continues. Those failing to fulfil stereotypical roles continue with the identity crisis to hide their timid existence and incapacity to confront themselves in public domain in their true selves or their honest identity. Erikson's identity crisis expresses that when a person during one's explorative period achieves a true identity; a deep sense of fidelity and responsibility also grows in them. Eventually such a person does not undergo identity crisis. Dattani through his plays therefore instigates in his readers the urge to dissolve the identity crisis to achieve an existence which does not exert the sense of nothingness or void or futility. Dattani can be said to achieve a solution to identity crises by peeling of the masks of the closeted lives of the characters through the cathartic experience of the readers and audience in the words of Lata, "... Something about your silence and mine as well..." (Dattani, *Collected Plays* 155) The muggy nights not only exist for the homosexuals. It equally exists amongst the straights which arise out of their indifferent attitude towards the gays and lesbians or women or those suffering injustice. Hence innuendos and metaphors are not to be used to be politically correct and brush sensitive issues under the carpet. What is most necessary is the spirit of confronting each other's identity and respecting each other's sense of dignity of living. This would in turn supposedly lessen existential angst experienced by people when they cannot mitigate a problem or achieve a negotiation.

****

Works Cited:-

1. Bauman, Zygmunt. *Freedom: Concepts in Social Sciences Series*: California Open University Press, 2009.
2. Dattani, Mahesh. *Brief Candle*. Penguin books, 2010.
3. ----------. *Collected Plays*. Penguin Books, 2014.
4. Deshpande, G.P. *Modern Indian Drama: An Anthology*. Sahitya Academi, 2004.
5. Iyengar, Srinivasa, R.K. *Drama in Modern India and the Writer's Responsibility in a Rapidly Changing World*. P.E.N All India Centre,1961.
6. Jenkins, Richard. *Social Identity*. Fourth Edition. Routledge, 2014.
7. Bhatia, Nandi. Ed. *Modern Indian Theatre*. OUP, 2011.
8. Naik, M.K. *Dimensions of Indian English Literature*. Sterling, 1984.
9. Nandkarni, Dyaneswar. "Butcher the Anglo-Indians". *Enact* 85.86 , n.p.
10. Warnock, Mary. *Existentialism*. Oxford University Press, 2005.

Wartenberg, Thomas.E. *Existentialism.* A Oneworld

Turmoil of Transgender People:A Critical Study of A Revathi's The Truth About Me

Parul Priya
Assistant Professor
Akal University

ABSTRACT

Since historicity, transgender people are seen with repulsion and contempt in all the social and political arenas and are contemplated as mysterious and bizarre folks, owing to the fact that the assertive patriarchal social structure adjudges any other facet other than heterosexuality as antagonizing the nature and its beings and hence persecutes and marginalizes them. Consequently, transgender people and other gender-variant people frequently encounter severe prejudice, brutality, harassment, and humiliation in their daily lives even after the decriminalization of Section 377 of the Indian Penal Code.

The compulsory heterosexuality implicitly and explicitly limits the spectrum of living of the sexual minorities and subjugates them. While successfully articulating the voice of the transgender people, through A. Revathi's *The Truth About Me*, the study aims to offer the critical scrutinization showcasing the humiliation and mortification that transgender people face in their routine life, thus trying to deconstruct the stereotypical notion of binaries using Derrida's theory of Deconstruction to criticize the mainstream society who assesses transgender people as criminals and blames them for their identity, however, the need is to get past the binaries of gender.

Keywords: transgender; humiliation; patriarchy; marginalized, Section 377

Introduction:-Transgender people have always been seen with abhorrence and contempt in all social and political arenas, owing to the mindset of patriarchal social structure that defies normative sexed categories and rests its belief in the fixed gender binaries, discountenancing to acknowledge the fact that gender is a social construct. Fortifying the binary ideas, the patriarchy bifurcates gender into two distinguished categories of being male and female, reinforces the dichotomy, and makes conventions complying with gender ideology and social and political notion, gender non-conformers and heterosexuals who fail to fit under stereotypical standard cultural norms are contemplated as opposing the nature and its beings. Such stereotypes fill the society with gender expectations, for instance, men are "historically filled (with) more leadership positions that require them to demonstrate instrumental characteristic(s) such as aggression, dominance, and assertiveness"464 whereas women are "filled more (with) care giving roles that require them to display expressive characteristics such as nurturance, compassion, and dependence" (Lee). Such gender cultural standards and perceived realities of gender limit the spectrum of the gender "[m]ore conservatively oriented parents tend to happily buy Barbie dolls for their daughters, while perhaps deflecting their sons' interest in Barbie toward more sex-appropriate action toys" (Messner 765) and largely overlook the third category of transgender. Transgender people encounter misunderstanding, bigotry, and isolation for not adhering to the standard idea of a two-gender system in which one is innately male or female. Thus, the patriarchal social structure looks at normative sex categories and normative gender categories as correlated and exasperates, persecutes, and marginalizes transgender people, and discerns them as a threat to the social and cultural structure.Owing to the historical judgment of the court regarding decriminalizing Section 377 which states that, "[w]hoever voluntarily has carnal intercourse against the order of nature with any man, wom

an or animal, shall be punished with imprisonment for life, or with imprisonment of either description for a term which may extend to ten years, and shall also be liable to fine" ("Section 377 in The Penal Code"). Despite the decriminalization of Section 377, the acceptance of transgender people at all levels is still a distant reality. They still encounter certain social and legal difficulties in the public sphere. Therefore, the study aims to deconstruct the stereotypical gender norms by analyzing A. Revathi's *The truth about me*.

Analysis

There is indeed a great change in the mindset of people but is it really in the context of transgender and moreover, can a transgender afford to live a normal life? (Revathi). A.Revathi's *The Truth About me* is a novel that gives answers to such questions. The novel is her autobiography conforming to the extremes that she sustains in her life. It takes the reader on an explicit journey of the highs and lows in the life of a person who is a man in disguise. Through the genre of autobiography, the narrative of Revathi is analyzed to reveal the plight of transgender people in India. The study also aims to relate Revathi's autobiography with the current scenario to showcase that discrimination against transgender people is still a continuing issue. In this regard, the study would focus on locating the incidents and instances that forced Revathi to make her counter-discourse and question compulsory heterosexuality through her writing.

Transgender people encounter multiple forms of problems such as harassment, discrimination, and violence at home and in public spaces due to the patriarchal gendered social structure which overpowers the mindset of the society and regulates its functioning in its way. It acts as the dominating, authoritative, and commanding force and pressurizes the society to follow its rules and ideologies and whosoever deviates from the norms is subjected to discrimination and ultimately exclusion. Transgender people categorically do not fall into the mainstream as the mainstream is not much educated and enlightened about the reality of transgender people. This is quite evident in Revathi's autobiographical account where her inclination towards women's clothing and expression made her the center of attraction for all the amusements and taunts. Revathi's childhood memories were everything other than pleasurable. She was bullied in school because of her different gender expression. Revathi asserts, "[b]ut boys at school, as well as men and women who saw me outside the house, would call out 'Hey, Number 9!, 'female thing', and 'female boy'. Some even teased me, saying, 'Aren't you a boy? Why do you walk like a girl? Why do u wear girls' clothes?'" (Revathi 4). The quote exhibits the reaction of society towards transgender people in general and the behavior of the kids in particular, which uncovers the fact that the mentalities get a pass on from generation to generation and as a result, transgender people remain subhuman and a bizarre folk in the mind of the society, thus the perception of the mainstream remains the same.

From a very early age, Revathi started witnessing such encounters which demonstrate how parents believing in the notions of patriarchal social structure regarding heterosexuality redirects and transfers them into the mind of their children and it goes on and on. A study based on children asserts that "[c]hildren learn biases from important adults in their lives, from the media, from books, from peers and from numerous other sources around them... If parents and [caregivers] give children accurate information and teach them to-value differences, children will better be able to resist prejudice" (ADL). The discriminatory attitude of adults is one of the reasons for the continuous discrimination against transgender people in the society. Besides, transgender people face the problem of family acceptance as well. Most transgender families feel ashamed of the sexuality of their transgender children. Instead of supporting them, their families go against them. In Revathi's account, her family never supported her. Thus, she had to fight with her inner self, with her own family, and specifically, with the whole wide world. Revathi experiences betrayal and brutal reactions from her family followed by abuse and thrashes from her brothers. She shares:As soon as I stepped in, he shut the door, grabbed a cricket bat, and began hitting me, all the while screaming, 'That'll teach you to go with those Number 9s. Let's see you wear a sari again…He beat me hard mindlessly, yelling that he wanted to kill me…I was beaten on my legs, on my back, and finally my brother brought the bat down heavily on my head. My skull cracked and there was blood all over, flowing, warm (Revathi 55).The abovementioned quote reveals the extent of brutality displayed by one of Revathi's brothers because she left her home to be in the company of transgender people where she feels peace and happiness. The quote further reveals that the family members of Revathi have the same set of beliefs, they see gender and sex as alike, and because of this mindset, Revathi encountered all sorts of rejection and beatings. Revathi's family's reaction toward her also answers the most eminent question that why transgender people do not come out of the closet and what has changed after Section 377 of The Indian Penal Code. In this regard, Sunaina, a trans woman and an interior designer share that:The reason I can't publicly identify myself is itself proof that acceptance from society is difficult. I belong to a middle-class family where even discussion over the subject of homosexuality is forbidden. Let alone coming out to my parents about being one. The verdict did good to us though. We are at least not considered criminals anymore but the mindset of the society is still the same ("Two years since article 377 annulment: LGBTQ community still battling prejudice")Revathi in her autobiography discloses various concealed attributes of mainstream society, for instance, the way police torture transgender people. They are very often mistreated, misgendered and physically and sexually assaulted. Revathi shares, "[h]e kicked me with his boots. He then asked me to take my clothes off…I pleaded with him and wept, but he forcibly stripped me. While I was standing naked, he stuck his lathi where I'd had my operation and demanded that I stand with my legs apart, like a woman would" (206). The quote divulges the brutal reaction of police towards transgender people. It rightly points out that these people are harassed to an extremity which is due to the reason that no system fortifies transgender people and because police put them to shame, they are left with no legal authority to help them. Unfortunately, the violence against transgender people is still continuing. A transgender from Delhi shares her experience with police. She states, "[t]he police is on our tail, no matter what we do. First, they used to disturb us while we were out trying to work but now they don't even let us do that. They chase us away whenever they see us. Even if we are just sitting and having a chat, they verbally abuse us and beat us up... there is no peace" (Rastogi). Another trans woman added, "[t]he police takes rounds and arrests kinnara women for no fault of ours, they assault us and insert lathis into our bodies. We are being tortured by the policemen for no reason" (Rastogi). The removal of Section 377 happened due to a prolonged process of trans activism in which various trans identities collectively took part. As a matter of fact, "the judgement marks the end of the first leg of the long-drawn battle for social legitimacy by the lesbian, gay, bisexual, transgender and queer…community" (Mittal and Sharma). Their activism based on common experiences ensured the positive result of a change in the law. It was the unity and persistent efforts of the whole transgender

community in particular which resulted in victory. However, they are still struggling to get the privileges that a citizen of India enjoys, an adoption rights and inheritance laws to name a few.

Transgender people are also barred from inheritance laws as it is based on the notion of dichotomies. Though The Transgender Persons (Protection of Rights) Act 2019 addresses the right to a residence for transgender people which states that "No child shall be separated from parents or immediate family on the ground of being a transgender, except on an order of a competent court, in the interest of such child" ("The Transgender Persons (Protection of Rights) Act 2019," 5) however, the act remained silent on the inheritance laws of transgender people. As per The Hindu Succession Act, 1956 the "property of the deceased male/female Hindu is inherited by his/her sons and daughters in equal proportion along with the surviving spouse" (Darji). The law clearly shows that inheritance laws are gendered. It also reveals that in order to inherit the property, transgender people have to choose either of the two sexes, male or female, or leave their rights. In this regard, Revathi shares the advice given by her lawyer to her. She states, "having heard us out, the lawyer said, 'They can do nothing. When you are summoned to the court and judge calls out "Doraisamy" they'll look at you and ask if you are indeed him—they'll want proof. It is best that you come to court in a man's dress'" (Revathi, 169). The preceding quote reveals how transgender people are asked to mask their identity in order to gain the property rights due to gendered laws. Revathi further shares, "I put up with a lot…got beaten by all sorts of people, got abused, grew my hair—and today I am a woman….Now, for property's sake, I'm not about to become a man, or cut my hair" (Revathi, 169). The plight of Revathi reveals the discriminatory provisions in the law itself which negatively affects transgender people's lives. This means that despite numerous laws in favor of transgender people, still there are certain laws that are not following the path of gender-neutrality. On similar lines, another law that practices the norms of gender binaries is the adoption law. There is no provision for transgender people to legally adopt a child. Adoption laws in India are governed by the Hindu Adoption and Maintenance Act 1956 which outlines the adoption laws for males and females. Leave alone the huge financial burden for such legal adoptions, the rules do not allow sexual minorities to legally adopt children" (Muringatheri). By not including transgender in the laws, the constitution is itself showcasing the lacuna that needs to be filled. According to the Article 14 of the Indian Constitution, "[t]he State shall not deny to any person equality before the law or the equal protection of the laws within the territory of India Prohibition of discrimination on grounds of religion, race, caste, sex or place of birth" ("Article 14 in The Constitution of India 1949"). Though the Indian Constitution promises equality in the eyes of law, it fails to practice it in the case of transgender people. Transgender people are repressed and suppressed people in the society, however, the mainstream public sphere fails to sympathize with them. Therefore, transgender through their traditions shows resistance to the dominant discourse. According to Michael Warner, "The public is a kind of social totality. Its most common sense is that of the people in general. A public… a concrete audience, a crowd witnessing itself in visible space" (Warner, 413). Thus, 'the' public refers to the general public who has a collective set of beliefs and follows the dominant patriarchal social, political and cultural principles of the society on the contrary; 'a' public refers to another group of people who have conflicting set of beliefs for instance transgenders. Transgenders makes their counter discourse which is against the mainstream and follows it throughout their life. Their main motive is not exclusion from the mainstream but inclusion.

This is objected by Revathi where she shares the incident of her guru's death. At Revathi's guru's funeral, the last rites were performed in the most accustomed way as per Hindu rituals. She outlines, "[t]he Hindu rites were performed in the morning-we tended the holy fire, we called a Brahmin priest to pray for my guru's soul, and we fed the poor" (Revathi 299). Transgender people as part of the society belong to different religions and their death rites are performed according to their religion. On the death of a Hindu hijra, a cremation is performed whereas, on the death of a Muslim hijra, she is buried, which imparts that transgender people follow the customs and traditions of the society. Unfortunately, such a framework of myths depicts the transgender community as a bizarre character in the social structure that repudiates to embrace them which conclusively promotes their subjugation. They are victimized emotionally, sexually, physically, and verbally because of the homophobia or transphobia that exists in the society. Her narration of life in the form of her autobiography is nothing but her way of showing resistance towards the society.

Conclusion- The chapter explores how transgender people are discriminated against, harassed, and excluded from the Indian public sphere based on baseless assumptions and erroneous classification of segregating people on the basis of their bodies. Falling out of the sex/gender concept transgender people encounter stigma, prejudice, and violence due to their gender identity and gender presentation from various institutions. Consequently, their issues and perspectives are also overlooked by the mainstream public sphere which practices exclusion against them. Their exclusion keeps reminding them of the fact that they are 'different'. In view of their marginalization and subsequent exclusion, the chapter discusses how transgender people are still facing the similar issues even after the decriminalization of Section 377 of the Indian Penal Code.

*****

Work Cited-

1. "Article 14 in The Constitution of India 1949", https://indiankanoon.org/doc/367586/
2. "Section 377 in The Indian Penal Code", https://indiankanoon.org/doc/1836974/
3. "Two years since article 377 annulment: LGBTQ community still battling prejudice." *The Hindu*, 6 September 2020.
4. ADL. Won't discussing differences promote prejudice? 14 April 2017, https://www.adl.org/resources/tools-and-strategies/wont-discussing-differences-promote-prejudice
5. Darji. Prachi. "Inheritance rights in India." *My Advo*, 24 July 2018, https://www.myadvo.in/blog/inheritance-rights-in-india/
6. *Gender & Society*, vol 14, no. 6, 2000, pp. 765-784.
7. Lee, Janice W., ed. *Gender roles*. Nova Science Publishers, 2005.
8. Messner, Michael A. "Barbie Girls versus Sea Monsters: Children constructing gender,"
9. Messner, Michael A. "Barbie Girls versus Sea Monsters: Children constructing gender." *Gender & Society* 6 (December 2000): 765-784.
10. Mittal, Priyanka and Neetu Chandra Sharma. "This is the beginning of the end of prejudice: Supreme Court." 7 September 2018, https://www.livemint.com/Politics/bRkgeh7EdUK5aeBHUb7YAM/Section-377-verdict-Supreme-Court-decriminalises-homosexual.html
11. Muringatheri, Mini. "Transgenders raise the adoption question." *The Hindu*, 5 January 2020, https://www.thehindu.com/news/national/kerala/transgenders-raise-the-adoption-question/article30481170.ece
12. Rastogi, Vartika. "Transgender community face increasing violence since section 377 ruling" *The Citizen*, 17 September 2018.
13. Revathi, A. *The Truth About Me*. Penguin, 2011.
14. Stressbuster, "10 Interesting Facts About Hijras And Myths Surrounding Their Community," Dailyhunt, 24 August 2015.
15. The Transgender Persons (Protection of rights) Act 2019. https://www.indiacode.nic.in/bitstream/123456789/13091/1/a2019-40.pdf
16. Warner, Michael. "Publics and Counterpublics." *Quarterly Journal of Speech*, vol 88, no. 4, 2002, pp. 413-425.
17. Warner, Michael. "Publics and Counterpublics" (2005)

Study on Feminism in Indian Short Stories

Dr Pratima
Associate Professor
RBS Technical Campus, Agra)

Ms. Sudipta Pandey
(Research Scholar
(Maharishi University of Inf mation Technology)

ABSTRACT-
The term feminism in India insinuates a ton of advancements wanting to describe, develop, and watch equal political, financial and social freedoms and equivalent entryways for Indian ladies. Like their feminist accomplices in the world, feminists in India search for sexual direction equity. This can be the option to work for equivalent wages, to move toward prosperity and guidance similarly as political freedom. The recorded scenery of feminism in India can be separated into three phases: the principal stage, beginning during the nineteenth century, begun when male European pioneers began to stand firm contrary to the social shades of noxiousness of Sati (Gangoli, 2007). The subsequent stage, from 1915 to Indian autonomy, when Gandhi joined ladies' improvements into the Quit India advancement, and free ladies' affiliations began to rise. Finally, the third stage, post-freedom, which has focused 011 sensible treatment of ladies in the work force and right to political balance.

Keywords : Feminism , Indian , Stories, Short

INTRODUCTION

Indian Feminism-For the most part, directly from the days of yore, India was a male-instructed culture. Indian ladies were gotten for certain thick, slack layers of predisposition, show, deadness and reluctance in literature similarly as for the duration of regular daily existence. They were inert things, who sought after five speeds behind their men, they should be fragile, open minded, generous, and for a very long time together. Bengali ladies were stayed behind the shielded windows of half faint rooms, putting many years in washing articles of clothing, rubbing hitter and muttering areas from "The Bhagavad-Gita and The Ramayana" in the reduce light of grimy lights'. The Indian woman today is never again a Damayanti, she is a Draupadi or a damius or a Nora or a genuine to life Joan of Arc. Social reformers. Raja Ram Mohan Ray, Pandit Iswar Chandra Vidyasagar and political reformists like Mahatma Gandhi and Pandit Nehru lent her another estimation, given her another direction. The term feminism in India insinuates a ton of advancements wanting to describe, develop, and watch eqnal political, financial and social freedoms and equivalent entryways for Indian ladies. Like their feminist accomplices in the world, feminists in India search for sexual direction equity. This can be the option to work for equivalent wages, to move toward prosperity and guidance similarly as political freedoms. It justifies referring to that feminists in India have similarly combat against social issues inside the male driven society of India, for instance, inheritance laws and the demonstration of widow immolation known as Sati. The recorded scenery of feminism in India can be separated into three phases: the principal stage, beginning during the nineteenth century, begun when male European pioneers began to stand firm contrary to the social shades of noxiousness of Sati (Gangoli, 2007). The subsequent stage, from 1915 to Indian autonomy, when Gandhi joined ladies' improvements into the Quit India advancement, and free ladies' affiliations began to rise. Finally, the third stage, post-freedom, which has focused 011 sensible treatment of ladies in the work force and right to political balance.

Feminism In Indian Short Stories-

The creation of stories from Indian Christian Life by Kamala Satthianandan in the year 1898 indicated the beginning of the brief tale in English, by the Indian columnists. In any case, the show of the brief tale in India may be followed back to the 'Panchatantra', the Jataka Tales, Katha Sariotsagara. Exactly when the Indian brief tale experienced childhood in the 1930's its possible results as an imaginative articulation were sorted it out. Anita Desai - with Desai, the Indian brief tale accomplishes a particular degree of advancement, especially in her psychological portrayal of the innerself In her amassing of brief tales named 'Entertainments at Twilight and various Stories" (1978) she contends for an attitude of equilibrium and adaptability of changing conditions in the balance of her productive characters.

Looking at Indo-English literature of the 1970's it makes the feeling that the responsibility of female makers has especially extended and that a more unmistakable care is furthermore to be found, with various critics to arrange their thought at the theoretical delineation of the modem Indian ladies' issues, be they of a psychological, enthusiastic, a social or a monetary nature. Womens' literature is only or predominantly stressed over sweeping assessments of a continuously fundamental nature i.e., essential subjects like the contention of social orders, East Vs West, Spirituality Vs Materialism, the thoughts of India Vs the Externalized destinations in the West, etc. By far most of the energetic female writers supported short kind of depiction to offer their viewpoints. **Women In Indian Fiction In English**

Language has a vital capacity to change or chain individuals. Literature uses language as its medium to delineate reality in the wake of going it through the cauldron of human innovative psyche and vision. Language passes on with it the speculations and assessments of a culture and the child while learning the language accepts these photos and characteristics ordinarily as the individual grows up. As Ngugiwa Thiong 'O, a Kenyan writer states, "Language brings culture and culture helps particularly through orature and literature the entire combination of characteristics by which we come to see ourselves just as others." Directly since the game plan of human culture, language has been shaped and mentioned by the male conviction framework, the condition reflecting the man driven set up when the social construction rested cautiously and quintessentially on the division of work and an undeniable separation of individuals overall and private circles among individuals. This solicitation has continued with various many years afterward even till today

notwithstanding the legitimization and the care acknowledged through the progress of science and advancement. Incredibly, the sound and basic division of work in the hidden periods of humankind's set of experiences takes the dishonorable and awful kind of exhibiting the instrument of limit and control on ladies rehearsed by men, who have a respectably beneficial situation in the monetary, political and social fields of society. n a male driven

society, reformist frameworks and polarization in the people □s relationship happen in view of the speculations or the proper viewpoints by which they attempt to appreciate themselves similarly as others. Having a key position and being arranged in the point of convergence of social affiliations, male dispenses minor space to the female. Human tendency to manage and control and think similarly as matched boundaries of dominating/shoddy, culture/nature, average/uncommon, etc properties the less preferred qualities to ladies who exist on the periphery space of society. Speculations, "by and large the impression of culture" than being observational basically, show up as data in Foucault □s terms. These are the indications of the incomplete dispositions of people propelling adverse appraisal of the other sex. These thoughts engender in the public arena through foundations, for instance, family, guidance, and media and become fundamental piece of the technique of socialization of the animals achieving ladies having the opportunity to be both the losses of the maltreatment approach similarly as the guilty parties of their own abuse.

REVIEW OF LITERATURE

Shikha Sharma (2019) The word women's liberation suggests the help of ladies' right pursuing to clear controls that mislead ladies. It relates to the conviction that ladies should have a comparable social, monetary and political privileges as men. Women's liberation has much of the time focused upon what is absent rather than what is accessible. The word women's activist suggests the person who allies or practices woman's rights and it takes political position. Female is the question of science and ladylike is a ton of socially portrayed characteristics. Indian women's activists have furthermore fought against social issues inside the male driven society, for instance, inheritance laws and routine with respect to widow immolation known as sati. Rather than the western women's activist turns of events, India's advancement was begun by men and after that joined by ladies.

Women's liberation in India goes for portraying, setting up and safeguarding equivalent political and social freedoms similarly as equivalent entryways for Indian ladies. Women's liberation in Indian Fiction in English is, as regularly considered, is a sublime and preposterous thought managed unobtrusively under restricted conditions. India ladies writers have as often as possible brought variety of points up in a style that by and large verse and books are good for publicizing. Indian writers have habitually raised their voice against social and social imbalance that obliged ladies' opportunity and executed institutional withdrawal of ladies. Kamla Das researches the ladies' quandary suffering in their days to day life. Shashi Desponde oversees contrite condition of ladies. Bapsi Sidhwa highlights monetary territory of Parsi ladies. R.K. Narayan is stressed over house-life partners of common families. Mulk Raj Anand caricaturizes the socio-strict pietism normal in various walks around society. Anita Desai on a very basic level oversees human conditions of suffering ladies. Kamla Markandeya picks the subject of east-west encounters. Salman Rushdie is worried about sexual abuse of young people. Shobha De shows a thought of new ladies who totally disdain the regular way of life. Thusly, Indian writers in English are intensely aware of ladies related issues and they contend for sexual direction c o r r e - spondence in their own specific way. Hambur, Fransiska and Nurhayati, Nurhayati. (2019). One of generally doubtful and recognizable social marvels is sexual orientation imbalance which depends on woman's rights musings. Taking into account how writing might depict human's existence alongside its qualities, this review is purposed to expand and look at how woman's rights considerations and sexual orientation disparity occur in different abstract works. In view of the significance of women's liberation contemplations and sex imbalance in multifaceted writing, then, at that point, there is a need to direct a similar writing concentrate on which zeroed in on woman's rights musings. This review took four sorts of artistic works, to be specific dramatization, exposition (brief tale), film, and verse. Women's liberation approach as sociological methodology was applied in this concentrate through and through with relative analysis and content examination technique. This review talked about how woman's rights musings got more backings and consolation as the century advanced. By contrasting scholarly works from twentieth and 21st century, a few significant discoveries can be drawn, specifically (a) woman's rights considerations are getting more grounded alongside the movement of century, (b) women's liberation musings consistently go against sexual orientation imbalance as both are constantly found as paired restrictions in artistic work, (c) both woman's rights and sex disparity survive human's qualities and dreary activities, (d) individual and familial qualities are urgent to foster women's liberation contemplations and sex disparity in an individual, and (e) the difference in qualities, particularly friendly and social qualities can get changes both women's liberation and sex disparity wonders.

Nehere, Kalpana. (2016) The principal wave of woman's rights underlined on ladies' liberation and equity, though the subsequent wave zeroed in on female abuses and battled for their freedom. The third wave focused on the singular strengthening. 1) The Marxist women's liberation restricted to joined battle for ladies' freedoms. 2) The communist woman's rights uncovered the sexual orientation parts of government assistance state. 3) The liberal women's activists battled for the strengthening and public cooperation of ladies, 4)The individual women's liberation focused on close to home capacities of lady, 5) The profession woman's rights propelled ladies to free in the 'Realm of Men', 6) The worldwide woman's rights demanded the limit breaking exercises for ladies' strengthening and reorder the guidelines, 7) The extreme women's activists limited to whole change in friendly design for correspondence, 8) The lesbian women's activists prevented the need from getting men for presence of ladies, 9) The dark women's activists battled for uniformity inside the races and Dalit inside positions, 10) The

womanism upheld the self-personality and - regard, 11) The social women's activists and writing clarified the social underlying foundations of separations and abuses of ladies, 12) The eco-women's activists centered around ecological viewpoints and assets identified with ladies. In any case, 13) The existentialists are cognizant with regards to reliance. The feministic examinations are dynamic, testing and significant for social government assistance. MARIANA SZAPUOVÁ (2019) This paper highlightsJohn Stuart Mill's perspectives on the issue of sexual orientation uniformity as communicated in The Subjection of Women, which is normally viewed as one of the center texts of Enlightenment liberal woman's rights of the nineteenth century. In this

paper, the creator diagrams the chronicled setting of both Mill's perspectives and his own history, which impacted his argumentation for the liberation of ladies, and considers Mill's utilitarianism and radicalism, as the really philosophical foundation for his analysis of social conditions that subjected ladies. She ponders a portion of the savant's thoughts and contentions for balance and fellowship among ladies and men which might in any case be considered critical and important. Consideration is additionally given to the principle lines of contemporary gathering of Mill's liberal women's liberation according to the viewpoint of current women's activist way of thinking, inside which certain basic perspectives prevail. In spite of some risky focuses in Mill's contemplations, his article on ladies' coercion might be viewed as one of the thoughtfully most intriguing originations of liberal women's activist reasoning.

OBJECTIVES OF THE STUDY-To study on Women In Indian Fiction In EnglishTo study on Feminism In Indian Short Stories

RESEARCH METHODOLOGY-The examination technique in the current study is exploratory, interpretative, evaluative and logical. Various subjects in the chose books are thought about. All through the exploration work while showing the references and references MLA Handbook's seventh expansion is to be utilized.

Primary Data-The essential information is gathered with the assistance of the chose three books Challenges in English Literature in building feminist line of thought across India: A study of Post-Independent India. It is additionally gathered with the assistance of conversation with strategy producers, managers, columnist and young people.

Secondary Data-The auxiliary information is gathered from numerous assets like visiting to different Libraries, Books, Research Journals, Internet, Magazine, and Literary Columns in Newspapers, Official Website

DATA ANALYSIS- Kamala Markandaya seems to emphasise through her novels that emancipation of women is not possible unless the social attitudes towards them are changed, and also their own attitude towards themselves are changed. They consider themselves weak, inefficient, dependent and desti- % ned to suffer. This cynical attitude towards themselves is at its height in rural India, where women are illiterate. They, therefore, easily succumb to superstitions, blind customs and traditions. The peasant women pass on their meek 'subservience and beliefs to the next generations. Kamala Markandaya seems to suggest that women have a long way to go to liberate themselves from the clutches of ignorance, poverty and dependence.

Nectar In A Sieve (1954) Necbar in- a iBieve r-her first navel-proves-that her fiction pertains to what she herself describes as "the literature of concern".A good dowry is considered as the passport to get a respectable and rich man as husband. So, in most of the cases,a small dowry would lead to a marriage alliance with a less desirable family as in the case of Kunthi and Rukmini. Rukmini had no dowry or beauty to offer, hence she is given in marriage to a tenant farmer, who demaided less dowry.But the fate of her own daughter, Ira is slightly different. Ira is married to an only son of a lend owner. with a small dowry, because her charm helped "in this case". ' Kamala Markandaya stresses the words "in this case" to show that Ira's case was an exception. She also points out that the condition of Ira's parents became worse after her - . marriage-.Ira's dowry and the expense of an elaborate wedding feast • '-'leave s' her parents in the dark dungeons of hunger and grief.

CONCLUSION-All in all, the examination shows feminism is a fight for equity of ladies, a push to make ladies end up like men. The agonistic significance of feminism believes it to be the fight against a wide .range of man driven and most sultry ill will. This assessment uncovers the improvement of Indian Feminism and its headway. Indian ladies researchers have placed the issues of Indian ladies overall and they have shown their spot in the widespread literature. An extraordinary piece of the early changes for Indian ladies were coordinated by men. In any case, by the late nineteenth century they were participated in their undertakings by their life partners, sisters, family members and various individuals genuinely affected by fights, for instance, those finished for ladies' preparation. By the late 20th century ladies got more conspicuous self-administration through independent ladies' affiliations. Ladies' advantage in the fight for a promising circumstance developed their fundamental consideration regarding their work what's more, freedoms in independent India. Indian literature in English and its verifiable evolvement had occurred close by the combination of British government in India. There anyway exists ,,a assortment of assessment on the main authoritative Indian text in English, in spite of the fact that pundits go to the understanding that set of experiences of Indian English literature traces all the way back to essentially the mid nineteenth century. Its beginnings had accepted their catalyst from three sources the British government" s schooling changes, the undertaking of ministers and the reaction and acknowledgment of English language and literature by high society Indians.

******

REFERENCES -

1. Simone de Beauvoir, The Second Sex, Tr.& Edited by H.M. Parshley, Penguin Books 1997, pg 415
2. Kolmar, Wendy & Bartowski Frances, The Changing Woman' (Navojo Origin Myth). Feminist Theory: A Reader. 2nd Ed. Edited by, New York, McGraw Hill 2005, pp 64
3. Truth Sojourner. 'A'int I a Woman?' Feminist Theory: A Reader. 2nd Ed. Edited by Kolmar, Wendy & Bartowski Frances, New York, McGraw Hill 2005, pp 79).
4. Anthony, Susan B. "Speech after arrest for Illegal Voting" Feminist Theory: A Reader. 2nd Ed. Edited by Kolmar, Wendy & Bartowski Frances, New York, McGraw Hill 2005,91-95.
5. Cott Nancy F. The Grounding Feminism, New Haven, Yale University Press 1987.
6. Moi Toril, 'What is a Woman?" And Other Essays, Oxford 2000
7. Combahee River Collective: A Black Feminist Statement 1974- Retrieved May 31, 2007.
8. Walker Alice, In Search of our Mother's Gardens Phoenix, 2005. ISBN 9780753819609.
9. Brown Susan (1990) 'Beyond Feminism Anarchism and Human Freedom'. In Rousso Poulous Dimitrios …The Anarchist Papers 3 Montreal: Black Rose Books. ISBN 0-921689-53-5.
10. Faith Wilding, Monstrous Domesticity Retrieved May 31, 2007
11. Marx Karl. Das Capital, translated by B. Fowkes, Penguin Classics 1990. ISBN 9780140445688

A voice for Reconstruct Dalit Consciousness in Vijay Tendulkar's Kanyadaan

Prof. Sanjoy Saksena
Department of English & MEL,
University of Allahabad,
Prayagraj, UP, India

Laxmi Prasad Anuragi
(Research Scholar)
Department of English & MEL,
University of Allahabad,
Prayagraj, UP, India Mo.9984090688

Abstract:
The term 'Dalit' means 'suppressed', 'oppressed', 'crushed or shattered' The Hindi and Marathi words 'Dalit' and 'depressed classes' were used as translations. The word 'broken men,' an English equivalent of 'Dalit,' was used in Dr. Ambedkar's novel The Untouchables (1948) to refer to the Untouchables' forefathers. Brahmins, Kshatriyas, Vaishyas, and Shudras are the four varnas that makeup India's caste system. Brahmins are at the apex of Indian society and receive the highest positions. Then, Kshatriyas, Vaisyas, and last is Shudras who get the lower caste or rank in the society. Kanyadaan, a drama by Vijay Tendulkar, depicts the true story of a Brahmin girl named Jyoti who marries a Dalit lad named Arun Athavale. The play, Kanyadaan depicts the conflict between a Brahmin family and a Dalit. Vijay Tendulkar, a traditional Indian social critic, wrote Kanyadaan, with a focus on socialism and the Dalits. Tendulkar utilizes his literature to fight for social fairness, justice, and political equality for the lower classes because he is from a Brahmin Marathi family. The play Kanyadaan is about Arun and Jyoti's unsuitable marriage. Vijay Tendulkar appears to be quite interested in the marginalized's inner mind. It can't be questioned that many of his plays were driven by true events or social upheavals that reveal the unpleasant reality.

Keywords: Dalit, Marriage, Patriarchy, Exploitation, Justice, Consciousness.

Vijay Tendulkar says: "All of my creative work starts with an experience, whether it's my own or someone else's, and then it becomes mine." To begin with, kanyadaan was inspired by another's experience. (Translations 598). Tendulkar used theatre to get at the root of the uncompromising discontent of man that makes his survival difficult against the unhealthy and irrational practices of society. The collective impressions of childhood born out of the mechanism of oppression, constitutes the psyche of negation and rebellion. Social practices, religious faiths, family traditions, and ethical commitments contribute to childhood insecurities and discontents and these discontents furnished a suitable material for Tendulkar to rock the contemporary Indian theatre with a new awakening. The play *Kanyadaan* is a dramatic account of the horrors of the caste system. It is a distinctive kind of play in which he seeks possibilities of the grounds for defense and justification for the perversity of behavior. Erich Fromm put his view that *" neurotic disorders result out of man's unconscious affinity with religious codes, we can interpret neurosis as a private forms of religion conflicting with officially recognized patterns of religious thought"* (Fromm:27). The rejection of neurotic disorder in the context of caste and religion-based ideology is an unacknowledged revelation of the ' ,discontent' of civilization. It also exhibits man's anxiety against the environment in which an individual has been forced to survive. The miseries of caste discrimination create a sense of helplessness which then manifests itself as anger "towards" and "against" people. In the post-colonial discourse, the oppression of Dalits and the attempt to acknowledge and establish their identity has been a major concern for creative writers. The roots of the idea of caste discrimination exist in the theory of *Chaturvarna* in which Shudras were assigned the lowest status and were deprived of their basic right of self- preservation and self-survival.

In the play *Kanyadaan*, Tendulkar through the anger and resentment of a Dalit youth born out of caste discrimination, tries to reinvestigate the far-reaching consequences of the 'discontents of civilization'. Arun Athavale, the protagonist of the play *Kanyadaan* is a scavenger by caste and by the dint of misfortune; he appears as a sadist and rebel. The cumulative wrath and resentment born out of unhealthy social practices spoil all the grace of his life. For his realization of the misery of personal life, he loses his faith in social justice, faith in personal relationships, and even the faith in the existence of human life. Arun in spite of being the son of a scavenger was endowed with sharp intelligence and keen sensibility. He develops his relationship with Jyoti, an educated and sensitive girl from Brahmin community. Jyoti' father Nath Devalikar was a social idealist and he had the dreams of upliftment of lower sections of society. Jyoti has been dominated by the idealism of her father, resolute to marry a Dalit youth. It was an outspoken defiance of societal norms. Seva, Jyoti's mother in spite of being a social activist registers her protest against the decision of her daughter. In *Kanyadaan*, the synthesis of social obligations and personal relationships is trusted with equal balance to create strong dramatic situations. The balance of internal and external factors in the play *Kanyadaan* echoes the dramatic patterns evolved by Ibsen. Jyoti mentions Arun's name with additional emphasis on his surname, "His name is Arun Athavale." On this revelation, the very first reaction of Nath is "Is he a Brahmin"? Though outwardly, Nath is elected on the decision of his daughter for him the marriage of Arun and Jyoti was not a matter of personal sentiments but was a method to establish his popularity a radical reformer. Jyoti gets her courage to reveal Arun's profile: "He is pursuing his B.A. He is employed part-time at "SamSamachar." For her mother Seva, each and every detail regarding the personal life of Arun was significant. Jyoti without the least hesitation confesses that Arun belongs to a family of even children and out of them; he is the only educated and sensitive individual. Jyoti tries to defend him on the ground that Arun has the potential for writing poetry. Jyoti admits, "His poems and his autobiography have inspired me with complete faith in him." The

hesitation implicit in the confessions of Jyoti evinces that she is also doubtful about the reactions of her familYmembers on such occasions. Seva does not favor the decision of her daughter because for her the idea of marriage beyond caste was a matter of personal faith and trust. In the first act, the attitudes of Seva, Jyoti, and Nath distinctively show that their sentiments were controlled by caste consciousness.

In the second act of the play *Kanyadaan*, Seva, Arun, and Jyoti come in direct confrontation on the issue of the relationship with Arun. In this meeting, there is a direct encounter of the alternative ideologies represented by Arun, the Dalit, and Nath, the Brahmin. Jyoti stands in between these two extremes. Arun approaches the scene when his consciousness was influenced by the feeling of 'othernesses. His sentiments for Jyoti were not strong enough to subdue the suppressed rage concealed in his subconscious mind. The proposal of marriage with Jyoti was taken as an unconscious humiliation of the class of which he was a representative. Arun finds himself uncomfortable in a big house. As compensation for his humiliation, he tries to impose his authority on the whole family. He pours out his collective feeling of persecution and humiliation. The agony is evident in his complaint:*You'll understand when you visit my father's cottage. Ten of us, big and tiny, shared that eight-by-ten -foot space. In the cold, our bodies' heat keeps us warm. We didn't have any clothing on our backs or food in our stomachs, yet we felt protected. The guts of sharks and crocodiles are resting in these filthy city people's dwellings, and each one is alone in them (16).*

Arun projects his insecurity in the family of Seva. For him, the palatial house of Jyoti was only meant to devour the identity of the marginalized like him. He accepts that they have a better sense of security and belongingness in the alley streets breathing with the common man. In Arun's confession, the images of 'crocodile' and 'Sharks' indicate the idea of the devouring capacity of the elitists. Arun exposes their grandfather and great grandfather's barefoot miles and mules with savage ridicule. The pathetic exposition of the living conditions of the community of scavengers by Arun establishes two aspects: (1) Tendulkar was conscious for his responsibility towards society. (2) It suggests that for Arun it was not a matter of the dearth of money only but its impressions were rooted in his unconscious. Arun wants to expose that state of the horror of social reality that can never be a part of the psyche of high caste society. The pathetic cry in the following speech of Arun, suggests that Tendulkar wanted to eliminate the difference of reality and artificiality through the serious social purpose of the stage. Arun admits:*We can't possibly fit into your wrinkle-free Tinopal world with our tongues constantly probing the flesh of dead animals and relishing it. How may our practices and your fragrant ghee spread, wheat bread culture be mutually beneficial(17).*He challenges Jyoti if she could have taken a breath in the stinking hut. At this stage, Arun becomes a symbol. In Arun's mind, the resentment is not for Jyoti but for the whole class and his resentment assumes the proportion of absolute annihilation. The social discontent becomes a part of his mental antagonism in which he wanted to abolish the whole social structure. The destructive images employed in the following confession are the objective manifestation of the contempt rooted in his mind, "I want to set fire to the entire globe, choke people's throats, rape them, and murder them all." Drink the blood of animals, higher caste society." (18).Vijay Dhondopant Tendulkar in his treatment of social issues exposes the layers of those elements that lead to the mechanization of power. In *Kanyadaan*, the encounter of Arun with Seva is exclusively arranged to give an insight into the hegemonic power mechanism of upper castes. Seva approached Arun not as a mother, but as a detached observer whose sole purpose was to assess and analyse Arun's status as a sweeper's kid. Seva contemptuously remarks that his being B.A. is not of much significance. Tendulkar proceeds to expose the mental crisis both in the context of caste and class conflict. Seva humiliates Arun on the ground that with his limited income, he would not be able to lead a comfortable life in Pune. Seva's arrogant assertion of her superiority in life becomes a stimulus to fire the passion of Arun. Nath (Jyoti's father) in spite of his cosmopolitan socialistic vision fails to tolerate his relationship of Arun with Jyoti. If Arun can't seem to shake his Dalit identity, Nath is similarly fixated on the concept of 'othernesses.' The idea of distinctive identity is expressed in his reference to the smoking of the famous dancer, Sonal Mansingh. For him, the effort to raise the voice of these subalterns would be a threat to the entire establishment. He declares, "Did it ever occur to anyone that you Dalit people would flex your muscles and defy the system as you are doing now?" (24). Seva also concludes that being a Dalit boy, Arun will not be able to accommodate the manners of upper- caste social order. His culture and manners are different from their culture and tradition. Jayaprakash (Jyoti's brother) also exhibits his dissertation on the issue of the merger of Dalits in the mainstream of life. In *Kanyadaan*, Vijay Tendulkar distinctively identifies the duality of the vision of high caste Hindus and Dalits. Nath, Jayaprakash, and Seva agree on the point that Arun's ways are different and he has been brought up in a different type of climate. Nath in spite of his vision of social justice, fails to give equal respect and equal status to Arun, t"Not only is he not a member of the middle class, but he is also a Dalit." He was raised in a world of poverty and prejudice. The psychological composition of these folks is very different." (27). Nath views Jyoti's marriage with Arun as an experiment aimed at transforming society. Unlike Nath, Jayaprakash and Seva, Jyoti also realizes that Arun is a complex personality and it is not easy to penetrate his consciousness. Tendulkar with these observations of Jyoti and Arun, affirms that they are like two poles in which one cannot invade in other's terrain without distorting their own ideological mental set. Jyoti is a woman resolute to marry him but she suspects his intentions. The hesitation of Jyoti becomes a foil to the resentment of Arun. It evinces that insecurity is not only with Dalits but also with Brahmins like Jyoti. She no doubt has a sympathetic realization of the conditions that generate a consciousness beyond the sophisticated idealisms of social hinkers. Jyoti responds to his sentiments but she finds herself too feeble to reconcile with his insecurity born out

of caste discrimination. She defends: I'm afraid I must – then my own intellect convinces me that he is not evil at heart; he is not wicked by nature. He's a complicated individual. Humans are complicated creatures. It's likely that his complexity is the result of his circumstances, and he recognises it (29).

Nath is also divided in his mind on the issue of the relationship between Jyoti and Arun. Seva's open opposition of marriage is more convincing than the hypocritical consent of Nath. Arun's aggressive and hostile response is not an expression of individual fury but an index of the discontent of civilization. However, Nath's evaluation of Arun's personality has the undertone of mockery in which there are distinctive shadows of his pride and arrogance. He remarks:It's normal for the youngster to have rough edges; they're the result of the conditions he's been through. In fact, if these idiosyncrasies didn't exist, it would be unexpected (30).Tendulkar establishes that each individual has essentially to bear the burden of circumstances, might they be hazardous and disgusting. Sigmund Freud has tried to make a psychological justification for cultural disparities existing in society. He defines the whole phenomenon in the following observation:The work of civilization has become increasing the business of man, it confronts them with ever more difficult task and compels them to carry out instinctual sublimation … his constant association with men and his dependence on his relations with them, even estrange him from his duties as a husband and father. Thus the woman finds herself forced into the background by the claims of civilization and she adopts a hostile attitude toward it (Freud: Discontent, 293). The idea of claims of civilization is confined not only to women but also to humanity as a whole. Though, Jyoti's father accepts that in order to bring these subalterns in centre, it has become essential to speak for them and to create spaces for them in the centre. The breaking of the barriers is to begin at a certain point involving the threat of the challenges of society. Nath accepts Arun's position in the context of human consideration. The dramatic conflict in *Kanyadaan* is more convincing because the conflict of interpersonal relationship and social convention go simultaneously. He accepts the human aspect of these thoughts:

He has to be melted and sculpted like raw gold. This is a pressing need and who better than Jyoti to fill it? Of sure, it is tough, but it must be accomplished (31) The fabric of personal and internal conflict in *Kanyadaan* is more intense than in other plays. Arun is a victim of his inborn insecurity but he is also conscious of his sentiments for Jyoti. He has a realization of the anguish of all the wrongdoings for Jyoti. In these conflicting pull of ideals, the symptoms of sadism and masochism reflect directly in the actions and words of Arun. His pathetic imploring to get back his Jyoti from her parents is heart rendering. His confession makes it evident that he was not an insensitive brute but a hyper- sensitive individual in which his helplessness transforms into rebellion. His remorse and repentance suggest that even Dalits can conceive the spectrum of life at the higher plane where the binarism of caste discrimination becomes a mockery of human relationships. His honest confessions of guilt impart a rare sublimity to his character. Arun confesses: *"I act like a wild beast." I'm sure she'll never forget me. This reality Jyoti, you are not intended for me. After all, we scavengers are doomed to perish in excrement. But Jyoti, I genuinely adored you. My love for you, Jyoti, is genuine. I harmed you with these hands... I need to shatter them... (42).*In the case of Arun violence is directed not only toward Jyoti but also towards himself. His intense and instant act of taking a knife with a view to inflict pain upon him signifies the intensity of turmoil under which he was struggling. Arun's resentment in *kanyadaan* is more intense and more poignant even than that of Jimmy Porter in Osborne's *Look back in Anger* and of yank's in O'Neill's *Hairy Ape*. All of them are the products of class war. Seva like the parents of Alison remains indifferent and apathetic. In *Kanyadaan*, Tendulkar his criticisms to expose that all these characters want sympathy and human insight to seek an out- let for the suppressed rage boiling inside their consciousness. Seva's prejudiced vision can contribute little to the improvement of the fate of the wretches like Arun. Seva's indifference works as a stimulus to stir the rage of Arun. The subsequent justification of Arun for his own nasty behavior shows that he was conscious of what he was doing but it was difficult for him to resist his temptation. Arun confesses, "You are not tempered." She becomes a little tipsy, says something, and I say something back. The battle begins. I can't take it anymore; I'm losing control of my hands" (43). Against Arun's honesty, Seva reacts only as a representative of the elitist's class. In her resentment, there are the echoes of the fact that for her it was not a matter of Jyoti's fate only but it was the question of humiliation of one individual towards another. What Arun wants is love, sympathy, and confidence instead of humiliation. Arun's recourse to violence was an unconscious mechanism to defend his own loss of ego out of the realization of the bitterness of his past. On Seva and Jayaprakash's persistent allegation regarding his position, he candidly admits that imposition of the grab of civilization would be a mode of betrayal, the betrayal of the family, betrayal to his past and the betrayal to his community. His insecurity echoes in his confession:

When have I ever pretended to be as refined and cultured as you? I've watched my father come home drunk every day and beat my mother half to death, and I've seen her scream her heart out since I was a youngster. I can still hear the echoes of her cries. There was no one around to wipe her tears. My mother's plight! She didn't have a parent or a mother like Bhai or you. . . *(44).*Vijay Tendulkar in *Kanyadaan* constructs the chain of events with the assumption that the representation of the voice of Dalits requires the transformation of the collective consciousness that obstructs the growth of the individual soul. Seva snubs that wife beating is barbarianism and Jyoti is not conditioned to that sort of treatment. Arun becomes more forceful and demanding to cement his place the more arrogant Seva grows.He confidently accepts his position, *"What am I but a scavenger's son? We haven't learned the nonviolent methods of Brahmins like you." We drink and beat our women... we make love to them... but it's the beating that makes the news.' (44)*. Gayatri Spivak in her thesis of subalternism has tried to establish that someone is needed to articulate the voice

of them in centre. Jyoti against the bigotry of her parents emerges as an instrument to make their confidence vital and alive. In spite of Arun's violent ways, she resolutes to responds to the call of their doings. Tendulkar constructs the plot of the play *Kanyadaan* with the argument that both the groups – Dalits as well as elitists – are the victims of their insecurities. Every time Seva, describes each situation with exceptional enthusiasm and Arun every time tries to impose his identity with the support of violence. Jyoti is the worst sufferer in the play. She is a victim of the horrors of caste discrimination and is also the victim of patriarchy. Arun's recourse to extreme violence even in a state of pregnancy can't be justified on the ground of logic.Arun's release of his autobiography based on his personal experience is a turning point in the play *Kanyadaan*. Nath as a social activist is impressed by the ideals of Arun mentioned in his autobiography but his approach to life is absurd. His prejudice towards Arun is apparent in the following confession:The fact is that your Dalit son-in-law, who can write such a magnificent autobiography and a number of lovely poetry, wishes to stay a couch potato. He desires that his wife work. With his money, he intends to drown himself in alcohol and enjoy a wild night with his pals. On top of that, he wants to kick his wife in the stomach for entertainment? In this way, he is retaliating for the kicks delivered by men of high caste against generations of his forefathers (48).Jayaprakash, as a fresh blood, has a reasonable understanding of Arun's entire network of aggression. He accepts that sadism on the part of exploited and oppressed is a method to justify the violence done to them. For the oppressor, violence is not just a means of self-defense, but also a kind of vengeance that involves emotional satisfaction. "Yesterday's victim is today's victimizer," he says after attempting to generalise the entire issue. Tendulkar seeks justification for the violence that burns out of caste discrimination. He states: Victims of abuse may go on to inflict the same terrible brutality on others. Perhaps it gives them a strange pleasure. Those who are hunted may gain enjoyment from hunting others when they have the opportunity. When the downtrodden are given the opportunity to oppress others, they are ecstatic (51).These sorts of observations suggest that Tendulkar was conscious of the serious purpose of drama. In *Kanyadaan* the idea of the press release of the autobiography of Arun by Nath is dramatically significant to lead the action to its apex. It has been employed as the indirect mode of inflicting pain on others. Arun feels insulted on the idea of public display of the wounds of torture and injustice revealed in his Tendulkar establishes if there are more Arun in society, there will positively be a reorientation of more Nath to ensure balance and social justice. Nath rejects the autobiography of Arun with the accusation that it contains no truth about the life of Arun. *By his touch, I belong to someone who makes your clean and pure hearts dirty" (66)* She accepts that her father only maintains hatred for Arun. Jyoti is not an idealist but a true humanist who has a rational understanding of man's nature. Vijay Tendulkar makes Jyoti a spokesman of his point of view to seek redemption for Arun. Her generalization on the nature of human will is magnificent. She expresses her resentment against the inhuman practices of social structures. *life before I realised what you had done. It was only via my personal experience that I was able to learn it. Arun Athavale was someone I had to meet. What you had withheld from me, Arun gave me (67).* Jyoti's forbearance allows him to unleash the full extent of his aggressive and ferocious behaviour. Arun's buried unconscious surfaced, bringing with it a cathartic release in his life. Behind Arun's rage and ferocity, she sees glimpses of his true personality. She discovers the real Arun behind his identity as a Dalit youth. She defends:*Arun is the beast as well as the lover. Arun is both a devil and a poet. Both are intertwined. They are one, one within the other. They are so inextricably linked that it is often impossible to tell the poet from the devil.* She confesses that without a comprehensive realization of humanity, it is difficult to appreciate the real human self beyond social prejudices. She vigorously challenges:*Tell me, where is that beast I'm supposed to pull out and says, where is that God I'm supposed to rouse from his slumber? Tell me... Arun is made up of all of these things fused together, and I've accepted him as he is because I can't reject him (68).*

In order to fit in with the rest of society, Arun eliminates her identity and emphasises her status as the wife of a scavenger. If a woman is required to embrace her husband, she wonders why she is urged to deny Arun's scavenging identity. She says: *Now I'm Jyoti Arun Athavale, a scavenger, rather than Jyoti Yadunath Deyalikar. 'Harijan' is not something I say. Despite the phrase, I am not touched. If* Joyti's representation reflects thats without a full understanding of humans, it is impossible to appreciate the true human self. In *Kanyadaan,* Tendulkar builds the chain of events in his play on the notion that because representing the Dalit voice necessitates transformation into conscience, Individual growth is hampered and undermined. Arun requests that Nath give a public a statement on his memoirs, but he declines. In response to his daughter's situation, Nath delivers hypocritical speech in the last scene of the second act, promoting Arun's book against his will. Nath wishes to keep Jyoti from being irritated any longer, but Jyoti refuses and leaves home for good. Nath the idealist is eventually transformed into Nath the realist. He rages towards the conclusion, saying that such a dalit (Arun) has soiled his home. The story concludes with Jyoti's departure from the Nath household, never to return. The drama's conclusion leaves the audience wondering what will happen to Jyoti's marriage. The union does not work out. It is claimed that the class gap and strife between the high and lower classes will persist, which is quite unfortunate!

*****

Work cited-

1. Fromm, Erich. *Psychoanalysis and Religion*. New Heaven: Yale University, 1950
2. Freud, Sigmund. *Leonado da Vinci and the memory of His Childhood.* First published in the standardedition, Vol. 11th, 1964.
3. Horney, Karen. *Our inner conflicts: A Constructive Theory of Neurosis.* Norton, 1945.
4. Tendulkar, Vijay. *Kanyadaan.* Translated by Gowri Ramnaranyan. *Collected Plays in Translation.* OUP, 2003.
5. Agrawal, Dr. Beena. *Dramatic World of Vijay Tendulkar: Explorations and Experimentations*. Aadi Publicatons, 2010.
6. Dharan, N. S. *The Plays of Vijay Tendulkar*. Creative Books, 1990.
7. Manu, *Manusmriti.* Prabhat Prakashan, 2016

Gender Inequality in Ngugi waThiongo's Devil on the Cross

Dr. P. Mythily
Head & Associate Professor
Thiruvalluvar Government Arts College,Rasipuram.

A. Syed Rehanas
Ph.D Scholar (Part-time)
Thiruvalluvar Government Arts College
Rasipuram.

Abstract:-

Gender inequality is most common among women afflicted by poverty. Many women are enforced to shoulder all the responsibility of the household and also outside the home.Regularly this may include tasks such as tilling land, grinding grain, carrying water and cooking. Also, women acquired low income because of gender discrimination. Men were entitled to higher pay, have more opportunities, and have overall more political and social recognition than women.

Gender equality is also strongly connected to education. Social media assists to create more equality, because every individual is capable of expressing himself or herself as they like. Every individual also has the right to express their opinion, even though some might disagree, but it still allows each gender an equal amount of power to be heeded. Ngugi reveals how the African women have been exploited in the colonial and the neo-colonial Kenya on the basis of gender. His women characters are exploited directly or indirectly. In *Devil on the Cross*, Wariinga a victim of sexual exploitation, becomes vociferous against the society. The paper aims to expose the inequality and sufferings of women through the characters Wariinga and Wangari.

Keywords : Gender inequality, discrimination, Wariinga,Wangari

Gender is used to exemplify the attributes that a society or culture constitutes as "masculine" or "feminine". Gender inequality is most common in women afflicted by poverty. Many women have to shoulder all the responsibility of the household. Regularly this may include tasks such as tilling land, grinding grain, carrying water and cooking. Also, women acquire low incomes because of gender discrimination.Men are entitled to higher pay, have more opportunities, and have overall more political and social recognition than women.Gender equality is also strongly connected to education. Social media assists to create more equality, because every individual is capable of expressing himself or herself as they like. Every individual also has the right to express their opinion, even though some might disagree, but it still allows each gender an equal amount of power to be heeded. Ngugi reveals how the African women have been exploited in the colonial and the neo-colonial Kenya on the basis of gender. His women characters are exploited directly or indirectly. *Devil on the Cross*, Wariinga a victim of sexual exploitation, becomes vociferous against the society. Wariinga is the protagonist of the novel. Wariinga was sexually exploited while she was still young and innocent at school. Through the story of Mahua Kareendi, Wariinga defines that she has been sexually abused by the neo -colonists in Kenya. When she was young, a young boy at school made use of her body. At a later date a rich old man exploited her sexually. When she approached the old man, and the hunter game with her, said: "How could you possibly have conceived as soon as if I were the only man to go with you... I thought all along that I was going with a lean school girl, a girl I would have loved to marry so that she could be balm for my old bones. But instead I picked on Kareendi, ready to yield. Did I?" (DOC146) Unlike Wanja who threw her child in a latrine pit, Wariinga did not abandon the child. Her parents are very considerate towards her and they are ready to support her. She learnt typewriting and went in search of a job from one place to another. Wherever she went she met with utter disappointment and desperation. At last, she was asked to join a Modern Love Bar and lodging that has become the main employment bureau for girls like her. She rejected them all. At last she got the job of a typist. Her Boss Kihira was a pastor. He too proposed to be his 'Sugar girl' tempting her by offering luxuries. He tried to exploit her poor condition. When she resisted him she was thrown out of her job. In utter disappointment, she went to her lover in the University. Earlier, he agreed to take the child and look after her with utmost love and care. Unfortunately, he disowns her thus: "A chameleon will always be a chameleon. Girl who starts going with men old enough to be her father while she is at school to the extent of giving birth to babies when still a student...no you are spinning me this yarn only because Waigoko has refused to let you continue making his bed in hostels for modern love." (DOC 25) Wariinga was so disillusioned in life that she resolved not to have love affairs with any man. The owner of the house hired three thugs who threw her away and her goods out as she refused to increase the rent of the house immediately. She said she would pay only after a reference to the rent tribunal for settlement. Unable to live in the dirty city, she went back to her native place of lllmorog. She saw a Devil in her dream. Infact, the Devil symbolizes all evils in the world. Here, it connotes the capitalist forces. While travelling by a taxi along with Wangari, Muthuri and Gathuiria, they decide to go to lllmorog cave where a competition among the imperialists is going to be conducted under the name 'Devil's Feast'. Ngugi also throws light on the sexual exploitation of the African women at the hands of other Africans. In the cave, the bar maids are made to appear as doves with skin tight dresses before the thieves. In the world where love and sex between sexes have become the things that can be purchased easily, the word love has lost its importance in its true sense. Bar maids wore bands inscribed, 'I love you' in an exploitative sense. In the 'Devils Cave', a description of the exploitation of women by the thieves is seen.

The thieves have to reveal the number of wives and mistresses they have and also the cases of adultery and sin they have indulged in. Ndaaya wa Kathuria is well trained in snatching the purses of women in public places. Gitutu Wa Gataangura says that his old arrogant father would send for any beautiful woman he sees to make her mistress. As far as his having mistresses, he

argues like Satan who quotes from The Bible and wins his argument. He says: "He who keeps something in reserve never goes hungry and when a European gets old, he likes to eat veal". (DOC 90) There isn't any significance of marriage among the thieves in cave. Even the women from bourgeoisie class have become 'flesh sellers'.

She was unable to pay back a loan of 5,000 shillings to the Kenyan Economic Progress Bank. The rate of interest was very high. So her two acres of land was seized. She went in search of a job in Nairobi. Her approach with an African did not yield itself to any fruitfulness. "Infact, she was asked by the fellow Africans to opt for the job of spreading my legs, that women with mature bodies were experts at the job". (DOC 42)Another black man handed over her to the police. This patriotic woman who never had stolen anything was asked to pay a fine by a European judge on the charge that she was roaming in Nairobi without an identity card was asked to pay a fine by a European judge on the charge that she was roaming in Nairobi without an identity card. Like Nyakinyua, she became a victim of neo-colonial banks. Ngugi portrays patriarchy as a prevalent phenomenon that exists under the skin of society. the novelist identifies the problem of women and champions their cause.Ngugi has attributed a power and therefore respect to women as brave mothers in his articles. But then woman's participation in the literary field has paved the way for authenticating her stand in the global society.The women in the novel of Ngugi, considered in the background of the period in which the novels are set, present the readers with the number of issues related not only to gender and society, but also to the political scenario prevalent in Kenya. The women in his later novels starting from *Petals of Blood* express many of Ngugi's concerns over the state of affairs in newly independent Kenya, such as the turning of the female body into a commodity of pleasure and the existence of gender and class inequality. Ngugi makes his female characters move and act within the restricted space provided by patriarchy, their rebellions and even the small acts of defiance are symbolic of their desire for equality and self- expression; and perhaps in presenting them as the exploited gender and class. Ge s being faithful in his representation of the real and lived experience of the Kenyan women.

References-

1. Nugui Wa Thiong'o. *Petals of Blood*, London: Heinemann, 1978.
2. *A Grain of Wheat*. Oxford: Heinemann. 1977.
3. *Devil on the Cross*. Johannesburg: Heineman. 1982.
4. *Homecoming: Essays on African and Caribbean Literature, Culture and Politics.* London: Heinemann. 1982
5. *Weep Not Child*. London: Heinemann, 1964.
6. Nicholls, Brendon. *Ngugi wa Thiongo: Gender and the Ethics of Post Colonial Reading*. Surrey: Ashgate Publishing Ltd. 2000.
7. Cook, David, *African Literature: A Critical View*, Longman, London. 1977.
8. Fanon, Frantz, *The Wretched of the Earth*, Penguin, Harmondsworth. 1967.
9. Gikandi, Simon, *Reading the African Novel*, James Currey, London.1963.
10. Gikandi, Simon, *Writing in Limbo: Modernism and Caribbean Literature,* Cornell University Press, 1996.
11. Kenyatta, Jomo, *Facing Mount Kenya*, Heinemann, Oxford. 1979

Search for Individuality in the Novel of Arun Joshi: The Strange Case of Billy Biswas

Dr. Ruby
Assistant Professor of English,
Government Arts and Science College,
Komarapalayam, Namakkal, Tamilnadu.

K.Suresh
Ph.D Research Scholar in English
Government Arts and Science College
Komarapalayam, Namakkal, Tamilnadu.

In Indo-English Fiction, the base was established by the great three Indian novelists Mulk Raj Anand, R.K. Narayan and Raja Rao and others,who were pursued by the younger creation of novelists like Anita Desai, Salman Rushdie, Khushwant Singh and Arun Joshi. As it is evident that in the twentieth century, man belongs to the lost generation, so therefore some Indo-English Novelists have determinedly dealt with the problem of the search of the individual for his identity. As the predicament of knowing himself has become very sharp, Arun Joshi depicts this problem in his fiction and tries to afford a solution which cannot be final. He is perchance the first Indian novelist who took up this recent social problem of alienation and of uniqueness.

The twentieth century features a cultural emptiness, where man has mislaid his sense of classification. In the disjointed world of our age, man is not able to describe himself and to comprehend how he stands in relation to the rest of the world. So Arun Joshi acquires from existentialists the image of a man as a lonely, tormented being in an apathetic world. His illusory world is characterized by disappointment, dissolution, and a sense of alienation. He has given five precious novels to the modern literary world of Indo-English Fiction are *The Foreigner, The Strange Case of Billy Biswas, The Apprentice, The Last Labyrinth, and The City and The River,* and a collection of stories entitled: *The Survivor*. In *The Foreigner*, the first novel of Arun Joshi, which brought him into the fame, the most outstanding features of the protagonist Sindi Oberoi are – his alienation, his detachment, his loneliness, his lack of involvement and his helplessness to shape meaningful relationships in life. His second novel, *The Strange Case of Billy Biswas,* was published in 1971, which shows the prolongation of the theme, viz., search for individuality. The novel is a cruel denunciation of the spiritual up rootedness of the Post-Independence Westernized Indian Society. Billy's search for meaning, though, is conducted in a very aggressive atmosphere and he has to pay a heavy price with his life for not compliant to the norms of the urban civilization- for daring to step out of its roasting impounds. The novel bonds with the existential theme of separation from self and from society, which is a general familiarity in the modern world of urbanization, changing morals, and rootlessness.Arun Joshi is anxious with certain existential themes in his novels. There is a prevailing sense of rootlessness, restlessness and foreignness in his protagonists, for the motive of their not being able to correct themselves sensitively or ethically to their society. In fact, this rootlessness and foreignness becomes the persistent pattern of his novels. However, in spite of his existential themes, his solutions to the troubles of life are realistic and not as extreme as those of the existentialists.Arun Joshi, an author of rare sensibility and style, attempts a serious probe into the existential

problems and spiritual disturbances of mankind by fixing his focus on certain individualistic characters like Billy Biswas. Joshi's second novel, *The Strange Case of Billy Biswas*, seems to be a sequel to his first novel, *The Foreigner*, in regard to the quest for identity by the protagonist. There is a recurrence of the themes of the first novel-crisis of self, the problems of identity and the quest for fulfillment in Joshi's second novel. *The Strange Case of Billy Biswas* is a single-based character, and is mainly concerned with the sensibility, beliefs, quest for individuality, and the destiny of his hero. In the novel, the hero prolongs his odyssey and leaves New Delhi for Maikala Hills in search of internal harmony and his sacred roots. He is in search of individuality and feels alienated from the environment in which he has been brought up and he is at least able to find a scanty amount of accomplishment in his escape from primitivism. Billy at last feels a sense of belonging in the tribal and primitive way of life. But even here the visualization cannot be considered as quite optimistic, for the writer is significantly bitter about the civilized world. The book ends with the hero realizing the selfishness of the civilized world towards a sign of meticulous dispute.*The Strange Case of Billy Biswas* aims at presenting a possible option to the futile cry of the sensitive individual in the modern world and accounting for the performance of people like Billy. Bimal Biswas or Billy is a man of luminous intellect, deep sensibility and strange passions. He is introduced as an "engineer, anthropologist, anarchist", a man of an extraordinary obsession, who is born and brought up in comfort and affluence. He is the son of a Supreme Court Judge, who was educated in Britain and America. He is a person who is extremely conscious of deeper layers of his individuality and feels totally estranged from the external reality of life. The ordered, systemized, civilized life which fascinates an ordinary man intensifies Billy's problems of identity. He is in search of a human world of emotional fullness-a world of meaningful relatedness. Unable to seek inner-peace, self-recognition, and salvation in the so-called civilized world, he searches for a position where he would not feel an exile, ethnically uprooted, socially lonely, and self-estranged. But his search leaves behind a trial of devastated hearts.Billy's persistent quest for individuality persuades him constantly to live in Haarlem, where he can nurture in himself a sense of belonging, a spirit of superintendence, by wholly preserving his identity, his studies Anthropology and not engineering, which his parents want him to. His sense of restlessness and his longing for primitivism is almost engrained in his personality. He receives the allusions of his primitive self from the instant he materializes from the railway station at Bhubaneswar, where he departs to spend his holidays in his childhood. He could not figure out what thrilled or bothered him unless it was a sudden interest in his own identity. Who was I? Where had I come from? Where was I going?" It looks to him that the statues of Konark could offer a solution to his dilemma of identity and quest for self. Watching the tribal dance, the young Billy has these feelings: "Something has gone wrong with my life. This is where I belong; this is what I have always dreamt of." Billy is brought face to face with the futility of civilized life, which makes him terribly unhappy. And subsequently, throughout, he goes on making efforts to reclaim his identity, which escapes him for a long time. Tulla Lingdren, a Swedish girlfriend of Bill, who has come to America for higher education in psychiatric social works, has extraordinary perception. She has mastered hypnotism that is why she comprehends the problem of Billy's life completely. She identifies what goes on in his dark, enigmatic, unsmiling eyes. She finds him preoccupied with a hidden search.In his desperate attempt to get away from the hallucinations and his fear of loneliness, Billy, ironically, gets caught in social conventions that he so terribly abhors. In order to get rid of his obsession with the primitive and to attain an emotional anchor, Billy marries Meena Chatterjee was a sophisticated and beautiful girl with his own Bengali community. This marriage, though, revolves out to be a miserable disappointment, because of lack of understanding. Within a year after his marriage, he realizes that he has committed a blunder. Incapable to comprehend his self in the marriage, Billy's entire being is devastated. Billy's marriage and its tragic aftermath lead him to the edge of despair, culminating subsequently in the seduction of Rima Kaul. Nonexistence of any significant relationship and contact in marriage, coupled with his disappointed longing for primitive life, Billy feels dreadfully dissatisfied with his life in this affected civilization. His passion with primitive life is born out of the feeling that sophisticated life is not unique but only a replication of what is mock. So he longs to flee into the simple society of authentic emotions from the hypocritical materialistic society. In the beginning, he does not understand his fascination for primitive life. It is as however Bilasia is Prakriti and Billy is Purusha and the celestial whole is experienced in their unification. Billy's tragedy is the tragedy of every man who wants to know his identity, his individuality. Billy abandons the civilized world not because he is a psychic or a criminal, but because his vision can see beyond what is actually visible. The most tragic part of the story is that none tries to comprehend Billy's troubles even after his death. No one understands that Billy was making a search for truth which is tough to come by and harder to comprehend.The story of Billy has been divided into two parts very appropriately as he has lived two lives in one birth- the first in an unambitious, uncivilized but satisfied and natural world. In the second part, which is about a primitive world, he experiences real mental and spiritual harmony, comfort and pleasure when he comes into closer contact with primitive life. He is a refugee from civilization who has undergone the final transformation under a Saal tree just as the Buddha had achieved Nirvana under the Bodhi tree. Like Siddartha, he realizes that one can attain salvation and happiness not by rigid penance and self-mortification, but by participating in life vigorously and whole heartedly, yet without attachment.In the entire, *The Strange case of Billy Biswas* astonishes the readers with its originality and receptivity. It has rightly been regarded as a convincing novel about a strange quest drawing upon myth and folklore. This novel is likely to remain extraordinarily responsive to the successive generations of its active Indian readers as it delineates

the existential quest for values and individuality in a mad, bad, absurd world.Arun Joshi deals with various fictional themes such as alienation and involvement, east-west encounter and compromise, existentialism and individuality, and quest and complacence. In his novels, he delineates the spiritual agony of his lonely questers. His second novel looks to be a continuation of the first, in which his protagonist is lonely and misfit in that world where he has to live and face the meaninglessness of life. He is restlessly searching for his roots and trying to know the purpose of his existence on this planet.

In the novel, the protagonist, Billy Biswas, son of a judge, educated in Britain and America, and a lecturer at Delhi University, retreats from the so-called civilized life to the ancient world of his tribal mistress, Bilasia. Billy Biswas is a character with greater depth than that of the general run of western existential heroes. His alienation from the civilized world leads him to explore the dark mossy labyrinths of his soul that long for individuality. Finally, Joshi suggests that real peace, pleasure and perfection can be felt in the lap of nature and a primitive atmosphere and not in a sophisticated urban area. Arun Joshi's novel suggests that one can realize the essence of life by liberating yourself from the clutches of mercenary civilization and by hearing the calls of the inner being. For Joshi, this is the only technique out of saving man from the emptiness of the contemporary squalid, meaningless world. Joshi's hero is a lonely individual, faced with predicaments of existentialist order and proving a misfit in the world in which he has to live. He is successful in representing the quest of individuals for their individuality in the uproar of the world. His protagonists are solitary questers in search of their uniqueness, consequently leading to the recognition that only love, sympathy and dedication to one's own identity can balance the sense of worthlessness and bleakness in our life. Arun Joshi has an optimistic approach to life which sets him apart from the rest of the crowd and helps to find out the remedies for various things in our lives.

****

References-

1. D.R Sharma, "Arun Joshi and his reflective Insiders," *Literature: East and West* vol. 14 (Jan.-Dec. 1977).
2. Arun Joshi, *The Strange Case of Billy Biswas (*Bombay: Asia Publishing House, 1971), pp. 4-5.
3. Jasbir Jain, "Foreigners and Strangers: Arun Joshi's Heroes" *The Journal of Indian Writing in English* (January 1977), pp. 54.

Gender Bigotry in Mahesh Dattani's 'Tara'

Dr.V.Suganthi
Assistant Professor, PG & Research Department of English,Thiruvalluvar Government Arts College, Rasipuram

R. Mythili
Senior Lecturer, DIET Perundurai, Erode District

Abstract -
Mahesh Dattani's "Tara" (1998) picturizes the deep-rooted gender bigotry amongst the members of Indian families. "Tara" exposes the true picture of Indian social structure which compels the family members to encounter the consequences of societal pressure. The play brings to light the naked truths and conspiracy woven around the lives of the conjoined twins in favour of Chandan, the male protagonist, at the cost of the life of Tara the female protagonist. The decision of the twins' affluent maternal grandfather to provide the male child with the third leg which actually belongs to the female child, conflicts among the parents on parenting, gender bigotry and stigmatization of the society collectively make an impact on the life of Tara. Tara, an intellectual, passionate girl with noble aspirations who desires to lead a meaningful life miserably perishes as a victim of betrayal. The play demands the audience to embrace the doctrine of gender equality for creating a progressive society through its explicit revelation of the consequences of gender bigotry and patriarchy.

Key words: gender bigotry, social structure, societal pressure, Patriarchal socio- cultural belief system, doctrine, gender equality.

Introduction Mahesh Dattani's stage plays unveil the harsh, hidden and unspoken realities of the Indian society. His "Tara" (1998) picturizes the deep-rooted gender bigotry among the members of Indian families. This is a play about conjoined Siamese twins who are separated and of whom the boy is favoured with the third leg that actually belongs to the girl baby. This injustice is done with the help of a doctor who is bribed by their maternal grandfather. The twins born with physical deformities are constantly tormented by the marginalization of the society. But the gender bigotry of the society makes Tara agonize more than Chandan at every phase of her life. Through the play, the playwright shows the impact of the whole spectrum of society's imposed ideology ranging from favouritism, value deterioration, stigmatization, marginalization to patriarchal oppression on the life of a physically challenged female protagonist. But even amidst these unfavourable and chaotic milieus the protagonist Tara's soul aims for a meaningful, service-oriented and selfless life. Strong patriarchal system and deep-rooted gender bias prevailing in the society keep Tara suffer throughout her life.

Favouritism and Denial of Rights- Bharati and her wealthy and politically powerful father decide to give the third leg to Chandan with the help of Dr. Thakkar who deliberately commits himself to this unethical act for the sake of money. As Patel explains, "A scan

showed that a major part of the blood supply to the third leg was provided by the girl" (CP378). Even though Patel knows the decision of providing Chandan with the third leg, he blames Bhrathi that she never allows his interference in matters of Tara. He did not revolt against the decision at the time of separation of the twins and he did not raise his voice in favour of justice for Tara. Even after that he clearly expresses his favouritism for a male child in many ways. Out of his patriarchal attitude, he decides to send Chandan abroad for higher education and ignores Tara.

Family in the Indian society is dominated by the male and the power that he enjoys over his family members is undeniable and unquestionable. The Value theory of Schwartz states, "Tradition and Conformity values are close motivationally because they share the goal of subordinating the self in favour of socially imposed expectations. Tradition entails subordination to more abstract objects – religious and cultural customs and ideas" (Schwartz 7-15). As a girl, Tara is denied the right of inheriting the grandfather's money whereas Chandan inherits the same. The conversation about it ensues between Patel and Chandan in Tara's presence.Patel.He (His grandfather) left you a lot of money.

Chandan. And Tara?
Patel. Nothing
Chandan. Why?
Patel. It was his money. He could do what he wanted with it. (CP 360)

It is incorrect to think that Mr. Patel is innocent and pure. He also belongs to the old school of thought. He is more concerned about the future of Chandan than that of Tara. Tara is more intelligent, sharp and witty than Chandan, and she would have performed well if she had not been deprived of the opportunities in life. The play brings to light the gender bigotry and its reflection on the lives of the females. the Khobragade has rightly pointed out, "Mahesh Dattani revealed the issue of gender discrimination in this play. The social norms, economic values and cultural elements have been answerable for the inequality against the girl child" (Khobragade 3). Mahesh Dattani himself articulates about the play to Erin B. Mee in an interview, … "It's a play about the male denying the female, and how the culture construct of gender favours the male" (158-159).

Imposed gender roles-

When Patel finds his son Chandan helping his mother in knitting, he is annoyed and disgusted. Though his overt behaviour and speech seems to be generous and impartial, his collective consciousness never allows him to think beyond the imposed ideology. The roles assigned for masculine and feminine gender in the society have been deeply registered in his mind and his thoughts are limited and controlled by these predefined societal codes. The following dialogue between Mr. Patel and Chandan clearly reveals the gender bigotry of Patel.

Male supremacy- The play shows how a woman is subjugated in her own family by the male counterpart to the extent of losing her mental sanity through the characterization of Bharathi and Patel. The playwright portrays Patel as a person with double standards. He always keeps his wife under his control. As far children are concerned, he creates an impression that he treats both his off springs equally. But in reality, he himself possesses the patriarchal attitude. His constant accusation of his wife Bharathi can be perceived as an attempt to conceal his own guilt. Bharathi's guilt consciousness makes her compensate the loss of Tara by being over protective of Tara and extremely affectionate towards her. "Bharati: Tara! My beautiful baby! You are my most beautiful baby! I love you very much!/ Tara: (enjoying this affection) Yes, mummy. I know that" (CP 355). Bharati's past guilt makes her restless. As a compensation for the injustice done to Tara, Bharathi wishes to shower abundant love on Tara. This is the reason why she decides to donate her kidney for Tara even though an external donor is available. She wants to give a part of herself and tries to get satisfaction out of this. She loves Tara incomparably. But Patel was not ready to give consent to her idea of giving her kidney to Tara. Bharati. (pleadingly) Why won't you let me do it? Patel. (controlling) Need I tell you? Because I do not want you to have the satisfaction of doing it.Bharati. I will do it!Patel. You will have to obey me. It's my turn now.Bharati. I want to give her a part of me! (CP344)As a husband, he should have guided his wife in the right path. On the contrary, he exploits the situation only to torture his wife psychologically by pricking her conscience with his loveless words and he constantly tries to immerse his wife in the feeling of guilt. He is keen only on the future of Chandan, not that of Tara. He does not extend his moral support either to his wife or daughter. Despite all the internal and external conflicts, Bharati keeps striving to construct her maternal love until she undergoes mental breakdown due to her constant feeling of guilt which is hardly experienced by Patel. Her conversation with Chandan highlights the trauma: Bharati. I wish your father would pay more attention to Tara. Chandan. He does. He doesn't like to show his affection.Bharati. Don't tell me about your father. He is more worried about your career than hers. (CP 348) Patel, instead of being an affectionate partner to help his wife in gaining strength to come out of her guilt, always tries to knock her down. Bharathi's guilty consciousness along with her husband's constant pricks ends her in a mental asylum. Mahesh Dattani makes the readers and audience realize how the life partners in a family confront each other when interdependency and warmth of love are desperately required. Periyar, the great Tamil social reformer opined that the philosophy of marriage is an atrocity against women, "which leads to the enslavement of women by men" (45).

A Ray of hope -The course of the play makes the readers and audience comprehend that though there is no sign of realization or purgation seen in the behaviour of Patel who belongs to the old school of thought, a ray of hope is seen in the behaviour of Chandan who is able to sense the injustice done to Tara. Chandan the male protagonist's mental agony clearly shows his genuine feelings towards the demise of Tara and his consciousness of patriarchal attitude and gender bigotry of the family members. He empathizes for Tara who becomes a victim of gender bigotry.

Life after the physical separation of the twins is challenging for Tara than Chandhan and the impact of separation is different for her. As a woman, Tara undergoes more psychological and physical problems than Chandan. While Tara is enduring the distress inflicted upon her, Chandan's condition persistently gets better. Having known the past, Chandan suffers for the wrong deeds of his parents. He isolates himself from the social environment. Chandan is being pressurized by the thought of the past and changes his name to Dan, as he thought that changing the name is changing his identity. The thought of the cruel act of his grandfather and his mother persistently haunts him. He becomes an alcoholic and does not wish to come home and leads a secluded life in London. He writes his autobiography in a play and begs forgiveness from his sister, "Forgive me, Tara. Forgive me for making it my tragedy" (CP 380). Commenting on the play, Mahesh Dattani remarked, "I see Tara as a play about the male and the female self. The male self being preferred (if one is to subscribe to conventional categories of masculine traits and feminine traits) in all cultures. The play is about the separation of self and the resultant angst" (CP 29). The physical deformity of the siblings is not treated equally by the society. Tara suffers socially more than Chandan. However, as far as discrimination by the society is concerned, it becomes insignificant, as Tara is courageous enough to encounter them. Tara effortlessly ignores the indifference of the society. She tackles stares, giggles, and comments from her peers with her intellectuality. She is mature enough to realize her own strengths and at the same time she is able to appraise others too.

Feminine response- The playwright makes the readers and audience realize how the inner self of female manifests itself even amidst the unfavourable conditions through the portrayal of Tara. Her family members, under the influence of cultural belief system and the norms of the society do injustice to Tara. But Tara who is an intellectual, passionate girl with high aspirations still possesses the courage to express her zeal for life and her noble desires. R.K. Mishra writes, "The play *Tara* inspires Indian women to rebel against sex discrimination and shatter the old-age-fabric of women subordination and marginalization. The play has created sensation in the realm of Indian drama in English on account of its revolutionary tempo and objective" (111). Though the forces of male domination, social oppression, and gender discrimination put Tara constantly under pressure and deny her the right for a healthy unbiased life, Tara is able to rise above all these impediments and proves herself capable of thinking originally and is courageous enough to question the received social values. The following conversation between Tara and Chandan evinces her notion on gender equality. "Tara: It's all the same. You. Me. There's no difference./Chandan. No difference between you and me?/ Tara. No! Why should there be?" (CP361). She observes the gender bigotry of his father who insists Chandan to attend the office. Tara says, "The men in the house were deciding on whether they were going to go hunting while the women looked after the cave" (CP 328). Her statement indirectly indicates that there is no attitudinal shift among the menfolk on gender roles with human evolution. Though she is aware of her limitations as a physically challenged girl, she wishes to lead a life which illuminates the lives of many. She does not identify herself with the average peers of her age. She seeks to have a higher purpose for her existence. She says, "… I … will spend the rest of my life feeding and clothing those. … starving naked millions everywhere. Maybe I can start an institution that will … do all that. Or I could join Mother Teresa and sacrifice myself to a great cause. That may give…purpose to my …existence" (CP 370).

Conclusion-

Mahesh Dattani, in this play, severely criticizes and exposes gender bigotry that is extensively prevailing in the Indian society. Individuals try to project themselves as people with liberal thoughts. In contrast with what they showcase to the world, they are too conservative in their attitude towards females. Mahesh Dattani's Tara with all her innate qualities who should have shone like a star perishes as a dejected soul. The play demands the audience to embrace the doctrine of gender equality for creating a progressive society through its explicit revelation of the consequences of gender bigotry and patriarchy.

****

Works Cited-

1.Dattani, Mahesh. *Collected Plays*. Penguin Books, 2000.
2.Dattani, Mahesh, "Invisible Issues: An Interview with Mahesh Dattani by Erin B. Mee", *Mahesh Dattani's Plays Critical Perspectives*, ed. Angelie Multani, Pen Craft International, 2007. Pp.158-59
3.Khobragade, Grishma Manikrao. "Gender Discrimination and Social Consciousness in the Play of Mahesh Dattani: Tara". *Golden Research Thoughts Journal*. 1.4. (2011): Pp. 1-3.
4.Mishra, R.K. "A Feminist Thrust in Mahesh Dattani's Tara". *The Atlantic Critical Review* 11.3 (2012) 107-111.
5.Ramasami, Periyar E.V. *Women Enslaved*. Translated by G. Aloysius. Critical Quest. 2009
6.Schwartz, B. The creation and destruction of value. American Psychologist, 45(1) (1990): 7-15.

Ownership of Land in Ancient Assam As Reflected in Epigraphic Sources

Aoyana Buragohain
M.A in History
Dibrugarh University
Dibrugarh, Assam

Abstract:-Epigraphic or Inscription is one of the reliable sources to study the history of ancient Assam. In ancient Assam, three main dynasties ruled i.e., Varmana, Salastambha and Pala. The rulers of these dynasties issued various inscriptions. They issued some inscriptions after the donation of lands to the Brahmanas. From such type of inscription i.e., Nidhanpur copper plate inscription, Guwahati copper plate inscription of Indrapala, we find some evidences of the land ownership of ancient Assam. The inscription mainly proved that the real owner of the land was the king himself so he could donate the land. In this paper, there is an attempt to discuss the ownership of land as reflected in the epigraphic sources. The discussion is mainly done on the study of Nidhanpur copper plate inscription and Guwahati copper plate inscription of Indrapala.

Keywords: Land Grant, Ownership, Ancient Assam, Inscription, Brahmanas

Introduction: In Ancient time Assam is known as Pragjyotisha and later as Kamrupa. In Ancient time Pragjyotisha or Kamrupa ruled by three main dynasties i.e., Varmana, Salastambha and Pala. The rulers of Pragjyotisha or Kamrupa issued various epigraph or inscriptions which are one of the valuable archeological sources to know about the Ancient Assam. These inscriptions provided various data or evidences of the various aspects of the Ancient Assam such as political, economic, social and cultural life of the Ancient time. Inscriptions throw some lights on the land system of that time such as ownership of land, revenue and other aspects related to Land. Though the epigraphic sources not tell more about the ownership of land directly but through the study of these sources we can able to find some facts related to the ownership of land in Ancient time. There are many inscriptions such as Nidhanpur copper plate inscription and Guwahati copper plate inscription of Indrapala, Borgaon inscription through some lights on the land ownership. The king of Kamrupa donated lands to Brahmanas sometime communally and sometimes individually. The donation made by the king proved that the real owner of the land was the king himself. However after the donation the donee became the owner of that particular donated land.

Objectives:-The main objectives of this paper are as given below-i) To discuss the Land ownership of Ancient Assam.

ii) To discuss about ownership of Land as reflected in the inscription.

Methodology:-In the process of preparing this paper descriptive, analytical and historical methods are being used. For sources, mainly depends on secondary sources which include various books.

Discussion: 4.1 Ownership of Lands in Ancient Assam:-The archeological sources are very significant to reconstruct the history of Ancient Assam. There are many inscriptions found in different parts of Assam belongs to Ancient time. These inscriptions provided reliable evidences and data to write history about the various aspects of life including economic life of the people. The epigraphic sources don't provide much information about the land ownership of Assam, but throw some reflect on it. From the inscription we come to know the land grants to the Brahmanas in various parts of Assam. The inscription tells us that the real owner of land in Ancient Assam was the king or ruler. The granting of lands to the Brahmanas by the kings established that the owner of the lands was the king himself so he could able to donate. Inscription like Nidhanpur Copper Plate inscription provided the evidence of the donation of lands. The land which was given to Brahmanas was known as 'Agrahara'. When the lands donated by the kings or royal authority, they (the Brahmanas) became owner of the land. In the inscription some words were written which denotes that the Brahmanas became the owner of the donated lands till the Sun and Moon exist, means they achieved permanent ownership. The lands were mainly donated in riverin areas which were unsettled and waste lands. Grazing lands were also donated along with household, agricultural lands. The donation of the different lands to the Brahmanas by the kings proved that the owner of the various types of land was the king himself. The Brahmans were only owner of the particular lands donated by the kings. In the case of Assam there was no evidence that donated land was bought back from the Brahmanas.The forest lands, mines etc were belong to the State. So, Grazing lands, paddy field were most of the cases given individually. For the example, the Borgaon and Tezpur grants shows that donees individually receiving land with houses, paddy field, pasture ground etc. and everything that was situated in the donated land. On the other hands sometimes these types of lands were given communally. For example-Nidhanpur copper plate inscription shows while land was given individually pasture land, waste lands etc. were to be enjoyed jointly.In the following there is a

discussion about the ownership of land as reflected in the inscription i.e., Nidhanpur copper plate inscription and Guwahati copper plate inscription of Indrapala.

4.2 The ownership of land as reflected in the Nidhanpur copper plate inscription: -the month of December of the year 1912 AD, one peasant residing in a village named Nidhanpur, which fall in the Panchakhanda Pargana of Sylhet district, discovered seven copper plates at approximate depth of two feet under the ground while digging earth to level an elevated piece of land lying nearly by his house. The Nidhanpur copper plate inscription was originally issued by Bhutivarman and later reissued by Bhaskaravarman. The inscription describes the renewal of a revenue free land grant to the Brahmanas by Bhaskaravarman, which was originally made by his grandfather Bhutivarman. The donated land was situated in the Mayurasalama was in the Chandrapuri Vishaya of Panchakanda Pargana of Srihatta Mandala. From the inscription we know that land was donated to two hundred and five Brahmanas for their settlement in Mayurasalama in the Chandrapuri Vishaya. The amount of the land is not known from the inscription. However, the inscription denotes that the loss of the original copper plate made the king to take over the lands and to enlist them into the list of the revenue paying lands. That means the king could resume that ownership of the land when circumstances permit. The inscription mentioned that the donee could enjoy the lands 'as long as the Sun and Moon exit', which means that the donee became the real owner. The inscription also describes that no one even the king could not confiscate the gifted lands; if anybody tries he would not only go to hell but also see the destruction of his children.So, from the Nidhanpur copper plate inscription we find the evidence of lands grant to the Brahmanas in ancient Assam. The donation of land made by the king signifies that he was the real owner of land. But in the donated land the donee received ownership as the inscription mention that donee could enjoy the land till the Sun and Moon exists.

4.3 Guwahati copper plate inscription of Indrapala:-The Guwahati copper plate inscription of Indrapala which was discover in Patidarang Mauza near Guwahati through some light on the ownership of land in ancient Assam. This grant has total fifty three lines. This inscription was one of the evidence of the lands grant to an individual. It describes that ruler of the Pala dynasty Indrapala eight years of his reign made this grant. The inscription describe that a Brahmanas namely Despal was donated a plots of land, which was situated in the Kasipatak Vabisha village of Hypyma Vishaya.

Conclusion:-In the conclusion we can say that inscription is one of the most reliable archeological sources which provide evidence of the economic life of the people of ancient Assam. Though the inscription or various grants issued by the rulers of ancient Assam do not tell directly about the land ownership but from these inscriptions we can able to find out the land ownership pattern. The inscription like Nidhanpur copper plate inscription, Guwahati copper plate inscription of Indrapala, Borgaon grants etc. through some lights on land ownership. From the discussion we find that king or ruler of the State was the real owner of the land, so he could able to donate the land however after the donation the donee became the owner. Lands were sometimes grants communally and sometimes individually. There is a big possibility to find more data about the land ownership pattern of ancient Assam if in future further study on inscriptions done.

****

Reference:

1. Barpujari, H.K. The Comprehensive History of Assam, volume-I, Publication Board Assam, 1992
2. Baruah, S.L. A Comprehensive History of Assam, Mushiram Manoharlal Publishers Pvt. Lid., New Delhi, 2003.
3. Bhattacharyya, Padmanath, Kamrupasasanavali: Inscription of Kamrupa with a history of its kings, C.500-1200 AD, 1932
4. Sharma, Mukunda Madhava, Inscription of Ancient Assam, Department of Publication Gauhati University, Assam, 1978

Multiculturalism in Khushwant Singh's Historical Novels: Insights about poor suffered minorities in Mano Majra village of unpartitioned India

P. Kavitha
Ph.D. Research Scholar , Assistant Professor Erumayampatti Department of English E.R.K. Arts and Science College .Mo. *9047035013*

Dr. B.Visalakshi
Assistant Professor Post Graduate & Research Department of English E.R.K. Arts and Science College

Abstract
Multiculturalism has acquired a broad multiplicity and scope in the areas of politics, sociology and humanity. It includes cultural diversity and respects the views of various identities at individual cultural, ethnic, religious and national levels. This paper aims at expressing how multiculturalism supports in maintaining social harmony through love, passion, tolerance, recognition and relationship of various cultures. Khushwant was a famous Indian English historian, lawyer, journalist and columnist. Khushwant Singh's *Train to Pakistan, Delhi: A Novel* and *I Shall not Here the Nightingale* were taken for this study. All three novels explain the history, culture and tradition of the Hindus, Muslims and Sikhs. Singh not only interpreted history but also explains the life-like characters. The individual experience, feelings, and emotions are revealed by Khushwant Singh.

Keywords: Multiculturalism, Suffering of poor, Hijada, Illicit, Target practice, Diversity.

Introduction-Multiculturalism is defined as the coexistence of diverse cultures which include racial, religious, or cultural groups, and is manifested in customary behaviours, cultural assumptions, and values, patterns of thinking, and communicative styles. Multiculturalism differs from diversity. The former recognises various cultures in humanity. The latter defines variety of elements in in multiple races, ethnicity, and cultures. India is a multi-ethnic, multicultural, and multi religious society. The present paper seeks to shed light on Khushwant Singh's usage of multiculturalism in his historical novels: *Train to Pakistan, Delhi,* and *I shall Not Hear the Nightingale*. Khushwant Singh himself described as a writer of history and fiction. V. A. Sahanae rightly says, "his critical as well as creative writing falls into a pattern which emerges from and is imperceptibly linked with, the primary characteristics of his creative mind"(Sahanae45). Khushwant Singh stated that, "History provided me with skeleton and I covered it with flesh and injected blood and a lot of seminal fluid into it (Times of India). As a literary artist he has carved the historical novels *Train to Pakistan, Delhi,* and *I Shall not Hear the Nightingale* like historian. *Train to Pakistan* revolves around Mano Majra, a few days prior to the partition of India and Pakistan. It recounts his real life experience which he had at Kauauli in Himalayas. When Singh was travelling to Delhi over the village road, he heard that a jeep full of armed Sikhs massacred a village of Muslims. Singh has created a fictional village called Mano Majra which is situated on the Indo Pakistan border is dominated by Sikhs. The Gurudwara was a Sikh temple which was worshipped by Sikhs of the village. The deity was a common God which was worshipped by all the community people include Hindus, Sikhs, Muslims, and Pseudo Christians.The description of the common God shows the art form of Khushwant Singh's multiculturalist views. The story might be a fictional, but it was not far from reality. The partition created communal frenzy among the village people. They have created two communal lines: Muslim Pakistan and Hindu India. There were no precautionary steps taken to ensure safe journey for the fleeing people. People were killed in the streets. There was no production of life. Khushwant Singh has given a vivid picture of the cruelty of the community people. The passers- by stabbed the innocent Sikhs going on bicycles or on foot. The Muslim mobs started killing Hindus. The dead bodies of Hindus and Sikhs from Pakistan were sent through trains to India. It provoked The Hindus and Sikhs to send dead bodies of the Muslims with the words Gift to Pakistan. The partition created the communal hatred and atrocities in the borders of India and Pakistan. Singh portrayed the true picture of social, economic, political, cultural conditions prevailing at that time. The fire started in Calcutta and it burst out in Bengal where Muslims massacred Hindus. The fire spread to Bihar where Hindus massacred Muslim, but Mano Majra was free from this communal riot. They have a three foot slab of sandstone which Stands upright under a keekar tree behind a pond. It was a local deity which was worshipped by all the villagers: Hindus, Muslims, Sikhs, and Pseudo Christians. The deity became uniting force in the village. Singh presented a picture of Indian society through his characters Juggat Singh, Meet Singh, and Lambadar. Mano Majra was the place for Indian culture. Singh supported Christians when Iqbal, the social reformer from Delhi, criticised them. He said that Christians do not lie as the Indian do. Asa fine historian Khushwant Singh has a wild knowledge in understanding the social problems. The tragedy of partition was painfully recorded in his novel *Train to Pakistan*. The multi religious society was portrayed through Hindu moneylender, Muslim Imam Bakh, Sikh dacoit, Juggat Singh, and Hukum Chand, the Hindu Magistrate. ManoMajrahad only three brick buildings one belong to Lala Ram Lal, another one was Sikh Temple and third building was the Mosque. The peepal tree was the rich common Heritage shared by all the community people.

Objectives-To explain the problems faced by backward class and poor affected people by participation of united British India.To determine the communal problems risen by participation of united India's Mano Majrahad village.

Background of the study- The life of Mano Majra was regulated by the arrival of trains. They lived a happy life till the day of partition. They were the symbol for communal harmony: sense of locality, sense of history, identity, and sense of belongingness. These are all the aspects of multiculturalism. The novel reflects the Punjabi identity, culture, language, and Customs of Punjabi people through the characters of Juggat Singh.

He was a Sikh and he became a motivational force to all community by his sacrifice. The Sikh gurus respect Muslim mullahs and vice versa, both the communities were ready to secure their life for each other. Khushwant Singh comments that, "the fact is both sides killed: both shoot and stabbed and speared and clubbed: both tortured both raped" (3). The novelist gives the sense of locality and the sense of history through his characters. The Punjabi peasants culture was told through Lambardar, Imam Bakh, Juggat Singh, Malli, and his gangs. Meet Singh denotes for Punjabi code of religious ethics.

Anup Benival rightly observes that, "the author in a nutshell seems to advocate the existence of a composite Punjabi identity which is more powerful than and subsumes within it the Sikhs and Muslim dichotomy. He however does not present it as a romantic idyll, sans problems and conflicts" (33). Khushwant Singh tried to expresses the true Indian society. He presented not only the day to day today life problems of the contemporary India, but also his concern for them. As a novelist she highlights the problems from the right angle. JuggatSingh became an immortal character through his sacrifice for his beloved Muslim girl Nooran and fellow Muslims. He pointed out the victory of humanity and love through Juggat. Here Singh left a message that peace and love survive even in violence. It shows a mirror image of Indian society: Hindus, Christians, Sikhs, and Muslims.

Khushwant Singh used historical events and characters in his next historical novel Delhi. The historical personages like Timurid, Jahangir, Shah Jahan, Aurangzeb, Nadir Shah, and Alice Aldwell reflect the history and culture through their monologues. Meer Taqi Meer, the poet and Bahadur Shah Jafar were told their history in an elaborated way. There was an interesting episode about Bhagmati, an energetic hermaphrodite. *Delhi: A Novel* reconstructs the history of the city Delhi from 1265 to 1984. The novel *Delhi* is a product of the eyewitness of many people. The vast, erotic, magnum opus creates interest among readers through its writing style. The history of Ghiassudin Balban from the fourteenth-century to assassination of Indira Gandhi were analysed by Singh through his historical perspectives. He has taken twenty five years to complete this novel. He dedicated this novel to his son Rahul Singh. The autobiographical work of Singh explored the unconventional relationship between the narrator and Hijada. Singh picked Bhagmati from a deserted road on a hot summer noon. He was very much influenced by Bhagmati and later in the end of the novel she saved him from the mad mobs of 1984 anti Sikh riots. The novel is filled with Muslim customs and rituals. It celebrates the unique power of culture and civilization. The trio Mussaddi Lal, Nihal Singh, and Jaita Rangreta explain the social political situations prevailing over their periods. The story of poets, sultans, soldiers, memsahibs ,and eunuch were narrated by Singh. The novelist tries to give the historical situations with historical personages. The history of Aurangzeb, power and betrayal were posted by Singh as a realistic one as: *I came alone and I go as a stranger. I don't know who I am, not what I have been doing. The instant which passed in power left only sorrow behind it. Life, so valuable, has been squandered in vain…I fear for my salvation, I fear my punishment. I believe in god's bounty, but I am afraid because of what I have done.(55)*

The Mighty ruler Aurangzeb handed over Delhi into the hands of weak rulers. Delhi suffered by the invasion of Nadir Shah. The episodes of the Alice Aldwell, Bahadur Shah Zafar, and Nihal Singh proved the power of Indian against Europeans. In 1990 Delhi was rebuilt by Khushwant Singh's father Shobha Singh, the contractor. The First World War, Partition, and Gandhiji's shoot were described by the author. The assassination of Indira Gandhi was explained by the author in realistic way. I Shall not Hear the Nightingale gives the picture of Sikh tradition and culture. The second novel of Khushwant Singh reflects love, pride, passion, religion, and culture of Sikh family during pre-independence period. The opening scene of the novel is highly significant with its symbolic meaning. Sher Singh, the son of Buta Singh and Madan, the son of Wazir Chand joined in terrorist group and wanted to bring freedom to India through their violent activities. They participated in target practicing in a village in order to baptize their weapons. They wanted to shoot Sarus crane represents the motif of love, mating, and sacrifice. It also symbolises the present era of violence and blood sheds. Khushwant Singh rightly says that:

The anguished cry of the flying crane was almost human. If he did not silence it, it would continue to haunt him for a long time. If both of the pair was dead, perhaps they would be together wherever cranes went after death. Sher Singh took out the magazine of his rifle and pressed six bullets in it. He followed the cranes flight with his barrel and fired when the bird was almost above him.(6)

Conclusion-By presenting this Sarus crane killing, he indirectly pointed out neither Sher Singh nor Madan understood the feeling for women. His wife Champak had a sexual affair with Madan. Madan had sexual affairs with many women. Champak also attracted by Madan. Village head manJimma Singh stopped Sher Singh and asked him to show his licence for his rifles, but Sher Singh introduced himself as a son of senior magistrate Sardar Buta Singh. By hearing the name Buta Singh, the head man withdrew his demand and sent them out. As a modern novelist Khushwant Singh influenced by western civilization, he frankly told about unusual sexual culture in this novel through Champak, the sexual hungry woman. She was aunique and unusual lady who always indulges herself in sexual activities. Her name represents a beautiful flower. She openly exhibits her beauty to others even on Bai Sakhi day, the new year day her mother-in-law Sabhraiwent out for religious activities. Champak highly sensed and involved in sexual activities. She took out her entire cloth and stood in front of the mirror and called servant Munoo to massage her legs. Sher Singh paid little attention to everything so he ignored the complaints from Champak about Munno's attitude. Champak is not satisfied with her sexual relationship with Sher Singh. In this piece of work Champak manages to enjoy sex by being involved in the company with Madan in Shimla. She was franker and more open with him than her husband who is not interested in sexual activities. In this context Khushwant Singh portrays another

character Beena, the daughter of Buta Singh and Sabhrai. Madan wanted to seduce Beena, but Bina somehow escaped from Madan 's web of love. Khushwant Singh believes that sexual matters should be carefully practiced by husband and wife otherwise it leads to illicit relationship. This social relationship was beautifully depicted by Khushwant Singh. unlike DH Lawrence, Khushwant Singh excepts that suppression of love always leads to negative consequences. The moral character praised by Singh was Sabharai. She was a religious faithful lady, wife of Buta Singh, mother of Sher Singh and Beena. she lived for her husband and children. She was ready to sacrifice her life for her son Sher Singh. While Sher Singh was in the custody of Mr. Taylor, Sabharai continuously preaches the prayer and stayed in Golden Temple and asked Gurus guidance and blessing for her son. If he revealed the name of his friends who were with him he would be doing a greater sin and he was no longer to be regarded as a Sikh. Mr and Mrs Taylor were very much concern for Sabhrai and they plannned to release Sher Singh as a Christmas gift to Sabharai. There was no evidence against Sher Singh. Sabharai was in her sick bed on 9th day, fever subsides and she recited prayers. she expected her son's arrival. Sabharai's health became very worst and died on Sher Singh's lap. The novel ends with the famous quotes, All's well that ends well.

Findings-Train to Pakistan gives the picture of various community people. Delhi:A Novel depicts the Muslim culture and Delhi's history. History of Delhi also portrayed in a realistic way. I Shall Not Hear the Nightingale portrays the picture of Punjabi Sikh family and their living style. Khushwant Singh gave equal important to all community and culture.

****

References

1. Asnani, Shyam. " The Art of Khushwant Singh: A Study of Train to Pakistan." *The Rajasthan Journal of English Studies*, vol. 2, no. 1, Jan. 1976, pp.9-15.
2. Barry, Peter. Beginning Theory:An Introduction to Literary and Cultural Theory, 4th Edi. Manchester University Press. 1995.
3. Chandran, Ramjee. " Trivialising the Sardar. " Rev. of A Man Called Khushwant Singh. Indian Review of Books, 16 May – 15 Jun. 1996, pp. 33-34.
4. Dhawan,R.K. *50 Years of Indian Writing: Golden Jubilee Volume*. Indian Association for English Studies, 1999.
5. Kumar, Gajendra, and Uday Shanker Ojha. *Indian English Fiction: Readings and Reflections*Sarup and sons, 2003.
6. Kulshreshtha, Chirantan. *Considerations*. Allied Publishers Pvt Ltd., 1977.
7. Three Contemporary Novelists. Classical Publishing Company,1985.
8. Commonwealth Fiction. Classical Publishing Company,1988.

Tagore's Views on Indian Nationalism as a Derivative Discourse

Projnya Paromita Kaushik

Research Scholar
Department of English
Cotton College State University
Phone Number- 8638042632

Abstract:-This paper deals with the concept of 'Nationalism' and seeks to understand the nature of this concept and its materialization in colonial and postcolonial societies. While studying this history, the concept of 'derivative discourse' developed especially in the third world countries. The paper especially focuses on Rabindranath Tagore's essay "Nationalism in India" to comprehend the very basic conditions which made 'nationalism' successful in the West and not in India. Tagore brings in an analogy between the situations of countries like America and India. According to Tagore and many other significant thinkers, the transference of political ideas like nationalism, from a European context to that of a colonial society, elevates certain complexities.

Keywords: Nationalism, European context, India, Derivative Discourse.

Rabindranath Tagore, also known as Gurudev, Kabiguru and Bishwakabi is a prolific writer and a great intellectual who revived and refurnished Bengali literature, music and art, thereby reforming world literature. Recipient of the Noble Prize for Literature in 1913 for his most musical work *Gitanjali,* he is the first Indian to receive this great glory. Amidst his large collection of poetry, articles, paintings, novels etc, his book entitled *Nationalism* is of utmost importance. This book is actually a collection of lectures which was later compiled into book form and published in the year 1917. The book has three essays titled as "Nationalism in West", Nationalism in India", "Nationalism in Japan" and ends with a poem called "The Sunset of the Century".

The term 'Nationalism' has been derived from the French word 'Nationalisme' meaning 'devotion or strong attachment to one's own country". Rabindranath Tagore delivers a unique outlook in our understanding of the idea of nationalism. He believed that the innate individuality and creative force of man stands threatened by the cult of nation which according to him may or may not be a noble enterprise for human development. Therefore, he stated:"Nationalism is a training of the whole people for a narrow ideal and when it gets hold of their minds, it is sure to lead them to moral degeneracy and intellectual blindness". (Tagore 77)Tagore was thus, never into mainstream politics as Gandhi, but he was nonetheless actively involved into politics through his writings. No wonder, he remains one of the most influential thinkers and the most versatile literary figure of Modern India. Tagore's participation in nationalism can thus be said to have two distinct phases. The first phase was dominated by a strong nationalist feeling that is the phase of Swadeshi movement and the second phase can be described as the post. Swadeshi phase which grew more critical with time. The history of nationalism has been put to critical reading of

both western and non-western scholars. While studying this history, the concept of 'derivative discourse' developed especially in the third world countries. In the works like, Partha Chaterjee's *Nationalist Thought and the Colonial World: A Derivative Discourse* published in the year 1993 and Leela Gandhi's *Postcolonial Theory: A Critical Introduction* published in the year 1998, a critical interpretation the theory of nationalism is included. They emphasises on the idea that the concept of 'nationalism' is modern in nature, born out of the cultural and social alterations encouraged by industrialization in western countries. The very basic conditions which made nationalism successful in the west however, could not make nationalism successful in the third world countries because these colonial countries are lacking in many aspects. Hence, the concept of derivative discourse is not fruitful at all, which even Tagore in his book *Nationalism* emphasises as well.

According to Tagore, the actual problem associated with our country India, is not political in nature. Instead, it is social. In his opinion Indians are merely trying to imitate the West in this regard which is the root of all problems. The problem which India is persistently facing is the problem of race. Tagore stated that we, Indians, try to imitate the West by being political, and by doing so we are obtaining nothing but cutting a "poor figure". This is mainly because the problems we are facing are completely different from the problems faced by the people of the West. Our real problem in India is not political. It is social.... But from the earliest beginnings of history India has had her own problems constantly before her- it is the race problem. Each nation must be conscious of its mission, and we India must realise that we cut a poor figure when we try to be political....(Tagore 79)

Tagore also emphasises on the fact that American's should be ashamed of questioning him with a "superior air" regarding "What is happening to the caste distinctions in India?" This is mainly because America, the great land of freedom and democracy, is also a very casteist country. The history of America is replete with examples of slavery and its ill-effects. Therefore, Tagore interrogated the American critics back:"What have you done with the Red Indian and the Negro?..... You have used violent methods to keep them aloof from other races, but until you have solved the question here in America, you have no right to question India." (Tagore 80)

However, regardless of all these difficulties, India has tried its best to adjust with everyone and establish unity amidst diversity. This has been possible only because of saints like Sankardeva, Nanak, Kabir and others who initiated the Bhakti movement by speaking against casteism. Tagore through his essay throws light on the fact that the problem faced by India is universal in nature and in the process of finding a solution. We are actually helping the entire world. In ancient days, as the problem of communication existed, therefore, the problem of the country was limited in comparison. Nevertheless, geographical barriers are decreasing day by day with the invention of new sophisticated scientific techniques and the development of the communication system. The world is becoming a global village an in such a circumstance, Tagore stats that we must not be political whatsoever:"In finding the solution of our problem we shall have helped to solve the world problem as well. What India has been, the whole world is now..... There is only one history of mn. All national histories are merely chapters in the larger one...." (Tagore 82)Accordingto Tagore, only those people who have the spirit of strong cooperation within them can outlast and achieve civilization. People belonging to different races are coming together and hence we are challenged with two other possibilities:"And again we are confronted with two alternatives. The problem is whether the different groups of people shall go on fighting with one another or find out some true basis of reconciliation and mutual help; whether it will be interminable competition or cooperation." (Tagore 82)

While talking about America, he compared it with Europe. He stated that Europe is very much proud of the tradition. But, in the opinion of Tagore, "the pride in every form breeds blindness at the end". However, America is different in this regard as it has not yet spread its roots around our hearts like Europe. Studying Tagore's writings, it become as evident that he regarded the nationalist outlook providing a useful cover to the excess performed in the colonized world, which he himself being a part criticized thoroughly. Tagore in this regard says:Europe has gradually grown hardened in her pride in all her outer and inner habits. She not only cannot forget that she is western but she takes every opportunity to hurt this fact against others to humiliate them. That is why she is growing incapable of imparting to the East what is best in herself... (Tagore 83)

Although there are differences, yet certain amount of identicalness also exists between India and America and that is the affinity of holding diverse races together inhabiting in such a huge landmass.Furthermore, Tagore focuses on the fact that since his childhood, he had been taught that, veneration for the nation is almost better than admiration for God and humanity. He consequently, negates the belief that a country is greater than the ideals of humanity and urges the educated Indians to come out and fight against this harmful concept. In this regard, he cites the example of Japan, who by imitating the West thinks that he has gained enough power but he is actually mistaken. Thus, Tagore speaks wailfully of the western civilization as he feels he is deceiving the trust and exploiting the people for its own benefit:

India has never had a real sense of nationalism. Even though from childhood, I had been taught that Idolatry of the nation is almost better than reverence for God and Humanity, I believe I have outgrown that teaching.....Japan for example, thinks she is getting powerful through adapting western methods but after she has exhausted her inheritance, only the borrowed weapons of civilization will remain to her.... Tagore 85) Tagore, therefore, questions the concept of 'nation'. He says:"I am not against one nation in particular, but against the general idea of all nations. What is the nation?" (Tagore 85)

Tagore himself answers the question saying:"It is the aspect of a whole people as an organised power. This organization incessantly keeps up the insistence of the population on becoming strong and efficient". (Tagore 85)Talking of violence, Frantz Fanon once said: "National liberation, national re-awakening, restoration of the nation to the people or common-wealth,

whatever the name used, whatever the latest expression, decolonization is always a violent event." (Fanon 246)

If for Fanon subjectivity and self-worth can be recovered by the use of violence which is necessary, for Tagore, the culture of violence only leads to loss of self-worth. Tagore is, hence, always critical of European modernity that gives rise to aggressive nationalism. In this essay entitles "Nationalism in India", Tagore also talks about the multi-party system of India. He talks in detail about the role played by the Indian National Congress (INC). Unfortunately, Tagore very much disagreed with the 'half-policy' adopted by the INC. Tagore includes the caste system of India under his scope of study. In his opinion, India has been trying to develop a social unity amidst the divergent sections of people by maintaining the liberty of enjoying their own differences. As already mentioned, in this context, India shares the same circumstances with that of the United States. Nonetheless, in the process of forming unity amidst diversity, India failed to understand the act that she has built up "immovable walls", which subsequently hindered the path of pace in the country. Thus, our caste system is repulsive in nature. In addition to this, different trade interest are associated with different caste in India. His also has a very negative impact on the development of the people. Therefore, Tagore emphasises on the fact repeatedly that political freedom is not real freedom as it does not allow our mind to be free. When the mind is without fear and the head is held highWhere knowledge is free.....Where the mind is led forward by theeinto ever-widening thought and actionInto that heaven of freedom, my father, let my country awake..

In this essay, Tagore also opines regarding the condition of industries of India. He opines that since the arrival of the British, no amount of industrial progress can be seen in India. The British suppressed Indian industries and we are made to remain purely an agricultural country. For that reason, no development is seen in this sector of India. However, the present day situation is different. After the British left our country, people started to make money. But the ill-effects of this money-making process is that it has taken too much of people's time and space. People are continuously earning money but only at the cost of real happiness. Tagore lbelieves that the temptation of money is sent by "Indra, the Lord of the Immortals". Consequently, Tagore is urging the Indian people to be sensitive an awake and not let theses temptations come into our ives as it is very much harmful.Thus, to conclude, we can say that, written during the First World War, this essay have been more of a shocked response to all the horror and bloodshed witnessed for the cause of national supremacy in the 'civilized' western world. Tagore, subsequently, negates the notion of 'imitating' the West. Moreover, the concept of nationalism as a 'derivative discourse' reserved for anti-colonial nationalisms of the third-world countries by main-stream theorist remains contested. For Tagore, nothing should supersede the love or ideal of humanity, not even that of the nation.

******

Works Cited:

1. Chatterjee, Partha. Nationalist Thought and the Colonial World: A Derivative Discourse. Menneapolis: University of Minnesota Press. 1993. Pdf.
2. Gandhi, Leela. Postcolonial Theory: A Critical Introduction. New York: Columbia University Press. 1998. Print.
3. Kohn, Hans. Nationalism, Its Meaning and History. Malabar: Kreiger Publications, 1965. Pdf.
4. Srinivas, M.N. Caste in Modern India: And Other Essays. London: Asia Publishing house. 1970. pdf
5. Tagore, Rabindranath. Nationalism. New Delhi: Creative Media Partners. 2015. Print.

A Study on Buyer Behaviour of on Demand Online Food Ordering and Delivery Service at Hyderabad

Dr. V.Selvam

Asistant Professor Department of Commerce,Vivekanandha College of arts and Science for Woman Elayampalam. Tiruchengode

Archana Kumari

Phd Rersearch Scholar Department of Commerce,Vivekanandha College of arts and Science for Woman Elayampalam. Tiruchengode

Abstract:-

Shift in buyer behavior is the norm of today's trend as the buyer is not loyal to a single product or service. With the change in the market environment, the growing consumer demand for many services and products-for convenient food ordering offering immense growth opportunities, growing threat from direct delivery services offered by restaurants will challenge the growth of the market participants. The on-demand delivery market is prospering. Online websites and application-based digital platforms are major drivers for this rapid growth in the on-line food demand delivery market. To explore most of the prospects, online service providers should focus more on the growth forecasts in this fast-growing segments, while continuing explore more beneficial opportunities with customer delight to sustain. Growing consumer demand for suitable food ordering has been contributory in driving the growth of the market. However, growing threat from direct delivery services offered by restaurants might hinder the market growth. This paper empirically studies the impact of online food delivery services on customer satisfaction, the role of on demand services surrounded by competition among the online on demand services.

Keywords: **-**On-demand, consumer, services, direct services, segment, customer satisfaction

Introduction-Consumer behavior covers a broad variety of consumers based on diversity in age, sex, culture, taste, preference, educational level, income level, etc. Consumer behavior can be defined as "the decision process and physical activity engaged in evaluating, acquiring, using or disposing of goods and services."

With all of the diversity of goods and services offered to them, and the freedom of choices, one may speculate how individual marketers actually reach us with their highly definite marketing messages. Understanding consumer behavior helps in identifying whom to target, how to target, when to reach them, and what message is to be given to them to reach the target audience to buy the product.

Figure: determinants of consumer behavior.

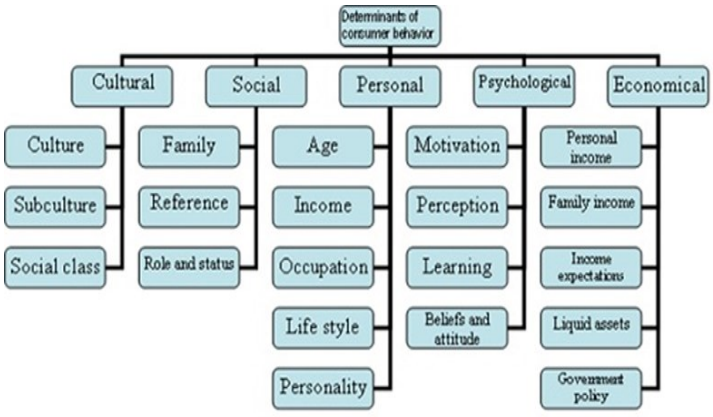

Source: google.com

The study of Consumer Behavior helps in understanding how individuals make decisions to spend their available resources like time, money, and effort while purchasing goods and services. It is a subject that explains the basic questions that a normal consumer faces – what to buy, why to buy, when to buy, where to buy from, how often to buy, and how they use it.

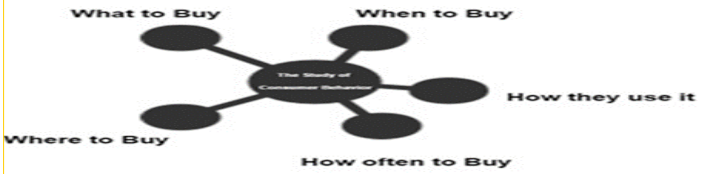

Consumer behavior is a complex and multidimensional process that reflects the totality of consumer decisions with respect to acquisition, consumption, and disposal of goods and services.Today online food delivery is the novel system since pandemic has made shift of buying off-line to on-line and variety within the reach in which customers can order food and receive desired food products at the doorstep. It involves software that allows restaurants to accept and manage orders placed over the internet. Indian customers have the option to choose from a wide variety of cuisine's options of different restaurants while browsing the website sitting at home. In India, market players are mainly concentrated in the country's urban regions like Mumbai, Delhi, Bangalore, Delhi, and Mumbai. However, vendors are now also targeting smaller cities, as they have strong growth potential. The Online Food Delivery Market in India was worth US$ 4.66 Billion in 2020.Online food delivery works on two delivery types i.e. Aggregator & Cloud Kitchen. The Food Aggregators allow consumers to compare and order their meals from different restaurants through a single app. It is more prevalent in India than Cloud kitchens as cloud kitchens are commercial facilities purpose-built to produce food specifically for delivery. According to our study, India Online Food Delivery Industry will grow at a staggering CAGR of 28.94% during 2020-2026., detailed information on factors that will assist online on-demand for food delivery services market growth during the next five years. Estimation of the online on-demand food delivery services market size and its contribution to the parent market, predictions on upcoming trends and changes in consumer behavior, the growth of the online on-demand food delivery services market, analysis of the market's competitive landscape and detailed information on vendors, comprehensive details of factors that will challenge the growth of online on-demand food delivery services market vendors. Factors that are propelling India's online delivery market are changing lifestyle and eating habits. Hectic schedule and growing disposable income in India pushes people towards ready-to-eat food at a cheaper rate. Getting it quickly through one-click has popularized food delivery options, especially in urban areas. Besides, rising digitalization among millennial and increasing proportion of working women in India are also driving the online food delivery trends in India.

Review of literature-

Variawa (2010) analyzed the influence of packaging on consumer decision making process for Fast Moving Consumer Goods. The aim of the research was to analyze the impact of packaging for decision making processes of low-income consumers in retail shopping. A survey method has been used in order to reach the research objectives. In a survey conducted in Star Hyper in the town of Canterville 250 respondents participated. The findings of the research indicate that low-income consumers have more preferences towards premium packaging as this can also be re-used after the product has been consumed. Although the findings indicate that there is a weak relationship between the product packaging and brand experience. However, it has been proven by the findings of the research that low-income consumers have greater brand experience from the purchase of 'premium' products when compared to their experience from purchasing 'cheap' brand products.

Lee (2005) carried out study to learn the five stages of consumer decision making process in the example of China. The researcher focuses on the facts that affect the consumer decision making process on purchasing imported health food products, in particular demographic effects such as gender, education, income and marital status. The author employed questionnaire method in order to reach the objectives of the research. Analysis of five stages of consumer decision making process indicate that impact of family members on the consumer decision making process of purchasing imported health food products was significant.Woodcock and Graham (2020). A similar division is suggested by Berg et al (2018), where they divide commercial digital labour into web-based platforms and location-based platforms. They divide the former category into freelance marketplaces, micro-tasking-crowd-work and content-based creative-crowd-work and the latter into accommodation, transportation, delivery, household services and local micro-tasking

Research gap:-

Customer Satisfaction about Food Delivery and the pricing factors has different perspective. the above studies have not thrust upon them and this study would explore about the same and also the satisfaction level of customer with regards to online on demand food delivery services.

Research questions-Does online food delivery services are serving the customers satisfactorily?

Does the pricing charges of online food delivery is appropriate?

Does specific online food delivery services have any impact on customer satisfaction

Objectives of the study-

To study the present scenario of online food delivery services

To study the impact of online food delivery services on customer satisfaction

To study the pricing strategies adopted by online food delivery services

Hypothesis of the study-

Hypothesis 1 (H1). Gender has no significant impact on online food conveniences

Hypothesis 2 (H2). Price had a significant direct effect on customer satisfaction

Research Methodology-

Type of study:- descriptive

Sources of data:- both primary and secondary sources have been adopted for the present study.

Primary data has been collected by administering a structured data collection instrument (questionnaire) and recorded the data provided by the respondents(customers)

Secondary data: sourced from books, journals and online websites.Sample size: 100 respondents

Limitations of the study-

Only Hyderabad city has been chosen for study Respondents opinions may be biased Time is one of the limiting factor

Data analysis and interpretation

Table:1 Gender

Gender	Percentage
Male	74
Female	26
Total	100%

Source: Primary data

Analysis: the above table it is depicted that out of 100 respondents perceiving the conveniences of which 74 are male respondents and remaining 26 respondents are female respondents from the sample selected for the study.

Table:2 Conveniences provided to Custome

	SA	A	Neutral	DA	SDA	Total
Decision Convenience	3	6	1	1	1	12
Access Convenience	4	5	2	1	1	13
Transaction Convenience	3	4	1	1	1	10
Benefit Convenience	6	10	2	1	1	20
Delivering food convenience	8	14	4	1	1	28
Post-Benefit Convenience	4	6	2	3	1	16
Total	28	46	12	8	6	100

Source: Primary data

Analysis: -the above table mentioned about the conveniences provided to customer, of which 12 respondents stated that they perceive decision convenience and specifically 3 respondents mentioned as strongly agree, 6 respondents mentioned as agree, 1 respondent mentioned as neutral, 1 respondent mentioned as disagree and 1 respondent mentioned as strongly disagree13 respondents stated as access convenience where 4 respondents mentioned as strongly agree,5 respondents mentioned as agree, 2 respondent mentioned as neutral, 1 respondent mentioned as disagree and 1 respondent mentioned as strongly disagree10 respondents stated as Transaction Convenience in which 3 respondents mentioned as strongly agree, 4 respondents mentioned as agree, 1 respondent mentioned as neutral, 1 respondent mentioned as disagree and 1 respondent mentioned as strongly disagree20 respondents stated as Benefit Convenience out of these 20 respondents 6 respondents mentioned as strongly agree, 10 respondents mentioned as agree, 2 respondents mentioned as neutral, 1 respondent mentioned as disagree and 1 respondent mentioned as strongly disagree 28 respondents stated as Delivering food convenience, 8 respondents mentioned as strongly agree, 14 respondents mentioned as agree, 4 respondent mentioned as neutral, 3 respondent mentioned as disagree and 1 respondent mentioned as strongly disagree 16 respondents stated as Post-Benefit Convenience of which 4 respondents mentioned as strongly agree, 6 respondents mentioned as agree, 2 respondents mentioned as neutral, 3 respondents mentioned as disagree and 1 respondent mentioned as strongly disagree

Gender/ Conveniences to customer	Decision Convenience	Access Convenience	Transaction Convenience	Benefit Convenience	Delivering food convenience	Post-Benefit Convenience	Total
Male	10	10	8	11	20	14	74
Female	2	3	2	10	8	2	26
Total	12	13	10	21	28	16	100

Table:3 Crosstabs of gender and customer conveniences

Source: Primary data

Analysis: From the above table it is stated that out of 100 respondents perceiving the conveniences of which 74 respondents are males of which 10 respondents perceive as decision convenience, 10 respondents perceived as access convenience, 8 respondents felt as transaction convenience, 11 respondents perceived as benefit convenience, 20 respondents perceived as delivering food convenience and remaining 14 respondents perceived it as post benefit convenience as it is also important aspect for providing online on demand servicesring food convenien and 26 respondents are females of which 2 respondents perceive as decision convenience, 3 respondents perceived as access convenience, 2 respondents felt as transaction convenience, 10 respondents perceived as benefit convenience, 8 respondents perceived as delivering food convenience and remaining 2 respondents perceived it as post benefit convenience as it is also important aspect for providing online on demand servicesring food convenien

	Source of Variation	*SS*	*df*	*MS*	*F*	*P-value*	*F crit*
		176.3333		176.333	20.6640	0.00613	6.60789
Rows		3	1	3	6	6	1
		113.666		22.7333	2.66406	0.15299	5.05032
Columns		7	5	3	3	3	9
		42.6666		8.53333			
Error		7	5	3			
		332.666					
Total		7	11				

Table: 4 ANOVA

Source: Primary data

Analysis: From the above table is has been found that Table Value 6. 60789 is greater than the calculated value i.e., 0.00613 hence it is indicated that there is a significant difference between conveniences and gender, as such Null hypothesis has been rejected.

Table:5 Satisfaction Level of online food services

	Highly satisfied	satisfied	Neutral	dissatisfied	Highly Dissatisfied	Total
Satisfaction level	26	52	12	6	4	100

Source: Primary data

Figure:1 Satisfaction Level of online food services

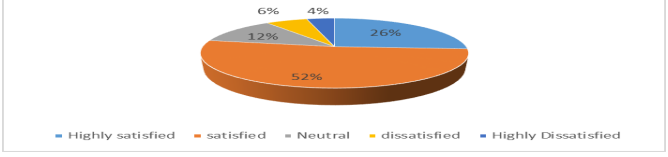

Source: Primary data

Analysis: The table above depicts that with regard to satisfaction level of online food services, 26 respondents mentioned as highly satisfied, 52 respondents mentioned as satisfied, 12 respondents mentioned as neutral, 6 respondents mentioned as dissatisfied, and remaining 4 respondents mentioned as highly dissatisfied.

Conclusions:-It is indicated that most of the respondents who are making their purchases online are male respondents as majority of buyers It is indicated that consumer perceive delivering food convenience is the most positively perceived by them followed by benefit convenience and access convenience as the most perceived conveniences by the online buyer responses It is concluded that there is a significant difference between gender and the customer convenience services It is concluded that majority are satisfied with the online food services provided by the online services companies.It is concluded that majority respondents buying online specifically on demand food services are reasonably priced by the online services companies. The need to invest in a physical store, and pay for its everyday operational expenses, including staff compensation, is greatly reduced by on-demand delivery model. Ensure quick delivery turnaround-time it's important to automate manual delivery processes. These processes include delivery scheduling, task allocation, route planning, roster management and dispatching. Self-service delivery models will enhance customer engagement and experience that will help the online on-demand services to be more customer centric. Delivery of food tracking is another positive aspect where customer can perceive as an important factor, as such these online services can coordinate with other logistics for a faster, uninterrupted and benevolent services.

These online on demand food service provides must continuously work on shifts on customer's food choices and tastes.

References:-

1. Variawa.V, (2010); Buying behavior and decision-making criteria of Base of the Pyramid consumers: the influence of packaging on Fast Moving Consumer Goods customers' brand experience, A research project submitted to the Gordon Institute of Business Science, University of Pretoria, in partial fulfilment of the requirements for the degree of Master of Business Administration. PP.1-83. URI: http://hdl.handle.net/2263/26572.
2. Lee. S. (2005). Title of Research Project: An Application of a Five-stage Consumer Behaviour. Decision Making, An Exploratory study of Chinese purchasing of imported health food Simon Fraser University. Spring, Master of Business Administration. Master of Business Administration, Bombay, BC, Canada PP.1-87
3. Woodcock, Jamie and Mark Graham (2020): The Gig Economy: A Critical Introduction, Cambridge: Polity Press
4. https://www.researchandmarkets.com/reports/5317027/india-online-food-delivery-market-by-delivery?utm_source=GNOM&utm_medium=PressRelease&utm_code=3hvx9t&utm_campaign=1537335+-India+21.41+Billion+Online+Food+Delivery+Market+to+2026%3a+Focus+on+Bangalore%2c+Delhi+NCR%2c+Mumbai%2c+Hyderabad+%26+Pune&utm_exec=chdo54prd.

An Overview on the Characterizations and Feminism in Sudha Murthy's Gently Falls the Bakula

Dr. G. Keerthi
Research Guide
Assistant Professor
Government Arts and Science College, Komarapalayam 638183

K. S. Punithaasree
Ph. D Research Scholar
Government Arts and Science College, Komarapalayam 638183

Abstract:-The compositions of Sudha Murthy are viewed as milestones in contemporary English literature. Her writings cover a wide scope of subjects, including education, religion, culture, family, social perspectives, financial matters, and feminist issues, to name simply a few. As a productive writer, she can cover a wide scope of points in her study of society, including the political, social, educational, and home existences of Indian women. 'Postmodern Feminism' is a combination of postmodernism, poststructuralism and French feminism. Gender Trouble, Judith Butler's 1990 book, is where it initially showed up. Phenomenological woman's rights, which dismisses the headway of Feminism, is against postmodern women's liberation. The objective of postmodern woman's rights is to destroy the patriarchal shows that have added to gender disparity in any case. Since the 1960s, women's rights movements have roused women's activist scholarly evaluate. Subsequently, it has expansive impacts. There is a ton of discussion over the male-ruled culture. Indeed, even writing is affected by the general outlook. Research in this article will focus in on Sudha Murthy's Gently Falls the Bakula, their themes and characters.

Keywords: Feminism, postmodernism, Characterization, Patriarchy

Feminism and postmodernism, it is a definitive tolerating of the variety of postmodernism. For this large thought, it won't give a solitary reasoning. In their view, there are no biological differentiations among people, and subsequently no requirement for postmodern feminist to dismiss all past feminist theories. Sudha Murty has gotten the Padma Shri award for social work and the R.K.Narayan award for her scholarly works in 2006, as well as a lifetime achievement award for her contributions to writing. Characters in Sudha Murthy's work are prominent for their working class beginnings. They either come from the educational or service industries. Sudha Murthy interfaces them to both the customary Indian development and the present ultramodern culture. Generally, the youngsters in the show are centered around their own and proficient turn of events. Wealth entice the admired characters, yet they can't better themselves in view of their innate impediments

Present day innovation makes strains between the old and the new, as well as between traditional approaches to getting things done and more up to date ones. Sudha Murthy's female characters have an inspirational perspective on life when contrasted with the female characters of other Indian female authors. They put a high significance on hard labour. As a rule, they have a positive outlook on life.Feminist literary critism analysis has secured itself as a primary thought in literature. Somewhat, the women's liberation of the 1960s has affected current modern feminist literary critique. There is feminism in the old style and traditional writings even preceding the women's development. In their distributions, they endeavored to track

down replies to the issue of women's imbalance. This run-down incorporates works by Virginia Woolf, Jane Austen, and John Stuart Mill, every one of whom are known for their feminist perspectives. During the 1960s, the women's development was principally a literary one. It perceived the significance of writing's depiction of women, and considered it to be important to challenge and scrutinize the male - ruled society and to recover power and regard. After 1970, feminist critique scrutinize took off. The capacity of hypothesis and the idea of language have been the subject of many discussions.The nature of language: The nature of language has for some time been the topic of conversation. There was a discussion on whether there is an unmistakable language for women. The nature of language is a subject of discussion among etymologists. Language is gendered, as per Virginia Woolf in her exposition 'A Room of One's Own.' Women who start novel composing are shocked to find that there is definitely not a standard sentence accessible to them. Dale Spender contends that language is chauvinist since guys have had the position to characterize the implications it contains, and these implications address men's viewpoint of reality as opposed to women's. Language has turned into a common asset, as per their evaluation. Most feminist, nonetheless, hated the utilization of messy language and on second thought made their own reasonable and unadulterated scholarly style. Numerous feminists, both in theory and practically speaking, featured the significance of setting subordinate language. When it came to writing, Jane Austen was the expert of her art.

The job of theory: This brought forth three unmistakable feminisms. Certain individuals lean toward the English structure, while others favor the 'Anglo- American' rendition. This sort of feminism is more mindful and dubious. 'Customary basic ideas like as subject, theme, and character are still a lot of a piece of their work.' They see writing as an assortment of depictions of women's lives and encounters that might be contrasted with the unavoidable issues facing everyone. The second sort of feminists critique is which starts in the United Kingdom. As a result, lumping it in with a 'non-theoretical category' is an evident mistake. 'It tends to be 'Socialist feminist,' in orientation associated with cultural materialism or Marxism.' French feminism, on the other hand, focuses more on theory than the other two. Poststructuralists like Lacan, Foucault, and Derrida provided the framework for their work. Indian feminists are influenced by the 1960s women's movement.

Sudha Murthy is one of the few Indian feminist who is as yet dynamic in the nation today. Social worker Sudha Murthy is a prolific Kannada and English writer. At first, she functioned as a computer researcher and engineer. The Infosys Foundation is driven by her, and she fills in as its administrator. Penguin has been her essential publisher for some of her works. In excess of 15 dialects, including Hindi, Marathi, and others, have had interpretations of the book 'How I Taught My Grandmother to Read.' The themes of feminism are pervasive all through Sudha Murthy's works. Despite the fact that she doesn't unequivocally scrutinize the male-ruled culture, her characters in her accounts question it. Her heroes are from working class families. They are submissive, smart, and selfless in their actions.Emblematic significance in 'Gently Falls the Bakula': The Bakula Tree is an illustration for women's lives. Bakula trees might make due for dependent upon 100 years prior to passing on. Blossoms attract individuals to this little, light green tree. It has an inebriating fragrance. A weak fragrance stays even after the blooms have dried and become brown. When the tree is in full sprout, the ground under it is canvassed in a floor covering of blooms. Bakula's blossoms are a similitude for womens. For their friends and family, they put their professions on pause. They're similar to a support point holding up the house's rooftop. Work, family, and, surprisingly, the accomplishment of her companion could give them please. They save nothing for the future. She is a candle that shines splendidly for her family.

Gently Falls the Bakula: Shrimati and Shrikanth, the two main characters, assume huge parts in this story. Srikanth's neighbor, Shrimati, lives close by. 'They went to a similar secondary school in Hubli, a minuscule town in North Karnataka.' They have a savage competition. Shrimati is reliably perceived and compensated by her instructors. For the purpose of her mate, she surrenders her time, education, and capacity to make her own decisions. To her significant other, she is only a uninvolved, faithful phantom. When her better half is out working, she dedicates herself to serving and anticipating his return. Shrikant, her life partner, then again, strives to work on his specialized capacities and rapidly ascends through the positions of the organization. He sets up his own business. Simultaneously, he ignores and fails to remember his wife's commitment to his progress.

This message was imparted emblematically by Sudha Murthy. Shrimati penances her occupation for her better half, similarly as the Bakula blossoms swirl all around with their wonderful aroma. Shrikanth, a schoolmate of Shrimati's, proposes to her. She is a steady wellspring of motivation for him, never focusing on herself or her own issues. His mom and sister's terrible lead is known to him, yet he decides to stay calm, permitting Shrimati to endure its worst part. They make a special effort to ridicule her and cause her to feel embarrassed. Indeed, even yet, Shrimati commits her life to her better half. She's brilliant and savvy, yet she doesn't care a whole lot about her expert future. Notwithstanding her dejection, she expects Shrikant's prosperity and discreetly bears the heaviness of his achievements. He'll always be unable to get to the top without her enduring support. Shrikant's inner self, then again, is resolved that she is avoided from the credit for his prosperity on account of her commitment. Each time he thinks back, he considers it to be his achievement, not hers. He treats her practically like an individual right hand who deals with his obligations in general. - Shrimati believes the achievements of her life partner to be her own. Shrimati will continue as before on the off chance that Shrikanth recognizes her job. His egocentric and tyrannical disposition helps her see her mistake. She passes on her life partner to run his organization and goes to one more country to get a doctorate in psychology. Following a couple of moments of exhaustive thought of

Shrimati's decision in the book, the peruser's perspective changes for it. Just through life's ups and downs can one come to terms with reality. Shrikant finds a sense of peace with his oversight, yet revising his strategy is past the point of no return.Sudha Murthy has shown that the utilization of basic words may likewise be utilized to convey considerations and viewpoints. The significance or ability of a piece of writing doesn't be guaranteed to require the utilization of elusive phrasing or terms. As far as understanding, Sudha Murthy's compositions are open to such an extent that they become a subject of interest for any peruser. The crowd and the story structure major areas of strength for a rapidly. Composing or portrayal might profit from this. This shows Sudha Murthy's enthusiasm and viability in introducing stories and conveying ideas. In every last bit of her works, Sudha Murthy offers her viewpoints obviously. She conveys her thoughts in plain language. Unlike the older and classical authors, whose use of language befuddles contemporary readers, Sudha Murthy is a breeze to g e t through. Her words are devoid of cliches and clichéd terms.' A reader won't ever be lost as a result of the writer's use of language in her book. She gave English a fresh lease of life and made it more open to the overall population.

Conventional Indian women have not changed even after their nation acquired freedom. She is a social outcast because of her vulnerability and emotional numbness. She is limited by the shackles of custom, both inside and publicly. She struggles with acclimating to the real factors of day to day existence. Women in the current period are likewise rough and miserable because of the consistent torment in the family and outside, thusly they can't manage others. Human beings should be treated as such by both men and women.

****

References

1. Murty, Sudha. Gently Falls the Bakula. New Delhi: Penguin books: 2008. Chakravarty, Joya. Indian Writing in English, Perspectives, New Delhi: Atlantic Publishers and Distributors, 2003.Print.
2. Eagleton, Mary, ed. Feminist Literary Theory: A Reader (BlackWell , 1986)
3. Iyengar, Shrinivasa. Indian writing in English. New Delhi: Sterling, 1983.
4. W oolf, Virginia. A Room of One's Own. London, 1929.
5. Govind, R. (2019, 11 27). Sudha Murthy's new book profiles strong, brave women from mythology. Retrieved from
6. https://www.thehindu.com/books/books- authors/sudhamurthy/article30096474.ece

Managing and Developing Human Resources in Higher Education

Dr. Savithri
Asso.Professor .
D.J. Academy for Managerial Excellence, Othakkalmandapam

Ranjini Catharin Kavitha .A.
Research Scholar
D.J. Academy for Managerial Excellence, Othakkalmandapam.

ABSTRACT-

As contemporary educational organizations attempt to become more competitive by responding to rapid changes in the educational environment, it becomes vital for Human Resource in Education to step up for the growing demands. Human resource capacity has become a critical issue for contemporary universities as a result of increasing pressures from governments and global markets. As a consequence, particularly where the institution is the employer, changes are occurring in the expectations of staff and institutions about employment terms and conditions, as well as the broader aspects of working life, and this is affecting academic and professional identities. The effect of globalisation on the educational institutions has changed even the recruitment, maintenance of human resource. Inclusivity, exceptional academic human resource is not an easy resource to manage. Unlike other sectors this is a sector in which all the stake holders play a major role in all the key decisions. The decisions of Human Resource acquisition must be based on many criteria.

This paper considers key issues and challenges in human resource management in higher education, and some of the implications of these changes.

KEYWORDS: Human Resource Management, Higher Education management, Development management.

1.1 INTRODUCTION

In an organization certain things are evident, and that is organizations actually are made up of people. It is imperative then to understand in layman terms that it is the development of the people is the key task in any organizations. If one was to ask for some opinion to the senior level managers in an organization they would typically state how important their staff are for them. Unfortunately, however this same managers when it comes to an unforeseen crisis would immediately slash budgets which is meant for human resource development. Without doubt there might be some qualms also about downsizing the number of employees. People in a organization do matter, and in these unprecedented times human capital without doubt has become a precious commodity.

Human Resource Development is vital area for firms and in this case higher education as well. If an institution needs to sustain in a competitive environment that it naturally needs to work of human resource and continuous improvement. The methods, technology, implementation will not amount to anything if strategies for human resource development is not part of the organisation. Peter Drucker one of the foremost management writer describes that, "My ancestors were printers in Amsterdam from 1510 or so until 1750…and during that entire time they didn't have to learn anything new"(Business 2.0). This quotes must be understood in context. Peter is not critical

of his ancestors he is simply stating that in this competitive arena this is not appropriate. Individuals in the institution must improve continuously and so human resource development is a crucial part of higher education. This paper is not about the developing side of the employee, but it is more in line with the management of the human resource. But both are interlinked without doubt. Managing without developing does not give the organisation a chance to outperform their competition. Higher Educational institutions are primarily competitive in nature. They can survive only by recruit human resource of high calibre. The really difficulty of managing human resource with high calibre is that their management is not like the common employer of an organization.

There is a lot of literature to support the idea of the main functions that a higher educational institution carries out. First being the development of higher education, developing knowledge and technology, and producing agents of change. Human resources (HR) are the key in the success of a higher education institution to generate graduates who can positively contribute to society. Educational service providers need to be handled in a keep up-to-date with the requirements of the society and with the growth in science and technology. A higher education institution has to be managed dynamically using wellplanned and current management methods. As mentioned by Heru et al (2017), higher education institutions encounter obstacles in planning, coordinating, and measuring the effectiveness of HR in fulfilling the aim of creating high quality graduates.

1.2 Human Resource Planning (HRP)

This is a systematic planning process which is used to determine the different skills, duties and knowledge that is vitally needed to carry out the tasks in an organization. HRP helps in many ways, and it helps especially in evaluating and monitoring the conditions of human resources to ascertain the quantity and also the quality of the skills that are appropriate and available when it is needed. The studies show that due to the increase in the numbers of students and also because of the demand for better services, it is imperative to have HRP. This cannot be neglected in any way. The HRP also will be crucial in implementing a systematic procedure for collecting, storing, maintaining, displaying, and validating data that is required by the organization. Human Resource Planning can help in other myriad ways as well. In a big institution the number of teaching and non-teaching would be many. The teaching faculty must be maintained, and recruited as per the norms of UGC. A particular number of Assistant Professors, Associates Professors and Professors must be part of the academic institution. All this subtle things in a higher institution is an important if they have to survive in the competitive world.

1.3 Recruitment and Selection-The management of faculty starts right from the recruitment of the faculty. If correct criteria is followed in recruiting then managing them will be an easier task. The recruitment is basically to assist the organization to grow. It is an effort by the organization to the rightful person, and recruitment and selection is certainly an important aspect of the human resource management. The person they must confer to the institution policies, and in whatever field they are chosen they must be of some help to the recruiter. In short, faculty members are one of the major capital and development resource. They without a doubt play the major role. Recruitment and selection must have a particular framework for selection. This must be a process that will test the individual the viability for the job, and also how they will be able to contribute to the institution. Apart from their subject expertise, the faculty's communication, papers published in reputed institutions, and have they developed e-content. If faculty are selected in this criteria, there would definitely be a huge difference in the organisation.

Barber(1998) shows that there are two important phases and one is to bring in many applications as possible, and the second is the ability of HR deparment to make the best from the list of applicants. The main point that are considered during the recruitment process are qualification, work experience, communication or interpersonal skills. These are the ones identified as the most important skills that are required to shine in the job. To effectively manage a diverse workforce, a firm must choose the best competent applicant for a job while keeping in mind the need to establish a staff that is reflective of the larger business community. This may be accomplished by implementing more relevant and inclusive recruiting and selection techniques.

1.4 Training and Development-

As already mentioned training and development are key factors when it comes for human resource development and management. The company policies, productive work habits, certain ways of thinking for the benefit of the organization can only be introduced in training. Training could be defined as a way to provide new and current employees the skill to perform the prevailing tasks(Dessler, 2013). Training is also seen as a systematic and planned instructions to increase understanding of the tasks(Armstrong 2009). Training apparently is really important. The training and development(T&D) measures comprise the three major competence areas: Methodological competence(teaching, administration, IT-systems, Finance, Legal know-how, Safety and Security)Self-confidence and social competence(Personality and soft skills, time management, Work-Life Balance, languages, etx.)Management competence (Leadership development, project management)

These are ways to effective train them. All the faculty in the higher education if they are trained in methodological competence that that would be a great benefit for the organization and also the students. For instance, the entire world is in the internet, and thus it is not hard to see that hackers with ulterior motives have sprung up. An organization that is spending huge amount of money must also equip their faculty with basic internet security. A small misstep might ruin the e-learning system and a lot of money that is involved in this development. Another form of training would also be individual measures such as on-the-job training, mentoring, and coaching. Coaching might also be understood in the sense that the employees are treated just like partners in actually achieving both the personal and organizational goals. Also counselling might be seen as a way of the organization support the faculty with their personal

problems which could actually hurt them in achieving their goals. Almost all the institutions provide some kind of training because they know the impact that can have in the long run. But in a higher education training is not like that of a firm. As per the mandate of UGC universities and college still conduct Faculty Development Programs (FDP), but the effectiveness it yet to be tested. Although universities have highly qualified professionals in a wide range of subjects, they encounter pedagogical obstacles. As a result, they must design a new approach to address the new difficulties they are confronted with today. This will help the faculty to perform well.

1.5 Performance Appraisal-

Performance Appraisal is seen as the most effective way in management and to measure the motivation, satisfaction and also it shows the productivity of the employees. It is also an evaluation of the way the person has performed with regards to a particular task. Task analysis can help you find the characteristics and outcomes that are related with effective performance. A study was conducted on the criteria for evaluating the performance of faculty members. The assessment criteria for faculty members' performance reviews are the result of an interdisciplinary study that bridges the gap between concern for educational process quality and effective human resource management. These two objectives can be addressed by putting in place a performance evaluation system for faculty members. This system would enable the management to understand how the faculty performance on a certain task, and their appraisal can also give them an added motivation to perform well in the work place.

1.6 Compensation-

Performance Appraisal and compensation are all part of any organisation that wants to make a strategically established improvement. HRM's often have the function of paying or simply compensating employees and also they help in providing benefit packages. The word is sometimes used in the place of a reward, and this certainly seems to imply that work is an unpleasant necessity for which people have to be compensated rather than spending their time more profitably elsewhere (Armstrong 2009, 733). Strategic Human Resource Management in Saudi Higher Education Institutions discovered that the most significant factor of effective plan execution is managers' future orientation. A reward system also shows what an institution deems to be important.

1.7 Conclusion-The importance of the human resource is quite well known, and the development strategies for employees has already been recognized by the universities in the context of their development. As a result, suitable steps are taken in the same manner to attain the same result. Many institutions have even formed separate HRD departments, with activities ranging from mentoring new employees to enhancing managers' leadership capabilities. Despite university administration's increased attempts to integrate HRD tactics in their institutions, university workers do not readily embrace such initiatives. It is claimed that this is due to the fact that HRD activities are directly tied to the firm's own aims, whereas academic personnel lacks a strong relationship to the business, respectively university, for which they work. However, higher education has the potential to turn necessity into a virtue. They might broaden their HRD approach and provide courses that are less focused on corporate objectives and more focused on general organizational growth.

****

References:-

1. Daly, J. (2000). Interview with Peter Drucker. Business 20, 5(14), 134–42, 22 August.
2. Heru.S.,Endang.S.,Wiyata.(2017). Analyzing and Modeling the role of Human Resources Information System in Human Resource Planning at Higher Education Inatitution in Indonesia. RJOAS
3. Barber, A. E. (1998). Recruiting employees: Individual and Organisational Perspectives. Thousand Oaks, CA, USA: Sage Publications, Inc.
4. Dessler, G. (2013). Human Resource Management (13rd ed.). USA: Prentice Hall.
5. Armstrong, M. (2009). A Handbook of Human Resource Management Practice(11th ed.). UK: Kogan Page.

GODAAN VS SUARDAAN

SAPNA-EDITOR-NAAGFANI

Kanwal Bharti an emminent Dalit writer has put facts and reality of the religious myths myth.These religious myths are based on the blind faiths.No dalit writers except Roopnarain thought for abolishing of these blind religious myths. It is his own powerful imagination .If the Cow is a myth then the Pig is also a myth.Iron cuts iron.Therefore he presents myth of Suar against the myth of a Cow. Nobody cam dismiss it If the myth of Suar is dismissd then the myth of Cow will be dismissed automatically.

Now-a-days the so called sages and religious people are selling the urine of Cows.They are claiming that this urine have the tremendous power to cure the deadly diseases. The author Roopnarain Sonkar goes to the next step and invented the alternative of the Go -Mutra as the Suar-Mutra(Urine of a Pig)

Only Dalit writer Roopnarain Sonkarthought for abolishing and putting a new scientific myth. The Cow eats the green grass and Suar eats the seeds and roots of the plants.If the grass has power then the seeds have more power than grass. The Urine of Pigs increases much the Sex Power.If anybody denies it then he is free to drink it and remove his doubts.

In Godaan we do not find such revolutionary scientific inventions..

*****

Mysticism in K.V.Raghupathi's The Images of a Growing Dying City

Dr.S. Kumaran
Research Supervisor, Assistant Professor of Elish,Thiruvalluvar Govt. Arts College,Rasipuram, Tamilnadu-637401

Mr.S. Selva kumar
Full-Time Research Scholar
Thiruvalluvar Govt. Arts College
Rasipuram,Tamilnadu-637401

Abstract
This paper aims at studying K.V.Raghupathi's"*The Images of a Growing Dying City"* for the impact of mysticism. The poet has presented a number of sordid mystic images and they expose the life and activities of the modern people. The poet connects the modern life of people and God. God gives to humanity things like land, water, life, but humanity destroys them. This paper focuses on the feelings of human beings. Modern life activates love, pain, soul, and unfaithful life. The poet tries to explain the connection between modern life of the people and God. He finds mysticism through the human activities and ascertains that humans should obey nature and God.

Keywords: Mysticism, Soul, Mind, Modern life, Spirituality.

Introduction-

K.V.Ragupathi deals with mysticism in the poem "*The Images of a Growing Dying City"*through the analysis of humanity and modern culture. Moreover, he focuseson mystic ideas, images, and human feelings. He discovers the secret of the life of human being although he says soul is built of each human emotion. Every human emotion comes from the experience of life, and mysticism is found everywhere in human life. He says human soul is connected directly to God and it is an inner feel of life. Moreover, mysticism is connected to man and God and it joins soul with God.*"The Images of a Growing Dying"* describes soul and its scope to experiencemysticism. It is a reminder of the past too.

The poet elaborates many of the classic stages of human life. Humans' instincts are all dependent on God. There are many mysterious relationships between God and human. Although form time immemorial to the present day, humans have adopted the only method of worshiping to reach God. God is the primary object of all humans and non- human others. God is convinced by identifying himself with all that universe contains" says Sindney Spencer (31).Human have been striving till this day to receive the wisdom and love of God. God presents humans with visions and emotions, and they grew up loving nature. God is watching what is destroying every grandeur and things against God, and it reveals that human life is full of mystery. Civilized life is not about forgetting God, but about attaining God through nature:

"The earth revolves round and round,
Structures are thrown off, fallen, destroyed,
Modernity renews in human thought,
There is nothing like wanted and unwanted,
In the constant flexible thought,
Between the rising walls on the brown earth and the
Unchanging blue sky," (12)

The poet describes the life cycle very beautifully. Change is common not only to humans but also to all animals and birds. The way of life of humans and their life system are completely changed compared to earlier times. Civilized life has been changed based on the flows of human thought, and then in civilized life man had lost the thought of what is needed and what is not needed. "City is compared to a mother carrying a baby ''says P.V.Laxmiprasad (57). In life, humans go through many experiences and difficulties and gain a constant knowledge. Although there are many changes in human life, there is no change in nature. Human life changes and wears out risks and distorts civilized life. Civilized human should be a meditative who thinks to reach God:

"They preach in this city,
They are preach they are priest,
Trampling upon their own creation ignorant,
For their innate rapport torn to pieces,
They preach, preach, and preach
Enwrapped and enrolled in their own torn creations."(19)

K.V.Ragupathi explores the civilized life through this poem. The civilized humans need the advice of many priests. Priests are those who are well aware of the noble condition of human life. God created the world, and all living things on this earth are run by God. There are many mysteries behind the closed screen just as there are many events going on behind human life. Humans lead a mysterious life hence the joys and sorrows that come to them are not constant:

"It is difficult to see,
The lights are off,
The city plunged in dark,
It is surrounded by dark night,
Yet the city is alive,
Because people are live,
***They city lives as you live"* (23)**

The poet attacks the civilized culture directly. He does not like this change. He says symbolically dark means without power, so people of modern life live in dark. Moreover, they learn from darkness. Mysticism explains not only the secret of life but also the ways to explore it. Every place is plunged dark and humans destroy forest and build new buildings. New buildings are very colourful, and forest became a changed new building. People live a difficult life although they are not ready to stop destroying theforest. City changed every day due to humans' irrational life. According to the poet, people live a peaceful and safety life but they lack happiness. They are not living a joyful life.The poet finds out human beings soul, life, and relationship. They get freedom, good life, building, but they are not living a mystic life. Soul is the real fact of human body, which is destroyed at the end of life. Soul is mixed to God directly:

"He feels resting like a bird in the nest,
Never shall he.
His body lies on the bed like wings spread,
By mind his nausea wanders without aid,

A streak of light tries in vain to illuminate his dark room,
His own creation cannot withhold his own nausea,
Between his own creations and the nausea of his own creations, his body maimed.
His spirit suffers intensely that thinks of setting yet never
***Rests like the birds on the nest"*(30)**

The poet posturizes the image of a dying city, and he feels himself like a bird.The bird is flying on sky every day. It does not take rest that is called restless work. Thepoet uses many images and metaphors too. Human body is completely different from soul. Body is dead at the end of life but soul flies on to the sky. So mysticism should be there everywhere, not only in real life. Human mind wanders every time, and is not standing at the same place. Humans learn every day from their past bad experience. The poet compares human life to dark room. Dark room is an empty box. There are as many mysteries hidden within the chaos as there are many mysteries in dark house without light. The poet compares it to the most beautiful dark home fashioned life. Every creation changes like the mind of humans as the soul endures many confusion and many afflictions. The soul does not stand still; it changes every minute according to the flow of thoughts:

"For a million people a million worlds exist.
"They live in the same city.
Dark lines visible cutting across,
The city is divided in to fragments,
It is a city of a million worlds,
The people sit in the theatre,
As if nothing has happened outside.
The dim across pass on the dim stage,
Soon the theatre empties after the performance,
It is an empty theatre, a hollow place.
***That is how the world exists."*(32)**

Humans have lived in the same place for thousands of years. The poet has divided human life into two sects, first one is body and the second one is soul. The poet compares this world, which has been inhabited for thousands of years, to the crowd of people located in the theatre. Humans on the inside are invisible to the life on outside. In this life full of mystery, humans are wandering here and there like a bird with many desires. They are suffering according to their desires. All events are over and again the theatres become empty. Birth and death are common to all living things. The poet beautifully states that this world does not belong to anyone who comes and goes in this world.

Echoes silent is the second book by K.V.Raghupathi. The book that explains very clearly the connection between nature and God, man has been worshiping nature as God for thousands of years. Man has fully understood nature and lived by accepting it as God even before God took shape. It is noteworthy that the mystery between man and nature began many years ago. The mystery of nature has been beautifully revealed by K.V.Raghupathi through his poetry. Mystery that could have occurred between man and nature remains a mystery to this day. Human beings began to love nature in many science can describe nature in many ways but cannot feel nature. The poet reveals the basic mystery lot nature very clearly through his poetry.

I cared everything in the world of nothing
Like a thorn in the bush in world of everything
Unto the thorns a huge, pointed thorn I became
I was consumed by thorns,
Belated my realization, egret teed I never (16)

He expresses the sorrow in this world through poery. Even though all the pleasure and pains in the natural world are contained, Human beings can never find it and can perceive act on them well. In this world of nothingness the poet is taking care of everything. This world is surrounded by nature, human beings understand the mystery of nature with knowledge but he can understand nature with his sense. He feels much sharper then the possible thrones of the thorn bushes knowledge can be seen with the eyes but feeling can be felt by the heart. The mystery of the nature is revealed in a similar way. He is destroyed by thorns, and he lives a life of never regretting all of them even though the feelings are deled.*The world broke behind the mask grownIn the masked infinite masks thrown,*Although the poet has told in many lines about the mystery of nature, in a few lives he quakes everyone realize what is he world headed towards. Nature is full of mystery but in this mysterious natural life every human beings is living in a mysterious way. He says that living a natural life by realizing nature is a civilized life by destroying nature. He points out through is poem that there is a world behind the grown up mask and that the infinite masks in the mask flew in the sky. He says that in this world all the feelings of fake relationships are destroyed.

The hour, the day, the weak, the month
And at last the movement of transition
It is impossible to realize in Timelessness
Now at this hour at this movement (16)

Nature is changing in every situation and not everything can be felt in the same perspective. That chance is the mysterious change of nature. It is movement of a final change and it cannot be felt by timelessness. The poet says that the change of natural at this time is not conducive to a civilized life that may be changing now. The poet says that it is meaningless for man to try to discover the mysterious secret of the nature after the change of nature and the life of human civilization. He explains that no one can prevent the destruction of his civilization until man realises that there is a connection between nature and human beings through the soul.Mysticism is a journey unknown to the world. The poet says that neither human Knowledge nor civilized science can know the mystery of nature and that human beings must love nature by his sense in order to fully understand it. The poet points out that everything crated by human beings can be understood by the sense of touch but all the changes created by nature can only be understood by intuition. Nature mysteriously conveys to man that nothing is permanent in human life." Nature mysticism as thus conceived, does not seek to glorify itself above other modes of experience and psychic activity" J.Mercer(3) . Nature is a wonderful immortal object. The poet reveals to the people of the world one by one all the mysterious of nature.

Sunlight, moonlight, starlight are impartial,
In the night everyone is dark,
Between the day and night the choice is for all,
Man is neither choice among all nor alternative between the toThere is only one freedom, and not two freedoms (18)

Nature is common to all living thigh. Nature never decimates between inanimate objects and living things. Sunlight, moonlight, and starlight all function normally for al life on earth. At night everyone looks dark and in the light everyone looks bright the poet explains that nature is common to all living things without any change in the creation of nature. The freedom of man is the freedom of nature and the two are no different and both are the same freedom. The poet proves that the mystery within man and the mystery within nature are two different things. "The realm of organic life-vegetable and animal-does not properly fall within the lit is of this study J.Mercer(4)

I t is here it is here/In the cool shades of green trees beneath the gray roofs,/Students interact daily,
Hollow students with shallow teachers over hollow, shallow ideas and thoughts (20)

The poet has brought everything in nature into live with the permission of nature. The poet has beautifully revealed the true face of nature hidden by man.

Conclusion-

K.V.Raghupathi narrates mysticism in a very descriptive and in a very clear way in his poetic style. The poem *"The Images of a Growing Dying City"* reveals mysticism as a classic condition hidden in our life. All the pleasures and sufferings of humans are in accordance with their life. Mysticism is not only about man but also about the variation that fits the soul of man. The poet's profound idea is that one who walks in the way of God and lives a noble life will join God after the death of one's soul.

****

Works Cited:-

1. Laxmiprasad, P.V. *The Philosophical Muse: Prespectives on the Poetry of K.V.Raghupathi,* APH Publication Corporation, 2013.
2. Raghupathi.K.V.*The Images of a Growing Dying City* Writers Workshop, 1988
3. Sidney spencer. *Mysticism in World Religion,George Allen and Unwin, London.*1963

Impersonal Socio – Political Power and Structure in Nayantara Sahgal's This Time of Morning

Dr.R.Padmavathi
Assistant Professor
PG Department of English
Government Arts and Science College
Komarapalayam -638183

P.Senthil kumar
Ph.D Scholar
PG Department of English
Government Arts and Science College
Komarapalayam 638183
Namakkal

Abstract-

In *This Time of Morning* Sahgal highlights the problems caused by the change of order. A new order replaces the old consequently causing disorder not only in the physical environment, but also in the psychological realm. The new philosophy 'calls all in doubt' including one's own identity and roots. In order to direct attention to the prevailing state of affairs, the novelist makes use of the urban setting and calls attention to the collapse of moral values in the civilized world. As a woman writer quite concerned with the latest happenings in the capital, Delhi, she is fully conscious of 'here and now' of the modern India. As for the capital city of Delhi, the less said the better. It is so because it is still a city groping in the dark, suffering from emptiness and non-recognition. The evils associated with the urban conglomeration are quite visible here. The political ambition of the power coterie and the new turn of events deprive the importance of values in human life. Sahgal creates her novel out of these urban surroundings.

Key words : Social, Political, powers, Impersonal and Structure

The world of Kailas is the world of moral values grounded in the national heritage, but it moves at its slow pace. For men like Kailas, freedom has to be cultivated with care and patience like the child being reared so fondly by her mother. As against this scenario, there is Kalyan's world which is a typical modern one, full of the characteristics of competition and modern hurry. It requires fast-paced activity to catch up with the latest turn of events. There is no place for personal freedom and intense feelings in his scheme of things. His American education and his stay at Boston as the representative of India "had lent the pragmatism to his outlook that had resulted in the search for dynamic rather than Gandhian men to serve his cause" (27). Rapid urbanization is one of the reasons for the administration to allow corruption in its offices. In such a situation Kalyan could not understand that the appointment of Dhiraj Singh could bring with it the kind of mayhem that Delhi witnessed never before after independence. He just could not help wondering thus: "If Dhiraj Singh were upright enough to be additional secretary in the external affairs ministry and ambassador to Norway, before that, why should he not be Director of the Institute?" (217).

Impersonal Socio – Political Power -

The way Kalyan has been brought up in his earlier years has been admirably told by Sahgal who is able to trace his growth over the years. If he is what he is today, it is because of the neglect he suffered and starvation he experienced in his childhood days. As is always the case in the political novels of Sahgal, the identity that is required for a human being is quite missing in Kalyan's case. The writer says thus in proof of this lack of the much-needed trait: he grew up "without the ordinary marks of identity" (74). It has been a kind of torment for him, as he is suffering from a sense of terrifying

anonymity. The past is completely unknown to him. It should be remembered that he was found in a street in Patna during the famine of 1914. He looked the famished, grotesque figure much in need of the basic requirements like food, clothing and shelter. His savior finds him in a heap of corpses showing the signs of life for someone to render help to him. The manner in which Kalyan looks at his benefactor is made realistic thus: He looks with "queerly glowing eyes of an animal at bay, one who would spring on a crust if it were thrown but would still keep his distance from his benefactor" (73). His foster parents regarded him as a gift from God. They did not live long to protect him and do what all they can for his growth and development. Naturally Kalyan expresses contempt for them, as they died soon afterwards. Their poor condition is again due to the helplessness and the systematic erosion of values pertaining to humanism. This traumatic condition in Kalyan's early childhood is responsible for the resultant dehumanization in him.

The political climate is not conducive for youngsters like Kalyan. He does not believe in faith and nationalistic ethos. He utterly disregards the Gandhian principles. He is a man who has survived "all sorts of famine – a famine of food and one of feeling" (66). He promotes group interests for his own survival. He believes that the group can achieve what the individual cannot. He even declares that the society needs to be protected from the lonely individual. He has no tinge of consciousness in him which is why he deserts men after using them to his advantage. He has this question to ask, "Whose ego is so sacred that it must flourish at the expense of the community?" (63). They say that man is a political animal, but Kalyan forgets that the group is but a collection of individuals put together. He feels that the group effort needs to be boosted sufficiently in order to see development at the other end. His ruthless efficiency gets born out of his terrifying anonymity. In order to demonstrate his identity he searches for the work of his choice. The trouble with him is that he has the overweening desire in him which pulls him out of any kind of work that he might undertake. In his case there are three motivating forces, which he describes thus: "There are two great motivating forces, it was said, love and hate. But he knew the third, the hunger for identity and in his search for it he had never been able to tolerate one that challenged his own" (132). That the Gandhian spirit is able to bring about the catharsis of the spirit is called as a bluff by Kalyan. In his world suffering is a sin and it needs to be rooted out at any cost. This is the reason for his not joining the freedom movement when the Congress called upon everyone to throw their lot in driving out the Englishmen from this nation. Instead of courting arrest and landing in jail, he preferred the self-imposed exile. During this time he was in Boston and educated the people about India and her struggle for freedom. At this time he could find the two factions going about their business – the idealists and the materialists. Though he is of different mentality, he accomplishes his objectives in life with a maddening concentration and pathological obsession. His mind has always been thinking about the disinherited lot who like him suffer for no fault of their own. He has inherited a strong belief that "In India and in every newly independent country where time had stood still too long, things must move ahead or slide dangerously backward" (63). This backward movement can be arrested only when there is cooperation and united effort on the part of every citizen of the country. There are other characters in the novel who find themselves at the cross-roads. Kailas is a dedicated individual who has the spirit of humanity in him. He for one believes that the human beings should be well-nurtured and taken care of for the complete development of the nation. Kailas is a clear foil to Kalyan. If the latter wants to bring about change at any cost, the former would do so only keeping in mind the welfare of the people. Kailas is a staunch believer in social dynamics which ensures the well-being of everyone in the society. He has the firm belief in the dictum: "The slow way was the only human way" (18). Economic development and industrial progress is not an end in themselves, for things in themselves are incomplete without human intervention and participation. Out of necessity Kalyan is forced to have friendship with Hari Mohan. These two are united for cooperation and convenience rather than for courage of conviction and utility. Like Kalyan, Hari too is pragmatic and is after money and power. The other friend Somnath is a believer in government functioning and not in freedom struggle. He thinks that the country can prosper if only it sheds its faith in non-violence and extricates itself from the post-independent problems.

The opposite camp in Kailas, Abdul Rahman and Prakash Sukla believes in the strength of moral character. If anyone sacrifices the ideal of morality, it will be self-defeating and pave way for further ruin. Serving each other's purpose is the motto with Kalyan and his friends. This sort of alliance can last only till the agreements are mutually beneficial. It is with this motive in mind Kalyan gives the contract of the Peace Institute to Hari's son, Ram Mohan at the exorbitant rate of commission. He bypasses the request of Arjun Mitra and appoints Dhiraj Singh in his place. As the latter has a materialistic attitude and is of corrupt nature, things are bound to deteriorate further. Dhiraj's group is highly immoral and they go about enjoying the opportunities that come their way of stoutness is made obvious when he blows the trumpet of his patron. As one interested in amassing wealth through shares and money from sundry other sources, the father makes a mockery of the idealistic principle in the setting up of a family. She knows that it is "the game of pretence" (150) and realizes that the demands of the society are greater than the desire of a protesting individual like her. In the company of Kalyan Nita's identity gets fulfilled. She is blindly devoted to Kalyan that she feels "what she did here in this office was an offering to Kalyan…it would be disloyal to him to give space to a man like Triloki Nath" (129). This blind acceptance of one who is showy and without any moral scruple is shown as a foil to the spirit of freedom, the pet philosophy of the novelist. Men like Kalyan are after power and worldly influence. They do not have any soft corner for feelings or individual's aspirations. What they seek is comfort and convenience and not any creed or morality. They go for coalition and seek to satisfy their ego disregarding the general conditions in the society. This coalition cannot last long because any time the differences will creep up and on this

account there is all likelihood of this alliance breaking up. As the writer would say, "the carriers embedded in it (coalition) from the start the seeds of destruction" (84). That is why the partnership between Somnath and Hari Mohan is short-lived. Their compressed feelings end in rivalry which finally ruins them once for all. Kalyan is not an exception to this phenomenon. Nita's marriage plans with Vijay fall through because the whole affair is beset with monetary considerations and not the personal happiness that should accompany such events.Nita as an individual is overlooked by her parents. In the case of Hari Mohan, one of the group members in Kalyan's alliance, functions like an opportunist and his role in the fiction is that of a chief exploiter. Finally he succeeds and turns out to be a more accomplished man in all the deals. This getting done, Hari Mohan wants to remove Somnath from power and this exploitation on his part is a clear indication to prove how destructive-minded this man is.

The political developments are there for the asking because of the activities of this villainous group. Kalyan is not given to the easy-going ways and compromise talks among the warring parties. He could not succeed in love matters too and so he remains a bachelor. The love of Barbara and Celia towards him does not click because he is found to be barren and in human in matters of mutual interest. Sahgal sketches him as one affected by urbanization and modern cultural trends based on westernization. It is often pointed out by her that in the political game it is the educationists, civil servants, industrialists, parliamentarians and journalists who rule the roost and it is they who dictate terms to the average man. As this nation comprises a large majority of illiterate and ignorant masses, this elite group decides everything in the country and they can make or mar anything or anybody when it comes to taking chances. It is a changing era which can be noticed through the clash of values. The political scenario is full of opposite viewpoints that cannot sustain a nation as powerfully as the unity and unanimity that sustains it strongly. With the ever-changing attitudes and clashes of value, Sahgal takes the opportunity to intervene and send the message that the concern for the development of the individual and her ways of life on the positive side should become complementary rather than contradictory. It is significant at this stage in the novel that there is recognition of individuality between these two. If there is to be a change for the better and peach should prevail, Kalyan realizes that he should change his stand and forget the past happenings. Sahgal achieves a certain ironic conclusion in making him a changed human being from what he once was to what he now is. If political power is lost, there is a compensation for him in the gain of personal freedom.

****

References:-

1.Sahgal, Nayantara. *This Time of Morning*: Harper Collins, 2008.

2.Krishna Rao, A.V. '*This Time of Morning*: An Assessment' in *Indian Women Novelists*. ed.

3.R.K.Dhawan: Prestige Books, 1991,138.

4.Singh, R.A. *The Novels of Nayantara Sahgal*. Bareilly: Prakash Book Depot, 1984.

5.Sinha, B.P. *Social and Political Concern in the Novels of Nayantara Sahgal*: Book Enclave, 2009.

6.Prabhakaran, S and R.Lakshmi. Social Allegory and Political Parody in the Select Novels of

7.Nayantara Sahgal – *This Time of Morning* and *A Situation in New Delhi'* in *IMPACT*, Vol. 5. Issue 12, Dec. 2017, 119 – 124.

8. Sahgal, Nayantara. 'After Nehru What? A Perspective of A Situation in New Delhi' in *Indian Women Novelists*. ed. R.K.Dhawan. Prestige Books, 1991, 201.

Enhancing Speaking Skills in English Classroom

Dr S.Diravidamani
Assistant Professor, Department of English, Government Arts and Science College, Mettur Dam, Salem.

S. Subha
Research Scholar, Department of English, Government Arts and Science College, Mettur Dam, Salem.

Abstract-There have been some substantial developments all throughout the world during this globalisation era. When people have a strong ambition to achieve something, these mishaps occur. When people clearly discuss their thoughts and views with others, their needs are fulfilled. Consequently, learners must master communication skills in order to achieve their aims, wants, and objectives. Communication skills are extremely important in present world, and mastery of these skills is required for accomplishment in any career. In order to communicate efficiently in this global environment, speaking is the most critical of the four language skills. Because English is broadly spoken everywhere in the world, learners must master its communication abilities in order to succeed in their chosen field. As a result, the classroom is an tremendous place to develop one's communication skills, particularly speaking skills. Instructors must comprehend the issues faced by English language learners and attempt to use several teaching tactics in their class in order to improve their speaking abilities in English classes. The relevance of speaking skills in English classes is highlighted in this paper. First and foremost, this paper emphasises the significance of English language skills. Later in the paper, the necessity of speaking abilities in English classes is explained in detail. It also explains why speaking skills must be taught. The types of speaking circumstances and the major benefits of speaking abilities are described. It also describes why speaking skills must be taught. The types of speaking circumstances and the major benefits of speaking abilities are then thoroughly defined. This paper also provides various approaches for developing speaking abilities of the learners in English courses. Furthermore, it is recommended that ELLs enhance their speaking abilities, as these are critical for them to build a successful future job.

Keyword: speaking, activities, language skills

Introduction- In the present scenario, the whole world has developed a global village, with people communicating in a common language, English. The English language has earned the title of global language due to its widespread use. Technical research, education, business, travel and tourism, media and newspapers, software, medicine, engineering, information and technology, entertainment, banking, and other arenas all use English. English is the most common language used in business.English is one of the core disciplines in schools and colleges, so the learners must acquire a strong training. English learning and teaching have been fast evolving in both beyond the formal education system. As a result, the recent growth of English has necessitated teaching methods that foster effective language relationships. (Van, 2011).

English Language Skills-As English is used for universal communication, most foreign language students aim to acquire it.

They must learn all four basic language skills during this process: listening, speaking, reading, and writing. Listening and reading are called receptive because learners do not determine their ability to do so. They just listen to or read the language deprived of creating anything. Learners, on the other hand, must construct sentences on their own and must practise and learn a variety of skills relating to syntax, vocabulary, and sentence structure. As a result, speaking and writing are regarded as productive skills.

Significance of Speaking Skills

Communication is crucial in today's global environment for realizing achievement in all fields. Language is utilised as a communication tool. Likewise, people cannot accomplish their determinations, ideas, or aims unless they converse efficiently. Consequently, a language stays required to communicate with individual who are spread over the globe. Since English is reflected as an global language and is used all over the world, it is useful for talking with peoples from other regions, states, countries, and continents.

Speaking skill is the most substantial skill to gain when learning a language. Speaking is considered the most crucial of the basic language skills in learning a language. "Speaking is the talent that the students will be graded on the most in real world settings," state Brown and Yuke (1983). Nevertheless of its prominence, speaking skills has been underestimated, and most of the teachers continue to teach speaking skills in the same way they teach dialogue memorization or drill repetition. However, the present world needs students to have communication skills, and English teachers must explain the necessary skills so that they can enhance their speaking talents and function well in real-life circumstances. Despite the fact that employability is more dependent on communication than technology, oral skills are utterly neglected in today's teaching environment. As crucial components of language such as phonological, morphological, semantic, and syntactic features have acknowledged little attention, it has developed a main obstacle for learners to improve speaking skills amongst English novices. Reading and writing skills have received greater attention thus far. After realising the significance of oral communication abilities, more focus is now being placed on improving learners' speaking skills so that they can complete their education and flourish in their field. Moreover, English is the language of chance for employment and success in attaining life's envisioned objectives.Speaking appears to be the most challenging of the four basic skills of the English language since speakers must write sentences on the outgrowth of the moment. It is extremely hard for the second language learners to write sentences without first mastering grammatical structures and a sufficient vocabulary. As a result, English language learners have a difficult time speaking proper sentences in English. Because speaking skills are so important in communication, people attempt to acquire them in order to converse effectively with people all over the world.

All learners who need to develop their job, develop their profession, build confidence, get improved job ventures, give public speech, appear for interviews, participate in debates and discussions, give presentations and so on must have strong speaking skills. In the present world, everything is dependent on one's ability to communicate. A person with a good speaking ability can overcome the entire globe. Ensuring good communication abilities is identification to improved job prospects. Interviews set potential candidates' true abilities to the test through group discussions, debates, and presenting skills.

What are the benefits of teaching speaking skills in English classes?

In order to realise one's needs and turns worldwide, we must share our ideas and thoughts with individuals all over the world. This is a modest world, and all English language learners wants to improve one's speaking skill in order to participate in it. Furthermore, the majority of job decisions are made primarily on a person's communication skills, notably their ability to talk**.** In our communication, speaking is employed twice as frequently as reading and writing, says Rivers. People do spend more time speaking than reading and writing, which is accurate. As a result, English teachers must choose new ways to focus more on strengthening ELLs' speaking skills.

Furthermore, these speaking abilities can help professionals advance in their careers. Likewise, these speaking skills are especially essential for people who work in business groups to market their companies. Excellent, remarkable, and amazing presenters are also well-known for motivating and inspiring their audiences. Because speaking abilities are so important in so many areas, learners should focus more on them. Moreover, teachers are instructed to employ a variety of effective tactics in their classrooms to encourage students to focus more on learning speaking abilities in their classes. Hedge, T. (2000) focuses that teacher with a solid foundation in present theories and practises in English language classes. It can help one to progress professionally, regardless of how much experience as a teacher has. It accomplishes this by encouraging to consider many opportunities and problems that teaching technique brings, and then apply what one have learned to their own teaching.With just a little regular practise, students can significantly improve their speaking abilities. They will then be able to contribute effectively in classroom discussions, presentation and debates, as well as progressively improve their speaking abilities. They will be able to give presentations on their own, free of whatever worries they may have experienced previously. They can deliver short speeches in the classroom with consistent practise of these skills. Furthermore, they gain confidence and improve their decision-making and problem-solving skills. Students can also build strong commercial partnerships with others and effectively uphold their company.Besides, students do better in job interviews, ensuring that they have the finest occasions to settle down in their careers. They can also work effectively with others and want to advance in their careers. As a result, speaking skills are critical in the development of students overall performance.

The Benefits of Speaking Skill-Even though there are four additional skills, speaking skills are the most efficacious because speech is used for the majority of communication. As a result, the most significant mode of communication is speech. Although mastery of each skill is required to become a well-

versed communicator, the capability to talk successfully offers speakers with numerous advantages. The key benefits of speaking abilities are:To actively partake in classroom activities.On various occasions, offer a first and splendid speech.To actively partake in debates, presentation and group discussions.To pursue higher education at overseas.To increase product sales in the business; To improve employment prospects.As speaking skills have so many benefits, English teachers can focus more on them and give them top priority because they are so important for the overall improvement of students' performance. As a result, teachers must consider a variety of speaking tactics and approaches in order to help students develop their communication abilities, which is the most important in today's world.

How can students improve their speaking skills?-

In the present scenario, it is necessary to highlight people's oral communication abilities, as the true achievement of their ability is determined by how they convey their speaking abilities and persuade others. Because everything hinges on encouraging and gratifying listeners, employers, co-workers, and consumers, speaking abilities play a critical role in all facets.

As a result, teachers must be aware of the current state in society and attempt to inspire these speaking abilities in their students using the most up-to-date teaching strategies. In this regard, teachers must replace traditional methods and approaches with new and inventive ones that capture the learners' full attention and encourage them to join actively in the activities that take place in English classes. Jonathan M. Newton, I.S.P. Nation (2020). Uses a framework based on teaching and learning concepts, presents a plethora of suggestions for assisting learners at all levels of proficiency increase their listening and speaking.

The teachers can then introduce various activities to the classes, such as "Think Pair and Present," by using their own examples. As a result of their professors' enthusiasm, the students continue to speak about themselves because whatever they say is a fact that has already been recorded in their memory. Teachers might then spread this activity by testing students to talk about their memorable moments, inspired person. As a result, these activities provide learners with a fun opportunity to improve their speaking skills.

Conclusion-

The objective of this study is to highlight the significance of speaking abilities in English classes. First and foremost, the need of fundamental English language abilities has been thoroughly highlighted. In addition, the importance of teaching speaking skills in the classroom has been demonstrated. Later on, the many types of speaking circumstances and the major benefits of speaking abilities were discussed.Speaking skills are the utmost crucial abilities for the students because they allow them to show their communication abilities for a several purposes. As a result, teachers must take a interest in helping the students to improve their speaking skills. Teachers should also select material that is appropriate for the students' abilities. Furthermore, teachers should motivate students to participate in classroom presentation, group discussion and debates, which will greatly improve their speaking skills. Additionally, learners must establish opportunities for speaking not only in the classroom but also outside of it. Besides, students must follow their teachers' instructions in order to improve their speaking abilities. The suggestions will be helpful the students, so they must sincerely use them in order to communicate effectively in all situations.

****

Reference:-

1. Barnes, Rob. 2006. *The Practical Guide To Primary Classroom Management*. Paul Chapman Publishing.
2. Hedge, T. (2000). Teaching and learning in the language classroom. Oxford: Oxford University Press.
3. Jonathan M. Newton I.S.P. Nation (2020). Teaching ESL/ EFL listening and speaking. New York: Routledge.
4. Rivers, W. M. (1978). Teaching foreign language skills. London: University of Chicago Press.
5. Van, H. (2011). The current situation and issues of the teaching of English in Vietnam. 22(1). https://adeprimarora.wordpress.com/2015/02/11/the-components-of-speaking-skill/

संत रविदास जी के विचार

रविदास. 15वीं शताब्दी के कवि. "मन चंगा तो कठौती में गंगा", लिखा. और साफ़ किया कि भगवान और मंदिर की ज़रुरत इंसान को रोटी और मानवीयता से ज्यादा नहीं है. कई बातें और कई चीज़ें हैं. अपने लिखे में ईश्वर को मानने की बाध्यता और आडंबर से समाज को मुक्त किया. और देखते-देखते रविदास को संत रविदास कहा जाने लगा. बहुत से लोग उनके समर्थक हो गए. और समर्थकों को कहा गया रैदासी. यूपी, दिल्ली, हरियाणा और पंजाब तक रैदासियों की रिहाईश हुई. और हर साल देश भर से तमाम रैदासी रविदास जयन्ती के दिन उनके घर बनारस में जुटते हैं. रविदास ने आंदोलन के तहत कविताएं लिखीं. अभी बात उनके कुछ फेमस दोहों की-

1.

ब्राह्मण मत पूजिए जो होवे गुणहीन,
पूजिए चरण चंडाल के जो होने गुण प्रवीण

[किसी व्यक्ति को सिर्फ इसलिए नहीं पूजना चाहिए क्योंकि वह किसी ऊंचे कुल में जन्मा है. यदि उस व्यक्ति में योग्य गुण नहीं हैं तो उसे नहीं पूजना चाहिए, उसकी जगह अगर कोई व्यक्ति गुणवान है तो उसका सम्मान करना चाहिए, भले ही वह कथित नीची जाति से हो.]

2.

कह रैदास तेरी भगति दूरि है, भाग बड़े सो पावै
तजि अभिमान मेटि आपा पर, पिपिलक हवै चुनि खावै

[ईश्वर की भक्ति बड़े भाग्य से प्राप्त होती है. यदि आदमी में थोड़ा सा भी अभिमान नहीं है तो उसका जीवन सफल होना निश्चित है. ठीक वैसे ही जैसे एक विशाल शरीर वाला हाथी शक्कर के दानों को नहीं बीन सकता, लेकिन एक तुच्छ सी दिखने वाली चींटी शक्कर के दानों को आसानी से बीन सकती है.]

3.

जा देखे घिन उपजै, नरक कुंड में बास
प्रेम भगति सों ऊधरे, प्रगटत जन रैदास

[जिस रविदास को देखने से लोगों को घृणा आती थी, जिनके रहने का स्थान नर्क-कुंड के समान था, ऐसे रविदास का ईश्वर की भक्ति में लीन हो जाना, ऐसा ही है जैसे मनुष्य के रूप में दोबारा से उत्पत्ति हुई हो.]

4.

मन चंगा तो कठौती में गंगा

[जिस व्यक्ति का मन पवित्र होता है, उसके बुलाने पर मां गंगा भी एक कठौती (चमड़ा भिगोने के लिए पानी से भरे पात्र) में भी आ जाती हैं.]

5.

करम बंधन में बन्ध रहियो, फल की ना तज्जियो आस
कर्म मानुष का धर्म है, सत् भाखै रविदास

[आदमी को हमेशा कर्म करते रहना चाहिए, कभी भी कर्म के बदले मिलने वाले फल की आशा नही छोड़नी चाहिए, क्योंकि कर्म करना मनुष्य का धर्म है तो फल पाना हमारा सौभाग्य.]

Sociological Aspects in Amitav Ghosh's Sea of Poppies

Dr.T.S.Geetha
Associate Professor of English,
J.K.K. Nattraja College of Arts & Science,
Natarajapuram, Komarapalayam, Tamilnadu.

Ms.T.Thenmozhi
Ph.D., Research Scholar
Periyar University, Salem
Tamil Nadu.

Abstract-

The paper traces the socio-cultural circumstances of nineteenth century India and the broad principles of the citizens as presented in Amitav Ghosh's *Sea of Poppies*. The interpretation is repeatedly dictated by two massive events- the events leading to the major Opium War and the Golden Triangle service between India, China and Britain and the gigantic immigration of the peasants to the cultivated area in the British colonies. In presenting the observations of opium service and indentured labour in nineteenth century India under magnificent ruling, Ghosh has brought to glow the collective conditions of the phase and also the position of women in a male dominated society. Women in initial India were held in renowned regard. The paper critiques the Indian banal powers which were deliberately patriarchal, feudal and anti-feminist in environment.

Keywords- Colonialism, Hypocrisy, Disagreement, Annoyance, Patriarchal, Untouchable.

Introduction

Literature as a revelation of evolution mirrors the common existence and the authority of the time it represents. Literature also reflects the tendencies and concerns of the period. The strength of enquiry and criticism, blessed indecision and the influence for communal fairness that apparent the Victorian time is reflected in the renowned works of the moment. The two world wars construct the recital of recent juncture and as a significance man's misplaced self-confidence in conservative morals, require of eagerness and a statement of resentment on the unreceptive realities of endurance are renowned in present British literature.

The communal, ability and spiritual predisposed and innate problems that were busy in the overflow of self-government connection drew the contemplation of the inventive writers of the post independent era. The works of Ghosh are pleased with predisposed, sequential and collective understanding and are clear by themes that go away side by exterior with colonialism.

Deeti, Opening Character -

Sea of Poppies is a sequential novel that opens in 1838 on the eve of the opium wars. Deposit in Eastern India and the Bay of Bengal, the representation begins with the commencement of a former slave ship Ibis at Ganga-Sagar Island. The novel is estranged into three parts- land, river and sea. The most important separation presents the conditions that get the characters to the boat. In the subsequently division when the boat is moored in the channel lock to Kidderpore, everybody these characters acquire into the boat by plentiful caress of fortune or further. In the ending dissection they obtain to locate the method the Ibis to an innovative survival that awaits them in Mauritius.Deeti, the opening character to be introduced is a childlike mother from a slight community, fifty miles east of Benares, in the northern locale of Bihar. Deeti's husband Hukam Singh works in the Ghazipur opium factory. He had been wounded in the leg at the same moment in time as serving as a sepoy in the British deputation and in growth overwhelming opium to alleviate him off the tenderness that was caused by the disagreement wounds but it ruined up in a convention to the rehabilitation. This tradition gradually kills him and Deeti is appreciative by the mutual tradition and her relations to immolate herself in her husband's committal pyre for a sati in the relations would generate them famous. She is saved by Kalua, the ox-cart driver ran uninjured from the leather-worker's common compilation who takes her buddy to the industrial component all day. They run away from their rural group of populace but to their sickness they find out that the irritation of her connections has not subsided. They were in gaze for of Deeti and Kalua who had brought dishonor to the relatives. The couple had no other option but to run away the situation and they come to an end up in Ibis which is on its technique to Mauritius.

Destiny of Deeti

The most important severance exposes the economic and shared expenditure of the rustic folk, injustice meted out to the occupied and the predicament of concealed classes and castes in India. Deeti and Kalua are available as wounded of the documented common practices and beliefs. There was an assurance that the stars underneath which they were common had a massive power on one's existence. Deeti's destiny was ruled by her celebrity, Saturn or Shani which was hypothetical to acquire distinction, sorrow and divergence. With this darkness darkening her view Deeti did not have well-known view about her wedded survival and the view of marrying a disabled man did not trouble her. But as feared her wedding brought simply anguish as buddy was not simply unbearable but too powerless. He showed refusal perceive in her other than was eternally in a situation of lazy, opium induced somnolence.

Deeti is astonished to study that to protector the family's respect she has been impregnated by her brother in law in an opium induced circumstances and this unskilled bear out was completed with the help of her mother-in-law. People admiration was measured other important than the high opinion owing to a woman. The location of women in the pre- independent Indian civilization is portrayed from end to end the subsistence of Deeti and that of the supplementary women characters. Women in aged India were detained in prominent approval. Deeti's father had to thatch the summit of her groom's house as a part of her gift. He did not find objectionable the expenses though he could poorly expend for it.

Patriarchal Society

Deeti is impregnated by her brother in law on her wedding night as the accuse of the revolutionary bride was unnamed to cause an heir for the relations. The possessions of a gentleman who does not have a man heir would mechanically be inborn by his brother. Being the mother of a girl child, Deeti has no alternative of holding her husband's ground after his death. She decides to give up her dead body in the commemorative service pyre for terror of powerful accretion of her position and possessions by her brother-in-law after her husband's grief and to run away from her brother-in –law's sexual frustration. Women were wedded to men, much older to them to origin a chap successor such is the case with Harmony, Nob Kissin's widowed aunt. It was a patriarchal society in which women did not have autonomy of their personal. They were identified either with their father, husband or kids. Mistreatment of women was many-sided. They were subjected to substantial, sexual and touching ill-treatment.

Not only is Deeti raped on her marriage night by her brother-in-law, but with her husband in his remembrance bed, she is also subjected to sexual annoyance by him. His advances were so violent that she feared, he may assault her, true on her husband's bed. Malati, the wife of Neel is a usual fatality who performs her duties as a wife and mother lacking any view. Her ache is poignant but as a peculiarity Indian buddy, she never complains or questions her husband's organization with his mistress Elokeshi. Neel's mother was also deserted by her husband and she lived a protected in a depressed partition of the fort while he enjoyed with his mistresses, giving in to their nervousness which resulted in the increasing up of his debts.

When she got misplaced he deserted her and subsequent little months, she came to distinguish that her husband had married once more. Dookhanee a convict of the boat had signed as a laborer immobilized to stand the oppressions of her vigorously rude mother-in-law. Munia was bitter by a representative from the opium factory and when he learnt that she had decided freedom to a baby, he set flames to her residence that killed her father, mother and kid.

Muteness of Women -

When Paulette tells Zachary the technique she was treated by Mr.Burnham, Zachary is reminded of his mother, the slave lady who was sexually conquered by his father, the white undeveloped estate owner. She had told him how as a young kid of fourteen she had stood wobbly at the entry to his hut in the wooded area that he kept for coverlet his slaves. Her feet were unenthusiastic to go when aged Mr.Reid told her to finish her grieve and get over to the chesterfield. These incidents not simply portray the heartless expansion of women but also the "muteness" of women in the society. Taramoni, a juvenile widow had to squander her widowhood in solitude and recompense as per the desire of her husbandThe confirmation of the afflictions and humiliations to which Kalua is subjected speaks of the pathos of an untouchable's endurance in pre-independent India. Kalua the ox-cart driver was of the leather-workers' class and so was measured an invulnerable. Hukam Singh as a high-caste Rajput supposed that the tremendously sight of a being of low- social bunch would promise terrible account. The depressed living conditions of the out-caste and the sub human being deed they were subjected to be honestly portrayed all through the continuation of Kalua. The untouchables were not permissible to have their dwelling in the grounds of the society. Kalua lived in the chamar- basti a collection of huts populated only by the chamars.

Unreasonable Beliefs and Practices -

When Neel's forged possessor is a trial, a supplication is submitted on his behalf to assuage his decision as the chastisement would cause himself, his wife and innocent child to lose dissection and be shunned and disliked by their kinsmen. Inter – caste marriages and inter-religious marriages were calculated as collective taboos. Jodu a Muslim is condensed to the directory of grief when he is found with a Hindu girl. An outcaste marrying a woman of prominent class was considered to be a cruel offense than annihilation. Zachary wonders why he has to be punished two times for the similar offence. The novel also presents the unreasonable beliefs and practices in the society. People were steeped in illogical beliefs. Deeti believed it dreadful aptitude to demonstrate balanced pictures of citizens who were living. The walls of her consecrated location had portraits of two brothers and a sister who had died in their unfortunate days but her relatives who were living were represented by animated imagery.

Conclusion

To leave the dishes dirty during the night was hypothetical to ask an assault of ghosts and starving peaches and so Deeti goes to acquire water from the brook at night when she saw Kalua being mortified by the zamidars. Certain things and food items were cautious to be optimistic while impure things were vigilant to be shady. At the conclusion of the trading period, when the ships returned from China, Mr.Burnham visited the Raskhali Rajbari with money, gold and concerned gifts like saffron and areca nuts. As Neel was prepared to be taken to the courtyard, he was made to eat a meal that composed of unlike kinds of positive foods. Parimal tranquil prepared positive that the constables who accompanied Neel were of Hindus of towering caste.

Amitav Ghosh has rendered a straightforward depiction of 19th century Indian culture with its beliefs, customs and common problems like deficiency and the marginalization of a challenging group of population in the last name of caste. The work of literature also brings to blaze the male supremacy in a patriarchal group and the resulting demotion of women to a small situation.

****

References-

1. Abrams, M.H. *A Glossary of Literary Terms*. Singapore: Thompson, 1999.
2. Barry, Peter. *An Introduction to Literary and Cultural Theory*. 2nd ed. Manchester:
3. Manchester UP, 2002.

Factors influencing The Consumer Behavior While Using Mobile Apps

Dr.T.Sarathy
Associate Professor, Department of Management Studies, Periyar University,

Vignesh P.
Research Scholar, Department of Management Studies, Periyar University, Salem

ABSTRACT
Mobile apps partake changed the commercial environment. The hasty improvement of expertise & the utilization of mobile apps become considerable and plays a prominent role in today's livelihood. even though the mounting amount of make inquiries on mobile apps usage, very few diminutive factors are well-known for the role it plays in influencing mobile user behaviour. Mobile apps business has witnessed extraordinary development and is developing as a widespread tool amongst marketplace. Experts state that they can straight get associated with clients with just a solitary connect. This study explores the factors affecting consumer behavior in mobile apps and the risk factors which affects the consumer and the level of usage of mobile apps by consumers.

Keywords: Mobile App, Digital Consumer Behaviour, App Market.

INTRODUCTION- Industry experts project that by 2015, sales from mobile apps would reach $38 billion **(Bilton, 2011)**. Technology existed before to the creation of the Apple app store, and global companies are now using it to improve customer connections **(Yang, 2013)**. Mobile applications consume wedged consumers' routines more than the historical the minority centuries **Kim, et al (2013) and Yang (2013),** Custom mobile applications are used by customers in a variety of situations and for a variety of tasks – such as purchasing things, finding locations, reviewing offers, and participating in tournaments – to improve and simplify their everyday lives. The attention to detail is also maintained via Artificial Intelligence **Bellman et al, (2011)** Because the customer interacts with the brand when using mobile applications, they become the main blocks of advertising. The creation of unique brand experiences to engage customers in a more effective manner is one of the primary potential that mobile applications can bring **(Kim, et al., 2013).**

LITERATURE REVIEW - The adoption or non-adoption of mobile applications, as well as the elements that influence it, can be better understood in light of the speculative models given in the previous inquiry line. The TAM (technology acceptance model) presented by **Davis (1989)** To be more specific, perceived usefulness and perceived ease of use are two important antecedents to using technology. Perceived utility was strongly influenced by perceived ease of usage **(Aboelmaged & Gebba, 2013)** In a study of customer satisfaction with Internet banking, perceived utility emerged as a more relevant predictive variable than perceived convenience. Mobile applications are adept at catering to nearly every aspect of an individual's life and revolutionising many aspects of society in this new -fangled era of smartphones **(Hsiao, Shu, and Huang 2017).**Manifold pieces of training, there's a straight correspondence between operation use and guests' conduct – the more switching the operation, the further clients will devote **(Science Daily, 2020).**Mobile operations (apps) continue to produce. The non - fiction on mobile apps is amassing sideways with this evolution, but the aqueducts of exploration are still largely varying and fractured. A comprehensive and concise assessment is required to assist researchers and interpreters in understanding (a) the demise of existing mobile applications and (b) consumer provocations, stations, and attitudes regarding mobile apps. They were then assessed using a systematic review technique that included an interpretation-based assessment of the study methodology and major results. For directorial and scholarly counteraccusations, unborn exploration directions are also proposed. The post-adoption phase includes all client actions after relinquishment and ongoing app operations, such as stickiness — i.e., the desire to keep using the app and the frequency with which it is used **(Racherla, Furner and Babb 2012).** Consumer in mobile settings is decreasingly important, as consumers use mobile bias more constantly. This is particularly intriguing in shopping surroundings. Regulars prefer to stick with their current service wage-earner as long as they have no compelling reason to change **(Kuo et al., 2013).** Customers who are accustomed to a certain consuming pattern may not be inspired to look for alternatives **(Cheng et al., 2011).** Thus, this study recommends that inactivity is a dangerous limiting influence affecting customers with intent.

Mobile shopping refers to marketable happenings led by consumers completing the practice of transportable plans and itinerant net **(Ko et al., 2009).** Customers may not be encouraged to look for alternatives since they are accustomed to a certain consumption pattern **(Cheng et al., 2011).** Thus, inertia is a significant deterrent factor impacting customers' switching intentions. Mobile phones fear a loss of support owing to the lack of a physical card, and they are typically resistive to entrenched apps, according to this study. When customers do not switch, they may be dissatisfied with the service provided by the company's brand relationship. In response to shifts in mobile services, businesses have been working to develop new marketing, advertising, and promotion strategies **(Heo & Kim, 2016).** Smartphone applications are end-to-end software programmes that lubricate negotiations, promote a certain product, and run on specific operating systems **(Dube &Helkkula, 2015).** Because it offers both a class card called "Starbucks card" and a mobile application app called "Starbucks," Starbucks has remained secondary as an exploring environment **(Hyeuk, 2016).** Position-specific, wireless, and moveable dispatches are provided by mobile media **(Kim et al., 2015).** In terms of offering druggists the capability, location-grounded services employ position technology, such as the global positioning system, to provide value-added services **(Xu et al., 2009).** Locatability refers to the finest information and amenities that druggists may get based on their

location **(Zhou, 2013).**

OBJECTIVES OF THE STUDY-To study about the mobile apps and their categories.To analyze the factors affecting consumer behavior in mobile apps.To access the risk factors associated in influencing the consumer behaviour.

RESEARCH METHODOLOGY -

A quantitative survey was designed consisting of 11 questions. It was divided into three sections 1) Demographics Profile of the respondents; 2) various categories of Mobile applications;3) factors affecting consumer behavior in mobile apps. The exploration and implementation was piloted on an undersized sample of students and a few minor revisions were made. Later the survey was administered using the online survey tool. A Survey link is given to the students through Whatsapp link, google forms and mail. Proportionate stratified sampling was used in the research, and a sample of 281 participants were collected.

FINDINGS AND DISCUSSION-The sample consisted of more males (53 percent) than female participants (47 percent) as the number of male workers is greater than female participants. The age of the respondents ranged from Above 18. The results are presented in Table1.

Table1: Demographic Profile of the Respondent

	Variable	Classification of the variables	Frequency	Variable
	Gender	Male	149	53.0
		Female	132	47.0
	Age	18-20	76	27.0
		21-24	84	29.9
		Above 25	121	43.1
	Year of Experience	Below 1 Year	76	27.0
		1-5	84	29.9
		5-10	121	43.1
	Designation	UG Students	61	21.7
		PG Students	142	50.5
		Research Schoars	78	27.8
	Marital Status	Married	101	35.9
		Unmarried	180	64.1
	Area of Residency	Urban	147	52.3
		Rural	134	47.7
	Level of Usage of SocialMedia app	Whatspps	91	32.4
		Instagram	36	12.8
		Facebook	91	32.4
		LinkedIn	41	14.6
		Twitter	22	7.8

Hypothesis: -There is no significant difference between the Risk of using mobile apps and the designation of the respondents. Various factors are discussed among the respondents for risk of using mobile apps. The risk factors include Purchase Intention, Sharing Intention,Perceived Risk, Post Purchase, .

Convenience Risk and Consumer Perception

Table 2: Difference between Risk factors and designation of the respondents

ANOVA						
		Sum of Squares	**df**	**Mean Square**	**F**	**Sig.**
Purchase intention	Between Groups	17.216	2	8.608	7.612	**.001**
	Within Groups	314.386	278	1.131		
	Total	331.601	280			
Sharing intention	Between Groups	10.015	2	5.007	3.561	**.030**
	Within Groups	390.875	278	1.406		
	Total	400.890	280			
Perceived Risk	Between Groups	19.323	2	9.662	47.136	**.000**
	Within Groups	56.983	278	.205		
	Total	76.306	280			
Post-purchase.	Between Groups	1.208	2	.604	.616	.541
	Within Groups	272.393	278	.980		
	Total	273.601	280			
Convenience Risk	Between Groups	19.323	2	9.662	47.136	**.000**
	Within Groups	56.983	278	.205		
	Total	76.306	280			
Consumer Perception	Between Groups	5.427	2	2.713	6.012	**.003**
	Within Groups	125.470	278	.451		
	Total	130.897	280			

Significant at 0.05% level

INTERPRETATION-

From the above table it is interpreted that among all the factors relating to that of using mobile apps, Purchase intention , Sharing intention, Actual use behavior, Post-purchase evaluation by the marketer, Convenience Risk, Consumer Perception are all significant value less than the "P" value. Post-Purchase is significant value greater than the "P" value**Fig 1:**Represents the Level of usage of social media mobile apps (Whatsapp, Instagram, Facebook, Linkedin, Twitter). Usage of WhatsApp percentage is 90%, Instagram 35%, Facebook 90%, Linkedin40%, Twitter 25%.

Fig 1: Level of usage of Social Media Apps

There is no correlation between Gender and Various category of mobile apps-Gender- G ,Weather- C1, Social Networking – C2, News – C3, Banking/ Finance – C4, Dining/ Restaurant – C5, Sports– C6, Video/ Movies– C7, Travel– C8, Lifestyle/ Health– C9, Household/ Personal Care - C10 PC- Pearson Correlation

Table 3: Correlation between the Gender and Various category of mobile apps

significant at 0.05% level

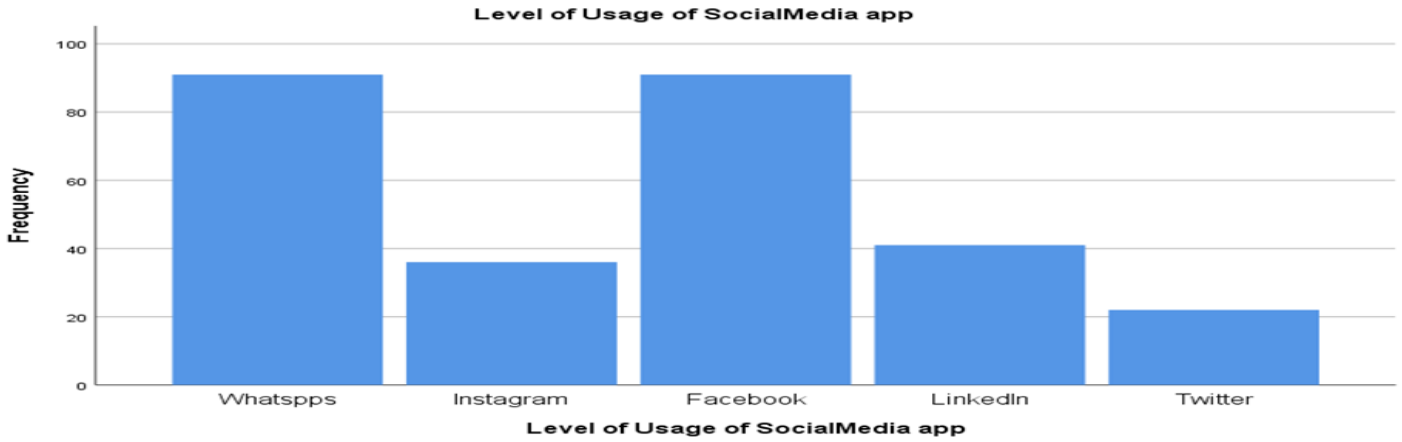

		G	C2	C4	C6	C8	C9	C10	C12	C13	C14	C15
G	PC	1										
	Sig. (2-tailed)											
	N	281										
C2	PC	-.210**	1									
	Sig. (2-tailed)	**.000**										
	N	281	281									
C4	PC	-.018	.383**	1								
	Sig. (2-tailed)	**.759**	**.000**									
	N	281	281	281								
C6	PC	.091	-.013	.034	1							
	Sig. (2-tailed)	.126	.832	.568								
	N	281	281	281	281							
C8	PC	-.416**	.036	.314**	.263**	1						
	Sig. (2-tailed)	**.000**	**.550**	**.000**	**.000**							
	N	281	281	281	281	281						
C9	PC	.154**	.254**	.431**	-.110	.113	1					
	Sig. (2-tailed)	.010	.000	.000	.066	**.059**						
	N	281	281	281	281	281	281					
C10	PC	-.219**	-.025	.340**	.247**	.714**	.393**	1				
	Sig. (2-tailed)	.000	.679	**.000**	**.000**	**.000**	**.000**					
	N	281	281	281	281	281	281	281				
C12	PC	-.532**	.080	.193**	.589**	.601**	-.162**	.389**	1			
	Sig. (2-tailed)	**.000**	.181	**.001**	**.000**	**.000**	**.006**	**.000**				
	N	281	281	281	281	281	281	281	281			
C13	PC	.301**	.018	-.079	-.283**	-.218**	.462**	-.125*	-.457**	1		
	Sig. (2-tailed)	**.000**	.768	**.188**	**.000**	**.000**	**.000**	**.036**	**.000**			
	N	281	281	281	281	281	281	281	281	281		
C14	PC	-.141*	.037	.270**	.657**	.355**	-.115	.264**	.763**	-.329**	1	
	Sig. (2-tailed)	**.018**	**.532**	**.000**	**.000**	**.000**	**.054**	**.000**	**.000**	**.000**		
	N	281	281	281	281	281	281	281	281	281	281	
C15	PC	.007	.002	.136*	-.228**	.026	.640**	.104	-.122*	.360**	-.232**	1
	Sig. (2-tailed)	.910	.967	.023	.000	.662	.000	.082	**.040**	**.000**	**.000**	
	N	281	281	281	281	281	281	281	281	281	281	281

INTERPRETATION-There is no significant relationship between Gender and the Various category of using mobile apps represented Weather, Social Networking, News, Banking/ Finance, Dining/Restaurant, Sports, Video/ Movies, Travel, Lifestyle/ Health, Household/ Personal Care. All the categories are less than the significance level of 0.05%.

SUGGESTIONS -This Paper discusses about the demographic factors which influence the consumer behaviour in the segment of mobile apps. Mobile phones became a part of our life and are also essential to be a part of social society nowadays. All the facilities are provided by the mobile apps which previously was provided by websites. Therefore also enhanced features are provided by mobile apps with advanced technology. From the frequency table, the data of the respondents were tabulated for better understanding and the level of usage of social media apps is taken as a sample to ellaborate the study. The category of social media proves that a consumer uses more than one social media app. From the Anova table, it is determined that various risk factors like Purchase Intention, Sharing Intention,Perceived Risk, Post Purchase, Convenience Risk and Consumer Perception are having different siginificance with respect to demographic groups. Then the correlation table leads to the decision that gender does have a very little impact on the category usage of mobile apps.

CONCLUSION-Mobile apps have become a popular medium to share and promote all business activities which is prominent in making digital business a huge success. So there is a need to understand the factors and risk associated with the mobile apps. This paper focused on the demographic factors influencing the consumer behaviour in the context of mobile apps, which is proved to have an impact. All booming mobile trends such as AR, AI, IoT, etc appears to take the mobile apps to next level where mobile app could achieve a better usage. So there is a need to understand the factors and risk associated with the mobile apps.

****

REFERENCE:-

1. 5 Clever Ways to Increase Mobile App Reviews. (2020, January 24). Retrieved from https://neilpatel.com/blog/increase-mobile-app-reviews/@bradrtuttle, B. T. (2012, February 3).
2. Aboelmaged, M., & Gebba, T. R. (2013). Mobile banking adoption: an examination of technology acceptance model and theory of planned behavior. *International journal of business research and development*, *2*(1).
3. Bilton, N. (2011). Mobile app revenue to reach $38 billion by 2015, report predicts. *New York Times*.
4. Brasel, S. A., & Gips, J. (2014). Tablets, touchscreens, and touchpads: How varying touch interfaces trigger psychological ownership and endowment. *Journal of Consumer Psychology*, *24*(2), 226-233.
5. Cheng, C. C., Chiu, S. I., Hu, H. Y., & Chang, Y. Y. (2011). A study on exploring the relationship between customer satisfaction and loyalty in the fast food industry: With relationship inertia as a mediator. *African Journal of Business Management*, *5*(13), 5118-5126.
6. Davis, F. D. (1989). Perceived usefulness, perceived ease of use, and user acceptance of information technology. *MIS quarterly*, 319-340.
7. Dube, A., & Helkkula, A. (2015). Service experiences beyond the direct use: indirect customer use experiences of smartphone apps. *Journal of Service Management*.
8. Exceeding the requirements of the Trust Economy. (2018, August 11). Retrieved from https://www.cmocouncil.org/thought-leadership/reports/exceeding-the-requirements-of-the-trust-economy
9. Heo, J., & Kim, K. (2016). Development of a scale to measure the quality of mobile location-based services. *Service Business*, *11*(1), 141-159. doi: 10.1007/s11628-016-0305-6
10. How to Successfully Change Your Brand Perception. (2020, January 14). Retrieved from https://www.qualtrics.com/experience-management/brand/changing-brand-perception/
11. Hsiao, K. L., Shu, Y., & Huang, T. C. (2017). Exploring the effect of compulsive social app usage on technostress and academic performance: Perspectives from personality traits. *Telematics and Informatics*, *34*(2), 679-690.
12. Hui, S. K., Inman, J. J., Huang, Y., & Suher, J. (2013). The effect of in-store travel distance on unplanned spending: Applications to mobile promotion strategies. *Journal of Marketing*, *77*(2), 1-16.
13. Hundreds of Android Apps Containing Dress Code Malware Hiding in Google Play Store. (2020). Retrieved from https://us.norton.com/internetsecurity-emerging-threats-hundreds-of-android-apps-containing-dresscode-malware-hiding-in-google-play-store.html
14. Chung, H. (2015). Consumer brand engagement by virtue of using Star bucks s Branded Mobile App based on grounded theory methodology. *International Journal of Asia Digital Art and Design Association*, *19*(4), 91-97.
15. Kim, H. W., Kankanhalli, A., & Lee, H. L. (2016). Investigating decision factors in mobile application purchase: A mixed-methods approach. *Information & Management*, *53*(6), 727-739.
16. Ko, E., Kim, E. Y., & Lee, E. K. (2009). Modeling consumer adoption of mobile shopping for fashion products in Korea. *Psychology & marketing*, *26*(7), 669-687.
17. Kuo, Y.-F., Hu, T.-L., & Yang, S.-C. (2013). Effects of inertia and satisfaction in female online shoppers on repeat-purchase intention. Managing Service Quality, 23(3), 168-187. DOI: http://dx.doi.org/10.1108/09604521311312219
18. Olenick, D. (2020). World Health Organization warns about coronavirus phishing scams. *https://www. scmagazine. com/home/email-security/world-health-organization-warnsabout-coronavirus-phishing-scams/>. Accessed on*, *6*, 2021.
19. Perez, S. (2016). Nearly 1 in 4 people abandon mobile apps after only one use. *TechCrunch*.
20. Peter, J. P., & Ryan, M. J. (1976). An investigation of perceived risk at the brand level. *Journal of marketing research*, *13*(2), 184-188.
21. Racherla, P., Furner, C., & Babb, J. (2012). Conceptualizing the implications of mobile app usage and stickiness: A research agenda. *Available at SSRN 2187056*.
22. Reasons Why You Shouldn't Trust Online Reviews. Retrieved from https://business.time.com/2012/02/03/9-reasons-why-you-shouldnt-trust-online-reviews/
23. Tang, A. K. (2019). A systematic literature review and analysis on mobile apps in m-commerce: Implications for future research. *Electronic Commerce Research and Applications*, *37*, 100885.
24. Xu, H., Teo, H. H., Tan, B. C., & Agarwal, R. (2009). The role of push-pull technology in privacy calculus: the case of location-based services. *Journal of management information systems*, *26*(3), 135-174.
25. Zhou, T. (2013). An empirical examination of user adoption of location-based services. *Electronic Commerce Research*, *13*(1), 25-39.

Chemmeen: The Illustration of Haziness in Human Life through Film Adaptation and Translation

T.P.Remadevi
Ph.D. Research Scholar (P.T.)

Abstract- The film adaptation is the relocation of a written work to a characteristic motion picture in whole or in part. A common form is using a novel as the basis of a feature film. It also gets used to other works such as non-fiction, autobiography, comic books, plays, and historical sources. Thakazhi Sivasankara Pillai, a novelist, wrote the novel *Chemmeen*, translated into a film in 1956. Anita Nair also translated it into English and Russian, German, French, and Italian. The novel is about forbidden love. It revolves around the sufferings and myths of the fisherman community in coastal Kerala in southern India.

Keywords: Film Adaptation, Class Discrimination, Women's Struggle, Social Conflict.

The novelist Thakazhi Sivasankara Pillai was born in the village of Thakazhi, in Kuttanad, Alappuzha district of Kerala. He began to engrave the stories when he was a school-going boy. He always viewed the tyrannised classes as the themeof his works, which are proverbial for the attention to historical detail. He wrote scores of novels and over 600 short stories. His most outstanding works are *Keyar, Chemme, Thottiyude Makan, Ouseppinte Makkal,* and *Thendivargam*.

He is the hand setter of the Padma Bhushan Award, India's highest literary award, Jnanpith in 1984 for Keyar, the epic novel. The epic love *Chemmeen* deals with the tragic love tale against the backdrop of a fishing village. The novel, its film adaptation also entitled *Chemmeen*, work for his National and International fame. It was translated into 19 languages and adapted into a film in 15 countries.*Chemmeen* is a Malayalam novel that depicts the story of the relationship between Pareekutty, the son of a Muslim trader and Karuthamma, the daughter of a Hindu fisherman. It portrays the myth and it is about chastity. If the married fisherwoman acknowledged her god when her husband was in the sea, the goddess Katalamma referred to as Mother Sea, would consume him. It reveals that the fisherman's community's life deals with great emotional facts. The customs, taboos, beliefs, and rituals come alive through his pen through the pain of stark existence. It also won the Kendra Sahitya Academy Award in 1957.Chembankunju was a fraudulent fisherman, and his point in life was to own a boat and net. At last, he succeeds in it with the help of Pareekutty, a young Muslim merchant. His family was leading their life within the periphery of strict social rituals. "All of which determines whether a man who goes out to a sea will return rests in the hands of his woman on the shore." Chakki, the spouse of chemban, follows the customs of the fisherman community and wants her daughter Karuthamma to be like her. The wife on the shore wants to pray for his safe return with a faithful mind and body whenever the husband goes into the sea. It is also followed in the coastal areas when the husband leaves, and the wife begins to expect his secured return. Meanwhile, Pareekutty and Karuthamma drop in love with each other, and her mother knows about it, and she rings a bell to her daughter about the existence of their kinship. "He is not one of us. A Muslim." Her parents were frightened of the act of Karuthamma. Chemban stumbles on an orphan on the track of his fishing expeditions. When he tried to report him to Chakki, she initiated to ask over about him. Chemban responded, "He is human, a worker of the sea."

He didn't have a transparent Palani icon, but he never admitted Pareekutty to marry his daughter because he was a Muslim. He neverleaves his customs for his offspring's exhilaration, but he can exploit him by buying a boat and net for his fishing. His mind is filled with wickedness. Thus, the novelist gave an outlook of Chemban as a villain in it. They came to a verdict that both Palani and Karuthamma should get married. Chemban is also picturised as a ravenous man because Palani fixed his bride price for her. "It was the time to pay the bride price. The sum is fixed for seventy-five rupees."Wole Soyinka's *The Lion And The Jewel* depicts, "To pay the price would be to buy a heifer off the market tall. You would my chattel, mymere property." In the novel, Lakunle says that the bride price is a "savage custom, barbaric, outdated one. Wherever in the world, womenare dishing up as property to work for the men's welfare and should also serve the home. The womenfolk have their dignity, self-respect, emotions, etc. In terms of bride price, they are selling the women as labour. Soyinka's *The Lion and the Jewel* states that Lakunle, the educated person in Ilujinle, advised Sidi not to enrol herself in the "Bride Price" list. The novel also deals with class discrimination. When the wedding got over, the people in the village didn't try to eat at the feast, as they were very conscious of their caste and religion because the orphan didn't mention his caste, and he was not interested in revealing it. Now Karuthamma is getting ready to leave the village. Before that, she went to the shore where she spent her days. "But she hadn't said her farewell to the moon on that shore, to the sea washed in the moonlight, to the sweet song of themoon." *Dover Beach*: Matthew Arnold's: "Sweet is the night air, only, from the long line of spray, where the sea meets the moonblanched land." He also depicts the same feeling of the sea and the frame of the mind of the hours of darkness. The waves when reaching the shore, according to the rhythmic tone. Karuthamma in *Chemmeen* worried much about leaving the village, and her mother also fell ill. The obsession that made her glummer was the capital imparted from Pareekutty. She felt remorse for her partner's act of turning him bankrupt. She left her mother and went with Palani, and he gave equal respect to her. She planned how to show the way of life in the region and warm up the statistics. He doesn't have any self-esteem and minister to her leniently. But she endures a lotdue to culpability

for her love before Palani. The anecdote of her past swelled all over the village, and Palani came to know her life. But he has forgiven her act. All the men went to the sea without choosing Palani. He never mislay his supremacy, and he had a belief in his beloved. "Who has the right to declare that I am unfit to sea? I am born to work the sea."Whenever the people go fishing, their lives are locked up to their yacht, the amount of fish they grab every day. They have no predetermined working hours and wake up near the beginning of the morning if there are plenty of fish. Sometimes, the dreary weather vigour them to pioneer the hallucination about their family and decide to back home to how they're managing without them. "but at least, we manage to give them a better life than ours," the voice of the fisherman in the social order. Meanwhile, Karuthamma gave birth to a girl child, and she was very depressed because the utterance from the village shouldn't injure her due to the exploit of her mother. Pareekutty came with the news of her mother's death to the village; when she saw him, her love bursts out from her. The love of them pictogramme the cosmic union of Lord Shiva and mother Sakti in "Siva Purana" not only extols Shiva as "manifested light" but also says both are alike, joined at the hip as the moonlight from the moon. Finally, Palani is also baiting a giant shark caught in a colossal whirlpool and gulping downed by the sea. Subsequently, Karuthamma and Pareekutty were also found dead.

Thus the adaptation of the film by Ramu Kariat revolves around the community, tradition, grief, and struggle; as a final point, the three were ruined. He filmed more than the novel, which has the loan of the melodramatic genre's characteristic haziness towards matrimony, simultaneously representing it as unshackle and authoritarian.

******

Works Cited-

1.Arnold, Matthew, and Jonathan Middlebrook. *Dover Beach*. Columbus, Ohio: Merrill. 1970.

2.Gupta, CD. "New Directions in Indian Cinema." *Film Quarterly*. 1980. p. 34 (1): 32–42.

3.Gupta. *Chemmeen*. Filmed by Ramu Kariat in Kerala. 1965.

4.Śivaśan□karapil□□ai, Takal□i. *Chemmeen*. 1956. Translated by Narayana Menon. Introduced by Santha Rama Rau. 1962.

5.Soyinka, Wole. *The Lion and the Jewel*. Oxford: Oxford University Press, 1963. p.22

Revealing Human through Political Theory in Amitav Ghosh's The Calcutta Chromosome

K.Divya

Ph.D. Research Scholar (F.T.)
Department of English,
Vivekanandha College of Arts and Sciences for Women (Autonomous)

Abstract

Literature appreciates the beauty of 'human' and 'nonhuman' creatures on earth. 'Nonhuman' creatures comprise animals, plants, monsters, and aliens whereas the 'human' is defined to be the living beings who explore the ideas of the social, political, cultural, and economic factors of the society. But when we think about the appearance of human characters such as terminators, robots, avatars, and cloned beings in science fiction literature, it shows the diffraction in the human state that exhibits the pre-existing notions of cyborgs which perceive the fusion of human-machine dynamics. Meanwhile, when we quest about the era from when this advent of human-machine fusion started, it is after colonization and during the post-colonial era, that these forms of advancement in trans-human technology came into existence. Indeed we have struggled to find out whether political theory elucidates the form of human character in the postcolonial science fiction society. The research work finds out the forms of human characters through the factors of a feministic approach to political theory in the select novels of postcolonial science fiction literature.

Keywords: Gender, Political Theory, Postcolonial Science Fiction, Feministic Approach

Introduction-The earth is traced with the living and non-living beings as 'human' and 'nonhuman' to categorize the role of people in the present society. Despite varied approaches to the genre, one can say that the general quality of postcolonial science fiction is its focus on an exploration of "difference"—whether this is social, cultural, technological, or economic—in the historical aftermath of colonialism. By focusing on the question of difference, however, postcolonial science fiction also risks perpetuating centre/periphery binaries and the ghettoization of international science fiction. Indeed, one might consider the ways defining postcolonial science fiction as a genre concerned with the "Third World" replicates the paradigm of 'add women and stir' or 'add people of colour and stir' that emerges out of second and third-wave feminism (Harding 82). As many postcolonial scholars have recognized, 'adding' people of colour to conceptual paradigms constructed on their very exclusion only contributes to perpetuating cycles of exclusion and exploitation. Furthermore, understanding postcolonial science fiction as all science fiction engaged with non-Western representations may be equally problematic.A feminist approach to political theory is much more than a mere description of the roles of men and women in the political sphere. It majorly takes into account the ideas that imply intrinsic inequalities in the dominant political theory that in turn helps develop political structures which assign positions of prominence to men and insignificant roles to women. In this

context, a feminist approach to political theory concentrates on two theoretical areas viz. equality of rights and gender equality in law. Feminists strive to eliminate inequalities and injustices from political theory. The social constructions everywhere are such that accentuate gender inequalities in social, political, cultural, economic, and legal spheres. A feminist approach also underlines the fact that most approaches to political theory are embedded in the notion of male superiority. By raising the slogan of 'the personal is political' feminism, therefore, rejects the ancient Greek social dichotomy of private and public fields. It was this dichotomy that made the Greek philosophers exclude women from public affairs and since then political theory kept on propelling male-centric ideas. The feminist argument is that the political theory overtly dominated by male primacy has explicitly ignored the oppression of women in the household, business and commercial spheres, politics, and culture because they seem to carry forward the well-entrenched Greek view that women are not fit enough to be citizens.

The term "postcolonial science fiction" appears amidst critiques of the relationship between science fiction literature and colonialism, primarily in scholarly writing in the late 1990s and early 2000s with discussions of texts such as Amitav Ghosh's *The Calcutta Chromosome* (1995). Amitav Ghosh, a Bengali Indian Author is mostly known for his award-winning novels *The Glass Palace, The Shadow Lines, Sea of Poppies, In An Antique Land,* and *The Hungry Tide*. *The Calcutta Chromosome* is also one of his less known but still very important novels and award-winning works of science fiction. He was born to a Bengali family in Kolkata, India and he is very interested in Indian history. Ghosh is well known for his interest in Indian colonial history and the contribution of the English language to the postcolonial world. In *The Calcutta Chromosome,* he points toward an "alternative" history that makes me interested to work on this book. Ghosh's writing style is very much inspired by the other Bengali Indian writers such as Rabindranath Tagore or Phanishwar Nath Renu. His childhood was spent in Calcutta and his representation of the geographical picture of Calcutta in the novel *The Calcutta Chromosome* is also influenced by his personal experiences.

Research Question-How to understand the role of humans (male & female) in Postcolonial Science Fiction? What is meant by the feminist approach to political theory? What are all considered the political parameters of the society?

Analysis-*The Calcutta Chromosome* is known for its famous "postcolonial" work of science fiction. This novel contains the idea of "alternative" history which is about "subaltern" people and of course a history of Ronald Ross, the famous doctor and Novel Prize winner for his discovery of malaria transmission. The novel is mostly centred on the "subaltern" people, their silence, and their history. The novel starts with the appearance of a character Antar who belongs to the most technologically advanced world and works with his advanced computer Ava. He is the protagonist who, with the help of Ava, is looking for one of his missing colleagues Murugan. Murugan is one of the most important characters, a voice of rationality. He researches Ronald Ross and comes with doubt about the untold history. According to Murugan and his research, Ronald Ross does not discover .malaria transmission but he is strongly manipulated by a "subaltern" group. The leader of that group is a woman Mangala and the other character, Laakhan helps her. Murugan believes that these people are looking for "immortality". The narrative consists of three parts; an omniscient narrator, Murugan, and Sonali Das. Ghosh places science and counter-science, fiction and reality together and through such representation Ghosh provides an "alternative" history to the subaltern.

Immortality and the subaltern are two ideas that come together in Ghosh's novel. Ghosh wonderfully establishes a strong connection between these two ideas. I argue that behind the idea of "immortality" Ghosh gives a message of "subaltern consciousness," their "silent" voice, against "Western and national irrationality." This quest to reach immortality came with the "posthuman" hologram of Murugan on Ava's monitor. In this essay, I will discuss the connection between science and counter-science and its representation in the novel. I will examine, why Ghosh chooses the theme of the "posthuman" to "rewrite" an "alternative history" of the subaltern. I argue that Ghosh's novel shows silence as the power of the subaltern to overcome their oppression and power politics; the subaltern's kind of alternative science comes up with a result of, the posthuman, a science-fictional utopian dream, that proposes a new and open-ended way of rethinking subaltern modernity and history Amitav Ghosh's novel introduces the alternative story of the subaltern and their "utopian dream" of achieving the ultimate test of immortality; it is connected to the science-fictional and philosophical term "posthuman." We get to see new views of the posthuman, importantly in this novel, Amitav Ghosh suggests a new way of thinking about subaltern history and the future. He places science and knowledge and subalternity together to propose an alternative history. He rewrites the history of the discovery of the Malaria bug in colonial India and includes the subaltern as the main subject of this alternative history. This alternative history provides an open-ended way of thinking about subaltern futures as well. For that purpose, science-fiction is an influential way to rethink the future.The subaltern group consists of Laakhan, Magala, and some other people. According to Murugan, Mangala, the subaltern woman, is the leader of the group. The story starts with the appearance of an Egyptian character, Antar, who belongs to the future, and works with his super-advanced computer Ava. He looks for the owner of a lost ID card that belongs to a corporation named International Water Council which wants to control everything**.** It seems the corporation is interested in Murugan and his research; the corporation itself wants Antar to look for Murugan and the mystery. All of the characters of this novel seem to be looking for something; such as Antar for Murugan, the corporation for subaltern success in finding out immortality, Murugan for the subaltern and their invention, Ross for the malaria bug, Phulboni for Laakhan's stories, Sonali for Romen Halder and her father Phulboni, the subalterns for immortality and so on.

Summation-Thus, a feminist approach to political theory is much more than a mere description of the roles of men and women in the political sphere. It majorly takes into account the ideas that imply intrinsic inequalities in the dominant political theory that in turn helps

develop political structures which assign positions of prominence to men and insignificant roles to women. In this context, a feminist approach to political theory concentrates on two theoretical areas viz. equality of rights and gender equality in law. Feminists strive to eliminate inequalities and injustices from political theory. The social constructions everywhere are such that accentuate gender inequalities in social, political, cultural, economic, and legal spheres. A feminist approach also underlines the fact that most approaches to political theory are embedded in the notion of male superiority.

Ghosh ends the novel with the posthuman also to propose a future to the subaltern people where they seem to have the controlling power. Thus Ghosh's novel deals with the subaltern history, their voice, and their future as well. The study reveals that the term posthuman is also used to point toward the utopian dream for the subaltern. . In the ending phase of the novel, Antar comes to listen to the voices and I argue that these voices belong to the subaltern who wants Antar to help to overcome the corporation's manipulation; the corporation that wants to control everything. The novel ends with the appearance of the voices. Through silence and secrecy, the subaltern people get their voice in their posthuman life and they wanted Antar to listen to their voice. The subaltern people choose their listeners by themselves and in the end, finally, they choose Antar to listen to their voice.

******

Works Cited-

1. Ameil, Barbara. *Politics and Feminism*. London: Blackwell. 1999.
2. Barry, Norman. *An Introduction to Modern Political Theory.* Macmillan, London
3. Bealey, Frank. *The Blackwell Dictionary of Political Science*. Blackwell. 1999.
4. Book: Darity Jr, William A, ed. *International Encyclopedia of the Social Sciences*. Ed. 2nd edition. Macmillan Reference USA: An imprint of Thomson Gale, a part of the Thomson Corporation, MI. 2008.
5. Cohen, J. and Arato, A., *Civil Society and Political Theory.* Cambridge: MIT Press. 1992.
6. Csicsery-Ronay Jr., Istvan. "Science Fiction and Empire." Science Fiction Studies 90 (2003): 231-45.
7. De Crespigny, Anthony et al (Eds.), *Contemporary Political Theory*. London: Nelson.
8. Dunn, John. *The History of Political Theory and Other Essays.* Cambridge: Cambridge University Press. 1996.
9. Goodin, Robert E. and Klingemann, Hans_Dieter. *A Handbook of Political Science.* Addison Wesley, Reading, Massachusetts. 1975. p.35.
10. Harding, Sandra. *Is Science Multi-cultural? Postcolonialisms, Feminisms, and Epistemologies.* Bloomington: Indiana UP. 1998.
11. Hopkinson, Nalo. "Introduction." *So Long Been Dreaming: Postcolonial Science Fiction & Fantasy.* Eds. Nalo Hopkinson and Uppinder Mehan. Vancouver: Arsenal Pulp Press,
12. Joyce, Peter, *An Introduction to Politics*. London: Hodder and Stoughton. 1999.
13. Marsh, David and Stoker, Gerry. *Theory, and Methods in Political Science*. Houndmills: Macmillan. 1995.
14. Mehan, Uppinder. "The Domestication of Technology in Indian Science Fiction Short Stories." Foundation 74 (Autumn 1998): 54-66
15. Mohanty, Chandra Talpade. *Feminism without Borders: Decolonizing Theory, Practicing Solidarity.* New York: Duke UP, 2003.
16. Okin, S. M., *Women in Western Political Thought.* Princeton University Press, Princeton, NJ, 1979.
17. Pateman, Carol, and Gross, Elizabeth (Eds.), *Feminist Challenges: Social and Political Theory.* Northeastern University Press, Boston, 1989.
18. Shiva, Vandana. *Staying Alive: Women, Ecology and Survival, Kali for Women*. New Delhi, 1990.

National Education Policy 2020 In India: A Inclusive Policy Of Higher Education

Dr.Rabindranath Sarma
Associate Professor
Department of Tribal Studies
HOD (CTCL)Central University of Jharkhand, Brambe, Ranchi,
Mo. 7549198583

Subal Tandi
PhD Research Scholar (Sociology)
Department of Humanities & Social Sciences Central University of Jharkhand, Cheri-Manatu, Ranchi, Jharkhand, India Mob-9337180798

Abstract

The National Education Policy 2020 has become the framework for educational reform in India, assisting the country in the development of a new educational system while also bolstering those economic and social indices that still need to be improved. This new educational Policy comprises significant and comprehensive reforms that will affect all academic stages and areas and the curriculum structure. The keys to this reform can be summarised as follows: promoting equity, developing a holistic learning model, improving student access to various educational levels, establishing a multidisciplinary higher education institution, strengthening an inclusion school and education model, or improving teacher and professional training.

Keyword: *National Education Policy*, Educational Reform, Poverty, Inequalities, Employment.

Introduction-In the future years, India will encounter numerous problems, some of which are economic, others social, and yet others technological. Despite the fact that it is a developing country that has greatly decreased extreme poverty over the previous two decades and has opted to pursue sustainable development goals (World Bank, 2020). There are still significant tasks to be completed, particularly concerning poverty, inequalities, employment, and the educational outcomes students achieve in this country. The Government of India placed a strong emphasis on the importance of education as a tool for development, seeing investment in this area as essential to the prosperity and survival of the nation in the subsequent plans and policy statements (such as Education 1968 and 1986 and revised 1992) (Hansdah, 2021). The first education policy was published in 1968, and the second one was published in 1986. The second Policy was updated in 1992. The third of the education policies is the 2020 strategy. Twenty years into the twenty-first century and 28 years after the last Policy, this one is the first. With the "aspirational ideals of the twenty-first century," it aims to be in line. Just prior to the internet revolution, in 1992, the most recent policy was adopted.

Building on these, the new Policy broadens the scope of the RTE to cover children from three to 18 years old. Additionally, the Policy suggests changing the present 10+2 educational framework to a 5+3+3+4 pedagogical framework, with each block corresponding to a child's age between 3 and 18. With the goal of allowing our students to stray from the path less travelled, NEP 2020 offers a multidisciplinary higher education framework with portable credits and numerous exits through certificates, diplomas, and degrees. A 50 percent aggressive GER is anticipated by 2035. Universities with interdisciplinary education and research will be at the top, and research will be supported by a National Research Foundation (Kumar, at al., 2021).

Background of the Study—The "Committee for Evolution of the New Education Policy," which was led by the late T.S.R. Subramanian, a former Cabinet Secretary, submitted the paper in May 2016. As a result, "Some Inputs for the Draft National Education Policy, 2016" was created by the Ministry of Human Resource Development (MHRD). A "Committee for the Draft National Education Policy" was established in June 2017 and submitted the Draft National Education Policy, 2019, under the direction of Dr. K. Kasturirangan. On July 29, 2020, the Union Cabinet, presided over by Shri Narendra Modi, approved the National Education Policy (NEP) 2020. This came after a remarkable process of consultation that included more than 2 lakh proposals from 2.5 lakh Gram Panchayats, 6600 Blocks, 6000 ULBs, and 676 Districts. The new policy intends to lay the groundwork for significant changes in the nation's higher education and school systems. The National Policy on Education (NPE) of 1986, which has been in effect for 34 years, will be replaced with this policy (Government of India, 2020).

The New Education Policy's 2020 Vision

1. An educational framework that offers all students a high-quality education and promotes the development of a fair and progressive knowledge society.
2. Encourages a strong feeling of nationalism and awareness of one's responsibilities in a changing world, as well as a deep respect for fundamental rights, obligations, and constitutional principles.
3. Creates a truly global citizen by fostering the development of abilities, attitudes, and dispositions that support a responsible commitment to human rights, sustainable living, and global well-being.

NEP 2020's Key Provisions-As stated in Goal 4 (SDG4) of the 2030 Agenda for Sustainable Development, which India ratified in 2015, the global education development plan is to "provide inclusive and equitable quality education and promote lifelong learning opportunities for everyone" by 2030. The entire educational system will need to be rebuilt in order to promote and foster learning if the SDGs (Sustainable Development Goals) of the 2030 Agenda for Sustainable Development are to be fully achieved. The nation's first education policy of the twenty-first century, National Education Policy 2020, aims to address the various expanding developmental imperatives facing the nation. The National Education Policy (NEP) aims for India to create a world-class educational system by 2040, ensuring that all children, regardless of social or economic position, have equitable access to high-quality education (Ministry of Human Resource Development, 2020). **Equity and Inclusion in Higher Education (A) Consolidation & Restructuring of Institutions**All institutes of higher education must be divided into one of three categories:Research universities place equal emphasis on both teaching and research. Teaching universities place a strong emphasis on both teaching and research. Autonomous degree-granting institutions put a strong emphasis on teaching.

B) Multidisciplinary Holistic Education-The Policy envisions undergraduate education with a flexible curriculum, creative topic pairings, integration of vocational education, and many entry and exit points with the appropriate certification. In order to transfer and apply academic credits obtained at different higher education institutions toward a final degree, an Academic Bank of Credit will be established. Universities that focus on interdisciplinary education and research (MERUs) should be recognised as global leaders in multidisciplinary education, on par with IITs and IIMs. In order to build a strong research culture and expand research capacity in higher education, the National Research Foundation will be founded as the leading organisation (MHRD, 2020).

C) Regulation-In India, all higher education will be governed by the Higher Education Commission of India (HECI), with the exception of the medical and legal fields. The four distinct verticals of HECI are:National Higher Education Regulatory Council (NHERC) for regulation,General Education Council (GEC) for standard-setting,Higher Education Grants Council (HEGC) for funding, National Accreditation Council (NAC) for accreditation.Public and private higher education institutions are subject to the same rules, accrediting standards, and academic criteria.

D) Higher education institutions are becoming more internationalized-Internationally relevant curricula, significant opportunities for social engagement, top-notch housing options, and on-campus support are a few examples. Each HEI that welcomes foreign students will set up an international students office to oversee all elements of welcoming and supporting foreign students. While a few institutions, such as those ranked among the top 100 in the world, will receive preferential status in India, high-performing Indian colleges will be encouraged to establish campuses there. Such universities will receive special consideration in terms of regulatory, governance, and content standards, on par with other autonomous Indian institutions, and a legal framework will be put in place to support such admission. We would promote cooperation in research and student exchanges between Indian and foreign institutions. If credits are appropriate and adhere to each HEI's regulations, they will be applied toward a degree (MHRD, 2020).

E) Investing in Education-In order to increase public investment on education to 6% of GDP, the Center and the States will work together. The Policy promotes private charitable activity in the area of education and encourages it (India Today, 2020).

F) The use of technology in education-An independent organisation called the National Educational Technology Forum (NETF) will be created to serve as a forum for the free exchange of thoughts on how to use technology to enhance learning, evaluation, planning, and administration. At all levels of education, suitable technology integration shall be carried out to enhance instructional practises, foster teacher professional growth, and increase disadvantaged groups' access to education (World Bank, 2020).

G) Adult Education The initiative is to attain universal literacy among both children and adults. Adult education classes may be given in public libraries and school buildings after school hours. There will be options for adult education based on technology, including online courses, satellite TV channels, ICT-equipped libraries, and Adult Education Centers, among others (WorldBank,2020).

H) Digital Education-In order to ensure readiness with alternative modes of high-quality education whenever and wherever traditional and in-person means of education are unavailable, a comprehensive collection of guidelines for promoting online education has been addressed. A specialised division within the MHRD will be created to oversee the creation of digital capacity, content, and infrastructure for both secondary and higher education (India Today, 2020)

I) Professional Education-All professional education will be a part of the higher education system. Separate technical universities, medical schools, legal schools, and agricultural colleges will all work to become institutions with a variety of functions (India Today, (2020).

J) Promotion of Indian Languages, Arts, and Culture-All around the nation, strong programmes and departments in disciplines like Indian languages, comparative literature, creative writing, the arts, music, philosophy, and others will be formed. Degrees in these fields, including 4-year B.Ed. dual degrees, will also be created. To promote local music, art, languages, and handicrafts, as well as to make sure that students are aware of the culture and local knowledge they are studying, outstanding local artists and crafters will be hired as guest professors. Every institution of higher learning should work to have an artist(s) in residence so that students can be exposed to the arts, creativity, and the wealth of the area and/or wealthy nation. There will also be top-notch courses and degrees in disciplines including archaeology, administration of art and museums, and translation and interpretation, among others. For each of the languages listed in the Indian Constitution's Eighth Schedule, academies of specialists and native speakers will be established in order to select simple yet precise vocabulary for current ideas and to regularly distribute dictionaries (India Today, 2020).

K) Equity and Inclusion Steps to be taken by Governments

Set aside appropriate government funds for the education of SEDGs; Establish clear targets for higher GER for SEDGs;

Improve gender balance in HEI admissions; Improve access by establishing more high-quality HEIs in aspirational districts and Special Education Zones with higher numbers of SEDGs.

Steps to be taken by all HEIs Mitigate opportunity costs and fees for pursuing higher educationProvide more financial assistance and scholarships to SEDGsMake curriculum more inclusiveEnsure sensitization of faculty, counsellor, and students on the gender -identity issueStrictly enforce all no-discrimination and anti-harassment rules

Significance of the Policy-The NEP-2020 makes the following noteworthy suggestions and policy enhancements.Increased emphasis on vocational education and studies at the secondary school level: If vocational education is promoted and given special recognition, our young people will be more employable and have more alternatives for self-employment.The NEP's 6 percent aim is a wise move at this crucial juncture. Additionally, it supports the NITI Aayog's objective of raising the standard of education in the nation.School Restructuring: Provisions such as incorporating Anganwadi/pre-school, ECCE within the scope of formal schooling, and extending Mid-day meals and breakfast facilities to the ECCE sector, among others, would contribute to a nourished and educated India. The three-language school education formula: Students' learning in their mother tongue or local language will be faster, and it will allow opportunities to become acquainted with the country's varied cultural diversity while also ensuring that these Indian languages remain relevant and thriving.A special emphasis is placed on preventing the commercialization of education through the development of different mechanisms with checks and balances.Multiple Entry and Exit at the undergraduate level: This flexibility may be an excellent motivator for students to stay in school and complete the degree without having to worry about dropping out, while simultaneously improving the GER in tertiary education. Campuses of Indian Universities in Foreign Countries: Institutional collaborations would improve the quality and excellence of higher education.

NEP 2020 Implementation Issues and Challenges-Funding: According to the NEP, education should account for 6% of GDP. However, a similar increase in financing was recommended previously but not implemented. Multilingualism: The NEP's recommendation that mother tongue/regional language be used as the medium of instruction until Grade 5 and possibly beyond ignores a number of realities. It is especially troublesome in light of people's right to transfer from one state to another, because inter-state movement necessitates a change in the local language and educational system.Vocational Education: Many people believe that putting a strong emphasis on vocational training from the start may lead to students from low -income families dropping out early to work. This may also obstruct more comprehensive learning.Legal complexities: The Policy has also been chastised for the legal ambiguity surrounding the applicability of two operative policies, particularly the Right to Education Act of 2009 and the New Education Policy of 2020. According to the NEP, standardised test scores administered by the National Testing Authority should be used to determine admission to all higher education programmes. This encourages coaching classes and rote memorization, further undermining the value of school, college, and university examinations and assessments.The NEP's vision may be harmed by a lack of detailed reasoning. It has proposed a four-year undergraduate programme, for example. A similar initiative at Delhi University a few years ago ended in failure. The four-year course, which had been established without appropriate thought and had caused significant confusion among students and teachers, had to be withdrawn by the then-HRD minister. Real world realities: Experiential learning, such as project work, necessitates large financial resources for project supplies and tinkering laboratories. The examination of answers to long-form questions is part of an education that instils critical thinking. Such activities necessitate more instructors, yet school systems are plagued by chronic and persistent teacher shortages.

The Path to NEP 2020 Implementation-The NEP has multiple levels and dimensions. Policies usually fail to be put into practise due to a variety of roadblocks. We must thus consider the methods we ought to apply to make NEP work. Policy failure is frequently brought on by competing objectives and a full break with previous decisions. The new NEP significantly

improves upon earlier educational plans by addressing their most significant shortcomings and limitations. Another crucial stage in the successful execution of any strategy is setting the proper priorities. The Ministry of Education at the Center and the stakeholders, which include state governments, schools, and academic institutions, are the two main players in the implementation of NEP. From the aspect of providing direction, funding, governance, regulation, and review, the Ministry of Education will play a crucial role in the implementation of the NEPTo establish reasonable and doable benchmarks and evaluate progress against crucial policy targets, the Ministry of Education and the Higher Education Commission of India (HECI) must work with states and educational institutions.Attitude adjustments are necessary for many of the NEP's goals, which can be achieved by using efficient teaching-learning strategies and academic and administrative practises. In NEP, educational institutions have much of latitude to implement improvements to institutional operations on their own to make education comprehensive and multidisciplinary.clearly defining the chain of command for implementation to prevent effort overlap and duplication. Here, the leadership role is crucial, and those in it should be capable of taking risks and working well with others. These leaders must be passionate, self-driven, and highly ethical..Establish key performance indicators for Ministry of Education personnel as well as other participants in the NEP's implementation. For the NEP to be implemented effectively, it is essential to have a well-thought-out strategy with clearly defined long-term goals, implement it gradually through short-term objectives and periodic evaluation, conduct data-driven reviews, and implement legislative amendments.

Conclusion

Economic, environmental, and intellectual fields call for a humanistic and holistic approach to education that goes "beyond narrow utilitarianism and economism to integrate the multiple dimensions of human existence" in light of the transformation of governance models, increased involvement of civil society organisations, and a growing trend toward privatisation and commoditization.

****

References:-

1. Government of India. (2011), *Census Report 2011*, New Delhi: Ministry of Home Affairs.https://censusindia.gov.in/Census_And_You/scheduled_castes_and_sceduled_tribes.aspx
2. Government of India. (2020), *Particularly Vulnerable Tribal Groups*, New Delhi: Ministry of Tribal Affairs. https://tribal.nic.in/pvtg.aspx
3. Hansdah, S. (2021). Scheduled Tribes And School Education: Analysis Of A Household Survey In Mayurbhanj District Of Odisha.
4. Kumar, K., Prakash, A., & Singh, K. (2021). How National Education Policy 2020 can be a lodestar to transform future generation in India. *Journal of Public affairs*, *21*(3).
5. Ministry of Human Resource Development. (2020). *National Education Policy 2020,* Government of India, 1-66.
6. https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf
7. India Today. (2020, September 5). How can schools implement the National Education Policy 2020 effectively? IndiaToday. https://www.indiatoday.in/education-today/featurephilia/story/how-can-schools-implement-national-education-policy-2020-1718932-2020-09-05
8. World Bank. (2020). The World Bank in India: Overview. World Bank. https://www.worldbank.org/en/country/india/overview

Mirroring The View of Christianity Treasure in The Select African Poems

KEERTHANA K

Ph.D. RESEARCH SCHOLAR
PG & RESEARCH DEPARTMENT OF ENGLISH
VIVEKANANDHA COLLEGE OF ARTS AND SCIENCES
FOR WOMEN (AUTONOMOUS)

ABSTRACT-The present article studies the influence of Christian values on the African Continent, and the Christian values brought out by the poet in English Literature. The article focuses on the central elements of the Christian faith and values that reveal the beliefs of African people in their lifetime. This article proposes that Christianity in Africa is reflect in Literature. Indigenous varieties of the tradition developed, which allowed it to become a part of Africa as African traditional religion.

Key Words: Christianity, Africa, Literature, Poetry

INTRODUCTION-In view of Robert Frost, "Poetry is when an emotion has found its thought and the thought has found words". Plato states that "Literature is the mere imitation of life". Christianity brings social status to the people of the African Continent. Billy Graham quotes the impact of Christianity on African people's life.Jesus was not a white man; He was not a black Man, he came from that part of the world that Touches Africa and Asia and Europe. Christianity isNot a white man's religion and don't let anybody Event tell you that it's white or black. Christ belongs To all people; he belongs to the whole world. The article brings out the thought of Christianity by the poet Niki Giovani, Chinua Achebe. This article provides a corrective reconstruction of Christianity's origins, growth, and development in Africa to this delineation of sacred space for practical purposes.

OBJECTIVES-The aim and objectives of the research work are as follow To bring out the impact of Christianity on the African Continent Knowing the connection between Christian values in Poetry Historical development of churches in the African continent.

CULTURAL INFLUENCE IN LITERATURE

The cultural aesthetic is the characteristic sensory, conceptual, and ideal matrix that constitutes a culture's perceptual environment. It encompasses the typical qualities and configurations of colour, sound, texture, light, movement, smell, taste, perceptual pattern, space, temporal sensibility, and size in juxtaposition with the human body and the influence of traditional patterns of belief and practice on the creation and apprehension of these qualities. The human environment is always historical and cultural, and formulating a cultural aesthetic requires us to identify the configuration of perceptual features that is characteristic of a particular human culture at a given time. Studies in cultural aesthetics are an important way in which aesthetics can enter the social sciences. It is not possible to speak of pure perception as a sensation untouched by our past experiences, education, and training

and uninfluenced by our ideas and other kinds of knowledge. Social psychologists, cultural geographers, and anthropologists have established the profound degree to which culture influences perception. Nevertheless, aesthetic perception plays a foundational role. The authenticity of aesthetic experience, through its directness and immediacy, provides a powerful means of reappraising cultural experience by digging beneath the layers of accrued meanings and cognitive habits. The aesthetic character of experience lies indirect rather than pure perception, in perception apprehended immediately and unreflectively. In this sense, we engage aesthetically with both art and the environment. Perceptual engagement, conditioned by cultural and personal influences, is the catalyzing and unifying force of the aesthetic field (Berleant 1970).

HISTORICAL DEVELOPMENT OF CHURCHES IN THE AFRICAN CONTINENT.

Christianity in this region of Africa has a history stretching rights back to the earliest days of the Faith. Because it is as old as Christendom in Asia, in a sense, it can also be called a traditional religion in Africa. The first Urban centre of Christianity in Africa was Alexandria in Egypt, as noted by Groves (1948:58); the accessibility of Africa from Palestine is shown by the story of the flight into Egypt by Joseph and Mary with the infant Jesus (2; 13-15). Egyptian Christianity holds on to mark as Patriarchs in the region beside a Tomb in Alexandria alleged to be the Evangelist. According to Thompson (1968: 7 - 9), the Copts eventually outnumbered the Greeks. The indigenization of the Faith led to rapid growth in both the number of converts and the geographical territory occupied by Christian in Egypt.

The second acclaimed centre of Christianity in Africa was central North Africa, Owing to Roman Influence and the capital in cartage. The region involved comprised quite a large area as it's spanned the territories of present-day Algeria, Tunisia, and Libya. The origin of the Faith in this region appears to date from before 180 A.D. At this time, the Church there became famous due to the Martyrdom of twelve of its members who refused to compromise their unaverred allegiance to Christ. This believer from scillium in Numidia seven men and Five women were tried, condemned, and executed in Carthage on July 17th, 180 A.D. (Groves 1948: 59).The third major centre in early Christian North Africa was Ethiopia (Abyssinia). The Church spread through this religion when in the Fourth Century, two Christians named Frumentius and Edesius arrived there from Tyre. The local Church traces its origin to when these two disciples of Christ preached the Gospel in the Kingdom of Arctium. The fourth centre of Christianity in North Africa was in Nubia (Sudan). The Church there had its origins in the sixth century, during the reign of Emperor Justinian (527-565 A.D). It came about as the result of two different missions: the first part under the leadership of Presbyter Julian. This Church was established in the region of Nabodea in Northern Sudan. longuis from Alexandria further strengthened it through the missionary sent there earlier in 508 AD. The latter built a church and even ordained clergy and taught the people the order of the divine service and all the ordinances of Christianity (Groves 1948:50)**THE PLACE AND CONTRIBUTION OF THE EARLY NORTH – AFRICAN CHURCH IN THE HISTORY OF CHRISTIANITY-**The Church in North Africa occupied a central place in the history of the Christian Church, and it had made to the development of the Faith.The composition of Hymens and regulations for Church worship and organization in this region was readily adopted. Great leaders, Teachers, Bishops, Apologists, and Church Fathers came from North Africa, including Tertullian, cyprian, Augustine, origin, clement, and others- influenced the subsequent development of the Church.The early Church in North Africa also featured extensively in Christian education. Both eastern (Alexandria) and western traditions subsequently played a determinative role in developing both Eastern and Western Christian spirituality and theology.

IMPACT OF CHRISTIAN VALUES ON AFRICAN POETRY-Literature is derived from the Latin word "Litteria", which means "an individual written character". Literature is an art of occupation of a writer. It is written material that includes poetry, novels, essays, dramas, short stories, and folk Literature. It is a work of imagination. It is characterized by a quality of style, expression, and themes of general interest. This poem, *The Great Pax White,* is a poem that brings out the biblical reference to portray the IronyIrony of White people. How Death is tied into life, war, and most importantly niggers. The genesis of Death was created for the blacks.

And the word was nigger
And the word was Death to all niggers
And the word was Death to all life
And the word was Death to all
Peace be still. (4 - 8)

The biblical reference created in this poem is how Noah and Peer did not pick up any black people in the ark. The poet says Noah and Peter deemed the black man a trouble maker, all due to the different shade of his skin. Also, the speaker uses the word "dude" to describe the black person. This line came from the mouth of Peter. He asked, "Who is that Black dude?" gives Peter, a biblical character, more of an urban 20th-century persona. Poet is trying to make this poem relatable to modern times. As taking biblical references to show how blacks were treated then. It also raises a question as to why Blacks were not mentioned in Noah's ark. This poem provides some insight into why that is. A tone of IronyIrony is created in this poem as the speaker speaks about Noah's ark and how he deprived of blacks the right to get up on his boat. Also, how he forgot the unicorns on earth die in floods. We all know unicorns are mystical beings, so the speaker says that Blacks were almost mystical creatures because Noah never let them onto the ark.

But why'd you leave the unicorns, Noah/Huh? Why'd you leave them/While our Black Madonna stood there Eighteen feet high holding Him in her arms Listening to the rumbling of peace/be still be still. (22 - 26) The poem is trying to portray the insincerity lived in religion during the events of the Civil Rights Movement and the poet decided to be the voice of the people and write about it. She concludes her poem by asking if black people had any pride. In other words, she was asking when the time would come for them to stand up for themselves./The rumblings of this peace must be stilled/be stilled be still ahh Black people/don't we have no pride? .(28 – 30)The poet expresses their view even though biblical references are not in favour of black people.The poem is perhaps prompted by the tendency of white biographers of black people to point out only what seems to be wrong in black families and black communities. The tone is reflective and critical but not bitter, although the poet very matter-of-factly observes that the black children don't have any enjoyment with their parents. They used to bathe in the commonplace without any privacy. In the evening, their fathers are exhausted due to their complex works. Men do not find time to enjoy themselves with their family members, which shows enjoyment only means for white people.Poet flatly rejects white interpretations of black life because they come from different frames of reference with different values and are incapable of genuinely assessing what it is to grow up as a black child in a black family in a black community. Here poet establishes her reverence for black folk culture. Furthermore, in addressing several realities for poor people, ranging from alcoholism and domestic violence to having no indoor toilets to bathing in galvanized tubs, Giovanni asserts that "it isn't poverty that concerns you/ . . . but only that everybody is together" (22 - 25). The following line explains about their Black people longing for their happinessChristmases And I really hope no white person ever has cause to write about me /because they never understand Black love is Black wealth and they'll Probably talk about my hard childhood and never understand that/all the while I was quiet way. (26 - 31) The poet evokes a higher sensation, perhaps an almost spiritual quality, to the memory by asking the reader to consider the "gospel music" and the tight-knit community centred on the "church." The fact that these lines fall in the poem's centre suggests that perhaps this is the heart and soul of the speaker's memory. The importance of this vision of a "homecoming" cannot be overlooked and can perhaps tell the reader that the speaker is not always in this earthly paradise.The poet makes the connection with the place itself. The place is identified by "mountains", which often represent truth or vision. The speaker goes to this place with a grandmother and re-enforces the idea that wisdom is somehow shared by osmosis. The speaker connects to time and place is like the feeling of a good dream, and perhaps that is why the reader is taken to the end of the day, to "sleep", "all the times / not only when you go to bed / and sleep" (22 - 24).In *Refugee Mother and Child*, Chinua Achebe is a famous Nigerian writer. No Madonna and Child could touch/that picture of a mother's tenderness/for a son she soon would have to forget.7The air was heavy with odours

Of diarrhoea of unwashed children
With washed-out ribs and dried-up
Bottoms struggling in laboured
Steps behind blown empty bellies.
Mothers there had long ceased
To care but not this one; she held
a ghost but not this one; she held
And in her eyes the ghost of a mother's
Pride as she combed the rust-coloured
Hair left on his skull and then-
Singing in her eyes-began carefully

to part it… in another life this/would have been a little daily/act of no consequence before his/breakfast and school; now she/did it like putting flowers/on a tinny grave The image used by the poet in the opening line is that of Mother Mary with Baby Jesus. The image is universally accepted as the ultimate portrait of motherly love. The poet wisely uses that image to highlight the people's Faith in religious Faith.

SUMMATION-Christianity is not as new or alien to Africa as many would suggest. Its earliest roots here go at least as far back as its inception in Asia. With more than two thousand years of church history behind it, the Christian region has not only been established in Africa against all odds. Still, it has succeeded to a great extent in indigenizing itself. African traditional Christianity has shown itself to be a genuinely protean faith able to handle virtually all the problems with cross-cultural evangelization. Although, in my view poet is a reflector of culture and Society, Africa is known for its indigenous culture, and the above article shows that Christianity developed and spread through the author's work. Christianity has indeed achieved the status of traditional religion in Africa.

****

REFERENCES

1. Balram, Shakthi. *Post-colonial study Australian, African and Caribbean.* New Delhi:
2. Ram Brothers.2001. Print.
3. Bird, C. S. *African system of thoughts London*: James Currey, 1941. Print.
4. Frost, Robert. *The Collected poems.* New York: Vintage Frost pub, 2013. Print.
5. Graham, Billy. *Billy Graham in Quotes.* Edinburg: Thomas Nelson pub, 2011.Print.
6. Hildebrand, J. *History of the church in Africa.* Achimota: Christian Press.1981. Print.
7. Igwe, G.E. *Christianity comes to Africa.* Umuahia: Ark pub, 2000. Print.
8. More,Generald. Ulli Beier Ed. *The Penguin Book of Modern African Poetry.* U.K:
9. Penquin Sclassics. 2007. Print.
10. Oniboje,GO. *Africa in the Modern World.* Ibadan: Oniboje press. 1975. Print.
11. Oshitelu, G.A. *Expansion of Christianity in West Africa.* Ibadan: oputoru Books. 2002. Print

Chakra Puja: A Folk Fesitval of Kumhar (Prajapati)Community in Jharkhand

Rabindranath Sarma
Associate Professor, Department of Tribal Studies,
Central University of Jharkhand, Cheri-Manatu, Ranchi, Jharkhand, PIN-835222mo.No.: +91-7549198583

Amit Kumr
Assistant Profesor
Department of Contemporary and Tribal Customary Law,
Central University of Jharkhand, Cheri-Manatu, Ranchi,
Jharkhand, PIN-835222, mo. +91-9435028022

ABSTRACT-Chakra Puja also known as Kural Panchami Puja is one of the important traditional set of behaviors found in Kumhar (Prajapati) community who practices pottery in India. This Puja reflects pottery practice as Kumhar's traditional identity which helps them for their better socio-economic conditions as well as important shelters of communal harmony and adds more color in their life by fulfilling their wish. The Chakra Puja is practiced not only for the prosperity and God appeasement but also for bringing people from this community closer to each other. Such folk festival requires folklorists to do a comprehensive inspection as it is celebrated for 3-6 days in month of November-December every year by the people of Kumhar community with full enthusiasm. Adding the mythological and legendry background of the Chakra Puja, this article explains the ritualistic significance of worshipping Chakra (wheel) as per the people's perspective of Kumhar community in Jharkhand, India.

Keywords: Chakra Puja, Kumhar, Pottery, Folk Festival.

INTRODUCTION -Folk festivals play an important role in maintaining intra and inter group or community harmonious relationships giving them the opportunity to get together at one place for the celebration. Folk Festivals are one of the traditional set of behaviors passed down to the present generation from the past generation which makes the people from the community to interact with each other. The act of celebrations in the festivals are not only limited to the communities; smaller, more exclusive groups also have their festivals. In festivals, the people from the community or group participate happily, enjoy the moment, which makes the participants bond stronger and promote social cohesion. The traditional folk festival, as defined by Richard Dorson, may be viewed as "a social performing folk art". Festivals can be in the form of anniversaries of historical events, legendry day of birth or death of a religious hero or God, marriage ceremony, traditional myths, seasonal changes, relationships foundation day of any social institutions and many more. As per many folklorists like Jacob Grimm, Max Muller, Wilhem Mannhardt etc., modern folk festivals are the survival of ancient community magical rituals having purposes like making day greater, to appease Gods of the nature to promote good harvest and economy (Dorson, 1972). In the same way folklore in association with folk festival and cultural tradition have always implied change and continuity both. As per Gary Alan Fine, "*Folklorists should treasure the proverb that the more things change, the more things remain the same.*" As per many researchers, the modernization is somewhere impacting the folklore and folk festivals to die out but the festivals like Chakra Puja is always there to helping folklore somewhere to survive (Appadurai, 2000). In the similar manner, occupational groups or community as of clay craftsmen, peasants, blacksmith, goldsmith etc. have their celebrations, often on the day of the saint who has been designated as their special guardian in good and bad times. The folk festivals are considered as the periodic time to escape from the routine work where the participants can enjoy the joyous moment (Dorson, 1972). The Chakra Puja, also known as Kural Panchami Puja, is one of such festivals in which people from the Kumhar community enjoy the joyous moment by worshiping their Gods for making their wish fulfilled so that their earthen made pottery products is sold well in to the market in coming days. The ritualistic and ceremonial functions of this festival is to bring prosperity to the Kumhar community in the coming year and to honor the various mythological God like Brahma, Vishnu, Mahesh, Ganesh, Rudrapal and Goddesses like Ratneshari, Laxmi, Mansa etc. (see figure 1). Chakra Puja is the festival of providing occasion and form for positive group interaction to people from the Kumhar community and the people associated with the pottery which shows the continued existence identity of the community to the present world. Apart from this, it would also be interesting to discuss popular perspective of the community people in relation to the Chakra Puja, which would help in understanding the general people about the festival well.

METHODOLOGY

This study is based on a week-long fieldwork conducted in revenue villages of Saraikela Kharsawan District of Jharkhand, India in the third week of September 2021. The methodology used for getting the primary information related to this festival is in-depth interview and focus group discussion (FGD). To begin with, the researcher had framed the survey questionnaire for Interview schedule and focus group discussion separately. As far as the secondary information related to this folk festival is concerned, the researcher has consulted published journals, books, internet, YouTube and newspapers.

CHAKRA PUJA

Chakra Puja or Kural Panchami Puja is celebrated in month of Margashirsha on Shukla paksha Panchami. According to English calendar it comes in month of November and December every year. Kural Panchami is celebrated for 3-6 days in which people from this community worships their Kuldevta called Chakra (wheel) given by the God Vishnu. The major focus of this festival is worship of Chakra (wheel) and other tools used in the sculpting and pottery process. Before the festival days come, the family members from the Kumhar community, especially women, smear the external surfaces and the courtyard walls of the houses with

the thin layer of fine soil mud. They decorate the pots of Tulsi plants situated in the center of courtyard. They make designs with the help of fingers of their right hand after dipping it in rice paste. They paint the walls and make white designs of elephants, peacocks, trees and different types of flowers like marigolds, lotuses and sunflowers. The women of the households feel happy and try to make the finest designs on their walls and compete and compare to each other for their best work. The customs of painting and making fresco walls is common to rural households of this community especially residing in Kharsawan block of Saraikela Kharsawan district in Jharkhand. It is considered that the houses having better decorated designs, look beautiful from outside and inside both, attract the Goddess Lakshmi to enter into their houses which ultimately helps them in prosperity and protecting the village inhabitants from the various socio-economic threats. The Chakra Puja starts with the gatherings of girls and women who collects pitcher filled water from the local ponds or rivers for the purification of the place where they place the statue of mythical Gods and Goddesses idols. The water filled pitchers are placed at the worshiping place, then they place the statues of idols which they had ordered month before to be designed and crafted, the statue of *Brahma, Vishnu, Mahesh, Ganesh, Ratneshari and Rudrapal* so that they can get the sculpture on the day of worshipping (see figure 1).



Figure 1: Statues of God associated with Chakra Puja, picture of rituals in Saraikela District, Jharkhand
(Picture Credit: Bhajan Lal Nayak, Potobera, Saraikela Kharsawan)

On the first day, the community gatherings from each household take place, they place their own pottery products such as Chukka, Kalash, Ghada, Handi (smaller and larger), Diya, Dhakkana etc. for the puja. At some villages nearby the border of Orissa and Jharkhand, people use to worship Chakra(wheel) at their home first (see figure 2) and then get together at the community place for worshipping along with whole villagers. The people from the whole village wear new clothes on this day. The Puja starts with chanting of *Ganesh Vandana*, *Mahamrityunjaya* and other shloks or *mantras* (The term *mantra* is made up of two words *mann* and *tra* meaning mind and to deliver respectively, which combined to give the meaning as anything to be delivered to mind) *(Deshmukh, 2021)* by the Brahmin/Pandits and it goes for 3-6 days depending upon the Shukla Paksha and auspicious time. "Chandradeva chanted the Mahamrityunjaya Mantra while he was performing penance at Prabhasa Kshetra to get relief from the disease due to the curse of Daksha while performing penance at Prabhasa Kshetra to get relieved of his disease of consumption due to the curse of Daksha". This powerful mantra was suggested by Lord Brahma to Chandradeva to recite this shlok. Then full Nava Nirada Nindita Shlok are chanted by the Brahmin/Pandit and people just stand in front of God and Goddesses in great devotion with hand folded.



Figure 2: Wheel at the time of rituals in Chakra Puja
Courtesy: (Huyler, 1996)

Ganesh Vandana:

वक्रतुण्ड महाकाय ,सूर्यकोटि समप्रभ।
निर्विघ्नं कुरु मे देव, सर्वकार्येषु सर्वदा॥

(Vakra-Tunndda Maha-Kaaya, Suurya-Kotti Samaprabha, Nirvighnam Kuru Me Deva, Sarva-Kaaryessu Sarvadaa*l)*
That means O God who has a curved trunk and have a huge body like a million suns. You always complete all my work without any hindrance, have your grace on me. (Aarti, 2021)

Mahamrityunjaya Mantra:

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे,सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान् ,मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥

(Om Try-Ambakam Yajaamahe, Sugandhim Pusstti-Vardhanam, Urvaarukam-Iva Bandhanaan Mrtyor-Mukssiiya Maa-[A]mrtaat ||)

The Shlok meant that we are worshiping Om (the three eyed Shiva called Tryambka), Who is Fragrant (as the Spiritual Essence), for Increasing the Nourishment (of our Spiritual Core); with which many Bondages (of Samsara) similar to Cucumbers (tied to their Creepers), to be have Liberated from Death (Attachment to Perishable Things), So that we are not separated from the perception of Immortality (Immortal Essence pervading everywhere) (Veda(7.59.12), 2021).

Nava Nirada Nindita:

nava nirada nindita kanti dharam
rasa sagara nagara bhupa varam
subha vankima caru sikhanda sikham
bhaja krsna nidhim vraja raja sutam || 1 ||
bhru visankita vankima sakra dhanum
mukha candra vinindita koti vidhum
mrdu manda suhasya subhasya yutam
bhaja krsna nidhim vraja raja sutam || 2 ||
suvikampad ananga sad anga dharam
vraja vasi manohara vesa karam
bhrsa lanchita nila saroja drsam
bhaja krsna nidhim vraja raja sutam || 3 ||
alakavali mandita bhala tatam
sruti dolita makara kundalakam
kati vestita pita patam sudhatam

bhaja krsna nidhim vraja raja sutam || 4 ||
kala nupura rajita caru padam/mani ranjita ganjita bhrnga madam/dhvaja vajra jhasankita pada yugam
bhaja krsna nidhim vraja raja sutam || 5 ||
bhrsa candana carcita caru tanum/mani kaustubha garhita bhanu tanum/vraja bala siromani rupa dhrtam
bhaja krsna nidhim vraja raja sutam || 6 ||
sura vrnda suvandya mukunda harim
sura natha siromani sarva gurum/giridhari murari purari param/bhaja krsna nidhim vraja raja sutam || 7 ||
vrsabhanu suta vara keli param/rasa raja siromani vesa dharam/jagad isvaram isvaram idya varam
bhaja krsna nidhim vraja raja sutam || 8 ||

This *Shlok* is meant for the worship of Krishna, the Dark Jewel, the son of the King of Vraja in which most of the time devotees talk about the physical appearance and the characteristics of Krishna who is adorned with a lovely peacock feather, sweet gentle smiles, extraordinary eyes like blue lotus blossoms, yellow silk embracing his charming hips and who is Mukunda and Hari, worshipable for all the demigods and sages, the guru of all created beings, the crest jewel of all Lords and more exalted even than Lord Siva (India, 2021).Asides honoring the various pottery products made by the Kumhar community and tools used in crafting the earthen pots, peoples from this community also organize cultural programs where many cultural functions happen like reciting songs, famous tales from the epics and legends related to the Chakra Puja. The people from this community worship their mythical ancestor and custodial deity named Rudrapal, also known as Prajapati among the community residing elsewhere (Huyler, 1996). After that, the decorated chakra (wheel) is worshipped along with installed idols of Brahma, Vishnu, Rudra Ratneshwari (Mother Lakshmi) are worshipped. Apart from this, the soil of the field, paddy was also worshiped by keeping it at the place of worship. The holy worship of Chakra Puja done by Kumhar community in the village gets completed with reverence. The immersion procession takes place and, in the meantime, Havan Puja and Katha Puran are read. Yajurveda advocates that the Havan performing can help in attaining spiritual enlightenment, mental peace, purification of the mind and environment. Smoke produced from natural substances can purify the environments of village which helps them live healthy life (Parveen Bansal, 2015). During the immersion procession, the women, men and children from the whole village gets accumulated and do dances on the music of Benjo, or other musical instruments. At the end, all the statues of God and Goddesses are immersed in the river or pond nearby the village and the pottery products of the community takes their own products to their home and keeps them safe for better earnings to their houses.

Significance of Chakra Puja-The chakra puja is mainly celebrated by the Kumhar community for the good harvest, traditional livelihood relationship with the soil of the potter's society and fulfillment of wishes of the people. As per the community, this folk festival makes them prosperous in every manner as the pottery products made by Chakra(wheel) and good harvest makes them prosperous and helps in better livelihood and provide them security in bad times. Such collective worship in the society brings happiness, prosperity, security and peace of mind to the whole community of the village. This marks the worship of the harvest season when new crops are worshipped and shared with community delightfully. The creativity is the major part of the pottery artisans, so the community worship Chakra as their fortune maker which helps them in building high concentration. The Kumhar community feels that the worshiping Chakra(wheel), which was given to them first by the God, links them with the divine and helps them for the next 12 months or till the upcoming Chakra Puja (Huyler, 1996). Chak Puja is conducted for the purpose of making robust inter and intra community bonding. It helps in the making strong bond within the family members. It also makes the stronger bonding between wife and husband as it ensures the fertility of women and happiness. The Chakra Puja improves the socio-economic conditions and promotes communal harmony and adds more color in their life by fulfilling their wish as well.

Conclusion -The Chakra Puja is the festival of Kumhar community. The Puja is done to make the God and Goddesses happy which maintains the harmonizing sense of balance in the relationship between the devotee and the deity. The Kumhar considers the Chak (Wheel) as the *Karta Dharta* (fortune maker) of them, and therefore community practices the cyclical renewal of this religious function. The pattern of exchange of services and gifts is very much rooted to the Indian culture. The Chakra Puja is type of exchange as gift for the services provided by the God or Chakra (wheel) which is celebrated in the month of November-December each year.

*****

References:-

1. Aarti, C. &. (2021, 10 14). *Lyrics of Vakratunda Mahakaya Mantra in Hindi with Meaning*. Retrieved from https://hanumanchalisalyric.com/: https://hanumanchalisalyric.com/vakratunda-mahakaya-mantra-meaning-in-hindi/
2. Appadurai, A. (2000). Folklore: New Perspectives. In J. Handoo, *Theoretical Essays in Indian Folklore* (pp. 217-221). Mysore: Zooni Publications.
3. Deshmukh, A. J. (2021). The Significance of Chanting a Mantra. *Ancient Indian Wisdom : For Sustainable Well-Being* (pp. 175-183). Varanasi: Bharti Prakashan.
4. Dorson, R. M. (1972). *Folklore and Folklife An Introduction.* Chicago and London: The University of Chicago Press.
5. Huyler, S. P. (1996). *Gifts of Earth : Terracottas and Clay Sculptures of India.* Ahmedabad : Mapin Publishing Pvt. Ltd.
6. India, T. i. (2021, 10 14). *Nava Nirada Nindita Lyrics in English with Meaning*. Retrieved from Temples in India: https://templesinindiainfo.com/nava-nirada-nindita-lyrics-in-english-with-meaning/
7. Parveen Bansal, R. K. (2015). Is There Any Scientific Basis of Hawan to be used? *Journal of Epilepsy Research*, 33-45.
8. Sudhir Kumar, G. R. (2014). An Analysis of the Lok Utsav Kathas of Jharkhand. In M. Muthukumaraswamy, *Many Cultures, One Nation Essays by Tata Fellows in Folklore* (pp. 131-145). Chennai, tamilnadu, India: National Folklore Support Centre.
9. Veda(7.59.12), R. (2021, 10 14). *Maha Mrityunjaya Mantra - In sanskrit with meaning*. Retrieved from Green Message: https://greenmesg.org/stotras/shiva/mahamrityunjaya_mantra.php

Right To Education Act 2009 In India: A Sociological Analysis

Dr. Rabindranath Sarma
Associate Professor
Department of Tribal Studies
HOD (CTCL)Central University of Jharkhand, Brambe, Ranchi,
Mobile No: +91- 7549198583

Govind Kumar Rohit
PhD Research Scholar in Sociology,
Department of Humanities and Social Sciences,
Central University of Jharkhand, Cheri-Manatu, Ranchi,
Mo.91-9889451975, 8830299803

Abstract-The main purpose of the article is to study the sociological perspective of the Right to Free and Compulsory Education Act 2009 and to assess how the provisions will affect the promotion and protection of children's rights in India today. The current article starts with a historical overview, then highlights important aspects of the Act, clarifies the issues that lie ahead, and offers solutions. The article based on secondary source that was acquired from published papers, articles, the RTE Act, and reports from NGOs, among other sources. It is concluded that this Act establishes education as a legally protected fundamental right for all children. In sociological point of view that education is one of the fundamental human activities. In this sense, to increase knowledge, teaching and learning activities are conducted in classrooms, universities, and other settings. and it is one of the key markers of skill growth. Thus, every new generation must get instruction on the group's customs in order for the tradition to live on.

Keyword: Education, RTE Act, Children's Rights, Skill Growth

Introduction-According to Durkheim, education is "the socialization of the younger generation". He further states that it is "a continuous effort to impose on the child ways of seeing, feeling and acting which he could not have arrived at spontaneously" (Tandi, 2019). The idea of education is not merely to impart knowledge to the pupil in some subjects but to develop in him those habits and attitudes with which he may successfully face the future. Education acts as an integrative force in society by communicating values that different sections of society. If the family failed to provide the child the essential knowledge of the social skills, and values of the wider society than the school or the educational institutions can help the child to learn to interact with people of different social background (Ravindranatha, 1996). There is no question that education plays a significant role in promoting social justice and establishing equality. However, the educational system itself can add to the existing inequalities, or at least perpetuate the same (Velaskar, 2010). This has been the major problem in providing equal education opportunity for all and also Inequalities of educational opportunity occurs due to the poverty of a large number of people because the poor people cannot afford to meet expenses of education (Singh, 2012). India has the second largest education system in the world after China. Indeed, over a third of the population below 18 years, constituting 19 percent of the worlds" children, resides in India. Every third illiterate person in the world is an Indian. The number of girls not attending schools in the 6-11 age group in 1995 was about 42 million; of every 10 illiterates, seven are women; 91 of every 100 women among the 70 million tribals cannot read or write. The situation has not improved much since then. There are problems relating to drop - out rate, low levels of learning achievement and low participation of girls, tribal's and other disadvantaged groups (Vyas,2009).The Right of Children to Free and Compulsory Education Act 2009 which came into force on 1st April, 2010 after 62 years of independence, has made free and compulsory education as fundamental right between the ages of six to fourteen will get free and required education under this Act. Except for the State of Jammu & Kashmir, it will cover the all of India (Singh & Nagpal,2010). Every child between the ages of sex to fourteen years does have a right to free and compulsory education in a neighborhood school till completion of elementary education. For the purpose of sub-section (1), no child shall be bound to pay any kind of fee, cost or expenses which may prevent him or her from pursuing and finishing the elementary education. It stated that a child who has a disability, as defined in clause I of section 2 of the persons with Disabilities (Equal Opportunities, Protection and Full Participation) Act, 1996, has the right to pursue free and mandatory elementary education in accordance with the rules set forth in Chapter V of the aforementioned Act (RT E Act, 2009).Main outlines of RTE Act 2009 are norms for school enrollment, access and infrastructure, teacher appointments, teacher learning materials and pupil to teacher ratio.

Definitional Concept of RTE Act 2009 -In this Act, unless the context otherwise requires, -"Appropriate Government" means-In relation to a school established , owned or controlled by the Central Government, or the administrator of the Union territory, having no legislature the Central Government;In relation to a school, other than the school refer to in sub clause (i), established within the territory of- A state, the State Government;A Union territory having legislature , the government of that Union territory;"Capitation fee" means any kind of donation or contribution or payment other than the fee notified by the school;"Child" means a male or female child of the age of six to fourteen years;"Child belong to the disadvantage group" means child belonging to the Scheduled Caste, the Schedule Tribe, the socially educationally backward class or such other group having disadvantage

owing to social, cultural economical, geographical, linguistic, gender or such other factor, as may be specified by the appropriate Government, by notification.Child to weaker section" means child belonging to such parent or guardian whose annual income is lower than the minimum limit specified by the appropriate Government, by notification."Elementary education" means the education from first class to eight class;"Guardian", in relation to a child, means a person having the care and custody of that child and includes a natural guardian or guardian appointed or declared by a court or a statute;"Local authority" means a Municipal Corporation or Municipal Council or Zilla Parishad or Nagar Panchayat or Panchayat, by whatever name called, and include such other authority or body having administrative control over the school or empowered by or under any law for the time being in force to function as a local authority in any city, town or village."National Commission for Protection of Child Rights" means the National Commission for Protection of Child Rights constitute under the section 3 of the Commissions for Protection of Child Rights Act, 2005; 4 of 2006"Notification" means a notification published in the Official Gazette;"Parent" means either the natural or step or adoptive father or mother of a child;

"Prescribed" means prescribed by rules made under this Act;

" Schedule" means the Schedule annexed to this Act;"School" means any recognized school imparting elementary education and includes-A school established , owned or controlled by the appropriate Government or a local authority;An aided school receiving aid or grant to meet whole or part of its expenses from the appropriate Government or the local authority;A school belonging to specified category; andAn unaided school not receiving any kind of aid or grants to meet its expenses from the appropriate Government or the local authority;"Screening procedure" means the method of selection for admission for admission of a child , in preference over another, other than a random method;"Specified category", in relation to a school, means a school known as Kendriya Vidyalaya, Navodaya Vidyalaya, Sainik School or any other school having a distinct character which may be specified, by notification, by the appropriate Government;

Special Provision For Children Not Admitted To Or Who Have Not Completed, Elementary Education-If a child above the age of six has never attended school or, if entered, was unable to finish their primary education, they must be admitted in a class that is appropriate for their age. It states that if a child is immediately placed in an age-appropriate class, he or she has the right to special instruction in the way and within the timeframes that may be specified in order to be on level with other students. It further states that a child who has been admitted to primary school is entitled to free education until elementary school is completed, even if they are older than fourteen (Choudhary,2018)

Proof Of Age For Admission-A child's age will be decided for admission to elementary school based on the birth certificate issued in accordance with the provisions of the Births, Deaths, and Marriages Registration Act of 1886 or based on any other document that may be required.

No Denial Of Admission-According to the Singh (2016), the RTE Act 2009 has many remarkable provisions. Such as a child must be admitted to a school at the start of the school year or during any additional time that may be prescribed: With the provision that no child will be refused entrance if admittance is requested after the extended period: Furthermore, any child enrolled after the additional time must complete his education in accordance with any rules that the relevant Government may establish.

Prohibition Of Holding Back And Expulsion-Until the end of primary school, no child who has been admitted to a school may be held back in any class or expelled from the institution.

Prohibition Of Physical Punishment And Mental Harassment To Child-Neither physical nor verbal abuse of children is permitted. Anyone who breaks the restrictions in subsection (1) is subject to disciplinary action under the service regulations applicable to them.

No School To Be Established Without Obtaining Certificate Of Recognition-Ramachandran (2009), states that after the implementation of this Act, no school other than one established, owned, or controlled by the appropriate Government or the local authority may arise or operate without first obtaining a certificate of recognition from that authority by submitting an application in the format and manner specified by the authority, as may be prescribed.

School Management Committee-A school must have a School Management Committee made up of the elected local authority representatives, the parents or guardians of students enrolled in the school, and the teachers, with the exception of the schools listed in subclause (iv) of clause (n) of section 2: As long as at least three-fourths of the Committee's members are parents or legal guardians: Furthermore, parents or guardians of children who belong to disadvantaged groups and weaker sections should receive proportionate representation: With the additional caveat that 50% of the Committee's members must be women (Choudhary, 2018).

School Development Plan-Every School Management Committee established in accordance with subsection (*I*) of section 21 is required to create a School Development Plan in accordance with any applicable regulations. The school development plan created in accordance with subsection (*I*) shall serve as the foundation for any plans or grants provided by the relevant local or federal government, as applicable

Qualifications For Appointment And Terms And Conditions Of Service Of Teachers Any individual who satisfies the minimal requirements established by an academic body recognized by the Central Government by notice will be qualified for employment as a teacher. The Central Government may, if it deems necessary, .by notification, relax the minimum qualification required for appointment as a teacher, for such period, not exceeding five years, as may be specified in that notification, where a State does not have adequate institutions offering courses or training in teacher education or

teachers possessing the minimum qualifications as laid down under sub-section (1) are not available in sufficient numbers. With the exception that a teacher who did not already have the minimal requirements outlined in subsection (1) at the time this Act took effect must do so within five years.

Pupil-Teacher Ratio -The appropriate Government and the local authority must make that the pupil-teacher ratio, as listed in the Schedule, is maintained in each school within six months of the day this Act went into effect. No teacher assigned at a school may be required to work in another school, office, or be deployed for any non-educational purpose other than those listed in section 27 in order to preserve the pupil-teacher ratio required by sub-section (1).

Prohibition Of Deployment Of Teachers For Non-Educational Purpose-A teacher cannot be assigned to work on anything other than the annual census of the population, disaster relief efforts, or tasks associated with municipal, state, or federal elections, as the case may be.

Prohibition Of Private Tuition By Teacher-No teacher shall engage in private instruction or instructional activities.

Monitoring Of Child's Right To Education-In addition to the duties assigned to them by the Commissions for Protection of Child Rights Act of 2005, the National Commission for the Protection of Child Rights established under section 3 of, as the case may be, the State Commission for the Protection of Child Rights established under section 17 of that Act, shall also carry out the following duties: —

(a) Examine and review the safeguards for rights provided by or under this Act and recommend measures for their effective implementation;

(b) Inquire into complaints relating w child's right to free and compulsory education; and

(c) Take necessary steps as provided under sections 15 and 24 of the said Commissions for Protection of Child Rights Act.

Redressal Of Grievances-Any individual who has a complaint regarding a child's right under this Act may submit a written complaint to the local authority with jurisdiction, regardless of what is stated in section 31. The local authority must make a decision on the subject within three months of receiving the complaint described in subsection (1) and after giving the parties involved a reasonable chance to be heard. Any individual who feels wronged by the local authority's decision may elect to appeal it to the State Commission for the Protection of Children's Rights or, in some cases, the body designated under subsection 31 of section 31. The State Commission for Protection of Child Rights or the body designated under subsection (3) shall decide the appeal filed pursuant to subsection (3).

Constitution Of National Advisory Council-A National Advisory Council, consisting of as many members not to exceed fifteen—as the Central Government deems necessary, shall be established by notification. Members of the Council shall be chosen from among those with knowledge of and experience in the fields of elementary education and child development. The National Advisory Council's duties include advising the Central Government on how to effectively execute the Act's provisions. The National Advisory Council members will be appointed under any circumstances that may be required, including compensation and other terms and conditions.

Constitution Of State Advisory Council-A State Advisory Council will be established by the State Government through notification. This council will be made up of as many members not to exceed fifteen—as the State Government deems necessary. Members will be chosen from among those with knowledge and experience in the fields of elementary education and child development**Significance Of RTE Act- 2009-** According to Part III of the Indian Constitution's basic rights, every citizen has the right to live in equality, freedom, and dignity. These rights include access to medical care, protection against torture and other cruel detention practices, the right to an education, the right to treat women with respect, and the equality of women, men, children, and adults. Caste, religion, language, or gender identity cannot be used as excuses for the violation of these rights.

Conclusion -It is concluded that education is often described in their documents as "the most important factor in achieving rapid economic development and technological progress and in creating a social order founded on the values of freedom, social justice and equal opportunity (Kamat, 1980). This Act recognizes education as a fundamental right that is legally safeguarded for all children. From a sociological vantage point, education is one of the core human endeavors. In this sense, teaching and learning activities are carried out in schools, universities, and other settings to expand knowledge. and it is a crucial indicator of skill development. In order for the tradition to continue, each new generation must be taught the group's traditions.

*****

References:-

1. Choudhary, S. K. (2018). Has the Right to Education Been Realised in Jharkhand? *Economic and Political Weekly*, *53*(5).
2. Kamat, A.R. (1980). Educational Policy in India: Critical Issues. *Sociological Bulletin, 29*(2), 187-205. Retrieved August 10, 2020, from www.jstor.org/stable/23619176
3. Ramachandran, V. (2009). Right to Education Act: a comment. *Economic & Political Weekly*, *44*(28), 4-10.
4. Ravindranatha, M. N. (1996). A Sociological analysis of the problems of primary education in India. *Journal of Indian Education*
5. Singh, K. (2016) Right to Education. *India International Centre Quarterly*, 42 *(3/4)*, p.119-130 URL: https://www.jstor.org/stable/26316578
6. Singh, A. (2012). Inequality of opportunity in access to primary education among Indian children. *Population Review*, *51*(1).
7. Singh, S. & Nagpal, C. (2010). The Right of Children to Free and Compulsory Education Act 2009: Promises and Perils. *World Affairs: The Journal of International Issues*, 14*(4)*, 118-135. Retrieved August 21, 2020, from https://www.jstor.org/stable/48504861
8. Tandi, S. (2019). Educational contribution of Emile Durkheim: a functional assessment. *The Research Journal of Social Sciences*, *10*(2), 146-156.
9. The Gazette of India (August, 2009). The Right of Children to Free and Compulsory Education Act 2009. Government of India.
10. Velaskar, P. (2010). Quality and inequality in Indian education: Some critical policy concerns. *Contemporary education dialogue*, *7*(1), 58-93.
11. Vyas, S. (2011). A study on the awareness among elementary school teachers in the national capital region: the right of children to free and compulsory education act, 2009

Understanding Female Uprising through Myths and Struggle: A Study of Arthur Miller's Play, The Crucible and the Hindi Movie, Bulbul Written and Directed by Anvita Dutt

Porismita Devi
M.A. in English
Dibrugarh university assam
mo.8638987391

Dristi Dhekial Phukan
M.A. in English
Dibrugarh university assam
Ph : 7086209561

Abstract:-From the journey of Agrarian society to the Knowledge society, civilization comes so far. Civilized merely suggests the reformation of thinking in a broader scenario. Feminism is kind of a civilized thinking which changes the vision towards women and offers them the way to turn the arrows headed towards them into their weapons. Its twentieth century counterpart changes the notion of myths and superstitious beliefs which used to make prey of the female in the past. Witchcraft is such notion that is given a new shape in the use of its terminology. Depiction of witches in the emerging literature is now the portrayal of voice of women as strong independent individual. Play like *The Crucible* by Arthur Miller and movie like *Bulbul* written and directed by Anvita Dutt puts forward such a voice of woman through its female characters. This article shows how in the both dramatic stories witchcraft has been used as a weapon against great tolerance of the patriarchy. It is delivered throughout the discussion that female characters are portrayed as fragile, who has the backbone of the patriarchal society. On the other hand, when these females use witchcraft, they are shown as independent individuals who can mould their life according to their wish. Theory of deconstruction also throws light in the dis cussion.

Keywords: Myth, witchcraft, patriarchy, feminism, deconstruction.

"Witch hunting was woman hunting- a way of shifting out subversive females…" (Jackson, 64) World is full of unresolved mysteries on the basis of which several statements are passed without any rationality. Such statements create myths, and myths whether are true or false do not matter. What matters is that these oral passings affect people, mostly the gender of female. From the history of human civilization patriarchy has imposed some set of rules on women either on the name of religion or myth. Woman who passes the ordeal of society is angel and who speaks for their own are credited to be fallen. Furthermore, in *Ramcharitmanas* written by Tulsidas there is a statement, "Sudra, Poshu, Nari-sabhi tarna ki adhikari" (3). This offensive statement indicates that the people of inferior class, animals and women must be punished in order to be controlled. Here, Valmiki in a way classified women with the animals but, Feminism of the 20th century has overturned this scenario. Witch hunting is no longer woman hunting instead witchcraft is now depicted as the voice of women for their own freedom and rights. It is like using the English language as a weapon by the colonized to fight back with their British colonizers. Writing on the backdrop of this problematic witchcraft the play *The Crucible*(1952) by Arthur Miller and the Hindi film *Bulbul* (2020) written and directed by Anvita Dutt unfold some unquestionable questions to the audience. In *The Crucible*, Miller tries to sketch a poignant portrayal of his contemporary society where women are meant to be obedient and submissive but, by breaking all stereotypes young girls such as Abigail Williams and Mercy Lewis move out of their determined spaces as emerging women to achieve their own means. These girls have no fear of being labelled as witch. Furthermore, in the film *Bulbul*, the audience witness the journey of the eponymous character from innocence to experience, from a vulnerable girl to an emerging strong woman. Here, both the major female characters of the mentioned works in a way reject their identities as women, as for them in the words of Emil Ferris being a monster is the utmost solution. These dramatic works resolve the distinction between the peripheral concept of evil and scary. Here, the absolute horror is not the depiction of witch rather than, it is the continuous oppression of women by the patriarchs. Whether married or unmarried women of that period only possess two kinds of identities: natal and marital. Being a natural woman, Abigail and Bulbul cannot achieve their needs, as their identity as female has been curtailed by the male dominated society therefore; they choose the counterpart of natural that is the supernatural, where they can venture freely. For Freud, "Children are completely egoistic, they feel their need intensely and strive ruthlessly to satisfy them" (268). From this statement we can map that though the character of Abigail has been portrayed as dark and gloomy, she just wants Proctor as a child. On the other hand, Bulbul who does not even know the spelling of marriage finds Satya, her brother in law of the same age. The relationship between Abigail and proctor, Bulbul and Satya are just like the parts of a dyad. For Abigail and Bulbul, Proctor and Satya act like a Lacanian mirror which reflects back with affection. In a way, both Abigail and Bulbul have the Freudian libido, which is a life instinct towards Proctor and Satya. In Act1 of *The Crucible*, when John Proctor says Abigail as child, Abigail becomes furious as she says: Abigail: How do you call me child! Proctor: Abby, I may think of you softly from time to time. But I will cut off my hand before I'll ever reach for you again. Wipe it out of mind. We never touched, Abby. Abigail: Aye, but we did. Proctor: Aye, but we did not. (Miller 32) Abigail wants Proctor madly as she implores, "John, pity me, pity me!" (33). However, after losing their counterparts both Abigail and Bulbul goes in a hysterical state where, they start practicing witchcraft.In the very beginning of the film *Bulbul*, the audience get to know about the importance of wearing a toe-ring that should be wearing in order to press a nerve in the toe for controlling a woman. However, that toe-ring cannot resist Bulbul's freedom. Breaking all the determined boundaries, Bulbul raised herself as a manly woman in the Woolfian sense, who in a way ruled the whole house. Beginning with a mysterious hue, where a female figure is seen amidst lush red flowers, the film *Bulbul* is visually sumptuous. The excessive use of red colour may symbolize the celebration, fertility, anger and even violence through the well crafted scenes. The audience can see red alta of the child bride, Bulbul's feet as she has been prepared for sacrifice. Therefore, the colour which is in a way acts as the symbol of fertility also acts as a symbol of devastation. Mahendra, the twin brother of Bulbul's husband Indranil also played a sexual game whether in his conscious or unconscious state, not noticing her physical condition. In the very beginning of the film, Bulbul and her brother in law Satya were seen as creative partners, trying to compose a story of chudail. Bulbul as a creative woman can not complete the story, as her linguistic capacity has been curtailed. Therefore, she tries to express her gathered feelings through some physical activities, which is later on named as witchery. Her husband, Indranil who was much older than her, beat Bulbul's legs mercilessly in order to control his

young wife. In these scenes Bulbul is seen as a vulnerable pray in front of Indranil and his mentally disturbed brother Mahendra. For remarkable Psychoanalyst, Sigmund Freud, "eros" is the life instinct and in opposition to this Freud coined a term "thanatos" or the death instinct. Here, becoming the victim of older men's lust both the characters of Abigail and Bulbul has sacrificed their eros, the life instinct. Therefore, the only part remain on them is the thanatos or the bare body or death instinct. However, these women characters managed to deconstruct themselves and achieve their own means.

The film *Bulbul* moves around the binary between villain and victim. After a violent scene, Binodini, the wife of Mahendra, who is highly provocative and political, tells Bulbul in hushed tones, "You have married into a royal family. Why the tears?...He's a little insane, but...you'll be draped in silks... He's a little insane, but...if not him, then his brother...will look after you...large manors have large secrets" (*Bulbul*01.08.00-01.13.00). This statement may indicate that Binodini also went through the same condition that she told to Bulbul as all women are prisoner under the umbrella of patriarchy. The pauses in the speech replicate her grief. Therefore, we can see the tension between the notion of villain and victim from the character of Binodini, who is usually singing some traditional songs, lamenting her faith. Moreover, the audience can also notice her changing look after the death of Mahendra. In this context, one can argue that in the film *Bulbul*, women characters especially Bulbul and Binodini act as round characters. On the other hand, all male characters are seen as flat as there are no changes visible on them as the film progresses. It is remarkable to note that the film, *Bulbul* moves twenty years that portrays Bulbul as a full grown woman and the main story of the film reveals after the return of Satya.After a keen watch of the movie, the audience can assume that most of the male characters are there only to be murdered. Mahendra was murdered on the day of worshipping as an offering to the Hindu goddess Kali. In this context one can argue that Bulbul, being an incarnation of goddess Kali killed the demon Mahendra. However, there arises a tension between two contrasting concept of witch and goddess. If witches are evil forces then, how come Bulbul gets the quality of mother archetype, Kali. Moreover, at the end of the play Bulbul got hurt by the bullet of Satya but, can a witch really get hurt by a bullet, this question also revolves around the mind of the audience. On the other hand, in Act 1 of *The Crucible*, people who are eager to find the devil are believed to be chosen by God in order to eliminate devil from the society. Here, the reader can map the resemblances between the stories of Abigail and Bulbul as both of the female characters try to gratify their desires; however, in the case of Bulbul it is larger than her own desires, through witchcraft, which in a way acts as a numbing mechanism for them. It provides them power which is curtailed by male dominated society. In her notable essay, "Profession for Women", Virginia Woolf talks about the metaphor of angel in the house. By using this metaphor Woolf says that whenever, she tries to criticize a work of male writer, the angel comes to her and asks her to be tender in her criticism but, towards the end, Woolf kills the angel and says that every female who wants to write fiction must kill the angel. Here, Abigail and Bulbul in order to narrate their stories to the audience killed their angels and portray their feelings and desires in a courageous way. In their collaborated work, *The Madwoman in the Attic: The Woman Writer and the NineteenthCentury literary Imagination* (1979), Sandra and Susan Gilbert discuss two challenging concepts of angel and monster. They say that nineteenth century female writers talk about a character of mad woman. It was actually their rage reflected through the character of mad woman-However, on the surface level, the characters of Abigail and Bulbul are seen as monstrous or the uncontrollable characters as they killed their respective angels and become the double of their selves. Abigail in her hatred for John Proctor says: "My name is good in the village! I will not have it said my name is soiled! Goody Proctor is a Gossiping liar! (26) Furthermore, the title of the play, *The Crucible* acts as a symbol. On the literal level the term crucible indicates a vessel in which metals are melted down. In a way, this very term acts as an experiment to verify the purity of people. For instance, in *The Crucible*, the treatment of witchcraft is used by Miller in order to check the purity of contemporary people. Again, the eponymous character of the film *Bulbul*suggests a little bird that is always meant to live among the trees. Just like her name Bulbul, she adores nature afterwards super nature in her journey from a little bride to a powerful woman. In *The Crucible*, Abigail refuses all the allegations, except dancing, though she is aware of the punishment of dancing is only whipping. Both the stories put forwards a revolutionary change in the societal status of women in the contemporary world. Replete with the notion of gynecophobia, propounded by Wendy Schissel both the stories overturn the root of patriarchy. Deleuze and Guttari in their ground breaking work *A thousand Plateaus* (1987)draw the idea of deterritorialization and reterritorializaton in a vivid way. Here, they try to indicate how these two processes together lead to a holistic result as they say that deterritorialization results in reterritorialization. This whole process of deterritorialization and reterritorialization is rhizomatic, where two rhizomes are working together for their benefit. In the same way, the characters of Abigail and Bulbul went through the very process of as they reterritorialize themselves after their deterritorialized selves and create a rhizomatic world for them. Thus, the study explores the pathetic conditions of women in the gendered society, where suppressing by their male counterparts they come forward to practice witchery. At the end of the play, *The Crucible,* Proctor denies admitting witchcraft but, he confesses his sin of adultery. In *Bulbul* also at the end, Satya also realized all the misdeeds that his brothers imposed on Bulbul. Here, both the characters of Bulbul and Abigail are portrayed as larger than life to draw the scenario of contemporary society. Witchcraft provided them their lost identities and made them capable enough to answer the Beauvoirian question what woman is.

******

Works Cited: -

1. Beauvoir, Simone de. *The Second Sex*. Vintage Classics, 2015.
2. *Bulbul*. Directed by Anvita Dutt. Clean State Filmz, 2020. Film.
3. Deleuze, Gilles and Felix Guattari. *A Thousand Plateaus Capitalism and Schizophrenia.*
4. Translated by Brian Massumi. 5th ed., Bloomsbury, 2004.
5. Ferris, Emil. *My Favorite Thing Is Monsters*. Fantagraphics Books, 2018.
6. Freud, Sigmund. *The Interpretation of Dreams*. 3rd ed., Macmillan, 1913.
7. —."Beyond the Pleasure Principle". *Dover Thrift Editions,* edited by Mary Carolyn Waldrer and Jim Miller, Dover Thrift Publications, 2015
8. Gilbert, Sandra and Susan Gilbert. *The Madwoman in the Attic: The Woman Writer and the*
9. *nineteenth-Century Literary Imagination.* 2nd ed., Yale University Press, 2000.
10. Goswami,Tulsidas. *Shri Ramcharitmanas.* 35th ed., Geeta Press, 2010.
11. Jackson, Louis. "Witches, Wives, and Mothers: Witchcraft Persecution and Women's
12. Confessions in Seventeenth-Century England." *Women's History Review*,, pp. 63-84.
13. Miller, Arthur. *The Crucible: A Play in Four Acts.* Penguine Books, 1976.
14. Nayar, Promod K. *Contemporary Literary and Cultural Theory.* Pearson, 2017.
15. Schissel, Wendy. "Re(dis)covering the Witches in Arthur Miller's *The Crucible:* A Feminist Reading." *Modern Drama.* pp. 461-473. Doi:10.1353/mdr.1994.0040.
16. Woolf, Virginia. *The Death of the Moth, and Other Essays.* Martiner Books, 1974.

Identity Crisis of Dalits Through The Autobiography 'Joothan'

Dr.Shibani Chakraverty Aich
Department Of English, Amrita Vishwa Vidyapeetham, Amritapuri, India

S. Neeraj Sivani
Department of English, Amrita Vishwa Vidyapeetham, Amritapuri, India

Abstract-Omprakash Valmiki's Joothan chronicles the struggle of a Dalit family for education and social standing, it tells the storey of a Dalit family's quest for Dalit dignity and identity. This study, titled "The Identity Crisis of Dalits Through the Autobiography Joothan" is an attempt to analyse the realities and true nature of society; how people from lower castes are treated and how their lives become miserable; and the various factors that prevent them from having a positive identity in the mainstream. Dalit literature, in and of itself, is the best equipment for the voiceless, since they battle the evils of society with pen and paper, and this is the arena in which the voiceless dare to speak. It is by no means a trivial piece of writing or a worthless work of literary. It depicts the creativity of the oppressed, where writers are completely generous with their writing because it reflects their own lives; it is a portrayal of reality; its colour is always black and dirty, and the writing's subjects are unique, derived from the ground. Dalits have always fought for their dignity and independence. In this article I will examine how the upper class acts as a barrier in every aspect of their lives.

Keywords: Dalit Literature, Caste, Identity, Discrimination,

Introduction-Omprakash Valmiki is one of the most eminent Dalit writers in Hindi. He authored numerous works in the history of Dalit writing, but his autobiography is one of the most well-known, and it can be considered a watershed moment in the history of Dalit literature. "Joothan" is his autobiography, in which he discusses the difficulties he encountered as a youngster and the humiliations and oppressions that a dalit must endure in order to exist in a society. His autobiography was first published in Hindi, but was later translated into English by Arun Praha Mukherjee, which aided in the novel's success. Because it was translated into English, it acquired a wider audience and is extensively read by individuals from all over the world. This widespread dissemination has increased public awareness of dalits' plight. The book itself is mostly concerned with the tragedies that occurred during Valmiki's lifetime, from his birth until his death. It even concentrated on the tragic stories of the writer's fellow members of lower-class neighbourhoods. In his original Hind version of the book, he directly addresses the readers, attempting to convey the magnitude of the oppression and censorship he himself endured.

Casteism, Society and the Dalit-Caste remains a very significant institution in India's socioeconomic, religious, and political organisations. Dalits had been relegated to the bottom of India's social order for centuries, denying even the most fundamental human rights such as access to drinking water from public lakes and wells, freedom to speak on public highways, and the opportunity to choose an employment rather than being assigned one by birth. In certain instances, they have even less liberty than animals. Dalit is a self-designated identity for the formerly untouchables. The title Dalit itself exemplifies the persecution and suppression they experience in society. It is derived from the Sanskrit root word 'dal', which meaning 'downtrodden', 'crushed', or 'crumbled'. The name 'Dalit Literature' was coined in 1958 at Bombay's inaugural Dalit literature conference. This was the first time they referred to themselves collectively, rather than being referred to by higher-class individuals. By identifying as Dalits, writers such as Omprakash Valmiki are embracing an identity forged through the historic battle to abolish the caste system that resulted in their "untouchable" status. They wish to rebuild a society based on human dignity, equality and respect. Dalit writers have commented that Dalit literature has evolved as a component of the dalit liberation and freedom struggle. According to contemporary critics, dalit literature can only be created by dalits since it is a reflection of their own lives, which can only be depicted in its truest form by members of the same community.

Dalit Autobiography and 'Joothan'-Dalit autobiography or life writing, as P.K. Nayar correctly asserts, is less about the Dalit individual than it is about the entire society or caste. "It's a collective biography of a people that have been subjected structurally for millennia." He prefers the term 'testimony, a witness-story of horrors,' because the dalit author of an autobiography is one who brings back 'awful memories from the past.' Thus, Arun Prabha Mukherjee is correct in believing that Dalit autobiographies pose a challenge to postmodernists' claim to have 'created' autobiography. As such, Joothan requires the readers' attention, as it is a true account of Omprakash's life and that of the entire Chuhra community. Valmiki, on the other hand, explains the unusual psychological doubts he felt when he was approached for the first time to contribute an autobiographical chapter to a book titled 'Harijan se Dalit.' His friends and lovers in his own group forbid him, understanding that it would put an end to his artistic activity, as well as any memoirs. Dalit life is far too authentic to be formally recognised by social reality.

Joothan: The Portrait of a Dalit-Society-Joothan follows Valmiki's development from an untouchable child to an educated dalit campaigner in a manner reminiscent of the educational-roman tradition. The non-linear text narration is based on his traumatic memories of his existence. The book is written in the form of a questionnaire, reflecting the Protestant position on prevalent social values. Numerous concerns raised in the essay have a seasonal socio-political relevance with enormous disruptive potential. According to Mukherjee, Joothan's interrogative discourse is one of the qualities that distinguish him as a Dalit literature. Numerous questions in the text require an answer. It details how the author's caste, the Chuhra, became a monstrous impediment at each point of the evolutionary trajectory. The detailed depiction of his terrible life in Chuhra, a suburb of Muzafarnagar in Uttar Pradesh near Barla, demonstrates how the caste system operates in this democratic state. Valmiki recounts the storey of the dangerous and dreadful atmosphere that existed on the outskirts of the settlement of Barla, which was ruled by Tyagi. Indeed, Joothan is a documented history of Dalits that destabilises Gandhian nationalist ideology, which has maintained a caste structure to preserve the social order since civilisation's inception. Valmiki describes the axiomatic discussion of 'caste' between Gandhi and Ambedkar when he

says, "The pigs go down tiny streets, the bare children, their dogs and everyday struggles. If those who call the caste system an ideal social system were to live one or two days in that setting, they'd rethink their views." All implications of the term "Joothan" have symbolised the untouchable's sub-man-existence in the "Chuhra basti," the insurmountable misery, the agony of the pushed down, the famine, misery, and groaning of outcasts. The outcasts were paid nothing or extremely low rates for a variety of menial jobs requiring strenuous physical labour, such as scavenging, harvesting and disposing of deceased bovine animals. This rendered them reliant on 'joothas'—remains, scraps; Valmiki informs us, with dismay and regret, that 'the jootan was consumed with great joy.' Outcasts were seen as untouchable in all religions. The author notes, "This Muslim Tyagi's behaviour was precisely like the Hindu Tyagi.' Valmiki was bewitched with factual evidence to the hypocrisy of those 'Tyagis' who were stuck in a storm of turpitude, adultery and usurpation." He recalls, "That's when I thought about every Tyagis who came to the Bhangi Basti for pork in the darkness of the night. People who arrived secretly at night to consume meat during daylight saw that everyone was untouched... Teja Taga was one of them... His interest rates were so high that you could pay the interest for the full life and the principal remained undisturbed."

Vaidy Satyanaryana Sharma, a filthy moneylender, was also a village priest. Local police administrations were complicit in all of these illicit exploitation and usurpation actions. According to Valmiki, "Police constables would have forcibly removed fowl from the basti. There was no place for a complaint; rather, certain Tyagis would collaborate with the police on this robbery." Gandhiji's argument is refuted by the book, which asserts that these incomprehensible elements are part of "the hindu fold," because Dalit deities are "distinct from Hindu divinities and their names will not be found even if you seek hard in any Purana." At Janmashtami and Mai Madaran, Dalits worship Jaharpir instead of Lord Krishna or Goddess Lakshmi. When Valmiki reads that Ambedkar persuades, "Gandhi did not help them enter the national mainstream by designating the untouchables, but had protected the Hindus from a minority," Valmiki refers to Gandhi's tactics in labelling the Dalits Harijan.

Struggle for Identity-Valmiki provides a brief account of the physical and psychological space that the Chuhras occupy in the village as to give a picture of the nature of their social existence. The Chuhras, Valmiki's own caste, lived across the pond, which is viewed as a barrier between high caste and untouchables residences. It depicts not only the physical area occupied by the top and lower castes, but also their two distinct worldviews. Between persecution and hardship, the Chuhras exists. This description conveys an impression of the abject poverty endured by the untouchable or dalit group. Their homes are strewn with every manner of filthy filth, and one can see pigs, dogs, and toddlers roaming the area's small alleys. The Chuhras lived in a physical and social environment devoid of human dignity; this is, of course, a result of the caste system. As a result, Valmiki's early life was profoundly affected by the absence of dignity. Economic distress exacerbated the social and psychological deprivation. While each member of his family contributed to domestic chores, it was difficult for them to acquire enough money to provide two decent meals a day.This economic difficulty was also a consequence of their caste order. The Chuhras performed a variety of tasks for Tyagas, the upper class, and frequently went unpaid. Due to their poor social status, they were frequently treated like animals and forced to work for free by the upper castes. Valmiki himself recalls the brutality of the caste system. He declares, "One can overcome poverty and deprivation, but not caste," because poverty may be transformed but caste remains constant. Valmiki is deeply distressed to learn that even if Dalits desired to join the mainstream or the highest echelons of society after obtaining an education, the superior or higher castes barred them from attaining such positions.

Seeds of protest-In Valmiki's autobiography, Joothan, the author's father wishes to educate his son; he does not wish for his son to suffer the same treatment as he has received throughout his life. Valmiki's father, who works tirelessly to get Valmiki's admittance to school, must contend with cruel comments from society, such as 'What is the use of sending him to school?' and 'When did a crow become a swan?' 'Regardless of how much you study, you will always be a chuhra.' He is humiliated, discriminated against, and oppressed in school on the basis of his caste. He is forced to sit in a separate section; he gets beaten up by upper class pupils; and he is humiliated by his teachers as well. Thus, Joothan both demonstrates the validity of caste prejudices and refutes the educational institution's argument that caste no longer operates as a social force in contemporary India. Omprakash Valmiki, like other autobiographical writers, shows opposition vociferously in Joothan. He asserts that Dalit Literature is popular literature. It is a work of action literature founded on human principles, waging a war born of rage and rebellion against a feudalistic worldview. The seeds of revolt are sowed early in Valmiki's oppressed life. By detailing his entire life, he exposes every detail of his painful events.

Fight for Dignity-Valmiki emphasises the necessity and relevance of struggle in bringing Dalit social consciousness and organising all the society's poorer parts. Valmiki has resurrected a word from the Dalit history's sad past, resonating with numerous ironies and dilemmas. When paired with Ambedkar's passionate urge to fellow untouchables not to accept Joothan, even when its refusal prompted bloodshed, Mahatma Gandhi's paternalistic preaching comes up against Valmiki's work, which proliferates in different interpretations. It is therefore unsurprising that one of the text's most emotional episodes is Valmiki's mother receiving a basketful of Joothan following her humiliation by Sukhdev Singh Tyagi, a high caste member of his community. This occurred at Tyagi's daughter's wedding, when the narrator's mother demanded more than leftover food from the wedding feast for her children after working hard as a cleaner. This enrages Tyagi and taunts her, as she says, "You are about to take a basket of Joothan. Additionally, you desire nourishment for your children. Keep in mind your location, Chuhri. Take your basket and head out '". The remarks of Sukhdes Singh Tyagi pierced his heart like a knife, as he threatened both his mother and community in a negative manner. Valmiki also attempts to demonstrate the Dalits' helplessness to fight exploitation. As the majority of his community's citizens were deeply in debt, they were unable to resist injustices. Joothan demonstrates the arduous fight Dalits endured to obtain the freedom to self-expression.

Struggle for Education-As a student, Valmiki opposes and criticises the ill-treatment meted out to students mentioned in the Mahabharta. He recounts one such incident in Joothan, when he questions his teacher in class, "...So Ashwathama was given flour mixed with water instead of milk, but what about the rest of us who had to drink mar?" How is it that we have never been mentioned in any epic? Why hasn't an epic poet written a single word about our lives?"The untouchables remained 'useless,' and their horrific existence went unrecorded in India's history.

Their plight received less attention from the higher caste as well as literary artists. This rejection and Valmiki's audacious gesture of inquiring about his teacher's predicament is a symbol of resistance by the entire untouchable community.This is the context in which Valmiki begins his discussion of his battle for education. At the time, the government schools were officially available to untouchables, but administrators refused to admit them. Valmiki was welcomed into his open-air school by the compassionate Sevak Ram Masihi, a Christian teacher. However, after a brief stay with Sevak Ram, Valmiki's father enrolled him in the Basic Primary School. After much suffering and pleading with others, Master Har Phool Singh permitted three untouchable children. As a result, Valmiki began attending school. It's worth noting that all of this occurred eight years after India gained independence. Untouchability was a defining quality of this school. He was forced to sit on the floor, with no mat to shield him from the dust and dirt. At times, he was forced to sit near the entrance and was unable to read the letters on the chalkboard. Even the teachers and headmaster were uniform in both the classroom and public areas. It was deemed their duty to mistreat the poor untouchable students. As a result, the headmaster once ordered the writer to sweep the school and even the entire school grounds, as his family's occupation is sweeping.

Conclusion-India's caste system has relegated untouchables to the lowest rungs of society. This segregated class of people have stayed impoverished and have long since been banned by the upper castes from climbing the social ladder and settle in a better position. Whether they were referred to as the depressed class, a scheduled class under the constitution, or Harijans by Gandhi, the pained state of mind created by the abhorrence meted out to them by their own fellow citizens and women could not be contained. The questionable and turbulent nature of their realistic lives and experiences could not be hidden behind the garment of law and administration, dreams and aspirations showered upon the ex-untouchables by national leaders. The numerous paths tried to explain and contain the phenomena of untouchability have yet to address the peculiar real-world caste rigidity practises that promote the exact opposite of the values that our state and constitution seek to uphold. The identity dilemma resurfaces with a precarious thrust. In such a scenario, Joothan is indeed a heartfelt attempt towards gaining identity, not only of an individual only but of a human class.

******

REFERENCE-

1.Ambedkar, B.R. Thus Spoke Ambedkar: Selected Speeches. Ed. Bhagwan Das.
2.Jullundur: Bheem Patrika Publications, 1969. Print.
3. Banerjee, Jayantha." Resistance and Counter Resistance in Omprakash Valmiki's
4.Joothan: A Dalit's Life." International Journal of English and Education. 4.1 (2015): 390-398. Web. 27 April, 2015
5. Dangle, Arjun. ed. Poisoned Bread: Translations From Modern Marathi Literature. Hyderabad: Orient Longman, 1992. Print.
6.Guru, G. Humiliation, New Delhi: Oxford University Press, 2009. Print.
7.Hill, T. Autonomy and Self-Respect. New York: Cambridge University Press.1992.
8.Ilaiah, Kancha. Post- Hindu India- A Discourse on Dalit-Bahujan, Socio-Spiritualand Scientific Revolution. New Delhi: Sage Publications, 2009. Print.
9.Kumar, Raj. Dalit Personal Narratives: Reading Caste, Nation and Identity. New Delhi: Orient Blackswan, 2011. Print.
10.Kumar, Sanjeev. "The Idea of Self-Respect in a Dalit's Life." Asian Journal ofMultidisciplinary Studies. 2.1 (2014): 55-61. Web. 18 June. 2015.
11.Limbale, Sharankumar. Towards an Aesthetic of Dalit Literature. Trans. Alok Mukherjee, New Delhi: Orient Longman, 2004. Print.
12.Nimbalkar, Wamanan. "Dalit Autobiographies: Graph of Pain." Journal of Literature and Aesthetics. 9.1 (2009): 15-19. Print.
Omvedt, Gail. Dalit Visions. New Delhi: Orient Blackswan, 2008. Prin

East West Confrontation in Bharati Mukhrjee Desirable Daughters

Dr. M. Muruganantham
Assistant Professor inRajapalayam Rajus' College, Rajapalayam.

Mathavi
Assistant Professor in English A.K.D. Dharmaraja Women's College Rajapalayam.

Abstract:-The eminent writers of Indian diaspora are Bharati Mukherjee, Rohinton Mistry, Salman Rushdie, V.S.Naipaul, Jhumpa Lahiri and Vikram Seth. They have been discussing several issues concerning their homelands and the land in which they live, in their works. Bharati Mukherjee's novels are different from the novels of other diaspora writers. As a woman novelist, she usually focuses on the female protagonists. Female protagonists are quite powerful and dominant in her novels. She presents their conflict while adapting to a foreign land. Her novels usually depict the voyage of the protagonist from expatriation to immigration which involves acculturation and assimilation. In the beginning, the protagonists naturally face the trauma of uprootedness and displacement. They encounter East West confrontation to settle themselves in the alien land. Tara, Dimple and Jasmine are her protagonists who undergo the hardships of this East West confrontation in an alien land. In *Desirable Daughters*, Bharati Mukherjee depicts the dilemma of Tara in the multicultural land of America.

Keywords: diaspora, immigration, acculturation, displacement

Bharati Mukherjee, as an immigrant, has skillfully depicted the difficulties encountered by immigrants in her novels. Mukherjee is an exponent in the portrayal of cultural clash between the East and the West. Mukherjee's novels describe the multicultural society and the progressive adaptations of both Americans and immigrants besides emphasizing the paradox of contemporary societies. *Desirable Daughters* is an important and thought provoking novel of Bharati Mukherjee. The significant theme of the novel is East-West confrontation. Women in India are not given due regards by the patriarchal society. They are not treated in equal terms. But the protagonists of *Desirable Daughters* are contradictory to this practice. They enjoy all sorts of freedom in their house and the society. The protagonists of *Desirable Daughters* are three sisters: Padma, Parvati and Tara.

Desirable Daughters is the story of the three different routes chosen by three Calcutta Brahmin sisters: Padma, Parvati and Tara. The three sisters are reputed for their beauty brilliance, wealth and their privileged positions in the society. They enjoy enough freedom and they are educated by catholic nuns in the School and College. Padma and Tara get married and immigrate to America while Parvati settles at Mumbai. Padma lives with her husband Harish Mehta in New Jersey. She works as a T.V. professional anchoring a popular program in an Indian channel run by her lover. She always advocates Indian tradition and often criticizes Tara, for being too Americanized. Her advocating of Indian tradition is ironical as she does not have a conventional marriage. Moreover Chris Dey, remains as a mystery in her life. Even her sisters believe that Chris Dey is her illegitimate son. But Padma has not assimilated into the American main stream even many years after her stay in the USA. But Tara has easily adapted herself to the American way of life in a few years.Parvati is the second sister of Tara. She is a traditional Indian wife whose home is often open to her relatives. She leads a happy and wonderful life in her luxurious apartment in Bombay. Parvati is the first to get married. Among the three sisters, "She had done the unthinkable: She'd

made a love match" (Mukherjee 50). She loved and married Aurobindo Banerjee who is not clever and handsome. The people in the city remarked:Small, dark and nervous, he was frightened by my parents and by the splendid of the marriage reception…love marriage was tragic enough, but even worse Parvati was jumping the marriage queue… She had to be pregnant, the rumours went. She wasn't (Mukherjee 51).Tara is sixteen and Padma is twenty two when their sister Parvati get married. Tara gets a job in a theatre in New York. She is living alone there. During the days Parvati calls once in a week over phone and provides all the details and happenings in India. Parvati is very generous and she often tells that "She manages a hotel not a home." (Mukherjee 54) She never complains her guests and their exploitation. Though her husband Auro hails from a middle class family, he manages to climb up the social ladder without neglecting his family. Tara is temperamentally different among the three women. Her marriage is an arranged unlike her sisters. She marries Bishwa Priya Chatterjee, a multimillionaire. She marries Bish simply because her father tells her to marry him. She lives in a town Atherton with her husband. Being an India Silicon Valley Icon and a successful businessman Bish provides her all comforts. He wants Tara to "look like a princess and live like a Queen." (Mukherjee 78) In turn she reflects Indian culture and tradition. She is meek and submissive to her husband. She takes all the domestic works carefully. She likes to pursue her higher studies but she rejects the desire to take care of her son like all the other India wives in Atherton, California. But time changes everything. Slowly she is taken away by the American way of life. She experiences a trauma between her home culture and host culture. She leaves Bish after a decade of marriage. Tara's decision to divorce Bish represents a new consciousness in Tara, where the regulations of Indian traditions and culture no more binds her actions. After the divorce she becomes more independent and more Americanized. After her divorce she leaves Atherton and settles in upper Haight in San Francisco. She feels that place is more suitable for her taste. She starts her new life with her son Rabi and her Hungarian lover Andy who is an ex-biker and Buddhist.

Tara starts working as a volunteer in a pre-school, forgetting all about the richness and social high position of her husband. Thus Tara successfully surpasses all the imposed traditional rules and regulations and enjoys her freedom. Brinda Bose opines, "In Mukherjee's fiction a woman's sexual freedom often functions as a measure of her increasing detachment from traditional sexual moves and correspondingly of her assimilation in the new world through her rapid Westernization/Americanization" (47). Tara feels herself an American and at the same time few Indianness emerges from her often. She tells though she distanced herself from India and the Indians in San Francisco, she cannot distance herself from her Indianness and her Indian identity. The memories of India, Indian culture, tradition and the heritage still latent in her. She reveals her deep rooted Indianness every now and then. The protagonist of Bharati Mukherjee exhibits Mukherjee's ideas and interests on Indian tradition and culture. Beena Agarwal Says, "The affinity to Indian soil and culture is rooted in the mental map of Bharati Mukherjee. Hence her approach to life and its problems is moored in her English upbringing." (272)

Tara's life moves smoothly and peacefully until a young guy named Chris Dey enters her house and introduces himself as her sister's illegitimate son. Tara, too unmindfully involves in the mystery of the boy. She arranges a deep enquiry with the help of police and a detective agent about the boy. She tries to find out the true motive of the boy who claims to be her sister's illegitimate son. The Police investigation ends at the fact that Chris Dey is already killed and in the guise of Chris Dey, Abbas Sattar Hai, a member of Dagwood gang wants to kill the techno guru Bish and his family. An Indian origin American Policeman Jasbir Singh warns Tara about the dangers. Andy, her lover dislikes her special interest and attitude about the boy. He constantly asks her to ignore the boy. As all his requests go waste, he leaves her forever. When she understands the real motive, her house is bombarded by the underworld robbers. The wealth and the fame earned by Bish creates negative impact in their life. The robbers in an urge to loot their big money bombed their house. Bish her husband and her son Rabi get injured in this. They are saved and at the end of the novel Tara returns to India with Bish and Rabi for protection and comfort and in search of her roots.The new American life and its richness create a stir in Tara's mind. She begins to toss between the home culture and host culture. She is slowly engulfed by the care free culture of America. She takes different and unexpected turns. She is unable to follow the host culture completely. The Indianness latent in her heart awakens and disturbs her. Again she swings between the two cultures. Thus in the novel *Desirable Daughters* Bharati Mukherjee highlights the East West encounter of Tara who face both traditional as well as modern worlds and their changing values. The transnational identity, immigrant identity and expatriate identity are mixed in Tara. Her communication in Bengali and English, the food she cooks in Indian and American, the clothes she wears are Indian and American, even her sexual life indicates that she sustains both the Indian and American Identity. Thus through Tara, Mukherjee brings out the East West encounter among her protagonists.

******

Works Cited:-

1. Agarwal, Beena. *The Fiction of Bharati Mukherjee: A Cultural Perspective*, New Delhi: Atalantic, 2001.
2. Bose, Brinda. "A Question of Identity: Where Gender, Race and America meet in Bharati
3. Mukherjee" in Nelson Emmanuel. S (ed) *Bharati Mukherjee: Critical Perspectives,* New York and London: Garland publishing, 1993.
4. Mukherjee, Bharati. *Desirable Daughters.* New Delhi : Rupa Publication, 2006

Teacher Effectiveness in Relation to their Emotional Intelligence and Job-Satisfaction

Mohan Lal 'Arya'
Professor
Department of Education
IFTM University, Moradabad (UP)
Email Id: drmlarya2012@gmail.com

Megha Khanna
Research Scholar
Department of Education
IFTM University, Moradabad (UP)
Email Id:khannamegha1986@gmail.com

ABSTRACT:-The present study attempts to examine the effect of emotional intelligence and job satisfaction on the teacher's effectiveness at senior secondary level of education. Really, this research will definitely not only give new dimension in improving teacher efficiency and teaching skill, but also will be of an immense practical utility to educational administrators. The main objective of the study to the teacher effectiveness in relation to their Emotional Intelligence and job satisfaction, to achieve the objective researcher has used 500 senior secondary schools teachers as a sample. In the present investigation all the steps will be follow which are essential for survey method.

KEYWORDS: Teacher Effectiveness, Emotional Intelligence, Job Satisfaction.

INTRODUCTION:-Education plays a vital role in the process of socio-economical development of a nation. It is considered as a critical input for the economic development for human resource development. Really, education is a source of all-round development of individual's personality. It is an integral part of all the societies that not only broadens people's mind and perspectives, but is also expected for participation in economic and social life. With a sound knowledge-base and specific work skill, an individual is able to develop a well rounded personality. Education is not the filling of a pail, but the lighting of a fire, (*W.B. Yeats*). Here, the wordings of *Kahil Jibram* can be quoted, *"A true teacher leads his students to the thresh-hole of the temple of their minds."* Therefore, it is only teacher not a institution, that can produce desired and able individual. Thus, teacher gives the most important and valuable human resources to the nation.

Teachers are said as the builders of society. They can make the pillars of a nation deep and lift them high to sky. The teacher has a powerful and abiding influence in the formation of every future citizen's character. He acts as the pivot for the transmission of intellectual and technical skill; cultural traditions from one generation to the other. The responsibility of a teacher is therefore, very great. It is right to say that nation's well-being depends upon the well-being of teachers. *Humayun Kabir* once said, "*Without good teachers even the best system is bound to fail, with good teachers even the defects of a system can be largely overcome."* The teacher is thought as a fly wheel of the whole education machine. Challenge of Education, A policy perspective (1985) has highlighted that the teacher's performance is the most crucial input in education. All the school plans, progressive methods, the best equipments and the new technologies will remain useless, unless there is the right use by the teachers. It is only teacher, who moulds the precious material of land i.e. students in their most valuable period of development into the required shapes. He is the source of inspiration to the students. He tries to develop good habits in students, fosters a sense of curiosity among them and leads them towards the healthy competition in the age of knowledge explosion. It is said that a teacher is like a candle, which lights others in consuming itself. Teacher's personality, behaviour, interest and attitude affect the student's behaviour patterns and thus ultimately shape their personality (*NPE 1986*).Now-a-days in 21st century and in the world of globalization, the knowledge has been currency. Explosion of knowledge has made everyone conscious of the fact that with the existing knowledge and skill; one may not be able to survive in any way in this global competitive world. In this changing scenario the teacher must do extra efforts with his skill and ability.

NEED AND SIGNIFICANCE OF THE STUDY: -Generally, we see that sometimes a good academician becomes unsuccessful in teaching. It is also an old saying that a first class student cannot be a good teacher, while a third class student can be a good teacher. As intelligence quotient alone is no more a measure of personal and professional skill, it is creativity, emotions, personality and interpersonal skill that matter more for a success of a teacher. Now life is very complex and teachers have to face many problems in the class room like indiscipline, fear, failure, disappointment, frustrations, guilt, resentment, bitterness, dependence, depression, loneliness, lethargy etc. Session after session they try their best to solve these problems, because all these problems and factors directly and indirectly hinder them to be effective teacher. Besides this teacher's effectiveness is also associated with his age, adjustment, mental health, emotional intelligence and job-satisfaction also.

Many researches taking the issues of teacher's effectiveness have been performed. *Dr. Y.K. Gupta (1983)* performed his study on effective and ineffective high school teachers in relation to personality factors, organizational climate, sex, location of the school and discipline in Moradabad District. *Indira (1997)* in her study observed that there was no significant difference between male and female teachers in their teacher's effectiveness and achievement orientation of the two groups of teacher i.e. below 35 years and above 35 years. *Pandey and Maikhuri (1999)* in their study attempted to explore the attitude of effective and ineffective teachers towards teaching profession.

STATMENT OF THE PROBLEM: - "*Teacher Effectiveness in Relation to their Emotional Intelligence and Job-Satisfaction.*"

DEFINITION OF THE SPECIFIC TERMS USED: -*Teacher Effectiveness:* - Teacher effectiveness is understood as that which helps in development of basic skills, understanding, proper work habits, desirable attitudes commitment to work, value judgment and adequate personal adjustment etc. Effective teachers have ability of understanding the student's emotions and their causes, capability of effectively regulating these emotions is one self and in others.

***Emotional Intelligence:* -** Emotional intelligence is thought as greater predictor of teacher's success at work than intelligence quotient. Based on the recent studies it is supposed that I.Q. accounts only 10-20% for determining life success. *"Emotional Intelligence refers to the capacity of recognizing our own feelings and those of others for motivating ourselves and for managing emotions well in ourselves and in our relationship." (Goleman, 1998).*

***Job-Satisfaction:* -** Job satisfaction means a person is satisfied with his job or profession. Work and job stress, overburdened with work, not getting academic freedom, more control and interferences of the

employer hamper the creative thinking and work efficiency of a teacher resulting in him job-dissatisfaction. According to *Gilmor (1966) "The result of various attitudes, the person holds towards his job, towards related factors and towards life in general."*

OBJECTIVES OF THE STUDY: - To study the difference between Male and Female Teachers on their Effectiveness, Emotional Intelligence and Job Satisfaction.To study the difference between the teacher belonging to colleges of Urban and Rural Areas on their Effectiveness, Emotional Intelligence and Job Satisfaction.

HYPOTHESIS: - There is no significant difference between Male and Female Teachers on their Effectiveness.There is no significant difference between Male and Female Teachers on their Emotional Intelligence.There is no significant difference between Male and Female Teachers on their Job Satisfaction.There is no significant difference between Teachers of Rural and Urban Areas on their Effectiveness.There is no significant difference between Teachers of Rural and Urban Areas on their Emotional Intelligence.There is no significant difference between Teachers of Rural and Urban Areas on their Job Satisfaction.

RESEARCH METHOD:-

The investigator to use the descriptive survey method of research studies of this kind representing a specific population collected through highly structured and detailed questionnaire or interview.

POPULATION:-

The population for the present study is consisted all the teachers of secondary schools of Moradabad district. Moradabad district has about seven vikaskhand (blocks) having 48 aided colleges and 141 self financed colleges with about 2000 teachers.

SAMPLE:-

In the form of sample for the study teachers of both the sex i.e. male and female of the aided and self financed secondary schools belonging to urban and rural areas selected randomly from all the secondary schools of the Moradabad district.

THE VARIABLES: -

Dependent Variable: Teacher's Effectiveness.

Independent Variable: Emotional Intelligence and Job-Satisfaction.

TOOLS USED:-In the present study the following tools are used in order to collect the related data- Teacher Effectiveness Scale (T.E.S.):- By *P. Kumar* and *D.N. Mutha*, Emotional Intelligence Scale (E.I.S.):- By *Anukool Hyde, Sanjyot Pethe* and *Upender Dhar* and Teacher's Jab Satisfaction Scale (T.J.S.S.):- By *P. Kumar* and *D.N. Mutha*

STATISTICAL TECHNIQUES USED:-

After data collection in the scoring was dare and the following measure were used to analyze the interpret, the result and to test the hypothesis- Mean, Standard Deviation and 't' Test.

DELIMITATIONS OF THE STUDY: -

This study is delimited to Senior Secondary Government, Private, rural and Urban Schools teachers of Moradabad District.

DATA PRESENTATION, ANALYSIS AND INTERPRETATION:-

There is no significance of difference between the Mean Scores of Teaching Effectiveness of Male and Female Teachers.

Table-1

Mean Scores of Teaching Effectiveness of Male and Female Teachers

Teachers	N	Mean	S.D.	't' Value	Level of Significance
Male	250	304.9	30.12	2.59	0.01
Female	250	311.5	26.65		

The above Table number 1 clearly shows that the values of Mean Scores and S.D.'s for Male and Female groups with regard to Effectiveness (for total sample) are found to be 304.9 & 30.12 and 311.5 & 26.65 respectively. The 't' ratio is 2.5 which is found to be significant at 0.05 & 0.01 both levels. It clearly indicates that Female Teachers are more effective in teaching in comparison to Male Teachers.

There is no significance of difference between the Mean Scores of Emotional Intelligence of Male and Female Teachers.

Table-2

Mean Scores of Emotional Intelligence of Male and Female Teacher

Teachers	N	Mean	S.D.	't' Value	Level of Significance
Male	250	141.70	13.98	1.26	Not Significant
Female	250	140.14	13.74		

The data as shown in the table number 2 clearly reveals that the values of Means and S.D.'s for Male and Female groups with regard to Emotional Intelligence (for total sample) were found to be 141.7 & 13.98 and 140.14 & 13.74 respectively. The 't' ratio -1.26 was found not significant at both levels i.e. 0.01 and 0.05. It indicates that male and female teachers do not differ in relation to Emotional Intelligence.

There is no significance of difference between the Mean Scores of Job Satisfaction of Male and Female Teachers.

Table-3

Mean Scores of Job Satisfaction of Male and Female Teachers

Teachers	N	Mean	S.D.	't' Value	Level of Significance
Male	250	22.98	4.72	0.23	Not Significant
Female	250	22.88	4.71		

Analysis of table number 3 signify that Mean Scores and S.D.s for Male and Female teachers were found 22.98 & 4.72 and 22.88 & 4.71 respectively. The 't' ratio 0.23 was not found significant at both levels i.e. 0.01 and 0.05 levels. It means that both the groups of teachers did not differ on their Job-Satisfaction. Both the groups are well satisfied in their jobs.There is no significance of difference between the Mean Scores of Teaching Effectiveness of Rural and Urban Teachers.

Table-4

Mean Scores of Teaching Effectiveness of Rural and Urban Teachers

Teachers	N	Mean	S.D.	't' Value	Level of Significance
Rural	250	303.70	30.90	3.89	0.01
Urban	250	313.70	26.59		

The objective of this hypothesis was to know how location of school is related to the teachers effectiveness. Analysis of table number 4 reveals that Mean and S.D.'s for Urban and Rural groups were found to be 313.7 & 26.59 and 303.7 & 30.90 respectively. The 't' ratio 3.89 was found to be significant at 0.05 and 0.01 both levels. It clearly indicates that teachers of urban areas are more effective in teaching.

There is no significance of difference between the Mean Scores of Emotional Intelligence of Rural and Urban Teachers.

Table-5

Mean Scores of Emotional Intelligence of Rural and Urban Teachers

Teachers	N	Mean	S.D.	't' Value	Level of Significance
Rural	250	139.62	13.33	2.05	0.05
Urban	250	142.14	14.33		

The data of the table number 5 clearly asserts that the calculated 't' value 2.04 indicates that Urban and Rural groups differ significantly at 0.05 level with regard to total Emotional Intelligence. The values of Means and S.D.'s for Urban and Rural groups were found to be 142.14 & 14.33 and 139.62 & 13.33 respectively. It indicates that teachers of Urban areas are more Emotionally Intelligent than that of Rural areas. It may be due to area / location, where they reside.There is no significance of difference between the Mean Scores of Jon- Satisfaction of Rural and Urban Teachers.

Table-6

Teachers	N	Mean	S.D.	't' Value	Level of Significance
Rural	250	23.42	4.30	2.39	0.01
Urban	250	173.18	50.8		

Mean Scores of Job-Satisfaction of Rural and Urban Teachers

Analysis of table number 6 states that Mean and S.D.'s for Urban and Rural groups were found to be 22.44 & 5.08 and 23.42 & 4.30 respectively. The calculated 't' ratio 2.39 indicates that Urban and Rural groups differ significantly at 0.05 level with regard to total Job-Satisfaction.

INTERPRETATION:-For Teacher Effectiveness, the Male and Female teachers differ significantly. It may be interpreted that sex is a significant factor influencing the effectiveness in teaching. It points out clearly the women work effectively; they are too sincere and committed to their work place. All these findings indicate that sex plays an important role to do with attitude towards teaching. The results on Emotional Intelligence have revealed no significant difference between the Male and Female teachers. It may be interpreted that here, sex is not a significant factor influencing the Emotional Intelligence. Both the groups have similar Emotional Intelligence. As, in modern age Emotional Intelligence plays vital role not only in life, but also in work place. In this study there is no difference between the Male and Female teachers in regard to Job-Satisfaction. Many studies had also shown that Male and Female did not differ significantly with regard to their Job-Satisfaction.For Teacher Effectiveness, it may be interpreted that location of school is a significant factor influencing the effectiveness in teaching. The results on Emotional Intelligence have revealed significant difference between the Urban and Rural Schools' Teachers. It may be interpreted that location/area is a significant factor influencing the Emotional Intelligence. In this comparison life style, facilities for education, facilities for teachers play an active role. Urban teachers get all of above things. Thus, they were found more Emotionally Intelligent. For Job-Satisfaction finding occurred in the study are surprising. These findings show that both the situation of life is similar. It may be due to the fast development of society. Villages are developing and rural areas have thus direct impact on various aspect of Job-Satisfaction like Urban Teachers.

FINDING OF THE STUDY:

It is therefore, logical to present here some findings deducted from scrupulous analysis and interpretation of data, which are as Sex does not play any significant role on Teachers' Job Satisfaction and Emotional Intelligence. No surprise was found when Teachers of Urban Areas showed their better performance in Effectiveness and Emotional Intelligence. Although they were found less Job Satisfied than Teachers of Rural Areas. It was found that Teacher Effectiveness had Positive and Significant Correlation with Emotional Intelligence. The result came into light was that Teacher Effectiveness was to be positively correlated with Job Satisfaction.

******

REFERENCE: -

1. Roul, Sushanta Kumar (1981) Teacher Effectiveness of Autonomous and Non-Autonomous College Teachers in relation to their Mental Health, Abstract Journal of Indian Education Vol. XXIX, No. 2, August 2004, P.P. 84-85.
2. Dash, Devendra Nath & Behera, Narayan Prashad (2004) Teacher Effectiveness in relation to their Emotional Intelligence, Abstract Journal of Indian Education Vol. XXX, No. 3, Nov. 2004, P. 54.
3. National Policy on Education-1986 (1986) Ministry of Human Resource Development, Government of India (Deptt. Of Education), New Delhi.
4. Solvey, P. and Mayer, J.D. (2009) Emotional Intelligence, Imagination Cognition and Personality, 9 P.P. 185-211, website http://en.wikipedia.org/Emotional_Intelligence.
5. Goleman, D. (1996) Emotional Intelligence, why it can matter more than I.Q., Bantan Books New York cited in Journal of Indian Education Vol. XXX, No. 3, Nov. 2004, P.526.
6. World Health Organization: Promoting Mental Health cited in http://en.wikipedia.org/mental health.
7. Conley, S.H. Bachara, C.H.S. (2001) The school work environment and teacher career dissatisfaction, Educational Administration Quarterly 25 (1), P.P. 58-81
8. Hoy, W. & Miskel, C. (1996) Educational Administration Theory, Research and Practice, 3rd Ed. New York, Random House, P. 71.
9. Journal of Indian Education, NCERT, Vol. VIII, No. 5, Jan. 1983.
10. Journal of Education & Psychology, Vol. XXXXI, No. 3, Oct. 1983.
11. Journal of Educational Research & Extension, Vol. 20, No. 4, April 1984.
12. Journal of Indian Education, Vol. XXIX, No. 2, Aug. 2004, P. 93.
13. Journal of Indian Education, Vol. XXX, No. 3, Nov. 2004, P.P. 56-61.

Revisiting Colonial Adventurism in the Unmapped Assam Frontier Hills and Beyond

Siddhartha Pait
Assistant Professor
Department of History
Dibrugarh University, Assam

Abstract: Relentless experiments on the natural landscape was done by the British colonial administration and explored the frontier tracts of Assam. The tract from Balipara up-to Sadiya frontiers formed the North East Frontier Tracts of Bengal and later on became the North East Frontier Agency (NEFA). The frontiers posed no serious threat or political instabilities to the British empire, yet arrangements were made with the tribes to secure the frontier. Threat perception from across the eastern mountains was found notional. This paper attempts to investigate the circumstances or demands that necessitated a frantic engagement to territorialize the frontier. It will dwell with other factors related to tribes, strategic questions and resource explorations under the colonial rule.

Key words: colonial, forest, frontiers, strategic, trade,

Objectives: To understand colonial ideologies that determined British policies in the northeast frontiers of Assam. This paper would attempt to find the protracted experimentation of British administration in the region which left the frontier policies in ambiguity and draw certain rational conclusions.

Introduction -The north-eastern part of Bengal, which comprised Assam and its outlying hill tracts was treated as "enemy territory" after the British took over its administration under Colonel Alfred Richards of the 31st Bengal Native Infantry**.** After the Yandaboo Treaty of 1826 it became expedient for the colonial administration to bring the tribes under their control for security reasons. The Balipara, Lakhimpur and the Sadiya frontier tracts of Assam including Mishmi Hills and Tirap frontiers were transferred to Assam in 1950 and put under political division called the North-East Frontier Agency or NEFA [1]. The colonial administration felt bothered with the security of Assam frontiers which could upset British peace efforts in the plains of Assam. The colonial phase brought the Agency close to the system of "complex governance" through periodic trigonometrical survey by East India Company's officers. It was the **"**age of revolution" between mid-18th and 19th century which followed British expansionism and the "China bogey" across the Himalayas determined British policies. The Industrial Revolution and "transition of the West to industrial economy" drew attention to incorporate the Orient with global commerce. Pomeranz in *The Great Divergence* mention of colonial practices of "coercion and overseas extortion" to achieve favorable trade items. European political economy intensified and most of the colonization in Asia and the New World were "privately financed by people seeking profits".[2] Not all the policies were determined in The Whitehall or Viceroyalty in India. Many of the arrangements adopted in the period lost cognizance in the latter state building process.

Colonial resumption

The inhabitant tribes along the narrow strips of the foothills called *duars* or narrow passage in the outer foothills were engaged in trade. Further east, the system of periodic voluntary offerings to the turbulent tribes dwelling in the Hills known as *posa,* a medieval practice, was resumed.[3] The term "frontier" was defined by Alexander Mackenzie in the *North-east Frontiers of Bengal* to denote a demarcated boundary line or a tract. . It embraced the northern, southern and eastern ranges of the hills of Assam valley, including the hill ranges between Bengal and Burma (Myanmar).[4] The rise of imperial Burma made British India change strategies in the east. It speculated the resurgence of Burmese imperialism from across the eastern front.[5] Conscious of the "inexorable historical forces" attributed to the tribes**,** which T.H. Holdich termed as "vast aggregation of tribe-people" with wide "social idiosyncrasies" also accompanied by "great scientific value", the government exercised its sovereign power whenever the question of law and order was involved. Strategic interests took precedence in the British foreign office in Bengal. The *Indian Political Consultancy Report* indicated the emergence of strategic demands in the eastern and northern extremities.[6]The "complicated and unstable" state of lawlessness were to be dealt by trained colonial officials. The *Report* also stated that on distressing situations "the exhibition of coercion should be reserved for greater and rare occasion" to justify the "adoption of measures of general retribution."[7] Pomeranz's chapter 'Visible Hands' mentioned how the European colonizers' act in "military protection" and "political organization" in the New World, holds good in British Asian adventurism as well**.**

Securing the East

M.L. Bose in the *Historical and Constitutional Documents* wrote on colonial selective intervention in the frontier Hills dealt with "intrinsically good" policies. The agreement in 1826 with the Khamti *Gohain*, the frontier governor of former Ahom kingom, was a pledge of loyalty to the British. His position was recognised on condition of providing protection to the subjects. Besides crime perpetrators in British territory or fugitives deported to the British authority.[8]It was to ensure peace and stability in the "vulnerable" eastern tract of Upper Assam, prone to internecine clan war and raids. Between Dirak and Sadiya, Francis Jenkins, the British Political Agent, made agreement with the Khamti chief in 1843. As per the terms a) The Khamtis were allowed to cultivate the tract between Soonpura and Noa Dihing for a given tenure on moderate taxation b) They were to resist Singpho and Mishmi raids at Sadiya and protect the *ryots* c) Committers of heinous crimes like murder, robbery and counterfeiting coins were to be handed over to the British Principal Assistant.[9] Such interim arrangements retained peace with minimum risk and exposure.

Negotiating the Frontier Hills Tract

P.N. Luthra in 'North East Frontier Agency and Tribes' mentioned of how colonial armed expedition earned loyalty and established "political and administrative dominion" over the frontier tribes.[10] The Governor General's Council instructed officers to be sparing and cautious while conducting expeditions. It accounted the Dhemaji *mouza (*a revenue unit of land) incidence when the Hill Miris of lower Subansiri raided the villages in the foothills. Their close contact with the *ryots* of Dhemaji in the fringes of the British territory resulted in conflicts. The Sub Assistant of Lakhimpur strongly retaliated the Miri intruders and killed the tribal chief.[11] Jenkins reiterated inevitable expeditions should be taken up with

compassion. As Agent to the Governor General Jenkins instructed that if evitable everything should be secured with conciliation.[12] He refrained from armed intervention even after the Akas of Balipara frontiers abducted few British officials. The frontier officers' extortion from the traders in foothills between Bhutan and Tibet resulted in frictions. The government officials posted in the borders encouraged such raids, as they used to get share from the plunder.[13] Reports of Adam White posted at Sadiya garrison also confirms such extortion by the police.[14] In Sadiya feuds arose between the Singpho *gams* or chiefs, Duffa *gam* and Beesa *gam*. The Duffa *gam* maintained good relation with the belligerent Moamorias aroused suspicion amongst the British officials. The Beesa *gam* commanded the loyalty of all Singpho clans and collaborated with the British. According to Francis Robinson, the Singphos were powerful tribe bordering the valley with the Hills. Gunel Cederlof wrote in *Founding an Empire in India* that British dreaded the Singpho clans who constituted a loosely connected but powerful ally with few local tribes. They could counter the supremacy of Burmese influence. A balance was maintained in the frontier Hills with the Khamtis equally powerful. The British along with the Beesa *gam* speculated on tea plantation in the Sadiya tract alienated the Duffa *gam*. The later retreated to Hukwang and made alliance with the Burmese.[15] This frontier strategy augmented colonial defence and worked out an effective "political screen" against the Burmese.

The Coercion

British relation with the Abors west of the Dibang river were not friendly. A hostile peace existed after military outposts were established along the borders of the Abor and Aka countries. J.B. Bhattacharya observed that expansion of infrastructure and commercial ventures redefined colonial relations with the tribes. Few areas around Lalimukh were opened to the plains along the Lakhimpur Hills tract. After discovery of tea and rubber plant species of *Fiscus elastic* in the Hills of the Nyisi, Galo and Adi tribes, British curiosity in the Hills grew.[16] Stockades were erected in the frontiers of Dihong and Dibang to ensure safety of the Sadiya – Dibrugarh communication line. Being far from the political centres and lack of local knowledge, the service of the tribes acquainted with the landscape was availed. The Hills were always looked upon by the British East India Company as transition zone of "resource-rich" areas (Cederlof). They treated everyone in the area as either enemy or potential labour.[17] The Inner Line Act of 1873 gave protection to the indigenous culture and identity of the tribes. After the discovery of tea and rubber in the Hills the Raj tacitly acted to reserve commercial rights with controlled intrusion into the Hills. Tea growing areas in eastern Naga Hills, later subsumed under the NEFA, were included under the British bureaucratic jurisdiction. In 1842 January, the *Tagi Raja* of the Akas in the Balipara frontiers entered into agreement with the colonial government. The Akas agreed to confine themselves to the markets of Lahabaree, Balipara and Tezpur and committed not to disturb peace in the name of grievance redressal.[18] The tribes relinquished all claims in the *duars* and imposed no levy or rent on the *ryots* in the plans. They had to apply in British courts for redress of grievances.[19] In an agreement with the Minyong Abors in 1862, the Deputy Commissioner of Lakhimpur H. S. Bivar felt it expedient to maintain peace and tranquility. The Mingyong chiefs agreed to recognize British territorial limits up-to the foothills. The British took control of the frontier Hills and erected forts, post guards and build roads as deemed suitable to safeguard interest. The tribes were warned against crossing into the plains to molest the residents of the British territory. The subjects would respect the tribes and make way for trade and communication with the plains.[20] Similar agreements were reached with the Kebang Abors in October, 1863 at the Laleemukh camp. They had controlled access to the trading points and could occupy lands in the plain on rent.[21] The government undertook the task of drawing the boundary separating the plains from the Hills

Quest for Resources

D.P. Chowdhury wrote on the plantation drive in the foothills of the NEFA Hills. The tribes along the Aka and Abor hills supplemented their economy by hunting, rubber tapping and elephant catching. Rubber was discovered in the Nyishi, Galo and Adi countries in the 19th century which became a new economic frontier. According to Pomeranz from the hinterlands of the Old World "primary products" were brought to more advanced regions. He refer to forest products like rubber, timber etc., "exotic items" like spices and "addictive" items like tea etc. In Assam the colonial rule encroached upon the vast expanse of tea growing and extensive forest areas .[22] The Darrang and Balipara tracts were opened for tea gardens in 1854 after tea cultivation started in 1835 near Sadiya. The *Assam Forest Regulation* restricted hunting, felling trees and collection of forest produce. The first *Reserved Forest Gazette* was notified in 1874. Lakhimpur had a total area of 321 sq. miles of reserved forest followed by Darrang with 29 sq. miles till 1901.[23] Timber mills like the Sissi Saw Mills and Timber Co. Ltd and the Meckla Nuddee Saw Mill Co. Ltd proposed the Board of Revenue to bring lands beyond the Inner line under colonial control.[23] Deployment of military police was recommended to make tribes understand colonial rules and intentions. [24]

20th century strategic debate

Villages in the Hills controlled trade roads between Tibet and the plains of Assam in the south. The tribes controlled trade routes and obstructed privileges to others except in Tawang and the Lohit valley. To overcome it the British government sanctioned trade post and trade fairs in the interior **H**ills. Frontier military police was deployed at Pasighat, Kobo and Rohtung to contain tribes which become aggressive at the least provocation.[25] Government not intended to extend dominance in the tribal areas but only for the protection of the frontiers. In the *Abor Blue Book* the deployment of police column was to see that no Chinese trespasses into the frontier and interfere in the tribal territory. The government contemplated Chinese intrusion and it intensified after the Younghusband Mission (1903-1904). Wendy Palace wrote in the *Durham e-theses* on Chinese attempt to influence local Abor, Mishmi and Miri tribes in the Assam hills. The tribes dwelt in contiguity with Zayaul and Pome in eastern Tibet. Chinese activity in the areas were reported from British official sources. The murder of Noel Williamson provoked public protest in Britain after it exposed the weakness of the frontier policy. Involvement of the Chinese was suspected, though officially they blamed the Abors for Williamson's death.[26] Political Officer Charles Bell, cautioned the Viceroy's office to take guard beyond Inner Line against any Chinese threat. He felt the tribes could recognize the suzerainty of China or Tibet at any pretext.[27] Russia and Britain confronted in Central Asia and the contention expanded towards eastern Tibet. China's claim on Tibet bothered Indian government.[28] Tibet's relationship with neighbouring territories worried British India and had to take calculated moves in the Hills without jeopardizing its security.

Mishmi Mission – a strategic necessity

Chinese empire expanded south and took possession of eastern Tibet. Intelligence report confirmed threat from Chinese soldiers at Rima in Dibang and upper Brahmaputra valley. They instigated the Miju-Mishmi tribes to build road and connect Assam frontier Hills and Tibet.[29] An expedition to the Mishmi country in the Lohit valley and Miri inhabited areas was recommended by British Political Officers W. C. Dundas and Kerwood. The Qing empire's southward expansion was speculated in the British Foreign Office as "Chinese forward policy". Indian Government was not prepared to face the Chinese expansionism with inadequate troops and officials. In 1911 when Noel Williamson toured the Mishmi Hills up to Walong he noticed the Chinese flag at Menilkrai and confirmed the Chinese occupation of Rima. The Mission surveyed up-to Walong and recommended military outposts at Walong in present day Anjaw district.[30] It constituted a survey party into the frontier Hills, not meant to subjugate the tribes for any outrageous act committed before.

The Pobas of Tsang Po valley in Tibet also plundered the outlying Abor Hills of Siang Division. They were engaged in armed conflicts with the tribes dwelling between Subansiri and Siang. They claimed the valley of Shimong and Karko Hills. Nearly 2000 displaced Pobas settled between the Dibang and Lohit valley after devastating flood and diseases lashed southern Tibet. Reports of Tibetan influxes and conflicts with the tribes prompted Bengal administration with stringent measures. *The Assam Frontier Tracts Regulation Act of 1880* enabled extension "frontier regulation" up to the hill tracts of Assam till it gained effective control.[31] Reports of Chinese agencies constructing roads and telegraphic lines close to Mishimi territory raised concern in British India. The Chinese overrun Pemako in the southern banks of the Tsang Po and established strong garrison at Yortong.[32] In October 1912, the Government of India approved a separate administrative set for the North-East Frontier Tract and laid the foundation of North East Frontier Agency (NEFA) after few administrative re-arrangements. Neken Jamir in *Naga Burmese Trade* quote Visier Sanyau's remark on the colonial interest in the eastern frontiers to be more strategic than quest for resources.[33] To meet the strategic and economic interest of the empire, in 1850, Richard Yule and Bagley a railway engineer selected the Aeng pass and Hukong valley for survey for the extension of railway line.[34]

Science and Exploration

Exploratory surveys were also driven by scientific interest in the mountainous hinterland between Assam and Tibet. In the journal *Nature,* T.H. Holdich, refer to two-fold geographical and ethnographical explorations. He refer to Sidney Burrard, a trigonometrical surveyor, who worked in the basins of Brahmaputra and its tributaries, namely, Lohit, Dibang and Subansiri. Burrard mentioned of a vast area for work in the 28,000 sq miles of unexplored Himalayan mountainous region.[35] The explorations of botanists like William Griffith, Nathaniel Wallich and Francis Kingdon Ward took place in region for plant collection. It left the frontiers in the forefront of scientific enquiry which was a meeting ground for "botany and empire" and opened the sphere of "colonial science".[36] Ward explored the Abor country in quest of natural wealth and carried back "loots of beauty as seeds and roots of flowers" from the Orient.

Conclusion

The British administration took over loose political control of the North-East frontier tracts acclaimed as "forward policy". Self-governance was upheld but colonial hegemonism not compromised. The Government studied its landscape and natural history and connected itself with the commercial interest. Survey and communication implanted administrative units to "territorialize" the frontier landscape. Both security concern and commercial aspirations in the "complex frontier" took precedence. The frontiers became the territory with "space" and "ideas".[37] The capital flow into the Hills left the road open for new issues in nation states which is defined by Aparajita Majumdar as "resource frontier" in *The Colonial State and Resource*. Warren Hastings' 18th century policy on extension of "Himalayan and trans-Himalayan trade" with Tibet was reattempted through the eastern Himalayas.[38] Recasting of Chinese shadow state and the fear of the 19th century Great Game also forced the British to reorient its stand in the frontier Hills. No massive institutional and industrial transition could be achieved yet, it came under the territorial hinterland as a bye-product of European imperialism.

******

Notes and References

1. Indian Constitution, Article 244(A)for creation of 'autonomous state' in the North-East in response to demand of certain section of the tribal population.
2. Since 1884 Dibrugarh, Sadiya and Balilpara tracts formed the "Excluded Areas" of Assam province. By the Government of India Act of 1935 it was called North East Frontier Tract (NEFT). In 1951 Balipara, Tirap, Abor Hills were collectively renamed NEFA (North East Frontier Agency). Verrier Elwin explains the philosophy of NEFA as "not to isolate tribal people" but not to bring them too quickly into the "mainstream of modern life". Advancement of civilization into the "backward and neglected" should progress on "scientific lines" (*A Philosophy for NEFA*) Isha, 2009, New Delhi, p.3.
3. Kenneth Pomeranz, *The Great Divergence*, Princeton, 2001, p.186-87.
4. In his *On History,* Eric Hobsbawm wrote how the Chinese Empire opened up to western exploration. The ideology of "modern world" penetrated the "ancient civilization" followed by European military conquest and colonial acquisition in the East. Western capitalism controlled regional economy with European ideas like surveys, forest policy and frontier policing.
5. The idea of "commerce between India and China found advocacy by the second half of the nineteenth century", *Manchester Courier and Lancashire General Advertiser,* September 24 1867.
6. 'Pemberton Report on Bootan', cited in *Bengal Gazetteers*, Calcutta, 1911, p. 97.
7. *Posa* was a system of paying allowance to certain hill tribes in cash or kind, by the Ahom kings. Its objective was to prevent them from harassing the Assamese subjects dwelling close to the foothills. Tade Sangdo, *Research Guru* "Posa System" September 2018 Vol 12 Issue *2*. .www,researchguru.net
8. Alexander Mackenzie, *The North-East Frontier of India*, Mittal: 1995, p.1.
9. *Ibid*., p. 172.
10. *Indian Political Consultation Report*, Bengal, May 25 1840, No. 118.
11. *Ibid*., p. 143-144.
12. M.L. Bose, *Historical and Constitutional Documents of North Eastern India*, 1824 -1973, Concept, New Delhi, 2017, p.150.
13. The *Sadiya Khowa Gohain,* chief of the Khamtis, controlled the tract between Hukwang of Upper Burma and Noa Dihing river. H. K. Barpujari(Ed) *The Comprehensive History of Assam* Vol IV, 1990, -They controlled the turbulent Mishmis and Singphos in the eastern frontiers.
14. Mackenzie, *op.cit.,* mentioned of the Khamtis, as "not strictly a hill tribe" but immigrants from Bor Khamti, the "mountainous region" in the "eastern extremity of Assam and Irrawaddy river". They are Buddhist and of Shan descent. p.57.
15. E.T. Dalton fix the probable date of their immigration into the tracts of Sadiya as 18th century in *Descriptive Ethnology of Bengal*, 1960, p. 10.
16. 'Charing' is the heir apparent to the Ahom king. He administered the tract between Joypur and Burhi Dihing in Upper Assam.
17. *Paiks,* an Assamese *ryot* or peasant who 'rendered service to the state at fixed period of the year' (H.K. Barpujari, *op.cit*., p.381).
18. *Ibid*., p. 151.
19. *Ryots* or *rayats* are referred to the Indian peasants or tenants

20. P.N. Luthra, 'North East Frontier Agency Tribes – Impact of Ahom and British Policy', *Economic and Political Weekly*, June 5 1971, p. 1143.
21. Indian Political Consultation Report, Bengal April 28 1840 Letter from Driver to Jenkins, No. 85. Cited in H.K. Barpujari (Ed) *The Comprehensive History of Assam,* Vol. IV, APB, 1990, p.146.
22. Angus Hamilton, *In Abor Jungles, 1912*, London, gives an account of the Miris as inhabitants in the close contiguity with the plain dwellers, called themselves Hindus, but in practice "animists sacrificing the sun, moon, and earth." p. 86.
23. Imdad Hussain, 'Problem of the Frontier', *The Comprehensive History of Assam,* H.K. Barpujari (Ed)., *op.cit.* p.
24. The Company did not venture into the tribal territories and not inclined to assume administrative responsi bilities in the frontiers. In the later Ahom rule certain tribes established themselves in the adjoining plains, but "no attempt was made to assert British authority in the frontier". *Ibid. p.*130- 136. *Ibid., p. 141.*
25. *Foreign Political Consultation, December 4 1828, No. 4, Bengal*
26. *Gazetteers, Calcutta, p. 108.*
27. *Hussain, op.cit., p. 143.*
28. John M'Cosh, *Topography of Assam*, Calcutta ,1837, mention about the Khamtis having control over the frontier tribes. He traced the Lohit river up to Rima in South East Tibet close to the Zayul valley. p. 11. Also catalogued five land routes which helped the British Empire venture into the wider region.
29. Gunder Cederlof, *Founding an Empire in India's North East Frontiers,* Oxford, 2014, wrote that on political interest the loyalty of the Singphos was sought by the British to neutralize the tribes who acted as the barrier to the British territory. P.93.
30. J.B Bhattacharjee, 'Forward Policy', H.K. Barpujari (Ed), *op.cit.*, p.183.
31. Cederlof, *op.cit.,* p. 224-225.
32. Cederlof, *op.cit.,* wrote that the focus of the British government "was more on Burma and China". Calcutta emerged as the largest trade centre of Asia and "second most important city of British empire". Security of the Burmese border was a priority for securing British interest in India. p. 184.
33. Bose, *op.cit.*, p. 138.
34. "Inner Line" served as instrument of control or regulate the entries and exits of non natives to the "frontier hills". Taz Barua explains it as an outcome of the British Policy of "frontierizing" of North East India, inhabited by "primitive" people, not influenced by civilization. To keep the so called "turbulent tribes" under control and restrict contact with non-natives, the Inner Line system was introduced in Bengal frontiers. (Article in *Alternatives: Global, Local, Political,* Sage, Vol 42(3) 2017).
35. 'Frontier Regulation', according to Debjyoti Das, is the Bengal Eastern Frontier Regulation, 1873 also known as "Inner Line" was not just administrative boundary between British subjects and those unadministered areas but also "inclusion of territories" which were "strategic for revenue generations", *Economic and Political Weekly*, 'Debating the Inner Line Regulations', Vol. 53 Issue No. 7 February 17 2018.
36. *Ibid*., p. 139.
37. *Ibid*., p. 140.
38. *Ibid* p. 143.,
39. Debo Prosad Choudhury, 'British Policy on The North-East Frontier of India', 1970, p.47. University of London, (unpublished thesis).
40. *Ibid*., p. 48-49.
41. *Ibid*. p 94.
42. S.K. Bhuyan in his *Anglo-Assamese Relations*(1974), p. 55. mention of colonial trade on forest based items which included timber, lac, wax etc. The Abors and the Miris brought pepper, ginger, munjit and wax. Ivory was an important trade items of the Singphos. The Mishmis brought Lama swords vegetable, poisons etc. which found market in the plains.
43. Letter to Deputy Commissioner from Noel Williamson, APO (Sadiya) April 4 1907, No. 19 G.
44. Trade fairs sanctioned by British helped hillmen with organized trade in Sadiya frontiers involving Singphos, Khamtis, Miris and Mishmis.
45. Bentinck Report Vol. 14. Political File, cited in *Bengal Gazetteers, Calcutta,* 1910, 3057/1912.
46. 'Forward policy' is a territorial expansionist and annexation policy used by Britain over external countries. British commercial interest in China dominated Indian policy towards Tibet. Spence Heather in his *British Policy and Development of Tibet 1912-1933,* mentioned how British India tried to become Tibet's protector and provide technological, economic and military-infrastructure support to turn it into 'self supporting independent state'.
47. In *The Frontier Complex* of Kyle J Gardner it is to control "farthest extent of controllable territory" and create a "sphere of influence".
48. …Durham E – Theses, 'Losing Face: the British foreign service and the question of Tibet 1904-1922,' Wendy Palace, *www.http://etheses.dur.ac.uk/5475*.
49. Charles Bell, *Tibet and Its History*, Clarendon Press, 1924, p.88.
50. The Chinese actions in Tibet reported "intrigues among the tribes bordering that country" and "adoption of an aggressive policy throughout the extent of the debatable border land" Government of India *Official Account of the Abor Expeditions*, 1913, p.1 cited in Saikia, *op.cit*. p. 239.
51. M.L. Bose, *British Policy in the North-East Frontier Agency*, New Delhi, 1979, p. 115-116.
52. In 1827 Mijus stopped Wilcox from the point 'where the Brahmaputra turns southward from Tibet'. In the Miju country in 1845, E.A. Rowlatt of 21 Native Infantry, reported the presence of Tibetans who sojourned their land. E.T. Dalton also mention of the Mijus as "hostile" tribes. (Verrier Elwin, *India's North-East Frontiers in The Nineteenth Century,* 1962, OUP, p. xxvii).
53. Berenice Guyot-Rechard, *Shadow States, India, China and the Himalayas*, 1910-1962, CUP, 2017, p. 32.
54. *In Abor Jungles*, Hamilton, *op.cit.* differentiated "Miri Mission" and "Mishimi Mission". The former was a survey of Kamla-Subansiri region and was scientific in nature. The latter one was of strategic significance and political in nature.
55. Viceroy to Secretary of State June 29 1911, 'Operation Against Abors' cited in *Indian Historical Council* article 'British Strategy and Mc Mohan Line: Arunachal A Means' by P.K. Nayak, 2007 Vol 68. /https://www.jstor.org.stable/44147865/ accessed on 14/10/2020.
56. *Report on an Exploration on the North East Frontier, 1913*, F.M. Bailey 'Chinese Action', Government Monotype Press, Simla, 1914, p. 22.
57. L.J. Neken Jamir, un-published thesis '*Naga Burmese trade Relation From Pre-colonial to Colonial Period,* Nagaland University, 2010, p. 87.
58. 'Report on Railway Connection between India and Burma', *Journal of*
59. *the Royal Society of Arts,* November 6 1914, London, p. 1021-1022.
60. T.H. Holdich, 'Exploration on the North-East Frontier of India', *NATURE,*
61. Nature Publishing Group, Vol. 94 No. 2350, November 12 1914, p. 286-287.
62. Richard Axelby, *Calcutta Botanical Garden and the Colonial re-ordering of the Indian Environment*, School of African and Oriental Studies, Russel Square, London, 2008, p. 150-151.
63. Saikia, *op.cit* also writes how 'geography, science and imperialism interplayed in the eastern Himalayas with the river system. The British 'control over the Indian plains' and made 'inroads into the eastern frontiers', including Ward's exploration of "botanical wealth". p. 241.
64. Kyle J. Gardner, *The Frontier Complex- Geopolitics and the Making of the India, China Border* , (1846-1962), CUP, 2021, p.10-12.
65. Monika Chansoria, *Initiating Tibet and English East India Company's Ties in 18th Century: The Warren Hastings Years*, JIIA, June 8 2020, p. 2.

Understanding Occupational stress amid software employees in Bangalore: An Insight

Dr. K. Arul
Principal
Unique College of Arts and Science, Krishnagiri
arulsvmc@gmail.com

Ramakrishnan.V
Assistant Professor
IIBS Bangalore
go2ramakrishnan@rediffmail.com

Abstract

This study tries to understand stress in occupation within software professionals in Bangalore city. in Bangalore city, a cross-sectional study was done. A questionnaire study of 70 software employees was undertaken. Regression approaches were used to analyze the data. Workload and time pressure subscales revealed high levels of stress among software engineers. Occupational stress in software engineers was shown to be positively connected to designation and adversely related to operations they did extended hours. As a coping method, programmers of software chose self-control. Coping stress passively was linked to demands of workload and time pressure, as well as team connections and administrative concerns, while actively coping stress was linked to managing resources and problems relating to work atmosphere. By reducing the pressures of workload and time, as well as team interactions and issues relating to administration, heads in software companies could reduce stress in software employees

Keywords: coping techniques, software employees, managers, occupational stress

Introduction : Although there is a lot of research on occupational stress and burnout on software employees, there isn't much on Bangalore's software employees their ' coping techniques.Individuals experience stress when they believe they are unable to appropriately cope up with the wants set on them or in situations which make them inadequate to cope with risks that harm their wellness. (Lazarus, 1966)Occupational stresses, such as work overload and job uncertainty, have negative impact on employees (Michael R. Frone ,2008).Poor preparation and a shortfall in resources make company to use resources effectively (R.Kommeren, P. Parviainen, 2007).Absence of organisational support notes reluctance of top management to back decisions of manager which act as stressor (S Rivard,Y St-James,2011).A culture of extended working hours creates work life imbalance in software employees. It effects health, create stress in software employees (J Hyman, C Baldry, D Scholarios,2003)Due to conflict with managers and co-workers technology companies are struggling to develop retain talented software developers in software companies (MR Morris, A Begel, B Wiedermann, 2015).Work over load was key contributor for technology employees leaving companies need to develop new strategies to reduce work over load (C Lee, CC Lee, S Kim, 2016.

Research Methodology:A survey was conducted using a cross-sectional questionnaire survey design.Sample collection from participants Participants were chosen from registered software companies in Bangalore. The organizational structure and operations are similar to most of the software companies in Bangalore. Participants were from different Software, Hardware and Information technology enabled services companies in and around Bangalore city. These companies work in teams on multiple projects on multiple clients across the world.70 employees were surveyed and 65 of them completed their questioners which made rate of response of 92.91% . Average age mean or responders was 29.5 years (standard deviation, stood at a score of =7.4). Software employee's age dimension was 21 to 50 years. Female employees were 6 in number at (9.2%) and Male employees were 59 in number at (90.8%). Mean score of duration of employment in software companies was at an average of 9 years (Range=1-30). Thirty five employees in the survey (53.8%) had an experience for 9 or less years while 30(46.2%) employees had an experience of more than 10 years . Employees who were single were30 (46.1%) and who were married were 35 (53.9%). Employees who underwent advance courses in their personal areas were 59(90.8%). People with master degrees were six. Software engineers listed were 34(52.3%) while senior software engineers listed were31(47.7%) . twenty nine(44.6%) had children . 22 settled in nuclear families ,while employees did not have children were 36 (55.4%). Engineers were working more than 50 hours a week were 4 in number. Those who were handling up to five clients in a day were thirty six. Those attending online courses, self study or upgrading their degrees were Forty three (66.2%).Those employees who worked extended hours to complete their targets were Forty five(69.2%). Those who did not work extended hours of work were 18 (27.7%).

Analyzing data:-Occupational stressor scale used in various industries was used in America , Thailand and china was used (Li& Lue,2000). Slight changes in scales and subscales were made as per requirements of software industry. Scale for study includes 35 factors and 5 sub scales to scale set :professional and career issues (PC).(Seven items like need to work for extended hours frequently); Work load and time pressure (WTP)(Five items like work load is very heavy to manage)Resource and environmental problems (REP) with three factors eg bad environment for working);client management and exchange(CMAI)(items numbering 11 like client not cooperating');interpersonal issues and management issues (IPRM) (Nine aspects like conflict alogside managers). Entire set of factors were registered in Likert scale ranging 0 to 4(0=strongly disagree 4=strongly agree) greater levels of score indicated greater stress. The alpha of Cronbatch's coefficient in the whole questioner was . The whole questionnaire score was 90.

Table 1

Software employees (n = 65) were subjected to a multiple regression analysis (enter method) of occupational stress.

Dependent variable	R^2	*Independent variable*	*b*	*SE*	*β*	*t-Value*	*significance levels*
	0.43	*Constant*	3.085	0.133		23.214	0
	F = 12.328	*Children(no/yes)*	0.399	0.1	0.436	3.996	0
	P < 0.001	*clients per day4or less/5 or more*	-0.27	0.101	-0.292	-2.677	0.01
		Extended hours no/yes					
			-0.328	0.127	-0.281	-2.572	0.013
Professional and career issues (PC)							
	0.536 F=13.847				0.532		
	P<0.001	*Constant*	3.052	0.148		5.258	0
		Desigination(SE,SSE,Manager and above			-0.298		
			0.544	0.103		-2.921	0
		Clients per day (4 or less /5 or more)					
					-0.243		
		Extended working hours	-0.308	0.105		-2.443	0.005
					0.22		
		continuing education	-0.317	0.13		2200	0.018
			0.261	0.119		3.804	0.033
Workload and time pressure (WTP)							
Resource and environmental problems (REP)	0.156 F = 9.459 P = 0.003	*constant*	1.411	0.371		3.804	
		Age years	0.037	0.012	0.396	3.076	0
							0,003
		Constant	2.759	0.154	0.449		0
		Children(no/yes)	0.465	0.115	-0.294	17.966	0
		clients per day4or less/5 or more	-0.308	0.117		4.034	
		Extended hours no/yes			0.228		0.011
			-0.302	0.147			
						2.645	
Client management and interaction (CMIA)	0.156 F = 9.459 P = 0.003						0.046
						-2050	
Interpersonal relationships and		constant					
management issues (IPRM)		Desigination(SE,SSE,Manager and above					
	0.211 F =						
	13.675 P =		2.294	0.095		24.177	O.000
	0.001		0.511	0.138	0.46	3.698	0.001
		Constant	2.453	0.104		23.619	0
		Children(no/yes)	0.405	0.095	0.45	4.251	0
Whole questionnaire of occupational stress	0.630 F = 12.0905 P < 0.001	*clients per day4or less/5 or more*	-0.298	0.099	-0.326	-3.021	-0.004
		Contuning education no/yes					
			0.267	0.108	0.265	2.469	0.017
SE, Software engineer, SSE, Senior soft ware engineer, Manager and above							

Table 1 depicts results of the differential linear regression analysis from data of 65 Software professionals who answered their questioners. The five subscales in the questionnaire on stress in occupation , with matching independent variables of demography and their levels ,was expounded from Software employees through survey . It can be inferred that employees with children reported having more stress at work than employees without children with b at 0.437, t at 3.997, P = 0.001 for IPC with b at 0.448, t at4.036, P = 0.001 for CMAI), according to the results of the IPC and ICMAI subscales.Employees who mange greater than 5 clients in a day disclosed less stress than those who managed four or less.Clients on account of their experience with b at 0.293and t of 2.678having P value of 0.11 for the scale IPC..IPC scale for clients shows b at 0.292 t of 2.646 and P value of 0.010. Employees who did not opt extended.Hours revealed higher rate of stress as compared to their

counterpart who opted extra hours of work IPC scale.For extended hours showed b of 0.281,t at value of 2.573 and P at a value of 0.014 in IPC. Extended hours of ICMAI scored b at 0.229 t of 2.051 and P of 0.047. subscales of IPC and ICMAI showed that stress levels were not associated with their age, years of experience , designation of people , working hours in a week and perusing education. In subscale of hassles of interpersonal relationship and management issues There was big connection Between higher designation and stress having b of 0.461 t value of 3.699and p<0.002. Client management of software professionals had a b value of 0.299,t was valued 2.444 and P Value of 0.006.long hours of working had b value 0.243 t of 0.221. and P 0.019. Both were negatively correlated to stress at work. Employees who were continuing education appeared to be stressed extremely due to work time pressure compared to those not continuing education the values were b 0.221, t 2.221 and P 0.033.under scale difficulty from resources and environment age factor had a scoring of b 0.397,t 3.077 and P 0.003.there was stress due to resource issues.Resource issues were found in older employees without master degree..Client management of software professionals had a b value of 0.298,t was valued 2.921 and P Value of 0.005.long hours of working had b value 0.243 t of 2.443 and P 0.018. Both were negatively correlated to stress at work.Employees who were continuing education appeared to be stressed extremely due to work time pressure compared to those not continuing education the values were b 0.220, t 2.200 and P 0.033.under scale difficulty from resources and environment age .Factor had a scoring of b 0.396,t 3.076 and P 0.002.there was stress due to resource issues. Resource issues were found in older employees without master degree. Software personals possessing children faced more stress than those not possessing children their values were b 0.451,t 4.252,P 0.001. Managing Fewer clients created higher levels of stress 4≤ and professionals handling higher number of clients had less stress due to better experience with a scoring of b 3.27 t 3.022 and p 0.004. Stress in occupation was highly related to people who were continuing their education Having scoring of b 0.266, t 2.468, P 0.018

Dicussion-Soft ware professionals work in multi dimensional environment with diversified ranges of applications.These professionals provide services pre demonstrated processes and practices to satisfy their ever Demanding clients having their own personal needs. This process of satisfying client requirement is Very vital and should be constant. Processes involving client management requires constant re Examination at regular intervals of time for creating long standing relationship with clients.In the study it was observed issues relating to workload and time created major segment of stress in Software professionals. Nature of work professionals handling clients differ from other normal Software employees involving computer technology. Professionals involved in client management are expected to deliver continues support during their project tenure.

Excluding this shortage of staff is a key reason for work over load among Information technology Employees. Staff shortage is key reason to bring increased issues relating to work and time pressure. This results in increased work load among existing staffs working industry.Stress during occupation related to problems of profession and carrier seems to be the next bigger stress. In IT professionals. Hunt for higher growth and offshore projects increases stress in employees in the field of IT. Dependence on client requirements is a key factor influencing work Of software professionals ,It reduces autonomy of work.Hassles with interpersonal skills and management issues was the next origin of stress during the course of occupation for software employees.Difficulty from Resources and environment contributed least towards stress in occupation for software Professionals. But Work environment affected IT managers both involving both IT and non IT issues which include frequent stoppage and distractions to attend clients, family calls, subordinate calls and calls of Management. Software professionals working in closed doors in ac rooms away from distractions felt isolated when they were in outside working environments.Employees have having children encountered more stress than those without children. Especially women.Who took three layer responsibility of household, childcare and employment increased pressure of ITWomen employees. Employees in high ranking designations were willing more roles with higher Expectation. People at the top were so busy that they did not have time to handle any clients.Number of client an average employee handled and extended hours of work was negatively related to Stress experienced by employees.Coping plans of IT employees consisted mostly of self control , viewed brightness of thing to a great Extend, used praying . They tried to manage situations like sorrow, grief and irritation. During these Times they either stand cheerful or give self comfort about the situation

Limitations-Although this study gives some insights on effect of stress ,coping approach adopted by IT employees, quantitative data gathering is narrow where individual thoughts and visions cannot be asked for. The sample frame and sample size for this research is generalized for results and IT population of Other geographical areas. Studies with larger samples with a combination of focus group interviews Would be ideal for future studies.

Conclusion-Software professionals dealing clients experienced high levels of stress in occupation. They employ Schemes for coping stress in occupation they encounter from various resources and environmental Issues. This study triggers IT managers to support their team to activate active coping and Reducing dependency on passive coping style of their team.

*****

REFERENCES

1. Lazarus R.S. (1966), Psychological Stress and the Coping Process. McGraw-Hill, New York

2. Frone, M. R. (2008). Are work stressors related to employee substance use? The importance of temporal context assessments of alcohol and illicit drug use. *Journal of Applied Psychology, 93*(1), 199–206. https://doi.org/10.1037/0021-9010.93.1.199

3. R Kommeren, P Parviainen (2007),**Philips experiences global distributed software development** , Empirical Software Engineering , Springer

4.S Rivard, Y, St-James,(2011), **Software project risk drivers as projec tmanager** stressors and coping resources, ieeexplore.ieee.org.

5.J. Hyman, C. Baldry, **D.Scholarios**,(2003)**Work–life imbalance in call centers** and software development, Wiley Online Library.

6.MR Morris, A Begel, **B Wiedermann,**(2015) Understanding the challenges faced by neuro diverse softwareEngineering Employees: Towards a More inclusive and productive Technical Workforce, dl.acm.org.

7.C Lee, **CC Lee**, S Kim ,(2016),), Understanding information security stress: Focusing on the type of information security compliance activity - ,Computers& Security, Elsevier

8.Folkman S. & Lazarus R.S. (1988) Folkman S. & Lazarus R.S. (1988) Ways of Coping Questionnaire:ampler Set. Manual, Test Booklet, Scoring Key.Consulting Psychologists Press, Mind Gardon, Redwood, CA

9.Lambert V.A., Lambert C.E. & Ito M.(2004b) Workplace stressors, ways of coping and demographic characteristics as predictors of physical and mental health of Japanese hospital nurses. International Journal of Nursing Studies 41, 85–97

10 .Jakkula Rao and Chandraiah.(2012),Occupational stress, mental health, and coping among informationtechnology workers, Indian journal of occupational and environment medicine, ncbi.nlm.nih.gov.

11. Kesavachandran et al (2012) **,**Working conditions and health among employees at information technology-enabled services, Indian J Med Sci, Vol. 60, No. 7, July 2006

12. Geeta Kumari, Dr. Gaurav Joshi & Dr. K. M. Pandey(2014) Job Stress in Software Companies: A Case Study of HCL Bangalore ,Global journal of computer science and technology C software & DataEngineering ,Volume 14 Issue 7 Version 1.0

13. Megna Goyal,J ,P Verma (2021) Workplace stress and coping mechanism in a cohort of Indian service industry, **Asia Pacific Management Review Volume** 26, Issue 3, September 2021, Pages 113-119

14. Li X.M. & Liu Y.J. (2000) Job stressors and burnout among staff nurses (Article in Chinese). Chinese Journal of Nursing 35 (11), 645–649.

The Uighurs and China: Resentment and Response

Dr. Karne Sudarshan Kumar
Lecturer in Political Science,
Department of Political Science,
Sri YKR&K Government Degree College, Kovur,
Nellore, Andhra Pradesh.

Abstract: Xinjiang has always remained a contested region to China due to its geo-political and geo-strategical location. China from early interaction to till to date wanted Uighurs to be under its control with some autonomous powers. This behaviour of China has led to emerge separatist movements among Uighurs and developed a sense of animosity against Chinese government policies in the region. If these resentments of Uighurs is not resolved in due period of time it can create unstable situation in Xinjiang and in the neighbouring countries especially in Central Asian States which eventually can bring threat to Chinese sovereignty in Xinjiang and further destabilise the relations with Central Asian States in future.

Key Words: geo-political, geo-strategical, sovereignty, separatism, terrorism.

Introduction-Xinjiang is China's largest region in northwest, which constitutes one sixth of the territory of China making it as the biggest landmass in the country (Xingzbong and Haibin, 2008: 3). It is geopolitically and geo-strategically significant to China due to the reason that it has large untapped deposits of fossil fuels, minerals and water resources. This region consists of coal reserves, which are estimated to be nearly forty percent of the country's total reserves, which is believed to be three times those of the United States of America (Moneyhon, 2002: 121). At national and defence level also the region carries a lot of importance to China since, it is the home of nuclear ballistic missile arsenal, twelve Army divisions and six Air Force bases. Moreover, China maintains its nuclear weapons test site at Lop Nor region (Wong, 2003: 5).Thus, Xinjiang is strategically, economically and militarily significant to China and any instability in Xinjiang would affect its national security. As a result, it can be argued that China is in the quest of maintaining stability in the Xinjiang for the reason that any disturbance in this area would further escalate tensions in other parts of China like Tibet and neighbouring states especially Central Asian States.The article is an attempt to critically analyse and present the big picture beginning with the historical engagement of China with Uighurs from early interaction to 9/11 and till to date. Secondly, it will look into the problems faced by the Uighurs due to various policies implemented by China in order to keep its control intact in the Xinjiang. Thirdly, it will examine the various policies opted by China to resolve the Uighurs issues especially separatism in the region. This article employs various current sources of secondary literature with media reports and official). documents for analyzing the Chinese engagement with Uighurs.

Historical Engagement between China and the Uighurs-The history of Xinjiang reveals that it has been a contested land between Chinese and Uighurs. The Uighurs asserts that "the land as their ancestral homeland for thousands of years and usurped by the Chinese". On the other hand, Chinese claim the "territory has been an inseparable part of the unitary multi-ethnic Chinese nation since, the Western Han Dynasty (206 BC -24 AD)" (Nancy, 2005: 8). According to Moneyhon (2002: 124) the historical engagement between China and Xinjiang Uighurs can be seen six phases. In the early phase, Xinjiang was under the control and supervision of Chinese rule but, culturally they started to attract to Islam due to the influence of neighbouring Central Asian states and Turks. During the Qing dynasty (1644) phase the relationship between China and Xinjiang changed from interaction to integration level and in 1759 Qing dynasty annexed Xinjiang to secure its northwest borders (Moneyhon, 2002:125). Nevertheless, its military administration was constantly facing nationalist and religious confrontation, allied with some Islamic forces (Warikoo, 1985: 75-114). Eventually, in 1884 Xinjiang was formally incorporated into Chinese empire (Dillon, 2004: 80). The third phase started in 1912, after overthrowing the Qing dynasty when Sun Yat-sen's Nationalist government Kuomintang (KMT) came into power and strongly opposed independence movements led by Mongolians, Tibetans and Uighurs (Hyer, 2006: 76-77). Consequently, after the death of Sun Yat-sen in 1925, his successor, Chiang Kai-shek, also followed principles of his predecessor" a(Chiang Kai-shek, 1947: 35). However, the Chinese Communist Party (CCP), which succeeded Chiang Kai-shek had soft corner in early stage and believed that Xinjiang should be given autonomous status but later on Mao in 1934 realised Communist significance and power in China and ousted the options of secession and the promise of self-determination to Xinjiang (Moneyhon, 2002: 129-130).In the fourth phase, the People's Republic of China coming to power in 1949 annexed the Xinjiang area and renamed it in 1955 as Xinjiang Uighur Autonomous Region, by granting the region's inhabitants with some measure of self-rule (Hyer, 2006: 77). With the end of Maoist years and rise of Deng Xiaoping the situation in Xinjiang and China as a whole became more stable. The reforms initiated by Hu Yaobang in Xinjiang provided "the more assimilationist aspects of cultural policy and brought non-Han cadres back into the party and government, from which many had been purged during the Great Leap and Cultural Revolution years" (Milward, 2004: 7).The fifth phase started after the disintegration of Soviet Union in 1991 and independence of Central Asian republics, China was worried about Uighurs that they may demand for separate Xinjiang along national lines similar to the Central Asian republics (Dorian, Wigdortz and Gladney, 1997: 465). The fear became truth when Uighur's started receiving support from neighbouring countries and followed a violent and aggressive path to establish a separate country namely "East-Turkestan" which will make them free from Chinese rule (Dillon, 2004: 83-84). To crackdown

these kind of tendencies China, launched a campaigning known as "Strike Hard" (Milward, 2004: 18). These, aggressive actions of Uighurs led to growth of terrorism and China recognised this as a domestic issue. In the final phase, after 9/11 attacks, China became an international player in the war against terrorism and believes that Uighurs has close connections and associations with Al-Qaida (Giglio, 2004: 1-3).

Resentment of Uighurs: Towards Chinese Policies

The engagement of China in Xinjiang has developed a sense of animosity against Chinese government, which eventually resulted a separatist movement tendency among the Uighurs. Thus, there is resentment among Uighurs against various Chinese policies such as Han migration, employment, religion, language, and education in Xinjiang.

Han Migration -Han's are heavily inhabited in eastern and northern part of Xinjiang (Giglio, 2004: 6). According to Peter Ferdinand (1994: 97-98) since, 1949 onwards the Han's have migrated to Xinjiang in five waves. In the first wave the remnants of the Nationalist armies, in the second wave the skilled technical and administrative personnel, in the third wave, the young people were made to settle after the end of Cultural Revolution in the countryside, in the fourth wave former inmates of prison camps in Central Asia, and the final wave those settled due to economic opportunities of 1980's. However, when the issue got internationalized the compulsory Han immigration has gone down. As a result, China followed voluntary Han migration to Xinjiang. For instance, it is giving incentives such as waiver from single child policy for those Hans who are voluntarily willing to settle in Xinjiang (Giglio, 2004: 6).

Employment-Uighur's have this perception that Han immigration to Xinjiang has affected their lives severely, since Chinese government is "heavily biased in favour of Hans and work at the cost of the indigenes". Their views are validated by the fact that Hans hold most of the upper level jobs in government institutions and most of the clerical jobs are given to Uighurs. Further, all the decision making jurisdiction falls under Hans control though they are relatively less in number (Bhavna Singh, 2010: 2**Religion-**Islam religion among Uighurs has become a means and mode to confront the Chinese policies. They are opposing Chinese policies by uniting under the banner of Islam. This is because Chinese oppression is visible in religious restrictions on Muslims especially in the "celebration of regional holidays, study of religious texts and free expression of religious preferences through personal appearances" (Bhavna Singh, 2010:4).

Language-The Uighur is a Turkic language and it is mother tongue of the Uighur people of Xinjiang. Uighur language could be written in various orthographies, but the Arabic-derived system is most commonly used. This "traditional Arabic (and Quran) script is used in the region for more than a thousand years was banned at the time of the Cultural Revolution when thousands of historical books as well as number of important mosques were destroyed" (Giglio, 2004: 9). Further, the "increasing numbers of Han Chinese now living in the region are putting language pressure on the ethnic minorities as Mandarin becomes more pervasive, especially in business and other forms of economic and social development" so that slowly their language may vanish and upcoming new Uighur generation mix into Chinese society easily (Nancy, 2005: 16).

Education-According to "Article 37 of the Law of the People's Republic of China on Regional National Autonomy gave minority students the right to receive instruction and use textbooks in their own language". In this system, the autonomous regions retained the power to establish their own curriculum and publish educational materials including textbooks in their language. However, most of the educational materials used in these minority schools were direct translations from Chinese language materials used across the China (Robles, 2009).

Similarly, in 2002 the Xinjiang Regional Education Bureau introduced a new bilingual education policy. According to this policy, Mandarin language will be used, as language of instruction and Uighur will be taught as a subject in Xinjiang. The main reasons advocated by Chinese government to implement such policy is to improve minority student's Chinese language fluency and make them more competitive in the job market (Strawbridge, 2008: 2).

Chinese Response: Against Uighur's Separatism-China believe that as such there are no resentments of Uighurs in Xinjiang, they are only concerned of to be a separate entity of China and want to establish a Islam state which will be free of Chinese rule. Nevertheless, in Xinjiang to maintain a stable environment, China has initiated various initiatives such as military, social, diplomatic, political and economic.

Military-Viewing the Uighur's violent methods and terrorist activities in Xinjiang, the PRC in 1996 implemented an anti-crime campaign known as "Strike Hard". This campaign was implemented to crackdown all kinds of terrorist activities and separatist tendencies prevailing in the Xinjiang. This operation was stopped for many years and again it was re-launched in 2001. China believes that these operations are required because Uighur's have escalated the terrorist activities in Xinjiang (Wong, 2003: 8).

Social-At social level, China has taken several measures to withhold separatist activities in Xinjiang in the field of religious freedom, education and family planning. China officially supports religious freedoms to all citizens especially ethnic minorities as long as they do not violate other laws of the land (Wong, 2003: 8). However, according to China the Uighurs did not respect the laws of the land and instigated separatist activities in the region by following the violent methods (Nancy, 2005: 12). As a result, it indiscriminately arrested people considered religion fanatics and banned personal religious practices in the state controlled institutions such as state controlled schools and universities (Wong, 2003: 7-8).At education level the goal of China on "educational policy was to integrate all ethnic groups into a single and unified socialist state". China to develop a national unity and sense of loyalty among Uighurs towards the government has provided preferential policies which allow them to get admission in the national universities entrance examinations even at the lower scores (Wong, 2003: 24). In the family planning matters it has allowed the Uighur couples to have two or three children unlike other parts of China (Wang, 1998: 8).

Diplomatic-China apart from bilateral relations has promoted multilateral mechanisms with neighbouring countries especially with Central Asian states, such as Shanghai Cooperation Organisation (SCO) to eliminate the separatism movement in Xinjiang (Wong, 2003: 9). In the international sphere, China has moved closer to US after 9/11 in the "War against Terror". This is visible when China decided to create US-China counterterrorism working groups on financing and law enforcement (Giglio, 2004: 20).

Political-In 2001, the Standing Committee of the National People's Congress adopted and implemented amendments to the Criminal Law of the People's Republic of China. The purpose of this law was to "punish terrorist crimes, ensure national security and the safety of people's lives and property and uphold social order". Further, a White Paper of 2002 on national defence has demanded to increase the responsibilities of People's Armed Police (PAP) from traditional guard duties and internal security to specific anti terror missions such as "performing anti-attack, anti-hijacking and anti-explosion tasks" (Giglio, 2004: 19).

Economic-At the economic sphere to bring down the separatism and terrorism in Xinjiang China has attempted to oust income and wealth disparity. In this regard, President Jiang Zemin in 1999 has "launched Western Development campaign, popularly known as "Go West". Moreover, he focused on massive infrastructure investment in Xinjiang, .which brought tremendous development in the region and increased the standard of living of the people. Further, to bring Uighurs into mainstream, the China drew up a 10th Five-Year Plan in 1999 and a development plan for the period up to 2010. This plan also endorsed that "by 2010, the autonomous region's GDP should be at least that of 2000 and the popular standard of living significantly higher" (Giglio, 2004: 19).

Conclusion-Xinjiang has always remained a turbulent and contested region to China due to its geo-political and geo-strategical location. China from interaction to till to date wanted Uighurs to be under its control with some autonomous powers. As a result, separatist movements of Uighurs has become much stronger and developed a sense of animosity against China. At present, there is a strong resentment among Uighurs against various Chinese policies such as Han migration, employment, religion, language, education in Xinjiang. Thus, to meet those resentments, China is not hesitating to use force, but it clearly understands that use of force is more problematic because of Uighurs ethnic relationship with the neighbouring countries especially Central Asian States. Any tension or turbulence in Xinjiang will affect its relations with its neighbouring countries, thus it needs to keep a stable environment in Xinjiang. In order to contain such conflicts or confrontation in Xinjiang, China has initiated various measures at social, economic, political and diplomatic level. These measures are not much effective since, Uighur's are not reconciled to Chinese Communist rule and still they are attracted to pan-Turkic appeals keeping Islam as the torchbearer to win over the Chinese government. Overall, it can be argued that from early interaction to autonomous phase and till today, China has strong control over Xinjiang and Uighurs, since the decisive powers and rights and now in the hands of Communist rule but culturally they could not control the influence of Islam religion in this region. The more they are controlling the Islam among Uighurs the wide it is spreading. If incase, this wide spread of Islam religion is not stopped among Uighurs it will lead to more separatist movements which will be eventually creating a threat to Chinese sovereignty in the region.

*****

REFERENCES:-

1. Chiang, Kai-shek (1947), *China's Destiny*, New York: Roy Publishers.
2. Dillon, Michael (2004), *Xinjiang: China's Muslim Far Northwest*, New York: Routledge.
3. Dorian, P. James et al. (1997), "Central Asia and Xinjiang, China: Emerging Energy, Economic and Ethnic Relations", *Central Asian Survey*, 16 (4): 461-486.
4. Eranosian, Nancy (2005), *Chinese National Unity vs. Uyghur Separatism can Information and Communication Technologies Integrated with a Customized Economic Development Plan Help Avoid a Cultural Collision?*, M.A. Thesis, Boston: Tufts University, [Online: web] Accessed 18 March 2010, URL: http://www.setav.org/ups/dosya/16267.pdf.
5. Ferdinand, Peter (1994), *The New Central Asia and its Neighbours*, London: Royal Institute of International Affairs.
6. Giglio, Davide (2004), *Separatism and the War on Terror in China's Xinjiang Uighur Autonomous Region*, Ph.D. Thesis, London: Certificate-of-Training in United Nations Peace Support Operations, Peace Operation Training Institute, [Online: web] Accessed 12 December 2010, URL: http://media.peaceopstraining.org/theses/giglio.pdf.
7. Gladney, C. Dru (2004), "The Chinese Program of Development and Control, 1978-2001", in S. Frederick Starr (ed.) *Xinjiang: China's Muslim Borderland*, New York: M.E. Sharpe.
8. Hyer, A. Eric (2006), "China's Policy towards Uighur Nationalism", *Journal of Muslim Minority Affairs*, 26 (1): 75-86.
9. Milward, A. James and Peter C. Purdue (2004), "Political and Cultural History of the Xinjiang Region through the Late Nineteenth Century", in S. Frederick Starr (ed.) *Xinjiang: China's Muslim Borderland*, New York: M.E. Sharpe.
10. Moneyhon, Matthew (2002), "Controlling Xinjiang: Autonomy on China's New Frontier", *Asian-Pacific Law and Policy Journal*, 3 (1): 120-152.
11. Robles, Paloma (2009) *Uighur's Face an Education Dilemma*, 6 October 2009, [Online: web] Accessed24April 2010, URL: http://www.atimes.com/atimes/China/KJ06Ad01.html
12. Singh, Bhavna (2010), "Ethnicity, Separatism and Terrorism in Xinjiang: China's Triple Coundrum", *IPCS Special Report*, No. 96, New Delhi: Institute of Peace and Conflict Studies, August, [Online: web] Accessed 12 March 2011, URL: http://www.ipcs.org/pdf_file/issue/SR96.pdf.
13. Strawbridge, David (2008), "The Challenges of Bilingual Education in the Xinjiang Uyghur Autonomous Region: People's Republic of China", [Online: web] Accessed 26 February 2010, URL: http://www.seameo.org/_ld2008/doucments/presentation_document/strawbridge_xinjiang_challenges_of_bilingual_education,.pdf.
14. Wang, David (1998), "East Turkestan Movement in Xinjiang", *Journal of Chinese Political Science*, [Online: web] Accessed 8 August 2009, URL: http://jcps.sfsu.edu/past%20issues/JCPS1998a/wang.pdf.
15. Warikoo, K. (1985), "Chinese Turkestan during the Nineteenth Century: A Socio-Economic Study", *Central Asian Survey*, 4 (3): 75-114.
16. Wei, Shan and Chen Gang (2009), "The Urumqi Riots and China's Ethnic Policy in Xinjiang", *East Asian Policy*, 1 (3): 14-22.
17. Wong, T. Ming Colonel (2003), *Xinjiang and China's National Security: Counter-Terrorism or Counter-Separatism*, Strategy Research Project, Pennsylvania: U.S. Army War College, 7 April, [Online: web] Accessed 18 June 2010, URL: http://www.dtic.mil/cgibin/GetTRDoc?Location=U2&doc=GetTRDoc.pdf&AD=ADA415744.

Xingzbong, Yu and Song Haibin (2008), *Xinjiang Uygur / The People's Republic of China*, Kreddha Autonomy Mapping Project, International Peace Council for States, Peoples and Minorities, May, [Online: web] Accessed 24 April 2010, URL: http://www.kreddha.org/mapping/downloads/080604_Xinjiang.pdf

The Suggestive Power of Images in Phoolan Devi's I Phoolan Devi: The Autobiography of the Bandit Queen

Chitra Devi C S,
Research Scholar in English,
Government Arts and Science College,
Pappireddipatti - 636 905.

Abstract:-This paper foregrounds the power of figurative language in any in Phoolan Devi's autobiography *I Phoolan Devi*. It showcases how Phoolan Devi, who practically did not receive any formal education, instinctively uses images to presnt her feelings and emotions. Having lived among the fields, forests, and hilly ravines her affinity to nature and its elements inform her images. These images provide scope for a swift and natural narration to her otherwise rough, difficult and traumatic life. Unlike the traditional mode of using images as a literary device, Phoolan in her autobiography naturally speaks through images which are region specific. The images which are rooted in her landscape foreground the trajectories of her mental processes and emotional contours. She speaks through images that she is quite familiar with, where each image provides a scope to comprehend her otherwise complex and difficult life. It is the images which provide a coherent narrative of the ups and downs of Phoolan Devi's life.

Keywords: figurative language, rootedness, landscapes, narrative coherence, traumatic life

The Suggestive Power of Images in Phoolan Devi's *I Phoolan Devi: The Autobiography of the Bandit Queen*

In literature, narrating intense personal experiences is often deliberated through figurative language. There are various literary techniques which provide scope for creating suggestive layers of meaning in a text. Unlike the writers who are trained to use such techniques, Phoolan Devi stands apart. Without having any formal education or idea about the efficacy of literary language, she speaks through images and narrates her life story through images which are region specific. She hails from a village called Ghaura Ka Pawra, Uttar Pradesh and speaks the Bundelkhand dialect. Throughout her life narrative, she travels through three different landscapes i.e. the fields, the forest and the hilly ravines in and around Uttar Pradesh. The website *site.google.com*, geographically describes the location of Bundelkhand region as existing "between the Indo-Gangetic plain to the north and the Vindhya Range to the south. It is gently sloping upland distinguishing by barren hilly terrain with sparse vegetation, although it was historically forested."*The Bandelkhand Research Portal* has published the "Livestock census of India 2003" where the domestic animals like the "indigenous cattle, buffaloes, sheep, goats, poultry, pigs" are found in the districts of Jalaun, Chitrakoot, Bandelkhand. Donkey, Horses and Camels are termed as minor animals and hence have not been included in the data. Grazing cattle, rearing sheep and agriculture are common practices followed in this region. Phoolan Devi's autobiography effectively incorporates the native or regional ecological elements in her narrative, through which she shares her experiences. Her affinity to nature is evident through her description of individuals through images. Phoolan compares her Uncle Bihari's attitude to that of a hawk: "I began to loathe this uncle who had the look of the hawk that circled over ravine" (17). She also describes the look or expression of her mother when she is angry thus: "Her eyes became big and dark, bigger than the eyes of a buffalo, and she would groan" (20).

Being deeply sensitive to nature, who prefers to understand the fauna around her better and acquire knowledge about the workings of nature than the luxurious and privileges offered by the city, she instinctively speaks about herself through images from nature. For example she says "There were no electric stars in the trees, only monkeys, those little fruit thieves who chattered away in the branches of the trees, speaking a language of their own"(25). The lack of electricity does not bother her, but she expresses her desire to understand the language of monkeys and "big black Bullocks chewing the forage," wondering whether they are pondering over their bygone years or old memories." However, it is the brutality of caste discrimination which tormented her right from a young age where she has been physically harassed, beaten and whipped for even small mistakes. She rather preferred to live the life of an animal than a human because, according to Phoolan, "They were neither rich nor poor, they were fed and looked after, and they knew all they needed to know without having to learn it. Even the rats who stole our grain was cleverer than us"(25). Every night, while viewing the stars in the sky, Phoolan often wonders about the unfair treatment and violence unleashed upon the lower caste people and also by the rich people of their own community. "It was as though even the ground that we walked on in the ground was forbidden to our feet. We were almost as wretched as untouchables, who were less than animals"(37).

After Bihari's death, his son, Mayadin visits Phoolan's father. Phoolan Devi describes him as having, "a face like a lizard: a flat nose with big wide nostrils and lying eyes"(55). This implies that Mayadin is in no way better or greater than his father and hints at some malicious intent of Mayadin for visiting her father and treating him with respect. But she begins to trust him despite his "lying eyes.""I wanted to go to the temple to give thanks for all the things Mayadin was going to do for us. I decided, after studying him, that he didn't have his father's jackal face. His nose was larger, like the beak of an eagle, and when he smiled he had a nice wide mouth" (56). This image of Mayadin's nose compared to the beak of an eagle carries both literal and figurative implications. Their beaks are heavier than those of most other birds of prey, helping them tear meat apart of food." Later she realises that he is much worse than an eagle and hence compares him to a vulture. "It wasn't the nose of the eagle, I had decided, it was the nose of a vulture. And he had been watching us..." (71). So unlike Uncle Bihari, Mayadin

might be more dangerous like the raptor which does not settle for less until it has hunted down its prey. Later Phoolan attributes the image of a Jackal to both Kisna, the Pradhan and Mayadin, who are the sole inflictors of class and caste discrimination in her village. "Kisna, the fat little Pradhan with the rooster eyes, was one of them, of course. Kisna was in league with Mayadin - they were both jackals in my mind" (73).Putti Lal, Phoolan's husband, sexually harasses her and the eleven year old little girl sees him as a demon or a hyena. "The demon was so strong I was imprisoned by his hairy limbs. He was sweating now and he smelled disgusting, like a hyena. I thought the hyena was trying to devour my flesh" (101).

The only creatures which sympathised with her are the cows which were tied outside. "I could see the cows beyond the doorway looking at me with their sad eyes"(106). She is disappointed with her father's attitude when he pleads withPutti Lal, who had inflicted the worst possible trauma on his daughter, seeking his permission to take her home with him and hence, she is dejected and hurt when she states "I was a human being - not a cow to be argued over by its owner" (114).After a few months of stay in her maternal house, Putti Lal takes her back to his village but little Phoolan is so terrorised that she tries to escape many times during the journey but all her efforts are in vain. "I ran like a deer fleeing a tiger, afraid I would be eaten, until like a deer I could run no more"(126). With the help of her maternal uncle, she flees back to her village, hoping to live a peaceful life which is again thwarted by Putti Lal who is instigated by Mayadin to get his wife back. "Suddenly a hand grabbed me by the scruff of the neck and dragged me out in the yard. Putti Lal was holding me in his hairy paw like a bear toying with a cat" (131). However, things turn in her favour when everyone in the village accuses Putti Lal for not taking a young girl. She is forced to return to her in-laws place again, where she is insulted and ill-treated by the women that her husband has affairs with. She is forced to live outside along with the animals and often treated like an animal. "I worked like a donkey, and if she wasn't satisfied, she would thrash me with her stick"(145).

The entire village begins to view her as the "black sheep of the village," (170) where according to them, she "was nasty, twisted and spiteful" mainly because of the fact the she does not have a husband to protect and hence, she becomes a loose and bad woman – a woman who any men can lure and take advantage of. The male ego of Pradhan and Mayadin refuses to cow down before a mere woman like Phoolan and hence, they conspire and falsely accuse and brand Phoolan as a bandit. "They tied me up like a bullock, with a rope between my ankles, and sent someone to fetch the police from the station at Kalpi"(190). They firmly believe that Phoolan is nothing more than an animal that is meant to tamed. "I was being held at bay from the village, tied up like a wild animal" (191). Pradhan and Mayadin instigate the police to take advantage of her to force her to confess that she is a bandit. She is sexually harassed and threatened to remain silent and confess that she is guilty of stealing from the rich. "But men were all jackals to me. They all wanted to eat me, cut me into pieces. They lurked in the dark like the tigers slavering for my flesh" (227).

After much struggle, Phoolan helps Vickram to recover from the injury and once again begins on his journey to seek justice for the poor. Later Shri Ram tricks Vickram and kills him treacherously.

Phoolan is captured and paraded naked around villages where she was brutally raped by many. She manages to escape again with the help of a Brahmin who sends two of his men to take to safety. She tries to avenge the death/murder of Vickram, however, the Government begins to hunt for her in the jungle "like a blood-crazed tigress accused of devouring little lambs" (408). Nature, the Jungle and the animals and birds provide her the protection that her society, family and community failed to give her. She finds solace, peace when she is in close proximity to nature:

I had no contact with anyone....For companionship, I had the monkeys, the bears and the wild cats. The presence of animals comforted me. I never doubted they were on my side. Hearing a monkey laugh made me feel I wasn't entirely alone. The bears made strange growls at night that were almost reassuring. And the peacocks kept me company, talking to me all day long. (435)Hence, she knew the jungle in and out; rather it is her knowledge about the jungle which made it difficult for the government officials to track and capture her. It is Rajendra Chaturvedi, the spokesperson of the government who convinced Phoolan to surrender. "I trusted Chaturvedi one minute, then the next I backed away from him like a frightened cat" (460). Eventually, she surrenders. The prison life, initially, is traumatic for Phoolan as she feared that she would be raped and harassed again. Gradually, her rage, fear vanished and she found her peace. "I was no longer the frightened child who believed the world ended where the fields ended and sun drowned each night in the river. I was no longer the wild creature who fought with the ferocity of the goddess durga to survive in the jungle. There was no vengeance in my heart" (495).

Thus, the most prominent and significant "I" in Phoolan Devi is so complex that it cannot be defined easily. The "I" is indescribable and inexplicable. The images in her work give her some visibility. But one cannot claim that on has understood the emotional contours of Phoolan's life. The otherwise difficult narrative moves swiftly because of the images related to ecology which reveals Phoolan's bonding with nature. It is nature which has a calming effect on her in her otherwise traumatic life.

Works Cited

Primary Source:

1. Devi, Phoolan. *I, Phoolan Devi: The Autobiography of india's Bandit Queen.* Sphere, 1996.
2. **Secondary Sources:**
3. Team, Kidadl. "Eagle Beak: Why is it so Sharp, What They use It for and more."
4. *Kidadl.com*, 23 Feb 2022, https://kidadl.com/facts/eagle-beak-why-is-it-so-sharp-
5. what-they-use-it-for-and-more. Accessed 5 May 2022.
6. "Jai Bundelkhand."*sites.google.com*, https://sites.google.com/site/
7. bundelkhandjai/home/gerography. Accessed 7 May 2022.
8. "Livestock of Bundelkhand."*Bandelkhand Research Portal,* https://bundelkhand.in/
9. info/livestock-of-bundelkhand. Accessed 7 May 2022.

A Study on Consumer's Behavior Towards Organic Food Products in Salem District

Dr.T.A.Tamilselvi
Assistant Professor
Department of Commerce
Quaide Milletch College for Men, Chennai

K.Prabha
Research Scholar (Part Time)
Department of Commerce
Sri Ganesh College of arts and Science
Salem Periyar University

Abstract

Life is really valuable. Most of individuals around the world hope to live a happy and healthy life. Reaching these objectives is what most people spend their entire life trying to achieve. There are essential needs that each individual has: shelter, clothing, water, and food. In the past when people had the option to accommodate themselves and their families they had the option to be content. In the current day however, there is an increasing concern about what type of food is best. Another question is, what type of food should one provide for their family? There are pros and cons to almost every situation. Once provide for their family? Here are upsides and downsides to almost every situation. Eating organic food leads to a healthier lifestyle. An ever increasing number of individuals are making the determination that eating organic food prompts a more beneficial way of life. Organic food is measure by a characteristic and safety system and it bring extra more nutrition to consumer, organic product is not bring the advantage for the consumer only and furthermore accompany protection on the environment as well. Organic food includes more nutritional benefit which contrast and non-organic food. A total of 150 samples were studied. The study was carried out in Salem city. This city was selected purposively because most of the rural people were engaged in Agriculture. Organic products are widely available in Salem city. Survey method was used to collect data from the respondents through well-structured questionnaire. The first section consists of demographic profile of the target respondents such as gender, age, marital status, education, nature of the family, family monthly income and employment status.

Questions related to reasons for purchasing organic food products were also included. The second section consists of constructs related to consumers' attitude. Four variables such as Health consciousness, Organic food knowledge, food safety and food attributes were taken for the study. Each variable has 6 items and all these items were measured using five point Likert scale. The data collected from the target respondents were analysed using SPSS 26. Consumers' behavior was examined using Exploratory Factor Analysis. At the outset, the study concludes that respondents are more concerned about their health and they prefer to consumer organically produced food products.

Key words: Consumer, behavior, monthly income, organic food, purchase.

REVIEW OF LITERATURE

McEachern et al. (2005) has done a research at "Exploring the Gap among Attitudes and behavior information why consumers buys or do now no longer purchase organic food", to discover the values that maintain purchasers taking the choice of organic food. He gathered the information via a questionnaire. A pattern of 181 askers was gathered through espoused available choice systems. Tools such as Percentage Analysis and Chi-square test had been used to deconstruct the information. He reveals that the last purchaser became organic at the start with vegetables, fruits, and a wholesome weight loss program with organic products. Fruits and vegetables also are the primary and, in beaucoup cases, simplest enjoyment with purchasing for the organic product. The choice making method is complex, and the effect of reasons and barricades may also range among product classifications.

Marvin T.Batte et al (2007) studied consumer willingness to pay for multi-ingredient, processed natural food products. The analysis indicates that consumers are ready to pay premium prices for organic foods, even those with less than 100% natural factors.Annunziata & Pascale (2009) in their study about "Consumer's behaviours and attitudes towards healthy food products, the case of organic and functional food", examine and propose a review of 300 Italian purchasers to comprehend perspectives towards quality food, with specific reference to natural and useful items, through the execution of a cluster analysis. The major aim of this paper is to derive suggestion that may contribute to better strategic and tactical marketing decisions. The findings of this study are also important for government bodies interested in scheming public health programs.Jessica Aschemann- Witzal et al (2013) investigated organic consumer preferring or avoiding foods with nutrition and health claims. Vega-Zamora Manuela et al (2013) reviewed whether the heuristic role of the term "Organic" can really be assumed and to confirm the mediatory role of this type of food.

Babin & Harris, 2010,According to the affect-behavior-cognition (ABC) method of attitudes, attitudes have three components: affective, behavioural, and cognitive. A consumer's feelings toward a particular product are referred to as affects. Behavior refers to a consumer's actions or intentions in response to a specific product or the consumer's intention

METHODS AND MATERIALS

The prime aim of the study was to examine the consumer's behavior towards organic food products in Salem district. The study also aims to find out the reasons for purchasing organic food products in the study area. The study adopts convenience sampling method and total samples drawn for the study was 150 in Salem city. Survey method was used to collect data from the respondents through well-structured questionnaire. After the thorough review from the past studies the scales and items for the questionnaire was drafted. The survey questionnaire consists of two sections. The first section consists of demographic profile of the target respondents such as gender, age, marital status, education, nature of the family, family monthly income and employment status. Questions related to reasons for

purchasing organic food products were also included.

The second section consists of constructs related to consumers'behavior. Four variables such as Health consciousness, Organic food knowledge, food safety and food attributes were taken for the study. Each variable has 6 items and all these items were measured using five point Likert scale. Five point Likert scale was purposively used because it is one of the widely accepted scale containing five points because it gives clarity to the respondents. Strongly Agree was assigned the value as 5, Agree with 4, Neutral with 3, Disagree with 2 and Strongly Disagree with the value as 1. The data collected from the target respondents were analysed using SPSS 26. Consumers' attitude was examined using Exploratory Factor Analysis. The overall reliability was tested and Cronbach Alpha value was 0.868 for 30 items. Table 1 showing Reliability value for constructs.

ConstructNumber of itemsCronbach Alpha

Construct	Number of items	Cronbach Alpha
Health Consciousness	06	0.840
Organic Food-Knowledge	06	0.888
Food safety	06	0.877
Food Attributes	06	0.834

PERCENTAGE ANALYSIS

Table II Distribution of demographic profile of the respondents

Particular		Frequency (N=150)	%
Gender	Male	81	54.0
	Female	69	46.0
Age (in years)	Below 20	29	19.3
	21 – 30	68	45.3
	31 – 40	29	19.3
	Above 40	24	16.0
Marital Status	Married	95	63.3
	Unmarried	55	36.7
Education	School	46	30.7
	UG	54	36.0
	PG	32	21.3
	Professional	18	12.0
Family Monthly Income	Less than Rs.20,000	25	16.7
	Rs.20,001 – Rs,40,000	66	44.0
	Rs.40,001 – Rs.60,000	29	19.3
	Above Rs.60,000	30	20.0
Nature of family	Joint	73	48.7
	Nuclear	77	51.3
Employment status	Student	29	19.3
	Employed	63	42.0
	Self employed	38	25.3
	Professional	20	13.3

Table II shows the distribution of respondents based on demographic profile. Majority of the respondents were male with 54%. 45.3% of the respondents belong to the age group between 21-30 years. 63.3% of the married respondents give more importance to organic foods. 44% of the respondents' family monthly income was Rs.20, 001 – Rs, 40,000. 48.7% of the respondents live as joint family and 42% of the respondents were employed and they have more knowledge on organic food products.

RESULTS FROM HENRY GARRETT RANKING

Table III Reasons for purchasing organic food products

S . No	Particulars	Mean Score	Rank
	Health	60.96	I
	Environment	55.09	II
	Necessity	50.07	IV
	Status	47.25	VI
	Peer pressure	47.06	VII
	Taste	42.45	IX
	Nutrition value	50.41	III
	To avoid Genetically modified organism	49.35	V
	Quality	44.53	VIII

Table III describes the reasons for purchasing organic food products. Based on the mean score, health was ranked first with the highest mean score of 60.96. 'Environment' ranked second with the mean score of '55.09' and 'Nutritional value' ranked third with the mean score '50.41'. Followed by necessity, to avoid genetically modified organism, status, peer pressure, quality and taste respectively. Hence it is concluded that maximum number of respondents give preference for health because the most popular proverb also says 'Health is wealth'. So the respondents are very health conscious and concerned more about health.

RESULTS OF EXPLORATORY FACTOR ANALYSIS

Table IV Consumers' attitude towards organic products among general public

Statements	Factor 1	Factor 2	Factor 3	Factor 4
I know what organic food means	0.850			
Media provides ample information about organic food	0.840			
Doctors suggest us to use the organic food products because of its health benefits	0.838			
I have a good knowledge about organic foods	0.838			
I have a good opinion on organic food	0.807			
I do understand the benefits of each and every organic food product that I use	0.645			
I am aware that conventional foods are not safe as they are genetically modified.		0.870		
I am concerned about food safety		0.849		
Food that I eat should be safe		0.795		
Excess use of chemicals in super markets to keep the food products fresh may cause food poison		0.780		
I am aware that conventional foods are not safe as they are genetically modified.		0.754		
Organic food products are available to us as provided by nature(no modification in shape, size, colour, odour and nutrition)			0.838	
Organic food products are animal friendly			0.814	
Organic food products are high in quality			0.797	
Organic food products are tastier than the hybrid food products			0.788	
Organic food products do not have any artificial colours and flavours			0.702	
As organic is natural, it will not cause damage to my health				0.845
As organic foods are produced without using pesticides/ fertilizers, It is safe to consume				0.793
I consume organic food to protect my health				0.773
I think my food choices play a major role towards my health				0.772
Kaiser-Meyer-Olkin Measure of Sampling Adequacy	0.754			
Bartlett's Test of Sphericity	Approx. Chi-Square	1831.803		
df	190			
Sig.	0.000			
Total variance explained	67.678			

The result of factor analysis shows Kaiser-Meyer-Olkin Measure of Sampling Adequacy value is 0.754. It implied that the reliability of scale was good. Factor analysis by Principal Component Analysis with Varimaxrotation identified four Eigen values which are greater than 1. Factor analysis was applied for the 30statements on consumers' attitude. This analysis extracted a four factor solution with 67.67% of the total variance which is more than that of 60% of the total variance suggested by (Hair, Black, Babin, & Anderson, 2010). The first factor extracted has been named as 'Knowledge about organic products', the second factor has been named as 'Safety concern', the third factor has been named as 'Food quality' and the fourth factor has been named as 'Concern on health'.

CONCLUSION- In current years people are facing many healthiness issues due to food products that are not formed organically and in usual methods. Past few decades they use more fertilizers and pesticides which are high in chemicals. These issues can be correct only by producing the food products organically. Now a day's organic food shops has been opened every nook and corner. The demand for the organic food products have been increased in recent years especially during COVID-19 most of the people turned to buy organically and hygienically produced food products. Consumers have wide varieties of choices and these are made easily available to them through online mode. After the world pandemic and continuous lockdown has paved way for purchasing food products and other necessary household items through online shopping. This opportunity has made the customers to explore more about organic food products. In the study area, male respondents has more knowledge towards organic food products because they get information from their peer group, relatives, friends etc. in most of the family, Male takes decision because most of the organic products are costly when compared to the locally available food products. Most of the respondents were employed and their family monthly income Rs.20000 to Rs.40000, they can spend a reasonable amount for purchasing organic food products. Reasons for purchasing organic food products most of the respondents prefer to consume because organic foods are good for health. Now a day they are more concerned about their health as well as family members' health especially children those who are in early 13. Four factors such as 'Knowledge about organic products', 'Safety concern', 'Food quality' and 'Concern on health' has been extracted through exploratory factor analysis. Respondents have enough and adequate knowledge towards organic products and their varieties. They are more concerned about food quality, safety measures, and their health. At the outset, the study concludes that respondents are more concerned about their health and they prefer to consumer organically produced food products.

REFERENCES

1.Anish, K., & Ramachandran, K. (2016). Consumer's awareness and attitude towards organic food products in Coimbatore City. *International Journal of Multidisciplinary Research and Development, 3*(9), 147-155.

2.Babin, B., & Harris, E. (2010). *Consumer Behavior.* Cengage Learning.

3.Chen, M. (2007). Consumer attitudes and purchase intentions in relation to organic foods in Taiwan: Moderating effects of food-related personality traits. *Food Quality and preference, 18*(7), 1008-1021.

4.Dean, M., Raats, M., & Shepherd, R. (2008). Moral Concerns and Consumer Choice of Fresh and Processed Organic Foods. *Journal of Applied Social Psychology, 38*(8), 2088-2107.

5.Fishbein, M., & Ajzen, I. (2009). *Predicting and Changing Behavior: The Reasoned Action Approach.* New York: Psychology Press. doi:https://doi.org/10.4324/9780203838020

6.Forman, J., Silverstein, J., Bhatia, J., Abrams, S., Corkins, M., & de Ferranti, S. et al. (2012). Organic Foods: Health and Environmental Advantages and Disadvantages. *Pediatrics*, *130*(5), e1406-e1415. doi: 10.1542/peds.2012-2579

7.Gumber, G., & Rana, J. (2021). Who buys organic food? Understanding different types of consumers. *Cogent Business & Management, 8*(1). doi:https://doi.org/10.1080/23311975.2021.1935084

8.Imarc. (2022, March 07). *India Organic Food Market: Industry Trends, Share, Size, Growth, Opportunity and Forecast 2022-2027.* Retrieved from www.imarcgroup.com: https://www.imarcgroup.com/indian-organic-food-market

*9.*Jessica Aschemann- Witzal et al (2013), are organic consumers preferring or avoiding foods with nutrition and health claims? *Food Quality and preference. Elsevier,volume30, Oct2013,PageNumber68-76* .

*10.*Vega-Zamora Manuela et al (2013), The Influence of the Term 'Organic' on Organic Food Purchasing Behavior,*1877-0428 © 2013 The Authors. Published by Elsevier Ltd. Procedia - Social and Behavioral Sciences 81 (2013)Page Number 660 – 67.*

11.Jones, P., Hill, C., & Hiller, D. (2001). Case study: Retailing organic food products. *British Food Journal, 103*(5), 358-365.

12.Kiczorowska, B., Samolińska, W., Klebaniuk, R., Kowalczuk-Vasilev, E., & Wójcik, I. (2017). Pregnant women's attitudes towards organic food. *Poland Journal of Public Health, 127*(4), 159-163.

13.Krishnakumare, B., & Niranjan, S. (2016). Consumer Attitude towards organic food product. *International Journal of Current Research, 8*(10), 39730-39732.

14.Kapuge, K. (2016). Determinants of organic food buying behavior: special reference to organic food purchase intention of Sri Lankan customers. *Procedia Food Science, 6*, 303-308. doi:10.1016/j.profoo.2016.02.060

15.Mendon, S., Noronha, S. F., Nayak, S., Manezes, A. D., & Frank, D. (2019). Antecedents and Consequences of Attitude towards Organic Food. *International Journal of Management and Business Research, 9*(4), 06-21.

16.Morar, & Avia – Carmen. (2013). *Ecologic marketing. Compared study on organic marketing - traditional marketing.* Bacau: Rovimed.

17.Neha, S. (2017). A study of consumer behaviour towards organic food and the moderating effects of health consciousness. *Journal of Marketing Management, 36*(3), 45-79.

18.Nithya , N., Kiruthika , R., & Dhanaprakhash, S. (2022, February 22). Shift in the mindset: increasing preference towards organic food products in Indian context. *Organic Agriculture*. doi:https://doi.org/10.1007/s13165-021-00370-2

19.Nguyen, H., Nguyen, N., Nguyen, B., Lobo, A., & Vu, P. (2019). Organic Food Purchases in an Emerging Market: The Influence of Consumers' Personal Factors and Green Marketing Practices of Food Stores. *International Journal Of Environmental Research And Public Health*, *16*(6), 1037. doi: 10.3390/ijerph16061037

20.Orboi, M. D., Banes, A., & Petroman, C. (2017). Social issues on consumer attitudes towards organic food products. *Journal on Processing and Energy in Agriculture, 21*(4), 219-221.

21.Ozturk, D., & Islam, A. (2014). Marketing of Organic Products in Turkey. *Eyup University Journal of Social Science Research., 9*(1), 75-94.

22.Rezai, G., Teng, P., Mohamed, Z., & Shamsudin, M. (2012). Consumer' awareness and consumption intention towards green foods. *African Journal of Business Management, 6*(12), 4496-4503.

23.Sandhe, A., & Joshi, A. (2017, July). Consumers' Attitude towards Organic Food Products in Vadodara –An Exploratory Study. *Pacific Business Review International, 10*(1), 32-40.

24.Seyed, S., Sadati, A., Fami, H., & Del, P. (2010). Survey Consumer Attitude Toward Barriers of Organic Products (OP) in Iran: A Case Study in Gorgan City,. *World Applied Sciences Journal, 8*(11), 1298-1303.

25.Solomon, M. (2011). *Consumer Behavior.* Upper Saddle, New Jersey: Prentice Hall.

26.Ueasangkomsate, P., & Santiteerakul, S. (2016). A study of consumers' attitudes and intention to buy organic foods for sustainability. *Procedia Environmental Sciences, 34*, 423-430. doi:10.1016/j.proenv.2016.04.037

27.Wang, X., Pacho, F., Liu, J., & Kajungiro, R. (2019). Factors Influencing Organic Food Purchase Intention in Developing Countries and the Moderating Role of Knowledge. *Sustainability*, *11*(1), 209. doi: 10.3390/su11010209

28.Yadav, R., & Pathak, G. (2016). Intention to purchase organic food among young consumers: Evidences from a developing nation. *Appetite, 96*, 122–128. doi:https://doi.org/10.1016/j.appet.2015.09.017

29.Yin, S., Wu, L., Du, L., & Chen, M. (2010). Consumers' purchase intention of organic food in China. *Journal of the Science of Food and Agriculture, 90*(8), 1367.

30.Yiridoe, E., Bonti-Ankomah, S., & Martin, R (2005). Comparison of consumer perceptions and preference toward organic versus conventionally produced foods: A review and update of the literature. Renewable Agriculture And Food Systems, 20(4), 193-205.doi:10.1079/raf2005113

1.Yu, X., Gao, Z., & Zeng, Y. (2014). Willingness to pay for the "Green Food" in China. *Food Policy, 45*, 80-87.

Correlates of Socioeconomic Status and Anthropometric Measurements along with Dietary Status of College Going Girls in Lucknow

Singh Trupti
Head, Dept. of Home Science, RBS College, Agra

Sachdeva Swati
Research Scholar, Dept. of Home Science, MUIT, Lucknow

Abstract:-

Objective: This study assessed the influence of socioeconomic status (SES) on anthropometric measurements in college going young females in Lucknow, India. **Method:** This was cross sectional study of 400 females between 18 to 21 years of age selected by random sampling from 10 different colleges, two colleges from each region viz., North, South, East, West and Central region of Lucknow, India. Anthropometric measurements like Body mass Index (BMI) and percent body fat (PBF) as well as Dietary Status was measured using standard techniques. SES was assessed using modified Kuppuswamy's socioeconomic status scale (2014). **Results and Conclusion:** BMI and Percent Body Fat as well as dietary status were observed to be more in the study population from upper SES group as compared to lower and middle SES groups. This study thus confirms that there is a significant correlation between socioeconomic status and anthropometric measurements in the sample group.

Keywords: Anthropometric measurements, socioeconomic status, BMI, PBF, FM, FFM

Introduction

Obesity is a major public health issue in India and worldwide and its prevalence is increasing. Obesity is associated with many health disorders such as diabetes mellitus, hypertension, dyslipidemia, and coronary heart disease especially when fat accumulation is in the abdominal area (visceral compartment). Indian population have tendency to accumulate fat in the abdominal region.Young adulthood is a unique and critical period of development during which unmet health needs and disparities in access to appropriate care, health status and mortality are high. Obesity as this phase is associated with irregular and changed food habits, periods of inactivity during leisure combined with physiological change which promote increased fat deposition [2]. Therefore, it is imperative to monitor the body composition in this particular age group in order to prevent the accumulation of excess body fat [3].

Socio-economic status (SES) is considered as an important determinant of health and well-being because it influences people's attitudes, experiences, and exposure to several health risk factors [4]. It is known to be positively associated with better nutrition, housing, schooling, and recreation [5]. In children, SES would affect a wide array of health and socio- emotional outcomes [6]. SES is known to be a confounding factor in development of obesity [7].

2. Objectives/ Aims of the Study -The study aims to assess the influence of SES on anthropometric measurements i.e. BMI, Percent Body Fat, and Dietary Status in college going young females in Lucknow The study also aims to find out the relationship between SES and anthropometric measurements.

3. Literature Review-Sobal *et al.* reviewed 144 published studies to assess the relationship between SES and obesity [8]. Primary finding included the observation of a strong direct relation between obesity and socioeconomic status for women, men, and . children in developing societies. Another study supported this finding wherein it concluded that as one moved from high- to medium- to low-HDI (Human Development Index) countries, the proportion of positive associations increased and the proportion of negative associations decreased, for both men and women [9].

4. Methodology-This was a cross-sectional study which included 400 college going females in the age groups of 18 to 21 years selected through convenient sampling from five different zones of Lucknow and from each zone 2 colleges were randomly selected as per the convenience of the researcher. This particular age group was selected for this study as majority of the changes associated with young adulthood take place and complete in this phase [9]. College going Girls living far away from their families such as hostel or as paying guests, Girls on reducing diet or any type of crash diet and also married girls were excluded from this study.

The modified Kuppuswamy Socioeconomic Status scale was used to assess the SES status of the young females. [10]. Based on Kuppuswamy Socioeconomic Status scale, the females in this study were classified in 3 SES groups: Upper SES (SES score 26-29), Upper Middle SES score 11-25) and Lower Middle SES (and SES score < 11). Body Mass Index (BMI) is the most commonly used measure which is only an indirect measure of fatness and was calculated using the Quetelet's Index [12] by taking the sample's weight (in kg) and dividing by the height (in meters) squared. Subjects were classified into four categories (Underweight, Normal, Overweight or Obese) based on the BMI cut-off. Subcutaneous fat was measured through skinfold caliper at triceps, biceps, suprailiac and subscapular site [14]. Percent body fat was computed through these measurements using the Durnim Womersley formula20', dietary status was calculated using 24 hr recall method**Hypothesis [H_{0}]:** Socio- economic status has no effect on the anthropometric and Dietary status of the college going girls

5. Results-The data was analyzed using SPSS version 16. One-way ANOVA was used to compare the means of the anthropometric measurements between the three SES groups. The level of significance was set at <0.001

Table 1: Frequency distribution of socio-economic status in study population.

Table 1 : shows the frequency of subjects according to their

	SES	Frequency	Percent
	UPPER	124	31.0
	UPPER MIDDLE	176	44.0
	LOWER MIDDLE	100	25.0
	Total	400	100.0

SES. Overall, 31% of the girls belonged to upper socio-economic class, 44% girls belonged to upper middle Socio economic class and only 25% girls belonged to lower middle Socio economic class. The same data is presented in **figure 1.**

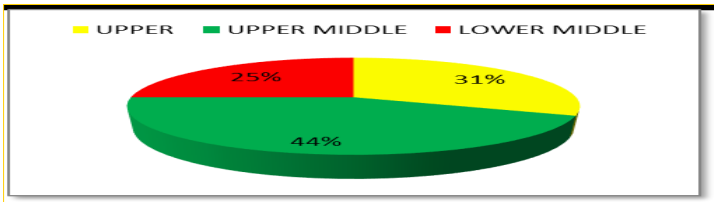

Figure 1. Socio-economic status of the subjects

2. Relationship of BMI and SES

BMI is largely affected by the Socio economic status of the subjects. It is positively correlated to the SES status. Table 2 gives the categorization of BMI as per the socio economic status.

Table 2: BMI as per the socio-economic Status of the selected subjects

		SES			
		UPPER	UPPER MIDDLE	LOWER MIDDLE	Total
BMI	Underweight	12	4	8	24
		3.0%	1.0%	2.0%	6.0%
	Normal weight	96	148	88	332
		24%	37%%	22.0%	83.0%
	Pre obesity	12	24	4	40
		3.0%	6.0%	1.0%	10.0%
	Obesity class I	4	0	0	4
		1.0%	.0%	.0%	1.0%
Total		124	176	100	400
		100.0%	100.0%	100.0%	100.0%

Applied χ^2 test for significance p-value=0.001; consider very significant

Table 2 shows the data that maximum normal weight subjects belonged to upper middle class (37%) while the obese subjects belonged to the upper class. The correlation is very significant between BMI and SES after applying chi square for significance test at p- value= 0.001

3. Correlates of body composition and SES

As the BMI is strongly correlated by the socio economic status of the selected subjects, in the same way body composition too is strongly and positively associated with SES. Table 3 and Fig. 3show the correlation between SES and Body composition.

	SES						p - value
	UPPER		UPPER MIDDLE		LOWER MIDDLE		
	Mean	SD	Mean	SD	Mean	SD	
Percentage BODY FAT	31.73	3.69	30.41	4.61	29.76	2.83	0.001
FAT MASS	17.46	4.03	16.86	4.00	14.20	2.45	<0.001
FAT FREE MASS	38.01	6.62	38.00	5.48	33.30	3.04	<0.001

Applied one way ANOVA for significance.

Table 3: correlates of Body Composition and SES

Table 3 shows mean distribution of body composition (PBF, FM, FFM) according to three socioeconomic status groups. Higher mean of body composition was found in Upper socioeconomic group. The one way analysis of variance at p<0.001 showed that there was significant difference among means of different socio-economic groups.

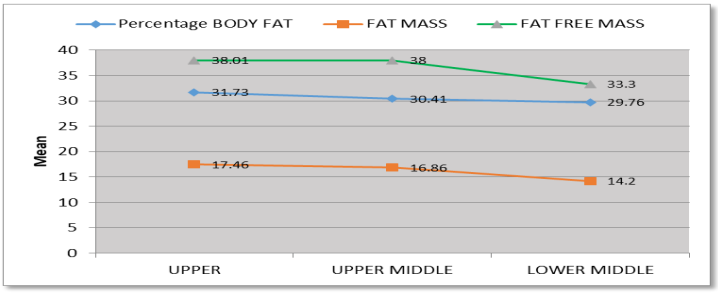

Figure 3 Correlation between SES and body composition

Overall, higher mean of body composition was found in Upper socioeconomic group. The one way analysis of variance (ANOVA) showed that there was significant difference among the means of body composition and Socio Economic Status.

4. Correlates of Dietary Status and SES

The type of diet consumed by the selected subjects is very much affected by her socio- economic status. The higher the SES, higher mean of energy and protein intake is observed. Like the BMI and body composition, dietary intake is also influenced by socio-economic status of the subject. Table 4 clearly shows the mean of energy (kcal) and protein (gm) categorized in the various SES groups.

	Socio Economic Status						p-value
	UPPER		UPPER MIDDLE		LOWER MIDDLE		
	Mean	SD	Mean	SD	Mean	SD	<0.001
ENERGY (kcal)	2200.48	229.78	2138.45	191.30	1951.24	202.35	<0.001
PROTIEN (grams)	49.86	3.48	49.07	3.54	45.15	4.50	<0.001

Table 4: Dietary energy and protein intake as per the different SES categories

Applied one way ANOVA for significance.

Table 4 shows mean distribution of dietary status according to three socioeconomic status groups. Higher mean of dietary status was found in Upper socioeconomic group. The one way analysis of variance showed that there was significant difference among groups mean of SES.

6. Discussion-Excess increase in body weight and body fat is the result of an energy imbalance due to energy intake having exceeded energy expenditure over a period of time [16]. Energy intake is in the form of food that is consumed by an individual while energy

expenditure is through the physical activity or exercise performed by the person. The results in this study indicate that socioeconomic status does play a role in the development of percent body fat.Subjects from upper SES are more prone to increase in body weight and body fat as compared to those from middle and lower SES while more underweight sample subjects were seen in lower SES. Possible explanation for the different SES- overweight and obesity relationship is that SES may influence people's lifestyles such as diet, food consumption patterns, and access to public services such as health care and transportation and physical activity [11].Literature reports a replacement of the traditional diet of coarse grains and millets by refined wheat and rice as the staple cereal which has reduced the consumption of fibre content [17,18]. A parallel increase in consumption of fats, oils, sugars, and western-style fast foods is also observed in the urban affluent. [17,18]. Food cost might also play a significant role in determining eating patterns [19]. Increase in cost of fruits and vegetables lead to a decrease in their access to people of lower SES[20,21]. In addition, fast food culture is an emerging trend among the younger generation. The ready availability, taste, marketing strategies and peer pressure make them popular with children and adolescents [21]. This has led to more frequent consumption of meals at fast-food outlets, consumption of high calorie foods such as high fat, low-fiber foods, consumption of oversized portions at home and at restaurants and intake of sweetened beverages. These behaviors are more common in sample group from upper SES where the high calorie food is abundant, affordable, available, and easy to consume with minimal preparation as compared to children from middle and lower SES who probably have an occasional access to it [20].All these factors may be leading to an increase in BMI and Percent Body Fat observed in selected sample from upper SES as against middle and lower SES.

In addition to food consumption, physical activity may also act as a confounding factor in altering the body composition in adolescents. A general decrease in physical activity levels was observed in children irrespective of the socioeconomic status [22]. This may also contribute to decrease in energy expenditure thus leading to an excess increase in body fat. Selected samples from middle SES probably fall in between the two extremes of abundance in upper SES and inadequacy in the lower SES and thus may be spared from the extreme influence of the various confounding factors.

7. Conclusion-From the results of this study, we can conclude that socioeconomic status did have a direct influence on the anthropometric measurements like BMI, and percent body fat, fat mass, fat free mass and also the dietary status in college going girls. i.e. H_0 is rejected and alternate hypothesis will be accepted.

8. Conflict of Interest-Nil

9. References:-

1. Aronne L., Segal K. 'Adiposity and fat distribution outcome measures: assessment and clinical implications.' Obesity Research, 2002; 10 Suppl1:14S- 21S
2. Braddon F., Rodgers B, Wadsworth M., Davies J. 'Onset of
3. obesity in a 36 year birth cohort' British Medical Journal (Clinical Research edition) 1986; 293(6542): 299-303
4. Goran M. 'Measurement issues related to studies of childhood obesity: Assessment of body composition, body fat distribution, physical activity and food intake' Pediatrics 1998; 101(3 Pt 2):505-518
5. K Park 'Park's Textbook of Preventive Medicine' 19th edition, M/s Banarasidas Bhanot Publishers, India
6. Adler N., Newman K. 'Socioeconomic disparities in health: Pathways and Policies' Health Affairs 2002; 21(2): 60-76
7. Bradley R., Corwyn R. 'Socioeconomic status and child development' Annual Review of Psychology 2002; 53: 371-399
8. Jin Y., Jones Smith J. 'Associations between family income and children's physical fitness and obesity in California 2010-2012' Preventing Chronic Disease 2015; 12: 1-9
9. Sobal J., Stunkard A. 'Socioeconomic status and obesity: a review of the literature'. Bulletin 1989; 105(2):260-75.
10. [Mc Laren L. 'Socioeconomic status and obesity' Epidemiologic Reviews 2007; 29: 29-48
11. Anjan R., Pradeepa R., Das A., Mohan Deepa, Bhansali A., Joshi S., Joshi P. et al 'Physical activity and inactivity patterns in India - results from the ICMR-INDIAB study (Phase-1) [ICMR-INDIAB-5] ' International Journal of Behavioural Nutrition and Physical Activity 2014; 11: 26.
12. Goyal R., Shah V., Saboo B., Phatak S., Shah N. et al 'Prevalence of overweight and obesity in Indian adolescent school going children: Its relationship with socioeconomic status and associated lifestyle factors' Journal of the Association of Physicians of India 2010; 58: 151-158
13. Stirbu M., Simalcsik A., Simalcsik R., Fedor C. 'Variability of the Quetelt Index (Body Mass Index) in 3-18 years old children and adolescent from two different ecological media' Anthropology, 2009:1; 37-43
14. Conrnier Marc-Andre, Despres Jean-Pierre, Davis Nichola, Grossniklaus Daurice, Klein Samuel et al 'Assessing Adiposity- A scientific statement from American Heart Association' Circulation 2011; 124: 1996-2019
15. Meredith M., Welk G. 'FITNESSGRAM test administration manual' 4th edition, 2010, Human Kinetics, USA
16. Slaughter M., Lohman T., Boileau R. et al 'Skinfold equations for estimation of body fatness in children and youth.' Human Biology 1988 Oct;60(5):709-23.
17. Shetty P. 'Obesity in children in developing societies: Indicator of economic progress or a prelude to health disaster? Indian Pediatrics 1999; 36: 11-15
18. Chaterjee P. 'India sees parallel rise in malnutrition and obesity' Feature in The Lancet 2002; 360:1948
19. Vaz M., Yusuf S., Bharathi A., Kurpad A., Swaminathan S. 'The nutrition transition in India' South African Journal of Clinical Nutrition 2005;18(2): 198-201
20. Popkin B., Duffey K., Gordon-Larse P. 'Environmental influences on food choice, physical activity and energy balance' Physiology & Behavior 2005; 86: 603 - 613
21. Manu R., Krishna Kumar 'Obesity in children and adolescents' Indian Journal of Medical Research 2010; 132(5): 598-607
22. Kaushik J., Narang M., Parakh A. 'Fast food consumption in children' Indian Pediatrics 2011; 48:97¬101
23. Currie C., Roberts C., Morgan A., Smith R., Settertobulte W., Samdal O. et al, editors 'Young people's health in context: Health behaviour in school- aged children (HSBC) study: International report from the 2001/2002 survey' Geneva: World Health Organization; 2004.

Repressed them to 'silence'; they revolted back in the same language: A reading of women characters in Ramyabhumi and The Cosmopolitans

Ghanashyam Nath
Ph.D Scholar, Dept. of H.S.S., C.I.T. Kokrajhar
(Deemed to be University)
MO.917002374857

Rimi Rekha Phukon
M.A. in English, Dibrugarh University.
Mo.918473944620

Abstract- Qayenaat, the female protagonist in Anjum Hasan's novel *The Cosmopolitans* escapes to the rural society to hide her misdeed of an accidental murder. She is jealous, she is adventurous, and at the same time she is silent with her views. It is her silence that keeps her safe and at the same time brings her to some of the most critical experiences in her life. Yogamaya in Bhabendra Nath Saikia's *Ramyabhumi* is also silenced by the chauvinist society, she is sent to live alone in the forest, far away from the so called civilized society to preserve the dignity of the family, her only fault being she has been impregnated by a middle aged man in wedlock.

The paper aims to present the suffering of the women characters and the way they revolts back while being silenced by the chauvinistic society. It would discuss the different forms of silences. The analytical method is employed to understand how the position of women has been silenced and marginalized through various ideologies.

Key-words: Cosmopolitan, marginalization, silence, wedlock.

Introduction:-The present paper is an earnest endeavor to understand the miseries of the women folk in a chauvinist society. The paper draws the reference from two different novels – *Ramyabhumi* by Bhabendra Nath Saikia and *The Cosmopolitans* by Anjum Hasan. The earlier is an Assamese novel; the setting is rural Assam in the beginning of the twentieth century, while the later is an English novel set in the cosmopolitan city of Bangalore in the beginning of the twenty-first century. Though the settings of the concerned novels are way different in time and space from each other, the chauvinist mindset of the society is all the same as presented in both the novels. The women folk has been made to suffer from different things; their voices have been repressed to silence. But, sometimes silence functions as a means of articulation as well of those ideas or thought which cannot be presented through language. Thus, the metaphor of silence has been used as the agent of such representations.

Silence, Trauma and Revolution: In the novel *Ramyabhumi*, Yogamaya, the protagonist goes through very repressive circumstances in her life. She had been sent to the 'Hakim's place' to feed him where she gets impregnated by the middle aged man Ghanashyam Chaudhury. Then her miseries followed. She is presented as a passive character in the novel. On the other hand Ghanashyam Chaudhury does not wish to lend her the status of his legitimate wife at the same time he is seen trying to secure her life. He allows her to take the sacred vermillion as sign of a married woman but he has never married her. He secures a plot of forest land for her and hands the papers of the plot of land to her. He muses – "Dalil patrat thakibo tair naam… bhabishyate tair loratuwe…." (Saikia, 54) [the papers will be on her name… the boy would be safe that way in future]. (trans. Us) Ghanashyam Chaudhury tells her to use the surname of Chaudhury meaning she is the wife of Mr. Chaudhury. He tells her to say the surname only when it comes to prove her ownership over the land, he asks her not to use the surname publicly. He thus says, "from today on you tell your surname as Chaudhury… when it comes to prove your ownership over the land only" [trans. Us] (Saikia, 54) This act of silencing has been given another dimension, when Yogamaya's father approached Ghanashyam Chaudhury seeking justice for his daughter realizing the suffering of his daughter. At this instance Ghanashyam Chaudhury threatens him by saying "Some evils cannot be committed by a single person, if you go for a trial it would be a big deal, the loss will be on your part only." [trans.us] (Saikia, 55) He was a high official with the government. The act of impregnating a young girl on his part is a clear misuse of his position. He is nonetheless ready to take care of Yogamaya with the condition that they will never try to know about his "real family". Thus, Mr. Chaudhury silences them and never allows them to raise question against him.Yogamaya's identity of a married woman came with some limitations, where she is instructed to hide her identity: her relatinship with Ghanashyam Chaudhury not only hides her identity but also raises issue on her very existence even within the family. She was forced to work as a maid servant of her sister in law. Her existence in the family with her son has been questioned by her elder brother, as it is hampering the reputation of the family. Yogamaya's position was almost shifted to that of a courtesan. Apart from that Yogamaya's elder brother has been of the view that the matter has been damaging the dignity of the family.In a patriarchal society, the female members are considered as the tool to preserve the mark of 'honor', and it's their sole responsibility to maintain that 'honor' of the family. Simone de Beauvoir points out to the suppressed position of the women. Gayatri Chakrabarty Spivak discusses about the subaltern position of the women in a society. A female by birth gets the position of a second class citizen and her voice is marginalized. From the very introduction of the character of Yogamaya we come to know that her identity was not hers own; it has always been related to the others. She has had to go to an unknown place so that she can keep the dignity of her paternal family and that of her husband intact.In its Greek origin 'trauma' means a physical injury from an external force, but the term is also used to indicate mental wound caused by some catastrophic events that disturbs a person's response mechanism. As it has been mentioned by Freud in *Beyond the Pleasure Principle* "trauma is an excitation from outside which are powerful enough to break the protective shield" (365). The act of silencing gradually leads towards the psychological destruction of the personae of yogamaya. As if leaving the family was not enough for Yogamaya, her miseries followed her to the new place as well. She starts living her new life along with her children. But the question of chastity and identity keeps on haunting every generation related to her. For instance, Radha, her daughter has to go through the same traumatic experience as she was having a love affair with Atul. Her chastity and relationship with Atul was questioned by the people around them which not only affect her but also her mother. The traumatic experience of Yogamaya is recalled to life with this event.Yogamaya just begins her new life in the remote place with her children, but with the arrival of Mahananda and his family the peace and harmony of the place comes to an end. Mahananda's act of digging the truth of Yogamaya's life gradually brings destruction to everything. The effect was visible on the part of Lakheshwar. Where he starts questioning, "Xei tahanite… aai bohi ase!" (Saikia, 78) Yogamaya's protective shield is seen

broken with the rebellious activities of Mohananda. She started doubting her own existence, clearly visible in – "Tekhet – tumar deutara bar bhal manuh asil… moi he ba beya manuh asilo… moie bodmas asilo." (Saikia, 180) [He - your father was a gentleman… it was me who was the evil one… I was the evil.] (Trans. Us)Her calmness came to an end as her own family members started accusing her, especially Gauri, her daughter. Her mental health collapses. She starts repeating every question she has been keeping silently within her year after year. She repeats, "tenehole muk tohonte eikhini powaisilihi kio? … tohontor mote etiya eibor sob mor papor fol." (Saikia,) [Then why have you all bring me this far?... you say all this is due to my sin.] (Trans. Us) The woman who has sacrificed her entire life for the sake of others by keeping herself 'silent' is broken ultimately.

The character of Qayenaat has been introduced as a silent character - "But Qayenaat had too much to say and couldn't bring together…." (Hasan, 20) She is thinking and trying to gather her courage to offer a fit reply to what the girlfriend of Baban has commented on the difference of art in India and that of in the US. This also expresses the cultural implication of 'silence' in the Indian society. That is not to start an argument when one can just be friends by keeping silence on their face and keep the happy sanity of the company. The novelist comments on the character of Qayenaat when she has had just met Baban's girlfriend thus, "As sometimes happens to Indian Indians when faced with loudly voluble American Indians, Qayenaat has momentarily lost her voice." (Hasan, 19) Whereas, she is a grown up woman, she is fifty-three years old. She is an art appreciator. She has had worked in a magazine in the earlier part of her life. At the same time the novelist has put forward another aspect of the identity in the same paragraph. She has appreciated the Kashmiri identity as something very indomitable. She has appreciated the character of Sara, a Kashmiri origin, friend of Qayenaat as having such a personality that "very little could silence her." (Hasan, 19)

When Qayenaat makes her mind to escape to Simhal and she informs Sathi about ger decision Sathi tries to stop her from going there. He tells her that there is a 'war' going on between the rebels and the Indian state out there in Simhal. He seems concerned about her security there – he is concerned about the safety and security of a woman in a 'war zone'. That itself is deliberate enough of the fact that the women folk is not safe in a conflict ridden place. On the other hand Qayenaat just wished Sathi to be gone from her life, like Baban when she returns to Bangalore. Qayenaat calls Pathak, who is the contact person for her in Simhal. Pathak is the director of the Modern Nritya Academy in Simhal. He is a government officer. He has always been in a tour of some place or the other publicing about the dance form. When Qayenaat calls him to inform about her coming to the place, he says he would send someone to receive her at the train station. So, he sends Vipul Singh who is an accounts assistant at the DC's office. This boy on the other hand becomes the trouble for her later. He is always following her wherever she goes and whatever she does. He warns to meet the king Mohanendra Simha. On the other hand, she finds a good companion in the king. The king looks serious about the dance form. It is his ancestors that have shaped the dance form in the present shape. He himself has also danced in his younger age. He has performed the dance in many big stages both within the country and outside the country. But Vipul has always stopped her from meeting the king. And Qayenaat repents whether this is going to be the motif of her visit to Simhal that one man warning her against another.Qayenaat wished to give Vipul Singh a dressing down when the fellow acknowledged that it was he who has had startled her the first night of her stay at the Academy. But she was restrained by her conscience. She has had been haunted by her past. "Any wild moves she has made always turned out badly." (Hasan, 234) She is reminded of the incident of her fit in the recent past where she has killed a man Gyan Pai; the incident that has compelled her to leave the place for the time being. But somehow, Qayenaat succeeds in diverting Vipul Singh's attention from her by means of engaging him in collecting data for her from the dancing boys in exchange of some money for some time.In a different episode, the King Mohanendra Simha calls Qayenaat by a mythological name – Mandakini, in their first meeting itself. By calling her by a mythological name the king seems to be giving her a different identity. This act is bearing witness of the king's patronizing behavior towards her – the single lady from the cosmopolitan city. The king has had female companions in the past, but he has left all of them. Though he seems genuine in his present behavior, he sounds as a womanizer in the words of other related characters. But, Qayenaat felt that the king was not really interested in female lives from what she could observe in his behavior towards the maid, Jara.

Mr. Das who became a co-pasenger of Qayenaat during her train journey to Simhal is a native of the place. He talks of the dance in lofty words. He calls it a classical dance. He is against calling the dance form a folk dance. He is professor in a college. In his character it is clear that he does not refer his wife as equal to him. She is just there to accompany him in his journey. Mr. Das demands Qayenaat in a bossy voice to explain her intention of her journey to Simhal - what actually she is going to do here. For Qayenaat it is actually an escape from the cosmopolitan space for the time being. But she is also looking to explore the dance form; she is willing to appreciate the dance in its original inhabitation. Later she seems to be interested in doing something better for the preservation of the dance that is capable of presenting a large number of human emotions and also quite a good number of animal or bird imitations; the lusciousness of the dance, the grounded nature of the dance. Mr. Das's behavior to the women folk is not of some respectful kind.

Conclusion:-Both *Ramyabhumi* and *The Cosmopolitans* have a female protagonist. The protagonist is made to suffer by the chauvinist society. Yogamaya breaks down towards the end of her life; she just cannot bear the unjust charges against her. She has kept mum over the injustices meted out to her by her family, and the closed ones. She has been violated by a man in power when she was a young girl, she was not in love, and she was forced. She has had to bear the child born out of wedlock. Then again the family thought that their reputation will be gone due to this unacceptable mischief of the girl. So her brothers are not ready to keep her in the house. The man, on the other hand, even after committing such a vicious act is free from any judgments by the society, whereas the poor girl is left to suffer alone in the forest. In the case of the other female protagonist, Qayenaat, she is a fifty-three year old unmarried woman. She is a cosmopolitan lady living in the city of Bangalore. It is due to her jealousy over the new girlfriend of the man she has loved once she destroys one of the best art products of Baban, the celebrity artist. And in doing so in silence, she has later come to know that she has burnt another man alive in the gallery. Silence is her language of revolt as has been presented in the novel. In the beginning she has revolted in 'silence' and in the later part she is seen trying to cope up with the male-centric society in silence. She is also seen trying to divert the agents of male-centrism through her action in a different way. She is seen as a strong character unlike Yogamaya who breaks down in the end.

Works cited:

1. Beauvoir, Simone De. *The Second Sex*. London: Vintage Books, 2015.
2. Butler, J. *Gender Trouble: Feminism and subversion of identity*. New York: Routledge, 1999. Print.
3. Freud, Sigmund. *Beyond the Pleasure Principle*. New York: Liveright Pub. Corp, 1961. Print. 365.
4. Hasan, Anjum. *The Cosmopolitans*. Gurugram: Penguin Books, 2016. Print. 198, 234.
5. Saikia, Bhabendra Nath. *Utsanyas Samagra*. Guwahati: Banalata, 2014. Print. 55, 78, 180.

Ethnic origin and Religious beliefs of the Mising community of Assam in historical context

Biraj Jyoti Kalita
Assistant Professor
Department of History
Devi Charan Barua Girls' College, Assam

Supriya Dutta
Assistant Professor (Contractual)
Department of History
Kakojan College, Assam

Abstract-Ethnicity has been a key study area in the discourse of sociology and history for many years. Looking at the complex nature of ethnicity in the context of the Northeastern region of India, scholars have now taken a proper theoretical approach to explore the history of marginalized ethnic groups. North-East India, particularly Assam is the homeland of diverse ethnic groups. Among different ethnic communities, the Mising is an ethnic tribal group from the Indian state of Assam. This paper attempts to reconstruct a detailed ethnographic account of the Mising tribe of Assam.

Key Words*: Assam, Ethnicity, marginalized, Northeastern region, Mising tribe.*

1. Introduction-India has been a land of diverse ethnicity, race, linguistic, and religious ethnic groups since its inception. Similarly, located in the peripheral Northeastern region of India, Assam has been a hub of varied cultures, languages, religions, and social customs since time immemorial. Assam is found to be inhabited by both tribal and non-tribal ethnic groups such as Bodo, Mising, Sonowal Kacharis, Deori, Karbi, Dimasa, Rabha, Tiwa, etc. (Taher & Ahmed, 2017, p.285). However, the Mising, who is also called Miri in the earlier period and is still recognized as Miris in the Constitution of India, is the second-largest ethnic tribe of Assam. The word 'Miri' is used by the people of the plains to identify the Mising people without creating a distinction between the 'plains Miri' and the 'hills Miri' (Tayung, 2017, p.21). It is also noted here that the word 'Miri' is used in the Assamese language by Srimanta Sankaradevain his '*Kirtan Ghosa'*. Srimanta Sankaradeva mentioned the contemporary ethnic groups inhabiting his times in the Assam with following sentences:Kirato Kachari ,Khasi,Garo, MiriJavanaKonkoGuwalo etc. (Tayung, 2017)Ethnically, they belong to the great Mongoloid stock. Their language, the Mising tribe is also part of the Tani branch of the Sino-Tibetan spoken language family. It is interesting to note that the word 'Mising'means '*man of the soil.*' Since the pre-historic period, the Mising people have been residing beside the bank of the river Brahmaputra for agriculture. Now -a-days, the Mising tribal people live in the districts of Sibsagar, Jorhat, Lakhimpur, Dhemaji, Golaghat, Sonitpur, Dibrugarh, Goalpara, and Darrang in Assam. So, this paper attempts to analyze the origin of the Mising tribe and their social life as a part of greater Assamese society.

2. Objectives-The Mising society has also a storehouse of diverse cultural and social values. Their society performs numerous socio-cultural and religious activities. Therefore, the main aim and objectives of the paper are:

To study the ethnic background of the Mising community of Assam in the historical context.To highlight the religious beliefs of the Mising community.

3. Methodology -The research methodology for this paper is an analytical and historical approach. Both primary and secondary sources like books, journals, e-materials, and internet sources are used. So, the method used in this paper is mainly qualitative which involves the collection of sources. However, verification of such sources has been followed by a critical discussion and statement of conclusion.

4. Discussion-*4.1. Ethnic origin of the Mising community* The various migrated races have formed a multicolored society in Assam. The human races which are mainly assimilated in the present population structure of Assam are Nordic (Aryan), Mongoloid (Kirat), Mediterranean (Dravidian), Petro-Astroloid (Austric), and Negreto. The descended of the Mongolian clan are Ahom, Kachari, Chutiya, Mising, Deori, Bodo, Garo, Rabha, Khamti, Tiwa, Dimasa, Moran, Sonowal-Kacharietc. From an anthropological perspective, the Mising, who called themselves as Miris, belong to Sino -Tibetan offshoots of the great Indo-Mongoloid racial stock (Pegu,2019, p.5). It is noted that there is a lack of detailed written records regarding their early migration into Assam. However, the Mising tribe possesses rich oral literature in the form of myth, folk tales, legend, and folk songs. Similarly, literary sources of medieval Assam, particularly the Ahom Buranjis (Chronicles) and Vaishnavite works contain some descriptions of the Miris (Misings) in connection with their relationship with the Ahom kings and the Vaishnavite reformers (Doley, 2013, p.7). It is interesting to note that although there are many age-old stories related to the migration of the Mising people into the North-East India region, there are no definite historical documents regarding their migration. Some available sources give us information that they were originally tribes of hill areas living in the North-west of China and later on, they migrated to Arunachal Pradesh and then to the Brahmaputra Valley many centuries ago (Pegu, 2019, p.28). So, Bishnu Rabha has stated an argument that can be found relevant in this context:"Aabors and Miris belong to the same group. According to the description of 1897 the inhabitation of the Miri people is spread to Dirjen River in the south-east, the southern hills of the Dihang valley in the north-east, North Lakhimpur subdivision in the south, the hill lines of the Ranga Noi in the south west, Tibet in the north." (Deka, 2018, p.71) Archeologists discovered equipment from the Neolithic period made of local rocks in the areas inhabited by Mising tribe, which has a close affinity with the equipment used in Yunnan province of China. Tools like jadeite, gneiss, or dolerite firmly established that the Mising tribe of North-East India has migrated from Yunnan. A. H. Dani stated:"…the prolific use of jadeite further strengthens the link with Yunnan, in fact, with the discovery of a specimen in the Mishimi Hill; the cultural contact of this region with Yunnan can hardly be doubted. Indeed, the main tool types of Yunnan and the Sadiya Frontier Zone are identical and the use of the common material, jadeite, firmly establishes the identity." (Dani, 1970, p-44). Similarly, Famous anthropologist A.M. Meerwarth has stated:"At any rate, their (the North Assam tribes) features leave no doubt that they are of Mongolian origin. They have the typical Mongolian cheek-bones, round faces, and broad noses, like all hill people, they are of study race, capable of great excretion and their musculature is very well-developed, especially the thighs and calves which are very strong. They are generally speaking a short race, but look rather imposing, especially in full wardress, their colour varies from olive to dark brown, and like all Mongoloid races are practically beardless" (Meerwarth, 1919, p.16) It may be noted that the material culture of the Mising tribe also reflects information about their migration. Like the Amodopa tribe, which is a tribe of Eastern Tibet, the Mising tribe is also sacrificed animals by suffocating. The Misings have brought '*yoksas'* from Tibet, which they consider a sacred religious asset. So, Nomal Chandra Pegu wrote:

"…. some believe that a few Yoksas have come down from their original abode. However, there is hardly any doubt about its Tibetan origin."(Pegu, 2003, p.7) It is also interesting to note that the linguistic kingship of the Miri people with that of other Sino-Tibetan linguistic groups reveals that they had originally inhabited in the central valleys of Asia. In this regard, R.J. LaPolla wrote:"The archaeological and linguistic evidence suggests that the ancestors of the Sino-Tibetan speaking people in the central plains of the valley of the Huanghe (Yellow River). By at least 4500 BCE, some members of the Tibetan plateau or into the valley to its east. The group that stayed in the central plains, as well as those who moved south and east in the early historical times, eventually became the Sinitic speakers today, while the group that moved southwest became the Tibeto-Burman speakers." (Lapolla , 203,p.9 ; Pegu,2019,p.32)G.A. Grierson pointed out that the Mising language as well as languages of other ethnic-racial groups such as Mishimi, Adi, and Apatani has a

close affinity with Sino-Tibetan language family. These tribal groups, which assimilated with other Tibeto-Burman language families had migrated to the Northeastern region (Tayung , 2017,p.34)).In this regard, D. Doley has stated that- "It is therefore, certain that the North Assam tribes have already migrated and settled in their present habitats since the beginning of the Christian era." (Pegu, 2003, ,p.1 ;Tayung, 2017, p.34)From such evidence, it is also revealed that the language of Mising or Miri people is also a subset of the Tibeto-Burman linguistic groups. So, it is also established fact that whether the Mising people entered the land of Assam bypassing northern or southern routes, they originally inhabited in Northwest of China (Pegu, 2019, p.32).Like every tribal society, the Mising tribe has a popular legend regarding their origin on the earth. A legend can be defined as a set of traditional old stories, which exist from one generation to the next. According to a legend of the Mising tribe, the ancestors of the Mising first inhabited at a place known as Killing-Kangey, which was situated somewhere in the upper course of the Siang River (Kotoky, 1935, p.p.6-30; Doley, 2013, p.4). "…they came down from Killing Kangey by two ladders called Ai n Ko:bang (Golden ladder) and Murkong-Ko-bang (Silver ladder)….. From Killing Kangey, the Misings came over to Regi -Regam, then at Karko-Simong, Pega Selek and finally at Doyit Pumi near present Sadia." (Pegu, 1981, pp.2-68; Doley, 2013, p.4) It is interesting to note that the Mising people are experts in weaving high standard colourful clothes, particularly clothes made up of '*Eri*'. The Misings used to develop the trade of '*Eri*' clothes between China and India as well as the hills and plains. It is revealed that the Mising ethnically belonged to the Indo-Mongoloid racial group (Tayung, 2017, p.38).

4.2. Religion beliefs and practices of the Mising community-The traditional religious beliefs of the Mising are animistic in nature. They believe in different supernatural beings haunting the earth usually unseen (Gait, 1963, pp. 373). In fact, they worship the two celestials being – Sun and Moon. It may be noted that the tribal population of the Mising consider themselves as the offspring father of Moon (Po:lo)and the mother of Sun (Do:nyi). So, their belief system has been further called as Do:nyi-po:loYelam which literally means Sun-Moon religion (Do:nyi-Po:lo) (Tayung,2017,p.69).In this regard, Elwin has been stated :"Do:nyi -Po:lo is the eye of the world; he is as important to man eye is to the body. It watches everything …. Above all he is the lord of the truth and an oath taken on his name is most binding of all." (Elwin, 1958, p.34)It is interesting to note that the people of the Mising tribe also believe in the different 'Spirits' *(Uies)*, which has been a crucial part of their religious belief system since immemorial. It is believed that these Spirits (*Uies*) have had the same desires that a man of flesh and bone has craved (Tayung, 2017, p.70).Although the Mising tribe came into contact with the culture of Assam valley as early as the 16th century they were little influenced by Neo-Vaishnavism. They continuously retained their own religious beliefs and also practiced Hindu beliefs. Although Mahapurush Srimanta Sankardev had taken the first initiative to bring the Mising tribal people into his religious fold. But his influence began to decrease after his death, as his successor paid little attention to the religion of the tribe and focused only on collecting religious taxes. The restricted influence of Hinduism made the Mising tribal people free from casteism or any other religious dogmas in general. Mising people worship the spirits underlying thunder and lightning (*Mukling Teleng),* earth and water (Among *Asi*), air and fire (*Esar Emi*). The chief priest *Mibu* conducts all the religious occasions. The Misings believe that sickness and destruction of crops are due to *'wee'* or spirit. They occasionally offer *'Wee'* drinks food especially meat to as not to harm them anyways. This worship, intended for the well-being of people is called '*Dobur Wee'*. During this observance, traffic and business transactions with neighbouring villages are suspended. It allowed nobody to come and go out of the village on the day of the main entry lane to the village chase away the evil spirits from the individual houses of the village (Kuli, 2009, p. 37). One female pig and many hens are sacrificed in these rituals (Doley, 1995, p. 140). Similarly, the *Orom Wee* worship is done on the belief that the departed soul of the assistors revisits the family from time to time which desires for getting food and drink. Generally, at an interval of five years, *Orom Wee* is performed by sacrificing pigs and arranging a huge feast on this occasion and continues it for three days (Payangkataki, 1935, p. 25). It is also found that Mising people have faith on *yalo* (soul). The Mising people pay homage to '*Wee Yalo*' by sacrificing pig, owl, and offering *Apong* (indigenous liquor-rice beer), etc. which is known as *Orom* performed in a year or so and if not, in every five years. It can be concluded that Mishing religious beliefs are conglomeration of animism, naturism, and ancestors. It is interesting to note that the religious beliefs of the Mising society, over the course of time, have been changed. A large section of the Mising society has converted to Christianity. Historian D. Nath (1985) wrote that:"One interesting aspect of the Mishing religious life is, however, very recently marked: this is an attempt of the people themselves to modernise their socio-cultural life through westernization. The aversion of tribals towards Brahmanical Hinduism and the imperialistic policy of the Western capitalist countries resulted in their (the Mishings) attraction towards Christianity."

5. Conclusion From the above discussion, it is revealed that the Mising tribe is a major tribe of Assam and recognized as Scheduled Tribe (S/C) under the constitution of India. They migrated to the plains of Assam in search of livelihood. Through assimilation of other groups of Assam, the culture and life of the Mising constantly have been changed. They have a well-organized social structure with tribal characteristics. But as they live with the non-tribal Assamese communities, the changes have naturally been taking place in the tribal social structure. The influences of Vaishnavism and Christianity have gradually resulted in the emergence of a new set of beliefs and practices amongst the Mishing tribal population.

****

6. References:-

1. Deka, R. (2018). *A Comparative Study of the Folktales of the Mising and Deori Tribes in Assam in Terms of Structuralist Narratology*, Unpublished PhD Thesis , Guwahati: Gauhati University, 2018
2. Doley, P. P. (2013). *Role of Mising Folk- Tales and Folk Songs in Developing Moral Values Among Children: A Critical Review*, Unpublished PhD Thesis, Guwahati: Gauhati University.
3. Doley., D. (1995). *Plain Tribes of Assam*, Guwahati: Assam Tribal Development Authority.
4. Elwin, V (1958). *Myth of N.E. Frontier of India*, Itanagar.
5. Gait, E.A. (1963,First Published in 1906).*A History of Assam*, The University of Michigan: Thacker,Spink.
6. Kotoki, S.P. (1935).*Miri Jatir Buranji*, Dibrugarh : M.S. Bagsi and co.
7. Kuli, J.J. (2009). *Mising Sanskriti*, Dibrugarh: Kaustubh Prakashan.
8. .LaPolla , R.J. (2013). *Eastern Asia: Sino-Tibetan Linguistic History*,in immanual Ness edited book The Encyclopedia of Global Human Migration, Blackwell Publishing Ltd.
9. Meerwarth, A.M. (1919).*The Andamanese, Nicobarese and Hill Tribes of Assam*, Calcutta: Superintendent Government Printing Publication.
10. Nath, D. (1985). "The Mishing Society in Transition", *Proceeding of North East India History Association*, Guwahati: NEIHA, 255-261.
11. Pegu, I. (2003). *Mishing Samaj Aru Sanskrit*, Guwahati: Director Assam Institute of Research for Tribals and Scheduled Castes.
12. Pegu, P. (2019). *Economic History of the Miris*, Mumbai: Mishing Society of Mumbai.
13. Pegu, N. (1981). *The Mishings of the Brahmaputra Valley*, Dibrugarh: Manumoti Pegu.
14. Payang kataki, S. (1935). *Miri Jatir Buranji*, Dhemaji: Mornoi.
15. Taher, M. and Ahmed, P. (2017). *Geography of North –East India*, Guwahati: Mani Manik Prakash, Ninth Edition.
16. Tayung, D. (2017). *The Mishing Culture of Assam:A Socio-Philosophical Study*, Unpublished Ph.D Thesis, Guwahati: Gauhati University.

Present position of Sports in India

Prof. Manjunath Devanal
Assistant professor,Physical director
B.V.V.V.S Basaveshwar arts college
Bagalkot-587101,karnataka

A sport is a psycho-social activity. It has both psychological and social dimensions; beside sports is a psycho-social activity it includes, Physical, physiological and technical aspects too. Man's interest in sports is found in all societies of the world. Most of the nations have a common interest in sports competition, especially at certain times during the Olympic Games, where people from all nations focus their attention on the dreams of competition. But the quality of participation of the athletes and sportsmen's determined by Psychological factor. In this modern era of competition, the different skills of a game on the scientific lines. The terms are prepared not only the proficiency in the skills which bring victory, but more important is the spirit of the players with which they play and perform their best in the competition.

The application of psychological principles to the improvement of the performance on sports has received greater attention in these days. There are certain accepts psychological principles which have to be applied So that, the athletes and players are able to show their best performance and consistent for failure. Coaches, physical educationalist and sports scientists have always expressed a great need to more about psychological factors, which are helpful in improving the sports behavior and the motor skills of the players.

The word 'sport' is derived from two words 'dis' and 'portere' meaning ''carrying away from work''. Regarding sports, we point to such recreative activities which are relaxing in nature and it is for the sake of seeking 'pleasure' only. Basically sports are individual activities born out of natural urge for movement. Sports are part and parcel of human as well as animal life. Sport is an ''activity-oriented field.'' It starts with ''movement'' and gradually encompasses mental, intellectual and social aspects of the child's personality. The history of Indian sports can be traced back to the Vedic age. During the era of Ramayana & Mahabharata, around 1900 BC – 7000 BC, men of status and honor were expected to be competitive in sports like Archery, horsemanship, wrestling, weight-lifting, swimming & hunting. India has a great tradition of sports, and is greatly influenced by the British presence in India in the 18th and 19th century. Cricket is undoubtedly the most popular sport, but in such a large and populous country there are many other sports that are played by a lot of people.

India is a country with a billion-plus population but in the field of games and sports it is not able to show up even against countries that are as small as one of the country's states. At the recently held world cup Hockey at Kuala Lumpur India lost against South Korea and against Malaysia — South Korea, a country of the pocket size. In Cricket, the Indian performance remains so uncertain it may defeat the best and lose to the worst, and then it is argued that cricket is a game of chance. Though, of course, we have the world top class among our players — Sachin Tendulkar to name one in cricket or Vishwanath Anand in chess, but then names are so few to be counted. The World Olympics come and go and India hardly can take any pride in its performance in any item getting a bronze here or silver there is the only achievement for this vast country. During the British rule sports and games in India were just a mere source of entertainment for the rich. The credit for promoting sports and games, then, went to the Maharajas and the Princely States. Maharaja Bhupendra Singh of Patiala adopted cricket, wrestling, and athletics. He donated the Ranji Trophy which continues to be played on the national level with pride. The great wrestler — Gama was maintained and sustained by the Maharaja and became the World Champion of his times — Rustaame Zaman. Maharaja of Nawanagar — Digvijay Singhji hired British coaches to coach promising cricketers. Maharaja Holkar of Indore patronized players of cricket like C.K. Naidu, Mushtaq Ali, and C.S. Naidu. Maharaja of Manavdar, Bhopal patronized Hockey and so did Maharaja of Gwalior. Maharaja of Cooch Behar encouraged football and instituted the Santosh Trophy for National Championship. With the dawn of independence and the end of the princely states, though country's first Prime Minister Jawaharlal Nehru, encouraged sports, still no comprehensive sports policy could be formulated. Private sponsorers continue to patronize games like the Indian Air Lines patronizing Hockey, Cricket and Table Tennis while the Telephone industries encourage football. But this does not actually help at the national level. In spite of the Raj Kumari Amrit Kaur Coaching Scheme or the National Institute of Sports at Patiala, nothing much seems to be happening. The BCCI has huge funds and the Cricket players are getting big money but then it is not one sparrow which makes a summer. And even cricket cannot be said to be at the top of the world. India is one of the largest countries in the world in both area and population. India is also one of the few countries that have retained the popularity of their indigenous games among its people. Games like gilli-danda, kabaddi, pehlwani and kho kho. India is also where some of the oldest forms of martial arts originated like musti yuddha, kalerippayattu, silambam as well as marma adi. India also have a few board games, most popular of which is the chaturanga, believed to be the origin of modern chess. This is further reinforced with the rise of a number of chess grandmasters from the country.Other popular sports in India are badminton, football, shooting, wrestling, boxing, tennis, squash, weightlifting, gymnastics, athletics, table tennis, basketball, volleyball, and cycling. Popular indigenous sports include chess, kho-kho, kite-fighting, leg cricket, polo, snooker, and gillidanda.

Cricket is most famous sports in India. It is by far the most-watched sport in India. The popularity of cricket in the country is due to the large interest of the citizens in this particular sport and sportspersons. However, modern games have also taken over the Indian scene with cricket being the most popular. India has also hosted several sporting events such as the Asian Games (1951 and 1982), Cricket World Cup (1987, 1996 and 2011), Hockey World Cup and the Commonwealth Games (2010).

India also have been part of the Olympic Games since 1900 and winning an Olympic medal right off the bat when Norma Pritchard took two silver medals in athletics when in the 200 meter dash and the 200 meters hurdles. They skipped a few Games and returned in 1920 and have been sending athletes ever since.Sport teaches many life skills including team spirit and coordination. A well-played game has the power of instilling such values like self-motivating spirit, discipline, leadership, taking ownership of success as well as failures. It improves your mood and concentration. It reduces stress and depression. It also improves sleep habits. It helps you maintain a healthy weight. Sport boosts your self-confidence. It has been linked to leadership traits. Mental benefits of sport for older people.

Sports are good for any nation. Various games are played in India. India excelled in few games while failed in other games. A billion-plus population, India is not able to produce Olympic Champions it is a shame. Once India was at the top of hockey but now even that pride of place has been lost. During British rule, the Maharajas and Princes patronized games, and players and world-class players were produced. With independence, no regulated and planned sports policy formulated in the country. The nation's annual budget makes no provision for games and sports. There are world-class players and sportsmen but they are self-made no state policy has groomed them. There should be a national plan and policy to encourage and patronize players and sportsmen catch them young and they should be trained, groomed, and totally adopted in every way by the state then only world-class players and sportsmen can be produced.Even such small countries like South Korea, Argentina, Cuba, Malaysia, Sri Lanka, Japan can produce world-class players and sportsmen — India cannot which means that the 'Will' is not there with the state. For a country of over 1.25

billion, the existing sports infrastructure is not satisfactory. The lack of world-class infrastructure and the inadequate support of the government are reflected in poor performance of Indian athletes in major international events like the Olympics.

By and large we can state that Poverty and lack of education are the major reasons in India to remain as a less achiever country in sports. There is a lack of strong foundation for sportsperson in India. While pursuing their interest in sports, they also have to take care of their economic factors and pay a part of their attention towards earning livelihood or education for some. And even the government apathy and lack of infrastructure have been ascribed to this abysmal performance. There can be no doubt that India lacks world-class infrastructure for sports. What our country utterly lacks is a national policy on games and sports. The country's budget comes and goes and no one — no M.P. — no minister, none even among the public raises any voice for any substantial allotment and provision for the promotion of games and sports; while in much smaller countries the upcoming players are properly looked after by the government they are coached, trained and groomed at state expense.

Such a vast country, with such a massive population, is not able to groom up even a proper eleven for a team game or an individual or two for individual games. One knows not how Milkha Singh or P.T. Usha or Malleshwari could succeed in their own events at the international level. Their own personal devotion, effort, and dedication would have been responsible for their achievement.What is needed is that the government should give a priority to games and sports as a means of national pride. Catch the player or sportsman young, a search should constantly be on to find talents, and once they are discovered all their responsibilities be shouldered by the government they should be mentally free from all burdens. Intensive and expert coaching, competition, and international exposure be given to these players and athletes the country should consider them their prized possession, and they are physically, financially, mentally be inspired, and helped to win for the nation. That sense of national pride alone can inspire them to achieve the best. If South Korea, Malaysia, Sri Lanka, Argentina, Cuba, Japan, Taiwan can come up with Olympic Champions, it is a shame for India not to be able to do it. It is only the will that is lacking not the talent. There should be adequate infrastructure, equipment and human resources in schools and colleges to guide and train students in sports. Awareness of sports should be given to children and young people. Sports are not just for winning medals. And this will definitely change the future of sports in India.

Below are details of sports, sporting events and sports people related to India.

Popular sports of India

Cricket, Field Hockey, Football (Soccer), Badminton, Tennis, Kabaddi, Track and Field (Athletics), Chess

Traditional or Regional Sports of India

Ball Badminton — a racket game native to India, played with a yellow ball made of wool, with similarities to Badminton.Kho-Kho — the team that takes lesser time to tag all the opponent players wins the game.Kabaddi — a "raider" enters the opposite team's half to tag opponents without taking a breath.Lagori — from Southern India, this game involves a ball and a pile of flat stones. A member of one team throws a soft ball at a pile of stones to knock them over, then try to restore the pile of stones while the opposing team throws the ball at them (also called Pittu).Yubi Lakpi — a seven-a-side traditional football game with similarities to rugby played in Manipur, India, using a coconut.Mallakhamba — a traditional Indian sport, where athletes perform various types of gymnastics moves and hold various poses on a vertical wooden pole or a rope.Rollball — like handball on roller skates, players must bounce the ball while moving and score goals by shooting the ball into the opposing team's goal.

Throwball — a sport very similar to Newcomb Ball (a variation of Volleyball) that is played in India.Pehlwani — a form of wrestling from South Asia. A win is achieved by pinning the opponent's shoulders and hips to the ground simultaneously.Kalaripayattu — an ancient martial art from Kerala, India.

Gilli-Danda — a South Asian game played with two sticks, one long and the other short

Nadan Panthu Kali — ball and net sport played in the Kerala region.

India Sporting Success:

India won the ICC Cricket World Cup in 1983 and 2011.

Winner 2007 T20 World Cup

ICC Champions Trophy winner - 2002, 2013

Athletes from India:

Sachin Tendulkar (cricket)

Virat Kohli (cricket)

Major Dhyan Chand (hockey)

Anju Bobby George (athletics - long jump)

Jyotirmoyee Sikdar (athletics - 800m)

Milkha Singh Norman Pritchard

P. T. Usha T. C. Yohannan

Leander Paes and Mahesh Bhupati (tennis)

Neeraj Chopra (javelin) - the first track & field athlete to win a gold medal for India at the Olympics

Mary Kom (boxing) - one of the greatest female boxers of all time

India Sports trivia:

1997 Federation Cup Semi Final between East Bengal and Mohun Bagan holds the record for the largest audience in Indian football. The match played in 13th July, 1997 at Salt Lake Stadium drew 134,000 spectators. This is a record attendance for any sport in India.

The sport of Badminton (probably) originated in India.

India at major events:

India at the Summer Olympics

India at the Winter Olympics

India at the Commonwealth Games

India at the FIFA World Cup

India at the Cricket ODI World Cup

India at the Cricket T20 World Cup

Past sporting events hosted in India:

1934 West Asian Games, New Delhi

1951 Asian Games

1982 Asian Games

1987 Cricket World Cup hosted by India & Pakistan

1996 Cricket World Cup hosted by India, Pakistan & Sri Lanka

2010 Commonwealth Games Delhi

2011 Cricket World Cup hosted in Bangladesh, India, Pakistan & Sri Lanka

2013 Lusophony Games in Goa

2016 Men's T20 World Cup hosted by India

2018 Men's Hockey World Cup in Bhubaneswar

Upcoming sporting events in India:

2023 Men's Hockey World Cup in Bhubaneswar & Rourkela

2026 T20 Cricket World Cup co-hosted with Sri Lanka

2031 Cricket World Cup (1-Day) co-hosted with Bangladesh

Annual sporting events held in India

Indian Premier League (IPL) — 20/20 Cricket tournament

Sporting Facilities in India

Netaji Subhas National Institute of Sports

Narendra Modi stadium, Ahmedabad, Gujarat

Salt Lake Stadium Kolkata

Jawaharlal Nehru Stadium, New Delhi

******

Reference:

1. Arundatti Marlingappa: *"A comparative study of anxiety and Locus of Control among the basket ball and foot ball players of Bijapur."* M.Phil. Dessetation, June-2012.
2. Dr. S.R.Vijender Sharma: *"Sports History"*, New Delhi Sports Publication (2013).
3. http://en.m.wikipedia.org/wiki/Sport_in_India.
4. Prof. S.R. Gangopadhyay: *"Sports Psychology"*,New Delhi Sports Publication (2008).
5. V.K.Rao: *"Physical Education"* A.P.H. Publishing Corporation, New Delhi (2004).

Unifying the Periphery: A Transnational Feminist Study of Selected Fictional Works of the Northeast

Dr. Archana Kumari
Associate Professor
Department of English, Central University of South Bihar

Jayini Bhaumik
PhD Research Scholar
Department of English, Central University of South Bihar

Abstract-Since time immemorial, the male-dominated hegemony has constricted the free movement of women based on their choices. Though it is a stinging and discriminatory abrasion for womenfolk in general, women in different parts of the world experience the vile of patriarchy differently. It is indeed futile to connect the oppressions and forms of exploitations of women of the Euro-western part of the world with that of their South-Asian or African counterpart, especially with the women of countries which have experienced colonization. The Northeastern part of India does have a matrilineal societal structure in a number of tribes, and the oral, as well as written literature from the area, often reflect the bravery and benefaction of the women in the ongoing conflict. However, when it comes to gaining recognition in society for their achievements, the North-east still has a long way to go. This paper delineates and compares the fictional sagas of two women-Khatila and Kaberi, protagonists of Temsula Ao's short story "The Jungle Major" and Jahnavi Barua's novel *Rebirth* respectively, who, even after being self-sufficient in many ways, lead their lives passively, finding efficacy and validity of their existence only under their husband's shadow. Though being poles apart in terms of socio-cultural and economic background, both these women from the Northeast have shared experiences of strain and exertion, which finds articulation through the lenses of Transnational Feminist Studies, connecting cross-border experiences of local women.

Keywords- patriarchy, Northeast women, conflict, Transnational Feminism, female rights

Introduction-"Any society that silences its women has no future," says HafsatAbiola at the end of the documentary *The Supreme Price*. Contrary to this idealistic decree, the patriarchal discourses that are widespread in most societies have a tendency of "silencing" women's voices at different points of time. In the quintessential Indian society, values related to the attributes like sexuality, reproduction, moral duties and social proliferations are expressed through unique cultural ideograms. The Northeastern part of India, however, in many parts, has predominantly been a matriarchal space, with the head of the family being the mother. Compared to the other parts of India, the Northeast has more dignity of labour and the workforce is mostly gender-neutral. However, when it comes to the matter of recognition or validation of the work, as RashmiNarzary says in an interview with Sanjeev Srivatsav, there lies disparity. The Northeast has eight states with thousands of castes and tribes, and their customs mostly align with the Southeast Asian culture- from food habits to customs to music and art. Patricia Mukhim, in this regard, opines that due to such distinctiveness, the Northeast has remained as the "other" in the "mainstream" Indian imagination. Needless to say, living in a male-dominated world, women in this zone may have shared experiences of exploitation or bearing the brunt of their passivity or nonchalance. In this paper, a comparison of two fictional women who hail from Northeast India but two very different setups are made on the basis of their subjugation, non-recognition of brevity and being taken for granted by society.Developing trust and building bonds and sisterhood amongst communities are pivotal because, quintessentially, the entire idea of "feminism" is thought to be revolving around Western discourses and not relatable with women belonging to other parts of the globe. Countries that have experienced colonization may perceive the idea in a way very different from its western counterpart seeing gender issues through the lenses of local communities, understanding that feminism is "situated", and contemplating the fact that women who face complex issues in a global setup are "their own best experts" ZerbeEnns, 2) boost the chances of fruitful activism by transnational feminist works. TemsulaAo's short story collection *These Hills Called Home: Stories from A War Zone* is a vivid amalgamation of ten short stories, brings out a realistic picture of conflict-ridden Nagaland, which had been pregnant with decades of bloody warfare and human casualties owing to prolonged years of conflict with the governing bodies (of India. Out of these, the first short story "The Jungle Major" delineates the saga of a woman Khatila, who saves her husband from a giant mishap but nobody gives her any recognition or pat on the back for that. On the other hand, JanhaviBarua, who hails from Assam shows how women empowerment in the 21st century is an irony through her novel *Rebirth*, where Kaberi, an educated and well-to-do woman falls victim in the hands of her fate, marred by physical abuse and ignoring from her husband, as she leads a desolate life with her husband in Bangalore, away from her hometown in Guwahati. Both the fictions show a portrayal of a society that still has a long way to go when it comes to giving women the same rights and respect. Khatila and Kaberi are poles apart. Though from the Northeastern region, they dwell in very different cultures- one living in a rural Naga neighbourhood, another dwelling in a posh Bangalore apartment, with all the modern amenities being handy. Neither do they have similar aspirations, nor practices. What binds them together is their presence of mind and determination for their priorities. Both have never had any applause nor did their male counterpart adorn their presence. Chandra Mohanty suggested the implementation of a transnational solidarity approach which does not emphasize common experiences or similar identities, but on interrelated problems or issues that can lead to positive activism and bond all across the globe. She talks about dismantling hegemonic "western feminism" by formulating "autonomous feminist concerns" and often adapting a way to study the "other" which will lead to gaining universal or global viewpoints on gender.(Mohanty, 4)

The Strife of Women in Naga Conflict: The tale of Khatila in the *Jungle Major*

TemsulaAo in her collection of ten short stories "These Hills Called Home" delineates the regular life of men and women, who have taken an active part in the ongoing Naga conflict related to identity and nationhood. Nagaland being a site of constant dispute often called the "Stalingrad of East", women there, many a time have to take charge of multiple things for protection and survival and are bound to join the combatants or leave everything behind and run away, never to come back again. Such is the archetypal nature of war- it creeps into private spaces and becomes a commination to their security and identity."The Jungle Major", the first story in the collection delineates the lives of the couple Punaba and Khatila, a couple with extremely different visages, with a stark disparity in appearance. The wife is "tall, fair, slim and possessed of the most charming smile"(Ao 5), making her conventionally praiseworthy. Her husband Punaba, however, seems to be short, dark and buck teeth, and together they form sort of a bizarre match. As time elapses, Punaba leaves his job as a driver and joins the underground forces. He starts to live in the forest hideouts to camouflage his existence amidst the danger of being caught. However, the Army gets a hint of him being present in his village home and starts their search operation to catch him. The biggest assessment falls on his wife Khatila's shoulders as she has to single-handedly take the responsibility of saving her husband.

With her presence of mind, surveillance skills and brevity, Khatila takes charge of the situation in a hassle-free way."She fished out some of her husband's old clothes and ordered him to get into them, then she smeared his face, hands and feet with ash from the hearth, hid his sandals…began shouting at him, 'you are no good loafer, what were you doing all day yesterday?'" (Ao, 8) Khatila sends her husband away from sight by asking him to fetch water in the guise of a servant, thus saving him from the mishap of getting caught. The young and amateur army officer could not have imagined in his dreams that such a naive-looking village woman can actually pull such an ordeal off. With grace and dignity, she neither brags about it, nor does she claim any accolade. However, her husband's escapade becomes the talk of the town and he earns all the recognition. He becomes an outright hero, a man worth keeping and cherishing. The reluctance to give Khatila her due recognition is the

reflection of being a part of the system where women, right from their childhood, are taught to be the submissive nurturers of their husbands and the fact that it is a part of their duty to passively do anything for them. Just as Mitali Bora in Mitra-Phukan's*The Collector's Wife* says, "I was brought up with the belief that a woman's career is secondary to her husband's no matter what". Even when a woman is educated and has her share of degrees, the social codes ask her to be complaint to her husband, being obedient wives. EasterineKire said that she, being a Naga woman, is "doubly marginalized … always lived on the periphery… I have been marginalized simply because I am a Naga, twice-marginalized because I am a woman and thrice marginalized because I am a tribal, a member of an indigenous community".TemsulaAo draws a beautiful picture of a tribal Nagaland, and each tribe is distinct from one another in terms of dress, festivals, and traditional beliefs. She delineates excerpts from all the sixteen tribes and binds them together, reflecting on some of the stories, how patriarchy dominates most of the people even when women play a major role in the resistance.

Empowerment of Modern Women- An Irony: *Rebirth*-In these modern times, women empowerment does not simply mean promoting a sense of self-worth in women, but their feat of actually making conscious choices for themselves and their livelihood. However, given the phenomenon of age-old practices of domination, coupled by patriarchal practices, the Indian society has always been marred by the presence of submissive women blindly following the footsteps of their husbands. JahnaviBarua, in her seminal work, *Rebirth,* portrays the protagonist named Kaberi in a docile and submissive manner. She is a well educated, well groomed and well-to-do woman from an affluent family, having all sorts of resources to lead a happy and hassle free life. She has come to Bangalore with her husband from Guwahati and leads a passive life. hey failed to achieve a free and non judgemental approach towards women and life in general. Kaberi neither protects, nor does she even utter a single word of dissent or discomfort when Ranjit leaves. The marital rift between Kaberi and Ranjit are kept secretly between them; when Ranjit's acquaintances ask Kaberi out for meeting or party, she accepts and maintains calm and poise. She plays her social role as a conventional 'wife' to her corporate tycoon husband and nobody could understand what she is actually going through deep inside her soul. Ron, on the other hand, vents out his anger and frustration as a part of his coping mechanism and indulges in physical as well as verbal abuse to his wife, he is a man "full of vitrol", even when little things go wrong. This toxic and abusive trait in Ron recalls what Kate Millet had commented on 'social conditioning' to the patriarchal notion, which points out at certain behavioural levels and patterns that are thought to be necessary and convenient to keep up the hierarchy and conventionally validated superior status on men intact in the social structure. She also comments that sex roles "assign domestic service and attendance upon infants to the female". She feels 'desirable' and complete only when she plays her role as a wife to Ron, like cooking for him. In *The Second Sex,* Beauvoir says that women get a social pedestal only when she is married. When Kaberi questions her husband about his affair and threatens to leave, Ron mocks at her – "and the baby? Who will give you the custody when you cannot even support it?"However, what enlivened Kaberi amidst everything gloomy is the thought of her child growing in her womb. In "sisterhood is global" approach. But what was missed out in the process was the fact that gender-based discriminatory practices, along with privileges, power differences, sexual orientation were being addressed not in an all-inclusive way, and reminded one of the phases of "scattered hegemonies". In contrast to this, came transnational feminist approach, which aimed at studying experiences across borders, irrespective of cultural practices and "analyze their interdependencies, and build linkages and coalitions around the world, that is based on shared goals…Transnational feminists have placed less emphasis on developing unifying theory and more emphasis on using lenses for recognizing the diversity of gendered experience. Rather than being border restrictive, the linkages, interdependencies, connections, contradictions, and discontinuities of gender experiences in multiple contexts are highlighted." (Kaplan,2) Though coming from two very different socio-cultural backgrounds of Northeast India, what connects Ao'sKhatila and Barua'sKaberi is their shared experience of being left out, incapacitated by their respective husbands and marred by patriarchy in general. Their situation reminds everyone that the only way to gain self-reliance is to believe in oneself, without seeking validation from others.

Conclusion-There have been very few to minuscule women litterateurs in the last quarter of the 20th century who actually delineated the problem that lead to a failure of women going about equal rights. Both in the literary sphere and social sphere, they remained submissive with the question of women's empowerment amidst ongoing tensions and conflict. Though they realise the evils of hegemonic masculinity, customs like "polygamy, prohibition of widow-remarriage and rights related to property inheritance- issues concerning the upper-class women in the main- as a source of their subordination", they overlook the root cause of the problem, which dwells within the walls of "patriarchy functioning within the class/caste structures" Such a 'void' in women's writings in recognizing the genesis of all-pervasive patriarchy has formed a paradoxical situation in the women's empowerment condition. Through the various shades of Transnational feminist studies, one can correlate such issues via cross-border interactions by relating the realities faced by displaced or subdued females. According to Carolyn ZerbeEnns, borderland thinking is pivotal in ways like "considering complex hybrid identities, understanding oppression, framing resistance and empowerment, and conceptualizing activism."

Northeast women writers, like the ones discussed in the paper, weave fiction with the ongoing conflict in the background, paint images of common lives, and it goes without saying that they have fully contributed to the canon of 'conflict zone literature', often from women's point of view. While some experiences seem to be universal experiences of almost every woman on earth, some resonate with their own indigenous experiences of reclaiming their rights while keeping up resisting the thunderbolts of conflict.

****

Works Cited:-

1. https://unis.unvienna.org/unis/en/events/2015/cine-onu_2015-03-09.html
2. https://youtu.be/hxXxIcSrpGc
3. Mukhim,Patricia. Gender, Sexuality & Society in Northeast India: Contextual Studies of Tribal Communities.MLCUPress.01 January 2021
4. Hernandez-Wolfe.P.,Acevedo,V.E. "Towards Grounding Transnational Feminism in Borderland Spaces".*Women and Therapy*,44(1-2).Google Scholar
5. ZerbeEnns,Caroline.ComasDiaz,Lilian.Brynt-Davis,Thema.*Transnational Feminist Theory and Practice:An Introduction.*
6. https://www.tandfonline.com/doi/full/10.1080/02703149.2020.1774997
7. Mohanty,Chandra.*Under Western Eyes:Feminist Scholarship and Colonial Discourse.* Sage Journals.November1,1988
8. https://doi.org/10.1057%2Ffr.1988.42
9. Bhattacharya, Joyati.*Gender, Peacemaking, and the Case of Northeast India*, vol. LXX1, Jan-March, 2010
10. Manchanda,Rita.*The Peacemakers in Northeast India*, Sun, January 1-14, page 24
11. Das, Jogesh.*Folklore in Assam,*National Book Trust, 1972
12. Nazina,MominChangme. "Voices from the Periphery", Shodhganga, 2019
13. Ao, Temsula. "These Hills Called Home: Stories from a War Zone", 2005
14. Phukan,Mitra.*The Collector's Wife,* Penguin, India, 2005
15. Barua, Jahnavi. *Rebirth: A Novel,* Penguin Books, 2011*Ibid*
16. Millet, Kate.*Sexual Politics*, Rupert Hart-Davis, 1970
17. Beauvoir, Simon de. *The Second Sex,* Penguin, 1997
18. Barua, Jahnavi. *Rebirth: A Novel,* Penguin Books, 2011 *Ibid*
19. Showalter, Elaine. "Towards A Feminist Poetics", 1979
20. Morgan,R. *Sisterhood is Global:The International Women's Movement Anthology.* Anchor Books.
21. Grewal,I.,Kaplan,C.*Scattered Hegemonies: Postmodernity and Transnational Feminist Practices.*University of Minnesota Press.(Google Scholar) *Ibid*
22. https://t.co/JLtb3LGnj7
23. https://twitter.com/DrMayaAngelou/status/837093005702000640?s=20&t=cJEQbW8FoKxMNQJ-dawcDw
24. Bhattacharya, Joyati. *Gender, Peacemaking, and the Case of Northeast India.*vol. LXX1, Jan-March, 2010
25. ZerbeEnns,Caroline.ComasDiaz,Lilian.Brynt-Davis,Thema.*Transnational Feminist Theory and Practice:An Introduction.*
26. https://www.tandfonline.com/doi/full/10.1080/02703149.2020.1774997

Observing Bhartṛhari and Wittgenstein on the ground of Language

Smt. Jayeeta Roy
Assistant Professor
Department of Philosophy
Alipurduar Mahila Mahavidyalaya,India

Abstract: Regardless of the spatiotemporal constraints that have been placed on the intellectual history of the world, discussions on language have garnered a significant amount of attention from philosophers, linguists, and even the general public. Some of the themes that have been discussed in these kinds of conversations include the meaning of grammar, its nature or function, and the necessity of grammar. Additionally, a variety of arguments have been presented, both in support of and against the very existence of grammar. Among the philosophers of all ages who endeavoured to examine the basis of those arguments, specifically the widely held belief that grammar is both prescriptive and the result of pedagogical instructions, Bhartṛhari (circa 450 - 510 C.E.) stands out as a significant figure due to the richness and legitimacy of his arguments, which were presented at such an early stage in the history of the field. Ludwig Wittgenstein, a highly prominent philosopher from the previous century, demonstrates the connection with Bhartṛhari in confirming that our everyday construal of grammar cannot be legitimate due to the fact that it is non-prescriptive. This is something that has been going on for more than a millennium. While making an effort to analyse the many ways in which Bhartṛhari and Wittgenstein have interpreted grammar, this paper provides a concise investigation of the methods that each philosopher has taken towards the language that we use.

Keywords: Bhartṛhari, Wittgenstein, world, language, grammar, reality.

Being able to observe Bhartṛhari and Wittgenstein in the context of language offers fascinating insights into two diverse philosophical traditions and their perspectives on language. Ancient Indian philosopher and grammarian Bhartṛhari lived about the fifth century CE. His contributions to the fields of aesthetics, philosophy of language, and grammar have brought him the most fame. A important contribution that he made was the philosophy of language that is commonly referred to as sphoṭa-vāda. This philosophy delves into the concept of sphoṭa, which is the linguistic unit that represents meaning or sound. Bhartṛhari placed a strong emphasis on the holistic character of language, which involves the fact that meaning is not solely obtained from individual words but rather from the entirety of the sentence or the context. He was of the opinion that language is a reflection of the fundamental unity that exists between reality and consciousness. However, Wittgenstein was an Austrian-British philosopher who lived throughout the 20th century. His work had a significant impact on the development of analytical philosophy. In his early work, which was given in the "Tractatus Logico-Philosophicus," Wittgenstein developed a picture theory of language. This theory suggested that language is a reflection of the structure of reality, and that propositions that accurately portray states of events are the ones that are meaningful. Wittgenstein, on the other hand, moved his focus in his later work, particularly in the "Philosophical Investigations," to language games and the use of language in a variety of distinct social behaviours. He argued against the concept of a fixed correlation between language and reality, putting more of an emphasis on the contextual and pragmatic aspects of language use instead.

There are points on Language and Reality where Wittgenstein and Bhartṛhari's thinking converge, despite the fact that they have different metaphysical presumptions, methodologies, and philosophical goals at the same time. One of the most important questions that has to be answered is whether or not words (sentences) must necessarily represent anything external in order for them to hold any significance. To phrase it another way, is there a direct correlation between the term and the object that it refers to as its meaning? The question that needs to be answered is not whether or not every word has a meaning that is a signification of an object; rather, the question that needs to be answered is whether or not this signification can be considered the sole criterion for determining the meaningfulness of a word. When it is acknowledged that there is a domain about which nothing can be said, the mystery surrounding the issue becomes even more complicated. Despite the fact that Bhartṛhari and Wittgenstein have expressed very similar thoughts on the

matter that will be discussed in this talk, it is important to note that I am not looking for Wittgenstein in Bhartṛhari nor am I looking for Bhartṛhari in Wittgenstein. Rather, I am attempting to present a perspective that presents them in similar garb while not ignoring the differences between them. The reception of picture theory, language-game, and the inexpressible in Bhartṛhari is the topic that we are interested with, which is the more general overview of the subject that we are concerned with.

Bhartṛhari is a proponent of the Tractarian thesis, which asserts that language and reality (the world) consist of the same logical structure. He also claims that language is the sole means by which one can comprehend and communicate reality. There is no potential of knowing unless it is accompanied with language. To put it another way, There is no object that does not exist that is expressed in words. This is because there is a fusion between language and reality, which means that the world of objects and the world of words cannot be cognized independently from each other .

The dilemma that arises, however, is concerning the manner in which the merging of language and reality takes place. The maintenance of reality as an indivisible whole, which reflects language as an infinite unity, is one approach that might be taken. The other approach is to continue analysing language and the environment until the simplest possible form is reached, which is therefore unassailable once completed. In contrast to the latter approach, which is utilised in earlier Wittgenstein, Bhartṛhari appears to believe that the former approach is more appropriate. When it comes to the process of meaning accumulation, Wittgenstein's Picture Theory places a focus on the actual or hypothetical correlation that exists between elementary propositions and elementary facts. Bhartṛhari, in contrast to Wittgenstein, maintains that neither propositions nor proper names can be analysed into atomic propositions, nor does the world consist of facts that can be further analysed into atomic facts and objects. At the same time, it appears that Bhartṛhari is in favour of the concept of "propositions as pictures" because, according to him, In life, the word performs by becoming detected with the thing denoted by it. He maintains that the word is the symbol for both external and internal things. For Bhartṛhari, a proper name such as Devadatta is capable of conveying its full meaning as an expression. This is due to the fact that the relationship between the term and its meaning is permanent in this context.

The fact that the word does not symbolise all of the traits that are given to the object is being acknowledged by Bhartṛhari as a restriction of his identification between the term and its meaning. However, according to Bhartṛhari, the word "pot" does not refer to the shape of objects like pots or any other characteristics associated with them. This is because the word "pot" refers to the object itself, without any of its characteristics. In the course of the incident, the qualities are communicated. To put it another way, despite the fact that a word serves the purpose of indicating an object that is connected to things like shape, colour, and parts, it does not indicate these things as components of its meaning. While the words are able to indicate objects, they are unable to represent the basic nature of the objects themselves. On the one hand, language is able to blend in with reality, but on the other hand, it is unable to convey a comprehensive picture of the situation. Language, in Bhartṛhari, is analogous to a lamp in that it just draws attention to an item and, in contrast to visuals, has its own limitations in terms of its one-to-one relationship with reality. Bhartṛhari pushes forward from what could be considered restricted

picture theory and adapts, to a certain extent, the concepts of "use" and "context" as variables that determine meaning. However, according to Bhartṛhari, a word does not simultaneously signify all of the things that can be named by it. For instance, the phrase "bring five apples" could be interpreted as a compound sentence consisting of five separate words, with each sentence including one apple as the object of the sentence. This demonstrates that there may be a variation in the forms of a statement while it is being spoken and when it is being understood by the listener. Specifically, this means that the form of a statement that appears to be vocal is not the final form of a sentence. In this context, it is necessary to search for an alternative explanation of meaning that is distinct from image theory. There is also the alternative interpretation, which is the philosophy of meaning through language games.When the opinions of Bhartṛhari and Wittgenstein on language are compared, there are several similarities and differences that will become apparent:

1.Emphasising the significance of context in comprehending language, both Bhartṛhari and Wittgenstein shed light on this aspect. The concept of sphoṭa, as proposed by Bhartṛhari, highlights the idea that meaning is derived from the overall context of a sentence or discourse. Just as Wittgenstein emphasises, the way words are used in different social contexts shapes their meaning.

2.There is a certain connection between language and reality that both Bhartrihari's sphoṭa-vāda and Wittgenstein's early picture theory suggest, albeit with different approaches. In Bhartṛhari's perspective, language serves as a reflection of the profound interconnectedness between consciousness and reality. On the other hand, Wittgenstein initially views language as a means to accurately depict the structure of reality.

3.The dynamic nature of language is recognised by both philosophers, as they acknowledge its constant evolution. The concept of sphoṭa, as proposed by Bhartṛhari, highlights the dynamic nature of meaning. In contrast, Wittgenstein's later work emphasises the multitude of language games and the ever-evolving use of language in various contexts.

4.In spite of these resemblances, there exist fundamental disparities between the philosophies of Bhartṛhari and Wittgenstein. Bhartṛhari 's ideas are firmly grounded in the rich traditions of Indian philosophy, including Vedantā and Sāṁkhya, while Wittgenstein's philosophy arises from the analytical tradition in Western philosophy. In contrast, Bhartṛhari's focus on the unity of consciousness and reality stands in opposition to Wittgenstein's pragmatic and contextual approach. Ultimately, Bhartṛhari and Wittgenstein bring unique perspectives to the philosophy of language, shedding light on its intricate and ever-changing nature. Their contributions highlight the importance of considering the context and complexities of language. Their insights greatly enhance our comprehension of language and have a lasting impact on philosophical discussions even in modern times.

****

Reference:-

1. 1.Matilal B.K: Logic, Language and Reality, Motilal Banarsidass Publication, New
2. Delhi, 1985.
3. Bhate Saroja and Kar Yashodhara: Word index to the Vākyapadiya of Bhartrhari,
4. Pratibha Prakashan, Delhi, 1992.
5. Chatterjee Satishchandra: The Nyāya Theory of Knowledge, University of Calcutta,
6. Calcutta, 1965.
7. Bhattacharya Bishnupada: A study in Language and Meaning, Calcutta progressive
8. Publishers, Calcutta, 1962.
9. Bloomfield Leonard: Language, Motilal Banarasidass, New York, 1933.
10. Das Karunasindhu: A Pāninian Approach to Philosophy of Language, Sanskrit
11. Pustak Bhandar 38, Calcutta, 1990.
12. Coward Harold G: Sphota Theory of Language, Motilal Banarsidass Publication,
13. Delhi, 1980.
14. Jha V.N: Studies in Language, Logic, and Epistemology, Pratibha Prakashan, 1986.
15. Alston P.William: Philosophy of Language, Eastern Economy Edition, Prentice-Hall,
16. Inc.Engle Wood Cliffs, 1964.

The Indian Constitution: A Beacon of Democratic Governance and Egalitarian Values

-Dr. Mamta Rani
Assistant Professor,
Department of Political Science
B.A.R. Janta College, Kaul (Kaithal) Haryana

Abstract

The Indian Constitution stands as a testament to the nation's unwavering commitment to democratic governance and the principles of equality and justice. Envisioned by its framers as a dynamic and inclusive document, it embodies the aspirations of a diverse and pluralistic society. Anchored in the fundamental values of liberty, equality, and fraternity, the Constitution provides a robust framework for safeguarding individual rights while promoting collective welfare. This paper explores how the Indian Constitution serves as a beacon of democratic ideals, fostering participatory governance through institutions that ensure checks and balances. It highlights the egalitarian ethos enshrined in its provisions, particularly those aimed at eliminating discrimination and advancing social justice. Key features such as the Directive Principles of State Policy and Fundamental Rights are analysed to demonstrate their role in bridging societal disparities and empowering marginalized communities. The study also examines landmark judicial interpretations that have reinforced the Constitution's egalitarian spirit, from expanding the ambit of fundamental rights to upholding affirmative action policies. Furthermore, it delves into the dynamic interplay between democracy and egalitarianism, showcasing how the Constitution continually evolves to meet the challenges of a changing socio-political landscape. Thus, the Indian Constitution not only anchors the nation's democratic foundations but also serves as a guiding light for creating a just and equitable society. Its enduring relevance underscores its role as a living document, committed to upholding the ideals of justice, liberty, and equality for all.

Keywords: Indian Constitution, Democratic Governance, Egalitarian Values, Social Justice, Fundamental Rights, Directive Principles of State Policy, Judicial Interpretation, Equality.

In the history of democratic administration, the Indian Constitution, which was ratified on 26 November 1949, and went into force on 26 January 1950, is a significant accomplishment. In addition to being the world's longest written constitution, it is an extensive text that captures the goals, principles, and culture of a recently established country. As stated in its Preamble, the Indian Constitution, which was drafted amid a period of social and political change, upholds the values of justice, liberty, equality, and brotherhood. It functions as a framework for governance and a set of rules that specify the interactions between the government's various institutions and the people. Arun K. Thiruvengadam writes in his book *The Constitution of India: A Contextual Analysis,* "The constitution of India played in two important moments in modern India's history. These are, respectively, 1947 and 1991" (5).

The Indian Constitution is significant because it captures and honours the richness and diversity of Indian society. India is a country with many different languages, faiths, cultures, and traditions. The Constitution recognizes this diversity while working to make the country cohesive and peaceful. It creates a federal system with a powerful central government and lays out how the federal government and the states would share authority in order to maintain regional autonomy and unity. The Constitution also establishes Directive Principles of State Policy, which direct the government in advancing social and economic fairness, and Fundamental Rights, which ensure fundamental freedoms for all citizens. These clauses highlight the document's dedication to both individual freedom and the good of the whole.

The creation of the Indian Constitution was a remarkable endeavour in inclusiveness and vision as it provides equality and liberty to everyone. In the words of Swami Vivekananda, "Liberty is the first condition of growth" (149). Members of the Constituent Assembly, which was charged with drafting the

Constitution, came from a variety of geographical locations, ideological viewpoints, and backgrounds. The Assembly drew from a wealth of international constitutional norms under the direction of Dr. B.R. Ambedkar, who is frequently seen as the primary architect of the Constitution. The American Bill of Rights, the Irish Directive Principles, the Canadian federal framework, and the British parliamentary system were all modified to fit India's particular sociopolitical situation. This combination of concepts produced a document that is strong and adaptable, able to change with the times without compromising its essential ideas.

The Indian Constitution's dedication to democracy and the rule of law is among its most notable aspects. By guaranteeing the division of powers between the legislative, executive, and judicial departments of government, it establishes India as a sovereign, socialist, secular, and democratic republic. Republic "means a country which is ruled by an elected or nominated President instead of a monarch in which people are supreme" (Hari Babu 7). As the protector of the Constitution, the judiciary in particular is vital. It guarantees that the legislative and executive branches' acts comply with constitutional demands by using the power of judicial review. Important rulings like Kesavananda Bharati v. State of Kerala (1973) have strengthened the basic structure theory, which guards against revisions that change the core elements of the Constitution.

The Indian Constitution has faced difficulties in spite of its many advantages. There has been continuous discussion about the distribution of power between the federal government and the states, especially in relation to regional autonomy and fiscal federalism. It has been argued that the frequent use of Article 356—which permits the President to rule in states—undermines the spirit of federalism. Similarly, despite the Constitution's protection of fundamental rights, socioeconomic disparities and ineffective administration have frequently made it difficult to put such rights into practice. Constitutional goals have not yet been fully realized in areas like social justice, gender equality, and the access to education.

The Indian Constitution's flexibility in responding to modern issues demonstrates its dynamic character. It has undergone a number of changes over time to meet changing needs, including historic changes like the implementation of the Right to Information Act and the Goods and Services Tax (GST). These changes demonstrate how the Constitution may adapt to new situations without sacrificing its core principles. But this adaptability has also raised worries about excessive amendment and the possible weakening of the constitution. For example, the contentious application of constitutional amendments during the 1975–1977 Emergency era brought up significant issues on how to strike a balance between flexibility and rigidity.

The Indian Constitution remains a stronghold against authoritarian inclinations and a beacon of democratic values in the current period. It offers a framework for dealing with modern problems including electoral reform, environmental preservation, and digital privacy. Its importance in assisting the country in navigating complicated and frequently divisive topics is highlighted by the discussions around the Uniform Civil Code, reservation laws, and judicial independence. Additionally, protecting the rights of marginalized people and guaranteeing representation for historically underrepresented groups have been made possible in large part by the Constitution.

The Constitution is a dynamic body that has not only endured over time but has also changed to reflect the goals of its citizens. "A Constitution embodies the legal framework of a nation-state of an independent country" (Baruah 2). It is a distinctive and long-lasting framework for governance because of its capacity to strike a balance between continuity and change, unity and variety, and liberty and equality. The Constitution continues to be a pillar of India's democratic culture, a monument to the foresight and tenacity of its founders, and a representation of the country's pluralistic identity as it develops as a worldwide democracy. It serves as a source of pride as well as a reminder of the obligations that accompany the rights it protects. The Indian Constitution continues to inspire faith in the rule of law and the promise of justice for all because of its all-encompassing and inclusive approach.

The Constitution is a dynamic constitution that has not only endured over time but has also changed to reflect the goals of its citizens. It is a distinctive and long-lasting framework for governance because of its capacity to strike a balance between continuity and change, unity and variety, and liberty and equality. The Constitution continues to be a pillar of India's democratic culture, a monument to the foresight and tenacity of its founders, and a repre-

sentation of the country's pluralistic identity as it develops as a worldwide democracy. It serves as a source of pride as well as a reminder of the obligations that accompany the rights it protects. The Indian Constitution continues to inspire faith in the rule of law and the promise of justice for all because of its all-encompassing and inclusive approach.

The framers of the Constitution took inspiration from a number of international models and modified them to fit the particular circumstances of India. The parliamentary system of United Kingdom, which ensures responsible governance by holding the executive branch accountable to the legislature, was adopted. The United States' Bill of Rights served as the model for the incorporation of the Fundamental Rights, which were designed to protect individual freedoms and advance equality. Furthermore, a framework for directing social and economic reforms was offered by the Directive Principles of State Policy, which were influenced by the Irish Constitution. The Indian Constitution balanced tradition and modernity by combining these imported features with unique provisions, resulting in a blend of indigenous concerns and global values.

There were difficulties in drafting the Constitution. Finding a balance between a federal framework and a unitary government was one of the main issues. Although decentralization was necessary to allow for regional autonomy due to India's enormous size and variety, a strong central authority was thought to be necessary to preserve the integrity and unity of the country. A quasi-federal arrangement was adopted as a result of this duality, in which the states and the Center shared jurisdiction but the Center maintained ultimate control over issues of national significance. There were also major challenges in dealing with linguistic, religious, and cultural diversity. It took much thought and compromise to make sure that the Constitution upheld this pluralism while promoting a feeling of national identity.

The significant socioeconomic disparities that defined Indian society were another issue the Assembly debated. The framers were dedicated to tackling problems including poverty, gender inequality, and caste discrimination. While special provisions for marginalized communities sought to address historical injustices, fundamental rights were established to ensure equality before the law. The Directive Principles were intended to serve as a guide for the state as it established a welfare system and as a means of attaining social and economic justice. Notwithstanding these initiatives, the framers understood that cultural change and persistent political will would be necessary to achieve the Constitution's goals. Their combined commitment and vision made it possible for the Indian Constitution to function as both a living constitution that could change to reflect the goals of its citizens and a legal framework.

With its painstakingly designed elements, the Indian Constitution—often praised as a living document—encapsulates the goals and ideals of its citizens. The Preamble is one of the most significant of these and is frequently referred to as the Constitution's soul. It provides a moral compass for administration by concisely outlining the tenets of justice, liberty, equality, and fraternity. In keeping with the spirit of a pluralistic society, the Preamble further states India to be a sovereign, socialist, secular, and democratic republic. These principles form the basis of the Constitution's provisions and are not just symbolic. Efforts to close the gap between constitutional promises and societal reality are nevertheless motivated by the Preamble's inspirational language.

Articles 12 to 35 of the Constitution, which guarantee fundamental rights, are among its most important provisions. The American Bill of Rights served as the model for these rights, which ensure fundamental liberties like equality, freedom of speech, protection from exploitation, and access to constitutional remedies. They guarantee that everyone has access to fundamental civil liberties regardless of caste, creed, gender, or religion and serve as checks on state excess. The 42nd Amendment's introduction of the Fundamental Duties, which list citizens' obligations under Article 51A, is equally important. Collectively, these clauses establish a fine line between rights and obligations, encouraging a climate of accountability and respect for one another.

Part IV of the Constitution outlines the Directive Principles of State Policy (DPSP), which are non-justiciable rules that the state must follow in order to attain social and economic justice. These ideas, which take their cues from Ireland, seek to reconcile the demands of individual liberties with the interests of the group. They cover a wide range of goals, such as protecting the environment, promoting education, and distributing income fairly. The DPSP serves as a standard for progressive legislation and policies even if it is not legally binding. These ideas have influenced a number of historic reforms, including the im-

plementation of the Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act and the Minimum Wages Act. The DPSP emphasizes the Constitution's commitment to tackling socioeconomic disparities and uplifting the underprivileged by outlining a welfare state vision.

The federal structure of the Indian Constitution, which aims to maintain a balance of power between the states and the center, is another essential component. India's quasi-federal system is distinguished by a powerful central government that grants the states adequate autonomy over issues of regional significance. The Union, State, and Concurrent Lists all clearly outline the division of authorities, facilitating coordination and collaboration between the two tiers of government. But this equilibrium has frequently been put to the test, especially when Article 356—which permits the President to take over a state in the event of a constitutional crisis—is invoked. Although it was meant to be an emergency clause, its repeated political abuse has come under fire for eroding the essence of federalism. Despite these challenges, the federal structure remains a cornerstone of India's unity amidst diversity, ensuring the coexistence of regional identities within a cohesive national framework.

The Indian Constitution includes provisions to adjust to the changing requirements of society in addition to its federal characteristics. It is both inflexible and adaptable, allowing for simpler procedures for less important modifications while necessitating a unique method for changing essential elements. Because of its flexibility, the Constitution has been able to address new issues including digital rights, environmental preservation, and socioeconomic improvements. The Constitution's ability to adapt to changing circumstances is demonstrated by landmark changes like the 73rd and 74th changes, which established Panchayati Raj and urban local governance. But the fine line between maintaining constitutional stability and allowing for required adjustments has generated discussions, particularly when amendments seem to put political goals ahead of constitutional integrity.

With its complex structure and forward-thinking ideas, the Indian Constitution still serves as a roadmap for the country's democratic goals. The Preamble, Fundamental Rights and Duties, Directive Principles, and federal framework are its main components, and taken together, they guarantee the preservation of individual liberties while advancing the common good. In addition to providing the framework for democratic functioning, the Constitution encourages resiliency and advancement by tackling the challenges of governing in a populous and diverse country. The Constitution, which bridges the past and the future in pursuit of a just and equitable society, continues to stand as a living witness to the ideas of its framers as India navigates its modern difficulties and aspirations.

The Indian Constitution is a unique and comprehensive text, but it also has significant parallels and divergences with other constitutions around the world. For example, it reflects its commitment to civil freedoms by guaranteeing fundamental rights like equality, freedom of expression, and protection from exploitation, just like the U.S. Constitution. However, the Indian Constitution is complex and adaptable, with many revisions to accommodate various sociopolitical settings, whereas the U.S. Constitution is succinct and inflexible. India departed from the British system by incorporating judicial review similar to that of the United States, preserving constitutional supremacy, but adopting the parliamentary structure, which ensures responsible governance.

India's Directive Principles of State Policy show a mix between idealism and pragmatism, serving a similar idealistic aim but remaining non-justiciable in contrast to South Africa's Constitution, which is renowned for its progressive position on social justice. The Indian Constitution stands out for its dedication to grassroots democracy through the Panchayati Raj system, which is established in the 73rd and 74th Amendments. This system ensures participatory decision-making at the lowest level by empowering local bodies in both rural and urban areas, in contrast to the centralized government of nations like as the UK. Another distinctive feature of the Indian Constitution is its acknowledgement of affirmative action for historically underrepresented groups, which addresses long-standing disparities through clauses like employment and educational reservations.

Furthermore, India's inclusion of fundamental obligations highlights the reciprocal link between citizens and the state, encouraging collective accountability, whereas many constitutions place a greater emphasis on civil and political rights. This comparative method shows how the Indian Constitution is a dynamic tool for social change and governance because, although being influenced by international frame-

works, it is uniquely designed to meet the needs, goals, and variety of its citizens.

Despite being praised for being all-inclusive and flexible, the Indian Constitution has encountered many difficulties and objections over the years. The balance between flexibility and rigidity in its amending process under Article 368 is one of the main points of debate. Frequent revisions have occasionally sparked worries about political considerations taking precedence over constitutional integrity, even while the power to alter has allowed the Constitution to adapt to shifting societal requirements. A clear illustration of how amendments can put the tenacity of democratic ideals to the test is the 42nd Amendment, which is sometimes criticized for being unduly centralizing and indicative of an authoritarian era. On the other hand, the process's inflexibility in key areas guarantees stability but may obstruct required improvements, resulting in a precarious conflict between preservation and adaptation.

Center-State relations present another significant obstacle, especially in the areas of political dynamics and fiscal federalism. Federal concord has periodically been strained by the states' financial reliance on the Center and the latitude with which laws like Article 356 are used. States frequently struggle with a lack of fiscal autonomy, which exacerbates differences in governance and resource allocation. Furthermore, there are still implementation gaps, which cause the social justice and gender equality principles outlined in the constitution to frequently fall short in real life. Systemic injustices and socioeconomic obstacles impede the realization of the Constitution's progressive reforms and fundamental rights guarantees, which are outlined in the Directive Principles. For example, problems like gender-based violence and caste discrimination persist in undermining the foundations of equality and justice in spite of constitutional mandates.

These disparities highlight the necessity of strong administration, social dedication, and ongoing work to match the goals of the constitution with actual conditions on the ground. Even though the Indian Constitution is a great accomplishment, it is still a work in progress that needs to be constantly monitored in order to overcome these obstacles and preserve its principles. The Indian Constitution's adaptability and capacity to handle contemporary issues continue to show its relevance in the modern day. Economic policies have been simplified by amendments like the Goods and Services Tax (GST), which has increased fiscal coordination between the federal government and the states. Similar to this, the nation's commitment to universal education and equitable opportunities is emphasized by the Right to Education Act, which is based on constitutional obligations.

These modifications demonstrate the Constitution's adaptability to a swiftly shifting socioeconomic environment. The constant need to strike a balance between tradition, diversity, and progressive values is highlighted by discussions around reforms like as the Uniform Civil Code, reservation laws, and electoral reforms. Even while these debates frequently lead to controversy, they highlight how the Constitution is a flexible framework that can adapt to changing societal goals. The Constitution's ability to maintain democracy even in the face of adversity confirms its lasting importance. Constitutional provisions were put to the test during the Emergency of 1975–1977, when democratic procedures were restricted and fundamental rights were suspended. But the subsequent return of democracy showed how effective the Constitution is as a guiding principle for accountability and governance.

Armed with constitutional duties, the judiciary has been instrumental in defending democratic values over the years, as seen by significant decisions that preserve institutional integrity and protect freedoms. The Indian Constitution continues to serve as a unifying factor in a world where political and social polarization is growing, pointing the country in the direction of justice, inclusivity, and democratic stability. Its capacity to tackle modern problems while remaining grounded in fundamental ideas guarantees its ongoing significance as the cornerstone of Indian democracy. The Indian Constitution, which forms the foundation of its democratic and legal system, has had a significant impact on the nation's governance and social structure. The development of a federal system that strikes a balance between central authority, the advancement of social justice, and the formation of fundamental rights are all clear examples of its influence.

It has guided India through challenging sociopolitical environments, promoting inclusion, diversity, and democratic resilience while defending individual liberties and attending to the welfare of the group. The Constitution's flexibility to be modified to address contemporary issues, such as social and economic reforms, shows how relevant it is even in a

changing country. Notwithstanding its great achievements, the Constitution's application may be improved in a few areas. The need for ongoing reform to solve current issues is highlighted by the escalating discussions surrounding the Uniform Civil Code, election reforms, and the efficacy of reservation policies. Anand Kumar writes about our constitutional provisions, "These provisions aim at abolishing the eternal conflict between the capital and labour and leveling up of the semi-starved, naked millions of India" (357).

A stronger focus on guaranteeing socioeconomic justice, particularly for underprivileged groups, will aid in bridging the gap between the aspirations of the constitution and actual conditions on the ground. For India's democracy to remain strong, it is imperative that federal dynamics be strengthened, governance be made more transparent, and judicial independence be strengthened. The flexibility of Indian Constitution will be crucial in handling complicated domestic and international concerns as India faces new difficulties, guaranteeing the realization of its goal of a just, inclusive, and democratic society. Sujit Choudhry et al. write about the importance of law of the Indian Constitution, "Indian constitutional law is of immense historical, practical and theoretical significance" (1).

References

Baruah, Aparajita. *Preamble of the Constitution of India: An Insight and Comparison with Other Constitutions*. Deep and Deep, 2007.

Burra, Arudra. "Civil Liberties in the Early Constitution." *Human Rights in India*, edited by Sanjay Kumar and others, Routledge, 2019, pp. 3–36.

Deshta, Sunil. "Constitutional Philosophy of Prisoner's Rights: Theory and Practice." *CMLJ*, vol. 35, no. 1, Jan.–Mar. 1999, pp. 21–28.

Elliot, Jonathan, editor. *The Debates in the Several Conventions on the Adoption of the Federal Constitution*. Burt Franklin, 1974.

Felknen, George T. *Constitutional Law and Criminal Justice*. Prentice Hall, 1978.

Fernando, Joseph M., and Ho Hui Ling. "British and Commonwealth Legacies in the Framing of the Malayan Constitution, 1956–1957." *Britain and the World*, vol. 8, no. 2, Sept. 2015, pp. 181–203, http://dx.doi.org/10.3366/brw.2015.0190.

Hydervali, B. "The Constitution of India and the Accused." *Indian Bar Review*, vol. 16, no. 3–4, 1989, pp. 363–383.

Jain, Subhash C., editor. *The Constitution of India: Select Issues & Perceptions*. Taxmann Publications, 2000.

Khosla, Madhav, Pratap Bhanu Mehta, and Sujit Choudhry, editors. *The Oxford Handbook of the Indian Constitution*. OUP Oxford, 2016.

Kumar, Anand. "Concept of Socio-Economic Justice in Directive Principles under the Indian Constitution: An Analytical Study." *Drishta Research Journal*, vol. 2, no. 5, Feb. 2013, pp. 353–58.

Lakshmanan, A., et al., editors. *Shorter Constitution of India*. LexisNexis Butterworths Wadhwa Nagpur, 2010.

Minn, St. Paul. *American Constitutional Law: Case and Text*. By Albert B. Saye, West Publishing Co., 1979.

Ohiayan, S. K. "Meaning and Scope of the Procedure Establishment by Law, under Article 21 of Constitution." *KULJ*, vol. 4, 1978, p. 153.

Parry, Adil Bashir. "Managing Diversity in the Multicultural Framework of India." *East Asian Journal of Multidisciplinary Research*, vol. 1, no. 3, 28 Apr. 2022, pp. 269–78, http://dx.doi.org/10.55927/eajmr.v1i3.107.

Thiruvengadam, Arun K. *The Constitution of India: A Contextual Analysis*. Bloomsbury Publishing, 2017.

Vivekananda, Swami. *Letters of Swami Vivekananda*. Advaita Ashrama, 1976.

*****

The Missing Muslim Sleuth: An Analysis of Contemporary Mysteries

-Abdulatheef Kampuravan
Research Scholar, Department of English
Jamal Mohamed College (Autonomous)
Affiliated to Bharathidasan University, Tiruchirappalli,
Tamil Nadu

Abstract

Detective stories are very popular, and many are adapted to movies that encourage even the illiterate public to be fans of great detectives like Sherlock Holmes and James Bond. Despite this popularity, detective stories do not appear to have attracted most academic researchers. Research on such works is scarce, and even available studies concentrate on their social impact, comparison between different types of mysteries, character analysis, etc. We can find that the popularity of detective stories and the lack of sufficient research attention do not go hand in hand. Further, mysteries rarely present Muslim detectives, although there are innumerable detectives from the Muslim world. This paper aims to critically approach the scarcity of Muslim detectives and the inability of those available Muslim detectives, and the possible role of Islamophobia in that scarcity.

Keywords*:* Muslim Detective, Islamophobia, Under-Representation, Misrepresentation, Crime Fiction, Muslim Sleuth, Muslim Detective.

Introduction

Crime fiction has been a very prominent subgenre of fiction for more than a century, and the subgenre produced hundreds of authors who gave birth to popular fictitious characters like Sherlock Holmes and James Bond. Authors like Arthur Conan Doyle are lucky to be popular by being the creators of such exemplary geniuses and forerunners of scientific methods of crime investigation. Detective fiction is often associated with mystery, suspense, and intrigue and has been a mainstay in popular culture for many years. So the subgenre has been known by various names like 'detective story', 'mystery novel', and 'police novel'. There are slight differences among them, but whatever the nomenclature is used, critical elements like crime, investigation, deductive method, suspense and unexpected culprit are common in all types of crime fiction. According to W.H. Auden, crime fiction is favourite to millions of readers because there are elements like *Peripeteia* and *Catharsis* that are, according to Aristotle, prerequisites for a successful tragedy. There is also concealment, where the apparent innocent later turns out to be guilty, and the apparent guilty later turns innocent (Auden).

Modern crime fiction has a comparatively short history, less than one and a half-century. Though there were stories with some elements of crime and investigation even in Arabian Nights, complete stories entirely based on crime investigation began to appear in modern times as late as the second decade of the 19th century. German writer Hoffman, English writer Thomas Skinner, Danish author Steen Blicher, English woman writer Letitia Elizabeth Landon and American author Edgar Allen Poe were some of the precursors of modern crime fiction. These writers were active in the first half of the nineteenth century. Later, it was with the arrival of Sir Arthur Conan Doyle and his legendary Sherlock Holmes readers got attracted to this subgenre. The second half of the nineteenth century witnessed a wide acceptability of this genre, and hundreds of short and long stories emerged from different authors. Doyle alone produced fifty-four short stories and four novels. Other writers flowed to this genre as readership was wide, and publishers were happy to publish to cater to the need of the market. Over fifty thousand novels and stories appeared in the twentieth century. Other than Doyle, writers like Erskine Childers, Edgar Wallace, Jacques Futrelle, G.K. Chesterton, John Buchan, Agatha Christie, Somerset Maugham, Margery Allingham, W.R. Burnett, Ian Fleming, Nicholas Freeling, Colin Dexter, other hundreds of authors produced volumes of stories and novels many of which were sold in millions. Modernisation of the police force, spying among nations, widespread crimes in all parts of the globe, organised crimes, criminal networks and underworld kings, and above all, ingenious techniques applied by both criminals and investigators alike, all have contributed to the unexpected growth of this subgenre.

Scope of Research

While detective fiction has been around for a long time, the representation of Muslim characters in this genre has been relatively limited and largely underrepresented. Usually, the representation of any people or class in literature will be according to their presence in social life. So we have all types of crimes and criminal investigators from different nations and communities in these stories. Yet it is strange that, as a community, the representation of Muslims among crime investigators is nearly nil. Considering the demographic features of Muslims, the missing Muslim sleuth will be a matter of academic interest. Muslims constitute more than 25% of the global population, and at least fifty countries are Muslim-majority countries, many of which play major roles in the international economy. Muslim criminals and terrorists have an overwhelming presence in hundreds of Holly Wood movies and novels, especially post 9/11 literature; both books and movies were competing to portray Muslim criminals and the wild hunt for those Muslim terrorists. Though Muslim and Non-Muslim countries have Muslim investigating officers, movies or stories rarely present a Muslim as an investigating officer! This paper attempts to point out a new area of focus concerning detective fiction and to find out possible answers to the questions- why there is only a negligible number of Muslim sleuths and why they are not given elevated status as other famous fictitious characters.

Literature Review

Though detective fiction received critical attention from great masters like T.S. Eliot (his reviews in *The Criterion* 1927) and Edmund Wilson (Why do People Read Detective Stories?), the subgenre was not prone to meticulous critical scrutinies like other major genres like poetry and fiction. That is why there are not many authentic studies on detective fiction, and even the available studies focus on themes, styles and critical evaluation of reception. Even in his "A Philosophical View of the Detective Novel", Ernst Bloch attempts a philosophical interpretation of our thirst for the unknown and the acceptance of detective fiction in

both elite and ordinary readers alike. He analyses the truth in detective fiction and the distorted truth in the post-truth era.

Crime fiction is always a game between the detective and the criminal. In other words, it glorifies those who uphold the law (the detective and his force) and denounces those who transgress from the accepted societal norms (the criminal and his team). So it becomes problematic when characters from a particular community appear only as lawbreakers and seldom as law upholders. The situation aggravates when that particular community has already got enough mistreatment from literature as the embodiment of negative qualities. This study finds that there is no critical treatise of detective heroes looking at them through the lenses of race studies. This paper attempts to add a little to that vacuum.

It is in this background this study attempted a search for Muslim detectives. Such a search may end with a few names like Ash Rashid, created by Chris Culver, Riedwaan Faizal by Margie Orford, Rania by Kate Jessica Raphael, Kemal Kayankaya by Jacob Arjouni, Esa Khattack by Ausma Zehanat Khan and Sujata Massey's Perveen Mistry, a Parsi lady but taken for a Muslim by many. Most of these names are recent additions to the list of detectives, and they are appreciable as they speak volumes in terms of representation. This analysis will help us to understand the depth of their representation in the rank of detectives, the treatment they received at the hands of their creators and endeavour to find out if they were prone to Islamophobia in literature.

Hypothesis

This paper attempts to argue that Islamophobia, which is ubiquitous in various genres of literature, is equally prevalent in detective fiction too. This Islamophobia is manifested in a two-dimensional way: representation of Muslim characters as an embodiment of negative qualities on the one hand, and lack of the competent and superhuman type of sleuths, on the other.

Islamophobia in Literature

Islamophobia has been prevalent in literature since the eighth century, as seen in the polemics of John of Damascus and *Teachings of Jacob*, a seventh-century Latin dialogue between converted Jews and Christians. Widespread Islamophobia circulated among non-Muslim peoples through polemic writings, concocted biographies, war stories, Crusade stories, spy stories, heroic poems, plays and other narratives throughout the Middle age to the late modern period, imprinted a falsely authentic portrait of the Muslim who usually was called Saracen, Turk, Moor and Muhammedans. That portrayal attributed most of the evil features to Muslims in general, and they were believed to be vile, villainous, cruel, womaniser, bloodthirsty and sexual perverts. The European encounter with Muslim forces on the way of colonisation of Asian-African countries exacerbated this animosity, and lack of talent and skill also added to the negative qualities of the Muslim villain. So it was natural that no Muslim hero was created in Western literature. Writers like Dryden portrayed great rulers like Aurangzeb and Shah Jahan in very poor colour, depicting them lazy fools who spent much of their time in harems.

It is not surprising that, despite the presence of innumerable Muslim characters in all genres of literature, both fiction and nonfiction, the positive heroic presence of Muslims is negligible. It could be figured out that the incessant portrayal of Muslims as an embodiment of all evil qualities naturally made them unfit for any heroic positions, let alone to be a detective, who should be an incarnation of justice and morals. When crime fiction began to appear as a subgenre of narratives, Muslim characters got their presence as rogues and nasty individuals, and the investigators naturally were non-Muslims and Westerners. Even detective stories from the non-western world followed almost the same formula. A Muslim character is found more fitting to be a villain, criminal and a man of vices.

Since Edgar Allan Poe created his iconic sleuth C. Auguste Dupin in 1841, English fiction has come across hundreds of detectives. Since then, along array of detectives of different nationalities, religions, ages and gender have emerged in the limelight. Sherlock Holmes, whom Arthur Conan Doyle created in 1887, was the most prominent of all to this day. The period between the two World Wars witnessed a golden period of detective fiction when several women writers produced a series of crime stories. Agatha Christie was the most prominent of the lot with her prestigious Hercule Poirot and Miss Marple. Other famous detective characters like Father Brown (GK Chesterton), Inspector Morse (Collin Dexter), William of Baskerville (Umberto Eco), Dirk Gently (Douglas Adams), Chen Cao (Qiu Xiaolong), and famous detectives from the screen like Lieutenant Columbo, Nancy Drew, Miss Marple, Dick Tracy, and James Bond followed the long line. But nowhere can be a Muslim character found. If there is any exception, it could be from Urdu writer Asrar Ahmad aka Ibn-e-Safi, who created his celebrated sleuth, Ali Imran.

This paper looks into the racial and religious background of various fictional detectives and tries to determine the proportion of the representation of Muslims as detectives. It also focuses on the portrayals of those available very few such sleuths to find out if Islamophobia plays a role in their creation, shaping and grooming. A thorough analysis of the above-mentioned Muslim fictional detectives is done for this purpose.

Muslim Male Detectives

Detective heroes of Chris Culver, Margie Orford, Jacob Arjouni and Ausma Zehanat Khan are Muslim males. Each of these characters appears in more than one story. Ash Rashid, or Ashraf Rashid, was the son of an Egyptian professor working at American University, Cairo. He is currently an American citizen and stays in Indianapolis. He is not popular among his colleagues and superiors. His Muslim identity, along with his rash behaviour, contributed to this unpopularity. Some officers from his department have prejudiced animosity towards him. As a result, he was quite often reprimanded. When his niece Rachel Haddad was killed, which formed the core of the plot of *The Abbey*, the first of the Ash Rashid series, he was already in suspension, but he started a private investigation. The whole novel presents him only in second place as the chief roles are played by Mike Bower, his professional rival and in charge of the Rachel murder case and Susan Mercer, the head of the department. Ash is special as he applies common techniques for finding evidence, but he is not ready to satisfy himself with the usual conclusion of other investigators in his team. He leaves a place for doubt before concluding, which helps him discover more. The official investigators of Rachel's murder were happy with an easy conclusion as long as there was a confession from the murderer, but Ash was not. Or in other words, the role of Ash, the unsolicited investigator, begins when the official investigators do not do their job. He is presented as Muslim but alcoholic, who doesnot want his children to be grown up as Muslims. After reading the story, the readers are happy as the mystery behind the crime is resolved, and the law catches the culprits. However, they will not consider the detective their hero because the treatment he receives in the story is neither heroic nor legendary.

As we can see here, Ash Rashid is not a typical representative of the Muslim population, as he has very little in common with other Muslims. Even the little Muslim identity has brought him enough problems. The author never appears interested in making him a great hero or someone fit to be a hero. He is an average officer with mediocre skills, not adaptive and accommodating. His perseverance enables him to reach the right conclusions where his colleagues or competitors fail. There are a few occasions the novel struggles to bring out Islamophobia in

that American society. There is a reference to the local Muslim community seeking help from Ash Rashid instead of the Police when they have a law and order situation. Because most of the time, even if they approached Police, no solace came from that side. His senior officer, Whittler, was mad at him for his closeness with his community. The readers can understand that their inherent animosity towards the Muslim community has made them prejudiced against the community and Rashid. Despite these humble attempts, the novelist is unwilling to present his hero with the usual genius but a common police officer.

If Ash Rashid, most of the time, is either under suspension or not officially in charge of the investigation, Riedwaan Faizal by Margie Orford presents a much lower profile. He is officially in charge of the murder investigations. However, as he cannot solve the mysteries, he approaches a lady named Dr. Clare Hart, a human profiler, whenever he has a puzzle. Orford's detective fiction is known as the 'Clare Hart series', implying that the author herself has no intention to highlight chief investigating officer Riedwaan Faizal. The novels present a very sorry figure of Faizal, as most of the time he is in the dark when it comes to deducting the reasons and culprits behind crimes, and had it not been for the highly ingenious criminal profiles she prepared and timely interventions, the criminals who Riedwaan has been looking for might have been escaped long ago. In *Like the Cock Work*, a serial killer is suspected to be on the loose, as dead bodies of teenage girls appear one by one in identical situations. As investigating officer Riedwaan is in the dark, his only hope is the amateur police profiler Dr. Clare. Ofcourse, she helps him not only with the profile, but she is the one who chases and locates the criminal Otis Tohar at the end. Her enthusiasm, curiosity and trust in her instincts bring her toTheresa, the missing girl and her captivity. Riedwaan fails to protect all the three girls who are missing and fails to pinpoint the criminal. It was only when the fourth girl went missing Clare got some hints, and she chased the location in the dark that, successfully ended in saving the last girl. His role was only to appear with other policemen and an ambulance when Clare informed him of the situation and the location. So, for the readers, Riedwaan is only a low-profile investigating officer with no skill of investigation or heroism to remain in the reader's mind.

Like Rashid, Riedwaan is not a practising Muslim, yet he cannot escape Islamophobia around him, and he also has been targeted based on his religion. In the story, he repeatedly mentions his worries about getting reprimanded by higher authorities if he fails in his investigation, and he is bothered about his being a Muslim.

Esa Khattak was the sleuth presented by the Canadian author Ausma Zehanat Khan, who appeared in half a dozen mysteries from 2015 to 2019. Esa is a second-generation Canadian Muslim who has enough enemies inside the department. However, he succeeds in deciphering the mysteries of various crimes with his ingenuity and indubitable assistance from his partner Rachel Getty. In novels like *The Unquiet Dead* (2015) and *The Language of Secrets* (2016), the final victory is due to ingenious techniques and never resting enthusiasm of the duo; but Esa, the chief investigator, always has to depend too much on his white partner. Readers understand that if Esa Khattak comes out with a smiling face at the end of the road, it is always due to some rash uncompromising moves of Rachel Getty. In *The Language of Secretes*, it is Rachel who volunteers to go to the night camp in the forest along with the terrorist group, and it is her sweet tongue that convinces Esa's sister Rukshanda about the abominable plan of Ashkouri, her lover and the terrorist mastermind. So here again, the readers are convinced that the real hero is missing the usual heroism of traditional detectives like Sherlock Holmes.

German literature has offered one of the most notable Muslim sleuths, Kemal Kayankaya, a Turkish-born German. Jakob Arjouni, the German crime writer, had produced at least five crime novels featuring the Turk as his private eye, who traversed through the secret allies of crime, sex, intrigues and power game. His first appearance was in 1985 in *Happy Birth Day, Turk!* , in which Kemal Kayankaya is hired to investigate the murder of a Turkish worker named Gülistan. Unlike the police story, Kemal understands that this case has deeper layers. At the end of the story, he uncovers a web of corruption and racism that runs through the city's police force and political establishment. He had faced threats and violence from criminals and the authorities, but he was determined tobring justice to Gülistan and her family.

Perhaps Kemal could be the only one on this list who is a compelling and complex character who uses his unique skills and experiences to navigate the world of crime and corruption. Though he is not portrayed as a superhuman detective like Sherlock Holmes, he is not much dependent upon others like other detectives. He has an assistant, Sema, a young Turkish-German woman who becomes his ally and often emotional support.

Muslim Female Detectives

Currently, we have only one name on this list: Rania, an ordinary Palestinian policewoman created by Kate Jessica Raphael. Rania appeared in her two Palestine mysteries, namely *Murder under the Bridge* and *Murder under the Fig Tree.* Though she has no glamour in her official position, she leads the murder investigations of Nadya Kim, an Uzbeck national domestic worker and Daoud, a Palestinian gay. She applies her genius to discover the mysteries behind the murders and reach the culprits. However, in the former case, Nir Gelenter, the Israeli deputy minister of defence, is the final target. Though she could not bring him to the law, at least she could succeed in saving Fareed Haddad, the Palestinian teenager who was wrongly accused of murder. International readers are much familiar with the limitations of Palestine police when it comes to investigating crimes committed by Israelis, let alone a deputy minister. Yet Raphael presented her heroine successfully manoeuvring through all cumbersome hurdles eructed by the Israeli system and the culprit. The fact that she is a practising Muslim and a Palestinian mother makes Rania more heroic, but at the same time, the success of her investigation is more due to chance than to her skills or craftiness. She had Benny Lazar, an Israeli police officer, as a continuous helper in disguise from the Israeli side and Chloe, the American volunteer working in Palestine, to protect her whenever she was in trouble. Though Chloe has nothing to do with the Police or crime investigation, gradually, when the story develops, she plays a very important role as an information collector, fighting Israeli authorities by being an American citizen, and even as an intruder to highly dangerous areas where Rania has no access to. In the second story, Rania is mostly in the Israeli prison, devoid of freedom, let alone a crime investigation. It was Chloe who helped her come out of prison and do the murder investigation of Daoud. Thus, we can see that Rania succeeded in both her crime investigations, but it was more due to others than her skills and talents.

Another name that can be added to the list of Muslim female detectives is Katya Hijazi, a lab technician by profession and an amateur sleuth by chance. She appeared in *Finding Nouf* (2008) and *City of Veils* (2010) novels by the American novelist Zoe Ferraris. Like other Muslim detectives, Hijazi also is not a strictly practising Muslim; hence she has some insights and skills to investigate those other Muslim investigators in Saudi Arabia miss! But she never developed into a professional detective, as her role in both stories is that of an investigator by chance. She is neither part of the official investigation agency nor a private detective a job assigned to. Hence her role is minimal, and she is devoid of any official colour. The story never leaves the picture of a colourful and ingenious detective; instead, readers are happy that a mystery regarding the death of a poor girl is unwrapped.

Conclusion

Representation is part of power discourse, and misrepresentation is often equivalent to underrepresentation because it is only a matter of degree. Of all the thousands of detective novels, only a handful has Muslim characters as detective officers, and even that small group does not show any glamour compared to their counterparts. The analysis has shown that these available detectives were detectives accidentally or by profession. Though they successfully end their investigations, they all fail to leave the image of a genius anyone feels jealous of. Instead, the Islamophobic readers get another tool to dig at Muslims, to portray them as intellectually weak. It is common Islamophobic rhetoric that Muslims are intellectually weak, and these stories confirm that notion of the secondary nature of Muslim brains. It is found that the number of Muslim detectives is very minimal, although there are many nations with Muslim investigating officers.

Usually, the fictional detectives are injected with superhuman capacities and ingenious techniques that the criminal might baffle. They are usually noted for their superior intelligence, impeccable observation, sharp wit, sense of humour, and doggedly persistent nature. It is this superhuman portrayal that takes the entire credit for their popularity. Surprisingly, all these Muslim detectives either lack most of these qualities or do have the qualities but not to a commendable amount. Hence these people appear to be secondary when it comes to the story's happy ending. The simple difference between reading an established detective story like Sherlock Holmes and a story of one of these Muslim sleuths is that the ordinary reader is so enthralled to find his hero succeeding at each stage, using his outstanding brain to defeat the master criminal. At the end of the story, he is happier to see his hero coming successfully with a scornful smile than to see that justice is served. At the same time, a reader of this type of novel is happier to see that criminals are punished, and justice is served than their hero was a tool for that because this detective is no hero with superhuman powers, instead who happened to be successful by luck or chance! These detectives can be succeeded only with the help of others, and most of the time, they have more capable partners. Rania is leading the investigation, but there is always either Benny Lazer or Chloe, both of whom are more powerful than Rania. Ash Rashid is often withdrawn from the investigation because of inability and mistakes and was even arrested, but somehow succeeded in the end. Riedwaan Faizal is always a second-rate citizen, and Dr.Clare Hart did all the leads. In short, we find that the usual 'brain wizard' is missing in Muslim detectives.

Another stunning fact is that all these detectives, except Rania, are non-practising Muslims. They drink alcohol, have extramarital relationships, do not perform regular prayers and do not follow strict laws of Islamic life. It is suggestive that their religion is the fact that cripples them of their powers, and they could come up to the level of exceptional talents only when they come out of the religious frame. These crime thrillers give us the impression that being a Muslim prevents these heroes from becoming exceptional detectives. To conclude, it can be seen that, Islamophobia worked very well in underrepresenting or misrepresenting Islam and Muslims.

Works Cited

Arjouni, Jakob. *Happy Birth Day, Turk!* Melville International Crime, 2011.

Auden, W. H. "The Guilty Vicarage: Notes on the Detective Story, by an Addict." *Harpers Magazine*, May 1948, pp. 406–412.

Bloch, Ernst. "A Philosophical View of the Detective Novel." *The Utopian Function of Art and Literature*, translated by Jack Zipes and Frank Mecklenburg, MIT Press, 1988.

Bradford, Richard. *Crime Fiction: A Very Short Introduction*. Oxford University Press, 2015.

Culver, Chris. *The Abbey*. Grand Central Publishing, 2011.

Dubey, Aakankshaa. "The Rise of Detective Fiction: A Historical Perspective with Special Reference to the Oeuvre of Wilkie Collins and Sir Arthur Conan Doyle." *IOSR Journal of Humanities and Social Science*, vol. 25, no. 6, June 2020.

Eliot, T. S. "Wilkie Collins and Dickens." *The Victorian Novel: Modern Essays in Criticism*, edited by Ian Watt, Oxford University Press, 1971.

Ferraris, Zoe. *Finding Nouf: A Novel*. Houghton Mifflin Harcourt, 2008.

Khan, Ausma Zehanat. *The Language of Secrets: A Novel*. St. Martin's Griffin, 2016.

Klug, Brian. "Islamophobia: A Concept Comes of Age." *Ethnicities*, vol. 12, no. 6, 2012, pp. 665–681, https://journals.sagepub.com/doi/10.1177/1468796812450363.

Lad Panek, LeRoy. *Introduction to the Detective Story*. Bowling Green University Popular Press, 1987.

Lean, Nathan. *The Islamophobia Industry*. Pluto Press, 2012.

Orford, Margie. *Like Clockwork*. Jonathan Ball Publishers SA, 2008.

Quellec, Jean-Loïc Le. "History and Conspiratorial Myth of the Word Islamophobia." *Alterophobia*, Cultures, Focus, Common Sense, Conspiracy Theory, 19 June 2019.

Raphael, Kate Jessica. *Murder under the Bridge: A Palestine Mystery*. She Writes Press, 2015.

---. *Murder under the Fig Tree: A Palestine Mystery*. She Writes Press, 2017.

Sayyid, S. "A Measure of Islamophobia." *Islamophobia Studies Journal*, vol. 2, no. 1, Spring 2014, Pluto Journals, pp. 10–25.

Stowe, William W. "Critical Investigations: Convention and Ideology in Detective Fiction." *Texas Studies in Literature and Language*, vol. 31, no. 4, Winter 1989, University of Texas Press.

*****

Agricultural Insurance and Farmer's Well-being in West Bengal

-Anil Kumar Biswas
Associate Professor, Department of Economics
P. D. Women's College, Club Road, Jalpaiguri
West Bengal, India

-Dhiman Chakraborty
[M.A., Ph.D. (Pursuing), UGC NET, 12 State SETs]
State Aided College Teacher, Department of English,
Sukanta Mahavidyalaya, Dhupguri, West Bengal, India

Abstract

Agriculture is an indispensable sector in West Bengal, providing employment, meeting food requirements, and uplifting rural living standards. However, the sector faces constraints such as climatic shocks, pests related diseases, and financial volatility, which predominantly affect small and marginal farmers. As discussed in this paper, agricultural insurance emerges as a vital solution to these issues, yet its uptake remains limited due to costs, low awareness, and institutional challenges. This paper explores the prospects of crop production, crop variety, and insurance as avenues for improving farmers' security of livelihoods. West Bengal contributes 15 per cent of India's rice output and is also a significant producer of jute, potatoes, vegetables, and fruits. However, yield and income volatility, exacerbated by climate change, necessitates diversification and a shift toward export-oriented farming. Agricultural diversification in the fields of horticulture, livestock integration, aquaculture, and organic farming provide opportunities for resilience and income diversification. Agricultural insurance schemes like the Pradhan Mantri Fasal Bima Yojana offer financial protection but have yet to gain popularity among farmers. Improvements in reach, cost affordability, and product differentiation are essential, alongside increased awareness and stronger government policies with institutional supports. This research highlights insurance's potential to mitigate risks, stabilize farmer incomes, and promote sustainable farming practices. Recommendations include enhancing insurance literacy, investing in infrastructure, and adopting Climate Smart Agriculture technologies to strengthen farmers and boost up West Bengal's rural economy.

Keywords: Agricultural Insurance, Crop Diversification, Farmer Resilience, Climate Risks, Sustainable Agriculture, Rural Development.

Introduction

Indian people are generously endowed with agricultural activity not only charismatic, but also philosophical love, where man and earth, existence and feeding are one. Organic farming may be a business in India, but it is one of the foundational aspects of the nation, which has influenced its culture, social structure and religion. A large part of the rural population of India is even today dependent on agriculture and those farmers who are still practicing their age old traditional methods of farming are avowedly organic.

The Indian concept of agriculture plays a massive impact on the mentality of Indian population towards the land as a mother and farming as a divine duty. This deep relation is well marked and depicted in the festivals like Pongal, Makar Sankranti, Onam etc. all these depict the relation between society and the seasons. Diversity in agriculture in India is peculiar, and is composed of differentiated crops, climates and methods of farming that may vary from one region to another.

But here are the current problems of Indian agriculture; scarcity of resources, poorly developed tools and equipment, and risks of climate change. Most of the farmers are small and marginal who obtain very low yield and profitability of the crops. The major economic impact of uncertain physical environment is uncertainty of agricultural yield, while the source of economic uncertainty is volatility in prices of agricultural produce (Ghatak and Ingersent, 1984). To safeguard the *annadata*, the right agricultural policies formulate to govern the farming community for farmer easiness and development.

Critical scholars have greatly influenced the Indian agricultural philosophy by adopting tradition and creativity. Non-Gandhian organisation of ideas included self- sufficient rural economy through organic farming and Gram Swaraj. Culture and agriculture intertwined by Rabindranath Tagore for the rejuvenation of country and well-integrated education system. J.C. Kumarappa stressing the need of living a green life coined the concept of 'do right and live right' to support cooperating Agriculture. Dr. M.S. Swaminathan was leading the Green Revolution that combined scientization with, sustainability along with justice. Radhakamal Mukerjee, sociology, agriculture and societies and cultures; Dr. Verghese Kurien, the White Revolution, based on Milk unions cooperatives ushered new means of production diversification and farmers' power.

Agriculture is also a prominent industry in West Bengal, which is a state of India and provides financial

support and food to many of its peoples. Agriculture increases employment prospects in unskilled and semi-skilled labour forces and supplies a basis for industries. Our analysis also shows that agriculture supplies the market for most industrial products. Nevertheless, growers in the area suffer from different threats involving climate and pest risks, among others, which may significantly affect their health and economic conditions (Rukundo et al., 2021). For example, the villages of Manikchak, Ratua and Chanchal in Malda district of West Bengal grow langra, fazli, lakhanbhog, gopalbhog and himsagarvariety of mangoes. These are frequently affected by pests such mealy bug. The conservation of the natural enemies can perform duty as one of the major strategies to combat mango mealy bug. Insurance that enhances protection for farmers exposed to these risks has come out as an option for managing risk cover but the adoption of such products in agriculture has remained low in the region. This is worrisome because agricultural insurance can play an important role in giving protection to farmers as well as in enhancing the living standard of farmers. Measures that would be useful in the development of this insurance product include understanding the key elements of the product and embracing higher levels of insurance literacy among farmers as well as an enhanced platform for delivering insurance information to farmers.

The analysis of farmers' wellbeing and agricultural insurance in West Bengal has important implications on the improvements of the local socioeconomic plight. Implementation of crop insurance influenced the adoption of new technologies in agriculture and improvement of living standards of the farmers with respect to consumption expenditure, consumption of medicines and level of education for their children. The non-insured farmers have to borrow money funds from the self-help groups .Agriculture sector of West Bengal forms a major portion of the parts of the overall economy. Efficient development of the conditions and state of the farming population has the potential for a positive impact on the rest of the economy and the populace of rural areas. Consequently, the conclusions and recommendations, outlined in this study, might serve as guidelines for policymakers, development actors and other stakeholders in search of better ideas on how to improve the resilience and development of the agricultural system in West Bengal.

This research paper has highlighted the important issues that are affecting peasants of West Bengal, concerning agricultural insurance. The study isbased on the secondary data collected from several sources. A relevant analysis has been performed to develop the relationship between different variables and issues using analytical tools. In this research, some interesting results were discovered. However, it is worthy of note that this study has some limitations. The data used in the study consists of only secondary data and therefore the results of the study may be constrained by limitations of data. Further studies are required on the above aspects collecting and using primary data.

Agricultural Production and Yields

Though the agricultural sector is one of the main areas of investment in the state, over the recent past, the sector has recorded fluctuations in its productivity and yields. In order to meet the Challenges of rural development, export-oriented agriculture and achievement of regional equity emerged as major issues requiring strategies for diversified and export-oriented agriculture.

West Bengal accounts for nearly 15 per cent of the rice production in India and makes it the largest rice-producing state in the country. In terms of rice production, rice productivity ranges between 2.5-3.5 tons per hectare, based on the different methods of cultivation such as kharif or rabi. The Kharif rice is the most important crop of the region and paddy is sown across around 6-7 million hectares per year. Rabi rice is produced in the winter season but the area under this crop is comparatively lower than kharif rice because Indian agriculture is basically rainfed. West Bengal produces over 50 percenttotal jute in India. The yield of jute is not constant, but the yield average is near about 1-1.5 tons per hectare. This state is among the top two producers of potatoes in the whole of India. In West Bengal, the yields of potatoes range between 25-30 tons/hac depending on the soil fertility, and agronomic practices.

The state of West Bengal is also well-developed in the production of many vegetables including tomatoes, cauliflower, peas and brinjal. Yields of potatoes and onions have recorded comparatively high fluctuations, while the tomatoes have more fluctuations of yields owing to the change in climate and water resources. West Bengal is also famous for its production of fruits such as mangoes, guava and pineapple commonly produced in the districts of Murshidabad, Malda and Purulia. Especially, the 'Langda' mangoes produced in West Bengal look equally delicious to the mangoes grown in other parts of India Research has highlighted the need for strategies to promote diversified and export-oriented agriculture, with a focus on addressing regional disparities and increasing investment in rural infrastructure.

Risk and Wellbeing of Farmers in West Bengal

A substantial proportion of farmers in West Bengal are small and marginal, often lacking access to capital and other inputs, including technology. There is evidence that the farming community of West Bengal is pre-dominated by the small and marginal farmers owning less than two hectares of land.

The availability of information and the type and level of risks the farmers in West Bengal face are crucial for farmers' well-being. These risks normally result in costs affecting the farmer's livelihoods, food insecurity as well as other socially and economically detrimental impacts.

There are various problems confronting farmers in West Bengal that are likely to affect productivity and yield. Among the major constraints to growth are the effects of climate change which have brought about changes to unpredictable climatic conditions affecting various sectors in the country by bringing about frequent droughts, floods, and unseasonal rains.

The academic studies suggested that the government has to advise the agriculture sector to diversify the crops which are to be grown and to set up export-oriented agriculture, especially in the least developed districts of the state (Sarkar, 2011). This would entail the financing of the development of a variety of physical infrastructures in agriculture in rural areas in the form of irrigation, storage, and transport facilities, to support the production and marketing of a diversified crop produce.

Diversification of crops is an important measure to increase food production per unit area, minimize adversities and increase farmers' income in West Bengal. Although farming system in the state is mostly dominated by the production of rice, factors such asclimate change, fluctuating market prices, and substandard quality of the soil among, there has been a shift in the farming practices. Crop diversification strategy is one of the mechanisms for risk minimisation in agriculture. Some of the major crop diversification strategies implemented in West Bengal have been discussed in this paper.

Introduction of Horticultural Crops: Horticultural crops like fruits, vegetables, and flowers have been successively produced and sold in the market of West Bengal. These crops are now integrated into conventional agriculture in order to boost farmers' earnings and the market value of their crops about staple crops. These crops have high market demand, particularly in the urban food markets.

Livestock Integration: An expansion of mixed farming in which crops and animals like poultry, goat farming and dairy farming are simultaneously reared. These have potential increase revenue and improve the fertility of the soil through dung from animals. The rise of operations in poultry farming and other dairy activities in regions such as Birbhum and Bankura State underlines the viability of developing a stock diversification type operation. Also, poultry and fish farming have become common and modern sources of income besides the mainstream agriculture mainly practised near the coastal areas of West Bengal.

Aquaculture and Fish Farming: Like many other rivers and ponds and seaside states in India, West Bengal has immense opportunity to develop Aquaculture. Fish catching especially for Hilsa, Rohu, and Catla, has been encouraged to provide additional revenue avenues in villages. Most of the fish farmers who have integrated their fish farming with crop and livestock farming have benefitted in handling volatilities.

Organic Farming and Agroforestry: Organic farming can be recommended as one of the most beneficial types of diversification in West Bengal because customers are beginning to prefer purchasing organic foods. The state has seen a relative increase in the area under organic production of vegetables, pulses and rice in districts such as Nadia and Darjeeling. Also, there has been promotion of agroforestry to grow trees along with crops, increase productivity of the farm, fertility of the soils and profitability of timber as well as non-timber products.

Adoption of New Crop Varieties: The cultivation of an improved hybrid of rice, pulses, oilseeds can withstand the vagaries of the climatic variations. This eliminates the risk of depending in one crop and is useful in assisting farmers in mitigating the effects of an unfavourable climate.

Adoption of Agricultural Insurance: Agricultural insurance has proved to be a vital measure to address the challenges which are faced by farmers in West Bengal since they are very sensitive to natural disasters and climatic changes (Singh and Agrawal, 2020). However, there has been a low take-off of agricultural insurance in the state. A major problem area is the access and cost of insurance, particularly for low value products. Extension of insurance for staple crops remains a challenge.Many farmers cannot meet this due to the high premium costs, mainly for small and marginal farmers (Rukundo et al., 2021). To overcome this, the government has announced numerous premium subsidy schemes like the Pradhan Mantri Fasal Bima Yojana which have gone a long way in the expansion of access to agricultural insurance (Dash et al., 2020). The final reason that the uptake of agricultural insurance is low is the lack of awareness and knowledge among farmers. Farmers are not aware of the insurance products, their features and the insurance products that are available to them. This calls for more elaborate public enlightenment programs as well as extension services aimed at equipping them with the need to avoid risks through insurance.That's why, the expansion of the uptake of agricultural insurance in West Bengal needs multi-pronged actions.

Agricultural Insurance in Promoting Farmer's

Well-being

Insurance is, in general, an important financial tool that can reduce the impact of ill results of damaged farm production due to unfavourable weather conditions and other sorts of adversities (MahulandStutley, 2010). Agricultural insurance can also make farmers engage in less risky production diversity and innovation practices because they feel that they have control over the impact of those decisions.

However, the lack of farmers' uptake of agricultural insurance in West Bengal is an equally big problem. Zakat has always been non-discretionary Islamic taxation and can probably be employed as a source of subsidy to farmers and insurance on their crops. Through zakat funds, financial institutions might be disposed to extend funding to the agricultural industry which is mostly perceived to be high risk (Puspitasari et al., 2016).

The livelihood of the peasants in West Bengal is a determinant of the multiplicity of factors, which include social, economic and environmental issues. Although the government and other stakeholders have come up with assorted measures to offer support to farmers, more effort has to be adopted to overcome the perennial problem troubling the agricultural sector. To this end, there is a need to support measures that contribute to building more climate vulnerability in agriculture including Climate Smart Agriculture (CSA), establishment of warning systems, and disaster risk management and mitigation measures (Bandyopadhyay et al., 2021).

Despite various challenges associated with natural disasters and financial stress, farmers in West Bengal have adopted different strategies for minimizing the effects of natural disasters and financial shocks. Some of these strategies may include other sources of income to supplement their present income, cut their expenses,and finally look for funding from the government or non-governmental organizations (Sharma and Sen 2021) However, coping mechanisms do not work so effectively, especially for operations run by small and marginal farmers who have meagre capital and little access to various supports. Several barriers have been identified which deserves special attention.

1. **Affordability of Insurance Products**: Most of the small farmers are unable to pay for the premiums required for agricultural insurance which poses a major constraint towards the utilization of this important risk management instrument (Rukundo et al., 2021).

2. **Lack of Awareness and Understanding**: Farmers also seem not to know or fully understand the insurance products.Extension services should be extended and supplemented by education and training.

3. **Product Quality and Design**: The insurance products may not be well suited to the needs and wants of the farmers as well as their designed attributes may present barriers to their adoption.

4. **Institutional Capacity and Coordination**: There exists room for increasing the absorption capacity and networks across various implementing players, including insurance firms, agricultural extension, and farmers' associations to make insurance delivery more impactful for the sector.

To overcome these barriers and enhance the demand for agricultural insurance in West Bengal, several strategies has been introduced.The Government of West Bengal as well as the Government of India has initiated and developed various schemes as well as polices for the welfare of farmers and the betterment of the agricultural department. These include: The Pradhan Mantri Fasal Bima Yojana, an exhaustive crop insurance policy started in 2016 to accrue financial aid to farmers in the wake of crop failure. Farmer Welfare through Insurance. The Kalia Yojana which is the state government programme of West Bengal implemented for the financial support of small or marginal farmers with input subsidies. However, presently, the rates of deploying agricultural insurance in West Bengal are still low.

Recommendations for Risk Minimisation and Farmar's Well-being

To effectively enhance the well-being of farmers, policymakers should consider the following recommendations:

1. Design and offer agricultural insurance products that cater to the specific needs, farming practices, crop types, and risk profiles of the local farming community in West Bengal. This can improve the relevance and appeal of these products, thereby encouraging greater adoption.
2. Improve the dissemination of information and enhance transparency around available insurance products, their benefits, and the application process. Leverage digital platforms, agricultural extension services, and stakeholder collaboration to empower farmers to make informed decisions about risk management strategies.
3. Simplify the claim filing procedures, ensure timely disbursement of payouts, and improve transparency throughout the claim settlement process. Utilize digital technologies to automate and expedite the claim processing, and provide training and support to farmers to navigate the system effectively.
4. Foster strong collaborations between the government, insurance providers, and other stakeholders to address the challenges faced by farmers in accessing and utilizing agricultural insurance prod-

ucts.

5. Promote the adoption of climate-smart farming techniques, support the transition to organic or regenerative agriculture, and invest in the preservation of natural ecosystems. Sustainable approaches can build resilience against climate-related risks, improve soil health, and reduce the reliance on costly inputs, ultimately enhancing the long-term productivity and profitability of the farming community.
6. Invest in targeted educational and awareness-raising campaigns to improve farmers' understanding of the benefits of agricultural insurance and the available products.
7. Enhance the capacity of agricultural extension services to provide farmers with timely and accurate information on risk management strategies, including agricultural insurance.
8. Support the adoption of diversified and sustainable farming practices that can help mitigate the impact of climate-related risks and improve the overall resilience of the agricultural sector.
9. Regularly monitor and evaluate the effectiveness of agricultural insurance programs in West Bengal, and use this information to continuously improve the design and delivery of these products.
10. Enhance the affordability and accessibility of agricultural insurance products by exploring strategies such as premium subsidies and alternative distribution channels.
11. Strengthen the quality and reliability of insurance services by improving the claims settlement process, expanding the coverage of insurance products, and ensuring that they are tailored to the specific needs of farmers in West Bengal.
12. Invest in the development of rural infrastructure including irrigation systems, transportation networks, and storage facilities, to enhance agricultural productivity and resilience.
13. Promote diversification and export-oriented agriculture to improve the overall income and well-being of farmers.
14. Explore the integration of Islamic financial instruments, such as zakat, to provide additional funding support for agricultural activities and reduce the perceived risk for financial institutions.
15. Improve the dissemination of information and enhance transparency around available insurance products, their benefits, and the application process.
16. Simplify the claim filing procedures, ensure timely disbursement of payouts, and improve transparency throughout the claim settlement process.
17. Sustainable approaches can build resilience against climate-related risks, improve soil health, and reduce the reliance on costly inputs, ultimately enhancing the long-term productivity and profitability of the farming community.

By implementing these policy recommendations, the government and stakeholders can work together to improve the overall well-being of farmers in West Bengal, ensuring their long-term prosperity and resilience in the face of various challenges.

Implications and Future Research

The present study is beneficial for the policymakers, insurance companies and all those who are concerned with the welfare of farmers and would like to encourage sustainable agriculture in West Bengal. The study establishes the importance of a broad and complex solution to the issues of the adoption of agricultural insurance products into the value chain in the region. This also means refining two most important aspects- its products' design and distribution, as well as increasing the financial literacy of the population, developing the extension services to access and deliver mechanisms, and encouraging partnership with the private sector. The findings stress the need for supporting the diversification of farming systems and supporting resilience to climate risks as strategies for enhancing the positive economic return on investments from the agricultural sector.

More research can be done embracing the analysis of factors determining agricultural insurance uptake among farmers in West Bengal incorporating the analysis of socio-cultural and behavioural factors. Furthermore, more studies could be conducted on measuring the overall welfare effect accruing to the farmers, and also the capacity of the agricultural insurance to foster sustainable agriculture.

Conclusions

Welfare of the peasants in West Bengal can be significantly explained by climate vulnerability constraints in resource access and low productivity. Interestingly, this area has the potential for proactive use of agricultural insurance to hedge against these risks and to support farmers' livelihoods although the insurance market remains relatively underdeveloped in the region. Farmer's well-being in West Bengal can be considered an important problem that cannot be solved by using a single method. Education about agricultural insurance, improve the design of agricultural insurance products, and reinforcement of agricultural extension services will be crucial to help the farmers in the West Bengal to overcome their challenges and to encourage sustainable agriculture practices.

Therefore, the present study reveals the potential lack of standard financial indicators in understanding the particular needs and constraints of farmers. Agricultural insurance is inevitable and the necessity to break down the barriers for its proper adoption to ensure farmers' sustenance and sustainable agriculture practice. As such, both policymakers and other stakeholders are required to focus their efforts

on creating more effective agricultural insurance interventions and policies that would provide the needed increase in the availability and popularity of such solutions among the farmers in the region.

Works Cited

Bandyopadhyay, S., Sharma, A., Sahoo, S., Dhavala, K., and Sharma, P. "Potential for Aquifer Storage and Recovery (ASR) in South Bihar, India." *Sustainability*, vol. 13, no. 6, 2021, p. 3502. https://doi.org/10.3390/su13063502.

Dash, D., Khandelwal, P., and Nath, S. C. "A Proposed Model for Agricultural Marketing in Odisha." *International Journal of Recent Technology and Engineering (IJRTE)*, vol. 8, no. 5, 2020, p. 836. https://doi.org/10.35940/ijrte.d8125.018520.

Ghatak, Subrata, and Ken Ingersent. *Agriculture and Economic Development*. Wheatsheaf Books Ltd, 1984, pp. 21–22.

Mahul, O., and Stutley, C. *Government Support to Agricultural Insurance: Challenges and Options for Developing Countries*. The World Bank, 2010, https://openknowledge.worldbank.org/bitstream/10986/2432/1/538810PUB0Gove101Official0Use0Only1.pdf.

Puspitasari, I., Fauziyyah, N. E., and Salam, A. N. "Zakah Fund Distribution Model Through Takaful Institution for the Welfare of The Poor Farmer." *Global Review of Islamic Economics and Business*, vol. 4, no. 1, 2016, p. 41. https://doi.org/10.14421/grieb.2016.041-04.

Rukundo, E., Kamau, J. W., and Baumüller, H. "Determinants of Uptake and Strategies to Improve Agricultural Insurance in Africa: A Review." *Environment and Development Economics*, vol. 26, no. 5, 2021, p. 605.

Saha, Sumita. "An Observational Study on Perception of Efficacy of Crop Insurance among the Farmers of a Community Development Block in the State of West Bengal." *International Journal of Advanced Multidisciplinary Research and Studies*, vol. 4, no. 3, pp. 213–218. https://doi.org/10.62225/2583049X.

Sarkar, S. "Variation of Agriculture Sector Development: With Special Reference to West Bengal State." *Journal of Economics*, vol. 2, no. 1, 2011, p. 9. https://doi.org/10.1080/09765239.2011.11884933.

Sharma, A., and Sen, S. "Impact of Drought on the Economy: A District Level Analysis of Madhya Pradesh, India." *Journal of Environmental Planning and Management*, vol. 64, no. 6, 2021, p. 1021. https://doi.org/10.1080/09640568.2020.1797651.

Singh, P., and Agrawal, G. "Development, Present Status and Performance Analysis of Agriculture Insurance Schemes in India." *International Journal of Social Economics*, vol. 47, no. 4, 2020, p. 461. https://doi.org/10.1108/ijse-02-2019-0119.

*****

Navigating Learning Disabilities in Higher Education: Challenges and Strategic Solutions for College Students

-BIJU N.C.
Assistant Professor
Department of English
Nehru Arts and Science College Kanhangad
Padnekad, Kerala 670314.

Abstract:
The article "Navigating Learning Disabilities in Higher Education: Challenges and Strategic Solutions for College Students" explores the complexities faced by students with learning disabilities (LDs) in higher education. It identifies the academic, social, and institutional challenges that hinder these students' success, including difficulties with traditional teaching methods, inflexible curricula, and social stigma. The paper emphasizes the importance of early diagnosis, individualized learning strategies, and the use of assistive technologies. It also advocates for faculty training, institutional support, and policy development to create a more inclusive and supportive academic environment. By examining the gap between existing legal frameworks and their practical implementation, the article highlights strategic solutions that can enhance the learning experience for students with LDs, thereby promoting their academic success and well-being.
Keywords: Learning disabilities, higher education, academic challenges, inclusive teaching, assistive technology, faculty training, individualized learning plans, disability support, social stigma, institutional policies.

Introduction

The landscape of higher education is evolving, with increasing emphasis on inclusivity and support for diverse student populations. Among these diverse groups, students with learning disabilities (LDs) represent a significant, yet often overlooked, demographic. Learning disabilities, which encompass a range of neurological disorders such as dyslexia, dyscalculia, dysgraphia, and Attention Deficit Hyperactivity Disorder (ADHD), affect a student's ability to process information and perform academically in traditional educational settings. Unlike physical disabilities, learning disabilities are often invisible, making them more challenging to identify and address. However, the impact of LDs on a student's academic performance and overall college experience can be profound.

In higher education, where academic success is largely measured through standardized assessments, timed exams, and complex projects, students with LDs frequently face significant challenges. These challenges are compounded by a lack of awareness and understanding among faculty, rigid curricula that do not accommodate diverse learning needs, and insufficient support services. The transition from high school to college can be particularly daunting for students with LDs, as the support structures they relied on in secondary education may not be as readily available or accessible in a higher education setting. Furthermore, the increased academic demands and the pressure to be independent can exacerbate the difficulties these students face.

Despite the legal frameworks in place, such as the Americans with Disabilities Act (ADA) and the Individuals with Disabilities Education Act (IDEA), which mandate accommodations for students with disabilities, there remains a significant gap between policy and practice. Many institutions struggle to implement effective support systems that truly meet the needs of students with LDs. As a result, these students often experience higher rates of academic failure, lower graduation rates, and increased levels of anxiety and depression compared to their peers without LDs.

This paper aims to explore the unique challenges faced by college students with learning disabilities and propose strategic solutions to enhance their academic success and overall well-being. By examining the barriers these students encounter—ranging from academic difficulties to social isolation and institutional shortcomings—we can better understand the complex nature of learning disabilities in the context of higher education. The paper will also highlight the importance of early diagnosis, personalized learning strategies, and the integration of assistive technologies as key components in supporting students with LDs.

Understanding Learning Disabilities

Learning disabilities (LDs) are a group of neurological disorders that affect an individual's ability to receive, process, or express information. Unlike intellectual disabilities, learning disabilities do not reflect a person's overall intelligence but rather indicate specific difficulties in certain cognitive processes that are essential for learning. These challenges can manifest in various ways, impacting academic skills such as reading, writing, and mathematics, as well as executive functions like attention, organization, and time management.

1. Types of Learning Disabilities

There are several distinct types of learning disabilities, each with its own characteristics and challenges. Some of the most common types include:

Dyslexia: Dyslexia is a language-based learning disa-

bility that affects reading, spelling, and writing. Individuals with dyslexia often have difficulty decoding words, recognizing common words by sight, and understanding the relationship between sounds and letters (phonological processing). Dyslexia can also impact reading comprehension, making it challenging for students to grasp the meaning of text. However, it is important to note that dyslexia does not reflect an individual's overall intelligence or creativity.

Dyscalculia: Dyscalculia is a specific learning disability related to mathematics. Individuals with dyscalculia struggle with number sense, which includes understanding the relationships between numbers, performing arithmetic operations, and grasping mathematical concepts. Students with dyscalculia may have difficulty with basic math facts, complex problem-solving, and spatial reasoning tasks such as geometry.

Dysgraphia: Dysgraphia affects writing abilities, including the physical act of writing and the organization and clarity of written expression. People with dysgraphia may have illegible handwriting, difficulty with spelling, and trouble organizing their thoughts on paper. This can result in frustration and a reluctance to write, further hindering academic performance.

Attention Deficit Hyperactivity Disorder (ADHD): ADHD is characterized by persistent patterns of inattention, hyperactivity, and impulsivity. While not a learning disability in the traditional sense, ADHD often coexists with LDs and can exacerbate learning difficulties. Students with ADHD may struggle with maintaining focus, following instructions, and completing tasks, making it challenging to succeed in a structured academic environment.

Auditory Processing Disorder (APD): APD affects how the brain processes auditory information. Individuals with APD may have normal hearing but struggle to distinguish between similar sounds, follow verbal instructions, or comprehend spoken language, especially in noisy environments. This can lead to difficulties in understanding lectures, participating in discussions, and processing verbal feedback.

Visual Processing Disorder (VPD): VPD involves difficulties in interpreting visual information. Individuals with VPD may struggle with recognizing patterns, understanding spatial relationships, and distinguishing between similar shapes or letters. This can impact reading, writing, and tasks that require visual organization, such as graphing in math.

2. Causes of Learning Disabilities

The exact causes of learning disabilities are not entirely understood, but they are believed to result from a combination of genetic, neurological, and environmental factors. Some of the key factors include:

Genetic Influences: LDs often run in families, suggesting a hereditary component. Specific genes have been linked to dyslexia and other LDs, indicating that a genetic predisposition may increase the likelihood of developing these disorders.

Brain Structure and Function: Neuroimaging studies have shown that individuals with LDs often have differences in the structure and function of certain areas of the brain. For example, individuals with dyslexia may show less activation in regions of the brain associated with language processing and phonological awareness.

Prenatal and Perinatal Factors: Complications during pregnancy or birth, such as low birth weight, prematurity, or exposure to toxins, can impact brain development and increase the risk of learning disabilities.

Environmental Influences: Early childhood experiences, including exposure to language, social interaction, and educational opportunities, can influence cognitive development. Environmental factors such as poverty, malnutrition, and lack of access to quality education can also contribute to the development of LDs.

3. Impact of Learning Disabilities in Higher Education

In the context of higher education, learning disabilities can significantly impact a student's academic experience. The transition from high school to college often presents new challenges for students with LDs, as they are expected to navigate more complex academic demands, greater independence, and less structured support systems. Some of the key impacts include:

Academic Performance: Students with LDs may struggle with the increased reading, writing, and analytical demands of college courses. They may require more time to complete assignments, experience difficulty with exams, and find it challenging to keep up with the pace of lectures and discussions.

Self-Esteem and Confidence: Persistent academic struggles can lead to feelings of inadequacy, low self-esteem, and frustration. Students with LDs may develop a negative self-concept, believing they are less capable than their peers.

Social Interaction: LDs can also impact social skills, making it difficult for students to form relationships, participate in group work, or engage in extracurricular activities. Social isolation can further exacerbate feelings of anxiety and depression.

Challenges Faced by College Students with Learning Disabilities

Navigating higher education presents unique challenges for all students, but for those with learning disabilities (LDs), these challenges are often magnified. College students with LDs face a range of academic, social, and institutional barriers that can hinder their ability to succeed. Understanding these challenges is

crucial for developing effective support systems and creating an inclusive educational environment.

1. Academic Challenges

Difficulty with Traditional Teaching Methods:

Traditional teaching methods in higher education, such as lectures, textbook readings, and standardized testing, often do not accommodate diverse learning styles. For students with LDs, who may struggle with reading comprehension, note-taking, or organizing information, these methods can be particularly challenging. The reliance on auditory and visual learning in lectures can disadvantage students with dyslexia, auditory processing disorder, or ADHD, who may require more time to process information or may need alternative ways to engage with the material.

Reading and Writing Difficulties:

Reading and writing are foundational skills in most college courses, yet students with LDs like dyslexia or dysgraphia often face significant challenges in these areas. Reading assignments may take much longer to complete, and understanding complex texts can be particularly difficult. Writing assignments, which require clear organization, grammar, and spelling, can also be daunting. The pressure to perform at the same level as peers without LDs can lead to anxiety and decreased self-esteem.

2. Social Challenges

Stigma and Misconceptions:

One of the most pervasive challenges faced by students with LDs is the stigma associated with their disabilities. Despite increased awareness, there are still widespread misconceptions that equate learning disabilities with lower intelligence or laziness. This stigma can lead to discrimination, exclusion, and a lack of understanding from peers and even faculty members. As a result, students with LDs may be reluctant to disclose their disabilities or seek the accommodations they need, fearing judgment or differential treatment.

Anxiety, Depression, and Low Self-Esteem:

The academic pressures of college, combined with the challenges of managing a learning disability, can take a significant toll on students' mental health. Students with LDs often experience higher levels of anxiety and depression compared to their peers. They may feel overwhelmed by the demands of their courses, frustrated by their struggles, and isolated from others who do not share their experiences. Repeated academic setbacks can erode self-esteem, leading to a negative self-image and a sense of hopelessness about their academic future.

Social Isolation and Difficulty with Peer Interaction:

Learning disabilities can also impact students' social lives, making it difficult for them to form and maintain relationships with peers. Difficulties with communication, processing social cues, or participating in group activities can lead to social isolation. For instance, students with auditory processing disorder may find it hard to follow conversations in noisy environments, making social interactions stressful. This isolation can further exacerbate feelings of loneliness and contribute to mental health challenges.

3. Institutional Challenges

Lack of Awareness and Training Among Faculty:

One of the significant institutional barriers for students with LDs is the lack of awareness and training among faculty and staff regarding learning disabilities. Many educators are not adequately prepared to recognize the signs of LDs or to provide appropriate accommodations. This can result in misunderstandings, insufficient support, and the implementation of teaching methods that inadvertently disadvantage students with LDs. Additionally, faculty members may hold implicit biases or misconceptions about LDs, further contributing to the challenges these students face.

Inequities in Academic Policies:

Academic policies at many institutions are often not flexible enough to accommodate the diverse needs of students with LDs. Policies around attendance, deadlines, grading, and exams may not allow for the adjustments that these students require to succeed. For example, a strict attendance policy may penalize students with LDs who need additional time for assignments or who experience frequent medical appointments. Similarly, standard grading practices may not reflect the true abilities of students who need accommodations to demonstrate their knowledge effectively.

Current Support Systems and Legal Frameworks in India for Students with Learning Disabilities

In recent years, India has made significant strides in recognizing and supporting students with learning disabilities (LDs). The development of legal frameworks, educational policies, and support systems has aimed to ensure that students with LDs receive equitable opportunities in education. However, the effectiveness of these systems varies widely across the country, with challenges in implementation and awareness continuing to impact the support available to students in higher education.

1. Legal Frameworks for Learning Disabilities

The Rights of Persons with Disabilities Act, 2016 (RPWD Act):

The RPWD Act is a landmark piece of legislation in India that provides comprehensive rights and protections for persons with disabilities, including those with learning disabilities. This Act expanded the definition of disabilities to include specific learning disabilities such as dyslexia, dysgraphia, and dyscalculia.

Under the RPWD Act, students with LDs are entitled to accommodations in educational settings, including extra time on exams, scribe assistance, and alternative formats for assessments. The Act mandates that educational institutions must not discriminate against students with disabilities and must provide appropriate facilities and modifications to support their learning.

National Policy on Education (NPE) 2020:

The National Policy on Education 2020 emphasizes the importance of inclusive education and outlines measures to support students with disabilities, including those with LDs. The policy advocates for the use of technology to assist students with LDs, the development of individualized education plans (IEPs), and the training of educators to better understand and support diverse learning needs. Additionally, the NPE 2020 encourages the creation of resource centers in higher education institutions to provide specialized support for students with disabilities.

The Rehabilitation Council of India (RCI):

The RCI, established under the Rehabilitation Council of India Act, 1992, is responsible for regulating and standardizing education and services for persons with disabilities, including those with LDs. The RCI has developed guidelines for the training of special educators and professionals who work with students with LDs. The council also works to ensure that higher education institutions provide the necessary accommodations and support services to students with LDs, as per the mandates of the RPWD Act.

University Grants Commission (UGC) Guidelines:

The UGC, which oversees higher education in India, has issued guidelines to universities and colleges to ensure the inclusion of students with disabilities, including those with LDs. These guidelines include provisions for the creation of disability resource centers on campuses, the training of faculty members, and the implementation of accessible teaching and assessment methods. The UGC also mandates that institutions must provide financial assistance to students with disabilities and ensure that campus infrastructure is accessible.

Strategic Solutions for Supporting College Students with Learning Disabilities

Addressing the challenges faced by college students with learning disabilities (LDs) requires a multifaceted approach that encompasses educational practices, institutional policies, and societal attitudes. Implementing strategic solutions that are both comprehensive and tailored to individual needs is crucial for ensuring that these students can thrive in higher education. The following sections outline detailed strategic solutions across various domains, including academic support, faculty training, technology integration, policy development, and mental health support.

1. Academic Support and Accommodations

Individualized Education Plans (IEPs):

Colleges and universities should develop and implement Individualized Education Plans (IEPs) for students with LDs. While IEPs are commonly used in K-12 education, their extension into higher education can provide a structured approach to accommodating the unique needs of each student. An IEP should include specific academic goals, accommodations, and support services tailored to the student's learning disability. This plan should be developed collaboratively with the student, special educators, and relevant faculty members, and it should be reviewed regularly to ensure it remains effective.

Universal Design for Learning (UDL):

Universal Design for Learning (UDL) is an educational framework that aims to make learning accessible to all students, regardless of their abilities. UDL emphasizes flexibility in teaching methods, materials, and assessments, allowing students with LDs to engage with the content in ways that suit their learning styles. For instance, providing multiple means of representation (e.g., visual, auditory, and kinesthetic materials), expression (e.g., written assignments, presentations, and creative projects), and engagement (e.g., group work, individual projects, and interactive activities) can help accommodate diverse learning needs. Colleges should adopt UDL principles in curriculum design and delivery to create an inclusive learning environment.

2. Faculty Training and Development

Comprehensive Disability Awareness Training:

Faculty members play a pivotal role in the academic success of students with LDs, making disability awareness training essential. Colleges should require all faculty members to participate in comprehensive training that covers the nature of learning disabilities, the challenges faced by students with LDs, and effective teaching strategies. This training should include practical examples of how to implement accommodations, adapt teaching methods, and create an inclusive classroom environment. Regular refresher courses and updates on new developments in disability education should also be provided.

Inclusive Teaching Strategies:

Faculty should be encouraged to adopt inclusive teaching strategies that cater to a wide range of learning styles. This includes using diverse instructional methods, such as multimedia presentations, interactive discussions, and hands-on activities, to engage students with different learning preferences. Faculty should also be trained in how to recognize signs of learning disabilities and how to respond appropriately, whether by adjusting teaching methods, offering additional support, or referring students to campus

resources.

Mentorship Programs:

Establishing mentorship programs where faculty members are paired with students with LDs can provide additional support and guidance. Mentors can help students navigate academic challenges, develop effective study habits, and build confidence in their abilities. These relationships can also foster a greater understanding of the student's individual needs, allowing the mentor to advocate for appropriate accommodations and support within the institution.

Conclusion

The challenges faced by college students with learning disabilities (LD) are multi-faceted, encompassing academic, social, and emotional dimensions. As these student transition from the relatively structured environment of secondary education to the more independent and demanding world of higher education, they encounter unique obstacles that can hinder their academic success and overall well-being. However, these challenges, while significant, are not insurmountable. With the right support, accommodations, and understanding, students with learning disabilities can not only navigate the complexities of higher education but also excel within it.

One of the key takeaways from this exploration is the critical importance of early identification and continuous support for students with learning disabilities. Higher education institutions must prioritize the establishment of robust support systems that begin with a clear and accessible process for students to disclose their disabilities and request accommodations. This process should be designed to empower students, ensuring that they feel comfortable and confident in advocating for their needs.

Peer support and mentoring programs also play a vital role in helping students with learning disabilities integrate into the college community. These programs provide students with a network of support that extends beyond the classroom, helping them navigate the social and emotional challenges that often accompany learning disabilities. By fostering a sense of belonging and community, peer mentoring can reduce feelings of isolation and boost students' confidence and resilience.

In conclusion, the journey of students with learning disabilities in higher education is marked by both challenges and opportunities. While the obstacles are real and varied, they can be overcome through a concerted effort by institutions to provide tailored support, promote awareness, and foster an inclusive campus culture. Ensuring that students with learning disabilities receive the support they need is not just a legal obligation but a moral imperative. It is essential to foster a diverse and inclusive academic community where all students have the opportunity to achieve their full potential. By embracing this responsibility, higher education institutions can contribute to a more equitable and just society, where diversity in learning is celebrated and all students are empowered to succeed.

References

Bhat, C. M. *Navigating Learning Disabilities in Indian Schools and Colleges.* Sage Publications India, 2019.

Brown, Sally, and Phil Race, editors. *The Higher Education Handbook of Academic Support: Addressing Diverse Needs.* Routledge, 2017.

Chopra, Anil. *Learning Disabilities and Academic Support: Indian Perspectives.* Rupa Publications, 2020.

Desai, Aruna, and Meenakshi V. K. *Special Needs Education: Perspectives from India.* Pearson India, 2016.

Florian, Lani. *The SAGE Handbook of Special Education*. 2nd ed., Sage Publications, 2018.

Harrison, Julie, and Mitchell Stevens. *Disability in Higher Education: A Social Justice Approach*. Harvard Education Press, 2016.

Kumar, Sunil, editor. *Education for All: Challenges and Strategies.* Tata McGraw-Hill Education, 2015.

Nair, Rukmini. *Inclusive Education: Addressing Learning Disabilities.* Sage Publications India, 2019.

Ormrod, Jeanne Ellis. *Educational Psychology: Developing Learners*. 10th ed., Pearson, 2020.

Pillai, Rajan. *Inclusive Education in Indian Higher Education: Policy and Practice.* Academic Foundation, 2018.

Rajagopal, K. *Educational Interventions for Students with Learning Disabilities in India.* Vikas Publishing House, 2018.

Schunk, Dale H. *Learning Theories: An Educational Perspective*. 8th ed., Pearson, 2020.

Seth, Indira. *Supporting Students with Learning Disabilities: Strategies and Practices.* Orient BlackSwan, 2017.

Scott, Sally S. *Accommodating Students with Learning Disabilities in Higher Education: A Practical Guide.* College Board Publications, 2018.

Tomlinson, Carol A. The Differentiated Classroom: Responding to the Needs of All Learners. 2nd ed., ASCD, 2014.

Turnbull, Ann, et al. *Exceptional Lives: Special Education in Today's Schools.* Pearson, 2020.

Woolfolk, Anita. *Educational Psychology*. 14th ed., Pearson, 2019.

Representing the Subaltern: A Study of Mahasweta Devi's "Hunt"

-Dr. Mukhtar Ahmad Dar
Assistant Professor of English
Government Degree College Tral
J&K Higher Education Department

"In all my writings I have tried to present the subaltern point of view."

The Subaltern Studies Group was launched in the 1980s by a group of eminent Indian scholars, who in their attempt to restudy the Indian history and society, triggered some controversial issues. Among them is the problematic issue of the subaltern subject and its constitution in the Indian historiography. Since Indian society, despite being democratic and egalitarian, has been grappling with structural inequalities since Independence; a life of oppression, exploitation and marginalization is still a norm for the weaker sections here. Consequently, the issues of social inequalities, oppression and resulting struggles find expression in the writings of several literary authors, both in India and abroad. In India, the theme of subalternity, is running through several contemporary writers like Vikram Seth, Rohinton Mistry, Vikas Swarup, Arundhati Roy, Arvind Adiga, Kiren Desai. One such regional writer who has exclusively dedicated herself to tribal activism is the acclaimed Bengali activist-writer Mahasweta Devi (1926-2016).

A prolific writer of fiction and non-fiction, Devi always wrote in support of the marginalized and downtrodden sections of Indian society. In fact it was her deep activistic zeal and identification of historical phenomena of exploitation and oppression, subjugation and alienation, poverty and illiteracy among the weaker sections of Indian society, particularly Adivasi (tribal) people like the Santhals, Lodhas, Shabars, and Mundas, that inspired her to wield her pen and mark her protest. Chandra Talpade Mohanty in her thought-provoking essay "Under Western Eyes: Feminist Scholarship and Colonial Discourses" argues that Western scholars often identify and treat third-world women in terms of underdevelopment, illiteracy, poverty, religious fanaticism, and over population of particular Asian, African, Middle Eastern, and Latin American countries (5-6). But the adivasi world that Devi discovered and then depicted in her literary oeuvre is contradictory to the Western Orientalist construct. "Unlike the Western-oriented anthropologists, Devi's empathy or, in the deconstructive jargon, 'ethical responsibility' reveals to her the noble primitive" ("Conclusion: A Symbolic Interface" 250). Based on her personal experiences, she, in her works, presents a tribal culture which is more environment friendly and where women hold a place of honour. Rape is a rarity among them and is considered a grave crime deserving death penalty. Instead of dowry system, the system of 'bride-price' is a sanctioned tradition, and widow remarriage is customary. A learning from below has revealed to her their superior culture and civilized graces that are no longer part of the so-called modern mainstream society.

Gayatri Spivak, who is credited for introducing Devi to the West, has theorized the characters of the tribal men and women in her texts as 'subaltern'. While following the postcolonial, post-feminist agenda of decolonizing and deconstructing the socio-political and religious hierarchical institution, Devi inscribes a new sexual/textual praxis in her narratives wherein the gendered subalterns undergo double colonization—one because of their caste, class or ethnicity, and other because of their sex. In fact, while documenting the tensions and struggles in the lives of the gendered subaltern, the sensitivity and ironic intensity of Devi's idiom multiples manifold. In this regard the comments of Colin MacCabe in foreword to *In Other Worlds* are worth quoting:

> The force of Mahasweta Devi's text resides in its grounding in the gendered subaltern's body, in that female body which is never questioned and only exploited. The bodies of Jashoda and Dopdi figure forth the unutterable ugliness and cruelty which cooks in Third World kitchen to produce the First world feast that we daily enjoy. (xxiii)

Although Devi's literary output is categorized either as 'recreation of past' or 'documentation of present', her literary oeuvre generally explores the trident patterns of oppression—class, caste and gender. But rather than treating these trident patterns of oppression as analogous narratives, Devi takes them as "interpenetrative ones". According to the co-editors of *Women Writing in India*, Susie Tharu and K. Lalitha, in Devi's fiction:

> Women's subjugation is portrayed as linked to the oppression of caste and class. But in the best of her writing she quite brilliantly, and with resonance, explores the articulation of class, cast, and gender in the specific situations she depicts. (235)

Besides, an in-depth analysis of Devi's oeuvre reveals a unique kind of subaltern narrative that is effectively expressed by Gail Omvedt's *Dalits and the Democratic Revolution* in these words:

> Things began to change, when someone brought him news of Naxalbari and awakened the spirit of rebellion creating a power of thought to fight for his rights" (11).

Whether it is their resilience or resistance to the oppres-

sion, Devi's subaltern characters set an unprecedented benchmark. All this has been vehemently projected in Devi's famous short story "The Hunt".

"The Hunt" is an English translation of Devi's Bengali short story "Shikar", translated by Gayatri Chakravorty Spivak in 1993. It maps the experiences of Oraon tribals, particularly of a tribal woman, in post-independence India. A story of daring attempt to self-preserve one's identity through violent-resistance, it portrays the contemporary transformation of gender roles and relationships that tribal women are undergoing in everyday life. This transformation of gender roles is represented by a traditional festival called Janiparab (the festival of justice), which provides a base for the cultural ethos of Oraon women. This activity, which although deconstructs the demarcated gender roles, does show that society is, by and large, still regulated by the male worldview. That is why, the speaker states that women "don't know why they hunt for a thousand million moons on this day" ("The Hunt" 12). In the midst of it, Mary, the protagonist, emerges as a powerful voice of gendered subaltern by grabbing the dominant place. As a mouth piece of Devi, she transgresses the patriarchal norms thereby asserting her sexuality and shunning the tag of passive and perpetual victim.

The story exposes and ridicules the colonialist mindset wherein the colonizers consider it their right to exploit tribal women for their carnal desires. Mary, however, mocks at the sexual advances of the mainstream forces embodied in the character of Tehsildar Singh, by using the traditional festival of Jani Parab as a symbol of resistance. Elaborating upon the festival of Jani Parab, Devi writes:

> …the ritual of the hunt that the tribes celebrate at the spring festival is for the women to perform this year. For twelve years men run the hunt. Then comes the women's turn. It's Jani Parab. Like men they too go out with bow and arrow. They run in forest and hill. They kill hedgehogs, rabbits, birds, whatever they can get. Then they picnic together, drink liquor, sing and return home at evening. They do exactly what men do. Once in twelve years. ("The Hunt" 11)

Through this switch over of gender roles, as symbolized by the festival of Jani Parab and executed by Mary, Devi is trying to highlight the fact that aggressiveness, strength, passivity, weakness, courage, bravery are not sex specific qualities but acquired through socio-cultural influence and censorship. This reminds us of Lynda Birke's *In Pursuit of Difference* wherein she argues that the discipline of human biology presents clear-cut differences between sexes with regards to chromosomes, genetics and inheritance. However, while obvious physical differences between males and females exist and develop during puberty, hormonal differences are not absolute. There is a broad range of reproductive anatomy that does not necessarily fit the gender definition of male and female.

Despite being a subaltern, Mary does not let her physiological differences become a hurdle in challenging the power politics of male chauvinist society. Commenting on this aspect of the story Soumen writes:

> [The story] embodies a space that is, no doubt, a site of exploitation by and domination of the society but at the same time it is well equipped with an equally strong, subversive agency to topsy-turvy the whole game" (102).

Since Mary belongs to that culture where "insulting or raping women is the greatest crime" (*Imaginary Maps* xi), she could not tolerate the sexual advances of Tehsildar Singh passively and, therefore, hatches a conspiracy against him. She deliberately invites him on a rendezvous during annual Spring festival, Jani Parab or "the festival of justice" to a secluded place deep in the forest with the sole aim of killing 'the biggest beast of the jungle' and thus solemnize the blood ritual. After killing Tehsildar Singh, she celebrates "as if she has made the biggest kill" ("The Hunt" 16). According to Devi, this event, which made all "the mundane blood-conditioned fears of the wild quadruped" ("The Hunt" 17) vanish from the hearts and minds of tribals, was inspired by a true story and reflects how the tribals use their rituals to resist their social, cultural and sexual exploitation. The same views are expressed by Madhu Singh in these words:

> Devi merges the ritual of the tribal women's hunt with Mary's murder of her suitor, suggesting that indigenous practices still provide a fertile ground for myths that can be deployed to combat contemporary oppressions. (91)

Mary's violent resistance, which Devi considers justified, is also necessitated by the kind of internal colonization which the Oraons undergo in the name of progress leading to catastrophic ecological loss. Under the garb of development, Oraons are deprived of the forest land—the land from which they not only derive their economic sustenance but is a means through which they preserve their culture and identity. Since one of means through which economic social justice in India can be guaranteed is through the equitable distribution of land, the government had made the regulation that the right to the fruits of the trees in the forest areas should go to the picker, and that Land Ceiling Act should be implemented. But the irony as per Devi is that in India "acts are for enactment and not for implementation" (Devi 26). That is why Prasadji has two hundred and twenty five bighas of land, and it is non-tribals like him who have grabbed a large chunk of tribal land and pocket huge profit from Sal trees. The forest protectors, like forest-guard Tehsildar Singh, themselves indiscriminately fell Sal trees; thereby leading to environmental degradation like soil erosion and deforestation. While the tribals—the original inhabitants of the forests, are deprived of all their forest rights and thus forced to live a life of destitution. And it is this destitution and helplessness that forces them to provide cheap labour to these internal colonisers. All this leads to the gradual and systematic annihilation of tribal culture, thereby authenticating the claim that the Indian Independence could not bring much change in tribal lives; only white imperialists were replaced by indigenous oppressors like landowners, contractors and corrupt government officials.

Against these oppressive forces, a machete-wielding Mary emerges as a symbol of power and resistance, as she defends her right of picking the fruit of

four Mahua trees on Prasadji's property. She becomes economically independent by selling custard, apple and guava from Prasadji's orchards and succeeds in getting hard bargains from the wholesale fruit buyers. Besides, she also pastures Prasadji's cattle and emerges as a promising cowherd. It is her economic independence which helps her assert and protect herself from subordination and exploitation. Her ability to do jobs involving physical effort proves her a powerful subversive character. Her victory is the victory of all those subalterns who dare to raise voice against oppression and exploitation. Her voice is the voice of those subalterns who despite facing centuries of subjugation from external as well as internal colonizers have dared to say no to their oppressors. Commenting on this daring act by Mary, Spivak in the 'Translator's Preface' of *Imaginary Maps* writes:

> When the subaltern speaks in order to be heard and gets into the structure of responsible (responding and being responded to) resistance, he or she is or is on the way to becoming an organic intellectual. … Mary Oraon in *The Hunt* is one of those figures. (xxi-xxiii)

Devi not only supports this violent resistance of Mary, but also quite openly justifies it. While talking to Spivak she says, "I think as far as the tribals or the oppressed are concerned, violence is justified. When the system fails in justice, violence is justified." (*Imaginary Maps* xi-xii). To her Mary "resurrected the real meaning of the annual hunting festival day by dealing out justice to a crime committed against the entire tribal society" (*Imaginary Maps* xi). In fact it is a forceful proclamation of resistance against gender politics and a diatribe on the "incursion upon the tribal land and forests by feudalism, colonialism, and global capitalism. As a result, the subaltern figure of Mary Oraon becomes a metaphor for tribals and marginalized people all over the globe" (M. Singh 91).

To sum up, 'The Hunt' while justifying the violent resistance, underlines the significance of indigenous customs and myths which can still prove effective and fruitful in countering the contemporary forms of oppression. The story not only demonstrates "the inconsistencies of patriarchal societies where gender stereotypes and limitations are mostly a socio-cultural and economic state rather than a divine or biological condition" (Karla 55), but also advocates the empowerment and promotion of the socio-economic development of tribal women through awareness and education.

Works Cited:

Devi, Mahasweta. *Dust on the Road: The Activist Writings of Mahasweta Devi*. Trans. and ed. Maitreya Ghatak. Calcutta: Seagull Books, 2010. Print.

---. "The Hunt." *Imaginary Maps*. Trans. Gayatri Spivak. Calcutta: Thema, 2001. Print.

---. *Imaginary Maps*. Trans. Gayatri Spivak. Calcutta: Thema, 2001. Print.

Karla, Arya. "The Case of Mary's Identity as a Reversal of Gender Roles in Mahasweta Devi's "The Hunt"." *Revista Communication*. 19.13.2 (2010): 55. Print.

Mohanty, Chandra Talpade. "Under Western Eyes: Feminist Scholarship and Colonial Discourses." *Boundary 2*. 12.3 (2007): 333-358. *JSTOR*. Pdf file.

Omvedt, Gail. *Dalits and Democratic Revolution*. Uttarakhand. Sage Publications, 1994. Print.

Singh, Madhu. "Crossing Threshold: Radical Notes on Women's Writing from Contemporary South Asia." JPCS 2.4 (2011). Web. 5 Jan. 2015.

Soumen, Jana. "The Problematic of Dalit Space in Sarat Chandra Chattopadhyaya's "Mahesh" and Mahasweta Devi's "Shikar"." *The Criterion: An International Journal in English*. Ed. Vishwanath Bite. 4.6 (2013): 102-103. Print.

Spivak, Gayatri Chakravorty. "Can the Subaltern Speak?" *Marxism andthe Interpretationof Culture.* Eds. C. Nelson and l. Grossberg.Urbana: University of Illinois, 1988. 271-313. Print.

---.*In other Worlds: Essays in Cultural Politics*. New York:Routledge, 1988. Print.

Tharu, Susie, and K. lalitha. Eds. *Women Writing in India* 2nd Vol. New Delhi: Oxford University Press, 1993. Print.

"Conclusion: A Symbolic Interface." *Shodhganga*. N.p. n.d. Pdf. File. 25 Feb. 2016.

*****

A Study of Amrita-Minx Relationship in Shobha De's *Strange Obsession*

-Dr. Kusum Kanger
Associate Professor,
Department of English
BAR Janta College, Kaul, Kaithal, Haryana, India

Abstract
Shobha De's *Strange Obsession* narrates the intense and tumultuous relationship between Amrita and Minx, marked by an unhealthy obsession, lust, jealousy, and manipulation. Minx's mental fixation disrupts Amrita's life, pulling her into the complexities of same-sex desire. The novel explores themes of infatuation, domination, unbridled desire, and psychological control within a patriarchal framework, transcending traditional notions of friendship and romance. Minx, whose domineering and compulsive behaviour reflects deeper psychological and cultural concerns, entangles Amrita, a young and highly ambitious model, in a toxic and possessive relationship that profoundly impacts her personal and professional life. The narrative raises critical questions about consent, autonomy, and the psychological effects of unhealthy relationships. Through the unnerving interplay between Amrita and Minx, Shobha De masterfully examines the intricacies of interpersonal dynamics, offering a nuanced critique of gender, identity, and power within a patriarchal context. Rakesh helps Amrita at different situations. Minx's sinister scheme puts the newlyweds in a humiliating and extremely unpleasant scenario.Rakesh steps in quickly to save Amrita and pulls her away from danger as Minx, in a moment of craziness, sets the hotel room on fire. In the midst of confusion, his prompt decisions and actions show that he is willing to put himself in danger to keep her safe. In the midst of confusion, his prompt decisions and actions show that he is willing to put himself in danger to keep her safe. This paper attempts to depict Amrita's dreams of becoming a model and how she becomes a victim when Minx forces her into lesbianism. Their mutual relationships and Amrita's efforts to escape this vicious cycle have been analysed in this paper.

Keywords: Shobha De, *Strange Obsession*, Homosexuality, Lesbianism, Amrita, Minx, Toxic Relationships, Same-Sex Desire, Gender Dynamics.

Introduction

Pioneering Indian author, columnist, social commentator, and former model, Shobha De has made a name for herself in Indian literature. Her unabashed depiction of sexuality, relationships, and the intricacies of human emotions has earned her recognition as a daring and courageous voice. Shobha De, who was born in Satara, Maharashtra on 7 January 1948, attended St. Xavier's College in Mumbai, where she graduated with a degree in psychology before pursuing a career in journalism. She became known for her incisive, unrepentant writing style while editing prestigious magazines like *Society* and *Stardust* early in her career.

Shobha De's first novel, *Socialite Evenings* (1989), provided a sharp glimpse into the glamorous but frequently meaningless lifestyles of India's elite and marked the beginning of her writing career. Her other notable works are *Starry Nights* (1990), *Sultry Days* (1994), and *Second Thoughts* (1996). These novels explore the complex challenges faced by individuals, especially women, within a patriarchal system, as well as the relationship between privilege and power. In her book *Feminism: A Paradigm Shift*, Neeru Tondon writes, "Shobha De shocks the very ethics and taboos of the society....which makes her able to stand with Simone de Beauvoir, whose name itself symbolizes the very spirit of feminism" (Tondon 179). These novels are distinguished by their daring themes and sharp storylines. Shobha De's works have continuously questioned social taboos, addressing issues such as identity exploration, marital strife, and sexuality.

Many people have disparagingly referred to Shobha De as a writer of "pulp fiction," and she has been called "Vatsyayani," "Soft Porn Queen," "Pasha of Pulp," and "Vamp Feminist." These labels capture the controversy and opposition her writing has encountered in a patriarchal, traditional society that is ill-equipped to handle her daring stories. In certain circles, her open depiction of love and sex has caused her to be shunned by "serious writers." She has been praised for her writing style but she has been criticized for the frank discussion of sex:

> Shobha De, "the Empress of Erotica" (a title used by an Australian reviewer of her books: Singh, 1994: 15), writes romance/sex novels that are just as steamy in their portrayal of sexual adventure as Western fiction (for example, *Starry Nights* and *Socialite Evenings*).

However, in her books, the sexual expertise of Indian men and women contrasts with the tight, repressed Western white woman (Bulbeck 130).

Shobha De's literary works prove her to be a profoundly sensitive and bold writer in spite of criticism. She has the courage to tackle subjects and problems that are frequently marginalized in Indian literature. Lesbian feminism, an ideology that encourages women to focus on their identity and solidarity with other women, is more prominently addressed in her works than the complexities of man-woman interactions. In India, where such subjects were frowned upon, this thematic focus was revolutionary. Simone de Beauvoir, as pointed out in *The Second Sex,* writes:

> The lesbian, in fact, is distinguished by her refusal of the male and her liking for feminine flesh; but every adolescent female fears penetration and repulsion for the male body. On the other hand, the female body is for her, as for the male, an object of desire. (Beauvoir 427).

Shobha De has continued to hold fast to her beliefs in spite of criticism and derogatory labels. In addition to sparking discussions, her bold style has expanded the definition of Indian English fiction. Her daring storytelling style continues to inspire and question social standards. Shobha De, who currently resides in Mumbai, is still a significant figure in Indian literature and culture. Her creations bear witness to her spirit of innovation and her commitment to delving into the undiscovered realms of interpersonal interactions and social structures. Through the characters of Amrita and Minx, Shobha De's *Strange Obsession* explores the psychological and emotional depths of interpersonal relationships and offers a striking depiction of infatuation, manipulation, and vulnerability. Dr. Naresh K. Vats writes about this novel:

> *Strange Obsession* is different from other novels of Shobha De, which deal with the theme of the refusal of modern Indian women to carry the load of traditional morality and their liberation from the dictates of a traditionally male-chauvinistic society. (Vats 1)

The Parallel Lives of Amrita and Minx

There is a similarity in Amrita and Minx's relationship that draws attention to their divergent emotional styles. In her proclamation, Minx makes it clear that she has an obsession with Amrita, "I am in love with you. I love you. It is not sexual. I don't wish to go to bed with you. All I want is to be around you. That's all" (De 22). This assertion highlights Minx's obsession, which extends beyond physical attraction to a pervasive demand for emotional intimacy and dominance. Her materialistic actions, such as buying Amrita an air conditioner and severing her watchband in a cemetery, are examples of her obsessive behaviour. Her attempts to show love and establish her authority are symbolized by these behaviours. On the other hand, Amrita doesn't show any emotion. Amrita's unwillingness to reciprocate is evident when Minx tries to establish a closer bond. Amrita is a victim of circumstance since she lacks the same emotional intensity as Minx, despite Minx's best attempts. Chandrakant R. Mandlik writes, "Through the character of Amrita Agrawal, the novelist Shobha De demonstrates her interest in reflecting the adult world of competitions" (15). Dr. R. Bharathi writes about Shobha De:

> Shobha De doesn't raise her voice against women's oppression from people; she reveals just how independent women are fighting to obtain their autonomy and goal. She portrays the modern way of life of women who live so that they have unlimited freedom" (Bharathi 1485).

Minx's Manipulative Tactics

Minx uses deceit as a tactic to get close to Amrita. She purposefully tries to arouse Amrita's pity by narrating her tragic past—being seduced by her father. Minx solidifies her position in Amrita's life by forging a relationship with her parents and getting their consent to be with her. The artificial character of their connection, which is based on coercion rather than mutual consent, is highlighted by this forced intimacy. Minx's fascination turns into physical contact in a crucial scene:

> Amrita lay back against the pillow inertly. Her mind switched into a dream-like state. She shut her eyes and ceased to think, freely surrendering to Minx, who was over her, moving her hands tenderly along the length of her body, caressing her face, kissing her softly. She felt Minx's fingers unbuttoning her linen jacket … and she did not resist. (De 94)

The Unequal Dynamics of Power

There is an inherent imbalance of power between the two ladies. Minx's obsession with their connection stands in stark contrast to Amrita's hectic schedule and professional goals. Minx's life is completely focused on her obsession with Amrita, while Amrita tries to manage her modeling career. Due to this discrepancy, Amrita is forced into a relationship she does not want, which suffocates her. Minx's power is further demonstrated in the restroom scene: "Minx held Amrita close and buried her face between her breasts, repeating, 'My poor darling, my sweetheart…' The bathtub was full of water. There were rose petals on the surface. Minx pushed Amrita into

the warm tub and undressed herself. Minx lowered herself down and lay by her side, holding her by the shoulders and helping the water over her body. She asked, kissing her wet mouth and opening with her tongue. Amrita's body, soaked and relaxed, began to respond to Minx's pleasuring" (De 108). This scene vividly portrays Minx's inability to respect boundaries and her relentless pursuit of intimacy.

Minx's Desire for Sex Transformation

Minx's obsession extends to a desire for physical transformation. She considers undergoing a sex change operation to fulfill her sexual desires, demonstrating the depth of her fixation. Obsessive attachment is whether caused by "an alternation of unusual gratifications and unusual frustrations..... [or] a concurrence of instinctual gratifications with security gratifications". (Fenichel 305). When Amrita challenges her by asking, "But will that make me pregnant? Will you fill my womb with a child? Answer me?" (De 110), the futility of Minx's actions becomes evident. Her pursuit of satisfaction is rooted in an unachievable ideal, highlighting the destructive nature of her obsession. Gajendra Kumar writes in his paper *"Strange Obsession: A Critical Study:*

> Shobha De's explosive novel revolves around the life and lustful relationship of two young women, Amrita and Minx. Fundamentally, it seems to be a psychological documentation of the sexual obsession of the mysterious woman Minx, also known as Minx, and her calamitous end. According to him, both of them represent the different kinds of topology of the modern urban set-up. … It is through their behaviour and conversation that Shobha De throws significant light on the predicament of these two young women—Minx and Amrita" (Kumar 228).

The Turning Point: Amrita's Escape

The twist in the story comes when Amrita chooses to wed Rakesh in an attempt to break free from Minx's control. Minx responds with aggression and desperation. By approaching Amrita during her honeymoon and displaying damning photos, she tries to ruin her new life. Her behaviour during this time oscillates between anger and sadness, reflecting the desperation of a wounded animal. Rakesh, with his genuine affection and supportive nature, represents a beacon of normalcy and stability in Amrita's otherwise tumultuous life. Unlike Minx, who embodies obsession and manipulation, Rakesh offers her a chance at a relationship built on mutual respect and care. Amrita's choice to marry him is both an act of defiance against Minx and a step toward rebuilding her identity and independence.

Marriage to Rakesh also symbolises hope—a fresh start away from the shadow of Minx's destructive influence. For Amrita, this union is not merely about love but survival. She seeks to fortify herself emotionally and physically against Minx's relentless attempts to control her. Ultimately, her decision reflects a courageous effort to regain her freedom and navigate a path toward healing and self-reclamation amidst the chaos.

Minx's Plan

A slew of terrifying incidents marks the start of Amrita's married life. Rakesh, her husband, vanishes from their hotel room during an early morning stroll the day after their wedding. Amrita panics until she discovers that Minx, a woman with malicious intent, has lured him into her room. Minx has a sinister scheme in mind. She forces the newlyweds to strip and engage in intimate acts in front of her, humiliating them and robbing them of their dignity. She expresses her twisted joy, "This is heaven. I couldn't have dreamt of a better end to our love story. Darling, I can't tell you how happy you've made me… so happy. I could die right now. This minute" (De 205). This moment underscores the extent of Minx's psychological deterioration and her inability to separate love from control. But Minx's madness does not stop there. Consumed by a terrible fixation, she attempts a shocking act—setting the room on fire with the intent of destroying everyone in a blazing inferno.

As the flames rise, Rakesh acts swiftly, dragging Amrita to safety and attempting to save Minx despite her malicious deeds. In the chaos, both Rakesh and Minx suffer severe burn injuries and are rushed to the hospital in critical condition. The trauma proves overwhelming for Amrita. In a single day of marriage, she has endured betrayal, humiliation, and the looming spectre of death. While Rakesh's brave act demonstrates his humanity, it leaves emotional and physical scars that will last a lifetime. As Amrita reflects on Minx's actions, driven by an inexplicable insanity, she grapples with the fragility of trust and the unpredictable challenges life presents. Sitting in the hospital hallway, awaiting news of Rakesh's condition, Amrita vows to reclaim her life and rebuild her marriage's integrity.

Conclusion

Shobha De explores the darker aspects of interpersonal relationships in *Strange Obsession*, particularly the dynamics of vulnerability, power, and control. The relationship between Amrita and Minx serves as a sobering lesson on the importance of emotional boundaries and consent. By juxtaposing Amrita's struggle for independence with Minx's compulsive behaviours, De provides a compelling examination of individuality and resilience. Ultimately, the book offers a poignant reflection on the necessity of

fostering healthy, respectful relationships while cautioning against the perils of emotional dependency and manipulation. M. Premalatha and T. Deivasigamani observe, "Shobha De's *Strange Obsession* is a strong case where we have specimens of a woman who is the victimiser and another who is the victim" (232). Astha Mangal writes in her paper "How Dreams are Shattered: Dark Pictures of Film Industry As Revealed in Shobha De's Novel *Strange Obsession*,"

> Shobha De's novel *Strange Obsession* delineates the cruel and bitter pictures of the film industry. The girls who dream to become cine-stars must be alert at every step because people look for an opportunity to molest them and ruin their career. Shobha De has successfully painted the stark realities of the glitz world. (194)

Works Cited

Anusooya, P., and T. S. Ramesh. "Visibility Comes with Otherness: A Study on Overcoming Self-Stigmatization in the Novels of Shobha De." *Think India: Quarterly Journal*, vol. 22, no. 3, July–Sept. 2019, pp. 1412–19.

Beauvoir, Simone de. *The Second Sex*. Penguin Books, 1972.

Bharathi, R. "Confrontation and Transformation in Shobha De's *Strange Obsession*." *Journal of Information and Computational Science*, vol. 9, no. 11, 2019, pp. 1481–85.

Bulbeck, Chilla. *Re-Orienting Western Feminism: Women's Diversity in a Postcolonial World*. Cambridge U P, 1997.

Coleman, James C. *Abnormal Psychology and Modern Life*. D.B. Taraporevala Sons & Co., 1988.

De, Shobhaa. *Strange Obsession*. Penguin, 1992.

Kumar, Gajendra. "*Strange Obsession*: A Critical Study." *Indian English Literature: A New Perspective*, Sarup & Sons Publishers & Distributors, 2001.

Mandlik, Chandrakant R. "The Study of Woman-to-Woman Relationship in Shobha De's *Strange Obsession*." *Academic Research*, vol. 12, no. 1, Oct. 2017, pp. 15–19.

Mangal, Astha. "How Dreams Are Shattered: Dark Pictures of the Film Industry as Revealed in Shobha De's Novel *Strange Obsession*." *The Expression: An International Multidisciplinary e-Journal*, vol. 3, no. 5, Oct. 2017, pp. 190–95.

Premalatha, M., and T. Deivasigamani. "Image of Lesbianism in Shobha De's *Starry Nights* and *Strange Obsession*." *The Criterion An International Journal in English*, vol.5, no. 4, August 2014, 228–34.

Tondon, Neeru. *Feminism: A Paradigm Shift*. Atlantic Publishers and Distributors, 2008.

Vats, Naresh K. "The Escape: *Strange Obsession*." *Shobha De: A Critical Response*, Creative Books, 2010, pp. 1–5.

Yadav, Dr. Shalini. "The Repercussions of Childhood Experiences and the Resultant Neurosis: The Heights of Criminality and Fixation in Shobha De's *Strange Obsession*." *European Journal of English Language and Literature Studies*, vol. 2, no. 3, Sept. 2014, pp. 30–37.

*****

The Emergence of the New Woman in Anuradha Roy's *All the Lives we Never Lived*

-Dr. Kusumita Mukherjee Debnath
Assistant Professor and Head
Department of English
Rajganj College, Jalpaiguri, West Bengal

Abstract

Anuradha Roy, in her novel, *All the Lives we Never Lived* has depicted a historical era. The position of women in pre independence India is the prime focus of the novel. The protagonist, Gayetri, is an exceptional woman who wants to live life on her own terms. She is an artist who has the guts to leave her home and her child behind to pursue her dreams. Being confined to an oppressive home, she chooses to break down all barriers before her. The attitude of her estranged son towardsher provides the opportunity to analyze her in the role of a mother. Do we hold her guilty? Or do we celebrate her mettle? The views of distinguished Indian feminists like Pandita Ramabai, Savitribai Phule, Ramabai Ranade, Anandi Bai Joshi, etc. have been considered in this context. Gayetri's personality and her choices have been interpreted from a feminist perspective. The character of Lipi, the second wife of Gayetri's husband has also been considered. Unlike Gayetri, Lipi is a simple woman who adheres to the traditional rules of domesticity. But she too fails to bear the repressive attitude of her husband Nek Chand. She stages a vehement protest against his restrictive handling of her. Another woman portrayed in the novel is Mukti Devi. While Gayetri and Lipi are married women, Mukti Devi is a single woman who has devoted her life to the nation. She is the ideal woman in Nek Chand's view for having sacrificed all luxuries of life and in being devoted to the cause of the nation. There are a few other minor female characters like Lisa McNally, Beryl de Zoete and Queen Fatima besides these major ones. All these women are exceptional in their own ways. The novel motivates us to evaluate our perception of womanhood with respect to these women characters portrayed in it.

Keywords: Feminism, Historical Novel, Motherhood, Nationalism, New Woman, Gender Discourse.

What constitutes a woman? —is a question that we often come across. The chief purpose of a woman is to be a caregiver according to most societies all over the world. Patriarchal societies construe her to be a person born to serve everybody else other than herself. Universally womanhood is equated with motherhood. Even today her reproductive function makes her valuable. In a world that is used to sing praises of unselfish maternity Anuradha Roy's Gayetri Rosario is an anomaly.

Roy creates the new woman in the persona of Gayetri. A rebel who defies social norms to pursue her dreams. In fact, Gayetri is not the only new woman we get to see in the novel. There are others as well who are misfits to the traditionally ascribed role of woman. For example, Lipi, Mukti Devi, Lisa McNally, Beryl de Zoeteand Queen Fatima. But Gayetri is cut above the rest. She leaves her family, more surprisingly her son not for the sake of the love of a man (as it so happens in most cases) but to realize her dreams to be an artist.

The novel *All the Lives we Never Lived* was published in 2018 but is a historical novel as it describes events in the pre-independence India. So, it is important for us to understand the position of women in India during that period. In that era women were hardly allowed education much less have a profession of their own. The only option available to women of the period was to get married and take care of her in laws and offspring. It is not wrong therefore to assess Gayetri as a new woman who has the guts to defy the norms of her time.

Indian culture has traditionally seen women restricted to household duties. Manu, the lawgiver of the Hindu religion, has stated: "Women were created for the express purpose of giving birth, hence they are worthy of worship, the light of the house" (Chakravarti 66). A study of the social norms of the time shows us that nothing much had changed since Manu had given his dictates about women. Padma Anagol has quoted Radhabai who comments about the traditional role of women in the nineteenth century:

> This traditional view of women as nurturers, providing the family with security and care within the home (i.e., nursing the elderly and the proper care of children) was reinforced by the 'Advice Manuals' that male publishers and distributers and editors produced for housewives in the nineteenth century. (Cited in Anagol 82-83)

The same autocratic tone was adopted by the narrator's Arjun Chacha in Roy's novel while he offered advice to Gayetri's husband Nek about managing his wife, "What families need----what this country needs—is benign dictatorship…Gayetri's a lively girl…. When will you take charge of your own ship?" (Roy 76). This advice had been given to him because according to others and Nek Chand himself he was a 'tolerant' husband. When he tried to prove that he was more progressive than other husbands of the time Gayetri responded in her typical manner: "So my free-

dom is something you store in a locked iron safe? To dole out when you see fit?" (Roy 36).

This type of retort from an ordinary housewife in early twentieth century India was perhaps novel. But it is to be noted that the second wave of feminism was developing in this nation. Women were becoming more vocal about their rights. Sarojini Naidu helmed several movements by women to enable them to secure their rights. She has observed the following about the thrust area of the Indian women's movement in the early 20th century:

> The supreme over lordship of man particularly that of the husband is strongly questioned. The women seek to have their own free choice in the selection of partners in life, the right to enter the state of Motherhood when and if they desired, to seek divorce if necessity arises. These are some of the problems upon which the movement is working. (Cited in Forbes 24)

Anuradha Roy's Gayetri is framed along these lines. She contested the right of her husband to be her overlord; she exercised her free will in choosing a mate, Brijen; She admitted to being forced to enter the state of Motherhood and though she did not seek divorce from an unhappy marriage, she deserted her husband and child.

Education can change a lot in a human being. Indian feminists like Pandita Ramabai, Savitribai Phule, Ramabai Ranade strived hard to bring the fruits of education in the ambit of women. But despite their attempts Indians were by and large opposed to the education of women. The general opinion was that education will ruin the homely attributes of women. Even some women reformers thought that the best possible education for their kind was a knowledge that allowed them to run their households smoothly. Krishnabai Malvadkar, the editor of the women's magazine *Simantini* propounded the following view:

> …I interpret the word education as follows, 'Learn everything which is necessary for the efficient maintenance of a household', which means learning to read and write Marathi…and any skill that contributes to domestic matters. (Cited in Anagol 82)

This fear that a complete education would broaden the horizons of a woman and fail to restrict her in the domain of the household does not seem unfounded. Once the woman got educated, she wished to join respectable professions of doctors and teachers like their male counterparts. This was proving a threat to the sovereignty of man. Hence, they reacted trying to prevent it all costs.

But Gayetri's father was of a different view. He had the rare insight to see that his daughter was gifted. Unlike other men of the time who construed that the sole aim of women's talents was to 'work as bait to catch a husband'; Gayetri's father, Agni Sen "had seen a spark inside his daughter that could light up whole cities" (25). He got tutors for his daughter to enable her to learn languages and painting as well as dance and classical music. The narrator notes Agni Sen had done something radical since at the time women sang and danced to entertain rich men hence daughters of honourable families found it below their dignity to study dance.

This sentiment was mirrored by Nek Chand's friend Arjun when he got to know that Gayetri had gone to study dance. He declared, "Study Indian dance? What is there to study, my friend? Dance was invented so that men could look at women, not for women to look at women" (Roy 73).

Though Gayetri's father educated her and taught her music, dance and art her brothers got her married as soon as their father deceased. Her marriage was a complete disaster for her husband who had apparently married her being attracted to her brain had left no stone unturned to hinder her intellectual pursuits. He had often branded them as 'hobbies'. Once, in a whim to control the artistic side of her life Nek Chand had removed her newly purchased paints and brushes. Gayetri was furious. When he returned them, Gayetri violently disposed them to give vent to her anger.

In a letter written by Gayetri to her friend Lisa, was where the former said that she had never intended to get married at all. She had wanted to live a life on her own terms. She wrote in the letter, "I should never have been married at all." (247) She said then she would have done 'less damage'. Mirroring the views of many a feminist she said that after her father's death her mother owned her who transferred her to Nek Chand and then he owned her.

Her few interactions with her husband bring out their incompatibility. When her husband reprimanded her for openly interacting with unfamiliar foreign nationals, she retorted by saying that in the age that women were flying airplanes it was rather strange of him to prevent her from doing something as ordinary as talking to strangers. Anandibai Joshi had commented on this patriarchal insistence on the 'purdah' system, "There is so much of the Zenana system here that a woman can scarcely stand in the presence of her relatives,—much less before her husband. Her face is always veiled. She is not allowed to speak to any man,—much less laugh with him." (Cited in Anagol 80).

Like on most other topics Nek and Gayetri did-not agree on the idea of freedom. Nek Chand was a Gandhian nationalist who believed in a life of frugality. To which Gayetri responded by saying, "What good will the great nation's freedom do for me?...Will it make me free? Will I be able to choose how to live" (Roy90). Nek Chand demoralized her and remarked that her notion of freedom was 'superficial'. Gayetri was undaunted by his regressive comments instead made a somewhat prophetic remark:

> Do you know what I would do if I were free at this minute? I would leave this house. I would

> go away and never come back. I would go to Santiniketan and fall at Rabi Babu's feet. I would beg him for sanctuary. I would paint. I would be able to look at the sky without feeling it's a glass jar under which I'm trapped. (Roy 91)

In another letter to Lisa, she described the way in which Nek Chand devalued her. He used to humiliate her at every chance. He instigated his friends to laugh at her, "He ridiculed the books I read and the paintings I made." (223). It is not that she had never known a man's love. She was in an adulterous relation with the brother of her husband's friend Brijen. But her individuality was such that she undermined this love for the sake of her intellectual pursuits. He had offered to take her away from her oppressive home to Bombay. But she had refused. She clarified her stand on love thus, "I want nobody. I need to be absolutely free…. Maybe it is my ownself-love that I saw in him and was disgusted by" (Roy 262).

Gayetri left her home to find herself. To establish her identity as an artist. But pangs of remorse never left her alone. She was often depressed by her betrayal of her son Myshkin, the narrator. She was not the ideal mother as she herself had accepted, "No, I was not cut out to be a mother" (Roy258). She recounted how at times she forgot her son's medicine and even his meal when he was sick. She would lessen her guilt feeling in this by spoiling him. In a letter dated 10th July 1937, Gayetri had written to Lisa that her mother would condemn her for having forsaken her husband and child. And in another letter to Lisa dated 10th April 1938 Gayetri made an observation about herself, "I am the wicked, evil witch who left my husband and child and home. In the old days they would have stoned me to death or buried me alive" (Roy 253).

This was what others thought about her. But she did not share their feelings. In a letter to Lisa dated 30th July, Surabaya, she had shown her fortitude by writing, "…how everyone must think me an ogre for what I have done. Strangely, that did not make me feel unhappy in the least. Let people think what they will. I know what I am and I know what I intend to do. I have never been more certain" (Roy 232).

In contrast to the freedom that Gayetri exhibited we find the exasperation of the society at large with her rebellious act. The narrator recounted that 'poisonous whispers' followed his father wherever he went for the scandal his mother had caused the family. For instance, Dinu's mother, their next-door neighbour, would find Gayetri's escapade ridiculous. According to her there was no substantial reason for Gayetri to leave her home as neither did her husband physically abuse her, nor made her do menial labour. On the top of it he did not have another woman in his life.

It is all the more significant to note the feelings of disdain in the heart of the narrator for his mother. It is to be remembered that as a boy it was but natural that he adhered to the patriarchal view of women regardless of the fact that he was talking about his own mother who he had himself witnessed to have been wronged against by his father. He nonchalantly compared his mother to the other women he saw around him. He said that his mother was never subjected to observing the 'purdah' or was forced to serve her husband and do normative household chores like embroidering and knitting. According to him his mother was indiscreet in deserting her family because, "My mother had the liberty to do whatever she wanted, go where she pleased, wear what she wished—within reason" (Roy 141). These two words, "within reason" are a sufficient indicator that the young boy narrator ascribed to the same patriarchal ideals as his father. What he said next about the desertion of his mother however is more acceptable coming from a lonely boy who missed his beloved parent:

> I am making myself read of others like her, I am trying to view my mother somewhat impersonally, as a rebel who might be admired by some, an artist with a vocation so intense she chose it over family and home.
>
> As a child abandoned without explanation, I had felt nothing but rage, misery, confusion. (Roy146)

What the deserted child cannot fathom must be understood from the perspective of a woman. How can motherhood doom a woman? Why must she be denied her rights to practice whatever she delights in? People tend to forget that a woman is an entity on her own. She might have her own aspirations other than looking after her family. Sheila Kitzinger reminds us, "Mothers not only bear and, usually rear children, nor exist to give men descendants, but are people in their own right." (Cited in Bagchi 21)

Roy's novel is a testament on women's plight and their attempts to secure their rights. It becomes so because apart from Gayetri, Roy portrays five other women, namely, Lipi, Mukti Devi, Lisa McNally, Beryl de Zoete and Queen Fatima who dared to live life on their own terms. The first one, Lipi, the second wife of Gayetri's husband Nek was portrayed to be a meek, submissive woman till she reached the end of her patience. Lipi's sudden revolt came as a shock to all. She had proved to be the model wife till Nek Chand had disallowed her the right to dress as per her wishes. Lipi had dressed in a fashionable sari to visit the concert held next-door. Nek Chand had displayed his disdain at this because he had always provided her with simple cotton saris and this display did not, please him. He had forbidden her to visit the concert on the grounds that her daughter Ila would disturb the peace at the concert by crying. This had such an impact in her that she had set a fire to all of Gayetri's possessions and the possessions of her husband as well. She was so worked up that it proved difficult to stop her. She had torn the skin on Nek Chand's neck with her nails all the while claiming, "I want to die" (Roy 203). This incident was not forgiv-

en for quite some time by Lipi. She lay in bed refusing food for several days after this.

Nek Chand was a failure as a husband. Gayetri and Lipi both exhibited this. He was a chauvinist who could never understand and value the women around him settling only for the ideal of womanhood, Mukti Devi. To him, "She (Mukti Devi) is an inspiration to all women—this is what liberation of women in about" (Roy 125). Mukti Devi was portrayed by the narrator to be a singular woman with a great resolve to follow that path endorsed by Gandhiji. No reference was made in the novel to her family. She was revered by the masses and especially Nek Chand for her nationalist activities. The narrator informed us, "The truth was that the British feared her influence. They were finding it difficult to dismiss her as a crank now that her morning sermons drew two hundred people" (Roy124).

The other single woman who is portrayed in the novel is Lisa. Lisa was the closest friend of Gayetri. She singlehandedly ran a boarding house. Gayetri was in awe of her and said, "…but do you know how much I have always admired you for the way you make living alone and fending for yourself appear a constant celebration?" (Roy 230). There is also the figure of Beryl de Zoete. She was unique as she travelled alone with William Spies in an attempt to learn about the art of dance. She too was a single woman with purpose in sight who wanted to make a mark with her intellectual pursuits. Finally, Gayetri in one of her letters written to Lisa gave an account of the fiercely independent Queen Fatima whom she met at Ubud. Fatima's self-assurance had seemed irksome even to the progressive Rabindranath Tagore. But to Gayetri:

> …she's not forward, she's forceful. She is sure of herself and lives by her own means—runs her own taxi serviceand her own shop and orders her staff round and bosses over her daughters and spits her tobacco juice as far into the corner as any man—I suppose these things mark her out as forward. (Roy 235)

This defensive attitude of the Indian males towards empowered women was an indicator of their fear. They felt that their job opportunities would get reduced if women too had an access to it. An article entitled, "Women's Welfare" published in the journal Maharashtra Mahila in August 1901 argued, "The real reason why women are not given such responsible jobs is due to the male sex's desire to reserve the entire job sector for themselves." (Cited in Anagol 87).

The patriarchy has been criticised for its backward stance on women in Roy's book. While Nek Chand was able to appreciate the revolutionary activities of Mukti Devi on the grounds that they were for the sake of the motherland he had branded Gayetri's intellectual pursuits as mere 'hobbies'. In a review published in the Time magazine this issue is upheld:

With her characteristically light touch, Roy shows how the world applauds men's political acts and overlooks their domestic behavior, a luxury rarely afforded to women who chase their own desires. (Bajekal, "The Personal Gets Political in the Masterful New Novel All the Lives we Never Lived", Time, 8 November, 2018.)

Anuradha Roy in her Sahitya Akademi Award winning novel, *All the Lives We Never Lived* has attempted to portray the new woman. A woman who is not bogged down by the demands of family; a woman who dares to fend for herself; a woman who aspires to fulfil her dreams not matter what the cost. Gayetri, Lipi, Mukti Devi, Lisa McNally, Beryl de Zoete and Queen Fatima all attempt to transcend the barriers that patriarchy puts on their path. They are successful to a certain extent. They are the agents of change that Sarojini Naidu wanted to create.

Works Cited

Anagol, Padma. *The Emergence of Feminism in India, 1850-1920*. Routledge: Taylor and Francis Group, 2005.

Bagchi, Jasodhara. *Interrogating Motherhood*. Sage, 2017.

Chakravarti, Uma. *Gendering Caste*. Sage, 2018.

Forbes, Geraldine Hancock. *Women in Colonial India: Essays on Politics, Medicine and Historiography*. Chronicle Books, 2005.

Roy, Anuradha. *All the Lives We Never Lived*. Hachette, 2018.

https://time.com/5448809/all-the-lives-we-never-lived-book-review/.

*****

Cultural Dissonance and Gendered Alienation: Gauri's Dual Worlds in Jhumpa Lahiri's *The Lowland*

-Suruchi Sharma
Associate Professor,
Department of English
RKSD College, Kaithal, Haryana, India

Abstract
Jhumpa Lahiri's *The Lowland* poignantly conveys the complexities of cultural dissonance and gendered alienation through the life of Gauri, the central female character who is trapped between patriarchy and self-liberation. This paper explores Gauri's journey of alienation, examining her estrangement from both her adopted life in America and her cultural roots in India, to investigate how displacement exacerbates identity fragmentation. Gauri represents the struggles of individuals navigating dual worlds, torn between her past in Tollygunge—haunted by the death of her revolutionary husband, Udayan—and her quest for independence in the United States. Her story illustrates that cultural displacement is more than just a physical move; it causes profound emotional and psychological ruptures that destabilise identity. Through Gauri's narrative, *The Lowland* highlights the subtleties of gendered estrangement and cultural discord. The novel underscores the challenges faced by women who defy traditional norms and seek autonomy, revealing how such pursuits often come at a significant emotional cost. By analysing Gauri's fragmented identity and her rebellion against patriarchal structures, this study sheds light on the intricate intersections of migration, memory, and gender politics.
Keywords: Jhumpa Lahiri, *The Lowland*, Cultural Dissonance, Gauri, Gendered Alienation, Identity Fragmentation, Patriarchal Norms, Transnational Migration, Indian Diasporic Literature.

Introduction

Born as Nilanjana Sudeshna and known as Jhumpa Lahiri is a renowned Indian diaspora woman writer celebrated for her profound examinations of identity, migration, and cultural displacement. She was born in London, England on 11 July, 1967. Raised in a Bengali immigrant household in Rhode Island, USA, her upbringing significantly influenced her literary works. Lahiri got her education from Boston University, earning multiple degrees, including an MFA in Creative Writing, an MA in Comparative Literature, and a PhD in Renaissance Studies. She also attended Barnard College, where she obtained a BA in English Literature. Her robust academic foundation laid the groundwork for her illustrious writing career.

Lahiri became a literary sensation after winning the Pulitzer Prize for Fiction in 2000 for her debut collection of short stories, *Interpreter of Maladies* (1999). Her subsequent works, such as *The Namesake* (2003), *Unaccustomed Earth* (2008), and *The Lowland* (2013), have garnered critical acclaim for their intricate narratives and poignant portrayals of immigrant life. *The Lowland* was shortlisted for both the National Book Award and the Booker Prize. Additionally, Lahiri has explored Italian literature, translating and authoring works such as *Whereabouts* (2021) and *In Other Words* (2016). Her achievements include honorary doctorates from prestigious universities and numerous accolades, including the DSC Prize for South Asian Literature and the PEN/Hemingway Award.

Jhumpa Lahiri's *The Lowland* is a deeply moving novel that skillfully weaves themes of love, grief, guilt, and the enduring impact of political turmoil on individual lives. Set against the backdrop of the Naxalite movement in India and spanning continents, the story of the novelnarrates the consequences of choices and sacrifices across generations. Among its richly developed female characters, Gauri Mitra emerges as a pivotal yet enigmatic figure. Her journey is marked by significant personal growth, moral dilemmas, and an unrelenting quest for meaning and identity. The present paper aims to offer a detailed analysis of Gauri Mitra's character development, exploring the motivations behind her actions and decisions. Furthermore, it also aims to examine how her narrative intertwines with the broader themes of selfhood, displacement, and societal expectations that permeate *The Lowland*.

Gauri's Background and Early Life

Gauri's early years are spent in a typical Bengali home, where cultural norms and societal expectations greatly influence who she is. She stands out in a culture that frequently restricts women's aspirations because of her early intellectual curiosity and love of philosophy. Her interest in concepts and abstract thought suggests that she wants to transcend the limitations placed on her gender and status by society. Gauri is a rare breed girl, "She prefers books to jewels and saris" (56). An important period in her life is marked by her marriage to Udayan, a charismatic and intellectually motivated revolutionary. Through Udayan's involvement in the Naxalite struggle, Gauri is exposed to a world of political idealism and peril. Although she does not actively participate in his revolutionary actions, her closeness to him exposes her to a combustible environment. Gauri also becomes aware of the harsh realities of defiance and its personal repercussions through their relation-

ship, which is rooted in love and intellectual compatibility.

Gauri's identity is significantly shaped by the events surrounding Udayan's untimely death and the harsh social reaction to her status as his widow. Her character is defined by the isolation resulting from the pain she experiences. Her subsequent actions and choices, which reflect a complex combination of personal grief, social pressure, and an increasing yearning for autonomy, are shaped by these early events.

Gauri's Role in Udayan's Life and His Subsequent Death

In *The Lowland*, Gauri and Udayan share a moving relationship that blends love, intellectual cooperation, and ideological conflict. Despite its roots in love and mutual respect, their marriage is intricately linked to the turbulent sociopolitical environment of the Naxalite movement. Initially, Udayan's revolutionary beliefs and unshakable dedication to his cause enthrall Gauri, but they also complicate their relationship. Gauri becomes a passive observer of Udayan's increasingly dangerous activities, which paradoxically creates an emotional distance, even while inspiring admiration for his commitment to social change and justice.

Gauri and Udayan's intellectual compatibility strengthens their bond. They both enjoy philosophical conversation, which frequently provides a haven from the chaos surrounding them. However, their ideological differences are subtle, with Gauri favoring intellectual study and contemplation over overt political revolt. Though not explicitly confrontational, this difference highlights a hidden conflict in their relationship, as Gauri tries to balance her academic interests with the harsh reality of Udayan's world.

One of the turning points in Gauri's life is Udayan's unexpected death. He was murdered by police since he was involved in Naxalite movement. "The body was not returned to them. They were never told where it had been burned" (129). She is emotionally devastated and feels a deep sense of loss and remorse after witnessing his execution by state soldiers. She struggles with concerns about her own involvement, wondering if her failure to fully understand Udayan's revolutionary fervor or her silence contributed to his demise. She experiences emotional isolation and self-imposed exile as a result of this tragedy. She withdraws from Subhash and just sees him only as a shadow of his deceased brother. Subhash's mother also refuses to accept him as a daughter-in-law of the house. Life becomes for challenging for her:

> The house stood practically empty... Bijoli now wears white saris, without a pattern or a border. She's removed her bangles, and stopped eating fish. Vermillion no longer marks the parting of her hair. (128–29)

Transition Due to Subhash's Decision

Rather than being a romantic union, Gauri's marriage to Subhash is a practical reaction to her precarious status as a widow in a traditional community. But for Gauri, this marriage is "a way to remain in touch with Udayan" (150). Udayan's brother, Subhash, provides her with some security and a way out of the repressive Tollygunge atmosphere. However, there is a lot of emotional distance in this partnership because Gauri finds it difficult to commit to a relationship that lacks passion and understanding. Gauri feels even more alienated after moving to Rhode Island because of the radically different social and cultural environment she encounters there. Her connection with Subhash deteriorates as she makes her way through the strange American landscape. Gauri's detachment from motherhood and marriage is particularly evident, "Rage at Subhash for reminding her so strongly of Udayan... for sounding like him, for remaining a spare version of him" (186).

Gauri is emotionally distant due to her unresolved guilt and memories of Udayan, whereas Subhash's calm dedication and attempts to start a family demonstrate his sincerity. Her incapacity to give Subhash her whole attention highlights her inner turmoil and the effects of her past. Gauri's identity is further complicated by her cultural dislocation in Rhode Island. She starts to investigate new facets of her identity after being cut off from the comforts of her native country, but this investigation is marked by a profound sense of loss. Her mental torment is not lessened by the physical distance from Tollygunge; rather, it intensifies her sense of loneliness and her quest for purpose in her new life. Gauri's path of self-discovery and estrangement continues with this shift to Subhash's realm.

Gauri as a Mother

Perhaps the most controversial part of Gauri's persona is her role as Bela's mother. Her attitude toward parenthood is characterized by ambivalence from the beginning. She is unable to develop a mother attachment with her daughter, even though she keeps Bela as a tangible reminder of Udayan. Gauri's distance from Bela is a result of both her own trauma and her inability to balance her uniqueness with the expectations of motherhood placed on her by society. Gauri's choice to leave Bela behind is a crucial instance that illustrates her desire for independence at the expense of traditional family bonds. She puts her academic goals and intellectual independence ahead of her motherly duties by leaving Bela in Subhash's care. This act of desertion is a reflection of her internal conflict as well as a statement of agency. Gauri's departure frees her from the limitations of conventional roles, but it also solidifies her loneliness since she is cut off from both her daughter and her own love. The story has a strong resonance with the ramifications of Gauri's departure. Bela develops a grudge against her mother as a child, and the gap created by Gauri's absence influences how she views family and how she interacts with Subhash. For Gauri, this choice is a reflection of her urge to define herself according to her own criteria and an admission of her fail-

ure to fit in with society's expectations. The larger themes of guilt, liberation, and identity that run throughout Gauri's narrative are embodied in her motherhood. Her relationships are defined by a cycle of regret that is mirrored in her grief for abandoning Bela and her unresolved guilt over Udayan's passing. Her pursuit of intellectual and personal freedom, however, highlights her wish to escape the roles that have been placed upon her. However, Gauri forfeits her relationship with her loved ones in her quest to regain her identity, making her independence ambiguous and bittersweet.

Gauri's Intellectual and Academic Life

In *The Lowland*, Gauri's study of philosophy and academia becomes a vital means of escape and self-discovery. She immerses herself in her academic studies after moving to Rhode Island with Subhash, which serves as a haven from the emotional baggage of her background. S. Leena Devanesam and A. Seenivasan write, "She is a bookish girl, heedless of her beauty, unconscious of her effect" (649). Gauri uses philosophy, which places a strong focus on abstract thought and introspection, to address the existential issues that trouble her, especially those pertaining to guilt, agency, and identity. Her introspective and distanced philosophical musings provide light on her internal struggle. Gauri's efforts to intellectualize her tragedy and disassociate herself from her emotional scars are reflected in her scholarly work.

Even though she finds it difficult to relate to those around her, her interest in philosophy reflects her desire to manage and make sense of her turbulent background. However, because it prevents her from developing deep connections with Subhash and Bela, this cerebral retreat frequently makes her loneliness worse. A major conflict in Gauri's personality is highlighted by the disparity between her personal relationships and her academic endeavours. Her freedom and sense of purpose are provided by academia, but it also draws attention to her incapacity to carry out her responsibilities as a wife and mother. She struggles to balance the demands of the outside world with her inner search for identity, and her retreat into the world of ideas serves as both a source of empowerment and a symbol of her emotional detachment. Philosophy is superseded by the presence of Udayan in her life and despite feeling that "she cast no shadow of her own" (91).

Themes Reflected through Gauri

Gauri's life is plagued by a persistent sense of loss and guilt, initially for her alleged involvement in Udayan's demise and then for leaving Bela behind. She is imprisoned psychologically by her unwillingness to forgive herself, which keeps her caught in a vicious cycle of self-blame and remorse. She is plagued by her decisions despite her intellectual accomplishments, indicating that Gauri views redemption as an unattainable ideal. Her shame highlights how the book examines the long-term effects of both individual and societal tragedies. Although Gauri's quest for independence frequently comes at the expense of interpersonal relationships, freedom is a recurrent theme throughout her path. Her choice to break away from Bela and Subhash is a reflection of her desire for autonomy, but it also separates her from the very people who may provide comfort.

Gauri's decisions highlight the paradox of freedom: although it frees her from social pressures, it also condemns her to emotional and social exile. Gauri battles to define herself outside of the socially prescribed roles of mother, widow, and wife throughout the entire book. Her attempt to create a new identity is reflected in her academic endeavors, but this endeavor is complicated by her inability to reconcile her past and present. The difficulties of defining oneself in the face of societal and individual limitations are brought to light by Gauri's journey. Despite their controversy, Gauri's acts can be interpreted as a feminist affirmation of agency in a patriarchal society. She defies social standards, as evidenced by her rejection of traditional roles and her quest for intellectual freedom.

Subhash's mother Bijoli was not happy at Subhash;s decision to get married with his widow sister-in-law. She retorts bluntly, "He was risking everything, and they were never to enter the house as husband and wife" (186). His mother's behaviour changes and she does not want that Gauri may become his second son's wife also. She had a different opinion, "A girl she did not like to begin with, did not want in her family, was going to become her daughter-in-law twice over. She said it because it was Gauri not Bijoli, who contained a piece of Udayan in her womb" (186). Bijoli's decision makes Gauri's life much complicated.

Relationships with Other Characters

Gauri's path revolves around her relationship with Udayan. Ideological conflicts also tense their relationship, which is characterized by affection and intellectual companionship. Gauri's path is profoundly shaped by Udayan's death, which acts as the impetus for her following activities. The intensity of their relationship and the complexity of her feelings are shown by her persistent remorse over his death. Gratitude, distance, and unsaid difficulties characterize Gauri and Subhash's relationship. Even though Subhash gives her security and a chance to start over, she is unable to return his silent devotion since she is emotionally aloof. Their union serves as a metaphor for Gauri's larger battle to make sense of her history and present and to find fulfillment in relationships that don't match the depth of her connection to Udayan. While Gauri's actions challenge these norms, they also reflect the constraints and judgments imposed by her cultural milieu.

Gauri still retains her Indian passport, though she has never returned to India since her arrival in the United States. Over time, California has become her sole refuge, a place she now calls home. She cherishes

its climate, the familiar vegetation, and its expansive vastness. Gauri finds solace in being "protected by that impersonal ongoing space" (236). While her marriage to Subhash ultimately failed, she remains thankful to him for liberating her from the confines of Tollygunge. "He had brought her to America, and then, like an animal briefly caged, released her" (242). Immigration offers Gauri freedom from the societal constraints of India, empowering her professionally. Yet, she continues to carry a unique name—her first bestowed by her parents, and her last shaped by the two brothers she married.

Symbolism Associated with Gauri

The layers of symbolism that are interwoven throughout Gauri's story in *The Lowland* enhance her character by illuminating her inner conflicts and development. One notable example is the way she dresses, especially her love of black. Her ongoing anguish and remorse over Udayan's passing are reflected in the color black, which is typically associated with mourning. For Gauri, it is a physical representation of her mental state—her incapacity to rise above the shadows of her past—rather than just a statement of loss. By making this decision, she also shows that she rejects social norms and displays her individuality—albeit in a depressing and alienating manner. Another powerful metaphor is her intellectual interests in philosophy, which stand for both a confrontation with and an escape from her inner conflict. C. Padma Priya and Dr. N. Gejeswari write about alienation:

> Alienation in diasporic realities is mostly the artifact of conflicting personalities. Since the personalities are shaped by socio-cultural values and the immediate milieu, conflict of values, overt or covert, might be regarded as the root of alienation. (28)

Gauri's need to rationalize and separate herself from the emotional turmoil of her life is reflected in her absorption with abstract reasoning. Her interest in philosophy highlights her search for purpose and self-definition, indicating that while intellectual endeavors can be powerful, they can also provide a haven from emotional involvement. The conflict between her need for independence and the burden of her obligations is perfectly captured by this duality. Gauri's emotional and physical spaces provide additional insight into her personality. Her escape to Rhode Island's intellectual setting represents her effort to establish a place of independence and disengagement. However, as she distances herself from Subhash and Bela, this seclusion is a reflection of her emotional retreat. The intricacy of her decisions is highlighted by the sharp contrast between the warmth of her family ties she forgoes and her physical surroundings, which are cold, distant, and alien. These areas serve as outward manifestations of her inner state, which is disjointed, disoriented, and in need of clarification. By using these symbolic components, Jhumpa Lahiri depicts a woman who is defined by her environment and behavior just as much as by the feelings she tries to repress. Contrasts abound in Gauri's symbolic world: grief and resiliency, independence and estrangement, intelligence and emotional detachment—all of which add to the complexity of her personality.

Conclusion

Gauri's character in *The Lowland* serves as a complex examination of identity, resiliency, and loss. Her journey represents a continuous battle to make sense of the past and present, from her academic endeavors to her symbolic wardrobe choices and the places she occupies. As a victim of her circumstances and an agent of her decisions, navigating a society affected by both societal expectations and individual wants, Gauri personifies the unfathomable intricacies of human existence. She is significant because she struggles with the emotional toll of her desire for independence while simultaneously questioning conventional roles, particularly as a woman in a patriarchal culture. Instead of providing simple answers, Gauri's story illustrates the complex and frequently contradicting aspects of human existence. Her legacy in the book is that of a severely flawed yet incredibly interesting woman, whose hardships reflect the larger themes of guilt, displacement, and the pursuit of purpose. In the end, Gauri's tale is one of comprehension rather than atonement. She leaves a lasting impression on Lahiri's *The Lowland* by forcing readers to face difficult realities about autonomy, accountability, and the price of self-realization. Md. Tashkir Hossain writes, "Gauri shows that she does not negotiate a complex identity in either the U.S. or India. To be happy, she realises that she will have to arrange portions of it but does not regret decisions she has taken on the other hand" (134).

Works Cited

Devanesam, S. Leena, and A. Seenivasan. "Jhumpa Lahiri's *The Lowland*: Passion towards Education Diminishes the Depression of Gauri." *Research Journal of English Language and Literature (RJELAL)*, vol. 5, no. 3, July–Sept. 2017, pp. 646–50.

Hossain, Md. Tashkir. "Self-Transformation of Gauri in Jhumpa Lahiri's *The Lowland*." *The Creative Launcher: An International, Open Access, Peer-Reviewed & Refereed Journal in English*, vol. 6, no. 2, June 2021, pp. 127–35.

Lahiri, Jhumpa. *The Lowland*. Bloomsbury, 2013.

Priya, C. Padma, and N. Gejeswari. "A Study of Alienation in Jhumpa Lahiri's *Unaccustomed Earth*." *Literary Quest*, vol. 2, no. 1, 2015, pp. 18–29.

*****

Transgender's Struggle in Mahesh Dattani's *Seven Steps Around the Fire*

-Dr. Rupkatha Ghosh
Assistant Professor & Research Supervisor,
Department of English,
J.S. University Shikohabad (UP)

Gaytri devi
Ph.D. Research Scholar,
Department of English,
J.S. University Shikohabad (UP)
gaytriyadav1985.s@gmail.com

Abstract:
Mahesh Dattani's *Seven Steps Around the Fire* is a groundbreaking play that addresses the plight of the transgender (*hijra*) community in India. By exploring themes of marginalization, systemic injustice, and the intersection of gender and power, the play offers a nuanced critique of societal norms. This paper examines the struggles faced by transgender individuals as portrayed in the play, analyzing the cultural, social, and legal barriers that perpetuate their discrimination.

Keywords:
Transgender issues, Exploitation and violence, Legal recognition, Social exclusion, Human rights

Introduction

The *hijra* community in India, which includes transgender individuals, occupies a paradoxical space: revered in religious and cultural contexts yet ostracized in daily life. Mahesh Dattani, one of India's foremost playwrights, uses *Seven Steps Around the Fire* to expose the hidden injustices faced by this community. The play centres on Kamla, a hijra whose murder uncovers a web of exploitation and prejudice. Through this narrative, Dattani forces audiences to confront their biases and recognize the humanity of the transgender community.

Themes Addressing Transgender Issues

1. Marginalization and Social Exclusion: Anarkali is jailed under the false charges of Kamla's murder, while a powerful politician did this murder because of his social reputation: "She is locked away because it is easy to blame her. Who will stand up for *a hijra? Nobody."*

Anarkali is ostracized by society and trapped within the margins of life. She is not allowed to live freely or pursue any legitimate career due to her identity as a *hijra. Her limited social role is seen when she is accused of Kamla's murder. Her status as a hijra makes her a convenient scapegoat.*

Kamla's secret marriage to Subbu, a man from a powerful family, shows how *hijras* are not recognized as legitimate members of society. Her relationship must be kept a secret because their love cannot be publicly acknowledged.

"This marriage can never be seen, never be known. The world will never accept."

Champa, like many *hijras*, is relegated to a life of begging or performing at social events, such as weddings or births. She is excluded from regular work and forced to survive in a way that perpetuates her social marginalization

"We live on the margins, not by choice, but because society has no place for us."

2. Exploitation and violence:

The play highlights the vulnerability of hijras to exploitation and violence. Transgender individuals are often targets of abuse, with little to no recourse due to systemic neglect. Kamla is murdered to protect the reputation of Subbu's influential family, exposing how the lives of transgender people are considered disposable in the face of power and privilege. The sexual harassment in prison is noticed with Anarkali, a *hijra* accused of murder, is placed in a male prison where she endures abuse from male inmates. This highlights institutional insensitivity towards the *hijras* and gender identity.

"Anarkali is subjected to sexual harassment by male prisoners in the cell."

Kamla is exploited for her emotional vulnerability and is secretly married to Subbu. Her life is cut short by Subbu's family to preserve their social reputation. The text reveals how *hijras* are treated as disposable and unworthy of justice

"Kamla was burned alive. Her screams might have gone unheard but they echo in the silence of our indifference."

Anarkali is falsely accused and jailed for Kamla's murder. This exploitation by the justice system shows the disregard for transgenders' basic rights. They are often seen as convenient scapegoats due to their marginalized status. These incidents highlight the exploitation and violence in the lives of transgenders reflecting the social and systemic cruelty perpetrated against them.

3. Lack of Legal Recognition and Rights

In *Seven Steps Around the Fire*, the absence of legal and institutional support for transgender individuals is evident. Without legal recognition, hijras struggle to assert their rights or access justice. Kamla's case is dismissed by the authorities until Uma Rao, the pro-

tagonist, takes a personal interest. The indifference of the police underscores the systemic neglect faced by the transgender community.

"Anarkali is in jail, not because she is guilty, but because she is a *hijra.* Who will believe her story."

Kamla's marriage to Subbu is hidden because the law does not recognize *hijra* as a legitimate individual in a relationship. This absence of legal acknowledgement forces them to live in secrecy.

"They were married in silence, and their love was buried under layers of shame."

4. Stigma and Dehumanization

The play reveals the deep-rooted stigma against hijras, who are often treated as less than human. Dattani counters this narrative by portraying them as complex individuals with desires and emotions. Kamla's love for Subbu and her aspirations for a dignified life are juxtaposed against society's refusal to accept her humanity. Her murder symbolizes the denial of her right to live authentically. Stigma and dehumanization are explored through the experiences of *hijra.* One prominent example is the treatment of Anarkali and Kamla, whose lives are defined by societal rejection and dehumanization due to their hijra identities. Kamla is not only treated as a symbol of shame by Subbu's family but also forced to live in secrecy because society refuses to accept her. Her love and identity are seen as unnatural and ultimately, her murder by Subbu's family is an act of dehumanization.

"She was nothing to them -just a shadow. They could dispose of without a second thought. Kamla's existence was not even worth defending."

Anarkali is not seen as a person with rights or the ability to defend herself. Her label as a *hijra* becomes the reason for her victimization and rejection of society.

"You can lock her up because she is a *hijra. No one will care; no* one will fight for her."

Dattani's Representation of Transgender Voices

Dattani gives a voice to the voiceless through Kamla and her community. He challenges societal norms by humanizing the hijras, presenting their struggles and aspirations in a way that compels empathy and understanding. Uma Rao, as an empathetic outsider, acts as a bridge between the audience and the marginalized, shedding light on the injustices faced by the transgender community.

Cultural and Societal Implications

The play critiques the hypocrisy of Indian society, where rituals like marriage (symbolized by the "seven steps around the fire") are revered, yet the love and lives of marginalized groups are devalued. By focusing on the hijra community, Dattani not only raises awareness but also calls for societal introspection and reform.

Conclusion

Mahesh Dattani's *Seven Steps Around the Fire* is a powerful exploration of the systemic discrimination faced by the transgender community in India. By addressing issues of marginalization, violence, and dehumanization, the play challenges audiences to reconsider their perceptions and advocate for inclusion and equality. Dattani's work remains a vital contribution to Indian drama and the fight for transgender rights.

Works Cited

Dattani, Mahesh. *Collected Plays*. Penguin Books India, 2000.

Singh, R. "Exploring Gender and Identity in Mahesh Dattani's *Seven Steps Around the Fire*." *Indian Theatre Journal*, 2015.

Sharma, N. "Representation of the Hijra Community in Indian Drama: A Study of Mahesh Dattani's Work." *Journal of South Asian Studies*, 2017.

*****

Siddhartha as a Symbol of Syncretic Spirituality: A Study on Herman Hess's Literary Approach

-Kavitharam T.R.
Assistant Professor of English,
Panampilly Memorial Government College,
Chalakudy, Potta, Thrissur Kerala

Abstract

Hermann Hesse, a German-Swiss author known for his deep explorations of spiritual themes, particularly in his novel Siddhartha, offers a unique synthesis of Hinduism and Buddhism, a fascinating synthesis given Hesse's rigorous training in Christian theology. This article analyzes how Hesse's understanding of these Eastern philosophies was shaped by his Western theological training and how he reconstructed and combined elements of Hinduism and Buddhism to convey a message of enlightenment. Edward Said's seminal work *Orientalism* critiques the way Western scholars have historically approached Eastern cultures, often reducing them to simplistic or exoticized representations. Hesse's work can be seen as part of this broader discourse, though with a more nuanced and respectful approach. Hesse's engagement with Eastern thought was not merely an exercise in exoticism but rather a deep-seated quest for spiritual meaning. As Said notes, "Orientalism is a style of thought based upon an ontological and epistemological distinction made between 'the Orient' and (most of the time) 'the Occident'" (Said, 1978). However, Hesse's work transcends this binary by integrating elements from both traditions into a cohesive narrative.

Introduction

Hesse's background in Christian theology significantly influenced his interpretation of Hinduism and Buddhism. His characters often grapple with existential questions that are reminiscent of Christian theological debates but are resolved through Eastern philosophical frameworks.

In *Siddhartha*, the protagonist's journey mirrors the Christian concept of seeking salvation but is framed within Buddhist and Hindu contexts. For instance, Siddhartha's renunciation of worldly life parallels the ascetic practices found in both Christianity and Hinduism: "He had to become a complete fool in order to become wise" (Hesse, 1922). This quote reflects the idea that one must shed worldly attachments to achieve spiritual enlightenment—a theme common to all three religions.

Hermann Hesse's *Siddhartha* is a literary masterpiece that transcends geographical and cultural boundaries, weaving a narrative deeply rooted in the essence of a spiritual quest. Set against the backdrop of ancient India, the novel narrates the journey of its eponymous protagonist, Siddhartha, as he embarks on a quest for enlightenment. Hesse, through this narrative, masterfully blends elements of Eastern and Western philosophical traditions, creating a work that serves as a powerful symbol of syncretic spirituality.

At its core, Siddhartha captures the universal yearning for self-discovery and transcendence. Hesse's portrayal of Siddhartha's spiritual odyssey draws inspiration from Hinduism, Buddhism, and Western existentialist thought, synthesizing them into a cohesive narrative that appeals to global audiences. The novel does not advocate for rigid adherence to any single doctrine but rather emphasizes personal experience and inner transformation as the essence of spiritual fulfillment. This syncretism mirrors Hesse's own life and intellectual journey, shaped by his exposure to Eastern philosophies and Western literary traditions.

Hesse's approach reflects a nuanced understanding of spiritual pluralism. Through Siddhartha's encounters with diverse spiritual paths—ranging from asceticism to hedonism—Hesse underscores the idea that true enlightenment transcends doctrinal divides and emerges from the integration of diverse experiences. The narrative's universal appeal lies in its ability to resonate with readers from varied cultural contexts, offering a message of unity amidst diversity.

This study examines how Siddhartha embodies syncretic spirituality, focusing on Hesse's literary techniques and philosophical insights, which collectively craft a timeless meditation on the shared human pursuit of meaning and enlightenment.

Christianity: Hesse's Foundation

Hesse's upbringing in a devout Christian household ingrained in him the notion of salvation through grace and faith. While Siddhartha does not explicitly depict Christian doctrines, its themes reflect an underlying Christian influence, particularly in the emphasis on love, compassion, and redemption. Siddhartha's journey can be seen as echoing the Christian idea of salvation through personal suffering

and transformation. His rejection of traditional teachings mirrors Hesse's critique of institutionalized religion, a sentiment expressed in his own struggles with the rigidity of Protestantism.

Hinduism: The Dhamma, Artha, Kama, and Moksha

Hesse's depiction of Siddhartha's journey is deeply rooted in Hindu philosophy, particularly the purusharthas—dharma (duty), artha (material prosperity), kama (desires), and moksha (liberation). Siddhartha explores these stages sequentially, beginning with his dutiful adherence to Vedic teachings and asceticism. However, disillusioned by ritualistic rigidity, he moves towards worldly pleasures and material success, representing artha and kama. Yet, these pursuits fail to bring him lasting fulfillment, leading him to the final quest for moksha, or liberation. Hesse's portrayal of Hinduism in "Siddhartha" is not without its inaccuracies and simplifications. He often blends different aspects of Hindu philosophy with Buddhist teachings to create a narrative that is both compelling and accessible to a Western audience.

For example, the character of Vasudeva -- the name of the father of Krishna as per Hindu mythology-- the ferryman who embodies wisdom and enlightenment combines elements from both Hinduism (the concept of karma) and Buddhism (the attainment of Nirvana). When Vasudeva says, "The river has taught me to listen; you will learn from it too" (Hesse, 1922), it reflects the Hindu idea of listening to nature as a path to wisdom while also aligning with Buddhist mindfulness practices. Hesse's understanding of Hinduism resonates in his depiction of life as a cyclical process, with salvation achieved through self-realization rather than external rituals.

Buddhism: The Middle Path

Buddhism plays a central role in "Siddhartha," particularly in its depiction of the Four Noble Truths and the Eightfold Path. However, Hesse merges these Buddhist principles with certain aspects of Hindu mysticism to create a unique spiritual landscape. As Budha was that of the symbol of an enlightened being and Siddhartha embodies his earlier self as he carries the name of Budha himself before his enlightenment. Though he was enlightened by his followers just as his friend Gothama was not achieved, he remained the follower in search of the ultimate bliss even after long years of his ascetic life following Budha. This reveals the idea of Hesse's self-realisation. It is purely personal, and there is no singular path to achieving wisdom, as 'Wisdom is not 'communicable' when you can communicate knowledge well.

The concept of Atman (the individual self) from Hinduism is merged with the Buddhist notion of *Anatta* (no-self) in Siddhartha's journey. When Siddhartha realizes that "the Self was not a thing that could be found" (Hesse, 1922), it echoes both the Hindu quest for Self-realization and the Buddhist rejection of a permanent self. In Hinduism, there is Sidhanta's of *dwaita* and *adwaita* which can be explained in simple words as *Dwaita* is the concept of believing the human beings are separated from the *Paramatma* (the Universal soul) and his soul's aim is to attain unison with Universal soul while *adwaita* bears the notion that all that living soul is one in *Paramatma* or is just part of universal soul. Buddhism does not teach about any soul, but to live each moment in its entire conscious being as a Buddhist means to live a life devoid of any desire and to live in the path of Nirvana.

The novel's title and themes heavily draw from Siddhartha Gautama, the Buddha. While Siddhartha in the novel diverges from the Buddha's path, he embodies the core Buddhist teaching of the middle way. His realization comes not through extreme asceticism or indulgence but through experiential wisdom and inner harmony. Hesse's fascination with Buddhist thought is evident in Siddhartha's epiphany at the river, symbolizing the impermanence and interconnectedness of life. This moment encapsulates the Buddhist concept of Nirvana, where the self dissolves into the greater unity of existence.

From Salvation to Hippieism: A Countercultural Icon

The novel's global appeal, especially during the 1960s, coincided with the rise of the hippie movement. Siddhartha's rejection of materialism, embrace of self-discovery, and spiritual eclecticism made him a countercultural icon. The themes of the novel resonated with the hippie ethos of breaking free from societal norms and seeking enlightenment through Eastern philosophies. Siddhartha's spiritual journey became a metaphor for personal freedom and authenticity, values celebrated by the counterculture.

There was a revival of Hinduism in the Western world as their fascination with exoticism and also the freedom given by Hinduism attracted the youth who were desperate after the two world wars and were in a hunt for satisfaction in the worldly. The approach of Siddhartha, who started his quest as an ascetic and thus explored the worldly life of dhamma, Artha, Kama, and Moksha and thus attaining the ultimate Truth might have fascinated them with many other factors like 'orientalism'. They were in a condition of existentialistic revelry in which they added the colour of Hinduism.

Archetypal Characters across Traditions

Hesse populates Siddhartha with archetypal figures reflecting spiritual traditions. The archetype of self in search of realisation . The motif of self- realisation of the soul in various religions skillfully

blended in this work. Siddhartha himself is the seeker, akin to 'Christ' in Christianity or '*Arjuna'* in Hinduism, who questions established norms. Vasudeva, the ferryman, represents the archetype of the sage or guru, embodying wisdom through simplicity and humility, echoing figures like Lao Tzu or Buddhist monks. Kamala, the courtesan, mirrors the archetypal temptress, teaching Siddhartha about Kama while facilitating his growth. The name of Kamala is also intriguing though she is a courtesan who is considered as impure she achieves enlightenment in the end just as her name embodies the flower lotus which has been symbolizes in Hinduism as sacred and the attainment of meditation the *kundalini* and to reach to *Sahasrara* chakra, also known as the Crown chakra, is traditionally depicted as a thousand-petaled lotus in yogic and Hindu symbolism. Though dormant in the body in filth, when it is blown to its full potential, it attains the shape of a thousand-petaled lotus (Kamala).

Vasudeva's teachings align with the idea of surrender:

"The river is everywhere at once … and only the present exists for it, not the shadow of the past, nor the shadow of the future."

This recalls both the timeless wisdom of Hinduism's eternal Brahman and the Buddhist emphasis on mindfulness.

Kamaswamy (Master of all desire) who teaches him the '*artha*'- about money or worldly wealth also symbolic and who makes him desirous for all that which is worldly, makes the ascetic to forget about his '*atman'.* Though the (*artha)* wealth is important in worldly life, it makes one forget about his goal of self-realisation.

Orientalism and Hesse's Fascination with the East

While Siddhartha celebrates Eastern philosophies, it is not devoid of Orientalist undertones. Hesse's romanticized depiction of India as a spiritual haven reflects a Western fascination with the East as an exotic "Other." His portrayal simplifies complex traditions into a singular quest for enlightenment, often filtering them through Western existentialist frameworks. Edward Said's critique of Orientalism is pertinent here, as Hesse's admiration for Eastern spirituality risks reducing it to a consumable ideal for Western audiences. Nonetheless, his genuine respect and intellectual engagement with these traditions lend the novel a sense of authenticity that transcends mere exoticism.

In conclusion, Siddhartha masterfully interweaves the spiritual philosophies of Christianity, Hinduism, and Buddhism, presenting salvation as a universal journey of self-discovery. Through archetypal characters and symbolic landscapes, Hesse explores the shared human quest for transcendence. While the novel's reception and Hesse's perspective reflect Western interpretations of the East, Siddhartha remains a timeless meditation on the unity of spiritual paths and the enduring relevance of syncretic spirituality. Hermann Hesse's Siddhartha stands as a profound exploration of the universal human quest for salvation, transcending cultural and religious boundaries. By interweaving Christian notions of redemption, Hindu concepts of life's purpose, and Buddhist teachings on self-realization, Hesse crafts a narrative that is both deeply personal and universally resonant. Siddhartha's journey, marked by his encounters with archetypal figures and diverse spiritual philosophies, symbolizes the synthesis of East and West—a blending of traditions that affirms the unity underlying human spirituality.

While the novel's romanticized portrayal of Eastern philosophies can be critiqued through the lens of Orientalism, it also reflects Hesse's genuine fascination and intellectual engagement with these traditions. His literary approach transforms Siddhartha's journey into a metaphor for global spiritual unity, emphasizing personal experience and transformation over dogmatic adherence.

The novel's enduring appeal, especially during the countercultural movements of the 20th century, underscores its relevance in a world yearning for meaning amidst materialism. It not only introduces readers to Eastern spirituality but also challenges them to reflect on their own paths to salvation, regardless of their cultural or religious background.

Ultimately, Siddhartha invites us to embrace the richness of spiritual pluralism and to recognize that the path to enlightenment is not singular but a confluence of experiences, traditions, and inner revelations. It is a timeless reminder that salvation, in all its forms, is a deeply personal journey that unites humanity in its shared longing for transcendence and peace.

References:

Hesse, Hermann. *Siddhartha.* Translated by Hilda Rosner, New Directions, 1951.

Said, Edward. *Orientalism*. Pantheon Books, 1978.

Zimmer, Heinrich. *Philosophies of India.* Edited by Joseph Campbell, Princeton University Press, 1951.

King, Richard. *Orientalism and Religion: Postcolonial Theory, India, and "The Mystic East"*. Routledge, 1999.

Thapar, Romila. *The Penguin History of Early India: From the Origins to AD 1300*. Penguin Books, 2002.

Radhakrishnan, Sarvepalli. *The Hindu View of Life*. Harper & Brothers, 1927.

Keown, Damien. Buddhism: *A Very Short Introduction*. Oxford University Press, 1996.

Smith, Huston. *The World's Religions*. HarperOne, 1991.

****

Fairy Tale Retellings: A Re-representation of Sleeping Beauty as *Maleficent*

-Nada Rajan
Assistant Professor
Department of English
MSM College, Kayamkulam
E-mail id: nadajithin@gmail.com

Fairy tale retellings are popular since they allow authors to revisit the timeless themes and archetypes in new contexts, often focusing on contemporary social issues. It thus enables us to encounter and adapt ourselves to fresh perspectives and interpretations. Robert Stromberg is an American special effects artist, designer, and filmmaker. He made his directional debut with the 2014 Disney film *Maleficent*, a re-representation of the iconic Disney villain. The paper analyses the movie from the perspective of gender.

Keywords: *Fairy Tale, Disney movies, Gender, retellings, adaptation*

Fantasy films belong to the fantasy genre reflecting themes that typically present images that portray magic, supernatural powers, princes and princesses, and supernatural characters. They make use of illustrations that employ myths, and good and evil characteristics to arouse the emotion of the viewers. Dark fantasy, a subgenre is a popular trend having a gloomy and dreadful atmosphere. In Fantasy films, the hero often undergoes mystical experiences and must ask for aid from powerful, superhuman forces on the outside, typically, and the predominant characters in fantasies are princes or princesses. Fantasy films are most likely to overlap with the film genres of science fiction and horror. Dark fantasy refers to literary, artistic, and film works that combine fantasy with elements of horror. The term can be used broadly to refer to fantastical works that have a dark, gloomy atmosphere or a sense of horror or dread.

Maleficent is a 2014 American dark Fantasy film directed by Robert Stromberg from a screenplay by Linda Woolverton. Starring Angelina Jolie as the eponymous Disney villainess character, the film is a live-action re-imagining of Walt Disney's 1959 animated film *Sleeping Beauty*, portraying the story from the perspective of the antagonist, Maleficent. The film portrays Maleficent, a powerful fairy who lived in the Moors. As a young girl, she meets and falls in love with a human peasant boy named Stefan. As they grow old, the two grow apart, and she becomes the protector of the moors. King Henry tries to conquer the Moors and obtain the treasures. Fatally wounded in the battle, he declares that whoever kills Maleficent will be named his successor and marry Princess Leila, his only daughter. In response, Stefan visits Maleficent in the Moors and he uses an iron chain, which burns fairies to cut off her wings. He then presents the wings to the King as evidence of her death.

Diavan, a raven, whom Maleficent gives human form, acts as her wings, spy and confidant. Diavan informs Maleficent that Stefan, who is now King, is hosting for his newborn daughter, Aurora. Maleficent arrives uninvited and curses the infant princess that on her sixteenth birthday, she will prick her finger on the spindle of a spinning wheel, putting her into a deep sleep from which she will never awake. Maleficent also says that the curse can be broken by true love's kiss. Despite her initial dislike for Aurora, maleficent begins to care for the girl when the pixies inadvertently put her in danger.

Maleficent starts watching Aurora from afar. When Aurora is 15, she encounters Maleficent and aware of being watched over, calls her fairy godmother. Aurora later meets Prince Philip, and the two are smitten with each other. After a brief reunion with Aurora, Stefan locks her away in her room for safety. However, she is drawn by the curse and she falls into a death-like sleep. Maleficent and Diavan manage to get Philip to the three fairies who have him kiss Aurora and break the curse, but Philip's kiss fails to awaken Aurora.

Maleficent apologizes to Aurora, swears no harm will come to her, kisses her forehead, and breaks the spell with Maleficent's motherly love for her reconstituting the myth of what true love is about. The relationship between Maleficent and Aurora demonstrates the theme of adoptive parental love. The love between them is what is determined to be "true love" in contrast to the puppy love that the prince feels for Aurora.

Aurora forgives Maleficent and they attempt to leave the castle, but Stefan and his guards attack Maleficent by an iron trap. Stefan beats and taunts Maleficent, but before he can kill her, her

wings, freed from his chamber by Aurora fly back to her and reattach themselves. Stefan attempts once more to kill her but fails and falls to his death. Finally, Aurora is crowned queen of the human and fairy realms by Maleficent unifying the two kingdoms, with Philip at her side and Maleficent returns to her role as the ultimate protector of the kingdom.

An early scene in the movie, in which Stefan drugs Maleficent and removes her wings from her unconscious body, is a metaphor for rape. The film gives a positive and hopeful message to rape victims, ultimately allowing the woman to recover. It gives her agency and power. It allows her to reclaim the story. *Maleficent* offers a dark, surprisingly adult exploration of rape and female mutilation. In *Maleficent*, Aurora is the product of a cold and loveless marriage and a vengeful, unhinged rapist. Her safety relies on a trio of clueless and dangerously careless fairies and her godmother is the woman who cursed her- and who had, in turn, been violated by her father.

The film's main subtext was the detrimental effects of ultimatums between capitalist and socialist societies. He supports his argument by pointing out that Moors represented a socialist, nature-oriented, democratic society while the human kingdom was one of capitalism, industry, and absolute monarchy. The wing-tearing scene was a social commentary that any hierarchical rise to power inherently happens through the exploitation of others, explaining the reason why without her wings, Maleficent also becomes an oppressive ruler of the Moors. Everything she represents, believes, and stands for has been grounded, and like most victims of oppression, she takes it out on those who are smaller and weaker. Through the merging of the two kingdoms at the end of the film, it sought to weave together capitalism and socialism and let go of opposition.

In *Maleficent*, two competing social structures are presented: the monarchy of the human Kingdom and the European Democracy of the Moors. The film shows Maleficent as having her home under a tree overlooking the Moors and not in a building of any kind. The Moors is a magical land where all beings are happy empowered and seen for their strengths. The moor is a swamp- a classical image of the unconscious imagination. There are strange flying shrimp-like creatures, tall wood-ogre guards, etc. They are all friendly, and playful, and generally live a good life. The film's implicit transformation of roles and meanings becomes clear in the light of the maleficent change from someone who saw in Princess Aurora.

The most meaningful event is the film narrative occurs in the make of Aurora countering in to the dungeon where the remains of the spinning wheels are kept, pricks her finger with a needle as the curse foretold and falls into a deep sleep then realizing that she has come to care of Aurora, to revoke her curse over the princess. The only a kiss born of true-love could undo the curse she takes Prince Philip into the castle to kiss Aurora but to no avail. Maleficent promises to watch over sleeping. Princess and kisses her forehead. The fact that this causes Aurora to awaken has huge implication in the narrative. It simply shows the true motherly love that Maleficent feels for her. Maleficent represents the force of nature; the film is a powerful reminder that nature can redeem a humanity that has fallen into a deep sleep as far as its relationship with nature goes.

Maleficent is a strong leading female character. Her wings are a source of power and strength and they are taken early on in the movie. And as a result she is left alone and to an extent othered by her community. Her dirty body is then paired with darkness and she is perceived as evil and withy. This often happens to woman of colour in films. She is then positioned next to a blonde, blue eyed pure pretty girl making Maleficent's ways more apparent.

The image of darkness juxtaposed with light has always had light as the saving grace, as if the image of darkness could not save itself. In a variety of movies and shows a white character is the savior to the women of colour and the voice of reason, while the person of colour adds excitement and spice to the white character person's content life. Sleeping beauty is Maleficent's white savior. She is only redeemed by loving this innocent blonde girl.

There is pairing of the distinction of the environment with that of a woman's body. After the tragic incident in Maleficent's life she shuts the borders of their land and things are pretty gloomy where they used to be happy-go-lucky. Her character is very organic and rooted in nature. According to her sentiments the atmosphere changed. The nature regained its immense glory only when Maleficent's distorted heart freed itself from vengeful emotions and when she finally took her revenge upon Stephan. The two kingdoms were united with Aurora as their Queen. The nature rejoiced along with them.

The greatest transformation that a woman undergoes physically and emotionally is when she becomes a mother. A movie can be called a feminist one only when the film constitutes all the emotions that a woman undergoes and motherly affection is an unavoidable emotion. *Maleficent* is about the unlikely mother daughter (or fairy godmother daughter) relationship that forms between maleficent and Aurora, and about how the two women save each other both literally and emotionally. In obvious dramatic terms, Maleficent's motherly kiss is the one that awakens Aurora, and Aurora finds and frees Maleficent's

wings, leading Maleficent to return to her former self. As the girl's "Fairy God-mother' the bond that they shared meant she would senses when Aurora was in trouble and needed her she had never felt the sensation before and was hurting towards the kingdom in an instant.

Disney presents *Maleficent* with all the influential qualities in a woman and hence it is essentially a feminist film. Angelina Jolie's Maleficent claims to be a deeper look at the story behind Disney's sleeping beauty, showing a more sympathetic, nuanced version of the classic tale. As *Maleficent's* narrator, an older Aurora explains that this is an old story anew, one that was not quite as it was told. But while the narrative could have offered a new story, it is still Aurora's.

The depiction of Stefan, however may be the most disappointing maleficent prides itself in uncovering the gray area in villainy; its backstory for maleficent is meant to make her villainy understandable and lay the ground work for her eventual turn towards by ignoring the moral complexity of its male villain. There is Stefan, the evil vengeful king who is enemy to maleficent; Prince Philip, a young poorly – developed love interest to Aurora and Diaval, a crow that maleficent turns into a man. The three types of men in the world of maleficent are a villain, an innocent, and a pet.

Diaval and Philip are never developed as characters at all and exist. Only to help the female heroines move forward on their journey. It is also to be considered as hypocritical since the film depicts its men with the very same simplicity and contempt that fairy tales have been depicting women for years. Disney fairy tales know only two types of women; evil hags and innocent princess and for almost as long, feminists have taken issue with depictions. *Maleficent* is the latest and perhaps most direct version of this pre-feminist genre convention, turning sleeping beauty into tale of complex.

Disney conceived the wing tearing scene as a social commentary that any hierarchical rise to power inherently happens through the exploitation of others, explaining that it was the reason why without her wings, Maleficent also becomes an oppressive ruler of the moors. Everything she represents, believes and stands for has been grounded and like most victims of oppression, she takes it out on those two are smaller and weaker.

The film is a triumph of good over evil and the journey of a woman who is both a villain and a heroine. The film is a dark and raw story written from the dark and raw experience of today women who decided to portray their own who decided to portray their own unfiltered subjective emotional landscape on film, instead of adapting a fairytale that is, in their mind, outdated and escapist.

Work Cited

Butler, Judith. Butler*: Feminism and the Subversion of Identity*. Routledge, 2006.

Widyahening, C. E. T., and N. E. Wardhani. "Deconstruction of Maleficent Characters in the Movie Titled 'maleficent'". *Linguistics and Culture Review*, vol. 5, no. S3, Nov. 2021, pp. 1453-67, doi:10.21744/ lingcure.v5nS3.1681.

Khan, Mehwish Ali. "Maleficent: Reimagining 'The Sleeping Beauty' with a Post-Modernist Perspective." *International Journal of Academic Research in Business and Social Sciences*, vol. 7, no. 8, 2017, pp. 616-623.

Rudnick, Elizabeth, and Linda Woolverton. *Maleficent*. First edition. New York: Disney Press, 2014.

Stromberg, Robert. *Maleficent*. Walt Disney Studios Motion Pictures, 2014.

****

Recollecting the Nation's Trauma with Retrospective Eye: Politics of Memory in Select Poems of Seamus Heaney

Sandeep. T. G
Assistant Professor, Department of English,
Sree Kerala Varma College, Thrissur, Kerala.
E-mail: tgsandeepmenon@gmail.com

Abstract:-
Life in an age of forgetfulness, propelled by rampant networking of technologisation and globalisation, brings memory as central to the understanding of our present. Without remembering the past experiences in its entirety, any attempted enquiry of the present turns out to be futile. Writers like the famous Irish poet and Nobel Laureate Seamus Heaney, could be seen to have deliberately resisted the methodically manipulated systems that strive to obliterate the traumatic past of the nation. The violent historical episodes of rebellions that ensued in Ireland are relived in his poems as an articulation of cultural memory since that ineffaceable trauma is a ubiquitous national experience and a part of the Irish cultural narrative.
The menacing socio-political situations and violence in the name of religious segregation formulate Heaney's poetic conscience. The spirit of his poetry emanates from the political act of 'remembering' the nation's history- from the sensuous, personal, nostalgic echoes of Irish landscapes to the crisis-ridden antagonisms that his land/ people experienced. His poems thus function like a historio-cultural archive where transgenerational experiences are encrypted so as to ensure that they are not erased/ forgotten.
(Keywords: Trauma, Memory, Identity, Cultural memory, National narrative)

In an 'age of forgetfulness' that is avouched and augmented by the advantages of science and technology, memory or the act of memorising turns out to be (fundamentally) a political act that recalls and retrieves the 'bygone' of people, community or nation. With its definite (and selective) retrospection of past episodes, it initiates connectivity with old generations, events and sentiments and acts as a defining agent in the present. Memory is a process, a continuum, by which people interact and interpret social situations and identify their specific roles/ positions within each cultural context. Maurice Hawbwachs in *On Collective Memory* has rightly pointed out- "It is in Society that people normally acquire their memories. It is also in societies that they recall, recognise and localise their memories." (38).

Memory, as Michael Rothberg claims, requires the active agency of individuals and public and further argues- "Such agency entails recognising and revealing the production of memory as an ongoing process involving inscription and re-inscription, coding and recoding." (Rothberg 8-9). While considering the agency of memory, primarily, there is an individual's involuntary act of remembering past episodes, either of wholesome intimate incidents or of utmost national, social or historic importance. They come uninvited and remain mostly unobtrusive. Filling the pensive hours with vividness, such acts of remembrance are personal re-creations of indwelling moments unless and until they take shape out of voluntary subjectification. Yadin Dudai, an Israeli neuroscientist, who extensively studied the importance of memory traces in science and culture, maintains that memory is a creative effort that carries out the very act of 'embodiment of retrieval' (Dudai, 190). Secondly, cultural practices (art, literature, media and movies) in every social platform carry out the act of memorising the past. Those intentional acts of memorising- how culture retains information of past- can be seen as a product of political impulsion.

Looking at the history of world nations, it could unequivocally be argued that every nation will have experienced one or the other kind of traumatic episode (war, rebellion, epidemic, natural disaster etc.) which afterwards becomes a part of the aggregate national consciousness and acts up on the memory of the nation. Remembering those events configures the logic of the nation's discourse and determines the cultural dimensions that assist their meaningful retention. Such historic nostalgia gives birth to hyper-nationalist fascination and exuberant 'engagements' with nationalist symbols, ideals and paradigms that emerge out of collective remembrance. Ireland, as an ensample, has experienced the historical agony of anarchy, revolution and violence in the name of political independence from Great Britain till the Anglo-Irish treaty in 1921 that culminated in a partition between Irish Free State and Northern Ireland that remained with the United Kingdom. Northern Ireland which has a predominant Protestant population who widely discriminated against the minority Catholics

experienced the ethno-nationalist conflicts in the latter half of 20th century, known as 'The Troubles'. Such political upheavals and religious persecutions determine/ influence the collective memory of the region along with the richly vivid Celtic tradition that it cherishes in terms of art, myth, rituals and beliefs.

Seamus Heaney represents the collective sensibility of Northern Ireland through his meticulous literary mapping of its rich legacy. The menacing socio-political situations and violence in the name of religious segregation formulate his poetic conscience. The spirit of his poetry emanates from the political act of 'remembering' the nation's history- from the sensuous, personal, nostalgic echoes of Irish landscapes to the crisis-ridden antagonisms that his land/ people experienced. His poems turn out to be cultural broodings over the Irish imbroglio and a deep critique on its destabilised socio-political frontiers. That sort of a retrospective 're-capturing' opens up (the) nation's implicit anecdotes hidden/forgotten within the explicit sources of history and culture. Thus, his literary output becomes so axiomatic in understanding the social memory that a close reading of them turns out to be a travel by a (nation's) mnemonic bridge under which rushes the river of history/time.

Art as well as literature, while engaging in the mnemonic activity (that facilitates the association with the past) reflect upon the personal or national memories and recapturing those memories becomes pivotal in identifying the political spectrum. Seamus Heaney provides his valuable share to 'shared narrative' of Ireland and attempts to resist as Andreas Huyssen emphasises, "For the more we are asked to remember in the wake of the information explosion and the marketing of memory, the more we seem to be in danger of forgetting and the stronger the need to forget." (28) Even in his intimate recollections of such private events he weaves in a political tale of antagonism that is encrypted into the collective national consciousness. For instance in 'Casualty' he speaks about an old man known to him and narrates various instances of meeting him and suddenly speaks about the gruesome killings.

> He was blown to bits
> Out drinking in a curfew
> Others obeyed, three nights
> After they shot dead
> The thirteen men in Derry.
> PARAS THIRTEEN, the walls said,
> BOGSIDE NIL. (38-44)

Following the Yeatsian attempt to encapsulate the air of violence, it is an inerasable record of nation's memory which Heaney facilitates through the medium of poetry. Though his poems are predominantly vibrant with agrarian imagery set in the backdrop of countryside serenity, it also fuse the urban anguishes and hostilities.

In 'Requiem for the Croppies' he pays tribute to those Irish rebels who fought in the Battle for Vinegar Hill on 21 June 1798, for independence from Britain. 'Croppies' or men with cropped hair opposed British rule in Ireland. His requiem- an act of remembrance- is a compelling political statement, putting up a diachronic perspective. They move "quick and sudden" in their "own country" and despite varied strategies and ploys succumb to defeat and are laid to rest. The rebels, mostly farmers, had nothing except barley in their pockets and "in August the barley grew up out of the grave". Thus barley that regenerates stands as a symbol of the indomitable spirit of resistance and rebellion. Heaney is aesthetically perpetuating a disturbing national memory through the narrative dynamics of recollection that indulges not passively but with a sharp, intense political fortitude.

In the post-war cultural space- that many critics aptly bewailed over as 'death of history' or 'death of memory'- the term 'cultural memory' received academic acceleration in varied streams of enquiry. Propelled by the mass media culture and vast technologisation, 'memory' of nation states got inscribed into the common narrative- something that Bernard Stiegler refers to as '*epiphylogenetic* memory' that exists in an outside sphere and is different from acquired or biological memory. These attempts to 'recall time' in turn become an attempt to recall the (collective) trauma experienced by the community. Heaney, too, invokes the memories of the political turmoil that has shaped the cultural tale of Ireland. In 'Act of the Union' he brings in the analogy of male-female union where Ireland is represented as a female and Britain as male. Historically, it is an act passed by the British Parliament in 1800 as an immediate response to the rebellion in 1789. The relation between Britain and Ireland and the act of accession is presented through the allegory of sexual union and towards the end of first stanza he states- "conquest is a lie." (11) Later, England/the male, with all masculine, imposing vigour declares- "I am still imperially/ male, leaving you with the pain... (15-16). In another poem, 'Bone Dreams', yet again he allegorically represents these two countries and here also the political positions that determine the national/ collective memory is brought into play.

Oona Frawley, in 'Memory Ireland' brings in the concept of "trauma-ready culture" into play in order to point out the traumatic episodes experienced by the Irish population either in terms of famine or the Troubles. With that long history of devastation, Heaney considers Ireland's violence as indispensable to its cultural premises. In the view of Helen Vendler:

> Heaney has made imaginative cast after another in an

> attempt to represent the almost unrepresentable collective suffering of the North, yet it has tried equally consistently, to bring intellectual reflection to the emotional attitudes that too often yield, the binary position taking of propaganda. (2)

Along with the political turmoil Heaney paints the cultural landscape on Ireland through his meticulous depiction of its antique traditions. He revisits the mythic, ritualistic Gaelic past and connects the history of antique violence with the contemporary political saga of brutality. His effective rendering of 'Bog' imagery in numerous poems establishes an unequivocal juxtaposition between two time periods and at the same time ensures a remarkably clear narration of a nation's memory of martyrdom. The employment of archetypal image is a favourite trope that Heaney is always fascinated with and he reinvents 'primitive' accounts of sacrifices, burials, rites, rituals and goddesses. For instance, in 'Strange Fruit' he speaks about the 'beatification' that he feels about the bodiless head of a girl that was recovered from a bog.

> Here is the girl's head like an exhumed gourd.
> Oval-faced, prune-skinned, prune-stones for teeth.
> They unswaddled the wet fern of her hair
> And made an exhibition of its coil,
> Let the air at her leathery beauty.
> Pash of tallow, perishable treasure:
> Her broken nose is dark as a turf clod,
> Her eyeholes blank as pools in the old workings. (1-8)

When Heaney points at the brutality behind the ritualistic sacrifice to appease the Fertility Goddess, it simultaneously turns out be a pointer at the continued history of brutality. That excavation and resultant exhibition of the relics is an act of remembrance- of Irish cultural tradition. In 'Bogland' he speaks about the 'great Irish elk', 'salty and white' butter and great (pulpy) firs that are brought out of one of such bogs. Thus Heaney seems to be fascinated with the idea of historical continuation. He proudly says:

> Our pioneers keep striking
> Inwards and downwards,
> Every layer they strip
> Seems camped on before. (23-26)

Poems like 'Bog Queen', 'The Grauballe Man', 'Punishment' and 'Tollund Man' display the antique vestiges of Ireland through the promises of memory-retrieving the archetypal/ mythical/ historical/ national remnants for the present to experience. His poems that remember, represent and resist, turn out to be an account of the country's collective past.

In an era of socio-cultural 'amnesia' and persistent flux of transition from one form to another, the idea of cultural mnemonics and retention turn out to be axiomatic in determining the 'present' of any given community. The collectivity of such 'relics', whether in the form of trauma, guilt, fear, exuberance or violence, form a national/ transgenerational pattern of memory and once they are decoded we suddenly enter into the cultural history of people. Memory speaks to the present through the language of the traumatic past and reflects upon the national imagination of collective identity. It is an act of resistance- resistance against 'cultural slippage', as Stanley Cohen puts it. Seamus Heaney is endevouring to retrieve the 'national narrative' of Ireland through his poems so that the nation hardly forgets its past.

Ernest Renan in *What Is a Nation?: and Other Political Writings* has aptly posited: "The essential element of a nation is that all its individuals must have many things in common but it must also have forgotten many things." (12). For Heaney, the act of memorizing Ireland is direct as well as deliberate. His poems function like a historio- cultural archive where transgenerational experiences are encrypted so as to ensure that they are not erased/ forgotten. He manifestly decodes the history of the nation through the subtle arrangement of past events, objects, people and places as experienced collectively by a culture. His poems then become true determinants to locate the Irish cultural landscape through which the present could identify the past. Heaney's retrospective eye transcends time and recollects the nation's trauma so that nothing gets obliterated in the pace at which political transitions and cultural transformations happen in society.

Works Cited:

Dudai, Y. *Memory from A to Z. Keywords, Concepts and Beyond.* Oxford University Press, 2002.

Frawley, Oona. "Ireland and Memory Studies." *Oxford Bibliographies Online Datasets*, 2018, doi:10.1093/obo/9780199846719-0137.

Garden, Alison. "Oona Frawley (Editor), Memory Ireland, Volume 3: The Famine and the Troubles." *Irish University Review*, vol. 47, no. 1, May 2017, pp. 204–206, 10.3366/iur.2017.0267. Accessed 15 Nov. 2019.

Hawbwachs, M. 'The Social Frameworks of Memory' in *On Collective Memory* (Trans. L.A. Coser). University of Chicago Press, 1992.

Huyssen, A. "Present Pasts: Media, Politics, Amnesia." Public Culture, vol. 12, no. 1, 1 Jan. 2000, pp. 21–38, 10.1215/08992363-12-1-21. Accessed 13 Oct. 2019.

Renan, Ernest, and M. F. N. Giglioli. *What Is a Nation?: and Other Political Writings*. Columbia University Press, 2018.

Rothberg, M. 'Between Memory and Memory'. In *liex de memoire to noeuds de* memoire'. Yale French Studies, 2010.

Vendler, Helen. *Seamus Heaney*. Harvard University Press, 1998.

A New Platform for Marketing: Digital Marketing Overview and Present Landscape

-Subhrosil Dey
Ph.D. Research Scholar,
Dept. of Management and Business Administration,
Aliah University, Kolkata

Prof. Arup Kumar Baksi
Professor, Dept. of Management and Business Administration,
Aliah University, Kolkata

Abstract: *In recent years we experience a progressive transformation in India towards Digitalization of marketing, now consumers are looking their products through searching more on internet to find the best deal form the sellers around India as compared to traditional or conventional methods. Now through Search Engine Optimization (SEO), Content marketing, influencer marketing, content automation, e-commerce marketing, campaign marketing and social media marketing, social media optimization, e-mail direct marketing, display advertising, e–books, optical disks and games etc. are becoming more and more common among the consumers as well as sellers for their marketing exchange. With the increasing use of social media, people are more connected through WhatsApp and social networks, which creates a new opportunity for digital marketers to attract customers through digital platforms. Online marketing is a cost effective process and having a great commercial impact on the business. This paper try to find out the views on some current and future trends in online marketing.*

Key Words: Digital Marketing, Online Marketing, Internet, Social Media etc.

Introduction:

In present day marketing through online platform is an important tool for the marketers to selling their products and services to the respective consumers, like the marketers consumers are also increase their activity in internet and online marketing is an easiest way for them to getting their expected products while sitting at home. In present time all aspects of our daily day to day activity including the different value chains across the business are getting digitalized. Digital marketing can be defined as online, web marketing which consists of promotion and selling of different brands, products, and services by using different types of digital mediums like websites, blogs, social medium, mobile applications etc. A radical shift in technological improvement in all area including the networking through internet have forced today's marketing executive to becoming more market driven in their strategic decision making, requiring a formalized means of acquiring accurate and timely information about the end users, products and the marketplace and the overall environment. Through online marketing the marketers can utilize the power of e-commerce to sell their products and services; hence online marketing forms a subset of electronic commerce. In explaining the definition of Digital marketing Philip Kotler define it as a form of direct marketing which links consumers with sellers electronically using interactive technologies like email, websites, online forums and newsgroups, mobile communications etc.

With widespread of internet during 1990s digital marketing started to gain its popularity. It is an effective tool for the marketers which is supported by different evolving technologies for successful marketing of their product or services. After the Covid - 19 pandemic digital marketing has become a part and parcel of our daily activity. The use of internet among the world has gained momentum and according to the report published by Statista, the internet penetration in India rose to around 46.31% in 2021 from 14% in 2014.

Literature Review

Literature review is a process through which a researcher can identify the specific research question as it is a summary of the subject topics which can support the researcher to identify the same. Here I used several journals, books and web-based resources as my source of information. In 2009 D. Cheffy published his book E-Business and E-commerce Management where he try to pointed out that the area of e -commerce and e-business has increased, he also pointed out that through this many new opportunities and challenges arise in daily basis. He mentioned that Digital Marketing is an important process through

which the marketers as well as the consumers can reach a wide range for their marketing exchange. Several new technologies are established to help marketing activities and try to improve the customer knowledge about the need of any product. The e-commerce and the Digital Marketing basically has a close relation (Cheffy D. 2009). In our present day technology has gained a new path and it becomes a day to day activity for survival, even every single person at least have an idea about the internet; hence the companies also realize the importance of Digital Marketing to increase their business. It is a useful tool to help marketing activities in order to improve customer knowledge by matching their needs (Chaffey, 2013). In 1997 Hamill J and Gregory K has pointed out that in UK many SMEs are using internet as their marketing tool and the use of World Wide Web to enhance their business in international level. As per them the Government also emphasized to enhance the use of internet in SME sector; through this activity the Governments try to encourage the 'non' or passive exporters to turn into active exporters (Hamill J and Gregory K, 1997). A useful web page can easily reach to maximum customers throughout the world and globally passed the information to the customers as well. Hence a powerful global market can be created to the marketers to sell their product and services (Turbin, 1996).

In his study on new marketing pattern Kiani has observed that this pattern basically open a new opportunities for the marketers to promote their goods and services through online platform and it has increased the range for them to sell their products and services in global market. According to him this pattern can be viewed from four different angles such as Company to Consumers, Company to Company, Consumer to company and Consumer to Consumer (Kiani, 1998). Several researchers has conducted their study on the digitalization of marketing. Online advertising is creating new opportunities to the marketers and it is an effective tool for them to achieve success (Song, 2001). Marketing in an online mode is also cost effective for the marketers as they can sell their product in global market more efficiently (Pepelnjak, 2008). Pelling and White were working on social media behavior of the youth and according to them social media is the most popular networking tool among the youths (Pelling, E. L., & White, K. M. 2009). In his study Teo, also pointed out that in Singapore digital marketing is an effective tool through with the marketers achieve their success (Teo, 2005). With the rapid growth in technologies digital marketing has become an effective mode of marketing to change the dynamics of market (Mort, Sullivan, Drennan, Judy 2002).

As the days passed on the market dynamics all over the world are changing in relation to the young audience accessibility to social media and usage, hence it becomes a necessary criteria for the marketers to adopt this new technology to improve their marketing strategy (Rohm & Hanna, 2011). Now a day blogs are also important tool for the marketing for the marketers, and as a tool it successfully created an impact for increasing sales revenue, especially for products where customers can read reviews and write comments about personal experiences. Presently online review also worked really well as part of their overall strategic marketing strategy (Zhang, 2013). Facebook, Twitter, YouTube etc. has become a popular tool among the internet users and hence the marketers are also interested to display their products in these platforms to reach more customers (Kaplan and Haenlein 2010; Mangold and Faulds 2009). Viral advertisement is recently become more popular form of advertising through which a marketers can reach the maximum potential consumers (Shu-Chuan Chu, 2013). Search engine optimization (SEO),search engine marketing(SEM),content marketing, influencer marketing, content automation, e-commerce marketing, campaign marketing, and social media marketing, social media optimization, e-mail direct marketing, display advertising etc are the most benifial meedium for the marketers to sell their products and services in global market (Ruchi Harinarayan Mishra, 2020). Digital marketing is a cost effective process and it also have a great commercial value in global market. There occur a radical transformation of marketing pattern, even the traditional marketers also use digital platform to display their products and services in global platform and increases their reachThe use of internet the e-commerce marketing strategy has led to a revolution (Li, 2021).

Objectives:

- To Study the different successful types of digital marketing.
- Comparison with the traditional marketing.
- What is the impact of digital marketing in present day?
- To study the different pros and cons related to different types of internet marketing.

Major Types

Internet marketing or e- marketing is an important marketing tool and it gain a rapid momentum after the COVID - 19 pandemic. The main focused of it is how a company and it's different brands use the web and other digital media such as e-mail and mobile media to interact with its targeted population in order to meet its marketing goals. The different marketing trends, various articles were read, dissected, analyzed and summarized as given below:-

Search Engine Optimization (SEO)

Search Engine Optimization is a useful process which is basically used to optimize a website's technical configuration, content relevance and link popularity so that it can improve its pages can become easily findable, more relevant and popular towards user search queries. It plays an important role in online marketing as the marketers or the end users both used this tool to optimize their need.

Pros

* It gains the trust of the end users.
* It increases high-quality website traffic.
* It creates a positive experience to the users.
* It makes the website more powerful.
* It increases the organic traffic.
* It allow us to track the long-term results of our efforts.
* It provides keyword ranking.
* It increases the business revenue.

Cons

◊ It takes time to provide the result.
◊ The results may not be guaranteed.
◊ If often be expensive.

Search Engine Marketing

Search Engine Marketing or SEM is a process through the users can set their comprehensive strategy to drive traffic to their business, primarily through paid efforts. SEM is also known as paid search marketing process and it is a diverse and complicated process.

Pros

* It increases the visibility of the website.
* Targeting audience is unparalled which allow to refine the ad campaigns to reach the most relevant audience.
* It has a comprehensive tracking and analytics capabilities through one can easily measure the success of his / her SEM campaigns.
* In terms of budgeting and campaign management SEM offers a remarkable flexibility.

Cons

◊ In order to getting an optimal result SEM campaigns demand continuous monitoring and management.
◊ It has a limited long-term benefit.
◊ It is costly.

Social Media Marketing (SMM)

In social media marketing mainly different social media platforms are used for the marketing purpose, it involves creating and publishing content on business's social media channels to build the brand, raise brand awareness, engage your audience, generate conversation, increase sales and drive traffic to the website.

Pros

* Marketers can get a business access to a large audience of people who can choose to follow the respective business's online profiles. Unlike the traditional media there is no predetermined audience on the social media platform giving the marketers to access to a limitless demographic regarding gender, age or social status.
* Through SMM the marketers can connect directly to their targeted audience.
* It is very much effective tool for the marketers to increase their brand loyalty.
* It can understand how the audience perceives the business.
* It can easily resolve any dispute and also it is a faster process.
* It can easily monitors the feedback from the consumers.
* It provides faster growth to the business to higher rate.

Cons

◊ It is very much time consuming.
◊ One cannot control the opinion of the customers on social media. Sometimes the marketers can receive negative comments or respond from the audience.
◊ Result manifestation is lengthy.

Content Creation

Content is the most important metric while filtering search results on online platform, it can be in different formats, including blogs, white papers, e-books, case studies, how-to guides, question and answer articles, forums, news and updates, images, banners, info graphics, podcasts, webinars, videos, or content for micro blogging and social media sites. One can be create content on any topic and then skillfully link it indirectly to their business.

Pros

* It increases the brand awareness.
* It can increase the website traffic and in turn, may result in an increase in leads.
* Content like blogs or emails will increase the engagement of the marketers to their customers.

Cons

◊ It is very much time consuming.
◊ Costly
◊ A good skill is require to create a meaningful content.

Mobile Marketing

Mobile marketing is an effective advertising activity which promotes products and services via mobile devices, such as tablets and smartphones.

Pros

* It is cost effective.
* Target audience is location based.
* Messages can be done instantly.
* Integrated with the other social media.
* Easily shareable content.
* Prompt reply can be done.

Cons

◊ It is very much technology dependent.
◊ Lack of consumer attention can be received.
◊ There is still no guarantee that it can work perfectly on all devices.
◊One can have a very small window to leave a positive impression with the offer for someone on mobile.

Advantages to use Digital Platform in Marketing Strategy

- Digital platforms allow the marketers to find new markets and trade globally for only a small investment.
- Through digital platform one can find new markets and trade globally for only a small investment.
- A well planned and well targeted digital marketing campaign can reach the targeted customers at a much lower cost than traditional marketing methods.
- One can easily measure online marketing with web analytics and other online metric tools makes it easier to establish how effective the business campaign has been. You can obtain detailed information about how customers use the website or respond to the advertising.
- It can personalize the data, as the customer's database is linked to the marketer's website, then whenever someone visits the site, the marketer can greet them with targeted offers. The more they buy from the marketer, the more he can refine his customer profile and market effectively to both of them.
- Digital marketing lets marketers to create engaging campaigns using content marketing tactics. This content (images, videos, articles) can gain social currency - being passed from user to user and becoming viral.
- It can improve conversion rate among the marketers and the target audience.

Disadvantages to use Digital Platform in Marketing Strategy

- Ensure that the staff have the right knowledge and expertise to carry out digital marketing with success; tools, platforms and trends change rapidly and it's vital that one should keep up-to-date while using digital platform.
- It is time consuming.
- The marketers can face a higher competition as they reach a large audience.
- The negative feedback or criticism regarding brand can be visible to the audience through social media and review websites. Carrying out ef-

fective customer service online can be challenging; negative comments or failure to respond effectively can damage the brand reputation.

- There occur security and privacy issues as there are a number of legal considerations around collecting and using customer data for digital marketing purposes.

Conclusion

In India a radical change occurs towards the digitalization, now a day the consumers are looking
and searching more on internet to find the best deal form the sellers around India as compared to
traditional or conventional methods. Through this study we can conclude that digital marketing definitely beneficial for the marketers as it improve the range and variety of the customers in cost-effectively. The study can further be extended to compare the internet marketing techniques with
specific to various businesses.

Reference

Chaffey. D (2013), "Definitions of E-marketing vs Internet vs Digital marketing", Smart Insight Blog, February 16.

G. Reza Kiani, (1998), "Marketing opportunities in the digital world", Internet Research, Vol. 8 Iss: 2, pp.185-194.

Hamill, J. and Gregory, K. (1997), "Internet marketing in the internationalization of UK SMEs", Journal of Marketing Research, No. 13, pp. 9-28.

Hanna, Rohm, Crittenden (2011), "We're all connected: The power of the social media ecosystem", Business Horizons, Volume 54, Issue 3, Pages 265–273.

J Chandler Pepelnjak, "Measuring ROI beyond the last ad", Atlas Institute, Digital Marketing Insight, 2008.

Kaplan, Andreas M. and Michael Haenlein (2010), "Users of the World, Unite! The Challenges and Opportunities of Social Media

Kotler, P., & Armstrong, G. (2012). Principle Of Marketing (14th ed). New Jersey: Pearson.

Mort, Gillian Sullivan; Drennan, Judy (2002), "Mobile digital technology: Emerging issue for marketing", The Journal of Database Marketing", Volume 10, Number 1, pp. 9-23.

Pelling, E. L., & White, K. M. (2009). The Theory of Planned Behavior Applied to Young People's Use of Social Networking Web Sites. CyberPsychology & Behavior, 12 (6), 755–759.

Ruchi Harinarayan Mishra (2020), A Critical Review of Digital Marketing, International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology (IJIRSET), Volume 9, Issue 12, December 2020.

Thompson S.H. Teo (2005), "Usage and effectiveness of online marketing tools among Business-to- Consumer (B2C) firms in Singapore", International Journal of Information Management, Volume 25, Issue 3, June Pages 203–213.

Turbin, E., McLean, E. and Wetherbe, J. (1996), Information Technology for Management: Improving Quality and Productivity, New York, John Wiley.

YB Song (2001), "Proof That Online Advertising Works", Atlas Institute, Seattle, WA, Digital Marketing Insight.

*****

Silences to Voices: A Study of Kamala Das's Confessional Poetry

-Dr. Jupitara Boro
Assistant Professor,
Department of English and Foreign Languages
Girijananda Chowdhury University, Azara

Confessional poetry became popular as a new genre of poetry in the 1950s and 1960s due to its raw and autobiographical nature. Apart from engaging readers into an unfiltered glimpse into the poet's life , it also indulges into personal issues and other taboo subjects. Embracing vulnerability and emotional honesty as its defining features, confessional poetry marked a departure from the earlier poetic traditions. With poets such as Robert Lowell, Anne Sexton, Sylvia Plath, and John Berryman leading the movement, confessional poetry gained prominence in the mid-twentieth century. They mainly reflected upon their personal experiences, including mental illness, family relationships, trauma and sexuality to create works that resonated with the readers. Critic M.L. Rosenthal first coined the term confessional poetry in his review of Robert Lowell's groundbreaking collection *Life Studies* (1959). Rosenthal highlighted the unprecedented intimacy and candour of Lowell's work, which set the landmark for the genre's development and recognition.

A confessional poet is one who shares intimate details of their personal life with the reader, disclosing aspects that they would typically keep hidden due to their sensitive nature. A confessional poet must relinquish all inhibitions to write openly, truthfully and audaciously, so challenging the limitations imposed by societal norms and traditions. Confessional poetry is produced under internal pressure in order to express grievances, feelings of resentment or a sense of injustice. A poet can find some relief by sharing their experiences and as a result, the reader of such poetry naturally feels some relief as well as a sense of significance compared to the more intense and agonising sense of injustice experienced by those who are far more significant. After all, catharsis simply refers to the sense of relief that a person feels after observing others suffering as a result of stress, tragedy or guilt. All confessional art, according to Robert Philips (1973) , is a means of killing the creatures that live within us, those terrifying dragons of dreams and experiences that must be sought down, captured and exposed in order to be destroyed.

Kamala Das as a Confessional Poet

Kamala Surayya, also known as Kamala Das, is a prominent Indian English poet and literary figure, as well as a distinguished Malayalam author from Kerala, India. Kamala Das has been described as a confessional poet, and rightfully so as her poetry is mostly autobiographical and nostalgic. Kamala Das's poetry is confessional since she has shared what the reader perceives to be her life's secrets, as well as her private thoughts and feelings, so gaining the reader's confidence. Majority of her poems were written about her husband and her endless sexual involvement with other men, which she revealed while trying to find some solace for her suffering. She presented herself without shame or remorse. She dissects her thoughts and psyche, freely discussing issues that are deeply personal and private. Some reviewers attribute her introspective poetic style to the influence of American poet Robert Lowell. Kamala Das takes her confessional qualities to a new degree of broad appeal. Because the best confessional poetry transcends the subject matter to achieve some sort of victory over sadness and failure, her personal battle ultimately becomes the fight of all humanity. This is her forte or special force. Kamala Das penned about a wide variety of subjects. From the tale of an impoverished old servant to the sexuality of upper middle-class ladies who live in slums or close to major cities. Her una-

pologetic and straightforward portrayal of female sexuality gave her writing significance and made her a revolutionary in her own time.

Poetry and Confession

Poetry is pivotal in confessional writing. Its ability to intricately embed concealed meanings makes it remarkable as it artistically conveys importance, as displayed in the poems. Readers may resonate with the poet, perceiving the poem as a reflection of their own perspectives and emotions. This connection confers poetry with its relevance and essence.

In the poem "In Love" by Kamal Das, the poet reveals her own futile yearning for love, her involvement in barren and sterile sex, her subsequent agonies, tortures and disillusionments through the woman persona in this exquisite lyric.

O what does the burning mouth
Of sun, burning in today's
Sky, remind me…oh, yes, his
Mouth, and…his limbs like pale and
Carnivorous plants reaching
out for me, and the sad lie
Of my unending lust.

(Kamala Das, In Love)

The feeling of revulsion is conveyed through vivid images and symbols. The "burning mouth" of the lover, burning like the sun, burns love and changes it into the heat of lust. The ellipses are functional and reveal the feeling of horror in the woman's heart. His pale limbs like "carnivorous planet" reach out of her body in order to devour it all lustfully. Love is found nowhere.

One of Kamala Das's finest lyrics, "Jaisurya," deals with maternal love and conveys feminine intuition. How delighted the poetess was to have her son, despite the hardships she endured! How beautifully feminine sense is expressed. "And then, wailing into light/He came, so fair, a streak of light thrust/Into the faded light……"

She was proud of the son when he came out of her womb since he had been freed from the darkness inside of her and had now entered the realm of brightness and sunshine : "Out of the mire of a moonless night was/ He born, Jaisurya, my son, as out of…"

Kamala Das's confessional and autobiographical poetry "The Freaks" candidly captures the poetess's marital life's. The infatuation, emotional stagnation, disintegration, dissatisfaction and disillusionments and the pretence of occasionally displaying a great, flamboyant passion. In a world ruled by men, it is a faithful artistic expression of feminine sensitivity that is exploited and degraded. She could feel his fingers gliding across her body with enough dexterity, but not with the passion and haste that would make her want to mate with him emotionally as well as satisfy her thirst. Her candour in addressing the topic of sex is evident in this poem. She is so forthright here that she calls herself a freak and admits that she occasionally displays a great exciting desire to save face.

Desire. .... .Can this man with
Nimble finger-tips unleash
Nothing more alive than the
Skin's lazy hungers? Who can
Help us who have lived so long.

(Kamala Das, The Freaks)

In the poem, "The Looking-Glass" Das's enunciates the conventional role that a woman has to play. Her beauty, youth, grace, delicacy, her breasts and even her private parts are meant for surrender to the superior male. She has no volition of her own. She is reduced to the role of a puppet, a plaything whose only aim is to cater to male lustfulness. The poem is forthright in the sense that she offers advice to female members based on her personal encounters with men, as observed in the lines: "Gift him all, /Gift him what makes you woman, the scent of /Long hair, the musk of sweat between the breasts, /The warm shook of menstrual blood, and all your/Endless female hungers,"

The most noteworthy aspect of the poem "The Old Playhouse" is how confessional it is. Here, Kamala Das explains the type of life she and her husband had been enjoying in typically candid words. This poem uses metaphor to explain Kamala Das's experience of suffocation in her husband's house as a result of his egoism, selfishness and excessive sense

of his own significance. She was pushed to desperation by her husband's constrained and emotionless approach to engaging in sexual activity with her, which left her feeling as though her head was an abandoned theatre with all of its lights extinguished. She then tells her husband that she is determined to break free from this type of servitude. Kamala Das uses strong language in her poetry to express her unpleasant marital life, something that no other woman would do.

For, love is Narcissus at the water's edge, haunted
By its own lonely face, and yet it must seek at last
An end, a pure, total freedom, it must will the mirrors
To shatter and the kind night to erase the water.
(Kamala Das, The Old Playhouse)

She expresses the loss of her identity as a result of marriage in the poetry "The Stone Age." The gap between the two worlds—one masculine and the other feminine—is clearly defined when her female ego, unable to stand dominance, raises a voice of protest.

"A libertine, ask me why his hand sways like a hooded snake
/Before it clasps my pubis. Ask me why like/
A great tree, felled, he slumps against my breasts,"

She is confined within the four walls of domesticity by her husband, who is characterised as a "Old fat spider" who spins "webs of bewilderment" around her. She protests in agony:

"You turn me into a bird of stone. a granite/Dove, you build round me a shabby room, / And stroke my pitted face absent-mindedly while/You read. With loud talk you bruise my pre-morning sleep, /You stick a finger into my dreaming eye. And/Yet, on daydreams, strong men cast their shadow, they sink/Like white suns in the swell of my Dravidian blood."

She knocks on someone else's door when her husband isn't there. She confronts domesticity and asserts her individualism. She is experiencing the contrast between the man's lust and her own desire for real love. It is a confessional poetry at its frankest. The poetess's candour could not have found a better outlet than it has done in these lines.

In the poem "The Sunshine Cat," Kamala Das expresses her anguish and distress caused initially by her spouse and then by several men with whom she has engaged sexually. She alleges that her spouse was a cowardly man who neither loved her nor treated her properly, yet he was a callous observer of her sexual encounters with other men. She endeavoured to satisfy her sexual partners by embracing their hairy chests; however, they all informed her that they could fulfil her sexual desires but were incapable of loving her. Kamala Das conveys that the hearts of her lovers were devoid of any genuine passion or affection for her, leading to her complete disinterest in pursuing any romantic encounters. This poem clearly includes a confession that lady in a similar situation would never disclose to anyone, as indicated in the lines :

"And a coward, the husband who neither loved nor
Used her, / but was a ruthless watcher, and the band
/ Of cynics she turned to, clinging to their chests where/
New hair sprouted like great-winged moths, burrowing her…."

Confession for protest and melancholy

Kamala Das's poetry is rightly categorised as confessional poetry; but, it can equally be classified as poetry of dissent. The majority of her poetry comprises her confessions concerning the dissolution of her marriage, her fruitless quest for love and affection through sexual interactions with other men and her unrestrained sensuality, which rendered love a "swivel-door," with one lover exiting her bedroom as another entered. This confessional poetry serves as a form of protest, articulating Kamala Das's profound and violent condemnation of the treatment of women in India. Kamala Das's marriage was unsuccessful as her spouse regarded her solely as a source of sexual fulfilment, offering her neither genuine love nor affection. She has characterised her husband's unemotional and mechanical approach to sexual intercourse, which, while fulfilling her physical desires, deprives her of the love and affection that every woman anticipates from her spouse, resulting in disappointment, misery and even torment. These poems articulate Ka-

mala Das's personal animosity towards her husband and reflect the grievances of other women in like situations. Kamala Das emerges as the poet of the heart and soul, imbued with a melancholic refrain.

Conclusion

A confessional female poet fearlessly articulates even the most concealed desires and fantasies that women harbour concerning sexuality. An orthodox reader would undoubtedly be shocked by such candour and would perceive it as filthy and immodest. The movement advocating for women's liberation was still in its initial phase when Kamala Das composed these poems. Contemporary women writers are breaking conventional norms in terms of frankness, candour and explicitness regarding the topics of sex and sexual acts. Kamala Das's free verse, by discarding conventional expressions, has refined a method of addressing the most personal experiences without resorting to sentimentality or any hint of pathos. Indian critics have identified in her poetry the voice of the new free Indian woman, failing to recognise that she articulates solely her own perspective. Her candid acknowledgement and audacious approach to personal matters are remarkable and closely align with the characteristics and subjects of confessional poetry. In this manner, it is evident that the craft of confessional poetry facilitates a profound comprehension of human emotions and sentiments, as represented in the works of Kamala Das.

References

Kamala Das poems. PoemHunter. https://www.poemhunter.com/kamala-das/poems/. Accessed 27 Dec, 2021.

https://www.facebook.com/lovequeenofmalabar/posts/jaisuryait-was-again-the-time-of-rain-and-onevery-weeping-tree-the-lush-moss-spr/519647551385921/. Accessed 25 Dec, 2021.

Hayes, Paula. *Robert Lowell and the Confessional Voice*. Peter Lang Publishing, 2013.

Kohli, Suresh, ed. *Wages of Love: Uncollected Writings of Kamala Das*. Harper Collins Publishers, 2013.

Lowell, Robert. *Life Studies*. Farrar, Straus & Giroux, 1959.

Phillips, R. S. *The confessional poets*. Southern Illinois University Press, 1973.

Samal, Subrat Kumar. *Postcoloniality and Indian English Poetry: A Study of the Poems of Nissim Ezekiel, Kamala Das, Jayanta Mahapatra and A.K. Ramanujan*. Patridge, 2015.

*****

Collective Trauma and the Displacement of Identity in Siddhartha Gigoo's *The Lion of Kashmir*: A Kai Erikson Perspective

-Archana,
Research Scholar,
Department of English
University of Himachal Pradesh, Shimla
archanakarotia@gmail.com

Abstract

This paper explores the multifaceted nature of collective trauma as depicted in Siddhartha Gigoo's novel *The Lion of Kashmir (2020)*. Utilizing Kai Erikson's theoretical framework from *Everything in Its Path (1976)*, the study examines how the forced displacement of the Kashmiri Pandit community is portrayed as a lasting and shared emotional injury. Erikson's theory of collective trauma, which emphasizes the loss of communality and identity, serves as a lens to analyze the struggles of the novel's central characters, Zooni Aziz and Salim Dar, as they navigate the personal costs of conflict. By incorporating Erikson's insights, the paper explores the layers of trauma, intergenerational repercussions, and the interplay between memory and resilience. Gigoo's narrative not only documents the pain of the Kashmir conflict but also preserves a cultural memory of resilience, highlighting how storytelling becomes a means for healing and identity reconstruction. Through an examination of key themes such as loss of homeland, disorientation, and moral ambiguity, the analysis underscores the socio-political and psychological dimensions of trauma experienced by the people of Kashmir. Furthermore, the paper delves into how the narrative captures the universal aspects of human endurance and adaptation in the face of prolonged crises, bridging the specificities of Kashmiri experiences with broader human struggles against systemic displacement and cultural erasure. By emphasizing both the particularities of the Kashmiri Pandit experience and the universal resonance of their story, the analysis positions Gigoo's novel as a profound reflection on the interplay between place, memory, and identity in the context of trauma.

Keywords: collective trauma, displacement, Kashmiri Pandits, identity loss, cultural memory, resilience, intergenerational trauma, storytelling, systemic oppression, memory reconstruction

Introduction

Siddhartha Gigoo's *The Lion of Kashmir* offers a poignant portrayal of individuals grappling with the personal and communal trauma stemming from the Kashmir conflict. The narrative follows Zooni Aziz, a young woman who returns to her homeland of Kashmir from London to search for her father, Commandant Abdul Aziz, a high-ranking officer in the Special Forces. Interwoven with Zooni's journey is the story of Salim Dar, a former militant who has transitioned to a police officer, and his moral struggles that illuminate the complexities of loyalty and betrayal in a war-ravaged region. Through these interconnected narratives, Gigoo delves into the psychological and emotional toll that prolonged conflict exacts on both individuals and communities.

This paper explores the broader implications of displacement, identity loss, and moral ambiguity in Siddhartha Gigoo's novel *The Lion of Kashmir*, drawing on Kai Erikson's theoretical framework from his work *Everything in Its Path*, which examines the collective trauma experienced by the survivors of the Buffalo Creek flood. Erikson's insights into the destruction of social fabric and its psychological consequences provide a critical lens for understanding the impact of the Kashmir conflict as depicted in the novel. The study further underscores how Gigoo's narrative situates personal stories within the larger historical and political contexts of the region, revealing the interconnectedness of individual and communal suffering. By examining how the novel's characters navigate these personal and shared traumas, the paper highlights the resilience of those who endure prolonged crises, drawing connections between their

struggles and the universal human capacity for hope and survival. Furthermore, the analysis illustrates how displacement becomes a prism through which identities are reconstructed, and new forms of cultural expression emerge, ensuring the survival of communal memory amidst adversity.

Understanding Collective Trauma in Erikson's Framework

Kai Erikson's *Everything in Its Path* emphasizes that "the loss of communality is not merely a deprivation, it is a mutilation of the self." This profound insight is central to understanding the experiences of Zooni Aziz and other characters in Siddhartha Gigoo's novel *The Lion of Kashmir*. The disintegration of community bonds and the destruction of the social fabric caused by the prolonged Kashmir conflict leads to a profound psychological disorientation and a deep sense of isolation for the characters. Zooni's emotional journey to reconnect with her father and her ancestral homeland underscores this profound struggle, as she poignantly observes: "Kashmir has become a strange place. I feel attracted to it only when I see it in photographs. It seems unreal and hypnotic like a movie set or a fantasy". (Gigoo 45). The severing of ties to one's community and the loss of a familiar sense of place deeply impact the characters' sense of identity and belonging.

Erikson's theory suggests that shared traumatic experiences create a common language and narrative that unites people. This perspective is reflected in Gigoo's depiction of storytelling as a means of preserving cultural memory and fostering resilience. Characters in the novel use their shared suffering to find solidarity and meaning amid the chaos. Furthermore, Erikson notes that "The collective trauma works its way slowly and even insidiously into the awareness of those who suffer from it, so it does not have the quality of suddenness normally associated with 'trauma.' But it is a form of shock all the same, a gradual realization that the community no longer exists as an effective source of support and that an important part of the self has disappeared" (Erikson154). Gigoo's novel mirrors this gradual loss as displaced characters grapple with the erosion of communal bonds and cultural roots. By juxtaposing Erikson's theoretical framework with the experiences of Zooni and Salim, Gigoo emphasizes the slow unraveling of identity and the enduring impact of collective trauma.

Representation of Collective Trauma in *The Lion of Kashmir*

Loss of Homeland

Erikson's observation underscores that the conception of "home" transcends mere geography, as it encompasses a profound sense of belonging and connection to a particular temporal and spatial context. This resonates with the recurring motif of displacement and loss of homeland in Siddhartha Gigoo's novel *The Lion of Kashmir*. For the protagonist Zooni, Kashmir remains "home because I was born and brought up there. It is home because dad and Zubair are still living there" (Gigoo 46). However, the stark contrast between these nostalgic memories and the region's current reality, marred by destruction and curfews, exemplifies the dislocation experienced by the characters. A poignant moment in the novel captures this disconnect, "As we enter the city that's under dad's command, ravages of destruction start showing up along the roads. Not a soul is to be seen. There's not a bird in the sky or on treetops" (Gigoo 52).

This imagery aligns with Erikson's assertion that "a home that has grown along with one, literally been built around one, is not simply an expression of one's taste; it is the outer edge of one's personality, a part of the self itself" (Erikson 175). The physical destruction of homes and landscapes symbolizes the broader disintegration of communal identity and belonging, leaving characters like Zooni grappling with a fragmented sense of self. As Aamir explains, "The heady, rebellious Kashmir I left as a teenager was now a land of brutalized, exhausted and uncertain people... The conflict might leave the streets, but it will not leave the soul" (Aamir 83). This highlights how the loss of homeland reverberates as an enduring emotional scar that cuts deep into the very core of one's being. The destruction of the physical spaces that have shaped an individual's identity and memories can leave a profound sense of displacement, where the self feels unmoored and disconnected from the anchors that once provided a sense of place and belonging. The loss of this intimate, intertwined rela-

tionship between the self and the home environment can be devastating, creating a void that is not easily filled and leaving characters like Zooni to navigate the complexities of reclaiming a sense of identity and purpose in the face of such profound dislocation.

The novel highlights the tension between the idealized recollection of home and its war-ravaged actuality. This dichotomy is further exacerbated by systemic violence, as Braithwaite and D'Costa note, "The most deadly cascade in this case is from inter-state war to internal insurgency, particularly to Indian military violence against Kashmiri civilians" (Braithwaite and D'Costa 178). These intersecting layers of violence amplify the emotional burden of displacement, emphasizing the intricate relationship between personal grief and structural oppression.

Exile and Identity

The theme of exile is profoundly explored in Siddhartha Gigoo's novel *The Lion of Kashmir,* manifesting both physically and psychologically. As Kai Erikson's framework suggests, "We don't have a neighborhood anymore. We're just strange people in a strange place. I feel our lives have been completely turned inside out by what has happened" (Erikson 211). The protagonist Zooni's reflections on her separation from her homeland underscore the alienation inherent in this state of exile, "Unlike my classmates in the department, I hadn't gone home in the last two years. Everyone else had been home at least once or twice" (Gigoo 50). This estrangement is further compounded by feelings of betrayal and uncertainty, as Zooni contemplates "I am leaving without informing her. I haven't even left a note. Will she see this as a betrayal?" (Gigoo 51).

Erikson's framework underscores that experiences of exile and displacement sever not only physical connections, but also the intangible bonds to one's identity and sense of belonging. Sawhney and Mehrotra highlight that "The loss of one's territory has adverse consequences on the displaced persons. The resettlement of displaced Kashmiri people in urban centres has led to a redefinition of gender roles" (Sawhney and Mehrotra 83). This idea is integrated to explore how displacement not only disrupts physical and emotional ties but also reshapes traditional social roles within the Kashmiri Pandit community.

The novel further explores the intergenerational implications of forced displacement, depicting how younger characters inherit the trauma and disorientation experienced by their predecessors. The sense of exile extends beyond mere geographical dislocation, encapsulating a deeper disconnection from cultural and emotional roots. These reflections capture the multifaceted impacts of exile, emphasizing how forced displacement disrupts both individual and communal identities. Furthermore, Gigoo uses Zooni's internal conflict to highlight the psychological toll of being caught between two worlds—her ancestral homeland and her adopted environment—forcing her to continuously negotiate her sense of self.

Resilience

This theme of collective resilience is central to Gigoo's narrative. The protagonist Zooni's resolve to uncover the truth about her father and reestablish ties with her homeland reflects the persistent hope of the Kashmiri people. Her father's words, "You mustn't give up. I know you are brave. You mustn't give up on me. I will come for you, and we will go home" (Gigoo 60), serve as a reminder of the resilience that underpins the community's survival.

The novel also emphasizes the significance of collective action in sustaining a sense of normalcy and purpose. A character asserts, "We are the best of the lot. And you talk of stepping down and hiding in holes? Who will do the job then? As long as people like us are out there in streets, there is sanity" (Gigoo 120). These acts of resilience echo Erikson's emphasis on the importance of rebuilding social bonds to overcome collective trauma. As Bhan et al. argue, "Relating otherwise requires a commitment to building solidarities within the context of Kashmir's prolonged and bloody political turmoil" (Bhan et al. 287). This perspective illustrates the transformative potential of collective efforts to heal and rebuild, which can facilitate the reimagining of community in the face of dislocation. The reconstruction of social networks becomes a lifeline for the displaced, offering a pathway to reclaim their sense of belonging and

identity.

In Gigoo's narrative, this resilience manifests not only in grand gestures but also in small, everyday acts of survival and solidarity, such as characters sharing meals, memories, and stories to preserve cultural heritage and foster hope. These collective actions exemplify Erikson's assertion that "recovery from trauma is not just about healing individual wounds; it is about rebuilding the social fabric of the community." In the Kashmiri context, these efforts represent a powerful form of resistance against the forces that seek to erase their history and identity, showcasing the enduring strength of communal ties even in the direst of circumstances.

Symbols and Narratives of Resilience

In Siddhartha Gigoo's novel *The Lion of Kashmir*, the act of storytelling serves as a critical symbolic representation of resilience. Through the narration of memories, the characters construct a bridge that connects the past and present, thereby resisting the erasure of their cultural identity. These stories function as tools that facilitate survival, uniting individuals through shared experiences and empowering them to reclaim agency amidst displacement. The narratives not only provide a historical record but also offer a means to envision a future, even in the face of a fractured present. By emphasizing the transmission of cultural memory, Gigoo underscores the transformative potential of stories in healing and rebuilding fragmented communities.

Additionally, the recurrent symbolism of a battered homeland conveys both the ravages of conflict and the prospect of renewal. The characters' resilience manifests in their capacity to reconstruct their lives, safeguarding their values and customs despite institutional attempts to erase them. Through these symbolic representations, Gigoo constructs a narrative that not only grapples with loss but also celebrates the indomitable human spirit.

Conclusion

Siddhartha Gigoo's novel *The Lion of Kashmir* skillfully interweaves personal and communal narratives that grapple with trauma, identity, and resilience, providing a compelling examination of the human ability to endure and adapt amid profound displacement. By aligning Gigoo's work with Kai Erikson's theoretical framework, the analysis underscores how trauma exceeds individual experiences, manifesting as a collective emotional wound that fractures communities, yet also serves as a catalyst for resilience and recovery.

The novel's characters, such as Zooni's search for a sense of belonging and Salim's moral complexities, reflect broader themes of cultural preservation and the reconfiguration of identity amid systemic oppression. Ultimately, The Lion of Kashmir stands as a testament to the power of storytelling in preserving cultural memory and fostering unity. The narrative not only memorializes the anguish of displacement but also underscores the transformative potential of resilience, reminding readers of the enduring spirit of communities that persistently strive to reclaim their identity and history. Gigoo's work serves as both a lament and a beacon of hope, urging the audience to confront the intricacies of loss while celebrating the profound human capacity for renewal.

Work Cited

Aamir, Rabiya. "Impasse of Kashmir and Recurring Pretexts: A Historiographical Analysis." *Policy Perspectives*, vol. 17, no. 1, 2020, pp. 83–104.

Bhan, Mona, Deepti Misri, and Ather Zia. "Relating Otherwise." *Biography*, vol. 43, no. 2, 2020, pp. 285–305.

Braithwaite, John, and Bina D'Costa. "Recognising Cascades in India and Kashmir." *Cascades of Violence: War, Crime and Peacebuilding Across South Asia*, ANU Press, 2018, pp. 177–184.

Erikson, Kai. *Everything in Its Path: Destruction of Community in the Buffalo Creek Flood.* Simon and Schuster, 1976.

Gigoo, Siddhartha. *The Lion of Kashmir.* Rupa Publications, 2020.

Sawhney, Charu, and Nilika Mehrotra. "Displacement from Kashmir: Gendered Responses." *Sociological Bulletin*, vol. 62, no. 1, 2013, pp. 83–99.

****

The Stereotypical Portrayal of Gender in Fairy Tales "Cinderella" and "Snow White"

-Mukesh Kumar
Research Scholar
The English and Foreign Languages University,
Regional Campus- Lucknow

-Riddhima Yadav
Research Scholar
The English and Foreign Languages University,
Regional Campus- Lucknow

Abstract
This paper explores the stereotypical representation of gender in the fairy tales. Fairy tales have always been the very first kind of literature with which children meet. Gender roles in children's literature have long been a topic of interest and concern, as these books play a pivotal role in shaping young minds. Children's literature frequently reflects and reinforces gender related social norms and expectations. In the past, a lot of well-known children's stories reinforced gender stereotypes by portraying boys as brave and assertive while portraying girls as docile and nurturing. Children's perceptions of themselves and others have been profoundly impacted by these portrayals, potentially restricting children's awareness of gender equality and diversity. The depiction of gender roles in children's literature are a mirror of broader cultural beliefs and have a significant impact on a child's development. These typical portrayals of women and men, gender stereotypes, occur in children's literature regularly, which often means that children can begin to consider these sexist features normal, usual and also right. Undoubtedly, this point of view is not proper as it deepens the prejudices against both women and men and, at the same time, it contributes to form children's incorrect and biased ideas about the typical behaviour patterns of females and males. The stereotype that emerges from some classic fairy tales is a princess who has a beautiful face and an angelic heart, a prince on a white horse who is handsome and charming, and a happy ending forever. These three sweet things are generally always the main menu served in bedtime fairy tales, including the classic fairy tales Snow White and Cinderella. Besides sounding beautiful, the plot and characterisation presented in the classic fairy tales represent a woman through feminine standards packaged through stereotypes. It can then be seen that various stereotypical representations aimed at women in these two tales, ranging from the obsession with natural beauty, misconceptions about the meaning of ambition, and marriage is the solution for all the problems of a woman. The stereotypical representation of women in classic fairy tales, exemplified by characters like Snow White and Cinderella, has long been a subject of scrutiny and critique. Such narratives can potentially reinforce regressive societal expectations, where a woman's value is primarily associated with her appearance, passivity, and her ability to secure a romantic partnership. So, the paper examines how do children interpret and internalise the gender stereotype presented in classic and modern versions of Snow White and Cinderella and what implications does this have for their perceptions of gender and self -identity?

Keywords: *Gender, Stereotypes, Representation, Children, Expectations.*

Introduction

Fairy tales have long had a special place in the hearts and minds of readers and writers. Children's hearts and minds have been captivated by these enthralling stories for years, which are frequently filled with fantastical creatures and imaginative settings. Fairy tales, however, often have deeper meanings hidden beneath their fanciful exterior. Some of the most well-known stories, like Cinderella and Snow White, have come under fire for maintaining stereotypical ideas about gender roles. These stories provide a window into the prevalent conventions and expectations around gender in their respective periods of time since they have their roots in historical and cultural contexts where traditional gender roles were deeply ingrained. Although the tales of Cinderella and Snow White have an enduring appeal, but they are also artifacts of the times in which they were written, reflecting and perpetuating the gender stereotypes that were common at that time.

Stereotypes are used in society to establish gender categories in terms of acceptable behaviour, characteristics, and values, the quantity and complexity of knowledge as the kid becomes older. Oversimplified gender role norms and societal shared ideas influence the development of gender role identity. These impact a child's perception of themselves, their interactions with adults and peers, the expectations that others have of them, and the expectations that they will reciprocate those expectations. The continual use of

gender labels creates stereotyped expectations for both men and women that uphold the division between "masculine" and "feminine" characteristics. Gender stereotypes uphold the connection between certain labels that characterise behavioural patterns and individuals belonging to a particular sex in this way.

Analyzing the stereotyped gender representation in Snow White and Cinderella requires a multidimensional approach that takes into account the traits of the main characters as well as the historical setting in which these tales originated. This paper identifies the various ways in which these narratives support the maintenance of gender stereotypes by carefully examining them. This investigation serves as a reminder that even the most cherished stories have the power to influence children's viewpoint of gender and the expectations and roles that are placed on people in the real world.

Historical Context: Shaping the Stories

The Cinderella story, which is most commonly linked to Charles Perrault's 17th-century adaptation, captures the ideals and standards of the French court during that period of time. During the extravagant and opulent reign of King Louis XIV in 1697, Perrault's "Cendrillon" was published. The story encapsulates the values of courtly love and chivalry, and the French court was the height of refinement. Women's roles in this historical setting were essentially those of beauty, grace, and propriety, highlighting their status as objects of desire and admiration. In the seventeenth century, gender standards in France required women to exemplify humility and grace, akin to the fairy tale of Cinderella. They had little options for education or engagement in public life and were restricted to conventional roles, mostly as mothers and wives. These gender standards are upheld by Cinderella's portrayal as a submissive, moral maiden who eventually finds fulfillment through marriage, which reflects the dominant socioeconomic values of her era.

The Grimm Brothers' early 19th-century publication of "Schneewittchen," their version of Snow White, is based on German legend. In Germany, the early 1800s were characterized by social and political unrest. It was the time between the fall of the Holy Roman Empire and the beginning of the German Empire in the late 1800s. The collection of fairy tales by the Grimm Brothers was an effort during this time to preserve German tradition and cultural history. Like in many other regions of Europe, women's responsibilities were firmly anchored in domesticity in early 19th-century Germany. The popular belief that men should rescue or protect women is reflected in the story of Snow White, who is portrayed as a young woman who seeks solace with a group of dwarfs before being awakened by a prince. Furthermore, the subject of female rivalry and jealousy, demonstrated by the evil queen's obsession with the beauty of Snow White, emphasizes the importance of looks and the anxiety that women feel when competing for men's attention.

Gender representation in Snow White and Cinderella was greatly impacted by the historical setting. The dominant conventions and expectations of the times influenced these tales, which highlighted the qualities of humility, elegance, and beauty in women. They portrayed male heroes as the ultimate defenders and rescues, reinforcing traditional gender stereotypes that restricted women to domestic and decorative tasks. A thorough examination of the ways in which these stories uphold gender norms and stereotypes requires an understanding of this historical background.

Character Analysis: Women in Cinderella and Snow White

The understanding of the stereotyped gender representation in these fairy tales requires an overview of the historical contexts in which Cinderella and Snow White originated, but an in-depth analysis of the main characters—especially the female protagonists—is just as important. In their respective tales, Cinderella and Snow White both function as outstanding examples of the traditional roles and qualities ascribed to women, reflecting and sustaining gender stereotypes. The title heroine of one of the most well-known and lasting fairy tales, Cinderella, personifies the archetype of the submissive, moral maiden. She is presented as a young woman who has endured mistreatment at the hands of her stepsisters and stepmother, leading a life filled with slavery and pain. Despite her challenging circumstances, she embodies grace, patience, and steadfast kindness. Her reformation and eventual liberation through marriage to the prince are ultimately the results of these virtues.

Cinderella and Snow White both have similar characteristics. Both of them are presented as a youthful, naive, and reserved woman. Snow White's principal virtue is her beauty, which is emphasized. She seeks safety with the seven dwarfs and assumes a domestic role in their cottage. Similar to Cinderella, Snow White's destiny is inextricably linked to a male character—the prince— who rouses her from a death-like sleep and seals it. Cinderella and Snow White are prime examples of conventional gender norms that attribute women to domesticity, chastity, and meekness. Their ultimate success, which mostly centers on getting married to a prince, depends on these qualities. The idea that a woman's happiness and prosperity depend on her capacity to uphold these ideals and

find a compatible spouse is reinforced by this representation.

Character Analysis: Male Characters in the Tales

Analyzing the male characters and their contributions to the perpetuation of gender norms is just as important, even if the female protagonists like Cinderella and Snow White hold prominent positions in the stories. These stories frequently reinforce traditional ideas of masculinity by portraying male characters as the ultimate savior. The prince in Cinderella stands for the traditional heroic role. He is the driving force for Cinderella's metamorphosis and eventual release from her harsh situation. His function is essentially restricted to that of the hero who saves Cinderella and grants her a life of luxury and contentment. The prince is portrayed in a way that conforms to conventional gender norms, with a focus on his chivalry, riches, and rank as the main factors determining whether or not he is a suitable husband.

In a similar vein, Snow White's prince serves as the quintessential masculine hero. He plays a crucial part in Snow White's journey to finally escape the evil queen's assault on her life and to emerge from a death - like sleep. Like his counterpart in Cinderella, the prince conforms to the prevailing gender norms of the day. The prince in Snow White embodies the traits and deeds of a traditional hero. He is moved to save Snow White after being captivated by her dead beauty. The story highlights his part in kissing the sleeping princess to rouse her from deep slumber, an act that ultimately determines her fate. Since Snow White's fate is intimately linked to the prince's actions, his choices will have a significant impact in guaranteeing her happy ending.

The male protagonists in both stories are portrayed as the ultimate rescuers and saviors, which is consistent with the traditional ideas of masculinity and heroism that were prevalent in the eras when these stories were created. The gender stereotype that women are submissive and require male involvement to lead satisfying lives is perpetuated by these masculine characters, who support the notion that women are dependent on men for their happiness and salvation.

The Power of Appearance in Cinderella and Snow White

Propp's story framework demonstrates how women are viewed as inferior to men. Women's image is frequently shaped into an ideal of beauty, which is introduced by the media and entertainment industry through movies featuring female main character who have physical attributes—beginning with hair, body type, and skin tone—that are considered the standard of beauty by the media. Even now, the physical appearance is utilized to subtly assess a woman's beauty. A recurring topic in both Cinderella and Snow White is looks and its role in determining a woman's value and fate. These stories emphasize how much significance is put on physical attractiveness, frequently at the expense of other qualities, which reinforces social norms and stereotypes.

Cinderella

The glass slipper, a representation of the prince's search for his perfect love, brings physical attractiveness to the forefront of Cinderella. The story emphasizes how important it is that the shoe fits perfectly, and how the prince insists on finding the owner based only on this factor. The emphasis on Cinderella's shoe size is a metaphor for the idea that a woman's value is primarily determined by her outward appearance. Her inner virtues—like her fortitude and kindness—take a backseat to the glass slipper's outward appearance. Cinderella's metamorphosis at the hands of her fairy godmother also emphasizes how important Cinderella's physical attributes are. Cinderella is transformed by the Fairy Godmother into a stunning girl. Because it is widely believed that a woman must look good in order to capture a man's heart, Cinderella's two stepsisters and all the other girls who attend the dance spend a lot of time trying to look their best. Cinderella is a princess from a classic fairy tale, and it's obvious that she stands for the idea that women are sometimes evaluated solely on the basis of their outward looks in the media. Women are held to these ideal standards by the media, which begin with well-groomed hair, lean, slim bodies, and faultless writing textures.

The mother and her two stepsisters, on the other hand, who lack Cinderella's beauty, are characterized as arrogant, power-hungry, and insane due to jealousy of Cinderella's appearance. Although Cinderella's mother and stepsister are portrayed as cruel and self-centered, Cinderella herself is praised as having a compassionate heart. They are obviously not as attractive on the outside than Cinderella. Cinderella is portrayed as having exquisite inner and outside beauty. Her two stepsisters, on the other hand, are portrayed as being ugly on the inside as well. This type of contest affects women's relationships with other women, creating animosity and envy. The narrative implies that her physical metamorphosis will be necessary for her to escape her situation and find happiness, which serves to further support the notion that a woman's appearance is her greatest asset.

Snow White:

An absolutely flawless depiction of the princess Snow White's appearance can be found in the fairy tale. It is stated that Snow White has skin as white as snow, hair as black as ebony, and lips as red as a rose.

It is said that the source of the greatest strength is beauty. The Queen becomes even
more obsessed with Snow White's physical appearance due to her inherent beauty, which gives her strength. She also had a depressing and hopeless appearance due to her obsession with her appearance. This is demonstrated in the first scene of the movie when the Queen looks into the magic mirror to see if she is still the most attractive person. The following is a quote from the 1937 movie *Snow White*:
"Queen: Magic mirror on the wall, who is the fairest one of all?

Mirror: Famed is thy beauty, majesty. But hold a lovely maid I see. Rags cannot hide her gentle grace.
Queen: Alas for her! Reveal her name.

Mirror: Lips red as the rose. Hair black as ebony. Skin white as snow. Queen: Snow White!"

The mirror is given a masculine personality and plays a role in determining a woman's beauty standards. Giving men the authority to determine whether a woman is beautiful or not is equivalent to personifying the mirror as male. That also means that a man should subconsciously find them attractive. Let's say it is decided that they do not satisfy the requirements for beauty. They are then considered unfit. Although the Queen didn't think she was any less lovely, she chose to believe her magic mirror's assessment that she wasn't beautiful.
Moreover, she never stopped considering ways to enhance her beauty, even in spite of her belief that she was already attractive. Additionally, it raises up a moral debate as though a woman's pursuit of beauty is her life's work. For women, achieving natural beauty is the ultimate goal of their endeavors. (Griffin & Clarke, 2007).

The issue of looks plays a significant role in both Snow White and Cinderella, contributing to the stories' themes of a woman's destiny and value. These tales highlight how physical attractiveness frequently takes precedence over other attributes, making women into objects of want and admiration. The stories uphold stereotypes that prioritize outward beauty over a woman's intelligence, character, and other qualities, placing an excessive amount of attention on it. The emphasis on looks perpetuates cultural norms that might affect women in the actual world by affecting their expectations and sense of self-worth.

For many years, children's literature has been anchored by fairy tales such as Snow White and Cinderella. These tales are beloved for their captivating storylines, but they also convey important lessons about gender norms and expectations in a subdued but effective way. Comprehending how youngsters assimilate and comprehend the gender stereotypes portrayed in both contemporary and classic renditions of these stories is crucial in order to appreciate the possible consequences for their conceptions of gender and identity.
Traditional vs. Progressive Beliefs: Examining the Influence of Classic and Modern Fairy Tales
A wider cultural shift in our perception of gender roles is reflected in the conflict between traditional and progressive attitudes in current and classic versions of fairy tales such as Snow White and Cinderella. Classic stories, deeply ingrained in historical settings, highlight conventional wisdom that emphasizes the importance of physical attractiveness and frequently portrays women as helpless, obedient, and dependent on male rescuers. Children who are exposed to these conventional stories may absorb these gender stereotypes, which could restrict their own goals and expectations, create unfair relationships, and even have an impact on their self-worth and professional decisions.
On the other hand, modern retellings of these stories seek to question and undermine these established gender roles. Female characters are frequently presented as independent, strong, and
able to shape their own paths in life. These stories inspire kids to think critically about preconceptions, question established conventions, and embrace more equal relationships. They encourage girls to aim for positions and careers that go beyond conventional expectations, giving them the confidence to break away from the constraints of traditional gender norms. Thus, these fairy tales' contrast between traditional and progressive ideas mirror the larger social discourse on gender equality and empowerment, providing children with important lessons on how gender roles can change and adapt to modern values.
Consider the 2015 movie Cinderella: In Kenneth Branagh's live-action version of the story, Cinderella is a stronger and more independent woman. When her stepfamily confronts her, she defends herself, and she remains gentle in the face of hardship. This version places more emphasis on Cinderella's inner beauty, generosity, and bravery than her outward beauty. 2012 movie Snow White and the Huntsman: In this modern retelling of the tale, Snow White is portrayed as a warrior who directs an uprising against the evil queen. In contrast to conventional passivity and dependency, Snow White is shown as powerful, resolute, and actively engaged in her own rescue. The story emphasizes her personal power and leadership abilities instead of depending just on a prince to save her.

These illustrations show how gender roles are portrayed differently in traditional as well as modern interpretations. Classical stories frequently highlight the importance of physical appearance, feminine passivity, and dependence on male figures. Modern versions, on the other hand, aim to strengthen female characters by questioning gender stereotypes and encouraging independence, inner strength, and fair relationships. These modifications are a reflection of how society is changing and how attitudes on gender roles are becoming more progressive.

Conclusion

Classic fairytales like Snow White and Cinderella, which depict gender norms, can have a significant effect on children's lives and cognitive abilities. These tales, which have their roots in traditional gender norms and expectations, have the power to gently influence how kids view and absorb society standards. The impact on kids' expectations and aspirations is among the most notable outcomes. Girls might absorb the notion that they ought to be submissive, docile, and preoccupied with their looks, while boys might experience pressure to fit into stoic, dominant characters. These expectations can significantly limit the range of opportunities and aspirations that children consider for themselves.

Children's self-esteem can also be impacted by conventional roles and the emphasis on outward appearance. Girls in particular may experience problems with body image if they accept the notion that their beauty is the main indicator of their value. This obsession with looks can result in problems with body dissatisfaction, low self-esteem, and in rare situations, even more severe psychological disorders.

Positively speaking, reading these tales can encourage critical thinking. Children who critically interact with these stories may question cultural norms and stereotypes, leading to the development of a more complex and knowledgeable understanding of gender roles. In order to foster a more just and equal society, it is imperative that we have continuous conversations about how gender is portrayed in books and other media, and that we tell stories to kids that inspire them to question the world and create their own identities.

Works Cited

Baker-Sperry, Lori, and Liz Grauerholz. "The Pervasiveness and Persistence of the Feminine Beauty Ideal in Children's Fairy Tales." Gender and Society, vol. 17, no. 5, 2003, pp. 711–26. JSTOR, http://www.jstor.org/stable/3594706. Accessed 01 March 2022.

Beverley Skeggs. Formations of Class and Gender: Becoming Respectable. America: Sage, 1997.

Black, Paula and Sharma, Ursula. "Men are Real, Women are 'Made up': Beauty Therapy and the Construction of Femininity." The Sociological Review, vol. 49, no. 1, 2001, pp. 100-116. https://doi.org/10.1111/1467-954X.00246. Accessed 15 March 2022.

Griffin, Meridith and Clarke, Laura Hurd. (2007) "The body natural and the body unnatural: Beauty work and aging." Journal of Aging Studies, vol. 21, no. 3, 2007, pp.187–201.

Lin, Ming-Hsun, and Jack Zipes. "Fitting the Glass Slipper: A Comparative Study of the Princess's Role in the Harry Potter Novels and Films." Fairy Tale Films: Visions of Ambiguity, edited by Pauline Greenhill and Sidney Eve Matrix, University Press of Colorado, 2010, pp. 79–98.
JSTOR, https://doi.org/10.2307/j.ctt4cgn37.9. Accessed 01 March 2022.

O' Brien, Sheila Ruzycki. "Disney's 'Cinderella' Under Cover: Heads, Butts, Toes, and Gender Woes." Studies in American Humor, no. 1, 1994, pp. 62–79. JSTOR, http://www.jstor.org/ stable/42573305. Accessed 01 March 2022.

Parks, Kari A. Mirror, Mirror: A Look at Self-Esteem & Disney Princesses. 2012. Ball State University. Honors Thesis.

Patricia, Louie. "Not so happily ever after? The Grimm truth about gender representations in fairy tales." Ignite: Undergraduate Journal for Gender, Race, Sexuality and Social Justice, vol.4, no. 1, 2012, pp. 74–82.

Propp, Vladimir. Morphology of Folktales. Austin and London: University of Texas Press, 1968.

REILLY, COLE. "CHAPTER FOUR: An Encouraging Evolution Among the Disney Princesses? A Critical Feminist Analysis." Counterpoints, vol. 477, 2016, pp. 51–63. JSTOR, http://www.jstor.org/stable/45157186. Accessed 01 March 2022.

Voice of the Gendered Subaltern as represented in Jeelani Bano's *Aiwan-e-Ghazal*

-A H Parvin
Assistant Professor, Dept of Languages
Presidency University, Bengaluru-560064,
Karnataka
parvin.ah@presidencyuniversity.in

Dr. T. Naresh Naidu
Assistant Professor, Dept of Languages
Presidency University, Bangalore-560064,
Karnataka
naresh.naidu@presidencyuniversity.in

Abstract
Under the last Nizam's rule (1911–1948), not only the Hindus who were majoritarian in Hyderabad suffered at the hands of feudal lords and biased Nizam government, but even the minority Muslim community predominantly lower class and impoverished working class equally endured the atrocities and were being thoroughly exploited. Even though Osman Ali was instrumental in making Hyderabad a modern state, he was regarded as the most despised Nizam because of his insistence on elevating the upper-caste landlords and aristocratic Muslims in the area. This breaks down the narrative of Muslim subaltern identity by conceptualizing the idea of class disparities and dual marginalizing women. Firstly, by gender and secondly by religion as they were a minority and hence the whole issue was either intentionally ignored or kept under wrap. This paper studies Jeelani Bano's Urdu translated English novel Aiwan-e-Ghazal in which we find Qaiser and Kranti become Nayi Aurats (New Women) by choosing to challenge the traditional patriarchy of Ashrafi families. They openly took part in the Communist Party's clandestine fights and proudly owned the Telangana armed rebellion. Despite growing up in Hyderabad, these two Marxist ladies were denied access to all the conveniences of city life. Bano gives a detailed account of Qaiser and Kranthi's political activities and overall predicament.
Keywords: subaltern, feudal lords, Ashrafi, Marxist, marginalization

Introduction

The theme of Jeelani Bano's novel *Aiwan-e-Ghazal* is drawn from historical and actual occurrences during the 1930s-1950s in Hyderabad state. This fictional narrative depicts the lives of Hyderabad Muslims from upper and lower social classes who have suffered greatly throughout political upheavals and historical events. The major characters of this novel are four women: Qaiser, and Kranthi are from the marginalized realm; Chaand and Ghazal, are from the upper class. By giving the marginalized characters a major role, Bano also provides a solution to the postcolonial intelligentsia's conundrum over the subaltern's capacity for speech. She takes on the role of storyteller for herself, never becoming the representative; instead, she also gives the subaltern group's representations a platform by giving them a voice. In her writing, Bano has attempted to provide voice and space to the underrepresented subalterns, who are voiceless, and treated as 'other' at the same time. They are ignored by the historians and are taken over by the powerful. Bano has a persistent interest in people who are marginalized and suppressed. According to Bano 'the primary interest lies in people—their lives, histories, and situations'.

With a focus on examining how the story expresses the struggles, silences, and agency of marginalised women within the sociopolitical and cultural context of Hyderabad, this study aims to investigate the voice of the gendered subaltern as it is portrayed in Jeelani Bano's Aiwan-e-Ghazal. The purpose of the study is to investigate the author's literary techniques for providing subaltern women with a voice and the ways in which these accounts support feminist discourses and subaltern studies. In what ways does Aiwan-e-Ghazal by Jeelani Bano depict the gendered subaltern within the framework of cultural and sociopolitical hierarchies?

If we revisit the historiography of the Hyderabad state, the feudal lords, Jagirdars, Nawabs, or Patawaris under Nizam's reign were given a free hand to handle their jagirs and Nizam did not bother to check on them to see how they were ruling their regions. These landlords exploited underprivileged people.

In Hyderabad's feudal elites' urban palaces (deodi), the subaltern Muslim women were brought from their villages and given food and shelter in exchange for labor. The practice of "keeping girls as 'slaves' in landlords' houses… used by landlords as concubines" (Sundarayya 1972, 14.) was a common occurrence. They are specifically brought into the household to sexually satisfy the upper-class men of the deodi in Hyderabad state.

Najma Nikhat (1936-1997), a product and supporter

of the Progressive Writer's Movement, has critically examined and exposed class oppression in the feudal system in her literary works by representing the inequalities and injustices of feudalism, demonstrating the moral hollowness and injustice of the feudal system towards working-class women, which was a major reason for its demise. Wajida Tabassum (1935-2010) in her works represented working-class, Dalit, and Muslim women's experiences at the hands of the feudal patriarchy of Hyderabad. Jeelani Bano also depicted the encounter of underprivileged women with middle-class apathy in Hyderabad city. (Bano, 1-2) While working on themes associated with marginalization or oppression, Nazia Akhtar believes that "in a world where gaslighting operates not only in contexts of gender and sexuality, but also those of class, caste, race, and religion, so that the powerful and the dominant seek to convince everyone that it is *they* who are being wronged, ironically, by those they marginalize and oppress *while* they are oppressing them. (Akhtar, 2022, 2)

In very few scholarly works by non-Muslim writers, we find mention of minority community subalterns portrayed in small and insignificant roles yet profound, being marginalized in the literary works as well. Writers like Nelluri Kesava Swamy's *Deliverance,* Kavi Raja Murthy's *Garib* (the poor), and Bhaskarabhatla Krishna Rao's depiction of middle-class Muslims break the stereotype of the Muslim *navabi* lifestyle.

Nelluri Kesavaswamy's short story 'Deliverance' depicts the plight of young maid girls who are subjugated by deeply ingrained religious, cultural, socioeconomic, and political prejudices. They face twofold oppression: first from the patriarchy, and then from other societal structures. The main female characters in this novel, Jugnoo and Shireen, demonstrate helplessness in the face of adversity and ill-treatment by patriarchal rule and other forms of social-cultural hegemony. The women depicted by the author in this story live under patriarchal dominance in *deodis* of Hyderabadi Nawabi households, entrapped in a vicious circle of marginalization from which escape appears difficult until someone with a reformist attitude and mindset takes the initiative to liberate them from servitude. Sultan, the son of an aristocratic family and a student of AMU symbolizes the modern enlightened Muslim youth, who is in revolt against some old, unhealthy customs prevalent in Hyderabad. He declasses himself, and obtains respectable employment, rejecting his feudal, decadent, and parasitic heritage. He represents a new generation of Muslims with a healthy, positive approach to the future.

In his 1947 essay, Makhdoom primarily discussed how the Nizam's reign took advantage of the nation's newly discovered resources, particularly its industrial and commercial ones. Additionally, he clarified what Muslims should do in opposition to the Nizam's policies, which were aimed at giving local upper-caste landlords more power claiming that the Nizam served only as a symbol of British imperialism. Makhdoom demanded action against the despotic Nizam. Nonetheless, Makhdoom's analysis—which was released in Telugu—reveals more about the plight of Muslims in Hyderabad and merits discussion here. Makhdoom addresses the marginalization of a lower-class/poor Muslim population that, in his words, "was being exploited by all means," despite his overtly Marxist viewpoint.

In the patriarchal and feudal regimes, the gendered subaltern has frequently been marginalised and silenced in popular historical, cultural, and literary discourses. Despite its long history, the voices of marginalised women and their lived realities are rarely critically engaged in Urdu writing. Aiwan-e-Ghazal by Jeelani Bano stands out as a noteworthy work that attempts to counteract this erasure by illustrating the intricacies of the lives, hardships, and resistances of subaltern women. Nevertheless, little research has been done on how the book challenges repressive sociopolitical systems and provides a voice to the gendered subaltern. By critically analysing Aiwan-e-Ghazal's portrayal of the gendered subaltern and placing it within feminist and subaltern theoretical frameworks, this study fills the gap.

Subaltern Studies has a specific significance in Indian historiography as a result of a long history of subjugation. The term 'subaltern' refers to the general attribute of subordination in society based on gender, religion, caste, colour, creed, or ethnic origin. It also focuses on subordinated groups from marginalized parts of the society - Dalits, peasants, laborers, disadvantaged, women, and the Queer community, whose voices have been muted or rarely recorded in history in one way or another. It is not only a political agenda, but also a social, cultural, religious, economic, and psychological agenda that has attempted to reorient a certain community's traditional inheritance.

Young states that in an imperial colony, a subaltern is a native person who is defined by their social position and lacks human agency. Postcolonial theory describes a "subaltern" as someone who has been displaced to the periphery of a society and/or belongs to lower social strata. In post-colonial terminology, Gayatri Chakravorty Spivak argued that anything with limited or no access to cultural imperialism is subal-

tern - a zone of difference – and has rejected a broad definition. (Wikipedia)

A new literary trend has been started under the umbrella of subaltern studies. To make their voices heard by everyone, the subalterns have been given precedence. Their muteness, agony, and suffering have all been documented throughout history. With the aid of their writing, numerous authors have attempted to portray their situation and their suffering. The scholars of the Subaltern Studies Group tried to locate, recover, and distinguish the stories of non-elite, oppressed, and marginalized people to fill in the gaps in history—which is primarily written by elites or the West.

Gender has been a hot topic of discussion throughout the postcolonial era, and it has served as the foundation for numerous seminal works. Many nations have viewed women as the "other," "colonized," "deprived," and "the fairer sex," who have often faced political repression and tyranny. The idea of a gendered subaltern, which suggests that women have experienced double subalternization—once due to their society/community and again due to their gender—has gained significant traction in recent times. Gendered subalternity is seen operating in different forms like gender discrimination, caste division, and labor categories.

The mechanism of Gender Subalternity derived from Gayathri Chakravorthy Spivak's 'The Subaltern Theory' (1985) conditions the subaltern women to be mute and voiceless due to the presence of hegemonic elements of social, cultural, and socio-economic factors. Atrocities against these subaltern women include rapes, harassment, assaults, sexual abuse, and domestic violence. They are denied a decent life and enjoyment, and their ability to make decisions is restricted as a result of their silence. They are now considered subalterns in their own country due to their loss of identity and speech. Spivak states, "There is no space from where the subaltern can speak" (103). They are turned into the object of the male's desire. While Spivak concludes in her ground-breaking essay "Can the Subaltern Speak" that subalterns lack a voice and are therefore unable to speak. Analyzing the problem of female subalterns, Spivak views that a female subaltern is more deeply in shadow. She claims that woman is twice subalternized in the colonized patriarchal spaces. Spivak has given the references in her witty commentary "A Literary Representation of the Subaltern: Mahasweta Devi's Stanadyini", she argues that women's subjectivity and their voice are denied and they are reduced to the object of the male's desire. (123)

According to Spivak, "'When the subalterns speak' is to be heard and get into the structure of responsible (responding and being responded to) resistance, he or she is on the way to becoming an organic intellectual." This relationship between speech and resistance is the focus of Spivak's concept of 'responsible resistance'" (2001, xxi). Both the female characters in Bano's work exhibit resilience, actively engage in resistance and seem to be moving towards organic intelligence. The ambiguity and misperception surrounding Spivak's rhetorical question, "Can the subaltern speak?" which purports to deny subalterns the right to speak, are clarified by her perspective. By demonstrating how gendered subalterns participate in speech and resistance in her novels, Bano illuminates subaltern epistemology and resistance. The gendered subaltern's entrance into the resistance and hegemonic circles speaks to position shifting. It suggests moving from being subordinate to gaining the support from the other side. In her translation of Mahasweta Devi's short story "Draupadi," she not only romanticizes the tribal women but also grants the gendered subaltern a voice.

In postcolonial and subaltern studies, resistance—which typically denotes the act of opposing or fighting against something—has a broader meaning that includes fighting against any threat to one's existence. According to Uday Chandra, the word "as negotiation rather than negation of social power" (Chandra, 2015, 563) is used to establish agency when placed inside the larger hegemonic structure. Understanding resistance as a form of negotiation enables researchers to examine a broad spectrum of controversial political issues, ranging from protests and social revolutions, all under one analytical framework (563). Thus, resistance can also be understood as a dialectic process, a continuum, in which subjugating forces actively collaborate with opposing forces to achieve rights and, to varied degrees, sociopolitical positions. It is possible to witness feminine resistance speaking and taking part in resistance in Jeelani Bano's novel *Aiwan-e-Ghazal*.

Bano emphasizes the role of patriarchy and colonial forces in her study of the ontology of subaltern female existence. These two groups "act as analogous to each other" and "exert control over female colonial subjects, who are, thus, doubly colonized." (Ashcroft, 89). The present study aims to investigate these key places via the stories of Jeelani Bano, whose fictional realm is heavily inhabited by Aiwan-e-Ghazal women folk, both possessed (affluent) and dispossessed (poor) "bondswomen" who grew up in Hyderabad's large homes. (Bano, 300) However, when viewed through the lens of the ontological reality of speech

(communication) and resistance, Bano's depiction of dispossessed women does not just talk about subservient women when read through the ontological reality of speech (communication) and resistance; rather, it often shows them as potential centers of power for forces trying to overthrow repressive hegemonic authorities.

Set against the backdrop of numerous events in the city's public realm during the last Nizam, the novel depicts the experiences of subaltern women within the context of the historical juncture, recasting a modern Muslim lady in the aftermath of colonialism, partition, and, most crucially, the 1948 Police Action. The history of this arduous decade peaked in 1946 when the conflict between the Nizam and the radical leftist squads began a particularly bloody phase. To crush leftist movements and nationalist organizations in Hyderabad state, the Nizam was strengthening the grip of law enforcement, giving a nod to the paramilitary Razakars and their violent acts, as well as the agenda of Azad Hyderabad. Nizam was also effective in "banning" Mahatma Gandhi's admission into the state. Seventy-seven leftists were brutally slain on August 27, 1948, in a location known as Bairan Palli during a fight between Communist Party squads and Razakars.

This is when Qaiser's uprising occurred. Qaiser decided to go into exile in the jungle and step up her revolutionary actions in the middle of all these upheavals in her personal and public life. This came as a bombshell to the Wahid Hussain's family. Hussain in particular was worried about the Nizam's reaction to these "dangerous" deeds more than anything else, including their personal lives or the fallout from their bold decision. Wahid Hussain's family and other zamindars were obediently carrying out the Nizam's orders in the hopes of achieving Azad Hyderabad.

With a left-wing outlook, Qaiser became a member of the Communist groups to upend the traditional Ashrafi way of life in the state of Hyderabad and transform practically every part of their own lives. Being a subaltern herself, she challenged several facets of the male monopoly that shaped the Zenana and Zamindari family's very lineage, Qaiser's revolutionary politics provided an alternative approach. Furthermore, willing to take part in potentially fatal and exceedingly dangerous acts, she also questioned the gender inequality that the Marxist movement practiced.

Jeelani Bano's story appears to offer a political alternative against the backdrop of the oppressive authority of the Nizam, the hegemonic nationalist narrative, and the Nehruvian idea of socialism. We need to examine the origins of Muslim women's activism in Hyderabadi society to fully understand the novel's depiction of this journey. Like Qaiser, Kranthi brazenly states once more that she will join the political uprising against the "entirely rotten systems of the family" that seek "to kill the individuality" of a woman (328). They express a distinct dislike for the safety provided by the family structure, signifying an additional Muslim identity that encompasses the political sphere. What leads Qaiser and Kranthi to reach this stage of the political uprising? And what does playing such a role mean for a Hyderabadi Muslim zamindari household that is traditional? What makes such a change in Qaiser and Kranthi's life tales understandable? Through this process, we also come across other questions, such as how Muslim women, like Qaiser and her daughter, Kranthi, participate in the current discourse around leftist movements, gender reforms, and the emergence of the Telangana movement concerning 1948 Police Action in Hyderabad state. What Margot Badran describes as "a kind of feminism and a public activist mode without a hierarchy" is exactly how Qaiser's perspective fits in to connect these concepts with the state of gender studies academia today. (Margot, 1994, 202)

Qaiser and Kranthi choose their paths of public and personal activity by defining their positions in the community and public life, rejecting the prescribed Zenana way of life. The *zenana* of the *Ashraf* households was also profoundly affected as the waves of increased educational possibilities and reformist Islam sparked new discourses in the city. These two factors, along with newly emerging politics, economic upheavals, and the growth of an urban economy, sparked a discussion about the boundaries of domesticity and called into question many aspects of Hyderabadi Zamindar's life. Although challenging the patriarchal discourse itself had its consequences, these Muslim women's personal stories unveiled a historical process that led to the development of political agency, selfhood, and gender activism within the confines of Hyderabadi culture. Moreover, the reciprocity of the Telugu/Urdu public sphere and contemporary literary discourse continued to be crucial in shaping gender activism.

Bano was drawing on one of the little-explored political facets of Hyderabadi and Telangana history when she wrote about the remarkable transformation of Qaiser and Kranthi from zenanas to members of the communist squad in a forest, actively participating in the Marxist resistance to Nizam's rule. Qaiser was labelled as a Communist by Bano, despite her recent theoretical involvement with the feminist movement and the wider Telugu and Urdu hybrid literary scene.

"Qaiser and Kranthi were both offspring of the extensive legacy of socialist politics and social philosophy". (150)

Even though the stories of Muslim women's participation in communist squad is not singular or solitary, the majority of these incidents are still unrecorded and undiscovered in official history and popular mainstream literature in Telugu or Urdu. These narratives concerning Muslim women have not received much attention, even with the recent increase in feminist historiography. The story of Muslim women's politics in the late 1940s is also told through Bano's own experiences with gender activism and communist organizations, in addition to the novel. In that sense, Bano's experiences as a witness and participant are heavily incorporated into this testimony, even though the novel is not autobiographical in the strictest sense. Bano skilfully navigates a path between history and literature, creating her unique style of fusing truth and fiction, by structuring the book in a way that combines elements of autobiography, historical narrative, and fiction.

Bano addresses the issues and complexities—traditional gendering being the most significant—that sustain women's subalternity, but she also materializes women's active and passive resistance in meaningful ways. Bano presents gendered subalterns in all of their realities because she thinks that human experiences might not be adequately captured in theoretical declarations. Her description of these Muslim women broadens our understanding of how gendered subalterns participate in resistance, discourse, and representation.

Work Cited:

Badran, Margot. "Gender Activism: Feminists and Islamists in Egypt," in *Identity Politics and Women: Cultural Reassertions and Feminisms in International Perspective,* ed. V.M. Moghadam (Boulder, CO: Westview Press, 1994), 1994, 202-227.

Bailey Betik, "Subaltern Studies", Blog, *Spring,* 2020 (accessed on 21 June 2022) https://scholarblogs.emory.edu/postcolonialstudies/2020/02/17/subaltern-studies/

Bano, Jeelani. *Aiwan-e-Ghazal*, Translated from Urdu by Zakia Mashhadi, New Delhi: National Book Trust, 2016.

Chakraborty, Madhurima Chakraborty and Al-Wazedi Umme, ed., *Postcolonial Urban Outcasts: City Margins in South Asian Literature*. New York: Routledge, 2017, p. 21-38,

Chandra, Uday. "Rethinking Subaltern Resistance", Journal of Contemporary Asia. Vol. 45, Issue 4, 2015, pp. 563-573, Taylor and Francis Online, (accessed on 21 June 2022) https://www.tandfonline.com/doi/pdf/10.1080/00472336.2015.1048415

Kesawswamy, Neeluri. 'Deliverarnce.' *Image and representation stories of Muslim lives in India* edited by Mushirul Hasan and M. Asaduddin., INDIA, 1970 pg.736-35.74 [accessed 24, August 2022] https://pfwpproject.wordpress.com/wp-content/uploads/2018/07/india-77d.pdf

Philip, Joe, et al. "Positioning the Gendered Subaltern: Body, Speech and Resistance in Mahasweta Devi's Narratives." Rupkatha Journal on Interdisciplinary Studies in Humanities, vol. 12, no. 5, Oct. 2020, https://doi.org/10.21659/rupkatha.v12n5.rioc1s16n5.

Sarkar, A., & Rai, I. S. With the Margin: The Theme of Gendered Subaltern in Mamang Dai's Legends of Pensam. South Asian Research Journal of Arts, Language and Literature, 4(2), 2022 65–69. https://doi.org/10.36346/sarjall.2022.v04i02.004

Spivak, Gayatri Chakravorty. "Can the Subaltern Speak." (1988) (accessed on 4 July 2022) http://abahlali.org/files/Can_the_subaltern_speak.pdf

Spivak, Gayatri Chakravorty. Preface. Imaginary Maps. Mahasweta Devi, Calcutta: Thema, 2001

Sundarayya, P. *Telengana People's Struggle and its Lessons*, Calcutta: Communist Party of India (Marxist). 1972

Visweswaran, Kamala. "Small Speeches, Subaltern Gender: Nationalist Ideology and its Historiography." Subaltern Studies: Writing on South Asian History and Society. Ed. Shahid Amin and Dipesh Chakrabarty. Vol.9. New Delhi: OUP. PP. 2014. 83-125.

Walia, Gaganpreet. "Literary and Cultural Perspectives on Gendered Subaltern and Caste: Is anyone Listening…Who cares?" *RSIRJLE-Gwalior,* Vo. 2 Issue II. 2014 (accessed on 22 June 2022) https://www.researchgate.net/publication/321193073_LITERARY_AND_CULTURAL_PERSPECTIVES_ON_GENDERED_SUBALTERN_AND_CASTE_IS_ANYONE_LISTENING_WHO_CARES

Young, Robert J. C. *Postcolonialism: A Very Short Introduction*. New York: Oxford University Press, 2003

*****

Dharma As A Guiding Principle Of Socio Institutions In Ancient India

-Dr. Shruti Rai
Assistant Professor
Department Of Sanskrit
University Of Delhi
srai@sanskrit.du.ac.in
9868033684

ABSTRACT

Social norms are the set of values, ideas, laws, customs, and beliefs that are specific to a society and that govern how people behave. An individual knows how to behave in various circumstances based on these standards or guidelines. Social regulators serve as guidelines that provide social behavior a constructive path. It works in a way that everyone in the community is required to follow it. Social institutions, or organizations, uphold social standards. These organizations or establishments are the social units that portray society as a whole. They are crucial in maintaining social equilibrium and establishing the groundwork for a thriving community. An integrated society is created when these entities band together and cooperate with one another. All societies have various units. In the context of Indian Society, particularly ancient Indian society, the *Ashram system, Purusharth Chatushtya, Varna* system, the concept of joint family, Marriage function as units for the development and balance of society. These are regarded as the fundamental framework of Indian culture which are hold tightly by the universal concept of *Dharma.*

Key terms:
Dharma, Ashram system, Purusharth Chatushtya, Varna system, Joint family.

INTRODUCTION:

The concept of *Dharma* is multifaceted, encompassing all aspect of individual as well as society including universal natural laws in India. It served as the foundation of ancient India's moral, social, and spiritual architecture. *Dharma,* which is frequently translated as "righteousness" or "duty," [1]in English is a concept that guided both individual behavior and the operation of social organizations. It was regarded as a cosmic rule that maintained the social order and safeguarded harmony and equilibrium in society [2], rather than merely a human code of ethics. It was integral to the functioning of various social institutions in ancient India, such as the family, caste system, divine kinship and religious institutions. It shaped the roles and responsibilities of individuals within these institutions [3]. *Dharma* is the only thing that keeps the entire world stable. People have faith only in that king who follows *Dharma.* [4]

In ancient India, social institutions such as *Ashram system, Purusharth Chatushtya, Varna system*[5]*, Samyukta Parivar* (Joint family) played a significant role in organizing society, shaping individual behavior, and maintaining social order. These institutions were deeply rooted in religious, cultural, and philosophical principles, and were often governed by sacred texts and practices. The concept of Dharma is interwoven with all these institutional frameworks.

THE SYSTEM OF PURUSHARTHA CHATUSHTAYA:

Although Indian culture is deeply rooted in spirituality, yet material progress is also equally important. The principle of *Purusharth-Chatushtaya* establishes a balance between action and retirement, spirituality and behavior. The meaning of the word '*Purusharth'* means the purpose of human life and the efforts to achieve that purpose. The main purpose of human life is a life full of bliss. This is possible only when his needs, desires and goals can be achieved. Keeping these needs, desires and goals in mind, four types of Purusharths have been conceptualized. The four *Purusharths* are *Dharma, Artha, Kama* and *Moksha.* Whether *Artha* and *Kama* symbolize material progress, *Moksha* symbolizes spiritual progress. *Dharma*, while being spiritually oriented, is the bridge between material and spiritual progress. Only

when *Artha* and *Kama* are combined with Dharma, it will be considered as *Purusharth*.

THE SYSTEM OF VARNA VYAVASTHA:

Acharya Yask has considered the origin of the word 'Varna' from the root ***'Vrinn' - 'Varno Vrinoteh'*** - which means to choose. This is different from the idea of caste system which we understand in today's discourse. A person's caste is determined by birth and varna is determined according to the person's qualities, actions and nature. Hence *varna* is karmic, i.e. it is based on *karma. Varna* was a social institution that played a significant role in structuring ancient Indian society, organizing people into four categories named *Brahman, Kshatriya, Vaishya, Shudra* based on their duties, occupations, and spiritual roles. At the highest level of the social hierarchy were the *Brahmins*. The *Brahmins* were in charge of conducting religious rites, exploring domain of knowledge and instructing people in the *Vedas*, and advising the public on spiritual matters[6].

Kshatriyas i.e. the warriors and statesmen were in charge of defending the territory, upholding law and order, and administering the governing body. They were supposed to be proficient in administration, combat, and safeguarding the populace's well-being[7]. Farmers, tradesmen, artisans, and merchants made up the *Vaishya Varna.* In order to support society's economic well-being, they were given responsibility with trade, agriculture, and commerce[8].The Shudras were the people who labored and provided services. Through laborious activity, they sustained the social order by carrying out physical chores for the other three *varnas*[9]. By arranging labor, the *Varna* system made sure that various social groups made distinct contributions to the well-being of society as a whole. It was also associated with the idea of *Purushartha* (the four purposes of life), which comprised *Moksha* (liberation), *Kama* (pleasure), *Artha* (prosperity), and *Dharma* (responsibility). Every *varna* had a part to play in achieving these objectives.

THE SYSTEM OF *ASHRAM VYAVASTHA*:

In ancient India, the concept of *Ashram Vyavastha* (the system of ashrams) was a major component of social organizations that was greatly influenced by the idea of Dharma. This system, which divided a person's life into four phases (referred to as *Ashrams*), i.e. *Brahmacharya, Grihastha, Vanaprastha* and *Sannyasa*, was closely linked to the moral and ethical guidance that *Dharma* imparted. The *Ashram Vyavastha* permitted a person's moral and spiritual development to advance. As one moved through the phases, the focus changed from obligations to the world to self-realization and, finally, to giving up all material possessions in order to achieve *Moksha. Dharma* offered the ethical foundation for leading a morally upright and satisfying life during this voyage. Objective of each *Ashram* and organization were significantly impacted by the concept of *Dharma* in a number of ways, in all the four different stages:

Brahmacharya Stage - that stands for the period of study as a student. During this phase, dharma placed a strong emphasis on self-control, education, and spiritual development. A student's responsibilities included learning from the *Guru,* studying sacred scriptures, and cultivating self-control and discipline[10]. Here, the *Dharma* is centered on learning and getting ready for future obligations. *Grihastha Stage*, i.e. the householder stage, or *Grihastha,* was seen as the most significant since it was thought that by carrying out domestic responsibilities, an individual helped to maintain social and global stability[11]. At this point, *dharma* was centered on moral behavior in social interactions, business, and family life. It was expected of a person to provide for their family, uphold social relationships, and advance societal well-being. It was believed that in order to achieve Dharma, one must seek the ideas of *Artha* (financial wealth) and *Kama* (pleasures), but only within morally and ethically acceptable bounds.

Stages of *Vanaprastha*[12] and *Sannyasa*[13] - these two stages represent the path of detachment from household life and leading the life of a *Sannyasa.* As people entered these phases, all attention turned to renunciation and spiritual endeavors. Here, *Dharma*'s function was to lead people to self-realization, reflection, and detachment. The objective was to attain *Moksha,* which would free one from the cycle of birth and death, and live in harmony with the global order.

Thus, the *Ashram Vyavastha* served as a social organization that promoted social order and stability in addition to serving as an individual system of moral and spiritual instruction. It guaranteed that peo-

ple fulfilled particular tasks in the family, community, and society by establishing responsibilities at various phases of life, preserving peace and equilibrium.

As people progressed through life and contributed to the general well-being of society, their observance of *Dharma* at every step served to preserve the social fabric. These stages ensured a dynamic yet harmonic balance by representing various roles and obligations in society, including those of students, householders, pensioners, and renunciatory bringing social cohesion in the society.

THE SYSTEM OF MARRIAGE:

Marriage in ancient India was not only a personal affair between individuals but also a deeply embedded social institution with religious, cultural, and legal significance. The varna (social classes) frequently governed marriage, and each caste had its own set of marriage-related laws. Marriages between varnas were occasionally prohibited or restricted. An intricate framework for marital laws was supplied by the ancient legal treatise known as the *Manusmriti.* It highlighted how crucial it was to uphold social order by abiding by stringent marriage laws, which forbade getting married to someone from a different varna.

It was essential to maintain family bonds, maintaining social order, and carrying out religious obligations. In ancient India, the connection of a husband and wife was considered a spiritual partnership, and marriage was frequently considered a sacred responsibility. Both parties, particularly the husband, had a duty to uphold family life and fulfill religious obligations including yajnas (rituals) and shraddhas (ancestor worship) as part of their dharma (moral order). Marriage had a strong connection with the systems of *ashrama* (life stages) and varna (social strata). During the *grhastha* (householder) stage of life, marriage was seen as necessary to carry out one's responsibilities. Marriage was based on the idea of *sanskara,* or sacred ceremonies[14]. Thus, marriage was seen as a sacred ceremony that transformed the parties into a married couple with distinct spiritual roles, in addition to being a social necessity, with dharmic ideals.

THE JOINT FAMILY AND KINSHIP:

The joint family was the fundamental social unit in ancient India. The joined family structure, often comprising three generations (grandparents, parents, children), was common. Family ties were governed by a strong sense of duty (*dharma),* respect for elders, and the authority of the patriarch, in some cases, the matriarch. The family was central to religious and social life. The father is the head of the family[15]. The duties of the head were- upbringing, protection, education and marriage. The responsibility of the entire family was on him. After the death of the father, the eldest brother used to fulfill the responsibilities in place of the father. The mother also had a respectable place in the family[16]. This division of duty and responsibility was infused to the social unit of joint family through *Dharma* only.

The above discussion gives us the idea that how *Dharma* played the all-encompassing role in the formulation of the ancient social organizations. But it will remain incomplete if we don't discuss about the political system as regulated by *Dharma.* As discussed in the *Arthasastra* or in other *Dharmasastras*, the role and responsibility of a king and others are governed by Dharma and intertwined within the framework of social institutions like *varnashrama dharma* or *purusarthas.*

The political structure of ancient India was varied, with distinct types of government being adopted by different regions, kingdoms, and republics. Kings were required to govern ethically and in adherence to dharma, and they retained considerable amounts of power. The king's duties which also known as *Rajdharma* included protecting trade routes and agriculture, ensuring the welfare of the people he governed, and upholding righteousness (Dharma). In addition, kings supported public works, scholars, temples, and other cultural, educational, and religious endeavors. A council of ministers, commonly referred to as the *Mantris*, advised kings and offered advice on administrative issues such as public welfare, military strategy, and tax collection. Scholars and philosophers would frequently congregate in the king's court to debate governance, law, and statecraft. The political systems were often guided by religious, moral and philosophical principles and texts, particularly *Dharmashastras*. The *Manusmriti*, one of the earliest texts, outlined laws governing social conduct, including issues related to caste, marriage, property, and criminal offenses. Laws were both moral and practical, aiming to maintain social harmony. The king's role was to enforce these laws, ensuring the welfare of society.

The justice system also relied on the advice of religious scholars and community elders. Unlike Western political philosophy, which often emphasizes individual rights and democratic principles, Indian political thought tends to focus on the collective well-being, moral duties (Dharma), and the relationship between individuals and the state. The statement of *Kautilya* in *Arthasastra* is sufficient to establish the fact that Dharma was the crucial point in the political system of kingdom or in deriving role and responsibilities of king.

In this way, we can conclude that in ancient India, social institutions that includes the political system were intricately tied to religious beliefs, cultural practices, and philosophical ideas. While these institutions played a role in promoting order, community, and continuity, they also imposed limitations, particularly in terms of mobility and equality. The influence of these social institutions persisted in various forms throughout India's history, shaping the course of its social development.

REFERENCES:

Primary Sources:

The Four Vedas: Rgveda, Samaveda, Yajurveda, Atharavadeva , Parimal Publication PVT Limited, Delhi

महाभारत, (2017), गीताप्रेस, गोरखपुर

श्रीमद्वाल्मीकिरामायण, (2018), गीताप्रेस, गोरखपुर

Parekh, Margie and Vinayak Buch , *Shukraniti: Tenets of Governance and Leadership from the Golden age of India,* Chaukhamba Sanskrit Pratishthan, Varanasi.

Manusmriti, (Ed.) N.C. Panda, Bharatiya Kala Prakashan, Delhi,

Taittiriya Aranyaka (2016), Sri Aurobindo Kapali Sastri Institute of Vedic Culture, Madras

Secondary Sources:

Kane, P.V., (2022), *History of Dharmashashtra*, Vo. I-IV, Bhandarkar Oriental Research Institute, Pune

Ramadevi, Suraparaju & Arshia Sattar (2021), *Dharma in Valmiki Ramayan*, Happer Collins Publsiher, Gurugram

Harshananda, Swami (2007), *The Dharmashastra*, Ramkrishna Math, Bangalore

1. महाभारत, 4.281.34
2. Ibid, शान्तिपर्व, 109.11: यः स्याद्धारण संयुक्तःस धर्मः इति निश्चयः।
3. याज्ञवल्क्य स्मृति, आचाराध्याय, 1.8: इज्याचारदमाहिंसा दानस्वाध्याय कर्मणाम्।
   आद्यं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम्।
4. तैत्तिरीय आरण्यक: 10.63: धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा लोके धर्मिष्ठं प्रजा उपसर्पति। धर्मे सर्वम् उपसर्पति। धर्मे सर्वम् प्रतिष्ठितम् तस्मात् धर्मं परमं वदति।
5. अर्थशास्त्र, 1.3.4: एष त्रयीधर्मस्चतुर्णां वर्णानामाश्रामाणां च स्वधर्मस्थापनादौपकातिकः।
6. Ibid., 1.3.5: स्वधर्मो ब्राह्मणस्याध्ययनमध्यापनं यजनं याजनं दानं प्रतिग्रहश्च।
7. Ibid., 1.3.6: क्षत्रियस्याध्ययनं यजनं दानं शस्त्राजीवो भूतरक्षणं।
8. Ibid., 1.3.7 वैश्यस्याध्ययनं यजनं दानं कृषिपाशुपाल्ये वणिज्या च।
9. Ibid., 13.8: शूद्रस्य द्विजातिशुश्रूषा वार्ता कारुकुशीलकर्म च।
10. याज्ञवल्क्य स्मृति, आचाराध्याय,29: दण्दाजिनोपवीतानि मेखलां चैव धारयेत्।
    ब्राह्मणेषु चरेद् भैक्षमनिन्द्येष्वात्मवृत्तये।
11. ब्रह्माण्ड पुराण, 1.2.7.174: दाराग्न्यश्चातिथ्य इष्टाः श्राद्धक्रियाः प्रजाः।
    इत्यैष वै गृहस्थस्य समासाद्धर्मसंग्रहः।
12. मनुस्मृति, 6.3: सन्त्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम्।
    पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा।
13. श्रीमद्भगवद्गीता, 18.2: काम्यानां कर्मणां न्यासं सन्यासं कवयो विदुः।
    सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः।
14. मनुस्मृति: 3.2, 4: वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वाऽपि यथाक्रमम्।
    अविलुप्तब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसेत्।
    गुरुणाऽनुमतः स्नात्वा समावृतो यथाविधि।
    उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम्।
15. Ibid, 6.2: .....अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत्।
16. ऋग्वेद, 8.98.11: त्वं हि नः पितावरौ, त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।

*****

Interstate Analysis of Productive Performance in India's Dairy Manufacturing Sector Using Stochastic Frontier Models

-Sunil Jaiswal
Research Scholar,
Department of Geography,
Delhi School of Economics, University of Delhi,
Delhi, India
Email: *imsjaiswal07@gmail.com*

-Sonali Chadha
Research Scholar,
Department of Economics,
Panjab University, Chandigarh, India
Email: *imsonalic@gmail.com*

Abstract

This study examines the technical efficiency of dairy manufacturing across India's states, focusing on the disparities in resource utilization within the sector. Using panel data from the Annual Survey of Industries (ASI) for the year 1980-2021, this research employs Stochastic Frontier Analysis (SFA) to assess the efficiency of dairy production, allowing for the separation of inefficiency from random external factors. The analysis applies the True Fixed Effects (TFE) model to control for unobserved heterogeneity across states, ensuring that the influence of time-invariant factors such as geography, policy, and infrastructure is accounted for. The study's results reveal varying levels of efficiency in dairy production across different states, identifying regions where inefficiencies exist and highlighting the factors that contribute to these disparities. The findings provide valuable insights into the areas where India's dairy sector can improve, offering actionable policy recommendations for optimizing resource use, enhancing productivity, and reducing waste. By focusing on the technical efficiency of dairy production at the state level, the study contributes to the ongoing efforts to improve the competitiveness and sustainability of India's dairy industry.

Keywords: Technical Efficiency, Stochastic Frontier Models, Inefficiency, Noise Term.

Introduction

India's dairy sector is a cornerstone of the nation's agricultural and economic framework, contributing significantly to rural employment, food security, and economic growth. As the largest producer of milk globally, India's dairy industry serves as a vital source of livelihood for millions of farmers and provides critical nutritional sustenance to the population. Despite its prominence, the sector faces substantial inefficiencies and productivity disparities across states, driven by factors such as access to resources, technological adoption, regional policies, and market conditions. These variations in efficiency are critical to address, as improving the efficiency of dairy production is essential to meeting the rising demand for milk and dairy products, both domestically and globally.

The focus of this study is to analyze the technical efficiency of dairy manufacturing across India's states. Using data sourced from the Annual Survey of Industries (ASI), this research aims to assess how efficiently states are utilizing their resources (capital, labor, and feed) in dairy production. The ASI provides comprehensive data on industrial activity, including the dairy manufacturing sector, and is a valuable resource for understanding the state-level productivity and efficiency in India's manufacturing industries. Given the differences in dairy farming practices across states, identifying the key drivers of efficiency through the ASI data is essential for improving the overall sector's performance.

This study applies Stochastic Frontier Analysis (SFA) to estimate technical efficiency, a robust econometric method that allows for the decomposition of production inefficiencies from random errors. SFA is particularly useful for this analysis because it enables the identification of both technical inefficiency the shortfall in output due to suboptimal resource use—and random noise, such as external shocks (e.g., weather, disease, and market volatility). The study utilizes panel data from the ASI, which spans multiple years and states, to apply the True Fixed Effects (TFE) model. This model controls for unobserved heterogeneity across states and accounts for factors that may influence productivity but do not vary over time.

The results of this analysis will provide insights into how different states in India are performing in terms of dairy production efficiency, highlighting regions where resources could be better utilized. By estimating the efficiency scores and understanding the factors contributing to inefficiencies, this study aims to provide actionable recommendations for improving the productivity and sustainability of India's dairy manufacturing sector.

The subsequent sections of this paper will describe the theoretical framework of Stochastic Frontier Analysis, present the data from the ASI, outline the methodology employed, and discuss the findings on technical efficiency across India's dairy manufacturing states.

Literature Review

The literature on Total Factor Productivity (TFP) growth in Indian manufacturing offers a comprehensive understanding of the sector's productivity trends over time, shaped by changes in technology, resource efficiency, policy reforms, and regional dynamics. The studies collectively reveal how productivity has evolved, moving from a period of stagnation in the pre-liberalization era to a more dynamic phase following economic reforms, though with uneven benefits across sectors and regions.

During the pre-liberalization period (1946–70s), studies using Cobb-Douglas (CD) and Constant Elasticity of Substitution (CES) production functions, such as those by Banerjee (1971, 1975) and Mehta (1974, 1980), focused on analyzing the relationship between capital, labor, and output. These studies highlighted capital deepening increased investment in capital per worker as the primary driver of output growth, while TFP growth remained slow due to inefficiencies in resource use. The findings pointed to stagnant capital productivity and only marginal improvements in labor productivity, which were insufficient to offset these inefficiencies. Limited evidence of technological progress underscored the lack of innovation in this period. Using cross-sectional data from sources like the Census of Indian Manufacturing (CMI) and the Annual Survey of Industries (ASI), these studies revealed that changes in input utilization had a more significant impact on output than any substantial technical advancement.

The 1980s and 1990s, coinciding with economic liberalization, marked a turning point in TFP growth. Studies by Ahluwalia (1985, 1991) and Goldar (1983, 2003), employing Solow and Translog indices, documented a turnaround in productivity, driven by trade liberalization, improved infrastructure, and better capital utilization. These studies, using growth accounting frameworks, showed that the consumer goods sector benefitted significantly from the reforms, exhibiting stronger productivity growth due to labor efficiency and stable cap-

ital productivity. However, capital-intensive sectors such as steel and chemicals continued to face structural challenges, including inefficiencies and slower adoption of technology. Ahluwalia further demonstrated, through the Translog production function, how policy shifts contributed to TFP growth by enabling a more efficient allocation of resources, though the benefits were uneven across sectors.

Regional disparities in TFP growth added another layer of complexity. Studies like those by Kumar (2003, 2006) and Chattopadhyay (2004) analyzed state-level data from the ASI to understand how factors such as infrastructure, technology adoption, and industrial concentration influenced productivity. These studies found that industrially developed states, such as Maharashtra and Gujarat, experienced slower TFP growth compared to less developed states, largely due to the saturation of efficiency gains and challenges in adopting new technologies. On the other hand, states with lower initial industrial development showed faster improvements, driven by targeted policy interventions and increased access to resources. These regional analyses highlighted the critical role of infrastructure and the uneven distribution of technological advancements in shaping TFP growth across the country.

Data Sources and Methodology

The required data is mustered out from the various issues of "Summary Results of Annual Survey of Industries". The present analysis of technical efficiency in Indian Dairy products manufacturing sector at state levels will be confined to the period 1980-81 to 2021-2022 (the latest year up to which ASI data are available). The choice of terminal year is governed by the availability of the latest data from the Annual Survey of Industries (ASI). In the present study, we consider gross value added at constant prices as an output variable. Other variables such as gross fixed capital at constant prices constructed using perpetual inventory method, number of employees are taken as input variables. Using appropriate price deflators, we deflate all the required monetary data to the recent base year 2011-12. Following Jayadevan (1995) and Goldar (1986), we prefer to make use of gross value added as an index of output in at the place of net value added because depreciation charges in the Indian industries are known to be highly arbitrary fixed by the income tax authorities and seldom represent true/actual capital consumption.

This study utilizes Stochastic Frontier Analysis (SFA) introduced by Aigner, Lovell, and Schmidt (1977) and later extended by Battese and Coelli (1995) in order to assess the technical efficiency of dairy farming across different states. SFA is a widely used econometric technique that models the production process while accounting for both random noise and inefficiency. Unlike traditional models that assume deviations from the frontier are solely due to inefficiency, SFA distinguishes between two types of errors: random errors (v) and inefficiency (u). This separation allows for a more accurate measure of efficiency by accounting for uncontrollable factors that may affect production, such as weather conditions or market shocks, as well as inefficiencies caused by suboptimal resource utilization. In the True Fixed Effects (TFE) model, the inefficiency term u_i is assumed to vary across entities but is constant over time for each entity. This model is particularly useful when there is a need to control for time-invariant characteristics, such as geography, culture, or institutional factors, that may affect the efficiency of each entity but do not change over the study period. By using TFE, we can eliminate the bias caused by these unobserved factors and focus on how inefficiency evolves over time within

each entity.

The Stochastic Frontier Production Function is used to analyze productive efficiency by separating inefficiency from random noise in deviations from the production frontier. The general equation for the SFPF is as follows:

$$Yi = f(Xi;\ \beta)e^{\{v_i - u_i\}}$$

The Cobb-Douglas production function is used:

$$\ln Y_{it} = \beta + \beta 1 \ln capital_{+} \beta 2 \ln labour_{+} v_i - u_i$$

The panel data structure allows us to use both within-entity variation (over time) and between-entity variation (across entities) to estimate the model, leading to more robust.

Results and Discussions

Table one presents the summary of the results of the maximum likelihood estimates of the parameters from the specified Cobb–Douglas production technology with the truncated normal distribution of technical inefficiency u_i (Stevenson, 1980). The results in Table 2 show that the fixed capital, employment was found statistically significant at 1% level to determine the gross output of the Indian Dairy products manufacturing industry in for the period 1980-2021. Hence, the hypothesis of the model that no inefficiency component exists is rejected, that is, the model statistically confirmed that technical

Inefficiency exists in the Indian Dairy products manufacturing industry. In addition, the negative impact of capital suggests diminishing returns to capital investment in India's dairy manufacturing sector. This could indicate inefficient utilization of machinery or technology, overinvestment in fixed assets, or underutilization of existing capacities. The strong positive impact of labor on output suggests that labor-intensive practices significantly contribute to productive performance. In the dairy sector, this could reflect the importance of skilled labor in handling perishable products or efficient use of raw materials like milk.

σu represents the standard deviation of the inefficiency term (u_i) in the stochastic frontier model. This term captures the inefficiencies specific to states in utilizing available resources to reach their production potential. A significant σu suggests that inefficiency is a major factor contributing to deviations from the optimal production frontier in the dairy sector.

Lambda (the ratio of σu to σv), the higher contribution of inefficiency (σu) compared to random noise (σv) indicates substantial scope for productivity improvements across states. This suggests that disparities in management practices, technology adoption, or infrastructure are key factors driving inefficiencies between states.

Table 1: Results of Stochastic Frontier Regression Analysis

Variable	Coefficient	p-Value
Gross Fixed Capital	-0.4584	0.0320***
Labor	0.9432	0.0041***
Constant	-1.1591	0.0240***
Constant [Vsigma]	-1.6284	0.0103***
Sigma_u (Inefficiency)	0.5602	0.0213***
Sigma_v (Noise)	0.4430	0.0325***
Lambda (Inefficiency to Noise)	1.2645	0.0033***

Note: *** shows 5% level of significance.

Table 2: Estimates of Technical Efficiency of Manufacture of Dairy Products Inter-States

States	Efficiency Scores
Haryana	0.568
Karnataka	0.592
Kerala	0.640
Maharashtra	0.579
Punjab	0.654
Tamil Nadu	0.630
Uttar Pradesh	0.637
West Bengal	0.604
Andhra Pradesh	0.673
Bihar	0.629
Gujarat	0.642
Madhya Pradesh	0.574

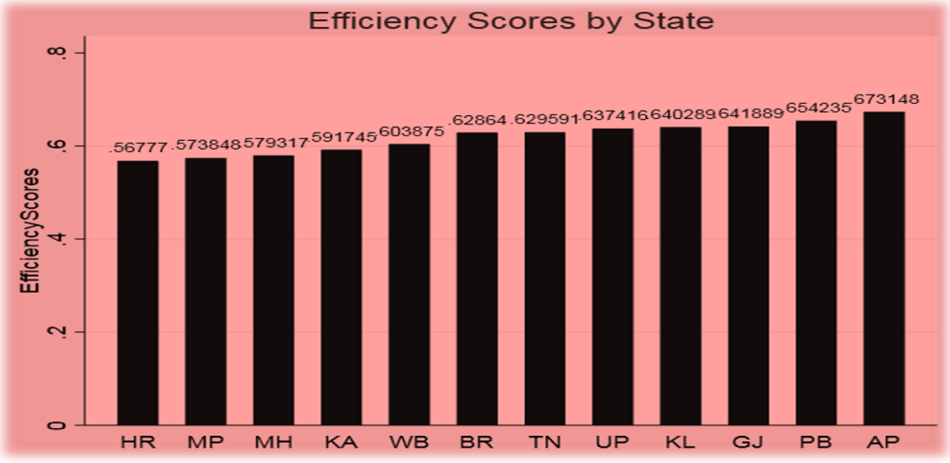

Source: Uses the estimates of Table 2.

Figure: 1 Technical Efficiency of Indian Dairy Products Inter-States Using SFA.

Haryana (HR) has a significant position in India's dairy sector, with high milk yields per animal. However, its low efficiency score of 0.568 indicates challenges in post-production stages, particularly processing and logistics. Despite the presence of established dairy brands like Vita, processing capacity remains underutilized, and smaller producers often lack access to modern infrastructure. Policy interventions, such as the Dairy Entrepreneurship Development Scheme (DEDs), focus on farm development, but expanding this to include processing infrastructure could help improve overall efficiency.

In Karnataka (KA), the state's growing urban population creates high demand for dairy products, but rural processing infrastructure remains inefficient, leading to an efficiency score of 0.592. The Karnataka Milk Federation (KMF), under the "Nandini" brand, dominates the local market but struggles with value-added products like cheese and yogurt. The Ksheera Bhagya Scheme, which provides free milk to schoolchildren, has driven demand, but it has not resulted in sufficient modernization of dairy manufacturing. Scaling up value-added production could significantly improve the sector's efficiency.

Kerala (KL) has a relatively high efficiency score of 0.640, reflecting its focus on small-scale, high-quality milk production. Milma, the state's dominant dairy brand, ensures quality but faces challenges in achieving economies of scale. Although the Kerala Livestock Development Board has emphasized breed improvement to support milk production, processing efficiency remains a concern. Investments in large-scale dairy units could complement these efforts and boost processing capacity, improving overall sector efficiency.

Maharashtra (MH), with an efficiency score of 0.579, has a strong milk production base but faces inefficiencies due to poor cold-chain infrastructure in rural areas. Large cooperatives like Gokul are hindered by supply chain issues, leading to wasted potential. The state's Balasaheb Thackeray Agro-Business Scheme promotes dairy entrepreneurship but lacks integration with improved logistics and market access. Enhancing these aspects would be essential for boosting efficiency in Maharashtra's dairy sector.

Punjab (PB) stands out with an efficiency score of 0.654, driven by its strong agricultural base and well-developed dairy cooperatives. The Verka brand dominates the local market, supported by robust procurement systems. However, the state's over-reliance on milk powder and butter production limits product diversification, affecting its competitiveness. Policies like the Gopal Ratna Awards, which incentivize high-yield dairy farming, sustain production efficiency. Expanding export-focused policies for value-added products could further boost Punjab's dairy sector.

In Tamil Nadu (TN), the efficiency score of 0.630 reflects a strong cooperative network led by Aavin, which processes a large share of the state's milk. However, its focus on traditional milk products like curd and milk limits technological modernization. Tamil Nadu has introduced subsidies for dairy startups under the Agribusiness Investment Scheme, which could attract private investments into high-tech processing. Such initiatives could help scale up processing efficiency and diversification into premium dairy products.

Uttar Pradesh (UP), the largest milk-producing state, shows a decent efficiency score of 0.637, but its potential is undermined by limited processing infrastructure. Despite producing a significant surplus of milk, the state struggles to convert this into

value-added products. The National Dairy Plan has supported farmer training, but localized efforts like cold-chain development are essential to improving processing efficiency and reducing waste.

West Bengal (WB) scores 0.604 in efficiency, which can be attributed to the dominance of smaller dairy units rather than a cohesive cooperative system. The private sector, which dominates the market, faces challenges with supply chain inefficiencies, leading to significant wastage. The state's Rural Dairy Entrepreneurship Program is a step toward improving the sector, but large-scale modernization efforts, particularly in processing, are necessary to boost overall efficiency.

Andhra Pradesh (AP) is a leader in efficiency, with a score of 0.673, thanks to proactive policies and well-integrated dairy cooperatives like Heritage Foods and Vijaya. These brands leverage modern processing facilities and diversified product lines, driving economies of scale. The Polam Pilusthondi Program, which enhances farmer awareness about quality inputs and modern practices, has been instrumental in improving productivity and efficiency within the sector.

Bihar (BR) scores 0.629, reflecting a growing dairy sector that benefits from cooperative efforts, but faces challenges with infrastructural development. The COMFED (Sudha) network has streamlined milk collection, but the lack of advanced processing facilities limits the ability to scale. The Mukhyamantri Dairy Utpadak Yojana, which incentivizes small-scale producers, has been beneficial, but enhancing connectivity to markets and improving infrastructure would further improve efficiency.

Gujarat (GJ) has the highest efficiency score at 0.642, driven by a robust cooperative framework led by Amul. Gujarat is a pioneer in product diversification, processing milk into a variety of value-added products, such as ice cream and nutritional goods, which drives economies of scale. The Dairy Development Program under the National Dairy Development Board (NDDB) ensures sustained modernization and has positioned Gujarat as a model for other states to follow in terms of efficiency and productivity.

Madhya Pradesh (MP) has a lower efficiency score of 0.574, reflecting its underdeveloped dairy infrastructure. Despite being a growing milk producer, MP lacks advanced cold-chain logistics and high-quality processing units. The state's Dairy Federation supports rural milk procurement, but the absence of downstream investments in value-added manufacturing limits its processing efficiency. Expanding such investments could significantly improve the state's dairy sector's overall performance.

Conclusion

The inefficiency scores in states like Maharashtra (0.579), Uttar Pradesh (0.637), and Madhya Pradesh (0.574) underscore the need for robust cold-chain logistics and rural infrastructure. Uttar Pradesh, despite being India's largest milk producer, processes less than 20% of its milk, leading to significant wastage. Similarly, Maharashtra's rural cold-chain inadequacies result in high spoilage rates, particularly in remote areas. Developing cold storage units and refrigerated transport systems under schemes like the National Dairy Plan (NDP) can address these challenges.

States such as Karnataka (0.592), Punjab (0.654), and Tamil Nadu (0.630) show potential for expanding value-added dairy production, but their reliance on traditional products like ghee, butter, and milk powder limits efficiency gains. Karnataka Milk Federation (Nandini) and Punjab's Verka can leverage

existing infrastructure to diversify into high-margin products like cheese, yogurt, and lactose-free milk. Andhra Pradesh, with a leading efficiency score of 0.673, serves as an example where brands like Heritage Foods have thrived by emphasizing value-added goods. Incentivizing investments in product diversification through subsidies or tax breaks for advanced dairy processing units can help other states follow suit. Efficient cooperative models in Gujarat (0.642) and Andhra Pradesh have driven productivity through streamlined procurement systems and modernized processing.

In contrast, West Bengal (0.604) and Madhya Pradesh struggle with fragmented production systems and private-sector dominance, resulting in inefficiencies. Encouraging cooperative development in these states, inspired by Gujarat's Amul model, can increase organized milk procurement. Additionally, states with strong cooperatives can integrate private players to foster competitiveness and enhance processing capabilities.

References

Aigner, D. J., Lovell, C. A. K., & Schmidt, P. (1977). Formulation and estimation of stochastic frontier production function models. *Journal of Econometrics, 6* (1), 21-37. https://doi.org/10.1016/0304-4076 (77) 90052-5

Battese, G. E., & Coelli, T. J. (1995). A model for technical inefficiency effects in a stochastic frontier production function for panel data. *Empirical Economics, 20*(2), 325-332. https://doi.org/10.1007/ BF01205442

Greene, W. H. (2008). The econometric approach to efficiency analysis. In H. Orea (Ed.), *Efficiency and productivity* (pp. 58-119). Springer. https:// doi.org/10.1007/978-0-387-69207-4_3

Coelli, T. J., Rao, D. S. P., & O'Donnell, C. J. (2005). *An introduction to efficiency and productivity analysis* (2nd ed.). Springer. https://doi.org/10.1007/0-387-26074-7

Kumbhakar, S. C., & Lovell, C. A. K. (2000). *Stochastic frontier analysis*. Cambridge University Press. https://doi.org/10.1017/CBO9781139174761

Pitt, M. M., & Lee, L. F. (1981). The measurement and sources of technical inefficiency in the Indonesian weaving industry. *Journal of Development Economics, 9*(1), 43-64. https://doi.org/10.1016/0304-3878(81)90004-5

Stevenson, R. E.(1980). Likelihood functions for generalized stochastic frontier estimation. General of Econometrics, 13, 57–66. https:// doi.org/10.1016/0304-4076 (80)90042-1

*****

Feminism in India and western Feminism: A Comparative Study

-Dr. Shehjad Sidiquii
Assistant Professor
NKSPTS ASC college Badnapur
Dist. Jalna, Maharashtra.

Abstract

Feminism is a comprehensive movement that aims to address diverse manifestations of injustice and promote the rights of women. Despite their diverse nature, women's movements around the world express shared concerns regarding reproductive, political and legal rights. The primary objective of feminism is to emancipate women from various forms of mistreatment and foster global collaboration among women. However, there remains a substantial discrepancy in the quality of life experienced by women in economically impoverished nations in the Global South compared to those in economically prosperous countries in the Global North. Women residing in the economically developed regions of the world known as the Global North tend to benefit from capitalism and the global economy. Conversely, women living in the economically disadvantaged regions of the world known as the Global South typically encounter poverty and challenging working conditions. Indian feminism highlights the equal significance of economically exploitative behaviors, racism and gender discrimination as key issues. Indian feminism is considered more comprehensive than other forms of feminism since it places equal importance on both reproductive and productive responsibilities. The objective of this research is to examine the discrepancies between Western and Indian feminist ideology specifically focusing on the challenges associated with the adoption of Western ideals in India particularly the concept of essentialism. This research also examines the impact of increasing inequality on systems that depend on male involvement as well as the philosophical concerns associated with feminism in both Western and Indian settings. In order to illuminate the intricacies and subtleties present in these two prominent feminist traditions, the study employed a qualitative comparative analysis to emphasize discrepancies in the objectives of feminist groups regarding gender equality and women's empowerment.

Keywords: Feminism, Western Feminism, Indian, Women Rights

Introduction

Feminism is a socio-political movement that aims to achieve women's rights and equality. It strives to identify and remove structural gender inequities in several areas of life such as politics, economics, society and culture. Nevertheless, the expression of feminism varies considerably throughout many regions of the world due to unique historical, cultural and socio-political circumstances. This study explores the variations between Indian feminism and Western feminism highlighting the distinctions in trajectory and aims of these two important feminist movements.

Western feminism gained significant prominence during the 19th and 20th centuries in Europe and North America. This movement frequently distinguished by its focus on gender parity, personal liberties and secularism has developed via multiple "waves" each targeting distinct forms of women's subjugation.

Beginning in the latter half of the 19th century the initial surge primarily focused on legal issues like women's suffrage, the right to vote and property rights. During this time an important achievement was the ratification of the 19th Amendment in the United States in 1920 which bestowed upon women the privilege to participate in elections. The second wave of Western feminism which arose throughout the 1960s and 1970s broadened the discussion to encompass topics such as sexuality, reproductive rights, gender disparities in the workplace and domestic abuse. The slogan "The personal is political" emphasizing the connection between women's individual experiences and larger social and political systems frequently links this wave. During this period, the development of the birth control pill and the momentous Roe v. Wade decision in 1973 which legalized abortion in the United States were important events. The third wave of feminism which emerged in the 1990s placed a strong emphasis on diversity and inclusivity.

A complex interaction of variables including colonial history, cultural variety, religious traditions and socio-economic inequality has shaped **Indian feminism**. Unlike Western feminism which often emphasizes individual rights, Indian feminism closely connects to the country's colonial history and the wider fight for independence. Indian feminism encompasses a wide array of viewpoints including postcolonial feminism which scrutinizes Western feminist ideologies for their Eurocentrism and failure to properly acknowledge the realities faced by women in the Global South. Postcolonial feminism emphasizes the importance of understanding the historical and cultural circumstances of formerly colonized nations as well as how these circumstances impact gender dynamics. Dalit feminism is a prominent aspect of Indian feminism that specifically examines the intersectionality of caste and gender. Mainstream Indian feminism frequently faces criticism due to its prevalence among upper-caste women and its failure to adequately acknowledge and address the distinct types of oppression experienced by Dalit women who belong to the lowest social stratum of the old Hindu caste system. Dalit feminists emphasize concerns such as violence based on caste, economic exploitation and social marginalization. The 1992 Bhanwari Devi case serves as an example depicting the gang rape of a Dalit woman in Rajasthan. This case highlighted the connection between caste and gender-based

violence as well as the deficiencies in the legal system when it comes to dealing with such incidents.

In India, ecofeminism establishes a connection between environmental concerns and the rights of women highlighting the adverse effects of environmental deterioration on women especially those living in rural regions. This viewpoint suggests a correlation between the exploitation of the natural world and the subjugation of women. It supports the idea of sustainable development which considers both the preservation of the environment and the promotion of gender equality. Women in the Himalayan region predominantly drove the Chipko movement in the 1970s serving as a tangible manifestation of ecofeminism. Women actively engaged in the movement by embracing trees to halt their destruction highlighting their pivotal role in safeguarding the environment and the interdependence of environmental and social equity. Indian feminism focuses on addressing distinct challenges within its particular setting including caste-based discrimination, the dowry system, honor killings and diverse manifestations of violence against women. The country's socio-economic imbalances and deeply rooted cultural and religious values frequently intersect with these problems. The dowry system which requires the bride's family to give substantial presents or money to the groom's family exemplifies a significant societal issue. This practice sometimes leads to financial difficulties and even violence against women. Certain cultural contexts use honor killings as a tool to control women's bodies and choices. These homicides occur when family members believe that a woman has brought shame upon them.

This paper aims to analyze the disparities between Indian and Western feminisms by investigating their historical development, theoretical foundations, intersectional obstacles and current concerns. The purpose of this comparative analysis is to enhance our comprehension of how cultural and socio-political circumstances influence feminist movements and their strategies for achieving gender equality. This paper highlights the importance of context in creating feminist discourses and practices worldwide by examining the distinct problems and accomplishments of Indian and Western feminist organisations. Additionally, it emphasizes the possibility of engaging in cross-cultural discussions and cooperation to tackle common obstacles and promote the global advancement of women's rights.

Literature Review Historical Context and Evolution

Western feminism's roots trace back to the Enlightenment and the suffrage movements of the 19th century. The first wave focused on legal issues primarily women's suffrage. The second wave emerging in the 1960s expanded the focus to a wider range of issues including sexuality, family and workplace rights. The third wave beginning in the 1990s introduced a more inclusive and intersectional approach addressing the experiences of women of different races, classes and sexual orientations.

The country's colonial past and the struggle for independence intertwine with the history of Indian feminism. Early Indian feminists worked alongside the nationalist movement advocating for social reforms such as the abolition of sati (widow burning) and child marriage. A diversity of voices reflecting the country's vast cultural and socio-economic diversity has marked the feminist movement in India postindependence. Issues such as caste discrimination, religious fundamentalism and economic inequality have shaped the feminist discourse in India.

Key Theoretical Frameworks

Western feminism is characterized by a variety of theoretical frameworks. Liberal feminism focuses on legal equality and individual rights advocating for reforms within existing societal structures. Radical feminism critiques patriarchy as a pervasive system of power and seeks fundamental societal changes. Marxist and socialist feminisms analyze women's oppression through the lens of class and economic structures while postmodern feminism challenges the idea of universal women's experiences and emphasizes the fluidity of identity.

Indian feminism encompasses a broad spectrum of perspectives. Postcolonial feminism critiques the legacy of colonialism and its impact on gender relations emphasizing the need to consider historical and cultural specificities. Dalit feminism highlights the intersection of caste and gender addressing the unique experiences of Dalit women. Ecofeminism in India links women's exploitation with environmental degradation drawing on Indian cultural traditions' deep connection between women and nature.

Intersectionality and Diversity

Kimberlé Crenshaw popularized the concept of intersectionality which has become a crucial framework in feminist analysis particularly in the West. It highlights how different forms of discrimination, such as race, class and gender intersect and compound each other. Western feminists have increasingly recognized the need to address the diverse experiences of women from different backgrounds although challenges remain in fully integrating intersectional perspectives.

In India, intersectionality is particularly significant due to the country's complex social hierarchy, characterized by caste, religion, region and language. Indian feminists have extensively explored the intersections between caste and gender acknowledging the interdependence of women's experiences with these other identities. Dalit feminists, in particular, have critiqued mainstream Indian feminism for not adequately addressing caste oppression.

Cultural and Religious Influences

Western feminism particularly in its secular liberal forms often views religion with suspicion associating it with patriarchal structures. This perspective has led to debates within the feminist movement about issues such as Muslim women's wearing of the hijab. However, there are also feminist theologians and scholars who seek to reinterpret religious texts and traditions in ways that support gender equality. In India, religion plays a significant role in shaping cultural norms and values. Religious traditions and practices deeply intertwine with daily life presenting a landscape that Indian feminists must navigate. This has led to unique challenges such as addressing gender discrimination within religious communities while respecting cultural diversity. Some Indian feminists work within religious frameworks to advocate for women's rights while others adopt a more secular approach.

Contemporary Issues and Movements

The #MeToo movement which gained global prominence in 2017 has had a significant impact on both Western and Indian feminism. In the West, it has sparked widespread discussions about sexual harassment and abuse leading to policy changes and increased awareness. The unique cultural and legal context of India has shaped the movement's impact but it has also gained traction there.

Contemporary feminist issues in India include gender-based violence, dowry-related violence, honor killings and the struggle for reproductive rights. Indian feminists also face the challenge of addressing the needs of marginalized groups such as Dalit women, Adivasi women and women from religious minorities. In contrast, Western feminists are currently focusing on issues such as gender pay gaps, reproductive rights and the representation of women in media and politics.

Convergences and Divergences

Both Indian and Western feminisms share a common goal of achieving gender equality and challenging patriarchal structures. However, they differ in their approaches and priorities shaped by their unique historical, cultural and socio-political contexts. Western feminism often emphasizes individual rights and legal reforms while Indian feminism focuses on addressing the intersection of gender with caste, religion and economic inequality.

The concept of intersectionality has become a crucial framework for both movements highlighting the need to consider the diverse experiences of women and the ways in which different forms of oppression intersect. However, the specific challenges and priorities within each context differ, reflecting the unique socio-political landscapes in which these movements operate.

Impact of Globalization on Transnational Feminism

Globalization has facilitated the exchange of ideas and the growth of transnational feminist networks allowing feminists from different parts of the world to share experiences and strategies. This has led to a greater awareness of the diversity of feminist movements and the need for more inclusive and intersectional approaches. However, it has also raised questions about the influence of Western feminism on other feminist movements and the potential for cultural imperialism.

Transnational feminism emphasizes the importance of understanding the local contexts in which feminist movements operate and the need to build solidarity across differences. For example, Indian feminists have criticized the dominance of Western feminist perspectives in global feminist discourse and called for greater recognition of the unique challenges faced by women in the Global South.

Challenges and Future Directions

Both Indian and Western feminisms face ongoing challenges in addressing intersectionality and inclusivity. In the West, feminists are grappling with issues such as the underrepresentation of women of color, LGBTQ+ individuals and women with disabilities within the feminist movement. There is also a need to address the ways in which neoliberalism and capitalism intersect with gender inequality particularly in relation to issues such as the gender pay gap and reproductive rights.

In India, feminists face the challenge of addressing the diverse needs of women across different regions, castes and religious communities. The intersection of gender with caste and religion presents unique challenges and there is a need for more inclusive feminist spaces that address the experiences of marginalized groups. Additionally, the influence of conservative cultural and religious norms poses a significant barrier to gender equality in many areas.

Conclusion

This paper emphasizes the specific historical, cultural and socio-political circumstances that have influenced the separate paths of Indian and Western feminisms. Both groups have the ultimate objective of attaining gender equality but their approaches and areas of emphasis demonstrate the intricacies inherent in their separate societies. Western feminism has had multiple waves of development with each wave focusing on distinct aspects of women's oppression. These aspects include suffrage, legal equality, sexuality, reproductive rights and intersectionality. Western feminism is known for its emphasis on individual rights and legal changes. The colonial past, cultural diversity and socio -economic inequalities significantly shape Indian feminism. As a result, there is a wide range of feminist viewpoints in India each focusing on distinct obstacles such as caste bias, religious extremism and the specific socio-economic circumstances that impact women. Indian feminism encompasses many branches such as postcolonial feminism, Dalit feminism and ecofeminism. Each branch concentrates on different aspects of identity and power which are especially significant in the Indian setting. It is crucial to acknowledge these distinctions in order to promote a broader and more comprehensive global feminist conversation that includes multiple perspectives and experiences. Globalization has facilitated the exchange of ideas and the formation of transnational feminist networks. However, it has also emphasized the significance of recognizing and honoring the variety of feminist movements across the globe.

References

Carole McCann and Seung-Kyung Kim (2018). Feminist Theory Reader: Local and Global Perspectives. Routledge.

Crenshaw, K. (1989). Demarginalizing the Intersection of Race and Sex: A Black Feminist Critique of Antidiscrimination Doctrine, Feminist Theory and Antiracist Politics. University of Chicago Legal Forum.

Gandhi, N. & Shah, N. (1992). The Issues at Stake: Theory and Practice in the Contemporary Women's Movement in India. Kali for Women.

Mohanty, C. T. (2003). Feminism Without Borders: Decolonizing Theory, Practicing Solidarity. Duke University Press.

Narayan, U. (1997). Dislocating Cultures: Identities, Traditions, and Third World Feminism. Routledge.

Tharu, S., & Lalita, K. (1991). Women Writing in India: 600 B.C. to the Present, Volume 1. Feminist Press at the City University of New York

*****

Theatre of Synthesis: Exploring the Possibilities for Creating A Third Theatre in India

-Parthsarathi Sahu
Research Scholar
University of Delhi
Sahuparthsarathi1@gmail.com

-Shaleen Kumar Singh
Associate Professor,
Department of English
Swami Shukdevanand College, Shahjahanpur
Shaleensingh999@gmail.com

Abstract

Indian theatre today exhibits a sharp dichotomy between traditional and modern forms. Badal Sircar, a pioneering figure in Indian theatre, eloquently addressed this divide in his seminal essay on "The Third Theatre." His concept critiques the clear divide between city-based theatre, heavily influenced by Western traditions, and the traditional village theatre, which preserves Indian folklore but remains stagnant in addressing contemporary issues. This paper explores whether these two divergent forms can be synthesized into a new theatre model that incorporates the strengths of both traditions. This paper will delve into both forms, assessing their merits and limitations while exploring the feasibility of a new theatrical model that bridges this urban-rural divide. Through a hermeneutic analysis, this research will investigate Sircar's theory of a "Theatre of Synthesis," which envisions a fusion of traditional Indian and modern Western forms to create a dynamic and socially relevant theatre.

Keywords: Third Theatre, Badal Sircar, Theatre of Synthesis, limitations of theatre, Audience Engagement.

Introduction

There is a striking dichotomy in Indian theatrical life due to traditional and modern theatre cultures in India. This paper seeks to understand and explain the phenomenon and determine whether the two life aspects might be combined into a new form. The current city theatre in India demonstrates that the Western world has swayed the Western world significantly. These theatres owe a great deal to Western novels, plays, and production techniques. The city, or urban theatre, conforms to standard Western dramaturgical – the criteria for playwriting, acting, and production. So, urban theatre seems so different from traditional and folk performances in rural India, which remain to this day in the villages. The considerable divide that cleaves Indian society into two, city and village, the urban and rural cultures, Indian city theatre and village theatre, are well defined and may be referred to with no confusion. Ironically, the traditional village theatre of India has perpetuated its folklore and continues to reflect original Indian cultures, values, and social practices. However, village theatre is stagnating and has not yet adopted current issues for its convenience and function. In the past, Western ideas and feelings began colonizing India in the nineteenth century's cultural renaissance. Ideas and ideologies of the West were instrumental in effecting change and reform in the traditional socio-economic and political order. However, the ideas were primarily absorbed and understood by urban intelligentsias of the cities, who lived as feudal lords. The research explores city and village theatres, assesses their strong and weak sides separately, and suggests the possible synthesis area. The study explores what the 'Theatre of Synthesis' can be and devises the model of a new format of theatre that would incorporate the best peculiarities of the traditional and modern forms. Such synthesis can create a more dynamic and meaningful experience for the Indian people, bridge the gap between the urban and rural experience involved in theatrical productions, and contribute to meaningful cultural dialogue. The idea of the "Third Theatre" in Badal Sircar is a fundamental response to prominent layering wars between traditional village theatre and Western-

enslaved urban theatres. Sircar recognizes the difficulty this division creates and sets out to try and form a synthetic theatre that will unite these two forms. Based on his conviction that theatre is not a panacea for socio-economic problems but can significantly influence cultural movements at the forefront of broader societal changes. As "the entire process of change involves a philosophy, and [I] believe that the new language can only be established if it takes the shape of a movement". (Sircar, Badal)

For Sircar, the "Third Theatre" idea is artistic and political. He insists that the cultural divide between urban and rural theatre points to a much more significant change being necessary in the socio-economic underpinning of culture. At the same time, Sircar believes that theatre can make all the difference in a more substantial change movement. He states, "The dichotomy in the cultural field cannot be removed without a fundamental change in the socio-economic situation, and I have no illusion that it can be done simply through theatre. But I do believe that theatre can be one of the many facets of a movement that is vitally needed to bring about the desirable change." (6) This statement mirrors his mindfulness of the limitations of theatre and highlights his commitment to using it as a catalyst for transformation.

His Third Theatre takes from the best of traditional and modern strains to find a balance point. He understood that urban theatre was eager to Westernise, ignoring its roots in Indian culture, and village or folk theatre had alienated itself from contemporary themes, stagnating for centuries, keeping alive the nugget of a rich inheritance. In return, he proposed a theatre that could be piloted as a "Rural-Urban Link" necessary at that moment of history to merge progressive better parts of urban with the original cultural syndrome from the village going into the making. Taking his theory on the road, Sircar did not leave this synthesis as just an academic or theatre-room exercise; he tried to practice it actively through his work in street-theatre with *Satabdi*, and later a Jawaharlal Nehru Fellowship project "Workshop for Theatre of Synthesis-as-a-Rural-Urban Link."

The founding of Satabdi was a decisive step in Sircar's journey toward creating the Third Theatre. He planned the group as a "nucleus of a workshop that would endeavour to develop the theatre of synthesis." Nor was this an initiative limited to the duration of their fellowship but instead marked a continued investment in theatre as a medium for social transformation. As an artist, some of Sircar's thoughts break stereotypes in the Indian theatre scene. His insistence on solidarity — synthesis vs. cleavage, in his parlance — suggests a theatre more welcoming and alive than the current version that still replicates cultural and socio-economic separations far too often. It has to dialogue, humanize and be a part of our more extensive social transformation process. Sudhanva Deshpande aptly assesses Sircar's contribution to changing the anatomy of the Indian actor:

> "He more than anyone else pioneered the play without the text. It was the technique of using the actor as text. The body of the actor becomes the text. The result is a Spartan production which is an ideological position. The stand of course is that "I will use nothing else because that is the essential thing." (Deshpande, Sudhanva)

Sircar's Practical Approach to Theatre

This concept of the theatre was, for Sircar, quite pragmatic, the value in experiments and empirical knowledge rather more than theoretical speculations. Since the theatre is essentially an art that involves "a strong human factor," it necessarily has "few con-

stants and many variables," Sircar admits (5). This recognition of theatre's fundamental unpredictability and abstraction leads him to use more experimental tactics in his performance rather than relying heavily on a concrete formula. This view helps to understand the larger canvas of Sircar's vision for the Theatre of Synthesis as he feels that theatre should grow and change — never fixed but fluid, constantly experimenting with attempts towards adaptiveness. He said,

> "We realized that if we do theatre, we are doing away with all the costly and heavy theatre items. [...] So gradually a flexible, portable, and inexpensive theatre is being created. Flexible, and portable, therefore inexpensive. Flexible means we can do it in any condition. Portable—we can carry our theatre easily to places where we want to perform. We don't have to charge any money for that you see. Voluntary donations we will do. So, the basis of free theatre is laid." (Sircar, Badal)

The Role of Experimentation and Risk

One of the aspects that comes across brilliantly in Sircar's work is his ability to use risk and experiment with new ideas. He admits that his fellowship enabled him to try new experiments, allowing him to devote his full attention to the project and give it "a more concrete and organized shape" (Sircar 21). This makes clear how critical it is for the arts to be financially supported, especially in a country like India, where experimental theatre has few funding avenues. Such commitment to pushing boundaries aligns with Sircar's pronouncements about the importance of taking financial risks and his belief that genuine progress comes only through bold experimentation. S. S. Pachkudke says,

> "Badal Sircar experimented with a new form of theatre, not for experimentation or novelty. His theatre has a well-defined philosophy to guide its course. Badal Sircar carries out all the formal innovations with the intention of reaching out to poor people in villages who cannot afford to pay for the ticket." (Vidyabharati International Interdisciplinary Research Journal 46)

The Importance of Audience Engagement

Sircar also highlights the worth of audience engagement in the success of any theatrical project. He emphasizes that the actual results of his experiments can only be judged by "seeing the actual theatrical productions" and determining the audience's reactions (Sircar 22). This focus on the audience is central to Sircar's philosophy of theatre, as he believes that theatre must resonate with its viewers to be truly effective. His work with the theatre group in Calcutta aids as a practical testing ground for his ideas, allowing him to refine his approach based on real-world feedback. Dibyakusum Ray states,

> "Sircar attempted to develop an "intimate" theatre where audience will be able to participate in the performance instead of witnessing passively. In his plays, the staging is often done in a small clearing amongst the audience, where often the performers speak and act from the circle of audience." (Comparative Indian Drama)

The Calcutta Theatre Scene and its Influence

The specific conditions of the theatre scene in Calcutta are indeed crucial for understanding how Sircar's ideas are shaped. He describes the situation and notes that it influenced his thoughts and attitude toward theatre. On the one hand, the openly urban nature of the problem makes Calcutta doubly exposed to both Western and traditional Indian cultural influences. It proves to be good ground for Sircar to experiment with his Theatre of Synthesis. On the other hand, Sircar's experience participating in a theatre group has dramatically increased his understanding of practical difficulties and new opportunities associated with creating a new form of drama. In the article devoted to Indian theatre, especially Bengali theatre, Badal Sircar critically examines the social and cul-

tural factors defining the peculiarities of theatre development in urban settings. Sircar thought that the urban theatre did not grow out of traditional performance as a natural type of its evolution. Indeed, Sircar explains that the Bengali theatre has developed from the British theatre of Victoria age, which was brought to India during the colonial period and was adopted by the urban elites of Kolkata.

Urban vs. Rural Theatre

Drawing a clear distinction between city theatre and rural theatre, Sircar stresses that while the rural theatres—Jatra, Tamasha, and Nautanki— maintained their indigenous character, the city theatre evolved under the foreign influence of Western traditions. Such a contrast between the two forms of performance highlights the cultural separation between the city and the countryside, which is present at the core of Sircar's critique of the Indian theatre. He asserts that as a result of such separation, it is an urban and not a rural theatre that had appeared to be cut off from the broad masses of India, presumed to be preoccupied exclusively by the tastes and interests of the urban elite. As Sircar states, the history of Bengali theatre is essentially the history of an accumulated urban theatre shaped by Victorian patterns. All these theatres had been founded with the social and financial support of the rich intelligentsia descending from feudal families. Despite its rapid development and variety of styles and genres, as Sircar indicates, the Westernized Bengal theatre remained fundamentally linked to the colonial legacy and never went beyond that framework. He states, "The history of the hundred years of the Bengali theatre is in reality the history of this urban theatre imported from the nineteenth century Victorian theatre of Britain, moulded and developed primarily by the citizens of Calcutta" (Sircar 5).

Professional vs. Amateur Theatre

Sircar also discusses the relations between Bengal's professional and amateur theatre. Although noting the reign of professional theatre, dependent on commercial box office successes, amateur productions proliferating around its edges frequently mimic it. Though, according to Sircar, the amateur theatre was essentially nationalized by the schools, colleges, and local clubs, its undertakings were ad-hoc, in that they performed only copies of other foreign scripts. Sircar suggests in his reflections that this synthesis is what the urban theatre of today has sorely been missing. He visions a "Theatre of Synthesis" in which the best elements from both are merged to overcome their limitations. The new theatre model will bring cultural porosity between rural and urban India and fill socio-economic fault lines. Interestingly, analyzing Indian city theatre from his time, Sircar remarked that it was heavily structured in the British theatrical template. Sircar notes, "The sets attempted an imitation of reality which was usually very poor. Representational, symbolic or abstract sets were rarely used" (Sircar).

He writes, "Even with a change of scene, one never went back in time; that is to say, the flashback was never used" (Sircar). Thus, one can see that the attempts of the Indian city theatre to adhere to the multiple Western norms limited its creative repertoire and did not allow city theatres to develop more sophisticated narrative devices that could potentially dominate over traditional Indian techniques. Here, it is essential to note that, despite some relevant claims, Sircar did not believe that Indian city theatre must escape Western practices.

Badal Sircar's assessment of contemporary theatre, particularly in West Bengal, reflects a deep understanding of the challenges faced by theatre in an in-

creasingly commercialized and cinema-dominated environment. However, this enthusiasm for theatre does not translate into financial sustainability. The economic demands of theatre—money for stage, auditorium, sets, lights, costumes, and publicity—are not met by ticket sales, as cinema provides "greater value for money" for the average Bengali audience (Sircar).

Sircar's analysis of the financial aspects of theatre as art reflects a more profound phenomenon – the tendency to turn art into a commodity. He admits that theatrical production costs constantly increase while the "paying capacity of the audience decreases." This discrepancy has implications, and one of those outcomes is that "Commercial theatre in Calcutta, and sometimes even the group theatres require lavish sets, elaborate lighting, expensive costumes, and 'stars'; moreover, very often those "stars" are the actors who found fame in cinema. Ultimately, such developments into the most profitable and sometimes the only path also "intensifies the struggle for survival between theatre and cinema – something that is really suicidal for theatre." To address these challenges, Sircar suggests that theatre must differentiate itself from cinema. He poses a series of rhetorical questions that guide his thinking process: "Can we not reduce the cost of theatre? Can we not make theatre a form of art that is quite different from cinema?" (Sircar).

In his discussion of 'The Third Theatre,' Badal Sircar analyzes the peculiar characteristics of such art forms as theatre. Sircar compares theatre to other art forms, including writing, painting, and cinema, for various purposes. In turn, demonstrating the key differences between the types mentioned above of art and theatre, the author's ideas concerning the latter's directness and immediacy played the role of the foundation for his hypothesis concerning the development of a radically new form of theatre created by fusing the aspects of the traditional and the modern. "Foregrounding Third Theatre, Sircar noted that "first" theatre refers to popular folk-art forms such as Yakshagana. Second theatre is "Victorian" and essentially Western. Third theatre blended some elements of the other two, besides cultivating its own feel and identity distanced from them." (The Citizen)

One of Sircar's central arguments revolves around the live nature of theatre. Unlike literature, where a writer "does not have to be present when his writing is being read" (Sircar 11), or cinema, where "film artists do not have to be present when the film is being projected" (Sircar 11), theatre requires the physical presence of performers. This live interaction between performers and the audience creates a unique and immediate communication that is absent in other art forms. Sircar emphasizes that "theatre is a live show, cinema is not" (Sircar 11), underscoring the irreplaceable value of this direct connection.

Moreover, Sircar contrasts the flexibility of cinema with the constraints of theatre. He notes that in cinema, "images are created through photography" and can be "projected on the screen by a projector any number of times" (Sircar 11). He encourages a critical examination of traditional and modern forms, aiming to "create a Theatre of Synthesis" to bridge the gap between them (Sircar 11). According to Sircar, this synthesis is not about valorizing one form over the other but about recognizing the unique strengths of each and integrating them into a cohesive, dynamic whole.

The Illusion of Reality: Theatre vs. Cinema

Sircar commences by tackling the crucial difference between theatre and cinema regarding audience engagement. With its realistic images, cinema has an

inherent advantage in creating the illusion of reality. Sircar notes, "In cinema, one has to show the images of real mountains and rivers, real rooms and streets, real furniture and crockery" (Sircar 109). This reliance on realism in cinema contrasts sharply with the capabilities of theatre, where sets and effects, no matter how lavish, "stand no chance in competing with the film sets or the shots of real objects and scenes" (Sircar 12). Theatre's attempt to compete with cinema by adopting a similar approach, mainly through the use of realistic sets and naturalistic plays, has, according to Sircar, led to the erosion of its unique strengths. In pursuing realism, the theatre has sacrificed its ability to foster direct, live communication between performers and the audience—a feature that cinema, with its pre-recorded and mediated performances, inherently lacks. Sircar critiques this shift, arguing that "the illusion of reality is aimed at the spectator's identification with the character on the stage" (Sircar 12). This requires an increased distance between actors and the audience, weakening the vital connection between theatre and cinema.

The Proscenium Stage and Its Impact

Sircar's critique extends to modern theatre's architectural and spatial dimensions, mainly using the proscenium stage. He explains that the proscenium stage, with its "wood-and-canvas jobs" and "carefully arranged spotlights," creates a framed, two-dimensional quality that parallels the cinematic screen (12). This imitation of cinema undermines theatre's unique three-dimensionality and distances the performers from the audience. Sircar observes that "the seating of the audience on one side only" and the consequent placement of "back rows far from the stage" contribute to the "ever-increasing destruction of the link between the performer and the spectator" (12). This loss of connection is central to Sircar's critique, as he believes that the "direct communication from the live performer to the live spectators and their feedback—the principal advantage of theatre over cinema—was undermined" (12). By mimicking cinema's focus on realism, theatre has lost sight of its inherent strengths: the immediacy of live performance and the imaginative engagement of the audience.

The Role of Imagination in Theatre

One of Sircar's most compelling arguments is his claim that theatre audiences do not require or expect the same level of realism as cinemagoers. Unlike cinema, where "real mountains and rivers, real rooms and streets" are shown, theatre spectators "have always come to theatre ready to use their imagination to fill in the gaps" (12). This imaginative participation is a key element of the theatrical experience, which is diminished by overemphasizing realistic sets and naturalistic narratives. Sircar argues that the efforts of theatre realists to "delude [the audience] into believing that it is not a stage" are both "in vain and unnecessary" (12). Instead, theatre should embrace its unique qualities—its ability to present a stage as a stage and to engage the audience's imagination in ways that cinema cannot. By doing so, theatre can reclaim its distinct identity and resist the pressures to conform to cinematic standards of realism.

Toward a Theatre of Synthesis

Sircar's analysis points to the need for a new approach to theatre that synthesizes the strengths of both traditional and modern forms. This "Theatre of Synthesis" would not merely mimic Western or cinematic traditions but would instead draw upon the rich heritage of Indian folk and traditional theatre. It would also acknowledge the audience's role as ac-

tive participants in the theatrical experience rather than passive recipients of a pre-constructed illusion. Such a theatre would retain the immediacy and direct communication that Sircar champions while also integrating contemporary themes and ideas. Doing so could bridge the gap between urban and rural, modern and traditional, creating a genuinely Indian theatre that resonates with audiences nationwide. "Badal Sircar's Third Theatre was a movement that challenged the conventional norms of both city based theatre and folk theatre. His attempt was to bridge the city-country divide through an art form that had the potential to be transformative and subversive." (Economic and Political Weekly)

Sircar's concept of a "Theatre of Synthesis" represents his vision for the future of theatre in India. He suggests this new approach would merge traditional and modern forms, drawing on India's folk and traditional theatre while addressing contemporary themes. This synthesis would resist Western and cinematic influences, focusing on the live and direct interaction between performers and audiences. He envisions a theatre that would create "live theatre" out of scripts through collaboration, where performers would no longer merely follow the director but contribute actively to the creative process (Sircar 112).

Conclusion

So, one of Sircar's key realizations is the ability of "common people" to appreciate complex theatrical performances. He states, "it is not true that the common people are only capable of grasping the crude and over-simplified themes and dialogue of Jatra" (Sircar). He challenges the assumption that rural audiences require simplified content, pointing to the success of *Spartacus*, a play performed in a sophisticated structure and without traditional props. By creating performances that are both accessible to the rural poor and intellectually stimulating for urban audiences, Sircar seeks to dismantle the divide between these two worlds. His assertion that "good theatre does not depend upon costly productions" reflects his belief in the power of the human body and voice to carry a theatrical experience (Sircar). Sircar stresses the importance of physicality and improvisation in the Third Theatre, as opposed to relying heavily on language. He notes that "theatrical experience, rather than the narration of a story, is more relevant" to this form of theatre, which allows for a more "directness in communication" (Sircar). This reflects his broader philosophy that theatre should not merely recount a narrative but immerse audiences in an experience.

Works Cited:

Chatterji, Soma A. "Theatre For The People Tribute to Badal Sircar (1925–2011)." *The Citizen*, 26 July , www.thecitizen.in/life/theatre-for-the-people-1052312.

Deshpande, Sudhanva. Interview with Shayoni Mitra. 14 Jan. 2004, New Delhi.

Hazra, Nirupam, "The City-country Divide: Badal Sircar and His Third Theatre", *Economic and Political Weekly*.

Pachkudke, S. S. "Badal Circar's Third Theatre: A Way of Social Protest With Special Reference to the Play Procession." *Vidyabharati International Interdisciplinary Research Journal,* vol. 11, no. 1, Sep. 2020, p. 46.

Ray, Dibyakusum. "Badal Sircar: Micchil (Theatre of the Oppressed: Augusto Boal)." *Comparative Indian Drama*, ebooks.inflibnet.ac.in/engp09/chapter/badal-sircar-micchil-theatre-of-the-oppressed-augusto-boal/.

Sircar, Badal. *On Theatre: Selected Essays*. Seagull Books, 2009.

---. *On Theatre*. Seagull Books, 1978, pp. 109–12.

---. "The Changing Language of the Theatre." *On Theatre*, Seagull Books, 2009.

Sircar, Badal. Interviewed by Shayoni Mitra. 27 and 29 Dec., Calcutta.

*****

थेरी गाथाओं में स्त्री और पुरुष के आध्यात्मिक अनुभवों का तुलनात्मक अध्ययन

-डॉ सीमा गौतम
सह- आचार्य (इतिहास विभाग)
साहू राम स्वरूपमहिलामहाविद्यालय,
बरेली

- डॉ दीपक सिंह
सह- आचार्य (इतिहास विभाग)
स्वामी शुकदेवानंद कॉलेज,
शाहजहाँपुर

बौद्ध धर्म, एक समतावादी और व्यावहारिक धर्म है, जिसने समाज के विभिन्न पहलुओं को धर्म के माध्यम से समझाने और सुधारने की दिशा में कई महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किए हैं। इस धर्म के ग्रंथों में स्त्रियों और पुरुषों के आध्यात्मिक अनुभवों को समान रूप से प्रस्तुत किया गया है, लेकिन थेरी गाथाओं में विशेष रूप से स्त्री के आध्यात्मिक अनुभवों का उल्लेख अत्यंत महत्वपूर्ण है। थेरी गाथाएँ, जो बौद्ध धर्म के स्त्री शिष्यों की गाथाएँ हैं, न केवल बौद्ध धर्म में महिलाओं की भूमिका को रेखांकित करती हैं, बल्कि इन गाथाओं के माध्यम से स्त्रियों की आध्यात्मिक यात्रा, उनके अनुभव, और समाज में उनके स्थान को भी प्रमुखता से उजागर करती हैं।

थेरी गाथाएँ बौद्ध धर्म के स्त्री अनुयायियों द्वारा रचित काव्य संग्रह हैं, जो उनके आत्मज्ञान, तपस्या और निर्वाण प्राप्ति की कथाएँ प्रस्तुत करती हैं। इन गाथाओं में स्त्रियाँ अपने आध्यात्मिक संघर्षों और समृद्धि की कहानी सुनाती हैं। पुरुषों के आध्यात्मिक अनुभवों से इनका तुलनात्मक अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि बौद्ध धर्म में आध्यात्मिक समानता की महत्वपूर्ण धारणा थी, लेकिन महिलाओं के लिए इसके रास्ते में समाजिक और सांस्कृतिक चुनौतियाँ थीं।

यह शोध पत्र स्त्री और पुरुष के आध्यात्मिक अनुभवों का तुलनात्मक विश्लेषण करेगा, विशेष रूप से थेरी गाथाओं में व्यक्त उनके अनुभवों को ध्यान में रखते हुए। पुरुषों और महिलाओं के आध्यात्मिक संघर्ष, उनकी साधना की विधियाँ, और अंततः निर्वाण प्राप्ति के विभिन्न पहलुओं की तुलना करते हुए यह अध्ययन यह स्पष्ट करने का प्रयास करेगा कि बौद्ध धर्म ने पुरुष और स्त्री के बीच आध्यात्मिक समानता की बात की है, लेकिन उनके अनुभव अलग-अलग सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों में कैसे आकार लेते हैं।

बौद्ध धर्म में स्त्री और पुरुष के आध्यात्मिक अनुभवों को समान रूप से महत्व दिया गया है, लेकिन प्राचीन भारतीय समाज में स्त्री और पुरुष की आध्यात्मिक यात्रा में कुछ भिन्नताएँ थीं। विशेष रूप से बौद्ध धर्म के प्रारंभिक काल में, यह देखा गया कि पुरुषों के आध्यात्मिक अनुभवों को अधिक सराहा और स्वीकारा गया, जबकि स्त्रियों के आध्यात्मिक मार्ग में कई सामाजिक और सांस्कृतिक बाधाएँ थीं।

पुरुषों के लिए आध्यात्मिक अनुभवों की यात्रा का मार्ग स्पष्ट और अपेक्षाकृत सहज था। बौद्ध धर्म में पुरुषों के लिए साधना, तपस्या और ध्यान की प्रक्रिया का आदान-प्रदान आसान था क्योंकि वे समाज में धार्मिक दृष्टि से अधिक स्वतंत्र थे। पुरुषों के लिए यह यात्रा अधिक सामाजिक स्वीकृति प्राप्त करती थी, क्योंकि उन्हें धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने और ध्यान साधना के लिए कम अवरोधों का सामना करना पड़ता था। बौद्ध धर्म में, जैसे सिद्धार्थ गौतम की कथा, पुरुषों का आध्यात्मिक विकास प्रायः व्यक्तिगत और सामाजिक सराहना से परिपूर्ण था। उन्होंने विपश्यना और ध्यान के माध्यम से आत्मज्ञान की प्राप्ति की जो पूरी तरह से व्यक्तिगत था और समाज की पारंपरिक सीमाओं से मुक्त था।

इसके विपरीत, स्त्रियों के लिए आध्यात्मिक अनुभव की यात्रा अधिक कठिन और जटिल थी। प्राचीन भारतीय समाज में महिलाओं को धार्मिक गतिविधियों में भाग लेने के लिए कई सामाजिक और सांस्कृतिक प्रतिबंधों का सामना करना पड़ता था। बौद्ध धर्म में भी, हालांकि स्त्रियों को भिक्षुणी बनने की अनुमति थी, लेकिन उनका आध्यात्मिक विकास पुरुषों की तुलना में अधिक चुनौतीपूर्ण था। उन्हें समाज द्वारा परिवार की जिम्मेदारियों, मातृत्व, और घरेलू कार्यों में बांधा गया था, जिससे उनके पास ध्यान और साधना के लिए समय और अवसर सीमित थे।

हालाँकि बौद्ध धर्म के सिद्धांतों में यह स्पष्ट था कि सभी प्राणी निर्वाण की प्राप्ति के योग्य हैं, फिर भी वास्तविकता में स्त्री और पुरुष के अनुभवों में भिन्नताएँ थीं। पुरुषों को बौद्ध धर्म में अनुशासन, ध्यान और साधना में अधिक प्रोत्साहन मिला था, जबकि स्त्रियों को अपनी आध्यात्मिक यात्रा में समाज द्वारा दिए गए अतिरिक्त बाधाओं का सामना करना पड़ता था। उदाहरणस्वरूप, महापजापति और उपपाली जैसी प्रमुख स्त्री पात्रों ने अपने आध्यात्मिक जीवन में कई कठिनाइयों का सामना किया, लेकिन फिर भी वे निर्वाण तक पहुँचने में सक्षम हुईं। इन गाथाओं और कथाओं में स्त्रियों की आंतरिक यात्रा की कठिनाइयों को व्यक्त किया गया है, जो पुरुषों की तुलना में अधिक व्यक्तिगत संघर्षों और सामाजिक विरोध का सामना करती थीं। हालाँकि बौद्ध धर्म में स्त्रियों और पुरुषों के आध्यात्मिक अनुभवों में भिन्नताएँ थीं, फिर भी धर्म के सिद्धांतों में यह स्पष्ट था कि सभी जीवात्माएँ, चाहे वे स्त्री हों या पुरुष, निर्वाण की ओर बढ़ सकती हैं। बौद्ध धर्म ने बौद्धिक और आध्यात्मिक समानता की बात की थी, जिसमें स्त्रियों और पुरुषों को समान रूप से उद्धार और मोक्ष प्राप्ति के अधिकार दिए गए थे। इसके बावजूद, समाजिक और सांस्कृतिक कारक स्त्रियों के आध्यात्मिक अनुभवों में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे।

थेरी गाथाओं में स्त्रियों के आध्यात्मिक संघर्ष को विस्तार से चित्रित किया गया है। इन गाथाओं में स्त्रियाँ अपने जीवन के विभिन्न कठिन क्षणों, परिवारिक जिम्मेदारियों, और पारिवारिक दबावों से जूझते हुए आत्मज्ञान की ओर बढ़ने का प्रयास करती हैं। स्त्रियों के लिए आध्यात्मिक यात्रा में पुरुषों की तुलना में अधिक चुनौतीपूर्ण रास्ता था, क्योंकि उन्हें समाज द्वारा दिए गए अवरोधों का सामना करना पड़ता था। जैसे कि, पारंपरिक भारतीय समाज में महिलाओं को घर के कामों, मातृत्व और घरेलू जिम्मेदारियों में सीमित किया जाता था, जिससे उनकी साधना और ध्यान में कठिनाई आती थी। फिर भी, थेरी गाथाओं में कई स्त्रियाँ, जैसे उपपाली, महापजापति और सुत्तपत्ति, इन बाधाओं को पार कर बौद्ध धर्म की साधना में उत्कृष्टता प्राप्त करने में सफल

हुई। इन गाथाओं के माध्यम से यह संदेश मिलता है कि बौद्ध धर्म ने स्त्रियों को आध्यात्मिक उन्नति के समान अधिकार दिए, और वे पुरुषों के समान निर्वाण की ओर बढ़ सकती हैं, बशर्ते वे अपने आंतरिक संघर्षों को पार करें।

पुरुषों के आध्यात्मिक अनुभवों का मार्ग स्त्रियों की तुलना में अधिक सरल और सहायक था। बौद्ध धर्म में पुरुषों को भिक्षु बनने और ध्यान साधना के लिए किसी प्रकार की सामाजिक बाधाओं का सामना नहीं करना पड़ता था। वे ध्यान, तपस्या और उपदेश देने के कार्यों में पूर्ण रूप से समर्पित हो सकते थे, क्योंकि समाज में उनकी साधना को स्वीकृति और समर्थन प्राप्त था। सिद्धार्थ गौतम का उदाहरण इसका प्रमुख उदाहरण है, जिन्होंने अपनी आत्मिक यात्रा के दौरान ध्यान और साधना को सबसे महत्वपूर्ण समझा और निर्वाण की प्राप्ति की। बौद्ध धर्म में पुरुषों के लिए आध्यात्मिक उन्नति के रास्ते में कोई विशेष सामाजिक या पारिवारिक अवरोध नहीं था, जिससे वे अधिक स्वतंत्रता से अपनी साधना में लीन हो सकते थे। इस प्रकार, पुरुषों के लिए आध्यात्मिक मार्ग प्रायः सरल और बिना किसी बड़ी सामाजिक चुनौती के था।

बौद्ध धर्म का केंद्रीय सिद्धांत यह है कि सभी प्राणी, चाहे वे स्त्री हों या पुरुष, निर्वाण प्राप्त करने के योग्य हैं। बौद्ध धर्म ने आध्यात्मिक समानता को महत्व दिया, और यह सिद्धांत था कि आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए किसी भी बाहरी शारीरिक या सामाजिक भेदभाव का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। लेकिन जब हम वास्तविकता की बात करते हैं, तो हम पाते हैं कि समाजिक ढांचे और सांस्कृतिक पूर्वाग्रहों ने स्त्रियों के आध्यात्मिक अनुभव को अधिक चुनौतीपूर्ण बना दिया। पुरुषों के लिए रास्ता अपेक्षाकृत सरल था क्योंकि उन्हें सामाजिक स्वीकृति और अवसरों का अधिक समर्थन प्राप्त था। दूसरी ओर, स्त्रियाँ अपने आध्यात्मिक संघर्षों में अधिक समय और मेहनत से निर्वाण की ओर बढ़ने की प्रक्रिया में संलग्न थीं।

थेरी गाथाओं में स्त्रियों का आध्यात्मिक संघर्ष अक्सर सामाजिक और पारिवारिक बाधाओं से प्रारंभ होता है। प्राचीन भारतीय समाज में, महिलाओं को पारंपरिक रूप से घरेलू जिम्मेदारियों और परिवार की देखभाल की अपेक्षाएँ होती थीं, जिससे उनकी धार्मिक साधना में बाधाएँ उत्पन्न होती थीं। उदाहरण स्वरूप, उपपाली जैसी गाथा नायिकाएँ पारिवारिक दायित्वों से मुक्त होकर बौद्ध धर्म की शरण में आईं और अपने आध्यात्मिक मार्ग पर अग्रसर हुईं। इन गाथाओं में यह संघर्ष व्यक्त किया गया है कि कैसे महिलाएँ बाहरी दुनिया की अपेक्षाओं को पार करते हुए आंतरिक शांति और आत्मज्ञान की ओर बढ़ती हैं।

थेरी गाथाओं में यह भी दिखाया गया है कि महिलाओं को पुरुषों के समान ध्यान और साधना में समर्पण का अवसर नहीं मिल पाता था। उन्हें समाजिक पूर्वाग्रहों और रूढ़ियों का सामना करना पड़ता था, जैसे कि महिलाओं को धार्मिक शिक्षा लेने की अनुमति कम थी और उन्हें आधिकारिक रूप से भिक्षुणी बनने के लिए कई संघर्षों से गुजरना पड़ता था। फिर भी, इन गाथाओं में कई स्त्रियाँ, जैसे महापजापति और सुत्तपत्ति, ने इन सामाजिक सीमाओं को पार करते हुए आत्मज्ञान प्राप्ति की ओर बढ़ने का साहस दिखाया। उनके संघर्षों में दिखती है कि बौद्ध धर्म के माध्यम से स्त्रियाँ अपने मानसिक और आत्मिक समर्पण को पुनः स्थापित करने में सक्षम होती हैं।

थेरी गाथाओं का एक प्रमुख तत्व यह है कि स्त्रियाँ अपने संघर्षों को पार करते हुए निर्वाण की ओर अग्रसर होती हैं। उदाहरण के तौर पर, चूलानी और सुधम्मा जैसी गाथा नायिकाएँ अपने जीवन में आए व्यक्तिगत दुःख और संघर्षों को समझते हुए आत्मज्ञान की प्राप्ति की ओर बढ़ीं। इन गाथाओं में उनकी आध्यात्मिक यात्रा में आई कठिनाइयाँ, उनके मानसिक और आत्मिक समर्पण की झलक देती हैं। स्त्रियाँ अपने जीवन के विभिन्न पहलुओं को त्यागते हुए, आंतरिक शांति और निर्वाण की प्राप्ति के मार्ग पर दृढ़ता से अग्रसर होती हैं।

बौद्ध धर्म में पुरुषों के आध्यात्मिक अनुभवों का मार्ग प्रायः सरल और स्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया था। जब हम बौद्ध धर्म के प्रारंभिक काल का अध्ययन करते हैं, तो यह देखा जाता है कि पुरुषों के लिए आध्यात्मिक साधना के रास्ते में कम सामाजिक और पारिवारिक अवरोध थे। समाज में पुरुषों को धार्मिक गतिविधियों में भाग लेने, साधना करने, और ध्यान में गहरे उतरने के लिए अधिक स्वतंत्रता और स्वीकृति प्राप्त थी। इस लेख में हम पुरुषों के आध्यात्मिक अनुभव की सरलता और सहायक मार्ग का विश्लेषण करेंगे।

पुरुषों को बौद्ध धर्म में विशेष रूप से भिक्षु बनने की प्रक्रिया में कम सामाजिक विरोध का सामना करना पड़ता था। जब किसी पुरुष को भिक्षु बनने की इच्छा होती, तो उसे न केवल पारिवारिक स्वीकृति मिलती, बल्कि समाज भी उसे आधिकारिक रूप से स्वीकार करता था। वे अपनी साधना को बिना किसी अतिरिक्त जिम्मेदारी के ध्यान, तपस्या, और धर्म के अध्ययन में समर्पित कर सकते थे। सिद्धार्थ गौतम जैसे उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि बौद्ध धर्म में पुरुषों के लिए आत्मज्ञान की प्राप्ति का मार्ग सहज और सुव्यवस्थित था। गौतम बुद्ध ने अपने ध्यान और साधना के माध्यम से यह सिद्ध किया कि पुरुष अपने आध्यात्मिक अनुभवों को आसानी से बढ़ा सकते हैं यदि वे ध्यान और साधना के मार्ग पर चले।

पुरुषों को धार्मिक साधना में अधिक स्वतंत्रता और अवसर मिलते थे, जबकि महिलाओं को पारिवारिक जिम्मेदारियों, सामाजिक दबावों और सामाजिक पूर्वाग्रहों का सामना करना पड़ता था। उदाहरण के तौर पर, पुरुष भिक्षु अपने जीवन को केवल साधना और ध्यान में समर्पित कर सकते थे, क्योंकि समाज में उनके साधना को आदर्श माना जाता था। इस प्रकार, पुरुषों के लिए आध्यात्मिक मार्ग अपेक्षाकृत सरल और समर्थनयुक्त था। बौद्ध धर्म में पुरुषों को ध्यान, साधना, और उपदेश देने की अनुमति थी, जो उन्हें आध्यात्मिक उन्नति की दिशा में सहायक साबित होते थे।

पुरुषों के आध्यात्मिक अनुभव के सबसे महत्वपूर्ण पहलुओं में से एक था उनकी सरल और स्पष्ट साधना पद्धतियाँ। भिक्षु बनने के बाद, पुरुषों को ध्यान की प्रक्रिया, विपश्यना और समथ्था जैसे साधन बहुत आसानी से उपलब्ध थे। उनका जीवन साधना के लिए पूरी तरह से समर्पित होता था, और वे किसी भी बाहरी सामाजिक दायित्व से मुक्त होते थे। इस प्रकार, उनके लिए साधना का मार्ग सरल था, क्योंकि वे समाज के किसी भी दबाव से मुक्त होकर ध्यान और तपस्या में अपने समय का पूरी तरह से उपयोग कर सकते थे।

बौद्ध धर्म में पुरुषों के लिए निर्वाण की प्राप्ति का मार्ग अधिक स्पष्ट और सहज था। वे धार्मिक कर्तव्यों और तपस्या में आसानी से समर्पित हो सकते थे, क्योंकि उनका सामाजिक जीवन अपेक्षाकृत सरल और स्वतंत्र था। पुरुषों को आत्मज्ञान की दिशा में बढ़ने के लिए कम संघर्षों का सामना करना पड़ता था, और वे ध्यान के माध्यम से आत्मज्ञान की प्राप्ति की दिशा में स्थिरता से अग्रसर होते थे।

बौद्ध धर्म की मुख्य धारणा यह थी कि सभी प्राणी, चाहे वे स्त्री हों या पुरुष,

निर्वाण प्राप्ति के योग्य होते हैं। थेरी गाथाओं में स्त्रियाँ यह प्रमाणित करती हैं कि वे भी पुरुषों की तरह आत्मज्ञान प्राप्त कर सकती हैं। तिचा और सम्मा जैसे गाथा पात्र अपने अनुभवों को साझा करते हुए यह दिखाती हैं कि समाजिक चुनौतियाँ होते हुए भी आध्यात्मिक समानता की ओर बढ़ा जा सकता है।

निष्कर्ष

थेरी गाथाओं में स्त्रियों और पुरुषों के आध्यात्मिक अनुभवों का तुलनात्मक अध्ययन यह दिखाता है कि बौद्ध धर्म में पुरुष और स्त्री के लिए आध्यात्मिक समानता का सिद्धांत था, लेकिन वास्तविक जीवन में इस समानता को प्राप्त करना आसान नहीं था। पुरुषों के आध्यात्मिक अनुभव अक्सर समाज द्वारा स्वीकृत और समर्थन प्राप्त होते थे, जबकि स्त्रियों को अपनी आध्यात्मिक यात्रा में अतिरिक्त चुनौतियों का सामना करना पड़ता था। तथापि, थेरी गाथाओं में यह देखा गया कि स्त्रियाँ इन चुनौतियों को पार करते हुए अपने आध्यात्मिक उद्देश्यों की प्राप्ति में सफल हुईं। यह दिखाता है कि बौद्ध धर्म में स्त्री की आध्यात्मिक उन्नति की पूरी संभावना थी, और उनके अनुभवों ने समाज में स्त्री की स्थिति और उसकी आध्यात्मिक भूमिका को पुनः परिभाषित किया। इस प्रकार, बौद्ध धर्म न केवल आध्यात्मिक समानता का समर्थक था, बल्कि उसने स्त्री के आध्यात्मिक अधिकारों और अनुभवों को सम्मान देने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाए।

बौद्ध धर्म ने स्त्री और पुरुष दोनों को आध्यात्मिक रूप से समान अधिकार दिए, लेकिन उनकी यात्रा में भिन्नताएँ थीं। पुरुषों के लिए आध्यात्मिक साधना का मार्ग सरल और सहज था, जबकि स्त्रियों को सामाजिक और सांस्कृतिक बाधाओं का सामना करना पड़ता था। फिर भी, थेरी गाथाओं के माध्यम से यह सिद्ध होता है कि स्त्रियाँ भी आध्यात्मिक उन्नति के हर स्तर को प्राप्त कर सकती हैं, यदि उन्हें समान अवसर और स्वीकृति मिले। बौद्ध धर्म की यह विशेषता कि सभी प्राणी निर्वाण की प्राप्ति के योग्य होते हैं, इस धर्म के सबसे महान पहलुओं में से एक है, जो स्त्रियों और पुरुषों दोनों को समान रूप से आत्मज्ञान की दिशा में प्रेरित करता है।

इस शोध से यह भी स्पष्ट होता है कि बौद्ध धर्म में स्त्री और पुरुष दोनों के आध्यात्मिक अनुभवों को समान रूप से महत्वपूर्ण माना गया है, और यह दर्शाता है कि समाज के पूर्वाग्रहों और बाधाओं को पार करके स्त्रियाँ भी आध्यात्मिक उन्नति की दिशा में पूर्ण रूप से अग्रसर हो सकती हैं।

संदर्भ :-

1. भट्टाचार्य, सुमित्रा. बौद्ध धर्म और उसका समाजिक प्रभाव. दिल्ली: भारतीय साहित्य अकादमी, 2010.
2. कुमार, रामेश्वर. थेरी गाथाएँ: स्त्री और पुरुष के आध्यात्मिक अनुभव. वाराणसी: काशी हिंदू विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2012.
3. पारसनाथ, राजेन्द्र. बौद्ध धर्म और महिलाएँ. पटना: पटना विश्वविद्यालय प्रेस, 2015.
4. शर्मा, राजेंद्र. बौद्ध धर्म में स्त्रियों की स्थिति. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2011.
5. तिवारी, शंकर. बौद्ध साहित्य: विकास और प्रभाव. इलाहाबाद: विश्वनाथ प्रकाशन, 2008.
6. कृष्ण, महेश. स्त्रीवादी दृष्टिकोण से थेरी गाथाएँ: एक अध्ययन. बंगलौर: बंगलौर विश्वविद्यालय प्रेस, 2017.
7. गुप्ता, रामनाथ. बौद्ध धर्म और स्त्री मुक्ति. लखनऊ: लखनऊ विश्वविद्यालय प्रेस, 2014.
8. दीक्षित, विजय. थेरी गाथाओं में सामाजिक और धार्मिक संदर्भ. दिल्ली: हरियाणा विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2016.
9. चतुर्वेदी, हरिप्रसाद. बौद्ध धर्म और स्त्री का आध्यात्मिक अनुभव. भोपाल: मध्यप्रदेश साहित्य अकादमी, 2013.
10. सिंह, देवेंद्र. थेरी गाथाएँ और बौद्ध धर्म की शिक्षा. आगरा: आगरा विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2010.
11. वर्मा, सुधीर. बौद्ध धर्म में स्त्री के आध्यात्मिक संघर्ष का विश्लेषण. दिल्ली: ओम प्रकाशन, 2012.
12. नाथ, हरिवंश. अशोक सम्राट और बौद्ध धर्म: एक ऐतिहासिक अध्ययन. पटना: पटना प्रकाशन, 2011.
13. मिश्र, रामकृष्ण. बौद्ध धर्म का विकास और स्त्रियाँ. लखनऊ: प्रगति प्रकाशन, 2009.
14. सिद्धार्थ, भास्कर. बौद्ध धर्म में स्त्री और पुरुष की आध्यात्मिक यात्रा. दिल्ली: विक्रमशिला प्रकाशन, 2014.
15. शिवकुमार, प्रमिला. थेरी गाथाएँ: आध्यात्मिक और सामाजिक दृष्टिकोण. जयपुर: राजस्थान विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2015

*****

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानियों में आँचलिक जीवन की समस्याओं का परिदृश्य

-विष्णु,
दिल्ली विश्वविद्यालय,
मोबाइल न.9716991785
Email-vishutanwar90@gmail.com

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानियों में आंचलिकता का परिदृश्य देखते हुए वहाँ की समस्याएँ स्पष्ट देखी जा सकती है। जो उसके पूरे परिवेश, परिदृश्य को उजागर करती है। सन् 1950 के बाद देश में जिस नए वातावरण की सृष्टि हुई वह अपने में राजनीतिक, आर्थिक, समाजिक और सांस्कृतिक अनेक पक्षों को समेटे हुए था। एक ओर समान देशवासी नई आशाओं और उत्साहों के स्वप्न संजो रहे थे तो दूसरी ओर नई परिस्थितियों का सामना होने पर सहसा बदले हुए संदर्भ में अपने को पाकर अटपटे मन का अनुभव कर रहे थे। इस प्रकार एक नए संदर्भ में घटनाओं, तथ्यों मानवीय स्थितियों, कुल–मिलाकर एक नए सामाजिक यथार्थ की विविध परिस्थितियों के प्रति भिन्न–भिन्न प्रतिक्रिया देखने को मिलती है। यहाँ तक की युगीन परिस्थितियों के दवाब के अनेक रचनाकारों को एक कोष्ठक में रखते हुए कहानी के समीक्षकों और विचारकों ने नई कहानी आंदोलन के भीतर सन् 1950 के बाद के संपूर्ण रचना संदर्भ को समेटने का प्रयास किया। चूंकि नई कहानी परिवेश को पाने की एक प्रक्रिया है। और हर कथाकार ने इस प्रक्रिया को अपने ढंग से ग्रहण किया है। इसलिए उसकी विविधता और अलगपने ने बहुत लोगों को संकट में डाल दिया है और वे उसकी निश्चित परिभाषा नहीं कर पाते। हर कहानी का कथन और उसके निर्वाह का ढंग तो अलग है ही परिवेश भी इतना विस्तृत है कि बहुतों की निगाह धुंधला जाती है।

स्वतंत्रता के बाद देश में बदली हुई परिस्थितियाँ सर्वथा नए परिवेश को जन्म देने वाली कही जा सकती हैं। इस परिवेश में बहुत कुछ नया है जो कि स्वतंत्रता पूर्व की परिस्थितियों में विद्यमान न था। एक नितांत नए रूप में देश और समाज की चेतना जन्म ले रही थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद का मूल्यांकन करना सहज नहीं है क्योंकि इन अनेक वर्षों में देश को अनेक समास्याओं का सामना करना पड़ा है। दासता से मुक्ति के पश्चात् राष्ट्र सुखी बनने की कल्पना को साकार करने में लगा। वर्गहीन समाज की स्थापना, पुराने संस्कारों, रूढ़ियों, सामाजिक कुरीतियों को दूर कर देश के नव निर्माण की भावना का लोगों में संचार हुआ। स्वतंत्रता के बाद का राष्ट्रीय जीवन विभिन्न लक्ष्यों के विल. ीनीकर, जमींदारी प्रथा का अंत, अस्पृश्यता निवारण वित्त भूमि सुधार, सहकारी खेती, दहेज विरोधी बिल, तटस्थता, पंचशील आदि से उत्पन्न हुए विभिन्न दंगों और उससे उत्पन्न समस्याओं, वर्गगत संघर्ष, राजनीतिक आंदोलनों, विरोधी विचारों के टकराव आदि का जीवन है।

स्वतंत्रता के बाद की विभिन्न परिस्थितियाँ दिखाई देती है जिसे हम हिन्दी की आंचलिक कहानियों में स्पष्टतः देख सकते हैं। हिन्दी की आंचलिक कहानी एक तरह से स्व. तंत्र्योत्तर भारत के समाज की अनेक मुखी समस्याओं को उठाने वाली कहानी कही जाती है। स्वाधीनता के लम्बें संघ ार्ष के बाद जो एक नया राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक संदर्भ उभर कर सामने आया कहीं न कहीं समस्याओं के बीज उन्हीं की तलहटी में विद्यमान थे। तथा जिसने जीवन पर प्रभाव डाला। इन प्रभावों को विभिन्न स्थितियों द्वारा हिन्दी की आंचलिक कहानियों में देखा जा सकता है। जैसे देश की राजनीतिक स्थिति में स्वतंत्रता के बाद सहसा परिवर्तन हुआ। शासक और शासित के बीच की दूरी अब वैसी नहीं रही थी जैसे कि पराधीनता के दिनों में अंग्रेजों व भारतीयों के बीच अथवा देशी रजवाड़ों और साध ारण प्रजा के बीच थी। धीरे–धीरे राजनीति के क्षेत्र में आये कलुषित वातावरण में अंचलों पर अपना प्रभाव डाला। अंग्र. ेजों के द्वारा जनता के ऊपर जो अत्याचार व दुराचार किये जा रहे थे। स्वतंत्रता के बाद अंचलों के मुखिया, जमींदारों ने उस परिपाटी को बचाये रखा। यह सच है कि हरिजनों, अनुसूचित जातियों व पिछड़ी जातियों को संविधान में पूरे अधिकार दिये गये किन्तु राजनीतिक सत्ता समाज के गिने चुने लोगों के हाथ में रही। 'संकटग्रस्त' कहानी का मु

खया घूसखोर है। अतः 'कहानी में दिखाया गया है कि उसकी काली करतूतों से पूरा गाँव परिचित है। सर्वे के समय होने वाले झगड़ों का उसने पूरा लाभ उठाया। यद्यपि गाँव वाले उसे मुखिया पद से हटाना चाहते हैं किंतु तीसरी बार भी वह निर्विरोध चुन लिया गया।'[1] ना चाहते हुए भी यहाँ यह समस्या उत्पन्न हो जाती है कि मनुष्य को स्व. तंत्रता के बाद भी अपने ही देश में गुलामी भरी जिन्दगी जीनी पड़ती है। गांवों और कस्बों में नयी राजनीतिक हलचलों का प्रभाव नवचेतना के रूप में जनमानस के भीतर दिखाई दिया। अंचलों को भोली भाली जनता भी राजनीति के दाव पेंच समझने लगी जिससे गांवों की शान्तिप्रिय, सरल जनता में भी अधिकारों के प्रति जागरूकता उत्पन्न हुई। सर्वे के समय येनकेन प्रकारेन जमीन हासिल करना अंचलवासियों का लक्ष्य बन गया। यद्यपि अधिकारों के प्रति जागृति अपने आप में समस्या नहीं कही जा सकती परन्तु आंचलिक परिप्रे क्ष्य में जब हम इसका मूल्यांकन करते हैं तो अंचलों को अपनी सादगी, ईमानदारी से दूर होता हुआ पाते हैं 'लाल पान की बेगम' कहानी में 'कोयरा टोले के बिरजू का पिता जमींदार की धमकियाँ सहकर भी अपने अधिकार को ध्यान में रखते हुए जमीन प्राप्त करने में सफल हो जाता है।'[2]

स्वातंत्र्योत्तर आंचलिक कहानी में भारत में उत्पन्न राजनीतिक, आशावादी उत्साह और आदर्शवादी स्वप्नों की छवि अपनी रचनाओं में व्यक्त करती है तथा राजनीति में आये हुए अवसरवादी के कराहती है, शोषित जनता के दुःखों और कष्टों को ये रचनाएँ बड़े सशक्त रूप से उभारती है। इसी प्रकार सामाजिक परिदृश्य में आंचलिकता को देखें तो वहां की प्रमुख समस्या वर्ग संघर्ष की समस्या है। समाज जिस प्रकार अनेक वर्गों में बंटा हुआ था स्वाधीनता के इतने वर्षों बाद भी समाज में वर्ग भेद उसी रूप में है।[3]

शोषक और शोषित का स्वाधीनता पूर्व अंग्रेजों के समय से चला आ रहा रूप परिवर्तित नहीं हुआ। समाज में शोषण का शिकार हो रहे लोग शोषक के चंगुल से अपने को मुक्त कराने में असमर्थ हैं। 'उच्चाटन' कहानी में रामविलास शोषक मिसर के चंगुल से हटकर रुपया कमाने शहर चला गया था किन्तु अपनी बिगड़ी हुई सामाजिक स्थिति के कारण पुनः मिसर के शोषण जाल में बंध गया।[4] इसी तरह वर्ण व्यवस्था का रूप स्वतंत्रता के बाद देखें तो कह सकते हैं कि स्वतंत्र देश में यद्यपि जाति के बंधंनों पर नया प्रभाव दिखता है, किंतु अंचल अपने उसी पारम्परिक रूप में जाति प्रथा और वर्ण–व्यवस्था में जकड़े हुए है। समाज में शूद्रों की स्थिति पशु के समान है। उच्च वर्ण को छूना भी उसके लिये पाप है। उदा तभी तो एक दिन खेत जोतने से निबटकर किसनराम संचाल के किनारे कपड़े धो रहा था। लंगोटी पहन कर कपड़े धोने डाल रखे थे यजमानी से लौटते हुए पाण्डेयजी आये थे, तो उनकी नदी पार समय पानी से अलग हट गया था कि उसके पावों का छुआ उन्हें न लगे।[5] अतः देखा जा सकता है कि इस कहानी में स्व. तंत्रता के बाद भी आंचलिकता के अंदर–भेद–भाव उत्पन्न है। जिसे समाज में आज अलग माना जाता है, परन्तु फिर भी एक आंचलिक क्षेत्र में यह स्थिति आज भी बनी हुई है। इसी भेद–भाव को स्वतंत्रता के बदलते हुए परिवेश के साथ बदलना होगा। 'डोम' समाज का सबसे पिछड़ा वर्ग है। समाज में उनके लिए अभी भी निकृष्ट कार्य ही सुरक्षित है। अपनी स्थिति को स्वाधीन देश में भी वर्ण व्यवस्था के कड़े बंधनों के कारण डोम अभी तक सुधार नहीं पाये हैं। इन्हीं भी इंतजार है।[6]

समाज में इसी प्रकार भेद–भाव, जातिवाद को देखा गया है, जिसे आज के स्वतंत्र देश में मिटाया जा रहा है, जिससे हर जाति, हर हरिजन व्यक्ति सामने आए अपने अस्तित्व के लिए आवाज उठाए वे भी आज स्वातंत्र्योत्तर जीवन में पूर्ण रूप से अपने लिए, अपने हक के लिए हर व्यक्ति को आवाज उठाने के लिए जाग्रत किया जाता है। आंचललिक जीवन के भीतर समस्याओं का स्वरूप एक नयी लहर से आन्दोलित हो रही है। सामाजिक जड़ता, बन्धन, रूढ़ियां और शोषण के दायरे क्रमशः टूट रहे हैं। आंचलिक कहानी के रचनाकारों ने भी दूरवर्ती अंचलों में झांककर वहां के जनजीवन के भीतर घटित होने वाले नये व्यापारों की ओर पाठकों का ध्यान तीव्रता से आकर्षित किया है। जिससे भारतीय समाज और विशेष रूप से उसके दूरवर्ती अंचल तीव्रघात–प्रतिघातों में आन्दोलित होकर नये भविष्य की सामाजिक संरचना की बाट जोह रहे है। निश्चय ही उस आगामी कल में समस्याओं का यह स्वरूप बहुत जल्द ही समाप्त हो कर रहेगा।

सामाजिक ढांचे को बदलते हुए देखते हैं तो जाहिर सी बात

है कि उन समस्याओं के साथ उसकी झलक पारिवारिक सम्बन्धों पर भी पड़ती है। देश की स्वाधीनता के पश्चात् देश की राजनीति में परिवर्तन आया फलस्वरूप समाज और उसकी इकाई परिवार में नई जागरूकता अनुरूप अनेक पुरानी मान्याताओं, परम्पराओं और बाहरी बुनावटों में परिवत. र्नों की बाढ़ दिखाई दी। जिससे पारिवारिक समस्याएँ सामने आई। पारिवारिक मूल्य, संदर्भ, आदर्श और मापदण्ड नए संदर्भों में अपने को समायोजित न करपाने के कारण विभिन्न समस्याओं को जन्म देने लगे। इस नवीन परिवर्तन का सबसे अधिक प्रभाव संयुक्त परिवार संस्था पर पड़ा। संयुक्त परिवार का संस्था छोटी–छोटी पारिवारिक इकाईयों ने ले लिया। गांवों के संयुक्त परिवारों से उठकर जो दम्पत्ति शहरों में बसे उनका पारिवारिक ढांचा संयुक्त परिवारों जैसा न रहा बल्कि बहुसंख्यक सदस्यों की भीड़ और माहौल से अलग छोटी इकाईयाँ विकसित हुइ। स्वतंत्रता के बाद वि. भन्न परिस्थितियों के दबाव में आकर यद्यपि परिवार के बाहरी ढांचे में परिवर्तन आया। अतः आंचलिक कहानी का सम्बन्ध स्वतंत्रता के बाद की कहानी अर्थात् नई कहानी से है। नई कहानी ने अपने जिन सामाजिक संदर्भों को परिवेश के साथ अभिव्यक्त किया है, उनमें पारिवारिक सम्बन्ध प्रमुख हैं, पुराने कथाकारों में परिवारों के प्रति गहरी आस्था एवं आदर्शवादी भावना थी और वे सम्बन्धों के शाश्वत रूप को लेकर कहानियों की रचना किया करते थे। उन कथा–पात्रों में हिन्दू संस्कारों का गहरा प्रभाव था तथा वे उन्हीं प्रतिनिधि ा रूप से हमारे सामने आते थे इसका अभिप्राय यह है कि पारिवारिक संबंधों के प्रति एक निश्चित दृष्टिकोण था।[7] बदलते हुए संदर्भों में संयुक्त परिवार का टूटना अपने आप में ऐसी समस्या थी जिसने अनेक नई–नई समस्याओं को उत्पन्न किया। परिवार में स्वार्थ भावना संयुक्त परिवारों में टूटने का परिणाम है। इस विघटन की स्थिति में पारिवारिक एकता को विखण्डित कर दिया। जो परिवार नौकरी की खोज में परिवारों से दूर चले गये उनमें दूरियां केवल बाहरी स्तर प्र ही नहीं भावनात्मक स्तर पर भी दि खने लगी। परिवार से सम्बन्ध जोड़ने वाला 'हिमदंश' कहानी का नायक पहाड़ पर अपने चाचा–चाची को मिलने के आकर्षण से नहीं, पर्वतों से प्रेम होने के कारण जाता है और कोई नहीं यानी उसके पापा, मम्मी, बड़े भाई, जहां पहले संयुक्त परिवार प्रथा के अन्तर्गत बुजुर्गों का सम्मान या उनकी आज्ञा पूरे परिवार के लिए मान्य थी लेकिन नये परिवार में बुजुर्गों के प्रति दृष्टिकोण बदल गया।[8] 'दादी मां' कहानी में दादा की मृत्यु के उपरान्त दादी की सलाह पर कोई भी ध्यान नहीं देता। उसके मना करने पर भी खूब खर्च किया जाता है। पति, पत्नी और बच्चों के प्रति ही अप. ने कर्त्तव्य को पूरा करना परिवार के प्रति कर्त्तव्य पूरा करने की इतिश्री समझ लेता है। परिवार में आये इस परिवर्तन से बुर्जुज पीढ़ी क्षुब्ध है।[9] इस प्रकार स्वतंत्रता के बाद राजनीतिक, सामाजिक, पारिवारिक स्थितियों में आंचलिकता को देखते हुए कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता हमें अपने और अपने परिवार की स्थिति को बेहतर बनाने के लिए मिली है, कहीं–कहीं इसके नकारात्मक प्रभाव दिखाई देते हैं। जिन्हें युवा पीढ़ी को समझना चाहिए। बड़े–बुर्जुग की .....तो जिन्दगी सरल और आसान है। इस प्रकार कह सकते हैं आंचलिक कहानियों में जहां एक ओर कहानीकार ने परिवार में स्थित विभिन्न समस्याओं की ओर हमारा ध्यान केंद्रित किया है वहीं पारिवारिक एकता मेल–जोल, त्याग और आदर्शों को भी आंखो से ओझल नहीं होने दिया। यह सच है कि विभिन्न परिवर्तनों का प्रभाव....तक पहुंचा है किन्तु अनेक कहानियों में पारिवारिक चित्रण स्पष्ट दिखाई देता है। उदा–परिवार में माता–पिता का पुज–प्रतियों के प्रति प्रेम भाव है तो बच्चों का भी माता–पिता से उसी प्रकार प्रेम है। देवा अपनी परित्यकता मां को अत्यधिक प्रेम करता है। गुलाबो अपनी बूढ़ी मां को अपने साथ रखना चाहती है किंतु पति के मना करने पर वह बेसहारा मां के लिए पति को त्याग देती है।[10]

अतः स्वतंत्रता के बाद बदलते परिवेश में जहां हर जगह एक नयी सोच, नयी उम्मीद दिखाई देती है वहीं परिवार के लिए भी नई दृष्टि उजागर होती दिखाई देती है। स्वतंत्रता के बाद विभिन्न परिस्थितियों में अनेक स्थितियों सामने आती दिखाई दी वहीं आर्थिक स्थिति भी दिखाई देती है। आंचलिक कथाकारों ने अंचलों की आर्थिक स्थिति में कष्ट भोगते हुए व्यक्तियों का चित्रण किया है, तो साथ ही उन समस्याओं से कहानी के माध्यम से दिखाया है। उदाहरण–सामन्ती समाज व्यवस्था ने गाँवों के शोषण का जो जाल बिछा रखा था वह आजादी के बाद भी सिमटा नहीं। ग्रामीणों की आर्थिक दुर्दशा की समस्या को बढ़ाने में

शोषकों ने पूरा साथ दिया। कहीं शोषक नेताओं के रूप में सामने आते हैं कहीं समाज के धनी वर्ग के रूप में आते है और कहीं जमींदार के रूप में। अंचलों में निम्न वर्ग की आर्थिक स्थिति इतनी अधिक बिगड़ी कि उसके लिए वह सम्पन्न वर्ग पर निर्भर रहता है। रामविलास मिसर के कहने पर क्रोधित हो पटना पैसा कमाने अवश्य भाग गया था किन्तु मिसर के बीच–बीच में करजा प्राप्त होता है। उस चंगुल से वह किसी भी प्रकार छूटने में असमर्थ है इसलिए पुनः गांव में ही रहने का विचार कर लेता है।[11]

आर्थिक स्थिति की समस्या को आंचलिक कहानी में देखने से पता चलता है कि अचंल का जीवन अनेक प्रकार की आर्थिक समस्याओं से घिरा हुआ है लेकिन कुछ कहानी के पात्र अनेकों उपायों से अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारने में तल्लीन दिखाई देते हैं। देश में आये नये परिवर्तनों की छाप उन पर स्पष्ट दिखाई देती है। अंचलों में भले ही आर्थिक गति धीमी रही परन्तु आर्थिक स्तर को उन्नत करने में नागरिक आगे की ओर बढ़ रहे हैं। हिन्दी का आंचलिक कहानीकार लोक–जीवन के विभिन्न संदर्भों को अपनी रचनाओं में उभरकर विभिन्न स्तर पर उसे अंकित करता है। ताकि समाज में हर परिस्थिति को कहानियों के माध्यम से या किसी भी विधा के माध्यम से सामने लाया जा सके। और समाज को मनुष्य को स्वतंत्रता के बाद स्वतंत्र रूप से जीने की अभिलाषा जागे, ना कि स्वतंत्रता के बाद भी सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक परिवेशों में गरीब तबके के लोग, दवा–कुचला वर्ग, दबकर रहे। इसी लिए किसी भी विधा का यही प्रयास रहता है कि वह किसी भी माध्यम से स्वतंत्र जीवन के लिए अपने विकास के लिए मनुष्य को जागृत करना। आंचलिक परिवेश में भी यही स्थिति आगे की ओर बढ़ती जा रही है।

1.संकट ग्रस्त–मधुकर गंगाधर
2.फनीश्वरनाथ रेणु, प्रिय कहानियाँ, पृ. सं.–52
3.उच्चाटन–रेणु आदिम रात्रि की महक, पृ. सं.–102
4.उच्चाटन–रेणु आदिम रात्रि की महक, पृ. सं.–102
5.प्रेम मुक्ति–शैलेष भटियानी, पृ. सं.–368
6.शिव प्रसाद–इन्हें भी इंतजार है
7.नयी कहानी उपलब्धि और सीमाएं–गोरधन सिंह शेबावट, पृ.सं. 110
8.पंद्रह जमा पच्चीस–पंकज विष्ट, पृ. सं.–45,50
9.दादी मां, शिव प्रसाद सिंह, आर–पार की माला, पृ. सं.–46
10.देवी की मां–कमलेश्वर
11.फनीश्वर नाथ रेणु–उच्चाटन
12.हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर विचारात्मक ग्रंथ–डॉ. स्टिटर क्लेमेंट मेरी
13.कहानी स्वरूप और संवेदना–राजेन्द्र यादव
14.आंचलिक हिन्दी कहानी–डॉ. चन्द्रशेखर कर्ण
15.स्वातंत्र्योत्तर आंचलिक हिन्दी कहानी–निरूपमा भट्ट

*****

थेरवाद बौद्ध धर्म: एक अनुशीलन

-वैभव कुमार तिवारी
दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
vaibhav.hinduite@gmail.com
+917903158755

अनेक देशों में ईसा पूर्व छठी सदी आध्यात्मिक असंतोष और बौद्धिक खलबली के लिए प्रसिद्ध है। चीन में लाओ-त्से और कन्फ्यूशियस हुए, यूनान में परमेनाइडीस और एपेडोकल्स, ईरान में जरथुस्त्र तथा भारत में महावीर और बुद्ध। इसी समय में कई विख्यात आचार्य हुए, जिन्होंने अपनी सांस्कृतिक धरोहर पर चिंतन किया तथा नए दृष्टिकोण विकसित किए। बुद्ध ने किसी नए और स्वतंत्र धर्म की शुरुआत नहीं की, बल्कि यह प्राचीन हिन्दू धर्म के विश्वास की ही एक शाखा थी, शायद एक विद्रेष या विधर्म। बुद्ध ने कुछ प्रथाओं का विरोध किया, जो उस समय प्रचलित थीं। उनका मुख्य उद्देश्य धार्मिक प्रथाओं में सुधार लाना और बुनियादी सिद्धांतों की ओर लौटना था, जो एक नए प्रकार के स्वतंत्र व्यक्तित्व का विकास है, जो सभी पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर अपने स्वयं के प्रकाश " अप्पो दीपो भव" के रूप में अपना भविष्य बनाने का इरादा रखता है। उनका मानवतावाद सभी नस्लीय और राष्ट्रीय बाधाओं को पार कर पूरी दुनिया में फैल गया। राजनीतिक विभाजनों के बावजूद दुनिया एक है, चाहे हम इसे पसंद करें या नहीं। हर किसी की किस्मत दूसरों से जुड़ी होती है, लेकिन हम आत्मा की थकावट, व्यक्तिगत और सामूहिक अहंकार की वृद्धि से पीड़ित हैं जो विश्व समाज के आदर्श की प्राप्ति बहुत कठिन बना देता है। यदि हम शांति प्राप्त करना चाहते हैं, तो हमें उस आंतरिक सद्भाव को बनाए रखना होगा, जो शांति का आवश्यक आधार है। बुद्ध का संदेश उस महान आध्यात्मिक आंदोलन का आधार था, जिसने मानवता को अधिक से अधिक आध्यात्मिक आंदोलन का नेतृत्व और उसकी मुक्ति के लिए, अर्थात् असत्य और अज्ञान से सत्य की ओर अग्रसर होने के लिए प्रेरित किया । जब बौद्ध धर्म भारत के बाहर (दक्षिण-पूर्व एशिया, तिब्बत, चीन, जापान और दुनिया के अन्य देशों में) फैला तो प्रत्येक स्थान पर बौद्ध धर्म के कुछ पहलुओं पर जोर दिया गया, लोगों ने अलग-अलग तरीकों से इसकी व्याख्या और अभ्यास करना शुरू कर दिया। ऐसा इसलिए था क्योंकि विभिन्न संस्कृतियों की अलग-अलग ज़रूरतें थीं। उदाहरण के लिए भारतीय बौद्ध धर्म की तुलना चीनी और जापानी बौद्ध धर्म से करने पर यह मालूम होता है कि जलवायु और भूगोल में अंतर धार्मिक प्रथाओं को प्रभावित करते हैं और व्यवहार में उन अनुकूलन के कारण सिद्धांत में बदलाव आते हैं। इसके विपरीत, श्रीलंका, म्यांमार, थाईलैंड (जहां थेरवाद बौद्ध धर्म प्रचलित है) जैसे देश पूर्वी एशियाई बौद्ध धर्म की तुलना में भारतीय बौद्ध धर्म के अधिक करीब हैं। विभिन्न प्रकार की व्याख्याओं के लिए यह सहनशीलता व्यक्ति के ज्ञानोदय के महत्व और सिद्धांत पर चिंतन और व्याख्या करने पर जोर देते हैं, सैद्धांतिक मतभेदों के प्रति यह सहिष्णुता बौद्ध धर्म की सबसे अच्छी विशेषताओं में से एक है।

प्रथम शताब्दी ई. में महायान बौद्ध धर्म नए समय की मांग का जवाब देने के लिए सामने आया। इसमें प्रारंभिक बौद्ध धर्म में नहीं पाए जाने वाले कई जादुई तत्व शामिल थे। इन नवाचारों के बावजूद, बुद्ध की शिक्षा की मूल भावना वास्तव में खोई नहीं थी। जादुई तत्व ने महायान बौद्ध धर्म में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, शायद इसलिए क्योंकि वे आम लोगों की धार्मिक ज़रूरतों की प्रतिक्रियाएँ थीं। सदियों से ये जादुई सूत्र महायान बौद्ध धर्म में तेजी से महत्वपूर्ण भूमिका निभाने लगे। वर्तमान समय में विश्व के पश्चिमी देशों में बौद्ध धर्म अधिक लोकप्रिय हो रहा है। हालाँकि, विस्मृति की लंबी अवधि के बावजूद, बुद्ध का उच्च व्यक्तित्व लोगों के मन में इतनी दृढ़ता से छाया रहा कि उन्हें लोगों द्वारा भगवान विष्णु के अवतार के रूप में स्वीकार करना पड़ा और आज भी अधिकांश हिस्सों में हिंदू पुजारी अपनी दैनिक पूजा में उनका पाठ करते हैं , "बुद्ध के अवतार" के इस युग में मैं यह आहुति देता हूं। पूरे देश में ऐसे लोगों का एक छोटा समूह है जिनकी पूजा में बौद्ध ध्यान शामिल है। उदाहरण के लिए, संयुक्त प्रांत में तराई क्षेत्र के थारू, बंगाल और उड़ीसा के धर्म उपासक और दक्षिणी भारत में मालाबार के अय्यप्पन पंथ निस्संदेह भारत के पुराने बौद्धों के अवशेष हैं। कश्मीर, असम और चटगांव में अभी भी लोगों के छोटे समूह हैं जिन्होंने बौद्ध के रूप में अपनी पहचान नहीं खोई है।

बुद्ध के महापरिनिर्वान के अठारहवीं से चौबीसवीं शताब्दी के मध्य (तेरहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी ई.) तक भारत में बौद्ध धर्म का वास्तव में कठिन समय रहा। भारत में बौद्ध पुनरुत्थान की किरणों की पहली झलक पश्चिमी पुरातत्वविदों और इतिहासकारों के उत्साही प्रयासों से मिली, जिन्होंने इस खोई हुई संस्कृति को प्रकाश में लाने में बहुत योगदान दिया। 1857 के भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के नायक, बाबू अमर सिंह, ने भिक्षु के रूप में प्रशिक्षण के लिए सीलोन और ध्यान की विधियों की शिक्षा के लिए बर्मा गए और फिर एक मठ की स्थापना के लिए कुशीनारा लौटकर देश में संघ परंपरा के पुनरुद्धार की शुरुआत की। कुशीनारा के इस मठ ने भारत में आधुनिक बौद्ध आंदोलन के केंद्र का गठन किया है, बौद्ध केंद्र अब नालंदा में मौजूद हैं, जहां सरकार द्वारा विश्वविद्यालय को पुनर्जीवित किया गया है। अर्हत महिंदा द्वारा पालि त्रिपिटक को सीलोन ले जाने के इक्कीस शताब्दियों के बाद, सीलोन के बौद्धों ने पाली त्रिपिटक की प्रतियों को भारत की लिपि और भाषा में पुनर्स्थापित करने के लिए वापस नालंदा भेजा। लगभग एक शताब्दी पहले भारत में सीलोन बौद्ध मिशन ने महाबोधि सोसाइटी की स्थापना की, जिसके कलकत्ता, सारनाथ और बौद्धगय एवं भारत के अन्य महत्वपूर्ण स्थानों में संगठन हैं। यह सोसायटी मुख्य रूप से भारत में तीर्थ स्थानों की सुरक्षा, तीर्थयात्रियों की सहायता और भारतीय पाठकों के लाभ के लिए पुस्तकें प्रकाशित करने से संबंधित रही है। सीलोनी, चीनी, बर्मी, तिब्बती और जापानी बौद्धों ने भारत आने पर अपने लोगों के सहायता के लिए विभिन्न तीर्थस्थलों पर तीर्थयात्रियों के लिए विश्राम गृह बनाए हैं।

मौर्य सम्राट अशोक ने अर्हत मोग्गलिपुत्त तिस्स (तीसरी बौद्ध परिषद् के अध्यक्ष) के निर्देश पर महान धम्म का प्रचार के निमित अनेक देशों में सक्षम और बुद्धिमान लोगों को भेजा जिससे " बहुजनों का कल्याण हो", जैसा कि बुद्ध ने अपने जीवनकाल में आग्रह किया था। निस्संदेह यह ऐसा अभूतपूर्व कार्य है, जिसने भारत को एक गौरवशाली संस्कृति का केंद्र बना दिया है, जो विश्व के अधिकांश पूर्वी हिस्से में फैल गई | कंबोडिया में अंकोर नाम की एक जगह है जहां कई साल पहले खूबसूरत बौद्ध इमारतें बनाई गई थीं। लाओस का इतिहास कंबोडिया के समान है, सीलोन में पुनर्जीवित होने के बाद बौद्ध धर्म मुख्य धर्म बन गया। कंबोडिया की मदद से वियतनाम ने भी थेरवाद बौद्ध धर्म का पालन करना शुरू कर दिया। महावंश (सीलोनीज़ ग्रेट क्रॉनिकल) और सासनवंश (बर्मीज़ क्रॉनिकल ऑफ़ द डिस्पेंसेशन ऑफ़ बुद्धा) के अनुसार, महान बौद्ध सम्राट ने बौद्ध धर्म की शिक्षाओं का प्रसार करने के लिए कई अलग-अलग स्थानों पर दूत भेजे। ये दूत भारत, अफगानिस्तान, मध्य एशिया, सीरिया, मिस्र, नेपाल, तिब्बत, बर्मा, सीलोन और दक्षिणी भारत जैसे स्थानों पर गए। वे बौद्ध धर्म की शांति और ज्ञान को उन लोगों के साथ साझा करना चाहते थे जो अभी तक इसके बारे में नहीं जानते थे। थाईलैंड के राजाओं को बौद्ध धर्म की शिक्षाएँ पसंद थीं और वे मार्गदर्शन के लिए सीलोन की ओर देखते थे। वे धम्म की शुद्ध शिक्षाओं का पालन करना चाहते थे। थाईलैंड के प्रभाव से बौद्ध धर्म कंबोडिया और लाओस में भी फैल गया। जब इन देशों में शासकों के पास अभी भी कुछ हिंदू परंपराएँ थीं, तब भी उन्होंने बौद्ध धर्म का समर्थन किया और भिक्षुओं की मदद की। मलाया, सुमात्रा, जावा, बाली और बोर्नियो क्षेत्र में भारतीय उपनिवेश थे जिनका भारत से संबंध था। इससे वहां बौद्ध धर्म का प्रसार आसान हो गया। थेरवाद और महायान बौद्ध धर्म दोनों प्रचलित थे, कभी-कभी बौद्ध शासकों द्वारा समर्थित और कभी-कभी हिंदू शासकों द्वारा दबा दिया जाता था। परंपरागत रूप से, थाईलैंड में बौद्ध धर्म के आगमन का श्रेय अशोक द्वारा भेजे गए दो प्रसिद्ध धर्म दूतों (अशोकन मिशनरियों) सोण और उत्तर को दिया जाता है, जिनके बारे में कहा जाता है कि वे बौद्ध धर्म को बर्मा में लाए थे। थाईलैंड के लोग इस नए धर्म के प्रति खुले थे क्योंकि उनके बर्मा के लोगों से संबंध थे जो पहले से ही बौद्ध धर्म का पालन करते थे। भारत और कंबोडिया जैसे स्थानों से अन्य दूत भी अपनी मान्यताओं को साझा करने के लिए थाईलैंड आए। प्रसिद्ध बौद्ध शिक्षकों से सीखने के लिए चीनी लोगों ने जावा और मलाया की यात्रा की। बोरोबुदुर मंदिर बौद्ध कला का एक सुंदर उदाहरण है और दिखाता है कि वहां बौद्ध धर्म कितना महत्वपूर्ण हुआ करता था। बौद्ध धर्म कई शताब्दियों में सारनाथ के पश्चिम में मृग्दायवन से लेकर ईरान, गोबी रेगिस्तान, जापान और पूरे दक्षिण पूर्व एशिया से लेकर बोर्नियो और जावा तक फैला हुआ है। कुछ प्राचीन खंडहर अभी भी बामियान और मध्य एशिया, बर्मा में पेगन, कंबोडिया में अंगकोर वाट और इंडोनेशिया में बोरोबुदुर जैसे स्थानों में मौजूद हैं। प्रारंभिक थाई राजा बुतपरस्त की थेरवाद संस्कृति से प्रभावित हुए और मार्गदर्शन के लिए शुद्ध धम्म की सीट के रूप में सीलोन की ओर रुख किया। उनका प्रभाव कंबोडिया और लाओस तक फैला हुआ है | थाईलैंड में सभी राजवंशीय परिवर्तनों के दौरान, थेरवाद बौद्ध धर्म का पालन मजबूत बना रहा, जैसा कि आज भी है। वे क्षेत्र जिनमें अब कंबोडिया, लोज़ोस और वियतनाम शामिल हैं, साथ ही मलाया, सुमात्रा, जावा, बोर्नियो और बाली के आगे के क्षेत्र एक समय में भारतीयों द्वारा इतने पूर्ण रूप से उपनिवेशित थे कि उन्हें आमतौर पर "दूर भारत क्षेत्र"

के रूप में जाना जाता था। बुद्ध के बाद लगभग अठारहवीं शताब्दी (तेरहवीं शताब्दी ई.) तक इन क्षेत्रों में हिंदू प्रभाव प्रबल था। पोलोनहरुवा काल (ग्यारहवीं शताब्दी ईस्वी) में सीलोन में थेरवाद के पुनर्जागरण ने ऐसी धाराएँ प्रवाहित कीं, जो एक के बाद एक लहरों के रूप में बर्मा, थाईलैंड, कंबोडिया और लाओस के सुदूर तटों तक आईं। दो शताब्दियों के भीतर, ये सभी देश थेरवाद बौद्ध धर्म के कट्टर अनुयायी बन गए और आज तक वैसे ही बने हुए हैं। सीलोन, बर्मा, थाईलैंड, कंबोडिया और लाओस, दूसरी ओर नेपाल, तिब्बत, चीन, कोरिया और जापान में आज अतीत की अनगिनत पीढ़ियों की तरह, करोड़ों पुरुष और महिलाएं, प्रबुद्ध व्यक्ति, बुद्ध की शिक्षाओं का पालन करते हैं।

बुद्ध की सभी शिक्षाओं को एक शब्द में संक्षेपित किया जा सकता है: धम्म। इसका मतलब कानून भी है, कानून, जो मनुष्य के दिल और दिमाग में मौजूद होता है। यह धार्मिकता का सिद्धांत है, इसलिए बुद्ध मनुष्य से महान, शुद्ध और दानशील बनने को प्रेरित करते हैं, किसी सर्वोच्च व्यक्ति को प्रसन्न करने के लिए नहीं, बल्कि स्वयं में सर्वोच्च के प्रति सच्चे होने के लिए। बौद्ध धर्म एक ऐसा धर्म है जो चीज़ों के दोनों पक्षों को शामिल करके सत्य को खोजने का प्रयास करता है, न कि केवल यह कहता है कि एक सही है और दूसरा ग़लत। भले ही बौद्ध धर्म कई देशों में लोकप्रिय था, लेकिन इस बात का कोई सबूत नहीं है कि बौद्धों ने कभी अन्य धर्मों को मानने वाले लोगों को चोट पहुंचाई या उनके साथ लड़ाई की। बुद्ध ने स्वयं कभी भी धार्मिक युद्ध शुरू नहीं किया। इस सब पर पूरी तरह विश्वास करना कठिन हो सकता है, लेकिन यह दूसरों को समझने और स्वीकार करने का भी समय है, बुद्ध और उनके अनुयायी भी ऐसे ही थे। बौद्ध आम तौर पर अन्य धर्मों के प्रति अपने उदार रवैये के लिए जाने जाते हैं, चाहे वे बहुदेववादी हों, एकेश्वरवादी हों या नास्तिक हों। बौद्ध किसी भी नैतिक और दार्शनिक प्रणाली की सच्चाई को स्वीकार करते हैं, चाहे वह आदिम हो या विकसित, बशर्ते कि वह लोगों को उनके अंतिम लक्ष्य की ओर कम से कम कुछ हद तक ले जाने में सक्षम हो।

थेरवाद और महायान बौद्ध धर्म ने किसी कथन की सत्यता के लिए दो मानक स्वीकार किए हैं, यह शास्त्रों के अनुरूप होना चाहिए और तर्क द्वारा सत्य साबित होना चाहिए। किसी भी बौद्ध से ऐसी किसी भी चीज़ पर विश्वास करने की अपेक्षा नहीं की जाती है, जो इन दो परीक्षणों पर खरी नहीं उतरती। बौद्ध धर्म के सभी सम्प्रदायों ने सार्वभौमिक कानूनों की परिकल्पना की है, जिन्हें धम्म कहा जाता है, जो मानव अस्तित्व को नियंत्रित करते हैं और तर्क से ज्ञात हो सकते हैं। बुद्ध के अनुसार, व्यक्तिगत संबंधों को सार्वभौमिक मानदंडों, सार्वभौमिक कानूनों के साथ सामंजस्य में लाया जाना चाहिए जो सभी अस्तित्व पर लागू होते हैं। धर्म शब्द का प्रयोग अक्सर बुद्ध के सिद्धांत के अर्थ में किया जाता है; इस अर्थ में धर्म हठधर्मिता नहीं है, बल्कि पथ है, जिसे सभी मानव जाति के लिए सार्वभौमिक आदर्श माना जाता है, जो ब्रह्मांड की प्रकृति के अनुरूप है। बौद्ध धर्म हमेशा चीजों को तार्किक तरीके से सोचने और समझने में विश्वास रखता है। हालाँकि, यह जानना महत्वपूर्ण है कि जब आध्यात्मिक विचारों और प्रबुद्ध होने की बात आती है, तो बौद्ध धर्म तर्क का उपयोग नहीं करता है। इसके बजाय, यह एक विशेष मार्ग का अनुसरण करता है जिस पर केवल बुद्ध ही चले हैं और दूसरों को इसके बारे में सिखा सकते हैं। तथागत का अर्थ है कोई ऐसा व्यक्ति जो इस विशेष मार्ग से गुजरा हो।

सभी आध्यात्मिक विचार संपूर्ण सत्य की केवल आंशिक आशंकाएँ हैं, जो तर्कसंगत विश्लेषण से परे है। केवल एक बुद्ध ही संपूर्ण सत्य को समझ सकता है। तर्कसंगत विश्लेषण तर्कसंगतता की सीमाओं को स्पष्ट करने में उपयोगी है। बुद्ध का सिद्धांत तुलना से परे है; यह अन्य सिद्धांतों से न तो नीचा है, न समान है, न ही श्रेष्ठ है। दार्शनिक विरोधों से स्वयं को अलग करके ही व्यक्ति सत्य को समझने में सक्षम होता है। इस प्रकार बौद्ध धर्म में ऐसी कोई हठधर्मिता नहीं है, जो अन्य हठधर्मियों का विरोध करती हो। बेशक, एक सांस्कृतिक और ऐतिहासिक उत्पाद के रूप में बौद्ध धर्म ने समय के साथ विचार की कई अलग-अलग प्रणालियाँ विकसित कीं, लेकिन इसने हमेशा इससे बचने की कोशिश की है|

रूढ़िवादिता का अर्थ है किसी चीज़ पर विश्वास करना, भले ही उसका कोई मतलब न हो, हालाँकि सभी बौद्ध, चाहे थेरवाद हों या महायान, इस बात से सहमत हैं कि उनका लक्ष्य आदर्श जीवन को साकार करने का तरीका सिखाना है। बौद्ध धर्म में सारा जोर जीवन जीने के तरीके पर, जीवन की पवित्रता पर, संसार से लगाव को दूर करने पर है। एक मात्र सैद्धांतिक प्रस्ताव, जैसे कि "कोई अहंकार नहीं है," पूरी तरह से निष्फल और बेकार माना जाएगा। सभी बौद्ध निःस्वार्थ जीवन जीने की शिक्षा देने की चाहत में बुद्ध का अनुसरण करते हैं। तर्कसंगत विश्लेषण एक उपकरण से अधिक कुछ नहीं है, जो अपने उत्पादों में उचित है। यही कारण है कि प्रतीत्य-समुत्पाद जैसे एक विषय पर भी इतनी सारी शिक्षाएँ हैं। बुद्ध के सिद्धांत को वाहन इस अर्थ में कहा जाता है कि यह एक नौका की तरह है। व्यक्ति सांसारिक अनुभव के तट, आध्यात्मिक अज्ञान, इच्छा और पीड़ा के तट से जीवन की नदी को पार करने के लिए, पारलौकिक ज्ञान के दूसरे तट तक पहुंचने के लिए बौद्ध वाहन में प्रवेश करता है, जो बंधन और पीड़ा से मुक्त

है। मान लीजिए कि मनुष्य एक बेड़ा बनाता है और इस माध्यम से दूसरे किनारे तक पहुँचने में सफल हो जाता है। "इस आदमी के बारे में आपकी क्या राय होगी?" बुद्ध पूछते हैं. "क्या वह एक चतुर व्यक्ति होगा यदि, उस नाव के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए जिसने उसे धारा के पार सुरक्षा के लिए पहुंचाया, वह, दूसरे किनारे पर पहुंचकर, उससे चिपक जाए, उसे अपनी पीठ पर ले ले, और उसका वजन उठाते हुए आगे बढ़े यह?" भिक्षुओं ने उत्तर दिया, "नहीं।" बुद्ध ने फिर निष्कर्ष निकाला, "उसी तरह सिद्धांत के वाहन को त्याग दिया जाना चाहिए, जब एक बार आत्मज्ञान (निर्वाण) का दूसरा किनारा प्राप्त हो जाए" जिस तरह आकार, वजन और सामग्री में अंतर कोई मायने नहीं रखता, उसी तरह शिक्षाओं में अंतर भी कोई मायने नहीं रखता। यह दृष्टिकोण थेरवाद और महायान बौद्ध धर्म दोनों में बताया गया है।

थेरवाद बौद्ध धर्म, जो एशिया के कुछ हिस्सों में बहुत लंबे समय से प्रचलित है, यूरोप और संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे पश्चिमी दुनिया में लोकप्रिय होने लगा है। पश्चिम में लोग इसकी अनूठी आध्यात्मिक शिक्षाओं में रुचि ले रहे हैं। वे इन शिक्षाओं को सीखने और अभ्यास करने के लिए मठों और ध्यान केंद्रों की स्थापना कर रहे हैं। हालाँकि, इस बारे में चुनौतियाँ और प्रश्न भी हैं कि पश्चिम में इन शिक्षाओं को कैसे समझा और अपनाया जाएगा। प्रत्येक व्यक्ति के लिए इन शिक्षाओं को व्यक्तिगत रूप से खोजना और समझना महत्वपूर्ण है।

आधुनिक काल में थेरवाद, प्रसार और शिष्ट मंडल के माध्यम से दुनिया भर में फैल गया है। आजकल थेरवाद कंबोडिया, लाओस और निश्चित रूप से थाईलैंड में बौद्ध धर्म का प्रमुख रूप है। 1960 के दशक में महायान रूपों के साथ औपचारिक एकीकरण के बाद भी यह वियतनाम के बौद्ध धर्म का एक केंद्रीय घटक बना हुआ है। इस परंपरा का पालन बांग्लादेश में बरुआ, चकमा और माघ जातीय समूहों और दक्षिणी चीन के शान द्वारा किया जाता है। थेरवाद संप्रदाय ने भारत में बौद्ध पुनरुत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और नेपाल की काठमांडू घाटी में पारंपरिक नेवारी बौद्ध धर्म को प्रतिस्थापित करना शुरू कर दिया है। दुनिया भर में मिशनरी भिक्षु प्रवासी और परिवर्तित बौद्ध दोनों की सेवा करते हैं, अक्सर अलग-अलग मंडलियों के रूप में। थेरवाद के सांस्कृतिक रूप से विशिष्ट होने के बजाय सार्वभौमिक होने और बौद्ध धर्म के अन्य रूपों और यहां तक कि अन्य धर्मों के साथ मिश्रित

होने या कम से कम बातचीत होने की संभावना है। अनुमानतः दुनिया में लगभग 100 मिलियन थेरवाद बौद्ध हैं। बौद्ध धर्म में, "आत्मज्ञान" और "अज्ञान" जैसे कुछ शब्द हैं जिनका उपयोग लोगों को शिक्षाओं को समझने में मदद करने के लिए किया जाता है, लेकिन वे किसी वास्तविक चीज़ का प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं, वे बौद्ध धर्म के लक्ष्य की ओर इशारा करने वाले संकेतों की तरह हैं।

संदर्भ ग्रंथ

•Dipavamsa : Ed & Trans. By H. Oldenberg London 1879.

•Dipavamsa and Mahāvamsa : Ed. By W. Geiger London 1879; trans, by A.K. Coomarswamy London 1908.

•Divyavadana : Ed. By E. B Cowell and R. A. Neil, Cambridge 1886

•Mahāvamsa : Ed. By W. Geiger, Colombo, 1950

•पाण्डेय, डॉ. गोबिन्द चन्द्र : बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, 1963

•उपाद्ध्याय, डॉ. भरतसिंह : पालि-साहित्य का इतिहास, प्रयाग 2013

•बापट,पी.वी. : बौद्ध धर्म के 2500 वर्ष , दिल्ली 1956

•Banerjee, A.C. :"Buddhism in India and Abroad", Calcutta, 1973

•Conze, E : "A Short History of Buddhism, Bombay 1961.

•Dutt, N : "Buddhist Sects in India, Calcutta, 1970.

•Dutt, N : "Early History of the spread of Buddhism and Buddhist Schools" New Delhi 1930 (rep.

•Halder (De) Manikuntala : "History of Buddhism," Calcutta 1989

•Hazra,K. L. : "History of the Theravada Buddhism in South-East Asia", Delhi, 1982.

*****

भारतीय राजनीति का अंतर्विरोध और 'महाभोज

डॉ. अभिषेक कुमार पटेल
सहायक प्राध्यापक
शासकीय शहीद कौशल यादव महाविद्यालय ,गुण्डरदेही,जिला बालोद,
छत्तीसगढ़पिन कोड 491223
मोबाईल नंबर 7869668874
ईमेल patelabhishek84@gmail.com

आज उपन्यास जीवन से बिना जुड़े नहीं लिखा जा सकता। इसका संबंध समाज से काफी गहराई तक होता है। जीवन-जगत को समग्रता में निरुपित करने के कारण ही उपन्यास को आधुनिक युग का महाकाव्य कहा गया है। समाज के प्रति गहरे सरोकार एवं सूक्ष्म दृष्टि ही उपन्यासकार को रचना के लिए प्रेरित करती है, यही बात मन्नू भंडारी पर भी लागू होती है।

अब प्रश्न उठता है कि वो कौन-सी परिस्थितियाँ थीं जिसने मन्नू भंडारी को 'महाभोज' जैसे उपन्यास लिखने के लिए बाध्य किया। इसका संकेत स्वयं मन्नू भंडारी ने 'महाभोज' की भूमिका में दिया है—"जब घर में आग लगी हो तो सिर्फ अपने अंतर्जगत में बने रहना या उसी का प्रकाशन करना क्या खुद ही अप्रासंगिक, हास्यास्पद और किसी हद तक अश्लील नहीं लगता? संभवत: इस उपन्यास की रचना के पीछे यही प्रश्न रहा हो। इसे मैं अपने व्यक्तित्व और नियति को निर्धारित करने वाले परिवेश के प्रति ऋण-शोध के रूप में ही देखती हूँ।''[1]

आज़ादी के बाद की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना या दुर्घटना इस सदी के आठवें दशक में घटित होती है जिसका असर हमारे समाज पर और हमारी राजनीतिक व्यवस्था पर अभी तक कायम है। यह आज़ादी के बाद लगे आपातकाल की घटना है जिसमें एक तरफ सत्ता का निरंकुश चेहरा उभरकर सामने आया तो उसके विरोध में जनता का आक्रोश भी सड़कों पर आा। हिंदुस्तान के गाँव और खेत-खलिहान शहर और मिलों की चिमनियों से एक नारा गूँज उठा 'सिंहासन खाली करो जनता आती हैं'। आपातकाल की घटना जहाँ जयप्रकाशन को 'सम्पूर्ण क्रांति' का नारा देने को मजबूर करती हैं, वहीं साहित्यकारों के साहित्य सर्जना को भी एक नई गति देती है। आज़ादी के बाद पहली बार कलम के सिपाही पैदा हुए जिन्होंने इसका हथियार की तरह इस्तेमाल करते हुए सत्ता के निरंकुश चेहरे पर पर्दाफाश किया और सोयी हुई जनता को जगाने का काम किया।

ऐसे बहुत से नाम हिंदी साहित्य में मिल जाएँगे जिनकी लेखनी की धार बहुत तेज़ी के साथ आपातकालीन क्रूरता के खिलाफ सामने आई। भवानी प्रसाद मिश्र, नागार्जुन आदि इनमें से प्रमुख हैं।

उसी दौर की उपज होने के कारण 'महाभोज'का संबंध कहीं-न-कहीं प्रजातंत्र के इस नाटक से जुड़ता है, जिसकी छानबीन ज़रूरी है, ज़रूरी इसलिए क्योंकि मन्नू भंडारी के रचनामानस में उस तथ्य की तलाश की जाए जिसने इस उपन्यास के लिए 'प्रेरणा भूमि' का काम किया। यह सवाल इसलिए भी उठता है कि इसके पहले मन्नू भंडारी ने अपने दो उपन्यासों में जिसका संदर्भ क्रमश: सामाजिक और पारिवारिक है अचानक ही इस उपन्यास में राजनीतिक क्यों हो गया? उपन्यास का विषय बदलने का एक कारण उन्हीं के शब्दों में "मैं इन दिनों एक राजनीतिक उपन्यास 'महाभोज' पूरा करने जा रही हूँ पिछले दिनों 'बेलछी कांड' जैसी घटनाओं ने मुझे काफी उत्तेजित किया। हमारे राजनीतिज्ञ नेता और भ्रष्ट-शासकीय मशीनरी जिस तरह से हमारी गंभीर सामाजिक समस्याओं के साथ घिनौने राजनीतिक स्वार्थों के खेल खेलते हैं यह एक दर्दनाक दास्तान है। 'त्रिशंकु' में संग्रहित मेरी कहानियाँ 'तीसरा हिस्सा' और 'अलगाव' में आपको इसका संकेत मिलेगा। मेरे मन का यही दर्द इस उपन्यास में गहरे और व्यापक रूप में छलका है।''[2] (27 मई, 1979

मन्नू भंडारी के इस कथन से यह जाहिर होता है कि बेलछी काण्ड जैसी क्रूर घटनाओं ने इन्हें काफी गहरे तक कुरेदा था। इसलिए 'महाभोज' उपन्यास को उसके संदर्भगत परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए ज़रूरी है कि बेलछी काण्ड को पूरी तौर से समझा जाए।

यह घटना राजनीतिक दृष्टि से जागरूक राज्य बिहार में घटित हुई थी। 1975 में जब तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने देश पर आपातकाल थोपा तो बिहार में जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में सम्पूर्ण क्रांति की बिगुल फूँकी गई। अंतत: 1977 के चुनाव में कांग्रेस की हार हुई तथा जनता पार्टी की सरकार बनी। लोगों को लगा कि सही मायने में आम जनता की सरकार बनी है। परंतु ऐसा मानना उनका भ्रम था। दरअसल वे नेताओं के घाघपन को पहचान नहीं पाए।

जनता पार्टी के शासन काल के दौरान ही 27 मई 1977 को बिहार के पटना जिले के एक गाँव बेलछी में चौदह हरिजनों की क्रूर हत्या कर दी गई। उसी इलाके के कुछ प्रभावशाली लोगों द्वारा यह काण्ड किया गया था। इस घटना का ब्यौरा देते हुए जून 1977 को 'नवभारत टाइम्स' ने 'पटना ज़िले में हरिजनों की नृशंस हत्या' शीर्षक से लिखा था... दो बच्चों सहित 13 ज़िंदा जला दिये—एक को गोली मार दी। नई दिल्ली 3 जून (समा) पिछले महीने की 27 तारीख को बिहार में पटना जिले के एक गाँव में एक हरिजन की गोली मारकर हत्या कर दी गई और 13 अन्य को हाथ पैर बाँध कर आग में ज़िंदा जला दिया गया। यह सनसनीखेज खबर एक अत्यंत विश्वस्त सूत्र द्वारा समाचार को आज यहाँ दी गई। हत्या करने वाले उस गाँव के आस-पास के कुछ ऐसे प्रभावशाली लोग बताए जाते हैं जिनका नाम ही बंदूकधारी पार्टी पड़ गया है। पिछले कुछ वर्षों से उन लोगों ने एक गिरोह के रूप में उस क्षेत्र

में आतंक फैला रखा है। राजनीतिक दलों के कुछ प्रमुख नेताओं का प्रश्रय भी इन्हे इस बात के बदले मिलता रहा है कि चुनाव के समय वे उन नेताओं की मदद करें। यह घटना पटना ज़िले के बाढ़ थाने के बेलछी गाँव में हुई थी। बताया जाता है कि 'बंदूकधारी पार्टी' के लगभग 50 सशस्त्र लोगों ने भरी दोपहरी में गाँव पर धावा बोल दिया। चालीस वर्षीय एक हरिजन को उसके दरवाज़े पर गोली मार दी, फिर लकड़ी और उपलों का जमाव करके उस पर डीजल छिड़क कर आग लगा दी पहले मृत हरिजन को उसमें फेंका उसके बाद दो बच्चों (9 साल, 13 साल) और 30 से 40 वर्ष की आयु के 11 अन्य लोगों को उनके घरों से घसीट कर हाथ-पैर बांध कर एक-एक करके उस आग में फेंक दिया गया। जल रहे व्यक्तियों की चीख-पुकार पर उधर दौड़ पड़े उनके परिवारों के लोगों को पकड़ कर दूर भगा दिया गया।

आज़ादी के तीस साल बाद भी यह कैसी आज़ादी है? अमीरों एवं दबंगों द्वारा गरीबों को कीड़े-मकौड़े की तरह मारने की आज़ादी नहीं तो और क्या है? वस्तुत: 'महाभोज' इसी पक्ष को रेखांकित करता हुआ मार्मिक उपन्यास है।

'महाभोज' की मूल समस्या राजनीतिक विकृति है। भारत की स्वाधीनता के बाद लोकतंत्र आया और लोकतंत्र धीरे-धीरे कैसे भीड़तंत्र में बदला, इस बिंदु पर यह उपन्यास बार-बार प्रश्न उठाता है। भारत के इतिहास में लोकतंत्र के आने के बाद ऐसा पहली बार हुआ कि राजनीति सामाजिक जीवन की धुरी बन गई। लोकतंत्र की सफलता के लिए दो बातें आवश्यक हैं—सभी लोग इतने समझदार हों कि अपने हित-अहित को बारीकी से समझ सकें दूसरे वे अपने वास्तविक हितों के लिए एक-दूसरे से जुड़ सकें। भारत में जिस समय में लोकतंत्र आया वह आम भारतीयों के लिए अशिक्षा का दौर था। आम आदमी समानता, स्वतंत्रता, न्याय जैसे आधुनिक मूल्यों के प्रति प्राय: अनभिज्ञ थे, लोकतंत्र में किस प्रकार विवेकशील निर्णय लिए जाने चाहिए वह इन बातों से भी बेखबर थी। इसी स्थिति के कारण राजनीति में संवेदनहीन अवसरवाद पैदा हुआ और एक अविश्वसनीय किस्म का दिखावटी नेतृत्व विकसित होने लगा।

यह उपन्यास कर्मयोग और गांधीवाद की रामनामी ओढ़े हुए मुख्यमंत्री दा साहब की शतरंजी राजनीतिक चालों की गाथा नहीं है, बल्कि यह गाथा है—आज की मुखौटाधर्मी राजनीति के नीचे पिसती-घुटती दलित जनता की। स्वयं मन्नू भंडारी लिखती हैं कि "जनता सरकार के राज में घटी थी बेलछी की दिल दहला देने वाली घटना। किसी पत्रिका में मैंने हरिजनों को पेड़ से बाँधकर ज़िंदा जला देने की क्रूरता और गाँव में फैली उस दहशत का, जिसने सबके मुँह पर ताले जड़ दिए थे—रोम-रोम को द्रवित कर देने वाला ऐसा वर्णन पढ़ा कि मैं ऊपर से नीचे तक थरथरा गई।... पर कोई सार्थक रचना रची नहीं जा सकी सो चुप लगाकर बैठ गई... पर कुछ समय बाद जब मुझे मालूम पड़ा कि हरिजनों को जलाने वाले व्यक्ति ने जेल से पैरोल पर छुटकर केवल चुनाव ही नहीं लड़ा बल्कि वह भारी बहुमत से जीत भी गया तो नज़र इस त्रासदी के साथ-साथ चुनाव-केन्द्रित राजनीति पर टिक गई... आज तो इसका वीभत्सतम रूप देखने को मिलता है। राजनीति की शतरंज पर आम आदमी तो शुरू से ही मोहरा भर रहा है, जिसका नाम लेकर ये खास आदमी शह और मात का घिनौना खेल खेलते आ रहे हैं। बड़ी निर्ममता और बेहयाई से ये इसकी ज़िंदगी को भुनाते हैं। तो इसकी मौत को भी।''[3] वस्तुत: यह उपन्यास राजनीति के अपराधीकरण और अपराध के राजनीतिकरण के प्रथम चरण की गाथा है, जिसमें अपराधी प्रशासन और राजनीतिक सत्ता का एक मजबूत गठबंधन बनता हुआ दिखता है। 'महाभोज' से पूर्व ही रेणु ने 'मैला आँचल' में यह दिखाया था कि सत्ता के विभिन्न संस्थान स्वार्थ और आत्मोन्नति से कैसे ग्रस्त हैं। तमाम अवसरवादी और अमानवीय शक्तियाँ या तो सत्ता के शीर्ष पर पहुँच चुकी हैं या पहुँचने के लिए होड़ कर रही हैं। अत्याचार की शिकायत करने पूर्णिया गया 'बावन दास' वहाँ जाकर देखता है—"पूर्णिया में जुलुम हो रहा है...और जिला कांग्रेस पार्टी हो या सोशलिस्ट, सभी पार्टी समान हैं।''[4] रेणुजी ने इस उपन्यास में यह दिखाया है कि किस प्रकार कल तक ब्रिटिश सत्ता का साथ देने वाले अवसरवादी लोग आज कांग्रेस संगठन पर हावी होते जा रहे हैं, किस प्रकार राजनीतिज्ञों, तस्करों और प्रशासन का गठबंधन तैयार हो रहा है। 'मैला आँचल' में राजनीति के अपराधीकरण की समस्या अंचल की समस्या है लेकिन 'महाभोज' तक आते-आते यह राष्ट्रीय समस्या के रूप में कर आती है। यदि विरोधी दल के नेता सुकुल बाबू अपनी सभा की सफलता के लिए लठैतों की सहायता लेते हैं तो सत्ता पक्ष के दा साहब जोरावर जैसे अपराधी को संरक्षण देते हैं। इन दोनों के बीच लोचन बाबू जैसे सिद्धांतवादी लोग अपने आप को विवश और असहाय महसूस करते हैं। अपराधियों और राजनेताओं के बीच का यह गठबंधन डी.आई.जी. सिन्हा और स्थानीय दारोगा जैसे अधिकारियों के माध्यम से उभरकर सामने आता है। बिंदा इस नापाक गठबंधन को बेपर्द करते हुए एस.पी. सक्सेना से कहता है, "जोरावर की रखैल इस थानेदार ने रिपोर्ट तैयार करके दे ही दी है, भरी सभा में दा साहब भी कह ही गए कि बिसु ने आत्महत्या की है, 'मशाल' वालों ने छाप भी दिया, बस आप लोगों के लिए तो वह बात खत्म हो गई, पर मैं नहीं मान सकता, मरते दम तक नहीं मान सकता कि बिसु...।''[5] सत्ता के इस चरित्र से, राजनीति के अपराधीकरण से बिन्दा परिचित है उसे बिसु की इस बात में विश्वास नहीं होता कि आगजनी के अपराधियों को पकड़वाने के लिए केन्द्र सरकार या किसी भी सरकार के यहाँ फरियाद की जाए। बिन्दा, सक्सेना से कहता है, "जब सरकार की सारी बात को दाब-ढाँक रही है तो मेरे-तेरे भाग दौड़ करने से क्या होगा? जैसी यहाँ की सरकार वैसी दिल्ली की सरकार! हमने तो सबको देख लिया है साहब एक वह शराबी सरकार थी, अब यह पिसाबी सरकार... ससुर ऐसे।''[6] दूसरी आज़ादी के प्रतिनिधि मुख्यमंत्री दा साहब के शासन काल में बिसु की हत्या के मामले में बिंदा को फँसाकर झूठा केस तैयार करने वाले डी. आई. जी. सिन्हा को प्रोन्नत करते हुए आई.जी. बनाया जाता है जो प्रशासनिक अपराध के लिए पुरस्कार है। हरिजन-अग्निकाण्ड और बिसु की हत्या में सच्ची रपट तैयार करने वाले एस. पी. सक्सेना मुअत्तल कर दिए जाते हैं। यह उन तमाम कर्तव्यनिष्ठ और ईमानदार नौकरशाहों के लिए एक चेतावनी

है। बिसु की हत्या में बिन्दा को फँसाकर जोरावर को बचा लेना सत्ता द्वारा अपराधियों को दिये जाने वाले संरक्षण का प्रमाण है। दूसरी ओर, जोरावर को टिकट न देना अपराधी को राजनीति से दूर रखकर उन्हें राजनीति के लिए उपयोगी बनाए रखने की राजनीति है। आज किसी दल का जीतना उसके अच्छे कामों पर निर्भर नहीं करता, वह निर्भर करता है प्रशासन और अपराधियों के आतंक तथा कुछ खास वोट बैंक पर। आज राजनीतिक दलों के ध्यान में जनता नहीं, उसका वोट बैंक है और वोट बैंक की यह राजनीति समाज को विभाजित करने का काम करती है, जिसका खामियाजा अंतत: जनता को भुगतना पड़ता है। दा साहब के लिए जोरावर सिंह सिर्फ अपराधी होने के कारण ही उपयोगी नहीं हैं, इसलिए भी है कि सरोहा के 35 प्रतिशत जाट मतदाताओं पर उसकी ज़बरदस्त पकड़ है। स्पष्ट है कि 'महाभोज' की पूरी कथा अपराधी, प्रशासन और राजनेता के बीच विकसित हो रहे मधुर संबंध की शिनाख्त करती है।

आज़ादी के तुरंत बाद ही राजनीतिक नेताओं के चरित्र में राजनीतिक कुत्साओं के लिए जगह बनने लगी थी, लेकिन उन्हें नियम, कानून और सिद्धांतों की आड़ लेकर छिपाने की कोशिश होती थी। तब राजनीति में न तो नंगापन दिखाया जाता था और न ही खुलेआम अपराधियों की पीठ थपथपाने की निर्लज्जता। इस उपन्यास में दा साहब प्रत्यक्षत: अपराधिक गतिविधियों में संलग्न नहीं दिखते। उनका अपराध यह है कि वे अपराधियों को संरक्षण प्रदान करते हैं, लेकिन इसके लिए उन्हें आदर्शों और सिद्धांतों का सहारा लेना पड़ता है। उनके प्रत्यक्षत: नहीं जुड़े होने के बावजूद राजनीतिक पेंच के कारण उनसे उत्पन्न नहीं होते ये पैदा होते हैं, उनके नीचे के लोगों से, जिनके समर्थन की बदौलत वह सत्ता की राजनीति में सुकुल बाबू जैसे घाघ राजनीतिज्ञों को मात देने में सफल होता है।

इस उपन्यास में मन्नू जी ने सत्ता और दल-बदल की राजनीति को बेपर्द करने का काम किया है। दा साहब जिस दूसरी आज़ादी का नेतृत्व करते हुए सत्ता में आए थे, उस दूसरी आज़ादी की निरर्थकता अपनी पूरी कुरुपता के साथ उभरकर सामने आती है। इस पूरे उपन्यास के राजनीतिक चरित्रों में यदि लोचन बाबू को अपवाद स्वरूप छोड़ दिया जाए तो दा साहब अन्य राजनीतिज्ञों से बीस ही नहीं इक्कीस साबित होते हैं। ऐसा नहीं है कि दा साहब कोई कोरा पात्र हैं बल्कि वह भारतीय राजनीति के यथार्थ हैं। मन्नू भंडारी ने स्वयं ऐसे चरित्र को नजदीक से देखा एवं समझा था। उन्हीं के शब्दों में "दा साहब की भूमिका अदा करने के लिए किशोरावस्था में निकट संपर्क में आए और ताज़िंदगी राजस्थान की एक प्रमुख हस्ती के रूप में रहे असली दा साहब प्रकट हो गए।''[7] राव, मेहता, बापट जैसे राजनीतिज्ञ अपनी अवसरवादिता और स्वार्थी प्रवृत्ति के कारण दा साहब को पाठकों की उस सहानुभूति का हकदार बना देते हैं, जिसके दा साहब हकदार नहीं हैं। इस उपन्यास के प्रतिपाद्य की माँग थी कि दा साहब के प्रति पाठकों में घृणा का संचार हो, लेकिन ऐसा हो नहीं पाता, क्योंकि आज हमारी राजनीति पूरी तरह से नैतिकता विहीन और मूल्यविहीन हो गई है, जबकि दा साहब की राजनीति में कुछ मूल्य शेष बचे हैं। इस संदर्भ में दा साहब के विरोधियों और असंतुष्टों की स्थिति ज़्यादा निराशाजनक है। दा साहब तो, जहाँ शोला भड़कता है, वहाँ सिर्फ पानी डालने का काम करते हैं, वे पूरी उठा-पटक के बीच भी अपने को तटस्थ बनाए रखते हैं। वे जो वायदा करते हैं उसको पूरा करते हैं और काम हो जाने पर न मुकरते हैं और न ही लात मार कर गिराने की कोशिश करते हैं। दा साहब कहते हैं— "मैं बहुत ऊँचे तक नहीं ले जा सकता, लेकिन जहाँ ले जाता हूँ, वहाँ खड़े होने के लिए कम-से-कम ज़मीन ज़रूर देता हूँ। मेरे साथ चलने वालों के सामने औंधे मुँह गिरने का $खतरा कभी नहीं रहता।''[8]

यह बात और है कि दा साहब की राजनीति में शेष रह गए मूल्य केवल उन लोगों के लिए हैं जो उनके समर्थक हैं, जो उनके काम आते हैं। ये मूल्य बिंदा, बिसु, सक्सेना जैसे व्यवस्था के शिकार चरित्रों के लिए नहीं हैं, जो अपराधियों की साजिश और सत्ता की राजनीति से तबाह हो जाते हैं। इस उपन्यास में दा साहब के चरित्र की विशिष्टता यह है कि अपनी तमाम नृशंसताओं और अमानवीयता के बावजूद दा साहब कहीं भी मानवघाती, शातिर, अपराधी राजनेता के रूप में उभरकर सामने नहीं आते।

'महाभोज' में दा साहब की जोड़-तोड़ और तिकड़म में माहिर बुद्धि, गीतावाद और गांधीवाद की अतिरिक्त उदारता और अतिजीवित सत्य के साँचे में लाकर सामंती अवशेषों और नव पूँजीवादी संपत्ति और सत्ता में डूबी शक्तियों को बेहिसाब संरक्षण देती है। वह लखन जैसे अयोग्य किंतु अपने आदमी को आसन पर बिठा देने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ते। दा साहब की राजनीति जोरावर की गुंडागर्दी और लखन जैसे अयोग्य को संरक्षण देती हुई बिसु की मानवीय व्याकुलता को मार देने में तनिक भी नहीं हिचकती। उनकी राजनीति बिंदा के मानवीय और संभावनाशील क्रोध की हत्या का अपराधी बना देने में अपनी बौद्धिक योग्यता का प्रमाण देती है तथा सक्सेना जैसे ईमानदार और प्रशासकीय अनुशासन को अयोग्य बनाकर खारिज कर देने में ज़रा भी शर्म नहीं खाती। इस शक्ति ने मानवीय अंतर्वस्तु को चबाकर आदमी को बेबस और अकेला कर दिया। वस्तुत: बिसु और बिंदा का अकेलापन और यातना दा साहब की इसी लोकतांत्रिक राजनीति की उपज है। इसी लोकतांत्रिक राजनीति का परिणाम है कि बिसु, बिंदा और रुक्मा के अकेलेपन और यंत्रणा को शेयर करने वाला सक्सेना का उसी की स्थिति में पहुँच जाना। लेखिका ने उपन्यास के अंत में लोचन बाबू की मन:स्थिति को चित्रित कर यह दिखाया है कि दा साहब की राजनीति को लोचन बाबू जैसे सिद्धांतवादी एवं आदर्शवादी राजनीतिज्ञों को, जो वर्तमान व्यवस्था में लगातार अकेले पड़ते चले जा रहे हैं और उन्हें लगातार अपनी अप्रासंगिकता का अहसास हो रहा है, उस बिंदु तक पहुँचा देती है जहाँ पाठकों को ऐसा प्रतीत होता है कि लोचन बाबू ठीक उसी प्रकार बिसु और बिंदा का राजनीति संस्करण प्रतीत होते हैं, जिस तरह सक्सेना उनका प्रशासनिक संस्करण।

दा साहब की राजनीति का ढंग भी उन्हें आज के राजनेताओं से अलग करता है। वे गीता के अनुशासन संरक्षक और समर्थकों के हित चिंतक के रूप में उभरकर सामने आते हैं। जहाँ कृष्ण ने अपराध का सहारा अपराधियों

को समाप्त करने के लिए लिया था, मसलन कर्ण की हत्या करवायी, दुर्योधन की जंघा तुड़वाई और भीष्म एवं द्रोण से पांडवों को अलग करवाया, वहीं दूसरी तरफ दा साहब का अपराध अपराधियों को बचाने में है। इनके अपराध की जो फेहरिस्त बनती है, उससे भी ये मक्कार राजनेता प्रमाणित नहीं होते।

मन्नू जी ने दा साहब के चरित्र के ज़रिए लोकतंत्र के चौथे स्तंभ पत्रकारिता के स्वार्थपरक चरित्र को भी पाठकों के सामने उद्घाटित किया है। पाठक दा साहब को कहीं भी मशाल के संपाद दा साहब को निर्देश देते हुए नहीं पाता, वह पाता है कि दा साहब तो निष्पक्ष और स्वतंत्र लेखन के लिए दत्ता साहब को प्रोत्साहित करते हैं। का$गज़ का कोटा दुगुना करने और सरकारी विज्ञापन देने का आश्वासन देते हैं, लेकिन जब पाठक पाता है कि मशाल दा साहब की स्तुति करते हुए प्रकाशित होता है तो पत्रकारिता और सत्ता का गठबंधन पाठकों की नज़र से ओझल नहीं रह पाता। दत्ता बाबू के सामने ही दा साहब डी.आई.जी. के समक्ष बिसु के हत्या के प्रकरण की व्याख्या करते हैं और इसकी स्वतंत्र एवं निष्पक्ष जाँच का आदेश भी डी.आई.जी. को देते हैं तो दत्ता बाबू के साथ-साथ पाठक भी दा साहब की न्यायप्रियता का कायल हो जाता है लेकिन अगले ही पल वह पाता है कि उनकी व्याख्या और व्यवस्था के अनुकूल ही हत्या की रिपोर्ट बदलकर बिंदा के माथे बिसु की हत्या की जिम्मेवारी मढ़ दी जाती है और जोरावर सिंह को बेदा$ग बचा लिया जाता है। यह सत्ता, नौकरशाही और अपराधियों के गठबंधन का नायाब उदाहरण प्रस्तुत करता है। इसके साथ ही लोकतंत्र में कानून की जटिलता उभरकर सामने आती हैं। बिन्दा कहता है—"बेगुनाहों को पकडऩे और गुनाहगारों को छोडऩे का कारण तो निकल ही आता है... कानून और पुलिस के हाथ बहुत लंबे होते हैं—केवल $गरीबों को पकडऩे के लिए।''[9] यही नहीं सुकुल की राजनीति का तो एक ही सिद्धांत है—"मारने वाले को शह दो और मरने वाले को हमदर्दी। यह सत्ता की राजनीति तो अंतर्विरोधों के प्रबंधन पर ही टिकी है और दा साहब से बेहतर इसका उदाहरण और कौन हो सकता है? इसी क्रम में बिसु हत्याकांड की निष्पक्ष जाँच कर रहे एस.पी. सक्सेना की मुअत्तली पाठकों को झकझोर कर रख देती है। लेकिन ये सारे अपराध दा साहब ने अपनी किसी व्यक्तिगत इच्छा की पूर्ति या लाभ के लिए नहीं किए, वे न तो भाई-भतीजावादी हैं और न ही आज की तरह भ्रष्ट राजनेता। उन्होंने इस गंदी राजनीति से भी अपने को बहुत हद तक बचाए रखा तो यह उनके चरित्र की उपलब्धि है और यह चरित्र उन्हें आज का राजनेता नहीं, वरन् छठे-सातवें दशक का राजनेता प्रमाणित करता है। जब दा साहब की पत्नी जमुना बहन उनसे कहती है—'तुम जैसे संत आदमी को संन्यास ले लेना चाहिए।''[10] तो इसी कारण पाठक दा साहब की भव्यता से अपने को प्रभावित पाता है। स्पष्ट है कि यदि दा साहब भ्रष्ट नहीं तो सीधे अपराधी भी नहीं हैं। इस उपन्यास में दा साहब शुरू से अंत तक निस्पृह बने हुए दिखते हैं, लेकिन यह भी तय है कि रचनाकार का उद्देश्य यह नहीं है कि दा साहब को निस्पृह बताकर दलित समस्या को दबा दिया जाए।

वस्तुत: 'महाभोज' में अंतर्दृष्टिमूलक धुंधलापन है और इसी वजह से इसमें लेखिका का अभिप्राय कुछ और है और अभिव्यक्ति कुछ और वह बताना चाहती हैं कि राजनीति सत्ता पक्ष की हो या विपक्ष की, उसकी शक्ति उठ रहे फन को कुचलने में ही खर्च हुई है। ऐसा प्रतीत होता है कि पूरे उपन्यास में मन्नू भंडारी के अंदद्र्वंद्व को अभिव्यक्ति मिली है, जिसमें एक ओर दा साहब के व्यक्तित्व के प्रति आकर्षण है तो दूसरी तरफ परिवेश के प्रति ऋण शोध वाले दायित्व का निरंतर अहसास। इस समूचे द्वंद्व में अंतत: दा साहब के प्रति आकर्षण मन्नू जी पर भारी पड़ता है। यही कारण है कि उपन्यास में दा साहब का व्यक्तित्व पर छत्तनार वृक्ष की तरह छा गया है एवं उनके व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा हो गई है। इसी कारण दलित उत्पीडऩ बिसू और बिंदा की त्रासदी न तो पूरी तीव्रता के साथ उभर पाती है औश्र न ही यह उपन्यास की केन्द्रीय समस्या बनी रह पाती है। जबकि मन्नू भंडारी इसके विपरीत चाहती थीं। इसका संकेत उन्होंने अनिरुद्ध सत्यार्थ के साथ एक भेंटवार्ता में इन शब्दों में दिया था—"इस उपन्यास की उस बात को रेखांकित करूँगी कि 'बिसू की अग्निलीक' विद्रोह की उस भावना को आप दबा तो सकते हैं, कुचल नहीं सकते। उसकी निरंतरता बनी रहती है। जब बिसू मरता है तो बिंदा उभरता है, फिर एस.पी. सक्सेना। सारे अंधे और काले माहौल में भी विद्रोह की एक चिंगारी रहती है। इतिहास विद्रोह की इस शाश्वतता का साक्षी है। मैं इसमें आज की बद से बदतर स्थितियों में भी गहराई से विश्वास करती हूँ।''[11]

ख. दलित चेतना और 'महाभोज'

'महाभोज' की शुरुआत बिसू की मौत से होती है और इसका अंत बिन्दा की इस चीत्कार के साथ होता है कि—"मार डालो-मार डालो तूने बिसू को मार डाला, मुझे भी मार डालो, लेकिन देखना बिसू की इच्छा को कोई नहीं मार सकता।''[12] उपन्यास के बीच में जोरावर दा साहब से कहता है—"इसमें ज़िद की क्या बात हुई, दा साहब? इन हरिजनों के बाप-दादे हमारे बाप-दादों के सामने सिर झुकाकर रहते थे, झुके-झुके पीठ कमान की तरह टेढ़ी हो जाती थी। और ये ससुरे सीना तानकर आँख में आँख गाड़ कर बात करते हैं। बर्दाश्त नहीं होता यह सब हमसे।''[13]

उपन्यास के प्रारंभ से लेकर अंत तक यह दलित वर्ग नई चेतना और नई ऊर्जा से लैस होकर शोषक वर्ग के विरुद्ध निरंतर संघर्षरत है और यह शोषक वर्ग राजनीतिक सत्ता और प्रशासन से खुलेआम समर्थन प्राप्त कर इस दलित चेतना को कुचल डालने पर आमादा है। हरिजन अग्निकांड होता है, अपनी माँगों और अधिकारों के प्रति हरिजनों में चेतना पैदा कर रहे बिसू को नक्सली बताकर जेल की सलाखों के पीछे डाल दिया जाता है, लेकिन बिसू का हौसला पस्त नहीं होता। जेल से निकलने के पश्चात एक बार फिर वह पिछड़े दलितों में जागरूकता पैदा करने के काम में जुट जाता है। दलितों के बीच शिक्षा के प्रसार के लिए वह विद्यालय चलाता है और अंतत: जोरावर जैसे सवर्ण भूमिपति उसकी आवाज़ को दबाने के लिए उसे बेरहमी से कुचल डालते हैं, लेकिन बिसू की हत्या के बावजूद उसकी आवाज़ अब

नहीं पाती और अब यह बिंदा के माध्यम से अभिव्यक्त होने लगती है। बिंदा की दलित चेतना, बिसू की तुलना में कहीं अधिक उग्र और मुखर है। वह सत्ता और व्यवस्था के चरित्र को समझ रहा है, इसीलिए जब-जब बिसू हरिजन अग्निकांड प्रमाण को लेकर दिल्ली जाने की बात करता है तो उसकी बिसू से ज़ोरदार बहस हो जाती है। उसमें आतंक के विरोध में सार्वजनिक बहस करने का साहस है। दा साहब की सभा में, बीच में उठकर वह कहता है—"अरे दा साहेब काहे यह नौटंकी कर रहे हो यहाँ? हरिजनों को ज़िंदा जला दिया गया और आपकी सरकार और आपकी पुलिस तमाशा देखती रही और महीने भर से खुद तमाशा कर रही है, हुआ आज कुछ?''[14] मानवीयता और गांधीवाद मुखौटा धारण किए हुए दा साहब को बीच सभा में बेनकाब करते हुए कहता है कि हरिजनों की बस्ती जलाने वालों को आप भली-भाँति जानते हैं कि उनकी पहुँच सत्ता के गलियारों तक है। दा साहब अपनी कुटिलता और कूटनीति से पूरे प्रसंग को बदलना चाहते हैं और प्रश्न करते हैं कि प्रमाण क्या हैं? बिंदा इसका जवाब देते हुए कहता है—"कौन देगा गवाही मरना है किसी को शिनाख्त करके? चार दिन यहाँ रह लीजिए... पता चल जाएगा कि कैसा आतंक है।''[15] यह व्यवस्था अंग्रेज़ों की तरह मारती भी है और रोने भी नहीं देती। बिसू हरिजन अग्निकांड के प्रमाण को जुटा लेता है और रोने भी नहीं देती। बिसू हरिजन अग्निकांड के प्रमाण को जुटा लेता है तो बिसू की हत्या का झूठा आरोप लगाकर बिंदा को ही गिरफ्तार कर लिया जाता है, लेकिन वह आवाज़ जो 'गोदान' के होरी और गोबर के माध्यम चली थी, 'मैला आँचल' के कालीचरण से होते हुए बिसू तक पहुँची थी, वह बिसू की हत्या और बिन्दा की गिरफ्तारी के साथ समाप्त नहीं होती, बल्कि कायांतरण करती हुई रूक्मा और सक्सेना की आवाज़ के रूप में परिणत हो जाती है। जब इन सूत्रों को मन्नू जी के इस समर्पण वक्तव्य "दुर्निवार सम्मोहन भरी उस खतरनाक लपकती अग्नि-लीक के लिए जो बिसू और बिन्दा तक ही रूकी नहीं रहती।''[16] के साथ जोड़कर देखते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि इस उपन्यास का मुख्य प्रतिपाद्य दलित-उत्पीडन की समस्या है। इसका मुख्य प्रतिपाद्य बिसू और बिन्दा की उस आवाज़ को ज़िंदा रखना है जो लगातार शोषक शक्तियों के विरुद्ध संघर्षरत है और अपने अधिकारों के लिए कैसी भी कुर्बानी देने के लिए तैयार है। इस आवाज़ को अब दबाया नहीं जा सकता है, चाहे यह व्यवस्था जितना ज़ोर लगा ले।

मन्नू भंडारी ने 'महाभोज' में बिसू के शोषण और मौत के साथ राजनीतिक सत्ता की संबद्धता को उद्घाटित करते हुए, सत्ता की राजनीति को बेपर्दा किया है। सुकुल बाबू हरिजनों की राजनीति करते थे, लेकिन इन्हीं के मुख्यमंत्रित्व काल में वह जेल में डाल दिया गया। वह नक्सलियों और उनकी हिंसात्मक कार्यवाहियों का आलोचक था और शांपूर्वक दलितों को जागरूक करने के काम में संलग्न था। सुकुल बाबू के मुख्यमंत्रित्व काल का संबंध आपातकाल से था और उनके विरुद्ध 'दूसरी आज़ादी' का बिगुल बजाते हुए दा साहब सत्तारूढ़ हुए थे। इसी दूसरी आज़ादी के पुरस्कर्ता दा साहब के मुख्यमंत्रित्व काल में हरिजन अग्निकांड होता है, बिसू की हत्या होती है और बिंदा की गिरफ्तारी होती है। इस पूरे काम में सत्ता और प्रशासन अपराधियों को सरंक्षण और प्रोत्साहन देती प्रतीत होती है, कहीं उसके पक्ष में खुलेआम सामने आकर तो कहीं मौन समर्थन प्रदान कर। इस उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने प्रश्न उठाया है कि जब लोकतंत्र के चारों स्तंभ अपनी भूमिका और जिम्मेदारी को व्यक्तिगत स्वार्थ से तय करने लगे और प्रजातंत्र लकवाग्रस्त एवं फासीवाद हो जाए तब बिंदा जैसे लोगों की उस व्यवस्था में क्या भूमिका होगी? बिसू तो नक्सलियों की हिंसात्मक कार्यवाही की निंदा करता था, लेकिन ऐसी स्थिति में क्या बिंदा की हिंसात्मक उत्तेजना और आँखों से निकलते अंगारे को नक्सल आंदोलन और उग्रवाद में परिवर्तित होने से रोका जा सकेगा?

लेकिन लेखिका ने संक्षिप्तता के आग्रह और दा साहब के व्यक्तित्व के प्रति आकर्षण के कारण इस समस्या को उपन्यास का केन्द्रीय विषय नहीं बनने दिया। दलित समस्या से जुड़ी हुई महत्त्वपूर्ण चरित्र जोरावर सिंह का था जो विस्तार की अपेक्षा रखता था। सक्सेना का चरित्र जो व्यवस्था का एक अंग है और बिसू एवं बिन्दा के स्वर को व्यवस्था के अंतर्गत ही जारी रखने में सहायक हो सकता था, उसे भी दिल्ली की ओर भेजने का संकेत देकर संक्षेप में निपटा दिया गया है। इन दोनों चरित्रों को विस्तार दिये जाने की अपेक्षा थी, लेकिन ऐसा नहीं किया जा सका। लेखिका रूक्मा और सक्सेना को दिल्ली की ओर उन्मुख कर 'दलित समस्या' के निदान का सूत्र उसी लोकतांत्रिक व्यवस्था और दिल्ली में तलाशती है, जिस पर बिंदा का अविश्वास था। यहीं पर आकर 'महाभोज' में उभरी उग्र दलित-चेतना लदबदा कर दम तोड़ देती है क्योंकि दा साहब और विपक्षी दोनों पार्टियों की प्रकृति और चरित्र में कोई बुनियादी अंतर नहीं है। इसलिए रूक्मा और सक्सेना को दिल्ली भेजने का औचित्य समझ में नहीं आता, फिर भी यह इतना संकेत तो अवश्य देता है कि बिसू की शहादत और बिंदा की उग्रता की परिणति से यह दलित-चेतना सहमी ज़रूर है, इसकी उग्रता में कमी अवश्य है, संघर्ष की गति धीमी ज़रूर हुई है, लेकिन इसकी उग्रता में कमी अवश्य है, संघर्ष की गति धीमी ज़रूर हुई है, लेकिन यह संघर्ष चेतना की जिजीविषा, रूक्मा और सक्सेना में अब भी विद्यमान है।

इस उपन्यास में दलित-चेतना के दूसरे छोर पर हीरा जैसे पुरानी पीढ़ी के लोग हैं जो समझौते और अनुनय-विनय की परंपरा पर चलकर ही जीवन-यापन करना चाहते हैं। ये 'गोदान' के 'होरी' की तरह पैर के नीचे गर्दन दबी रहने पर पैर के सहलाने में ही बुद्धिमानी समझते हैं। हीरा अपने घर में दा साहब के आने की प्रतिक्रिया इस रूप में व्यक्त करता है—"गाड़ी तक आकर हीरा बेचारा हाथ जोड़कर खड़ा हो गया।... दा साहब खुद उसके घर आए, ऐसा मान न उसे जीवन में कभी मिला न आगे ही कभी मिलेगा।''[17] इतना ही नहीं दा साहब को तो वह देवता मानता है, क्योंकि उनके सत्ता में आने के बाद ही बिसू जेल से छूटा था। वह दा साहब के प्रति इसलिए भी उपकृत है क्योंकि बिसू की हत्या के बाद दा साहब उसके घर गए थे और जनसभा में मंच पर अपने पास बैठाया था। एस. पी. सक्सेना के समक्ष

गवाही देते हुए वह कहता है—"अऊर दा साहेब तो देवता आदमी हैं, सरकार हम गरीबन का कैसा मान देहिन, उ दिन हमारे घरे आ... हमका अपने संग लिवा ले गए... नहीं तो को पूछत है गरीबन को दु:ख-दर्द...।'' वे यहाँ तक आते-आते हीरा इस बात को भूल जाता है कि उसके घर पर दा साहब का आगमन उसके प्रिय बेटे बिसू की लाश पर ही संभव हो सका है और वह भी इसलिए कि सरोहा उपचुनाव में सुकूल बाबू ने दा साहब के प्रयाशी के विरुद्ध बिसू की हत्या को मुद्दा बनाया है।

वस्तुत: हीरा 'महाभोज' के रचनाकाल की उस दलित चेतना का प्रतिनिधित्व करता है, जो अभी हरिजन चेतना के दायरे में सीमित थे और जो विश्वास करते थे कि गांधीवादी मुखौटा धारण किए ये सत्ताग्रस्त लोग ही शायद उसका उद्धार कर सकते हैं, उसके मुक्तिदाता बन सकते हैं। इसलिए तो न्याय-अन्याय को समझने के बावजूद वह अपना कोई स्टैण्ड नहीं ले पाता और उल्टे मालिकों की विवशता की बात करने लगता है। परंतु आज का दलित साहित्य चेतना को गांधीवादी मुखौटों पर विश्वास नहीं करता वह तो अंबेडकर के क्रांतिकारी तेवर को आत्मसात कर आगे, बढ़ रहा है। प्रसिद्ध साहित्यकार एवं दलित आलोचक प्रो. चमन लाल का मानना है कि—"पिछले कुछ वर्षों से दलित जीवन भारतीय समाज के केन्द्र में आ गया है इसके कारण चाहे राजनीतिक हों किंतु इसका प्रभाव मानव जीवन के सभी पक्षों—आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक पर पड़ा है।''[18] वस्तुत: मन्नू भंडारी ने दलित चेतना के इन दो छोरों के सहारे दो पीढ़ियों के दृष्टिकोण को पाठक के सामने रखकर परिस्थितियों के वैषम्य को उजागर कर दिया है और यह संकेत दिया है कि हीरा की पीढ़ी की दलित चेतना, बिसू और बिंदा की दलित-चेतना में तब्दील हो जाए यह दिन अब दूर नहीं।

ग. 'महाभोज' में व्यक्त विभिन्न संघर्ष एवं मन्नू भंडारी का सामाजिक चिंतन

'महाभोज' न केवल हिंदुस्तान के राजनीतिक जीवन में फैले भ्रष्टाचार का दस्तावेज़ है, बल्कि यह हिंदुस्तानी सामाजिक परिस्थितियों का भी उतना ही मजबूत दस्तावेज़ है। दरअसल मन्नू भंडारी राजनीतिक जीवन का चित्रण करते समय सामाजिक जीवन की उपेक्षा नहीं कर सकती थी, क्योंकि राजनीति व समाज को काट कर या अलग-अलग करके किसी रचना को आकार दे पाना संभव नहीं है। यह बात मौजूदा लेखन के बारे में विशेषत: कथा-साहित्य के बारे में, कहीं ज़्यादा सच है जो सामाजिक, राजनीतिक रूप से प्रतिबद्ध है।

'महाभोज' में वर्णित समाज के स्वरूप का सीधा संबंध आज के समाज के उस खास पहलू से है जो ब्रिटिश साम्राज्यवाद से आज़ाद होने के बाद भी जनतंत्र की बेडियों में जकड़ा हुआ है। यह सही है कि 'महाभोज' में आए प्रसंगों का संबंध ज़्यादातर राजनीतिक गतिविधियों से जुड़ा हुआ है लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि राजनीति को समजा से काट कर देखा जाए। समाज के विभिन्न पक्षों में आर्थिक, सांस्कृतिक आदि को गिना जा सकता है। आज़ादी से पहले के साहित्य में, विशेषकर उस साहित्य में जिसमें धर्म, नीति, उपदेश सरीखी चीज़ें ज़्यादा मिला करती थीं और जिसका समाज पिछड़ा एवं अंधविश्वासों पर आधारित समाज था, उस समाज में धार्मिक आग्रह कुछ ज़्यादा ही थे। यही वजह है कि उस समय के साहित्य का विश्लेषण धार्मिक प्रकृति को ध्यान में रखकर किया जाता रहा है। उदाहरण के रूप में भक्तिकालीन साहित्य को देखा जा सकता है।

आज़ादी के बाद का दौर मुख्य रूप से भारतीय समाज में एक नए परिवर्तन का दौर है। यह परिवर्तन अपने खुद के बनाये राजनीतिक ढाँचे के विकास के चलते हुए सामाजिक परिवर्तन से जुड़ा है। इसलिए यह मान लेने में कोई हजऱ् नहीं है कि 'महाभोज' में वर्णित राजनीतिक स्वरूप समाज के स्वरूप का ही एक हिस्सा है।

'महाभोज' में वर्तमान समाज को उसकी समग्रता में देखने की कोशिश की गई है। इसमें एक तरफ गाँवों की ज़िंदगी अपनी पूर्णता के साथ उभरती है तो दूसरी तरफ शहरी ज़िंदगी का अलगाव भरा रूखापन भी। कहा जा सकता है कि शहर और गाँव का यह विलक्षण संयोजन ही उपन्यास को शक्ति और परिपक्वता प्रदान करता है।

'महाभोज' में एक तरफ अगर जातीय टकराव है तो दूसरी तरफ गाँवों में राजनीतिक संरक्षण में पनप रही क्षेत्री गुंडागर्दी भी अपने यथार्थ में मौजूद है। समाज में फैली कुरीतियाँ एवं विसंगतियाँ भी लेखिका की दृष्टि से बच नहीं पाई हैं। इतना ही नहीं इस उपन्यास को पढऩे के बाद एक बार तो ऐसा लगता है कि प्रेमचंद का होरी अब भी ज़िंदा है और उसी तरह शोषित है जैसे कि प्रेमचंद के ज़माने में था। फर्क केवल इतना है कि जहाँ 'गोदान' में होरी की मौत होती है, वहीं 'महाभोज' में गोबर के दूसरे रूप की। गोबर का यह दूसरा रूप 'महाभोज' में बिसू है और होरी यहाँ हीरा है। एक अंतर और है, होरी की मौत जहाँ सामंती-साम्राज्यवादी ढाँचे में पिसकर होती है वहीं बिसू की मौत प्रजातांत्रिक ढाँचे में पिसकर। जाहिर है कि फर्क आज़ादी के पहले के भारत और आज़ादी के बाद के भारत में है। समाज व्यवस्था का शोषक रूप अभी बदस्तूर कायम है। सिर्फ इतना ही बदलाव आया है कि होरी की जगह बिसू व्यवस्था की वेदी पर बलिदान हो रहा है।

वर्गीय संघर्ष

'महाभोज' में शोषित वर्ग का चित्रण काफी गंभीरता से किया गया है जो समाज का एक प्रमुख हिस्सा है। 'महाभोज' का प्रधान संघर्षपीड़ितों का अपने हक के लिए किया गया संघर्ष है जिसकी अगुआई बिसू नाम का एक हरिजन नवयुवक करता है। बिसू की मौत पूरे राजनीतिक खेल के केन्द्र में रहती है। और पूरा उपन्यास इसी मुद्दे को लेकर दो राजनीतिक दलों में हुए आपसी टकराव के साथ विकसित होता है। बिसू का कसूर सिर्फ इतना है कि उसने गाँव में हुए आगजनी काण्ड के खिलाफ़ सच्चाई बयान करने का संकल्प किया था। अगर बिसू जीवित रहता तो निश्चित रूप से इस काण्ड की असलियत सामने आती और नतीजे में गाँव के शक्तिशाली तब$के के वे लोग फँसते जिन्हें मजबूत राजनीतिक संरक्षण मिला हुआ है। अत: प्रजातंत्र की उसी महान परंपरा का निर्वाह करते हुए जिसके मुताबिक कुर्सी की प्राप्ति राह में आने वाले किसी भी व्यक्ति को हटा देना ही धर्म है। बिसू

की हत्या करवा दी जाती है।

बिसू की मौत का प्रकरण हमारी समाज व्यवस्था के उस रूप को सामने लाता है जिससे यह साफ हो जाता है कि आज भी समाज का निचला वर्ग उसी तरह उपेक्षित, पीड़ित और पद दलित है जैसे सामंती समाज में अथवा ब्रिटिश हुकूमत के दौरान था। 'महाभोज' का यह प्रकरण गांधीजी के अछूतोद्धार की भी खिल्ली उड़ाता है।

सामाजिक व्यवस्था को चलाने वाले राजनीतिक सूबेदार केवल मौके का फायदा उठाने की कला में निपुण हैं। उन्हें इससे कोई मतलब नहीं है कि जनता कहाँ तक सुखी है अथवा कहाँ तक दुखी है। उनके लिए "सच पूछा जाए तो बड़ा न आदमी होता है न घटना। यह तो बस मौके-बेमौके की बात होती है।'' इसी स्वार्थपरकता के चलते बिसेसर सरीखे लोग अपने हक की लड़ाई में मौत को गले लगाते हैं और यह मौत एक बार पूरी समाज व्यवस्था पर प्रश्न चिह्न लगा देती है।

लेकिन इसका यह मतलब कतई नहीं है कि सच्चाई और ईमानदारी की इस लड़ाई में उनकी हार हुई है। लेखिका का ऐसा मंतव्य भी नहीं है। बल्कि उनकी हार भ्रष्टाचार और अन्याय के उस स्वरूप को सामने लाती है जिससे प्रेरित होकर और शक्ति पाकर आने वाले समय में हज़ारों-लाखों बिसेसर, सक्सेना और त्रिलोचन सिंह रावत अपने हक की लड़ाई लड़ेंगे। उपन्यास में भी इन तमाम घटनाओं के बाद भी अन्याय और जुल्म के खिलाफ़ जंग जारी रहती है। आगजनी काण्ड और बिसू की मौत के प्रमाण सहित एस.पी. सक्सेना उस लड़ाई को जारी रखता है जिसकी शुरुआत बिसेसर ने की थी। लोचन भैया भी अंत में महसूस करते हैं, "आज तो परिवर्तन का नाम लेने वाले की आवाज़ घोंट दी जाती है—उसे काट कर फेंक दिया जाता है। एक तरफ फिंके गिने-चुने आदमियों के घुटे गले और रुंधी आवाज़ों से क्रांति का स्वर फूट सकेगा अब कभी? एकला चलो रे गीत कितने कदम चला पाएगा किसी को भी?''[20]

लोचन भैया का यह चिंतन और उससे उठे सवाल हिंदुस्तान समाज के सामूहिक सवाल हैं जिनके समाधान की ज़रूरत भी तेज़ी से महसूस की जा रही है। बहुत संभव है कि आम जनता व्यापक स्तर पर इन सवालों से जूझ कर इनकी असलियत को समझे और आने वाले समय में उस लड़ाई की ताकत बने जो बिसेसर द्वारा शुरू की गई है और जिसे बिसेसर की मौत के बाद एस.पी. सक्सेना जारी रखे हुए हैं तथा जिससे जुड़े सवालों पर भ्रष्ट राजनीति का अकेला विभीषण त्रिलोचन सिंह रावत गंभीरता से सोच रहा है।

जातिगत व क्षेत्रीय द्वंद्व

'महाभोज' उपन्यास में जातीय समीकरणों और क्षेत्रीय संघर्षों को भी उभारा गया है। भारतीय समाज वर्ण व्यवस्था आधारित समाज रहा है। वर्ण व्यवस्था के मुताबिक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चार वर्णों में भारतीय समाज विभक्त रहा है। इसमें सर्वाधिक शोषण दलितों का हुआ है। यह व्यवस्था आज भी अपने विकृत रूप में मौजूद हैं। अब वर्ण व्यवस्था का स्थान जाति व्यवस्था ने ले लिया है। सैकड़ों नई जातियों का जन्म हुआ और उसी के अनुसार जातीय समीकरण भी बने। गुलाम प्रथा का अंत हुआ सामंती प्रथा का अंत हुआ ब्रिटिश साम्राज्यवाद का अंत हुआ लेकिन एक ही चीज़ ऐसी रही जिसका अंत नहीं बल्कि विस्तार ही हुआ है। सरोहा गाँव भी जाति प्रथा से उपजे भयंकर परिणामों का दस्तावेज़ है जिसमें न तो दो धर्मों की टकराहट है, न दो राष्ट्रों की, बल्कि यहाँ टकराहट है गाँव के ठाकुर जोरावर सिंह और गाँव के हरिजन बिससेर की। जोरावर सिंह सामंत नहीं हैं और बिसेसर भी वह शूद्र नहीं है जिससे चौंसठ फीट की दूरी पर दक्षिण भारत के ब्राह्मण चला करते थे और जिनकी छाया से भी कलुषित हो जाने का भय हुआ करता था।

वस्तुत: 'महाभोज' में जो टकराहट देखने को मिलती है, वह दो जातियों की टकराहट है। ये जातियाँ हैं—ठाकुर और हरिजन। इसे उच्च और निम्न वर्ग की भी टकराहट कहा जा सकता है। आज भी यह बड़ी आम बात है कि जहाँ कहीं सवर्णों के हितों पर ठोकर लगती है, उसका पुराना शोषक रूप सामने आ जाता है। 'महाभोज' में भी यही होता है। गाँव के ठाकुरों द्वारा हरिजनों के घरों में आग लगा दी जाती है। यह आग उनके उसी पुराने तेवर को सामने लाती है जो अब धीरे-धीरे नष्ट हो रहा है और इधर बिसेसर के रूप में एक नई ताकत भी उभर रही है। लेकिन बिसेसर की भी हत्या गाँव के ठाकुरों द्वारा कर दी जाती है।

जातीयता के साथ-ही-साथ क्षेत्रीयता के दानव को भी 'महाभोज' में सर उठाते देखा जा सकता है। सरोहा एक चुनावी क्षेत्र है और इसकी अपनी कुछ विशेषताएँ हैं। मुख्यत: ग्रामीण क्षेत्र तथा सीधे-सीधे ग्रामवासियों का इससे रिश्ता है। उपन्यास की पूरी कथा-वस्तु इसी क्षेत्र के राजनीतिक समीकरण के बनने और बिगडने की कथा है। स्वाधीनता के बाद ब्रिटिश राज का आतंक समाप्त होने पर प्रजातंत्र की डुगडुगी बजी। नतीजा यह रहा कि प्रजातांत्रिक सरकार सब की सरकार हुई और इसलिए किसी की न रही। यह हुई उनकी जिनके पास साधन सुविधाएँ और शक्ति थी। यही कारण रहा कि अपने-अपने क्षेत्र में प्रभावशाली लोग राजनीति के कर्णधारों के रूप में उभरे और उन्होंने अपने उभार में हर तरह के हथकंडों का इस्तेमाल किया। इन क्षेत्रीय मठाधीशों पर सरकार की कृपा हुई और ये ही विधायक से सांसद तक की कुर्सियों पर विराजे। क्षेत्रीय आतंक इन क्षेत्रीय मठाधीशों का प्रमुख औजार रहा। अपने आतंक के बूते इन्होंने एक तरह से अपना क्षेत्रीय राज कायम कर लिया। क्षेत्रों के अधिकार को लेकर आपसी संघर्ष भी बढ़े जो आज भी जारी है। 'महाभोज' का जोरावर सिंह इसी तरह की एक क्षेत्रीय हस्ती है जिसके पास वोट बैंक सुरक्षित है। यही कारण है कि उसका महत्त्व राजनीति के बड़े सूबेदारों की दृष्टि में कुछ ज़्यादा ही है। यह महत्त्व वोट की राजनीति के चलते पैदा हुआ है। लखन सिंह को यह भय सताता है कि अगर जोरावर विरोध करेगा या स्वयं चुनाव लड़ जाएगा तो उसके वोटों पर असर पड़ेगा। इसी को बचाने के लिए दा साहब जैसा नीतिवाक्य बोलने वाला राजनीतिज्ञ उसके सारे अपराधों को छिपाने की उच्च स्तरीय कोशिश करता है और बिसू की मौत को आत्महत्या का मामला घोषित कर दिया जाता है।

सामाजिक चिंतन

'महाभोज' की प्रेरणा के बारे में उन्होंने अपने एक साक्षात्कार में सामाजिक समस्याओं से परेशान होने की बात कही है। स्वाभाविक है कि सामाजिक समस्याओं से वही परेशान हो सकता है जिसके लेखन में जन पक्षधरता हो। उनके पिता जी का आग्रह हमेशा यह रहा कि मन्नू "रसोई घर में घुसे रहने की बजाय सामाजिक कार्यों में विशेष रुचि ले।''[21]

'महाभोज' उपन्यास में केवल कथा नहीं है और ना ही केवल घटनाएँ हैं बल्कि बीच-बीच में लेखिका का सामाजिक चिंतन भी उभरता चलता है। बेहतर होगा कि उसी के आधार पर उनके सामाजिक चिंतन को समझा जाए। इस सिलसिले में दो चीज़ों पर गौर करना बेहद ज़रूरी है। एक तो यह कि 'महाभोज' किसे समर्पित है? और दूसरा वह जो 'महाभोज' के बारे में 'महाभोज' में ही मन्नू जी ने क्या कहा। 'महाभोज' किसी व्यक्ति या किसी साहित्य हस्ती को समर्पित न होकर समर्पित है—"दुर्निवार सम्मोहन भरी उस खतरनाक लपकती अग्नि लीक के लिए जो बिसू और बिंदा तक नहीं रूकी रहती।''[22]

मन्नू जी ने इसकी भूमिका में ही अपने व्यक्तिगत दुख-दर्द की बजाय परिवेश के प्रति ऋण-शोध की घोषणा और साथ में यह तर्क भी कि घर में आग लगी होने के वक्त अपने अंतर्गत में विचरण करना अनुचित हुआ करता है, साबित करता है कि मन्नू जी का एकमात्र उद्देश्य 'महाभोज' के माध्यम से समाज की उन विसंगतियों को सामने लाना है जो राजनीतिक भ्रष्टाचार के साये में पनपती है। लेकिन मन्नू जी के सामाजिक चिंतन की इतिश्री इतने तक ही नहीं मानी जा सकती। 'महाभोज' शोषण के विरुद्ध उठने वाली आवाज़ का विवरण मात्र नहीं है बल्कि उस जंग का ऐलान भी है, जो बिसू की मौत और बिंदा के कारावास के बाद भी जारी रहेगा।

मन्नू जी ने इस उपन्यास का समूचा चित्रण यथार्थ की अपनी गहरी पकड़ के आधार पर किया है। यह सही है कि इस उपन्यास की प्रेरणा भूमि बेलछी काण्ड है जो जनता पार्टी के शासन के दौरान घटित हुआ था। यह घटना उपन्यास की कथा-वस्तु तो बनती है लेकिन इसमें व्यक्त चिंतन मन्नू जी का अपना सामाजिक चिंतन है जिसे महज बेलछी काण्ड तक सीमित नहीं किया जा सकता। अगर ऐसा होता तो उपन्यास का कोई अंत भी होता। उपन्यास का अंत बेहद यथार्थपरक है, जो एस.पी. सक्सेना द्वारा जारी रखी गई लड़ाई की सूचना देता है और इसी लड़ाई के बार में त्रिलोचन सिंह रावत का चिंतन भी जारी रहता है। अंत में त्रिलोचन सिंह रावत के चिंतन को मन्नू भंडारी का ही चिंतन कहा जा सकता है, जिससे उठा हुआ सवाल आज भी उतना ही जीवंत और प्रासंगिक है जितना 'महाभोज' लिखे जाने के समय। यह सवाल है—"अपने आस-पास और चारों तरफ जो कुछ हो रहा है, उसे आँख मूँदकर स्वीकारते रहें—एकदम उदासीन एवं तटस्थ होकर रह सकता है कोई, रह सकता है कोई भी जीवित आदमी इस तरह नहीं रह सकते थे, तभी तो एक बहुत बड़ी क्रांति के एक छोटे-से वाहक बने थे। पर कैसी हुई यह क्रांति कहीं से कुछ भी तो नहीं बदला। अब कहाँ से होगी दूसरी क्रांति, और कौन करेगा उस क्रांति को जो सब कुछ बदल दे आज तो परिवर्तन का नाम लेने वाले की आवाज़ घोंट दी जाती है। एक तरफ फिंके गिने-चुने आदमियों के घुटे गले और रुंधी आवाज़ों से क्रांति का स्वर फूट सकेगा अब कभी?''[23]

कहा जा सकता है कि उपन्यास के माध्यम से अपने सामाजिक चिंतन को बहस की शक्ल देने वाली मन्नू भंडारी 'महाभोज' तक इसी सवाल से संघर्ष करती रहती हैं और यही सवाल उनके सामाजिक चिंतन का निचोड़ माना जाना चाहिए।

संदर्भ संकेत :

1. मन्नू भंडारी : 'महाभोज', पृ. 6
2. डॉ. वंशीधर, डॉ. राजेन्द्र मिश्र, 'मन्नू भंडारी का श्रेष्ठ सर्जनात्मक साहित्य', पृ. 102
3. मन्नू भंडारी : 'एक कहानी यह भी', पृ. 133
4. रेणु : 'मैला आँचल', पृ. 290
5. मन्नू भंडारी : 'महाभोज', पृ. 116
6. वही, पृ. 119
7. मन्नू भंडारी : 'एक कहानी यह भी', पृ. 135
8. मन्नू भंडारी : 'महाभोज', पृ. 134
9. वही, पृ. 118
10. वही, पृ. 147
11. 'राष्ट्रीय सहारा', 25 मई, 2003
12. मन्नू भंडारी : 'महाभोज', पृ. 158
13. वही, पृ. 140
14. वही, पृ. 65
15. वही, पृ. 66
16. वही, पृ. 5
17. वही, पृ. 62
18. प्रो. चमन लाल : 'पंजाबी उपन्यास में दलित जीवन का यथार्थ' दलित साहित्य वार्षिकी, पृ. 56
19. मन्नू भंडारी : 'महाभोज', पृ. 12
20. वही, पृ. 182
21. नंदनी मिश्रा : 'मन्नू भंडारी का उपन्यास साहित्य', पृ. 136
22. मन्नू भंडारी : 'महाभोज', पृ. 5
23. वही, पृ. 182

*****

वैदिक चिंतन परंपरा में संपोषी विकास की अवधारणा

-शुभम केशरी,
शोधछात्र
डॉ. श्रुतिकान्त पाण्डेय, सहाचार्य,
एमिटी इंस्टीट्यूट फॉर संस्कृत स्टडीज़ एण्ड रिसर्च
एमिटी विश्वविद्यालय, उत्तरप्रदेश, नोएडा।

शोधसार : भारत में प्रकृति के अंगों में देवत्व-दर्शन की सनातन परम्परा रही है, जिसका ठोस दार्शनिक एवं आध्यात्मिक आधार वैदिक साहित्य में देखा जा सकता है। यह माना गया कि यदि मानव जाति की सुरक्षा करनी हैं तो हमें प्रकृति और जीव-जगत की भी रक्षा करनी होगी। भारतीय चिन्तन परम्परा में जन्मदात्री के प्रति जो भाव प्रदर्शित किया गया है, वही भाव यहाँ प्रकृति के प्रति भी प्रस्तुत किया गया है। प्रकृति चिंतन की यही परंपरा पारिस्थितिकीय संतुलन के लिए मील का पत्थर साबित हो सकती है। प्रस्तुत शोध के माध्यम से इस परम्परा में व्यापक संपोषी विकास के सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया गया है, जिससे यह प्रमाणित होता है कि वैदिक चिन्तन में इस प्रकार की अवधारणा सृष्टि की आदि से समाहित रही है।

इस शोध के लिए गुणात्मक अनुसंधान विधि का प्रयोग किया गया ताकि वैदिक साहित्य के संपोषी विकास सम्बन्धी तत्त्वों के महत्त्व को प्रस्तुत किया जा सके। शोध के लिए एकत्र किए गए तथ्यों के विश्लेषण से पता लगता है कि संपोषी विकास के लिए जितनी आवश्यकता परिधीय शक्तियों यानि 'बाह्य-बल' की होती है, उतनी ही आन्तरिक बल या 'अन्तर्धि' की भी होती है। यदि इनमें से किसी एक पक्ष की अनुपस्थिति हुई तो विकास संपोषी नहीं होगा। इसके प्रमाण के रूप में वैदिक वाङ्गमय में कहा गया है कि अन्तर्धि किसी भी तत्त्व को ऊर्जा व गति प्रदान करता है और परिधि उस तत्व के जीवन को संरक्षण प्रदान करती है। स्पष्ट है कि इन दोनों में किसी भी प्रकार का असंतुलन सम्पूर्ण जीवन-प्रवाह को भयावह वातावरण में परिवर्तित कर सकता है। अतः परिधि या भौतिक वातावरण को प्रदूषणविहीन करना आवश्यक है।

बीजशब्दः वैदिक चिंतन, संपोषी विकास, छन्दस्, अन्तर्धि और परिधि।

परिचय : सभी वेदों में मानव व प्रकृति के मध्य अन्योन्याश्रित सम्बन्ध माना गया है। अथर्ववेद में इसमें माँ-बेटों का सम्बन्ध बताया गया है। इस सम्बन्ध में प्रकृति के प्रति श्रद्धा का भाव जागृत होता है, जिसमें प्रकृति भोग की वस्तु न होकर जीवनदायिनी सिद्ध होती है। वैदिक धारणा है कि प्रकृति व मनुष्य दोनों के संपोषण के लिए आवश्यक है कि सम्पूर्ण ब्रह्मांड को ही सुरक्षित रखा जाय। इसके लिए परिधि को आधार माना गया है। परिधि, जिसे छन्दस भी कहते हैं भौतिक तत्वों को घेरे हुए होती है। ये भौतिक तत्व हैं आपः (जल) वाताः (वायु) औषधिः (वृक्ष) आदि। ये ऐसे तत्व हैं जो हमारे जीवन को सरंक्षण व शक्ति (ऊर्जा) प्रदान करते हैं। वेदों में परिधि शब्द सुरक्षा के अर्थ में आया है। स्वयं प्रकृति जीव की परिधि है । इस परिधि में पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्यौः, जल, अग्नि आदि देव, दिशाएँ, पर्वत, मेघ, वृक्ष, औषधि वनस्पति, पशु आदि समाहित हैं। इन सभी रक्षक परिधि रूप पदार्थों में परमसत्ता का प्रमुख स्थान है जिससे सभी जीवों की सुरक्षा होती है। परिधि के बने रहने से जीव का अस्तित्व बना रहता है। परिधि

के बने रहने का अर्थ है पारिस्थितिकी व पर्यावरण का संतुलन होना, जिससे पर्यावरण शुद्ध रहता है और जीव प्रदूषण का शिकार नहीं होता । इससे संपोषी विकास में सहायता मिलती है। अथर्ववेद का मंत्र इस तथ्य की पुष्टि करता है - "सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः । यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनाय कम् ॥ [1]

अथर्ववेद में जल, वायु और औषधियों को छन्दस या आच्छादक बताया गया है। पृथ्वी भी ब्रह्म की परिधि है, जो सभी जीव-जन्तुओं, पदार्थों की आच्छादक अथवा परकोटा है। इसी सन्दर्भ में एक अन्य दृष्टान्त है- "उर्वीरासन्परिधयो वेदिर्भूमिरकल्पत । तत्रैतावग्नी आधत्त हिमं घ्रंसं च रोहितः ॥ [2]अर्थात पृथ्वी जगत की पर्यावरण रूपी परिधि है, जिसमें सूर्य और चन्द्रमा का प्रकाश आता है, एवं यज्ञ आदि सम्पन्न होते हैं। यह पृथ्वी परिधि रूप होती हुई जीव-जगत का संरक्षण कैसे करती है यहाँ इस वेद मंत्र में स्पष्ट है - "यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः । यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत्सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु ॥ [3]

सृष्टि के संपोषी विकास के लिए जितनी आवश्यकता परिधि (बाह्य) की होती है, उतनी ही अन्तर्धि (आन्तरिक बल) की भी। यदि इनमें से किसी एक पक्ष की अनुपस्थिति हुई तो विकास संपोषी नहीं होगा। वैदिक वाङ्मय में इसका प्रमाण है कि अन्तर्धि किसी भी तत्व को ऊर्जा व गति प्रदान करता है और परिधि उस तत्व के जीवन को संरक्षण प्रदान करता है । स्पष्ट है कि असंतुलन सम्पूर्ण जीवन को भयावह वातावरण में परिवर्तित कर सकता है। अतः परिधि (भौतिक वातावरण) को प्रदूषणविहीन करना आवश्यक है। यजुर्वेद में स्पष्ट कहा गया है कि अपने वायुमण्डल और अंतरिक्ष को असंतुलित न करो- "सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसꣳ सुशर्माणमदितिꣳ सुप्रणीतिम्।दैवीं नावꣳ स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये॥ [4]

पेड़-पौधों के बिना जीवन सम्भव नहीं है। पेड़-पौधे जीवित प्राणी को प्राण देते हैं। ये क्लोरोफिल की उपस्थिति में जीवित प्राणी को आक्सीजन प्रदान करते हैं। पर्यावरण की रक्षा के लिए वनस्पति एवं वृक्षारोपण को आवश्यक मानते हुए अथर्ववेद के एक मंत्र द्वारा वन में वनस्पति आरोपण का स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि पंच औषधि प्रदूषण को दूर करने में सक्षम हैं। ऋषियों का मानना है कि सोम, दर्भ, यव, भंग एवं सह ये ऐसे वृक्ष एवं वनस्पतियाँ है जिनमें प्रदूषण नष्ट करने की विशेष शक्ति है - "पञ्च राज्यानि वीरुधां सोमश्रेष्ठानि ब्रूमः । दर्भो भङ्गो यवः सहस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ [5]

मानवीय जीवन के लिए जल की विशिष्टता सनातन है। जल ही जीवन है, जल ही विकास का आधार है और जल हमारे पर्यावरण का अविभाज्य अंग है। इसीलिए संपोषी विकास के लिए भारतीय चिन्तन परम्परा में शुद्ध एवं औषधियुक्त जल की कामना की गयी है। वैदिक ऋषि जल की शुद्धता पर विशेष बल देते हैं। क्योंकि शुद्ध जल में रोग विनाशक तत्व होते हैं और यह दीर्घ जीवन का सिद्ध सूत्र है।

वैदिक में अनेक स्थानों पर 'जल' को सृष्टि का मूल कारण कहा गया है। ऋग्वेद के नासदीय सूक्त (10/129/3) में कहा गया है कि जब न सत् था, न असत्, जब न पृथ्वी थी और न आकाश; उस समय जल विद्यमान था। बृहदारण्यक उपनिषद में कहा गया है कि अव्यक्त का पूर्व रूप जल ही था और जल से ही सत्य अथवा सृष्टि का सृजन हुआ है - "आप एवेदमग्र आसुस्ता आपः सत्यमसृजत। [6]

जल चेतना का कारण है क्योंकि जल में अमृत एवं औषधि तत्व विद्यमान हैं। वैदिक चिन्तन परम्परा में उल्लिखित है कि यदि शुद्ध जल का उपयोग किया जाय तो वह मंगलप्रदाता तथा घृत के समान पुष्टिवर्धक होता है। जल में आयुर्वेदीय गुण हैं। जल भोजन पचाने में अत्यन्त उपयोगी है। जल से प्राणशक्ति विवर्धित होती है वह कान्ति बल और पौरूष

का आधार है। वह मानव को दीर्घजीवी बनाता है - "आपो भद्रा घृतमिदाप आसन्नग्नीषोमौ बिभ्रत्याप इत्ताः । तीव्रो रसो मधुपृचामरंगम आ मा प्राणेन सह वर्चसा गमेत् ॥ [7]

ऋग्वेद में प्रार्थना है कि जल में सब प्रकार की औषधियाँ हैं। उसमें अग्नि भी है, जो कल्याणकारी है। इसमें मानवीय सभ्यता बने रहने के लिए शुद्ध जल प्रवाहित होने की कामना की गयी है। ऋषि की प्रार्थना है कि शुद्ध जल ही हमारे शरीर के लिए बहे अशुद्ध नहीं। -

"अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा । अग्निं च विश्वशम्भुवमापश्च विश्वभेषजीः॥ [8]

मनुस्मृति में सरिताओं, तालाबों, पोखरों में मल-मूत्र विसर्जन करने की मनाही की गयी है। यदि हम नदियों में विभिन्न प्रकार के रासायनिक कचरों और गन्दे नालों को प्रवाहित करते रहेंगे तो हमें शुद्ध जल की प्राप्ति संभव नहीं होगी। यहाँ स्पष्ट रूप से नाना प्रकार की अशुद्धियों को जल में प्रवाहित करने का निषेध किया गया है। यहाँ तक कहा गया है कि इनमें थूक अथवा दूषित पदार्थ, रक्त, या विष अर्थात् रासायनिक कूड़ा कचरा व सड़ा चमड़ा, मरा हुआ पशु या अन्य किसी तरह के वर्ज्य पदार्थ का विसर्जन न करें।

नाप्सु मूत्रं पुरीषं या ष्टवन समुत्सृजेत ।
अमेध्यलिप्तमन्यद्वा लोहितं या विषाणि वा।।[9]

सभी व्यक्तियों को स्वस्थ जल की प्राप्ति हो, इसलिए वैदिक ऋषि मनीषियों ने यह कामना की कि हमारे समस्त मरूस्थल का जल सुखदायक हो, जलीय क्षेत्रों का जल सुखदायी हो, पृथ्वी खोदकर निकाले हुए कुएँ आदि का जल सुखदायी हो, घड़े में रखा हुआ जल सुखदायी हो और वर्षा से प्राप्त जल सुखदायी हो - "शं न आपो धन्वन्याः३ शमु सन्त्वनूप्याः। शं नः खनित्रिमा आपः शमु याः कुम्भ आभृताः। शिवा नः सन्तु वार्षिकीः ॥ " [10]

यदि वैदिक ऋषि मानिषियों एवं चिन्तकों की सोच को विकास की कड़ी से जोड़ा गया होता तो गंगा नदी का जल इतना दूषित न होता और आज पेय जल की अनुपलब्धता न होती वैदिक ऋषियों ने जल और उसके स्रोतो को दैवीय स्वरूप प्रदान करके उसकी सुरक्षा को महत्वपूर्ण माना था। लेकिन हमने विकास की अन्धी दौड़ में उसकी परवाह नहीं की। कहते हैं कि संस्कृतिक का विकास नदियों के किनारे हुआ है। नदियों के किनारे ही आध्यात्मिक चेतना विकसित हुई। यही चेतना प्राकृतिक उपादानों को संरक्षित करने का कार्य करती है। नदियों को देवतुल्य मानकर सृष्टि के विकास का आदि कारण माना गया है।

ऋग्वेद में नदी सूक्त (10/75) की व्याख्या मिलती है जिसमें नदी के प्रति आस्था एवं आदर का भाव प्रदर्शित किया गया है। यह भाव प्रदर्शित किया गया है कि यह नदी हमारे जीवन को सदैव सिंचित करती रहे, अर्थात् सदैव स्वच्छ एवं स्वस्थ जल प्राणियों को प्राप्त होता रहे। ऋग्वेद में यह स्पष्ट आदेश है कि जो जल बह रहा है। उसे हवि दो क्योंकि जल में अमृत है। जल में औषधितत्व है। जल में सारे रोगों का इलाज है जल, पाप अर्थात् प्रदूषण को बहा देता है। जल तेजस्वी बनाता है और यह जल ही है जो मनुष्य को दीर्घजीवी बनाता है। लिख गया हैं कि जल समस्त दुःखों, रोगों को नष्ट करने वाला है, यह सर्वोत्तम वैद्यरूप तत्व है। कहा गया कि जल अत्यन्त कल्याणकारक हैय जैसे माता पुत्र का कल्याण चाहती है वैसे जल भी कल्याण करते हैं जल अमृत रूप है, जीवनी शक्ति हैं, सब औषधियों का रस है।

वृक्ष एवं जल की तरह वायु पर्यावरण का अनमोल व आवश्यक तत्व है जिसके बिना पृथ्वी पर जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती। वायुमण्डल का फैलाव स्थल और जल मण्डल के ऊपर करीब 200 मील तक है। वायुमण्डल में विभिन्न मात्राओं में आक्सीजन, नाइट्रोजन, कार्बनडाई आक्साइड जैसी गैसें विद्यमान रहती है जिससे पारिस्थितिक तन्त्र सुचारू रूप से चलता है वायुमण्डल ही जीवित प्राणियों एवं

वनस्पतियों यहाँ तक जल आदि की पराबैगनी किरणों से रक्षा करता है और उल्काओं को जलाकर नष्ट कर देता है। वेदों में वर्णित है कि वायु जीवित प्राणी के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है। यह जड़ चेतन जगत का स्रोत है। यह पृथ्वी जल आदि की अपेक्षा सूक्ष्म होने से अति शक्तिशाली है। इसके द्वारा सभी रक्षित एवं प्रतिष्ठित हैं। शुद्ध वायु रोगादि दोषों को दूर करने वाला होता है- "आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः । त्वं हि विश्वभेषज देवानां दूत ईयसे॥ [11]

ऋग्वेद के इस मंत्र में वायु को विश्व भेषज कहा गया है और यह प्रार्थना की गयी है कि वह दूषित वायु को दूर करे तथा शुद्ध वायु भेषजवात को प्रवाहित करें वैदिक युग के ऋषि वैज्ञानिक इस रहस्य से परिचित थे कि शुद्ध वायु ह्रदय के लिए शान्तिदायक और सुखकारी होती है और आयु को बढ़ाती भी है। इसीलिए एक अन्य मंत्र में ऋषि यह प्रार्थना करते हैं कि ऐसी वायु प्रवाहित हो, जो हमारे जीवन को दीर्घजीवी बनाए- "वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे । प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ [12]

शोध निष्कर्ष : यदि मानवीय जीवन को बदलते परिवेश में सुरक्षित, व्यवस्थित और सुस्थिर रखना है अर्थात् जीवन को दीर्घजीवी बनाना है तो हमें वैदिक व उत्तर वैदिक चिन्तन परम्पराओं में बताये गये जीवन सूत्रों को अंगीकृत और आत्मार्पित करना होगा। मानव समाज में पारिस्थितिक तंत्र को सुस्थिर रखने के लिए पर्यावरणीय सुरक्षा का बोध पैदा करना होगा और सृष्टि के पस्पर निर्भरता के सिद्धान्त को जीवन्त बनाना होगा। विभिन्न पाश्चात्य चिन्तकों ने भौतिकवादी- उपभोक्तावादी जीवनदर्शन को त्यागकर अब वैदिक दर्शन की 'त्याग की संस्कृति' को अपनाने पर बल दिया है । अर्नेनीस, हेडेगर, कैरोलिन मर्चेन्ट एवं आदि चिन्तकों ने वैदिक दर्शन में बताये गये जीवनादर्श को अपनाने पर बल दिया है। इनका स्पष्ट मत है कि संपोषी जीवन दृष्टि की वैदिक मान्यताएं मनुष्य में परस्परता, अन्योन्याश्रितता और अंतःसलिलता का सृजन कर संपोष्य विकास की वैदिक दिशा तय करने में सक्षम है। अतः जीवमण्डल के विज्ञानशील मानव को इस दिशा में चलने पर कोई हिचक नहीं होनी चाहिए ।

1. अथर्ववेद 8/2/25.
2. अथर्ववेद 13/1/46
3. अथर्ववेद 12/01/03
4. यजुर्वेद 21/6
5. अथर्ववेद 11/8/15
6. बृहदारण्यक 39/05/01.
7. अथर्ववेद 3/13/5.
8. ऋग्वेद 1/23/20.
9. मनुस्मृति 4/56
10. अथर्ववेद 1/6/4
11. अथर्ववेद 4/13/3
12. ऋग्वेद 10/186/1

*****

वेदों में पर्यावरण विज्ञान

हंसराज,
शोधार्थी
एमिटी विश्वविद्यालय, नोएड़ा।
मो. 8810533783
ईमेल –hansrajr18@gmail.com

– डॉ. देवेन्द्र नाथ ओझा
शोधनिर्देशक
सहायक प्रोफेसर, एमिटी
विश्वविद्यालय .नोएडा
ईमेल –dnojha12@gmail.com

भारतीय संस्कृति के प्राणतत्त्व 'वेद' ही हैं, यह आर्यमेधा ने मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है। भारतीय धर्म, दर्शन, अध्यात्म, आचार, कला, विज्ञान ये सभी वेदों से ही गृहीत हैं। जीवन और साहित्य की ऐसी कोई विधा नहीं है, जिसका बीज वैदिक वाङ्मय में न मिलता हो। समष्टिरूप में समग्र भारतीयसाहित्य, जन-जीवन एवं सभ्यता की आधारभूमि यदि वेदों को ही कहा जाए, तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

वैदिक ज्ञान परम्परा में संस्कृति एवं सभ्यता की अमूल्य निधि वेद है। जिसका उपयोग वर्तमान समय में सम्पूर्ण विश्व भिन्न-भिन्न अर्थों में कर रहा है। अनेक देशों के विद्वान् वेदों में सन्निहित ज्ञान से प्रभावित हुए हैं। वेदों के अध्ययन ने नवीन शोधों और विज्ञान को भी परिवर्तित किया है। वेद विश्व साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ है। यह विभिन्न देवताओं के स्तुतिपरक मन्त्रों का संकलन है। इनकी उत्पत्ति विराट् पुरुष के मुख से मानी गई है।

'तैत्तिरीय ब्राह्मण' में वेदवाणी को परमेश्वर का अविनाशीरूप, यज्ञ का प्रथम निर्माण करने वाली, वेदों की माता और अमृत की नाभि कहा गया है। यथा -

वागाक्षरे प्रथमजा ऋतस्य।
वेदानां माताऽमृतस्य नाभिः।।

वेद भारतीय जीवन के सर्वस्व है। इसलिए स्वभावतः वे भारतीय संस्कृति के भी मूल स्रोत हैं। अपनी भौतिक और आध्यात्मिक प्रगति की दिशा में आर्य जाति ने सभ्यता के उषाःकाल में जो कार्य किये उनका प्रौढ एवं प्रामाणिक इतिहास वेदों में निहित है। वेद ज्ञान के सागर हैं, जिनसे समस्त विद्याओं, शास्त्रों और कलाओं की अनन्त धाराएँ वहीं। वेद वे ज्ञानचक्षु हैं, जिन्होनें मनुष्य को अपरोक्ष, अप्रत्यक्ष तथा अलौकिक रहस्यों की जानकारी दी।

वेदों के नियिमित स्वाध्याय की फलोपलब्धि के सम्बन्ध में 'शतपथ ब्राह्मण' में लिखा है कि धन-धान्य से परिपूर्ण पृथिवी का दान करने से भी जिस त्रिलोक-सम्पदा और अक्षय धाम की प्राप्ति नहीं हो सकती है, वेदों के स्वाध्याय से वह सहज ही प्राप्त हो जाती है। महर्षि मनु का कथन है कि 'वेदशास्त्र का तत्व जानने वाला कोई भी व्यक्ति किसी भी आश्रम में निवास क्यों न करें, वह इसी लोक में रहते हुए ब्रह्म का साक्षात्कार करता है।

वेदशास्त्रार्थतत्वज्ञो यत्रकुत्राश्रमे में वसन्।
इहैव लोके तिष्ठन् स ब्रह्मभूयाय कल्पते।।

वेदाध्ययन के साथ वेदार्थज्ञान भी आवश्यक बताया गया है। यास्क ने लिखा है कि 'जो व्यक्ति वेदाध्ययन तो करता है, किन्तु उसका अर्थ नहीं जानता, वह सूखे वृक्ष की तरह केवल भार ढ़ोने योग्य है। किन्तु जो वेदार्थ को भी जानता है, वह समस्त कल्याण का उपयोग करता है। ज्ञान से सब पापों का मालिन्य दूर कर स्वर्ग प्राप्त करता है।' वेदों में ज्ञान की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। ऐसा माना जाता है कि सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर ने वेदों का ज्ञान अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा नामक चार ऋषियों को प्रदान किया था।

वेदों में पर्यावरण संरक्षण के सम्बन्ध में अनेक स्थलों में उल्लेख किया गया है। वेद के अनुसार पर्यावरण के तीन संघटक तत्त्व हैं 1. जल 2. वायु और 3. औषधियाँ। इनके कई नाम और रूप हैं। वेद के एक मन्त्र में कहा गया है -

त्रीणिच्छन्दांसि कवयो वि येतिरे पुरुरूपं दर्शतं विश्वचक्षणम्।
आपो वाता ओषधयः तान्येकस्मिन् भुवन आर्पितानि।।[1]

इस मन्त्र के अनुसार ओषधियाँ भी पर्यावरण की प्रमुख घटक हैं। जिस प्रकार जल और वनस्पतियों के बिना जीवन का अस्तित्व सम्भव नहीं है, उसी प्रकार वृक्षों के बिना भी जीवन का अस्तित्व सम्भव नहीं है। इस प्रकार वेदों में वृक्षों और वनस्पतियों के महत्त्व पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला गया है।

वायु प्रदूषण- मनुष्य या अन्य जीवधारी बिना श्वास लिए जीवित नहीं रह सकते। यह जीवन का आधार है। अथर्ववेद के एक मन्त्र में कहा गया है **''आपो वाता ओषधयः''** [2]इसका भावार्थ यह है कि पर्यावरण की रक्षा हेतु वायु की शुद्धता अनिवार्य रूप से की जानी चाहिए।

वेद के ही एक मन्त्र में कहा गया है -

युवं वायो सविता च भुवनानि रक्षथः।[3]

इस मन्त्र में वायु के महत्त्व का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वायु के दो गुण हैं - प्राणवायु द्वारा मनुष्य में जीवन शक्ति का संचार करना और अपान वायु द्वारा शरीर से सभी दोषों को बाहर निकालना। वायु को विश्वभेषज् कहा गया है क्योंकि यह सभी रोगों और दोषों को नष्ट करता है। वेदों के एक मन्त्र में कहा गया है-

यददो वात ते गृहे मृतस्य निधिर्हितः।

ततो नो देहि जीवसे।।[4]

इस मन्त्र का भावार्थ यह है कि वायु में अमृत अर्थात् ऑक्सीजन है, उसे नष्ट न होने दें। इससे यह सन्देश मिलता है कि वायु को प्रदूषण से बचाना चाहिए। पर्यावरण के शोधक तत्त्व - अथर्ववेद के एक मन्त्र में कहा गया है-

ये पर्वताः सोमपृष्ठा आप उत्तानषीवरीः।

वातः पर्जन्य आदग्निस्ते क्रव्यादमशीशमन्।।[5]

उपर्युक्त मन्त्र में कहा गया है कि पर्वत, जल, वायु, वर्षा और अग्नि पर्यावरण को शुद्ध करने वाले तत्त्व हैं। ये प्रदूषण को नष्ट करते हैं।

स्थलमण्डल का प्रदूषण- स्थलमण्डल में होने वाले प्रदूषण को रोकने के लिए वन और वनस्पतियां प्रमुख साधन हैं। वनों के विनाश से जीवन प्रभावित होता है क्योंकि पेड़ पौधे ही प्रकाश संश्लेषण द्वारा वातावरण में उत्पन्न होने वाली कार्बन-डाई-ऑक्साइड गैस को पुनः ऑक्सीजन में परिवर्तित करते हैं। औद्योगिकीकरण और वाहनों द्वारा उत्सर्जित होने वाली विषैली गैसों को नियंत्रित किया जाना चाहिए। पेडों के कटान से भूमि में मिट्टी को रोकने की क्षमता कम हो जाती है इसलिए अधिकाधिक वृक्षों का रोपण करके सुरक्षा आवश्यक है। भूक्षरण की गति को रोककर अनावृष्टि को रोका जा सकता है।

वेद के एक मन्त्र में कहा गया है-

यत्ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु।

मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम्।।[6]

अर्थात् हम पृथ्वी के जिस भाग को खोदते हैं, उसे फिर से पूरा करें। किसी भी अवस्था में पृथिवी के हृदय और मर्मस्थलों को क्षति न पहुँचाएँ। इसका अभिप्राय यह है कि हम पृथिवी से कोयला, गैस और खनिज पदार्थ निकालते या पहाड़ों को तोड़कर सड़कें बनाते हैं तो उनसे रिक्त हुए स्थानों को फिर से भरकर उनमें वृक्ष लगाकर उन्हें आच्छादित कर दें। अन्यथा भू सन्तुलन बिगड़ जाता है और भूकम्प, जल स्रोत सूख जाना, ग्लेशियर समाप्त हो जाना या तेज गति से खिसक जाना आदि दुर्घटनाएँ होती हैं। पृथ्वी के प्रदूषण और अत्यधिक दोहन से रुष्ट हो जाने के कारण प्राकृतिक आपदाएँ जैसे खेती सूख जाने से दुर्भिक्ष पड़ना, ऊर्जा के स्रोतों का नष्ट हो जाना, अतिवृष्टि या अनावृष्टि होने से महामारी फैलती है और जन-धन की अत्यधिक हानि होती है।

3. जलमण्डल का प्रदूषण - वेदों में जलमण्डल की भी अत्यन्त उपयोगिता बताई गई है। जल को जीवन, अमृत, भेषज्, रोगनाशक और आयुवर्धक माना गया है। मनुष्य के शरीर में 60 से 70 प्रतिशत भाग जल तत्त्व का ही होता है। जल को किसी भी प्रकार से प्रदूषित करना महापाप माना गया है।

जल के विषय में वेदों में कहा गया है -

''आपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि।

पयस्वानग्न आ गहि तं मा सं सृज वर्चसा।।[7]

अर्थात् हम लोग जो स्वाभाविक रस गुण वाला जल है, उसको अच्छी प्रकार से प्राप्त करें।

वेदों में अनेक मन्त्रों में कहा गया है कि जल और वनस्पतियों का मनुष्य पर बहुत उपकार है। जल और वायु का घनिष्ठ सम्बन्ध है। वायु गन्धर्व है और जल अप्सरा है। जल ऊर्जा का स्रोत भी है। हमें जल और ओषधियों से तादात्म्य स्थापित करना चाहिए और उन्हें मित्र तुल्य समझना चाहिए। जल को प्रदूषण से बचाने के लिए वेदों के एक मन्त्र में कहा गया है कि 'हे परमात्मन्, हमें प्रदूषण रहित जल, ओषधियाँ और वन दो। यहाँ मन्त्र में 'अविज' और 'निविज' शब्द प्रदूषण रहितता के लिए प्रयुक्त हुआ है।[8] प्रदूषण रहित जल स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है। वेदों के एक मन्त्र में कहा गया है कि नदियों आदि के जल को प्रदूषण मुक्त रखने का उपाय यज्ञ है -

अपो देवीरुप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः।

सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः।।[9]

अर्थात् जिस व्यवहार में सूर्य की किरणें समुद्र और नदियों से दिव्यगुणों को प्राप्त करने वाले जलों को पीती हैं, उन जलों को हम लोग हवन करने योग्य पदार्थों को उत्पन्न करने के लिए अच्छी प्रकार स्वीकार करते हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती इस मन्त्र का भावार्थ यह लिखते हैं कि सूर्य की किरणें जितना जल छिन्न-भिन्न करती हैं अर्थात् कल-कल करके वायु के संयोग से खींचती हैं, उतना ही वहाँ से निवृत्त होकर भूमि और ओषधियों को प्राप्त होता है।

वेदों में वृक्षों और वनस्पतियों के महत्त्व का वर्णन किया गया है। ओषधियाँ प्रदूषण को नष्ट करती हैं। इसलिए उन्हें विषदूषणी कहते हैं।

वृक्ष और वनस्पतियाँ मनुष्य को जीवन-शक्ति देती हैं और उसकी रक्षक हैं। वृक्ष संसार की रक्षा करते हैं और उसे प्राण वायु रूपी दुग्ध पिलाते हैं। अतः

उन्हें माता कहा गया है। वृक्ष मनुष्य को जीवित रखते हैं, इसलिए ये मानव मात्र के रक्षक कहे गए हैं। इन्हें प्रदूषण का नाशक बताया गया है।

वेद में कहा गया है - **'अश्वत्थो देवसदनः'**[10]। अश्वत्थ[11] का वेदों में बहुत गुणगान किया गया है। इसमें देवों का निवास माना गया है। यह अन्य वृक्षों की तुलना में कार्बन-डाई-ऑक्साइड से प्रकाश संश्लेषण की क्रिया द्वारा अधिक ऑक्सीजन बनाता है। सम्भवतः इसी कारण से कालान्तर में इनकी पूजा होने लगी। इसी प्रकार कुष्ठ, भद्र[12], चीपुद्रु[13], प्लक्ष[14] न्यग्रोध[15], खदिर[16], धव[17], वरण[18], उदुम्बर[19], लाक्षा[20], रोहणी, जंगिड[21], आंजन[22], मदुध[23], नलद[24] का वर्णन अथर्ववेद के विभिन्न मन्त्रों में किया गया है। जिनसे प्रदूषण रोका जा सकता है।

वेदों में वनस्पतियों को लगाने और वृक्षों को बढ़ाने की बात कही गई है - **'वनस्पतिं वन आस्थापयध्वम्।'**[25] वेदों के ओषधिसूक्त और अरण्यानी सूक्त में विभिन्न प्रकार की ओषधियों और वनों के गुणों का और उपयोगिता का उल्लेख है।

यज्ञ या अग्निहोत्र द्वारा वायुमण्डल में उपलब्ध ऑक्सीजन और कार्बन-डाई-ऑक्साइड गैस का सन्तुलन बना रह सकता है। प्रकृति में एक चक्र की व्यवस्था है।

प्रत्येक वस्तु अपने मूल स्थान पर पहुँचता है। इसी के आधार पर ऋतु चक्र, वर्ष चक्र, अहोरात्र चक्र, सौर चक्र, चान्द्र चक्र आदि प्रवर्तित होते रहते हैं। प्राकृतिक चक्र को हम यज्ञ भी कह सकते हैं। यह प्राकृतिक यज्ञ जगत् में हर क्षण चल रहा है।

वेदों में सर्वत्र प्राकृतिक संरक्षण का उपदेश किया गया है।

प्रकृति के संरक्षण का सीधा प्रभाव मनुष्य पर पड़ता है, यह उसका प्रमुख कर्तव्य भी है। क्योंकि मनुष्य से भिन्न जितने भी प्राणी हैं, वे अविवेकी हैं। उनमें विवेक का न होना प्रतीत होता है। इसीलिए वे अपने मनन एवं चिन्तन के द्वारा सही और गलत का निर्णय नहीं कर सकतें हैं। वेदों काल में प्रकृति के प्रति विशिष्ट संरक्षण की भावना मिलती है। उस प्रकृति के प्रति जागरूकता का उपयोग वर्तमान प्रासंगिकता में किस प्रकार से किया जा सकता है, इस शोध में उसे विश्लेषित किया गया है।

निष्कर्षतः

इस प्रकार वेद किसी देश-काल-परिस्थिति-व्यक्ति आदि से सम्बद्ध न होकर सार्वदेशिक, सार्वकालिक और नित्य हैं। इन नित्य वेदों में समस्त मानवता के हित-कल्याण की बातें कही गयी हैं। उनके इस महत्त्व एवं गौर को दृष्टि में रखकर ही गम्भीर अनुशीलन के पश्चात् मुक्तकण्ठ से उनकी प्रशंसा की। उनका यह मानवतावादी दृष्टिकोण ही उनकी विशिष्टता का द्योतक है। वेदों के इसी हित-कल्याण पर आधारित तथ्यों पर वैदिककालीन प्रकृति संरक्षण एवं वर्तमान में उसकी प्रासंगिकता का इस शोध में विश्लेषण किया गया है। वैदिककालीन प्रकृति का स्वरूप, उसका उपयोग तथा संरक्षण एवं वर्तमान में उसकी प्रासंगिकता को दृष्टिगत रखते हुए इस शोध में वर्णित तथ्यों को गवेषणात्मक रूप से विश्लेषित कर निरूपित किया गया है।

सन्दर्भ सूची –

1. अथर्ववेद 18/1/17
2. अथर्ववेद 18/1/17
3. अथर्ववेद 4/25/3
4. ऋग्वेद 10/186/03
5. अथर्ववेद 3/21/10
6. अथर्ववेद 12/1/35
7. ऋग्. 1/23/23
8. वेदों में वर्णित औषधि और उनका प्रयोग, (शोध प्रबन्ध) आचार्य धनंजय
9. ऋग्वेद 1/23/18
10. ऋग्वेद 10/101/11
11. पीपल
12. देवदार
13. चीड़
14. पिलखन या पाकर
15. बड
16. खैर
17. गोंद का वृक्ष
18. वरुण
19. गूलर
20. लाख
21. अर्जुन
22. अंजन
23. मुलहठी
24. खसखस या उशीर
25. ऋग्वेद 10/101/11

*****

भारत में लेखनकला: एक ऐतिहासिक विश्लेषण

डॉ. कामाख्या नारायण तिवारी
सहायक प्राध्यापक,
बौद्ध अध्ययन विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

भारत में लेखनकला की उत्पत्ति के बारे में जब हम दृष्टिपात करते हैं तब पाते हैं कि इस सम्बन्ध में विद्वानों का मत परस्पर विरोधाभासी है अर्थात् लेखन कला की उत्पत्ति का विषय अत्यन्त ही विवादास्पद रहा है। सभी सभ्यताओं ने अपने विकास की गति को अनवरत प्रवाहमान बनाने के क्रम में किसी न किसी रूप में अपने अभिव्यक्तियों को चिरस्थायी रखने के लिये लेखन-पद्धति को जन्म दिया होगा। अर्थात् निश्चित रूप से अपनी भाषा को अभिव्यक्त करने के तथा ज्ञान को चिरस्थायी बनाने के उद्देश्य से सभ्यताओं ने लिपि का विकास प्रारंभ किया होगा जो लगभग तीन चरणों से होकर यहाँ तक पहुँची। सर्वप्रथम सभ्यताओं के प्रारंभिक चरण में मानव ने अपनी भावनाओं को एक-दूसरे तक पहुँचाने के उद्देश्य से माध्यम के रूप में चित्रों का उपयोग किया होगा। इस क्रम में ज्ञान-प्रवाह को अभिव्यक्त करने में 'अक्षरों' का विकास प्रारंभ हुआ होगा। इसी क्रम के अगले चरण में अक्षरों को एक निश्चित रूप, नाम एवं उच्चारण दिया गया होगा जो आगे चलकर क्रमशः लिपि की वर्णमाला के रूप में विश्व के समक्ष अपना अस्तित्व बनाने में समर्थ हुई होगी। अन्तिम अवस्था में उपर्युक्त दोनों अर्थात् अक्षरों का रूप एवं वर्णमाला का अस्तित्व इनका सम्यक् विकास होता गया होगा जो कालान्तर में नियमों से आबद्ध होकर धीरे-धीरे अपने परिपक्व अवस्था में पहुँची, साथ ही देशकाल का अनुसरण करती हुई आज वर्तमान युग में अपने आधुनिक रूप में विद्यमान है। कहने का तात्पर्य यह है कि लेखनकला में अपने आरंभिक चरण से लेकर आजतक विभिन्न पड़ावों से गुजरते हुए अपने को क्रमशः न केवल विकसित किया बल्कि मानव के समक्ष अपने को ऐसे रूप में प्रस्तुत किया जो उसकी अति आवश्यक वस्तु के रूप में ऐसी मजबूरी बनी जिसको अपनाकर वह इस चरचार जगत में अन्य जीवों पर अपना न केवल पकड़ जमाया बल्कि जगत में सर्वश्रेष्ठ होने के दम्भ को भी सफल बनाया। यह सीर्फ भाषा एवं लेखन की कला के माध्यम से ही सम्भव था।

अब प्रश्न यह है कि लेखनकला की प्राचीनता क्या है? इस पर विद्वानों का मानना है कि लेखनकला यानि लिपि की उत्पत्ति उतनी ही प्राचीन है जिनती सृष्टि। यदि नेत्रों में समान सुन्दर लिपि को ब्रह्मा उद्भूत नहीं करते तो यह जगत भविष्य में शुभ-गति को प्राप्त नहीं होता ऐसा नारदस्मृतिकार का मानना है। इस स्मृति में भारतीय लेखनकला की उत्पत्ति को ब्रह्मा से जोड़ने का प्रयास किया गया है। इसी क्रम में बादामी से प्राप्त एक प्रस्तर-खण्ड, जिसका काल ईसा कीछठी (580 ई.) है, को विद्वानों ने प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया है। इसमें ताड़-पत्र का संबंध लेखन से तथा एक मानवाकृति को ब्रह्मा से जोड़ा गया है।

भारत में सिन्धु सभ्यता को एक अति उन्नत सभ्यता माना गया है जिसका काल लगभग 2500 ई.पू. से 1800 ई.पू. तक है। इस उन्नत सभ्यता से प्राप्त पुरातात्विक प्रमाणों से लेखन-कला पर प्रकाश पड़ता है। इस सभ्यता में विशेष लेखन-पद्धति (लिपि) का प्रयोग व्यापक स्तर पर किया गया है जो चित्रों के रूप में है। दुर्भाग्य से इसे अभी तक पढ़ा नहीं जा सकता है। लेकिन यह स्पष्ट है कि इस चित्रात्मक लिपि के, जिसे ब्रुस्टोफेदन (Brustophedan Script) लिपि के नाम से इतिहासकारों ने अभिहित किया है, प्रकाश में आने से लेखनकला की प्राचीनता निश्चित रूप से भारतीय संदर्भ में ईसा पूर्व 2500 के आस-पास चली जाती है, जो

शायद विश्व की लेखनकला का आरंभिक बिन्दु है ऐसा मानने में कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। यह लिपि बायी और से दायी ओर की तरफ लिखी जाती थी। अरब से आये इतिहासकार 'अल्बेरूनी' ने बताया है कि भारतीय अपनी लेखनकला को पाराशर के पूर्व भूल चुके थे। कालान्तर में पाराशर के पुत्र वेदव्यास ने प्रामाणिक हिन्दू-धर्म-ग्रंथों आदि के लिखने के लिये लेखन-कला का आरम्भ किया ऐसा अरबी इतिहासकार अल्बरूनी का भारतीय लेखनकला के संबंध में मत है।

इस क्रम में भारत के लेखन कला की प्राचीनता की पड़ताल करने पर हम पाते हैं कि इस सम्बन्ध में दो विचारधाराएँ देखने को मिलती हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने तो यह माना है कि भारतीयों को ईसा पूर्व छठी शताब्दी से पहले लेखनकला का ज्ञान नहीं था। जर्मन भाषा वैज्ञानिक मैक्समूलर का मानना है अष्टाध्यायी के प्रणेता पाणिनि ने कोई ऐसी बात अपनी इस रचना में नहीं कही है जिसके आधार पर यह बताया जा सके कि उनसे पूर्व यानि पाँचवी शताब्दी ईसा पूर्व से पहले भारतीय लेखनकला से परिचित थे। अष्टाध्यायी में यवनीय भाषा के उल्लेख को मैक्समूलर ने माना है कि इसका प्रयोग अध्ययन-अध्यापन के लिये किया जाता था। इसी तरह एक अन्य पाश्चात्य विद्वान मार्टिम ब्यूलर ने इसे "यवनों की भाषा" से समीकृत किया है। इन उपर्युक्त पाश्चात्य विद्वानों के कथनों से ऐसा परिलक्षित होता है कि भारतीय पाँचवी शताब्दी ईसा पूर्व से पहले लेखन कला से अनभिज्ञ थे। इसी तरह एक उदाहरण हमें चीनी ग्रंथ "फा- वान- शू- लिन" में मिलता है जहाँ लिपि को 'फान' अर्थात् ब्रह्मा से जोड़ा गया है। अन्यत्र भी वृहस्पति-स्मृति में सृष्टिकर्ता द्वारा पत्रों पर लिखने की चर्चा की गयी हैं। इसी तरह एक स्थान पर आदिपुराण मिलता है कि 'दृषभनाथ ने किसी लिपि को खोजकर अपनी कन्या को बताया था जिसका नाम 'बम्मी' थ। ईसा पूर्व 1000 के पहले भारत में लेखन कला प्रारंभ हो चुकी थी ऐसा मत इतिहासकार डॉ.

गौरीशंकर ओझा का भी है। पण्णवणा सूत्र में भी लेखनकला को ब्रह्मा से जोड़ा गया है। पुरातात्विक डोतो के रूप में विद्यमान सिक्के, मुहर एवं अभिलेखों इत्यादि से भी भारत में लेखनकला की प्राचीनता की पुष्टि होती है।

अब हम देखते है कि सिन्धु सभ्यता के बाद भारत में वैदिककाल का आरंभ होता है जिसकी जानकारी के प्रामाणिक स्रोतों के रूप में वेदों का अत्यधिक महत्त्व है। प्रथमवेद अर्थात् दृग्वेद में अनेक ऐसे शब्द प्राप्त होते हैं जो तत्कालीन व्याकरण पद्धति की ओर ईशारा करते हैं। वेदो की रचना मंत्रों में की गयी है जो पद्यमय हैं तथा निश्चित रूप से लिपिबद्ध रहे होंगे। कालान्तर में इनपर भाष्य एवं ब्राह्मणग्रंथों की रचना लिपि में अभाव में सम्भव प्रतीत नहीं होते। 'क्षरण' एवं "भ्राजष" जैसे शब्दों का यजुर्वेद में प्रयोग किसी कठोर लेखनी एवं चमकदार वस्तु की ओर निश्चित रूप से संकेत करते हैं। लेखनकला का संकेत अप्रत्यक्ष रूप से अथर्ववेद में भी किया गया है।

शतपथब्राह्मण में भी व्याकरण, लिंग भेद अन्य प्रारंभिक नियमों की चर्चा है। इसी प्रकार तैतरीय संहिता एवं तैतरीय उपनिषद में भी 'अक्षर' शब्द का उल्लेख है। यानि उपनिषद्, ब्राह्मण, आरण्यक एवं संहिताओं के समय में व्याकरण के नियमों का आरम्भ हो चुका था। यास्क ने निरूक्त की रचना की जो व्याकरण पर एक प्रामाणिक ग्रंथ है। यह लिपिबद्ध हैं। शिक्षा, कल्प, निरूक्त, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष आदि सूत्रकाल का साहित्य प्रत्यक्ष रूप से लेखनकला के प्रतिनिधि हैं। पाणिनिकृत अष्टाध्यायी एक ऐसा ग्रंथ है जिसमें पणों की उत्पत्ति, वर्णमाला, लेखनपद्धति एवं व्याकरण के नियमों आदि की विशद व्याख्या की गयी है। कहने का तात्पर्य यह है कि उपर्युक्त स्थापनाएँ इस ओर संकेत करती है कि पाणिनि जिनका समय 500 ई.पू. है. लेखनकला न केवल विद्यमान थी बल्कि अपनी विकसित अवस्था में रही होगी। भारद्वाज एवं

कश्यप जैसे अपने पूर्ववर्ती ऋषियों का उल्लेख कर पाणिनि ने इस संकेत को अत्यधिक मजबूत भी किया है। कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में तो लेखनकला पर एक अध्याय ही विस्तृत प्रकाश डालता है। इससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत में मौर्यकाल में लेखनकला विद्यमान थी। मेगास्थनीज ने भी यह उल्लेख किया है कि मौर्यकाल में प्रत्येक दस स्टेडिया पर मील के पत्थरो पर दूरी अंकित करायी गयी थी जो लिपि के अभाव में संभव नही था। नये वर्ष के दिन भविष्य-फल का आकलन एवं जन्मपत्री आदि बनाया जाना तथा साथ ही चौथी शताब्दी ईसा पूर्व के लगभग भारतीय कागज बनाने के कला से परिचित थे इस बात का प्रमाण है कि लेखन कला से भारतीय परिचित थे। ह्वेनसांग ने भी कहा है कि भारतीय लिपि अत्यन्त प्राचीन है।

बौद्धग्रंथों से भी लेखनकला की प्राचीनता हमें प्राप्त होती है। सुत्रान्त में 'अक्षरिका नामक खेल पर प्रतिबंध लगाया गया है। इसे आजीविका का साधन 'विनयपिटक' मे बताया गया है। गौतमबुद्ध के लिपिशाला में विश्वामित्र द्वारा सोने की कलम एवं चन्दन की तख्ती पर लिखना सीखा ऐसा ललितविस्तर में उल्लिखित है। जैन साहित्य समवायसूत्र एवं भगवति सूत्र मे भी लेखन कला पर प्रकाश डाला गया है।

अशोक के अभिलेखों से भी जो समस्त भारत में पाये गये हैं तथा इनकी तिथि लगभग तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व मानी गयी है, साथ ही अशोक से पूर्व के सिक्के भी पाये गये है। एरण से भी एक सिक्का मिला है जिस पर दाये से वाये लेखन लिखा है जिसे श्रीमान कनिघंम ने चतुर्थ शताब्दी ईसा पूर्व समय निर्धारित किया है। इसी प्रकार पिपरहवा से प्राप्त 490-80 ई. पू. का एक बौद्धकालीन कलश अभिलेख प्राप्त है जिससे लेखनकला की पुष्टि होती है। बाद के वर्षों के सम्पूर्ण भारत में अनेकानेक अभिलेख प्राप्त हैं जिससे सिद्ध होता है कि भारत में लेखनकला ईसापूर्व में ही अपने विकसित रूप में विद्यमान थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत में लेखनकला का इतिहास अति प्राचीन है। ईसा की पूर्व की शताब्दियों में यह विभिन्न लिपियों के रूप में समाज के सामने विद्यमान थी जो आज हमारे इतिहास की जानकारी के स्रोत के रूप में बहुत उपयोगी है। वैदिक काल से लेकर अबतक यह विभिन्न रूपों में पठनीय है लेकिन सिन्धु घाटी सभ्यता में भी यह एक विशेष रूप में विद्यमान थी। यदि इस सैन्धव लिपित को जिस दिन पढ़ने में कामयाबी मिल गयी उस दिन से इतिहास में एक ने युग की शुरूआत होगी लेकिन इससे कम से कम यह बात तो सिद्ध होती है कि लेखनकला की प्राचीनता ईसा पूर्व की आरंभिक सदियों तक अर्थात् सिंधु घाटी सभ्यता तक जाती है।

सन्दर्भ :

1. Ullman, B.L.: Ancient Writing and its Influence: Longmans, Green, 1932.
2. Gelb, I.J.: A Study of Writing: The Foundations of Grammatology: University of Chicago Press, 1952.
3. चौधरी, राधाकृष्ण : प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, भारती भवन, 1990.
4. Koshambi, D.D.: An Introduction to the Study of Indian History.
5. Tripathi R.S.: History of Ancient Indian.

*****

सामाजिक समस्याओं के संदर्भ में 'संजीव' का उपन्यास ''मुझे पहचानो''

-शशि कुमारी
(शोधार्थी)
हिन्दी-विभाग,
गुरु नानक देव विश्वविद्यालय,
अमृतसर। (पंजाब)
मोबाइल न. 9797634518
ई-मेल- shashikumari1051997@gmail.com

सार:-प्रत्येक साहित्यकार अपने युग विशेष का प्रतिनिधि होता है। उसका साहित्य उसके जीवन अनुभवों का परिणाम होता है। समकालीन हिन्दी साहित्यकारों में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखने वाले लेखक ''संजीव'' भी अपने युग के प्रतिनिधि लेखक हैं। अभावों से झूझता हुआ उनका जीवन, उनके लेखन कार्य को रोक नहीं पाया अपितु उस जीवन ने उनके लिए प्रेरणा का काम किया। स्त्री के प्रति सहानुभूति, शोषित वर्ग के प्रति संवेदना तथा पीड़ित वर्ग के प्रति करुणा को अपने साहित्य का केन्द्र बनाकर, उन्होंने समय पर समाज में व्याप्त विसंगतियों के प्रति पाठक को रूबरू करवाया है। उनके उपन्यासों में किसनगढ़ के अहेरी, सर्कस, सावधान: नीचे आग है, धार, पाँव तले की दूब, जंगल जहाँ शुरू होता है, सूत्रधार, आकाश चंपा, रह गई दिशाएँ इसी पार, फाँस, प्रत्यंचा आदि उल्लेखनीय हैं। इसी श्रृंखला में उनका उपन्यास ''मुझे पहचानों'' आता है जो सन् 2020 में सेतु प्रकाशन द्वारा प्रकाशित हुआ। सन् 2023 में इस उपन्यास के लिए इन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

बीज शब्द:- समाज, समस्या, सती प्रथा, धार्मिक आडम्बर, अन्धविश्वास, राजनीति।

साहित्य का मूल केन्द्र समाज होता है और समाज, सामाजिक प्राणियों का समूह है। अपने रंग, रूप, संस्कृति, वेश-भूषा एवं विशेषताओं के आधार पर प्रत्येक प्राणी दूसरे प्राणी से भिन्न एवं अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखने वाला होता है। विभिन्न वर्गों में विभाजित वर्गों के भीतर कुछ समस्याएँ भी होती हैं जो उस समाज विशेष को कमज़ोर बनाती हैं। समस्या अपने भीतर कई कठिन विषयों एवं प्रसंगों को संजोए हुए होती है। प्रस्तुत शोध पत्र में इस उपन्यास में व्यक्त, समस्याओं का चित्रांकन किया गया है।

शिक्षार्थी हिन्दी शब्द-कोश में समस्या का अर्थ है: ''सं. (स्त्री)।) कठिन या विकट प्रसंग 2) कठिन विषय।''[1]

सामाजिक समस्या को और अधिक स्पष्ट करते हुए डॉ. अजमेर सिंह लिखते हैं-

''सामाजिक समस्या का साधारण शब्दों में अर्थ है-समाज का विकास अवरूद्ध करने वाले कारण या उनसे उत्पन्न तनाव। यह व्यक्ति और समाज के मध्य संतुलित संबन्ध स्थापित करके इनके विकास में निरन्तर अग्रसर रहता है। जिस समय किन्हीं कारणों से यह संतुलन भंग होता है और सामाजिक मान्यताओं के सहज पालन में बाधा उत्पन्न होती है, उस समय सामाजिक समस्याएँ देखने में आती है।''[2]

सुप्रसिद्ध साहित्यकार संजीव का उपन्यास ''मुझे पहचानो'' भी इसी सामाजिक असंतुलन की यथार्थ अभिव्यक्ति करता है। उपन्यास की मूल समस्या सती प्रथा पर केन्द्रित है परन्तु सती प्रथा के अतिरिक्त ऐसी अनेक समस्याएँ भी उपन्यास में चित्रित की गई हैं जो एक स्वस्थ समाज के लिए हानिकारक हैं।

सती प्रथा

संसार रूपी गाड़ी को चलाने के लिए स्त्री और पुरुष दोनों का होना अनिवार्य है परन्तु यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि शारीरिक रूप से अधिक शक्तिशाली होने के कारण पुरुष का वर्चस्व स्त्री की तुलना में अधिक रहा। इतिहास की ओर यदि हम अपनी दृष्टि डालें तो वैदिक काल के अतिरिक्त अन्य कालों के भीतर स्त्री की अच्छी स्थिति के दर्शन बहुत कम मिलते हैं। स्त्रियों पर लागू की गई सती प्रथा एक ऐसी प्रथा थी जो स्त्रियों से उनके जीवन जीने के अधिकार को छीन रही थी। मनुष्य के जीवन और मरण का निर्णय केवल उस परम सत्ता परमात्मा के पास है। धर्म के ठेकेदार स्वयं को ही ईश्वर के समान समझ कर यह नियम निर्धारण करने में जुट जाते हैं कि स्त्री को जीने का अधिकार कब तक है।

उपन्यास में सावित्री कुंवर को छोटे कुंवर की मृत्यु पर सती कर दिया जाता है। सौभाग्यवश वह बच जाती हैं। इस बात का किसी को पता नहीं कि वह जीवित है। उसे मरा हुआ समझ कर उसके नाम का कुलदेवी मंदिर बनाया जाता है। आडम्बरों और अंधविश्वासों से भरे हुए लोग उस स्त्री की पूजा करते हैं जो अपनी आत्मरक्षा भी नहीं कर पाई। मनोज नामक युवक जब अनमोल की पत्नी (सावित्री कुँवर) से पूछता हैं कि आप नहीं जाती पूजा करने तो प्रतिउत्तर में वह कहती है:-

''जो औरत खुद अपनी रक्षा न कर सकी, वह दूसरों की रक्षा कर सकती है क्या?''[3]

राजा राममोहन राय एवं अंग्रेजों के प्रयासों से यह प्रथा समाप्त तो हो गई परन्तु धर्म के ठेकेदार आज भी इसे एक पवित्र प्रथा मानते हैं। अउधू जैसे ढोंगी पंडित का कहना था कि सति से बढ़कर गौरवमयी प्रथा इस संसार में कोई नहीं है। अपने क्रोध को स्पष्ट करते हुए वह कहता है:-

''ऐसी गौरवमयी पंरपरा को अंग्रेजों ने बंद कर दिया। मैं न हुआ, लार्ड विलियम बेंटिक और राममोहन को गोली से उड़ा देता।''[4]

कहने का अभिप्राय यह है कि अउधू जैसे अज्ञानी एवं धर्म के ठेकेदार आज भी इस प्रथा को पवित्र ही मानते है जिसने न जाने कितनी बेकसूर जानों को आग की लपटों में लिया। यह हमारे समाज की विडम्बना है कि स्वयं स्त्रियाँ भी सती हुई स्त्री को बड़े आदर और पूज्य भाव से देखती थी। जो स्त्री सति होने से डरती थी उसके चरित्र को अच्छा नहीं समझा

जाता था। इसी स्थिति का चित्रण भी उपन्यास में देखने को मिलता है। जब औरतें सती के दर्शन के लिए जाती हैं और उन्हें पता चलता है कि स्त्री तो भाग गई। वह निराश हो जाती है। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि स्त्री ही स्त्री की सबसे बड़ी शत्रु है। एक औरत कहती है:-

''हम तो कहते हैं, सत ही नहीं था उसमें नहीं तो एक क्या सात फाटक के अन्दर होती तो भी फाटक तोड़कर आग में कूद कर अपने पति के साथ हो लेती।''[5]

भले ही यह प्रथा वर्तमान समय में विद्यमान नहीं है परन्तु अनेक कारणों से स्त्री आज भी भीतर से सती होती जा रही है।

धार्मिक आडम्बर एवं अंधविश्वास

आरम्भ से ही समाज को परिचालित करने में धर्म की बहुत बड़ी भूमिका रही है। धर्म और आस्था का अनावश्यक प्रयोग किसी भी जाति एवं समाज को नाश की ओर धकेल देता है। नकारात्मक रूप से किया गया धर्म का प्रयोग सामाजिक व्यवस्था को कूड़े के ढेर में धकेल देता है। वह स्त्री जिसकी अभी तक मृत्यु भी नहीं हुई उसे एक कुलदेवी के रूप में पूजा जाता है। यह कुछ नहीं लोगों का अंधविश्वास और रायसाहब जैसे लागों की कुटनीतियाँ है जो भोले-भाले लोगों को धर्म के जाल में फंसाकर उनकी आस्थाओं से खेलते हैं। कुलदेवी की पूजा के लिए जाते हुए जत्थे पर व्यंग्य करता हुआ एक युवक कहता है:-

''अरे धंधा है धंधा। कुलदेवी या सती माई के पूजन को जाय रही होंगी राय साहब के घर की महारानियाँ।''[6]

कुलदेवी के मंदिर के लिए जाने वाला प्रत्येक व्यक्ति आस्था और विश्वास से भरा हुआ है। लोगों की यह मान्यताएँ भी बन गई हैं कि कुलदेवी के मंदिर में मनोकामनाएँ पूर्ण होती है:-

''फलाँ औरत बाँझ थी, लड़का हुआ।'
फलाँ की लाटरी लग गई।'
फलाँ को डागडर ने जवाब देई दिया था
सती माता का भभूत लगाया, आज तक जी रहा है।''[7]

इस तरह की झूठी धार्मिक मान्यताओं को समाप्त करने का प्रयास इस उपन्यास के माध्यम से हुआ है।

भ्रष्ट राजनीति

उपन्यास में चित्रित रायसाहब एवं लालसाहब दोनों ही अपने आपसी मतभेद के कारण एक दूसरे के प्रति अच्छा दृष्टिकोण नहीं रखते। दोनों रत्नापट्टी (रत्नों की खान) नामक रियासत के राजा हैं। अन्तर बस इतना है कि रायसाहब राजा उदयबानू सिंह की रानी की सन्तान है और लालसाहब एक वेश्या से उत्पन्न। दोनों राजा एक दूसरे के शत्रु हैं। जब राजाओं को अपनी आपसी लड़ाई-झगड़ों से फुर्सत नहीं तो वे प्रजा की क्या सहायता कर सकते हैं। रियासत में पानी की कोई व्यवस्था नहीं, साधारण जनता गरीबी से झूझ रही है उसपर राजाओं के अत्याचारों से जनता भयभीत है। रायसाहब एक हीरे को पाने के लिए जगत प्रजापति का पूरा घर मिट्टी में मिला देते है। परन्तु फिर भी उन्हें कुछ प्राप्त नहीं होता। बड़े लोगों के भीतर इस प्रकार का अमानवीय व्यवहार एक सफल समाज के मुँह पर तमाचे सा प्रतीत होता है। कोई भी पार्टी साधारण जनता के लिए कुछ भी नहीं करना चाहती। अर्थ के आधार पर राजनीतिक पार्टियों का निर्माण होता है। जिनके सारे सिद्धांत पैसों में बिके होते है। नेता वही बनता है जिसके पास पैसे की अधिक ताकत हो। इस दोगली राजनीति का पर्दाफाश उपन्यास की इन पंक्तियों के माध्यम से हुआ है:-

''सुनोगे पहले, तिरंगे में गये नहीं मिला, फिर भगवा में गये नहीं मिला, फिर साइकिल में गए नहीं मिला, आखिर में हमसे कहा कि नक्सलियों की कोई पार्टी है उसी में चले जाते है। आश्चर्य उन्हें कोई दिक्कत नहीं हुई और पार्टियों को भी उनसे कोई दिक्कत नहीं हुई....टिकट के हिसाब से सिद्धांत बनते है।''[8]

राजाओं अथवा नेताओं को जहाँ प्रजा के हित के लिए सोचना चाहिए वहीं वे अपना स्वार्थ सिद्धि का कोई भी अवसर शेष नहीं छोड़ते। मनुष्य के भीतर पनप रही यह प्रवृत्ति आधुनिकता का प्रभाव है। डॉ. कीर्ति केसर इस विषय में लिखती है:-

''स्वातंत्र्योत्तर समाज पर अर्थ के पश्चात् बहुत व्यापक गहरा दबाव राजनीति का पड़ा है। स्वाधीनता-संघर्ष के आदर्श मूल्यों का अध्याय समाप्त हो गया और राजनीति तथा अर्थ समाज के जीवन के अन्योन्याश्रित हो गये। अतः आपाधापी का दौर शुरू हुआ और नौकरशाही, अफसरशाही बन गई जिसने भ्रष्टाचार, भाई भतीजावाद, क्षेत्रवाद और साम्प्रदायिकता की नयी रूढ़ियों को जन्म दिया तो सामाजिक जीवन को ग्रसने लगी। चुनाव सामुदायिक विकास योजनाओं, सहकारिकता, भूमि सुधार और पंचायत के राजमार्ग से भ्रष्ट राजनीति का प्रभाव अपहरिार्य रूप ग्रामीण जीवन पर भी पड़ा है।''[9]

निष्कर्ष

'संजीव' द्वारा लिखित इस उपन्यास की मूल समस्या के केन्द्र में सती प्रथा है। परन्तु सति प्रथा के अतिरिक्त स्त्रियों पर अत्याचार, राजनीतिक भ्रष्टाचार, शोषित वर्ग की दयनीय दशा, धर्म के नाम पर डोंग तथा पाखंड अन्य समस्याएँ हैं। इस उपन्यास में समाज को खोखला करने वाली इन सारी परतों को उधेड़ा गया है। अतः यह उपन्यास झूठे गौरव, धार्मिक मान्यताओं एवं पाखंड से पर्दा हटाने का प्रयास कर समाज को एक अच्छी राह पर चलने की प्रेरणा देता है।

संदर्भ

1. शिक्षार्थी हिन्दी शब्द कोश, हरदेव बाहरी (दिल्ली: राजपाल एण्ड सन्स, 1990) पृ. 805
2. अजमेर सिंह काजल, उपन्यासकार राजेन्द्र यादव (समाजशास्त्रीय अध्ययन) (दिल्ली: संजय प्रकाशन, 2002) पृ.13
3. संजीव, मुझे पहचानो (उत्तर प्रदेश: सेतु प्रकाशन, 2020) पृ.55
4. वहीं, पृ.126
5. वहीं, पृ.163
6. संजीव, मुझे पहचानो (उत्तर प्रदेश: सेतु प्रकाशन, 2020) पृ.14
7. वहीं, पृ.114
8. संजीव, मुझे पहचानो (उत्तर प्रदेश: सेतु प्रकाशन, 2020) पृ.68
9. कीर्ति केसर, स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी कहानी का समाज सापेक्ष अध्ययन (दिल्ली: नचिकेता प्रकाशन, 1982), पृ.17

******

'शत्रुघ्न कुमार के कविताओं में बहुजन चेतना'

-प्रकाश
पीएच. डी. शोधार्थी (हिंदी)
तेलंगाना विश्वविद्यालय,
निज़ामाबाद, तेलंगाना.
संपर्क: ८८८६०३४१३४

बहुजन साहित्य की परंपरा बहुत पुरानी है जिसका संबंध लोकायत, चार्वाक दर्शन तथा बुद्द के तत्वज्ञान से है। बुद्द ने ही 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' की संकल्पना को जन्म दिया था। बुद्द के बाद उनके अनुयायियों ने बहुजनों की हित की बात की तथा उनमे चेतना जागृत करने का महत्वपूर्ण कार्य भी किया। इनमे 84 सिद्दों ने तो अपनी गाथाओं के माद्यम से भी समाज में चेतना जागृत की। इसी परंपरा को निभाते हुए संत कवियों ने अपने दोहे एवं अभंगों के माध्यम से सामाजिक बुराइयों को दिखाते हुए उसके विरोध में जन आंदोलन के संकेत दिए। इन संतों ने तथाकथित साहित्य पर प्रहार करते हुए अपनी अभिव्यक्ति प्रस्तुत करने का साहस दिखाया। संतों के योगदान से भारतीय समाज व्यवस्था में प्रथमतः चेतना जागृत हुई थी। इसके बाद बहुजन साहित्य की नींव यदि किसी ने रखी हो तो वे थे महात्मा ज्योतिबा फुले। जिन्हें बहुजन साहित्य के अग्रदूत माना जाता है। उनके लेखन में संपूर्ण बहुजन समाज और उस समाज की व्यथा का बारकाई से चित्रण देखने को मिलता है।

रामचंद्र शुक्ल के अनुसार "जब की प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित है की जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरुप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत तक इन्ही चित्तवृत्तियों की परंपरा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही 'साहित्य का इतिहास' कहलाता है।" [1]बहुजन साहित्यकार डॉ. शत्रुघ्न कुमार ने कविता, कहानी, आलोचना आदि विधाओं में लिखते हैं। इनके साहित्य में बहुजन समाज किस प्रकार से आर्थिक, राजनितिक, शैक्षाणिक, धार्मिक परिस्थितियों से गुज़रना पड़ता है, उसका वर्णन के साथ-साथ उनकी समास्या, समास्या का परिष्कार कैसे होता है और उनमे चेतना कैसे जागृत करना चाहिए, इसका साहित्य में विश्लेषण दिया गया है।

जब भी बहुजन समाज में चेतना को लेकर सोचते हैं तो हमारे देश की गुलामी ही अपने आँखों के सामने एक बहुत बढ़ी समस्या बनकर घूमती रहती है। कानों तक झनझनाहट की आवाजें आती है। मन को उदास कर चली जाती है। लिखना चाहते हैं बहुजनों में चेतना लाने के लिए लेकिन पता नहीं कहाँ से लिखना शुरू करें किस स्थिति से शुरू करें, किस समस्या का हल पहले करें, बहुत सारे समस्या अपने आँखों के सामने आ खड़े हो जाते हैं -

"जब जरा करने बैठता चिंतन
लगते इकट्ठे शब्द आस-पास
रोक पाता नही खुद को लिख डालता
कोरे कागज़ पर उसी क्षण
पढ़ उन्हें लगेगा, कुछ लोगों को
जोड़े गए शब्द ये मेरे
सिर्फ मेरे, सिर्फ मेरे
x x x x x x x x x x x x
x x x x x x x x x x x x
x x x x x x x x x x x x
उन तमाम दलितों शोषितों की पीड़ा
शब्द बन जो, हो गए इकट्ठे यहाँ
एक सी जो मेरी भी"[2]

दुःख-दर्द से भरी बहुजनों की पूरी जिंदगी है। ख्याल आता है कैसे अपनी ज़िन्दगी जिया जाए, किस प्रकार अपने भूखे पेट को समझाया जाये, कैसे इन दुखी आँखों के आंसू पूछ जाये इन सारी आलोचना को अपने कलम से कोरे कागज़ पर उतार कर बहुजनों में चेतना जागृत करने का काम किया है।

बहुजन समाज को सदियों से नीचे दबा कर, खुद अपने आप को सवर्ण समझकर बैठे हैं। उठायें प्रगतिशील का झंडा घूम रहे सत्तर-अस्सी वर्षों से, संचलित होकर योजना बनाते हैं, लेकिन कभी नज़र गरीब लोगों पर, आदिवासी समाज जैसे लोगों को जागृत करने की योजना नहीं बनाई। खेती में गीत गाते हुए काम करते बहुजन की धीमी आवाज़ कभी सुन पाए ? नहीं कभी नहीं। क्या कभी ताड़ी निकालते हुए गौड़ा बहुजन की आवाज़ को सुने है ? नहीं कभी नहीं। शत्रुघ्न कुमार अपनी कविता में कहते

हैं।

"झंडा उठाए प्रगतिशीलता का
घूम रहे पचास वर्षों से तुम
सुन पाए क्या तुम
कराहते लोगों की आवाज़?
x x x x x x x x x x x x
x x x x x x x x x x x x
x x x x x x x x x x x x
अन सुनी करोगे सुनकर भी
क्रन्दन दलितों की तुम"[3]

क्या कभी कुम्हार का घड़े के आवाज सुनी हो ? नहीं, ना नहीं सुन पाओगे लेकिन पानी-पीने के लिए मटका चाहिए। क्या कभी बंजारा आदिवासी के तीज के गीत सुने हो ? नहीं सुनेंगे नहीं उनके पास जाकर बात-चित करेंगे, नहीं उनको छुएंगे तक नहीं।

"अनदेखा करोगे देख किये जा रहे है
नंगा दलित महिलाओं के
चुरा आँख बनाओ बहाना
कहोगे पागल औरत है वह
x x x x x x x x x x x x
x x x x x x x x x x x x
x x x x x x x x x x x x
जिद नहीं छोड़ी तुमने अभी भी
तोड़ी नहीं जंजीर जातीय उन्माद की
तो लगा लो अनुमान अंजाम की"[4]

भारतीय समाज में कुछ बहुजन महिला के लिए आज भी खाने के लिए खाना और पीने के लिए पानी नही मिलने पर भूके मरे जा रहे हैं। हर दिन काम न मिलने पर वे पैसे भी नहीं कमा सकते हैं। अगर काम भी एक-दो दिन के लिए मिल जाये तो वे पैसे अपने परिवार वालों को खाने के लिए बस नही होता है। खाने के लिए खाना पहनने के लिए कपड़े नहीं थे। इसी कारण बहुत सारे बहुजन बिना कपडे के दिखाई देते हे तो लोग उनको देख कर हँसते थे। यह भी कहते थे की पागल औरत व पागल इन्सान है कपडे भी नहीं पहनती।

अनेकता में एकता कहलाने वाले देश में जाति-पाती क्यों दूर नहीं हो पा रही है एक इंसान दूसरे इंसान से भेद क्यों करता है एकता आना चाहिए ''भारतीय संस्कृति अत्यंत प्राचीन है। आज समाज धार्मिक रीति-रिवाजों, संप्रदायों, भ्रष्टाचार, जाति, धर्म और लिंग आदि विभेदों से पतनोन्मुख है। हमारा युग विज्ञान और प्रौद्योगिकी की दृष्टि से विकसित युग है। हम एक तरह से कम्प्यूटर युग में प्रवेश कर चुके हैं। फिर भी पुराने मूल्य और चेष्टाएँ समाज से पूर्णत: समाप्त नहीं हुए हैं। भारत की विडम्बना है कि पेड़-पत्थरों, साँप, सुअरों, पशु-पक्षियों की पूजा करने की प्रक्रिया जारी है। अंधविश्वास में पड़कर बहुजन समाज अपना हक़ और कर्त्तव्य खो चुके हैं। मानव के डर से शैतान भक्ति से भगवान का सृजन किया है। कहीं आग लगने से अग्नि देव, वर्षा होने से वरुण देव, हवा मिलने से वायु देव प्रतिष्ठित कर अपने अज्ञान को दैवीय रूप को मुखौटा पहनाकर प्राचीन काल से लोग पूजा कर रहे हैं।''[5]

जैसे-जैसे भारत में तकनिकी बढती जा रही है वैसे ही कठिन से कठिन काम भी तुरंत होने लगे हैं। जैसे एक महिने के काम एक हफ्ते में किया जा रहा है, एक हफ्ते का काम एक दिन में। ये सब तकनिकी की देन है लेकिन इस तकनिकी को बनाने वाला इंसान ही है। अगर इस तरह इंसान सब कुछ कर संकता है तो जाति के आधार पर भेद भाव को तोड़ने में कितना समय लगेगा। जैसे तकनिकी से कार्यों में तेजी बढ़ी है। उसी तरह जाति-पांति को तोडने में भी उतनी ही तेजी से बढनी चाहिए। आज भी लगभग युवाओं के पास सेलफोन दिखाई देता है उसमें अपनी आई.डी. बनाकर सोशल मीडिया पर अपना विचार विमर्श कर रहे हैं। इसी तरह और जिंदगी जिल्लत की जाति में भी भेद - भाव तोड़ने का काम युवाओं से ही होगा। शहर के लोग ज्यादा घरों में पालतू पशु जैसे कुत्ते, बिल्ली को पल रहे हैं। अपने साथ खिलाते पिलाते है और सुलाते भी है। एक पालतू कुत्ते को पालेंगे लेकिन एक गरीब बहुजन को नहीं। एक इंसान दूसरे इंसान छुआछूत समझता है। कवि प्रो. शत्रुघ्न कुमार लिखते है-

"वे
सभ्य हैं
आदमी से
हाथ मिलाने के बाद
वे।..
हाथ धोते हैं, मांजते हैं
और फिर
मुस्कराकर कहते हैं ....
'हम एक हैं'
फिर हाथ धोते हैं, मांजते हैं
ताकि

हाथ में आदमी की
'जाति' न छप गयी हो ।"[6]

कुछ ब्राह्मणवाद विचारक जनता को जादू-टोना दिखाकर लोगों के पास पैसे लूटना, भगवान् पर जबरदस्ती से भरोसा करवाना आम बहुजन जनता को सिर्फ भगवान् की हुंडी में पैसे डालने, सोना चांदी भेंट चडाने आदि प्रकार से इस्तेमाल किया जाता है। देश के लिए ईमानदारी से काम लेने में असमर्थ रहते हैं। लेखक अपनी कविता में कहते है-

"दिया क्या तुमने इस समाज को
उंच-नीच की भावना
और ज़िन्दगी ज़िल्लत की
करते बात सभ्यता की तुम
x x x x x x x x x x x x
x x x x x x x x x x x x
बजा रहे घंटा और झाल
चड़ा रहे दूध फूल
x x x x x x x x x x x x
x x x x x x x x x x x x
x x x x x x x x x x x x
बजा रहें हैं घंटा गा रहें हैं भजन
सवाल है फिर
दिया क्या तुमने इस देश को ?"[7]

इस देश में अंधविश्वास फ़ैलाने के आलावा और दूसरा वैज्ञानिक काम कभी किये नहीं है। बहुजन फिरसे ब्रह्मंवादियों को सवाल करता है लोगों को घंटा बजाने का काम सिखाते है, दूध फेंकने का काम सिखाते है, मंदिर में पैसे चडाना सिखाते है, लेकिन कभी एक वैज्ञानिक या तकनिकी काम नहीं सिखाते हैं। सिखाया केवल तुमने घृणा करने का, पाठ पढ़ाया तुमने केवल असमानता का, मानवता को बनाया तुमने पशु से भी नीच। बिलकुल बहुजन समाज तुम्हे पूछता है किया क्या तुमने ? बस बहुत डराया, धमकाया अब नही हो पायेगा तुमसे अब बहुजन समाज में चेतना आगई है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. हिंदी साहित्य का इतिहास- आचार्य रामचंद्र शुक्ल- पृ.सं. 15
2. अग्निशिखा – डॉ. शत्रुघ्न कुमार – पृ. 14
3. अग्निशिखा – डॉ. शत्रुघ्न कुमार – पृ. 19
4. अग्निशिखा – शत्रुघ्न कुमार – 20
5. हिन्दी तेलुगु दलित कविता - डॉ. जी.वी. रत्नाकर, पृ.सं. 30
6. दलित चेतना की कविताएँ - सं. रामचन्द्र/प्रवीण कुमार, पृ.सं. 33
7. अग्निशिखा – डॉ. शत्रुघ्न कुमार – 27

*****

गीतांजलि श्री कृत उपन्यास 'रेत समाधि' का अनुशीलन

गुरुशरन कुमार
शोधार्थी(हिंदी विभाग)
गुरु नानक देव यूनिवर्सिटी
अमृतसर
मो. 9781097832
ईमेल : gsahani89@gmail.com

समकालीन हिंदी साहित्य में गीतांजलि श्री का एक विशिष्ट स्थान है। उनका लेखन किसी एक विषय तक सीमित नहीं है, बल्कि स्त्री-विमर्श, किन्नर-विमर्श, साम्प्रदायिकता, आतंकवाद और विभाजन जैसी जटिल समस्याओं को अपने कथा-साहित्य में सहज रूप से समेट लेता है। उनकी लेखनी बहती हुई नदी की तरह स्वतः दिशा और गहराई खोजती है। यह विशेषता उन्हें अन्य लेखकों से अलग बनाती है। सन् 2018 ई. में प्रकाशित उपन्यास 'रेत समाधि' गीतांजलि श्री के लेखन का उत्कृष्ट उदाहरण है। समकालीन हिंदी साहित्य में 'रेत समाधि' उपन्यास एक मील का पत्थर है। इस उपन्यास ने न केवल साहित्यिक आलोचकों का ध्यान आकर्षित किया, बल्कि इसे अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी सराहा गया। 2022 में इसे अंतरराष्ट्रीय बुकर पुरस्कार से सम्मानित किया गया, जिससे यह भारतीय भाषाओं की पहली ऐसी कृति बन गई जिसे यह प्रतिष्ठित सम्मान प्राप्त हुआ। निश्चित रूप से यह सम्मान भारतीय साहित्य का सम्मान है। कथ्य, भाषा और अभिकथन की दृष्टि से गीतांजलि श्री विशिष्ट रचनाकार हैं। साथ ही उनकी कई कहानियां अलग होकर भी एक दूसरे से जुड़ी जान पड़ती हैं। 'रेत समाधि' में गीतांजलि के पूर्व के उपन्यास 'माई' और एक कहानी 'मार्च, माँ और साकुरा' की परछाईं दिखाई पड़ जाती है। इस अर्थ में गीतांजलि श्री एक विकासशील कथाकार हैं।

विषय की नवीनता गीतांजलि श्री की बड़ी उपलब्धि है। परंतु वास्तव में विषय नवीन या प्राचीन नहीं होता। विषय देखने का, पकड़ने का दृष्टिकोण नया होता है। लेखक का विजन ही विषय को नया बनाता है। गीतांजलि श्री में यह बात है कि वह कई बार लिखे जा चुके विषय को भी नया विजन देती है। यह उपन्यास न केवल विषय-वस्तु बल्कि शैली के स्तर पर भी नवीनता और प्रयोगात्मकता को स्थापित करता है। 'रेत-समाधि' ऐसा ही प्रयोग है- "कथा लेखन की एक नई छटा है इस उपन्यास में। इसकी कथा, इसका कालक्रम, इसकी संवेदना, इसका कहन, सब अपने निराले अंदाज में चलते हैं। हमारे चिर-परिचित हदों-सरहदों को नकारते लांघते। जाना-पहचाना भी बिलकुल अनोखा और नया है यहाँ।"[1]

'रेत समाधि' तीन खंडों में विभाजित है:

पीठ

धूप

हद-सरहद

तीनों खण्ड अपने शीर्षक के अनुसार उपन्यास की पूरी कथा का बखान स्वयं ही करते हैं। 'पीठ' खण्ड जीवन के प्रति उदासीनता का, 'धूप' खण्ड जीवन के प्रति पुनः जागृति का और 'हद-सरहद' साधारण से असाधारण बन जाने की गाथा कहता है। यह उपन्यास अस्सी वर्षीय वृद्धा अम्मा के जीवन की यात्रा के माध्यम से मानवीय संवेदनाओं, विभाजन की त्रासदी और सामाजिक संरचनाओं की पड़ताल करता है।

खंड 1: पीठ

पहला खंड 'पीठ' अम्मा के जीवन की उदासी और अलगाव को प्रस्तुत करता है। उपन्यास की शुरुआत एक गहरे और संवेदनशील प्रसंग से होती है। पति की मौत के बाद अम्मा (माई) अपने परिवार और जीवन से पूरी तरह कट जाती हैं। वह एक कोने में सिमटी गठरी की तरह पड़ी रहती हैं, जैसे जीवन से उनका हर जुड़ाव समाप्त हो गया हो। परिवार के लोग बार-बार उन्हें उठने को कहते हैं, पर वह अडिग हैं, मानो अपने दुःख में पूरी तरह डूब चुकी हों। यह अवस्था उनके 'नहीं उठूँगी' के स्वर में झलकती है। पति के जीवित रहने तक हर काम में सदैव सक्रिय रहती थी। घर का सारा काम करती थी। किंतु पति के देहांत के साथ ही जैसे वह भी मर जाती है। परिवार से पीठ कर लेती है। जैसे अब जीने की कोई उमंग नहीं। परिवार के सभी सदस्य उन्हें उठाने के प्रयत्न में लग जाते हैं। किंतु मां ने भी ठान रखा था कि नहीं, मैं नहीं उठूंगी, अब तो मैं नहीं उठूंगी। लेकिन जैसे-जैसे कहानी आगे बढ़ती है, यही स्वर बदलकर 'नयी उठूँगी' में बदल जाता है। "'नहीं, मैं नहीं उठूँगी' से अम्मा की स्वर-ध्वनि बदलती है- "नहीं, नहीं मैं नहीं उठूँगी। अब तो मैं नहीं उठूँगी। अब्ब तो मैं नई उठूँगी। अब्ब तो मैं नइई उठूँगी। अब मैं नयी उठूँगी। अब तो मैं नयी ही उठूँगी।"[2]

किंतु वह उठती है, और नई होकर उठती है। 'नहीं उठूंगी' से लेकर 'नई हो उठूंगी' तक का सफर करती है। यह बदलाव केवल शब्दों का नहीं, बल्कि अम्मा की मानसिक और भावनात्मक स्थिति में आए बदलाव का प्रतीक है। इस परिवर्तन के साथ अम्मा एक नई यात्रा शुरू करती हैं। यह यात्रा केवल भौतिक नहीं है, बल्कि उनके भीतर के जड़ हो चुके अस्तित्व को फिर से खोजने और जीने की यात्रा है। यह उनकी पहचान, स्वतंत्रता, और अस्तित्व को नए सिरे से परिभाषित करने की प्रक्रिया है। उपन्यास में माँ-बेटे और बेटी-माँ का बहुत ख़ास रिश्ता उभरता है| इस सन्दर्भ में लेखिका गीतांजलि श्री खुद कहती हैं- "उपन्यास का पहला अंश है 'पीठ'- उसमें माँ और बेटे के रिश्ते का वृत्तान्त है। बेटे के घर में ही माँ रहती है और फिर पूरा परिवार उसमें जुड़ता है। माँ और बेटी का शायद बिलकुल अलग इसलिए दिखता है कि वहाँ पर सम्बन्ध एक तरह से बिलकुल उलट जाता है, वो इक्वेशन एकदम बदल जाता है... माँ एक तरह से बेटी हो जाती है और बेटी माँ हो जाती है।"[3]

अम्मा का परिवार उपन्यास में अपनी हरियाली और भरे-पूरे जीवन के साथ उपस्थित है। बेटा, बहू, पोते और स्वतंत्र लेखिका बेटी मिलकर इस परिवार का निर्माण करते हैं। हालांकि यह परिवार बाहरी रूप से समृद्ध और संपन्न दिखता है, लेकिन उनके रिश्तों और अम्मा के आंतरिक जीवन में एक सूक्ष्म खालीपन और जटिलताएँ मौजूद हैं। इसी संदर्भ में परिवार की अलमारी में रखी खंडित बौद्ध मूर्ति का उल्लेख उपन्यास में एक प्रतीकात्मक तत्व के रूप में आता है। खंडित मूर्ति को अलमारी में इसलिए रखा गया है क्योंकि समाज में मान्यता है कि खंडित मूर्तियाँ बाहर नहीं रखी जातीं। यह मूर्ति, जो लाखों-करोड़ों की कीमत की है, उपन्यास में रहस्य का एक प्रमुख स्रोत बनती है। उपन्यास के कालांतर में इस रहस्य का उद्घाटन होता है, ''बडे और बहन जब बच्चे थे, अलमारी से कुछ निकालते तो कंकाल दीखते बुद्ध की मूर्ति दिख जाती। डर जाते उस खोपड़ी चेहरे को देखकर जिसकी आँखें अँधेरे खड्डों में धँसी थीं।.....मूर्ति नित और क्षीण और सौम्य होती जाती। अम्मा उसे मेरे पत्थर दिल कहतीं, बच्चे उसे स्टार्विंग बुद्धा कहते और उनके पिताजी कहते इनके पत्थर दिल और पत्नी को तप्तायी आँखों से निहारते और अम्मा उनका हाथ पकड़ लेतीं और बच्चे दोनों के सखाभाव पे हँस देते। पुरानी समाधिस्त बुद्ध मूर्ति खंडित थी। ज़रा-सा कंधा गायब और एक ही लटकौवाँ बौद्ध कान। दूसरा कहीं टूटा छूटा। रेत में।"[4]

उपन्यास में रोज़ी किन्नर का किरदार कथानक में एक नया आयाम जोड़ता है। रोज़ी का परिचय तब होता है जब वह अम्मा से मिलने बड़े दिन के अवसर पर आती है। उसका जीवन, उसकी पहचान, और अम्मा से उसका संबंध उपन्यास के अंत तक एक रहस्य बना रहता है। जैसे-जैसे कहानी आगे बढ़ती है, यह स्पष्ट होता है कि रोज़ी का किरदार केवल एक किन्नर के जीवन का चित्रण भर नहीं है, बल्कि वह समाज के हाशिए पर खड़े व्यक्तियों की संघर्षपूर्ण यात्रा का प्रतिनिधित्व करता है। आलोचक हरीश त्रिवेदी इस पात्र के बारे में कहते हैं कि – "तब एक नया चरित्र आता है और लगता है कि यह चरित्र इतना सम्मोहक है कि ये तो नॉवेल में सबको दबाकर रखेगा, सब लोग फीके पड़ जायेंगे इसके सामने और वो चरित्र है एक हिजड़े का... हिजड़ों के चरित्र का चित्रण अब तक बहुत कम हुआ है।"[5]

रोज़ी और अम्मा के बीच का रिश्ता मानवीय संवेदनाओं और स्वीकृति का एक अद्भुत उदाहरण है। रोज़ी अम्मा की यात्रा में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वह न केवल अम्मा के जीवन में बदलाव लाती है, बल्कि अपने अस्तित्व और संघर्ष के माध्यम से पाठकों को सोचने पर मजबूर करती है। माँ के बाल गूँथने, पैरों की मालिश करने तथा उसके सुख-दुख को बाँटने वाली रोजी बुआ देश विभाजन के समय माँ की साथिन है, इसलिए माँ का उसके प्रति विशेष लगाव भी साफ़ दिखाई देता है। वह माँ को अपने पूर्व वतन पाकिस्तान जाने के लिए प्रेरित करती है।

खंडित मूर्ति और रोज़ी किन्नर उपन्यास के 'पीठ' अंक के दो ऐसे महत्वपूर्ण तत्व हैं, जो अम्मा के जीवन को एक नई दृष्टि और गहराई प्रदान करते हैं। इन दोनों तत्वों का रहस्य धीरे-धीरे उपन्यास में खुलता है, जो पाठकों को अम्मा के अतीत से जोड़ता है।

खंड 2: धूप

'रेत समाधि' का दूसरा खंड 'धूप' अम्मा के जीवन में एक नई दिशा का प्रतीक है। इस खंड में अम्मा अपनी बेटी के साथ रहने जाती हैं। बेटी अब तक स्वतंत्र और मुक्त जीवन जीती रही थी। वह अब अम्मा के साथ रहने पर अपनी भूमिका बदल लेती है। यहाँ लेखिका ने माँ-बेटी के रिश्ते को एक नए दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है। अम्मा और बेटी के बीच भूमिकाओं का यह बदलाव उपन्यास का भावनात्मक केंद्र बिंदु है। बेटी नारीवादी विचारों की प्रबल समर्थक है और वह माँ को उसके बुढ़ापे में उन्मुक्त भाव से जीवन जीते देखना चाहती है। यह उपन्यास रिश्तों के बदलते समीकरण को नहीं दर्शाता, बल्कि यह भी बताता है कि किस तरह अम्मा और बेटी एक-दूसरे के सहारे अपने जीवन को नया अर्थ देते हैं। वह माँ के भीतर की प्रेमिका को जगाने का अवसर प्रदान करती है। "बेटी को मज़ा आ रहा है। अम्मा अपने आप चलने लगी है और देखो कैसे लहर बहर से घर की परिक्रमा करती है। ये क्या है? हुसैन के प्रिंट्स ? अपनी माँ को ढूँढ़ते हैं? माँ को कभी नहीं जाना, अपने चित्रों में उनकी कल्पना घोलते रहे ? वाह कला करिश्मा ! और ये ? ये बस्तर वासियों के जानवर हैं। उनके यहाँ पशु पक्षी पुरुष प्रकृति एक, सब की रक्षा, सब की इज़्ज़त एक। वाह। बेटी की साँस माँ की लौटती साँस में। बेटी का रंग माँ के पुलकित होते रंग में।"[6]

माँ और बेटी एक-दूसरे के साथ समय बिताने में ख़ुशी महसूस करती हैं और उनकी आपसी समझ व रिश्ता और मजबूत होता जाता है। इस रिश्ते में एक अलग सी मिठास और नजदीकी झलकती है। इसी बीच रोज़ी बुआ, जो एक ट्रांसजेंडर हैं, समय-समय पर उनसे मिलने आती हैं और अपनी उपस्थिति से घर का माहौल पूरी तरह बदल देती हैं। रोज़ी का आना घर में मानो एक नई ताजगी और ऊर्जा लेकर आता है। उनके सानिध्य में अम्मा का पूरा व्यक्तित्व निखरने लगता है। वे अपने पहनावे, व्यवहार और रोजमर्रा की गतिविधियों में नया उत्साह दिखाने लगती हैं। अम्मा के भीतर नई इच्छाएँ और उमंगें जागने लगती हैं, जिससे उनके जीवन में एक नई दिशा और ऊर्जा आ जाती है।

'रेत समाधि' स्त्री केंद्रित उपन्यास है, जो समाज द्वारा स्त्रियों के लिए बनाए गए पारंपरिक नियमों और बंधनों को तोड़ने की कोशिश करता है। अस्सी साल की अम्मा के जीवन में नया मोड़ तब आता है जब वह अपनी बेटी के पास जाकर अपनी नई जिंदगी शुरू करने का फैसला करती है। वह अपनी पूरी जिंदगी अपने बच्चों की खुशी में समर्पित करती रही हैं, लेकिन अब अपनी बेटी के पास जाकर नई शुरुआत करना चाहती हैं। अम्मा का यह बदलाव न केवल उनके बाहरी जीवन को बल्कि उनके आंतरिक संसार को भी प्रभावित करता है। उनकी कल्पना उन्हें प्राचीन भारत से लेकर ग्रीस तक की काल्पनिक यात्राओं पर ले जाती है। वे जीवन में उन चीज़ों का अनुभव करना चाहती हैं, जिन्हें पहले कभी नहीं किया जैसे - वाइन का स्वाद चखना और अपनी बालकनी में एक जंगल उगाने की इच्छा रखना आदि। इस उपन्यास में माँ और बेटी के रिश्ते को एक अलग और अनोखे अंदाज़ में प्रस्तुत किया गया है। बेटी नारीवादी विचारों की प्रबल समर्थक है। वह अपनी माँ के भीतर जीवन के प्रति नए जिजीविषा के भाव पैदा करती है। वह चाहती है कि उसकी माँ बुढ़ापे में भी स्वतंत्रता और खुशी से अपना जीवन जिए। पूरे उपन्यास की भाषा और शैली इसे एक लंबी कविता जैसा अनुभव देती है। लेखिका ने माँ-बेटी के रिश्ते के इस

गहरे और अंतरंग पक्ष को बहुत खूबसूरती से उभारा है, जो पाठक को समाज और स्त्री के पारंपरिक दायरों पर सोचने के लिए मजबूर करता है। "बेटी को रस आता है मां को नए अनुभव कराना। देखिए। बहुत अच्छी अंग्रेजी फिल्म है। सब समझेंगी। उच्चारण सुनते सुनते साफ आने लगेगा। नात्सी जर्मनी की। सच्ची घटना पर आधारित । मां बेटी फिल्मे देखती हैं। पश्चिमी चुम्मे देख कर सकपकाई सी हंसी दोनो हंस देती है। छीछी, मां एकदम अनछीछी भाव से कहती है – कैसे मिलाते है थूक में थूक? दोनो अबोध बालिकाएं सी खिलखिलाती हैं। पता नहीं उनके गालों पर लाली धूप की है कि भीतर से तपती।"[7]

बेटी के साथ रहने के बाद अम्मा के व्यक्तित्व और हाव-भाव में एक नई ऊर्जा देखने को मिलती है। अम्मा अब रोज़ी के साथ नए-नए अनुभवों का आनंद लेती हैं। वह गाउन पहनती हैं, रंग-रोगन लगाती हैं, और उबटन मलती हैं। "अम्मा को रोज़ी के मिलाये लेप में वो हर सुबह देखती आँवला, भृंगराज, ब्राह्मी और एक चम्मच मेंहदी। इसको उबाल, पीस, घोल, रोज्जी ने शीशी में रख दिया है, माँ रोज फ्रिज से निकाल कर उँगलियों की पोरों से बाल की जड़ों में रगड़ती है, फिर टूटते बाल खींच के लपेटा गुच्छा बेटी को पकड़ाती है लो फेंक दो और कहती है देखो कल से कम टूटे हैं। उसके बाद नीम्बू के छिलके से नाखून से नीला रंग रगड़ती रहती है और बेटी को हड़काती है अभी गूदा है फेंकना नहीं और मेज़ तिपाई से नीले सड़ते घिसे नीम्बू रात दिन झाँकते हैं।"[8] असल में यह सब केवल उनके बाहरी व्यक्तित्व को निखारने के लिए नहीं है, बल्कि यह अनवर से मिलने की तैयारी का हिस्सा है। अनवर, जो अम्मा का पहला प्रेम था, उनसे भारत-पाक विभाजन के दौरान बिछड़ गया था। मजबूरी में दोनों ने अपनी-अपनी ज़िंदगी अलग-अलग बसा ली थी, लेकिन अम्मा का दिल अभी भी अनवर के लिए धड़कता है।

इस खंड में रोज़ी किन्नर का चरित्र और उसकी अम्मा से गहरी दोस्ती उभरकर सामने आती है। रोज़ी, जो समाज में हाशिए पर खड़ा एक किन्नर है, अम्मा के जीवन का अभिन्न हिस्सा बन जाती है। दोनों के बीच ऐसा संबंध बनता है, जो सामाजिक सीमाओं को लांघता है। रोजी बुआ के चरित्र चित्रण के माध्यम से लेखिका ने किन्नर समाज की समस्याओं को भी जनमानस के समक्ष लाने का सफल प्रयास किया है और किन्नर रोजी बुआ के भीतर विद्यमान दयालु हृदय की भावना को उजागर करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। रोजी अपनी व्यथा समाज के समक्ष इन शब्दों में रखती है, "हमारी किसे पड़ी, रोजी अम्मा से कहती गयी। हम तो उनके बाज़ार में भी नहीं कि हमें लुभाने के इश्तेहार बनायें, हमारे लिए दुकान खोलें और नफ़ा कमायें। लोभी पंसारी को भी हमारी ग्राहिकी नहीं चाहिए, तो सोच लो हम कितने निकृष्ट अदृश्य परिशिष्ट। न मेरे लिए फ़िल्म, न साहित्य, न कला, न कपड़े। जो आप उतार दें, उस उतरन में हम उतर लें। अपनी कहीं। गिनती नहीं। झील में बाजी डाल आओ तो किसी को पता नहीं चलेगा कि एक कम है।"[9]

माँ के बाल गूँथने, पैरों की मालिश करने तथा उसके सुख-दुख को बाँटने वाली रोजी बुआ देश विभाजन के समय माँ की साथिन है, इसलिए माँ का उसके प्रति विशेष लगाव भी साफ़ दिखाई देता है। वह माँ को अपने पूर्व वतन पाकिस्तान जाने के लिए प्रेरित करती है और कहती है हिजड़ों के लिए इस समाज में पासपोर्ट और वीसा की क्या ज़रूरत है? क्या तीसरे लिंग को समाज ने कभी मान्यता दी है? तीसरे लिंग के इस दर्द को उन्होंने अपने उपन्यास में प्रस्तुत किया है: "मुझे पासपोर्ट से क्या? न होने के फ़ायदे हैं। हमारी गिनती न मुस्लमीन किरस्तान में न यहूदी पारसी हिन्दू में न आदमी औरत में, हमारा नाम नहीं लेना, हमें पहचानना नहीं। हमें असल क्या, तसव्वुर से ही ग़ायब रखना चाहते हैं। तो हम तो कहीं भी घुस लें।"[10]

रोज़ी और अम्मा ने मिलकर पाकिस्तान जाने की योजना बनाई थी, लेकिन रोज़ी की हत्या ने अम्मा के जीवन में एक और त्रासदी जोड़ दी। जैसे ही खंड समाप्त होता है, माँ पाकिस्तान की यात्रा करने का दृढ़ निर्णय लेती हैं।

खंड 3: हद-सरहद

तीसरे खंड, 'हद-सरहद', में अम्मा की पाकिस्तान यात्रा और विभाजन की त्रासदी का विवरण है। यह खंड माँ और बेटी के वाघा सीमा पर पहुँचने से शुरू होता है। लेखिका ने विभाजन के कारण टूटे हुए रिश्तों और खोए हुए जीवन के दर्द को गहराई से व्यक्त किया है। जैसे-जैसे कथा आगे बढ़ती है, माँ का अतीत धीरे-धीरे उजागर होता है। माँ अपने बचपन और प्रियजनों से अलग होने के दुख को फिर से जीती है। वह खुद को अली अनवर की चंदा के रूप में फिर से खोजती है।

भारत-पाक विभाजन के प्रसंग और त्रासदी को और अधिक रेखांकित करने के लिए गीतांजलि श्री ने इस उपन्यास में इस विषय पर लिखनेवाले लेखकों और उनकी रचनाओं और चरित्रों पर आधारित एक फैंटेसीनुमा नाटकीय वृतांत भी रचा है जो दोनों देशों के वाघा-अटारी बॉर्डर पर खेला जा रहा है। जिसमें मंटो, भीष्म साहनी, इंतजार हुसैन, मोहन राकेश, कृष्णा सोबती, कृष्ण बलदेव वैद, मंजूर एहतेशाम, राजिंदर सिंह बेदी, जोगिंदर पाल, बलवंत सिंह जैसे हिंदी-उर्दू-पंजाबी के कई लेखक मौजूद हैं और अपनी भूमिकाएं निभा रहे हैं। इस नाटकीय वृतांत में इन लेखकों द्वारा रचे गए चरित्र भी उपन्यास में हैं। जैसे मंटो के टोबा टेक सिंह का बिशन सिंह अपनी भूमिका निभाते हुए क्या करता है, इसका वर्णन लेखिका ने इस प्रकार किया है- "लेकिन टोबा टेक सिंह का सिंह तो मूड में है. लाल सलाम से गार्डों के दांव पेंच मुश्किल मे डालने में लगा ही है, अब और खुराफाती हो रहा है. अब तक मामला फिर भी संभला रहा चूंकि राष्ट्रभक्ति ऐसी पुख्ता, मगर सिंह नए नए हथकंडे अपनाता है. गगन तक उठते राष्ट्रीयता के अंतर्नाद को कहीं छिपे से पटखनी देने में तुला हुआ है. तो नारे हिल जाते हैं और सारी कड़क मुस्तैदी एक त्रस्त तन्नाई सुगबुगाहट भर रही है कि चौकन्ने रहो, पकड़ो, खेल ढेर न हो जाए. क्योंकि कभी भी परिंदे या जो भी फड़ फड़ करते हैं और कभी भी लाल धारे उड़ती हैं और कभी भी क्रिकेट मैच में उठती बोलियों से ऊंची हिंदुस्तान जिंदाबाद, पाकिस्तान जिंदाबाद क़ायदेआजम ज़िंदाबाद भारतमाता जयजयकार को काटती आवाज़ गूंज जाती है....."[11]

असल में इस उपन्यास में चंदा और अनवर की अमर प्रेम कहानी है । बंटवारे से पहले पाकिस्तान में चंद्रप्रभा देवी का युवावस्था का प्रेम एक मुसलमान नवयुवक से हो जाता है । फिर दोनों अपने परिवार-जनों की सहमति से विवाह कर लेते हैं । चंद्रप्रभा 'चंदा' बन जाती है । अनवर और

चंदा नया दांपत्य जीवन शुरू करते हैं। तभी बंटवारा सामने आ जाता है। चंदा अनवर से बिछड़ जाती है और भारत में विषम परिस्थितियों में धकेल दी जाती है । फिर न अनवर का चंदा से और न चंदा का अनवर से कोई मेल होता है। इस बीच भारत में एक अच्छे खाते-पीते परिवार में चंद्रप्रभा की शादी होती है, बच्चे होते हैं, चंदा अस्सी साल की हो जाती है और उसके पति की मृत्यु हो जाती है। उसके बाद चंदा यानि चंद्रप्रभा को अनवर की याद आने लगती है ।

इस खंड में देश विभाजन के समय होने वाली निर्मम हत्याओं का वर्णन रोंगटे खड़ा करने वाला है। बाप द्वारा अपनी बेटी का सर क़लम, पति द्वारा पत्नी की हत्या, बूढ़ी औरत को मोटे डंडे पर बाँध कर ले जाना, जान बचाने के लिए पेड़ पर पर छुपे हुए छोटे बच्चों को गोली मारकर हत्या आदि का वर्णन पाठकों की आँखों में आँसू ले आता है। साथ ही, अखंड भारत के इतिहास को भी बीच-बीच में रखते हुए आगे बढ़ाया गया है, बेटी जब माँ को लेकर पाकिस्तान आती है तो उसके मन में लाहौर का क़िला, रावी, मांटेगमरी हॉल, शाही हमाम, बाज़ार – पता नहीं क्या-क्या देखने की इच्छा जाग जाती है। यह वही जगह है, जहाँ उसका अपना बचपन बीता था। पाकिस्तान की यात्रा बेटी के लिए आत्मनिरीक्षण का समय भी है। जब वह वास्तव में मां को जानती है और उसे एहसास होता है कि उसकी माँ कितनी प्रगतिशील है। बेटी आश्चर्यचकित हो जाती है जब उसे एक ऐसी माँ मिलती है, जो उस व्यक्ति से बिल्कुल अलग है जो वह घर पर हुआ करती थी। मां के साथ पाकिस्तान की यात्रा करते हुए, उनके उत्साह को देखकर, बेटी को बहुत हैरानी होती है, "अम्मा को लाहौर घूमने की जल्दी थी। अंदरून शहर देखेंगे जब मां ने कहा तो बेटी के मन में फिर उठा कि रोज़ी ने खूब पढ़ा लिखा कर भेजा है.....लाहौर का किला देखेंगे, उसे वहां घूमना पसंद था, मां ने कहा।"[12]

वह तितलियों को बुलाकर अपनी छड़ी पर बैठती है और उसे देश विभाजन के ज़माने की चार मार्मिक कहानियाँ सुनाती है। पहली कहानी 'कहानियाँ' में रसोई में खाना बनाने वाली हिन्दू लड़की को किस तरह मुसलमान लोग उसके रसोईघर से खींच कर, उसका घर जला कर, गाड़ी में ज़बरदस्ती लादकर, ट्रक में भरकर बेचने के लिए ले जाते हैं। उन्हें कभी खंडहर में रखते है तो कभी किसी क़ैदख़ाने में तथा कभी उन्हें जानवरों के अस्तबल में उन्हें सुलाया जाता है। यह लड़की और कोई नहीं अपितु इस उपन्यास की मुख्य पात्र माँ है। यहाँ चंदा को पहली बार बुद्ध की खंडित मूर्ति दिखी, जिसे उसने पहले अनवर के साथ अजायबघर में देखा था। वह इस मूर्ति को अपने सीने से चिपकाकर साथ ले जाती है, प्रेम के निशानी के तौर पर। "एक कमरे में मूर्ति। ऐसी तो अजायबघर में देखी। अनवर के संग। हूबहू। मेरा अनवर। अनवर ने रख दी हो। कि हौसला रखो। अनवर की निशानी।"[13] यहीं पर यह कहानी ख़त्म हो जाती है।

दूसरी कहानी 'मूर्ति और वो लड़की' है। इसी प्रसंग के दौरान रोज़ी के रहस्य से पर्दा उठाती है। विभाजन के समय एक छोटी बच्ची, जिसने अम्मा का हाथ पकड़ा था और जिसे वह बचाकर अपने साथ लाई थीं, वही आगे चलकर रोज़ी बनती है। यह बच्ची, जो अम्मा की सबसे बड़ी साथी बनती है, किन्नर समुदाय की सदस्य है। "बाजी, छोटी लड़की सिसकी। जो उसका हाथ पकड़े थी जैसे कभी नहीं छोड़ेगी| दूसरे हाथ में मेरी मूर्ति| बच्ची को खींचती हुई मैं रेत पर भागी| वो बच्ची रोज़ी थी।"[14] इस तरह गीतांजलि श्री ने माँ का रोजी के साथ पुराने सम्बन्ध जोड़कर उपन्यास में एक रोचकता पैदा की है।

तीसरी कहानी का शीर्षक है 'रेत समुंदर'। जिस तरह तेज़ हवा तूफ़ानी समुंदर में जहाज़ी बेड़ों की दिशा बदल देती है और उस पर सवार लोगों को इधर-उधर लुढ़का देती है, वैसे ही थार के इस रेत समुंदर में कोई सुनामी रेतीली लहरों को पैदा करती है, जिसमें कई अपहृत लड़कियों की समाधि लग जाती है। यही है 'रेत समाधि' उपन्यास की पराकाष्ठा। वहाँ एक ऋषि समाधि में मिलता है, मगर धड़ कटा। कुछ सीटी बजाती हुई लड़कियाँ उस समुद्र से अपने को बचाने का प्रयास करती हैं तो कुछ लड़कियाँ समुद्र में डूबने लगती हैं। रेत के समुद्र में जल नहीं है, केवल रेत ही रेत है, इसलिए उपन्यासकार ने 'जल समाधि' शब्द का प्रयोग जान बूझकर नहीं करते हुए 'रेत समाधि' शीर्षक हेतु शब्द चयनित किया है। चौथी कहानी 'डूबों का होना' में मूर्ति, रोजी (वो) और बच्ची (माँ) बच जाती है, और जब उन्हें होश आता है तो वे मूर्ति के साथ किसी अनजान छावनी के अस्पताल में नज़र आती है। बाद में उन्हें पता चलता है कि वहाँ सरहद खींच दी गई है। उपन्यास के अंतिम भाग में भारत विभाजन के निर्मम दृश्य को सजगता और सजीवता के साथ प्रस्तुत किया है।

पाकिस्तान भ्रमण के दौरान खैबर में उसके पहले प्रेम के बीज प्रस्फुटित होकर वृक्ष का रूप धारण कर लेता हैं। वहाँ वह पाकिस्तानी जेल को भी अपना घर समझने लगती है और अपने भीतर पहले प्रेमी अनवर को पाने की गंभीर चाह। इस वजह से न केवल उसकी, बल्कि उसकी बेटी की जान ख़तरे में पड़ जाती है। वह खैबर में बिना वीज़ा के भी निर्भय होकर घूमने लगती है। उसे यह आभास हो जाता है कि उसकी अंतिम परिणति मृत्यु होगी। उस अंतिम परिणाम के लिए वह पहले से ही मानसिक तौर पर तैयार हो जाती है और पीठ के बल ज़मीन पर गिरने का अभ्यास करती है ताकि मरते समय उसकी आँखें आकाश की ओर हों और पीठ ज़मीन पर, खैबर में उसकी अनवर अली नामक मिलिट्री ऑफ़िसर से मुलाक़ात होती है, जो उसके पहले प्रेमी अनवर का पुत्र होता है। वह पहले उसकी मूर्ति को ले जाकर अपने लकवाग्रस्त पिता के सिरहाने पर रखता है और चन्दा को भी उनसे मिलाने ले जाता है। इस प्रकार अस्सी साल की अम्मा पाकिस्तान जाकर अपने पुराने पति-प्रेमी को ढूंढ निकलती है। उसे देखकर अनवर के मुँह से एक भी शब्द नहीं निकलता है तो वह अतीत में उसके साथ गाए हुए गानों, भजनों और प्रार्थनाओं को गाकर उसकी स्मृति लौटाने की कोशिश करती है, "मेरे प्रभु दीनदयाल, अरज करत इब्राहीम मेरे मौला', 'भेजूँगी संदेशवा जब से पिया परदेश गए सुख की नींद ना आए'।"[15]

वह अनवर से कहती है, "अनवर तुम नहीं आए। कैसे आते? मैं भी कैसे आती? फिर भी डॉक्टर साहब के साथ अपनों ढूंढने रिफ्यूजी कैंप जाती तो गल्प बनती कि तुम छिपते-छिपाते मुझे ढूंढने आए होगे।.....तुम लौट गए होगे कि इस भीड़ में नहीं मिलेगी चंदा मुझे.....।"[16] अनवर की आँखों में आँसू छलक पड़ते हैं। चंद्रप्रभा उसके पास आकर उसके सिर पर हाथ फेरती है और अपने हाथों से उसके हाथ को थाम लेती है। वह अपने दिल की गहराइयों से इस बात के लिए अनवर से माफी मांगती है कि वह इतने समय से उससे मिलने नहीं आ सकी।

चंद्रप्रभा की यह विनम्रता अनवर के मन में गहरे भाव जगा देती है, लेकिन उसके होंठों से केवल 'माफीनामा' शब्द ही निकल पाता है। हालांकि, चंद्रप्रभा की सरहदों और सीमाओं पर आधारित विचारधारा अनवर के बेटे अली अनवर को बेहद चुभती है। उसके मन में अपनी नौकरी, इज़्ज़त और देशभक्ति को लेकर कई विचार उमड़ने लगते हैं। इन भावनाओं के उबाल के बीच अनवर के दिल में एक कठोर निर्णय जन्म लेता है। जब चंद्रप्रभा अपने पति को नम आंखों से विदा लेकर बाहर जाती है तो पीछे से अनवर गोली मारकर माँ की हत्या कर देता है।

"उँगली पहले से ट्रिगर पर थी, हाकिम की रूह ने हुक्म किया और वो दब गयी।

उसी वक्त साया चिल्लाया भागो और भागा। सायी न भागी। अस्सी की थी और उसने कूदने का अभ्यास तो कर रखा था, भागने का नहीं। गोली उसे पीछे से लगी मगर उसकी पीठ पलटवार में माहिर हो चुकी थी और मुँह के बल गिरने का सवाल नहीं था। जिस शानदार तरह से उसकी काया उछली, कुछ ने माना कि गोली के लगने के पहले ही उसने जानी परखी स्वेच्छित उछाल मारी और पहाड़ी से आगे को छलांग लगा दी।"[17]

जैसे कृष्ण सोबती की कहानी 'सिक्का बदल गया' में कभी अपना शुभचिंतक रहा व्यक्ति ही कहानी के पात्र का जानलेवा दुश्मन बन जाता है, वैसे ही इस उपन्यास में भी माँ को गोली मारने वाला और कोई नहीं, बल्कि अपने पहले प्रेमी अनवर का पुत्र अली अनवर ही होता है।

निष्कर्ष:

रेत समाधि' का शिल्प, भाषा और प्रतीकात्मकता इसे अन्य उपन्यासों से अलग बनाते हैं। यह केवल एक कहानी नहीं है, बल्कि यह एक यात्रा है—संवेदनाओं, विभाजन की त्रासदी और मानवीय संबंधों के जटिलताओं की। लेखिका ने इसे जिस कलात्मकता और गहराई से प्रस्तुत किया है, वह पाठकों को लंबे समय तक प्रभावित करता है। यह उपन्यास पाठकों को केवल विभाजन की पीड़ा ही नहीं दिखाता, बल्कि यह भी सिखाता है कि जीवन, प्रेम, और मानवीय संबंधों में किस तरह उम्मीदें बनी रहती हैं। यह एक ऐसा उपन्यास है जो केवल भारत-पाक विभाजन की कहानी नहीं कहता, बल्कि मानव जीवन, रिश्तों, और हाशिए पर खड़े वर्गों की गाथा प्रस्तुत करता है। 'रेत समाधि' में सिर्फ स्त्री एवं सरहद-विमर्श और विभाजन गाथा ही नहीं है. अपितु इसमें कई स्थलों पर कौतुक–कथाएं (फेबल) भी हैं. उन कौतुक कथाओं की तरह जिसमें पशु, पक्षी भी किरदार होते रहे हैं. हालांकि इस उपन्यास में पशु तो नहीं है लेकिन पक्षी हैं। विशेषकर कौवे, कौवियां और तीतर भी है। लेकिन कौवे और कौवियों की उपस्थिति अधिक है.

यह उपन्यास संवेदनाओं और शिल्प का अनूठा मेल है, जो मानवीय भावनाओं को गहराई से छूता है। 'रेत समाधि' केवल अम्मा की कहानी नहीं है, यह समाज में स्त्री की स्थिति, उसकी पहचान और उसके संघर्षों का प्रतीक है। अम्मा की यात्रा एक व्यक्ति के जीवन के ठहराव से लेकर पुनर्जीवन की यात्रा है। उनके जीवन में आए बदलावों के माध्यम से उपन्यास हमें यह सिखाता है कि जीवन में किसी भी उम्र में खुद को नए सिरे से खोजा और परिभाषित किया जा सकता है। यह उपन्यास भावनाओं और प्रतीकों के स्तर पर गहराई से प्रभावित करता है और इसे समकालीन हिंदी साहित्य की उत्कृष्ट कृतियों में स्थान दिलाता है।

सन्दर्भ सूचि :

1. अखिलेश (संपा), तद्भव, (अंक - जनवरी 2022), पृ. 100
2. गीतांजलि श्री, रेत समाधि, (नयी दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण) पृ. 13
3. संजय सहाय (संपा) हंस, (अंक - अप्रैल 2022), पृ. 10
4. गीतांजलि श्री, रेत समाधि, (नयी दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण)
5. पृ. 84
6. Https:Geetanjali Shree, Harish Trivedi/Ret Samadhi:Meditations on Sand/Jaipur Literature Festival
7. गीतांजलि श्री, रेत समाधि, (नयी दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण) पृ. 137
8. वही, पृ. 139
9. वही, पृ. 151-152
10. वही, पृ. 239
11. वही, पृ. 238
12. वही, पृ. 272
13. वही, पृ. 284
14. वही, पृ. 301
15. वही, पृ. 305
16. वही, पृ. 351
17. वही पृ 353
18. वही, पृ. 357

*****

The Fluid Self: Diasporic Consciousness and Identity Reconfiguration in Bharati Mukherjee's *Jasmine*

-Anil Sehrawat
Amity University Uttar Pradesh, Noida
asehrawat@amity.edu

Abstract

Since its 1989 release, Bharati Mukherjee's book Jasmine has attracted a lot of critical attention. The heroine of the book is an Indian woman who immigrates to the US and faces numerous difficulties along the way. She consciously separates herself from her Indian heritage as she works to establish herself in a foreign country. Her continuous search for self-identity is chronicled throughout the story, along with the different methods she uses to fit in with Anglo-American culture. Over thirty years after it was first published, Jasmine is still a key work in post-colonial debate because it shows how the protagonist, in her quest for identity, eventually accepts "modernity" as a means of survival—a notion acknowledged by post-colonial thinkers. This essay uses a post-colonial perspective to Jasmine, focusing on the text's recurring themes of identity crisis, acculturation, alienation, and displacement. According to the study, Jasmine's experiences as an immigrant have shaped her perception of modernity, which she embraces to fit in with her new surroundings.

Keywords: alienation, displacement, acculturation, identity crisis, modernity

Bharati Mukherjee is a prominent author in Indian Diaspora. She was born into a Bengali family in India in 1940. She later studied in Europe and lived in Canada for several years with her husband, Clark Blaise. She did, however, blame racial racism for her works' lack of critical acclaim in Canada. She didn't become well-known as a writer until she had made the United States her permanent home. She would rather be known as an Indian American novelist without the hyphen. Jasmine, a bildungsroman that captures her personal experiences as an immigrant, is one of her well-known works.

Although Indian diasporic authors have examined immigrant experiences from a variety of angles, Jasmine is notable for its protagonist's constant identity reinvention in reaction to her uprooting. The inescapable difficulties of acculturation, estrangement, and alienation that immigrants encounter in foreign countries are depicted in the book. According to John Berry's acculturation theory, "integration" is the process through which an immigrant preserves components of their background while assimilating into the host culture. However, Jasmine completely integrates into American culture at the expense of her Indian identity, eventually using "modernity" as a survival tactic. The post-colonial idea of "othering," in which the colonizing authority creates its identity in opposition to the colonized subject, is consistent with this change. The dialectical process of "othering" is how the colonizer and the colonized identify themselves in relation to each other, as Ashcroft et al. points out (Ashcroft et al., 2000, p. 156).

Today, most of the migrant writing focuses on the cultural and social uprooting that migrants experience. Stereotyping is a crucial tool in this discourse because it perpetuates colonial views by giving oppressed people fixed identities, social positions, and values. It is explained by Homi Bhabha that "Otherness, which is simultaneously an object of desire and derision, is an articulation of difference" (Bhabha, 1994, p. 96). Jasmine actively works to destroy the stereotype of the third-world immigrant by completely integrating into Anglo-American culture.

The idea that Western civilization is superior and the colonized are fundamentally backward reinforced by post-colonial theory, which claims that "modernity"

was historically spread from the West through colonial domination. The idea that Westernization is the same as modernization was eventually internalized as a result of this enduring narrative. Many post-colonial theorists contend that during the acculturation process, diasporic people frequently embrace modernity as a way to claim their identity. After experiencing racial prejudice and sexual violence, Jasmine believes that Americanization is the only way to achieve equality in her new society. Therefore, this study looks at how Jasmine uses modernity to strategically define the protagonist's identity within the Anglo-American cultural context.

The major source for this study is Bharati Mukherjee's Jasmine, which was released by Virago Press in 1991. It is examined using an analytical method. The work is examined using a post-colonial lens to examine themes of assimilation, displacement, and identity alteration using primary and secondary sources.

Jasmine shows the protagonist's metamorphosis at several points in her life by following her self-identity journey from Jyoti to Jane. There are two main stages to the novel's framework. Jyoti's early years in the Punjabi village of Hasanpur, where patriarchal norms and cultural customs limit women's autonomy and ambitions, are portrayed in the first section. Her parents have given her the name Jyoti, and she challenges conventional expectations by continuing her schooling after puberty. An important turning point in her self-assertion was her marriage to Prakash Vijh, which represents her rejection of patriarchal family institutions. In response, Prakash gives her the new name Jasmine and introduces her to the idea of reinvention while also instilling in her a sense of modernism. Following Prakash's passing, the second part of the book follows Jasmine as she travels from India to the US. Her changing identities reflect her metamorphosis, with each change denoting a more profound transition than a simple name change.

Jasmine's story demonstrates how she leaves her native country and re-establishes herself in the US by assimilating into American society. According to Hall, "Diaspora identities are those that continuously create and reproduce themselves through change and variation" (Hall, 1990, p. 393). The continual relocation and reinvention that define the immigrant experience are best illustrated by Jasmine's changing roles and identities. Her metamorphosis starts in India, when she defies social norms by turning down an arranged marriage to a widower her grandmother had selected. Her first move toward self-assertion was her marriage to Prakash. She does, however, adequately address the difficulties of cultural assimilation in the United States. Jasmine navigates a new socio-political environment while being aware of her psychological and spatial displacement, changing who she is to conform to Anglo-American standards. Despite this her identity is constantly changing as a result of her exposure to American culture.

In contrast to the sentimental themes in her previous books, Mukherjee's Jasmine exhibits a unique diasporic consciousness. Mukherjee's early works demonstrated a romantic love to her native country prior to her full integration into American society. But after relocating to the US permanently, her opinions on immigration changed. The hyphenated term "Indian American" was rejected by her, and she adopted an unqualified American identity. Her literary journey clearly reflects this change. Tara, the main character in *The Tiger's Daughter*, represents her early conflict between Indian and American traditions. Like many immigrants, Tara is disappointed when she discovers that she does not find the fulfilment she had hoped for when she returns to her native country. The protagonist Dimple, on the other hand, serves as an example of how Wife examines the disappointment of immigrant women who are unable to realize the utopian dream they had in the United States.

Jasmine offers a unique viewpoint on the immigrant experience and completely integrates into American society, in contrast to Tara and Dimple. Survival is the driving force behind her adoption of an American identity. Mukherjee changed his perspective from one of an expatriate to one of a complete immigrant, saying, "No turning back" (Meer, 1989), as Meer observes in an interview. Jasmine reflects this idea by recreating her identity according to her own standards and embracing American cultural norms to gain acceptance.

The main character of Jasmine is presented as a rebellious and independent person who, at different points in her life, defies social norms. From a young age, her liberal views and independence are clear. As Jasmine states, "I know what I don't want to become," she sets herself apart by having the power to control her own fate (*Jasmine*, 5). Her acceptance of fate— "What is to happen will happen"—further highlights her tenacity (*Jasmine*, 3). She reframes the scar on her forehead as a sign of insight when her sisters ask her about it, saying, "It's not a scar, it's my third eye" (*Jasmine*, 5), signifying her increased awareness and resistance of traditional wisdom.

Jasmine is resolute in her academic pursuits, as evidenced by her willingness to accept her teacher's encouragement to study English literature. She reacts bravely and enthusiastically when offered the chance to further her studies. Her love of English complements her spouse Prakash Vijh's desire to update her perspective. In and of itself, marrying Prakash is a rejection of patriarchal convention. The cultural ramifications of such a marriage overwhelm her friend Vimla, who suffers from a kind of culture shock. Prakash renames Jyoti Jasmine when they get married, further altering her identity and highlighting the concept of change. But when riots break out in her hometown when India and Pakistan are divided, her hopes and dreams are momentarily dashed. When Kalasa Lion Sukhwinder Singh kills Prakash, tragedy ensues. After Prakash passes away, Jasmine decides to immigrate to the USA to realize his dream of being accepted to a Florida institution.

Adversity abounds in Jasmine's path to America. She enters the country illegally with the help of smugglers and is brutally attacked by the ship's captain, Half-Face. But in a crucial act that represents her refusal to be a victim, she kills her rapist to regain her agency. She is protected by Lillian Gordon when she arrives in America, who helps her change while protecting her from prejudice and shame. Her adjustment to American culture is further aided by Lillian's advice to forgo traditional Indian dress in favour of Western wear. Jasmine goes through another stage of identity development when she takes on the moniker Jazzy, which is influenced by Lillian. After meeting Taylor, Jazzy starts afresh in New York. But she feels unsafe and moves to Iowa after seeing Sukhwinder Singh, the man who killed her husband. She adopts a uniquely American persona in this new setting, where she lives with Bud Ripplemayer and becomes pregnant with his child. Her final choice to choose Taylor over Bud highlights how she eventually evolved into an independent American woman. Because she is seen as an outsider—a Third World woman characterized by otherness—Jasmine has difficulties as she migrates to the United States. She intentionally uses Americanization as a survival tactic to break free from this forced identity, removing the stigma associated with her past and blending in with her new surroundings.

Jasmine's many personas reflect both the literal and symbolic reincarnation theory of Bharati Mukherjee. "I was born into a Hindu Bengali Brahmin family, which means that I have a different sense of self, of existence, and of mortality than writers like Malamud," Mukherjee says in an interview with Carb. Our souls can, in my opinion, be born in more than one body (Carb & Mukherjee, 1988, p. 646). This idea that one's identity is flexible rather than fixed is reflected in Jasmine's journey, as she continuously reinvents herself in reaction to her circumstances. Rather than merely adapting, Jasmine's readiness to adopt several identities is an expression of agency. Early in the book, when women squat in an open field and little Jyoti shows rebellion by killing a wild dog, Mukherjee foreshadows her metamorphosis. This act of self-assertion, which represents her resistance to be subjugated, foreshadows her subsequent murder of her rapist, Half-Face. Jasmine also demonstrates resistance in her home village by addressing the beedi smokers and other guys who make fun of women. Thus, Mukherjee draws attention to the widespread sexual harassment and exploitation that Indian women experience in rural areas. In addition to being a change in geography, Jasmine's relocation to the US represents a shift from the traditional and patriarchal boundaries of the East to the contemporary and individualistic culture of the West.

According to Warhol and other post-colonial historians, Jasmine "orientalises and stereotypes the experience of rural Indian women, solidifying Western prejudices and glorifying the position of women in North

America by contrast" (Warhol-Down, 2000, p.1). Given that the early parts of the book concentrate on Punjab's patriarchal standards and the systematic marginalization of women, this critique is especially pertinent. The story opens by outlining the difficulties Indian women encounter, such as the sati custom, the prohibition of schooling once puberty, the social pressure to wed widowers, and the lack of freedom in selecting a life partner. The second part of the book, on the other hand, focuses on Jasmine's journey to the US, where she changes to conform to Western ideas of freedom and modernity.

After arriving in America, Jasmine is coached by Lillian Gordon, who makes sure she fits in by encouraging her to dress and behave in a Western way. She then takes on the identity of Jase and starts working for Taylorn. She later plays Jane, Bud Ripplemayer's loyal companion in Iowa, in yet another role. Jasmine considers her decisions during these changes, caught between the prospects in America and her deeply rooted cultural upbringing. "I am not choosing between men," she says, expressing her internal conflict. I am caught between the promise of America and the submissive behaviour of the old world. A carer's life is a good and deserving one. What ought I to do? (Jasmine, 240)". Through Jasmine's travels, Bharati Mukherjee subtly promotes American culture as a way for Indian women to break free from the restrictions placed on them, implying that assimilating into the West is a solution to their problems.

Salami and Farnoosh (2018) delve deeper into Jasmine's metamorphosis, portraying her as a young, traditional rural girl who transforms into a contemporary, multicultural American woman. Her constant balancing act between two cultures is reflected in her changing identities. They note that Jasmine is a hybrid being juggling multiple identities, occupying a third place that is neither wholly Indian nor wholly American (Salami & Farnoosh, 2018, p. 223). Notably, as a means of surviving in a foreign environment, she completely immerses herself in each new identity rather than carrying traces of the previous one into the next.

Critical issues of identity and cultural assimilation are brought up by Jasmine's desire for self-reinvention. Her steadfast devotion to her life partners is a subtle reflection of her Indianness, even as she accepts American principles. She embraces the intellectual freedom that her husband, Prakash Vijh, promotes and adopts his progressive outlook. She bravely relocates to the US after his passing in order to realize his dreams. Her dedication to each of her partners—Prakash, Bud, and Taylor—indicates that some facets of her identity are unaffected by her numerous changes. Her choice to leave Bud in favour of Taylor emphasizes her agency in writing her own story and supports her representation as an independent American woman who retains some of her Indian sensibilities.

Jasmine's experience best defines the process of hybridization, in which an immigrant's identity is moulded by the interplay between the past and the present. Because they are neither completely a part of their host society nor totally a part of their homeland, immigrants live in a state of ambiguity. Since it becomes difficult for immigrants to come to terms with the challenges of the alien culture, the feeling of being the other makes identity creation even more difficult. Jasmine is one of many immigrants who use assimilation as a survival strategy and embrace the host culture as a representation of modernity. Jasmine views Americanization as a symbol of modernity that enables her to transcend social norms and conventional gender roles. She exemplifies the difficulties of cultural shift by adjusting to new situations while holding fast to her personal relationships. Her journey ultimately demonstrates how identity is a dynamic and changing process influenced by self-determination, adaptability, and displacement rather than a set construct.

As stated by R.K. Jain, "Westernization is not the only source of Indian modernity" (Jain, 2010, p. 108). Jasmine's liberal outlook was engrained in her from a young age and did not develop once she arrived in the United States. Despite being raised in the traditional, patriarchal setting of Hasanpur, a tiny Punjabi village, she demonstrated the ability to think independently and the yearning for autonomy. Despite being influenced by her surroundings, she refused to live the passive life that women like Vimla did, declaring that she did not wish to live "like livestock." Her progressive views were further expressed by her husband,

Prakash, who supported her intellectual and personal development. Westernization, when it eventually became necessary for Jasmine, only nourished the seeds of independence that had always been inside of her; it did not produce her modernity.

Since immigrants must deal with racial prejudice, class inequality, and cultural dissonance, their experience is crucial in forming their identities. Assimilation is a process that many immigrants go through, learning the language, assimilating into the culture, and even changing their names. Adaptation becomes essential for survival. This change may cause an identity crisis at first, but assimilation eventually becomes instinctive. This process is best illustrated by Jasmine's metamorphosis in the US. She learns to speak English fluently, walk confidently in high heels, and dress in Western fashion under Lillian Gordon's tutelage. More than just a new name, the move from Jasmine to Jazzy represents a fundamental change in how she views herself. Jazzy starts to face the future with newfound vigour, no longer bound by her past. Her transformation from Jyoti to Jane represents the ongoing reinvention of the self and goes beyond a simple change of name. It also represents a profound spiritual revolution.

Jasmine's journey is portrayed by Bharati Mukherjee as one of empowerment via migration and Westernization. The book presents Jasmine as a resilient role model, showing how she may adjust and prosper in a strange country without suffering significant obstacles. She constantly changes who she is in order to live, alternating between the world she left behind and the one she hopes to embrace. The immigrant experience is characterized by this flexibility of selfhood, which enables her to overcome obstacles and assimilate into American society. By drawing a parallel between her personal experiences and the growth of Jasmine as an outsider, Mukherjee supports the idea that assimilation results in liberty.

The idea of othering—perceiving someone as alien or different—is also explored in the book. An immigrant is frequently viewed as an outsider when their cultural identity is closely linked to their sense of self. The line between self and other, however, starts to blur as Jasmine lets go of the limitations of her past and completely immerses herself in her new surroundings. By using the metaphor of the broken pitcher, Mukherjee captures this idea: "When the pitcher breaks, the air inside the pitcher and the air outside the pitcher become one." Jasmine transforms from her previous self into a fully assimilated American, no longer an outsider but an essential member of the culture.

References

Ashcroft, B., Griffiths, G. & Tiffin, H. (2000). *Post-Colonial Studies: The Key Concepts* Second Edition, Routledge.

Berry, J. W. (2011). Integration and Multiculturalism: Ways towards Social Solidarity. *Papers on Social Representations*, 20, 2.1-2. 21.

Bhabha, H. K. (1994). *The Location of Culture*. Routledge.

Carb, A. B., & Mukherjee, B. (1988-89). An Interview with Bharati Mukherjee. *The Massachusetts Review*, 29 (4), 645-654.

Hall, S. (1990). Cultural Identity and Diaspora. In Jonathan Rutherford (Ed.) *Identity: Community Culture, and Difference*. Lawrence & Wishert, pp. 222-237.

Jain. R. K. (2010). *Nation, Diaspora, Trans-Nation: Reflections from India*. Routledge.

Meer, A. (Fall, 1989). Bharti Muherjee. BOMB Magazine. Retrieved from:https://bombmagazine.org/articles/1989/10/01/bharti-mukherjee/

Mukherjee, B. (1991). *Jasmine*. Virago Press.

Salami, A. & Farnoosh, P. (2018). From Jyoti to Jasmine: Mukherjee's Quest for Hybrid identity in Jasmine. *Journal of Language and Literary Studies*, 223-235. DOI: 10.31902/fll.21.2018.11

Warhol-Down, R. (2000). Jasmine reconsidered: Narrative discourse and multicultural subjectivity. *Contemporary Women's Writing*, 2 (1), 1-16, doi.org/10.1093/cww/vpn007.

*****

'कब्र का मुनाफ़ा' कहानी में बाज़ारवादी संवेदनहीनता एवं नैतिक पतन

-नवी हसन
जामिया मिल्लिया इस्लामिया
मो. न. 8881851944
पता: 535/6, ज़ाकिर नगर, ओखला, जामिया नगर, नई दिल्ली, 110025

प्रस्तावना:

वर्तमान समय में बाज़ारवाद और विज्ञापन केवल आर्थिक गतिविधियों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि समाज की मूल संरचना को भी प्रभावित कर रहे हैं। बाज़ारवाद की यह प्रवृत्ति हमारी संस्कृति, संस्कार, रीति-रिवाज, धार्मिक अनुष्ठान, मानवीय संबंधों, आपसी सौहार्द, प्रेम और पारिवारिक रिश्तों तक को अपने प्रभाव में ले चुकी है। आधुनिक समाज में व्यक्ति केवल आर्थिक सफलता के पीछे भागता प्रतीत होता है और इसी प्रतिस्पर्धा में वह अपने नैतिक मूल्यों एवं संवेदनशीलता को धीरे-धीरे भूलता जा रहा है। समाज में ऐसी मानसिकता विकसित हो रही है, जहाँ व्यक्ति स्वयं को विशिष्ट दिखाने की होड़ में दूसरों से अलग दिखने के प्रयास में संलिप्त रहता है।

बाज़ारवाद की यह प्रवृत्ति अब इतनी व्यापक और विकराल हो चुकी है कि मृत्यु जैसी आध्यात्मिक एवं संवेदनशील घटना भी इससे अछूती नहीं रही। आज यह स्थिति उत्पन्न हो गई है कि मृत्यु और उससे संबंधित प्रक्रियाओं को भी आर्थिक संसाधन एवं व्यापार के अवसर के रूप में देखा जाने लगा है। पूँजीवादी व्यवस्था में हर चीज़ को मूल्य और लाभ-हानि के तराज़ू में तौला जाता है, चाहे वह कितनी ही मानवीय और संवेदनशील क्यों न हो। इस संदर्भ में, प्रवासी साहित्यकार तेजेंद्र शर्मा की कहानी 'कब्र का मुनाफ़ा' एक महत्वपूर्ण रचना के रूप में उभरती है, जो बाज़ारवादी मानसिकता के इस कटु यथार्थ को उजागर करती है।

यह कहानी इस बात पर प्रकाश डालती है कि किस प्रकार पूँजीवाद और लाभ की लालसा ने मृत्यु जैसी शाश्वत सत्य घटना को भी व्यापार का माध्यम बना दिया है। संभवतः यह पहली हिंदी कहानी है जो इस विषय को इतनी गहनता से विश्लेषित करती है। तेजेंद्र शर्मा ने प्रवासी जीवन और बाज़ारवादी सोच के प्रभावों को बड़े ही सूक्ष्म और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है, जिससे यह कहानी एक महत्वपूर्ण सामाजिक आलोचना के रूप में स्थापित होती है।

तेजेंद्र शर्मा की कहानी 'कब्र का मुनाफ़ा 'का शीर्षक ही पाठकों को गहराई से सोचने पर विवश कर देता है। जहाँ एक ओर 'कब्र 'जीवन के अंत, मृत्यु और आध्यात्मिक शून्यता का प्रतीक है, वहीं 'मुनाफ़ा ' व्यापारिक लाभ, पूँजीवादी प्रवृत्तियों और बाज़ारवाद को दर्शाता है। इन दोनों विरोधाभासी प्रतीकों का एक साथ प्रयोग किसी गहरे सामाजिक एवं आर्थिक संदर्भ की ओर संकेत करता है। यह कहानी मूल रूप से इस प्रश्न को उठाती है कि क्या हमारा समाज अब उस स्थिति में पहुँच चुका है, जहाँ मृत्यु भी लाभ-हानि का विषय बन चुकी है?

यह कहानी वर्तमान समय में बाज़ारवाद के बढ़ते प्रभाव और मानवीय मूल्यों के क्षरण की गहन पड़ताल करती है। डॉ. साधना अग्रवाल अपने आलेख 'कब्र का मुनाफ़ा का अंतर्पाठ' में इस कहानी की बाज़ारवाद के दुष्प्रभावों को उजागर करने वाली प्रवृत्ति को रेखांकित करते हुए लिखती हैं—"'कब्र का मुनाफ़ा 'कहानी हमारे समय के बढ़ते बाज़ारवाद के दुष्प्रभाव को बड़ी खूबसूरती से सामने ही नहीं लाती, बल्कि हमारी संवेदनशीलता को भी झकझोरती है।"[1] यह कथन इस तथ्य को उजागर करता है कि तेजेंद्र शर्मा ने इस कहानी में बाज़ारवाद के उस अंधेरे पक्ष को प्रस्तुत किया है, जहाँ मानवीय भावनाएँ भी एक वस्तु बन जाती हैं। मृत्यु जैसी गहरी संवेदनशील घटना भी अब व्यावसायिक लाभ का साधन बन चुकी है, और यह संवेदनहीनता हमें आंतरिक रूप से झकझोर देती है। डॉ. साधना अग्रवाल इस कहानी के प्रभाव पर चर्चा करते हुए आगे लिखती हैं— "बाजारवाद हमारी जिंदगी में चुपचाप किस तेजी के साथ प्रवेश कर रहा है, इसकी मिसाल है यह कहानी। यहां यह सवाल भी उठता है कि क्या बाजारवाद की इस आंधी में हमारी मनुष्यता, संवेदना कहीं खो गई है कि हम कब्र में भी अर्थात् मरने के बाद भी मुनाफे की ही बात सोचें।"[2] यह कथन स्पष्ट करता है कि बाजारवाद केवल जीवित मनुष्यों के विचारों और व्यवहार को ही नहीं बदल रहा, बल्कि मृत्यु के प्रति हमारी धारणा को भी प्रभावित कर रहा है। तेजेंद्र शर्मा की यह कहानी यह दिखाती है कि जब व्यक्ति की सोच पूरी तरह पूँजीवादी हो जाती है, तो वह जीवन और मृत्यु दोनों को ही आर्थिक गणना के आधार पर देखने लगता है।

'कब्र का मुनाफ़ा 'कहानी का कथानक लंदन में बसे दो प्रवासी मुस्लिम परिवारों—खलील ज़ैदी और उसकी पत्नी नादिरा तथा नजम जमाल और उसकी पत्नी आबिदा—के इर्द-गिर्द घूमता है। खलील पाकिस्तान से और नजम भारत से आकर लंदन में बस गए हैं। ये दोनों पुरुष पूँजीवादी मानसिकता के शिकार हैं, जिनका मुख्य उद्देश्य केवल अर्थ संचय और व्यापारिक अवसरों को तलाशना है। यह कहानी प्रवासी जीवन के भीतर गहराई से पैठी उस बाज़ारवादी सोच को उजागर करती है, जो मानवीय संवेदनाओं को भी आर्थिक संभावनाओं के चश्मे से देखने के लिए मजबूर कर देती है। इस कहानी के माध्यम से तेजेंद्र शर्मा ने प्रवासी समाज की संस्कृति, अस्मिता, और बाज़ारवादी दुष्प्रभावों को बेहद प्रभावी तरीके से चित्रित किया है।

नीना पॉल इस कहानी को वैश्वीकरण और बाज़ार अर्थव्यवस्था के संदर्भ में विश्लेषित करते हुए इसे एक परिवेशजन्य कथा मानती हैं। उनके अनुसार, "'कब्र का मुनाफ़ा 'कहानी एक तरफ वैश्वीकरण से उत्पन्न परिवेश तथा उस परिवेश से जन्मी बाज़ार अर्थव्यवस्था की ओर इशारा करती है, और दूसरी तरफ इस बाज़ार अर्थव्यवस्था से विकसित पारिवारिक संबंधों में बिखराव, एकाकीपन जैसे कई धरातलों को स्पर्श करती है।" [3] यह कथन स्पष्ट करता है कि कैसे बाज़ारवाद केवल आर्थिक और व्यावसायिक ढांचे को ही नहीं, बल्कि सामाजिक और पारिवारिक ताने-बाने को भी प्रभावित कर रहा है।

खलील और नजम के व्यक्तित्व और जीवनशैली इस बात को दर्शाते हैं कि कैसे पूँजीवादी प्रवृत्तियाँ पारिवारिक और मानवीय संबंधों को प्रभावित कर रही हैं। दोनों पुरुष अपने व्यावसायिक हितों और आर्थिक समृद्धि की खोज में इस कदर लीन हैं कि वे अपने पारिवारिक दायित्वों और संबंधों की गर्माहट को भूल चुके हैं। उनकी पत्नियाँ, आबिदा और नादिरा, केवल नाम मात्र की जीवनसंगिनी बनकर रह गई हैं, जिनकी भावनाएँ और अस्तित्व उनके पतियों के जीवन में कोई विशेष महत्व नहीं रखते। तेजेंद्र शर्मा कहानी में लिखते हैं कि "महसूस आबिदा भी कर रही थी और नादिरा भी। दोनों महसूस करती थीं कि उनके पतियों के पास समय नहीं है। उनके पति बस देते हैं घर का खर्च चलाने के लिए, लेकिन उसका भी हिसाब ऐसे रखा जाता है जैसे कम्पनी के किसी क्लर्क से खर्चे का हिसाब पूछा जा रहा हो। दोनों को कभी यह महसूस नहीं हुआ कि वे अपने घर की मालकिनें हैं। उन्हें समय-समय पर यह याद दिला दिया जाता था कि घर के मालिक के हुक्म के बिना वे एक कदम भी नहीं चल सकतीं। आबिदा तो अपनी नादिरा आपा के सामने अपना रोना रो लेती थी लेकिन नादिरा हर बात केवल अपने सीने में दबाये रखती।"[4]

कहानी में महत्वपूर्ण मोड़ तब आता है, जब खलील लंदन के एक प्रतिष्ठित कब्रिस्तान 'कार्पेंडर्स पार्क' में अपनी कब्र बुक कराने का निर्णय लेता है। यह घटना केवल एक व्यक्तिगत निर्णय नहीं, बल्कि बाज़ारवादी मानसिकता की चरम सीमा को दर्शाती है, जहाँ मृत्यु भी एक विशिष्ट वर्ग और सामाजिक प्रतिष्ठा का हिस्सा बन जाती है। खलील यह मानता है कि यदि वह इस प्रतिष्ठित कब्रिस्तान में दफनाया जाएगा, तो यह उसकी उच्च सामाजिक स्थिति का प्रतीक होगा। यह सोच पूँजीवादी संस्कृति की उस विडंबना को उजागर करती है, जिसमें मनुष्य जीवन भर ब्रांड, प्रतिष्ठा और विशेषाधिकार की दौड़ में लगा रहता है और मृत्यु के बाद भी वह इन भौतिक मानकों से मुक्त नहीं हो पाता। खलील की यह मानसिकता यह संकेत देती है कि बाज़ारवाद ने न केवल जीवित मनुष्यों की सोच को बदल दिया है, बल्कि मृत्यु जैसी आध्यात्मिक और व्यक्तिगत घटना को भी एक व्यापारिक अवसर में परिवर्तित कर दिया है।

खलील की यह सोच बाज़ारवादी प्रवृत्तियों और वर्गीय भेदभाव की गहरी जड़ें उजागर करती है, जहाँ सामाजिक पदानुक्रम का प्रभाव मृत्यु के बाद भी बना रहता है। जीवनभर वर्ग, जाति और धार्मिक पहचान के आधार पर अपने को श्रेष्ठ मानने की जो प्रवृत्ति व्यक्ति के भीतर रहती है, वही मृत्यु के बाद भी उसकी सोच को नियंत्रित करती है। खलील चाहता है कि उसकी कब्र केवल उसके जैसे उच्च वर्गीय और विशिष्ट लोगों के बीच हो, ताकि उसकी सामाजिक स्थिति मृत्यु के बाद भी बरकरार रहे। उसकी यह मानसिकता उसके द्वारा बोले गए इस संवाद में स्पष्ट झलकती है—"यार ये साला कब्रिस्तान शिया लोगों के लिए एक्सक्लूसिव नहीं हो सकता क्या? वरना मरने के बाद पता नहीं चलेगा कि पड़ोस में शिया है या सुन्नी या वो गुजराती टोपी वाला। यार सोच कर ही झुरझुरी महसूस होती है। मेरा तो बस चले तो एक क़ब्रिस्तान बना कर उस पर बोर्ड लगा दूँ - शिया मुसलमानों के लिए रिज़र्व्ड।" [5] यह कथन न केवल धार्मिक भेदभाव की ओर संकेत करता है, बल्कि सामाजिक विभाजन और जातिगत श्रेष्ठता की मानसिकता को भी उजागर करता है। खलील मृत्यु के बाद भी अपने 'अपने जैसे 'लोगों के बीच दफ़न होना चाहता है। यह मानसिकता केवल धार्मिक नहीं, बल्कि सामाजिक भेदभाव और जातिवादी श्रेष्ठता से भी भरी हुई है। उसकी इस सोच का दूसरा पहलू इस संवाद में स्पष्ट होता है—"देखो मैं नहीं चाहता कि मरने के बाद हम किसी खानसामा, मोची या प्लंबर के साथ पड़े रहें। भई, अपने जैसे लोगों के बीच दफ़न होने का सुख और ही है।" [6] यहाँ बाज़ारवाद की वह विकृत सच्चाई उभरकर सामने आती है, जहाँ मृत्यु के बाद भी व्यक्ति अपने स्टेटस और विशिष्ट पहचान को बनाए रखना चाहता है। तेजेंद्र शर्मा इस कहानी के माध्यम से यह दिखाने का प्रयास करते हैं कि बाज़ारवाद केवल आर्थिक गतिविधियों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह व्यक्ति की सोच, भावनाओं और यहाँ तक कि हमारे आध्यात्मिक अथवा धार्मिक दृष्टिकोण को भी आंतरिक रूप से प्रभावित करता है।

खलील का यह व्यवहार पूँजीवादी समाज की उस विडंबना को दर्शाता है, जहाँ हर चीज़—चाहे वह जीवन हो या मृत्यु—व्यवसाय, विशेषाधिकार और सामाजिक प्रतिष्ठा का हिस्सा बन चुकी है। समाज में व्याप्त आर्थिक और सामाजिक ऊँच-नीच की भावना केवल जीवन तक सीमित नहीं रहती, बल्कि मृत्यु के बाद भी लोग अपनी विशिष्ट पहचान बनाए रखना चाहते हैं। यह एक ऐसी मानसिकता है, जो यह मानने से इनकार करती है कि मृत्यु अंतिम सत्य है, जो सभी को समान कर देती है। तेजेंद्र शर्मा की यह कहानी एक गहरी सामाजिक आलोचना प्रस्तुत करती है, जिसमें बाज़ारवाद का अमानवीय चेहरा उजागर होता है और यह प्रश्न उठाया जाता है कि क्या मनुष्य केवल एक उपभोक्ता बनकर रह गया है, जिसके लिए उसकी स्वयं की संवेदनाएँ भी एक व्यापारिक सौदे का हिस्सा बन चुकी हैं।

खलील केवल सामाजिक और धार्मिक संकीर्णता तक सीमित नहीं है, बल्कि उसमें कट्टरता और घृणा भी कूट-कूट कर भरी हुई है। वह दूसरे समुदाय के प्रति अपनी नफ़रत को स्पष्ट रूप से व्यक्त करता है— "हिंदुओं या हिंदुस्तान की बढ़ाई पूरी तरह से एंटी इस्लामिक है। फिल्में देखी हैं उनकी, वल्गैरिटी परसोनीफाईड। मेरा बस चले तो सारे हिंदुओं को एक कतार में खड़ा करके गोली से उड़ा दूँ।" [7]यह कथन खलील की मानसिकता को स्पष्ट करता है कि वह धार्मिक सहिष्णुता को नकारते हुए एक अतिरेक और संकीर्ण दृष्टिकोण अपनाए हुए है। उसकी सोच केवल पूर्वाग्रहों से ग्रसित नहीं, बल्कि हिंसक प्रवृत्तियों को भी दर्शाती है। यहाँ तक कि वह अपनी पत्नी नादिरा के विचारों को जानकर कटाक्ष करता है— "आप तो बस हिंदू हो गई हैं। आप सिंदूर लगा लीजिए, बिंदी माथे पर चढ़ा लीजिए और आर्य समाज में जा कर शुद्धि करवा लीजिए।... लेकिन याद रखिएगा, हम आपको तलाक़ दे देंगे।" [8] यह कथन न केवल खलील की धार्मिक

असहिष्णुता को दर्शाता है, बल्कि यह भी स्पष्ट करता है कि वह स्त्रियों की स्वतंत्र सोच को भी स्वीकार नहीं करता।

इसके विपरीत, नादिरा एक उदारवादी और समाजवादी सोच रखने वाली स्त्री है, जिसने भारत में शिक्षा प्राप्त की है और जो धार्मिक भेदभाव एवं बाज़ारवादी मानसिकता से सहमत नहीं है। खलील की संकीर्ण सोच और दिखावे की प्रवृत्ति उसे अस्वीकार्य लगती है। जब खलील कब्र खरीदने का निर्णय लेता है, तो नादिरा उससे प्रश्न करती है— "खलील, ये आपने अभी से कब्रें क्यों बुक करा ली हैं? और फिर घर से इतनी दूर क्यों? कार्पेंडर्स पार्क तक तो हमारी लाश को ले जाने में भी खासी मुश्किल होगी।" [9]इस पर खलील का उत्तर उसकी मानसिकता को और स्पष्ट कर देता है— "भई, एक बार लाश रॉल्स रॉयस में रखी गई तो हैम्पस्टैड क्या और कार्पेंडर्स क्या। कम से कम मरने के बाद अपने स्टेटस के लोगों के साथ रहेंगे।"[10] इस कथन में खलील की बाज़ारवादी मानसिकता की पराकाष्ठा देखने को मिलती है, जहाँ वह मृत्यु के बाद भी अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा बनाए रखने की लालसा रखता है।

नादिरा खलील की सोच पर गहरा प्रहार करती है और उसकी बाज़ारवादी प्रवृत्तियों को तर्क के आधार पर चुनौती देती है। वह खलील से कहती है— "खलील, आप जिंदगी भर तो इंसान को पैसों से तोलते रहे। क्या मरने के बाद भी आप नहीं बदलेंगे? मरने के बाद तो शरीर मिट्टी ही है, फिर उस मिट्टी का नाम चाहे अब्दुल हो, नादिरा हो या फिर खलील।" [11]यह कथन केवल खलील की सोच पर ही नहीं, बल्कि संपूर्ण बाज़ारवादी मानसिकता पर एक करारा प्रहार करता है। नादिरा यहाँ एक तार्किक और मानवीय दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है, जहाँ मृत्यु के बाद सभी मनुष्यों की एक समानता स्थापित हो जाती है। वह यह दिखाने का प्रयास करती है कि मृत्यु के बाद नाम, धर्म, जाति, वर्ग सब समाप्त हो जाते हैं और केवल मिट्टी ही शेष रह जाती है। तेजेंद्र शर्मा इस संवाद के माध्यम से यह दर्शाते हैं कि समाज में व्याप्त वर्गीय और धार्मिक भेदभाव की प्रवृत्ति केवल जीवन तक सीमित नहीं रहती, बल्कि मृत्यु के बाद भी लोग इसे बनाए रखना चाहते हैं।

आज हमारे समाज में विज्ञापन किस हद तक नैतिक पतन की ओर बढ़ चुके हैं, उसका अनुमान नजम के इस कथन से लगाया जा सकता है, जहां वह ख़लील से कहता है कि "ख़लील भाई उनकी एक बात बहुत पसंद आई है। उनका कहना है कि अगर आप किसी एक्सीडेंट या हादसे का शिकार हो जाएँ, जैसे आग से जल मरें तो वो लाश का ऐसा मेकअप करेंगे कि लाश एकदम जवान और खूबसूरत दिखाई दे। अब लोग तो लाश की आख़री शक्ल ही याद रखेंगे न। नादिरा भाभी और आबिदा को यही आइडिया बेचते हैं, कि जब वो मरेंगी तो दुल्हन की तरह सजाई जायेंगी।" [12] यह कथन दर्शाता है कि इस बाज़ारवादी युग में विज्ञापन किस प्रकार भावनाओं का दोहन कर रहा है और किस हद तक जीवन का हर एक मूल्य उत्पाद में बदल गया है।

कहानी के अंत में नादिरा जब खलील और अपनी कब्रों की बुकिंग रद्द करवा देती है, तो अप्रत्याशित रूप से कंपनी उन्हें चार सौ पाउंड का मुनाफा लौटा देती है। यह घटना केवल एक आर्थिक लेन-देन भर नहीं है, बल्कि यह बाज़ारवाद के चरम रूप को दर्शाती है, जहाँ मृत्यु भी व्यापार का हिस्सा बन चुकी है। जब यह पूरा प्रकरण घट रहा होता है, तब नजम भी वहीं मौजूद होता है। जैसे ही खलील और नजम को यह अहसास होता है कि कब्र की बुकिंग कैंसिल करवाने पर उनको अप्रत्याशित मुनाफ़ा हुआ है, उनकी आँखों में एक नई चमक आ जाती है। तेजेंद्र शर्मा यहाँ एक गहरी विडंबना को प्रस्तुत करते हैं— वे दोनों उस चार सौ पाउंड के लाभ को देखकर तुरंत ही एक नया व्यवसायिक विचार अपने मन में गढ़ लेते हैं: 'कब्रों का व्यापार'।

यह दृश्य दर्शाता है कि बाज़ारवाद किस हद तक मानवीय संवेदनाओं को कुचल चुका है। जहाँ मृत्यु एक समय तक केवल शोक और स्मृति का विषय थी, वहीं अब यह भी व्यापार का एक साधन बन गई है। खलील और नजम की यह मानसिकता यह सिद्ध करती है कि पूँजीवाद ने केवल समाज के आर्थिक ढांचे को ही नहीं, बल्कि हमारी सोच, भावनाएँ और नैतिकता तक को नियंत्रित कर लिया है। कहानी का यह अंत पाठकों को गहरे विचार में डाल देता है— क्या हमने अब कब्र जैसे भावनात्मक प्रतीकों को भी लाभ का साधन बना लिया है? क्या हमारे लिए मानवीय संवेदनाएँ केवल एक वस्तु भर रह गई हैं?

इस कहानी में खलील और नजम जैसे पात्र पूँजीवादी प्रवृत्तियों के शिकार हैं, जिनके लिए हर चीज़ एक व्यापारिक अवसर बन चुकी है—चाहे वह पारिवारिक संबंध हों या मृत्यु जैसी संवेदनशील घटना। बाज़ार अर्थव्यवस्था ने न केवल मानवीय संबंधों को उपभोक्तावादी दृष्टिकोण में बदल दिया है, बल्कि व्यक्ति के जीवन के हर पक्ष को लाभ-हानि की कसौटी पर तौलने की आदत डाल दी है। पारिवारिक विघटन, एकाकीपन और रिश्तों में आई खोखली औपचारिकता इस कहानी में गहराई से उभरकर आती है।

वैश्विक पूँजीवाद ने इंसान को मात्र एक उपभोक्ता इकाई में बदल दिया है, जहाँ रिश्ते भी अब आर्थिक मूल्यों पर निर्भर होते जा रहे हैं। व्यक्ति की पहचान, उसकी सामाजिक स्थिति, और यहाँ तक कि मृत्यु के बाद की उसकी प्रतिष्ठा भी अब बाज़ार के नियमों के अधीन हो चुकी है। कहानी में खलील का यह सोचना कि मरने के बाद भी उसे उच्च वर्गीय और विशिष्ट लोगों के बीच ही दफन होना चाहिए, इस बात को रेखांकित करता है कि वैश्वीकरण ने सामाजिक भेदभाव को भी आर्थिक आधार पर पुनर्परिभाषित कर दिया है।

प्रसिद्ध आलोचक राजेंद्र यादव इस कहानी को प्रवासी समाज की मूल्यहीनता और लालच से जोड़ते हैं। वे लिखते हैं— "'कब्र का मुनाफा' ऐसे मुसलमान दोस्तों की कहानी है जो न अपने भीतर के लखनऊ को निकाल पाए हैं न कराची को और अपने लिए खरीदी गई कब्रों की जगहों को मुनाफे में बेचकर सफलता का संतोष पाते हैं। यह मरते-मरते विदेश से कुछ-न-कुछ झटक लेने का लालच है।" [13]यह कथन प्रवासी समाज की सांस्कृतिक अस्थिरता और उनकी प्रवासी अस्मिता के संकट को रेखांकित

करता है। साथ ही इस दृष्टिकोण से देखें तो यह कहानी यह दिखाती है कि कैसे प्रवासी एक द्वंद्व की स्थिति में जी रहे हैं—वे न पूरी तरह अपनी जड़ों से कट पाते हैं और न ही नए परिवेश में पूरी तरह घुलमिल पाते हैं। इसी अस्थिरता और आत्मविरोध की स्थिति में वे मृत्यु के बाद भी आर्थिक लाभ की गणना करने से स्वयं को रोक नहीं पा रहे।

'कब्र का मुनाफ़ा' कहानी केवल आर्थिक बाज़ारवाद की आलोचना नहीं करती, बल्कि यह सामाजिक, सांस्कृतिक और भावनात्मक स्तरों पर भी बाज़ारवाद के प्रभाव को उजागर करती है। यह कहानी हमें चेतावनी देती है कि यदि बाज़ार की इस प्रवृत्ति को नहीं समझा गया, तो यह हमारी संवेदनाओं, रिश्तों और मूल्यों को पूरी तरह से प्रभावित कर सकता है। तेजेंद्र शर्मा की यह रचना बाज़ारवाद की जटिलताओं और उसके दूरगामी परिणामों को दर्शाने वाली एक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक कृति के रूप में उभरती है। साथ ही बाज़ारवाद के विषय में डॉ. भगवान गव्हाडे का वह कथन भी पूर्णतः सत्य प्रतीत होता है जहां वो बाज़ारवादी संवेदनहीनता एवं नैतिक पतन जैसे विषयों को ओर इशारा करते हुए कहते हैं कि "बाज़ारवाद में मनुष्य की संवेदनाएँ तथा अस्मिताएँ नष्ट हो गई हैं। सिर्फ़ और सिर्फ़ व्यक्ति भौतिक सुविधाओं को भोगने वाला उपभोक्ता है। मानवीय मूल्य, उसकी अस्मिता, संवेदनाएँ, प्रेम, भ्रातृभाव, आदर्श तथा रिश्तों की पवित्रता, रीति और नीति की अहमियत, राष्ट्रीय एकता की भावनाएँ आदि विशिष्ट मर्यादाओं को लांघ चुके हैं और हाशिए पर आख़िरी साँसें गिन रहे हैं। जो किसी भी क्षण दम तोड़ सकते हैं। मनुष्य की बारीक से बारीक हलचल पर बाज़ारवाद का प्रभाव है। चाहे जो हो वह उपभोक्ता है बस।" [14]

संदर्भ -सूची

1. अग्रवाल, साधना, कब्र का मुनाफ़ा का अंतर्पाठ, आर्य सुषमा, नावरिया अजय (सम्पादक), प्रवासी हिंदी कहानी एक अंतर्यात्रा, दिल्ली, शिल्पायन, 2013, पृ. सं. 23
2. वही, पृ. सं. 25
3. पॉल नीना (सम्पादक), हिंदी की वैश्विक कहानियाँ, पृ. सं. 112
4. शर्मा, तेजेंद्र, कब्र का मुनाफ़ा, मृत्यु के इंद्रधनुष, नोएडा, इंडिया नेटबुकस, 2019, पृ. सं. 04
5. वही, पृ. सं. 02
6. वही, पृ. सं. 08
7. वही, पृ. सं. 04
8. वही, पृ. सं. 06
9. वही, पृ. सं. 08
10. वही, पृ. सं. 08
11. वही, पृ. सं. 08
12. वही, पृ. सं. 03
13. अग्रवाल, साधना, कब्र का मुनाफ़ा का अंतर्पाठ, आर्य सुषमा, नावरिया अजय (सम्पादक), प्रवासी हिंदी कहानी एक अंतर्यात्रा, दिल्ली, शिल्पायन, 2013, पृ. सं. 27
14. गव्हाडे, भगवान (सम्पादक), हिंदी साहित्य से बाज़ारवाद तक, बिहार, साहित्य सागर पब्लिकेशन, 2022, पृ. सं. 138-139

*****

चित्रा मुद्गल के उपन्यास में ''किन्नर विमर्श''–नाला सोपारा पो0 बॉक्स नं0 203 के विशेष संदर्भ में

.केवलानन्द
शोधार्थी (हिन्दी विभाग)
कुमाऊँ विश्वविद्यालय,नैनीताल

जिस प्रकार से पश्चिम में चलने वाले विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक और साहित्यिक आन्दोलनों के प्रभाव स्वरूप बीसवीं शताब्दी के आठवें नवें दशक में समकालीन हिंदी साहित्य में स्त्री–विमर्श, दलित–विमर्श, वृद्ध–विमर्श आदि का प्रादुर्भाव हुआ ठीक उसी प्रकार पाश्चात्य परिवेश में थर्ड जेंडर की सामाजिक स्थिति में आए बदलावों से प्रेरित–प्रभावित होकर लगभग इसी समयावधि में किन्नर–विमर्श का भी साहित्यिक प्रवर्तन होता है। वैसे तो साहित्य समाज का प्रतिबिंब होने के कारण साहित्य का यह धर्म होता है कि वह समाज के सभी अंगों को प्रतिबिम्ब परक अभिव्यक्ति प्रदान करे लेकिन दुर्भाग्य से साहित्य (विशेषकर भारतीय साहित्य) किन्नर विमर्श के आरम्भ से पूर्व अपने इस धर्म का सम्यक निर्वहन करने में असफल रहा था। विगत् शताब्दी के नवें दशक तक किन्नर–समाज, जो कि समाज का एक महत्वपूर्ण अंग होता है उनकी संगतियों–विसंगतियों, अनुभूतियों, जीवन–स्थितियों, आवश्यकताओं, प्रवृत्तियों तथा मनोविज्ञान आदि को किसी भी सर्जक ने सहानुभूतिपरक अभिव्यक्ति नहीं प्रदान की थी। साहित्य–संसार में किन्नर समाज के प्रति यह उपेक्षा की भावना कुछ वैसे ही थी जैसे कि आज भी समाज में किन्नरों के साथ–साथ भेदभाव करते हुए उन्हें अत्यंत हेय दृष्टि से देखा जाता है। भारत की सामाजिक संरचना में यह समाज आज भी मुख्य धारा में अपना स्थान हासिल नहीं कर पाया और अपनी अस्मिता और अस्तित्व के लिए इसे इक्कीसवी सदीं में भी कठोर संघर्ष करना पड़ रहा है। यद्यपि सन 2014 ई० में भारत के उच्चतम न्यायालय ने किन्नरों को पिछडा वर्ग की श्रेणी में रखते हुए इन्हें सरकारी नौकरियों में आरक्षण देने के लिए केन्द्र और राज्य सरकारों को निर्देशित किया तथा प्रवेश फार्मों में स्त्री–पुरुष के अतिरिक्त एक कॉलम थर्ड जेंडर को दर्शाने हेतु बनाने का आदेश भी दिया जिसके फलस्वरूप समाज के प्रत्येक क्षेत्र में किन्नर समुदाय की सहभागिता को बढ़ावा मिल रहा है। सामाजिक एवं आर्थिक स्थितियों में भी व्यापक सुधार हुआ। किन्नर समाज से ताल्लुक रखने वाली लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी, पायल, मनीषा महंत और मनोबीबंद्योपायाय आदि आज पूरे राष्ट्र में किसी परिचय की मोहताज नहीं है। लेकिन किन्नर समाज की स्थिति पूर्णत बदल गयी है ऐसा भी नहीं है किन्नर समाज, समाज की मुख्य धारा से पूरी तरह जुड़ पाया है और न ही इसके प्रति साधारण मनुष्यों की सोच में ज्यादा परिवर्तन हुआ। किन्नर समाज अभी भी सामाजिक शारीरिक और मनोवैज्ञानिक विसंगितियों और विद्रूपताओं से जूझ रहा है जिसे दूर करके ही इसे समाज की मुख्य धारा से जोड़ा जा सकता है।

साहित्य के संदर्भ में किन्नर–विमर्श का अध्ययन–अनुशीलन करने से पूर्व हमें किन्नर शब्द की उद्भव प्रकिया और अर्थवत्ता पर भी दृष्टिपात कर लेना चाहिए। दरअसल समाज से बहिष्कृत कर दिया गया लिंग निरपेक्ष किन्नर समाज उस मानव समुदाय का प्रतिनिधित्व करता है जो न तो पूर्ण रूप से पुरुष है और न ही स्त्री बल्कि संस्कृत व्याकरण में जिसे नपुंसक लिंग कहा गया है उसका पर्याय है। स्त्री एवं पुरुष से इतर जिस मनुष्य समुदाय को हम हेय और उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं वही किन्नर समुदाय है। विश्व की लगभग सभी समाजों की संस्कृति और सभ्यता में स्त्री एवं पुरुष नामक दो लिंगों को ही मनुष्य कहलाने की स्वीकृति मिली है, जबकि इन दोनों लिंगो के अतिरिक्त मनुष्य का एक और भी लिंग होता है जिसे विभिन्न संस्कृतियों में किन्नर, हिजड़ा, नपुंसक, उभयलिंगी व ट्रांसजेंडर आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है। इस मानव समुदाय के लिए वर्तमान में किन्नर, हिजड़ा और छक्का शब्द अधिक प्रचलन में है। किन्नर, शब्द वस्तुतः हिमाचल प्रदेश के अतर्गत आने वाले किन्नौर नामक स्थान के निवासियों के लिए प्रयुक्त होता था जहाँ के स्थानीय निवासी एक विशेष तरह के पेशे के तहत किसी परिवार में होने वाले शादी–विवाह, पर्व, त्यौहार, उत्सव आदि के अवसर पर घर–घर जाकर बधाइयाँ,गाने गाकर आशीर्वाद देते तथा बदले में कुछ पैसे लेकर वापस आ जाते। दक्षिण में यही पेशा करने वालों को हिजड़ा कहा जाता था जो ट्रेनों बसों बाजारों आदि के अतिरिक्त परिवार में होने वाले किसी भी तरह में मांगलिक कार्यों के अवसर पर बधाइयाँ व गाने गाकर आशीर्वाद दिया करते हैं। किन्नरों अथवा हिजड़े पहले भिक्षा वृत्ति करते थे अब व्यवसाय में परिणत हो गया है। यद्यपि शास्त्रों में किसी मांगलिक कार्य के

अवसर पर किन्नरों की उपस्थिति को शुभ तथा इनके आशीर्वाद को प्रभावशाली बताया गया है लेकिन फिर भी समाज में इनके साथ अमानवीय एवं असंवेदनशील व्यवहार किया जाता है। साधारण शब्दों में कहना चाहे तो कह सकते हैं कि किन्नर अथवा हिजडे से अभिप्राय ऐसे व्यक्ति से है जिनके जननांग पूर्णत विकसित न हुए हों या फिर जो व्यक्ति पुरुष होकर भी स्त्रियोचित गुणो से परिपूर्ण हो अथवा जो पुरुष, पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के बीच रहने में अधिक सहजता का अनुभव करता हो–किन्नर या हिजड़ा कहलाता है। किन्नरों को बुचरा, नीलिमा, मनसा और हंसा नामक चार वर्गों में विभक्त किया गया है। वास्तविक किन्नर 'बुचरा' को माना जाता है क्योंकि ये जन्म से ही न तो पूर्णतः स्त्री ही होते हैं और न ही पूर्णतः पुरुष। इसे इस तरह से भी कह सकते हैं कि अविकसित जननांग वाला मनुष्य ही 'बुचरा' अर्थात् वास्त. विक किन्नर होता है। 'नीलिमा' वर्ग के किन्नर वे होते है जो जन्म से तो किन्नर नहीं होते है लेकिन बाद में परिस्थितियों वश किन्नर बन जाते हैं। पुरूष होकर भी मानसिक रूप से स्वयं को स्त्री समझने वाले अथवा स्त्रियोचित व्यवहार करने वाले मनुष्य 'मनसा' किन्नर कहलाते है जबकि 'हंसा' किन्नर वे होते हैं जो अपनी शारीरिक अक्षमताओं के कारण किन्नर बन जाते हैं। ऐसे व्यक्ति जो जन्म से तो पुरूष होते हैं लेकिन पैसा कमाने के लिए हिजड़ा होने का स्वांग रचता है अर्थात नकली किन्नरों को 'अबुआ' कहा जाता है। इसी तरह लिंग विच्छेद करके जबरन हिजड़ा बनाए गए व्यक्ति को हिजरा कहा जाता है। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में कुल चार लाख नब्बे हजार किन्नर हैं जिनमें से केवल 400 ही जन्मजात किन्नर हैं, शेष या तो किन्नर होने का ढोंग करते हैं या फिर किन्नरों की दूसरी श्रेणियों में आते है।

किन्नर किसी भी वर्ग के हों. किन्नर होने से पूर्व वे मनुष्य होते हैं इसलिए मनुष्यता संवेदनशीलता आत्माभिमान आदि उनका भी नैसर्गिक अधिकार होता हैं। परन्तु दुर्भाग्य से साहित्य और समाज दोनों इस मानव–समुदाय को इसका यह अधिकार देने से कतराता रहा है। हालाँकि जिस तरह से साहित्य ने दीर्घकाल तक किन्नर समाज को उपेक्षित रखा उसी तरह से इसे समाज की मुख्यतारा में लाने का कार्य भी किया। साहित्य के इस कार्य के बाद ही उसकी सामाजिक दर्पण संबंधी संद्धातिक चरितार्थ होने लगी है, जिसका कारण यह है कि समकालीन साहित्य ने ही प्रथम बार फिल्मों की उद्भावना करके इस समुदाय के जीवन–संदर्भ में साधारण मनुष्यों की चिरकालीन संकीर्ण कुत्सित एथ भेदभावपूर्ण मानसिकता को पूर्णतः परिवर्तित तो किया ही है, साथ ही किन्नर समाज में व्याप्त विसंगतियों, विद्रूपताओं, आवश्यकताओं, अनुभूतियों आदि का यथार्थपरक चित्रण करके इसे सामाजिकता, संवेदनशीलता मानवता का अधिकारी बना दिया है। विगत् शताब्दी के उत्तरार्द्ध में साहित्यिक परिक्षेत्र में अस्तित्व में आए किन्नरों की जीवन स्थिति को व्यापक अभिव्यक्ति प्रदान की किन्नर जीवन से संबधित इन सर्जनाओं में उपन्यासों का विशिष्ट योगदान रहा है जिनमें नीरजा माधव कृत 'यमदीप' शीर्षक उपन्यास किन्नर–विमर्श के अतर्गत लिखा गया प्रथम उपन्यास माना जात है। इसके अतिरिक्त 'तीसरी ताली, 'मैं भी औरत', 'मैं पायल', 'गुलाम मंड़ी', 'किन्नर–कथा ', 'जिंदगी–50–50', 'अस्तित्व', 'आधा आदमी' तथा चित्रामुद्गल के 'पोस्ट बॉक्स न0–203 नालासोपारा' आदि उपन्यासों का भी किन्नर–जीवन की व्यथा–कथा कहने में विशिष्ट योगदान रहा है।

किन्नर जीवन का यथार्थपरक प्रतिबिम्ब निर्मित करने वाली दूसरी अन्य औपन्यासिक कृतियों की समतुल्यता में समका. लीन कथाकार चित्रा मुद्गल की कृति 'पोस्ट बॉक्स न0–203 नालासोपार' अधिक वास्तविक, संवेदनशील, व्यंग्यात्मक और प्रभ. ावशाली है,इस उपन्यास में चित्रा मुद्गल जी ने लैगिक विकलांगता अर्थात किन्नर होने की स्थिति और उसके सामाजिक सरोकारों को बड़ी ही सजीवता एवं संवेदनात्मकता के साथ चित्रित किया है। सन् 2016 में सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली से प्रकाशित यह उपन्यास थर्ड जेंडर के जीवन पर आधारित एक विशिष्ट रचना है जिसे भारतीय समाज में किन्नर समाज की व्यथा–कथा को अभिव्यक्ति प्रदान करने वाला एक जीवन्त दस्तावेज कहा जाता है। चित्रा जी की साहसिक रचनाधर्मिता किन्नर जीवन की सभी बिडम्बनाओं की जाँच परख करते हुए तथा उनके सपनों को अनुभूत करते हुए विनोद उर्फ 'बिन्नी' उर्फ 'बिमली' के माध्यम से किन्नरों के सपनों, उनकी अनुभूतियों व आवश्यकताओं, परिवार से अलग होने के उनके दर्द, आत्मनिभ. रिता की आकांक्षा, उनके प्रति समाज की निकृष्ट मानसिकता, लिंगपूजन की प्रथा समाज का किन्नरों के प्रति असंवेदनशीलता, उनके साथ होने वाले भेदभाव तथा किन्नर बनने या होने की प्रक्रिया के साथ–साथ समाजिक, राजनीतिक सेवा आदि क्षेत्रों में इनकी उपेक्षा जैसे विषयों को सूक्ष्मता और व्यापकता के साथ रे खांकित करने में सफल रही है। अपने कथ्य एवं शिल्प दोनों में विशिष्टता रखने वाला यह उपन्यास साहित्यिक अकादमी द्वारा पुरस्कृत भी हो चुका है। पत्रात्मक शैली में लिखे इस उपन्यास का कथानायक किन्नर 'विनोद' जिसके जीवन की संगतियों–विसंगतियों तथा अनुभूतियों आदि के इर्द–गिर्द ही उपन्यास का सम्पूर्ण कलेवर घूमता रहता है। शरीर से किन्नर लेकिन आत्मा से पुरुष कथानायक विनोद अपनी समग्र जीवनगत व्यथा–कथा को अपनी माँ वंदना बेजशाह को लिखे विभिन्न पत्रों के माध्यम से व्यक्त करता है। उसके इसी पत्राचार के आस–पास उपन्यास का कथानक आघेत घूमता रहता है। विनोद द्वारा अपनी माँ को लिखे पत्रों से पता चलाता है कि उसका जन्म मुम्बई के एक समृद्ध परिवार में हुआ था जहाँ

उसका बड़ा भाई सिद्धार्थ तथा छोटा भाई मंजुल भी रहता था। सिद्धार्थ और मंजुल दोनों भाइयों को किन्नर विनोद का भाई होने से आत्मग्लानि का अनुभव होता है। सामाजिक बहिष्कार तथा लोक–लाज के भय से विनोद के परिवार वाले उसे एक किन्नर टोली को सौंप देत है। यह टोली विनोद को दिल्ली के किन्नर समुदाय की टोली में भेज देती है बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि विनोद पढ़ाई–लिखाई में तेज था और अपनी कक्षा में वह सदैव प्रथम आता था। बड़े होकर गणित विषय में पीएच०डी० करने के बाद प्रोफेसर बनने की महत्वकांक्षा विनोद में उसके विद्यालय के दिनों से ही पलने लगी थी लेकिन उसकी बाल आकांक्षा पूरी होती, उसके पहले ही उसका यह सपना उस समय चकना चूर हो गया जिस समय उसे परिवार के लोगों द्व ारा किन्नर टोली को सौंपा गया। किन्नर समाज केवल बधाइयाँ गाने, आशीर्वाद देकर पैसा लेने तक ही अपनी महत्ता नहीं रखता है बल्कि इस समाज में अनेक ऐसे विनोद भी होते है जिनके सपने तो बड़े होते है लेकिन समाज की सकीर्ण मानसिकता द्वारा वे शीघ्र ही कुचल दिए जाते है। परिवार से बिछडने के बाद भी विनोद अपने परिवार को विशेषकर अपनी माँ को भूल नहीं पाता है और वह अपनी माँ का पता खोजने का सैकड़ों जतन करता है जो कि यह दर्शाता है कि किन्नर होने मात्र से किसी मनुष्य का भाव स्वभाव, परिजनों के प्रति प्रेम तथा अनुराग आदि खत्म नहीं हो जाता है पत्र में अपने बाल्यकाल में माँ के सानिध्य में बिताये स्वर्णिम क्षणों का जिक्र करना नहीं भूलता है। माँ का अपनी संतान के प्रति वात्सल्य भाव एवं प्रेम भी शाश्वत होता है जिसका साक्षात उदाहरण विनोद की माँ जो कि समाज तथा परिवार वालों की दृष्टि से बचकर विनोद के साथ पत्राचार जारी रखती है। विनोद के भाई एवं अन्य परिवारजन उसकी उपेक्षा भले कर दिए हो, उन्हें विनोद के किन्नर होने के कारण भले ही आत्मग्लानि की भवना महसूस होती हो लेकिन विनोद, माँ सहित पूरे परिवार को समान भाव से प्रेम करता है। वह अपने प्रत्येक पत्र में सभी परिजनों का कुशलक्षेप पूछना नहीं भूलता है। अपने किन्नर समाज की टोली में रहते हुए भी वह इस समाज के नाचने गाने और पैसा मांगने के कार्य से घृणा करता है। मे. हनत–मजदूरी करके आत्मनिर्भर होने की अभिलाषा रखने वाले विनोद अपनी टोली में रहते हुए भी पढ़ाई जारी रखता है। उपन्यास में विनोद की अस्मिता और अस्तित्व को लेखिका ने तीन स्वरूपों में चित्रित किया है जिसमें अपनी माँ के लिए वह बिन्नी है तो अपने किन्नर समाज के लिए बिमली, और अंत में खुद के लिए वह विनोद ही हैं। वैसे तो सामान्यतः किन्नरों में स्त्रियोचित गुण एवं प्रवृत्ति ही पाई जाती है लेकिन विनोद की प्रकृति इसके नितांत विपरीत पुरुषों के गुण–स्वभाव वाली है। सम्पूर्ण उपन्यास में आहात विनोद की आत्मा पुरूष की ही रही है, स्त्रियोचित गुण तो उसमें जबरन ठूसे गये है जिन्हें वह किसी भी शर्त पर स्वीकार करने को तैयार नहीं है।

विनोद मांगलिक कार्यों के अवसर पर लोगों के घर बधाइयाँ देने, गाना गाने या आशीर्वाद देने तथा ट्रेनों में तालियाँ बजाकर पैसे मांगने का काम नहीं करता है। वह एक गराज में सुबह उठकर गाडिया धोने का काम करने जाता है. जहाँ कम कजदूरी देकर उसका आर्थिक शोषण भी किया जाता है। एक किन्नर होने के कारण लोग विनोद से अपनी कार नहीं धुलवाना चाहते हैं। दूसरे मजूदरों की तुलना में उसे बहुत कम मजदूरी दी जाती है। विनोद को अपने अधिकारों के लिए कठिन संघर्ष करना पडता है आर वह इसके लिए सशक्त भी दिखाई देता है। इसी तरह वह अपने परिवार के प्रति भी अत्यधिक संवेदनशील है लेकिन परिवार द्वारा अपने प्रति किए गए दुर्व्यवहार से भी वह व्यथित है। उसका यह कथन कि –''जरूरत है सोच बदलने की। संवेदनशील बनने की। सोच बदलेगी तभी जब अभिभावक अपने लिंग दोषी बच्चों को कलंकमान किन्नरों के हवाले नहीं करेंगे। उन्हें कूड़े में नहीं फेकेंगे ट्रांस जेंडर के खाते में नहीं धकेलेंगे। यह पहचान जब उन्हें किन्नरों के रूप में जीने नहीं दे रहीं तो समाज में सरकारी मान्यता मिल जाने के बाद जीने देगी? किन्नरों के रूप में समाज ने उन्हें उस खाचें में सदियों पूर्व ढकेलकर रखा हुआ है। उसी रूप में उन्हें आरक्षित करके सरकार अभिभावकों को अपराध मुक्त कर खुली छूट दे रही है। पैदा होते ही वह लिंग दोषी बच्चों को ट्रासजेंडर जमात के हवाले कर दें। छुटटी पालें अपनी जिम्मेदारी से समाज और परिवार की किन्नरों के प्रति गैर जिम्मेदारी के साथ–साथ उनके प्रति घृणित मानसिकता को ही दर्शाता है। जिस परिवार में उसका जन्म हुआ है. जब वही उसे नहीं स्वीकार करेगा तो समाज उसके प्रति कितनी सहानुभूति दिखा पाएगा समाज तो सामान्य मनुष्य को नहीं बख्शता, किन्नर तो समाज का अंग भी नहीं बन पाए है तो ऐसे में उनकी सामाजिक स्थिति क्या होगी?''1(पोस्ट बॉक्स नं0–203 नाला सोपारा,चित्रा मुद्गल, सामयिक प्रका''न नई दिल्ली पृ0सं0–112, संस्करण–2022) विनोद के उपर्युक्त कथन में स्वयं के साथ होने वाले दुर्व्यहार के प्रति आक्रोश तो है ही साथ ही किन्नर समाज की भावी पीढी के प्रति चिंता और संवेदना भी है। वह इस बात के लिए सदैव भयाक्रांत दिखाई देता है कि किसी माँ के गर्भ में किसी भी कारण से कोई शिशु उसकी तरह ही किन्नर न बन जाए। विनोद की इस मानसिकता में ही उसके समाज की समस्त सामाजिक मानसिक एवं व्यावहारिक यातनाएँ अंतर्भुक्त हैं जो कि सभ्य समाज के सभ्य और पूर्ण स्त्री–पुरुषों द्वारा लैगिक रूप से विकलांग लोगों को दी जाती है।

विनोद को राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश कराकर लेखिका ने किन्नर समाज के राजनीतिक शोषण और राजनीति में इस

समाज की सक्रिय भागीदारी के अभाव को भी अभिव्यक्ति प्रदान की है। भारतीय राजनीति की विद्रूप संरचना में किन्नर समाज राजनीतिक दलों और राजनेताओं के लिए वोट बैंक के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। शिक्षा के प्रति विनोद के अतिशय अनुराग को देखकर दिल्ली के एक स्थानीय विधायक उसे अपने यहाँ काम पर इसलिए रखते हैं जिससे वह पंजाब जाकर वहाँ के किन्नर समाज में उनकी पार्टी के लिए चुनाव प्रसार करे। विनोद को विधायक जी द्वारा प्रलोभन दिया जाता है कि यदि वे और उनकी पार्टी चुनाव में जीत जाएगी तो व उससे शिक्षा रो. जगार एवं अन्य क्षेत्रों में किन्नरों का आरक्षण दिए जाने की आवाज उठाएगें। जबकि विनोद आरक्षण के खिलाफ है उसकी इतनी सी मांग है कि समाज में किन्नरों को भी स्त्री–पुरुष का दर्जा देकर उन्हें समाज की मुख्य धारा में शामिल किया जाय तथा उन्हें किन्नर, ट्रांसजेंडर जीरा एवं थर्ड जेंडर आदि शब्दों से संबोधित न किया जाय। चुनावी सभा को सम्बोधित करते हुए विनोद कहता है– ''आप सब से भी अपील है मेरी। सभा में उपस्थित आप सबसे। स्वयं के अंतर्मन में झांकिए। भीतर दुबके हुए अपने बालपन को याद कीजिए, सुनिए, उसके भीतर के रुदन को।...बरजिए बिरादरी को। शपथ लीजिए यहाँ से लौटकर आप किसी लिंगदोषी नवजात बच्चे–बच्ची को किशोर–किशोरी को युवक–युवती को जबरन उसके माता–पिता से अलग करने का पाप नहीं करेंगे। उससे उसका घर नहीं छीनेंगे। उपहासों के लात–घूसों से उसे जलील नोंने की विवशता नहीं सौंपेंगे। जलालत का नरक भोग कुछ नहीं सीखे आप ? नहीं जानते। कौन लोग करते हैं अमका इस्तमाल ? वो जो आपको इंसान नहीं समझते। आपके जीने–मरने से उन्हें कोई फर्क नहीं पड. ता। अन्धेरे के बावजूद वो आपको कन्धा देने नहीं पहुंचते। आंसू नहीं बहाते। रूढ़ि नियति की है। जीवित रहते धिक्कार की चप्पलों से वे आपको पीटेंगे। मरणोपरान्त वे आपको अपनी ही बिरादरी से पिटवाएंगे। जिनके नवजात शिशुओं को ढूंढ–ढांढ नाच–गाने. आशीषने पहुंचते हैं आप उन्हीं के घर दूसरे रोज पहुंचकर देखिए घर का दरवाजा आपके मुंह पर भेड दिया जायेगा।''[2] (वही पृ0सं0–186–187) विनोद टाली बजाकर अथवा बधाईयां गाकर पैसे मांगने की परम्परा का विरोधी है। वह मे. हनत–मजदूरी करके आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनने में विश्वास रखता है और ऐसी ही सलाह अपने समाज के लोगों को भी देता है–''कुली बनिए। मिस्त्री बनिए। ईंट–गारा ढोइए, जो चाहे, सो कीजिए, पाएंगे मेहनत के कौर की तृप्ति।''[3](वही पृ0सं0–187)

उन्पयास के एक भाग में किन्नर समाज की लाचारी और बेबसी को भी अभिव्यक्ति प्रदान की गयी है जहाँ विधायक का भतीजा बिल्लु और उसका दोस्त विनोद की सहेली पूनम जोशी का निर्मम बलात्कार करता है और अत में अस्पताल में पूनम जोशी दम तोड देती है। आरोपी का पता होने पर भी विधायक जी और प्रशासन के भय से पुलिस प्रशासन उनके ि खलाफ कोई कार्यवाही नहीं करता है। विनोद भी अपने मित्र के साथ होने वाले बालात्कार और मृत्यु के प्रतिरोध में कुछ नहीं कर पाता है जिसका कारण यह है कि धन–बल में वह विधायक जी की तुलना में बहुत कमजोर है तथा घटना को चुपचाप दे खने एवं सहन कर जाने के लिए विवश है। इसी विवशता में विनोद की मृत्यु हो जाती है जो की घृणित किस्म की राजनीति का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करती हैं– ''उपन्यास की संवेदना के चरम को आत्मसात् करने के लिए आवश्यक है कि उसे अंत से पढ़ा जाए, अंत यानी कि समाचार दो–जहाँ मीठी नदी में एक किन्नर की फूली हुई लाश बरामद होती है जिसे आपसी रंजिश का मामला माना जा रहा है। इस हत्या में 'अंडरवर्ल्ड' की भूमिका की बात कही जा रही है। लाश की पहचान और हत्या के कारण अस्पष्ट दिखाए गए है पर पाठक के मन में पूरी तरह स्पष्ट हो उठता है कि यह लाश विनोद उर्फ 'बिन्नी' की है। इसे मात्र एक साधारण घटना समझ के छोड़ा नहीं जा सकता। यही वह मुख्य बिन्दु है जहाँ से राजनीति का घृणित स्वरूप उजागर होता है।''[4] (थर्ड जेंडर के संधर्ष का यथार्थ, संपादक– डॉ0 शगुफ्ता नियाज,पृ0सं0–60) यद्यपि विनोद की मृत्यु दिखाकर लेि खका ने उपन्यास को दुखांत बनाकर कथानक के यथार्थ को सुनिश्चित किया है लेकिन उपन्यास में विनोद की माँ द्वारा अपने बेटे के साथ परिजनों के उपेक्षित, भेदभावपूर्ण व्यवहार के लिए माफीनामा लिखकर जायदाद में हिस्सेदारी देने की बात करते हुए घर वापस आने हेतु अपील करवाकर इसी सुखांतता को भी जीवित रखा गया है, जो कि किन्नरों के प्रति समाज के नजरिए में एक बहुत बड़े परिवर्तन को भी सूचित करता है। इस तरह से उपसंहारात्मक स्वरूप में कह सकते हैं कि चित्रा मुद्गल जी ने अपने इस उपन्यास में न केवल किन्नरों की पूर्ण वर्तमानता को सुनिश्चित किया है बल्कि उन्हें उनके अधिकारों के साथ समाज की मुख्यधारा में भी प्रवेश करा दिया है, जो कि किन्नर समाज के लिए एक सकारात्मक परिवर्तन है।

संदर्भ ग्रन्थ–सूची–

1ण पोस्ट बॉक्स नम्बर–203, नाला दिल्ली, पृ०सं०–112, संस्करण–2022 सोपारा, चित्रा मुदगल, सामयिक प्रकाशन नई

2ण वही, पृ०सं०–186–187

3ण वही. पृ०सं०–187

4ण थर्ड जेंडर के संघर्ष का यथार्थ संपादक–डॉ० शगुफ्ता नियाज, पृ०सं०–60

*****

व्यक्तित्व विकास और सोशल मीडिया : उच्चतर माध्यमिक छात्रों के सन्दर्भ में

कल्पना वर्मा
(शोधार्थी)
समाजशात्र विभाग,
एमबी.राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल (उत्तराखंड)

डॉ. कमरुद्दीन
(प्रोफेसर)
समाजशात्र विभाग,
एमबी.राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल (उत्तराखंड)

शोध सारांश

21वीं सदी को प्रौद्योगिकी संचालित योग द्वारा चिन्हित किया गया है। सोशल नेटवर्किंग ने वैश्विक पटल पर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अत्याधुनिक अस्त्र देकर हमारे विचारों के आकाश को अनंत बना दिया है। आज आभासी नेटवर्किंग की दुनिया हमारी अंगुलियों पर मौजूद है सोशल मीडिया वेब प्रणाली पर आधारित एक ऐसी आभासी दुनिया है,जिसमें दुनिया भर के लोग कंप्यूटर/ लेपटॉप या मोबाईल की सहायता से आपस में विचारों, सूचनाओं,भावनाओं इत्यादि का आदान-प्रदान करतें हैं। प्रस्तुत शोध उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के छात्रों में व्यक्तित्व विकास और सोशल मीडिया का गहन विश्लेषण करता है वर्तमान समय में सोशल मीडिया ने छात्रों के जीवन में एक महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है सोशल मीडिया का प्रभाव छात्रों के,व्यक्तित्व विकास,समय प्रबंधन, शिक्षा, जागरूकता, आत्म-सम्मान, सामाजिक संबंध, और मानसिक स्वास्थ्य पर महत्वपूर्ण है। लैंगिक अंतर ने सोशल मीडिया के उपयोग के पैटर्न में भिन्नता उत्पन्न की। इसके अलावा, छात्रों का सोशल मीडिया पर बिताया गया समय उनके अकादमिक प्रदर्शन को प्रभावित करता है। अध्ययन में 300 छात्रों का डेटा सर्वेक्षण विधि का उपयोग करके शामिल किया गया है,जिसमें उनकी सोशल मीडिया उपयोग की आदतों, मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव, और में व्यक्तित्व विकास के विभिन्न पहलुओं का मूल्यांकन किया गया । निष्कर्ष पाया गया कि यदि सोशल मीडिया का उपयोग संतुलित और सजगता से किया जाए, तो यह छात्रों के व्यक्तित्व विकास में सहायक हो सकता है। इस अध्ययन का उद्देश्य शिक्षकों और अभिभावकों को सोशल मीडिया के प्रभावों के प्रति जागरूकता व उचित मार्गदर्शन प्रदान करना है।

मुख्य बिंदु - सोशल मीडिया,व्यक्तित्व विकास, उच्चतर माध्यमिक छात्र, समय प्रबंधन, शिक्षा, जागरूकता।

परिचय

वर्तमान युग में विश्व आधुनिक सूचना एवं संचार व्यवस्था के कारण वैश्विक ग्राम बनता जा रहा है सोशल मीडिया मानव के सामाजिक विकास क्रम में सबसे महत्वपूर्ण भागीदार रहा है हजारों वर्षों के सामाजिक विकास में ऐसा कोई भी अन्य माध्यम नहीं रहा है,जो सोशल मीडिया जितना लोकप्रिय और त्वरित रहा हो , सोशल मीडिया लोगों के बीच अंतर क्रिया के साधनों को संदर्भित करता है। सोशल मीडिया का मुख्य उद्देश्य अपने ग्राहकों और उपयोगकर्ताओं को एक्सेस देना है व्यक्तियों के साथ बातचीत कर सकते हैं और व्यापार समाजिक संबंध बना सकते हैं। वे इसी तरह अपने विचारों और व्यक्तिगत डेटा को सोशल मीडिया पर साझा कर सकते हैं, जिसमें रोजमर्रा की घटनाएं धारणाएं चित्र रिकॉर्डिंग और वेब लिंक आदि शामिल हैं। सोशल मीडिया के इन लाभों का उपयोग इंटरनेट उपलब्धता के रूप में करने की आवश्यकता है। सोशल मीडिया ने पूरे विश्व को एक वैश्विक गांव में बदल दिया है। सोशल मीडिया के लिए यह भी सच है कामा कि सोशल मीडिया इस समय हावी है और दो तरफा बातचीत की अनुमति देकर खुद को अलग करता है। हम सोशल मीडिया के मूल में हैं। । 1994 में याहू ने दुनिया की पहली सोशल साइट जिओ सिटीज लांच की सोशल मीडिया का जन्म 1995 में

माना जाता है। उस वक्त क्लासमेट्स डॉट कॉम से एक साइट शुरू की गई थी जिसके जरिए स्कूलों, कालेजो, कार्यक्षेत्रों और मिलिट्री के लोग एक दूसरे से जुड़ सकते थे यह साइट अब भी सक्रिय है। इसके बाद वर्ष 1996 में बोल्ड डाट कॉम नाम की सोशल साइट बनाई गयी। वर्ष 1997 में एशियन एवेन्यू नाम की एक साइट शुरू की गयी थी। इसके आगमन के बाद सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म की लोकप्रियता में वृद्धि हुई सन 2000 के दशक में ब्लॉगिंग माय स्पेस लिंक्डइन तीव्र गति से लोकप्रिय हुए थे। किंतु सोशल मीडिया के क्षेत्र में सबसे बड़ा बदलाव फेसबुक और ट्विटर के आने से हुआ फेसबुक का जन्म 4 फरवरी 2004 में हुआ 1994 के बाद से 20 साल में ही यह सफर इतनी तेजी से बढ़ा कि ऑरकुट, ब्लॉक, फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम जैसी सोशल मीडिया साइट सामने आई। किंतु वर्तमान में अभी भी फेसबुक की लोकप्रियता उच्च शिखर पर है। सन 2006 के सितंबर माह में फेसबुक ने 13 वर्ष से अधिक आयु के बच्चों को फेसबुक से जुड़ने की स्वतंत्रता प्रदान की इससे फेसबुक का दायरा और भी व्यापक हुआ। इसकी परिणीति वेब 2.0 के रूप में हुई और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है, कि इससे एक अद्भुत प्रयोग का सृजन हुआ जिसे अब हम सोशल मीडिया कहते हैं। । वर्तमान भारत में जनवरी 2023 में 46.70 मिलियन सोशल मीडिया यूजर्स हैं। मोबाइल इंटरनेट सस्ता होने के कारण भी इसमें लगातार वृद्धि हो रही है। इस युग में सोशल मीडिया एक स्पष्ट संचार क्रांति के रूप में तेजी से छात्रों के बीच आकर्षण का केंद्र बन गया है। जिसमें छात्र वर्ग मुख्य रूप से शामिल हैं इससे पठन-पाठन के अनुभव में एक नया मोड़ आया है ।सोशल मीडिया पढ़ाई के साधन विभिन्न रूपों में उपलब्ध कराता है, जिससे छात्र ग्रहण करते हैं। विद्वान लोग अपने ज्ञान अनुभव को अपने सर्वोत्तम पद्धतियों को यू-ट्यूब, स्लाइड और ट्विटर पर साझा करते हैं। वर्तमान समय में आईसीटी सूचना संचार प्रौद्योगिकी आधारित सोशल मीडिया के आविभार्व नहीं अध्ययन और शिक्षा में नवाचार की गति को उल्लेखनीय तेजी प्रदान की है। वर्तमान समय में सोशल मीडिया सबसे अधिक प्रचलित को सशक्त माध्यम है। सोशल मीडिया ऑनलाइन सेवाएं जनमत जुटाने और उन्हें प्रोत्साहित करने के नवीनतम तकनीक पर आधारित है। पहले सोशल मीडिया का उपयोग ऑनलाइन दोस्त बनाने के लिए किया जाता था, किंतु अब इसका उपयोग व्यापार संपर्क आपसे काम-काज तरीके के जुटाने के लिए शिक्षा सामाजिक समस्या से जुड़े विभिन्न मुद्दों में आज सोशल मीडिया ही लोगों की पहली पसंद बन गए हैं। तथा वर्तमान में यह जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गया है, समाजिक विज्ञान सोशल मीडिया की दुनिया में तेजी से अपना ध्यान आकर्षित कर रहा है। अकादमी दृश्यों ने सोशल मीडिया के विभिन्न पहलुओं को देखना शुरू कर दिया है। जिसमें पहचान के मुद्दों पर इन साइटों के संभावित प्रभाव गोपनीयता, सामाजिक पूंजी, युवा सांस्कृतिक, व्यक्तित्व विकास, शिक्षा और पारस्परिक संबंध सभी किए गए कई अध्ययननों का विषय रहे हैं।

सोशल मीडिया –

एंड्रियास कपलान और माइकल हेनलेन (2010),सोशल मीडिया को इंटरनेट आधारित अनुप्रयोगों का एक समूह जो वेब 2.0 की वैचारिक और तकनीकी नीव पर निर्मित होता है, जो उपयोगकर्ता जनित सामग्री के निर्माण और आदान-प्रदान की अनुमति देता है।

सोशल मीडिया वेब प्रणाली पर आधारित एक ऐसी आभासी दुनिया है और जिसमें दुनिया भर के लोग कंप्यूटर/ लैपटॉप या मोबाइल की सहायता से आपस में विचारों, सूचनाओं, भावनाओं इत्यादि का आदान-प्रदान करते हैं। इससे एक अद्भुत प्रयोग का सर्जन हुआ जिसे अब हम सोशल मीडिया कहते हैं।

व्यक्तित्व विकास-

व्यक्तित्व विकास एक जटिल प्रक्रिया है। व्यक्तित्व जहां व्यक्ति के मनोदैहिक गुणों का यानी बाहरी रूप-रंग,डील-डौल,आकर्षण तथा आंतरिक शीलगुणों का गत्यात्मक संगठन है, वहीं व्यक्तित्व विकास व्यक्ति के व्यक्तित्व पैटर्न का विकास है,

यानी उन सभी मनोदैहिक तंत्रों का विकास है। जिससे व्यक्ति का व्यक्तित्व बना होता है तथा जो आपस में अंतर्संबंधित होते हैं और एक-दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। व्यक्तित्व विकास के क्रम में मूलतःव्यक्ति के आत्म-संप्रत्यय तथा शीलगुणों में विकासात्मक परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। एवं इन्हें व्यक्ति के जैविक व सामाजिक सांस्कृतिक कार्य प्रभावित करते हैं। व्यक्तित्व विकास के दो मुख्य तत्व होते हैं। आत्म संप्रत्यय तथा शीलगुण व्यक्तित्व विकास से तात्पर्य इन दोनों तत्वों में होने वाले विकासात्मक परिवर्तन से होता है।

ऑलपोर्ट के (1937) अनुसार- व्यक्तित्व व्यक्ति के भीतर दैहिक शील गुणों का गत्यात्मक संगठन है जो वातावरण के प्रति उसके अपूर्व अभियोजन को निर्धारित करते हैं

वन डेन डीले (1976) अनुसार- व्यक्तित्व विकास से आशय गुणात्मक परिवर्तन से होता है।

उच्चतर माध्यमिक स्तर

उच्चतर माध्यमिक शिक्षा संपूर्ण शिक्षा क्रम की मजबूत कड़ी है। यह प्राथमिक शिक्षा तथा उच्च माध्यमिक शिक्षा के मध्य संपर्क सूत्र का कार्य करती है। यह संपूर्ण शिक्षा का महत्वपूर्ण अंग है। शिक्षा के इस स्तर पर छात्र अपनी पसंदीदा स्ट्रीम और विषय चुन सकते हैं। उच्चतर माध्यमिक स्तर कक्षा 11वीं तथा कक्षा 12 वीं को कहा गया है।

अध्ययन का उद्देश्य

1. छात्रों के व्यक्तित्व विकास एवं सोशल मीडिया के प्रभाव का अध्ययन करना।
2. छात्रों के बीच सोशल मीडिया के उपयोग पर लैंगिक अंतर की जांच करना।
3. समय वितरण और सोशल मीडिया के बीच संबंध का निर्धारण करना।
4. छात्रों में सोशल मीडिया के प्रभाव से आए परिवर्तन का अध्यन करना।

शोध अभिकल्प एवं पद्धतिशास्त्र

प्रस्तुत अध्ययन की समस्या उद्देश्य के दृष्टिगत इस शोध में अन्वेषणात्मक व वर्णनात्मक शोध अभिकल्प का प्रयोग किया गया है। समग्र के रूप में उत्तराखण्ड के नैनीताल जिले के हल्द्वानी नगरनिगम क्षेत्र को शोधकर्ता द्वारा शोध क्षेत्र के रूप में स्थापित किया गया है, सम्पूर्ण समग्र में से निदर्शन का चयन बहुस्तरीत निर्दशन द्वारा किया गया है। उत्तरदाता के रूप में उच्चतर माध्यमिक छात्रों को शामिल किया गया है । व्यक्तिव विकास एवं सोशल मीडिया: उच्चतर माध्यमिक छात्रों के संदर्भ में अध्ययन करने के लिए शोध में चयनित छात्रों से सोशल मीडिया उपयोग की प्राथमिकताएँ , उनकी आत्म –प्रस्तुति, रचनात्मकता, वहीं दूसरी ओर छात्रों के व्यक्तित्व विकास पर सोशल मीडिया के प्रभाव, छात्रों के बीच सोशल मीडिया के उपयोग पर लैंगिक अंतर, तथा समय वितरण तथा छात्रों में सोशल मीडिया के प्रभाव,के संदर्भ में प्रश्नावली के माध्यम से आंकड़े संग्रहण किए गए हैं। इसके अतिरिक्त द्वितीयक स्त्रोतोंके अंतर्गत,सम्बंधित ग्रंथ,सरकारी रिपोर्ट पत्र-पत्रिकाओं आदि का अध्ययन करके जानकारी प्राप्त की गई है।

प्रदातों का विश्लेषण

शोध में अध्ययन के लिए हल्द्वानी नगर निगम को समग्र माना गया हैं, जिसके अंतर्गत 27 उच्चतर माध्यमिक विद्यालय (11 सरकारी विद्यालय एवं 16 निजी विद्यालय) सम्मिलित है। प्रस्तावित अध्ययन में ऐसे विद्यालय सम्मिलित किया गया हैं जिनमें छात्र एवं छात्राएं दोनों अध्ययनरत हैं । कुल चयनित छात्रों की संख्या 300 है, जिसमे सरकारी विद्यालय से 150 छात्र तथा निजी विद्यालय से 150 छात्र का चयन किया गया है।

निदर्श का चयन

नगर निगम हल्द्वानी में सरकारी विद्यालय

सारिणी संख्या – 1.1

विद्यालयों	सरकारी एवं निजी विद्यालय	सह शिक्षा	कुल	कुल
01	जीजीआईसी हल्द्वानी	एच एन इंटर कॉलेज, एम जी इंटर कॉलेज 02 विद्यालय	02	02
02	जीजीआईसी बनभूलपुरा			
03	जीआईसी राजपुरा			
04	जीआईसी बनभूलपुरा			
05	नगर निगम इंटर कॉलेज (बालक)			
06	नगर निगम इंटर कॉलेज (बालिका)			
07	खालसा इंटर कॉलेज			
08	एम् बी इंटर कॉलेज			
09	लालित महिला इंटर कॉलेज			
10	एच एन इंटर कॉलेज			
11	एम् जी इंटर कॉलेज			
नगर निगम हल्द्वानी में निजी विद्यालय				
01	सरस्वती शिशुमंदिर	इन्सपरेशन सी.सै.स्कूल दून पब्लिक स्कूल 02 विद्यालय	02	02
02	बाल संसार इंटर कालेज			
03	सेंट पाल सी.सै.स्कूल			
04	निर्मला कान्वेंट सी.सै.स्कूल			
05	इन्सपरेशन सी.सै.स्कूल			
06	नैनिवेली सी.सै.स्कूल			
07	जिम कॉर्बेट सी.सै.स्कूल			
08	क्विंस पब्लिक स्कूल			
09	हिमालय विद्यामंदिर			
10	केंद्रीय विद्यालय			
11	गुरु तेग बहादुर सी.सै.स्कूल			
12	दून पब्लिक स्कूल			
13	के. वी.एम् सी.सै.स्कूल			
14	ओरम दा ग्लोबल सी.सै.स्कूल			
15	सेंट थेरेसा सी.सै.स्कूल			
16	बीरशेबा सी.सै.स्कूल			
				04

सारिणी संख्या- 1.2 चयनित सरकारी एवं निजी विद्यालयों में से निदर्श का चयन

विद्यालय	चयनित विद्यालय का नाम	कक्षा 11 के छात्रों की संख्या कक्षा 12 के छात्रों की संख्या	अनुपातिक निदर्शन द्वारा 50% छात्रों का चयन	लॉटरी विधि द्वारा छात्रों का चयन	कुल चयनित छात्र	कुल योग
सरकारी विद्यालय	एच.एन इंटर कॉलेज	62	31	30	60	150
		70	35	30		
	एम जी इंटर कॉलेज	195	97	45	90	
		98	49	45		
निजी विद्यालयों	इन्सपरेशन सी.सै.स्कूल	180	90	45	90	150
		156	78	45		
	दून पब्लिक स्कूल	60	30	30	60	
		68	34	30		
कुल योग						300

सोशल मीडिया का उपयोग

वर्तमान डिजिटल युग में, हम कई शैक्षणिक संस्थानों को छात्रों के जीवन को बेहतर बनाने के लिए सोशल मीडिया के विकास को अपने सिस्टम में अपनाते हुए देख सकते हैं। शिक्षा में सोशल मीडिया का उपयोग छात्रों, शिक्षकों और अभिभावकों को आसानी से उपयोगी जानकारी प्राप्त करने, अन्य शिक्षण समूहों से जुड़ने और अन्य शैक्षिक प्रणालियों को समझने में सक्षम बनाता है। और ये सभी कारण हैं कि सोशल मीडिया इन दिनों शिक्षा को सुविधाजनक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यही कारण है कि जो शिक्षक सोशल मीडिया में मूल्य देखते हैं, उन्होंने इसे अपनाना शुरू कर दिया है और इसके कई लाभों का पूरी तरह से उपयोग करना शुरू कर दिया है। छात्रों में सोशल मीडिया का उपयोग जिसका विवरण निम्न सारिणी में दिया गया है।

सारिणी संख्या- 1.3 छात्रों द्वारा उपयोग की जाने वाली सोशल मिडिया सेवाओं में सर्वाधिक महत्वपूर्ण

क्रमांक	सर्वाधिक महत्वपूर्ण	आवृति	प्रतिशत	मान्य प्रतिशत	संचयी प्रतिशत
1	व्हाट्सएप	98	32.67	32.67	32.67
2	यूटयूब	102	34.0	34.0	66.67
3	फेसबुक	49	16.33	16.33	83.0
4	इन्स्टाग्राम	42	14.0	14.0	97.0
5	अन्य	9	3.0	3.0	100.0
	योग	300	1000.	1000.	

उपरोक्त तालिका स्कूल के छात्रों द्वारा उपयोग की जाने वाली सोशल मीडिया सेवाओं में सर्वाधिक महत्वपूर्ण के बारे में जानकारी देती है। अध्ययन के परिणामों में उल्लेख किया गया है कि उत्तरदाताओं में सर्वाधिक 34% छात्र यूट्यूब का इस्तेमाल करते है। क्योंकि छात्र इस पर आकर अपने अध्ययन से सम्बंधित जानकरी की खोज करते हैं, एवं 32.67% व्हाट्सएप, 16.33% छात्र फेसबुक का, 14% छात्र इन्स्टाग्राम का, 3% छात्र जो किसी अन्य सोशल साइट से जुड़े हुए थे। निष्कर्ष: सोशल नेटवर्किंग साइट व्हाट्सएप, यूटयूब ज्यादातर लोगों के द्वारा प्रयोग में लाया जाता है।

सारिणी संख्या- 1.4 समय वितरण और सोशल मिडिया

क्रमांक	प्रतिदिन व्यतीत समय	आवृति	प्रतिशत	मान्य प्रतिशत	संचयी प्रतिशत
1	1 से 2 घंटे	55	18.33	18.33	18.33
2	3 से 4 घंटे	116	38.66	38.66	56.99
3	5 से 6 घंटे	88	29.34	29.34	86.33
4	7 घंटे से अधिक	41	13.67	13.67	100.0
	योग	300	100.0	100.0	

उपरोक्त सारिणी छात्रों द्वारा सोशल मीडिया पर बिताए गए समय के बारे में जानकारी देती है। इस अध्ययन के निष्कर्ष में कहा गया है कि अधिकांश 38.66% छात्र सोशल मीडिया पर 3-4 घंटे बिता रहे थे। इसके अलावा, 29.34% छात्र सोशल मीडिया पर 5-6 घंटे बिता रहे थे, 18.33% छात्र सोशल मीडिया पर 1-2 घंटे बिता रहे थे, और 13.67% छात्र सोशल मीडिया पर 7 घंटे से अधिक बिता रहे थे जैसा कि आंकड़ा 25 में दिखाया गया है। पहले के अध्ययनों में, परिणामों से पता चला कि अधिकतम उत्तरदाता जिनमें से 64% एक दिन में 2-6 घंटे बिताते हैं और आश्चर्यजनक रूप से, 8% उत्तरदाता ऐसे हैं जो एक दिन में 13-24 घंटे बिताते हैं **(गैली, एल.आर., 2019)**। पहले हुए एक अध्ययन के अनुसार छात्र सोशल नेटवर्किंग पर प्रतिदिन औसतन 5.2 घंटे बिताते हैं (3 घंटे के औसत के साथ, और 1 घंटे का मोड)।, प्रति दिन घंटों की औसत संख्या बढ़ जाती है विद्यार्थी आयु के साथ. पब्लिक स्कूलों के छात्र सोशल मीडिया पर अधिक समय बिताते हैं।

सारिणी संख्या- 1.5 सोशल मीडिया और व्यक्तित्व विकास

क्रमांक	व्यक्तित्व विकास पर प्रभाव	आवृति	प्रतिशत	मान्य प्रतिशत	संचयी प्रतिशत
1	हाँ,सकारात्मक	191	63.67	63.67	63.67
2	नकारात्मक	94	31.33	31.33	95.0
3	कुछ कह नहीं सकते	15	5	5	100.0
4	योग	300	100.0	100.0	

उपरोक्त सारिणी नैनीताल जिले के हल्द्वानी माध्यमिक विद्यालय छात्रों (300) के व्यक्तित्व विकास पर सोशल मीडिया के प्रभाव के बारे में रिपोर्ट करती है। इस अध्ययन के परिणामों से पता चला कि अधिकांश (63.67%) उत्तरदाता इस बात से सहमत थे कि सोशल मीडिया का उन पर सकारात्क प्रभाव पड़ता है क्योंकि सोशल मीडिया उन्हें व्यक्तित्व को विकसित करने के न्यू आडिया व अनेकों सुझाव प्रदान करता है जिससे उनका व्यक्तित्व का विकास करने में मदद मिलती है। किन्तु, कुछ (31.33%) उत्तरदाता इस बात से सहमत थे कि सोशल मीडिया का व्यक्तित्व विकास पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। वहीं कुछ 5% उतरदाता ऐसे भी थे जो सोशल मीडिया का व्यक्तित्व विकास पर प्रभाव पड़ता है इस पर कुछ कह नहीं सकते थे। निष्कर्ष निकाला कि वर्ल्ड वाइड वेब जीवन के सभी पहलुओं को प्रभावित कर रहा है। सोशल मीडिया युवाओं के दैनिक जीवन को बहुत आसान बना रहा है। लेकिन इसके सकारात्मक व नकारात्मक दोनों ही पक्ष देखने को मिले थे। इससे छात्रों में शैक्षिक सामग्री तक पहुंच सहित सीखने में वृद्धि हुई है।

सारिणी संख्या- 1.6 सोशल मीडिया और स्व- अभिव्यक्ति / आत्मसम्मान

क्रमांक	क्या सोशल मीडिया	आवृति	प्रतिशत	मान्य प्रतिशत	संचयी प्रतिशत
1	हाँ	204	68.0	68.0	68.0
2	नहीं	96	32.0	32.0	100.0
	योग	300	100.0	100.0	

उपरोक्त तालिका नैनीताल जिले के हल्द्वानी माध्यमिक विद्यालय के 300 छात्रों के व्यक्तिव विकास पर सोशल मीडिया के प्रभाव के बारे में रिपोर्ट करती है। इस अध्ययन के परिणाम से पता चला कि अधिकतम संख्या 68% छात्र इस बात से सहमत थे कि सोशल मीडिया का उपयोग व्यक्तित्व विकास के लिए लाभकारी है। क्योंकि छात्र सोशल मीडिया का उपयोग न केवल समाजीकरण के लिए करते हैं, बल्कि संचार, मनोरंजन और अन्य सभी के लिए भी सोशल मीडिया प्रयोग करते हैं। किन्तु 32% छात्र इस बात से सहमत नहीं थे कि सोशल मीडिया व्यक्तित्व विकास के लिए लाभकारी नहीं बनाता है क्योंकि वे मुख्य रूप से वास्तविकता के विचारों से अधिक प्रेरित, दूसरों के बारे में वीडियो और पोस्ट देखने के लिए सोशल मीडिया साइटों का उपयोग करते हैं।

सारिणी संख्या- 1.7 सोशल मिडिया और मानसिक स्वास्थ्य

सोशल मीडिया का छात्रों के जीवन पर मानसिक स्वास्थ्य के मामले में गहरा प्रभाव पड़ता है। यह प्लेटफॉर्म न केवल संवाद और संपर्क को बढ़ावा देता है, बल्कि यह तनाव, चिंता और अवसाद के स्तर को भी प्रभावित कर सकता है। छात्रों के मानसिक

स्वास्थ्य के लिए सोशल मीडिया का उपयोग संतुलित और सजग तरीके से करना आवश्यक है।

क्रमांक	मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव	आवृत्ति	प्रतिशत	मान्य प्रतिशत	संचयी
1	हाँ, मानसिक अवसाद और थकान का कारण	122	40.66	40.66	40.66
2	मानसिक संतुलन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता	73	24.33	24.33	64.99
3	कभी-कभी जानकारी का प्रवाह मनसिक	65	21.67	21.67	86.66
4	अन्य कारण	40	13.34	13.34	100.0
	योग	300	100.0	100.0	

उपरोक्त सारिणी छात्रों द्वारा सोशल मीडिया का मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव के बारे में जानकारी देती है। इस अध्ययन के निष्कर्ष में कहा गया है कि अधिकांश 40.33% छात्रों ने कहा कि सोशल मीडिया मानसिक अवसाद और थकान का कारण बनती है । इसके अलावा 24.33% छात्रों के मानसिक संतुलन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, 21.67% छात्रों को कभी-कभी जानकारी का प्रवाह मनसिक संतुलन को प्रभावित करता है, तथा 13.34% छात्र अन्य कारण से प्रभावित थे। पिछले एक अध्ययन के परिणाम एवं विश्लेषण से स्पष्ट हुआ कि सोशल मीडिया स्कूलों में छात्रों के अनुशासन को प्रभावित करता है। सोशल मीडिया छात्रों के अनुशासनहीनता मैं तेजी से वृद्धि करता है। इसका प्रभाव छात्रों पर परीक्षाओं में नकल करने के लिए इसके अतिरिक्त यह छात्रों को अश्लील साहित्य के लिए उजागर करता है। तथा यह छात्रों की नैतिकता एवं चरित्र को भी बर्बाद करता है। यह छात्रों को पढ़ने का समय नहीं देता, और छात्रों को आलसी बनता है। निष्कर्ष यह निकला कि सोशल मीडिया छात्रों को डिस्कनेक्ट करता है। और यह उनकी याददाश्त और सोचने की क्षमता को भी प्रभावित करता है। साथ ही यह भी स्पष्ट हुआ कि सोशल मीडिया छात्रों के तनाव, अवसाद, दुःख और मानसिक विकारों को भी बढ़ता है ।

निष्कर्ष

सोशल मीडिया ने उच्चतर माध्यमिक छात्रों के जीवन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह न केवल संवाद और जानकारी के आदान-प्रदान का एक माध्यम है, बल्कि यह छात्रों के व्यक्तित्व विकास, सामाजिक कौशल, और शैक्षणिक प्रगति में भी सहायक है। इस डिजिटल युग में, सोशल मीडिया ने छात्रों को अपनी पहचान बनाने और सामाजिक संबंधों को मजबूत करने के नए अवसर प्रदान किए हैं। शैक्षणिक लाभ के संदर्भ में, सोशल मीडिया छात्रों को नवीनतम जानकारी, शैक्षणिक सामग्री, और विशेषज्ञों के विचारों तक पहुँच प्रदान करता है। कई शैक्षणिक समूह और पृष्ठ छात्रों के लिए उपलब्ध हैं,जहाँ वे ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं और अन्य छात्रों के साथ विचारों का आदान-प्रदान कर सकते हैं। यह उन्हें अपनी अध्ययन विधियों को सुधारने और नए विषयों पर जागरूकता बढ़ाने में मदद करता है । सोशल मीडिया एक शक्तिशाली उपकरण है, जो उच्चतर माध्यमिक छात्रों के विकास में सकारात्मक और नकारात्मक दोनों तरह से योगदान कर सकता है। यदि इसका उपयोग सही दिशा में किया जाए, तो यह छात्रों के लिए आत्म-विश्वास, सामाजिक कौशल, और शैक्षणिक प्रगति को बढ़ाने में मदद कर सकता है। सोशल मीडिया का उपयोग करते समय छात्रों को मानसिक स्वास्थ्य से जुड़े नकारात्मक प्रभावों से भी अवगत रहना चाहिए। अत्यधिक उपयोग से मानसिक तनाव, आत्म-सम्मान में कमी, और ऑनलाइन उत्पीड़न जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। इसलिए, यह आवश्यक है कि छात्र सोशल मीडिया का संतुलित और सुरक्षित उपयोग करें। अभिभावकों और शिक्षकों की

भूमिका इस संदर्भ में महत्वपूर्ण है, उन्हें छात्रों को सही दिशा में मार्गदर्शन करना चाहिए ताकि वे संभावित समस्याओं से बच सकें।

अंततः, सही मार्गदर्शन और संतुलन के साथ, छात्र इस प्लेटफार्म का अधिकतम लाभ उठा सकते हैं और एक जिम्मेदार डिजिटल नागरिक बन सकते हैं। इस प्रकार, सोशल मीडिया का प्रभाव छात्रों के विकास में एक बहुआयामी भूमिका निभाता है, और इसे समझदारी से उपयोग करना आवश्यक है।

सुझाव

1-माध्यमिक विद्यालय के शिक्षकों को छात्रों को उनकी सीखने संबंधी गतिविधियों को बेहतर बनाने के लिए सोशल मीडिया साइटों का उपयोग करने के बारे में पर्याप्त ज्ञान और कौशल प्रदान करना चाहिए।

2-माता-पिता घर पर अपने बच्चों पर सामाजिक संबंधों के लिए मोबाइल फोन के अत्यधिक उपयोग की निगरानी एवं समय सीमा निर्धारित करनी चाहिए।

3- शासन को सरकारी विद्यालयों में भी नई तकनीकों, सुविधाओं का प्रयोग अनिवार्य करना चाहिए, जिससे छात्रों के व्यक्तित्व विकास एवं व्यापक सीखने के अवसर प्रदान हो सकें।

4-समय- समय पर विद्यालय प्रबंधन द्वारा छात्रों को उनके व्यक्तित्व विकास से सम्बन्धित डिजिटल साक्षरता कार्यक्रमों का आयोजन करना चाहिए।

संदर्भ

1- जनगणना पुस्तिका हल्द्वानी नैनीताल गांव, (2011) https://des.uk.gov.in/files/Census_Book_Printing.pdf

2- कौर जशनदीप एवं कौर कुलदीप (2019) द्वारा 'ए स्टडी ऑफ़ रिलेशनशिप बिटवीन इंटरनेट यूजर एंड स्टडी हैबिट्स ऑफ़ हायर सेकंडरी स्टूडेंट, तलवंडी सबो, असम, वॉल्यूम 6, अंक 3

3- नरुका, एस. एवं शर्मा वी. एल., (2018), नेगेटिव इम्पैक्ट ऑफ़ सोशल मीडिया अमंग सेकेंडरी स्कूल चिल्ड्रेन, जैव विश्व भारती संस्थान, लाडनूँ ,नागौर, वॉल्यूम 6, अंक 1, जनवरी 2018

4 - भाटी, एस.वी., (2019), सोशल मीडिया और भारतीय युवाओं का अध्ययन कंप्यूटर विज्ञान और इंजीनियरिंग के अंतरराष्ट्रीय जर्नल, वाल्यूम 7, अंक 1

5- महाजन अभिषेक,नीतू(2018) इफ़ेक्ट ऑफ़ सोशल मीडिया ऑन सीनियर सेकंडरी स्कूल स्टूडेंट्स,शिमला,वॉल्यूम 7

6- शर्मा सविता, भदोरिया राधिका (2018) उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियोंके व्यक्तित्व का अध्ययन, ऐसेक्ट यूनिवर्सिटी जर्नल, वॉल्यूम, v, अंक ix जून 2018

7- रतोरिया शालिनी (2019) सोशल मीडिया का उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की रचनात्मकता, आवासीय पृष्ठभूमि एवं अंतर्क्रिया,राजस्थान, वॉल्यूम 4 ,अंक 04

8 - राम आहुजा, (2011), सामाजिक सर्वेक्षण एवं अनुसंधान, रावत पब्लिकेशन, जयपुर 2011, पृ.64

9- रैडमैन,एल.वी. एंड मोरे.,(1933), द रोमांस ऑफ रिसर्च, पृ.10

10- भार्गव, ए., (2015), भारतीय किशोरों पर सोशल मीडिया के प्रभाव, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ साइंस टेक्नोलॉजी एंड मनेजमेंट,वॉल्यूम-4, अंक-1, पृ. 246-252

11- ओशार्वे पीटर ,(2015), सोशल मीडिया एंड अकेडमिक परफोर्मेंस ऑफ़ स्टूडेंट्स इन यूनिवर्सिटी ऑफ़ लेगोस, वॉल्यूम:2014, जनवरी

12 - कपलान एंड्रियास और हेनलेन माइकल (2010), यूज़ ऑफ़ द यूनिट! द चल्लेंजेस एंड ओप्पोर्च्युनिटीस ऑफ़ सोशल मीडिया, पेरिस, फ्रांस 2010, 59-68

13- उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, एम.ए.पी.एस.वाई,2001

14- https://www.theglobalstatistics.com

15- https://www.theglobalstatistics.com/india-social-media-statistics

*****

Environment in Kannada Sahitya with special reference to Vachana Literature

Shri Bhaskar R. Patgar
Assistant Profesor
Department of History
Dr. A. V. Baliga College of
Arts & Science, Kumta

Introduction:

In the 12th century, the Bhakti movement was led by Basaveshwara and Shivasharana in Karnataka. Karnataka's Basaveshwara was a socio-religious, economic, political, philosophical writer. He was known as Karnataka's Martin Luther. Along with him, 770 other Vachanakaras (those who authored Vachanas) and 33 women Vachanakartis contributed to the development of Kannada literature and culture during the Basava period, which is known as the Vachana yuga.This period is also known as the Lingayat/Virasaiva movement and the Sharana Movement.[1] The majority of Vachanakaras Vachanas focus on the wellbeing of all people. Basaveshwara was the founder of Anubhava Mantapa in Kalyan (Basavakalyan).[2]It was the World's First Parliament. Basava and Shivsharanas produced the Kannada prose-poems known as Vachanas. It was the form of expression chosen by the Sharanas of 12th century to communicate their ideas, thoughts, sentiments, emotions and mystical experiences to the common masses.[3]

Everyone takes part in this activity regardless of caste, community, religion, or sex. Both men and women participated and penned Vachanas in this event. These Vachanas have served as the Lingayat community's sacred texts since the 12th century. Vachanakaras also known as Shivasharanas and Shivasharanis[4]. Devara Dasimayya to Sarvadya are Vachanakaras. Vachanakaras are those who penned the Vachanas. It lasted from the 12th to the 18th centuries.[5] Many Vachanakaras Vachanas provided instructions on how to conserve animals, the environment, and both the physical and social environments. [6]

Aims of the study: The purpose of the paper is to concisely examine these Vachanakara's ideas on environmental protection, awareness, and importance.The use of Vachanakara's ideas in the twenty-first century and their applicability.

Sources and Research Methods: Methods of both analysis and description were used along with Historical method adopted in this paper. The primary sources from the Kannada Vachana Sahitya and Shivasharanas Vachanas and translation of Vachana Sahitya and other languages used to write the paper. Along with secondary sources field visit, survey and expert opinion were considered.

Analysis and Interpretation : In terms of literature and culture, even these Vachana Sahitya are exceptional. It has its own style, nature, traits, and procedures.[7] One must balance their spiritual and material lives while studying the Vachanas. While researching Vachanakaras, I discovered that many of them are concernedwith protecting the environment, the land, the soil, the water, the animals, and other things. According to Vachanakaras, a clean atmosphere is necessary for successful social and cultural living. These Vachanakaras works are all written in Kannada. Currently, several Vachanas havebeen translated to different Indian languages. In this research paper,

I will primarily focus on environmental issues, protection, and preservation. For this research paper the prominent Vachanakaras Basaveshwara,[8], Allamaprabhu,[9] Akkamahadevi,[10] Siddharameshwara and Chennabasavanna, Akkamma, Hadapadappa, Devara Dasimayya,Amugge Rayamma, Kalavve,[11] Ambiga Chowdayya, ,Aadayya[12] were reviewed.

Vachana Sahitya by Vachanakaras focuses on the natural environment and emphasises the needto safeguard animals, the value of the sun, and nature by using examples of the moon, water, animals, birds, and forests to illustrate these points. Even comparisons between various creatures and birds—including snakes, cows, cakoras, owls, elephants, and snakes—as well asbetween those animals and birds and how they relate to how people behave and work are included in their Vachanas. Most of the Vachankaras expressed the Nature and spiritual coexistence with showing the hidden things in the nature.

Findings and Conclusion: Numerous studies have been conducted on renowned Vachanakaras' contribution to literature and culture. However, there are no many articles on environmental protection and Vachana Sahitya. Therefore, the current study iscrucial from a literary and social science perspective. Even in this study new attention will be given to the connections between the Vachana movement and environmental conservation from a religious perspective in order to raise awareness of environmental protection among the general public. It presents the lives of numerous medieval Vachanakaras, which aids in the revision and reconstruction of the history of the 12th century.This research supports and advances both interdisciplinary and multidisciplinary research. Environment and literature are declining in today's globalised society. Therefore, the current study will record and save it. It is everyone's responsibility to preserve and safeguard our planetfor their own benefit. Man is living on this earth. If we protect our mother earth, it will protect us. Otherwise we face many global warming, earth quake, floods, pandemic. The Lingayat community and society as a whole will be benefited greatly from the environmental issues and protective techniques that Mathadhisha teaches his followers. So,Vachana literature is our guiding principle today and torch bearer for tomorrow's new generation to build good personality, safety of world and protect environment from pollution. The Vachana Sahitya must be included in the curriculum in order to raise awareness among the general public. The English translation of Kannada literature would be helpful to academics, researchers, and the younger generation. The new researcher also takes on an environment and Vachana Sahitya initiative that will benefit everyone.

References:

Balachandra Jayasheety (ed), Raju Jubbare article named – Vachana Sahityatun Pariyavaranacha Jagar, Maharashtra Basava Parishad, Bhalki,2015. (Marathi)

Basavaraja K.R., Basasveshwara, His Life, Vision and Work, Someshwara Publications, Dharwar, 2001.

Caharantimath V.S,Anubhava Mantapa And Veerashaiva Culture, Basava Samiti, Bangalore 1995.

Kalburgi M.M.(ed), Vachanas, Basava Samithi, Bangalore, 2012.

Lohit D.Naikar, Basava and Human Rights, Basava Samithi, Bangalore , 2012.

Nalini waghmare , Impact of Vachana Sahitya on Indian Society, Vachana Academy , Pune, 2021.

Vijaya Guttal, Akka Mahadevi and the Vacana Movement, Basava Journal, Jan-March, 2003, Basava Samiti, Bangalore.

Virupakshappa B. (ed), Basava Journal, Silver Splendour (Collection of articles) 25th Volume, Basava Samithi, Bangalore, 2003.

Yarvintelimath C.R.,Vacanas of Women Saints, Basava Samithi, Bangalore, 2006

1. Basavaraja K.R.Basavesvara His Life, Vision and Work, Someshwara Publishing Dharwar, 2001. P.150.
2. V.S.Caharantimath-Anubhava Mantapa And Veerashaiva Culture, pub.Basava Samiti, Bangalore 1995, pp.17-25.
3. See for detail Lohit D.Naikar, Basava and Human Rights, Basava Samithi, Bangalore , 2012, pp.39-40.
4. See for detail C.R.Yarvintelimath, Vacanas of Women Saints, Basava Samithi, Bangalore, 2006, pp.15-19.
5. Kalburgi M.M. (ed) , Samagra Vachana Samputa ,Department of Kannada and Culture, Bangalore, 1993, 15 Volumes.
6. Balachandra Jayasheety (ed), Raju Jubbare article named –Vachana Sahityatun Pariyavaranacha Jagar, Maharashtra Basava Parishad, Bhalki,2015.
7. B.Virupakshappa (ed), Basava Journal, Silver Splendour (Collection of articles) 25th Volume, Basava Samithi, Bangalore, 2003, pp.`1-10.
8. K.R.Basavaraja, Basasveshwara, His Life, Vision and Work, Someshwara Publications, Dharwar, 2001, pp.564-565.
9. Nalini waghmare , Impact of Vachana Sahitya on Indian Society, Vachana Academy , Pune, 2021.p.126
10. Vijaya Guttal, Akka Mahadevi and the Vacana Movement, Basava Journal, Jan-March, 2003, Basava Samiti, Bangalire, p55.
11. M.M.Kalburgi (ed), Vachana, Basava Samithi, Bangalore, Kalavve Vachana No.1326.
12. Ibid, p. Vachana no.1337

*****

विनोबा भावे का शैक्षिक दर्शन: नई तालीम की अवधारणा और समकालीन प्रासंगिकता

-डॉ. सानिया गुप्ता
दर्शनशास्त्र विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
ईमेल-saniagupta46@gmail.com

-डॉ सोनिया कौशिक
वाणिज्यशास्त्र विभाग
भारती कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
ईमेल-soniakaushik2006@gmail.com

शिक्षा मानव जीवन का एक अनिवार्य एवं मौलिक तत्व है। यह न केवल व्यक्तियों को गुणवत्तापूर्ण कार्य की महत्वता समझाने का सर्वोत्तम साधन है, अपितु समाज में व्याप्त विभिन्न प्रकार के भेदभावों के विरुद्ध मुखर होने तथा सदाचरण को आत्मसात करने की प्रवृत्ति विकसित करने में भी सहायक सिद्ध होती है। शैक्षिक अनुसंधान का विस्तार मनोविज्ञान, दर्शन, पाठ्यक्रम तथा संगठनात्मक संरचना जैसे विविध क्षेत्रों तक विस्तृत है।

शैक्षिक दर्शन शिक्षा के आधारभूत सिद्धांतों, विभिन्न शैक्षिक योजनाओं की प्रभावशीलता एवं उनके गुण-दोषों का अनुशीलन करता है। इस प्रकार के अनुसंधान द्वारा किसी भी शैक्षिक विचारधारा के संभावित परिणामों को विश्लेषणात्मक दिशा प्रदान की जाती है। फलस्वरूप, शैक्षिक दर्शन का क्षेत्र सांख्यिकीय पद्धति की भाँति ही महत्त्वपूर्ण एवं अनिवार्य माना जाता है। विनोबा भावे ने शिक्षा के विभिन्न पक्षों पर प्रयोग किए तथा इस संदर्भ में अपनी स्वतंत्र अवधारणा विकसित की। उनके शैक्षिक दृष्टिकोण विशिष्ट एवं मनीषी हैं, जो शिक्षा के सामाजिक, नैतिक, आर्थिक एवं आध्यात्मिक आयामों को समग्रता में व्याख्यायित करते हैं। उन्होंने महात्मा गांधी के शैक्षिक विचारों को व्यवस्थित एवं विधिवत रूप से संहिताबद्ध करने का प्रयास किया।

उनकी मौलिक एवं विद्वत्तापूर्ण शैक्षिक चिंतनधारा 'नई तालीम' के सिद्धांतों एवं कार्यक्रमों की आध्यात्मिक व्याख्या, विभिन्न विषयों के शिक्षण, शिक्षक-शिष्य संबंधों तथा ग्रामोन्नति को एक नवीन दृष्टि प्रदान करती है। विनोबा भावे का शैक्षिक योगदान न केवल विश्लेषणात्मक परिप्रेक्ष्य में महत्त्वपूर्ण है, बल्कि उनके द्वारा प्रतिपादित शैक्षिक कार्यक्रमों की संकल्पना स्वतंत्र रूप से प्रतिष्ठित किए जाने योग्य भी है।

यह शोध-पत्र समकालीन परिप्रेक्ष्य में विनोबा भावे के शैक्षिक विचारों की सैद्धांतिक एवं व्यवहारिक व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रयास करता है।

शिक्षा और दर्शन: एक परस्पर संबंध

प्राच्य ग्रंथों, विशेष रूप से वेदों और उपनिषदों में प्रतिपादित दर्शन इस अवधारणा से गहन समानता रखता है। दार्शनिक अपनी प्रबुद्ध बुद्धि द्वारा विश्व की जटिल समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं तथा समाज को उचित मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। यह दार्शनिक ही हैं जिन्होंने शिक्षा और दर्शन के मध्य संबंध को सुदृढ़ किया है, जिसके परिणामस्वरूप यह निष्कर्ष निकला कि शिक्षा, दर्शन के अनुसरण में चलती है। अतः शिक्षा, दर्शन को व्यवहार में लागू करने का प्रयास करती है। परिणामस्वरूप, दर्शन और शिक्षा परस्पर पूरक अवधारणाएँ हैं। इनमें से एक चिंतनशील होती है, जबकि दूसरी सृजनात्मक। जब कोई व्यक्ति अपने विचारों को दूसरों के समक्ष प्रस्तुत कर उन्हें प्रेरित करने का प्रयास करता है, तो यह प्रक्रिया शिक्षा का रूप ले लेती है। इस प्रकार, शिक्षा में दर्शन की भूमिका इसे मार्गदर्शन एवं दिशा प्रदान करने की होती है, जिससे शिक्षा अपने उद्देश्य को सही ढंग से प्राप्त कर सके।

शिक्षा दर्शन का गतिशील तत्व है, अतः यह अत्यंत समीचीन है कि दार्शनिकता की विभिन्न शाखाओं का गहन अध्ययन किया जाए, जिससे यह समझा जा सके कि वे मानव विकास को किस सीमा तक प्रभावित करती हैं। पूर्व और पश्चिम के विभिन्न विद्वानों ने अपने शैक्षिक विचारों एवं अवधारणाओं के माध्यम से शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर के अनुसार, सृजनात्मक गतिविधियों के लिए प्रेरक वातावरण शिक्षा का एक अनिवार्य घटक होना चाहिए। उनके मतानुसार, शिक्षा तभी स्वाभाविक एवं स्वस्थ हो सकती है जब वह एक जीवंत, निरंतर विकसित

होने वाले ज्ञान-स्रोत से सहज रूप में उत्पन्न हो। शिक्षा केवल ज्ञान अर्जन का साधन नहीं है, बल्कि यह व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों के साथ संबंध स्थापित करने एवं उन्हें समझने में भी सहायक होती है। मानव को न केवल बौद्धिक स्तर पर, अपितु अपने व्यक्तित्व के विकास में भी प्रयास करना आवश्यक है, जिसे कला की भाषा में अभिव्यक्त किया जा सकता है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की शैक्षिक दर्शन की आधारशिला समस्त मानव जाति की आध्यात्मिक एकता की अवधारणा पर टिकी हुई है। उन्होंने शिक्षा में आदर्शवाद की आवश्यकता को पहचाना, जो भारतीय विद्यार्थियों को दी जाने वाली पश्चिमी शैली की शिक्षा में प्रायः अनुपस्थित दिखाई देती है।

महात्मा गांधी के अनुसार, शिक्षा का उद्देश्य बालक के शरीर, मन और आत्मा में सर्वोत्तम गुणों को विकसित करना होना चाहिए। उनके मत में, कोई व्यावहारिक या व्यवसायिक गतिविधि शिक्षा का केंद्र बिंदु होनी चाहिए, तथा सभी विषयों को उसी के आधार पर व्यवस्थित किया जाना चाहिए। गांधीजी ने शिक्षा को सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना विकसित करने का एक माध्यम माना। उनकी शैक्षिक विचारधारा के अनुसार, शिक्षा नागरिक अधिकारों एवं कर्तव्यों के विवेकपूर्ण अभ्यास का साधन है। उनके लिए, शिक्षा के माध्यम से शांति और आनंद की प्राप्ति अत्यंत आवश्यक थी।

स्वामी विवेकानंद ने भी शिक्षा को भारतीयों के समग्र विकास का साधन माना। उनके अनुसार, शिक्षा एक "मनुष्य निर्माण प्रक्रिया" (Man-Making Process) है। वे चाहते थे कि भारतीयों में अटूट इच्छाशक्ति, दृढ़ संकल्प, इस्पात समान नसें और लौह-सदृश मांसपेशियाँ विकसित हों, जिससे वे ब्रह्मांड के रहस्यों को समझ सकें। उन्होंने ज्ञानार्जन पर बल दिया, किंतु उससे भी अधिक उन्होंने चरित्र निर्माण को प्राथमिकता दी, ताकि शिक्षित व्यक्ति अच्छाई और बुराई के बीच भेद कर सकें और जीवन की चुनौतियों का सामना सिंह जैसी निर्भीकता से कर सकें। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने अपने एक भाषण में तर्क दिया कि भारतीयों को जीवन संघर्ष हेतु स्वयं को तैयार करने के लिए पश्चिम से कला, उद्योग और व्यावहारिकता के क्षेत्र में सीखना चाहिए। अतः उन्होंने "आत्मा" (Atman) की अनुभूति हेतु शरीर एवं मन की शक्ति के महत्व को रेखांकित किया। स्वामी विवेकानंद ने सदैव जनशिक्षा (Mass Education) का समर्थन किया, क्योंकि वे भारतीय श्रमिक वर्ग के प्रति गहरी सहानुभूति और प्रेम रखते थे। उनके अनुसार, भारत के पुनरुत्थान का मार्ग व्यापक शिक्षा के माध्यम से ही प्रशस्त हो सकता है।

आधुनिक भारत के लिए महात्मा गांधी एक आदर्श व्यक्तित्व रहे हैं। अहिंसा, सहयोग, श्रम की गरिमा और गाँवों एवं शहरों के बीच सुदृढ़ संबंध के सिद्धांतों के आधार पर उन्होंने समाज के पुनर्गठन और संगठन का प्रयास किया। गांधीजी का उद्देश्य नैतिक और आध्यात्मिक रूप से सशक्त व्यक्ति का निर्माण था। उन्होंने उस समाज की निरर्थकता को भली-भाँति समझा, जहाँ भौतिक समृद्धि और आर्थिक उन्नति ही प्रमुख ध्येय बन जाए। उनके अनुसार, यदि भौतिक विकास नैतिकता से रहित होगा, तो वह केवल खोखला होगा और समाज के अधिकांश लोगों को सुख नहीं प्रदान कर सकेगा। आर्थिक मुक्ति आवश्यक अवश्य है, किंतु यह समाज सुधार का एकमात्र उपाय नहीं हो सकता। नैतिक व्यक्तित्व के निर्माण की इस अवधारणा के आलोक में सामाजिक पुनर्निर्माण को भी देखना आवश्यक है। गांधीजी का लक्ष्य जनमानस में मानसिक और हृदयगत परिवर्तन लाना था। उन्होंने इस परिवर्तन को समाज की मूलभूत आवश्यकता माना, जिससे न केवल एक विकसित राष्ट्र का निर्माण संभव हो, बल्कि एक नैतिक एवं आत्मनिर्भर समाज की स्थापना भी सुनिश्चित हो सके।

गांधीजी ने शिक्षा को न केवल बौद्धिक विकास का साधन माना, बल्कि उन्होंने इसे चरित्र निर्माण का प्रमुख उद्देश्य भी निर्धारित किया। उन्होंने शिक्षा की मौलिक और नवीन प्रणालियों को चुनौतीपूर्ण एवं विचारोत्तेजक रूप में प्रस्तुत किया। उनके शब्दों में- "नवीन विश्व के निर्माण के लिए शिक्षा भी नवीन प्रकार की होनी चाहिए।"[ii] इस संदर्भ में वे विस्तार से कहते हैं- "हमारी शिक्षा प्रणाली मन, शरीर और आत्मा के विकास को सुनिश्चित करती है, जबकि सामान्य शिक्षा प्रणाली केवल मन की चिंता करती है।"[iii] यह विचार स्पष्ट करता है कि शिक्षा का उद्देश्य केवल बौद्धिक विकास तक सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि इसे समग्र मानवीय उन्नति का माध्यम बनना चाहिए। शिक्षा का एक विशिष्ट उद्देश्य और भूमिका होती है। एक शोधकर्ता जो शिक्षा और

दर्शन के बीच सेतु का कार्य करता है, वही सच्चा दार्शनिक होता है। शिक्षा के क्षेत्र में दार्शनिकों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। दर्शन प्रायः महान व्यक्तियों के जीवनगत अनुभवों से विकसित होता है। इस प्रकार, वे अपने चिंतन के माध्यम से सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन लाने में सफल होते हैं और दार्शनिक कहलाते हैं। महात्मा गांधी के शैक्षिक विचार उनके दर्शन एवं आदर्शों से अविभाज्य हैं। वे सत्य और सौंदर्य को सर्वोच्च प्राथमिकता देते हुए कहते हैं- "सत्य और सौंदर्य के लिए मैं जीऊँगा, इन्हीं के लिए मैं मरूँगा।" [iv] इस प्रकार, गांधीजी की शिक्षा दर्शन केवल ज्ञान का संकलन नहीं, बल्कि एक जीवन दृष्टि है, जो व्यक्ति के बौद्धिक, नैतिक और आत्मिक विकास को सुनिश्चित करती है।

आचार्य विनोबा भावे: दार्शनिक एवं शिक्षाशास्त्री

भारत का सौभाग्य रहा है कि यहाँ आदिकाल से महान दार्शनिकों का जन्म होता रहा है। महात्मा गांधी के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी आचार्य विनोबा भावे को दार्शनिक एवं शिक्षाशास्त्री के रूप में अद्वितीय स्थान प्राप्त है। जो व्यक्ति अपने विचार, वाणी और कर्म के माध्यम से मानवता के उत्थान के लिए अपना जीवन समर्पित करता है, वही सच्चा एवं आदर्श शिक्षक कहलाने का अधिकारी होता है। इस दृष्टिकोण से आचार्य विनोबा भावे अपने युग के महानतम विचारक और शिक्षाशास्त्री माने जाते हैं। सत्य, अहिंसा, प्रेम और सेवा उनकी विचारधारा के आधार स्तंभ हैं। भारत और विश्व में अनेक प्रकार के दार्शनिक हुए हैं। कुछ दार्शनिकों ने एकांत में ध्यान साधना की, तो कुछ ने वनों में तपस्या की, किंतु विनोबा एक अलग ही श्रेणी के दार्शनिक थे। वे भारतीय संत-दार्शनिक परंपरा के एक विशिष्ट प्रतिनिधि थे। वे गाँवों में जाते, वहाँ के लोगों से संवाद स्थापित करते और अपने विचारों का विमर्श करते। अहिंसा के प्रबल समर्थक होने के कारण उन्होंने जटिल दार्शनिक विचारों को सरल भाषा में जनता तक पहुँचाने का प्रयास किया। इसके लिए उन्होंने भारत की लगभग सभी प्रमुख भाषाओं पर अधिकार प्राप्त किया। वे अपने जीवनकाल में सतत सक्रिय रहे। वे यात्राओं के दौरान आहार से मृत्यु तक सभी विषयों पर चिंतन एवं लेखन करते रहे। उनके द्वारा प्रस्तुत गीता एवं अन्य शास्त्रों की व्याख्याएँ उनके दार्शनिक दृष्टिकोण की प्रमाणिकता सिद्ध करती हैं। उन्होंने समाज को यह प्रेरणा दी कि प्रत्येक व्यक्ति एक साथ शिक्षक और विद्यार्थी दोनों हो सकता है। उनके विचारों ने शिक्षकों, विद्यार्थियों और आम जनता को शिक्षा के प्रति एक नवीन दृष्टिकोण प्रदान किया। उन्होंने शिक्षा प्रणाली को दिशा देने एवं उसकी समस्याओं के समाधान हेतु अपने विचार व्यक्त किए। उन्होंने यह दर्शाया कि आदर्श शिक्षक केवल ज्ञान प्रदान नहीं करता, बल्कि स्वयं भी सीखता रहता है। उनके अनुसार, शिक्षण हेतु सीखना आवश्यक नहीं है, बल्कि सतत शिक्षण और सतत अधिगम एक साथ चलने चाहिए। एक गांधीवादी के रूप में विनोबा बाह्य विकास से अधिक आंतरिक विकास को महत्त्वपूर्ण मानते थे। उनकी मूल धारणा थी कि शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति का आध्यात्मिक विकास होना चाहिए। इसीलिए उन्होंने शिक्षा को सर्वाधिक मूल्यवान तत्व माना और इसके महत्व पर विशेष बल दिया।

विनोबा भावे का शैक्षिक दर्शन

विनोबा भावे ने औपचारिक और अनौपचारिक दोनों प्रकार की शिक्षा प्राप्त की। उनके जीवन पर उनकी माता द्वारा दी गई अनौपचारिक शिक्षा का गहरा प्रभाव पड़ा। उनकी माता, जो अत्यंत धार्मिक और आध्यात्मिक प्रवृत्ति की थीं, उन्होंने विनोबा में आध्यात्मिकता और भक्ति का भाव जागृत किया। उनके विचार अद्वितीय और विचारोत्तेजक हैं, जो शिक्षा के सामाजिक, नैतिक, आर्थिक और आध्यात्मिक पहलुओं को व्यापक और गहन रूप से समाहित करते हैं। महात्मा गांधी के शैक्षिक विचारों को व्यवस्थित करने का कार्य विनोबा भावे ने किया। उनके स्वतंत्र और विद्वत्तापूर्ण चिंतन ने नई तालीम के सिद्धांतों और कार्यक्रमों की आध्यात्मिक व्याख्या की, जिससे विभिन्न विषयों की शिक्षा, शिक्षक-शिष्य संबंध और ग्राम सुधार को एक नई दिशा मिली। गांधीजी के अनुसार, शिक्षा केवल पढ़ने-लिखने का ज्ञान नहीं है, बल्कि यह चरित्र निर्माण और कर्तव्यबोध का माध्यम है। वे कहते थे कि हमारी भाषा में 'शिक्षा' का वास्तविक अर्थ 'प्रशिक्षण' है।[v]

विनोबा भावे उपनिषदिक संस्कृति के महान विद्वान और साधक थे। उनके समस्त कार्य ऋग्वेद के सिद्धांतों से प्रेरित थे। उन्होंने कर्मयोग की आध्यात्मिक व्याख्या प्रस्तुत की। उनका जीवन एक प्रयोगशाला के समान था, जिसमें वे लगातार नए विचारों का प्रयोग करते रहे। गांधीजी की मृत्यु के बाद, विनोबा का जीवन शिक्षा और समाज सुधार की प्रयोगशाला बन गया। उन्होंने संपूर्ण देश में सर्वोदय समाज का

संदेश फैलाया, जो सामाजिक शिक्षा के प्रयोग का ही एक स्वरूप था। उन्होंने कृषि प्रयोगों के माध्यम से आत्मनिर्भरता का पाठ पढ़ाया। उन्होंने शिक्षा को दो भागों में विभाजित किया— आंतरिक शिक्षा और बाह्य शिक्षा।

- आंतरिक शिक्षा: यह व्यक्ति की आत्मा को सशक्त बनाने से संबंधित है, जिसमें आध्यात्मिकता और आत्मबोध का विकास होता है।
- बाह्य शिक्षा: यह व्यावहारिक ज्ञान और जीवन यापन के लिए आवश्यक दक्षताओं पर केंद्रित होती है, जो वर्तमान विद्यालयी शिक्षा प्रणाली के अनुरूप है।

किन्तु विनोबा भावे इन दोनों के संतुलित समन्वय के पक्षधर थे। वे विद्यार्थियों को इस योग्य बनाना चाहते थे कि वे न केवल ज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश करें, बल्कि जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने की भी क्षमता विकसित करें। विनोबा भावे का मानना था कि शिक्षा का उद्देश्य पाँचों इंद्रियों के उचित विकास में सहायक होना चाहिए। उन्होंने त्रिविध उद्देश्य योजना (Triple Purpose Program) प्रस्तुत की, जिसे उन्होंने तीन भागों में विभाजित किया:

1. पहला भाग - बच्चों को अपने परिवेश और वर्तमान परिस्थितियों की जानकारी प्राप्त करनी चाहिए।
2. दूसरा भाग - विद्यार्थियों को आत्मनिर्भर बनने की शिक्षा दी जानी चाहिए।
3. तीसरा भाग - विद्यार्थियों को स्वयं को जानने और आत्मबोध प्राप्त करने में सक्षम होना चाहिए।

उनका दृष्टिकोण था कि शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियों का शारीरिक और मानसिक विकास होना चाहिए। उन्होंने यह सुझाव दिया कि पाठ्यक्रम में ऐसे प्रावधान किए जाएँ, जिससे छात्र शारीरिक व्यायाम कर सकें, मधुर कविताएँ, पद और भजन पढ़ सकें, जिससे उनकी वाणी में मधुरता आए और उनका आत्मविश्वास बढ़े। उन्होंने यह भी कहा कि शिक्षण प्रक्रिया में छात्रों की रुचि का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए। गणित की शिक्षा केवल उतनी ही दी जानी चाहिए, जितनी किसी व्यक्ति की सफलता के लिए आवश्यक हो। वास्तव में, विनोबा भावे पूर्व निर्धारित पाठ्यक्रम को अनिवार्य रूप से लागू करने के पक्षधर नहीं थे, बल्कि वे समाज और राष्ट्र की वर्तमान आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तन के समर्थक थे।

महात्मा गांधी ने अपने नई तालीम कार्यक्रम और शैक्षिक विचारों को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया। नई तालीम के आध्यात्मिक दृष्टिकोण, विभिन्न विषयों के शिक्षण, शिक्षक-शिष्य संबंधों के विकास और ग्राम सुधार की अवधारणाएँ विनोबा भावे के स्वतंत्र और बौद्धिक दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप विकसित हुईं। गांधीजी ने शिक्षा की परिभाषा देते हुए कहा था - "मेरे लिए शिक्षा का अर्थ है, शरीर, मन और आत्मा में निहित श्रेष्ठतम गुणों का समग्र रूप से विकास करना... इसलिए मैं बच्चे की शिक्षा एक उपयोगी हस्तकला से प्रारंभ करूंगा, जिससे वह अपने प्रशिक्षण के आरंभ से ही कुछ उत्पादन कर सके।"[vi]

गांधीजी की शिक्षा संबंधी दृष्टि का उद्देश्य न केवल व्यक्ति का बल्कि संपूर्ण समाज का परिवर्तन था। वे शिक्षा को राष्ट्रोत्थान का एक साधन मानते थे। उन्होंने एक समानता पर आधारित समाज की कल्पना की थी, जिसमें "न कोई भिखारी होगा, न कोई निर्धन, न कोई उच्च होगा, न कोई निम्न, न कोई करोड़पति मालिक होगा, न ही कोई आधे पेट भूखा मजदूर।" विनोबा भावे ने संपूर्ण भारत में सर्वोदय समाज का संदेश फैलाया, जिसमें उन्होंने सामाजिक शिक्षा के अनेक प्रयोग किए। उन्होंने कृषि-आधारित परियोजनाओं के माध्यम से भोजन, शिक्षा, वस्त्र और स्वच्छता के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता के महत्व को प्रतिपादित किया। उनके ये प्रयोग केवल आर्थिक या सामाजिक सुधार तक सीमित नहीं थे, बल्कि उन्होंने इसे शिक्षा के एक आवश्यक अंग के रूप में देखा।

नई तालीम के सिद्धांत पर विनोबा भावे के विचार

सर्वोदय समाज के उद्देश्यों के अनुरूप, आचार्य विनोबा भावे ने नई तालीम के शैक्षिक लक्ष्यों को इस रूप में स्थापित किया। वे देश में प्रचलित शिक्षा प्रणाली से असंतुष्ट थे। उनका मानना था कि पश्चिमी शिक्षा भारतीय आत्मा का हनन कर रही है। उन्होंने नई तालीम के मूल सिद्धांतों का सार प्रस्तुत किया और समकालीन आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उसकी व्याख्या की।

1. नई तालीम के मूल विचार:

महात्मा गांधी के सभी कार्यक्रमों का केंद्र चरखा था।

गांधीजी के अनुसार, इस प्रक्रिया का निरंतर मूल्यांकन किया जाना चाहिए। इसी प्रकार, एक शैक्षिक प्रक्रिया के रूप में नई तालीम का भी निरंतर मूल्यांकन आवश्यक है। किन्तु विनोबा भावे नई तालीम को केवल चरखा चलाने की प्रक्रिया तक सीमित नहीं मानते थे, बल्कि वे इसे एक व्यापक शैक्षिक सिद्धांत मानते थे, जिसमें शिक्षा के सभी स्तरों को समाहित किया जाना चाहिए। नई तालीम को मानव जीवन की वास्तविकता से जुड़ा होना चाहिए। उन्होंने शरीर, मन और हृदय के सामंजस्यपूर्ण विकास पर विशेष बल दिया। उनके अनुसार, नई तालीम का मूल सिद्धांत यह है कि श्रम और ज्ञान को अलग-अलग नहीं समझना चाहिए। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं और एक-दूसरे के पूरक हैं।

2. नई तालीम के प्रमुख सिद्धांत:

विनोबा भावे ने नई तालीम को चार मुख्य सिद्धांतों में विभाजित किया—

1. प्रेम और अहिंसा मानव जीवन का आधार हैं।
2. स्वयं के श्रम से जीविकोपार्जन एक ईमानदार जीवन का प्रमुख तत्व है।
3. विचारों की स्वतंत्रता ही शिक्षा की वास्तविक शुरुआत है।
4. सामाजिक उद्देश्य शिक्षा के मुख्य लक्ष्यों में से एक होना चाहिए।

विनोबा भावे की नई तालीम की अवधारणा गांधीवादी परंपरा में गहराई से निहित थी और इस पर भगवद गीता के शिक्षाओं का गहरा प्रभाव था। यही संबंध नई तालीम के समस्त पहलुओं को परिभाषित करता है, जिसमें शिक्षा के उद्देश्य, शिक्षण पद्धति और उसके कार्यान्वयन के तरीके शामिल हैं। गांधीजी ने स्वायत्त शिक्षा (Autonomous Education) की संकल्पना प्रस्तुत की, लेकिन इसे ठोस रूप में ढालने का कार्य विनोबा भावे ने किया। वास्तव में, नई तालीम या बुनियादी शिक्षा के विचारों का प्रारंभिक स्वरूप विनोबा के शैक्षिक कार्यों में साबरमती आश्रम और बाद में वर्धा स्थित सत्याग्रह आश्रम में देखा जा सकता है।[viii] विनोबा भावे कहते हैं—

"शिक्षा का अर्थ है अच्छे लोगों के साथ सत्संग—मैं शिक्षा को इससे अधिक उपयुक्त रूप में परिभाषित नहीं कर सकता।" [ix] वे आगे लिखते हैं—

"हमारा चार सूत्रीय कार्यक्रम है, जिसमें ग्रामोद्योग, भूमि का न्यायसंगत वितरण, जाति एवं संप्रदायगत भेदभाव का उन्मूलन और जीवनोपयोगी शिक्षा (नई तालीम) शामिल हैं। ये चार अलग-अलग विषय नहीं, बल्कि एक समेकित कार्यक्रम हैं। स्पष्ट विचार और व्याख्या के लिए हम इन चार पहलुओं में भेद कर सकते हैं, लेकिन व्यवहार में इन्हें अलग नहीं किया जा सकता।" [x]

3. नई तालीम के पाठ्यक्रम के पहलू:

विनोबा भावे ने त्रिविध शैक्षिक कार्यक्रम (Triple Educational Programme) प्रस्तुत किया, जो शिक्षा के विभिन्न पहलुओं को निर्देशित करने के लिए आधारभूत सिद्धांतों के रूप में कार्य करता है। नई तालीम के पाठ्यक्रम से संबंधित तीन मुख्य पहलू निम्नलिखित हैं—

1. बाल्यावस्था की शिक्षा (Education of Child-hood) – बच्चों की प्रारंभिक शिक्षा को आत्मनिर्भरता और नैतिक मूल्यों पर आधारित बनाया जाना चाहिए।
2. चरित्र निर्माण (Character Building) – शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञानार्जन न होकर नैतिक मूल्यों का विकास भी होना चाहिए।
3. शिक्षा में हस्तकला (Craft in Education) – शिक्षा में हस्तकला को शामिल कर श्रम और ज्ञान के समन्वय पर बल दिया जाना चाहिए।

यह संकल्पना पूर्णतः नवीन है। विनोबा भावे बच्चों को कक्षा के चार दीवारों के भीतर नीरस और उबाऊ दिनचर्या में सीमित करने के पक्षधर नहीं थे। वे मानते थे कि शिक्षा को एक दायित्व मानने की कृत्रिम अवधारणा के स्थान पर, इसे एक आनंददायक प्रक्रिया के रूप में अपनाया जाना चाहिए। वे यह विचार व्यक्त करते हैं कि -

"जब तक हम किसी कार्य में संलग्न नहीं होते, तब तक हमें सीखने की भूख नहीं लगती। जब किसी व्यक्ति को बलपूर्वक शिक्षा दी जाती है, जबकि उसमें उसके प्रति कोई स्वाभाविक रुचि नहीं होती, तो वह

ज्ञान आत्मसात नहीं कर सकता।"[xi]

विनोबा भावे ने शिक्षा को केवल पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित न रखकर व्यावहारिक, नैतिक और आत्मनिर्भर जीवन के निर्माण का साधन माना। उनकी नई तालीम की अवधारणा शिक्षा को समाज और जीवन से जोड़ने का एक सशक्त प्रयास थी।

निष्कर्ष

यद्यपि विनोबा भावे ने शिक्षा के अनेक पहलुओं पर विचार किया, यहाँ उनके कुछ महत्वपूर्ण विचारों को प्रस्तुत किया गया है, जो यह दर्शाते हैं कि समय के साथ उनके शैक्षिक दृष्टिकोण में किस प्रकार परिवर्तन आया और वे आज भी प्रासंगिक बने हुए हैं। उन्होंने शिक्षा से जुड़े समकालीन मुद्दों को पहचाना और उनके समाधान के लिए ठोस सुझाव प्रस्तुत किए। आज भी उनकी शैक्षिक अवधारणाओं का महत्व और उपयोगिता बरकरार है। यदि हम संत विनोबा जी के शैक्षिक विचारों के मूल तत्वों को ध्यान में रखते हुए शिक्षा प्रणाली को दिशा दें और उनके अनुरूप कार्य करें, तो वर्तमान समय की कई समस्याओं का समाधान संभव है। इससे व्यापक स्तर पर सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। संत विनोबा ने अपने समय में शिक्षा से संबंधित अनेक महत्वपूर्ण मुद्दों पर गंभीरता से विचार किया और उनके समाधान भी प्रस्तुत किए। उनके द्वारा सुझाए गए उपाय आज की शिक्षा प्रणाली की चुनौतियों से निपटने में भी प्रभावी सिद्ध हो सकते हैं

I. डगलस एलन, *"महात्मा गांधी ऑन वायलेंस एंड पीस एजुकेशन"*, *फिलॉसफी ईस्ट एंड वेस्ट*, खंड 57, अंक 3 (जुलाई 2007): पृष्ठ 294। JSTOR

II. शांत बाला, *"गांधीवादी शिक्षा की अवधारणा - वर्तमान समय में इसकी प्रासंगिकता"*, *द इंडियन जर्नल ऑफ पॉलिटिकल साइंस*, खंड LXVI, अंक 3 (जुलाई-सितंबर 2005): पृष्ठ 532।

III. वही, पृष्ठ 532।

IV. एच.एस.एस. लॉरेंस, *"गांधीजी का शिक्षा में योगदान"*, *द फाई डेल्टा कप्पन*, खंड 32, अंक 2 (अक्टूबर 1950): पृष्ठ 43। JSTOR

V. शांत बाला, *"गांधीवादी शिक्षा की अवधारणा - वर्तमान समय में इसकी प्रासंगिकता"*, *द इंडियन जर्नल ऑफ पॉलिटिकल साइंस*, खंड LXVI, अंक 3 (जुलाई-सितंबर 2005): पृष्ठ 534।

VI. वही, पृष्ठ 532।

VII. वही, पृष्ठ 533।

VIII. नारायण, एस., *विनोबा: उनका जीवन और कार्य,* बॉम्बे: पॉपुलर प्रकाशन, (1970): पृष्ठ 117।

IX. विनोबा, *रैंडम रिफ्लेक्शंस*, (वि. नरगोलकर, अनुवाद), पवनार: परमधाम प्रकाशन, (2021): पृष्ठ 60।

X. विनोबा, *थॉट्स ऑन एजुकेशन* (8वां संस्करण), (एम. साइक्स, अनुवाद), वाराणसी: सर्व सेवा संघ प्रकाशन, (2014): पृष्ठ 83।

XI. नारायण, एस., *विनोबा: उनका जीवन और कार्य,* बॉम्बे: पॉपुलर प्रकाशन, (1970): पृष्ठ 118।

*****

रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय से सम्बन्धित महाविद्यालयों के स्नातक स्तर पर विद्यार्थियों के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन

-मनीषा
शोधकर्ती
स्कूल ऑफ सोशल साईंसिज
आईएफटीएम विश्वविद्यालय, मुरादाबाद

(डॉ0) हरिओम चौहान
शोध निर्देशक
सहायक प्राध्यापक
स्कूल ऑफ सोशाल साईंसिज
आईएफटीएम विश्वविद्यालय, मुरादाबाद

सार :- लोकतंत्र का रास्ता आसान नहीं है, क्यों इसका यह कारण है कि जब व्यक्ति बोलता है तो प्रजातंत्र विफल हो जाता है प्रजातंत्र को असफल करने का एक कारण असाक्षरता। अशिक्षित व्यक्ति न तो अपने अधिकारों को समझ सकता है और न ही अपने कर्तव्यों का भली भांति पालन कर सकता है। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में साक्षरता सिर्फ 74.04 प्रतिशत है भारत की साक्षरता दर विश्व की साक्षरता दर 84 प्रतिशत से कम है। भारत में साक्षरता के मामले में पुरूष और महिलाओं में काफी अंतर है। जहां पुरूषों की साक्षरता दर 82.14 है वहीं महिलाओं में इसका प्रतिशत मात्र 65.46 प्रति''ात है। इन परिस्थितियों में इन अशिक्षित वोटर्स द्वारा एक योग्य व्यक्ति को निर्वाचित कर पाना बहुत कठिन हो जाता है। इन परिस्थितियों में अशिक्षित मतदाता अपने मताधिकारों का प्रयोग करने में निर्जीव प्रतीत होता है। जो भी व्यक्ति चुनाव में जीत हासिल करता है वह राष्ट्र का भाग्य निर्माता होता है। यदि अयोग्य व्यक्ति शासन व्यवस्था चला रहा है तो देश की अखण्डता तथा एकता संकट में पड़ सकती है। लोकतंत्र में मूल्यों एवं गुणों की नागरिकता की शिक्षा देकर ही सिखाया जा सकता है।

कि वर्ड :- अभिवृत्ति, सह–शिक्षा

प्रस्तावना :- प्राचीन समय में शिक्षा एक बहुत ध्रुवीय प्रक्रिया थी। इस समय एक शिक्षक अपने शिक्षार्थियों को मौखिक रूप से मौलिक ज्ञान प्रदान करता था। शिक्षक बालकों को एक उच्च सीमा तक शिक्षित करते थे। वह किसी प्रकार की असंतुष्टि प्रदान नहीं करते थे, वे लोगों के आध्यात्मिक विकास के लिये अनेकों उददेश्य देते थे। इसके पश्चात जब शिक्षा को दो ध्रुवीय प्रक्रिया समझी गयी, तब पाठयक्रम की आव''यकता अनुभव की गयी। दो ध्रुवों पर गुरू और शिष्य है प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री एडम शिक्षा को द्वि–ध्रुवी प्रक्रिया मानते थे। किन्तु जॉन डीवी, ऐडम के विचार से सहमत नहीं थे। वे शिक्षा को त्रि–ध्रुवीय प्रक्रिया मानते है। जॉन डीवी के अनुसार ''एक अध्यापक ही वह व्यक्ति होता है जो बालक के सामाजीकरण के लिये जिम्मेदार होता है, वह समाज का प्रतिनिधित्व करता है। वह अपने विद्यार्थियों की आवश्यकताओं का निरीक्षण कर उसे सहायता प्रदान करता है व उसे पूर्णरूप से पूरी स्वतन्त्रता के साथ शिक्षा प्रदान करता है।

वर्तमान शिक्षा आज इस बात से एकमत है कि इसका उददेश्य बालकों को एक मात्र सूचनायें देने से ही नहीं बल्कि सैद्धान्तिक ज्ञान के साथ–साथ व्यावहारिक, नैतिक, सामाजिक भावनात्मक आदि सभी दृष्टियों से तैयार करना है। डेविस का विचार है कि ''मनोविज्ञान ने छात्रों की क्षमताओं, विभिन्नताओं का विश्लेषण करके शिक्षा को विशिष्ट योगदान दिया है।'' बालक के सर्वांगीण विकास हेतु अति आवश्यक है कि बालक का अध्यापक एवं माता के प्रति निश्चित रूप से अच्छा दृष्टिकोण हो तथा अनुशासित जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा बालक को प्राप्त

हो। निःसंकोच यह कहा जा सकता है कि आज का एक सफल विद्यार्थी कल का एक जिम्मेदार नागरिक है। वह सम्पूर्ण राष्ट्र के इस महत्वपूर्ण हिस्से की अवहेलना करते है तो कोई भी राष्ट्र व समाज ऊपर नहीं उठ सकता है। किसी समाज तथा राष्ट्र के निर्माण में शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान है।

अध्ययन की आवश्यकता व महत्व :- वर्तमान का बालक भूतकाल का एक अच्छा नागरिक है। अतः छात्रों को संतुष्ट करना जिससे उनके आत्मविश्वास में वृद्धि हो सकें आज तक महाविद्यालय सन्तुष्टि तथा आत्मविश्वास से सम्बन्धित प्रमुख शोध कार्यों में : जयोति, डी0 अरूण तथा रेडी, आइ0बी0 रमन्ना (1996) ने ''सामान्य तथा बाधिर छात्रों के समायोजन तथा आत्मविश्वास का तुलनात्मक अध्ययन किया। बिन्दु, सी0एस0 (1998) ने ''माध्यमिक स्तर के श्रवणहीन तथा सामान्य छात्रों के आत्म विश्वास तथा सामाजिक व्यक्तिगत समायोजन के अध्ययन किया, हुण्डा, राजाराम (2012) ने ''स्नातक स्तर के आरक्षित एवं अनारक्षित वर्ग के विद्यार्थियों की शैक्षिक रूचि जीवन सन्तुष्टि एवं उपलब्धि अभिप्रेरणा कातुलनात्मक अध्ययन'' किया है। सिंह, राजेन्द्र (2011) ने ''उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की सामाजिक परिपक्वता, का आत्मविश्वास एवं कृण्डा का उनकी शैक्षिक निष्पत्ति से सम्बन्ध काएक अध्ययन किया भास्कर, निर्मला (2015) ने ''अनुप्रेक्षा का किशोर छात्राओं के आत्मविश्वास पर प्रभाव का अध्ययन'' किया

शोधकत्री द्वारा किये गये अध्ययनों का पुर्नावलोकन किया तथा यह पाया कि महाविद्यालयी सन्तुष्टि तथा आत्मविश्वास के प्रति विद्यार्थियों की अभिवृत्तियों को लेकर कोई भी शोधकार्य अभी तक प्रकाश में नहीं आया है। प्रस्तुत अध्ययन में अध्ययनकर्ता ने स्नातक स्तरपर आत्मविश्वास तथा महाविद्यालय संतुष्टि के प्रति विद्यार्थियों की अभिवृत्तियों का तुलनात्मक अध्ययन करने का निश्चय किया है।

समस्या कथन :- ''रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय से सम्बन्धित महाविद्यालयों के स्नातक स्तर पर विद्यार्थियों के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन।

शोध अध्ययन के शब्दों का परिभाषीकरण :-

किसी छात्र को शिक्षक के द्वारा संतुष्ट होने से अभिप्राय विद्यालयों के शिक्षकों के प्रति उसके सीखने की संतुष्टि पर निर्भर करता है। अध्यापकों का विद्यार्थियों की दृष्टि में विषय का ज्ञाता होना, पक्षपात रहित व्यवहार, समस्या समाधान में सहायक, अभिप्रेरित करने की प्रवृत्ति, उचित शिक्षण सामग्री का सही प्रयोग करने की क्षमता आदि के आधार पर महाविद्यालय की संतुष्टि को परिभाषित किया जा सकता है।

परीक्षा प्रणाली से संतुष्टि :

किसी छात्र का परीक्षा प्रणाली से संतुष्ट होने अभिप्राय महाविद्यालयों में सम्पन्न होने वाली परीक्षा के प्रति दृष्टिकोण का कुल योग परीक्षा प्रणाली के अन्तर्गत परीक्षा की तिथि व समय, परीक्षा परिणाम घोषित करने की तिथि, शिक्षकों द्वारा परीक्षा कक्ष का निरीक्षण कार्य, प्रश्नों की स्पष्टता, अस्पष्टता, कोर्स से सम्बन्धित प्रश्नपत्र का होना, मूलयांकन आदि आते है। इन सब बिन्दुओं के आधार पर छात्रों की महाविद्यालयी संतुष्टि को परिभाषित किया जा सकता है।

पाठयक्रम से संतुष्टि :

किसी छात्रों की पाठयक्रम से संतुष्टि से अभिप्राय पाठयक्रम के प्रति उसके नजरिये के कुल योग से है। पाठयक्रम का सरल अथवा कठिन या रूचिपूर्ण या नीरस

होने, रोजगारोन्मुख होने, सर्वांगीण विकास में सहायक होने निश्चित की गयी अवधि के अनुकूल होने आदि के आधार पर छात्रों की पाठयक्रम के प्रति महाविद्यालय संतुष्टि को परिलक्षित करता है।

अध्ययन के उद्देश्य :- रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय के स्नातक स्तर पर अध्ययनरत शहरी एवं ग्रामीण छात्राओं के आत्मविश्वास के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन।

परिकल्पनायें :- रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय के स्नातक स्तर पर अध्ययनरत शहरी एवं ग्रामीण छात्राओं के आत्मविश्वास के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

शोध अध्ययन विधिः— किसी भी शोध कार्य को वैज्ञानिक ढंग से पूर्ण करने के लिए अनुसंधान की विधि की आवश्यकता होती है। अनुसन्धान विधि का निर्धारण समस्या के स्वरूप व प्रकृति को ध्यान में रखकर किया जाता है। प्रस्तावित शोध अध्ययन की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए "वर्णनात्मक अनुसंधान" का एक प्रकार आदर्शमूलक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग करना उचित लगेगा इसलिए शोधकर्त्ता ने सर्वेक्षण विधि का प्रयोग इस अध्ययन में किया गया है।

शोध अध्ययन में प्रयुक्त उपकरणः— प्रस्तुत शोधकार्य में शोधकर्त्ता ने उद्देश्यों के अनुरूप उपकरणों की खोज की, अतः शोधकर्त्ता ने शोध पर्यवेक्षक एवं शोध क्षेत्र के अन्य अनुभवी विद्वानों से सम्पर्क किया तथा उनके परामर्श से मानकिकृत उपकरणों को शोध कार्य में प्रयोग किया गया।

तालिका संख्या 0.1

रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय के स्नातक स्तर पर अध्ययनरत शहरी एवं ग्रामीण छात्राओं के आत्मविश्वास के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं है।					
		आवृत्ति	प्रतिशत	मान्य प्रतिशत	संचयी प्रतिशत
वैध	बहुत कम	35	175.	175.	175.
	नीचा	45	225.	225.	400.
	मध्यम	48	240.	240.	640.
	उच्च	49	245.	245.	885.
	बहुत अधिक	23	115.	115.	1000.
	कुल	200	1000.	1000.	

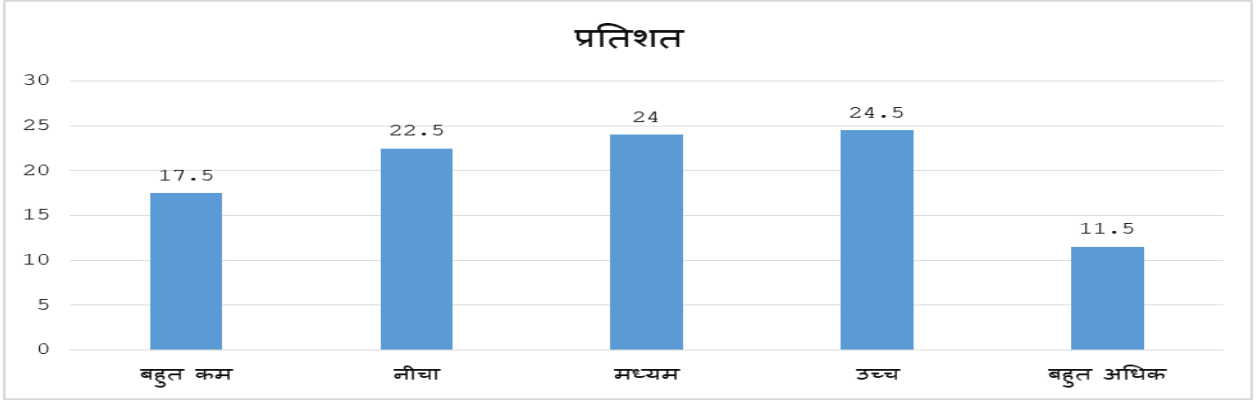

इस प्रश्नावली सर्वेक्षण में, 17.5% उत्तरदाता बहुत कम से संबंधित हैं, 22.5% उत्तरदाता निम्न से संबंधित हैं, 24% उत्तरदाता मध्यम से संबंधित हैं, 24.5% उत्तरदाता उच्च से संबंधित हैं और 11.5% उत्तरदाता रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय के स्नातक स्तर पर अध्ययनरत शहरी एवं ग्रामीण छात्राओं के आत्मविश्वास के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन के लिए इंजीनियर बनने की अपनी व्यावसायिक आकांक्षा स्तर के लिए बहुत उच्च समूहों से संबंधित हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सक्सेना, एन0आर0 स्वरूप 2002, शिक्षा सिद्धान्त, सूर्या पब्लिकेशन्स, मेरठ
2. भटनागर, सुरेश और कुमार मुनेन्द्र 2017—समकालीन भारत और शिक्षा, आर0लाल बुक डिपो, मेरठ
3. अग्निहोत्री, डा0 रेखा, मैनुअल फार अग्निहोत्री सेल्फ कान्फीडेन्स इनवैन्ट्री ए0एस0सी0आई0 1981, पृ0सं0 2
4. आर0एन0 मानव, 2014, ''उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान'', आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ, यू0पी0
5. लाल, रमन बिहारी 2002—03, ''भारतीय शिक्षा का इतिहास एवं समस्यायें'' राकेश रस्तौगी द्वारा रस्तौगी पब्लिकेशन, मेरठ
6. शर्मा, आर0ए0 (2015) शिक्षा अनुसन्धान के मूल तत्व एवं शोध प्रक्रिया, आर0 लाल0 बुक डिपो, मेरठ
7. http://vikaspedia.in

*****

प्राचीन भारतीय शास्त्रों में विमान विज्ञान

डॉ. एम. किषन,
सहायक आचार्य संस्कृत विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली–110007
ईमेल: mkisanskrit@gmail.com

डॉ.उमाशंकरः,
सहाचार्य ,संस्कृतविभागः,
दिल्लीविश्वविद्यालयः,
नईदिल्ली–
ईमेलः umashankarkaswan@gmail.com

शोधसार–

"प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ वे हैं जो प्राणियों में से बुद्धिमान हैं" महर्षियों का मानना है कि मनुष्य उनमें भी सर्वश्रेष्ठ है। बुद्धिजीवी लोग हमेशा बेहतरी और खुशी के लिए नई चीजें बनाने का प्रयास करते हैं। खासकर इक्कीसवीं सदी के बाद से, विज्ञान में बहुत प्रगति हुई है। विद्युत शक्ति, रेलवे, यांत्रिक शक्ति और हवाई जहाज, ये सभी लगभग डेढ़ सौ साल पहले तक नहीं देखे गए थे। हालांकि वेदों और पुराणों के दर्शन से यह स्पष्ट है कि वेदों और पुराणों में कई वैज्ञानिक रहस्य निहित हैं और प्राचीन काल में इनका प्रयोग भी किया जाता था। पुराणों में वर्णन मिलता है कि महान ऋषियों ने योग की सिद्धि प्राप्त की और आकाश गमन किया। लेकिन आधुनिक वैज्ञानिकों ने भी स्वीकार किया है कि प्राचीन काल में यांत्रिक शक्ति से चलने वाले विमान मौजूद थे। इस प्रकार, वैज्ञानिक रचनाओं की ऐसी विधाओं में, यह ज्ञात हो जाता है कि कब हवाई जहाज भी उपयुक्त है। हवाई जहाज के विषय पर कुछ शास्त्र उपलब्ध हैं। धर्मनिरपेक्ष साहित्य में हवाई जहाज का पहला वर्णन श्रीमद्रामायण में आता है। रामायण में विज्ञान का वर्णन श्रीमद् रामायण में विमान का प्रयोग देखने को मिलता है। इसमें दिखाया गया है कि रावण ने पुष्पक नामक विभिन्न प्रकार के विमानों का निर्माण करके उन्हें कुबेर को देने के बाद ब्रह्मा का बलपूर्वक अपहरण कर लिया था रामायण में यह भी वर्णन है कि पुष्पक समान रूप से गर्म और ठंडा होता है और इसे जनसंख्या के आधार पर फैलाया जाना चाहिए।[1]

कूटशब्द– विमान शब्दार्थ का स्वरूप, विमान चलाने के रहस्य और रक्षा के मार्ग, विमान भेद, विमान में लोहे का वैशिष्ट्य इत्यादि कूट शब्द हैं।

विमान शब्द का अर्थ है– **'व्योमयानं विमानोऽस्त्री'**[2] विमान शब्द का अर्थ उड़कर पशु की गरिमा बढ़ाना बताया है। मनु–अवबोधने धातु से व्युत्पन्न रूप है अथवा **'विगतं मानं उपमा अस्येति विमानम्'**[3] वे इस प्रकार विशिष्टता का सम्मान करते हैं। **पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण'**[4] से 'घ' प्राप्त होता है, फिर **'अधिकरणे ल्युट्'**[5] ल्युट् प्रत्यय से अन प्राप्त होकर विमान शब्द बना।

पुष्पकं तस्य जग्राह विसानं जयलक्षणम्।
काञ्जनस्तम्भसंवीतं वैदूर्यमणितोरणम् ॥
मुक्ताजालप्रतिच्छन्नं सर्वकामफलप्रदम्।
मनोजवं कामगमं कामरूपं विहङ्गमम् ॥
मणिकाञ्चनसोपानं तप्तकाञ्चनवेदिकम्।
देवोपवासह्यमव्यं सदा दृष्टिमनः सुखम् ॥
बहवाश्वर्यं भक्तिचित्रं ब्रह्मणा परिनिर्मितम्।
निमितं सर्वकामैस्तु मनोहरमनुत्तमम् ॥

विमान का स्वरूप – प्राचीन काल में भारद्वाज द्वारा रचित विमानशास्त्र नामक एक ग्रन्थ था जिसमें पाँच सौ सूत्र थे। लेकिन अब उस शास्त्र में केवल बत्तीस सूत्र ही उपलब्ध हैं, और उन बत्तीस सूत्रों के बोध के लिए पद्यात्मक व्याख्या दी गई है। कुछ अन्य सूत्र, जो क्रम में नहीं हैं, उनमें एक स्थान पर चौदह सूत्र हैं, तथा अन्य अध्यायों में तेईस सूत्र तथा बोधानंद द्वारा सैंतीस सूत्र मिलते हैं। कभी–कभी चौदह और कभी–कभी तीस हजार श्लोकों की व्याख्या मिलती है।[6] बोधानंद ने उस शास्त्र को महाविमान का शास्त्र कहा है। नारायण, शौनक, गर्ग, वाचस्पति आदि द्वारा रचित सूत्रात्मक ग्रन्थ उपलब्ध हैं। 1. विमानचंद्रिका, 2. व्योमयान तंत्र, 3. यंत्रकल्प, 4. यानबिन्दु, 5. खेटयानप्रदीपिका, 6. व्योमयानर्कप्रकाश आदि छः उदाहरण हैं। विमान का स्वरूप भी महान् विमान शास्त्र में स्पष्ट रूप से वर्णित है।

व्याख्या लक्षणरीत्यस्य पाणिनीयादि मानतः।
पारिभाषिक रूपत्वात् व्याख्यातुं नैवशक्यते ॥[7]

सूत्रम्– वेगसाम्यात् विमानोऽण्डजानामिति ॥
(बोधानन्दयतिवृत्तिः)
अण्डजेत्यत्र सूत्रेऽस्मिन् गृधाद्याः पक्षिणः स्मृताः।
आकाशगमने तेषां वेगशक्ति स्ववेगतः ॥
यस्समर्थो विशेषेण मा तुं गणितसंख्यया।
स विमान इति प्राक्तो वेग साम्याच्च शास्त्रतः ॥
पृथिव्यप्स्वंतरिक्षेषु खगवद्वेगतस्स्वयम्।
यस्समर्थो भवेद्गन्तुं स विमान इति स्मृतः ॥
देशाद्देशान्तरं तद्वत् दीपाद्वीपान्तरं तथा।
लोकालोकान्तरं चापि योऽम्बरे गन्तुमर्हति ॥
स विमान इति प्रोक्तः खेटशास्त्रविदां वरैः।[8]

विमान प्रणोदन के रहस्य– भारद्वाज ने विमान

प्रणोदन के बत्तीस रहस्यों का वर्णन किया है। सूत्र की दूसरी व्याख्या, ष्रहस्य जानने वाला अधिकारीष में बोधानंद ने 'रहस्य लहरी' नामक पुस्तक से इन नामों को उद्धृत किया है। उनकी विशेषताओं को भी समान रूप से आत्मज्ञ. ान के आनंद द्वारा परिभाषित किया गया है।

1. मांत्रिक – मंत्र विशेषज्ञ द्वारा बताए गए तरीके से छिन्नमस्ता भैरवी, वेगिनी, सिद्धम्बा और अन्य देवियों के मंत्रों की साधना करके घुटिका, पादुका और अन्य वस्तुओं को प्राप्त करके विमान की प्राप्ति एक मंत्र रहस्य है।

2. तांत्रिक – तंत्र शास्त्रों में वर्णित साधनाओं जैसे महामाया, शंबर, इंद्रजाल विद्या आदि के माध्यम से शक्तियों की खोज।

3. सृष्टिकर्ता का रहस्य – विश्वकर्मा, छायापुरुष, मनु और मय जैसे प्रसिद्ध देव शिल्पियों द्वारा लिखित शास्त्रों के अनुसार यंत्रों के निर्माण और विमान के निर्माण का रहस्य।

4. अंतराल का रहस्य – विमान के वायुमंडल में प्रवेश करते ही आकाश में स्थित सीमा–ऊर्जा जंक्शन से विमान का संपर्क टूट जाता है। यह अंतर उस दोष को जानने और विमान का निर्माण करने या उसे उचित सुरक्षा उपायों से सुसज्जित करने के रहस्य है।

5. गूढ़ रहस्य – वायु प्रवाह वृत्तों में आठवीं परिधि रेखा पर किया जाने वाला प्रयास, जो वियासा जैसे पथों पर सूर्य की किरणों के भीतर की शक्ति को खींचकर अंधकार की कल्पना करके विमान को शत्रु की दृष्टि से अदृश्य बनाना है।

6. दृश्य 7. अदृश्य, 8. परोक्ष, 9. अपरोक्ष, 10. संक. ोच, 11. विस्तृत, 12. विरूपकरण, 13. रूपान्तर, 14. सुरूपा, 15. ज्योतिर्भाव, 16. तमोमया, 17. प्रलय, 18. मुख, 19. तार, 20. महाशब्दविमोहन, 21. लंघन, 22. सार्पगमन, 23. चापल, 24. सर्वतोमुख, 25. परशब्दग्राहक, 26. रूपकर्षण, 27. प्रियग्रहण, 28. दिक्प्रदर्शन, 29. आकाशाकार, 30. जलदरूप, 31. स्तब्धक, 32. संकर्षण रहस्य का विस्तार से वर्णन।[9]

विमान रक्षा के मार्ग –

विमान रक्षा पथ उड़ान में आकाश में कक्षीय पथ या केंद्रीय पथों का निर्देश वाल्मीकि के गणित में भू–र्भुव–स्वर आदि सातों लोकों के पथ करोड़ों में वर्णित किये गये हैं। दिशा सूचक का प्रयोग अभी भी किया जाता है, तथा चालक को जमीन से निर्देश दिया जाता है कि वह इस क्षेत्र से इस दिशा में ऐसे डिग्री मापे गए कोण पर दूर जाए। उड़ान पथ को रडार नामक प्रणाली द्वारा नियंत्रित किया जाता है। समान विमान पथ नियंत्रण सुविध ाएँ, व्यवहारिक घर्षण से रैखिक कक्षा शक्ति केन्द्र कहे जाने वाले पांच मार्गों की वायु सुरक्षा की व्याख्या भी महर्षि धुण्डीनाथ ने वाल्मीकि के गणित के आधार पर की थी।[10]

प्रणोदन और यात्री की सुरक्षा के प्रकार–

ऋतुओं के अनुसार सूर्य की किरणों से विमान की सुरक्षा कवच, यात्रा के दौरान सूर्य की किरणों की विषैली शक्ति, उस शक्ति द्वारा सात धातुओं के विनाश की व्याख्या करते हैं।[11]

मन्त्रप्रावरणीयो पृथक पृथक ऋतुभेदात्। विषनाशस्त्रिभ्यः।

तत्कालानुसारादिति। तदभावे सत्वं गोलो वा ॥

यहां तक कि अब भी, जब अंतरिक्ष यात्री ठोस भोजन खाने का अवसर समाप्त हो जाता है, तब भी वे पर्याप्त मात्रा में भोजन स्वीकार करते हैं। गोल शब्द का अर्थ है गोली।

विमान के भेद –

भारद्वाज ने स्वयं स्पष्ट किया है कि चारों युगों के अंतर से विमानों में भेद होता है। इन भेदों में मांत्रिक, तांत्रिक और कृतका शामिल हैं। त्रेतायुग में पच्चीस प्रकार के मांत्रिक विमान हैं– **1. पुष्पक, 2. अजमुख, 3. भ्राज, 4. स्वज्योतिर्मुख, 5. कौशिक, 6. भीष्म, 7. शेष, 8. वज्रांग, 9. दैवत, 10. ज्वाल, 11. कोलाहल, 12. अर्चिष, 13. भूष्णु , 14. सोमांक, 15. पंचवर्ण, 16. षण्मुख, 17. पंचबाण, 18. मयूर, 19. शंकर, 20. त्रिपुरा, 21. वसुहार, 22. पंचानन, 23. अम्बरीष, 24. त्रिनेत्र, और 25. भेरुण्ड।**[12]

द्वापर युग में तांत्रिक विमानों के छप्पन नामों का उल्लेख किया गया है, जैसे भैरव, नंदन, वटुक, विरिंचि, तुम्बुर, वैनतेय, भेरुंड, मकर ध्वज, श्रृंगटक आदि। कलियुग में पच्चीस प्रकार के काव्य विमान हैं, जिनके नाम हैं – शकुण, सुंदर, रुक्म, मंडल, वक्रतुण्ड आदि। इसी प्रकार मैंने त्रिपुरासुरों के लिए आकाश में यात्रा करने की शक्ति वाले नगरों का निर्माण किया है। महाभारत में, वसु का विमान, शाल्व का सौभ, इत्यादि।[13]

सूत्र – **भैरवादि भेदात् तान्त्रिकाष्षट्पञ्चाशत्। शकुनाद्याः पञ्चविंशत् कृतकाः। शक्तयः पञ्चेति नारायणः ॥ विमान गति वैचित्र्य क्रियाकरण शक्तयः। सद्योजाताख्य यन्त्रेण संजाताः पञ्च एव हि। इति नारायणमुनिः स्वानुभूत्याब्रवीत्स्वयम् ॥**

चित्रिण्येवेतिस्फोटायनः॥ वैमानिकगति वैचित्र्यादिद्व ाविंशति क्रियायोगे। एकैव चित्रिणीशक्त्यलमिति शास्त्रे विनिर्णितं भवति। इत्यनुभवतश्शास्त्रानुमज्यते स्फोटायनः ॥

विमान निर्माण के लिए उपयुक्त लोहा विशेष –

विमान निर्माण के लिए तीन प्रकार का लोहा उपयुक्त होतामें– 1. सौमा, 2. सौंडालिका, 3. मौर्तिक। इन अंश भेदों (लाइड) को मिलाकर सोलह लौह भेद तापीय पाद बनाये जा सकते हैं। लोहे का उपयोग विमान के मार्ग

में लाइनों और अन्य स्थानों पर किया जाता है। सोलह भेदों को भी पुनः एक दूसरे से मिलाकर सत्ताईस से अधिक लोहे बनाए जा सकते हैं।[14]

सूत्र –

अथ वैमानिकान् लोहाननुक्रमिष्यामः सौम सौण्डालिक मौ. त्विकाश्चेति एतत्संमेलनादूष्मपाषोडशधा भवन्ति ते वैमानिका इति। विमानार्हाणि लोहानि भारहीनानि षोडश।

ऊष्माण्युक्तानि सूत्रेऽस्मिन् शौनकेन महात्मना–

भूगर्भखनिज रेखाः त्रिसहस्राधिकाः स्मृताः।
त्रिशतोत्तर सहस्र रेखाः तेषूत्तमाः क्रमात् ॥
रेखानुगुणतस्तासु खनिजास्सन्निरूपिताः।
तेष्वसप्तमरेखास्थखनिजास्सप्तविंशति ॥
तेषु त्रिविधाः खनिजाः गर्भकोशसमुद्भवाः।
पञ्चशक्तिमयायेस्युः ते लोहा बीजसंज्ञिकाः ॥
तानेव सौम सौण्डल मौत्विकाद्वैश्चनामभिः।
प्रवदन्ति विशेषेण लोहशास्त्रविशारदाः ॥

बोधानंद ने विमानों की प्रकृति का वर्णन करने से पहले उन इकतीस अंगों और दर्पणों के बारे में बताया जो विमानों को दिशा बदलने में मदद करते हैं। विमान में उत्पन्न विद्युत ऊर्जा के प्रकार को भी लाभकारी और हानिकारक के रूप में परिभाषित किया गया है। इसमें विमानों, जैसे कि इलेक्ट्रिक विमानों, में प्रयुक्त विशेष ईंधनों के बीच अंतर का उल्लेख किया गया है और विद्युत के सोलह भेद, जैसे इच्छा का आकर्षण, परिभाषित किए गए हैं। धनात्मक और ऋणात्मक केंद्र (कैथोड, एनोड) (–) दो विशिष्ट उदाहरण हैं।[15]

विद्युद्वयोद्भूतकृशानुवेगो।
प्रशान्तकं शक्तिशतत्रयान्वितम्

1.रामायण उत्तरकाण्ड 15/39.42 श्लोक, पृष्ठ– 953
2.अमरकोश – 1–1–48
3. अमरकोश – 1–1–48, रामाश्रमी व्याख्या, पृष्ठ – 25
4.पा. सू. – 3–3–118
5.पा. सू. – 6–3–117
6.भारतीय प्राचीन विज्ञान (आंध्र भाषा में), पृष्ठ– 116
7.भारतीय प्राचीन विज्ञान, पृष्ठ– 118–120
8.बोधानन्दयति वृत्ति।
9.भारतीय प्राचीन विज्ञान, पृष्ठ– 120–130
10.भारतीय प्राचीन विज्ञान, पृष्ठ– 132
11.भारतीय प्राचीन विज्ञान, पृष्ठ– 133–135
12.भारतीय प्राचीन विज्ञान, पृष्ठ– 138
13.भारतीय प्राचीन विज्ञान, पृष्ठ– 138–140
14.भारतीय प्राचीन विज्ञान, पृ.142–143
15.भारतीय प्राचीन विज्ञान, पृ 166

उपयुक्त ग्रन्थसूची –

1. अमरकोश, चौखाम्बा संस्कृतविद्यालय, वारणासी – 2012
2. श्रीमद् रामायण – परिमला पब्लिकेपन्स, दिल्ली–2010
3. भारतीय प्राचीन विज्ञानम (Telugu) By- Ravi Srinivasasastry भारतीय रसायन शाला विजयवाड– 198
4. पाणिनीय अष्टाध्यायी, रामलाल कपूर ट्रस्ट, सोनीपत, हरियाणा।
5. अष्टाध्यायीभाष्य (प्रथमावृत्ति) ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, रामलाल कपूर ट्रस्ट, सोनीपत, हरियाणा।

*****

भारतीय वास्तुशास्त्र एवं वर्तमान नागरिक जीवन

-सौरभ
शोधार्थी, पीएच.डी.
संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली-110007
Email: ss0409950@gmail.com

-डॉ. उमाशंकर
एसोसिएट प्रोफसर
संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली-110007
umashankarkaswan@gmail.com

सारांश

भारतीय वास्तुशास्त्र अपने आप में पूर्ण वैज्ञानिक शास्त्र है। वास्तुशास्त्र का मूलाधार प्रकृति एवं मानव का तादात्म्य सम्बन्ध है। वास्तुशास्त्र ने भारतीय-संस्कृति एवं जीवनशैली के विकास में न केवल महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है, बल्कि उसे एक विलक्षण पहचान भी दी है अतः आज यह समय की आवश्यकता है कि हम इसके वैज्ञानिक पक्ष को उजागर करें। वास्तुगत प्रभावों गुण-दोषों से जनसाधारण को परिचित कराये, उन्हें प्रत्यक्ष अनुभव करायें। हमारे सिविल इन्जिनियर्स और आर्किटैक्ट्स को वास्तुशास्त्र का गंभीरतापूर्वक अध्ययन करना चाहिए। वास्तु-नियमों को प्रत्यक्ष रचनाकर्म में लागू करना चाहिये। शासन को भी चाहिये कि प्राचीन भारतीय वास्तुशास्त्र के नियमों को सिविल इंजिनियरिंग के पाठ्यक्रम में अनिवार्य रूप से सम्मिलित करें, ताकि इसके छात्र भारतीय स्थापथ्य-शास्त्रों पर गौरव कर सकें और इसके अनुसार ही भवन-रचना का प्रारूप प्रस्तुत कर मानव-कल्याण में अपना योगदान दे सकें। इस प्रकार हमारा सम्मिलित प्रयास इस सम्पन्न विज्ञान की पुनःस्थापना के लिए यज्ञकार्य होगा।

शब्दकुञ्जी - *वास्तुशास्त्र, वैज्ञानिक पक्ष, आर्किटैक्ट्स, भवन, स्थापत्य कला, वास्तुपुरुष।*

भारतीय विचारधारा में सभी विधाओं का मूल स्रोत वेद हैं। वेदों में विद्यमान विद्याओं की विस्तृत व्याख्या के लिए पृथक्-पृथक् रचनाएँ हुईं, जैसे - चिकित्सा-विज्ञान के विस्तृत विवेचन के लिए आयुर्वेद, धनुर्विद्या के ज्ञान के लिए धनुर्वेद, गायन-विद्या की विस्तृत व्याख्या के लिए गान्धर्ववेद और स्थापत्य-विद्या के लिए स्थापत्यवेद, जो कि उपवेद के नाम से प्रख्यात है। यह स्थापत्यवेद ही कालान्तर में वास्तुशास्त्र के रूप में परिणत हुआ।

बाद में वास्तुशास्त्र पर स्वतन्त्र रूप से अनेक ग्रन्थों की रचना हुई, परन्तु दुर्भाग्य से कतिपय ग्रन्थों को छोड़कर एतद्-विषयक अधिकांश ग्रन्थों का काल ज्ञात नहीं है। इस प्रकार वास्तुशास्त्र का भी अन्य भारतीय विद्याओं की भांति, क्रमबद्ध इतिहास उपलब्ध नहीं होता है। परन्तु वेदों एवं उत्तरवर्ती वैदिक साहित्य में वास्तु-सम्बन्धी संकेत अवश्य मिलते हैं, जिससे इस शास्त्र की प्राचीनता सिद्ध होती है।

विश्व की प्राचीनतम रचना ऋग्वेद में 'वास्तोष्पति' देवता का उल्लेख हुआ है, जिससे गृह में रहने वाले द्विपदों और चतुष्पदों के लिए सुख-सौभाग्य आदि की प्रार्थना की गई है।[1] वैदिक संहिताओं के अनुसार वास्तोष्पति साक्षात् परमात्मा का ही नामान्तर है, क्योंकि वे ही विश्वब्रह्माण्डरूपी वास्तु के स्वामी हैं। आगमों एवं पुराणों के अनुसार वास्तुपुरुष नामक एक उपदेवता के ऊपर ब्रह्मा, इन्द्रादि लोकपाल सहित 45 देवता अधिष्ठित होते हैं, जो वास्तु का कल्याण करते हैं। वैदिक काल में वास्तु के अन्तर्गत गृह-निर्माण ही माना जाता था। ऋग्वेद में 'गृह' शब्द आवास के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है।[2] वैदिक साहित्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है तत्कालीन गृहों में अनेक कक्ष या भाग हुआ करते थे, जिन्हें भिन्न-भिन्न प्रयोजनों के लिए प्रयोग किया जाता था। अथर्ववेद में गृह के चार प्रकार के प्रकोष्ठों का उल्लेख हुआ है[3] -

हविर्धानमग्निशालं पत्नीनां सदनं सदः।
सदो देवानामसि देवि शाले।।[4]

जिनमें से प्रथम हविधान या भण्डार गृह होता था, जिसमें याज्ञिक कर्मकाण्ड के लिए आवश्यक वस्तुएँ और गृहस्थ-जीवन के लिए उपयोगी विविध सामग्री आदि सञ्चित करके रखी जाती थी। द्वितीय - अग्निशाला के रूप में वह कक्ष था, जिसमें अग्नि का आधान किया जाता था। कालान्तर में यही अग्निशाला राजप्रासादों में देवगृह कही जाने लगी। यहाँ पर राजा, ऋषि-मुनियों या पुरोहित आदि अतिथियों का स्वागत करता था। तृतीय 'पत्नीनां' सदनम्' अर्थात् स्त्रियों का प्रथक् कक्ष होता था, बाद में उसी की संज्ञा अन्तःपुर हुई। चतुर्थ - सदस् या बैठक थी जिसे सभा भी कहा जाता था। बाद में इसी सभा को आस्थान मण्डप भी कहा गया है। यह राजप्रासादों का वह भाग होता था, जहाँ पर दरबार और अतिथियों का स्वागत किया जाता था।[5] वैदिक काल में प्रचलित गृह-निर्माण की यह योजना परवर्ती भारतीय गृह या प्रासाद-निर्माण की परम्परा में निरन्तर चलती रही।

वैदिक युग में छोटे-बड़े सभी प्रकार के गृह बनते थे। ऋग्वेद में एक ऐसे बृहन्तमान (जिसका माप या परिमाण बहुत बड़ा हो) गृह का वर्णन मिलता है - जिसमें सहस्रद्वार थे।[6] अथर्ववेद में एक स्थान पर गृह की उपमा अलंकृत हथिनी से दी गई है। वैदिककालीन युग में भवन-निर्माण का आधार केवल लकड़ी न होकर मिट्टी, ईंट-पत्थर आदि भी था। ऋग्वेद में एक स्थान पर प्रार्थना की गई है कि मैं मिट्टी के गृह में निवास न करूँ।[7] अथर्ववेद में पत्थरों से निर्मित भवन का उल्लेख मिलता है।[8] ऋग्वेद में एक स्थल पर लौह निर्मित नगरों का उल्लेख मिलता है।[9]

संहिताओं के अनन्तर ब्राह्मणग्रन्थों एवं सूत्रग्रन्थों में गृह-वास्तु का विस्तृत परिचय मिलता है। शतपथ-ब्राह्मण में गृह के विभिन्न कक्षों का रोचक वर्णन मिलता है।[10] तत्कालीन भवनों में प्रायः चार द्वार होते थे।[11] सुरक्षा के लिए द्वारों में अर्गला का प्रयोग प्रचलित था। सूत्रग्रन्थों में भी अनेक स्थानों

पर वास्तुशास्त्रीय तथ्य उपलब्ध होते हैं। गोभिल गृह्यसूत्र में प्रयुक्त होने वाले द्वारों तथा गृह के चारों ओर लगाने योग्य वृक्षों का वर्णन भी मिलता है।[12]

कालान्तर में गृहों के विकास साथ ही ग्रामों, नगरों एवं महानगरों का विकास होने लगा। ये सभी विकास वास्तु के अन्तर्गत मिले, जिसके चलते वास्तु के क्षेत्र में पर्याप्त विकास हुआ।

लौकिक साहित्यिक-साधनों में भी वाल्मीकि रामायण, भरतमुनि का नाट्यशास्त्र, महाभारत, शुक्रनीति, कामसूत्र, अर्थशास्त्र तथा बौद्ध जातक आदि प्राचीन ग्रन्थ हैं, जिनका समय निश्चित रूप से तो ज्ञात नहीं हैं, परन्तु इनमें वास्तु-विषयक जो सामग्री प्रसङ्गवश उल्लिखित मिलती हैं, वह वास्तु-शास्त्र के इतिहास को बनाने में अत्यन्त मूल्यवान हैं। वाल्मीकि रामायण में भारतीय स्थापत्य कला की बहुत उन्नत अवस्था का चित्रण हुआ है। इसमें नगरों, प्रासादों, दुर्गों आदि का विस्तृत-विवरण उपलब्ध होता है। तत्कालीन समय में स्थापत्य कला के विशेषज्ञों को समाज में बहुत प्रतिष्ठा मिलती थी। देवों और असुरों के प्रधान स्थापत्य विज्ञों अर्थात् विश्वकर्मा और मय का इसमें कई बार उल्लेख हुआ है।[13] नाट्यशास्त्र में नाट्यशाला के सन्निवेश प्रसङ्ग में ही वास्तु-सम्बन्धी सामान्य बातों का वर्णन हुआ है। जैसे भूमि-चयन, उसका परिमार्जन, उसके विस्तार के परिमाण का निर्धारण, नाट्यशाला का मानचित्र, शिलान्यास की धार्मिक-विधि, ब्राह्मणादि चारों वर्णों के आधार पर चार प्रकार के स्तम्भों की रचना आदि।[14]

महाभारत काल में वास्तुविद्या के पूर्ण विकसित होने के प्रमाण मिलते हैं। पाण्डवों का राजप्रसाद जो स्थल में जल तथा जल में स्थल का आभास देता था, भवन-निर्माण का अद्भुत कौशल को दर्शाता है। श्रीकृष्ण के कहने पर मय नामक दानव ने इसका निर्माण किया था।[15] इन्द्रप्रस्थ नगर के सम्बन्ध में जो विवरण महाभारत में मिलता है, वह नगर-निर्माण योजना पर पर्याप्त प्रकाश डालता है।[16]

मत्स्यपुराण में वास्तुशास्त्र के 18 आचार्यों का उल्लेख मिलता है, जिन्होंने वास्तुशास्त्र की विस्तृत व्याख्या करके अच्छे कीर्तिमान स्थापित किये।[17] इसी प्रकार अग्निपुराण में भी वास्तु-विषयक विस्तृत विवरण मिलता है।

वेद से निःसृत वास्तुविद्या अपने पल्लवन काल में प्रमुखतः दो धाराओं में विभक्त है - नागर परम्परा अथवा उत्तर भारतीय वास्तुपरम्परा तथा दूसरी द्राविड परम्परा अथवा दक्षिण भारतीय वास्तु-परम्परा के प्रमुख प्राचीन आचार्य शम्भु, गर्ग, अत्रि, वसिष्ठ, पाराशर, बृहद्रथ एवं वासुदेव आदि हैं।[18] जबकि दक्षिणी परम्परा के उद्भावक एवं स्थापक आचार्य मय हैं एवं दानवों तथा असुरों के वास्तु एवं शिल्प में उनका वही स्थान है जो नागर-परम्परा में विश्वकर्मा को प्राप्त है। इस परम्परा के प्रवर्तक आचार्यों में ब्रह्मा, मातंग, त्वब्टा, भृगु, अगस्त्य, शुक्र, काश्यप, पाराशर, नग्नजित्, नारद, प्रह्लाद, शुक्र, बृहस्पति एवं मानसर विशेष उल्लेखनीय हैं।[19]

वास्तुशास्त्र के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाला भारतीय साहित्य मुख्यतः दो प्रकार है, वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थ (Architectural Works) तथा अ-वास्तु-शास्त्रीय ग्रन्थ (Non-Architectural Works)। पहली कोटि में उन ग्रन्थों का समावेश होता है, जिनमें अविकल रूप से वास्तुशास्त्र पर विवेचन किया गया है और दूसरी कोटि के वे ग्रन्थ हैं, जो मुख्यतः या तो धार्मिक ग्रन्थ हैं, जैसे वेद, वेदाङ्ग (कल्प-ज्योतिष), पुराण, आगम तथा धर्मिक संस्कारपद्धतियों, पूजा-पद्धतियों या कुछ नीति-विषयक ग्रन्थ, जैसे शुकनीति और कौटिल्य का अर्थशास्त्र आदि।

भारतीय वास्तुशास्त्र अपने आप में पूर्ण वैज्ञानिक शास्त्र है। वास्तुशास्त्र का मूलाधार प्रकृति एवं मानव का तादात्म्य सम्बन्ध है। मानव देह, ब्रह्माण्ड एवं आवास - इन तीनों का एक दूसरे के साथ समन्वय सम्बन्ध है। जो पिण्ड में है, वही ब्रह्माण्ड में है। जो उन दोनों में है उसी का मूर्तरूप आवास में है द्युलोक एवं पृथ्वीलोक के मध्य सामञ्जस्य बनाये रखने के लिए वास्तुशिल्प का आश्रय लेना आवश्यक है। वास्तुशास्त्र द्वारा पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण एवं पृथ्वी पर पड़ रहे ग्रहों के आकर्षण बल के मध्य सन्तुलन बनाये रखने का प्रयास किया जाता है।

प्राचीन भारत में इस शास्त्र का इतना अधिक महत्त्व था कि साधारणजन के गृह से लेकर राजभवन एवं देवप्रसाद, वापी, कूप, तालाब, नगर इत्यादि निर्माण में इस शास्त्र के सिद्धान्तों का पूर्णतः पालन किया जाता था, जिसके कारण भारतीय जनता का जीवन समृद्ध एवं शान्तियुक्त था। कालान्तर में पाश्चात्य स्थापत्य-कला या भवन-निर्माण-कला का अन्धानुकरण होने लगा। परिणामतः मानव जीवन कष्टतर होता गया और आज भौतिक दृष्टि से जीवन की समस्त सुविधाओं से सम्पन्न होने पर भी मानव जीवन अनेक प्रकार की समस्याओं से ग्रसित है। भारतीय दृष्टिकोण से वास्तु-निर्माण न केवल निर्मिति मात्र अथवा भवन मात्र है, अपितु यह धर्मार्थकाममोक्ष-रूप पुरुषार्थ चतुष्टय के सम्पादन में और ऐहिक एवं पारलौकिक उन्नति की सिद्धि में महत्त्वपूर्ण साधन है।

सम्प्रति पाश्चात्य देशीय वास्तुविद्या-विशारद भी भारतीय वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों के अध्ययन में अभिमुख है। आज अनेक भारतीय वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों का विदेशी भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। आधुनिक युग के कतिपय वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाले लोग भी भूमिक्रय एवं आवास-निर्माण आदि के लिए यथासम्भव वास्तुशास्त्रीय निर्देशों का पालन करने लगे हैं। अतः इस प्राच्य-विद्या की ओर लोगों की प्रवृत्ति पुनः बढ़ने लगी है।

प्राचीन काल में भूमि पर्याप्त एवं सहज सुलभ थी, जिससे मानव अपनी इच्छानुसार भूखण्ड का चयन करके वास्तुशास्त्र के नियमों के अनुसार गृहादि का निर्माण कर सकता था, परन्तु महानगरों के विकास एवं बढ़ती जनसंख्या के कारण सभी के पास भूमि का पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होना सहज संभव नहीं है। आज कई लोगों को कटे-कटाए भूखण्ड मिलते हैं और किसी-किसी को तो भूखण्ड की भी प्राप्ति नहीं होती, उन्हें बहुमंजिला इमारतों अथवा फ्लैट इत्यादि में एक-दो कमरे लेकर जीवन-निर्वाह करना पड़ता है, अतः वर्तमान में भूमि का चयन मानव के हाथ में नहीं रहा है। आज के परिवेश में भूखण्डों के आकार, भूखण्ड की परीक्षा, दिशा-निर्धारण, भूखण्ड का विस्तार, भूखण्ड का कटाव, मुख्य-द्वार-दिशा, द्वार-वेध, ब्रह्मस्थान एवं गृह की ऊँचाई आदि का महत्त्व अधिक नहीं रह गया है। अतः ऐसी स्थिति में वास्तुशास्त्र के ये नियम तो पूर्णतः अप्रासङ्गिक दिखते हैं। लेकिन यह सर्वविदित है कि कोई भी शास्त्र किसी आग्रह से नहीं बँधता, इसलिए वह देशकाल एवं परिस्थितियों से सामञ्जस्य

स्थापित करता है। इसी लचीले दृष्टिकोण के कारण उसमें संशोधन एवं परिवर्तन होते रहते हैं। वास्तुशास्त्र भी इसका अपवाद नहीं है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि भूखण्ड के अन्दर ही ऐसा वातावरण तैयार करें कि प्राकृतिक शक्तियों, दिशाओं एवं पञ्चमहाभूतों का समुचित उपयोग कर सुविधा, सुरक्षा और विकास प्राप्त कर सकें। इसके लिए फ्लैट इत्यादि में कोणात्मक दिशा-शोधन करके, अग्नि, पूजा तथा जलस्थान और शयनकक्ष में पलंग इत्यादि की दिशा बदलने से तथा सीढ़ियों व खिड़कियों में मामूली सा परिवर्तन करने से वास्तु के कुप्रभाव को कम किया जा सकता है।

वास्तुदोषों की शांति के लिए वास्तुशांति करने का तथा गृह में वास्तुयन्त्र एवं मुख्य-द्वार पर श्रीगणेश, अष्टमंगला, गौरी, लक्ष्मी इत्यादि की प्रतिमा लगाने का विधान भी वास्तुग्रन्थों में मिलता है।

वास्तुशास्त्र ने भारतीय-संस्कृति एवं जीवनशैली के विकास में न केवल महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है, बल्कि उसे एक विलक्षण पहचान भी दी है। अतः आज यह समय की आवश्यकता है कि हमें इसके वैज्ञानिक पक्ष को उजागर करें। वास्तुगत प्रभावों गुण-दोषों से जनसाधारण को परिचित करायें, उन्हें प्रत्यक्ष अनुभव हो।

सिविल इन्जिनियर्स और आर्किटैक्ट्स को वास्तुशास्त्र का गंभीरतापूर्वक अध्ययन करना चाहिए। वास्तु-नियमों को प्रत्यक्ष रचनाकर्म में लागू करना चाहिए। शासन को भी चाहिये कि प्राचीन भारतीय वास्तुशास्त्र के नियमों को सिविल इंजिनियरिंग के पाठ्यक्रम में अनिवार्य रूप से सम्मिलित करें। ताकि इसके छात्र भारतीय स्थापत्य-शास्त्रों पर गौरव कर सकें और इनके अनुसार ही भवन-रचना का प्रारूप प्रस्तुत कर मानव-कल्याण में अपना योगदान दे सकें। इस प्रकार सभी का सम्मिलित प्रयास इस सम्पन्न विज्ञान की पुनःस्थापना के लिए एक यज्ञकार्य होगा।

सन्दर्भ

1. ऋग्वेद (तृतीय खण्ड), श्रीराम शर्मा आचार्य संस्कृति संस्थान, बरेली (उ.प्र.), संस्करण 1965 ई.
2. भारतीय वास्तुशास्त्र (वास्तुविद्या तथा पुरनिवेश), डॉ. द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल, वास्तु वाङ्मय प्रकाशनशाला, लखनऊ, 1955 ई.
3. भारतीय स्थापथ्य, डॉ. द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल, उत्तर प्रदेश, लखनऊ, संस्करण प्रथम, 1968 ई.
4. वेदाङ्ग ज्योतिष, सीतेश चन्द्र भट्टाचार्य, संस्कृत कॉलेज, कलकत्ता, 1974 ई.
5. समराङ्णसूत्रधार वास्तुशास्त्र, डॉ. द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल, मेहरचन्द लक्ष्मणदास, पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1965 ई.
6. वास्तुकला और भवन निर्माण, डॉ. उमेशपुरी 'ज्ञानेश्वर', रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार, 2000 ई.
7. वास्तुरत्नावली, जीवनाथ झा, चौखम्भा अमरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1933 ई.
8. वास्तुराजवल्लभ, मास्टर खेलाड़ी लाल, संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी, 1999 ई.
9. वास्तुविज्ञान, आचार्य उमेश शास्त्री, व्यास बालाबक्ष - शोध संस्थान, जयपुर, 1996 ई.
10. विश्वकर्माप्रकाश, गणेशदत्त पाठक, ठाकुर प्रासाद पुस्तक भण्डार, वाराणसी, संस्करण द्वितीय, 1995 ई.
11. बृहदवास्तुमाला, रामनिहोर द्विवेदी, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 2000 ई.
12. भारतीय वास्तुकला का इतिहास, कृष्णदत्त बाजपेयी, हिन्दी समिति, लखनऊ, संस्करण प्रथम, 1972 ई.
13. बृहत्पाराशर होराशास्त्र, सुरेशचन्द्र मिश्र, रंजन पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2002 ई.
14. पर्यावरण एवं वास्तु-चिन्तन, डॉ. विनोद शास्त्री, राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर, 1990 ई.
15. मयमतम्, डॉ. शैलजा पाण्डेय, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण प्रथम, 2007 ई.
16. वास्तुरत्नाकर, विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी, चौखम्भा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, 2000 ई.
17. वास्तुमाणिक्यरत्नाकर, रामतेज पाण्डेय, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 2003 ई.
18. मुहूर्तगणपति, डॉ. नर्वदेश्वर तिवारी, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, 2003 ई.
19. रूपमण्डन, डॉ. बलराम श्रीवास्तव, राजधानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 1922 ई.

****

शोधालेख प्रकाशन के मानक

व्यक्तिगत पंचवार्षिक सदस्यता लेने पर पांच साल तक पत्रिका मिलेगी। शोधालेख प्रकाशन की स्वीकृति/अस्वीकृति का जो भी निर्णय होगा वह आपको मेल से ही सूचित किया जाएगा। इसको लेकर संपर्क करने की आवश्यकता नहीं हैं।

UGC CARE LISTED हिन्दी की स्तरीय पत्रिका 'नागफनी' के जो सदस्य हैं उनका ही आलेख प्रकाशित होगा। जो भी व्यक्ति शोधालेख भेजना चाहते हैं कृपया वें अपने लेख में निम्न बिंदु आवश्यक रूप से रखें जैसे–

1. भूमिका/प्रस्तावना
2. विषय वस्तु/बीज शब्द
3. मुख्य अंश/उद्देश्य
4. परिणाम/निष्कर्ष
5. सन्दर्भ
6. शब्द मर्यादा अधिकतम शब्द 3000 इससे ज्यादा शब्द है तो कार्यकारी संपादक से परामर्श कीजिएगा।
7. सत्यापन एवं सहमति पत्र देने पर ही आलेख के सम्बन्ध में निर्णय होगा।

सत्यापन प्रमाण–पत्र

1. मैं .....सत्यापित करता/करती हूँ की 'नागफनी' के लिए प्रस्तुत शोधालेख शीर्षक.....मौलिक एवं अप्रकाशित है। लेखन संबंधित सारे संदर्भ सत्य हैं। किसी भी अंश के विवादित स्थिति के लिए मैं स्वयं जिम्मेदार रहूँगा/रहूँगी। साथ ही प्रस्तुत शोधालेख में नागफनी के पीयर रिव्यू कमेटी को संशोधन संपादन और संवर्धन करने की सहमति जताता/जताती हूँ।

2. शोधालेख प्रकाशित–अप्रकाशित करने का पूर्ण अधिकार सम्पादक मंडल और पीयर रिव्यू कमेटी का है। स्तरीय एवं मौलिकता आदि के परीक्षण के बाद ही शोधालेख की स्वीकृति/अस्वीकृति का जो भी निर्णय होगा, मुझे मान्य होगा। उपरोक्त नियम और शर्तों को मैं स्वीकार करता/करती हूँ।

हस्ताक्षर–
नाम–
मोबाइल नंबर–

व्यक्तिगत पंचवार्षिक सदस्यता लेने पर पांच साल तक पत्रिका मिलेगी। शोधालेख प्रकाशन की स्वीकृति/अस्वीकृति का जो भी निर्णय होगा वह आपको मेल से ही सूचित किया जाएगा। इसको लेकर संपर्क करने की आवश्यकता नहीं हैं।

STANDARD NORMS FOR AUTHORS

Nagfani, the U.G.C. Care listed journal publishes articles, research papers etc. written by the members of journals only. The manuscripts should contain the following:

1. Abstract with keywords
2. Objectives
3. Conclusions
4. References
5. Word limit is 3000 (For higher limits, please contact the editor)

I_____ certify/undertake to say that the manuscript entitled_____submitted for publication in the NAGFANI issue is an unpublished original work. I know that I will be fully responsible for any controversial situation arising out of the manuscript/article or part of it. I also transfer the rights to edit, review and conserve the manuscript to the peer review committee of NAGFANI.

Signature of the author:
Mobile No:



अधिक जानकारी के लिए वेबसाइट देखिए http%//naagfani.com

रोमी प्रेस बैंगलूर / 9425179103